जयन्ती-स्मारक ग्रंथ
जी की स्वर्ण-जयन्ती

जयन्ती-स्मारक ग्रन्थ समिति के प्रधान

कुमार गंगानन्दसिंह, एम० ए०

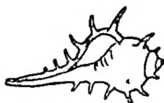

सम्पादक

प्रोफेसर शिवपूजनसहाय

[राजेन्द्र-कालेज, छपरा]

प्रोफेसर हरिमोहन झा, एम० ए०

[बी० एन० कालेज, पटना]

श्रीअच्युतानन्द दत्त

[सहकारी 'बालक'-सम्पादक]

श्री५मान् महाराजाधिराज मिथिलेश कर्नल डॉक्टर सर कामेश्वर सिंह बहादुर
के० सी० आइ० ई०, एल एल० डी०, डी० लिट्

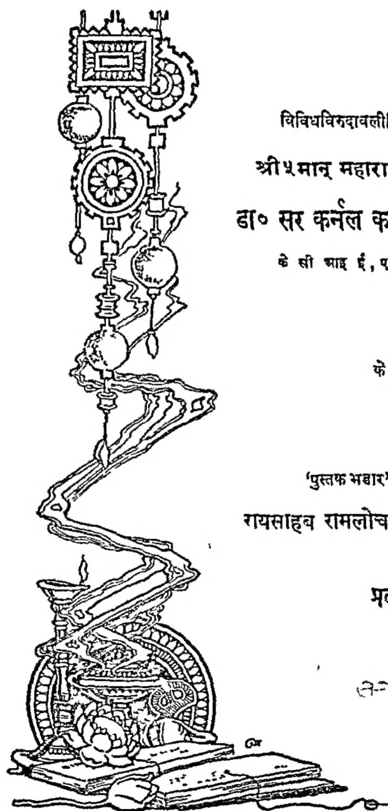

विविधविरुदावलीविराजमानमानोन्नत

श्री ५ मान् महाराजाधिराज मिथिलेश

डा० सर कर्नल कामेश्वर सिंह बहादुर

के सी आइ ई, एल्-एल् डी, डी-लिट्

के द्वारा

'पुस्तक भंडार' के व्यवस्थापक

रायसाहब रामलोचनशरण 'विहारी' को

प्रदत्त

श्रद्धाञ्जलि

हे विहार के गौरवस्तम्भ साहित्यतपस्वी,

साहित्यतरणी के कुशल कर्णधार,

गद्यशैली के नवयुग - प्रवर्त्तक,

अभिनव बालसाहित्य के यशस्वी निर्माता,

हिन्दी - व्याकरण के वन्दनीय आचार्य,

बालकण्ठहार 'बालक' के सफल सम्पादक,

तीर्थस्वरूप 'पुस्तक भंडार' के संस्थापक,

आचार्य श्रीरामलोचनशरणजी,

आपकी अमूल्य सेवाओं के पुरस्कारस्वरूप

यह

जयन्ती-स्मारक ग्रंथ

आपको सस्नेह और सम्मान पूर्वक

प्रदान किया गया

ज्येष्ठ शुक्ल १०
सं० १९९९

विद्यापति हिन्दी-सभा
दरभंगा

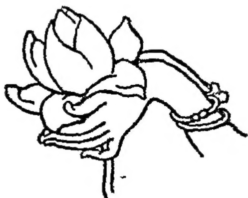

आचार्य श्रीरामलोचनशरण 'विहारी'

अनुक्रमणिका

[सम्पादकीय वक्तव्य; अतीत के द्वार पर—श्री 'दिनकर'; शब्दस्तवन—श्री 'केसरी']

☞ ❀चिह्नित लेख सचित्र हैं।

❀बिहार की विभूतियाँ—

अथर्ववेद और राजतन्त्र का क्रमिक विकास—प्रो श्रीधर्मदेव शास्त्री दर्शन केसरी १५०-१५२

❀ ओदन्तपुरी—

❀बिहार का गोधन और उसकी गोशालाएँ—

चित्रावली

राजा शिवप्रसाद
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
भूदेव मुखोपाध्याय
बाबू रामदीनसिंह
,, लगट सिंह

बाबू हरिहरनारण
,, शालग्रामसिंह
,, देवकीनन्दन खत्री
श्रीबँसुलिया बाबा
श्रीजगन्नाथप्रसाद वैष्णव

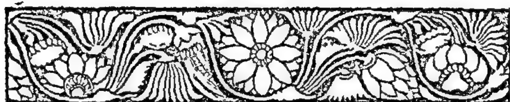

वक्तव्य

कुछ दिनों से हिन्दी-संसार में एक ऐसी भावना का विकास हो रहा है, जिसे साहित्य की उन्नति के लिये शुभलक्षण समझना चाहिये। वह यह कि हम धीरे धीरे अपने साहित्यकारों को उनके जीवनकाल में समुचित रूप से सम्मानित करने का महत्त्व समझने लग गये हैं। आचार्य द्विवेदीजी, प्रेमचन्दजी, हरिऔधजी आदि का जो आदर उनके जीवन काल में हुआ है, वह इस बात का द्योतक है।

किन्तु, खेद है, बिहार में यह भावना अभी तक उतनी पुष्ट नहीं हो पाई है। आज तक हम अपने प्रान्त के किसी भी साहित्यिक का समुचित आदर नहीं कर पाये हैं। इस गुरुतर अपराध का मार्जन तभी हो सकता है जब हम बिहार के अतीत और वर्तमान साहित्यकारों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये एक विराट् यज्ञ का अनुष्ठान करें।

इसी सद्भावना से प्रेरित होकर बिहार प्रान्त के कतिपय उत्साही विद्वानों ने, जिनमें कुमार गंगानन्द सिंह अग्रणी हैं, एक ऐसे महान् यज्ञ का संकल्प किया।

अब, यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि 'कस्मै देवाय हविषा विधेम ?' कौन देवता इस यज्ञ का अधिष्ठाता बनाया जाय ? और, यह अनुष्ठान किया जाय किस उपलक्ष्य में ?

ईश्वर की कृपा से, इस समस्या के हल होने में देर न लगी। देवता के वरण में दो मत हुए ही नहीं। सभी अनुष्ठाताओं ने एक स्वर से एक ही नाम उच्चारित किया—श्रीरामलोचनशरणजी बिहारी।

इस विषय में दो मत होने की गुंजाइश थी भी नहीं। बिहार प्रान्त में हिन्दी साहित्य की नौका का कर्णधार होने का श्रेय आपके सिवा और किसको प्राप्त है ? विगत पचीस वर्षों से आप जिस कुशलता और दृढ़ता के साथ इस साहित्य पोत का संचालन और दिशानिर्देश करते आ रहे हैं, वह हिन्दी-साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित होने योग्य है।

विहार के हिन्दी-क्षेत्र में आप एक ही साहित्यसेवी 'मास्टर साहब' हैं। आपकी लेखनी आज के प्रत्येक नवयुवक बिहारी लेखक पर अपनी अमिट छाप डाले हुए है। सरल गद्य शैली के प्रवर्त्तन में आपने जो महत्त्वपूर्ण आदर्श उपस्थित किया है, वह हिन्दी भाषा के विकास के इतिहास में अमर रहेगा। निष्पक्ष समालोचक आदर के साथ 'द्विवेदी युग' के अनन्तर 'शरण-युग' का उल्लेख करेंगे।

बिहार के आप एकान्तनिष्ठ साहित्यिक दधीचि हैं। आपपर सारे हिन्दी-संसार को अभिमान होना चाहिये। आपके अभिनन्दन को व्यक्ति विशेष का अभिनन्दन न समझकर साहित्यिक क्षेत्र में उस पुनीत आदर्श का अभिनदन समझना चाहिये, जिसकी स्थापना में आपने अनवरत भगीरथ-परिश्रम करते हुए अपना सारा जीवन लगा दिया है।

अस्तु। विद्वानों की सभा ने सर्वसम्मति से इसी विचार का अनुमोदन किया कि बिहार में सबसे पहले आपका ही साहित्यिक सम्मान होना चाहिये।

संयोगवश उपलक्ष्य भी सुन्दर मिल गया। जिस समय उपर्युक्त विचार अस्तित्व ग्रहण कर रहा था, उस समय ईश्वर की दया से आप अपने यशस्वी जीवन के पचासवें वर्ष में पदार्पण कर रहे थे, और आपकी अमर कीर्त्ति 'पुस्तक भंडार' का पचीसवाँ वर्ष बीत रहा था।

फिर ऐसा दुर्लभ मणि-काञ्चन योग क्यों छोड़ दिया जाय? क्यों न एक साथ ही 'मास्टर साहब' की स्वर्ण-जयन्ती और 'भंडार' की रजत-जयन्ती के उपलक्ष्य में एक सर्वाङ्गसुन्दर 'स्मारक ग्रन्थ' निकालने का आयोजन किया जाय?

साहित्यकार का यथार्थ सत्कार साहित्यिक सामग्री के द्वारा ही होता है। अतः निश्चित हुआ कि आपकी अमूल्य हिन्दी-सेवाओं के अनुरूप आपको एक ऐसी चिरस्मरणीय वस्तु समर्पित की जाय, जिसका स्थायी साहित्यिक महत्त्व हो। आपने अपनी हृदय साहित्य सेवा से बिहार का मुख उज्ज्वल किया है, आपने 'बिहारी' नाम को सार्थक एवं आदरणीय बना दिया है, अतएव आपके भाग्यर्थ आपको बिहार के अतीत और वर्तमान गौरव का चित्रण ही समर्पित करना सबसे अधिक उपयुक्त होगा।

उपर्युक्त निश्चय के अनंतर 'स्मारक ग्रन्थ' के उपयुक्त विषय-सूची बनाने के लिये एक विद्वत्समिति का निर्माण हुआ। समिति ने निर्णय किया कि इस ग्रंथ में बिहार-सम्बन्धी सभी महत्त्वपूर्ण विषयों का समावेश होना चाहिये, क्योंकि बिहार के महत्त्व एवं गौरव को सूचित करनेवाले अनेक विषय

अन्धकार में पड़े हुए हैं, जिनपर प्रकाश डालने का प्रयत्न आज तक हिन्दी संसार में किसीने नहीं किया। यदि बिहार के उत्कर्षसूचक विषयों पर साहित्यिक दृष्टि से प्रकाश डाला जाय तो हिन्दी में एक नये ढँग का ऐसा ग्रंथ तैयार हो सकता है, जो भावी पीढ़ी के लिये सहायक ग्रन्थ (Reference book) का काम दे सके।

उपर्युक्त निर्णयानुसार विषयों की तालिका बनी। पत्र-पत्रिकाओं में सूचना निकाल दी गई। प्रामाणिक एवं गवेषणापूर्ण निबन्ध प्रस्तुत करने के लिये अधिकारी विद्वानों के पास पत्र भेजे गये। महायज्ञ के अनुरूप होताओं का आवाहन होने लगा।

किन्तु, 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' के अनुसार इस शुभ कार्य में भी नाना प्रकार की कठिनाइयाँ सामने आईं। लेखों के लिये जो अवधि निर्दिष्ट की गई थी, उसके भीतर बहुत ही कम लेख आये। कतिपय मनोनीत विषयों पर लेख आये ही नहीं। कितने ही आवश्यक चित्र भी उपलब्ध न हो सके, हुए भी तो मनोवाञ्छित नहीं। कई आवश्यक उपकरणों के लिये तो सुदीर्घकाल तक प्रतीक्षा करनी पड़ी।

अन्त में विवश होकर उपयुक्त सुअवसर के बीत जाने की आशंका से, जो कुछ प्रस्तुत सामग्री थी, उसीसे ग्रन्थ का श्रीगणेश कर दिया गया। जो लेख आते गये, क्रमशः छपते गये। एक ही विषय से सम्बन्ध रखनेवाले भिन्न भिन्न लेख एक साथ न पड़ सके। इस तरह विषय अथवा महत्त्व के अनुसार लेखों का क्रम-निरूपण न हो सका। उचित समय पर लेखों के न मिल सकने के कारण ऐसा करना अनिवार्य था।

फिर भी हमें दो-तीन बातों से संतोष है। पहली बात तो यह है कि जो लेख हमें मिले हैं, वे खोज और परिश्रम के साथ लिखे गये हैं और बहुत ही सारगर्भित एवं महत्त्वपूर्ण हैं। कुछ सामग्री तो हमें ऐसी उपलब्ध हो गई, जिसकी आशा हमने नहीं की थी—उदाहरणार्थ, 'आचार्य द्विवेदी के पत्र'। ये पत्र बिहार के वयोवृद्ध साहित्यसेवी पण्डित जनार्दन झा 'जनसीदन' के यहाँ पुराने बस्तों में सड़ रहे थे, कीड़े ही इनका रसास्वादन कर रहे थे! आचार्य द्विवेदीजी का बिहार के साथ क्या सम्बन्ध था, यह बात अभी तक अन्धकार के गर्त्त में ही थी। उनको अर्पित किये गये 'अभिनन्दन ग्रन्थ' में भी इसका उल्लेख नहीं है। इन पत्रों से इस विषय पर आश्चर्यजनक प्रकाश पड़ता है। आशा है, हिन्दी-संसार चाव से इन पत्रों को पढ़ेगा।

पूज्य बापू

अतीत के द्वार पर

त्र हो', खोलो अजिर द्वार
रे अतीत ओ अभिमानी !
ाहर खड़ी लिये नीराजन
न से भावों की रानी
बहुत बार भग्नावशेष पर
अक्षत फूल बिखेर चुकी
खँडहर में आरती जलाकर
रो-रो तुमको टेर चुकी
वर्त्तमान का आज निमंत्रण
देह धरो, आगे आओ
ग्रहण करो आकार, देवता !
यह पूजा-प्रसाद पाओ !
शिला नहीं चैतन्य मूर्त्ति पर
तिलक लगाने मैं आई
वर्त्तमान की समर दूतिका
तुम्हें जगाने मैं आई
कह दो निज अस्तमित विभा से
तम का हृदय विदीर्ण करे
होकर उदित पुन: वसुधा पर
स्वर्ण मरीचि प्रकीर्ण करे
अङ्कित है इतिहास पत्थरों—
पर जिनके अभियानों का
चरण-चरण पर चिह्न यहाँ
मिलता जिनके बलिदानों का
गुंजित जिनके विजय नाद से
हवा आज भी बोल रही
जिनके पदाघात से कम्पित
धरा अभी तक डोल रही
कह दो उनसे जगा कि उनकी
ध्वजा धूल में सोती है

सिंहासन है शून्य, सिद्धि
उनकी विधवा सी रोती है
रथ है रिक्त, करच्युत धनु है
छिन्न मुकुट शोभाशाली
खँडहर में क्या धरा, पड़े
करते थे जिसकी रखवाली ?
जीवित है इतिहास किसी विधि
वीर मगध बलशाली का
केवल नाम शेष है उनके
नालन्दा, वैशाली का
हिमगह्वर में किसी सिंह का
आज मन्द्र हुङ्कार नहीं
सीमा पर बजनेवाले
धौंसे की अब धुधकार नहीं
बुझी शौर्य की शिखा, हाय
वह गौरव ज्योति मलीन हुई
कह दो उनसे जगा कि उनकी
वसुधा वीर-विहीन हुई
बुझा धर्म का दीप, भुवन में
छाया तिमिर अहंकारी
हमीं नहीं खोजते, खोजती
उसे आज दुनिया सारी
वह प्रदीप जिसकी लौ रण में
पत्थर को पिघलाती है
लाल कीच के कमल, विजय, को
जो पद से ठुकराती है
आज कठिन नरमेध ! सभ्यता
ने थे क्या विषधर पाले
लाल कीच ही नहीं, रुधिर के
दौड़ रहे हैं नद-नाले

अब भी कभी लहू में डूबी
विजय तैरती आयेगी
किस 'अशोक' की आँख किन्तु
रोकर उसको नहलायेगी?
कहाँ अर्द्धनारीश वीर वे
अनल और मधु के मिश्रण?
जिनमें नर का तेज प्रबल था
भीतर था नारी का मन
एक नयन संजीवन जिनका
एक नयन था हालाहल
जितना कठिन खड्ग था कर में
उतना ही अन्तर कोमल
स्थूल देह की आज विजय
है जग का सफल बहिर्जीवन
क्षीण किन्तु आलोक प्राण का
क्षीण किन्तु मानव का मन
अर्चा सकल बुद्धि ने पाई
हृदय मनुज का भूखा है
बढ़ी सभ्यता बहुत, किन्तु
अन्त सर अबतक सूखा है
यन्त्रचित नर के पुतले का
बढ़ा ज्ञान दिन-दिन दूना
एक फूल के बिना किन्तु है
हृदय-देश उसका सूना
सहारों में अचल खड़ा है
धीर, वीर मानव ज्ञानी
सूखा अन्त सलिल आँख में
आये क्या इसकी पानी।

मन्त्र बुद्ध मिला नये मानव को
एक न मिला हृदय कातर
जिसे तोड़ दे अनायास ही
करुणा की हल्की ठोकर
'जय हो', यन्त्रपुरुष को दर्पण
एक फटनेवाला दो
हृदय-हीन के लिये ठेस पर
हृदय टूटनेवाला दो
दो विषाद, निर्लज्ज मनुज यह
ग्लानि-मग्न होना सीखे
विजय मुकुट रुधिराक्त पहनकर
हँसे नहीं, रोना सीखे
दावानल सा जला रहा
नर को अपना ही बुद्धि अनल
भरो हृदय का शून्य सरोवर
दो शीतल करुणा का जल
जग मे भीषण अन्धकार है
जगो, तिमिर नाशक! जागो
जगो मन्त्रद्रष्टा! जगती के
गौरव, गुरु, शासक! जागो
गरिमा ज्ञान, तेज-तप कितने
सम्बल हाय, गये खोये
साक्षी है इतिहास, वीर!
तुम कितना बल लेकर सोये
'जय हो खोला द्वार, अमृत दो
हे जग के पहले दानी!
यह कोलाहल शमित करेगी
किसी बुद्ध की ही बानी

सीतामढ़ी
१६४१

—'दिनकर'

शब्द-स्तवन

शब्द-सुन्दरी! ओ शुभकरी
उठो बीन में गान भरो
है त्योहार तुम्हारा ही यह
निज छवि का सम्मान करो
पुण्यथली यह आज त्रिवेणी—
तट आरती भवानी का
लगा जहाँ फूला-फैला
अक्षयवट हिन्दी-रानी का
यह बिहार का कलातीर्थ
भंडार हमारे स्वप्नों का—
गर्वित इसके अभिनंदन से
घट-घट प्राणी प्राणी का
देवि! तुम्हारा ही वन्दन यह
और यही चंदनवारी
पत्र-पत्र में लिखी तुम्हारी—
ही बिरुदावलियाँ प्यारी
पद-पद में ध्वनि ध्वनित
तुम्हारे चरणों के मंजीरों की
अक्षर अक्षर में टपकी
काजल बूँदें नव कोरों की

रानी वाणी बनी तुम्हीं
हम नीरव मानव-कोरों को
हमने नहीं, तुम्हीं ने गूँथी
नव माला यह हीरों की
शब्द शामिके! प्रथम तुम्हारा
जगती में जयकार उठा
और तुम्हारी छवि मंडप में
कवि का वंदनवार उठा
आज तुम्हारे मंगल मंडप—
का जो सुधी पुरोधा है
और तुम्हारी ही विभूतियों
को जीवन भर शोधा है
विजय-माल दो गले, वरो
ओ शब्द-सुन्दरी! स्वयंवरे
सिद्धलक्ष्य यह वीर
शब्दवेधी बिहार का योद्धा है
शब्द-सुन्दरी! ओ शुभकरी
उठो बीन में गान भरो
है त्योहार तुम्हारा ही यह
निज छवि का सम्मान करो

—'केसरी'

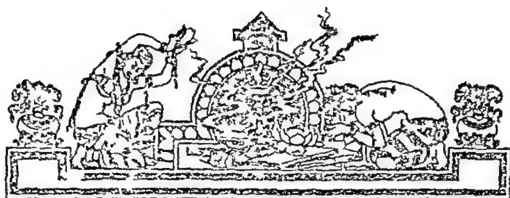

मिथिला के पंडित

श्रीजनार्दन झा 'जनसीदन', बाजितपुर, मुजफ्फरपुर

एक वह समय था, जब मिथिला के गाँव-गाँव मे सस्कृत के विद्वान् पाये जाते थे। ब्राह्मणो की कोई बस्ती ऐसी नहीं थी जहाँ दो-चार अच्छे पडितों के नाम न सुने जाते रहे हों। दूर-दूर से छात्र शास्त्र पढने के लिये उनके निकट आते थे और यथेच्छ शास्त्रो का अध्ययन करके अपने देश लौट जाते थे। उन दिनों मिथिला विद्या का केन्द्र मानी जाती थी। वेद वेदाङ्ग आदि सभी शास्त्रों के एक-से-एक अध्यापक मिथिला मे विद्यमान थे।

सस्कृत-पठन-पाठन की व्यवस्था भी यहाँ आज से ५०–६० वर्ष पूर्व तक बडी विलक्षण थी। विद्यार्थी पहले गुरु से समस्त शास्त्रीय शिक्षा प्राप्त करके पुन पठनार्थ विशेषत काशी जाते थे। वहाँ यथेष्ट शास्त्रों का अध्ययन करके जब परीक्षा मे उत्तीर्ण हो जाते थे, अध्यापकों से प्रशसापत्र पाकर लब्धप्रतिष्ठ हो अपने देश आते थे। यहाँ आने पर वे बडे आदरणीय समझे जाते थे, सब लोग उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते थे। उन पडितो को परिवार-पोषण की चिन्ता नहीं रहती थी। उनका एकमात्र ध्येय विद्यार्थियों को नि शुल्क पढाना ही रहता था, उसीको वे अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते थे। स्वय साग खाकर गुजर करते थे और विद्यार्थियों को नियमानुसार पढाते थे। किसी राजा-महाराज के यहाँ याचना करने नहीं जाते और न कभी किसी के आगे दान लेने के लिये हाथ

पसारते थे, सन्तोष-पूर्वक समय बिताने मे ही आनन्द का अनुभव करते थे। कितने तो ऐसे निर्लोभ थे, जो राजा-महाराजों के द्वारा बुलाये जाने पर भी जाने से इनकार करते थे। उनका सिद्धान्त था—

दिवसस्याष्टमे भागे शाकं पचति यो गृहे।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर! मोदते॥

वे द्रव्योपार्जन की अपेक्षा घर पर रहकर स्वच्छन्दतापूर्वक विद्यार्थियों के पढाने ही मे अपनी प्रतिष्ठा समझते थे।

उस समय विद्यार्थियों के पढने का स्थान चौपाड (चतुष्पाठीय) के नाम से प्रसिद्ध था। उन सबके रहने के लिये गॉव के धनी व्यक्तियों की ओर से फूस के घर बनवा दिये जाते थे। जो विद्यार्थी दरिद्रता के कारण भोजनादि का प्रबन्ध स्वय नहीं कर सकते थे, उन्हें गॉव के धनी-मानी व्यक्ति भोजन-वस्त्र देते थे।

प्राचीन समय मे हाथ से मिथिलाक्षर मे ग्रन्थ लिखकर पढने का नियम था। तब छपे हुए ग्रन्थ दुष्प्राप्य थे। कुछ विद्यार्थी अपने सम्बन्धी के यहॉ रहकर, पाक-प्रक्रिया के झमट से निवृत्त हो, शान्ति-पूर्वक अध्ययन करते थे।

जब मिथिला मे व्याकरण, न्याय, वेदान्त, साख्य, योग, वैशेषिक, मीमासा, ज्योति तन्त्रशास्त्र आदि विद्याओं के बडे-बडे नामी पडित विद्यमान थे, जिनका यश देश-देशान्तर मे व्याप्त था, तब अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग आदि अनेक प्रान्तों के छात्र यहाँ आकर पढते थे और पूर्ण पाडित्य प्राप्त करके मिथिला का यशोगान करते थे।

मधुबनी सब-डिवीजन (दरभगा) के समीपवर्त्ती 'सौराठ' की महासभा में जब लाखों मैथिल ब्राह्मण कार्यवश एकत्र होते थे, तब समागत पडितों मे शास्त्रचर्चा छिड जाती थी। कुछ मध्यस्थ शास्त्रकुशल गुरुजनों की अध्यक्षता में वे नवीन पडित शास्त्रार्थ करते थे। शास्त्रार्थ सुनने के लिये वहॉ शिक्षित-समाज की भीड लग जाती थी। कहीं व्याकरण मे, कहीं तर्कशास्त्र मे, कहीं वेदान्त में, कहीं ज्योति शास्त्र मे और कहीं अन्यान्य विषयों मे शास्त्रार्थ की धूम मच जाती थी। शास्त्रार्थ में जिनका उपपादन अच्छा समझा जाता था, उनके गले में सम्मान-सूचक फूल की माला पहनाई जाती थी और विद्वन्मडली मे उनकी प्रशसा होती थी।

इसी प्रकार, जब किसी देवस्थान में किसी पर्व पर लोग जमा होते थे, वहाँ भी शास्त्रार्थ होता था। शास्त्रार्थ मे विजय पाने की इच्छा से प्रतिस्पर्धी पंडित पहले ही से विद्याभ्यसन मे विशेष प्रयत्न करते थे।

उन दिनों प्रत्येक शास्त्र उन्नत अवस्था में था। अब वह समय आ गया है कि सभी शास्त्र अवनत होते जा रहे हैं। ज्योति शास्त्र के अध्यापकों की यह व्यवस्था थी कि वे वर्ष का अन्त होने के पहले ही अपने गणितज्ञ छात्रों के द्वारा पञ्चाङ्ग तैयार करवाते थे। उसकी जाँच के लिये दूसरे ज्योतिषी की चौपाड़ में जाकर ग्रह-गणित, तिथि-नक्षत्र आदि का मानदंड मिलाते थे। जहाँ फर्क पड़ता था, वहाँ फिर से गणित की जाँच की जाती थी। जिनके पञ्चाङ्ग में भूल निकलती थी, वे अपनी भूल को सुधारते थे। इस प्रकार सर्वाङ्ग-शुद्ध हो जाने पर छात्र तथा अन्य शिक्षित लोग, जिन्हें पञ्चाङ्ग-पत्र की जरूरत होती थी, उसकी नकल कर लेते थे। उस जमाने में हाथ से पत्रा * लिखने ही का नियम था।

मुझे खूब याद है कि ५० वर्ष पूर्व पहले-पहल मुजफ्फरपुर के रईस स्वर्गीय बाबू रामेश्वरनारायण महथा ने स्वर्गीय ज्योतिषी नित्यानन्द झा से पत्रा बनवा कर धर्मार्थ वितरण करने के लिये छपवाया था। कई साल तक वे इसी तरह पञ्चाङ्ग छपवाकर शिक्षित-समाज में बाँटते रहे। उनका देहान्त होने पर कुछ दिन तक उनके सम्बन्धियों ने तथा अन्य रईसों ने 'बाघी' ग्राम (मुजफ्फरपुर) के निवासी ज्योतिषी रामप्रसन्न झा से पत्रा बनवाकर छपवाया और उक्त महथाजी के मार्ग का अनुसरण करके कुछ दिन पञ्चाङ्ग-वितरण किया। जब उन लोगों ने पत्रा छपवाना बन्द कर दिया तब कोई-कोई प्रकाशक इसे व्यापारिक दृष्टि से छाप कर बेचने तथा उससे कुछ लाभ उठाने लगे। अब तो इसका प्रचार बहुत बढ़ गया है। पञ्चाङ्ग छापकर बेचना एक व्यवसाय-सा हो गया है। पर तो भी कुछ धार्मिक उदार प्रेसाध्यक्ष शुद्धतापूर्वक पत्रा छपवाकर, लोकोपकारार्थ, छपाई की लागत मात्र लेकर, थोड़े मूल्य में बेचते और बिना मूल्य भी योग्य व्यक्तियों को देते हैं। पुस्तक भंडार के अध्यक्ष श्रीरामलोचनशरणजी ऐसे ही उदार व्यक्तियों में हैं।

यद्यपि अब पहले की-सी शिक्षा प्रणाली नहीं है, तो भी मिथिला में पंडितों की कमी नहीं है। अब भी अनेक विद्यालय हैं, जिनमें सभी शास्त्रों का पठन-पाठन जारी है। हाँ, बात इतनी अवश्य है कि समय बदल जाने से पंडितों में प्राय न पहले का-सा उत्साह है और न वह सन्तोष है। यही कारण है कि संस्कृत-विद्या का दिन दिन ह्रास होता जा रहा है।

* जब मेरी उम्र संवत् १९४२ में १४ वर्ष की थी और मैं ज्योतिष पढ़ता था, अपने हाथ से पत्रा लिखता था। जबतक छपा हुआ पञ्चाङ्ग नहीं मिला, पञ्चाङ्ग की प्रतिलिपि प्रति वर्ष अपने हाथ से करनी पड़ती थी।

पसारते थे, सन्तोष-पूर्वक समय बिताने मे ही आनन्द का अनुभव करते थे। कितने तो ऐसे निर्लोभ थे, जो राजा-महाराजों के द्वारा बुलाये जाने पर भी जाने से इनकार करते थे। उनका सिद्धान्त था—

दिवसस्याष्टमे भागे शाकं पचति यो गृहे।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर! मोदते॥

वे द्रव्योपार्जन की अपेक्षा घर पर रहकर स्वच्छन्दतापूर्वक विद्यार्थियों के पढ़ाने ही मे अपनी प्रतिष्ठा समझते थे।

उस समय विद्यार्थियों के पढने का स्थान चौपाड (चतुष्पाठीय) के नाम से प्रसिद्ध था। उन सबके रहने के लिये गॉव के धनी व्यक्तियों की ओर से फूस के घर बनवा दिये जाते थे। जो विद्यार्थी दरिद्रता के कारण भोजनादि का प्रबन्ध स्वयं नहीं कर सकते थे, उन्हें गॉव के धनी-मानी व्यक्ति भोजन-वस्त्र देते थे।

प्राचीन समय मे हाथ से मिथिलाक्षर मे ग्रन्थ लिखकर पढने का नियम था। तब छपे हुए ग्रन्थ दुष्प्राप्य थे। कुछ विद्यार्थी अपने सम्बन्धी के यहॉ रहकर, पाक-प्रक्रिया के झंझट से निवृत्त हो, शान्ति-पूर्वक अध्ययन करते थे।

जब मिथिला में व्याकरण, न्याय, वेदान्त, साख्य, योग, वैशेषिक, मीमासा, ज्योतिःतन्त्रशास्त्र आदि विद्याओं के बडे-बडे नामी पडित विद्यमान थे, जिनका यश देश-देशान्तर मे व्याप्त था, तब अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग आदि अनेक प्रान्तों के छात्र यहाँ आकर पढते थे और पूर्ण पाडित्य प्राप्त करके मिथिला का यशोगान करते थे।

मधुबनी सब-डिवीजन (दरभगा) के समीपवर्त्ती 'सौराठ' की महासभा में जब लाखों मैथिल ब्राह्मण कार्यवश एकत्र होते थे, तब समागत पडितों मे शास्त्रचर्चा छिड़ जाती थी। कुछ मध्यस्थ शास्त्रकुशल गुरुजनों की अध्यक्षता मे वे नवीन पडित शास्त्रार्थ करते थे। शास्त्रार्थ सुनने के लिये वहाँ शिक्षित-समाज की भीड़ लग जाती थी। कहीं व्याकरण मे, कहीं तर्कशास्त्र में, कहीं वेदान्त मे, कहीं ज्योतिःशास्त्र मे और कहीं अन्यान्य विषयों मे शास्त्रार्थ की धूम मच जाती थी। शास्त्रार्थ मे जिनका उपपादन अच्छा समझा जाता था, उनके गले में सम्मान-सूचक फूल की माला पहनाई जाती थी और विद्वन्मडली मे उनकी प्रशंसा होती थी।

इसी प्रकार, जब किसी देवस्थान मे किसी पर्व पर लोग जमा होते थे, वहाँ भी शास्त्रार्थ होता था। शास्त्रार्थ मे विजय पाने की इच्छा से प्रतिस्पर्धी पडित पहले ही से विद्याभ्यसन मे विशेष प्रयत्न करते थे।

उन दिनों प्रत्येक शास्त्र उन्नत अवस्था में था। अब वह समय आ गया है कि सभी शास्त्र अवनत होते जा रहे हैं। ज्योति शास्त्र के अध्यापकों की यह व्यवस्था थी कि वे वर्ष का अन्त होने के पहले ही अपने गणितज्ञ छात्रों के द्वारा पञ्चाङ्ग तैयार करवाते थे। उसकी जाँच के लिये दूसरे ज्योतिषी की चौपाढ़ में जाकर ग्रह-गणित, तिथि-नक्षत्र आदि का मानदण्ड मिलाते थे। जहाँ फर्क पड़ता था, वहाँ फिर से गणित की जाँच की जाती थी। जिनके पञ्चाङ्ग मे भूल निकलती थी, वे अपनी भूल को सुधारते थे। इस प्रकार सर्वाङ्ग-शुद्ध हो जाने पर छात्र तथा अन्य शिक्षित लोग, जिन्हें पञ्चाङ्ग-पत्र की जरूरत होती थी, उसकी नक़ल कर लेते थे। उस जमाने मे हाथ से पत्रा * लिखने ही का नियम था।

मुझे खूब याद है कि ५० वर्ष पूर्व पहले-पहल मुजफ्फरपुर के रईस स्वर्गीय बाबू रामेश्वरनारायण महथा ने स्वर्गीय ज्योतिषी नित्यानन्द झा से पत्रा बनवा कर धर्मार्थ वितरण करने के लिये छपवाया था। कई साल तक वे इसी तरह पञ्चाङ्ग छपवाकर शिक्षित-समाज मे बाँटते रहे। उनका देहान्त होने पर कुछ दिन तक उनके सम्बन्धियों ने तथा अन्य रईसों ने 'बाघी' ग्राम (मुजफ्फरपुर) के निवासी ज्योतिषी रामप्रसन्न झा से पत्रा बनवाकर छपवाया और उक्त महथाजी के मार्ग का अनुसरण करके कुछ दिन पञ्चाङ्ग-वितरण किया। जब उन लोगों ने पत्रा छपवाना बन्द कर दिया तब कोई-कोई प्रकाशक इसे व्यापारिक दृष्टि से छाप कर बेचने तथा उससे कुछ लाभ उठाने लगे। अब तो इसका प्रचार बहुत बढ़ गया है। पञ्चाङ्ग छापकर बेचना एक व्यवसाय-सा हो गया है। पर तो भी कुछ धार्मिक उदार प्रेसाध्यक्ष शुद्धतापूर्वक पत्रा छपवाकर, लोकोपकारार्थ, छपाई की लागत मात्र लेकर, थोड़े मूल्य मे बेचते और बिना मूल्य भी योग्य व्यक्तियों को देते हैं। पुस्तक-भंडार के अध्यक्ष श्रीरामलोचनशरणजी ऐसे ही उदार व्यक्तियों में हैं।

यद्यपि अब पहले की-सी शिक्षा प्रणाली नहीं है, तो भी मिथिला मे पण्डितों की कमी नहीं है। अब भी अनेक विद्यालय हैं, जिनमे सभी शास्त्रों का पठन-पाठन जारी है। हाँ, बात इतनी अवश्य है कि समय बदल जाने से पण्डितों में प्राय न पहले का-सा उत्साह है और न वह सन्तोष है। यही कारण है कि संस्कृत-विद्या का दिन दिन ह्रास होता जा रहा है।

* जब मेरी उम्र संवत् १९४२ में १४ वर्ष की थी और मैं ज्योतिष पढ़ता था, अपने हाथ से पत्रा लिखता था। जबतक छपा हुआ पञ्चाङ्ग नहीं मिला, पञ्चाङ्ग की प्रतिलिपि प्रति वर्ष अपने हाथ से करनी पड़ती थी।

अब विद्यार्थियों का ध्येय ज्ञानोपलब्धि न होकर एकमात्र द्रव्योपार्जन रह गया है। वे आज की निश्चित नियमावली के अनुसार निर्धारित ग्रन्थ पढते और आचार्य-परीक्षा पास करके स्कूलों मे नौकरी ढूँढते फिरते हैं। ३०)–४०) की नौकरी सुयोग से कहीं मिल गई तो वे उतने ही मे अपनेको धन्य मानते हैं।

पहले के और अब के सस्कृत पडितों की जीवनयात्रा के सिद्धान्त मे भी आकाश-पाताल का अन्तर आ गया है। इसे समय का फेर छोड और क्या कह सकते हैं? जिस प्रकार पहले पढने और पढाने की व्यवस्था थी, गुरुओं और विद्यार्थियों मे पिता पुत्र का-सा व्यवहार था, वह अब शायद ही कहीं देखने मे आता है।

अब छात्रो मे कहाँ वह ब्रह्मचर्य, कहाँ वह आत्मिक बल, कहाँ वह गुरुभक्ति, कहाँ वह शान्ति और सन्तोष है। अँगरेजी की शिक्षा मे जो उच्च कक्षा के लिये पाश्चात्य नियम निर्धारित हैं, सस्कृत के शिक्षार्थी भी क्रम-क्रम से अब उन नियमों का अनुकरण करने ही में अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं। शिक्षकों के द्वारा समझाये जाने पर भी कितने ही विद्यार्थी अपने विलासिता-मूलक सिद्धान्त से नहीं डिगते। वे जितना समय शरीर के सौन्दर्यसाधन मे लगाते, उतना प्राय दत्तचित्त होकर पढने में नहीं लगाते हैं। यही कारण है कि विद्या का फल उन्हें जैसा मिलना चाहिये था, नहीं मिलता है।

अत्यन्त प्राचीन काल से मिथिला सस्कृत-भाषा की शिक्षा का केन्द्र रही है। सस्कृत-साहित्य के असख्य उद्भट विद्वानों का यहाँ अनुपम जमघट था। १९वीं शताब्दी तक के प्राचीन मैथिल पडितों का परिचय देकर हम बीसवीं शताब्दी के मैथिल पडितों का भी परिचय दे रहे हैं, जिससे मिथिला के विद्या वैभव और ज्ञान-गौरव का पता लगता है—

न्यायशास्त्र के रचयिता गौतम मुनि का निवास मिथिला के दरभगा जिले के अन्तर्गत ब्रह्मपुर गाँव मे था। गौतमकुड और अहल्यास्थान अब भी वहाँ दर्शनीय हैं। गौतम मुनि के पुत्र शतानन्द मिथिलाधिपति जनक के पुरोहित और कुलपूज्य थे।

महर्षि याज्ञवल्क्य मिथिला के निकटवर्त्ती नैपाल-राज्य के अन्तर्गत कुसुमा गाँव मे रहते थे। आपकी बनाई 'याज्ञवल्क्यस्मृति' जगत्प्रसिद्ध और विशेष आदरणीय है। अपने विषय मे इसी स्मृति मे आपने स्वय लिखा है—"मिथिलास्यस्स योगीन्द्र"—आप महाराज जनक के गुरु और योगी थे। आपकी अर्द्धाङ्गिनी 'मैत्रेयी' वेदान्त की परम पडिता तथा अन्यान्य शास्त्रों की भी विदुषी थीं।

सांख्यशास्त्र के निर्माता कपिल मुनि का आश्रम भी मिथिला में था। उन्होंने अपने आश्रम के समीप श्रीकपिलेश्वरनाथ महादेव को स्थापित करके मिथिला का महत्त्व बढा दिया है। महादेव के दर्शन पूजन के हेतु वहाँ नित्य लोगों की भीड लगी रहती है। स्वर्गीय महाराजाधिराज मिथिलेश सर रमेश्वरसिंह बहादुर यात्रियों के उपकारार्थ मन्दिर के समीप एक वृहत् पोखर खुदवाकर अपना नाम अमर कर गये हैं।

महामहोपाध्याय मीमांसक मण्डन मिश्र—मिथिला के प्राचीन पंडितों में आप सर्वश्रेष्ठ थे। न्याय और मीमांसा के अद्वितीय विद्वान् थे। आपने शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ किया था। आपकी धर्मपत्नी शारदा देवी (उभयभारती) साक्षात् सरस्वती का अवतार थीं। इन्होंने शङ्कराचार्य को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया था। मण्डन मिश्र के द्वारा रचित ग्रन्थों में विधिविवेक, भावना-विवेक, ब्रह्मसिद्धि, नैष्कर्म्यसिद्धि, वेदान्तवार्त्तिक और मण्डनत्रिशती विशेष प्रसिद्ध हैं। नवीं विक्रम-शताब्दी में आपका अस्तित्व पाया जाता है।

जब भगवान् शंकराचार्य आपकी खोज में आपके गाँव में पहुँचे तब एक पनिहारिन से आपके घर का पता पूछा। उसने उत्तर में दो श्लोक सुनाये—

स्वतःप्रमाणं परतःप्रमाणं शुकाङ्गना यत्र विचारयन्ति।
शिष्योपशिष्यैरुपगीयमानमवेहि तन्मण्डनमिश्रधाम ॥
जगद्ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं वा कीराङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति।
द्वारस्थ नीडाङ्गणसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनमिश्रधाम ॥

इसी से उस समय की मिथिला के विद्या-वैभव का पता लग सकता है, जब यहाँ की साधारण स्त्रियाँ भी संस्कृत-भाषा में पारंगत थीं। यह भी किंवदन्ती है कि जब स्वामी शंकराचार्य उभयभारती से परास्त हो गये तब 'अमरु' राजा के शरीर में योगबल से प्रवेश कर उन्होंने 'अमरुशतक' नामक महाकाव्य की रचना की।

दर्शनाचार्य वाचस्पति मिश्र—आप ठाढ़ी (दरभंगा) के निवासी थे। आप सभी शास्त्रों के अद्वितीय विद्वान् थे। मण्डन मिश्र की 'ब्रह्मसिद्धि' पर 'ब्रह्मतत्त्व-समीक्षा' नाम की टीका, न्यायकणिका (विधिविवेक की टीका), भामती * (ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य की टीका), सांख्यतत्त्वकौमुदी (सांख्यकारिका की टीका), न्यायवार्त्तिक-

* 'भामती' आपकी पत्नी का नाम था। वह निस्सन्तान थी। इसलिये आपने उनके नाम पर 'भामती' टीका रचकर उसका नाम अमर कर दिया।

तात्पर्य्य (न्यायवार्त्तिक की टीका), तत्त्ववैशारदी, योगदर्शन आदि ग्रन्थ आपकी विद्वत्ता के प्रमाणस्वरूप हैं। आपने अपने न्यायसूचीनिबन्ध में लिखा है—

न्यायसूचीनिबन्धोऽसावकारि सुधिया मुदे।
श्रीवाचस्पतिमिश्रेण वस्वङ्कवसुवत्सरे ॥

इस ग्रन्थ की रचना का समय ८९८ शकाब्द (संवत् १०३३) सप्रमाण सिद्ध है। आप सर्वतन्त्रस्वतन्त्र विद्वान् थे।

महामहोपाध्याय उदयनाचार्य—'करियन' ग्रामवासी थे। आपने वाचस्पतिमिश्रकृत न्यायवार्त्तिकतात्पर्य की 'परिशुद्धि' नाम की टीका की है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक ग्रन्थ आपके लिखे विद्यमान हैं, जो विद्वन्मंडली में विशेष आदृत हैं। किरणावली, गुण-किरणावली, कुसुमाञ्जली, लक्षणावली, न्याय-परिशिष्ट, आत्मतत्त्वविवेक आदि ग्रन्थ आपके पांडित्य के परिचायक हैं। आपका समय ९०६ शकाब्द (संवत् १०४१) बताया जाता है। आपने अपने 'लक्षणावली' ग्रन्थ में लिखा है—

तर्काम्बराङ्क प्रमितेष्वतीतेषु शकान्ततः।
वर्षेषूदयनश्चक्रे सुबोधां लक्षणावलीम् ॥

आपकी यह गर्वोक्ति बहुत प्रसिद्ध है—

वयमिह पदविद्यां तर्कमान्वीक्षिकीं वा।
यदि पथि विषये वा वर्त्तयामस्स पन्थाः॥
उदयति दिशि यस्यां भानुमान् सैव पूर्वा।
नहि तरणिरुदीते दिक्पराधीनवृत्तिः ॥

आप जैसे दार्शनिक थे वैसे ही भक्त भी। एक बार जगन्नाथधाम जाते समय रास्ते में आपके मन में ईश्वर के अस्तित्व के विषय में संकल्प-विकल्प होने लगा। जगदीशपुरी में पहुँचकर जब आप मंदिर में प्रवेश करने लगे तब एकाएक फाटक बन्द हो गया। आपको अनुभव हुआ कि ईश्वर अवश्य है, और यह श्लोक रचकर कहा—

उपस्थितेषु बौद्धेषु मदधीना तवस्थितिः।
ऐश्वर्य्यमदमत्तस्त्वं मामवज्ञाय वर्त्तसे ॥

इसपर फाटक अनायास खुल गया और आपने मंदिर में जाकर भक्ति-पूर्वक जगदीश की पूजा की।

अभिनव वाचस्पति मिश्र—दो और हुए हैं—एक दार्शनिक, दूसरे धर्मशास्त्री। दार्शनिक वाचस्पति मिश्र ने 'खाद्यखडन' की टीका 'खडनोद्धार' और 'न्यायसूत्र' की 'न्यायसूत्रोद्धार' नामक टीका की हैं। इनका समय पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग प्रमाणित हुआ है। और, धर्मशास्त्री वाचस्पति मिश्र ने तीर्थ-चिन्तामणि, विवादचिन्तामणि आदि प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे हैं।

दार्शनिक गङ्गेशोपाध्याय—आप मधुबनी सब डिवीजन के समीपवर्त्ती मङ्गरौनी-ग्रामवासी थे। न्यायशास्त्र के दुर्द्धर्ष विद्वान् थे। आपने खाद्यखडन मत का खडन करके अपनी शास्त्रज्ञता का परिचय दिया है। आपका बनाया 'तत्त्वचिन्तामणि' ग्रन्थ प्रसिद्ध है। आप १२६०शकाब्द (स० १४२५) में विद्यमान थे। आपके पुत्र वर्द्धमान उपाध्याय महामहोपाध्याय पक्षधर मिश्र के सहपाठी थे।

तार्किकप्रवर पक्षधर मिश्र—आप न्यायशास्त्र के परम विद्वान् थे। आपका निवास मङ्गरौनी ग्राम में था। गङ्गेशोपाध्याय-रचित 'तत्त्वचिन्तामणि' ग्रन्थ की आपने 'आलोक' नामक टीका की है।

आपका समकक्ष विद्वान् उस समय कोई न था। आपके विषय में यह श्लोक प्रसिद्ध है, जिससे आपकी उद्भट विद्वत्ता का परिचय मिलता है—

शङ्करवाचस्पत्यो शङ्करवाचस्पती सदृशौ।
पक्षधरप्रतिपक्षी लक्षीभूतो न च क्वापि॥

आपके विषय में मिथिला में आज तक अनेक किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। बगाल में सर्वप्रथम न्यायशास्त्र का प्रचार करनेवाले रघुनाथ शिरोमणि आप ही के शिष्यों में थे। आपके रचित प्रसिद्धग्रथ 'प्रसन्नराघव' नाटक और 'चन्द्रालोक' हैं।

महादार्शनिक कविवर गोवर्द्धनाचार्य—आप भी मिथिला के आदर्श पडितों में परिगणित हैं। उदयनाचार्य आपके शिष्य थे। 'गोवर्द्धन-सप्तशती' ('आर्या सप्तशती') आपकी कवित्वशक्ति की परिचायिका है।

कविरत्न वररुचि मिश्र—महाराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्न * पडितों में 'वररुचि मिश्र' मैथिल थे। वर्त्तमान मिथिलेश के राजपडित श्री बलदेव मिश्र ने बडी गवेषणा के साथ उनके वशजों का पता लगाकर सप्रमाण सिद्ध कर दिया है कि वे मैथिल थे। उनके मैथिल होने में कुछ भी सन्देह शेष

* धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कुवेतालभट्टघटखर्परकालिदासा ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

नहीं रह गया है। रसमञ्जरीकार कविवर भानु मिश्र, हलायुध तथा व्याकरणादर्श के रचयिता पद्मनाभ मिश्र उन्हींके वंशज थे। उक्त राजपंडित के कथनानुसार वररुचि मिश्र की वंशावली का क्रम पद्मनाभ मिश्र तक इस प्रकार है—(१) वररुचि मिश्र, (२) न्यासदत्त योगशास्त्रवेत्ता, (३) जयादित्य मीमांसक, (४) श्रीपति सांख्याचार्य, (५) गणेश्वर काव्यकोविद, (६) भानु मिश्र कविभानु, (७) हलायुध षट्शास्त्री, (८) श्रीदत्त धर्मशास्त्री, (९) भवदत्त वेदान्तनिष्णात, (१०) दामोदर काव्यालङ्कार-रचयिता, (११) पद्मनाभ व्याकरणादर्शकार। वररुचि मिश्र का, किंवदन्तिकथा के आधार पर, एक श्लोक प्रायः मिथिला के घर-घर में ख्यात है—

दिवा निरीक्ष्य वक्तव्यं रात्रौ नैव च नैव च।
सर्वत्र सञ्चरेद्धूर्तो यदे वररुचिर्यथा॥

महादार्शनिक भवनाथ मिश्र—आप अनेक शास्त्रों के ज्ञाता होते हुए भी तर्कशास्त्र के प्रकांड पंडित थे। आपने कभी किसी से याचना नहीं की। इससे लोग आपको 'अयाची मिश्र' कहते थे। सन्तोषी ऐसे थे कि मोटे कपड़े से शरीर ढकते और साग-पात खाकर सुख से समय बिताते थे। आप सरिसव ग्राम के निवासी थे।

महामहोपाध्याय शंकर मिश्र—आप पंडित भवनाथ मिश्र (अयाची) के सुपुत्र थे। बाल्यावस्था में ही आपने अनेक शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आपमें विलक्षण प्रतिभा थी। आपके अपूर्व संस्कार और शास्त्रीय योग्यता की ख्याति मिथिला में सर्वत्र फैल गई। वर्त्तमान मिथिलेश के किसी विद्यानुरागी पूर्वज महाराज ने आपको बुला भेजा। उस समय आपकी उम्र ५ वर्ष की थी। एक शूद्र आपको अपने कन्धे पर चढ़ाकर महाराज के पास ले गया। आप एक कौपीन मात्र पहने हुए थे। महाराज ने आपसे कोई श्लोक पढ़ने के लिये कहा। आपने यह श्लोक पढ़ा—

बालोऽहं जगदानन्द न मे बाला सरस्वती।
अपूर्णे पञ्चमे वर्षे वर्णयामि जगत्त्रयम्॥

महाराज ने कहा, वर्णन कीजिये। आपने पूछा, 'लौकिकेन वैदिकेन वा?' इसपर महाराज ने कहा—'उभयथा'। तब आपने यह श्लोक सुनाया—

चकितश्चलितश्चैव प्रयाणे तव भूपते।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्॥

इस श्लोक की दूसरी पंक्ति वैदिक मंत्र (पुरुषसूक्त) है, पहली पंक्ति स्वनिर्मित लौकिक संस्कृत है।

इसपर महाराज ने अत्यन्त प्रसन्न होकर खजांची से कहा कि आपको कोषागार में ले जाओ, जितना अशर्फी-रुपया आप ले सकें, लेने देना।

खजांची आपको भंडार में ले गया। शिशु 'शंकर मिश्र' ने अपने कौपीन को खोलकर उसमें यथेष्ट अशर्फियाँ बाँध कन्धे पर लटका लिया। फिर आप महाराज के सामने लाये गये। आपका बुद्धिकौशल देख महाराज चकित हो गये। सैकड़ों अशर्फियाँ लेकर आप अपने घर आये। आपकी माँ आपका जन्म होने पर द्रव्याभाव के कारण चमारिन को कुछ न दे सकी थीं, पर उन्होंने कहा था कि इनकी पहली कमाई मैं तुमको ही दूँगी। उन्होंने अपना वचन पूरा किया—उसी घड़ी उस चमारी को बुलाकर कुल अशर्फियाँ दे डालीं।

सुनते हैं कि उक्त चमारनी ने उस द्रव्य से एक पोखर खुदवा डाला, जो अब तक 'चमैनिया पोखर' के नाम से मशहूर है।

किन्तु आपके पिता ने जब इस प्रकार आपके द्रव्य लाने की बात सुनी, तत्काल जंगल का रास्ता लिया और वहीं कुटी बनाकर भगवद्भजन-तपस्या द्वारा अपने जीवन को सार्थक किया। यह किंवदन्ती अब भी मिथिला में घर-घर प्रसिद्ध है। आपके रचित अनुमानचिन्तामणिमयूख, वैशेषिकसूत्रोपस्कार, भेदरत्न, गौरीदिगम्बर (प्रहसन-नाटक), कण्टकोद्धार, रसार्णव, वादिविनोद, छन्दोगाह्निक आदि ग्रन्थ अति प्रसिद्ध हैं।

मुरारि मिश्र—आपका रचित प्रसिद्ध ग्रंथ 'अनर्घराघव' नाटक है। नवीं शताब्दी के लगभग आप हुए थे। आप बड़े उद्भट दार्शनिक और आलंकारिक थे।

पार्थसारथि मिश्र—आप न्यायशास्त्र के अद्वितीय विद्वान् थे; यों तो सभी शास्त्रों के ज्ञाता थे। आपके रचित ग्रंथ—न्यायरत्नमाला, न्यायरत्नकणिका, शास्त्रदीपिका, तन्त्ररत्न, श्लोकवार्तिक और न्यायरत्नाकर प्रसिद्ध हैं।

वर्द्धमान उपाध्याय—आप गङ्गेश उपाध्याय के सुपुत्र और महादार्शनिक पक्षधर मिश्र के सहपाठी थे। आपका बनाया 'कुसुमाञ्जलिप्रकाश' प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त स्मृतिपरिभाषा, गयापद्धति आदि ग्रन्थ भी सुपाठ्य हैं।

महामहोपाध्याय कविकोकिल विद्यापति ठाकुर—आप पक्षधर मिश्र के चचा हरि मिश्र के विद्यार्थी थे। आपका उनसे पढ़ने का समय संवत् १४५७ पाया गया है। आप महाराज शिवसिंह के द्वारपंडित तथा प्रेमपात्र थे। आपको 'बिसपी' नामक ग्राम (दरभंगा) पुरस्कार में मिला था। आपके रचित ग्रन्थों

मे दुर्गाभक्तितरङ्गिणी, दानवाक्यावली, शैवसर्वस्वसार, लिखनावली, कीर्त्तिलता और पुरुष-परीक्षा विशेष प्रसिद्ध हैं। आपकी जीवनी 'पुस्तक-भडार' से हिन्दी मे प्रकाशित है और पदावली भी। आप मैथिली भाषा के जगत्प्रसिद्ध महाकवि हैं।

हरिनाथ उपाध्याय—आप बहुत बडे विद्वान् थे। मिथिलाधीश महाराज हरिसिंह देव के समय मे, सवत् १३७० के लगभग, आपकी स्थिति का पता लगता है। आप ही के समय मे मैथिल ब्राह्मणों का पञ्जी-निर्माण हुआ था। आपका रचित ग्रथ 'स्मृतिसार' प्रसिद्ध है।

उमापति उपाध्याय—आप कोइलख-ग्राम-(दरभगा)-वासी थे। दार्शनिक तथा साहित्यिक पडितों में आपकी बडी धाक थी। अपने समय के आप अद्वितीय विद्वान् थे। आप ही के द्वारा उस समय के बडे-से-बडे विद्वान् प्रतिष्ठा पाते थे। आपका रचित 'पारिजातहरण' नाटक प्रसिद्ध है, जो मैथिली और सस्कृत भाषा मे लिखा गया है। मैथिली का यही सबसे प्राचीन नाटक है, प्रकाशित है।

रुद्रधर उपाध्याय—आप धर्मशास्त्र के प्रकाड पडित थे। आपके रचित वर्षकृत्य, शुद्धिविवेक, श्राद्धविवेक, व्रतपद्धति आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

गदाधर झा—ये अरई (दरभगा) के निवासी थे। सूबेदार सुलतान नासिरुद्दीन द्वारा इनकी विद्वत्ता का परिचय पाकर सम्राट् गयासुद्दीन तुगलक ने इन्हें कुछ गॉव जागीर मे दिये थे। बनैली-राज्य के स्वामी इन्हीं के वशधर हैं।

केशव मिश्र—आप सुगौना गॉव (दरभगा) के निवासी थे। धर्म-शास्त्र में आपका विशेष पाडित्य था। द्वैतपरिशिष्ट और सख्यापरिमाण—ये दोनों ग्रन्थ आपकी विद्वत्ता के विशेष परिचायक हैं। दोनों ग्रथ प्रकाशित हैं।

द्वितीय मुरारि मिश्र—आप धर्मशास्त्री केशव मिश्र के शिष्य थे। दर्शनशास्त्र की शिक्षा आपने पडित रामभद्र झा से प्राप्त की थी। आपके निर्मित 'शुभकर्मनिर्णय' ग्रथ का मिथिला में सर्वत्र आदर हो रहा है।

छोटे मिश्र—आप व्याकरण के बेजोड विद्वान थे। न्यायशास्त्र मे भी आपकी प्रगति थी। पडित-मडली मे आप विशेष आदरणीय थे।

भानु मिश्र—आप साहित्य के अगाध विद्वान् थे। आपका समय बारहवीं शताब्दी बताया जाता है। इसहपुर (दरभगा) के वासी थे। रसमञ्जरी, अलङ्कारतिलक, शृङ्गारदीपिका, रसतरङ्गिणी, रसकल्पतरु, मुहूर्त्तसार आदि ग्रन्थ आपके बनाये हुए हैं। इनमें एकाध को छोड सब प्रकाशित हैं।

गोविन्द ठाकुर—आप प्राय भटसीमरि ग्राम (दरभगा) के वासी थे। आपके प्रखर पाडित्य की समता करनेवाला कोई न था। मम्मट भट्ट के 'काव्य-प्रकाश' पर आपकी 'प्रदीप' नामक टीका साहित्य-ससार में एक रत्न समझी जाती है। आप परम ईश्वर-भक्त थे।

आपके छोटे भाई श्रीहर्ष भी बड़े भारी पडित थे, जिनका परिचय आपके 'प्रदीप' ग्रथ के निम्नलिखित श्लोक से मिलता है—

ज्येष्ठे सर्वगुणैः कनीयसि वयोमानेन पात्रे धियाम्।
गात्रेण स्मरखर्वगर्वितपरे निष्ठाप्रतिष्ठाश्रये॥
श्रीहर्षे त्रिदिवङ्गते मयि मनोहीने च कः शोधयेत्।
अनाशुद्धिरघो महत्सुविधिना भारोऽयमारोपित॥

शूलपाणि उपाध्याय—आप धर्मशास्त्र के बड़े प्रसिद्ध विद्वान् थे। आपके रचित आचारविवेक, प्रायश्चित्तविवेक, प्रायश्चित्तशूलपाणि आदि धर्मशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ सर्वमान्य हैं। ये सब ग्रथ प्रकाशित हैं।

गणेश्वर ठाकुर—आप चौरसायर ग्राम (दरभगा) के वासी थे। व्याकरण और साहित्य के पूर्ण विद्वान् थे। धर्मशास्त्र मे आपका स्वतन्त्र अधिकार था। आपके बनाये विवाहरत्नाकर, दानरत्नाकर, व्यवहाररत्नाकर और श्राद्धरत्नाकर ग्रथ पडित-मडली मे विशेष रूप से आदृत हैं।

महामहोपाध्याय महेश ठाकुर—आप व्याकरण और न्यायशास्त्र के श्रेष्ठ विद्वान थे। बङ्ग देश के कितने ही विद्यार्थी आपसे पढकर अपने देश गये। रघुनन्दन राय आपके ही परम भक्त तथा आज्ञाकारी शिष्य थे, जिनके शास्त्रार्थ पर मुग्ध होकर आपकी विद्वत्ता के सम्मान मे सम्राट् अकबर ने मिथिला का राज्य आपको सादर अर्पित किया था। विद्या की बदौलत ही आपने मिथिला का राज्य अकबर से प्राप्त किया। चिन्तामणि और आलोक-दर्पण पर आपकी अति उत्तम टीका है। आपका एक ग्रथ 'मलमासनिर्णय' भी प्रकाशित है। आप मुगल-सम्राट् अकबर के समकालीन थे। वर्त्तमान मिथिलेश आप ही के वशधर हैं।

शालिकनाथ मिश्र—आप मीमासा-शास्त्र के विद्वान् थे। पडित पार्थसारथि मिश्र के समय मे आप विद्यमान थे।

शुचिकर उपाध्याय—आप दार्शनिक महेश ठाकुर के विद्या-गुरु थे। अन्य प्रान्तों के भी अनेक विद्यार्थी आपसे शास्त्राध्ययन करके अपने देश गये। आपका बनाया कोई ग्रन्थ देखने मे नहीं आता।

हेमाङ्गद ठाकुर—आप ज्योतिशास्त्र तथा साहित्य के विद्वान् थे। आपका रचित 'ग्रहणमाला' ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

मेघ ठाकुर—आप महामहोपाध्याय महेश ठाकुर के भाई तथा 'जलज' ग्रन्थ के रचयिता हैं। आप अच्छे विद्वान् थे।

चण्डेश्वर ठाकुर—आप विविध शास्त्रों के ज्ञाता थे। धर्मशास्त्र में आप बड़े ही कुशल थे। आपके रचित ग्रन्थों में स्मृतिरत्नाकर, पूजारत्नाकर, दानवाक्यावली, कृत्यचिन्तामणि, श्राद्धविधि, शिववाक्यावली, स्वामिपालविवाद, दानविमोक्ष आदि ग्रन्थ अधिक प्रसिद्ध हैं।

रामदत्त ठाकुर—आप व्याकरण और साहित्य के प्रगाढ़ पंडित थे। आपकी बनाई 'विवाहपद्धति' मिथिला में प्रचलित है।

धनपति ठाकुर—आप धर्मशास्त्र के विशिष्ट विद्वान् थे। धर्मशास्त्र में आपका ग्रन्थ प्रामाणिक माना जाता है। आपने 'श्राद्धदर्पण' की रचना की है। आप इतने प्राचीन हैं कि आपका समय किसी को ज्ञात नहीं।

देवनाथ ठाकुर—आप दार्शनिक विद्वानों में प्रधान माने जाते थे। आलोक-परिशिष्ट और तत्त्व चिन्तामणि ग्रन्थ आपके बनाये हुए हैं।

शुभंकर ठाकुर—आप महामहोपाध्याय महेश ठाकुर के विद्वन्मान्य सुपुत्र और मिथिला के शासक थे। आपके रचित ग्रन्थों में तिथि निर्णय और हस्तमुक्तावली उपलब्ध हैं। आपके नाम पर 'शुभंकरपुर' बसा हुआ है।

मधई ठाकुर—आप न्याय और मीमांसा के बड़े विद्वान् थे। बुद्धाधिकार, द्रव्यप्रकाशिका, कुसुमाञ्जलिप्रकाशिका, किरणावलीप्रकाशिका—ये सब ग्रन्थ आप ही के लिखे हुए हैं।

मधुसूदन शर्मा—आपका नाम प्राचीन ज्योतिषियों में प्रसिद्ध है। आपने 'ज्योतिषप्रदीपाङ्कुर' बनाया है।

मधुसूदन ठाकुर—आप न्यायशास्त्र और मीमांसा के विद्वान् थे। आपके रचित द्वैतनिर्णयोद्धार, समयप्रदीपजीर्णोद्धार, कण्टकोद्धार, तत्त्वचिन्तामण्यालोक आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

रघुदेव झा—आप राजा हरिसिंहदेव के आश्रित थे। उनकी अध्यक्षता में पञ्जी-प्रबन्ध के संग्रहकर्त्ता आप ही थे।

लक्ष्मीपति उपाध्याय—आप पन्द्रहवीं शताब्दी में हुए हैं। आपका बनाया 'श्राद्धरत्न' ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

लोचन शर्मा—आप संगीत के भी पूर्ण विद्वान् थे। आपकी बनाई 'राग तरङ्गिणी' संगीत का प्रख्यात ग्रंथ है।

गोकुलनाथ उपाध्याय—आप मङ्गरौनी गाँव के वासी थे। १८ वीं शताब्दी के अन्त और उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ मे आप हुए हैं। आप व्याकरण, न्याय और साहित्य के अद्वितीय विद्वान् थे। मिथिला भाषा मे भी आप छन्द-रचना करते थे। आपके निर्मित कादम्बरीप्रदीप, कादम्बरीकीर्तिश्लोक, पद-वाक्यरत्नाकर, कादम्बरीप्रश्नोत्तरमाला, कुसुमाञ्जलीटिप्पणी, तत्त्वचिन्तामणि-पद्धति, आलोकटिप्पणी, खडनकुठार, मुक्तिवाद विचार, विशिष्ट-वैशिष्ट्य-बोध, प्रबोध-कादम्बरी, कुड-कादम्बरी, मासमीमांसा, आधाराधेयभाव, तत्त्व-परीक्षा आदि ग्रन्थ बडे प्रसिद्ध हैं। इनमे अधिकाश ग्रन्थ प्रकाशित हैं।

गणेश्वर (द्वितीय)—आप विद्वान् तो थे ही, भगवान् विष्णु के भी बड़े भक्त थे। आपकी बनाई हरिभक्तिप्रदीपिका और गङ्गाभक्तितरङ्गिणी भक्ति-मार्ग की प्रदर्शिका हैं।

वामदेव उपाध्याय—आप 'स्मृतिदीपिका' के रचयिता हैं। समय अज्ञात।

देवनाथ उपाध्याय—'उपाहरण' सस्कृत-मैथिली नाटक के रचयिता।

हरिलाल उपाध्याय—'आचारादर्श-व्याख्या' ग्रन्थ के रचयिता।

वर्द्धमान (द्वितीय)—आप सरिसव ग्राम के निवासी थे। आपका बनाया 'परिभाषाविवेक' सुपरिचित ग्रंथ है।

महामहोपाध्याय रामेश्वर झा—उजान (दरभगा) के निवासी, दर्शन-शास्त्र के अगाध विद्वान् थे। गगाजी की स्तुति में बडी सुन्दर कविताएँ लिखी हैं। न्यायशास्त्र पर भी टीका लिखी है जो अप्रकाशित है। मिथिला के सुविख्यात विद्वान् गोकुलनाथ उपाध्याय से आपने शास्त्रों का अध्ययन किया था। गुरु के मरने पर आपने यह श्लोक रचा था जो अद्यापि प्रसिद्ध है—

मातर्गोकुलनाथनामक गुरोर्वाग्देवि तुभ्य नम ।
पृच्छामो भवतीं महीतलमिद त्यक्त्वैवयद्गच्छसि ॥
भूलोके वसति कृता मम गुरौ स्वर्गे तथा गीष्पतौ ।
पाताले फणिनायके च नितरा प्रौढि क लब्धाधिका ॥

देवनाथ शर्मा—आपकी बनाई स्मृति-कौमुदी है। आप धर्मशास्त्र के मार्मिक विद्वान् थे। आपके अन्य ग्रन्थ अप्राप्य है।

नरहरि उपाध्याय—सरिसव ग्राम (दरभंगा) के निवासी थे। व्याकरण-कौमुदी की आपने विशद व्याख्या की है।

हरिहर उपाध्याय—आप अर्वाचीन विद्वानों में सुप्रसिद्ध थे। प्रभावती-परिणय और भर्तृहरि-निर्वेद नामक संस्कृत नाटक आपके बनाये हुए हैं।

भवदेव मिश्र—आप व्याकरण, वैशेषिक और योगशास्त्र के विशेष ज्ञाता थे। प्रायश्चित्तभवदेव, दानकर्मप्रक्रिया और पातञ्जलसूत्रभाष्य आपके बनाये ग्रथ हैं।

रवि ठाकुर—आप १६ वीं शताब्दी मे हुए हैं। साहित्यशास्त्र मे आप बडे कुशल थे। काव्य-प्रकाश पर 'मधुमती' नाम की टीका आपके काव्य-कौशल की परिचायिका है।

गोविन्द मिश्र—आप व्याकरण के पूर्ण विद्वान् थे। 'नलचरित्र' नाटक आपका बनाया है।

मिश्रू शर्मा—आप धर्मशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् थे। १५ वीं शताब्दी में आप हुए हैं। आपके बनाये विवादचन्द्र और पदार्थचन्द्र ग्रन्थ बडे अच्छे हैं।

पद्मनाभ मिश्र—न्यायशास्त्र मे बडे प्रवीण थे। सिद्धान्तमुक्ताहार आप ही का रचा हुआ है। सत्रहवीं शताब्दी मे आप हुए हैं।

ज्योतिषी नीलाम्बर झा—आप ज्योति शास्त्र के व्युत्पन्न विद्वान् थे। सिद्धान्त-ग्रन्थ में आपकी विलक्षण प्रतिभा थी। गोलीय रेखागणित आदि अनेक सिद्धान्तसम्बन्धी ग्रन्थ आपके बनाये हुए हैं। आपका घर पटने मे था। १९ वीं शताब्दी मे आप हुए हैं। काशी के जगत्प्रसिद्ध ज्योतिषी महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने भी आपसे शिक्षा पाई थी।

ज्योतिर्वित् जीवनाथ झा—आप नीलाम्बर झा के भाई थे। ज्योतिष के फलित भाग मे आप बडे निविष्ट थे। आपके बनाये भावकुतूहल, दीक्षातत्त्वप्रकाश, वस्तुरत्नावली, जन्मपत्रीविधान और भावप्रकाश ग्रन्थ विशेष आदरणीय हैं।

वाचस्पति मिश्र (अर्वाचीन)—आप सरिसव (दरभंगा) के निवासी थे। न्याय और धर्मशास्त्र मे आपके रचित द्वैतचिन्तामणि, आकारचिन्तामणि, आह्निकचिन्तामणि, नीतिचिन्तामणि, व्यवहारचिन्तामणि, शुद्धिचिन्तामणि, विवादनिर्णय, द्वैतनिर्णय, कृत्यमहार्णव, अनुमानखण्ड टीका आदि अनेक ग्रन्थ हैं।

चन्द्रदत्त झा—हरिनगर ग्रामवासी। आपका समय १९ वीं शताब्दी का

आरम्भ है। रचित ग्रन्थ—भगवद्भक्तिमाहात्म्य, कर्णगीतमाला, भगवतीस्तोत्र, काशीशिवस्तोत्र और कृष्णविरुदावली।

देवनाथ ठाकुर—समय १६ वीं शताब्दी। रचित ग्रन्थ—आलोकपरिशिष्ट और तत्त्वचिन्तामणि।

भीम शर्मा—आप अठारहवीं शताब्दी मे हुए हैं। आपके रचित ग्रन्थों में गीतशङ्कर, कृत्यदर्पण तथा कुमारसभव की टीका उपलब्ध हैं।

मदन मिश्र—समय अज्ञात। गोरक्षा ग्रन्थ के रचयिता।

मुक्तेश्वर झा—आप साहित्यिक विद्वान् थे। पूजा पाठ मे आपकी बडी निष्ठा थी। आपका रचित 'पूजापङ्कजभास्कर' है। समय अज्ञात।

पद्मनाभ दत्त—आप व्याकरण और न्याय के प्रखर पडित थे। १४ वीं शताब्दी मे आपके होने का समय बताया जाता है। आपका बनाया कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

वटेश्वर झा—समय १५ वीं शताब्दी। रचित ग्रन्थ 'मुद्राराक्षस' नाटक की टीका।

परशुराम झा—आप न्यायशास्त्र के पूर्ण विद्वान् थे। आपका समय १७ वीं शताब्दी है।

रुचिदत्त उपाध्याय—समय १५ वीं शताब्दी। अनेक ग्रन्थों पर आपकी लिखी टीकाएँ हैं।

सुचरित मिश्र—आपका बनाया 'काशिका' नामक ग्रन्थ है।

वंशमणि शर्मा—समय १७ वीं शताब्दी। रचित ग्रन्थ—'गीत दिगम्बर' नाटक।

वासुदेव मिश्र—समय १५वीं शताब्दी। रचित ग्रन्थ–'तत्त्वचिन्तामणि' की टीका।

विश्वेश्वर मिश्र—आप सम्राट् शाहजहाँ के दरबार मे सम्मानित थे। आपका रचित 'स्मृति-समुच्चय' ग्रन्थ है।

विष्णुदत्त झा—आप मिथिलेश महाराज प्रतापसिंह के दरबार में पूजित थे। कई ग्रन्थों पर आपकी लिखी टीकाएँ मिलती हैं। उक्त महाराज की कृपा से आपको एक गाँव भी मिला था।

प्रेमनिधि ठाकुर—आप धर्मशास्त्र के अच्छे विद्वान् थे। आपका रचित 'धर्माधर्मप्रबोधिनी' ग्रन्थ है।

लक्ष्मीधर उपाध्याय—समय १७ वीं शताब्दी। रचित ग्रन्थ 'कल्पतरु'।

वेणीदत्त झा—समय १८वीं शताब्दी। रचित ग्रन्थ—'रसकौस्तुभ'। वासस्थान—निहो (दरभंगा)।

महामहोपाध्याय सचल मिश्र—आप १८ वीं शताब्दी में हुए हैं। पाहीटोल ग्राम-(दरभंगा)-वासी पंडित रघुदेव मिश्र के सुपुत्र थे। मिथिलेश महाराज प्रतापसिंह ने आपकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर आपको जगतपुर गाँव और सं० १७७६ में महाराज माधवसिंह ने चनौर गाँव दिया था। आपने चनौर में मन्दिर बनवाकर शिवलिंग का स्थापन किया था, जो अबतक विद्यमान है। पूना के राजा माधवराव ने आपको जब्बलपुर के इलाके में 'महँगवा' और 'सलैया' दो गाँव दिये थे। आपने धर्मशास्त्र के अनुसार बहुत दिनों तक प्रधान न्यायाधीश (चीफ जज) का काम किया था। आपके किये धर्मशास्त्र के कई फैसले अब भी उपलब्ध हैं। गोवर्द्धनसप्तशती पर आपकी लिखी टीका है, जिसे दरभंगा-राज्य के सब-मैनेजर स्वर्गीय केशी मिश्र (आपके वंशज) ने विद्यापति प्रेस में छपवाया है।

चित्रधर उपाध्याय—आपका समय १८ वीं शताब्दी का आरम्भकाल था। आप मङ्गरौनी ग्राम (दरभंगा) के वासी थे। महामहोपाध्याय सचल मिश्र के विद्यागुरु थे। न्याय और धर्मशास्त्र के आप अद्वितीय विद्वान् थे। आपके बनाये 'वीरसारिणी, प्रमाणप्रमोद तथा शृङ्गारसारिणी' ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

महामहोपाध्याय मुक्तिनाथ शर्मा—आप न्याय और धर्मशास्त्र के प्रकांड पंडित थे। पुर्नियाँ जिले के अन्तर्गत धमदाहा ग्राम के निवासी थे। आप धर्मशास्त्र के पूर्ण वेत्ता होने के कारण पुर्नियाँ जिले के जज बनाये गये थे।

अचल उपाध्याय—आप महामहोपाध्याय सचल मिश्र के समकालीन और विद्या में उनके प्रतिस्पर्द्धी थे। किंवदन्ती है कि आपने सचल मिश्र को यह श्लोक लिखा था—

ये चरन्निशि तमोपशान्तये, ज्योतिरिङ्गण ! कथं न लज्जसे।
इत्थमेव बहु किं न मन्यसे यत्त्वमेव तिमिरेषु लक्ष्यसे॥

इसका उत्तर सचल मिश्र ने बड़े मार्के का यह दिया—

मन्दिरान्तिमिरमपाकुरु दीप ! हिमांशुं किमाक्षिपसि।
भवनादुपहिर्मनागपि पवनात्परिशीलयात्मानम्॥

मचल उपाध्याय—आप मङ्गरौनी-निवासी सचल उपाध्याय के सगे भाई थे। समय १८ वीं शताब्दी। रचित ग्रन्थ 'शतरङ्गप्रबन्ध'। आप ज्योतिष के विद्वान् थे।

रत्नपाणि झा—समय १६वीं शताब्दी। वासस्थान कौशिकी नदी के निकटवर्त्ती परसा ग्राम। आप मिथिलाधीश महाराज रुद्रसिंह के द्वारपंडित थे। आपके रचित—प्रायश्चित्तपारिजात, प्रवरणचन्द्रिका, एकोद्दिष्टसारिणी, आचारसंग्रह, श्रीकृष्णार्चनचन्द्रिका, क्षयमासादिविवेक, नारीपरीक्षा, चिकित्सार्णव, महादानवाक्यावली, मिथिलेशचरित, व्रताचार, रामचन्द्रप्रतिष्ठा, धर्मसुबोधिनी आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। आप बहुत अच्छे कवि भी थे।

दिवाकर झा—समय १६वीं शताब्दी। वासस्थान उजान ग्राम। आप न्यायशास्त्र के विद्वान् थे। न्यायलीलावती, कंठाभरण और खंडनखाद्य ग्रन्थों की टीका आपने की है।

महामहोपाध्याय औंखी झा (पंडित जीवनाथ)—आप हरिनगर (दरभंगा) के निवासी थे। व्याकरणव्युत्पत्तिवाद और शक्तिवाद के पूर्ण विद्वान् थे। आपकी लिखी 'कृष्णपञ्चाशिका' आदि पुस्तिकाएँ हैं।

नरहरि मिश्र—आप ज्योति शास्त्र के अच्छे विद्वान् थे। आपका रचित 'स्वरोदय' ग्रन्थ है।

दुर्गादत्त मिश्र—आप व्याकरण और न्यायशास्त्र के पूर्ण पंडित थे। आपके रचित दो ग्रन्थ 'वृत्तमुक्तावली और न्यायबोधिनी' हैं।

बदरीनाथ उपाध्याय—आप पुर्नियाँ जिले के खोखा ग्राम के निवासी थे। आपके रचित चक्रकौमुदी, ताराभक्तिसुधार्णव की टीका तथा मर्मसूचिका आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

दुर्गादत्त झा—वासस्थान भराम (दरभंगा)। समय १६वीं शताब्दी का आरम्भ। रचित ग्रन्थ—'वाताह्वान काव्य'।

मदन उपाध्याय—आप मङ्गरौनी के निवासी थे। पंडित-मंडली में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। आप सिद्ध महात्मा गिने जाते थे। आपके ऊपर भगवती की बड़ी कृपा थी। सुनते हैं, आपकी वाक्‌सिद्धि ऐसी थी कि चमत्कार देखकर लोग चकित होते थे।

दुर्मिल झा उपाध्याय—आप कोइलख ग्राम (दरभंगा) के निवासी (लेखक के प्रपितामह) थे। व्याकरण, वेदान्त और न्यायशास्त्र के पूर्ण विद्वान्

थे। मिथिलेश ने आपकी विद्या से प्रसन्न होकर आपको जागीर (ब्रह्मोत्तर) दी थी, जो अबतक आपके वंशजों के अधिकार में है। समय १८वीं शताब्दी का अन्त और १६वीं शताब्दी का आरम्भ। आपने १६वीं शताब्दी में वीरसायर (दरभंगा) में एक योग्य पञ्जीबद्ध की कन्या से विवाह किया। इसलिये आपकी कुछ सन्तानें वहीं बस गईं।

महामहोपाध्याय गोकुलनाथ झा उपाध्याय—आप मङ्गरौनी ग्राम के निवासी बड़े अच्छे विद्वान् थे। आपके रचित अनेक निबन्धों में काव्यप्रकाश-विवरण, अमृतोदय नाटक, रसमहार्णव, शिवस्तुति विशेष प्रसिद्ध हैं। आपके बनाये मिथिला भाषा के भी अनेक पद पाये जाते हैं।

हरिहर उपाध्याय—आप मदन उपाध्याय के चचेरे भाई थे। व्याकरण, न्याय के विशिष्ट विद्वान् थे। आपके रचित ग्रन्थ हैं—साहित्यरचना और मुक्तावली टीका।

कृष्णदत्त उपाध्याय (कृष्ण कवि)—वासस्थान उजान (दरभंगा)। समय १८वीं शताब्दी। रचित ग्रन्थ—गीतगोपीपति, चण्डिकाचरितचन्द्रिका और शशिलेखा काव्य तथा कुवलयापीड नाटक।

रमापति उपाध्याय—आप पंडित कृष्णपति उपाध्याय के पुत्र थे। महाराज नरेन्द्रसिंह (मिथिलाधीश) के मनोविनोदार्थ आपने 'रुक्मिणीहरण' नाटक रचा। आपका समय १८वीं शताब्दी है।

मोहन मिश्र—आप महामहोपाध्याय सचल मिश्र के छोटे भाई थे। रचित ग्रन्थ—'राधानयनद्विशती' काव्य। समय १८वीं शताब्दी।

श्रीकृष्ण झा—समय १६वीं शताब्दी। रचित ग्रन्थ—कुमारसंभव और रघुवंश की अन्वयलापिका टीकाएँ।

खगेश शर्मा कविरत्न—वासस्थान टभका (दरभंगा)। समय १६वीं शताब्दी। गुरु का नाम—वागीश उपाध्याय। नरहन-राज के आश्रित। रचित ग्रन्थ—काशीशिवस्तुति और काश्यभिलाषाष्टक।

वसन्त मिश्र—आप टभका ग्राम के वासी थे। महाराज काशीनरेश के दरबार में रहकर आपने संस्कृत में 'छन्दोलता' ग्रन्थ बनाया। समय १६वीं शताब्दी।

परमेश्वरीदत्त मिश्र—आप सतलखा (दरभंगा)-निवासी थे। आप व्याकरण, न्याय और वेदान्त के मार्मिक विद्वान् थे। शास्त्रार्थी भी अच्छे थे।

कन्हौली (मुजफ्फरपुर) के जमींदार श्री यमुनाप्रसाद शुक्ल के द्वारपंडित तथा दानाध्यक्ष थे। समय १९वीं शताब्दी का अन्त और २०वीं शताब्दी का आरम्भ।

मधुसूदन झा—वासस्थान सतलखा। आप व्याकरण के पूर्ण विद्वान् थे। साहित्य में भी निपुण थे। रचित ग्रन्थ—'अन्यायदेशशतक'। समय २०वीं शताब्दी का आरम्भ।

महामहोपाध्याय हर्षनाथ झा—वासस्थान 'उजान'। आप व्याकरण, न्याय और साहित्य के बड़े विज्ञ पंडित थे। मिथिलेश महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह बहादुर के दरबार में आपका पूर्ण सम्मान था। आपके रचित ग्रन्थों में शब्देन्दु-शेखर की कारकान्त टीका, परिभाषेन्दुशेखर की परिभाषार्थदीपक टीका, मनोरमा की भावदीपक टीका, शब्दरत्न की शब्दरत्नार्थदीपक टीका, गीतगोपीपति काव्य की टीका, राधाकृष्णप्रतिष्ठा, ताराप्रतिष्ठा, संस्कारदीपक आदि ग्रन्थ तथा उषा-हरण, माधवानन्द, राधाकृष्णमिलन, सुदामाचरित नामक चार नाटक प्रसिद्ध हैं।

अमृतनाथ झा—आप भागलपुर जिले के अन्तर्गत चैनपुर ग्राम के निवासी थे। न्याय और धर्मशास्त्र के मार्मिक विद्वान् थे। आपके रचित प्रायश्चित्त-व्यवस्था और कृत्यसारसमुच्चय ग्रन्थ मिथिला में सर्वत्र प्रामाणिक माने जाते हैं।

तूफानी झा—आप दरभंगा जिले के मोहना ग्रामवासी थे। बरुआरी (भागलपुर) के राजा सुरेन्द्रनारायणसिंह के दरबार में आपका बड़ा मान था। आप थे तो ज्योतिषी, किन्तु आपने अनेक धर्मशास्त्र ग्रन्थों को देखकर 'कृत्य शिरोमणि' नाम का एक बृहत् ग्रन्थ लिखा, जिसे बरुआरी के राजा साहब ने छपवाकर विद्वनमंडली में वितरित करके यश प्राप्त किया। उक्त ग्रंथ में सभी पर्व-त्योहारों तथा व्रतोपवासों का प्रामाणिक रूप से निर्णय किया गया है। इसके अतिरिक्त श्राद्धचिन्तामणि, कृत्यतत्त्वचिन्तामणि, कृत्यसुधार्णव, कृत्यविवेक-रत्नाकर आदि ग्रंथों के रचयिता भी आप ही हैं।

जगद्धर झा—आप महाराज धीरसिंह के द्वारपंडित तथा दानाध्यक्ष थे। श्रीमद्भागवत, देवीमाहात्म्य, वेणीसंहार, मालतीमाधव और वासवदत्ता पर आपने अच्छी टीकाएँ की हैं।

कविवर गोविन्ददास झा—आप पंडित रामदास झा के भाई थे। संस्कृत के पूर्ण विद्वान् होते हुए भी आप मैथिली भाषा के प्रसिद्ध कवि थे। आपकी रचित मिथिला भाषा की पदावली कविकोकिल विद्यापति ठाकुर की प्रसिद्ध

संवत् १६२३ में श्रीकृष्णजन्माष्टमी को आपका जन्म हुआ था। आपके पितृव्य राजीवलोचन झा ने जयपुर-नरेश द्वारा अतुलनीय प्रतिष्ठा प्राप्त की थी और आप उन्हीं के दत्तक पुत्र थे। आपके एक पितृव्य तुलसीदास झा भी महान् पंडित थे और काशी में असी घाट पर रहते थे। आपके पितामह देवनाथ झा अनेक शास्त्रों के ज्ञाता और मझौलिया-राज्य (गोरखपुर) के प्रधान राजपंडित थे। आपके लिखे लगभग दो सौ ग्रन्थ हैं, जिनमें अधिकांश प्रकाशित हैं।

महामहोपाध्याय मुकुन्द झा बख्शी—आप हरिपुर ग्राम (दरभंगा) के निवासी थे। मुजफ्फरपुर-संस्कृत कालेज में आप अध्यापक थे। कर्मकांड के बड़े अनुभवी पंडित थे। साहित्य-रचना में आपकी लिखी अमृतोदय टीका और भर्तृहरि-निर्वेद टीका बहुत उत्तम है। आपने मैथिली भाषा में 'मिथिलाभाषामय इतिहास' लिखा है, जो लगभग ६०० पृष्ठों का प्रकाशित बृहत् ग्रन्थ है।

महामहोपाध्याय परमेश्वर झा वैयाकरणकेसरी—आप तरौनी (दरभंगा) के निवासी थे। समय बीसवीं शताब्दी। आप महाराजाधिराज स्वर्गीय रमेश्वरसिंह बहादुर के दरबार में राजपंडित थे। आपके रचित ऋतुवर्णन, यक्ष-समागम और दशकर्मपद्धतियों का संशोधन तथा मिथिलातत्त्व-विमर्श गवेषणा-पूर्ण ग्रन्थ हैं।

महामहोपाध्याय राजनाथ (रजे) मिश्र—वासस्थान सौराठ (दरभंगा), समय बीसवीं शताब्दी। व्याकरण के अप्रतिम विद्वान्, साहित्य और धर्मशास्त्र के मर्मज्ञ थे। वृद्धावस्था में आप दरभंगा-नरेश स्वर्गीय रमेश्वरसिंह के आश्रित तथा 'रमेश्वर-लता विद्यालय' के प्रिंसिपल नियुक्त हुए। महामहोपाध्याय पंडित जयदेव मिश्र, महावैयाकरण विविधशास्त्रवेत्ता पंडित खुद्दी झा प्रभृति अनेक प्रसिद्ध लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् आपके शिष्य थे। धर्मशास्त्र-सम्बन्धी 'तिथि निर्णय' आदि अनेक ग्रन्थ आपके बनाये हुए हैं।

महामहोपाध्याय जयदेव मिश्र—वासस्थान गजहड़ा (दरभंगा)। आप व्याकरण और साहित्य के पूर्ण विद्वान थे। दरभंगा-राज के काशीस्थ विद्यालय में पहले नियुक्त हुए। शास्त्रार्थ में आप सर्वत्र विजयी हुए। आपके रचित ग्रन्थ परिभाषेन्दुशेखर की टीका विजया, व्युत्पत्तिवाद की टीका जया और शास्त्रार्थ-रत्नावली प्रसिद्ध हैं। पंडित मार्कण्डेय मिश्र, पंडित दीनबन्धु झा आदि अनेक सुयोग्य विद्यार्थी आपके विद्यमान हैं। समय बीसवीं शताब्दी।

...विवर नन्दा झा (परिचय, पृष्ठ २५)

महामहोपाध्याय जयदेव मिश्र (पृष्ठ २२)

महामहोपाध्याय शशिनाथ झा (पृष्ठ २३)

महामहोपाध्याय मीमांसक चित्रधर मिश्र (पृष्ठ २१)

महामहोपाध्याय वैयाकरण केसरी परमेश्वर झा (पृष्ठ २२)

महामहोपाध्याय रजनाथ मिश्र (पृष्ठ २२)

स्वर्गीय महामहोपाध्याय डाक्टर सर गंगानाथ झा (पृष्ठ ३६, १६७, ४३)

कविवर मुन्शी रघुनन्दन दास (पृष्ठ ४१२)

प० सीताराम झा (पृष्ठ ४१४)

महामहोपाध्याय शशिनाथ झा—वासस्थान मनीगाछी स्टेशन के समीपवर्त्ती चनौर ग्राम (दरभंगा)। समय बीसवीं शताब्दी। आप व्याकरण, न्याय, धर्मशास्त्र तथा साहित्य के प्रकांड पंडित थे। आप बहुत दिनों तक कानपुर आदि कई स्थानों के विद्यालयों में प्रधानाध्यापक रहकर अन्त में संस्कृत-कालेज मुजफ्फरपुर के वाइस-प्रिंसिपल नियुक्त हुए। आपके रचित ग्रन्थ बहुत हैं, परन्तु वे अप्रकाशित हैं।

महामहोपाध्याय नैयायिक दुःखमोचन झा (बबुआ झा)—वासस्थान पिलखवाड़ (दरभंगा)। आप न्यायशास्त्र तथा साहित्य के धुरन्धर पंडित थे। आप अपने घर ही पर विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। न्यायशास्त्र पर आपके लिखे कई ग्रन्थ हैं, जो उपलब्ध नहीं हैं। समय १९वीं शताब्दी का अन्त और बीसवीं शताब्दी का आरम्भ।

महामहोपाध्याय चुम्मे झा—आप पिलखवाड़-(दरभंगा)-निवासी नैयायिक बबुआ झा के भाई थे। व्याकरण और न्याय में आपका प्रगाढ़ पांडित्य था। दरभंगे के महाराज के यहाँ आप विशेष रूप से सम्मानित थे। समय १९वीं शताब्दी का अन्त और २०वीं शताब्दी का आरम्भ।

महामहोपाध्याय मुरलीधर झा—वासस्थान 'श्यामसीधप' (दरभंगा)। समय बीसवीं शताब्दी। आप बनारस के क्विन्स-कालेज में ज्योतिःशास्त्र के प्रधानाध्यापक थे। ज्योतिष के अध्यापक होते हुए भी संस्कृत-साहित्य तथा मिथिला भाषा के साहित्य में आप बड़े कुशल थे। वाक्चातुर्य भी आपमें अद्भुत था। 'मिथिला-मोद' नामक मैथिली मासिक पत्र के प्रवर्त्तक और संचालक आप ही थे।

मुक्तिनाथ ठाकुर—वासस्थान बघरी (मुजफ्फरपुर)। समय १९वीं शताब्दी का अन्त और २०वीं शताब्दी का आरम्भ। आप व्याकरण और न्याय के बड़े गम्भीर विद्वान् थे। कान का बधिर होने पर भी आप शास्त्रार्थ करने में बड़े कुशल थे। व्याकरण-महाभाष्य पर आपकी लिखी बड़ी विलक्षण टीका है।

महावैयाकरण विश्वनाथ झा—वासस्थान पडौल (दरभंगा)। समय २०वीं शताब्दी का आरम्भ। आप व्याकरण, वेदान्त और धर्मशास्त्र के तत्त्वदर्शी विद्वान् थे। शास्त्रार्थ में आपका उपपादन पांडित्यपूर्ण होता था। आप जयपुर-राजधानी में बड़े आदृत थे। वहाँ से आप घर बैठे मासिक वृत्ति पाते थे।

नैयायिक विश्वनाथ झा—वासस्थान ठाढ़ी (दरभंगा)। न्यायशास्त्र

के आप अद्वितीय विद्वान् थे। शास्त्रार्थ मे कोई आपको परास्त नहीं कर सका। मिथिलेश महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह के द्वारपडित थे। समय बीसवीं शताब्दी का आरम्भ। आप सर्वतंत्रस्वतन्त्र बच्चा झा के सगे भाई थे।

जीवन झा—वासस्थान समस्तीपुर से ४ कोस दक्खिन 'हरिपुर' (दरभगा)। व्याकरण और सस्कृत-साहित्य के पूर्ण पडित तथा मिथिला भाषा मे भी पद्य बनाते थे। काशीनरेश महाराज प्रभुनारायणसिंह के दरबार मे आपकी बडी प्रतिष्ठा थी। महाराज के मनोविनोदार्थ आपका रचित 'सुन्दरसयोग' नाटक मिथिला मे विशेष आदृत है। समय २०वीं शताब्दी का आरम्भ।

महावैयाकरण खुद्दी झा—वासस्थान कोइलख (दरभगा)। आप व्याकरण, न्याय, धर्मशास्त्र तथा साहित्य के अनुपम विद्वान थे। आप सर्वप्रथम काशीस्थ सन्यासी-विद्यालय मे अध्यापक थे। १६०१ ई० मे जब श्रीनगर (पुर्नियाँ) के स्वर्गीय राजा कमलानन्दसिंह ग्रहणावसर पर अपनी पूजनीया माता के साथ काशी गये थे, उनके छोटे भाई कुमार कालिकानन्दसिंह ने पडित खुद्दी झा को बुलाया, और आपको अपने साथ ड्योढी श्रीनगर ले आये। आपसे उनका कोई नाता भी था। तब से आप बराबर वहीं रहकर दरबार की शोभा बढाने लगे। मैं भी राजा साहब के साथ काशी गया था। मुझे पडितजी के साथ एक ही आवास मे रहने का सौभाग्य चिरकाल तक प्राप्त रहा। पडितजी मे शास्त्रीय योग्यता और लौकिक चातुर्य दोनों की पूर्णता थी। आपके सदृश बहुश्रुत विद्वान् आज तक मुझे कोई दूसरा न मिला। कलकत्ते मे भी, जब आप विश्वविद्यालय के प्रोफेसर थे, मेरा और आपका साथ रहा। श्रीनगर (पुर्नियाँ) के राजकुमार श्रीगगानन्दसिंह जब १६२० ई० के लगभग वहाँ पढने गये, दीदारबक्स लेन मे एक मकान किराये पर लिया गया। उसी मे आपके साथ मैं भी रहता था। मैं उन दिनों वणिक् प्रेस में नियुक्त था। पडित खुद्दी झा की लिखी शब्देन्दुशेखर की टीका, नागेशोक्ति-प्रकाश और व्युत्पत्तिवाद की नौका नामक टीका बडी अच्छी है।

सुरेश मिश्र—वासस्थान प्राचीन विष्णुपुर अँरेरु, नूतन वास 'मङ्गरौनी'। व्याकरण और साहित्य के धुरन्धर पडित तथा आशुकवि भी थे। दरभगा-राज-विद्यालय मे अध्यापक थे। आपकी व्युत्पत्ति प्रशसनीय थी। आप पडित खुद्दी झा के सहपाठी थे। समय २० वीं शताब्दी।

उमेश मिश्र—आप पंडित सुरेश मिश्र के सगे भाई थे। न्यायशास्त्र में कुशल थे। समय १६ वीं शताब्दी का अन्त और २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

चन्द्रमणि झा (चन्द्रा कवि)—आप ठाढी-(दरभगा)-ग्राम-निवासी थे। पहले आपका वास था पिडारूछ ग्राम (दरभगा) में। आप संस्कृत-साहित्य के पंडित तथा मैथिली भाषा के असाधारण कवि थे। मिथिलेश महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह के दरबार में आप कवि-पद पर नियुक्त थे। मैथिली भाषा में आपका पद्यात्मक ग्रन्थ 'रामायण' विशेष प्रसिद्ध है। आप बडे अध्यवसायी अन्वेषक थे। अनेक प्राचीन ग्रन्थों का अनुसन्धान किया था। विद्यापति के पदों का संग्रह करने में आपने ही सर्व-प्रथम नगेन्द्रनाथ सेन गुप्त को सहायता दी थी।

बाबूजी पाठक—आप माधवपुर (दरभगा) के निवासी थे। अपने समय में आप ज्योतिष के आचार्य माने जाते थे। भगवती के आप बड़े भक्त तथा तान्त्रिक भी थे। हाजीपुर (मुजफ्फरपुर) में जब मैं ज्योतिष पढ़ता था, प्राय संवत् १६४६ में, आपके दर्शन हुए थे। मेरे विद्यागुरु ज्योतिषी द्रव्येश्वर झा वहाँ धर्म-संजीवनी पाठशाला में अध्यापक थे, वे पाठकजी के शिष्य कमलपुर-ग्राम-वासी ज्योतिषी फतूरी मिश्र के विद्यार्थी थे। इसी सम्बन्ध से आप उनके यहाँ आकर ठहरे थे। आप दर्शनीय पुरुष थे, इसमें सन्देह नहीं। विद्वन्मडली में सर्वत्र आपका सम्मान था।

निधिनाथ झा—वासस्थान गोरौल (मुजफ्फरपुर)। आप व्याकरण के विद्वान् थे। धर्मसमाज स्कूल (मुजफ्फरपुर) के हेडपंडित के पद पर नियुक्त थे। समय १६ वीं शताब्दी का अन्त और २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

नैयायिक देवकीनन्दन झा—आप कुरहनी स्टेशन (मुजफ्फरपुर) के समीप बड़ुरा गाँव के निवासी थे। न्याय और धर्मशास्त्र के अच्छे पंडित थे। समय २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

महावैयाकरण लालजी झा—वासस्थान चिकनौटा (मुजफ्फरपुर)। व्याकरण के आप धुरन्धर विद्वान् थे। वैयाकरण होते हुए भी न्याय, धर्मशास्त्र, वेदान्त और साहित्य के ज्ञाता थे। शास्त्रार्थी भी आप खूब थे। शास्त्रार्थ के समय आपकी सरस्वती उग्र रूप धारण करती थी। सभी शास्त्रों में शास्त्रार्थ करने के लिये आप सदा सन्नद्ध रहते थे। एक बार स्वर्गीय महाराज रमेश्वरसिंह की अध्यक्षता में कनवोकेशन के समय आपका शास्त्रार्थ हुआ था। एक अँगरेज डाइरेक्टर भी

वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने आपके पाडित्य की बड़ी प्रशंसा की। समय २०वीं शताब्दी का मध्यभाग। आपका रचित कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं।

कृष्णदत्त झा—वासस्थान भखराइन (दरभंगा)। आप ज्योति शास्त्र के अच्छे विद्वान् थे। बनारस के क्विंस-कालेज में ज्योतिष के प्रधानाध्यापक थे। आपने अतकाल तक काशी मे रहकर छात्राध्यापन किया। समय २०वीं शताब्दी का आरम्भ। व्याकरण के भी अच्छे विद्वान् थे।

किशोरीलाल झा—आप पडित लालजी झा के सगे भाई थे। सस्कृत-कालेज (मुजफ्फरपुर) मे व्याकरण के अध्यापक थे। व्याकरण और धर्म-शास्त्र मे आपकी बडी अच्छी योग्यता थी। समय २० वीं शताब्दी का मध्यभाग।

नरसिंह झा—वासस्थान पोखरौनी (दरभगा)। व्याकरण के पूर्ण विद्वान् थे। समय २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

गिरिधारी झा—आप सतलखा (दरभगा)-वासी थे। बराबर काशी में ही रहा करते थे। शास्त्रार्थ मे आप किसी से दबते नहीं थे। नवागत शास्त्रार्थी विद्वान् से शास्त्रार्थ करने के लिये आपके समकालीन काशीस्थ पडित आप ही को भिड़ा देते थे। समय १६ वीं शताब्दी का अन्तिम भाग। आपने अपने विद्याबल से पचीस बीघे ब्रह्मोत्तर भूमि भी पाई थी।

नैयायिक राजा झा—आप परड़ी ग्राम (भागलपुर) के निवासी थे। न्याय और धर्मशास्त्र के पाडित्य मे आपका सुयश सर्वत्र फैला था। समय २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

ज्योतिषी अपूछ झा—आप कोइलख-(दरभगा)-निवासी पडित खुद्दी झा के अग्रज थे। ज्योति शास्त्र के महान् पडित थे। आपने घर ही पर रहकर चिरकाल तक विद्यार्थियों को पढाया। आपका रचित ग्रन्थ 'निर्णयार्क' प्रसिद्ध है। समय २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

ज्योतिषी द्रव्येश्वर झा—आप वाजितपुर ग्राम (मुजफ्फरपुर) के निवासी थे। अपने गाँव मे रहकर कई साल तक विद्यार्थियों को ज्योतिष पढाया। तदनन्तर हाजीपुर (मुजफ्फरपुर) की धर्म-सजीवनी पाठशाला मे ज्योतिष पढाने के लिये नियुक्त हुए। पाठ शाला टूट जाने पर आप कन्हौली रियासत (मुजफ्फरपुर) के जमीन्दार श्री यमुनाप्रसाद शुक्ल के दरबार में अन्तकाल तक द्वारपडित के पद पर नियुक्त रहे। आप बडे धर्मनिष्ठ और मितव्ययी थे।

नैयायिक अपूछ झा—आप पुर्नियाँ जिले के सिरसिया ग्राम निवासी

थे। आप अपने प्रान्त के नैयायिकों में अग्रगण्य थे। शास्त्रार्थी भी अच्छे थे। श्रीनगर (पुर्नियाँ) की रानी साहबा (स्वर्गीय राजा कमलानन्दसिंह की पूजनीया माता रानी जगरमा देवी) ने १६०२ ई० में कार्तिक-व्रत का उद्यापन किया था। उसमें सैकड़ों विद्वान् निमन्त्रित हुए थे। पंडित अपूछ झा नैयायिक भी आये थे। पंडित सुद्दी झा, पंडित श्रीकान्त मिश्र आदि मैथिल पंडितों की मध्यस्थता में दरभंगा जिला वासी एक प्रसिद्ध नैयायिक से आपका शास्त्रार्थ हुआ। आपका उपपादन अच्छा होने के कारण राजा साहब ने आपको गौरव-सूचक स्वर्णपदक सम्मान-पूर्वक प्रदान किया। समय २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

नित्यानन्द झा—आप मुजफ्फरपुर के धर्मसमाज स्कूल में ज्योतिषशास्त्र के अध्यापक थे। समय २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

वासुदेव झा—आप चनौर ग्रामवासी महामहोपाध्याय शशिनाथ झा के बड़े भाई थे। मिथिलेश स्वर्गीय सर रमेश्वरसिंह के दरबार में आप ज्योतिषी के पद पर नियुक्त थे। समय २० वीं शताब्दी।

विश्वनाथ मिश्र—वासस्थान गोसपुर (भागलपुर)। विशिष्ट वैयाकरण और पौराणिक थे। समय २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

फूदन चौधरी—वासस्थान 'महिषी' (भागलपुर)। आप व्याकरण, साहित्य और संगीत के मार्मिक विद्वान् थे। समय २० वीं शताब्दी।

बिहारी पाठक—वासस्थान सुजौना (दरभंगा)। आप अच्छे वैयाकरण और साहित्य के ज्ञाता थे। आपके ग्राम के निवासी तथा सहपाठी यागेश्वर पाठक और लोकनाथ झा भी शब्द शास्त्र में निविष्ट थे। समय २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

नेना मिश्र—वासस्थान सिलौत—समस्तीपुर के समीप। व्याकरण के अच्छे पंडित और सदाचारी थे। समय २० वीं शताब्दी।

यदुनाथ मिश्र—अच्छे वैयाकरण थे। रचित ग्रन्थ व्यञ्जनावाद-साहित्य। समय २० वीं शताब्दी का प्रथम भाग।

शशिपाल झा—आप मानेचौक (मुजफ्फरपुर) के निवासी थे। सिद्धान्त दृग्गणित में आपकी प्रतिभा विलक्षण थी। स्वर्गीय महाराजाधिराज सर रमेश्वरसिंह आपको अपने दरबार में नियुक्त करके आप ही से दृश्यगणितानुसार पञ्चाङ्ग बनवाते थे। समय २० वीं शताब्दी। आपका बनाया हुआ ग्रन्थ आल्हा छन्द में देवीचरित है।

देवीकान्त ठाकुर—आप अथरी (मुजफ्फरपुर) ग्राम के निवासी थे। व्याकरण और साहित्य के बडे विद्वान् थे। आशुकवि तथा तान्त्रिक भी थे। पहले आप अमावाँ राज्य (पटना) में संस्कृत विद्यालय के प्रधानाध्यापक थे। तदनन्तर संस्कृत-कालेज (मुजफ्फरपुर) में व्याकरण, सांख्य और पातञ्जलि पढ़ाने पर नियुक्त हुए। आपमें विलक्षण वाक्शक्ति थी। समय २०वीं शताब्दी का मध्यभाग। आपके द्वारा रचित देवीस्तुति, महिषासुरवध काव्य तथा पंडित रामावतार शर्मा-रचित शास्त्र विरुद्ध कारिकावली का खंडन ग्रन्थ अप्रकाशित रूप में है। मैं राजकुमार के शिक्षक बाबू रामाधिकारीसिंह द्वारा निमन्त्रित होकर एक सभा में १६०६ ई० के लगभग एक बार अमावाँ-राजधानी गया था। आप से पहले-पहल वहीं भेंट हुई थी। आपकी अविलम्ब भावपूर्ण श्लोक-रचना का चमत्कार देखकर मुझे चकित होना पड़ा था।

ज्योतिषी बुद्धिनाथ झा—वासस्थान रामभद्रपुर (दरभंगा)। आप मुजफ्फरपुर के संस्कृत-कालेज में ज्योतिष के अध्यापक थे। आपके रचित ग्रन्थ तारालहरी, प्रियालापकलाप तथा भ्रातृविलाप हैं। संस्कृत की व्युत्पत्ति भी आपमें अच्छी थी।

ज्योतिषी परमेश्वरीदत्त मिश्र—वासस्थान तिलाठी (नैपाल-राज्य, सप्तरी परगना)। आप प्राचीन ज्योतिषियों में अग्रगण्य थे। जन्मकुंडली, वर्ष-प्रवेश और प्रश्न का फल आप अच्छा बताते थे। आपकी बताई बहुत बातें समयानुसार ठीक मिलती थीं। समय २० वीं शताब्दी। आप आजीवन श्रीनगर (पुर्नियाँ) के राजा साहब के दरबार में रहे।

ज्योतिषी यदुनन्दन मिश्र—आप भी उक्त तिलाठी गाँव के ही निवासी थे। आप नैपाल के महाराज चन्द्रशमशेर जंगबहादुर के दरबार में पूजित थे। प्रश्न का फल आपका बहुत मिलता था। इससे प्रसन्न होकर महाराज ने आपको प्रचुर धन और ब्रह्मोत्तर दिया।

खड्गनाथ झा—आप परमानन्दपुर (पुर्नियाँ) के निवासी थे। व्याकरण और धर्मशास्त्र में आपकी योग्यता प्रशंसनीय थी। समय २० वीं शताब्दी। आप बड़े उचितवक्ता थे। आप वर्ष भिक्षा लेने के लिये प्रतिवर्ष श्रीनगर (पुर्नियाँ) के नरेश राजा कमलानन्दसिंह के यहाँ आते थे। एक समय की बात है, आप श्रीनगर आये और सुना कि राजा साहब ने कुछ कर्ज लिया है। इसका आपके मन में बड़ा दुःख हुआ। आपने हितचिन्तना के खयाल से राजा साहब के निकट

विज्ञप्ति की और शीघ्र ऋण चुका देने का परामर्श दिया। आपकी इस सम्मति को राजा साहब ने अनधिकार चेष्टा समझकर अनसुनी कर दिया और नाराज होकर आपकी वर्ष भिक्षा बन्द कर दी। आपको वर्षभिक्षा बन्द होने का जरा भी रंज न हुआ, बल्कि अपने उचित भाषण पर हर्ष ही हुआ।

बदरीनाथ मिश्र—वासस्थान गोसपुर (भागलपुर)। आप व्याकरण, धर्मशास्त्र और साहित्य के गम्भीर विद्वान् थे। आपने अपने घर पर रहकर चिरकाल तक विद्यार्थियों को पढाया। समय २० वीं शताब्दी।

ज्योतिषी बदुनन्दन मिश्र (द्वितीय)—वासस्थान कठरा-तुमौल (दरभंगा)। आप व्यवहारकुशल न होने पर भी ज्योतिष में निपुण थे। पचगछिया (भागलपुर) इस्टेट के जमीन्दार रायबहादुर प्रियव्रतनारायणसिंह के आश्रित होकर विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। समय २० वीं शताब्दी।

ज्योतिषी बचेलाल झा—*आप गुर्भी-पचाढी (दरभगा) के निवासी* थे। प्राचीन ज्योतिषियों में आपका नाम प्रसिद्ध था। शास्त्रार्थी भी अच्छे थे। सिद्धान्त-भाग में आपकी सूझ विलक्षण थी। घर पर रहकर आपने बहुत दिनों तक विद्यार्थियों को योग्यतापूर्वक पढाया। पश्चात् आप तारानगर (पुर्नियाँ) के जमीन्दार कुमार नित्यानन्दसिंह के दरबार में नियुक्त हुए।

एक बार आप आश्विन के नवरात्र में श्रीनगर (पुर्नियाँ) आये। मॉऊबेहट (दरभगा) के वैदिक श्रीजयकृष्ण ठाकुर और *आपमें एक श्लोक पर शास्त्रार्थ छिड गया।* वैदिकजी कहते थे—"भोज्य भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वराङ्गना। विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपस फलम्।" ज्योतिषीजी कहते थे—"भोज्ये भोजनशक्तिश्च रतिशक्तौ वराङ्गना। विभवे दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपस फलम्।" वैदिक कहते थे, हम ठीक कहते हैं, ज्योतिषी कहते थे—हम।

दोनों में बड़ी देर तक वादविवाद होता रहा। एक थे वैदिक, दूसरे थे ज्योतिषी। शास्त्रार्थ की निष्पत्ति होना कठिन था। अन्त में पंडित बुद्दी झा मध्यस्थ माने गये। दोनों ने प्रतिज्ञा की--"वे जो कहेंगे, हम स्वीकार करेंगे।"

पंडितजी कहीं बाहर गये थे। सन्ध्या का समय था। उनके आने पर वैदिकजी ने मुकद्दमा दायर किया। पंडितजी तो बड़े हास्यप्रिय थे। उन्होंने ज्योतिषी से कहा—"पहले आप पढिये।" ज्योतिषीजी ने श्लोक पढकर सुना दिया। तब पंडितजी ने कहा—"ज्योतिषीजी! भोज्ये भोजनशक्तिश्च, भोज्य पदार्थ में तो भोजनशक्ति नहीं है। तब फिर इसके लिये आपको कुछ अध्याहार करना

स्वर्गीय महामहोपाध्याय मुरलीधर झा (पृ० २३)

राजपडित श्रीवलदेव मिश्र, दरभगा (पृ० ३७)

कन्दली-सहित), न्यायभाष्य (वार्त्तिक-सहित), खण्डनखण्ड खाद्य, श्लोकवार्त्तिक, तन्त्रवार्त्तिक, वामनकाव्यालङ्कारसूत्र और तर्क-भाषा प्रसिद्ध हैं। मिथिला भाषा में भी वेदान्तदीपक नामक एक ग्रन्थ लिखा है। अँगरेजी में तो आपने अनेक स्वतन्त्र पुस्तकें लिखी हैं।

महामहोपाध्याय नैयायिक बालकृष्ण मिश्र—आप नवटोल-सरिसव (दरभंगा) के निवासी हैं। सर्वप्रथम आप श्रीरमेश्वरलता विद्यालय (संस्कृत-कालेज, दरभंगा) में अध्यापक नियुक्त हुए। तदनन्तर मुजफ्फरपुर के संस्कृत-कालेज में न्यायशास्त्र के अध्यापक हुए। इस समय काशी हिन्दूविश्व विद्यालय के संस्कृत-विभाग के प्रिन्सिपल के पद पर प्रतिष्ठित हैं। आप न्याय, व्याकरण, साहित्य, धर्मशास्त्र, मीमांसा, वेदान्त आदि अनेक शास्त्रों के पूर्ण विद्वान् हैं। स्वभाव आपका अत्यन्त सरल है। आपके रचित ग्रन्थों में एक 'लक्ष्मीश्वरी चरित चम्पू काव्य' विशेष प्रशंसनीय है।

श्रीबालबोध मिश्र—आपका वासस्थान सीतामढ़ी (मुजफ्फरपुर) के इलाके में कोकन गाँव है। आप अनेक शास्त्रों के पारगत विद्वान् हैं। सम्प्रति काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय में मीमांसा आदि अनेक शास्त्रों के अध्यापक हैं। आपके बनाये अनेक ग्रन्थों में एक 'रामलषणचरित काव्य' भी है, जो चोरौत के वर्त्तमान महन्त की प्रशंसा में लिखा गया है।

श्रीदीनबन्धु झा—आप सरिसव ग्राम (दरभंगा) स्थित महारानी श्रीलक्ष्मीवती विद्यालय के प्रधानाध्यापक हैं। व्याकरण और साहित्य के पूर्ण विद्वान हैं। न्यायशास्त्र में भी आपकी अच्छी सूझ है। रचित ग्रन्थ—'रमेश्वरप्रतापोदय' और 'रसिक-मनोरञ्जिनी' प्रकाशित हैं।

व्याकरणाचार्य जगदीश झा—आप सतलखा-(दरभंगा)-निवासी महा वैयाकरण गिरिधारी झा के पुत्र हैं। व्याकरण, न्याय और धर्मशास्त्र में आपकी अच्छी प्रगति है। आप चिरकाल से बलरामपुर स्टेट (युक्तप्रान्त) के संस्कृत विद्यालय के प्रधानाध्यापक हैं।

बलदेव मिश्र—आप हरिपुर-(दरभंगा)-ग्राम निवासी हैं। व्याकरण और साहित्य के पूर्ण विद्वान् हैं। अन्यान्य शास्त्रों के भी ज्ञाता हैं। संस्कृत के अतिरिक्त आप हिन्दी और मातृ-भाषा मैथिली के भी बड़े अनुरागी हैं।

व्याख्यान आपका सारगर्भित और हृदयग्राही होता है। आप चिरकाल से दरभंगा-धीश महाराजाधिराज के सम्मानित राजपंडित हैं।

प्रयागदत्त झा—आप मोरवा-(दरभंगा) निवासी वयोवृद्ध वैयाकरण हैं। नरहन-दरबार में आपका विशेष आदर था। आप अपने घर पर ही रहकर विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं।

नैयायिक राधाकान्त झा—आप तुमौल (दरभंगा) के वासी हैं। न्यायशास्त्र के अच्छे विद्वान् हैं। चिरकाल से काशी के एक संस्कृत विद्यालय में न्यायाध्यापक हैं।

ज्योतिषी रघुनन्दन झा—आप लावापुर-(मुजफ्फरपुर)-ग्राम के निवासी हैं। ज्योतिःशास्त्र में निपुण तथा व्युत्पन्न हैं। आप अपने हाथ से मिथिलाक्षर में दशकर्म्मपद्धति लिखकर लीथो में छापकर बेचते हैं और दरिद्र पुरोहित को विना मूल्य भी देते हैं। जो मिथिलाक्षर नहीं पढ़ सकते, उन्हें मुफ्त नहीं देते। पञ्चाङ्ग भी हर साल स्वयं बनाकर छपवाते हैं।

श्रीरमेश झा—आप गङ्गौली (दरभंगा)-निवासी श्रोत्रियकुलभूषण हैं। व्याकरण, साहित्य और धर्मशास्त्र के अच्छे विद्वान हैं। कुछ दिन से पातेपुर श्रीराम-प्रकाश-संस्कृत-विद्यालय में प्रधानाध्यापक नियुक्त होकर विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं।

गौरीनाथ झा—आप अच्छे वैयाकरण और साहित्यज्ञ हैं। पहले आप अपने घर पर रहकर छात्रों को शिक्षा देते थे। अब बनैली के राजकुमार श्रीकृष्णानन्दसिंह साहब के यहाँ सुलतानगंज (भागलपुर) में मन्त्रिपद पर प्रतिष्ठित हैं। आपने बरसों 'गंगा' नामक सचित्र साहित्यिक पत्रिका का सञ्चालन और सम्पादन किया था, मिथिला-प्रेस की स्थापना की थी। 'हलधर' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला था। वेदों का हिन्दी-अनुवाद भी प्रकाशित किया था।

श्रीसीताराम झा—पुराणभूषण व्याकरणकाव्यतीर्थ। हैंठीवाली (दरभंगा)-वासी। मिथिला के पौराणिकों में आप अग्रगण्य हैं। आप 'व्यास' कहे जाते हैं।

ज्योतिषी गेनालाल चौधरी—वासस्थान हावी-भौआड़ (दरभंगा)। ज्योतिषियों में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा है। काशी के एक विद्यालय में ज्योतिष के अध्यापक हैं।

श्रीकान्त मिश्र—आप सोती-सलमपुर ग्राम (दरभंगा) के निवासी हैं।

व्याकरण, धर्मशास्त्र और साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। पहले आप बनैली राज्य (पुर्नियाँ) के आश्रित थे। तदनन्तर श्रीनगर-नरेश राजा कमलानन्दसिंह के दरबार मे नियुक्त हुए। इस दरबार मे आपका सम्मान अधिक था। राजा साहब की वंशावली का वर्णन संस्कृत पद्यों मे किया, जिसका नाम 'साम्बकमलानन्दकुलरत्न' काव्य है। श्लोक-संख्या एक सहस्र से कम न होगी। राजा साहब ने इस ग्रन्थ को अपने द्रव्य से छपवाया और पंडितजी को पुरस्कार-स्वरूप तीन हजार रुपये दिये, बहुमूल्य दुशाले आदि भी। आपका दूसरा चामत्कारिक ग्रन्थ 'लक्षबन्ध' है। आप कुछ दिन काशीवास करके सम्प्रति नब्बे बरस की आयु मे अपने घर ही पर रहकर नित्य नियमानुसार पूजापाठ करते हैं।

दुःखमोचन झा—करियन (दरभंगा) निवासी। जोधपुर (राजपूताना) के संस्कृत-कालेज मे अध्यापक रह चुके है। संस्कृत और हिन्दी मे आपकी लिखी कई पुस्तकें छप चुकी हैं।

नैयायिक शिवेश्वर झा—लालगंज (दरभंगा)-निवासी हैं। स्वर्गीय महाराज सर रमेश्वरसिंह (दरभंगा) के बडे स्नेहभाजन थे। गणेश्वर झा न्यायाचार्य आपके विद्वान् सुपुत्र हैं।

उपेन्द्र झा—तरौनी-(दरभंगा)-निवासी। व्याकरण, न्याय आदि शास्त्रों के आचार्य हैं।

रामचन्द्र मिश्र—व्याकरण, साहित्य और मीमांसा के आचार्य तथा न्याय और वेदान्त के शास्त्री है। प्रतिभाशाली विद्वान् हैं। सीवान (छपरा) के संस्कृत विद्यालय मे प्रधानाध्यापक हैं।

जटाशंकर झा—बरही (दरभंगा)-निवासी। व्याकरण-न्यायाचार्य, राजेन्द्र-संस्कृत विद्यालय (गया) के प्रधानाध्यापक हैं।

नमोनारायण झा—संस्कृत विद्यालय (मधुबनी, दरभंगा) के प्रधान अध्यापक हैं। चकफतेहा-(मुजफ्फरपुर)-निवासी। वैयाकरण और नैयायिक है। आप ही के गॉव के व्याकरण-सांख्याचार्य गणेश मिश्र भ्रमरपुर (भागलपुर) के संस्कृत विद्यालय के प्रधानाचार्य हैं।

उग्रानन्द झा—ककरौर (दरभंगा)-निवासी वैयाकरण और नैयायिक हैं। काशी मे बनैली-राज्य (पुर्नियाँ) का जो श्यामा-मंदिर है उसी के संस्कृत-विद्यालय में अध्यापक हैं।

सदानन्द झा—वैयाकरण और नैयायिक हैं। गुरुकुल, वैद्यनाथधाम (देवघर) में प्रधानाध्यापक हैं। उपर्युक्त उग्रानन्द झा आपके सहपाठी हैं। आप-लोगों की शिष्य-परम्परा बहुत विस्तृत है।

घूटर झा—मढिया-(दरभगा)-निवासी। व्याकरण और साहित्य के बहुत अच्छे विद्वान् हैं। ग्रैजुएट भी हैं। पहले हरद्वार के ऋषिकुल में सस्कृताध्यापक थे। आजकल लखनऊ-विश्व-विद्यालय के सस्कृत-विभाग में हैं।

ज्योतिषी नागेश्वर झा—मोहना-(दरभगा)-निवासी। आप पूर्वोक्त तूफानी झा के विद्वान् सुपुत्र हैं। फलित ज्योतिष के पारगत विद्वान् हैं।

वैयाकरणशिरोमणि कपिलेश्वर मिश्र—सोती-सलमपुर-(दरभगा)-निवासी। कानपुर के सस्कृत-विद्यालय मे कई साल तक अध्यापक थे। शान्ति-निकेतन-विश्वभारती (बगाल) मे भी बरसों सस्कृताध्यापक रह चुके है। आजकल पुस्तक-भडार (लहेरियासराय) के सस्कृत-विभाग मे हैं। आपके ग्रन्थ वेदान्तसूत्र-सस्करण (६ जिल्दों मे) और मैथिली मे 'सीतादाइ' प्रसिद्ध है। वयोवृद्ध बहुदर्शी विद्वान् हैं।

ज्योतिषी अभिराम मिश्र—राधाउर (मुजफ्फरपुर) के महँगू-सस्कृत-विद्यालय के प्रधानाध्यापक हैं। आपका बनाया पञ्चाङ्ग प्रतिवर्ष छपता है। आप ज्योतिषी गेनालाल मिश्र के सुपुत्र हैं।

आद्यादत्त ठाकुर, एम्० ए०—लखनऊ-विश्वविद्यालय के सस्कृत-विभाग में हैं। हिन्दी के भी प्रसिद्ध लेखक है। दरभगा जिले के निवासी हैं।

ज्योतिषी श्री तुरन्तलाल झा—वासस्थान बलहा (दरभगा)। अवस्था ५७ वर्ष। आप एक गरीब तथा कुलीन गृहस्थ के घर मे उत्पन्न हुए। आपने १६ वर्ष तक का समय खेल मे ही बिताया। १७ वें वर्ष में प्राचीन वैष्णव विद्वान् स्वनामधन्य ज्योतिषी किशोरी झाजी से दीक्षा पाकर आपका विद्यारम्भ हुआ। आप बडे परिश्रम से विद्या पढकर विशिष्ट विद्वान् हो गये। आपने अपने घर पर ही एक विद्यालय खोल रक्खा है जिसमे आप स्वय ही अध्यापनकार्य करते हैं।

ज्योतिषी सुन्दरलाल झा—ग्राम मकुनाही (मुजफ्फरपुर)। आप ज्योतिष-शास्त्र के बहुत अच्छे विद्वान, भक्त और सस्कृत के सुकवि हैं। आपके बनाये ग्रन्थों में मुतिहारा माहात्म्य, उचेठ-माहात्म्य और सुन्दरीय सिद्धान्त प्रसिद्ध हैं। आप वयोवृद्ध हैं।

इनके अतिरिक्त और भी बहुत से मैथिल पण्डित हैं जिनके नाम-ग्राम आदि

वहीं हैं। स्वर्गीय महाराज ने आपके ज्योति शास्त्र के कथित फलाफल पर प्रसन्न हो पचीस बीघे ब्रह्मोत्तर भूमि देकर अपनी उदारता का परिचय दिया है।

नाजितपुर-(मुजफ्फरपुर)-ग्रामवासी ज्योतिषी श्री कुशेश्वर कुमर ज्योतिष और काव्य मे कुशल है। पुस्तक-भडार (लहेरियासराय) के सस्कृत-विभाग में रहकर आपने कर्मकाड की पद्धतियों को सशोधित करके छपवाया, और पञ्चाङ्ग भी बहुत दिनों तक निर्माण करते रहे। व्यवहार-मञ्जूषा, कृत्यमञ्जरी आदि धर्मशास्त्र-सम्बन्धी आपकी पुस्तकें समहणीय हैं। मैथिली भाषा मे आपने शिक्षा सोपान नामक पद्यमय पुस्तक लिखी है जो पुस्तक-भडार से प्रकाशित है।

ज्योतिषी श्यामनारायण कुमर भी उपर्युक्त ग्राम के निवासी हैं। सम्प्रति बाघी (मुजफ्फरपुर) के स्कूल मे सस्कृत के अध्यापक हैं।

ज्योतिषी अनूपलाल झा (नरहा ग्रामवासी) पुपरी की सस्कृत पाठशाला मे अध्यापक हैं।

ज्योतिषाचार्य बबुआजी मिश्र (कोइलख ग्रामवासी) कलकत्ता विश्वविद्यालय मे मैथिली भाषा के प्रोफेसर हैं।

भवानीपुर निवासी ज्योतिषाचार्य हरिनन्दन झा कानपुर के सस्कृत विद्यालय में चिरकाल से ज्योतिष का अध्यापन करते हैं।

घोसरामा ग्रामवासी मुकुन्द ठाकुर वैयाकरण हैं। कुछ दिन सागर (मध्यप्रदेश) की सस्कृत पाठशाला मे अध्यापक थे। अब घर ही पर रहकर विद्या-व्यवसाय करते हैं।

कृष्णवार ग्रामवासी धनुर्द्धर झा वैयाकरण हैं। कन्हौली रियासत (मुजफ्फरपुर) में रहकर दरबार का काम करने के साथ-साथ विद्यार्थियों को भी पढ़ाते हैं।

पूर्वोक्त जीवित पडितो के अतिरिक्त मिथिलास्थ अनेक सस्कृत-पाठशालाओं मे जो विद्वान् नियुक्त हैं उनके नाम-ग्राम से मैं परिचित नहीं हूँ। इसलिये केवल पाठशालाओं का नामोल्लेख कर इस लेख को समाप्त करता हूँ—

दरभगा जिले मे—राजकीय विद्यालय, मधुबनी। बशीराज विद्यालय, पचाढी। सस्कृत विद्यालय, जनकपुर। लक्ष्मीश्वरी विद्यालय, लक्ष्मीपुर। कुशेश्वर-सस्कृत-विद्यालय, कुशेश्वरस्थान। विक्रम-ब्रह्मचर्याश्रम, कर्मौली। सस्कृत विद्यालय, ठाढी। सस्कृत विद्यालय, लहेरियासराय। जनार्दन-सस्कृत विद्यालय, दरभगा। रमेश्वर-विद्यालय, कपिलेश्वर-स्थान। ताराभवन विद्यालय, गन्धवारि। जानकीभवन-

श्री शारदाभवन विद्यालय, नवानी (दरभंगा) के लब्धप्रतिष्ठ प्रधान अध्यापक जगदीश झा, अध्यापकवर्ग—षष्ठीनाथ झा, यदुपति मिश्र, ईश्वरनाथ झा।

संस्कृत-विद्यालय, रॉटी (दरभंगा) के प्रधान अध्यापक निरसन मिश्र वैयाकरणशिरोमणि तथा अन्यान्य शास्त्रों के प्रकांड विद्वान हैं। अध्यापकवर्ग में कुलानन्द मिश्र बड़े तेजस्वी विद्वान् हैं।

श्रीरमेश्वरी-विद्यालय, राजनगर (दरभंगा) के प्रधान अध्यापक सहदेव झा हैं। सहकारी अध्यापक—अनिरुद्ध झा तथा लक्ष्मीकान्त झा वैयाकरण हैं।

श्रीनन्दन शर्मा ठाढ़ी-ग्राम-निवासी इस समय काशी के तारामन्दिर-विद्यालय मे अध्यापक हैं। भूपनारायण झा वैयाकरण श्यामामन्दिर (काशी) के विद्यालय मे प्रधानाध्यापक हैं।

ज्योतिषाचार्य श्रीसीताराम झा चौगमा ग्राम-निवासी हैं। सन्यासी-संस्कृत विद्यालय (काशी) में अध्यापक हैं। संस्कृत की व्युत्पत्ति और काव्य-कौशल प्रशंसनीय है। मिथिला भाषा में आपकी कविता बड़ी हृदय-ग्राहिणी होती है। यदि आपको मिथिला भाषा का अनुपम कवि कहें तो अत्युक्ति न होगी। आपके रचित काव्य की अनेक पुस्तिकाएँ हैं। ज्योतिष के अनेक प्राचीन ग्रन्थों पर आपकी टीकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

ज्योतिषाचार्य श्रीदेव चौधरी (घनौर ग्राम-वासी) गया के खरखुरा-संस्कृत-पाठशाला मे ज्योतिष के प्रधान अध्यापक हैं। इसी विद्यालय मे मिथिला के दो और विद्वान् अध्यापक रह चुके हैं—बलदेव मिश्र ज्योतिषाचार्य (बनगॉव, भागलपुर) और विद्यानाथ झा (परवाना, दरभंगा)।

माऊँबेहट (दरभंगा) के वैदिक विश्वनाथ ठाकुर पहले कलकत्ते मे रहकर वेदाध्यापन करते थे। इन दिनों भी आप वहीं हैं।

ढरिया ग्रामवासी अजबलाल झा वैदिक तथा सत्यदेव झा वेदाचार्य पहले लक्ष्मीपुर ड्योढ़ी (दरभंगा) की पाठशाला में अध्यापक थे, आजकल काशी मे वेद के शिक्षक नियुक्त हैं।

शाहपुर-निवासी वेदाचार्य दामोदर झा गिद्धौर के महाराज के दरबार मे नियुक्त थे और विद्यार्थियों को वेद पढ़ाते थे। सम्प्रति शाहपुर में ही वेद पढ़ाते हैं।

नवहथ ग्राम-(दरभंगा)-निवासी ज्योतिषाचार्य षडानन झा गिद्धौर-नरेश स्वर्गीय महाराज चन्द्रमौलीश्वरप्रसादसिंह के दरबार मे राज-ज्योतिषी थे। अब भी

यही हैं। स्वर्गीय महाराज ने आपके ज्योतिःशास्त्र के कथित फलाफल पर प्रसन्न हो पचीस बीघे ब्रह्मोत्तर भूमि देकर अपनी उदारता का परिचय दिया है।

बाजितपुर-(मुजफ्फरपुर)-ग्रामवासी ज्योतिषी श्री कुशेश्वर कुमर ज्योतिष और काव्य में कुशल हैं। पुस्तक-भंडार (लहेरियासराय) के संस्कृत विभाग में रहकर आपने कर्मकांड की पद्धतियों को संशोधित करके छपवाया, और पञ्चाङ्ग भी बहुत दिनों तक निर्माण करते रहे। व्यवहार-मञ्जूषा, कृत्यमञ्जरी आदि धर्मशास्त्र सम्बन्धी आपकी पुस्तकें संग्रहणीय हैं। मैथिली भाषा में आपने शिक्षा-सोपान नामक पद्यमय पुस्तक लिखी है जो पुस्तक भंडार से प्रकाशित है।

ज्योतिषी श्यामनारायण कुमर भी उपर्युक्त ग्राम के निवासी हैं। सम्प्रति नाघी (मुजफ्फरपुर) के स्कूल में संस्कृत के अध्यापक हैं।

ज्योतिषी अनूपलाल झा (नरहा ग्रामवासी) पुपरी की संस्कृत-पाठशाला में अध्यापक हैं।

ज्योतिषाचार्य बबुआजी मिश्र (कोइलख ग्रामवासी) कलकत्ता विश्वविद्यालय में मैथिली भाषा के प्रोफेसर हैं।

भवानीपुर निवासी ज्योतिषाचार्य हरिनन्दन झा कानपुर के संस्कृत-विद्यालय में चिरकाल से ज्योतिष का अध्यापन करते हैं।

घोघरामा ग्रामवासी मुकुन्द ठाकुर वैयाकरण हैं। कुछ दिन सागर (मध्यप्रदेश) की संस्कृत-पाठशाला में अध्यापक थे। अब घर ही पर रहकर विद्या-व्यवसाय करते हैं।

कृष्णनार ग्रामवासी धनुर्द्धर झा वैयाकरण हैं। कन्हौली रियासत (मुजफ्फरपुर) में रहकर दरबार का काम करने के साथ-साथ विद्यार्थियों को भी पढ़ाते हैं।

पूर्वोक्त जीवित पंडितों के अतिरिक्त मिथिलास्थ अनेक संस्कृत पाठशालाओं में जो विद्वान् नियुक्त हैं उनके नाम-ग्राम से मैं परिचित नहीं हूँ। इसलिये केवल पाठशालाओं का नामोल्लेख कर इस लेख को समाप्त करता हूँ—

दरभंगा जिले में—राजकीय विद्यालय, मधुबनी। वशीराज विद्यालय, पचाढ़ी। संस्कृत विद्यालय, जनकपुर। लक्ष्मीश्वरी विद्यालय, लक्ष्मीपुर। कुशेश्वर-संस्कृत-विद्यालय, कुशेश्वरस्थान। निष्काम-ब्रह्मचर्याश्रम, कर्मौली। संस्कृत-विद्यालय, ठाढ़ी। संस्कृत विद्यालय, लहेरियासराय। जनार्दन-संस्कृत विद्यालय, दरभंगा। रमेश्वर-विद्यालय, कपिलेश्वर-स्थान। ताराभवन-विद्यालय, गन्धवारि। [illegible]

महाजनक की परीक्षा

"पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाक पूणि
समारोहणे गयशिरस्वीत्यौर्णनाभ"

(निरुक्त)

मिथिलाधिपति जनकजी बडे भारी ज्ञानी और दानी थे । बृहदारण्यकोपनिषद् मे लिखा हुआ है कि गार्ग्य ऋषि काशीराज के पास जाकर बोले कि मैं तुम्हें जनक के समान बना दूँगा, तुम मुझसे शिक्षा ग्रहण करो। पर वे स्वय जनकजी के समान नहीं थे।

जनकजी ने अपने यज्ञ में ऋषियों से कहा कि जो ब्रह्म निरूपण मे समर्थ होगा उसे एक हजार गौएँ दूँगा। याज्ञवल्क्यजी के अतिरिक्त किसी को साहस नहीं हुआ। वहाँ भारत के विद्वान् इकट्ठे थे, पर निखिलविद्यानिष्णात जनक के सामने बोलने को तैयार नहीं हुए—"यो वो ब्रह्मिष्ठ एहतागाएदजताम्"।

वैदिक काल मे वेदान्त मे मिथिला प्रधान (बृ० उ०) स्थान रखती थी। उस समय ब्राह्मणों के समान क्षत्रिय वेदवेत्ता होते थे।

वेद मे गौतम और अहल्या की कथा आई है। इसी अहल्या का उद्धार रामचन्द्रजी ने किया था। यह बात वाल्मीकि-रामायण मे है। गौतम का आश्रम सारन जिले* के गोदना स्थान मे था। उन्होंने वहीं पर न्याय-सूत्रों की रचना की थी। "क्रतुकृथसूत्रान्तान्ठक्"—अष्टाध्यायी के इस सूत्र से नैयायिक शब्द बनता है और सिद्ध करता है कि गौतमजी के पहले वैदिक काल मे भी न्यायशास्त्र का अस्तित्व था, उन्होंने सग्रह मात्र कर दिया।

अष्टाध्यायी के बनानेवाले पाणिनि पटने के प्रसिद्ध पडित उपवर्ष के विद्यार्थी थे। वे बिहार से पूर्ण परिचित थे। उनके पहले वैदिक काल मे भी पटना था, पर उसका नाम कुसुमपुर था, क्योंकि यहाँ फूल अधिक होते थे। इसी का नाम कई शताब्दियों के बाद पाटलिपुत्र हो गया। यह दो भागों मे बँटा था—पूर्वी और पश्चिमी पाटलिपुत्र। यह बात पाणिनि के 'रोपधेतोप्राचाम्' सूत्र से सिद्ध होती है। इसका उदाहरण 'पूर्व पाटलिपुत्रक' है। उस समय पाटलिपुत्र गाँव नहीं था—नगर था, क्योंकि 'प्राचा ग्रामनगराणाम्' मे पाटलिपुत्र (पटना) के लिये नगर शब्द का प्रयोग हुआ है।

* वाल्मीकि-रामायण की अनुश्रुति के अनुसार यह स्थान दरभगा जिले के अहियारी गाँव के समीप पड़ता है, क्योंकि रामचन्द्रजी गगा पार करके विशाला (वैशाली) होते हुए गौतमाश्रम में आये थे। स्कन्दपुराण और बृहद्विष्णुपुराण से भी यही प्रमाणित है।

—सम्पादक

'वरणादिभ्यश्च'—इसके गणपाठ मे बिहार के गया, चम्पा आदि नगरों के नाम हैं। बिहार के पूर्वी प्रान्त को अङ्ग तथा पश्चिमी को मगध कहते थे। वैदिक साहित्य मे ये नाम आये हैं।

वैदिक काल मे शिव, स्कन्द आदि की मूर्त्तियाँ कारीगर बनाते थे। पूजा के लिये जो मूर्त्तियाँ बनती थी उन्हें 'शिव' अथवा 'स्कन्द' कहते थे और बेचने के लिये जो बनाई जाती थीं उनको 'शिवक' अथवा 'स्कन्दक' नाम दिया जाता था। 'जीविकार्थे चापण्ये'—इसके महाभाष्य मे उक्त प्रयोग मिलते हैं। गुफाओं तथा मूर्त्तियों के बनाने में बिहार निपुण था। मुँगेर (मुद्गलपुर) तथा भागलपुर (भगदत्तपुर) के पहाडो मे उक्त ढग की कारीगरी दीख पडती है।

लाखो वर्ष पहले बिहार में दो बडे जनपद थे। वहाँ के लोग बडे धनी और शिक्षित थे। उक्त जनपदों का नाम करुप और मलद था। वहाँ के निवासी बडे भारी शैव थे। वे 'याते रुद्र शिवातनू' (यजुर्वेद) तथा 'पुरमिद धृष्ण्वर्चत' (सामवेद) के अनुसार मूर्त्तिपूजक थे। वाल्मीकि-रामायण के अनुसार ये दोनों बकसर से कुछ दूर पर थे। रामचन्द्रजी को मिथिला जाने के समय राह में उनके चिह्न मिले थे। इन दोनों के नाम पर दो गॉव 'कारीसाथ' और 'मसाढ' अभी तक विद्यमान हैं। उनमे पृथ्वी से हजारों शिवलिङ्ग निकलते हैं। ई० आइ० रेलवे मे कारीसाथ स्टेशन है और आरा जिले में है। हमने वहाँ के एक शिवलिङ्ग को देखा है जिनका रग बदला करता है।

वैदिक काल मे नौ जगल बडे प्रसिद्ध थे जिनमे ऋषि वेद-पाठ किया करते थे। उनमे तीन बिहार में थे—चम्पारण्य (चम्पारन), सारङ्गारण्य (सारन) और अरण्य (आरा)। पहल मे चम्पा, दूसरे मे हरिण और तीसरे मे वृक्षश्रेणियाँ थीं।

बिहार में गगा, सरयू तथा शोण तीन नदियाँ थीं। शोण का नाम उस समय मागधी था। वह पॉच पहाड़ों के बीच मे बहता था—

सुमागधी नदी पुण्या मगधान् विश्रुता ययौ।
पञ्चाना शैलमुख्याना मध्ये मालेव शोभते॥

(वाल्मीकि-रामायण)

उस समय पटने से दूर पूर्व की ओर शोण था, अब पटने से पश्चिम है। इस शोण के किनारे फसल नहीं होती, उस समय अधिक उपज थी। वैदिक काल मे बिहार का आदर विद्या, तपस्या और सम्पत्ति तीनों के लिये था।

---

[२]

श्रीरमानाथ झा, एम ए, बी एल्, काव्यतीर्थ, लाइब्रेरियन, राज लाइब्रेरी, दरभंगा

हमारे प्रदेश का नाम 'बिहार' मुसलमानों का दिया हुआ है। कोषों में 'विहार' शब्द का एक अर्थ 'सुगतालय' या 'बौद्धमठभेद' मिलता है। आदिकाल से ही यह प्रदेश बौद्धधर्म का प्रसिद्ध केन्द्र एव बौद्धधर्मावलम्बियों की पवित्र विहार-भूमि था।

बारहवीं शताब्दी के अन्त मे, जब मुसलमानों ने इस प्रदेश पर अपना अधिकार जमाया, यहाँ पालवशीय राजाओं की अधीनता में बौद्धों का ही प्राबल्य था। इस प्रदेश मे असख्य बौद्ध विहारों को देखकर—मालूम होता है, उन्हीं विहारों के कारण—इस प्रदेश का नाम 'बिहार' पडा।

किन्तु, वैदिक साहित्य की पर्यालोचना से पता लगता है कि उस प्राचीन काल मे बिहार के अन्तर्गत तीन भिन्न भिन्न प्रान्त थे। गङ्गा के दक्षिण-पश्चिम मे 'मगधों' का राज्य था, और पूर्व मे 'अङ्गों' का, तथा उत्तर में 'विदेहों' का, जिसको 'सदानीरा' (गडकी) कोसलो के राज्य से पृथक् करती थी। अतएव आजकल जिसे हमलोग 'बिहार' कहते हैं, वैदिक युग में वही मगध, अङ्ग और विदेह नामक तीन स्वतन्त्र प्रान्तों मे विभक्त था।

वैदिक साहित्य के प्राचीनतम अश ऋग्वेदसहिता मे इन तीनों मे से किसी का भी उल्लेख नहीं मिलता। उसके तीसरे अष्टक के ५३ वे सूक्त की १४ वीं ऋचा मे 'कीकट' देश और उसके राजा 'प्रमगन्द' की बडी निन्दा की गई है। निरुक्तकार 'यास्क' इस कीकट देश को अनार्यो का निवास-स्थान कहते हैं तथा 'सायणाचार्य' उन्हीं की व्याख्या का अनुसरण करते हुए अपने भाष्य मे 'कीकट' शब्द का एक अर्थ तो वही देते हैं और दूसरा अर्थ यह कहते है कि "कीकट वे नास्तिक हैं जो याग, दान, होम इत्यादि क्रियाओं पर श्रद्धा नहीं करते और कहते कि खाओ, पिओ, मौज करो, यही लोक सब कुछ है, परलोक कोई चीज नहीं"। किन्तु वायुपुराण मे गया-माहात्म्य के प्रकरण मे कहा है—

कीकटेषु गया पुण्या नदी पुण्या पुन पुन ।
च्यवनस्याश्रम पुण्य पुण्य राजगृह वनम् ॥

इससे स्पष्ट भासित होता है कि कीकट दक्षिण बिहार ही का अति प्राचीन नाम है तथा वेदो के पडित वेबर, विल्सन, ग्रिफिथ प्रभृति पाश्चात्य विद्वानों का भी यही कहना है कि 'कीकट' मगध का ही पुराना नाम है।

मगध और अङ्ग देशों के स्पष्ट उल्लेख अथर्ववेद मे मिलते हैं। उस वेद के ५ वे काड के २२ वे सूक्त के १४ वे मन्त्र मे ज्वर से कहा गया है कि वह गन्धारियों को, मूजवन्तों को, अङ्गदेश-वासियों को तथा मगधदेश-वासियों को प्राप्त हो। फिर उसी वेद के १५ वे काड के दूसरे अनुवाक् मे व्रात्यमहिमा-प्रकरण में कहा गया है कि पूर्व दिशा मे मागध व्रात्यों के मन्त्र हैं, दक्षिण दिशा मे मागध व्रात्यों के मित्र हैं, पश्चिम दिशा मे मागध व्रात्यों के हास हैं और उत्तर दिशा मे मागध व्रात्यों के स्तनयित्नु (मेघ) है।

यजुर्वेद की वाजसनेयि-सहिता (अध्याय ३०, कडिका ५) और तैत्तिरीय ब्राह्मण (३-४-१-१) मे पुरुषमेध यज्ञ के प्रसङ्ग मे कहा है कि अतिकुष्ट के लिये मागध को बलि देना। वाजसनेयि-सहिता के उसी अध्याय की २२ वीं कडिका मे अशूद्र और अब्राह्मण मागध को पुश्चलियों, कितवों और क्लीवों के साथ प्राजापत्य पुरुषमेध के लिये वध्य कहा है।

श्रौतसूत्रों मे भी मगधदेश-वासियो को बहुत नीचा स्थान दिया गया है। बौधायन धर्मसूत्र (१-२-१३) मे मगध और अङ्ग देशो के निवासी सकीर्णयोनि कहे गये हैं।

कात्यायन (२२-४-२२) और लाट्यायन (८-६-२८) के श्रौतसूत्रो मे कहा है कि दक्षिणा के समय व्रात्यों का धन मागधदेशीय ब्रह्मबन्धुओं को देना। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन श्रौतसूत्रों मे मागधदेशीय ब्राह्मण ब्राह्मण न कहे जाकर ब्रह्मबन्धु कहे गये हैं, जिसकी व्याख्या यों की गई है कि ये लोग शुद्ध ब्राह्मण नहीं, किन्तु जातिमात्रोपेत ब्राह्मण हैं। तथापि, मगध में भी सद्ब्राह्मण रहते थे—यथा कौशीतकी आरण्यक (७-१४) मे कहा है कि मध्यम प्रातिबोधी-पुत्र मगधवासी थे। किन्तु, इससे भी यही प्रतिपादित होता है कि ऐसे सद्ब्राह्मणो का मगध मे रहना उस समय असाधारण था।

इन सभी स्थलो मे जहाँ-जहाँ मागध शब्द आया है, उसकी व्याख्या भाष्यकारो ने कई प्रकार से की है। क्षत्रिय-कन्या में वैश्य से उत्पन्न सकर को मागध कहते हैं (मनु १०।११ तथा गौतम ४।१७) और गायको का भी नाम मागध है। सम्भव है, मगध की ही निन्दा के लिये इस वर्णसकर का नाम मागध दिया गया हो तथा मगध देश मे उन दिनो अच्छे गवैये होते हो, किन्तु जहाँ-जहाँ स्पष्ट मगध देश का ही उल्लेख है वहाँ तो सन्देह का अवकाश नहीं रहता कि इससे क्या अभिप्रेत है।

एतावता यह स्पष्ट है कि वैदिक काल में मगधदेश का स्थान बहुत ही हेय था। सर्वत्र उस देश की और उस देश के निवासियों की निन्दा ही की गई है। इसका हेतु क्या? यह कहना कि यह देश आर्य-संस्कृति के अन्तर्गत नहीं था, सङ्गत न होगा, क्योंकि इन्हीं उल्लेखों से यह भी स्पष्ट है कि इस देश में भी शुद्ध नहीं तो कम-से-कम जातिमात्रोपेत ब्राह्मण लोग तो रहते ही थे—

पंडित वेबर (Indische Studien 1, 52, 53 etc & Indian Literature 79, 111, 112 etc) इसके दो कारण देते हैं—

प्रथमतः उनका कहना है कि बौद्धधर्म का उदय और उसका प्रचार मगध में ही हुआ था, इसलिये ब्राह्मण लोग इस देश की ओर घृणा की दृष्टि से देखते थे। श्रौतसूत्रों के प्रसङ्ग में यह कहना कदाचित् सत्य भी हो, किन्तु यजुर्वेद और अथर्ववेद की संहिताओं के प्रसङ्ग में यह कहना असङ्गत होगा, क्योंकि इन संहिताओं की रचना निस्सन्देह बुद्धदेव के उदय से बहुत पहले ही हो चुकी थी। और, अगर इसीलिये मगध की इतनी निन्दा की गई है तो फिर काशी और कोसल की भी निन्दा क्यों नहीं है? बुद्ध स्वयं कोसल देश के थे और पहले-पहल उन्होंने काशी में ही अपने धर्मप्रचार का कार्य आरम्भ किया तथा काशी और कोसल में भी बौद्धधर्म का प्रसार मगध से कुछ कम अथवा पीछे नहीं हुआ था।

उनका दूसरा अनुमान यह है कि मगध में आर्यों ने अपना अधिकार जमाया सही, आर्यों की संस्कृति भले ही यहाँ भी आई, किन्तु अनार्यों का यहाँ लोप नहीं हुआ। ब्राह्मणों की अधीनता स्वीकार करके भी यहाँ के अनार्य निवासियों ने अपना अस्तित्व कायम रक्खा। इसी कारण से ब्राह्मणों का प्राबल्य यहाँ नहीं हो पाया।

पार्जिटर साहब (J R- A S 1908, P 851-853) तो इससे और आगे बढ़ गये हैं। उनका कथन है कि मगध में पूर्व की ओर से अनार्यों का आना-जाना बराबर जारी था। वे लोग जलमार्ग से यहाँ आते ही रहे। इसी कारण से यहाँ आर्यों की प्रधानता दृढ़ नहीं होने पाई। यह युक्ति-सङ्गत भी प्रतीत होता है। तभी तो ब्राह्मणों के विरुद्ध बुद्धदेव का उदय होते ही मागधों ने इस नये धर्म को स्वीकार कर लिया जिससे वे ब्राह्मणों की अधीनता से छुटकारा पावें।

इसके प्रसङ्ग में सबसे विशद और युक्तियुक्त विवेचना डाक्टर ओल्डनबर्ग ने अपने 'बुद्ध' नामक ग्रन्थ में की है। उनके कहने का सारांश यही है कि संहिता-काल में आर्य-सभ्यता का केन्द्र भले ही सरस्वती और दृषद्वती के बीच के देशों में—जिन्हें मनु 'ब्रह्मावर्त्त' कहते हैं—रहा हो, किन्तु ब्राह्मण-काल में इस संस्कृति का

केन्द्र कुरु तथा पञ्चाल और उसी के आसपास के देशो मे था, जिसे मनु 'ब्रह्मर्षि देश' कहते हैं और जिस देश के प्रसङ्ग मे उनका कहना है कि—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन ।
स्वं स्व चरित्र शिक्षेरन्पृथिव्या सर्वमानवा ॥ २-२०

ऐतरेय ब्राह्मण (८-१४) मे भी आर्य देशो के लिये 'अस्या ध्रुवाया प्रतिष्ठाया' विशेषणो का प्रयोग किया गया है, शतपथ-ब्राह्मण में तो बारबार कुरु-पञ्चाल ही के ब्राह्मणो की प्रशसा की गई है और (१-४-१-१४) स्पष्ट कहा गया है कि पहले ब्राह्मण लोग 'सदानीरा' को पार कर पूर्व की ओर नहीं गये थे—इन प्राच्य देशो मे आर्यों का आना पीछे हुआ और कुरुपञ्चाल के ब्राह्मण लोग, जो आर्य सस्कृति के नेता थे, इन प्राच्य देशो की ओर उसी दृष्टि से देखते थे जिस दृष्टि से आगे बढे हुए लोग पिछडे हुए लोगो को देखते हैं।

इसके साथ-साथ, जब हम वेबर और पार्जिटर के मतो का विचार करते हैं तब यही प्रतीत होता है कि यद्यपि मगध मे भी आर्यों ने अपना अधिकार स्थापित किया, तथापि आर्य-सभ्यता यहाँ जड जमाने नहीं पाई—मगधवासियो ने कुरु-पञ्चालो की तरह आर्य-सस्कृति को नहीं अपनाया—यहाँ के निवासियो ने वैदिक धर्म के रहस्यो को नहीं समझा, अर्थात् मगध ने आर्य-सभ्यता को पूर्णरूपेण ग्रहण नहीं किया। यही कारण है कि वैदिक साहित्य मे सर्वत्र मगध की केवल निन्दा ही मिलती है और इसीसे यहाँ बौद्ध प्रभृति वेद विरुद्ध धर्मों का बडी प्रबलता के साथ प्रसार हुआ।

परन्तु बिहार का एक प्रान्त ऐसा है जहाँ आर्यों का आगमन बहुत पीछे हुआ सही, किन्तु जो अत्यन्त द्रुत वेग से आर्य-सस्कृति को अपनाकर बहुत शीघ्र ही आर्य-सभ्यता का एक प्रधान केन्द्र बन गया, वह प्रान्त विदेहों का है। किसी भी सहिता मे 'विदेह' का उल्लेख नहीं मिलता। तैत्तिरीय (२-१-४) और काठक (१३-४) सहिताओं मे 'वैदेह्य', 'वैदेही' और 'वैदेह' पद मिलते हैं, पर वे सभी गायो और बैलो के लिये आये है। ऐतरेय ब्राह्मण (८-१४) में जहाँ आर्य देशो की चर्चा की गई है वहाँ भी 'विदेह' का पृथक् उल्लेख नहीं है। किन्तु काशी, कोसल, मगध और अङ्ग के साथ यह भी 'प्राच्य देशो' के ही अन्तर्गत कर दिया गया है।

विदेहो का उल्लेख सबसे पहले शतपथ-ब्राह्मण (१-४-१-१० से १६) मे मिलता है। वहाँ कहा गया है कि विदेघ (जो प्राय विदेह का ही प्राचीन रूप था) माथव (जो प्राय मिथु की सन्तान थे या यह माधव का ही प्राचीन रूप

हो) अपने पुरोहित गौतम राहूगण के साथ वैश्वानर अग्नि का अनुसरण करते करते सरस्वती के तीर से सदानीरा के तीर तक आये। इससे पहले ब्राह्मण लोग सदानीरा को पारकर इसके पूर्व के देशों मे नहीं गये थे। वैश्वानर ने भी ऐसा नहीं किया, किन्तु उन्होने 'विदेघ माथव' से कहा कि तुम इसको पारकर पूरब की ओर जाओ और वहीं अपना निवासस्थान स्थिर करो। विदेघ ने अपने पुरोहित के साथ ऐसा ही किया। यह देश 'विदेह' कहलाने लगा और सदानीरा विदेह तथा कोसल की सीमा हो गई।

इस कथा से स्पष्ट ज्ञात होता है कि विदेह मे आर्यों का आगमन कैसे हुआ। किसी भी देश मे आर्यों के आगमन का ऐसा स्पष्ट इतिहास समस्त वैदिक साहित्य मे कहीं उपलब्ध नहीं है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि विदेह मे आर्यों का आगमन पीछे हुआ है।

किन्तु विदेह शीघ्र ही आर्य-सभ्यता का प्रधान केन्द्र हो गया। विदेहों के राजा जनक अपने समय के ब्रह्मज्ञानियों मे सबसे बडे गिने जाते थे। वे विद्या के अनन्य प्रेमी और ब्राह्मणों के बडे ही पोषक थे। उनके दरबार मे कुरु-पञ्चाल से बडे-बडे ऋषि आया करते थे। शतपथ-ब्राह्मण के शेष अध्यायों मे जनक ही के दरबार की कथाएँ हैं।

किन्तु केवल ब्रह्मज्ञानी राजा ही के कारण नहीं, विदेह की प्रतिष्ठा उन दिनों यहाँ के ऋषि याज्ञवल्क्य के हेतु भी समस्त आर्यावर्त्त मे व्याप्त हो गई थी। राजा जनक के दरबार के ये प्रधान ऋषि थे। ब्रह्मज्ञानियों मे इनके समान दूसरे ऋषि नहीं थे। इन्होंने कुरु-पञ्चाल के ऋषियों से ही सभी विद्याएँ पढी थीं, किन्तु राजा जनक के दरबार मे अनेक शास्त्रार्थों मे इन्होंने कुरु पञ्चाल के सभी ब्राह्मणों को बार-बार परास्त किया था। केवल अध्यात्मविद्या मे ही नहीं, वैदिक क्रिया-कलाप मे भी इनके वचन सर्वथा प्रमाण समझे जाते थे। यदि पुराणों की बात मानी जाय तो शुक्लयजुर्वेद के प्रवर्त्तक ये ही याज्ञवल्क्य हैं। शतपथ-ब्राह्मण और बृहदारण्यकोपनिषद् मे अनेक स्थलों पर जनक और याज्ञवल्क्य की ब्रह्मसम्बन्धी विवेचनाओं तथा याज्ञवल्क्य और भिन्न भिन्न ऋषियों के शास्त्रार्थों का वर्णन है।

वैदिक साहित्य मे विदेह के दूसरे-दूसरे राजाओं और ऋषियों की भी चर्चा है, किन्तु विदेह के यथार्थ गौरव ये दो ही हैं—जनक और याज्ञवल्क्य। केवल शतपथ ब्राह्मण और बृहदारण्यकोपनिषद् ही मे नहीं, तैत्तिरीय ब्राह्मण (३-१०-९६) मे भी राजा जनक की बडी प्रशसा की गई है और वह भी इनके ब्रह्मज्ञान ही के लिये।

कौशीतकी उपनिषद् (४-१) मे एक कथा है, जो सक्षेप मे शतपथ-ब्राह्मण (१४-५-१) मे भी कही गई है। गर्ग के वश में 'बालाकि' नाम के एक बडे भारी ब्रह्मज्ञानी ऋषि थे, जो सभी देशों का पर्यटन कर अन्त मे काशी के राजा अजातशत्रु के दरबार में पहुँचे। राजा से उन्होंने कहा—"आपके सामने मैं ब्रह्म का निरूपण करता हूँ।" इससे राजा इतना प्रसन्न हुए कि इस बालाकि को केवल इतना ही कहने के लिये एक हजार गौएँ दे दीं और कहा कि देखो, तब भी लोग 'जनक' 'जनक' चिल्लाते फिरते हैं।"

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि विदेहों के राजा जनक की कीर्त्ति उन दिनों उनके ब्रह्मज्ञान के लिये इतनी फैल गई थी कि आसपास के राजा लोग उनसे ईर्ष्या करने लग गये थे। इससे यही सिद्ध होता है कि वैदिक मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि-मुनि भले ही 'ब्रह्मावर्त्त' मे रहे हों, वैदिक क्रिया-कलाप का विस्तार भले ही 'ब्रह्मर्षि देश' मे हुआ हो, किन्तु जो ब्रह्मज्ञान आर्य-सस्कृति का चरम उत्कर्ष है—जिसके प्रसाद से आर्य-सभ्यता की महत्ता आज भी देश-विदेश मे सर्वत्र अक्षुण्ण है, उसका विकास उस वैदिक युग मे मुख्यतया विदेह मे ही हुआ था। यह बात नहीं है कि उन दिनों दूसरे ब्रह्मज्ञानी थे ही नहीं, किन्तु सभी ब्रह्मज्ञानियों के सिरताज विदेहों के राजा जनक ही थे और उन्हीं के सभापडित ऋषि याज्ञवल्क्य थे ,तथा अध्यात्म-विद्या का अन्तिम पाठ पढने उन दिनों समस्त आर्यावर्त्त के ऋषि लोग विदेह मे ही आया करते थे।

बिहार के लिये यह बड़े सौभाग्य की बात है कि वह गौरव-मडित विदेह, जिसे अब मिथिला या तिरहुत कहते हैं, बिहार ही का एक अग है। वैदिक काल के बिहार मे विदेह ही गौरव का स्थान था। उसके सामने बिहार के अन्य प्रान्तों का स्थान प्राचीन साहित्य मे महत्त्वपूर्ण नहीं जान पड़ता।

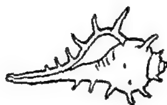

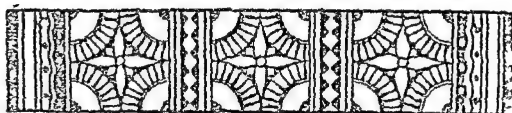

आस्तिक और नास्तिक

श्रीगोपाल शास्त्री, दर्शनकेसरी, काशी विद्यापीठ

संस्कृत वाङ्मय के परिशीलन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्राचीन समय में ईश्वर मानने या न माननेवालों के लिये 'आस्तिक या नास्तिक' शब्द का प्रयोग नहीं होता था, क्योंकि ईश्वर शब्द का प्रयोग परमेश्वर अर्थ में इधर आकर बहुत अर्वाचीन समय से संस्कृत-साहित्य में प्रयुक्त पाया जाता है। वेद से लेकर पाणिनि-सूत्र तथा पतञ्जलि के महाभाष्य तक ईश्वर शब्द का प्रयोग स्वामी-अर्थ में, राजा अर्थ में तथा खास किसी देव के अर्थ में पाया जाता है।

यद्यपि यह इतिहास का विषय है तथापि इतना यहाँ कह देना अप्रासङ्गिक न होगा कि पौराणिक काल में आकर शैव सिद्धान्त में शिव के लिये जो ईश्वर शब्द का प्रयोग था वही पौराणिक काल के बाद इधर आकर शैव धर्म द्वारा भारतीय संस्कृति में प्रविष्ट हो गया है, एवं शनैः शनैः परमेश्वर अर्थ में भी खूब प्रचलित हो गया है। अब कोई ऐसी पुस्तक नहीं जिसमें ईश्वर शब्द से परमेश्वर का अर्थ न लिया गया हो। इसकी पुष्टि के लिये थोड़े-से प्रमाणों का संग्रह करना उचित प्रतीत होता है।

पाणिनीय व्याकरण का सूत्र है—"अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः"—इसीसे अस्ति-नास्ति शब्द सिद्ध होते हैं। उसके टीकाकारों ने 'अस्ति परलोक इत्येव मतिर्यस्य स आस्तिकः' तथा 'नास्ति परलोक इत्येव मतिर्यस्य स नास्तिकः', अर्थात् जो परलोक माने वह 'आस्तिक' और जो न माने वह 'नास्तिक', न कि जो ईश्वर को माने वह 'आस्तिक' और जो न माने वह 'नास्तिक', ऐसा ही अर्थ दार्शनिक दृष्टि वालों के अतिरिक्त सर्वसाधारण जनता के लिये वेद-काल में भी प्रसिद्ध था,

यह कठोपनिषद् से प्रतीत होता है—जब नचिकेता यम से तीसरा वर माँगता है तब यही कहता है कि "येय प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके। एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीय ॥" अर्थात्—"मरने के पश्चात् आत्मा रहता है, ऐसा एक आस्तिक पक्षवाले कहते हैं, नहीं रहता है, ऐसा दूसरे नास्तिक पक्षवाले कहते हैं। हे यमराज! मैं आपके द्वारा अनुशासित होकर यह जान जाऊँ कि इन पक्षों मे कौन पक्ष ठीक है, यही उन वरो मे से तीसरा वर है"—इत्यादि।

इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि वैदिक काल से परलोक मानना न मानना ही आस्तिक नास्तिक का व्यावहारिक अर्थ था।

मनु ने तो वेद की निन्दा करनेवाले को ही नास्तिक कहा है (नास्तिको वेद निन्दक)। और भी, पाणिनीय सूत्रो मे ईश्वर शब्द का प्रयोग—"अधिरीश्वरे १।४।६७, स्वामीश्वराधिपति २।३।३६, यस्मादधिक यस्यचेश्वरवचन तत्र सप्तमी २।३।६, ईश्वरे तोसुन् कसुनौ ३।४।१३, तस्येश्वर ६।१।४२ इत्यादि सूत्रो के उदाहरणो मे ईश्वर शब्द स्वामी-अर्थ मे ही प्रयुक्त होता है। पतञ्जलि के उदाहरणों मे ईश्वर का अर्थ राजा ही पाया जाता है—जैसे, 'तद् यथा लोक ईश्वर आज्ञापयति ग्रामादस्मान्मनुष्या आनीयन्तामिति'—राजा आज्ञा देता है कि इस गॉव से मनुष्यो को ले आओ—इत्यादि उदाहरणो से ईश्वर शब्द का राजा ही अर्थ होता है।

इस अवस्था मे ईश्वर शब्द के परमेश्वर-अर्थ मे प्रयुक्त होने से पहले ही दर्शनसिद्धान्तो के आविष्कर्त्ता दार्शनिको की दृष्टि मे 'ईश्वर माननेवाला आस्तिक और उसका न माननेवाला नास्तिक'—यह अर्थ हो सकता है—ऐसा कैसे कहा जा सकता है, जब उनकी उत्पत्ति एव स्थिति 'ईश्वर माननेवाले आस्तिक और न माननेवाले नास्तिक'—इस भाव मे आस्तिक-नास्तिक-शब्दो के प्रयुक्त होने के पहले ही सिद्ध हो चुकी है ? इसी कारण ज्ञात होता है कि वैशेषिक (कणाद), साख्य (कपिल और पूर्वमीमासक (जैमिनि) ने अपने अपने दर्शनों मे ईश्वर का उल्लेख तक नहीं किया है। नैयायिक गौतम ने तथा योगी पतञ्जलि ने क्रमश "ईश्वर कारण-पुरुष कर्माफल्यदर्शनात्", "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वर"—इस तरह आनुषङ्गिक ईश्वर शब्द का प्रसङ्ग उठाया है। (इन सूत्रो मे परमेश्वरार्थक ईश्वर शब्द के प्रयोग से इसकी पाणिनि से प्राचीनता भी विचारणीय है तथा महा-भाष्यकार पतञ्जलि और योगसूत्रकार पतञ्जलि की अभिन्नता भी विचारणीय है)।

व्यासजी के ब्रह्मसूत्रों मे तो नहीं, किन्तु उनकी श्रीमद्भगवद्गीता में ईश्वर

शब्द का प्रयोग—कहीं राजा अर्थ में, कहीं परमेश्वर अर्थ में—दोनों तरह का पाया जाता है—जैसे, ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी'—यहाँ (मालिक) राजा अर्थ में, 'ईश्वर सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति'—यहाँ परमेश्वर-अर्थ में, यह भी विचारणीय है। वस्तुत देखा जाय तो इनके सिद्धान्तों में ईश्वर कुछ आवश्यक वस्तु नहीं दीखता।

कणाद ने अपने छ पदार्थों के ज्ञान से—धर्मविशेषप्रसूताद्द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थांना साधर्म्यवैधर्म्याभ्यातत्त्वज्ञानान्नि श्रेयसम्" (१-१-४०)- इस सूत्र से मुक्ति की प्राप्ति बतलाई है—(इस सूत्र में अभाव नामक सप्तम पदार्थ का उल्लेख नहीं है) और गौतम ने अपने सोलह पदार्थों के तत्त्व ज्ञान से "प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्नि श्रेयसाधिगम" (१-१-१) इस सूत्र द्वारा मुक्ति का उपाय बतलाया। कपिल ने प्रकृति पुरुष के भेद ज्ञान से "दृष्टवदानुश्रविक सह्यविशुद्धक्षयातिशययुक्त तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञ विज्ञानात्' (का० २)। तथा पतञ्जलि ने भी चित्तवृत्ति निरोध "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" 'तदा द्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम्' (१।३) आदि से मोक्ष-प्राप्ति बतलाई है। इसी प्रकार जैमिनि ने धर्मानुष्ठान से नित्यसुखरूपी मोक्ष की सत्ता माना है। ईश्वर का पूरा उपयोग तो इन दार्शनिकों के सिद्धान्तों में आता ही नहीं।

आगे चलकर भाष्यकारों तथा अन्यान्य टीकाकारों के साथ ही अन्यान्य ग्रन्थकारों (न्यायकुसुमाञ्जलिकार ईश्वरानुमानचिन्तामणिकार) ने वैशेषिक और न्याय दर्शन मे ईश्वर का प्रवेश प्रत्यक्षत कर दिया है, किन्तु मीमांसा और सांख्य मे तो आगे चलकर भी कहीं किसी ग्रन्थ में प्रत्यक्ष ईश्वर सिद्धि का उल्लेख नहीं है।

यहाँ एक बात विचारणीय प्रतीत होती है। वैशेषिक और सांख्य में शङ्कराचार्य से पहले ही कोई कोई दार्शनिक ईश्वर को निमित्तकारण मानकर इनके सिद्धान्तों में भी ईश्वर का प्रवेश करा चुके थे, क्योंकि वेदान्त सूत्र के मूल सूत्रों में जहाँ सांख्य और वैशेषिक मत के 'रचनानुपपत्तेश्च' (२।२।१) इत्यादि सूत्रों द्वारा प्रधान और परमाणु में स्वाभाविक प्रवृत्ति माननेवालों का खडन है, वहाँ प्रधानकारणवादी और परमाणुकारणवादी की ही हैसियत से जगत् का कारण केवल प्रधान (प्रकृति) जड़ नहीं हो सकता, उनमें ये दोष हैं' इत्यादि बातें दिखाई गई हैं। और, उन सूत्रों से किसी भी प्रकार यह सिद्ध नहीं हो सकता कि सांख्य और वैशेषिक सिद्धान्तों में भी ईश्वर का प्रवेश है।

परन्तु, आगे चलकर, बौद्धमतों के खडन कर देने पर भी, पशुपति (माहेश्वरदर्शन) मत के खडन में 'पत्युरसामञ्जस्यात्' सूत्र पर शङ्कराचार्यजी भाष्य करते हुए कहते हैं—'केचित्तावत्साख्ययोगाव्यपाश्रयात् कल्पयन्ति प्रधान-पुरुषयो अधिष्ठाता केवल निमित्तकारणमीश्वर इतरेतर विलक्षणाः प्रधानपुरुषेश्वरा इति तथा वैशेपिकादयोपि केचित् कथञ्चित्स्वप्रक्रियानुसारेण निमित्तकारण ईश्वर इति वर्णयन्ति'—अर्थात् "कोई कोई साख्य-योग-सिद्धान्त का आश्रय लेकर प्रधान-पुरुष से विलक्षण उनका अधिष्ठाता जगत् का केवल निमित्तकारण ईश्वर मानते हैं और कोई कोई वैशेपिकप्रक्रिया के अनुयायी भी अपनी प्रक्रिया के अनुसार ईश्वर को जगत् का निमित्तकारण मानते हैं, इत्यादि।" इससे इतना तो स्पष्ट है कि साख्य और वैशेपिकप्रक्रिया के मूल में ईश्वर का स्वीकार नहीं था।

इतना होने पर भी, आगे आकर कुछ लोगों ने ईश्वर का प्रवेश उनमें करा दिया है। ऐसे ही, मीमांसकों में भी कुछ लोगों ने मीमासा मे यह कहकर ईश्वर का प्रवेश कर दिया है कि 'कर्मों को ईश्वर को समर्पित कर देने से मुक्ति हो जाती है'—इत्यादि 'सोऽयधर्मो यदुद्दिश्य विहितस्तदुद्देशेन क्रियमाणस्तद्धेतु श्रीगोविन्दार्पणबुद्ध्या क्रियमाणस्तु निःश्रेयसहेतु' (न्यायप्रकाश, पृष्ठ २६७)। अस्तु।

जो कुछ हो, पर मेरी दृष्टि मे, इन दर्शनों के अधीन वेद सहिता के यम, सूर्य, प्रजापति, अग्नि और पुरुष तथा उपनिषद् के ब्रह्म, पुराण के ईश्वर, वर्त्तमान समय के ईश्वर, परमेश्वर, अल्लाह, खुदा न रहें तो कुछ बिगड़ता नहीं, क्योंकि वेदान्त दर्शन (जिसके आगे इन सभी दर्शनों के सिद्धान्त फीके पड़ जाते हैं) तो ब्रह्म, पुरुष, ईश्वर चाहे जो भी कहिये, सभी की सिद्धि के लिये कमर कसकर ही बैठा है। सस्कृत दर्शनों मे प्रस्थान भेद की जो प्रथा है, उसका ध्यान न रहने से ही ये सब विवाद खड़े होते हैं।

वस्तुत भारतीय दर्शनों में दार्शनिकों ने 'शाखाचन्द्रन्याय' से अपने अपने विचारों को व्यक्त किया है, मूल सिद्धान्त में किसी का किसी से भी विरोध नहीं है। जिसको दृष्टि (दर्शन) में जो वस्तु अवश्य प्राप्त थी उसने उसकी व्याख्या की और उसीको प्रधानता दी। अन्यान्य पदार्थों को उसने अभ्युपगमवाद से अपने दर्शन के विषयों मे गौण मानकर स्वीकार या खडन किया है। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह पदार्थ सर्वथा मान्य नहीं है।

इसका आशय केवल यही होता है कि उस दर्शन के सिद्धान्त में उस पदार्थ की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सस्कृत-शास्त्रों को 'यत्परः शब्द सशब्दार्थ' ही शैली

मानी गई है। यही बात विज्ञानभिक्षु ने भी अपने सांख्य-प्रवचन की भूमिका में कही है—"तस्मादास्तिकदर्शनेषु न कस्याप्यप्रामाण्यं विरोधो वा स्व स्व विषयेषु सर्वेषामबाधत्व अविरोधाच्च" अर्थात्—'आस्तिक दर्शनों में अपने अपने विषयों में बाधाभाव और अविरोध होने के कारण किसी में भी अप्रामाण्य और विरोध नहीं है।' तभी तो जैमिनि की खास पूर्वमीमांसा में ईश्वर का उल्लेख तक नहीं है, बल्कि मीमांसक लोग तो 'किमन्तर्गडुना ईश्वरेण' कहकर ईश्वर का खंडन ही करते हैं। उनके विषय में 'कर्मेति मीमांसका'—ऐसी ही प्रसिद्धि है।

हरिभद्र सूरि ने भी षड्दर्शनसमुच्चय में पूर्वमीमांसकों को निरीश्वरवादी ही बताया है। जैसे, "जैमिनीया पुन प्राहु सर्वज्ञादि विशेषण। देवो न विद्यते कोऽपि यस्य मान वचो भवेत्॥"—अर्थात् जैमिनीय मत के माननेवाले मीमांसक कहते हैं कि सर्वज्ञ, विभु, नित्य इत्यादि विशेषणों वाला कोई देव (ईश्वर) तो है नहीं, जिसका वचन प्रमाण मान लें।

कुमारिल भट्ट ने भी कहा है कि "अथापि वेदहेतुत्वाद्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा। काम भवन्तु सर्वज्ञा सार्वज्ञ मानुषस्य किम्॥" (वेद की रचना करने के कारण ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर सर्वज्ञ भले माने जायँ, परन्तु मनुष्य की सर्वज्ञता किस काम की है?), पर वेदान्त-सूत्र में बादरायणाचार्य (व्यास) ने ईश्वर शब्द से तो नहीं, किन्तु दूसरे शब्दों से उस विषय के जैमिनि महर्षि के विचारों को पूरा-पूरा व्यक्त किया है। देखिये निम्नाङ्कित सूत्रों का शाङ्करभाष्य—"साक्षादप्यविरोधम' जैमिनि (१।२।२८), "सम्पत्तेरिति जैमिनिस्तथाहि दर्शयति" (१।२।३१), "अन्यार्थन्तु जैमिनिप्रश्नव्याख्यानाभ्यामपि चैके।" (१।४।१८), "पर जैमिनिर्मुख्यत्वाद्" (४।३।१२), "ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्य" (४।४।५) इत्यादि।

ऊपर कहा ही गया है कि प्राचीन समय में ईश्वर मानने न मानने से आस्तिक-नास्तिक नहीं कहे जाते थे, किन्तु परलोक (पुनर्जन्म) मानने न मानने के कारण आस्तिक-नास्तिक शब्द का प्रयोग होता था। जैसा ऊपर पाणिनि-सूत्र (अस्ति नास्ति दिष्टं मति) के टीकाकारों की व्याख्या में तथा कठोपनिषद् के मन्त्रों द्वारा दिखाया गया है, और स्मृति-काल में वेद मानने न मानने के कारण भी आस्तिक और नास्तिक शब्द का व्यवहार था—ऐसा दिखाया गया है, पर दार्शनिक परिभाषा में तो असद्वादी और सद्वादी को ही क्रम से नास्तिक आस्तिक कहने की प्रथा प्रतीत होती है, जैसा उपर्युक्त पाणिनि-सूत्र का यदि केवल सूत्रार्थ लिया

जाय तो, अर्थ होगा कि जो 'अस्ति'—सद्वाद को माने वह आस्तिक और जो 'नास्ति'—असद्वाद को माने वह नास्तिक कहा जाता है।

छान्दोग्य श्रुति ने भी कहा है—"सदेव सोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम्"—"तद्धैयक आहुरसदेवेदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम्"—'तस्मादसतस्सज्जायते इति" (छा० ६।२।१)—अर्थात् उत्पत्ति से पहले यह ससार एक अद्वितीय सद्रूप (अस्तिरूप) में था, उसीको एक आचार्य कहते हैं कि यह ससार उत्पत्ति से पहले असत् (नास्ति) रूप में था, इसलिये असत् से सत् (अभाव से भाव) होता है। इस प्रकार श्रुति ने तो उसको आस्तिक कहा है जो ससार के मूल कारण सत् को स्वीकार करता है। और, जो असत (अभाव—शून्य) से उत्पन्न मानता है उसको नास्तिक कहा है। गीता में यही इस प्रकार कहा गया है—"असत्यमप्रतिष्ठन्ते जगदाहुरनीश्वरम्। अपरस्पर-सम्भूत किमन्यत्कामहेतुकम् ॥" इस नियम से तो सिवा बौद्ध दर्शन के अन्य सभी दर्शन, जो अस्तिवादी (भाव से ससार की उत्पत्ति माननेवाले) हैं, आस्तिक कहे जा सकते हैं, क्योंकि चार्वाक दर्शन भी चार पदार्थों की सत्ता (अस्तित्व) से ही सारे जगत् (जड-चेतन) का परिणाम मानता है।

शङ्कराचार्य ने भी अपने उपनिषद्भाष्य तथा शारीरक भाष्य मे आस्तिक और नास्तिक शब्द का ऐसा ही अर्थ किया है। वे नास्तिक, वैनाशिक इत्यादि शब्दों से बौद्धों का आह्वान करते हैं, क्योंकि वे ही लोग उत्पत्ति से पहले जगत् का अभाव मानते हैं—"तथाहि—एके वैनाशिका आहु वस्तुनिरूपयन्तोऽसत्सद्भाव मात्र × × सद्भावमात्र प्रागुत्पत्तेस्तत्त्व कथयन्ति बौद्धा (छा० शा० ६।२।१), सोऽर्द्ध वैनाशिक इति वैनाशिकत्वसाम्यात् सर्ववैनाशिकत्वसाम्यात् सर्ववैनाशिक राद्धान्तो नितरामपेक्षितव्य इति × × × तत्रैते त्रयो वादिनो भवन्ति केचित् सर्वास्तित्ववादिन केचित् विज्ञानास्तित्वमात्रवादिन अन्ये पुन सर्वशून्यत्ववादिन (वे० सू० शा० भा० २।२।२८)।"

वस्तुत देखा जाय तो बौद्ध दार्शनिक भी नास्तिवादी नहीं हैं, क्योंकि उनके भेदों में जो क्षणिक विज्ञानवादी योगाचार, क्षणिक बाह्यास्तित्ववादी वैभाषिक और बाह्यानुमेयत्ववादी सौत्रान्तिक के नाम से प्रसिद्ध हैं, वे तो अस्तिवादी ही हैं। एक जो सर्वशून्यत्ववादी माध्यमिक हैं उनके मत मे भी शून्यता का अर्थ अभाव नहीं माना गया है, किन्तु पदार्थ के स्वतन्त्र स्वरूप का अभाव माना गया है। जैसे—"तस्मादिह प्रतीत्य समुत्पन्नस्य स्वतन्त्रस्य स्वरूपविरहात् स्वतन्त्रस्य रूपरहितोऽर्थ शून्यतार्थ"—"न सर्वाभावाभावोऽर्थ × × तस्मादिह प्रतीत्य समुत्पन्न मायावत्"

(आर्यदेव, चतुर्थशतक, १४३७ कारिका की चन्द्रकीर्त्ति-व्याख्या)—अर्थात् "इसके लिये यहाँ प्रतीतिमात्र से उत्पन्न पदार्थों का स्वतन्त्र कोई स्वरूप न रहने के कारण शून्यता का अर्थ है वस्तु की स्वतन्त्र सत्ता का अभाव, न कि सब भावों का अभाव। इस कारण यहाँ प्रतीतिमात्र तक उत्पन्न होकर रहनेवाले पदार्थों को माया के समान समझना चाहिये, यह चन्द्रकीर्त्ति की व्याख्या का तात्पर्य है। तभी तो अमरसिंह ने अपने 'अमरकोष' में बुद्धदेव के नामों में 'अद्वयवादी' भी एक नाम लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि बौद्ध भी एक प्रकार के 'अद्वैतवादी' ही हैं, अन्तर केवल इतना ही है कि वे वेद या वेदान्त नहीं मानते जिससे स्मृति कालीन 'नास्तिको वेदनिन्दकः' नियमानुसार वे नास्तिक ठहरते हैं।

इसी प्रकार चार्वाक और जैन भी वेद की निन्दा करने के कारण ही पंडित-समाज में नास्तिक शब्द से प्रसिद्ध हो गये हैं। परन्तु, यदि उपनिषद् और पाणिनि-सूत्र के टीकाकारों के मतानुसार तथा वेदकालीन सर्वसाधारण में प्रसिद्ध 'पुनर्जन्म' को मानना न मानना ही 'आस्तिक-नास्तिक' शब्द का अर्थ लिया जाय तो बौद्ध भी परम आस्तिक सिद्ध होते हैं। उनके सिद्धान्तों में तो पुनर्जन्म की बड़ी मर्यादा है। स्वयं बुद्धदेव ने अपने अनेक पिछले जन्मों की घटनाओं का वर्णन किया है, जिनका उल्लेख ललितविस्तर, बोधिचर्या, बोधिसत्त्वावदानकल्पलता प्रभृति बौद्ध ग्रन्थों में विस्तृत रूप से है।

बौद्ध सम्प्रदाय में बुद्ध हो जानेवाले जीवों की पूर्वजन्म की अवस्था को बोधिसत्वावस्था कहते हैं और उस बुद्ध जीव को पूर्व जन्म में बोधिसत्व कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि बौद्ध सम्प्रदाय में पुनर्जन्म माना गया है। शान्तरक्षितकृत तत्त्वसंग्रह से यह पता चलता है कि वेद की निमित्त शाखा में बुद्धदेव को सर्वज्ञ माना है और उस शाखा को कुछ बौद्ध प्रामाण्य मानते थे। इससे यह सिद्ध है कि वेद को प्रामाण्य माननेवाले भी कुछ बौद्ध थे—जैसा लिखा पाया जाता है—"किन्तु वेदप्रमाणत्वं यदि युष्माभिरिष्यते। तत् किं भगवतो मूढैः सर्वज्ञत्वं न गम्यते ॥"—"निमित्तनाम्नि सर्वज्ञो भगवान् मुनिसत्तम। शाखान्तरेहि विस्पष्टं पठ्यते ब्राह्मणै-र्बुधैः।" अर्थात्—"यदि वेद को प्रमाण मानना आपको अभीष्ट है तो हे मूर्खो, भगवान् (बुद्ध) का सर्वज्ञत्व क्यों नहीं मानते? निमित्त नाम की दूसरी वेद-शाखा में ब्राह्मण पण्डितों के द्वारा भगवान् सर्वज्ञ कहा गया है, जो स्पष्ट है—अर्थात् अब वेद प्रामाण्य मानने पर भी सर्वज्ञत्व स्वीकार क्यों नहीं करते?" इत्यादि।

इसी प्रकार जैन दर्शन भी आस्तिक दर्शन सिद्ध हो जाता है, क्योंकि उस

दर्शन में भी पुनर्जन्म एवं नानायोनि प्रभृति बातें मानी गई हैं। हरिभद्र सूरि ने भी इसी अर्थ को मानकर बौद्ध, जैन, सांख्य, नैयायिक, वैशेषिक और पूर्वमीमांसकों को आस्तिक कहकर सम्बोधित किया है—"एवमास्तिकवादानां कृतं संक्षेपकीर्त्तनम्" "आस्तिकवादानां परलोकगतिपुण्यपापास्तित्ववादिनां, बौद्धनैयायिक-सांख्य-जैन-वैशेषिक-जैमिनीयानां संक्षेपकीर्त्तनम् कृतं इति मणिभद्रकृतविवृतिः।" अर्थात् "आस्तिकवाद वे हैं जिनमें परलोक के लिये पाप पुण्य की सत्ता मानी जाती है, जैसे बौद्ध, नैयायिक, सांख्य (कपिल), जैन, वैशेषिक, जैमिनीय (पूर्वमीमांसक) आदि—उन वादों का मैंने संक्षेप से वर्णन किया है।"—हरिभद्रसूरिकृत षड्दर्शन-समुच्चय की ७७ वीं कारिका पर मणिभद्र सूरि की व्याख्या।

पहले कहे हुए स्मृतिकालीन अर्थ में (अर्थात् वेद-विरोधी को नास्तिक कहते हैं) अथवा इसी अर्थ के आधार पर चार्वाक, जैन और बौद्ध भले ही नास्तिक कहे जायँ, किन्तु वर्त्तमानकालिक पौराणिक मत के ईश्वर न माननेवाले को नास्तिक कहने के अर्थ के आधार पर तो बौद्ध, चार्वाक, जैन, कणाद, गौतम, सांख्य-कार कपिल और मीमांसक जैमिनि—सभी नास्तिक कहे जा सकते हैं। इसलिये कणाद प्रभृति छः आस्तिक नाम से कहे जानेवाले दार्शनिक पुनर्जन्म मानने के कारण और वेद मान लेने के कारण आस्तिक शब्द से पुकारे जाते हैं, न कि ईश्वर मानने के कारण।

यहाँ इस बात पर भी ध्यान देना चाहिये कि इन छः दार्शनिकों में वस्तुतः दो ही दार्शनिक वैदिक हैं, चार बेचारे तो तार्किक दार्शनिक कहे जाते हैं—उनका तो वैदिक दार्शनिकों में प्रवेश ही नहीं है। इस बात को बड़े गर्व से शङ्कराचार्यजी ने द्वितीय अध्याय के तर्कपाद के ग्यारहवें और बारहवें सूत्र के भाष्य में—"नहि प्रधानवादी सर्वेषां तार्किकाणां मध्ये उत्तम इति सर्वैस्तार्किकैः परिगृहीतः येन तदीयं मतं सम्यग्ज्ञानमिति प्रतिपद्येमहि"—"वैदिकस्य दर्शनस्य प्रत्यासन्नत्वाद्गुरुतर्कबलोपेतत्वात्" (सभी नैयायिक तार्किक दार्शनिकों में प्रधानवादी ही उत्तम तार्किक है, ऐसा सभी तार्किकों ने मिलकर उसे सर्टिफिकेट नहीं दे दिया है जिससे हम वैदिक दार्शनिक ऐसा मान लें कि उसका कथन अच्छा है। सांख्यदर्शन वैदिक दर्शन के बहुत कुछ पास पड़ता है। और, बड़ी युक्तियों के बल पर वह खड़ा होता है, इसीसे हमने उसे पूर्व-पक्षियों में प्रधान स्थान दिया है) इत्यादि वाक्यों द्वारा, जहाँ कहीं भी मौका मिला है, सभी दार्शनिकों को वैदिक श्रेणी से निकाल-बाहर करने का ही प्रयत्न किया है।

ये नैयायिक प्रभृति भी अपने-अपने दर्शन को तर्क की कसौटी पर

अधिक कसने का प्रयत्न करते हैं। हाँ, जहाँ-कहीं अवसर पाकर श्रुति के अर्थों को केवल अपने मत के समर्थन मे खींच-खाँचकर लगा देते हैं। ये दार्शनिक सर्वदा श्रुति के अधीन नहीं चलते। सो भी आगे के टीकाकारों की ये जाते हैं, मूल सूत्रकारों के विषय मे तो ऊपर कहा ही गया है कि ये लोग प्रस्थान भेद से 'शाखारन्धती' न्याय के अनुसार वेद के दार्शनिक अङ्ग के एक-एक पहलू को लेकर अपने दर्शनों का उपन्यास करते हैं—जैसे, नैयायिक और वैशेषिक दोनों मिलकर आरम्भवाद का, कपिल और पतञ्जलि परिणामवाद का, चारों बौद्ध सघातवाद का एव वेदान्ती विवर्त्तवाद का (यथा हि—आरम्भवाद कणभक्षपक्ष सांख्यादिपक्ष परिणामवाद। सघातवादस्तु भदन्तपक्ष वेदान्तपक्षस्तु विवर्त्तवाद।—सर्वज्ञमुनि का सक्षेप शारीरक)।

सर्वथा वेद के दार्शनिक सिद्धान्तों को व्यक्त करने के लिये तो व्यास ही अग्रसर माने गये हैं। बल्कि देखा जाय तो 'दृष्टावदान श्रविक' 'सत्यविशुद्धि क्षयातिसयुक्त' इत्यादि युक्तियों से सांख्यवाले तो वेद के हेतुओं का भी तिरस्कार ही करते हैं। ऐसा ही—'त्रैगुण्यविषयावेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन—व्यासजी ने भी कहा है कि इन दोनों स्थानों पर 'आनुश्रविक' और 'वेद' शब्दों के अर्थ मे सकोच करके क्रमश कर्मकांडान्तर्गत वैदिक हेतुओं तथा कर्मकाड मात्र वेद के लिये कहा गया है, ऐसा आधुनिक विद्वान अर्थ करते हैं। पर वेद पर एक प्रकार से प्रहार तो हुआ ही चाहे, उसके किसी एक अङ्ग पर ही हुआ तो क्या ? अस्तु।

यह तो मानना ही पडेगा कि सभी दार्शनिक वेद के अक्षरश पोषक नहीं हैं। कुछ लोग तो वेद को केवल अपने तर्क की पुष्टि के लिये मान लेते हैं। चार्वाक के ऐसा "त्रयोवेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्त्तनिशाचरा" कहकर दिल्लगी नहीं उड़ाते, यही उनकी विशेषता है।

इन छ दार्शनिकों मे केवल बादरायणाचार्य और जैमिनि हैं जो वेद के मन्त्रपुष्पों मे अपने सूत्रों को पिरोकर, वैदिक आचार्यों की एक अच्छी सुग्रथित माला के रूप मे, अपने दर्शनों को उपस्थित करते हैं। यह बात दूसरी है कि वेद की ऋचाओं पर इन सभी दार्शनिकों का मत अवलम्बित है। जैसे, "द्यावाभूमिजनयन् देव एक आस्ते विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता"—इसपर आधुनिक नैयायिकों का कारणवाद अवलम्बित है। "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वी प्रजा सृजमानां सरूपा अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्य"—इसपर कपिल का प्रकृति-पुरुषवाद इत्यादि।

इसका कारण तो वेद की व्यापकता है (न कि इन दार्शनिकों का वेद मान लेना), जैसा सदानन्द ने अपने वेदान्तसार में चार्वाक-सिद्धान्त को भी "स वा एष पुरुषोऽन्नरस मय."—"तमेवानुविनश्यति न प्रेत्यसंज्ञास्ति" इत्यादि ऋचाओं का उद्धरण करके वैदिक सिद्ध कर दिया। इससे यह तो नहीं कहा जा सकता कि चार्वाक-सिद्धान्त भी वैदिक है। उसी प्रकार व्यास और जैमिनि के अतिरिक्त सभी वैशेषिक प्रभृति दार्शनिक केवल तार्किक हैं, इन्हें वैदिक दार्शनिक नहीं कह सकते, तथापि ये लोग आस्तिक दर्शनकार कहे जाते हैं। इसका कारण मेरी दृष्टि में तो यही ज्ञात होता है कि वेद, उपनिषद्, स्मृति पुराणादि संस्कृत के समस्त वाङ्मय-महार्णव में ओत-प्रोत एवं भारतीय संस्कृति का मेरुदंड पुनर्जन्मवाद या परलोक मानने के कारण ही ये सभी दार्शनिक आस्तिक कहे गये हैं और कहे जाने चाहिये। इस परिभाषा में केवल चार्वाक महाशय को छोड़कर—जो लोकायत (लोके आयत विस्तृत) नाम से प्रसिद्ध होकर साधारण जनता के प्राथमिक अज्ञान-कालिक भाव को व्यक्त करने मात्र के लिये अन्यान्य दर्शनों के पूर्वपक्षी रूप में प्रतिनिधि मात्र माने गये हैं, भारतीय संस्कृति में स्वरूपतः सम्प्रदाय-रूप में जिनकी कहीं सत्ता नहीं है, जिनका कोई सूत्रग्रन्थ भी नहीं है, पुराणों में जिनके दर्शन के प्रचार का कारण भी निन्दित ही बताया गया है—अन्य सभी, बौद्ध तथा जैन दार्शनिक भी, आस्तिक-कोटि में आ जाते हैं।

परस्पर एक दूसरे को नास्तिक कहना तो भारत की पराधीनावस्था में फैला है। मूलकाल के विद्वानों में परस्पर मतभेद होते हुए भी इस तरह वैर नहीं चलता था जैसा इधर के कालों में होने लगा है। देखिये, बौद्धों की ओर से व्यङ्ग्योक्ति है—"वेदे प्रामाण्यं कस्यचित्कर्तृवादः स्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेपः। सन्तापेहा पापहानाय चेति ध्वस्तप्रज्ञानां पञ्चलिङ्गानि जाड्ये"॥ (अर्थात्, वेद की प्रमाणता, किसी को—ईश्वर को—कर्त्ता मानना, जातिवाद का गर्व, पाप का प्रायश्चित्त इत्यादि मूर्खों के लक्षण हैं।)

इस लेख का निष्कर्ष यह है कि संक्षेप में आस्तिक-नास्तिक शब्दों के अर्थ में चार प्रकार के विचार संस्कृत वाङ्मय-महार्णव में पाये गये हैं—

(१) वेद-काल में, सर्वसाधारण में, प्रसिद्ध अर्थ—परलोक माननेवाला आस्तिक और न माननेवाला नास्तिक कहा जाता है।

(२) दार्शनिकों में जो जगत् का कारण सत् (भाव) मानता है वह आस्तिक और जो असत् (अभाव) को जगत् का कारण मानता है वह नास्तिक (अभाववादी) वैनाशिक कहा जाता है।

(३) मनु आदि स्मृतिकाल मे जो वेद को माने वह आस्तिक और जो न माने—उसकी निन्दा करे—वह नास्तिक कहा जाता है।

(४) आजकल जो ईश्वर—परमेश्वर—माने वह आस्तिक और जो न माने वह नास्तिक कहा जाता है।

यों सक्षेप मे आस्तिक-नास्तिक शब्दों की समीक्षा—दार्शनिक पद्धति से विचार करने पर—वेद से लेकर आधुनिक काल-पर्यन्त सस्कृत वाङ्मय-महार्णव-द्वारा सिद्ध होती है। इत्यलमतिप्रपञ्चेनेति विरम्यते।

सर्वे भवन्तु सुखिन. सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दु खमाग्भवेत् ॥

बिहार में न्याय और मीमांसा की उन्नति

श्रीउमेश मिश्र, एम्० ए०, डी लिट्०, काव्यतीर्थ, प्रयाग विश्वविद्यालय

भारतवर्ष मे प्राय बिहार ही एक ऐसा प्रदेश है जिसे ऋग्वेद के काल से लेकर अद्य-पर्यन्त, अविच्छिन्न रूप में, धार्मिक तथा आध्यात्मिक विचारों की रक्षा करने का गौरव प्राप्त है।

बिहार, गगाजी के प्रवाह के कारण, उत्तर और दक्षिण दो भागों मे विभक्त है। उत्तरीय भाग को 'मिथिला' और दक्षिणीय भाग को 'मगध' कहते हैं। इन दोनों भागों के इतिहास पृथक् रूप मे बड़े महत्त्व के हैं। ये दोनों भाग आधुनिक विद्वानों की दृष्टि मे दो विभिन्न सभ्यताओं के केन्द्र थे। प्राचीन वैदिक सभ्यता का केन्द्र मिथिला तथा अर्वाचीन बौद्ध सभ्यता का केन्द्र मगध था। इन दोनों के सम्बन्ध मे इतिहास के ग्रन्थों से हमे बहुत-सी बातें मालूम हैं और हो सकती हैं। अत उन बातों को छोड मैं बहुत ही सूक्ष्मरूप मे एक अन्य अज्ञात या अल्पज्ञात विषय का उल्लेख करता हूँ।

शतपथ ब्राह्मण (१–४–१–१०) मे विदेह के राजा माधव तथा उनके पुरोहित गहूगण गौतम की चर्चा है। राजा ने अपने पुरोहित के उद्योग से सदानीरा या गडकी नदी के किनारे यज्ञ किया। अन्य ब्राह्मणों ने भी अनेक यज्ञ उस प्रान्त मे किये, जिससे उस प्रान्त की भूमि बहुत ही उपजाऊ हो गई और राजा ने सदानीरा के पूर्वभाग मे अपना निवास बनाया।

राहूगण गौतम का उल्लेख ऋग्वेद (1 62 13, 1 78 2, 1 84 5, 1 85 11, 1V 4 11) मे हमे मिलता है। यही गौतम राजा जनक के

समकालीन थे, यह भी हमें शतपथ (ix 4, 3 20) में मिलता है। याज्ञवल्क्य के भी समकालीन ये थे, यह भी शतपथ (ix 4 3 20) में मिलता है। ये एक 'स्तोम' के भी ऋषि हैं, ऐसा शतपथ (xiii 5 1 1) और आश्वलायन श्रौतसूत्र (ix 5 6, 10 8) में मिलता है। अथर्ववेद (iv 29 6, xviii 3 16), बृहदारण्यक उपनिषद् (ii 2. 6) तथा षड्विंशब्राह्मण (1 38) में भी इनका नाम है।

इन सबसे यह ज्ञात होता है कि 'वैदिक काल' में भी वैदिक सभ्यता का एक केन्द्र मिथिला-प्रान्त था।

बाद को उपनिषदों में मैथिल ऋषि याज्ञवल्क्य आदि के, सूत्रों में गौतम आदि मैथिलों के, और उसके पीछे क्रमश धार्मिक तथा आध्यात्मिक ग्रन्थों के रचयिता के रूप में अनेक मैथिलों के नाम हमें मिलते हैं, जिससे यह अनुमान होता है कि वैदिक काल से लेकर अन्त-पर्यन्त मिथिला में वैदिक सभ्यता की धारा अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। इस सभ्यता के दो प्रधान अंग मालूम होते हैं—आध्यात्मिक विचार और तदनुकूल जीवन-निर्वाह करना तथा कर्मकाण्ड के अनुसार यज्ञों का करना और धार्मिक आचार-व्यवहार का पालन करना।

दूसरी तरफ, दक्षिण बिहार में बाद को बुद्ध के आविर्भाव से एक दूसरी सभ्यता जगमगा उठी। बुद्ध के उपदेशों से यह स्पष्ट मालूम होता है कि इस सभ्यता में कोई नवीनता या अपूर्वता नहीं थी। वैदिक सभ्यता ही के किसी अंश-विशेष को बुद्ध ने नवीन जीवन प्रदान किया था। उनके साक्षात् उपदेशों से यह किसी प्रकार नहीं मालूम होता कि बुद्ध वैदिक धर्म-कलाप के विरुद्ध थे। हाँ, उसके कुछ आगन्तुक दोषों को दूर करने का विचार भले ही उनके मन में रहा हो, परन्तु उनका साक्षात् कथन है ही बहुत अल्प, इसलिये इस सम्बन्ध में इस समय इतना ही कथन पर्याप्त है। परन्तु बाद को उनकी शिष्य परम्परा ने अपने आचरणों से वैदिक सभ्यता के विरुद्ध अपना एक नवीन दल स्थापित तो कर ही दिया। क्रमश ये लोग प्राचीन सभ्यता के विरुद्ध बोलने लगे और लोगों को बहकाने भी लगे। फलत एक ही प्रदेश में दो विरुद्ध सभ्यताओं के परस्पर आक्षेप से अशान्ति फैली। इस प्रकार प्राचीन और अर्वाचीन तथा परस्पर विरुद्ध सभ्यताओं का केन्द्र बिहार हो गया।

यों तो वैदिक सभ्यता में शान्ति प्रधान रूप से है—किसी प्रकार का उद्वेग नहीं, किसी का द्वेष नहीं, किसी प्रकार का चाञ्चल्य नहीं। नीरव प्रकृति के समान, व्यापक परमात्मा के समान तथा अनन्त आकाश के सदृश यह सभ्यता कर्त्तव्य मात्र

मे लोगों को प्रेरित करना अपना एक मात्र उद्देश्य रखती है। किन्तु, आत्मरक्षा के लिये, किसी से छेड़े जाने पर, उद्योग करना भी इसी सभ्यता का रूप है। इस लिये जब बौद्धों ने आक्षेपों का प्रहार इसके ऊपर करना आरम्भ किया, वर्णाश्रम धर्म के विरुद्ध लोगों को जब वे उपदेश देने लगे, यज्ञ की निन्दा करने लगे और धर्मप्राण वेदों को अप्रमाण बतलाने लगे तथा ईश्वर के अस्तित्व का खण्डन करने लगे तब स्वभावत शान्त प्रकृति के वैदिक सभ्यता वाले आत्मरक्षा के लिये उठ खड़े हुए।

सबसे प्रथम ये दोनों दल वाले शास्त्रीय तर्क वितर्क के सहारे लड़ने लगे। प्रमाणों के द्वारा अपने पक्ष का समर्थन तथा दूसरों का खण्डन करना इनका प्रधान कार्य था। प्रमाणों मे प्रत्यक्ष के कारण बहुत झंझट नहीं हुआ। शब्द-प्रमाण मे एकवाक्यता नहीं, अत इससे सिद्धान्त पर कोई नहीं पहुँच सकता था। इसलिये सबसे पूर्व इन्होंने 'तर्क' के द्वारा लड़ाई छेड़ दी। 'तर्क' के सहारे ये लोग अपने-अपने मत की स्थापना तथा दूसरे के मत का खण्डन करने लगे। ये सब तार्किक विचार हम इन दोनों मतावलम्बियों के ग्रन्थों मे पाते हैं।

सबसे प्रथम यह खण्डन-मण्डन 'आत्मा' तथा 'ईश्वर' के पृथक् अस्तित्व के सम्बन्ध मे रहा और बाद को 'वर्णाश्रम धर्म' के सम्बन्ध मे था। बौद्धों के पक्ष मे क्षणिकवाद से लेकर शून्यवाद तक तथा याज्ञिकी हिंसा को अधर्म साधन बतलाने के सम्बन्ध मे आक्षेप होता था। ये प्रधान विषय थे। इनके अतिरिक्त छोटे-छोटे विषय अनेक थे जहाँ दोनों के सिद्धान्तों मे भेद था। इस प्रकार तार्किक आलोचना इतनी बढ़ी कि मिथिला प्रान्त तर्कशास्त्र का एक प्रधान केन्द्र हो गया। एक से-एक धुरंधर नैयायिक यहाँ हुए और उन्होंने न्यायशास्त्र के ऊपर अनेक अपूर्व ग्रन्थ लिखे। न्यायशास्त्र के आदिसूत्रकार गौतम ऋषि यहीं हुए। और भी प्राचीन आचार्य क्रमश यहाँ उत्पन्न हुए। यह क्रम १० वीं शताब्दी तक इसी प्रकार आक्षेप-युक्त वाक्यों मे चलता रहा। उदयनाचार्य ने इन्हीं विषयों का विचार 'आत्मतत्त्वविवेक' और 'कुसुमाञ्जलि' नामक अपने अद्वितीय ग्रन्थों मे किया है। मालूम होता है कि उदयन के पश्चात् बौद्धों मे कोई विशिष्ट विद्वान् नहीं हुए।

इस प्रकार बौद्धों के संघर्ष से न्यायशास्त्र की उन्नति जो मिथिला मे हुई वह और कहीं न हुई, क्योंकि अन्यत्र यह संघर्ष नहीं था। यदि यह संघर्ष न होता तो प्राय मिथिला मे भी यह उन्नति कभी न होती। बाद को तो बङ्गाल और दक्षिण भारत मे मिथिला ही से न्यायशास्त्र की परिपाटी फैली। तथापि मिथिला के समान

अन्य किसी एक प्रदेश मे इतने अधिक न्याय के विद्वान् न हुए तथा न्यायशास्त्र के ग्रन्थों की रचना भी न हुई।

इसी प्रकार 'न्याय' के दूसरे अग की भी उन्नति इसी उत्तरीय बिहार (मिथिला) मे हुई। 'न्याय' शब्द पूर्व-मीमासा-शास्त्र के लिये भी बहुत प्राचीन काल से प्रयोग मे चला आ रहा है। पूर्व-मीमासा वस्तुत कोई दार्शनिक शास्त्र नहीं है। इसका उद्देश्य केवल 'धर्म'-निरूपण है। 'न्यायों' के द्वारा वैदिक मन्त्रों का यथार्थ अर्थ करना तथा उनका सद्विनियोग दिखाना पूर्वमीमासा का गौण उद्देश्य है। यज्ञ कराने की विधि इसी शास्त्र मे है। इसीलिये इस शास्त्र पर भी बौद्धों का पूर्ण प्रहार था। वैदिक कर्मकलाप को युक्तियों के द्वारा बौद्धों ने अधर्म-साधन बतलाने का प्रयत्न किया, स्वर्ग का निराकरण किया, वेदों के प्रत्येक अग पर आक्षेप किये। आस्तिकों की तरफ से पुन तर्क ही के सहारे उन सब बातों का समाधान किया गया। यज्ञ की महत्ता, धार्मिक विषयो मे वेदों का आधिपत्य आदि सभी बातों की स्थापना तर्क और 'न्याय' के सहारे की गई। यह भी सघर्ष ही का फल था कि पूर्वमीमासा की उन्नति इसी उत्तरीय बिहार मे इस प्रकार हुई कि कहा जाता है, मिथिलेश महाराज शिवसिंह के भाई पद्मसिंह की रानी विश्वासदेवी के समय मे एक यज्ञ में निमन्त्रित केवल मीमासक पडितों की सख्या १४०० थी।

इन दोनों शास्त्रों की उन्नति के प्रमाण हमे इनके ग्रन्थों ही मे मिलते हैं। यह धारणा अब और भी पुष्ट हो रही है। श्रीराहुल साकृत्यायनजी के उद्योग से तिब्बत से लाये हुए ग्रन्थों के क्रमिक प्रकाशन से और उनके अध्ययन से आस्तिक-नास्तिक विचार धाराओं का पता स्पष्ट मालूम हो जाता है कि पारस्परिक ईर्ष्या ने किस प्रकार बौद्ध तथा हिन्दू न्यायशास्त्र को उन्नत शिखर तक पहुँचाया।

एक और भी ध्यान देने योग्य विषय यह है कि पूर्व मे आध्यात्मिक विद्या का केन्द्र होते हुए भी मिथिला-प्रान्त ने बाद को वेदान्त शास्त्र मे वैसी विशेष योग्यता नहीं दिखाई जैसी न्याय और मीमासा मे। बहुत विरल मैथिलों ने वेदान्त शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे। इसका भी कारण यही है कि बाध्य होकर मैथिलों को न्याय और पूर्व-मीमासा ही को लेकर अपने अस्तित्व की रक्षा करनी पडी। और, इन्हीं दोनों शास्त्रों पर विशेष रूप से वेदान्त-शास्त्र निर्भर है। यदि मूल की रक्षा होगी तो सभी सुरक्षित रहेंगे, ऐसा विचारकर मैथिलों ने अध्यात्म विद्या के मूलभूत न्याय और पूर्वमीमासा की रक्षा की।

मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि इन दोनों मतों का यदि इस प्रकार संघर्ष न होता, तो प्राय मिथिला में इन दोनों शास्त्रों की इतनी उन्नति न होती। इसलिये यद्यपि बौद्धों ने वैदिक धर्म पर आघात कर सनातन-धर्मावलम्बियों का विरोध किया तथापि उक्त उपकार के लिये बौद्धों के प्रति सनातनधर्मी ऋणी भी कहे जा सकते हैं।

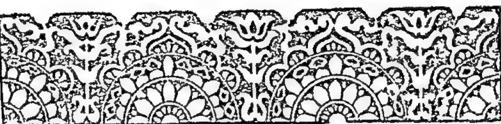

बिहारोद्भूत जैन-दर्शन का समन्वयवाद

प्रोफेसर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, एम० ए० (त्रितय), पटना-कालिज

प्राक्कथन

पूर्व ख्रिस्ताब्द की छठी और पाँचवीं शताब्दियों में बिहार ने दो लोकोत्तर विभूतियों को जन्म दिया जिन्होंने विचार-संसार में क्रान्ति कर दी। एक ओर तो वैशाली के वर्द्धमान महावीर ने जैनधर्म की स्थापना की और दूसरी ओर कपिलवस्तु के सिद्धार्थ गौतम ने उस महान् बौद्धधर्म को जन्म दिया जिसकी किरणें बिहार के विहारों से फूटकर विश्व-भूमण्डल के सुदूरतम क्षितिज तक फैल गईं। यद्यपि बिहार को इन दोनों धर्मों के उद्गम-स्थान होने का गौरव प्राप्त है, तथापि आश्चर्य यह है कि आज दोनों ही अपने उद्गम-स्थान से निर्वासित-प्राय हो चुके हैं।

अवतरण

जैनियों के अनुसार जैनधर्म शाश्वत है और कल्प-कल्प में 'तीर्थङ्करों' द्वारा इसका प्रचार और प्रसार होता रहा है। वर्त्तमान कल्प में प्रथम तीर्थङ्कर थे ऋषभदेव और ऋषभदेव के बाद क्रम से चौबीसवें तीर्थङ्कर हुए वर्द्धमान महावीर, जिनका जन्म छठी पूर्व विक्रमीय में, पटने से लगभग २७ मील उत्तर, वैशाली (वर्त्तमान 'बसाढ़', मुजफ्फरपुर) के क्षत्रिय-कुल में हुआ था। पिता का नाम था सिद्धार्थ और माता का त्रिशला।

तीस वर्ष की अवस्था मे गृहस्थ महावीर को विराग हुआ। तदनन्तर बारह वर्षों बाद उन्हें कैवल्य (सबोधि) उपलब्ध हुआ। इसके बाद और बयालीस वर्षों तक प्रचार-कार्य करने के अनन्तर ४८० पू० वि० मे उन्होंने मोक्षपद प्राप्त किया।

ध्यान देने की बात है कि पॉचवीं-छठी पृ० वि० शताब्दियो में बौद्ध और जैन धर्मों के द्वारा जो महान् क्रान्ति हुई उसके मूल मे दो क्षत्रिय-कुमार थे। यह घटना ब्राह्मण-प्रधान ब्राह्मण-धर्म के प्रति उस युग के विप्लव का प्रतीक है। बौद्ध और जैन धर्म पूर्वकालीन यागप्रधान ब्राह्मण-धर्म के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया थे। इस प्रतिक्रिया का पूर्वरूप हम उपनिषदों के सूक्ष्म ब्रह्मवाद से ही पाते हैं।

उपनिषदों के अध्ययन से यही अनुमान होता है कि उस समय अध्यात्म-विद्या के क्षेत्र मे क्षत्रियो की प्रधानता स्थापित हो चुकी थी। उनमें पचीसों ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि 'काशी' और 'विदेह' अध्यात्म-विद्या के दो प्रधान क्षेत्र थे और इन प्रदेशो के राजा—अजातशत्रु और 'जनक'—बहुत बड़े विद्वान् और विद्वानों के प्रेमी थे तथा इनकी राजसभा मे कुरु, पचाल, मत्स्य, अग आदि देशों के उद्भट दार्शनिक एव तार्किक आते, शास्त्रार्थ करते तथा अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाकर पुरस्कार पाते थे।

जिस प्रकार ब्राह्मणग्रन्थीय ब्राह्मण-धर्म, उपनिषदीय ब्राह्मण-धर्म तथा जैन-बौद्धधर्मों के क्रमिक विकास मे क्षत्रियों की उत्तरोत्तर प्रधानता के लक्षण मिलते हैं उसी प्रकार उसमे हम सिद्धान्तों की अधिकाधिक सूक्ष्मरूपता का भी परिचय पाते हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थों का वह कर्म-प्रधान स्थूल याग-धर्म, जो उपनिषदो के ज्ञान प्रधान ब्रह्मवाद और आत्मवाद मे सूक्ष्मतर हो चुका था, बौद्धों के शून्यवाद मे सूक्ष्मता की चरम सीमा को पहुँच गया।

दार्शनिक विचारो के इस क्रमिक इतिहास मे जैनधर्म का एक अपना महत्त्व है—एक अपनी विशेषता है। जैनधर्म ने उपनिषदीय सत्तात्मक ब्रह्मवाद तथा बौद्धीय असत्तात्मक क्षणिकवाद या शून्यवाद के सम्मुख एक मध्यम मार्ग (*Via media*) प्रस्तुत करने की चेष्टा की। जैनधर्म का यह समन्वयवाद कई दृष्टियों से स्पष्ट किया जा सकता है—

[क] अनेकान्तवाद—महावीर ने जब अपनी अन्तर्दृष्टियाँ दौड़ाई तब देखा कि उपनिषदों और बौद्धों के विचार परस्पर-विरोधी ध्रुवों पर थे। उपनिषदें 'अयमात्मा ब्रह्म' अथवा 'सर्वं खल्विद ब्रह्म'-जैसे महावाक्यों द्वारा यह प्रमाणित करती थीं कि सारा विश्व ब्रह्म-रूप में 'सत्' है—उसकी सत्ता असन्दिग्ध है। नाम-

रूपों का नानात्व भले ही असत्य हो (नेह नानास्ति किञ्चन), किन्तु ब्रह्म की सत्ता निर्विवाद है। उधर बौद्ध दर्शन के भावना-चतुष्टय ने घोषित कर रक्खा था कि—

१ सर्वं क्षणिकम

२ सर्वं दुःखम्

३ सर्वं स्वलक्षणम

४ सर्वं शून्यम्

तात्पर्य यह कि सत्ता सत्य नहीं है, क्षणिकता ही सत्य है। पल-पल पर पलटनेवाले नाम रूप-संसार के पीछे, अथवा आधारभूत किसी पर्दानशीन सत्ता की कल्पना, बौद्धों के अनुसार, युक्तिसंगत नहीं है।

ऐसी विषम परिस्थिति में जैनियों ने दोनों का खंडन भी किया, मंडन भी। बौद्धों के विरुद्ध यह प्रबल तर्क पेश किया गया कि यदि क-१, क-२, क ३, क-४ की सन्तान और एकत्व का साधक 'क' नहीं है, यदि बालक राम, युवा राम और वृद्ध राम एक दूसरे से पृथक् हैं, तो फिर एक ही मनुष्य की भिन्न अवस्थाओं में किये गये एक ही मनुष्य के पाप-पुण्यों का सिलसिला और निपटारा कैसे हो सकता है? क-१ के कर्मों का भागी क ४ क्योंकर होगा? वास्तव में क्षणिकवाद और कर्म सिद्धान्त दोनों बेमेल बैठते हैं। न क्षणिकवाद का मानने-वाला कर्म सिद्धान्त को निभा सकता है और न कर्म सिद्धान्तवादी क्षणिकवाद को। 'महासाहसिक' * बौद्ध धर्म की यह असंगति अपरिहार्य है।

"दुहुँ किमि इक सँग होहि भुआलू।
हँसवि ठठाइ फुलाइवि गालू॥"

उपनिषदों ने भी जो ब्रह्म की एकान्त, अव्यय सत्यता का प्रतिपादन किया है वह असंगत है, क्योंकि संसार में सभी पदार्थ उत्पन्न और विनष्ट होते हैं, उत्पत्ति और विनाश का यही क्रम सनातन है। उत्पाद और व्यय के इस ध्रुवक्रम ही का नाम सत्ता है। किसी भी पदार्थ को हम एकान्त सत्य (absolute) नहीं कह सकते। माना कि ब्रह्म एकान्त सत्य है, घट मिथ्या है, सत्याभास है। घट भी तत्त्वतः ब्रह्म ही है। किन्तु यदि यह भावना तर्क-रूप (Syllogism) में रक्खी जाय तो यों होगा—

* कृतप्रणाशाकृतकर्मभोगभवप्रमोक्षस्मृतिभङ्गदोषान् ।
उपेक्ष्य साक्षात् क्षणभङ्गमिच्छन्नहो महासाहसिकः परोऽसौ ॥ —सर्वदर्शन संग्रह

यह घट (तत्त्वत) ग्रह्य है।

यह घट (आभासत) ग्रह्य नहीं है।

अत यह घट ग्रह्य है भी, नहीं भी है*। किन्तु ऐसा वाक्य व्याघात नियम (Law of contradiction) के अनुसार असिद्ध है।

'षड्दर्शनसमुच्चय'† की टीका में एकान्त सत्ता अथवा नित्यता का खंडन करते हुए मणिभद्र सूरि ने लिखा है—"कोई वस्तु एकान्त नित्य नहीं हो सकती, क्योंकि 'वस्तु' का लक्षण है 'अर्थक्रियाकारित्व' और 'क्रियाकारित्व' का अर्थ ही है गतिशीलता और क्रमिकता। किन्तु जो नित्य है वह शाश्वत, अक्रम और एक-रूप है। अत यदि वस्तु नित्य है, तो उसमें क्रमिकता नहीं, और क्रमिकता नहीं तो अर्थक्रियाकारित्व नहीं, और अर्थक्रियाकारित्व नहीं तो वह वस्तु ही नहीं।" तात्पर्य यह है कि जो नित्य है वह वस्तु नहीं है, और जो वस्तु है वह नित्य नहीं है ‡। उसी प्रकार सामान्य और विशेष में भी व्याघात है। भला कोई भी गोत्व-विरहित गोव्यक्ति अथवा गोव्यक्ति-विच्छिन्न गोत्व का उपपादन कर सकता है? कभी नहीं। हरएक विशिष्ट गाय अपनी गोत्व-जाति की प्रतिनिधि है, और हरएक गोत्व-जाति की कल्पना विशिष्ट गौ से अनिवार्य रूप से संसृष्ट है। अत एकमात्र सामान्य या एकमात्र विशेष की भावना अन्धगजीयता × है।

अत जैनियों ने कहा कि इस समस्या का सुलझाव तभी होगा जब हम प्रत्येक वस्तु को 'है' और 'नहीं' दोनों कोटियों में रक्खें, एकान्त 'हाँ' या एकान्त 'ना' न मानकर प्रत्येक को 'अनेकान्त' रूप से 'हाँ' और 'ना' दोनों ही मानें।

* तुलना कीजिये—घटोऽस्तीति न वक्तव्य सन्नेव हि यतो घट । नास्तीत्यपि न वक्तव्य विरोधात् सदसत्वयो ॥

† रचयिता—हरिभद्र सूरि और टीकाकार मणिभद्र सूरि।

‡ तथाहि वस्तुनस्तावदर्थक्रियाकारित्व लक्षणम्। तच्च नित्यैकान्ते न घटते। अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपो हि नित्य । —षड्दर्शनसमुच्चय

× नहि कश्चित् कदाचित् केनचित् किञ्चित् सामान्य विशेष विनाकृतमनुभूयते, विशेषो वा तद्विनाकृत । 'केवल दुर्णयबलप्रभावितप्रबलमतिव्यामोहादे-कमपलप्यान्यतरद्व्यवस्थापयन्ति कुमतय । सोऽयमन्धगजन्याय । ** * **

निर्विशेष हि सामान्य भवेत् खरविषाणवत्।
सामान्यरहितत्वेन विशेषास्तद्वदेव हि ॥ —षड्दर्शनसमुच्चय और टीका

यह घट है, किन्तु पट नहीं है*। अर्थात् दृष्टि-भेद से घट भी है और नहीं भी है†। एक दूसरा निदर्शन 'अन्धों का हाथी' वाली किंवदन्ती (जिसे हमने 'अधगजीयता' नाम दिया है) के द्वारा दिया जा सकता है। एक ही हाथी एक अंधे के लिये सूँड-जैसा गाजरनुमा था, दूसरे के लिये दुम-जैसा छड़ीनुमा और तीसरे के लिये कान-जैसा पापड़नुमा।

सच पूछिये तो हाथी गाजरनुमा, छड़ीनुमा और पापड़नुमा है भी और नहीं भी है; विश्लेषणात्मक दृष्टि से तो है, किन्तु संश्लेषणात्मक दृष्टि से नहीं है।

जैनियों ने कहा कि वेदान्तियों का 'सत्य' और बौद्धों का 'शून्य' दोनों ही 'अन्धों का हाथी' हैं। आवश्यकता है व्यापक और उदार दृष्टि की—अनेकान्तवाद की—जिसमें एक नहीं, अनेकानेक दृष्टिकोणों की गुंजायश हो।

दृष्टिकोणों का पारिभाषिक नाम जैनियों ने 'नय' दिया और वेदान्त तथा बौद्ध का 'नयाभास' कहकर उसकी उपेक्षा की। 'नैगमनय', 'संग्रहनय', 'व्यवहारनय', 'पर्यायनय'‡ आदि नामों की कल्पना की गई और इन्हें नयाभासों के उपभेद मानकर तत्कालीन प्रचलित मतमतान्तरों की अपूर्णता और एकांगिता सिद्ध की गई।

[ख] स्याद्वाद—तर्क के क्षेत्र में विकसित इस 'नयवाद' को 'स्याद्वाद' का नाम दिया गया, क्योंकि जब हम किसी भी पदार्थ को निश्चित रूप से सत्य अथवा असत्य, 'हाँ' अथवा 'नहीं' नहीं कह सकते, तो फिर एक ही गति है—'शायद' (स्यात्)। घड़ा शायद है भी, शायद नहीं भी है, शायद है भी, नहीं भी—दोनों शायद अनिर्वचनीय हैं इत्यादि। तात्पर्य यह कि किसी भी पदार्थ के सम्बन्ध में कम-से-कम सात तरह—'भंगियों'—से अपना विचार प्रकट किया जा सकता है। इस 'सप्तभंगिन्याय' के सात पहलू ये हैं—

१ शायद हो,
२ शायद न हो,
३ शायद हो भी, नहीं भी हो,

* सर्वमस्ति स्वरूपेण पररूपेण नास्ति च। —षड्दर्शनसमुच्चय

† किं वस्त्वस्तीत्यादि पर्यनुयोगे कथञ्चिदस्तीत्यादिप्रतिवचनसम्भवे ते वादिनः सर्वे निर्विषणाः। —सर्वदर्शनसंग्रह

‡ क्या डेढ़ हजार वर्षों के बाद जब शंकराचार्य ने पारमार्थिक, व्यावहारिक और प्रातिभासिक सत्ताओं की कल्पना की, तब उनकी इस कल्पना में हम तीर्थंकर महावीर का ऋण नहीं स्वीकार करेंगे ? सम्भव है, शांकर वेदान्त ने इस त्रिकोटिक सत्ता की सूझ जैनियों से ही ली हो।

४ शायद अवक्तव्य हो,

५ शायद हो भी, अवक्तव्य भी हो,

६ शायद नहीं भी हो, अवक्तव्य भी हो,

७ शायद हो भी, नहीं भी हो, अवक्तव्य भी हो।*

[ग] अज्ञानवाद—इस स्याद्वाद का अनिवार्य परिणाम हुआ **अज्ञानवाद** (Scepticism)। अज्ञान, न कि ज्ञान, मोक्ष का साधन समझा गया। और, इस अज्ञानवाद के सप्तभंगियों और नवतत्त्वों† के सहारे ६७ अपवाद माने गये। इस संख्या की व्याख्या इस प्रकार होगी—सप्तभंगियों की दृष्टि से नव तत्त्वों में प्रत्येक के हिसाब से सात भेद होंगे—उदाहरणतः जीव के हिसाब से—

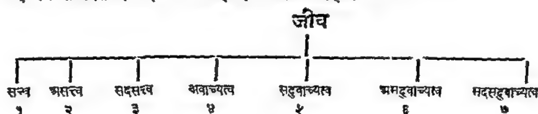

इस क्रम से, प्रकारतः नव तत्त्वों के हिसाब से, ९×७=६३ उपभेद हुए। किन्तु सत्त्व, असत्त्व, सदसत्त्व और अवाच्यत्व—इन चार दृष्टियों से नव तत्त्वों की उत्पत्ति का खयाल करते हुए चार और उपभेद हुए। इस तरह अज्ञानवाद के ६३+४= ६७ उपभेद हुए।‡

* अत्र सर्वत्र सप्तभङ्गिनयाख्यं न्यायमवतारयन्ति जैनाः—स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति च नास्ति च, स्यादवक्तव्यः, स्यादस्ति चावक्तव्यः, स्यान्नास्ति चावक्तव्यः, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्य इति। —सर्वदर्शनसंग्रह

† प्रायः जैनियों के अनुसार तत्वों की संख्या नव है—

जीव, अजीव, आस्रव, पाप, पुण्य, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष। (जीवाजीवौ तथा पुण्य-पापमास्रवसंवरौ। बन्धश्च निर्जरामोक्षौ नवतत्त्वानि तन्मते।) —षड्दर्शनसमुच्चय

‡ Thus we have these seven schools under the first 'principle' and extending the same classification to each of the other eight 'principles' we have nine times seven' i e , sixty-three schools These refer to the nature of the nine 'principles' severally, but as for their origin in general four other schools are possible, viz , sattva, asattva, sad asattva, and avachyatva—the other three forms of the seven possible variations are not used in this case as they are used only in respect of the several parts of a thing only after its origin has taken place which is not the case here The last four added to the previous sixty-three give us sixty-seven schools under Ajnanavada

—*Schools and Sects in Jain Literature* Amulyachandra Sen, page 36

उपरिवर्णित 'स्याद्वाद' अथवा 'अज्ञानवाद' की तह में भी जैनियों की समन्वय भावना ही काम करती है। 'यह भी ठीक'—'वह भी ठीक'—मनोवृत्ति जैनदर्शन के प्राय प्रत्येक अंग में परिलक्षित है। समन्वयवादी के अज्ञानवादी होने की प्रवृत्ति भी स्वाभाविक ही है, क्योंकि समन्वयवादी का अपना विशिष्ट सिद्धान्त प्राय नहीं होता और विशिष्ट सिद्धान्त के अभाव का ही तो कटुतर नाम है 'अज्ञान'। समन्वयवाद आरम्भ में रुचिकर भले ही हो, किन्तु कालक्रम से उसका ह्रास अनिवार्य है। उसमें उस व्यक्तित्व, उस प्रेरणा (drive) की कमी होती है जो किसी सिद्धान्त की जीवनशक्ति को संघर्ष-प्रतिसंघर्ष द्वारा अक्षुण्ण रखे। ऐसी दशा में यदि बौद्धमत ने कालक्रम से जैनमत को होड़ में हरा दिया तो आश्चर्य की कोई बात नहीं। जैनमत की 'भलमनसी' ही उसकी पराजय का कारण बनी। आज जैनमतानुयायी अधिकाधिक लगभग ग्यारह लाख ही हैं—वह भी केवल भारत में, और भारत में भी श्वेताम्बर मुख्यत गुजरात और पश्चिमी राजस्थान तथा दिगम्बर मुख्यत दक्षिण में।

[घ] कर्मसिद्धान्त—हिन्दू, बौद्ध और जैन—तीनों के कर्मसिद्धान्त लगभग समान ही हैं। प्रत्येक ने कुछ पारिभाषिक शब्दों के समावेश द्वारा विशिष्ट रूप देने की चेष्टा की है। जैनियों के अनुसार जीव निसर्गत अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य का भागी है। किन्तु कर्म के परमाणु, जीव के काषाय (वासनाओं) से मिलकर और उसके साथ चिपककर, जीव में आ घुसते हैं (आस्रवन्ति)। कर्म के इस आ घुसने (आ + स्रव) को 'आस्रव' कहते हैं। किन्तु हममें जो 'संवर' (अर्थात् तप और सच्चरित्रता) है (जिसकी विस्तृत व्याख्याएँ जैनमत में की गई हैं) वह इस आस्रव को रुक देने की चेष्टा करता है (सं + वृणोतीति संवर)। परिणाम होता है 'निर्जर'—अर्जित कर्मों का क्षय और फलत मोक्ष।*

इस कर्म सिद्धान्त में जैनियों ने ज्ञान पर उतना ध्यान नहीं दिया जितना चारित्र पर—जीवन के व्यावहारिक नियमों पर। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का 'रत्नत्रय' मोक्ष का साधन बताया गया†। इसे हम जैनियों का 'व्यवहारवाद' (pragmatism) भी कह सकते हैं। व्यवहारवाद और समन्वय-

* अभिनवकर्माभावान्निर्जराहेतुसान्निध्येनार्जितस्य कर्मणो निरसनादात्यन्तिककर्ममोक्षण मोक्ष । —सर्वदर्शनसंग्रह

† सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। —सर्वदर्शनसंग्रह

४ शायद अवक्तव्य हो,
५ शायद हो भी, अवक्तव्य भी हो,
६ शायद नहीं भी हो, अवक्तव्य भी हो,
७ शायद हो भी, नहीं भी हो, अवक्तव्य भी हो।*

[ग] अज्ञानवाद—इस स्याद्वाद का अनिवार्य परिणाम हुआ **अज्ञानवाद** (Scepticism)। अज्ञान, न कि ज्ञान, मोक्ष का साधन समझा गया। और, इस अज्ञानवाद के सप्तभंगियों और नवतत्त्वों† के सहारे ६७ अपवाद माने गये। इस सख्या की व्याख्या इस प्रकार होगी—सप्तभंगियों की दृष्टि से नव तत्त्वों मे प्रत्येक के हिसाब से सात भेद होंगे—उदाहरणत जीव के हिसाब से—

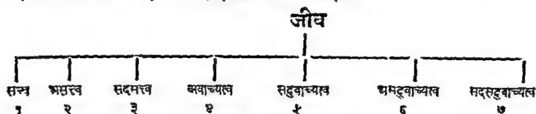

इस क्रम से, प्रकारत नव तत्त्वो के हिसाब से, ९×७=६३ उपभेद हुए। किन्तु सत्त्व, असत्त्व, सदसत्त्व और अवाच्यत्व—इन चार दृष्टियों से नव तत्त्वों की उत्पत्ति का खयाल करते हुए चार और उपभेद हुए। इस तरह अज्ञानवाद के ६३+४= ६७ उपभेद हुए।‡

* अत्र सर्वत्र सप्तभङ्गिनयाख्य न्यायमवतारयन्ति जैना —स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति च नास्ति च, स्यादवक्तव्य, स्यादस्ति चावक्तव्य, स्यान्नास्ति चावक्तव्य, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्य इति। —सर्वदर्शनसग्रह

† प्राय जैनियों के अनुसार तत्त्वों की संख्या नव है—

जीव, अजीव, आस्रव, पाप, पुण्य, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष। (जीवाजीवौ तथा पुण्यपापमास्रवसंवरौ। बन्धश्च निर्जरामोक्षौ नवतत्त्वानि तन्मते।) —षड्दर्शनसमुच्चय

‡ Thus we have these seven schools under the first 'principle' and extending the same classification to each of the other eight 'principles' we have nine times seven' i e , sixty-three schools These refer to the nature of the nine 'principles' severally, but as for their origin in general four other schools are possible, viz , sattva, asattva, sad asattva, and avachyatva—the other three forms of the seven possible variations are not used in this case as they are used only in respect of the several parts of a thing only after its origin has taken place which is not the case here The last four added to the previous sixty-three give us sixty seven schools under Ajnanavada

—*Schools and Sects in Jain Literature* *Amulyachandra Sen, page 36*

लिये ईश्वर-रूपी कारण की आवश्यकता है, तो उत्तर यह होगा कि चेतन ही क्यों, अचेतन प्रकृति ही क्यों न कारण मानी जाय ? अच्छा, यदि चेतन कारण माना भी जाय, तो प्रश्न होगा कि वह अशरीर है या सशरीर ? यदि अशरीर कारण कार्य कर सकता है, तो अशरीर कुम्भकार घट क्यों नहीं बना लेता ? फिर आखिर ईश्वर ने सृष्टि क्यों रची—मन की मौज या कर्मसिद्धान्त का कायल होकर ? यदि मन की मौज, तो ईश्वर निरकुश हुआ, यदि कार्य, कारण अथवा कर्म और उसके भोग से कायल होकर, तो परवश और परतत्र हुआ। अत चेतन सृष्टिकर्त्ता ईश्वर की सिद्धि आवश्यक है, ईश्वरवाद के सभी उद्देश्यों की सिद्धि 'अदृष्ट' (प्रकृति के अटल नियम) की कल्पना से ही हो सकती है।

किन्तु निरीश्वरवादी होते हुए भी योग ने जिस प्रकार 'पुरुष विशेष' को ईश्वर का स्थानापन्न बनाया उसी प्रकार जैनदर्शन ने भी अपने तीर्थङ्करों को ईश्वर का स्थानापन्न बनाया। ईश्वर अथवा अवतार के प्रति हिन्दुओं की जैसी भावना है, जैनियों की अपने तीर्थङ्करो के प्रति भी वही भावना है। 'जिनेन्द्र' या 'अर्हन्' को हम जैनियों का ईश्वर समझ सकते हैं, क्योंकि इनके लिये 'सर्वज्ञ', 'देव', 'परमेश्वर' आदि विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं* और इनकी मूर्त्तियों की पूजा उसी भक्ति भावना से होती है जिससे हिन्दू-देवी देवताओं की। हिन्दुओं के चौबीस अवतारों और जैनियों के चौबीस तीर्थङ्करों की कल्पना तथा उनकी सख्या को देखकर भी हम जैनमत की समन्वयवादी प्रवृत्ति का परिचय पा सकते हैं।

[च] उपसहार—जिसे हमने ऊपर की पक्तियों मे समन्वयवाद कहा है उस मध्यम मार्ग का आश्रयण महावीर ने निष्पक्ष परीक्षण के नाम पर किया था। षड्दर्शनसमुच्चय के आरभ में 'अपर दर्शनों' की दकियानूसी मनोवृत्ति की भर्त्सना करते हुए कहा गया है कि और दर्शनों ने पुराण, मनुस्मृति, वेद और

---

* तु०—षड्दर्शनसमुच्चय—

जिनेन्द्रो देवता तत्र रागद्वेषविवर्जित ।
कृत्स्नकर्मक्षयं कृत्वा सम्प्राप्त परम पदम् ॥

* * *

सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजित ।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वर ॥

—सर्वदर्शन-सग्रह

वाद प्राय साथ-साथ चलते ही हैं। समन्वयवादी का यह ध्यान हमेशा रहेगा कि वह लोकसग्रही हो—लोक-व्यवहार का विरोध तीव्ररूप से करना उसे नहीं भाता। जैनियों ने चारित्र के जो नियम निर्धारित किये उनमे और पातञ्जल योगदर्शन के साधनों मे कहीं-कहीं बहुत समानता है। उदाहरणत —अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—जो पञ्चकोटिक 'यम' योगदर्शन ने बताये हैं, उन्हें जैनमत ने हूबहू ले लिया है और उनमें समिति, गुप्ति, धर्म, परिषहजय, अनुप्रेक्षा आदि अनेकानेक चारित्र के अगों को जोड दिया है। अहिंसा को तो अत्यधिक प्रधानता दे दी गई है। पशु-बलि-प्रधान ब्राह्मणीय यागवाद से ऊबी भारतीय जनता को जैनो और बौद्धों का अहिंसा-सिद्धान्त खूब जँचा।

[ङ] **अनीश्वरवाद एवं तीर्थङ्करवाद**—जैनियो के व्यवहारवाद (Pragmatism) का परिचय उनके द्वारा स्वीकृत प्रमाणों से भी मिलता है। वे मुख्यत प्रत्यक्ष और गौणत अनुमान—दो ही प्रमाण स्वीकार करते हैं। प्रत्यक्ष मे भी निर्विकल्प प्रत्यक्ष को वे नहीं मानते। ये सभी बातें यह सिद्ध करती हैं कि जैनियों का दृष्टिकोण मुख्यत व्यवहारवादी रहा है।

ऊपर की पक्तियों में यह दिखलाया गया है कि वेदों और ब्राह्मण-ग्रन्थों की स्थूल बहुदेवभावना क्रमश उपनिषदों के सूक्ष्म ब्रह्मवाद से छनकर बौद्धों के शून्य-वाद की ओर अग्रसर हुई। उपनिषत्काल और बौद्ध-जैन काल के बीच मे षड्दर्शनों की भी कल्पनाएँ हो चुकी थीं। इनमे साख्य-योग को हम अनीश्वरवादी कह सकते हैं। साख्यदर्शन में सृष्टिकर्त्ता-हर्त्ता ईश्वर की आवश्यकता नहीं है और योग ने भी साख्य के 'पुरुष' की भावना को अपनाकर 'पुरुष विशेष' को ही ईश्वर की उपाधि दी *। इन प्रमाणों से कम-से-कम इतना सिद्ध है कि वैदिक हिन्दू-दर्शनों मे पहले से ही निरीश्वरवाद की विचारधारा प्रवाहित हो चुकी थी। अत यह कहना या समझना कि बौद्धों और जैनियों से नास्तिकता या निरीश्वरवाद का प्रवाह चला—भ्रान्त है। यदि जनता में निरीश्वरवाद की लहर पहले से ही न फैली होती तो बौद्ध-जैन निरीश्वर-भावना को प्रोत्साहन ही न मिलता।

जैनियों के अनुसार कर्मसिद्धान्त और प्राकृतिक तथा सदाचार-सम्बन्धी नियमों के अतिरिक्त एक चेतन पौरुषेय ईश्वर की कल्पना अनावश्यक है। यदि आप कहें कि प्रत्येक कार्य के लिये एक कारण है, उसी प्रकार सृष्टिरूपी कार्य के

* क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वर।

ये ईश्वर-रूपी कारण की आवश्यकता है, तो उत्तर यह होगा कि चेतन क्यों, अचेतन प्रकृति ही क्यों न कारण मानी जाय? अच्छा, यदि चेतन कारण ाना भी जाय, तो प्रश्न होगा कि वह अशरीर है या सशरीर? यदि अशरीर ारण कार्य कर सकता है, तो अशरीर कुम्भकार घट क्यों नहीं बना लेता? फिर ाखिर ईश्वर ने सृष्टि क्यों रची—मन की मौज या कर्मसिद्धान्त का कायल ोकर? यदि मन की मौज, तो ईश्वर निरंकुश हुआ, यदि कार्य, कारण अथवा र्म और उसके भोग से कायल होकर, तो परवश और परतंत्र हुआ। अत चेतन ृष्टिकर्त्ता ईश्वर की सिद्धि आवश्यक है, ईश्वरवाद के सभी उद्देश्यों की सिद्धि अदृष्ट' (प्रकृति के अटल नियम) की कल्पना से ही हो सकती है।

किन्तु निरीश्वरवादी होते हुए भी योग ने जिस प्रकार 'पुरुष-विशेष' को श्वर का स्थानापन्न बनाया उसी प्रकार जैनदर्शन ने भी अपने तीर्थङ्करों को ईश्वर का स्थानापन्न बनाया। ईश्वर अथवा अवतार के प्रति हिन्दुओं की जैसी भावना है, जैनियों की अपने तीर्थङ्करों के प्रति भी वही भावना है। 'जिनेन्द्र' या 'अर्हन्' को हम जैनियों का ईश्वर समझ सकते हैं, क्योंकि इनके लिये 'सर्वज्ञ', 'देव', 'परमेश्वर' आदि विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं* और इनकी मूर्त्तियों की पूजा उसी भक्ति-भावना से होती है जिससे हिन्दू देवी देवताओं की। हिन्दुओं के चौबीस अवतारों और जैनियों के चौबीस तीर्थङ्करों की कल्पना तथा उनकी संख्या को देखकर भी हम जैनमत की समन्वयवादी प्रवृत्ति का परिचय पा सकते हैं।

[च] उपसंहार—जिसे हमने ऊपर की पंक्तियों में समन्वयवाद कहा है उस मध्यम मार्ग का आश्रयण महावीर ने निष्पक्ष परीक्षण के नाम पर किया था। षड्दर्शनसमुच्चय के आरंभ में 'अपर दर्शनों' की दकियानूसी मनोवृत्ति की भर्त्सना करते हुए कहा गया है कि और दर्शनों ने पुराण, मनुस्मृति, वेद और

* तु०—षड्दर्शनसमुच्चय—

जिनेन्द्रो देवता तत्र रागद्वेषविवर्जित ।
हतमोहमहामल्ल केवलज्ञानदर्शन ॥
कृत्स्नकर्मक्षयं कृत्वा सम्प्राप्त परम पदम् ॥
... .

सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजित ।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वर ॥

—सर्वदर्शन-संग्रह

चिकित्साशास्त्र को 'आज्ञा-सिद्ध' बताते हुए उन्हें तर्क से परे बताया है*, किन्तु जैनमतावलम्बी यह कहेगा कि तर्क की कसौटी पर कसने से भय खाना मानों यह सिद्ध कर देता है कि आपका पक्ष निन्द्य है, नहीं तो 'साँच में आँच' क्यों ? खरे सोने की जाँच से डरना कैसा ? जैनी परीक्षण से नहीं हिचकता। परीक्षण भी निष्पक्ष हो। न तो उसे महावीर में अनुचित पक्षपात है और न कपिल आदि में अनुचित द्वेष †। उसे तो युक्तिसंगत सिद्धान्तों का आश्रयण करना है। 'स्याद्वाद-मंजरी'-कार ने भी यह घोषित किया है कि—आर्हतमार्ग निष्पक्ष है ‡। निष्पक्ष परीक्षण का यह दृष्टिकोण कार्यरूप मे, उस समन्वयवाद या मध्यम मार्ग (Via media) के रूप में, पल्लवित हुआ जिसकी रूप-रेखा का अंकन प्रस्तुत निबन्ध का उद्देश्य था।

* पुराणं मानवो धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम्।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः॥
किन्तु जैन—
अस्ति वक्तव्यता काचित्तेनेयं न विचार्यते।
निर्दोषं काञ्चनं चेत् स्यात् परीक्षाया बिभेति किम्।
—षड्दर्शन-समुच्चय

† पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः॥

‡ अपक्षपातो समयस्तथार्हतः ॥

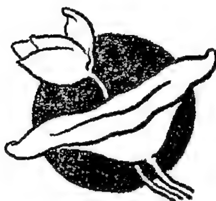

भगवान् भूतनाथ और भारत

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

यह कैसे कहा जा सकता है कि भारत के आधार से ही भगवान् भूतनाथ की कल्पना हुई है। वे असंख्य ब्रह्माण्डाधिपति और समस्त सृष्टि के अधीश्वर हैं, उनके रोम रोम में भारत-जैसे करोड़ों प्रदेश विद्यमान हैं। इसलिये यदि कहा जा सकता है, तो यही कहा जा सकता है कि उस विश्वमूर्ति की एक लघुतम मूर्त्ति भारतवर्ष भी है। वह हमारा पवित्र और पूज्यतम देश है। जब उसमें हम भगवान् भूतनाथ का साम्य अधिकतर पाते हैं तब हृदय परमानन्द से उत्फुल्ल हो जाता है। उस आनन्द का भागी हम आपलोगों को भी बनाना चाहते हैं।

'भूत' शब्द का अर्थ है पंचभूत अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। उसका दूसरा अर्थ है प्राणि-समूह अथवा समस्त सजीव सृष्टि, जैसा निम्नलिखित वाक्यों से प्रकट होता है—

"सर्वभूतहिते रत ।"

"आत्मवत् सर्वभूतेषु य पश्यति स पण्डित ॥"

भूत शब्द का तीसरा अर्थ है योनि विशेष, जिसकी सत्ता मनुष्य-जाति से भिन्न है, और जिसकी गणना प्रेत एवं वैतालादि जीवों की कोटि में होती है। जब भगवान शिव को हम 'भूतनाथ' कहते हैं, तब उसका यह अर्थ होता है कि वे पंच भूत से लेकर चींटी तक समस्त जीवों के स्वामी हैं। भारत भी इसी अर्थ में भूतनाथ है। चाहे उसके स्वामित्व की व्यापकता उतनी नहीं, तो भी वह भूतनाथ है, क्योंकि पंचभूतों के अनेक अंशों, और प्राणि-समूह के एक बहुत बड़े विभाग पर उसका

चिकित्साशास्त्र को 'आज्ञा-सिद्ध' बताते हुए उन्हें तर्क से परे बताया है*, किन्तु जैनमतावलम्बी यह कहेगा कि तर्क की कसौटी पर कसने से भय खाना मानों यह सिद्ध कर देता है कि आपका पक्ष निन्द्य है, नहीं तो 'साँच में आँच' क्यों ? खरे सोने को जाँच से डरना कैसा ? जैनी परीक्षण से नहीं हिचकता। परीक्षण भी निष्पक्ष हो। न तो उसे महावीर में अनुचित पक्षपात है और न कपिल आदि में अनुचित द्वेष †। उसे तो युक्तिसगत सिद्धान्तों का आश्रयण करना है। 'स्याद्वाद-मजरी'—कार ने भी यह घोषित किया है कि—आर्हतमार्ग निष्पक्ष है ‡। निष्पक्ष परीक्षण का यह दृष्टिकोण कार्यरूप में, इस समन्वयवाद या मध्यम मार्ग (Via media) के रूप में, पल्लवित हुआ जिसकी रूप-रेखा का अकन प्रस्तुत निबन्ध का उद्देश्य था।

* पुराणं मानवो धर्म साङ्गो वेदश्चिकित्सितम्।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभि.॥
किन्तु जैन—
अस्ति वक्तव्यता काचित्तेनेय न विचार्यते।
निर्दोष काञ्चन चेत् स्यात् परीक्षाया विभेति किम्।
—षड्दर्शन-समुच्चय

† पक्षपातो न मे वीरे न द्वेष कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रह॥

‡ अपक्षपातो समयस्तथार्हत ॥

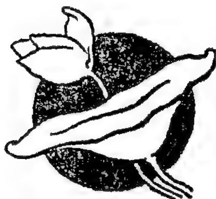

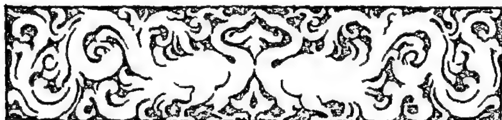

भगवान् भूतनाथ और भारत

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

यह कैसे कहा जा सकता है कि भारत के आधार से ही भगवान् भूतनाथ की कल्पना हुई है। वे असंख्य ब्रह्मांडाधिपति और समस्त सृष्टि के अधीश्वर हैं, उनके रोम-रोम में भारत-जैसे करोड़ों प्रदेश विद्यमान हैं। इसलिये यदि कहा जा सकता है, तो यही कहा जा सकता है कि उस विश्वमूर्त्ति की एक लघुतम मूर्त्ति भारतवर्ष भी है। वह हमारा पवित्र और पूज्यतम देश है। जब उसमें हम भगवान् भूतनाथ का साम्य अधिकतर पाते हैं तब हृदय परमानन्द से उत्फुल्ल हो जाता है। उस आनन्द का भागी हम आपलोगों को भी बनाना चाहते हैं।

'भूत' शब्द का अर्थ है पंचभूत अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। उसका दूसरा अर्थ है प्राणि-समूह अथवा समस्त सजीव सृष्टि, जैसा निम्नलिखित वाक्यों से प्रकट होता है—

"सर्वभूतहिते रत ।"

"आत्मवत् सर्वभूतेषु य पश्यति स पण्डित ॥"

भूत शब्द का तीसरा अर्थ है योनि विशेष, जिसकी सत्ता मनुष्य-जाति से भिन्न है, और जिसकी गणना प्रेत एव वैतालादि जीवों की कोटि में होती है। जब भगवान् शिव को हम 'भूतनाथ' कहते हैं, तब उसका यह अर्थ होता है कि वे पंच भूत से लेकर चींटी तक समस्त जीवों के स्वामी हैं। भारत भी इसी अर्थ में भूतनाथ है। चाहे उसके स्वामित्व की व्यापकता उतनी नहीं, तो भी वह भूतनाथ है, क्योंकि पंचभूतों के अनेक अंशों, और प्राणि-समूह के एक बहुत बड़े विभाग पर उसका

भी अधिकार है। यदि वे शशिशेखर हैं, तो भारत भी शशिशेखर है। उनके ललाट-देश में यदि मयक विराजमान हैं, तो उसके ऊर्ध्व भाग मे। यदि वे सूर्य-शशाक-वह्नि-नयन हैं, तो भारत भी ऐसा ही है, क्योंकि उसके जीवमात्र के नयनों का साधन दिन मे सूर्य और रात्रि में शशाक एव अग्नि (अर्थात् अग्नि-प्रसूत समस्त आलोक) हैं। यदि भगवान् शिव के शीश पर पुण्यसलिला भगवती भागीरथी विराजमान हैं, तो भारत का शिरोदेश भी उन्हींकी पवित्र धारा से द्रावित है। यदि वे विभूति भूषण हैं, उनके कुन्देन्दुगौर शरीर पर विभूति (भभूत) विलसित है, जो सासारिक सर्व विभूतियों की जननी है, तो भारत भी विभूति-भूषण है—उसके अक मे नाना प्रकार के रत्न ही नहीं विराजमान हैं, वह उन समस्त विभूतियों का भी जनक है, जिनसे उसकी भूमि स्वर्ण-प्रसविनी कही जाती है। यदि वे 'मुकुन्दप्रिय' हैं, तो भारत भी मुकुन्दप्रिय है, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो वे बार-बार अवतार धारण कर उसका भार-निवारण न करते, और न उसके भक्ति-भाजन बनते। उनके अगों मे निवास कर यदि सर्प-जैसा वक्रगति भयकर जन्तु भी सरलगति बनता और विष वमन करना भूल जाता है, तो उसके अक मे निवास कर अनेक वक्रगति प्राणियों की भी यही अवस्था हुई है और होती रहती है—भारत की अंगभूत आर्यधर्मा-वलम्बिनी अनेक विदेशी जातियाँ इसका प्रमाण हैं। यदि वे भुजगभूषण हैं, तो भारत भी ऐसा ही है—अष्टकुलसम्भूत समस्त नाग इसके उदाहरण हैं। यदि वे वृषभ वाहन हैं, तो भारत को भी ऐसा होने का गौरव प्राप्त है, क्योंकि वह कृषि प्रधान देश है, और उसका समस्त कृषिकर्म वृषभ पर ही अवलम्बित है।

भगवान् भूतनाथ की सहकारिणी अथवा सहधर्मिणी शक्ति का नाम 'उमा' है। उमा है—"ह्री श्री कीर्त्तिद्युति पुष्टि उमा लक्ष्मी सरस्वती"—उमा श्री है, कीर्त्ति है, द्युति है, पुष्टि है, और सरस्वती एव लक्ष्मी-स्वरूपा है। उमा वह दिव्य ज्योति है, जिसकी कामना प्रत्येक तम निपतित जिज्ञासु पुरुष करता है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' वेद-वाक्य है। भारत भी ऐसी ही शक्ति से शक्तिमान है। जिस समय सभ्यता का विकास भी नहीं हुआ था, अज्ञान का अधकार चारों ओर छाया हुआ था, उस समय भारत की शक्ति से ही धरातल शक्तिमान् हुआ, उसीकी श्री से श्रीमान् एव उसीके प्रकाश से प्रकाशमान् बना। उसी ने उसको पुष्टि दी, उसीकी लक्ष्मी से वह धनधान्य-सम्पन्न हुआ, और उसीकी सरस्वती उसके अध नेत्रों के लिये ज्ञानाजन शलाका हुई। चारों वेद भारत की ही विभूति हैं। सबसे पहले उन्होंने ही इस महा-मत्र का उच्चारण किया था—

"सत्यम् वद, धर्मम् चर, स्वाध्यायान् मा प्रमद ।
मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव ॥"
"ऋते ज्ञानान्न मुक्ति" ॥
"मा हिंस्यात् सर्वभूतानि ॥
कृण्वन्तम् विश्वमार्य्यम् ।"—इत्यादि

प्रयोजन यह कि जितने सार्वभौम सिद्धान्त हैं, उन सबकी जननी वेद-प्रसव कारिणी शक्ति ही है, अन्य नहीं। यह सत्य है कि ईश्वरीय ज्ञान वृक्षों के एक-एक पत्ते पर लिखा हुआ है। दृष्टि वाले प्राणियों के लिये उसकी विभूति ससार के प्रत्येक पदार्थ मे उपलब्ध होती है।

किन्तु ईश्वरीय ज्ञान के आविष्कारको का भी कोई स्थान है। वेदमत्रों के द्रष्टा उसी स्थान के अधिकारी हैं। धरातल मे सर्वप्रथम सब प्रकार के ज्ञान और विज्ञान के प्रवर्त्तक का पद उन्हींको प्राप्त है। उन्हींके वशजों मे बुद्धदेव-जैसे भारतीय धर्मप्रचारक हैं, जिनका धर्म आज भी धरातल के बहुत बडे भाग पर फैला हुआ है। वर्त्तमानकाल में कवीन्द्र रवीन्द्र उन्हींके मत्रों से अभिमन्त्रित होने के कारण धरातल के सर्वप्रधान प्रदेशों मे पूज्य दृष्टि से देखे जाते और सम्मानित होते हैं। यह मेरा ही कथन नहीं है, भगवान मनु भी यही कहते हैं—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन ।
स्व स्व चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्या सर्वमानवा ॥

अनेक अँगरेज विद्वानों ने भी भारत-शक्ति के इस उत्कर्ष को स्वीकार किया है और पक्षपातहीन होकर उसकी गुरुता का गुण गाया है। इस विषय के पर्याप्त प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं, किन्तु व्यर्थ विस्तार अपेक्षित नहीं। साराश यह कि भारतीय शक्ति वास्तव मे उमास्वरूपिणी है और उन्हींके समान वह ज्योतिर्मयी और अलौकिक कीर्तिशालिनी भी है। यदि धरातल मे पाशव शक्ति में सिंह को प्रधानता प्राप्त है, यदि उसपर अधिकार प्राप्त करके ही उमा सिंहवाहना है, तो अपनी ज्ञान-गरिमा से धरा की समस्त पाशव शक्तियों पर विजयिनी होकर भारतीय मेधामयी शक्ति भी सिंहवाहना है। यदि उमा ज्ञानगरिष्ठ गणेशजी और दुष्ट-दलन-क्षम परम पराक्रमी कार्त्तिकेय-जैसे पुत्र उत्पन्न कर सकती हैं, तो भारत की शक्ति ने भी ऐसी अनेक सतानें उत्पन्न की हैं, जिन्होंने ज्ञान-गरिमा और दुष्ट-दलन-शक्ति दोनों बातों मे अलौकिक कीर्त्ति प्राप्त की है। प्रमाण मे कपिलदेव,

वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, गौतम, व्यासादि जैसे महर्षि और भगवान रामचन्द्र तथा कृष्णचन्द्र-जैसे लोकोत्तर पुरुष उपस्थित किये जा सकते हैं।

भगवान् शंकर और भारतवर्ष में इतना साम्य पाकर कौन ऐसी भारत-संतान है, जो परम गौरवान्वित और अतीव आनन्दित न हो। वास्तव में बात यह है कि भारतीयों का उपास्य भारतवर्ष वैसा ही है, जैसे भगवान शिव। क्या यह तत्त्व समझकर हमलोग भारत की यथार्थ सेवा कर अपना उभयलोक बनाने के लिये सचेष्ट न होंगे? विश्वास है कि अवश्य सचेष्ट होंगे, क्योंकि भारतवर्ष एक पवित्र देश ही नहीं है, वह उन ईश्वरीय सर्व विभूतियों से भी विभासित और परिपूरित है, जो धरातल के किसी अन्य देश को प्राप्त नहीं।

बिहार में श्रीगंगाजी

पंडित दयाशंकर दुबे, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, अर्थशास्त्राध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय

हिन्दू-धर्मशास्त्रों में श्रीगंगाजी के माहात्म्य का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। हिन्दुओं का प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य श्रीगंगाजी के गुण-गान से भरा पड़ा है। गंगा, गाय और गीता हिन्दू-जाति की आन और शान हैं।

श्रीगंगाजी का स्मरण करने से, उनके दर्शन करने से, उनमें स्नान करने से और उनका पवित्र जल पान करने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। साथ ही, स्वास्थ्य को भी बहुत लाभ होता है। स्वास्थ्य-लाभ की दृष्टि से तो श्रीगंगाजी अमृत-नदी ही हैं। उनके निर्मल जल में भयंकर कीटाणुओं को नष्ट करने की अलौकिक शक्ति है। विदेशों के बड़े-बड़े विज्ञानवेत्ता विद्वानों ने मुक्तकंठ से यह स्वीकार किया है।

कलियुग में तो श्रीगंगाजी प्रत्यक्ष देवता हैं। उनकी एक बड़ी विशेषता यह है कि वे अपने जल में स्नान करनेवाले को कुछ क्षणों के लिये देवता बना देती हैं। जब कोई मनुष्य स्नान करने के लिये श्रीगंगाजी में पैर रखता है, तब वह भगवान् विष्णु का रूप धारण कर लेता है। जब वह गोता लगाता है, गंगाजल उसके बालों से गिरता है और वह भगवान् शंकर का रूप ग्रहण कर लेता है। जब स्नान करने के बाद वह अपने कमंडलु में गंगाजल भरकर घर ले जाता है, तब वह ब्रह्माजी का रूप बन जाता है। इस प्रकार गंगास्नान कुछ क्षणों के लिये मनुष्य को क्रमशः विष्णु, शंकर और ब्रह्मा के रूप में परिणत कर देता है।

आयुर्वेद की दृष्टि से भी श्रीगंगाजी का बहुत महत्त्व है। गंगाजल में

सक्रामक रोगों के कीटाणुओं को नष्ट करने का विशेष गुण है। गंगाजल-सेवन करनेवाले व्यक्ति रोगों से मुक्त रहते और दीर्घजीवी होते हैं। गगा की मिट्टी भी अनेक रोगों का नाश करती है। गगातट के उत्पन्न हुए अन्न और फूल-फल भी स्वास्थ्यवर्द्धक होते हैं।

श्रीगगाजी का आर्थिक महत्त्व भी कुछ कम नहीं है। उनके द्वारा प्रतिवर्ष हजारों एकड़ जमीन पर नई और उपज बढानेवाली मिट्टी जमा होती है—लाखों एकड़ जमीन प्रतिवर्ष सींची जाती है—करोड़ों मन सामान नावों और जहाजों द्वारा प्रतिवर्ष एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जाता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी श्रीगगाजी का महत्त्व बडा गम्भीर है। इतिहास के निर्माण मे उन्होंने जो हाथ बटाया है वह ध्यान देने योग्य और बडा आकर्षक तथा स्तुत्य है। अनेक ऐतिहासिक घटनाओं से गगा का सम्बन्ध है।

बिहार-प्रान्त के लिये यह विशेष रूप से गौरव की बात है कि उसकी प्रधान नदी श्रीगगाजी हैं। उन्होंने बिहार को दो भागों मे विभक्त कर दिया है—मगध और मिथिला। गगा से दक्षिण का खड मगध है और उत्तर का भाग मिथिला या तिरहुत। दक्षिण बिहार की पश्चिमी सीमा पर शाहाबाद (आरा) जिला है और पूर्वी सीमा पर जिला सन्तालपरगना। उत्तरी बिहार की पश्चिमी सीमा पर सारन (छपरा) जिला है और पूर्वी सीमा पर पुर्नियाँ जिला। इस प्रकार बिहार में जहाँ गगाजी प्रवेश करती हैं वहाँ दक्षिण भाग मे शाहाबाद जिला पडता है और उत्तरी भाग में सारन। जहाँ से वे बिहार को पार करके बंगाल मे पैठती हैं वहाँ दक्षिण भाग मे जिला सन्तालपरगना पड़ता है और उत्तरी भाग मे पुर्नियाँ। गगा के दक्षिण तट पर पाँच जिले पड़ते हैं—शाहाबाद, पटना, मुँगेर, भागलपुर और सन्तालपरगना, उत्तर की ओर भी पाँच ही जिले हैं—सारन, चम्पारन, मुजफ्फरपुर, दरभगा और पुर्नियाँ, पर चम्पारन को छोडकर केवल चार ही जिले गगा के उत्तरी तट पर पड़ते हैं। हाँ मुँगेर और भागलपुर जिले गगा के दोनों तटों पर फैले हुए हैं, क्योंकि इनके बीचोबीच से गगाजी बहती हैं। इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि लगभग समस्त बिहार के निवासी श्रीगगाजी के दर्शन और सेवन से कृतकृत्य होते रहते हैं। श्रीगंगाजी को भी बिहार में आठ बडी सहायक नदियाँ मिलती हैं—दक्षिण की ओर से कर्मनाशा, सोन, पुनपुन और फल्गु तथा उत्तर की ओर से गडक (नारायणी, सदानीरा या शालग्रामी), सरयू (घाघरा या घर्घरा), बूढी गडक और कोशी। ये सब नदियाँ अत्यन्त प्राचीन और पुराण-प्रसिद्ध हैं।

रोहतासगढ़ (शाहाबाद) की बारादरी

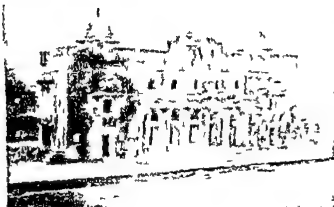

रोहतासगढ़ (शाहाबाद) में शेरशाह का मकबरा

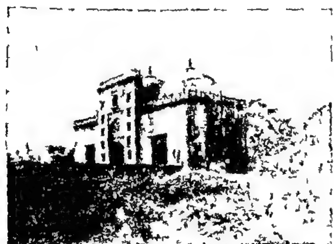

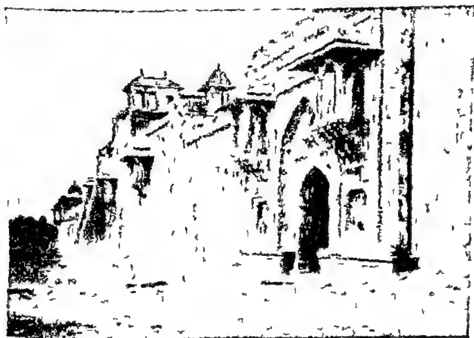

रोहतासगढ़ (शाहाबाद) के दरबार हॉल का पीछे का दृश्य

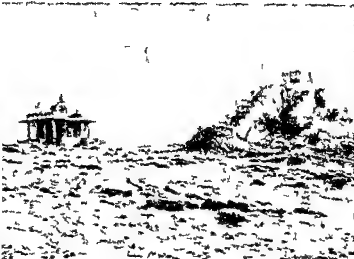

रोहतासगढ़ (शाहाबाद) में रोहिताश्व : हरिश्चन्द्र के मन्दिर, जिन्हें अकबर के प्र सेनापति राजा मानसिंह ने बनवाया था।

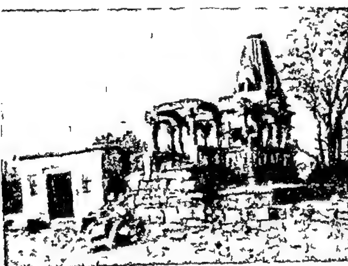

रोहतासगढ़ (शाहाबाद) का गणेश मं जिसे राजा मानसिंह ने ही बनाया। इस गुम्बज टूटा हुआ है।

रोहतासगढ़ (शाहाबाद) के किले का दृश्य— किला १६ वीं शताब्दी का बना मालूम होता है इस स्थान का सम्बन्ध पुराण प्रसिद्ध सूर्यव राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व से बता जाता है। ओराँव, चेरो और खारवार ना आदिम जातियाँ भी इसे अपनी-अपनी राजधा बतलाती हैं। विक्रम संवत् १२७९ का एक शिल लेख यहाँ मिला है। मुसलमानी काल में इ किले का बडा महत्व रहा है। शेरशाह ने इस कब्जा कर अपनी स्थिति दृढ़ की थी।

संयुक्त प्रान्त के गाजीपुर नगर से पूर्व तरफ आगे बढ़ने पर पुण्यतोया श्रीगंगाजी बिहार-प्रान्त के शाहाबाद जिले के 'चौसा' नामक ग्राम के पास सर्वप्रथम बिहार की भूमि मे प्रवेश करती हैं। 'चौसा' के पास ही उनका कर्मनाशा से संगम होता है। यहीं पर अफगान सरदार शेरखाँ ने मुगल-सम्राट् हुमायूँ को परास्त किया था। हुमायूँ ने तैरकर गंगाजी को पार करना चाहा, किन्तु बीच में ही डूबने लगा। उस समय एक राजभक्त भिश्ती ने उसके प्राण बचाये, जिसके बदले मे हुमायूँ ने भिश्ती को आधे दिन के लिये राजगद्दी पर बैठने की आज्ञा दी और उस अल्पकालिक राजत्वकाल मे ही भिश्ती ने चमड़े का सिक्का चलाया था। यह इतिहासप्रसिद्ध घटना है।

बिहार मे गंगाजी के प्रवेश-द्वार पर 'चौसा' बहुत ही पुराना गाँव है, जो शेरशाह और हुमायूँ का युद्धस्थल होने के कारण इतिहास मे भी प्रसिद्ध है। ईस्ट इंडियन रेलवे की मुगलसराय पटना-लाइन पर 'चौसा' एक स्टेशन है, इसलिये जल और स्थल दोनों मार्गों से 'चौसा' पहुँचने की सुविधा है। श्रीगंगाजी चौसा से आगे शाहाबाद की उत्तरी सीमा पर बहती हुई संयुक्त-प्रान्त के दो जिलों—गाजीपुर और बलिया—को शाहाबाद से अलग करती हैं। 'चौसा' से उत्तर पूर्व की ओर बहती हुई श्रीगंगाजी पुण्यभूमि 'बक्सर' में पहुँचती हैं।

बक्सर—यह शाहाबाद जिले का एक प्राचीन स्थान है—'चौसा' से लगभग आठ मील उत्तर-पूर्व गंगा के दक्षिण तट पर स्थित है। ईस्ट-इंडियन रेलवे (ई० आइ० आर०) का बहुत प्रसिद्ध स्टेशन तथा व्यापार की अच्छी मंडी भी है। पहाड़ी और जंगली लकड़ियाँ और बाँस तथा मिर्जापुरी पत्थर भी यहाँ खूब बिकते हैं—यह सुविधा केवल गंगाजी के कारण है।

बक्सर की पश्चिमी सीमा पर दक्षिण से आकर 'ठोरा' नदी गंगाजी से मिली है और इसी संगम पर 'सेंट्रल जेल' है जो बिहार के बड़े जेलखानों में बहुत प्रसिद्ध है। इस जेल में हस्तशिल्प और गृहशिल्प की अनेक वस्तुएँ तैयार होती हैं। गंगाजी के कारण यह जेल कैदियों का स्वास्थ्यनिकेत है।

अति प्राचीन काल में यहाँ पर बहुत-से ऋषि-मुनियों का निवास-स्थान था। उन्हीं वेदज्ञ महात्माओं के नाम पर इसका प्राचीन नाम 'वेदगर्भ' था। यहाँ गंगा-तट पर 'चरित्रवन' नामक एक प्राचीन तपोवन का चिह्न अवशिष्ट है जहाँ आज भी वैष्णव वैरागियों के आश्रम और मठ-मन्दिर हैं। यह पंचकोशी के अन्दर है।

स्थानीय किंवदन्ती के अनुसार, इसका नाम, गौरी शंकर महादेव के प्राचीन मन्दिर के निकटस्थ 'अघसर' नामक सरोवर पर पड़ा है। कहते हैं कि कालक्रम से इसी अघसर का 'बघसर' और पुनः 'बक्सर' हो गया। यह भी कहा जाता है कि 'अघसर' का नाम 'व्याघ्रसर' था, जो स्नान करनेवाले के रोग और पाप को चपेट लेता था। जो हो, अब भी कुछ लोगों का ऐसा ही विश्वास है। और, 'व्याघ्रसर' से 'बक्सर' बन जाना भी संभव है।

बक्सर एक प्राचीन तीर्थ-स्थान है। पौष संक्रान्ति और माघ की अमावस्या को प्रतिवर्ष यहाँ बहुत बड़ा मेला होता है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने विश्वामित्र मुनि की यज्ञ रक्षा के लिये महाविघ्नकारिणी ताड़का राक्षसी का यहीं पर वध किया था। यहाँ किले के पास रामरेखा-घाट पर विश्वामित्र मुनि की एक विशाल मूर्त्ति स्थापित है, और भी कई सुन्दर मन्दिर हैं जिनमें रामेश्वर महादेव का मन्दिर दर्शनीय है।

सन् १७६४ ई० में यहाँ पर अंगरेजों और मीरकासिम से युद्ध हुआ था। इसलिये इतिहास में बक्सर प्रसिद्ध है। चरित्रवन और रामरेखा घाट के बीच में यहाँ एक पुराना किला गंगा-तट पर है, जिसके चारों ओर गहरी खाई और ऊँचा खुला मैदान है। इस किले में बक्सर-सबडिवीजन के सरकारी अफसर रहते हैं।

बक्सर से श्रीगंगाजी बिहार के शाहाबाद जिले को संयुक्त-प्रान्त के बलिया जिले से अलग करती हुई उत्तर-पूर्व की ओर आगे बढ़ती हैं। कुछ दूर आगे जाने पर बिहार के सारन जिले को संयुक्त-प्रान्त के बलिया जिले से अलग करनेवाली सरयू नदी उत्तर की ओर से आ मिलती है। इसी संगम के आसपास दक्षिण से आनेवाली सोन नदी भी गंगा में मिलती है। इन दोनों संगमों के कारण बरसात में गंगाजी प्रायः विस्तृत समुद्र का रूप धारण कर लेती हैं।

दानापुर—सोन के संगम से लगभग १३-१४ मील आगे बढ़ने पर दानापुर शहर मिलता है, जो गंगा के दक्षिणी तट पर स्थित है। यह वास्तव में पटना नगर का पश्चिमी अंश है। यहाँ गोरी फौज की छावनी और रेलवे का बड़ा कारखाना है। यह ई० आइ० आर० का बहुत प्रसिद्ध स्टेशन और रेलवे के जिला अफसर का हेड-क्वार्टर है। चौसा और बक्सर की तरह यहाँ पहुँचने के लिये भी जल-स्थल-मार्ग की समान सुविधा है।

दानापुर से लगभग ४½ मील पूर्व में गंगा के दक्षिण तट पर दीघाघाट पड़ता है। यह पटना से ५ मील उत्तर पश्चिम है। यहीं से स्टीमर द्वारा गंगा पार कर

उत्तरी तट के पहलेजा घाट पर उतरते हैं जहाँ उत्तर-बिहार (तिरहुत) में फैली हुई बी० एन० डब्लू० रेलवे लाइन की गाड़ियाँ मिलती हैं। इसी तरह पटना से पूरब गंगा के दक्षिणी तट पर मोकामा घाट है, जहाँ ई० आइ० आर० की गाड़ी से उतरकर स्टीमर-द्वारा गंगा पार करके उत्तरी तट के सिमरिया घाट स्टेशन पर बी० एन० डब्लू० की गाड़ी पकड़ते और तिरहुत के पूर्वी भाग में प्रवेश करते हैं। पश्चिम से आनेवाले यात्री पहलेजा घाट द्वारा और पूर्व से आनेवाले यात्री सिमरिया घाट द्वारा उत्तर-बिहार में जाते हैं।

पहलेजा घाट से लगभग तीन मील पूर्व 'सोनपुर' है जो गंगा के उत्तरी तट से थोड़ी ही दूरी पर गंडकी (नारायणी) के तीर पर स्थित है। इसका दूसरा नाम 'हरिहर क्षेत्र' भी है। बी० एन० डब्लू० रेलवे का प्रमुख एवं प्रसिद्ध स्टेशन है। यह 'सारन' जिले में पड़ता है। यहाँ का लम्बा रेलवे प्लेटफार्म जगत्प्रसिद्ध है। यहाँ हरिहरनाथ महादेव का सुविख्यात मंदिर है। यहाँ पर कार्त्तिक पूर्णिमा को बहुत बड़ा मेला लगता है, जिसमें भारत के कोने-कोने के लोग तो आते ही हैं, विदेशी लोग भी अधिक संख्या में आते हैं। यह मेला 'छतर का मेला' कहलाता और संसार भर में प्रसिद्ध है। हरिहरक्षेत्र एक प्राचीन तीर्थ है और उसका पौराणिक महत्त्व भी है। पुराण प्रसिद्ध गज-ग्राह-युद्ध यहीं—गंगा गंडक-संगम—पर हुआ था। इसी गंडक में चम्पारन जिले के अन्दर त्रिवेणी-संगम पड़ता है, जहाँ तीन नदियों के संगम के आसपास शालग्राम की मूर्तियाँ पाई जाती हैं।

सोनपुर से लगभग तीन चार मील पूर्व की ओर 'हाजीपुर' एक कस्बा है, जो मुजफ्फरपुर जिले का एक सबडिवीजन है। यह भी गंगा-गंडक संगम के पास ही पड़ता है। यहाँ केले के बागीचों की बहुलता है। यहाँ के मीठे केले बहुत प्रसिद्ध हैं। बिहार के प्राचीन इतिहास से हाजीपुर का महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है।

पटना—यह नगर गंगा के दक्षिण तट पर दीघाघाट से तीन मील पूर्व स्थित है। दानापुर और पटना के बीच में 'दीघाघाट' है, पर दानापुर और दीघाघाट तो वास्तव में पटना के ही अंश-मात्र हैं। पटना का पश्चिमी अंश 'बाँकीपुर' कहलाता है, जिसमें सरकारी कचहरियाँ, स्कूल-कालेज, हाइकोर्ट आदि हैं और पूर्वी अंश 'पटना-सिटी' कहलाता है, जिसमें पुराने शहर की आबादी है। इस प्रकार पटना नगर दानापुर, दीघाघाट, बाँकीपुर आदि के साथ गंगा के दाहने किनारे पर मीलों में फैला हुआ है। यदि पटना सिटी से पूरब फतुआ तक की लगातार बस्ती भी जोड़ ली जाय तो कहना पड़ेगा कि दानापुर से फतुआ तक सिलसिलेवार फैला हुआ

पटना शहर गगा तट पर बसे हुए सभी नगरों से लम्बा है। इस लम्बाई का अनुमान इन पाँच स्टेशनों से भी हो सकता है—दानापुर, पटना-जंकशन, गुलजारबाग, पटना सिटी और फतुआ। ये सभी स्टेशन गगा तट से बहुत निकट हैं। गगा-तट पर इस सुदीर्घ नगर का विपुल विस्तार वस्तुत विस्मयजनक है।

व्यापार की दृष्टि से गगा तट पर इसकी स्थिति बहुत महत्त्व पूर्ण है। इसका प्राचीन नाम पाटलिपुत्र था। ऐतिहासिक दृष्टि से तो इस नगर का महत्त्व इतना अधिक है कि गगा-तट का शायद ही कोई नगर इसका मुकाबला कर सके। इस समय यही बिहार की राजधानी है। इसके सिवा इस समय गगा तट का कोई नगर राजधानी के गौरव से मडित नहीं है। यहाँ अनेक दर्शनीय स्थान हैं। यहाँ के पटना-जंकशन स्टेशन से ई० आइ० आर० की एक लाइन 'गया' गई है।

फतुआ पटना से ७ मील पूर्व मे, गगा के दक्षिणी किनारे पर गगा और पुनपुन के सगम के पास, यह एक छोटा सा कस्बा है। एक प्रकार से यह पटना नगर का ही पूर्वी छोर है। रेलवे स्टेशन के सिवा यहाँ सुन्दर कपडों की बुनाई के धन्धे का केन्द्र है। पटना और फतुआ के कारीगरों के तैयार किये हुए कपडे बनारसी कपडों के समान वेशकीमत और टिकाऊ होते हैं। फतुआ से इसलामपुर तक २७ मील लम्बी बिहार-लाइट रेलवे की एक ब्राञ्च लाइन है।

गगा-स्नान के कई मेले प्रतिवर्ष पुनपुन-सगम पर लगते हैं। वारुणी द्वादशी का विशेष माहात्म्य है, क्योंकि इसी दिन यहाँ वामन-अवतार हुआ था।

बख्तियारपुर— यह फतुआ से लगभग १५ मील पूर्व मे गगा के दायें तट पर छोटा सा कस्बा है। पटना से कलकत्ता आने-जानेवाले स्टीमर यहाँ भी ठहरते हैं। ई० आइ० आर० का जंकशन स्टेशन है। यहाँ से बिहारशरीफ तक ३३ मील लम्बी बिहार-लाइट रेलवे की एक ब्राञ्च-लाइन है। इसी लाइन से लोग राजगृह (राजगिरि) पहुँचते हैं। बिहारशरीफ से ही नालन्दा जाने का भी स्थल-मार्ग है।

बाढ—बख्तियारपुर से लगभग १० मील पूर्व गगा के दायें तट पर स्थित यह पटना जिले की एक तहसील है। यहाँ भी ई० आइ० आर० तथा स्टीमरों का स्टेशन है। पटना जिले का सबडिवीजन होने से यह छोटा-सा अच्छा कस्बा है।

बाढ से लगभग ३ मील उत्तर-पूर्व मे स्थित 'नवाडीह घाट' तक जाकर गगा की दो धाराएँ हो गई हैं। परन्तु आगे ६ या ७ मील के बाद फिर दोनों धाराएँ मिल जाती हैं। इस मिलने के स्थान से गंगाजी अब उसी प्रकार दक्षिण-पूर्व को

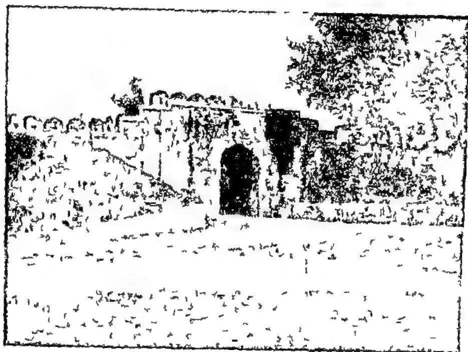

मुंगेर के
यह किला
घेरे में है
मानार
भीतरी
चौड़ा है।
अब सर
कलक्टर क

गंगा की ओर से मुंगेर के क़िले का दृश्य—यह सन् १२०० और १४९७ ई० के अन्दर बना था। इस क़िले ने
के ज़माने से लेकर नवाब मीर कासिम तक, मुसलमानी शासनकाल के कितने ही उथलपुथल देखे हैं।
की तलवार के जौहर का यह मांजा था। टोडरमल ने इसी क़िले से अकबर के विद्रोहियों का दमन कि
सबसे बढ़कर—यहीं मीर कासिम ने, भारत में पहली बार आधुनिक शस्त्रास्त्रों का कारखाना खोला और
ईस्ट इंडिया-कम्पनी का ज़बरदस्त मुक़ाबला किया था। यों तो जनश्रुति के अनुसार महाभारत के रा
की राजधानी भी यहीं थी।

मुंगेर नगर में गंगा के किनारे कष्टहरणी-घाट का सुरंग द्वार, जो किले से सम्बद्ध है। कहा जाता है, किले के अन्दर ऐसी कितनी ही सुरंगें थीं, जिनसे होकर संकटकाल में किले के अधिवासी, शत्रु से छिपे-छिपे, दूर-दूर निकल सकते थे।

सीताकुंड (जिला मुंगेर)—गरम पानी का कुंड

बहने लगती हैं जिस प्रकार बक्सर और बीघाघाट से आगे बढ़ने पर उनकी धारा दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़ गई है।

अपनी दो धाराओं को मिलाकर जहाँ से गंगाजी दक्षिण पूर्व को बढ़ती हैं, वहाँ से लगभग ६ मील की दूरी पर 'मोकामा' है। यह गंगा के दक्षिणी तट पर ई० आइ० आर० का बहुत बड़ा और सुविख्यात स्टेशन है। जंक्शन-स्टेशन के समीप ही गंगा के किनारे मोकामा-घाट स्टेशन है। उत्तर बिहार के तिरहुत डिवीजन में आनेवाले भारी माल की लदाई का प्रधान स्टेशन यही है।

मोकामा से ४॥ मील आगे दुर्गापुर में जाकर श्रीगंगाजी फिर कई धाराओं में विभक्त हो जाती हैं। सब धाराएँ सूरजगढ में, जो मोकामा से लगभग २२-२३ मील पूर्व-दक्षिण में गंगा के दक्षिण तट पर स्थित है, मिलती हैं। यह बहुत प्राचीन स्थान माना जाता है। कहते हैं, यहाँ राजा सूरजमल का किला था, जिसका अब केवल कुछ भग्नांश बच गया है।

मुँगेर—सूरजगढ से लगभग १६ मील उत्तर-पूर्व में, गंगा के दक्षिण तट पर, 'मुँगेर' नगर है। भागलपुर-कमिश्नरी में 'मुँगेर' एक प्रसिद्ध जिला है। श्रीगंगाजी इस जिले को दो भागों में बाँट देती हैं। उत्तर का भाग खूब उपजाऊ है, पर दक्षिण का भाग विशेष उर्वर नहीं है। कहते हैं, सम्राट् चन्द्रगुप्त ने 'मुँगेर' नगर बसाया था; इसीलिये इसका पहला नाम 'गुप्तगढ' था। यह भी किंवदन्ती है कि यहाँ गंगा तट पर 'मुद्गल' नामक एक ऋषि तपस्या करते थे, उन्हींके नाम पर यह स्थान 'मुद्गलपुर' कहलाने लगा, जो बाद को 'मुँगेर' नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहाँ गंगा तट पर चंडिका देवी का एक बहुत प्राचीन और प्रसिद्ध मन्दिर है। मन्दिर का नाम चंडी-स्थान और देवी का नाम विक्रम चंडी है। कहा जाता है कि मुद्गल ऋषि ने यहाँ के घाट का नाम 'कष्ट-हारिणी' घाट रक्खा था। तभी से वह घाट इसी नाम से आज तक प्रसिद्ध है। अब भी लोगों का विश्वास है कि इस घाट पर गंगा-स्नान करने से नामानुकूल वाञ्छित फल मिलता है।

यहाँ गंगा-तट पर एक पुराना और पुख्ता किला है, जिसका वर्णन इतिहास में भी मिलता है। नवाब मीरकासिम की राजधानी यहीं थी। बक्सर के किले के बाद बिहार में गंगा-तट पर यह दूसरा ऐतिहासिक किला है।

बिहार में 'गया' की तरह मुँगेर भी बड़ा धनी नगर समझा जाता है। यहाँ बड़े बड़े धनाढ्य नागरिक हैं। १६३४ ई० के भूकम्प में इसकी पुरानी बस्ती बिलकुल नष्ट हो गई। नहीं तो गया की पुरानी बस्ती की तरह इसकी पुरानी बस्ती भी बहुत

मीर कासिम

बहने लगती है जिस प्रकार बक्सर और बीबाघाट से आगे बढने पर उनकी धारा दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़ गई है।

अपनी दो धाराओं को मिलाकर जहाँ से गंगाजी दक्षिण पूर्व को बढ़ती हैं, वहाँ से लगभग ६ मील की दूरी पर 'मोकामा' है। यह गंगा के दक्षिणी तट पर ई० आइ० आर० का बहुत बड़ा और सुविख्यात स्टेशन है। जंकशन-स्टेशन के समीप ही गंगा के किनारे मोकामा-घाट स्टेशन है। उत्तर-बिहार में तिरहुत-डिवीजन में आनेवाले भारी माल की लदाई का प्रधान स्टेशन यही है।

मोकामा से ४॥ मील आगे दुर्गापुर में जाकर श्रीगंगाजी फिर कई धाराओं में विभक्त हो जाती हैं। सब धाराएँ सूरजगढ में, जो मोकामा से लगभग २२-२३ मील पूर्व-दक्षिण में गंगा के दक्षिण तट पर स्थित है, मिलती हैं। यह बहुत प्राचीन स्थान माना जाता है। कहते हैं, यहाँ राजा सूरजमल का किला था, जिसका अब केवल कुछ भग्नांश बच गया है।

मुँगेर—सूरजगढ से लगभग १६ मील उत्तर-पूर्व में, गंगा के दक्षिण तट पर, 'मुँगेर' नगर है। भागलपुर-कमिश्नरी में 'मुँगेर' एक प्रसिद्ध जिला है। श्रीगंगाजी इस जिले को दो भागों में बाँट देती हैं। उत्तर का भाग खूब उपजाऊ है, पर दक्षिण का भाग विशेष उर्वर नहीं है। कहते हैं, सम्राट् चन्द्रगुप्त ने 'मुँगेर' नगर बसाया था; इसीलिये इसका पहला नाम 'गुप्तगढ' था। यह भी किंवदन्ती है कि यहाँ गंगा तट पर 'मुद्गल' नामक एक ऋषि तपस्या करते थे, उन्हींके नाम पर यह स्थान 'मुद्गलपुर' कहलाने लगा, जो बाद को 'मुँगेर' नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहाँ गंगा तट पर चंडिका देवी का एक बहुत प्राचीन और प्रसिद्ध मन्दिर है। मन्दिर का नाम चंडी-स्थान और देवी का नाम विक्रम चंडी है। कहा जाता है कि मुद्गल ऋषि ने यहाँ के घाट का नाम 'कष्टहारिणी' घाट रक्खा था। तभी से वह घाट इसी नाम से आज तक प्रसिद्ध है। अब भी लोगों का विश्वास है कि इस घाट पर गंगा-स्नान करने से नामानुकूल वाञ्छित फल मिलता है।

यहाँ गंगा-तट पर एक पुराना और पुख्ता किला है, जिसका वर्णन इतिहास में भी मिलता है। नवाब मीरकासिम की राजधानी यहीं थी। बक्सर के किले के बाद बिहार में गंगा-तट पर यह दूसरा ऐतिहासिक किला है।

बिहार में 'गया' की तरह मुँगेर भी बड़ा धनी नगर समझा जाता है। यहाँ बड़े-बड़े धनाढ्य नागरिक हैं। १९३४ ई० के भूकम्प में इसकी पुरानी बस्ती बिलकुल नष्ट हो गई। नहीं तो गया की पुरानी बस्ती की तरह इसकी पुरानी बस्ती भी बहुत

धनी थी, जिससे वह 'बिहार का बनारस' कहा जाता था। नवाबी जमाने मे यहाँ बन्दूक के कारखाने थे। आज भी यहाँ अनेक कुशल हस्तशिल्पी हैं।

मुँगेर से गगाजी उत्तर की ओर मुड जाती है। ७ या ८ मील उत्तर मे स्थित 'रहीम' तक जाकर फिर दक्षिण पूर्व को घूमती है। मुँगेर मे ई० आइ० आर० की गाडी से उतर स्टीमर द्वारा गगा पार करके गगा के उत्तरी किनारे पर मुँगेर-घाट मे बी० एन० डब्लू० रेलवे की गाडी पाते हैं। उत्तर-बिहार मे जाने के लिये पहलेजा घाट और सिमरिया-घाट के बाद यह तीसरा स्टेशन है।

सुलतानगज– मुँगेर से लगभग १६ मील पूर्व-दक्षिण मे गगा के दक्षिण तट पर यह एक छोटा-सा कस्बा है। यहाँ गगा-तट पर महाभारतीय दानवीर कर्ण का बनवाया हुआ एक गढ अथवा किला था, जिसका चिह्न अब केवल एक ऊँचा टीला रह गया है, जो वर्त्तमान समय मे पुर्नियाँ जिले के बनैली-राज्य के राजकुमार श्रीमान कुमार कृष्णानन्द सिह के अधिकार मे है। टीले पर उनका जो महल है वह 'कृष्णगढ' नाम से प्रसिद्ध है। उन्होंने ही कई साल तक 'गगा' नामक सचित्र मासिक पत्रिका निकाली थी। उनके महल के सामने गगा की धारा के मध्यभाग मे एक विशाल पर्वतखड है, जिसपर 'श्री अजगवीनाथ महादेव' का मन्दिर है। उस पर्वतखड की दीवारो पर बहुत-सी प्राचीन मूर्त्तियाँ खुदी हुई हैं। नाव-द्वारा दर्शनार्थी लोग मदिर में जाते हैं। उसके सामने ही गगा के दक्षिण तट पर गडशैल के ऊपर एक पुरानी मसजिद है, जो बख्तियार खिलजी की बनवाई हुई कही जाती है। सुलतानगज ई० आइ० आर० की लूप-लाइन का एक स्टेशन है।

भागलपुर–यह नगर सुलतानगज से लगभग १३ मील पूर्व, गगा के दक्षिण तट पर, स्थित है। पटना की तरह बिहार का यह दूसरा कमिश्नरी नगर गगा तट पर है। यहाँ के सेंट्रल जेल और रेशम-तसर के कपडों की बडी प्रसिद्धि है। व्यापार का प्रधान केन्द्र है। व्यापारी मारवाडियों की सख्या बहुत अधिक है। यह नगर ई० आइ० आर० की लूप-लाइन पर पडता है। यहाँ से उत्तर बिहार मे जाने के लिये गगा-तट पर बरारी घाट मे स्टीमर मिलता है, जिससे गगा के उत्तरी किनारे के महादेवपुर-घाट नामक स्टेशन पर पहुँचकर बी० एन० डब्लू० की गाडी में सवार होते हैं। गगा के बायें किनारे यह चौथा घाट-स्टेशन है।

भागलपुर मे जैनियों के दो प्रसिद्ध मन्दिर हैं। यहाँ के बने हुए तसर के कपडे देश-विदेश के बाजारो मे बिकने जाते हैं। कम्बल कालीन, बेंत की चीजें यहाँ अच्छी बनती हैं। यहाँ भी गगा के दाहने तट पर दानवीर कर्ण के बनवाये

का चौरासी मुनि' पर्वत-गुफा, जिसके नीचे चट्टानों में खोदी गई कितनी ही देव मूर्त्तियाँ हैं, जिनका रचना-काल छठा या सातवाँ शताब्दी है। कहलगाँव से आठ मील उत्तर पूरब, गंगा के किनारे, यह स्थान है।

टा (भागलपुर) में चट्टान में खोदी गई मूर्तियों की पंक्ति, जिसकी लम्बाई ४६ फीट ९ इंच और ऊँचाई ... है। किन्तु मूर्तियों की ऊँचाई सिर्फ साढ़े तीन फीट है। इन मूर्तियों में ... वामन ... कथा, ... का ...वली एवं चक्रधारी नृसिंह का चित्रण है। अपने ढंग का, बिहार की ... मूर्तियाँ हैं—... युग की ... मूर्तियाँ बिहार में बहुत ही कम मिलती हैं।

बन्दरझूला (पूर्णिया) का ईंटों का बना पुराना मन्दिर, जो अब 'कन्हैयाजी का स्थान' कहलाता है।

जलालगढ़ (पूर्णिया) में ईंटों का बना पुराना किला

हुए सुविशाल कर्णगढ़ का ध्वंसावशेष बहुत ऊँचे टीले के रूप में है। इसके दक्षिण पश्चिम में 'मन-कामना नाथ महादेव' का मन्दिर और कर्णगढ़-संस्कृत-महाविद्यालय है। गंगा-तट पर इस नगर के भव्य भवनों की अच्छी शोभा है।

कहलगाँव—भागलपुर से लगभग २० मील पूर्व, गंगा के किनारे पर, यह एक छोटा-सा कस्बा है। ई० आइ० आर० का स्टेशन और व्यापार का केन्द्र है। बहुत प्राचीन और ऐतिहासिक महत्त्व का स्थान है। इसका पुराना नाम 'कुलगंग' है। सुलतानगंज की तरह यहाँ भी गंगा की मध्य धारा में एक विशाल पहाड़ी टीले पर विचित्र शैली का एक मन्दिर है।

मनिहारी—कहलगाँव से लगभग २८ मील पूर्व गंगा के उत्तरी किनारे पर बसा हुआ एक छोटा-सा गाँव है। उत्तर बिहार में जाने के लिये यही पाँचवाँ (अन्तिम) घाट-स्टेशन है। गंगा के दक्षिणी तट पर स्थित ई० आइ० आर० के सकरीगली स्टेशन से यह स्टीमर द्वारा सम्बद्ध है। सूर्य चन्द्र ग्रहण के अवसर पर यहाँ मेले लगते हैं। कार्तिक-पूर्णिमा और शिवरात्रि को भी छोटे-छोटे मेले लग जाते हैं। यह पुर्नियाँ जिले में पड़ता है। इसी जिले के काढ़ागोला नामक गाँव में भी माघी पूर्णिमा को बहुत बड़ा मेला होता है, यह गाँव गंगा के उत्तरी तट पर है, यहाँ से दार्जिलिङ्ग तक बहुत ही अच्छी पक्की सड़क है।

उपर्युक्त 'सकरीगली' नामक गंगा-तटस्थ स्टेशन से ६ मील पश्चिम 'साहबगंज' एक प्रसिद्ध रेलवे-स्टेशन है, जिसका उल्लेख पहले नहीं हो सका है। सन्ताल परगना जिले में साहबगंज ही सबसे बड़ा शहर है। यह गंगा के दक्षिणी तट पर बसा हुआ एक व्यापार-केन्द्र है। इसके बाद गंगा के दक्षिणी तट पर बिहार प्रान्त का अन्तिम नगर 'राजमहल' है, जो सन्ताल परगना जिले का एक सबडिवीजन (तहसील) है। ऐतिहासिक दृष्टि से 'राजमहल' अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान है, बंगाल और बिहार की राजधानी रह चुका है, यहाँ के दर्शनीय पुराने खँडहर इसके प्रमाण हैं।

राजमहल के बाद श्रीगंगाजी बंगाल में प्रवेश करती हैं और इस प्रान्त में उनकी कई धाराएँ हो जाती हैं। ये धाराएँ अन्त में बंगाल की खाड़ी में जाकर गिरती हैं।

एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि बिहार में गंगाजी के दक्षिण तट पर ही नगर और महत्त्वपूर्ण स्थान हैं, उत्तरी तट पर कोई नहीं, क्योंकि गंगा के उत्तर

की भूमि हिमालय की तराई के समीप होने से बहुत नीची है। किन्तु उत्तरी तट की भूमि अत्यन्त उर्वरा शक्ति-सम्पन्न तथा लहलही हरियाली से भरपूर है ॐ।

ॐ मैं श्रीगंगाजी के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिख रहा हूँ। मेरा विचार तो यह था कि स्वयं नाव पर हरद्वार से गंगासागर तक सैर करूँ—गंगा-तटस्थ प्रत्येक दर्शनीय स्थान एवं सन्त महात्मा के दर्शन करूँ, पर अभी तक ऐसा सुअवसर न प्राप्त हुआ। बिहार और बंगाल में गंगा-तट पर जो दर्शनीय स्थान और महात्मा हैं उनके सचित्र परिचय की मुझे आवश्यकता है। कृपया गंगाप्रेमी पाठक इधर ध्यान दें।

सुलतानगन्ज (भागलपुर) में, गंगाजी की मध्यधारा में टापूनुमा पहाड़ी पर, अजगवीनाथ महादेव का मन्दिर। पहले इसके बौद्धमन्दिर होने के भी प्रमाण मन्दिर में ही मिलते हैं। (पृष्ठ ९४)

कहलगाँव (भागलपुर) में गंगाजी की मध्यधारा में पहाड़ी टापू का दृश्य (पृष्ठ ९५)

की भूमि हिमालय की तराई के समीप होने से बहुत नीची है। किन्तु उत्तरी तट की भूमि अत्यन्त उर्वरा-शक्ति-सम्पन्न तथा लहलही हरियाली से भरपूर है *।

* मैं श्रीगंगाजी के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिख रहा हूँ। मेरा विचार तो यह था कि स्वयं नाव पर हरद्वार से गंगासागर तक सैर करूँ—गंगा-तटस्थ प्रत्येक दर्शनीय स्थान एवं सन्त महात्मा के दर्शन करूँ, पर अभी तक ऐसा सुअवसर न प्राप्त हुआ। बिहार और बंगाल में गंगा-तट पर जो दर्शनीय स्थान और महात्मा हैं उनके सचित्र परिचय की मुझे आवश्यकता है। कृपया गंगाप्रेमी पाठक इधर ध्यान दें।

सुलतानगंज (भागलपुर) में, गंगाजी की मध्यधारा में, टापूनुमा पहाड़ी पर, अजगवीनाथ महादेव का मन्दिर। पहले इसके बौद्धमन्दिर होने के भी प्रमाण मन्दिर में ही मिलते हैं। (पृष्ठ १४)

कहलगाँव (भागलपुर) में गंगाजी की मध्यधारा में पहाड़ी टापू का दृश्य (पृष्ठ १५)

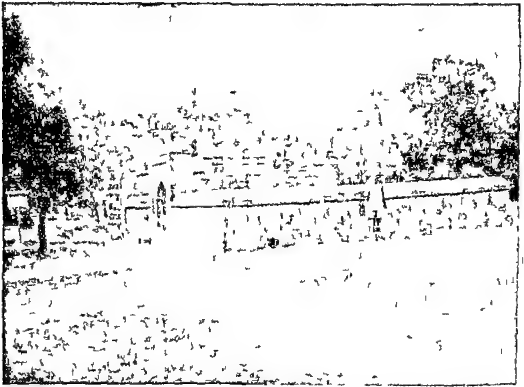

कहलगाँव (भागलपुर) में सुलतान महमूद का टूटा फटा मकबरा

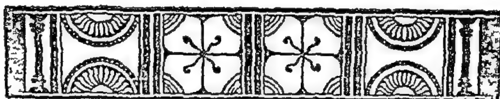

बिहार का खनिज धन और उसके उद्योग-धन्धे

प्रोफेसर फूलदेवसहाय वर्मा, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

हमारी पृथ्वी के अन्दर एक से-एक सुन्दर और बहुमूल्य वस्तुएँ पडी हुई है। पहले जिस स्थल पर ऐसी वस्तुएँ मिलती थीं उस स्थल को लोग खोदते थे। खोदने से उस प्रकार की और वस्तुएँ वहाँ मिलती थीं। इस प्रकार के खोदे हुए स्थान को 'खान' कहते थे और खान से निकले हुए पदार्थों को 'खनिज'।

जैसे-जैसे विज्ञान के अध्ययन मे तरक्की हुई वैसे-वैसे विज्ञान के भिन्न भिन्न अंगों का अध्ययन होने लगा। फल-स्वरूप उस विज्ञान का आविर्भाव हुआ जिससे हमें पृथ्वी के गर्भ में स्थित पदार्थों का ज्ञान होता है। इस विज्ञान को 'भूगर्भ विज्ञान' (जिओलौजी) कहते हैं। इस विज्ञान के द्वारा पृथ्वी की उत्पत्ति, उसकी बनावट, उसका भिन्न भिन्न खंडों में विभाजन, पर्वत-नदी-समुद्रादि की सृष्टि और पृथ्वीगर्भ में स्थित सब वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त होता है। इस विज्ञान की पढ़ाई का आरम्भ आजतक बिहार-प्रान्त में नहीं हुआ है!!!

हर देश और प्रान्त को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं होता कि उसकी भूमि में सब उपयोगी खनिज विद्यमान हों। जिस देश में खनिजों का बाहुल्य होता है वह देश अधिक सम्पत्ति-शाली होता है। वर्तमान काल में अनेक राष्ट्रों में जो वैमनस्य चल रहा है वह बहुत-कुछ इन खनिजों के नियंत्रण के कारण ही होता है। खनिज तेलों के कारण ही इटली ने अबिसीनिया को अपने अधीन कर लिया है। इसके कारण इटली अब यूरोप में एक प्रबल राष्ट्र बन गया है। चीन पर

जापान के आक्रमण का भी एक प्रबल कारण चीन के खनिजों पर जापान का आधिपत्य जमाना है।

बिहार के लिये बड़े सौभाग्य की बात है कि उसकी भूमि में एक-से-एक उपयोगी और बहुमूल्य खनिज विद्यमान हैं। पर खेद है कि विदेशी शासन ने उन अधिकांश खानों और खनिजों से बिहार-वासियों को वञ्चित कर दिया है। पर अबतक जो खानें और खनिज उनके अधिकार में हैं उन्हें दूसरों के हाथ न जाने देने और उनसे अधिक-से अधिक प्रान्त को लाभ पहुँचाने की कोशिश होनी चाहिये। बिहार में बहुमूल्य और उपयोगी खनिज इतनी अधिक मात्रा में विद्यमान हैं कि एक अर्थशास्त्र-विशेषज्ञ के कथनानुसार सारे भारत का बिहार ही कारखाना-केन्द्र बन सकता है।

आधुनिक युग में कोयला एक बड़ी उपयोगी वस्तु है। सब प्रकार के कल कारखानों के चलाने के लिये शक्ति की जरूरत होती है। बिना शक्ति के कोई कल-कारखाने नहीं चल सकते। यह शक्ति आजकल कोयले, खनिज तेल और जल-प्रपात से ही प्राप्त होती है। कोयला प्राचीन काल—लाखों वर्ष पूर्व—की, सूर्य से प्राप्त, सञ्चित शक्ति है। बिहार में बहुत अधिक मात्रा में कोयला पाया गया है।

भारत की ६५ फी सदी कोयले की खानें बिहार में हैं और उनका तीन-चौथाई भाग केवल झरिया में है। झरिया और रानीगंज के कोयले उत्कृष्ट कोटि के होते हैं। बोकारो और करनपुरा में स्थित अत्यधिक कोयले उतने अच्छे दर्जे के नहीं समझे जाते। जिन उद्योग धन्धों में अधिक जलावन की जरूरत होती है, वे उद्योग-धन्धे अपेक्षाकृत कम खर्च में, कोयले की खानों के निकटवर्ती स्थानों में, चल सकते हैं।

कोयले से बड़ी सस्ती बिजली भी उत्पन्न हो सकती है। कोयले को वायुशून्य बरतनों में गरम करने से कोलतार इत्यादि अनेक उपयोगी पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं। इस कोलतार से ही कृत्रिम रंग, ओषधियाँ इत्यादि सामान तैयार होते हैं। इन रंगों और ओषधियों के लिये हमें आज जर्मनी पर निर्भर करना पड़ा है। यदि कोयले से कोलतार प्राप्त करने की कोशिशें हों तो हम सरलता से बिहार में इन सब पदार्थों का निर्माण कर सकते हैं।

आधुनिक युग में लोहा एक दूसरी बड़ी उपयोगी वस्तु है। लोहे से कितनी चीजें बनती हैं, उनका वर्णन सम्भव नहीं। कोई ऐसा व्यक्ति न होगा जो लोहे की चीजों का प्रतिदिन व्यवहार न करता हो। कील-काँटे और सूई से

लेकर बड़े-बड़े इंजिन, डायनमो, मशीन और जंगी जहाज तक लोहे से बनते हैं। एशिया-खण्ड का सबसे बड़ा लोहे का कारखाना बिहार-प्रान्त के 'जमशेदपुर' नगर में ही स्थित है। लोहे का खनिज इतनी मात्रा में इस प्रान्त में विद्यमान है कि अनेक ऐसे कारखाने खुल और चल सकते हैं। यहाँ के लोहे का खनिज उत्कृष्ट कोटि का होता है।

आधुनिक वैज्ञानिक युग में अबरक (अभ्रक) एक तीसरी बड़ी उपयोगी वस्तु है। अन्य उपयोगों के साथ विद्युत् यन्त्रों में इसका उपयोग बड़ा महत्त्वपूर्ण है। बिना अबरक के अनेक विद्युत्-यन्त्रों का निर्माण हो ही नहीं सकता। बिहार अबरक के लिये संसार में सुप्रसिद्ध है। सारे संसार का प्राय ५५ फी सदी अबरक केवल बिहार की खानों से निकलता है। ये खानें गया, हजारीबाग, भागलपुर और मुँगेर जिलों में हैं। अबरक भिन्न भिन्न रंगों के होते हैं और प्राय सभी रंगों के अबरक बिहार में पाये जाते हैं। अबरक के चूर्ण से मिकेनाइट तैयार होता है। इसकी चद्दरें छप्परों के छाजन और अन्य अनेक कामों में प्रयुक्त होती हैं। बिहार का अबरक सर्वश्रेष्ठ कोटि का होता है।

सन् १९३८–३९ में प्राय ५२ लाख रुपये के चीनी मिट्टी और अग्नि-जित् (आग से न पिघलनेवाली) मिट्टी के सामान बाहर से भारत में आये। पर बिहार में केवल ८६ हजार रुपये के सामान बने। केवल एक कम्पनी 'बिहार-फायर ब्रिक' और 'पौटरी लिमिटेड' बिहार के मानभूमि जिले में ईंटें और टाइल बनाने का काम कर रही है। बिहार में उच्चकोटि की केओलीन, चीनी मिट्टी और अग्निजित् मिट्टी मिलती हैं, पर उन्हें उपयोग में लाने का अबतक कोई प्रबन्ध नहीं हुआ है। उच्चकोटि की ऐसी मिट्टी भागलपुर जिले के पटारघट्टा पहाड़ी पर, बाँका सबडिवीजन के सुमुखिया गाँव में और गगापुर स्टेट के किरपसेरा, मॉझापारा, डुनरगुट, कारडेगा इत्यादि स्थानों में मिलती है। गया जिले के कौआरोल में भी अच्छी मिट्टी मिली है। मानभूमि जिले के पटलाबारी और उसके अन्य निकटवर्त्ती स्थानों में तथा महालधी गाँव में अग्निजित् मिट्टी प्राप्त हुई है। इसी मिट्टी से उपर्युक्त कम्पनी काम कर रही है। मुँगेर जिले के नौवाडीह, पलामू जिले के रम्हारा, राँची जिले के डुमाटीपाट, सिंहभूमि जिले के हाटगभरिया, रघुनाथपुर, पद्मासाली, धाराडीह इत्यादि स्थानों में, सताल परगना के दुधानी, करनपुर, कटाङ्गी, बागमारा, भुरकड़ा, मगलहाट इत्यादि स्थानों में पर्याप्त उच्चकोटि की मिट्टी प्राप्त होती है। इन्हीं स्थानों से मिट्टी जाकर

कलकत्ते की पौटरी कम्पनी मे भी प्रयुक्त होती है। कॉच बनाने के उत्कृष्ट कोटि के सामान—स्फटिक, रेत इत्यादि—भी पर्याप्त मात्रा मे बिहार मे प्राप्य हैं।

अलुमिनियम भी एक उपयोगी धातु है। हल्का होने के कारण इसका उपयोग विशेषकर हवाई जहाज के निर्माण मे दिन-दिन बढ रहा है। इसके अनेक घरेलू बरतन बनते हैं। यह बौक्साइट नामक खनिज से तैयार होता है। बौक्साइट पर्याप्त मात्रा मे बिहार के पलामू और रॉची जिलों मे प्राप्य है। बिहार के बौक्साइट में अलुमिनियम अधिक रहता है।

तॉबे के भी अनेक उपयोग हैं। तॉबे के खनिज बिहार के हजारीबाग, संतालपरगना, मानभूमि और पलामू जिलों मे पाये जाते हैं। थोडी-सी मात्रा मे खानों से निकालकर तॉबे के बनाने मे प्रयुक्त होता है।

मैंगनीज धातु के खनिज बिहार के सिंहभूमि जिले मे पाये गये हैं। वहाँ से निकालकर यह कुछ बाहर भी भेजा जाता है। आजकल मैंगनीज खनिजों की उपयोगिता बहुत अधिक बढ गई है, क्योंकि लोहे के साथ मिलकर मैंगनीज एक बहुत उपयोगी मैंगनीज-इस्पात बनाता है।

बहुमूल्य धातुओं मे रेडियम का स्थान सबसे ऊँचा है। इसके बहुमूल्य होने का कारण इसका बहुत कम मात्रा में मिलना और अनेक रोगों के निवारण में प्रयुक्त होना है। रेडियम से रोगों के निवारण के लिये अनेक स्थानों पर विशेष अस्पताल बने हैं। ऐसे अस्पतालों में भी रेडियम की मात्रा थोडी ही रहती है। रेडियम पिचब्लेंड नामक खनिज से प्राप्त होता है। यह खनिज अबरक की खानों में बिहार में पाया गया है।

उत्कृष्ट कोटि के अस्बेस्टस के खनिज सिंहभूमि और मुंगेर जिलों में पाये गये हैं। अस्बेस्टस ताप चालक नहीं होता। इससे इसका प्रयोग चूल्हों और भट्ठों के निर्माण में होता है। आग बुझानेवालों के कपडे भी अस्बेस्टस के बनते हैं। बिहार में स्थित अस्बेस्टस को निकालकर प्रयुक्त करने की अभीतक कोई चेष्टा नहीं हुई है।

उपर्युक्त खनिजों के सिवा सीस धातु, चॉदी, अटीमनी और वङ्ग के खनिज भी हजारीबाग, मुंगेर, मानभूमि, सिंहभूमि, रॉची और पुरुलिया जिलों में पाये गये हैं। मोलिब्डेनम के खनिज और मोनेजाइट भी, जिसमे थोरियम प्राप्त है, अनेक स्थानों में पाये गये हैं। 'थोरियम' पेट्रोमैक्स लालटेन की बत्ती के में व्यवहृत होता है। लाल और पीले रंग के और सिंहभूमि में पाये गये हैं। ये रंग के रूप में व्यवहृत हो

घर बनाने के सामान—चूना, पत्थर, कङ्कड़ इत्यादि—बिहार के अनेक स्थानों में पाये जाते हैं। उनसे आज भी अनेक कम्पनियाँ चूना और सीमेंट बनाने के काम करती हैं। छोटानागपुर की नदियों और सोन नदी की रेतों में 'सोना' रहता है। पटना में ग्रेफाइट मिलता है जिससे लिखने की पेन्सिल तैयार होती है। इनके अतिरिक्त हीरा, माणिक्य, वैदूर्य, अकीक इत्यादि बहुमूल्य पत्थर भी बिहार में मिलते हैं। बिहार की भूमि वस्तुत रत्नगर्भा है।

खनिज धन का इतना बाहुल्य होने पर भी दुर्भाग्यवश बिहार अबतक उद्योग-प्रधान प्रान्त नहीं हो सका है—इसका एकमात्र कारण उद्योग धन्धों में लोगों की दिलचस्पी का अभाव और इस ओर से बिहार-सरकार की पूर्ण उदासीनता है। यद्यपि बिहार कृषि प्रधान प्रांत कहा जाता है, तथापि उद्योग-प्रधान प्रान्त होने के अनेक आवश्यक साधन प्रचुर मात्रा में यहाँ सुलभ हैं।

उद्योग धन्धों के स्थापन और सफल सञ्चालन के लिये जो-जो चीजें आवश्यक हैं उनमें मुख्य ये हैं—पूँजी के सिवा विशेषज्ञों का होना, कच्चे मालों की उत्पत्ति और सुगमता से उनकी प्राप्ति, सस्ती शक्ति और सस्ते मजदूरों की प्राप्ति। विशेषज्ञ शिक्षा और अनुभव से तैयार होते हैं। इसके लिये दो ही उपाय हैं। या तो ऐसी शिक्षा के लिये शिक्षा-संस्थाएँ खोली जायँ अथवा जहाँ ऐसी शिक्षा-संस्थाएँ पहले से विद्यमान हों वहाँ शिक्षा पाने के लिये छात्रों को उपयुक्त सुविधा दी जाय। पहली विधि अधिक खर्चीली है। ऐसी शिक्षा-संस्थाओं के स्थापन और सञ्चालन में बहुत अधिक खर्च पड़ता है। दूसरी विधि अपेक्षाकृत सस्ती है। सरकार को चाहिये कि वह प्रतिवर्ष छात्रों को वृत्ति देकर इस देश अथवा विदेश की औद्योगिक संस्थाओं में शिक्षा प्राप्ति के लिये भेजे और ऐसी शिक्षा के पश्चात् कारखानों में उन्हें अनुभव प्राप्त करने का विशेष सुयोग दे। यह काम सरकार के द्वारा ही हो सकता है। बिना ऐसे विशेषज्ञ तैयार हुए उद्योग धन्धों की उन्नति नहीं हो सकती।

कच्चे माल बिहार में पर्याप्त मिलते हैं। बिहार के कच्चे मालों से अनेक कारखाने बिहार के बाहर चलते हैं। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि अनेक खनिज भी प्रचुर मात्रा में बिहार में मिलते हैं। इन खनिजों से दर्जनों कल-कारखाने चल सकते हैं, जिनमें लाखों आदमियों का गुजर हो सकता है।

बिहार में कोयले का बाहुल्य है। इससे बड़ी सस्ती बिजली उत्पन्न हो सकती है। बिहार में जल प्रपात भी हैं, जिनसे भी सस्ती बिजली उत्पन्न की जा सकती है। अत सस्ती शक्ति की प्राप्ति के लिये बिहार से बढ़कर दूसरा अधिक उपयुक्त स्थान नहीं मिल सकता।

यहाँ मजदूर भी बहुत और सस्ते मिलते हैं। यहाँ के मजदूरों से ही कलकत्ता और बंगाल के अनेक कल-कारखाने चलते हैं।

उद्योग-धन्धों के लिये यहाँ यदि किसी चीज की कमी है तो केवल पूँजी की। बिहार के निवासी साधारणतया निर्धन होते हैं। जो धनी जमीन्दार हैं वे उद्योग-धन्धों मे दिलचस्पी नहीं लेते। वे तो बचे-बचाये रुपयों को जमीन्दारी बढाने मे लगाना ही अच्छा समझते हैं। इससे उनको उतना लाभ नहीं होता जितना उद्योग-धन्धों मे रुपये लगाने से हो सकता है, पर वे अपने रुपयों को उद्योग-धन्धों मे लगाने मे असमर्थ हैं, क्योंकि उद्योग धधों मे पूँजी लगाने के लिये उन्हें सरकार की ओर से प्रोत्साहन नहीं मिलता। जबतक सरकार की ओर से उद्योग धन्धों की उन्नति का विशेप उद्योग न होगा तबतक उद्योग धन्धों का भविष्य बिहार के लिये उज्वल नहीं है।

ऊपर कह चुके हैं कि एशिया खड का सबसे बडा लोहे का कारखाना बिहार के सिंहभूमि जिले के 'तातानगर' मे है। इस नगर की सृष्टि इस कारखाने के कारण ही हुई है। करोडों रुपये की पूँजी से यह कारखाना स्थापित हुआ है। इसकी प्राय बहुत कुछ पूँजी बम्बई और कलकत्ता के लोगों की है। हजारों रुपये मासिक वेतन पानेवाले विशेपज्ञ इसमे नियुक्त हैं। ये विशेपज्ञ पहले अमेरिका से आये थे। अब बहुत-से भारतीय भी उच्च पदों पर आसीन हैं। करीब १६ हजार आदमी इस कारखाने मे काम करते हैं। यहीं एक दूसरी कम्पनी—टिनप्लेट कम्पनी—है, जिसमे प्राय तीन हजार आदमी काम करते हैं। इसके निकट ही कुमारधुबी मे ईगल रोलिंग कम्पनी है, जिसमे ४४५ आदमी काम करते हैं। इस प्रकार बिहार मे लोहा और लोहे के सामान तैयार करनेवाली तीन कम्पनियाँ हैं, जिनमे प्राय साढे बाइस हजार आदमी काम करते हैं।

बिहार मे सबसे अधिक कारखाने खेती से उपजे हुए माल के हैं। इन कृषि-उद्योगों मे ईख से चीनी तैयार करने के कारखाने सर्व-प्रधान हैं। चीनी के कारखाने (सुगर मिल) बिहार मे ३६ हैं जिनमे १८३२४ आदमी काम करते हैं। इनमे चम्पारन मे ६, सारन मे ६, शाहाबाद मे ३ मुजफ्फरपुर में ३, दरभगा मे ५, पटना मे १, भागलपुर मे ६, गया में १, मुँगेर मे १ और पुर्नियाँ मे १ हैं। इन कारखानों के अधिकाश मालिक और मैनेजिंग एजेंट बिहार से बाहर के रहनेवाले हैं। इनमे ऊँचे पदों पर वे बाहर के आदमियों को ही नियुक्त करते हैं। इन कारखानों को स्थायी बनाने के लिये यह आवश्यक है कि ईख की पैदावार बढाई जाय,

ईख में चीनी की मात्रा बढ़ाई जाय, और ईख से अधिक चीनी निकालने में सफलता प्राप्त की जाय। ईख के शीरे से कुछ उपयोगी चीजें बनाने की भी कोशिश होनी चाहिये। ऐसा न होने से भारत के चीनी के व्यवसाय का भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता।

चीनी के बाद चावल, आटा और तेल तैयार करने के कारखाने हैं। धान से चावल निकालने की ६२ मिलें हैं जिनमें ३६५७ आदमी काम करते हैं। इनमें पटना में २, मुजफ्फरपुर में ४, मानभूमि में ७, गया में २, चम्पारन में ८, शाहाबाद में १, सारन में १, दरभगा मे १६, पुर्नियाँ में ६, सतालपरगना मे ३, भागलपुर में १० और सिंहभूमि में ४ हैं। आटा पीसने के बड़े कारखाने केवल तीन हैं और छोटे-छोटे कारखाने करीब ५०० । बड़ी मिलें प्राय १७ लाख मन गेहूँ पीसती हैं। बड़े कारखानों मे ३१५ आदमी काम करते हैं। पटना मे श्री बिहारी मिल्स, पटना सिटी, भागलपुर मे शिवगौरी फ्लावर मिल्स, भागलपुर और पुर्नियाँ मे कटिहार-फ्लावर मिल्स हैं। तेल पेरने के कारखाने बिहार मे २३ हैं जिनमे मानभूमि मे ७, मुँगेर मे १, पटना मे ५, गया में ४, भागलपुर में १, सतालपरगना में ५, शाहाबाद मे १, पुर्नियाँ में २, सिंहभूमि मे १ और राँची में १ हैं। इनमे करीब १६ हजार आदमी काम करते हैं।

बिहार मे तम्बाकू करीब १२ लाख मन पैदा होता है, पर तम्बाकू से सिगरेट बनाने का केवल एक ही बड़ा कारखाना बिहार के मुँगेर जिले मे है—टुबैको मनुफैक्चरर लिमिटेड, बसुदेवपुर। इस टुबैको फैक्टरी मे १७४६ आदमी काम करते हैं। दरभगा जिले मे भी दो छोटे-छोटे कारखाने हैं—'इडियन टुबैको बट्ट फैक्टरी' (दलसिंगसराय) और 'इडियन लीफ टुबैको डेवलपमेट कम्पनी वर्क्स' (दलसिंगसराय)—जिनमे प्राय १५४ आदमी काम करते हैं।

दाल बनाने के ६ कारखाने हैं—१ भागलपुर मे, १ सतालपरगना मे, २ पटना में और २ मुँगेर मे, जिनमे करीब ५०० आदमी काम करते हैं। चाय के भी कारखाने बिहार मे ६ ही हैं—३ राँची मे और ३ पुर्नियाँ मे, जिनमें ३३६ आदमी काम करते हैं। नील के कारखाने भी बिहार में ६ ही हैं—१ मुँगेर में, ३ मुजफ्फरपुर में और २ दरभगा में, जिनमें ३५८ आदमी काम करते हैं।

कपड़े के पुतलीघर बिहार में कम हैं। केवल दो ही कारखाने हैं—कॉटन ऐंड जूट मिल्स (गया) और बिहार कॉटन मिल्स (फुलवारीशरीफ, पटना)। सरकार की सेंट्रल जेल (बक्सर) में भी कपड़े की अच्छी बुनाई होती है। जूट मिलें भी

बिहार में तीन ही हैं—एक दरभगा जिले में और दो पुर्नियाँ जिले में—रामेश्वर मिल (मुक्तापुर, दरभगा) और 'कटिहार जूट मिल्स' तथा 'रायबहादुर हरदत्त राय मोतीलाल जूट मिल्स' (कटिहार, पुर्नियाँ)। ऊनी कपड़ों की बुनाई केवल भागलपुर के 'सेंट्रल जेल वर्क्स' मे होती है। कपडे, जूट और ऊन के कारखानों के लिये रुई, जूट और ऊन की पैदावार बिहार में पर्याप्त होती है तथा और भी अधिक हो सकती है। यहाँ इनके तैयार माल की खपत भी पर्याप्त है। अत और भी मिलें खुल सकती और सफलता से चल सकती हैं।

मोटर-गाडी और अन्य गाडियों के बनाने और मरम्मत करने का केवल एक ही कारखाना मुजफ्फरपुर में है—'बिहार मोटर वर्क्स'। इजिनियरिंग के कारखाने बिहार मे छोटे मोटे ५ हैं, जिनमे करीब १५०० आदमी काम करते हैं। इनमें ३ ईस्ट-इडिया रेलवे के हैं—इलेक्ट्रिक पावर हाउस, जमालपुर (मुँगेर), इलेक्ट्रिक पावर हाउस, धनबाद (मानभूमि) और इलेक्ट्रिक पावर हाउस, गोमो (हजारीबाग)। एक बी० एन० रेलवे का है—पावर हाउस, आद्रा (मानभूमि)। एक 'इडियन केबल कम्पनी' तातानगर (सिंहभूमि) मे है।

बिजली पैदा करने के ७ बडे कारखाने बिहार मे हैं, जिनमे प्राय ४५० आदमी काम करते हैं—स्टीम पावर स्टेशन (पटना), इलेक्ट्रिक सप्लाइ कम्पनी (मुजफ्फरपुर), इलेक्ट्रिक सप्लाइ कम्पनी (भागलपुर), ई० आइ० रेलवे इलेक्ट्रिक सप्लाइ कम्पनी (गया), ई० आइ० रेलवे इलेक्ट्रिक पावर हाउस (झाझा, मुँगेर), सिजुआ इलेक्ट्रिक सप्लाइ कम्पनी (लोयाबाद, झरिया) और इलेक्ट्रिक सप्लाइ कॉरपोरेशन, दरभगा।

कल-पुरजे बनाने के कारखाने (वर्कशौप) बिहार मे १८ हैं, जिनमें ५२४६ आदमी काम करते हैं। इनमे मानभूमि मे ६ वर्कशौप हैं—कुमारधुबी इजिनियरिंग वर्क्स (कुमारधुबी), कतरास इजिनियरिंग वर्क्स (कतरासगढ), झरिया आयरन एंड ब्रास वर्क्स (झरिया), ईस्टर्न कोल कम्पनी भौवरा कोलियरी वर्क्स (जमदोबा), लोदना इजिनियरिंग वर्क्स (झरिया), एक्रा इजिनियरिंग वर्क्स (घसजोरा)। सिंहभूमि मे ४ हैं—एग्रिकल्चरल इम्प्लीमेंट कम्पनी (तातानगर), जमशेदपुर इजिनियरिंग वर्क्स (जमशेदपुर), इडियन स्टीलवायर प्रोडक्ट्स (तातानगर), इडियन ह्यूम पाइप कम्पनी (जमशेदपुर)। मुजफ्फरपुर मे दो हैं—आर्थर बटलर एंड कम्पनी इजिनियरिंग वर्क्स (मुजफ्फरपुर), तिरहुत टेकनिकल इंस्टिट्युट वर्कशौप (मुजफ्फरपुर)। हजारीबाग मे एक है—हजारीबाग रिफौर्मेटरी स्कूल वर्कशौप।

सारन मे एक है—सारन इंजिनियरिंग वर्क्स, महौढ़ा। पटना मे दो है—ए० शर्मा फैक्टरी (कदमकुआँ, पटना), बिहार कौलेज आफ इंजिनियरिंग वर्कशौप, (बाँकीपुर)। शाहाबाद मे एक है—पबलिक वर्क्स डिपार्टमेंट इंजिनियरिंग वर्कशौप (डिहरी, सोन-तटस्थ)। राँची मे एक है—राँची टेक्निकल स्कूल वर्कशौप (राँची)।

रेलवे के कारखाने बिहार मे २४ हैं जिनमे करीब १२ हजार आदमी काम करते हैं। इनमे ई० आइ० रेलवे के ६ हैं—जमालपुर, भाभा, दानापुर, मगोल, बनियाडीह, धनबाद, गोमो, जमशेदपुर और गया। बी० एन० डब्लू० रेलवे के ५ हैं—बरौनी, समस्तीपुर, मुकामाघाट, सोनपुर और मुजफ्फरपुर। बी० एन० रेलवे के ६ हैं—आद्रा, पुरुलिया, अनारा (मानभूमि), भोजूडीह और चक्रधरपुर (सिंहभूमि), तातानगर। ई० बी० रेलवे का एक कटिहार में और डिहरी-रोहतास लाइट रेलवे का एक डिहरी (Dehri on Sone) मे है।

जहाज बनाने का केवल एक कारखाना, आइ० जी० ऐंड आर० एस० नेविगेशन कम्पनी का, दीघाघाट (पटना) मे है, जहाँ करीब २५० आदमी काम करते हैं। यह गंगा-तट पर स्थित है।

लोहे के छोटे-मोटे सामान तैयार करने के तीन छोटे-छोटे कारखाने है, जिनमे करीब एक हजार आदमी काम करते हैं—दि ताता फाउन्ड्री (तातानगर), पटना आयरन फाउन्ड्री (पटना सिटी) और बाँकीपुर आयरन वर्क्स (बाँकीपुर)।

ताँबे के खनिजों को पिघलाकर ताँबा तैयार करने का एक कारखाना सिंहभूमि जिले के मौभन्दर स्थान मे है—दि इंडियन कौपर कॉरपोरेशन कम्पनी, जिसमे प्राय १३०० आदमी काम करते हैं।

अबरक की एक कम्पनी डोमचाँच (हजारीबाग) में है, जिसमें प्राय पौने दो सौ आदमी काम करते हैं—एफ० एफ० क्रिश्चियन ऐंड कम्पनी माइका फैक्टरी।

मिठाई और बिस्कुट बनाने की केवल एक कम्पनी—मॉर्टन लिमिटेड, महौढ़ा—जिला सारन में है, जिसमें प्राय ७० आदमी काम करते हैं। शायद यह कम्पनी साल भर नहीं चलती।

शराब बनाने के लिये बिहार में ४ डिस्टिलरी हैं, जिनमें प्राय २०० आदमी काम करते हैं—एक सारन जिले में 'महौढ़ा डिस्टिलरी' है। एक भागलपुर जिले में 'सुलतानगंज डिस्टिलरी है। राँची जिले में एक 'लालपुर डिस्टिलरी' है। मुँगेर जिले में एक 'मनरूढा डिस्टिलरी' है।

नालन्दा को भगवान तथागत की चरण धूलि से पवित्र होने के अनेक अवसर मिले थे। उन्होंने नालन्दा मे एक वर्षा-वास भी किया था, चौमासा बिताया था। यहाँ का सुन्दर आम्रवन, जिसमे भगवान् ठहरे थे, सेठ प्रावारक ने उन्हें दान कर दिया था। भगवान् के प्रधान शिष्य—'धर्म सेनापति' की उपाधि से विभूषित—'सारिपुत्र' यहीं पैदा हुए थे।

सारिपुत्र का जन्म 'नालक' ग्राम मे हुआ था। शायद नालन्दा के खँडहर से पूर्व की ओर स्थित वर्त्तमान 'सरिचक' नामक गाँव ही नालक ग्राम था। हो सकता है, बाद में, सारिपुत्र के नाम पर ही, इसका नाम पड़ा हो और अन्त मे बिगड़ते-बिगड़ते सरिचक हो गया हो।

नालन्दा का भग्नावशेष बख्तियारपुर-बिहार-लाइट (बी० बी० एल०) रेलवे के 'नालन्दा' स्टेशन से लगभग एक मील पर है। पालि साहित्य मे 'नालन्दा' राजगृह से आठ मील की दूरी पर बतलाया गया है। चीनी भिक्षु 'फा हियान' का भी यही कथन है। कुछ दिनों तक नालन्दा के स्थान निर्देश मे भी बड़ी धाँधली रही। किन्तु खँडहरों की खुदाई हो जाने के कारण अनुमान और कल्पना की कोई गुंजायश ही नहीं रही। सुप्रसिद्ध चीनी यात्री 'ह्यान-च्वाङ्' का कथन है कि वज्रासन (बुद्धगया) से नालन्दा ४६ मील की दूरी पर स्थित है।

बौद्ध-साहित्य मे नालन्दा का बड़ा महत्त्व है। नालन्दा ने ही सारिपुत्र और मौद्गल्यायन-जैसे मनीषियों को पैदा किया। भगवान् बुद्धदेव ने यहाँ के 'पावारिक' आम्रवन मे रहते हुए अनेक महत्त्वपूर्ण और सारगर्भ उपदेश दिये थे।

यहीं एक बार किसी ने भगवान् से आकर पूछा—"भगवन्! ब्राह्मण लोग 'मृतक को हम अपने मन्त्रबल से स्वर्ग भेज सकते हैं' कहकर प्रचार करते फिरते हैं। क्या आप भी ऐसा कर सकते हैं?" भगवान् ने उत्तर दिया—"जो जीवहत्या, चोरी आदि दुष्कर्म करता है वह कभी स्वर्ग नहीं जा सकता।"

जैन-ग्रन्थों के देखने से भी पता चलता है कि राजगृह से उत्तर की ओर नालन्दा अवस्थित था। एक बार जब बुद्ध नालन्दा मे वास कर रहे थे तब श्रीपार्श्वनाथ के शिष्य 'उदक' के साथ उनका परिचय हुआ था। उसने कर्मफल के सम्बन्ध मे भगवान् का सिद्धान्त जानने के लिये अपने एक साथी को उनके पास भेजा था।

चीनी यात्री ह्यान्-च्वाङ् के कथनानुसार नालन्दा वर्त्तमान बिहार [illegible] शहर के दक्षिण-पश्चिम में एक आम का बागीचा था। [illegible] मे एक [illegible]

प्राप्त (बैठे हुए) अवलोकितेश्वर की काँसे की मूर्ति

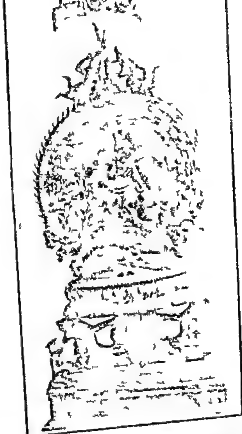

नालंदा में प्राप्त १८ हाथों वाली 'तारा' की काँसे की मूर्ति

...दा में प्राप्त चार हाथों वाली पत्थर की देवी-मूर्ति

नालंदा में प्राप्त गजलक्ष्मी की प्रतिमूर्ति वाली मिट्टी की मुहर

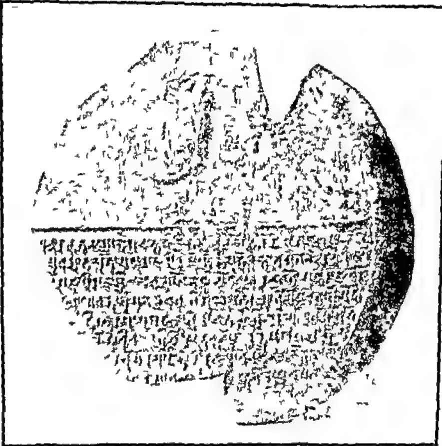

नालन्दा की खुदाई में पाया गया, मिट्टी का, पकाया हुआ, पतला चित्रित टुकड़ा, जिसके नीचे भास्कर वर्मा की प्रशस्ति और ऊपर हाथी की प्रतिमूर्ति है।

नालन्दा में प्राप्त (खड़े हुए) 'त्रयलोक्यविजय' की काँसे की मूर्ति का सामने का दृश्य

थी, जिसमे 'नालन्दा' नामक एक नाग-राज रहता था। ऐसा भी कहा जाता है कि भगवान बुद्ध पूर्व-जन्म मे वहाँ बोधिसत्व के रूप मे पैदा हुए थे। ❀

भगवान् के परिनिर्वाण के सौ वर्ष बाद वैशाली मे धर्मसगीति (सभा) हुई थी। उस सगीति मे बौद्ध-धर्म दो भागो मे बँट गया—एक भाग 'स्थविर'वादी कहलाया और दूसरा 'महासाधिक'। धर्म-सम्राट् अशोक के समय तक इन दो प्रमुख भेदों से फिर अनेक प्रभेद हुए। तृतीय सगीति मे सर्वास्तिवादी आदिनिकाय (सम्प्रदाय) वाले, स्थविर वादियों द्वारा, अलग कर दिये गये। पृथक् हो जाने पर सर्वास्तिवादियों ने अन्य निकायों के साथ मिलकर नालन्दा मे अपनी सगीति की। उसी दिन से नालन्दा सर्वास्तिवादियों का केन्द्र बना, किन्तु शुग-काल (१८८ ईसवी पूर्व) मे बौद्धो के ऊपर बडी कठोरता की गई। ब्राह्मण भक्त शासकों ने बौद्ध धर्म का मूलोच्छेद करने मे कोई कोर-कसर नहीं रक्खी। लाचार होकर इन निकायों को मथुरा और फिर कुषाणों के समय मे गन्धार जाकर शरण लेनी पड़ी। कनिष्क के समय मे सर्वास्तिवादियो ने अपना धर्मग्रथ 'त्रिपिटक' पाली से सस्कृत मे कर लिया।

तथागत के समय मे ही नालन्दा मे एक बौद्ध-विहार की स्थापना हो गई थी। मौर्य-सम्राट् अशोक ने अपने शासनकाल मे शिक्षा-प्रचार के लिये काफी चेष्टा की थी। उनके शासन के उत्तरकाल मे उनकी यह चेष्टा सफल हुई। कुछ लोगो की राय मे नालन्दा की स्थापना—शिक्षण-सस्था के रूप मे—इसी समय हुई थी।

भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात शक्रादित्य, बुद्धगुप्त, तथागत गुप्त, बालादित्य और वज्र नाम के पॉच राजाओं ने नालन्दा मे एक-एक सघाराम बनवाया था। स्वर्गीय डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण की राय मे, ४५० ई० के लगभग, बौद्ध-सम्राट् बालादित्य के राजत्वकाल मे, नालन्दा विहार एक विश्वविद्यालय के रूप मे † परिणत हो गया था।

किन्तु नालन्दा मे आर्य नागार्जुन की एक मूर्त्ति मिली है। यदि यह प्रतिमा शून्यवादी नागार्जुन की मानी जाय, तो इससे ज्ञात होता है कि दूसरी शताब्दी के मध्य मे नालन्दा एक सुप्रतिष्ठित शिक्षाकेन्द्र था। यह बात ठीक भी जँचती है, क्योंकि नागार्जुन महायान के प्रवर्त्तक थे और नालन्दा महायानियों का गढ़ था।

❀ बौद्ध विद्यापीठ

† बौद्ध विद्यापीठ

अत नालन्दा-विश्वविद्यालय का प्रारम्भ यदि तृतीय सगीति से माना जाय तो कोई हानि नहीं। यथार्थ मे नालन्दा का विकास क्रमश हुआ था।

जहाँ कभी नालन्दा विद्यापीठ के भव्य भवन थे, वहाँ आ 'बडगाँव' नामक एक गाँव है। बडगाँव के निकट-स्थित विस्तृत और सुदूरव्यापी ध्वसावशेष, ऊँची-ऊँची उजाड दीवारें, अगणित टीले, आसपास के बडे-बडे प्राचीन तालाब आदि नालन्दा के प्राचीनतम गौरवमय दिनों की महत्ता सूचित करते हैं। इस विश्वविद्यालय और इसके आसपास के विहारों के निर्माण की प्रणाली, जो प्राचीन भारत के समुन्नत शिल्प-कला-कौशल का अपूर्व निदर्शन है, ससार मे अपना सानी नहीं रखती।

यह विश्वविद्यालय मगध-साम्राज्य का प्रथम श्रेणी का शिक्षा-केन्द्र था। मगध-साम्राज्य मे चार महाविहार थे—वज्रासन (बुद्धगया), नालन्दा, उदन्तपुरी और विक्रमशिला। धार्मिक दृष्टि से वज्रासन का बडा महत्त्व था, किन्तु साहित्यिक दृष्टि से नालन्दा सर्वश्रेष्ठ था। जब आचार्य दीपङ्कर श्रीज्ञान से नालन्दा के आचार्यों ने पूछा कि आप विक्रमशिला छोडकर यहाँ क्यों आये, तब उन्होंने नालन्दा की प्राचीनता तथा उसकी और कितनी ही विशेषताएँ बतलाकर अपने आने का कारण समझाया।

उस समय सुदूरवर्त्ती चीन, जापान, तातार, मध्य एशिया, तिब्बत, स्याम, अनाम, बर्मा, मलय आदि अनेक देशों से ज्ञान पिपासु लोग अध्ययनार्थ नालन्दा आते थे। अठारह बौद्ध-निकायों के ग्रन्थों के अतिरिक्त वैद्यक, दर्शन, साहित्य, अनेक प्रकार के कला-कौशल, ब्राह्मण-दर्शन, जैन-दर्शन आदि की भी शिक्षा यहाँ दी जाती थी। केवल पुस्तकी शिक्षा ही पर्य्याप्त नहीं समझी जाती थी, हस्तकौशल की शिक्षा का भी सुप्रबन्ध था। खॅडहरों की खुदाई में मिली भट्ठी और अनेक प्रकार के साँचे इसके प्रमाण हैं। इनके निरीक्षण और परीक्षण से ज्ञात होता है कि पीतल, ताँबा और अन्य अनेक धातुओं के उपयोग की भी शिक्षा यहाँ दी जाती थी।

नालन्दा-विश्वविद्यालय के साथ के विहार मे आठ विस्तृत कक्ष और तीन सौ प्रकोष्ठ थे। सभागृह दस भागों में विभक्त था। शिक्षार्थियों के रहने के लिये भिन्न भिन्न भागों मे तीन सौ भवन थे। तीन विशाल ग्रन्थालय थे—रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नरञ्जक। रत्नोदधि का भवन नवतल्ला था। इन पुस्तकालयों में हीनयान, महायान, वज्रयान आदि बौद्ध तथा अन्य सम्प्रदायों

के अनेकानेक विषयों के ग्रन्थ संगृहीत थे। इस विश्वविद्यालय के संचालन-व्यय के लिये बौद्ध सम्राटों ने सैकड़ों गाँव दिये थे। विश्वविद्यालय की अपनी मुहर (सील) थी। सुविष्णु नामक किसी ब्राह्मण ने, सद्धर्म की परिपुष्टि के लिये, नालन्दा में १०८ विहार बनवाये थे। ⊛

नालन्दा विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग में जिनमित्र, शीघ्रबुद्ध, चन्द्रपाल, ज्ञानचन्द्र, स्थिरमति, प्रभाकरमित्र, धर्मपाल, भद्रसेन, ज्ञानगर्भ, शान्तरक्षित आदि प्रथम श्रेणी के मस्तिष्कवाले अनेक विद्वान् थे। इनमें आचार्य शान्तरक्षित का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनके समय में नालन्दा का कीर्ति-सौरभ संसार-व्यापी हो चुका था। उस समय तक 'ह्वान्-च्वाङ्' अपना अध्ययन समाप्त कर चला गया था। हाँ, दूसरे अनेक चीनी भिक्षु शिक्षा पा रहे थे। इनमें 'ई चिङ्' (६७१—६५ ई०) का नाम उल्लेखनीय है।

आचार्य शान्तरक्षित 'सहोर' (विक्रमशिला) के राज परिवार के थे। आपने राज्य छोड़कर नालन्दा के आचार्य ज्ञानगर्भ के पास, लगभग ६७५ ई० में, प्रव्रज्या ली थी। आप बरसों यहाँ रहकर अध्ययन करते रहे। शिक्षा की समाप्ति के बाद आप नालन्दा में ही अध्यापक पद पर नियुक्त हुए। आपके शिष्यों में अनेक प्रतिभाशाली लेखक हो गये हैं। लगभग ७० वर्ष की अवस्था में आप तिब्बत गये। २५ वर्ष से भी अधिक समय तक वहाँ धर्म-प्रचार करते रहे। तिब्बत जानेवालों में आप ही प्रथम भारतीय विद्वान् थे। वहाँ भारतीय धर्म, सभ्यता, संस्कृति और साहित्य का प्रचार कर करीब १०० वर्ष की आयु में, लगभग ७५० ई० में, आपने शरीर छोड़ा। आपके समय में नालन्दा में तन्त्र-मन्त्र का खूब प्रचार था। सचमुच नालन्दा के अन्तिम दिनों में घोर वज्रयान का विकृत-से विकृत रूप, बुद्ध के नाम पर, जनता में प्रचारित किया जा रहा था। इन्हीं आन्तरिक दुर्बलताओं और मुसलमानों के क्रूरतापूर्ण आक्रमण के कारण बौद्ध धर्म का पतन हुआ। मुसलमान आक्रमणकारियों की बर्बरता से भारतीय स्थापत्य-कला के अनेक अमूल्य निदर्शन नष्ट-भ्रष्ट हो गये—भारतीय सभ्यता और संस्कृति के असंख्य चमत्कारपूर्ण चिह्न सदा के लिये लुप्त हो गये—विद्या वैभव-सम्पन्न अनेक ग्रंथसंग्रहालयों को अग्नि समाधि मिल गई—शिल्प-सौष्ठव प्रदर्शित करनेवाले अनेक भव्य भवन भूमिसात् हो गये। धन्य धर्मोन्माद !

नालन्दा में दस हजार से ऊपर छात्र पढ़ते थे। अध्यापन के लिये डेढ़

⊛ बौद्ध-विद्यापीठ

हजार अध्यापक थे। य्वान्-च्वाङ् यहाँ के प्रधानाध्यापक आचार्य शीलभद्र का असाधारण पाडित्य देखकर मुग्ध हो गया, और उनका शिष्यत्व ग्रहण किया।

नालन्दा केवल मगध या भारत का ही ज्ञान भाडार नहीं था, वह तो अपने समय मे समस्त ससार मे ज्ञान-विज्ञान का गोमुख था।

नालन्दा विश्वविद्यालय को मुसलमानों ने बडी निष्ठुरता से नष्ट किया। इसके साक्षी हैं वहाँ की जली ईंटें, जली हुई चौखटें, जले हुए चावल के दाने इत्यादि। यदि भयकर अमानुषिक आक्रमण से नालन्दा का नाश न हुआ होता, तो वहाँ के ग्रथसग्रहालय आज भी दुनिया को यह बतला सकते कि उस समय नालन्दा कितना विस्तृत एव गम्भीर ज्ञान-समुद्र था--उसका ज्ञान का खजाना पृथ्वीतल पर कैसा अद्वितीय था।

[२] विक्रमशिला-विश्वविद्यालय

'विक्रमशिला' बिहार प्रान्त का दूसरा विश्वविख्यात विश्वविद्यालय था। नालन्दा विश्वविद्यालय की उन्नति क्रमश हुई थी, किन्तु पालवशी राजाओं की विशेष कृपादृष्टि होने के कारण इसकी उन्नति और ख्याति में अधिक समय न लगा।

विक्रमशिला के स्थान निरूपण मे अधिक कठिनाई न हुई होती, यदि बगाली विद्वान श्रीविनयतोष भट्टाचार्य इसको बिहार से उठाकर ढाका न ले गये होते। दुर्भाग्यवश वहाँ 'विक्रमपुर' परगने मे 'साभर' नाम का एक ग्राम उन्हें मिल गया। फिर क्या था, 'साभर' और 'सहोर' का मेल मिला दिया।

श्री कनिंघम साहब के मत से, राजगृह से छ मील उत्तर और नालन्दा से तीन मील दूर, 'शिला' नामक ग्राम मे ही विक्रम शिला का स्थान निर्देश होता है।* किन्तु अब भोटिया ग्रथों के अध्ययन से यह गलतफहमी प्राय बिलकुल दूर हो गई है।

नालन्दा के आचार्य शान्तरक्षित के समय से लेकर विक्रमशिला के आचार्य दीपङ्कर श्रीज्ञान के समय तक तिब्बत और भारत का काफी सम्बन्ध रहा है। इन पॉच शताब्दियों (७०० से १२०० तक) मे भारत से अनेक दिग्गज विद्वान् तिब्बत गये और वहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार किया। सारा बौद्ध-साहित्य भोट भाषा मे अनूदित हुआ। ये अनुवाद अधिकतर दुभाषियों के द्वारा करवाये

* बौद्ध विद्यापीठ

गये। अत बौद्धकालीन भारतीय इतिहास का प्रामाणिक तत्त्व ढूँढने के लिये भोटिया-ग्रथों का अध्ययन आवश्यक है।

स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्री सतीशचन्द्र विद्याभूषण ने भागलपुर जिले के सुलतानगज को विक्रमशिला निश्चित किया है। यह प्रदेश पहले 'सहोर' या 'भगल' (भगल) नाम से विख्यात था। 'सहोर' एक माडलिक राज्य था। दसवीं शताब्दी के अन्त मे राजा कल्याणश्री इस प्रदेश के शासक थे। उस समय पालवश की शक्ति अद्वितीय थी। राजा कल्याणश्री भी उसी के अधीनस्थ राजा थे।

त्रिपिटकाचार्य श्री राहुल साकृत्यायन ने भी सुलतानगज को विक्रम शिला मानने के पक्ष मे भोटिया-ग्रथों से कुछ उद्धरण दिये हैं। यथा—

"भारत पूर्व दिशा सहोर देशोत्तम मे भगल नाम का पुर है। इसके स्वामी धर्मराज कल्याणश्री । प्रासाद काचन ध्वजा। उस प्रासाद की उत्तर दिशा मे विक्रम पुरी (विक्रम-शिला) है। उस विहार मे जाकर पूजा करने को माता पिता पॉच सौ रथों के साथ।

" श्री वज्रासन (बुद्धगया) की पूर्व दिशा मे भगल महादेश है। उस भगल देश मे बड़ा नगर है विक्रम पुरी। उस देश का नामान्तर 'सहोर' है जिसके भीतर विक्रम पुरी नामक नगर है ।"

लामा तारानाथ (जन्म १५७४ ई) ने भी अपने ग्रन्थ मे बौद्ध युग के अनेक ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश डाला है। इन भोटिया-ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पाल-वशी राजा गोपालदेव ने उदन्तपुर (ओदन्तपुरी) * मे एक विशाल विहार का निर्माण कराया था। जो सरक्षण ब्राह्मणधर्म को गुप्त-सम्राटों द्वारा मिला था वही सरक्षण आठवीं से बारहवीं सदी तक बौद्ध धर्म को पालवशी सम्राटों द्वारा मिला। महाराज गोपालदेव के पुत्र महाराज धर्मपाल ने गगा के सुरम्य तट पर विक्रमशिला विहार स्थापित किया। महाराज देवपाल (८०६–८४६ ई०) के राजत्वकाल मे वज्रासन (बुद्धगया) नाम का सुप्रसिद्ध विहार निर्मित हुआ। ग्यारहवीं शताब्दी मे महाराज महीपाल ने ऋषिपत्तन (=सारनाथ) के प्राचीन विहार का जीर्णोद्धार कराया था। जिस प्रकार धर्म-सम्राट् अशोक ने विदेशों

* यह स्थान पटना जिले का एक सबडिवीजन वर्तमान बिहारशरीफ है। इसके समीप की पहाड़ी पर वह विहार था। अब वहाँ दरगाह है।

मे धर्म-शासन के प्रचार को जी तोड़ कोशिश की, उसी प्रकार पालवंशी राजाओं ने भी की। इन्हीं के समय मे तिब्बत-जैसे दुर्गम और अर्द्धसभ्य देश मे बौद्ध-धर्म का प्रचार हुआ। प्रसिद्ध चौरासी सिद्धों मे से अधिकाश विक्रम-शिला से सम्बद्ध थे। सिद्धयुग का उदय भी इसी समय हुआ था।

महाराज धर्मपाल के अनन्तर भी विक्रम शिला पालवशी शासकों का विशेष कृपापात्र बना रहा। यह बौद्ध-विहार मात्र ही नहीं रहा, शिक्षा का सर्वाङ्गपूर्ण केन्द्र भी बन गया था।

इस विश्वविद्यालय के चारों ओर चार तोरण थे। हर-एक प्रवेश-द्वार पर एक-एक प्रवेशिका परीक्षा-गृह था। राजा जयपाल ने अपने शासन-काल मे चार के सिवा दो प्रवेशिका-गृह और बनवाये थे। इन सभी द्वारों पर एक-एक दिग्गज विद्वान् नियुक्त थे—पूर्व-द्वार पर थे आचार्य रत्नाकर शान्ति, पश्चिम-द्वार पर आचार्य प्रज्ञाकरमति, उत्तर-द्वार पर भट्टारक नरोप (नरोत्पल), दक्षिण द्वार पर आचार्य वागीश्वरकीर्त्ति, मध्य के प्रथम द्वार पर आचार्य रत्नभद्र और मध्य के द्वितीय द्वार पर आचार्य ज्ञानमित्र।

इसमें आठ महापडित (महाध्यापक) और १०८ पडित (अध्यापक) थे। इनमें से कुछ के नाम आगे दिये जाते हैं—रत्नवज्र, लीलावज्र, कृष्णसमर-वज्र, तथागतरक्षित, दीपङ्करश्रीज्ञान, बोधिभद्र, कमलरक्षित, नरेन्द्रश्रीज्ञान, दानरक्षित, अभयकरगुप्त, सुनायकश्री, धर्माकर शान्ति आदि।*

इन आचार्यों मे दीपङ्कर श्रीज्ञान राजकुमार थे। आप अध्ययनशील व्यक्ति थे। महापडित जेतारि ने आपको नालन्दा विश्वविद्यालय मे अध्ययन करने की राय दी। आप नालन्दा से, मन्त्रशास्त्र के अध्ययन के लिये, फिर विक्रम शिला लौट आये। इससे ज्ञात होता है कि मन्त्रशास्त्र के अध्ययन के लिये, विक्रम-शिला विशेष विख्यात था। २६ वर्ष की अवस्था तक यहाँ अध्ययन करने के बाद आप वज्रासन (बुद्धगया) चले गये। दो वर्ष तक वहाँ अध्ययन करने के बाद सुमात्रा जाकर आपने आचार्य धर्मपाल के पास शिक्षा पाई। अनेक द्वीपों की यात्रा करने के बाद जब आप भारत लौटे तब विक्रमशिला-विश्वविद्यालय के आचार्य-पद पर आसीन हुए। अपने गहरे अध्ययन के फलस्वरूप आप यहाँ ५१ पडितों और १०८ देवालयों की देखरेख करनेवाले बनाये गये। ६० वर्ष की अवस्था में धर्म-

* बौद्ध-विद्यापीठ

प्रचारार्थ आप तिब्बत गये। वहीं ७३ वर्ष की आयु में शरीर-त्याग किया। आपका भिक्षापात्र, कमंडलु आदि आज भी तिब्बत में सुरक्षित हैं।

विक्रमशिला विश्वविद्यालय के उत्थानकाल तक बौद्ध धर्म का वह रूप नहीं रह गया था जो इसके प्रवर्त्तक ने रक्खा था। दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दियों में घोर वज्रयान का प्रचार था। तंत्र मंत्रों और सिद्धों ने बौद्धधर्म की स्वच्छता को पूर्णरूपेण नष्ट कर दिया था। नालन्दा-जैसे प्राचीन विश्वविद्यालय से लेकर विक्रमशिला-जैसे नवीन विश्वविद्यालय तक में तन्त्र शास्त्र की ही प्रधानता थी। विक्रमशिला के आठ महापण्डितों में मैत्रिया, डोम्बीया, स्मृत्याकर आदि सिद्धों में से ही तो थे। स्वयं दीपङ्कर श्रीज्ञान ने तंत्र से ऊपर तान्त्रिक ग्रन्थ लिखे हैं।

विक्रमशिला में भारतीय छात्रों के अतिरिक्त बहुत-से विदेशी छात्र भी विद्याध्ययन के लिये आते थे। अनेक तिब्बती भिक्षु यहीं रहकर विद्याध्ययन करते और अध्ययन समाप्त कर अपनी भाषा में संस्कृत-ग्रन्थों का अनुवाद करते थे।

भिन्न भिन्न स्थानों से जो छात्र यहाँ प्रवेशार्थी होकर आते थे उन्हें द्वारस्थ पंडितों को परीक्षा में सन्तुष्ट करना पड़ता था। विद्यार्थियों के भोजन-छाजन का प्रबन्ध प्राय विश्वविद्यालय की ओर से ही होता था। शिक्षा एकांगी नहीं होती थी। सभी विषयों की पढाई होती थी।

दीपङ्कर श्रीज्ञान के समय में यहाँ के संघस्थविर 'रत्नाकर' थे। शान्तिभद्र, रत्नाकर शान्ति, मैत्रिया, डोम्बीया, स्थविरभद्र, स्मृत्याकर सिद्ध, अतिशा आदि आठ महापंडित थे। विहार के मध्य में बोधिसत्व की मूर्ति थी। सैकड़ों तान्त्रिक देवालय थे। सारा खर्च राज्य की ओर से प्राप्त होता था। विदेशी छात्रों को विशेष सुविधा दी जाती थी।

पालवंशी राजाओं के अध पतन के साथ साथ मगध साम्राज्य के बौद्ध विहार, संघाराम, विश्वविद्यालय आदि सदा के लिये नष्ट हो गये। सन् ११९३ ई० में मुहम्मद बिन बख्तियार ने गोविन्दपाल पर चढाई की। उदन्तपुर का महाविहार नष्ट कर दिया। गोविन्दपाल का अन्त हुआ। विजयमदान्ध मुसलमानों ने उदन्तपुरी, नालन्दा और विक्रमशिला को खूब लूटा। हजारों अध्यापक और छात्र तलवार के घाट उतारे गये। बड़े-बड़े विहार संहार कर डाले गये, गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ धूल में मिला दी गईं, सोना चाँदी की मूर्त्तियाँ गला डाली गईं, बौद्ध धर्म का केन्द्र मगध लोथों से पट गया।

मे धर्म-शासन के प्रचार की जो तोड़ कोशिश की, उसी प्रकार पालवंशी राजाओं ने भी की। इन्हीं के समय मे तिब्बत-जैसे दुर्गम और अर्द्धसभ्य देश में बौद्ध-धर्म का प्रचार हुआ। प्रसिद्ध चौरासी सिद्धों में से अधिकाश विक्रम शिला से सम्बद्ध थे। सिद्धयुग का उदय भी इसी समय हुआ था।

महाराज धर्मपाल के अनन्तर भी विक्रम शिला पालवंशी शासकों का विशेष कृपापात्र बना रहा। यह बौद्ध-विहार मात्र ही नहीं रहा, शिक्षा का सर्वाङ्गपूर्ण केन्द्र भी बन गया था।

इस विश्वविद्यालय के चारों ओर चार तोरण थे। हर-एक प्रवेश-द्वार पर एक-एक प्रवेशिका परीक्षा-गृह था। राजा जयपाल ने अपने शासन-काल मे चार के सिवा दो प्रवेशिका-गृह और बनवाये थे। इन सभी द्वारों पर एक-एक दिग्गज विद्वान् नियुक्त थे—पूर्व-द्वार पर थे आचार्य रत्नाकर शान्ति, पश्चिम-द्वार पर आचार्य प्रज्ञाकरमति, उत्तर-द्वार पर भट्टारक नरोप (नरोत्पल), दक्षिण-द्वार पर आचार्य वागीश्वरकीर्त्ति, मध्य के प्रथम द्वार पर आचार्य रत्नभद्र और मध्य के द्वितीय द्वार पर आचार्य ज्ञानमित्र।

इसमे आठ महापडित (महाध्यापक) और १०८ पडित (अध्यापक) थे। इनमे से कुछ के नाम आगे दिये जाते हैं—रत्नवज्र, लीलावज्र, कृष्णसमर-वज्र, तथागतरक्षित, दीपङ्करश्रीज्ञान, बोधिभद्र, कमलरक्षित, नरेन्द्रश्रीज्ञान, दानरक्षित, अभयकरगुप्त, सुनायकश्री, धर्माकर शान्ति आदि। *

इन आचार्यों मे दीपङ्कर श्रीज्ञान राजकुमार थे। आप अध्ययनशील व्यक्ति थे। महापडित जेतारि ने आपको नालन्दा विश्वविद्यालय मे अध्ययन करने की राय दी। आप नालन्दा से, मन्त्रशास्त्र के अध्ययन के लिये, फिर विक्रम शिला लौट आये। इससे ज्ञात होता है कि मंत्रशास्त्र के अध्ययन के लिये, विक्रम-शिला विशेष विख्यात था। २९ वर्ष की अवस्था तक यहाँ अध्ययन करने के बाद आप वज्रासन (बुद्धगया) चले गये। दो वर्ष तक वहाँ अध्ययन करने के बाद सुमात्रा जाकर आपने आचार्य धर्मपाल के पास शिक्षा पाई। अनेक द्वीपों की यात्रा करने के बाद जब आप भारत लौटे तब विक्रमशिला-विश्वविद्यालय के आचार्य-पद पर आसीन हुए। अपने गहरे अध्ययन के फलस्वरूप आप यहाँ ५१ पडितों और १०८ देवालयों की देखरेख करनेवाले बनाये गये। ६० वर्ष की अवस्था में धर्म-

* बौद्ध-विद्यापीठ

प्रचारार्थ आप तिब्बत गये। वहीं ७३ वर्ष की आयु में शरीर-त्याग किया। आपका भिक्षापात्र, कमण्डलु आदि आज भी तिब्बत में सुरक्षित है।

विक्रमशिला विश्वविद्यालय के उत्थानकाल तक बौद्ध धर्म का वह रूप नहीं रह गया था जो इसके प्रवर्त्तक ने रक्खा था। दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दियों में घोर वज्रयान का प्रचार था। तंत्र मंत्रों और सिद्धों ने बौद्धधर्म की स्वच्छता को पूर्णरूपेण नष्ट कर दिया था। नालन्दा-जैसे प्राचीन विश्वविद्यालय से लेकर विक्रमशिला जैसे नवीन विश्वविद्यालय तक में तन्त्र शास्त्र की ही प्रधानता थी। विक्रमशिला के आठ महापंडितों में मैत्रिपा, डोम्बीपा, स्मृत्याकर आदि सिद्धों में से ही तो थे। स्वय दीपङ्कर श्रीज्ञान ने तंत्र से ऊपर तान्त्रिक ग्रन्थ लिखे हैं।

विक्रमशिला में भारतीय छात्रों के अतिरिक्त बहुत-से विदेशी छात्र भी विद्याध्ययन के लिये आते थे। अनेक तिब्बती भिक्षु यहीं रहकर विद्याध्ययन करते और अध्ययन समाप्त कर अपनी भाषा में संस्कृत-ग्रन्थों का अनुवाद करते थे।

भिन्न भिन्न स्थानों से जो छात्र यहाँ प्रवेशार्थी होकर आते थे उन्हें द्वारस्थ पंडितों को परीक्षा में सन्तुष्ट करना पड़ता था। विद्यार्थियों के भोजन-छाजन का प्रबन्ध प्राय विश्वविद्यालय की ओर से ही होता था। शिक्षा एकांगी नहीं होती थी। सभी विषयों की पढ़ाई होती थी।

दीपङ्कर श्रीज्ञान के समय में यहाँ के संघस्थविर 'रत्नाकर' थे। शान्तिभद्र, रत्नाकर शान्ति, मैत्रिपा, डोम्बीपा, स्थविरभद्र, स्मृत्याकर सिद्ध, अतिशा आदि आठ महापंडित थे। विहार के मध्य में बोधिसत्व की मूर्त्ति थी। सैकड़ों तांत्रिक देवालय थे। सारा खर्च राज्य की ओर से प्राप्त होता था। विदेशी छात्रों को विशेष सुविधा दी जाती थी।

पालवंशी राजाओं के अध पतन के साथ साथ मगध साम्राज्य के बौद्ध विहार, संघाराम, विश्वविद्यालय आदि सदा के लिये नष्ट हो गये। सन् ११९३ ई० में महम्मद बिन बख्तियार ने गोविन्दपाल पर चढ़ाई की। उदन्तपुर का महाविहार नष्ट कर दिया। गोविन्दपाल का अन्त हुआ। विजयमदान्ध मुसलमानों ने उदन्तपुरी, नालन्दा और विक्रमशिला को खूब लूटा। हजारों अध्यापक और छात्र तलवार के घाट उतारे गये। बड़े-बड़े विहार संहार कर डाले गये, गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ धूल में मिला दी गईं, सोना चाँदी की मूर्त्तियाँ गला डाली गईं, बौद्ध धर्म का केन्द्र मगध लोगों से पट गया।

में धर्म-शासन के प्रचार की जो तोड़ कोशिश की, उसी प्रकार पालवंशी राजाओं ने भी की। इन्हीं के समय में तिब्बत-जैसे दुर्गम और अर्द्धसभ्य देश में बौद्ध-धर्म का प्रचार हुआ। प्रसिद्ध चौरासी सिद्धों में से अधिकाश विक्रम शिला से सम्बद्ध थे। सिद्धयुग का उदय भी इसी समय हुआ था।

महाराज धर्मपाल के अनन्तर भी विक्रम शिला पालवशी शासकों का विशेष कृपापात्र बना रहा। यह बौद्ध विहार मात्र ही नहीं रहा, शिक्षा का सर्वोच्चपूर्ण केन्द्र भी बन गया था।

इस विश्वविद्यालय के चारों ओर चार तोरण थे। हर-एक प्रवेश-द्वार पर एक-एक प्रवेशिका परीक्षा-गृह था। राजा जयपाल ने अपने शासन-काल में चार के सिवा दो प्रवेशिका-गृह और बनवाये थे। इन सभी द्वारों पर एक-एक दिग्गज विद्वान् नियुक्त थे—पूर्व-द्वार पर थे आचार्य रत्नाकर शान्ति, पश्चिम-द्वार पर आचार्य प्रज्ञाकरमति, उत्तर-द्वार पर भट्टारक नरोप (नरोत्पल), दक्षिण-द्वार पर आचार्य वागीश्वरकीर्त्ति, मध्य के प्रथम द्वार पर आचार्य रत्नभद्र और मध्य के द्वितीय द्वार पर आचार्य ज्ञानमित्र।

इसमें आठ महापडित (महाध्यापक) और १०८ पडित (अध्यापक) थे। इनमें से कुछ के नाम आगे दिये जाते हैं—रत्नवज्र, लीलावज्र, कृष्णसमर-वज्र, तथागतरक्षित, दीपङ्करश्रीज्ञान, बोधिभद्र, कमलरक्षित, नरेन्द्रश्रीज्ञान, दानरक्षित, अभयकरगुप्त, सुनायकश्री, धर्माकर शान्ति आदि। *

इन आचार्यों में दीपङ्कर श्रीज्ञान राजकुमार थे। आप अध्ययनशील व्यक्ति थे। महापडित जेतारि ने आपको नालन्दा-विश्वविद्यालय में अध्ययन करने की राय दी। आप नालन्दा से, मन्त्रशास्त्र के अध्ययन के लिये, फिर विक्रम शिला लौट आये। इससे ज्ञात होता है कि मन्त्रशास्त्र के अध्ययन के लिये, विक्रम-शिला विशेष विख्यात था। २६ वर्ष की अवस्था तक यहाँ अध्ययन करने के बाद आप वज्रासन (बुद्धगया) चले गये। दो वर्ष तक वहाँ अध्ययन करने के बाद सुमात्रा जाकर आपने आचार्य धर्मपाल के पास शिक्षा पाई। अनेक द्वीपों की यात्रा करने के बाद जब आप भारत लौटे तब विक्रमशिला विश्वविद्यालय के आचार्य-पद पर आसीन हुए। अपने गहरे अध्ययन के फलस्वरूप आप यहाँ ५१ पडितों और १०८ देवालयों की देखरेख करनेवाले बनाये गये। ६० वर्ष की अवस्था में धर्म-

* बौद्ध-विद्यापीठ

प्रचारार्थ आप तिब्बत गये। वहीं ७३ वर्ष की आयु में शरीर-त्याग किया। आपका भिक्षापात्र, कमण्डलु आदि आज भी तिब्बत में सुरक्षित हैं।

विक्रमशिला-विश्वविद्यालय के उत्थानकाल तक बौद्ध धर्म का वह रूप नहीं रह गया था जो इसके प्रवर्त्तक ने रक्खा था। दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दियों मे घोर वज्रयान का प्रचार था। तन्त्र मन्त्रों और सिद्धों ने बौद्धधर्म की स्वच्छता को पूर्णरूपेण नष्ट कर दिया था। नालन्दा-जैसे प्राचीन विश्वविद्यालय से लेकर विक्रमशिला-जैसे नवीन विश्वविद्यालय तक मे तन्त्र शास्त्र की ही प्रधानता थी। विक्रमशिला के आठ महापण्डितों मे मैत्रिया, डोम्बीया, स्मृत्याकर आदि सिद्धों में से ही तो थे। स्वय दीपङ्कर श्रीज्ञान ने तर से ऊपर तान्त्रिक ग्रन्थ लिखे हैं।

विक्रमशिला मे भारतीय छात्रों के अतिरिक्त बहुत-से विदेशी छात्र भी विद्याध्ययन के लिये आते थे। अनेक तिब्बती भिक्षु यहीं रहकर विद्याध्ययन करते और अध्ययन समाप्त कर अपनी भाषा मे सस्कृत-ग्रन्थों का अनुवाद करते थे।

भिन्न भिन्न स्थानों से जो छात्र यहाँ प्रवेशार्थी होकर आते थे उन्हें द्वारस्थ पंडितों को परीक्षा मे सन्तुष्ट करना पड़ता था। विद्यार्थियों के भोजन-छाजन का प्रबन्ध प्राय विश्वविद्यालय की ओर से ही होता था। शिक्षा एकांगी नहीं होती थी। सभी विषयों की पढाई होती थी।

दीपङ्कर श्रीज्ञान के समय मे यहाँ के सघस्थविर 'रत्नाकर' थे। शान्तिभद्र, रत्नाकर शान्ति, मैत्रिया, डोम्बीया, स्थविरभद्र, स्मृत्याकर सिद्ध, अतिशा आदि आठ महापंडित थे। विहार के मध्य में बोधिसत्व की मूर्त्ति थी। सैकड़ों तान्त्रिक देवालय थे। सारा खर्च राज्य की ओर से प्राप्त होता था। विदेशी छात्रों को विशेष सुविधा दी जाती थी।

पालवशी राजाओं के अध पतन के साथ साथ मगध साम्राज्य के बौद्ध विहार, सघाराम, विश्वविद्यालय आदि सदा के लिये नष्ट हो गये। सन् ११९३ ई० में महम्मद-बिन बख्तियार ने गोविन्दपाल पर चढाई की। उदन्तपुर का महाविहार नष्ट कर दिया। गोविन्दपाल का अन्त हुआ। विजयमदान्ध मुसलमानों ने उदन्तपुरी, नालन्दा और विक्रमशिला को खूब लूटा। हजारों अध्यापक और छात्र तलवार के घाट उतारे गये। बड़े-बड़े विहार सहार कर डाले गये, गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ धूल में मिला दी गईं, सोना चाँदी की मूर्तियाँ गला डाली गईं, बौद्ध-धर्म का केन्द्र मगध लोथों से पट गया!

मुसलमानों के इस भीषण आक्रमण से बौद्ध धर्म सदा के लिये विस्मृति सागर में विलीन हो गया। जो भिक्षु किसी तरह बच पाये, उन्होंने तिब्बत, नैपाल, बर्मा, लंका, मलय आदि देशों मे जाकर आश्रय लिया। विजेताओं ने बचे खुचे लोगों को अपना धर्म (इसलाम) स्वीकार करने के लिये बाध्य किया। लगभग दो हजार वर्ष के पुराने धर्म और प्रतिष्ठित सभ्यता को तुर्कों ने इस बर्बरता से नष्ट किया कि पुन उनका उद्धार न हो सका। यह इतिहास की एक चिन्त्य घटना है।

बिहार की रियासतें

श्री कमलनारायण झा 'कमलेश'

बिहार में छोटी-बड़ी बहुत-सी रियासतें हैं। केवल सुप्रसिद्ध रियासतों का ही वर्णन इस लेख में है।

इन रियासतों के इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि मुसलमानों के शासन-काल में इनमें से बहुतों का स्वतंत्र अस्तित्व था। हाँ, कभी-कभी मुसलमान बादशाह या उसके प्रतिनिधि को कुछ 'कर' तो अवश्य देना पड़ता था।

बरसों 'कर' न देने पर इनके अधिपतियों को कभी-कभी मुसलमान-शासकों से लड़ना झगड़ना भी पड़ता था। बिहार में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना होने के कारण इनकी स्वतंत्रता जाती रही। इन दिनों ये जमींदारों में गिने जाते हैं।

हाँ, छोटानागपुर की दो रियासतें—खरसाँवा और सराइकला—आज तक देशी राज्यों में गिनी जाती हैं।

दरभंगा के महाराजाधिराज बिहार के जमींदारों के नेता हैं। यहाँ के जमींदारों की अपनी एक सभा भी है, जिसे 'बिहार-लैंड-होल्डर्स एसोसिएशन' कहते हैं।

दरभंगा-राज

मिथिला-प्रान्त पहले मुसलमानी जमाने में 'तिरहुत-सरकार' के नाम से प्रसिद्ध था। 'आईन-ए-अकबरी' में इसका यही नाम है। मिथिला-राज्य की

राजधानी दरभगा है। अत लोग इसे दरभगा-राज के नाम से ही पुकारते हैं। दरभगा के महाराजाधिराज भारत के जमींदारों मे सबसे धनी और प्रतिष्ठित समझे जाते हैं। इस राज्य की आमदनी इन दिनों लगभग एक करोड है। भारत का सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणराज्य यही है।

वर्त्तमान मिथिला-राज्य के संस्थापक महामहोपाध्याय पडित महेश ठाकुर थे। मुगल-सम्राट् अकबर ने इनकी विद्वत्ता और वाक् पटुता पर प्रसन्न होकर इनके सम्मानार्थ इन्हें मिथिला का राज्य दे दिया। इस सबंध में 'हिस्ट्री ऑफ तिरहुत' ※ मे यह दोहा है—

नव ग्रंह वेदें वसुन्धरा, शक में अकबर-शाह।
पडित सुबुध महेश को, कीन्हौं मिथिलानाह॥

शक-सवत् १४६६ का समय सन १५७८ ई० होता है, परन्तु जनकपुर के निकट धनुष्कूप नामक स्थान में एक शिला-लेख † पाया जाता है, जिसमें महेश-ठाकुर की राज्य-प्राप्ति का समय १४७६ शकाब्द या १५५८ ई० मिलता है।

मिथिला में प्रचलित एक दोहे मे शक-सवत् १४७८ लिखा है, जो इस प्रकार है—

वसु नगँ वेदें वसुन्धरा, शक में अकवर शाह।
ठक्कुर सुबुध महेश को, कीन्हौं मिथिलानाह॥

महामहोपाध्याय महेश ठाकुर ने संस्कृत मे कई ग्रंथों की रचना की। उनके स्वर्गारोहण के बाद उनके तीन पुत्र क्रमश गद्दी पर बैठे—गोपाल ठाकुर, परमानन्द ठाकुर और शुभकर ठाकुर। सन् १६०७ ई० मे शुभकर ठाकुर के स्वर्गारोहण के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र 'पुरुषोत्तम ठाकुर' राजा बनाये गये। इन्हें मुगल सरकार के मालगुजारी-तहसीलदार ने बागमती नदी के किनारे किलाघाट (दरभगा) मे मार डाला। तदुपरान्त इनके छोटे भाई 'श्री सुन्दर ठाकुर' राजा हुए। वे सन् १६६२ ई० मे परलोकगामी हुए और उनके ज्येष्ठ पुत्र 'महिनाथ

※ History of Tirhut—By Rai Bahadur Shyamnarayan Sinha

† आसीत्पण्डितमण्डलाग्रगणिका भूमण्डलाखण्डलो
जात खण्डवलाकुले गिरिसुताभक्तो महेश कृती।
शाके रन्ध्रतुरङ्गमभुतिमही (१४७९)
वाग्देवीकृपयाशु येन मिथिलादेश समस्तोऽर्जित॥

ठाकुर' राजगद्दी पर बैठे। इन्हें 'सिमरॉव' (चम्पारन) के राजा गजसिंह से लड़ना पड़ा था। 'सिमरॉव' मे ही सभवत उन दिनों बेतिया-राज की राजधानी थी। मैथिली-साहित्य के प्रसिद्ध सगीत-ग्रथ 'राग-तरगिणी' के रचयिता लोचन कवि महिनाथ ठाकुर के दरबार के कवि थे।

राजा महिनाथ ठाकुर के बाद इस वश के उल्लेखनीय अष्टम राजा हुए 'राजा राघवसिंह।' इन्हें भी बेतिया के राजा ध्रुवसिंह से लड़ना पडा था। इन्हें 'पचमहल' (भागलपुर) के राजा और धर्मपुर (पुर्नियॉ) के बीरू कुर्मी से भी लड़ना पडा था। बीरू कुर्मी को इन्होंने धर्मपुर का तहसीलदार नियुक्त किया था, परन्तु उसने स्वतत्र हो जाने की इच्छा से इनके विरुद्ध बलवा कर दिया। इन्होंने उसे मरवाकर बलवा शान्त किया।

राजा राघवसिंह के पुत्र थे राजा 'नरेन्द्रसिंह'। इन्होंने बगाल के नवाब अलीवर्दी खाँ को मिथिला के 'नरहन-राज' के विरुद्ध सहायता दी थी। मुस्तफा खाँ के विरुद्ध युद्ध मे भी नवाब ने इनसे सहायता प्राप्त की थी। इन्हीं के समय मे पटना के नवाब राजा 'रामनारायण' ने मिथिला विजय की अभिलाषा से 'भौर'-गढ पर चढाई की। उन दिनो 'भौर' गढ मे ही मिथिला की राजधानी थी। दरभगा जिले के कर्न्पी-घाट नामक स्थान मे दोनों सेनाओं की मुठभेड हुई। अत मे राजा नरेन्द्रसिंह ही विजयी हुए और नवाब की सेना को अपनी हार पर पछताते हुए मिथिला छोडना पडा।

राजा नरेन्द्रसिंह सन् १७६० ई० मे इस असार ससार से चल बसे। ये भी निःसंतान थे। इन्होंने राजा सुन्दर ठाकुर के छोटे भाई कुमार नारायण ठाकुर के प्रपौत्र कुमार 'प्रतापसिंह' को गोद लिया था। अत यही प्रतापसिंह गद्दी के अधिकारी हुए।

राजा प्रतापसिंह ने अपने पूर्वजों के निवास-स्थान 'भौर' को छोड़कर दरभगा मे ही राजभवन बनवाया। यह सन् १७६२ ई० की बात है। इन्हीं के समय मे मिथिला मे 'सुरसड' नामक एक नई रियासत कायम हुई।

सन १७७६ ई० मे राजा प्रतापसिंह के स्वर्गारोहण के बाद इनके छोटे भाई 'माधवसिंह' मिथिला के राजा हुए। इनके समय तक बिहार मे अँगरेजी राज्य स्थापित हो चुका था। इन्हें तिरहुत के कलक्टर से झगड़ना पड़ा, क्योंकि कलक्टर ने इनकी सारी रियासत दूसरे-दूसरे जमींदारों के साथ बन्दोबस्त कर दी थी। कुछ

काल के बाद इनकी सारी जायदाद बोर्ड ऑफ-रेवेन्यु ने इन्हें वापस कर दी। इन्होंने ही दरभंगा में अपनी राजधानी बनाई।

राजा माधवसिंह के पुत्र राजा 'छत्रसिंह' ने ही पहले पहल महाराज-बहादुर की उपाधि प्राप्त की। महाराज छत्रसिंह के दो पुत्र थे—महाराजकुमार रुद्रसिंह 'महाराज-बहादुर' की उपाधि धारण कर गद्दी पर बैठे और महाराजकुमार वासुदेव सिंह को 'जरैल' परगने की जमीन्दारी मिली, जिनके दौहित्र स्वनामधन्य महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा विश्वविख्यात विद्वान् हैं।

सन् १८५० ई० में महाराज रुद्रसिंह लोकान्तरित हुए। उनके ज्येष्ठ पुत्र महाराज महेश्वरसिंह बहादुर सिंहासनस्थ हुए। सिर्फ दस वर्षों तक राज कर सन् १८६० ई० में महाराज महेश्वरसिंह परलोकवासी हुए। इनके बाद इनके दो पुत्र—महाराज सर लक्ष्मीश्वरसिंह बहादुर, जी० सी० आइ० ई० और महाराजाधिराज डाक्टर सर रमेश्वरसिंह बहादुर, जी० सी० आइ० ई०, के० बी० ई०, डि० लिट्०—क्रमशः मिथिला की राजगद्दी पर बैठे।

इन दोनों भाइयों के विषय में भारत के यशस्वी पत्रकार डाक्टर सी० वाइ० चिन्तामणि ('लीडर'-सम्पादक) ने 'लीडर' (प्रयाग) में एक लेख लिखा था, जिसका कुछ अंश प्रयाग के हिन्दी साप्ताहिक पत्र 'भारत' में छपा था। उसे मैं यहाँ अविकल उद्धृत करता हूँ—

"दरभंगे के वर्त्तमान महाराजाधिराज माननीय सर कामेश्वरसिंह बहादुर के० सी० आइ० ई० के देशभक्त एवं लोकप्रिय पितृव्य महाराजा-बहादुर सर लक्ष्मीश्वरसिंह के व्यक्तिगत परिचय का मुझे सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। फिर भी मुझे अच्छी तरह याद है कि कांग्रेस के साथ उदारतापूर्ण सहानुभूति रखने के कारण उनकी प्रशंसा की जाती थी। कांग्रेस उनकी राजसी उदारता के अनेक कार्यों के लिये उनकी ऋणी थी। सन् १८८८ में इलाहाबाद में कांग्रेस के अधिवेशन की संपूर्ण तैयारी हो जाने पर भी स्वागत-समिति को उसके लिये कहीं उपयुक्त स्थान ही न मिल सका। अन्त में कांग्रेस का यह संकट तभी दूर हुआ जब महाराज-बहादुर सर लक्ष्मीश्वरसिंह ने गवर्नमेंट हाउस के निकट स्थित 'लाउदर कैसल' को खरीद कर उसे स्वागत-समिति के हवाले कर दिया।

"वे पूरी अवस्था प्राप्त किये बिना ही दिसम्बर सन् १८६८ में स्वर्गवासी हो गये। कांग्रेस के प्रेसिडेंट की हैसियत से भाषण करते हुए श्री आनन्दमोहन बोस ने अपनी शोकांजलि अर्पित करते समय उनको कांग्रेस का मित्र, उदार सहायक

स्वर्गीय दरभंगा नरेश
महाराजाधिराज सर लक्ष्मीश्वरसिंह बहादुर
के सी आइ ई, जी सी आइ ई
(पृष्ठ ११७—१२२)

तथा हार्दिक समर्थक कहा था और कहा था कि इन गुणों मे आपसे बढकर कोई भी न था। कांग्रेस के प्रेसिडेंट का कहना था कि हमारे पास ऐसे शब्द ही नहीं हैं, जिनके द्वारा हम उनकी सेवाओं के मूल्य को उचित रूप से बतला सकें। कांग्रेस की ओर से इस सबध मे निम्न लिखित शोक प्रस्ताव पास किया गया था—

'स्वर्गीय महाराजा-दरभगा सर लक्ष्मीश्वरसिंह बहादुर जी० सी० आइ० ई० की दु:खद एव असामयिक मृत्यु से देश की जो अपार हानि हुई है, उसपर कांग्रेस हार्दिक शोक प्रकट करती है। उनकी उदारता एव सदैव तत्पर रहनेवाली सार्वजनिक सेवा की भावना तथा सभी कार्यों मे मुक्तहस्त होकर सहायता करने की प्रवृत्ति की कांग्रेस बहुत प्रशसा करती है। कांग्रेस-आन्दोलन ने उनके द्वारा जो उदारतापूर्ण और ठोस सहायता पाई है, उसके प्रति कांग्रेस अपनी कृतज्ञता प्रकट करती है। इस प्रस्ताव की एक प्रति स्वर्गीय महाराज के भाई महाराज रमेश्वरसिंह के पास भेज दी जाय।

"स्वर्गीय महाराजाधिराज सर रमेश्वरसिंह बहादुर के व्यक्तिगत परिचय का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। सबसे पहले उनसे मेरी भेंट सन् १६०६ ई० में हुई और इसके बाद हम दोनो समय-समय पर मिलते रहे। वे मुझे सदैव बडे प्रवीण, चतुर और बुद्धिमान जान पड़े। उनकी कार्य करने की योग्यता तथा धर्मानुराग की कहानी बहुत विख्यात है—उसके उल्लेख की कोई आवश्यकता नहीं है।"

महाराजाधिराज सर रमेश्वरसिंह बहादुर हिन्दू-विश्वविद्यालय (काशी) के जन्मदाताओं मे थे। भारतवर्ष मे वे सनातनधर्म के प्रधान स्तम्भ थे। वर्तमान मिथिलेश ऑनरेबुल महाराजाधिराज कर्नल सर कामेश्वरसिंह बहादुर, जी० सी० आइ० ई०, के० बी० ई०, एल्० एल्० डी०, डि०-लिट्० स्वर्गीय महाराजाधिराज डाक्टर सर रमेश्वरसिंह बहादुर के सुपुत्र हैं। आप सुयोग्य पिता के सुयोग्य पुत्र हैं। आप भारत के सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञों और विधानज्ञों (पार्लियामेंटेरियनों) मे गिने जाते हैं। आप अत्यन्त प्रजा-वत्सल और उत्साही समाज-सुधारक हैं। आपने लाखों रुपये दान कर भूकम्प-ध्वस्त दरभगा नगर का जीर्णोद्धार करने के लिये एक इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट को स्थापना की है, जिसका उद्घाटन करने स्वय लार्ड विलिंगडन दरभगा पधारे थे। गोल-मेज-सभा (राउंड टेबुल कान्फ्रेंस) में, एक माननीय सदस्य की हैसियत से शामिल होने के लिये, दो बार आप इंगलैंड गये थे। हाँ, सम्राट् पष्ठ जार्ज के गत राज्याभिषेक के अवसर पर भी आप वहाँ गये थे। आप अपने राज्याभिषेक के बाद से ही आज तक भारतीय कौंसिल आफ स्टेट के सदस्य,

अखिलभारतवर्षीय एवं बिहार-प्रांतीय जमींदार-सभाओं के सभापति हैं। आपके छोटे भाई राजा विश्वेश्वरसिंह बहादुर 'राजनगर-इस्टेट' (दरभंगा) के अधीश्वर और भारत के गिने-चुने खिलाड़ियों में हैं।

दरभंगा-राजधानी में लक्ष्मीश्वरविलास पैलेस, नरगौना पैलेस, विश्वनिवास पैलेस, विश्राम-कुटी, गेस्ट-हाउस, राज लाइब्रेरी, राजप्रेस और चौरंगी रोड दर्शनीय हैं। राजनगर-पैलेस तो भूकम्प के पहले उत्तर-भारत का सर्वश्रेष्ठ राजमहल था।

बेतियाराज

यह रियासत चम्पारन जिले में है। इसके अधीश्वर भूमिहार-ब्राह्मण-जाति के हैं। इसकी राजधानी 'बेतिया' चम्पारन जिले की एक तहसील है और बी० एन० डब्लू० रेलवे का स्टेशन भी। बेतिया का राजभवन, राज अस्पताल और राज-लाइब्रेरी दर्शनीय हैं। इस रियासत की सालाना आमदनी पचास लाख से ऊपर कही जाती है। इस राज के संस्थापक उग्रसेन थे, जिनके पुत्र राजसिंह को मुगल-सम्राट् अकबर से 'राजा' की उपाधि मिली थी। इस राज की राजधानी पहले सिमराँव-गढ़ में थी, जहाँ के राजा गजसिंह को तिरहुत के राजा महिनाथ ठाकुर से लड़ना पड़ा था, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है।

बहुत दिनों तक यहाँ के राजा विद्रोही गिने जाते थे। बंगाल के नवाब अलीवर्दी खाँ ने बिहार के नायब नवाब मुस्तफा खाँ के साथ बेतिया पर चढ़ाई की थी। मीरकासिम और सर राबर्ट बार्कर ने भी बेतिया नरेश को अपने अधीन किया।

सन् १७६६ ई० में राजा ध्रुवसिंह की मृत्यु होने पर उनके दौहित्र राजा युगलकिशोरसिंह गद्दी पर बैठे। इन्हें ईस्ट-इंडिया कम्पनी से 'कर' न चुकाने के कारण, सन् १७७१ ई० में, युद्ध करना पड़ा। अन्त में संधि हो गई और कम्पनी ने फिर चम्पारन के 'मझौआ' और 'सीयाराम' परगने इनके ही हाथ बन्दोबस्त किये—अन्य छोटे छोटे परगने उक्त गजसिंह के पौत्र कृष्णसिंह और अवधूतसिंह के हाथ बन्दोबस्त कर दिये।

कृष्णसिंह ने 'शिवहर'-राज (मुजफ्फरपुर) और अवधूतसिंह ने 'मधुबन'-राज (चम्पारन) की नींव डाली, जो अब उनके वंशधरों के हाथ में हैं।

महाराज आनन्दकिशोरसिंह, महाराज नवलकिशोरसिंह और महाराज राजेन्द्रकिशोरसिंह के समय में बेतिया-राज की बड़ी तरक्की रही। इन राजाओं के समय में दरबार में हिन्दी के अनेक कवि आश्रय पाये हुए थे। भारतेन्दु हरि

श्रीमान् राजा विश्वेश्वर सिंह बहादुर, राजनगर (दरभंगा)

श्रीमान् राजकुमार जीवेश्वर सिंह साहब
(दरभंगा)

(पृष्ठ १२२)
लक्ष्मीश्वर विलास-पैलेस—(आनन्द बाग महल), दरभंगा

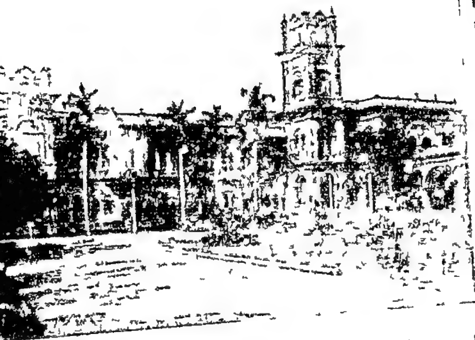

नरगौना पैलेस (दरभंगा) पहले यहाँ छत्रभवन महल था, जो भूकम्प में टूट गया (सन् १९३४ ई०)

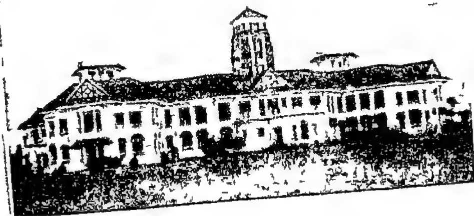

श्रीमान् मिथिलेश के अनुज राजा विश्वेश्वरसिंह बहादुर का निवासस्थान विश्वेश्वरनिवास-पैलेस, (दरभंगा)

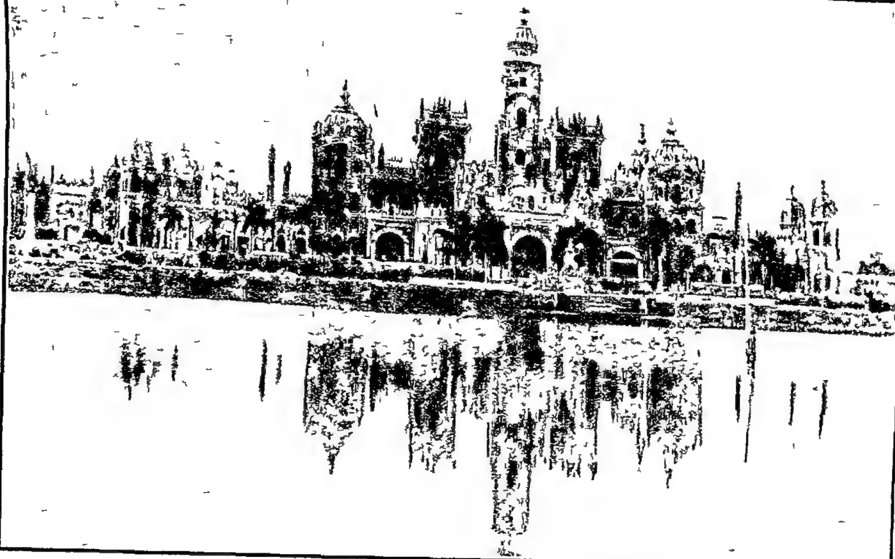

'राजनगर-पैलेस'—दरभंगा से २५ मील दूर—(पृष्ठ १२२)—उत्तर भारत का सर्वश्रेष्ठ राजप्रासाद। स्वर्गीय महाराजाधिराज सर रमेश्वरसिंह ने तीन करोड़ रुपये लगाकर इसे बनवाया था। १९३४ ई० के भूकम्प में यह नष्ट हो गया। इसके साथ नौलखा काली मंदिर है, जिसमें नौ लाख रुपये लगे थे।

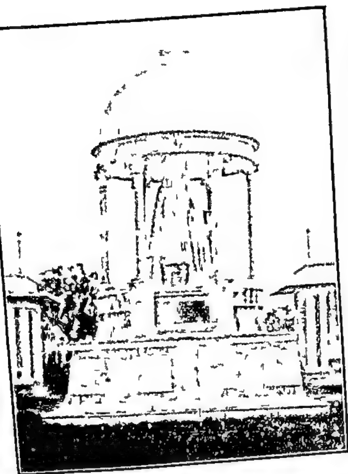

स्वर्गीय महाराजाधिराज सर रमेश्वरसिंह बहादुर की भव्य प्रस्तर मूर्ति, जो दरभंगा नगर के चौरंगी रोड के चौक में भूकम्प के बाद स्थापित हुई। यह मूर्ति इटली से बनकर आई थी।

दरभंगा - राज्य का हेड-आफिस (भूकम्प के बाद नया बना है)

भन्द्र और राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द को इस दरबार से अनेक बार पर्याप्त आर्थिक सहायता मिली थी। अन्तिम महाराज सर हरीन्द्रकिशोरसिंह के० सी० आइ० ई० के नि सन्तान मरने पर उनकी छोटी महारानी बेतिया-राज की गद्दी की अधिकारिणी हुईं जो अबतक हैं। राज्य प्रबन्ध बिहार-सरकार द्वारा होता है।

शिवहर

यह रियासत मुजफ्फरपुर जिले मे है। बेतिया-राजवंश की यह शाखा है। ब्रिटिश सरकार द्वारा यहाँ के अधिपति को भी राजा की उपाधि मिली। राजा रघुनन्दनसिंह, राजा शिवनन्दनसिंह और राजा शिवराजनन्दनसिंह इस वंश मे प्रसिद्ध राजा हुए। इन दिनों राजा गिरीशनन्दनसिंह शिवहर की गद्दी पर हैं। इस वंश के कुमार रत्नेश्वरीनन्दनसिंह बरसों बिहार उडीसा-लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य रह चुके हैं।

डुमराँव

यह रियासत शाहाबाद जिले मे है। इसकी राजधानी 'डुमराँव' ई० आइ० आर० की मेन-लाइन में एक प्रसिद्ध स्टेशन है। यहाँ का गढ, बिहारीजी का मंदिर, बड़ा बाग और भोजपुर-कोठी दर्शनीय स्थान हैं।

डुमराँव-राज-वंश उज्जैन (मालवा) के परमारवंशी राजपूतों का है। कहा जाता है कि महाराज शान्तनु शाही पहले पहल बिहार मे आकर बसे। उन्होंने अपने पुत्र भोजसिंह को राजा बनाया। भोजसिंह के नाम पर ही 'भोजपुर' गाँव बसाया गया और रियासत के प्रधान हलके का नाम भी 'भोजपुर परगना' ही रक्खा गया। इसी लिये आजतक यहाँ के राजा भी 'भोजपुराधीश' कहलाते हैं। इतिहासकारों का मत है कि पालवंशी राजा मिहिरभोज ने पश्चिमी बिहार जीतकर भोजपुर प्रान्त का नामकरण किया। जो हो, कालक्रम से भोजपुर राज्य तीन शाखाओं मे विभक्त हो गया—डुमराँव, जगदीशपुर और बक्सर। *

सिपाही विद्रोह के नायक बाबू कुँवरसिंह जगदीशपुर रियासत के ही अधिपति थे। उनके वंश मे अब कोई नहीं है। उनके विशाल गढ के कुछ चिह्न जगदीशपुर मे हैं। जगदीशपुर आज भी एक बहुत अच्छा कस्बा है। हाँ, उनके एक भाई के वंशज निकटस्थ दिलीपपुर मे रहते हैं। सुप्रसिद्ध हिन्दी-लेखक महाराज-

* Modern History of Indian Chiefs and Rajas—by Loknath Ghosh

कुमार दुर्गाशंकरप्रसादसिंह दिलीपपुर के ही रईस हैं। इनके पितामह महाराज-कुमार नर्मदेश्वरप्रसादसिंह ('ईश' कवि) बड़े विद्वान् और व्रजभाषा के कवि थे। उनके बनाये दो अमूल्य ग्रंथ प्रकाशित हैं—धर्मप्रदर्शनी और शृङ्गारतिलक।

बक्सर-राजवंश में अब कोई नहीं है। सारी रियासत डुमरॉव-राज में ही मिल गई।

कहते हैं कि सन् १५७७ ई० में राजा दलपतिसिंह इस राजवंश के सबसे प्रसिद्ध राजा हुए और उन्हीं के समय से यह राजवंश विशेष प्रतिष्ठित और प्रभावशाली हुआ। किन्तु इतिहासकारों के अनुसार डुमरॉव के राजा नारायणमल्ल को तो मुगल-सम्राट् जहाँगीर ने पहले-पहल 'राजा' की उपाधि से विभूषित किया था। उनके बाद धीरनलसिंह, रुद्रप्रतापसिंह, मान्धातासिंह, होरिलसिंह, छत्रधारीसिंह और विक्रमाजीतसिंह क्रमश गद्दी पर बैठे। इन्हें भी जागीर और उपाधियाँ इस देश के मुसलमान शासकों से मिलती रहीं।

भारतीय राजवंशों के इतिहास-लेखक श्री लोकनाथ घोष के अनुसार डुमरॉव-नरेश महाराज जयप्रकाशसिंह ने बक्सर के युद्ध (१७६४) में अँगरेजों की सहायता की थी, अत लार्ड हेस्टिंग्स ने उन्हें 'महाराजबहादुर' की उपाधि दी। उनके मरने पर उनके पौत्र महाराज जानकीप्रसादसिंह गद्दी पर बैठे, जिनके स्वर्गवासी होने पर महाराज महेश्वरबख्शसिंह डुमरॉव के महाराज हुए। इन्होंने सन् १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह में अपने गोतिया जगदीशपुर के बाबू कुँवरसिंह के विरुद्ध अँगरेजों का साथ दिया और सन् १८७४—७५ के अकाल में भी पीड़ित जनता की बड़ी सहायता की। इस कारण इनके जीवन-काल में ही इनके पुत्र कुमार राधाप्रसादसिंह को सन् १८७५ ई० में 'राजा' की उपाधि मिल गई। फिर इनके स्वर्गारोहण के बाद राजा राधाप्रसादसिंह 'महाराजबहादुर' की उपाधि धारण कर गद्दी पर बैठे।

महाराज राधाप्रसादसिंह के मरने पर उनकी सहधर्मिणी महारानी बेनी-प्रसाद कुँवरि ने बीस वर्षों तक राज किया। महारानी ने जगदीशपुर-राजवंश के महाराज-कुमार श्रीनिवासप्रसादसिंह को गोद लिया। महाराज राधाप्रसादसिंह के निकटतम सबंधी महाराजकुमार श्री केशवप्रसादसिंह ने राज्य पर दावा किया। बहुत दिनों तक मुकदमा चलता रहा। आखिर महाराजकुमार केशवप्रसादसिंह की ही जीत हुई। ये महाराज-बहादुर की उपाधि धारण कर डुमराँव की गद्दी पर बैठे। ये अत्यन्त बुद्धिमान् और राजनीतिज्ञ थे। बरसों बिहार-सरकार की कार्यकारिणी

समिति के सदस्य रह चुके थे। इनके सुपुत्र वर्त्तमान भोजपुराधीश महाराज रामरण-विजयप्रसादसिंह बहादुर नवयुवक होने पर भी बड़े योग्य और उत्साही राजा हैं। आप राजनीतिक कार्यों में काफी दिलचस्पी लेते हैं। आप इंडियन लेजिस्लेटिव एसेम्बली के भी माननीय सदस्य हैं।

सूर्यपुरा

शाहाबाद जिले में यह एक प्राचीन रियासत है। इसके अधीश्वर बराबर डुमरॉव-नरेश के दीवान रहते आये थे। इसलिये यहाँ के अधिपतियों की परम्परागत उपाधि थी 'दीवान' और यह राज भी 'दीवानजी की रियासत' कहलाता था। सन् १८५७ के सिपाही विद्रोह में सूर्यपुराधीश ने बडी धीरता के साथ उपद्रवियों को शांत करने का प्रयत्न किया था। दीवान श्रीरामकुमारसिंह के समय में रियासत की विशेष उन्नति हुई। इन्होंने सरकार को नहर निकालने के लिये अपनी रियासत की जमीन विना मूल्य दे दी थी। इनके पुत्र श्रीराजराजेश्वरीप्रसादसिंह को ही पहले पहल 'राजा' की उपाधि मिली। उन्होंने शाहाबाद जिले के सदर शहर 'आरा' में पानी का नल बनवाने के लिये डेढ लाख रुपया दान दिया था। वे हिन्दी के नामी कवि और साहित्यसेवी थे। उनके ज्येष्ठ सुपुत्र वर्त्तमान सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमण-प्रसादसिंह एम्० ए० हिन्दी के सुविख्यात गद्य-लेखक हैं। समस्त बिहार में एकमात्र आप ही कायस्थ राजा हैं। आपके छोटे भाई बिहार-लेजिस्लेटिव-कौंसिल के सभापति, ऑनरेबुल कुमार राजीवरजनप्रसादसिंह एम्० ए० राजनीतिक कामों में बडी दिलचस्पी रखते हैं।

टेकारी

यह रियासत गया जिले में है। इसकी राजधानी 'टेकारी' में राजभवन, राजमन्दिर और राजपुस्तकालय दर्शनीय हैं।

टेकारी-राज के संस्थापक धीरसिंह नामक एक भूमिहार-ब्राह्मण थे। उनके पुत्र सुन्दरसिंह ने बंगाल और बिहार के सूबेदार को सहसराम (शाहाबाद) और नरहन (दरभंगा) के युद्धों में सहायता दी थी। अत उन्हें राजा की उपाधि मिली।

राजा सुन्दरसिंह ने निकटवर्त्ती आठ सौ परगनों को अपने राज्य में मिला लिया। उनके कोई पुत्र नहीं था। अत उनके मरने पर उनके भतीजा बुनियाद-सिंह टेकारी के राजा हुए। इन्होंने ब्रिटिश सरकार की संरक्षकता स्वीकार की। इसपर क्रुद्ध होकर नवाब मीरकासिम ने धोखे से इन्हें मरवा डाला। इनका बसाया हुआ 'बुनियादगंज' गाँव अब भी लोगों को इनकी याद दिलाता है।

बनैली

यह रियासत पुर्नियाँ जिले मे है। इसके अधीश्वर भी दरभगा की तरह मैथिल ब्राह्मण हैं।

दरभगा जिले के 'बैगनी-नवादा' गाँव के मैथिल ब्राह्मण पडित गदाधर झा की विद्वत्ता का परिचय पाकर दिल्ली के सम्राट् सुलतान गयासुद्दीन तुगलक ने इन्हे कुछ गॉव जागीर में दिये। इनकी दसवीं पीढी मे चौधरी परमानन्द झा (हजारी-चौधरी) हुए, जिन्हें अजीमाबाद (वर्त्तमान पटना) के नवाब ने दरभगा जिले का चौधरी और हजारी मनसब बनाया। किन्तु कई साल तक 'कर' न चुका सकने के कारण वे पुर्नियाँ जिले के 'मूसापुर' गॉव में जा बसे। वहॉ पुर्नियॉ और दिनाजपुर के कानूनगो भैरव मल्लिक ने कई तालुके उनके हाथ बन्दोबस्त किये। फिर पहसरा (जिला भागलपुर) की रानी इन्द्रावती के खैरख्वाह तहसीलदार रहकर उन्होंने 'तीरा' और 'असजा' परगने हासिल किये। इस तरह स्वय आठ लाख की वार्षिक आमदनी की रियासत कायम कर उन्होंने 'बनैली' नामक गॉव मे अपनी राजधानी बनाई।

चौधरी परमानन्द झा के पुत्र चौधरी दुलारसिंह ने नैपाल-युद्ध में ब्रिटिश सरकार की मदद कर 'राजा' की उपाधि प्राप्त की और साथ ही बनैली के आसपास सात कोस तक की जमीन भी। इनके दो पुत्र थे—राजा वेदानन्दसिंह और राजा रुद्रानन्दसिंह। राजा वेदानन्दसिंह ने हिन्दी मे 'वेदानन्दविनोद' नामक एक प्रामाणिक वैद्यक ग्रन्थ लिखा है। फिर इन दोनों के क्रमश एक-एक पुत्र हुए—लीलानन्दसिंह और श्रीनन्दसिंह।

राजा वेदानन्दसिंह के पुत्र राजा लीलानन्दसिंह बडे दानी और उदार थे। अपनी दानशीलता के कारण वे 'कलिकर्ण' नाम से प्रसिद्ध थे। उन्होंने बनैली के निकट चम्पानगर-देवढी मे अपनी राजधानी स्थापित की थी। उनके तीन पुत्र हुए—राजा पद्मानन्दसिंह, राजा कलानन्दसिंह और राजा कीर्त्यानन्दसिंह बहादुर बी० ए०।

राजा कीर्त्यानन्दसिंह बडे प्रसिद्ध साहित्य-प्रेमी और भारत-विख्यात शिकारी थे। हिन्दी के आप अनन्य भक्त थे। अखिलभारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन (भागलपुर) के आप ही स्वागताध्यक्ष थे और बिहार प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन के भी सभापति हो चुके थे। देशोपकारक सार्व-

य मनैली नरेश राजा कीर्त्यानन्दसिंह बहादुर, बी० ए०
(पृष्ठ १२८)

श्रीमान् कुमार कृष्णानन्दसिंह बहादुर
(पृष्ठ ९४, १२[illegible], १[illegible] [illegible]७)

जनिक कार्यों मे आप काफी दिलचस्पी लेते थे। आपके छ पुत्र हैं—कुमार श्यामानन्दसिंह, कुमार विमलानन्दसिंह, कुमार तारानन्दसिंह, कुमार दुर्गानन्दसिंह, कुमार जयानन्दसिंह और कुमार आद्यानन्दसिंह। आप चम्पानगर-देवढ़ी के राजप्रासाद मे रहा करते थे।

राजा पद्मानन्दसिंह के पुत्र कुमार चन्द्रानन्दसिंह और पुत्रवधू रानी चन्द्रावती के स्वर्गारोहण के बाद उनके दौहित्र श्रीमान् भीमनाथ मिश्र को राज्य का कुछ अंश मिला है।

राजा कलानन्दसिंह के दो पुत्र हैं—कुमार रमानन्दसिंह और कुमार कृष्णानन्दसिंह। कुमार रमानन्दसिंह गढ-बनैली मे रहते हैं और बिहार-लेजिस्लेटिव-कौंसिल (अपर-हाउस) के सदस्य हैं। कुमार कृष्णानन्दसिंह भागलपुर जिले के सुलतानगंज नामक स्थान मे गंगा-तट पर कृष्णगढ नामक राजभवन बनवाकर रहते हैं। आप बडे साहित्य-प्रेमी युवक हैं। हिन्दी में आपने प्रचुर द्रव्य व्यय कर 'गंगा' नाम की एक सचित्र मासिक पत्रिका और वैदिक-पुस्तक माला का प्रकाशन बरसों किया था।

श्रीनगर

बनैली-राजवंश के पूर्वोक्त राजा रुद्रानन्दसिंह ने अपने पुत्र राजा श्रीनन्दसिंह के नाम पर बनैली से लगभग तीन मील दूर 'श्रीनगर' बसाया। राजा श्रीनन्दसिंह के तीन पुत्र हुए—कुमार नित्यानन्दसिंह, राजा कमलानन्दसिंह और कुमार कालिकानन्दसिंह। कुमार नित्यानन्दसिंह की शाखा आगे नहीं बढी, क्योंकि वे विरक्त हो गये।

राजा कमलानन्दसिंह बडे प्रसिद्ध साहित्यसेवी और उदार थे। इन्होंने हिन्दी-साहित्य की उन्नति के लिये लाखों रुपये खर्च किये थे। इन्हें 'साहित्य सरोज', 'अभिनव भोज', 'कलियुगी हरिश्चन्द्र', 'कलिकर्ण' आदि उपाधियाँ साहित्यिक संस्थाओं से मिली थीं। इनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीमान् कुमार गंगानन्दसिंह एम० ए० भारत के नामी विद्वानों मे हैं और कनिष्ठ कुमार अच्युतानन्दसिंह बी० ए० (ऑनर्स) हैं।

कुमार कालिकानन्दसिंह के पाँच सुपुत्र हैं—कुमार अभयानन्दसिंह, कुमार विजयानन्दसिंह, कुमार घनानन्दसिंह, कुमार दिव्यानन्दसिंह और कुमार प्रमदानन्दसिंह। कुमार अभयानन्दसिंह विलायत जाकर शिक्षा प्राप्त करनेवाले प्रथम मैथिल ब्राह्मण हैं।

खाँ ने मिथिला के राजा नरेन्द्रसिंह पर चढाई की तब नरहन के स्वामी श्रीकेशवसिंह ने मिथिलेश को पूरी सहायता दी थी।

नरहन-राज्याधीश श्रीपरमेश्वरीनारायणसिंह बडे ही रसिक, साहित्य-प्रेमी और उदार थे। मिथिला के सुप्रसिद्ध पहलवान शकरदत्त झा, सुप्रसिद्ध मैथिल कवि चन्दा झा और महामहोपाध्याय पडित चित्रधर मिश्र पहले उन्हीं के दरबार में रहते थे। उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र श्रीब्रह्मदेवनारायणसिंह नरहन के अधिपति हुए। ये अल्पायु हुए और इनके बाद इनकी पत्नी और माता क्रमश गद्दी पर बैठीं।

नरहन की राजमाता को रानी की उपाधि मिली थी। रानी साहबा ने कई महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक कार्यों मे लाखो रुपये खर्च किये थे। उनकी मृत्यु के बाद नरहन-राज नरहन के राजवशजो और काशी-नरेश के बीच बॉटा गया। इस प्रकार आधा नरहन-राज अब काशी-नरेश के अधिकार मे है और आधा नरहन-राजवशजो के अधीन है।

नरहन-राज के वर्त्तमान वशधरों मे श्रीकामेश्वरनारायणसिंह प्रधान हैं। आप बडे ही उदाराशय, विद्वान्, साहित्यानुरागी और राजनीतिक कार्यों मे भी दिलचस्पी लेनेवाले व्यक्ति हैं। आप दरभगा-जिला-जमींदार-सभा के सभापति हैं और बरसों बिहार-उडीसा-लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य रह चुके हैं।

सुरसंड

यह रियासत मुजफ्फरपुर जिले मे है। यहाँ के स्वामी भूमिहार-ब्राह्मण हैं। मिथिला-नरेश राजा प्रतापसिंह के समय मे इस राज्य की स्थापना हुई। इन दिनों इस राज्य के अधिपति हैं बिहार के सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ श्रीचन्द्रेश्वरप्रसादनारायणसिंह सी० आइ० ई०, एम्० एल्० ए०। आप बिहार-एसेम्बली में विरोधी दल के नेता हैं।

बरारी

दरभगा जिला निवासी पडित नारायण ठाकुर तान्त्रिक को भागलपुर जिले मे जागीर मिली, उसीसे बरारी की रियासत कायम हुई। नारायण ठाकुर के वशजो की तीन शाखाएँ हैं—दत्त, मोहन और नाथ। मोहन-शाखा की काफी उन्नति हुई। मोहन-परिवार के श्रीसूर्यमोहन ठाकुर एम्० एल्० ए० और श्रीनरेशमोहन ठाकुर विशेष प्रसिद्ध हैं।

अन्तिम बेतिया-नरेश
स्वर्गीय महाराज सर हरेन्द्रकिशोरसिंह
के० सी० आइ० ई०

श्री बा० रामेश्वरनारायण सिंह (नरहन इस्टेट)

मुँगेर की रियासतें

मुँगेर नगर में भी कई रियासतें हैं। मुँगेर के राजा सर रघुनन्दनप्रसाद सिंह और ऑनरेबुल राजा देवकीनन्दनप्रसादसिंह बड़े ही धार्मिक पुरुष हैं। रायबहादुर दिलीपनारायणसिंह, सेठ केदारनाथ गोयनका और श्रीराजनीतिप्रसाद-सिंह की रियासतें भी प्रसिद्ध हैं।

गधवरियों की रियासतें

गधवरिया लोग अपनेको पम्मार राजपूत और मिथिला-नरेश राजा नान्यदेवसिंह के वंशज मानते हैं। प्राचीन मिथिलाधिपति महाराज शिवसिंह के 'ओनीयवार-वंश' के नष्ट होने पर मिथिला में अराजकता फैली और पम्मारों ने दरभंगा जिले के 'गधवार' और 'भौर' नामक स्थानों में अपने राज्य स्थापित किये। गधवार में रहनेवाले पम्मार 'गधवरिया' और भौर में रहनेवाले 'भौर-शूरिया' कहलाने लगे। वर्त्तमान मिथिला-राज्य के संस्थापक महामहोपाध्याय महेश ठाकुर को भी पम्मारों से लड़ना पड़ा था। इस घटना के सम्बन्ध में 'हिस्ट्री ऑफ तिरहुत' में तीन दोहे मिलते हैं—

"रहे भौर छत्री प्रबल, बसत भौर निज ठौर।
सूर समर विजयी बड़े, सब छत्री सिरमौर॥
अच्युत मेघ गोपाल मिलि, मार्‌यो छत्रिय-राज।
निज सुत लै भागी तबै, रानी नैहर राज॥
बहुत दिवस के बाद सो, सजि आये पम्मार।
जुद्ध कियो मिथिलेस सो, सेना अपरम्पार॥"

कहा जाता है कि इस युद्ध में मिथिलेश महेश ठाकुर बंगाल बिहार के मुगल सूबेदार महाराज मानसिंह की सहायता से विजयी हुए थे।

गधवरियों की तीन रियासतें मुख्य हैं और तीनों ही भागलपुर जिले में हैं—सोनबरसा, बरुआरी और पँचगछिया। सोनबरसा के अधिपति महाराज हरिवल्लभ नारायणसिंह के स्वर्गारोहण के बाद उनके दौहित्र रायबहादुर रुद्रप्रतापनारायणसिंह सोनबरसा के अधिपति हुए, जो अबतक हैं। बरुआरी के कुमार भूपेन्द्रनारायणसिंह एम्० बी० ई० सुप्रसिद्ध बहादुर शिकारी हैं। पँचगछिया के स्वर्गीय रायबहादुर लक्ष्मीनारायणसिंह भारत के संगीतज्ञों के सिरमौर समझे जाते थे। आपके सुपुत्र श्री अमरेन्द्रनारायणसिंह 'हीराजी' एम्० ए० अब रियासत के स्वामी हैं।

छोटानागपुर की रियासतें

बिहार के एक विभाग का नाम छोटानागपुर है। अँगरेजी राज्य के पहले छोटानागपुर बराबर स्वतंत्र रहा। मुसलमानों के समय में इसपर कई बार चढ़ाइयाँ हुईं, पर घने जगलों और बीहड़ पहाड़ों के कारण आक्रमणकारी पूर्ण रूप से विजयी न हो सके। हाँ, यहाँ के कुछ राजा मुगल सम्राटों को 'कर' देते रहे।

मुगल-सम्राटों और बिहार के नायब नवाबों ने कई व्यक्तियों को छोटानागपुर में जागीरें भी दी थीं। छोटानागपुर कई छोटे छोटे राज्यों मे बँटा हुआ था, जिनका हाल आगे दिया गया है। इन राज्यों के प्रधान नायक छोटानागपुर के नागवशीय महाराज थे, जिनकी राजधानी 'रातू' (जिला राँची) में थी। अधिकाश राजा इन्हें ही 'कर' देते थे, पर कई राज्य पूर्ण स्वतत्र भी थे। यह विभाग धीरे-धीरे, आज से सौ वर्ष पूर्व ही, अँगरेजों के हाथ मे आ गया। इन दिनों यह पाँच जिलों मे बँटा हुआ है—राँची, पलामू, हजारीबाग, सिंहभूमि और मानभूमि। हर जिले में एक डिपुटी-कमिश्नर और राँची मे कमिश्नर साहब रहते हैं।

पलामू

आज से लगभग साढे तीन सौ वर्ष पहले खरवारों और उराँवों के साथ रक्षकौशल राजपूत भी दक्षिण-पूर्व पलामू मे राज करते थे। इनकी राजधानी औरंगा नदी के किनारे पलामूगढ के नाम से विख्यात थी। इस वश के राजा मान सिंह की अनुपस्थिति मे उसके परिवार के लोगों को मारकर उसका सेनापति भागवत राय स्वतत्र राजा हो गया।

भागवत राय चेरो-राजवश का था। इसके वश में राजा मेदिनीराय बड़ा ही धर्मात्मा और प्रतापी हुआ। इसके बाद राजा प्रतापराय, रणजीतराय, जयकृष्ण राय और गोपालराय हुए। चूमनराय इस वश का अतिम राजा हुआ। इसके समय में अधीनस्थ जागीरदार स्वतत्र हो गये। ब्रिटिश सरकार ने इसको पेंशन देकर राज्य को भारत-साम्राज्य मे मिला लिया। पलामू जिले की नावा और विश्रामपुर रियासतों के स्वामी चेरो-वश के ही हैं।

चैनपुर

पलामू जिले के चैनपुर राजघराने के पूर्वज दिल्ली के निकट के रहनेवाले थे। पूरनमल पूर्वोक्त राजा भागवतराय के दीवान थे। इनके वश के लोग बराबर इस पद पर रहे। चेरोवश के नष्ट हो जाने पर ये चैनपुर में आ बसे थे।

दीवान पूरनमल के एक वशधर 'ठकुराई' रघुवरदयालसिंह ने कई बार

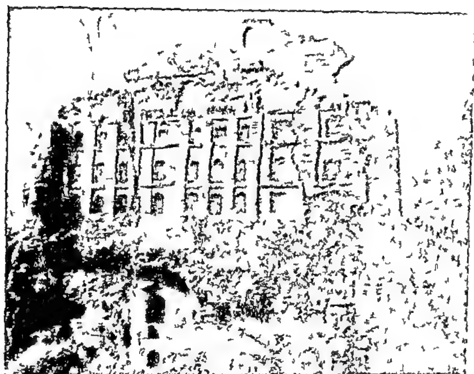

पलामू का नवीन दुर्ग, जिसे राजा मेदिनी राय के पुत्र राजा प्रताप राय ने बनवाया था, जो बिहार के मुसलमान सूबेदार से सन् १६६० ई० में पराजित होकर जंगल में भाग गया था।

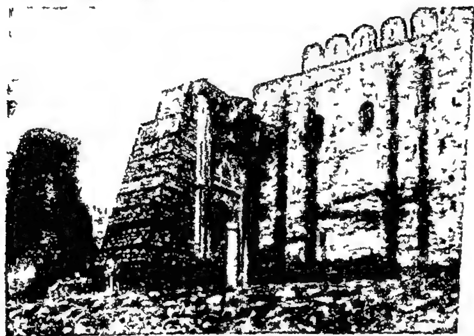

पलामू के नवीन दुर्ग का 'नागपुरी दरवाजा', जिसकी रचना में मुगल शिल्प कला की जहाँगीरी पद्धति का पुट है।

पलामू के प्राचीन दुर्ग में दाऊद खाँ की मसजिद। दाऊद खाँ ने मेदिनी राय के पुत्र प्रतापराय को पराजित किया था।
(पृष्ठ १३६)

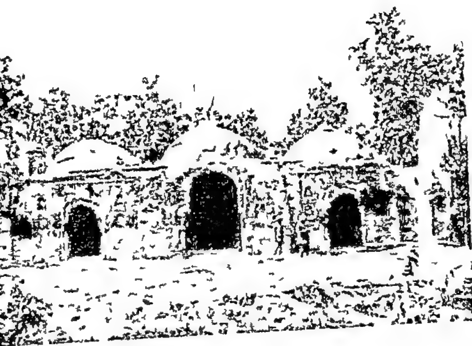

पलामू के प्राचीन दुर्ग का 'सिंह-दरवाजा', जो डालटनगंज से २० मील दक्षिण पूर्व है। इसे पलामू के सबसे बड़े चेरो-राजा मेदिनी राय ने १७ वीं शताब्दी में बनवाया था।

अँगरेज सरकार को विद्रोहियों के दबाने में मदद दी थी। इसी राजवंश के राजा भागवतदयालसिंह बड़े ही चतुर और ब्रिटिश सरकार के मित्र थे। इन्हींके पुत्र राजा ब्रह्मदेवनारायणसिंह 'रका' राज के अधीश्वर हैं। वे बिहार-सरकार की कौंसिल के सदस्य रह चुके हैं।

सोनपुरा

यह राज्य पलामू जिले में है। इस राजवंश के पूर्वपुरुष गोरखपुर जिले के निवासी थे। इस राजवंश के किन्नर साही देव ने 'जपला' और 'बौंजा' परगनों को दिल्ली के बादशाह से जागीर के रूप में पाकर 'सोनपुरा' में राजधानी बनाई। मुगल-सम्राट् मुहम्मद शाह ने ये दोनों परगने, किसी कारण, बिहार के नायब नवाब हिदायतअली खाँ के पुत्र गुलामहुसेन खाँ को दे दिये। सोनपुरा के राजा को नवाब गुलामहुसेन से लड़ना पड़ा। बड़ी मारकाट हुई। अंत में नवाब जितना दखल कर सका उतना ही लेकर, 'हुसेनाबाद' नामक कस्बा बसाकर, राज करने लगा। सोनपुरा के वर्त्तमान अधिपति राजा विश्वम्भरनाथ साही देव हैं। 'ऊँटारी' के भैयासाहब भी इसी वंश के हैं।

छोटानागपुर

सैकड़ों साल पहले नागवंशी राजा मुकुटमणि ने छोटानागपुर में राज्य जमाया। इनकी राजधानी पूर्वोक्त 'रातू' में थी। इस वंश के ४२ राजा स्वतंत्र रहे। सन् १५६५ ई० में सम्राट् अकबर के सेनापति ने छोटानागपुर पर चढ़ाई की। उस समय राजा माधवसिंह 'रातू' का अधीश्वर था। पहले तो वह बहुत लड़ा, पर अंत में कुछ हीरे और धन देकर सुलह कर ली।

राजा दुर्जनशाल के समय में भी, सन् १६१६ ई० में, बिहार के मुगल सूबेदार इब्राहिम खाँ ने इस राज्य पर चढ़ाई की। राजा दुर्जनशाल हीरे और हाथी लेकर उससे मिलने चला, पर वह नजराने के साथ पकड़कर दिल्ली ले जाया गया। बादशाह ने खुश होकर उसे छोड़ दिया।

राजा भुवनाथ साही देव के समय में छोटानागपुर में उपद्रव मचा। अधीनस्थ सरदार स्वतंत्र हो गये। वर्त्तमान हजारीबाग जिले के रामगढ़ के राजा ने लड़ाई ठान दी। इसलिये राजा भुवनाथ को अँगरेजों की मदद लेनी पड़ी। पीछे राजा भुवनाथ ने अँगरेजों की अधीनता स्वीकार कर ली और अपने राज्य का अँगरेजों द्वारा प्रबंध होना भी स्वीकार किया। बाद को ब्रिटिश सरकार ने छोटा-

नागपुर का राज्य-प्रबंध अपने हाथ मे ले लिया। राजा को जीवन निर्वाह के लिये जमींदारी दे दी गई।

महाराजाधिराज प्रतापनाथ साही देव इन दिनों छोटानागपुर के अधीश्वर हैं। उनके सुपुत्र महाराजकुमार राजकिशोरनाथ साही देव बिहार-लेजिस्लेटिव-एसेम्बली के सदस्य हैं।

बालकोट (जिला रॉची) के राजा लाल नवलकिशोरनाथ साही देव भी छोटानागपुर-राजवश के हैं। उनके सुपुत्र लाल कन्दर्पनाथ साही देव भी बिहार-लेजिस्लेटिव-एसेम्बली के सदस्य हैं।

धनवार

इस राजवश के पूर्वपुरुष 'हसराज' दक्षिण भारत से आये थे। इस वश के लोग पन्द्रहवीं शताब्दी के अत तक हजारीबाग जिले के 'धनवार' नामक स्थान मे ही रहते थे। इसके बाद वे 'खडगडीहा' (हजारीबाग) मे आ बसे। सत्रहवीं शताब्दी के बाद इस वश के राजा मोदनारायण देव को 'नरहट' परगने के जमींदार अकबर अली खॉ ने हराकर गद्दी छीन ली। कुछ काल तक रामगढ में रहकर राजा मर गया। इसका पोता गिरिवरनारायण देव हुआ। इसने अँगरेजों की मदद से अकबर अली के वशजों को हराकर खडगडीहा की गद्दी ले ली। पीछे इस राज्य का प्रबध ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। आज तक यह रियासत धनवार-राजवश वालो के हाथ मे जागीर के तौर पर है।

रामगढ़

यह रियासत भी हजारीबाग जिले मे है। वर्त्तमान पद्मा-राजवश के पूर्वज रामगढ़ में रहते थे, इसलिये इस रियासत को पद्मा राज्य और रामगढ-राज्य भी कहते हैं। इस वश के पूर्वपुरुष सिंहदेव ने अपने भाई बाग्देव के साथ आकर छोटानागपुर के महाराज के यहाँ नौकरी की थी। बाग्देव बडा चतुर था। उसने महाराज से रामगढ परगना ले लिया। फिर महाराज से लड़-झगड़ कर अपने बडे भाई के मेल से अपनेको स्वतत्र घोषित कर दिया। इस वश के लोग क्रमश हजारीबाग जिले के सिसिया, ऊर्दा और बादाम (कर्णपुर) नामक स्थान में कुछ समय तक रहे। सत्रहवीं शती मे वे रामगढ चले आये।

रामगढ का पहला राजा दलेलसिंह था। इस राज्य पर मुसलमानों ने तीन बार चढाइयाँ की थीं। अन्तिम चढाई बिहार के नवाब हिदायत अली खाँ की हुई।

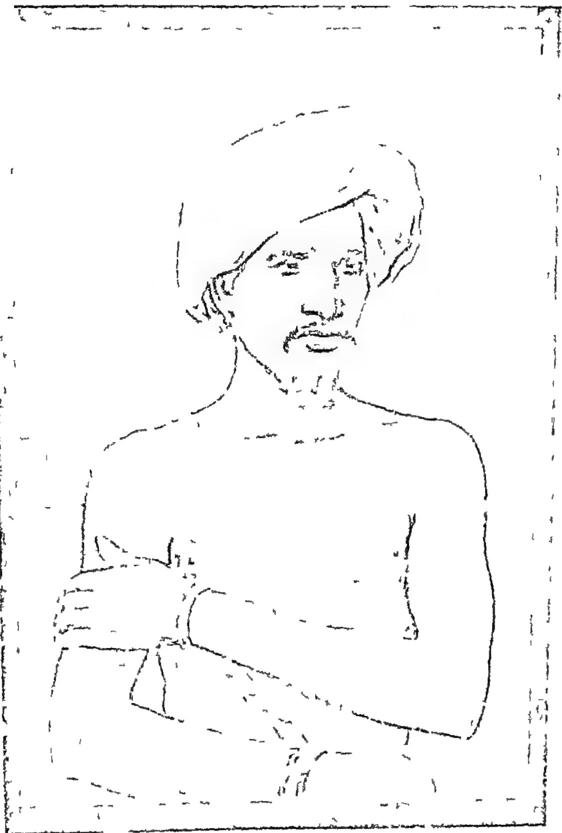

बिरसा भगवान

श्रीसैन्गा नै नामाय ॥

उसने रामगढ़ पर अधिकार कर लिया, परन्तु बिहार पर मराठों की चढ़ाई का हाल सुनकर पटना लौट गया। उसके जाते ही राजा मुकुन्दसिंह ने पुन रामगढ़ पर आधिपत्य स्थापित कर लिया।

राजा मुकुन्दसिंह के भाई राजा तेजसिंह ने अँगरेजों की सहायता से अपने भाई मुकुन्दसिंह को मार डाला, और स्वय राजा बन बैठा। अँगरेजों ने राज्यप्रबध अपने हाथ मे ले लिया। तेजसिंह ने 'पद्मा' (हजारीबाग) मे अपनी राजधानी बनाई।

इन दिनों राजा कामाख्यानारायणसिंह इस राज्य के अधिपति हैं। आप नवयुवक हैं और यूरोप भ्रमण भी कर चुके हैं। नैपाल की एक राजकुमारी से आपका विवाह हुआ है। आप ही के राज्य की भूमि मे सन् १९४० की ५३ वीं कांग्रेस हुई थी।

कुण्डे

यह रियासत हजारीबाग जिले मे है। सम्राट् औरगजेब ने अपने नौकर रामसिंह को सन १६६६ ई० मे यह रियासत जागीर के तौर पर दी थी। रामसिंह घटवाल राजपूत था। उसके वशज आज भी जागीरदार और ब्रिटिश सरकार के भक्त हैं।

काशीपुर

यह राज्य पुराने जमाने से ही मानभूमि जिले मे कायम है। इसके राजा अपनेको गोवशी कहते हैं। इस राजवश के आदिपुरुष 'राजा जाटा' थे। उन्होंने पचकोटि नामक एक किला बनवाया।

इस राजवश मे आज तक ६७ राजा हो गये हैं। यहाँ के राजा 'महाराजाधिराज' भी कहलाते थे। 'पचकोटि' को पचेतगढ भी कहते हैं। 'पचकोटि' के अधीश्वर राजा कल्याणीप्रसादसिंह देव इन दिनों काशीपुर में रहते हैं और ब्रिटिश सरकार के अधीन हैं। उनके छोटे भाई कुमार अजीतप्रसाद सिंह देव बिहार-सरकार के स्थानीय स्वायत्त शासन के मंत्री रह चुके हैं।

पोरहाट

यह रियासत मानभूमि जिले मे है। पोरहाट-राजवश की राजधानी चक्रधरपुर मे थी। इस वश के आदिपुरुष राठौर-राजपूत और जयपुराधीश महाराज मानसिंह के अगरक्षक थे। इस वश मे तेरह राजा हो गये हैं, जिनमें राजा जगन्नाथसिंह

रहते है वे वास्तव मे ईश्वर की ही विभूति हैं। ऐसे व्यक्तियो के जन्म से जिस देश की भूमि धन्य एवं कृतकृत्य होती है वही देश विभूतिशाली कहलाने योग्य होता है। इस दृष्टि से विहार वस्तुत विभूतिशाली है और भारत के अन्य प्रान्तों के सामने वह भी अपनी विभूतियो के बल पर उचित गौरव के साथ अपना सिर ऊँचा कर सकता है।

सतीशिरोमणि जगज्जननी जानकी के पिता मिथिलेश राजर्षि 'सीरध्वज जनक' विहार की एक अतुलनीय विभूति थे। वे भारतवर्ष मे अद्वितीय ब्रह्मवादी हो गये हैं। पुन मिथिलेश देवरात जनक के समय मे मिथिला के राज-पडित महर्षि याज्ञवल्क्य सबसे प्रसिद्ध ब्रह्म-विचारक और स्मृतिकार हो गये हैं। देवरात जनक के एक यज्ञ के अवसर पर एक वृहत् विद्वत्-परिषद का आयोजन किया गया। उसमे आर्यावर्त्त के अनेक धुरन्धर विद्वान् निमंत्रित किये गये। जनक ने एक हजार गायों के सींगो पर सोने के दस-दस पाद (निष्क, सिक्का) बँधवाकर परिषद् मे उपस्थित विद्वानों से कहा कि आपमे जो सबसे बड़ा विद्वान हो वह इन्हें ले जाय। याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य सामश्रवा को गायें हॉक ले जाने कहा। इसपर दूसरे लोगों ने उनसे प्रश्न पूछना शुरू किया। उन्होंने एक-एक का उत्तर दे दिया। तब वृद्ध उद्दालक, आरुणि, विदुषी गार्गी और देवमित्र शाकल्य 'विदग्ध' ने क्रमश उनसे शास्त्रार्थ किया, पर कोई उनसे जीत न सका।

महाभारत-युग का दुर्द्धर्ष धनुर्द्धर और कौरवों का परम सहायक महारथी 'कर्ण' सुप्रसिद्ध दानवीर और रणधीर योद्धा था। वह विहार के दक्षिण-पूर्व खड मे स्थित अग देश का राजा था। मुंगेर और भागलपुर जिलो मे उसके किलो, गढों और महत्त्व के कई निशान, ऊँचे-ऊँचे टीलों के रूप मे, मौजूद हैं।

विहार के एक बलवन्त विजेता वीर मगधराज जरासध ने ही मथुरा के यादव-वृष्णि-गणतत्र पर चढाई कर उसके नेता जगद्गुरु श्रीकृष्णचद्र को मथुरा छोड द्वारका भाग जाने के लिये वाध्य किया था। श्रीकृष्ण ने षड्यन्त्र रचकर पाडव भीम द्वारा इसका वध करवाया था। इसके समय में मगध की राजधानी राजगृह (राजगिरि) मे थी। यह उस समय का प्रचड मल्ल योद्धा था।

न्यायशास्त्र के आचार्य गौतम मुनि विहार के ही निवासी थे। दरभगा जिले मे गौतम-कुड और अहल्या-स्थान इनकी याद दिलाते हैं।

सुप्रसिद्ध वीर परशुराम के पूर्वज च्यवन ऋषि का निवास वर्त्तमान शाहाबाद जिले में सोन नदी के तट पर था। कहते हैं कि च्यवनाश्रम के पास ही सस्कृत के

समुद्रगुप्त

महाकवि बाणभट्ट निवास करते थे, जिनकी रचना 'कादम्बरी' संस्कृत के गद्य-साहित्य की अमूल्य निधि है।

भगवान् बुद्धदेव का सारा जीवन बिहार में ही बीता। बोधगया में ही उन्हें बुद्धत्व प्राप्त हुआ। बिहार के मगध-सम्राटों ने ही बौद्ध धर्म को भूमंडल में फैलाया।

जैनियों के सर्वश्रेष्ठ तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीर का जन्म वैशाली (उत्तर-बिहार) में ही हुआ था। वैशाली के लिच्छवि-नरेश चेटक उनके मामा थे।

मिथिला के राजकुमार महाजनक की बहादुरी की कहानियाँ बौद्ध जातक कथाओं में पाई जाती हैं। उन्होंने अर्थ-संग्रह के लिये जावा, सुमात्रा, स्याम, मलय आदि द्वीपों और देशों की यात्रा की थी। उस अभियान में उन्होंने उपनिवेश-स्थापन भी किया था।

बिहार का इतिहास-प्रसिद्ध सम्राट् मगधराज चन्द्रगुप्त मौर्य ने सम्पूर्ण उत्तरीय भारत पर अधिकार जमाकर सुनिश्चित मौर्य-साम्राज्य की नींव डाली थी। ग्रीक-सरदार सेल्यूकस को भी इसने हराया था।

चन्द्रगुप्त के पोता सम्राट् अशोक के समय में मौर्य-साम्राज्य की पूरी उन्नति हुई। यह संसार के प्रसिद्ध सम्राटों में गिना जाता है। इसने भारत के सिवा चीन, जापान, लंका, तिब्बत आदि सुदूरवर्त्ती देशों में भी बौद्ध धर्म का प्रचार कराया, जहाँ वह आज तक जीवित है।

मगध-सम्राट् पुष्यमित्र ने ही सार्वभौम साम्राज्य के वैदिक आदर्श को अपना लक्ष्य घोषित करने के लिये अश्वमेध यज्ञ का पुनरुद्धार किया था। सारा आर्यावर्त्त इसके अधीन था।

पुष्यमित्र का पुत्र सम्राट् अग्निमित्र ही महाकवि कालिदास का आश्रयदाता 'प्रथम विक्रमादित्य' कहा जाता है। महाकवि के प्रसिद्ध नाटक 'मालविकाग्निमित्र' का प्रधान पात्र यही मगध सम्राट् है।

गुप्तवंशी सम्राट् समुद्रगुप्त बिहार का ही रत्न था। यह बड़ा वीर, विद्वान्, संगीतज्ञ और गुणियों का आदर करनेवाला था। इसके समय में मगध-साम्राज्य की पर्याप्त उन्नति हुई। सारा भारत इसकी छत्रच्छाया में आ गया था।

जगद्गुरु शंकराचार्य और विश्वविख्यात मैथिल पंडित मंडन मिश्र का शास्त्रार्थ, तथा मिश्रजी की सहधर्मिणी महाविदुषी 'सरस्वती' के साथ भी शंकराचार्य का शास्त्रार्थ, काफी प्रसिद्ध है। मिश्रजी बिहार की अमर विभूति हैं।

शांकरभाष्य की टीका 'भाष्य भामती' के रचयिता वाचस्पति मिश्र, भारत में

अध्यक्ष भी रह चुके थे। टर्किश पीस कानफरेन्स (लन्दन) और लीग आफ नेशन्स (जेनेवा) मे आप भारत के प्रतिनिधि-रूप मे सम्मिलित हुए थे। ये दोनों सगे भाई थे और पटना जिले के 'नेवरा' ग्राम के निवासी थे। इस ग्राम के सभी निवासी ऊँची शिक्षा पाये हुए और ऊँचे ओहदेवाले हैं। सम्राट् पचम जार्ज भी यहाँ उतरे थे।

सारन जिले के निवासी खाँ-बहादुर खुदाबख्श खाँ भी बिहार की एक उज्ज्वल विभूति थे। उनकी स्थापित की हुई ओरिएटल लाइब्रेरी (पटना) एशिया मे अपने ढग का एक ही सग्रहालय है। दिल्ली और अवध की बादशाही के समाप्त होने पर इन्होंने शाही कुतुबखाने की बहुत-सी बहुमूल्य पुस्तकें खरीदकर इस पुस्तकालय को सुसज्जित किया था और अपनी वकालत की सारी कमाई ग्रन्थ सकलन मे ही लगा दी थी।

बिहार में राष्ट्रीय जागृति का प्रकाश फैलानेवालों मे मौलाना मजहरुलहक साहब का भी बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। आप भी सारन जिले के ही निवासी थे। दीघाघाट (पटना) मे आपका स्थापित किया हुआ सदाकत आश्रम बिहार की समस्त राजनीतिक प्रगतियों का प्रधान केन्द्र है। आप ही के नाम पर १६४० की (५३ वीं) रामगढ-कांग्रेस का नगर बसाया गया था—'मजहरपुरी'।

उक्त रायबहादुर तेजनारायणसिंह के सुपुत्र बाबू दीपनारायणसिंह भारत के ओजस्वी वक्ताओं मे गिने जाते थे। वक्तृत्व-कला की विभूति आपमे भरपूर थी।

पटना निवासी भारत-प्रसिद्ध बारिस्टर, महामहोपाध्याय, विद्यामहोदधि, डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल यद्यपि सयुक्त प्रान्त के मिर्जापुर नगर के निवासी थे, तथापि आपका कर्मक्षेत्र यावज्जीवन बिहार ही रहा। बिहार-उडीसा-रिसर्च-सोसाइटी के जन्मदाता आप ही थे। आप विश्वविख्यात इतिहासज्ञ थे। पुरातत्त्व-सम्बन्धी अनेक अनुसधानों के लिये आप प्रमाण माने जाते थे। आपके रचे हुए प्रसिद्ध और प्रामाणिक अँगरेजी ग्रन्थों के नाम ये हैं—Manu and Yajnavalkya, Hindu Polity, History of India, Imperial History of India—150 A D to 350 A D, Chronology and History of Nepal ओरिण्टल कानफरेन्स (बडोदा), पटना म्यूजियम, भारतीय मुद्रासमिति, बिहार-उडीसा-रिसर्च-सोसाइटी आदि महान् सस्थाओं के आप सभापति हो चुके थे।

त्याग और तपस्या की मूर्त्ति पडित बच्चा झा बिहार की एक दिव्य विभूति थे। आप षड्दर्शन के अगाध विद्वान् थे। मिथिलेश महाराजाधिराज सर रमेश्वर

खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर ।

[illegible] ।

स्वनामधन्य देशपूज्य डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादजी
[जीरादेई (सारन) निवासी]

बिहार के ख्यातनामा कुमार गंगानन्द सिंह

बिहार-गौरव श्रीयुत रामलोचनशरणजी

बिहार की विभूतियाँ

[लेख—पृष्ठ १४१]

स्वर्गीय मौलाना मजहरुलहक
जिनके नाम पर रामगढ़-काँग्रेस की मजहर पुरी बसाई गई थी

स्वर्गीय हसन इमाम साहब
जिन्होंने बम्बई की विशेष काँग्रेस का सभापतित्व किया था

डाक्टर सर गणेशदत्त सिंह
जिन्होंने पटना विश्वविद्यालय को लगभग पाँच लाख रुपये का दान दिया है

टी० एन० जे० कालेज (भागलपुर) के संस्थापक
स्वर्गीय रायबहादुर श्रीतेजनारायणसिंहजी (पृष्ठ १४५)

रायबहादुर के देशभक्त सुपुत्र स्वर्गीय श्रीदीपनारायणसिंहजी
(पृष्ठ १४६)

पटना यूनिवर्सिटी के वाइसचांसलर
डॉक्टर सच्चिदानन्दसिंह, बार ऐट-लॉ

सिंह के बहुत आग्रह करने पर आपने मुजफ्फरपुर संस्कृत-कालेज के प्रिन्सिपल का पद स्वीकार किया था।

यहाँ तक बिहार की स्वर्गीय विभूतियों का वर्णन किया गया, अब आगे जीवित विभूतियों का वर्णन किया जायगा—

महाराजाधिराज सर कामेश्वर सिंह बहादुर ऐसे महीप-रत्न हैं, जिनपर समग्र बिहार को गर्व है। आपकी राजनीतिज्ञता, प्रजावत्सलता तथा सुधारप्रियता अनुकरणीय है। मैथिल-समाज में सर्वप्रथम समुद्र यात्रा का दृष्टान्त देकर आपने स्वजातीय नवयुवकों की उन्नति के लिये प्रशस्त मार्ग खोल दिया है। देश, जाति, समाज तथा सरकार के लिये आपका कोप सर्वदा मुक्त रहता है। लाखों रुपये आपने दान में दिये हैं। आपके समान सुसंस्कृत, उदारचेता तथा दयालु नरेश विरले ही मिलेंगे।

महामहोपाध्याय डाक्टर सर गङ्गानाथ झा बिहार की उन विभूतियों में हैं जिन्होंने बिहार के बाहर जाकर अन्य प्रान्त में भी बिहार का सिर ऊँचा किया। आप अनेक वर्षों तक प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर रह चुके हैं। आप दरभंगा-राजवंश के समीपी सम्बन्धी हैं। आप अन्ताराष्ट्रिय ख्याति के विद्वान् हैं। आपने सांख्यतत्त्वकौमुदी, योगसारसंग्रह, काव्यप्रकाश, श्लोकवार्त्तिक, प्रशस्तपाद-भाष्य, न्यायसूत्रभाष्यवार्त्तिक, खण्डनखण्डखाद्य, पुरुषपरीक्षा आदि गूढ़ संस्कृतग्रन्थों का प्रामाणिक अँगरेजी अनुवाद किया है। शाण्डिल्यभक्तिसूत्र, प्रसन्नराघव आदि ग्रंथों का भाष्य भी लिखा है। हाल ही में आपका 'मीमांसा का शाबर भाष्य' और हिन्दू-विधान-सम्बन्धी वृहत् ग्रंथ प्रकाशित हुआ है।

बिहार उड़ीसा के स्वायत्तशासनविभाग के भूतपूर्व मंत्री सर गणेशदत्तसिंह भी बिहार की एक देदीप्यमान विभूति हैं। आपने पटना विश्वविद्यालय को कई लाख रुपये दान दिये हैं।। आप आदर्श त्यागी, स्वाध्यायी और दानवीर हैं। आप पटना जिले के निवासी हैं।

बिहार के अन्ताराष्ट्रिय ख्यातिप्राप्त विभूतिशाली पुरुषों में डॉक्टर सच्चिदानन्द सिंह का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आप लब्धकीर्त्ति पत्रकार, भारतप्रसिद्ध बारिस्टर, अँगरेजी के विश्वविख्यात लेखक और वक्ता हैं। आप भारत के प्रमुख राजनीतिशास्त्री और शिक्षाशास्त्री हैं। आप एक आदर्श विद्याव्यसनी और अक्लान्त स्वाध्यायी पुरुष हैं। बंगाल से बिहार के अलग कराने का अधिकांश श्रेय आप ही को है। लगातार कई साल तक आप इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य

थे। इंडियन लेजिस्लेटिव एसेम्बली के सर्वप्रथम भारतीय डिपुटी प्रेसिडेंट आप ही हुए थे। बिहार-उड़ीसा-सरकार के भी आप सर्वप्रथम भारतीय अर्थमंत्री थे। बिहार लेजिस्लेटिव कौंसिल के भी आप सर्वप्रथम भारतीय अध्यक्ष थे। इंगलैंड में ज्वाइंट पार्लामेंटरी सबकमिटी के समक्ष अपना वक्तव्य देने के लिये खास तौर से आप निमंत्रित किये गये थे, जहाँ आपने भारतीय शासनविधान की वृहत् रूपरेखा तैयार कर पेश की थी। प्रयाग के सुप्रसिद्ध अँगरेजी पत्र 'लीडर' के आप आदि-संस्थापकों में हैं। 'बिहार टाइम्स' का आप सम्पादन कर चुके हैं। अनेक वर्षों से आप अँगरेजी के प्रभावशाली मासिक पत्र 'हिन्दुस्तान रिव्यू' के सम्पादक हैं। अँगरेजी में आपके लिखे कई दर्शनीय ग्रंथ हैं। अपनी स्वर्गीया पत्नी के नाम पर आपने पटना में 'श्रीमती राधिकासिंह इंस्टिट्यूट' नामक एक विराट् पुस्तकालय की स्थापना की है। गत कई वर्षों से आप पटना विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर हैं। आप बिहार के गौरवालंकार हैं।

सारन जिले के वयोवृद्ध राष्ट्रीय नेता और दरभंगा के त्यागवीर वकील बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद का भी बिहार के निर्माण में कुछ कम हाथ नहीं है। महात्मा गान्धी भी आपका बड़ा सम्मान करते हैं। भारतप्रसिद्ध साम्यवादी नेता श्रीजयप्रकाशनारायण आप ही के जामाता हैं। बिहार में राष्ट्रीय जागृति की ज्योति फैलानेवाले आप सर्वप्रथम व्यक्ति हैं।

देशपूज्य भारत रत्न डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद भी सारन जिले के ही निवासी हैं। आप केवल बिहार की ही विभूति नहीं हैं, बल्कि भारत की उज्ज्वलतम विभूतियों में सादर आपकी गणना होती है। महात्मा गान्धी के बाद राजनीतिक क्षेत्र में आप ही का स्थान है। आपके त्याग और तपस्या की महिमा बिहार की ही नहीं, भारत की एक अमूल्य सम्पत्ति है। एम्० एल० की परीक्षा पास करनेवाले प्रथम बिहारी आप ही हैं। दो दो बार आप इंडियन नेशनल कांग्रेस और अखिलभारतीय राष्ट्रभाषा-सम्मेलन के सभापति हो चुके हैं। अँगरेजी, हिन्दी, फारसी, संस्कृत आदि कई प्रमुख भाषाओं के आप गंभीर विद्वान् हैं। केवल बिहार के ही नहीं, भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के भी आप कुशल कर्णधार हैं। आपकी कीर्त्ति देश देशान्तर में विख्यात है। आप ही के नाम पर छपरा में राजेन्द्रकालेज स्थापित है।

श्रीयुत रामलोचनशरणजी बिहारी यथार्थतः बिहारियों के गौरवस्वरूप हैं। आपने निरन्तर २५ वर्षों की कठोर साहित्य-साधना से हिन्दी की जो सेवाएँ की हैं, वे स्वर्णाक्षरों में लिखी जाने योग्य हैं। जिस सरल गद्यशैली का आपने प्रवर्त्तन

किया है, यह आदर्श बन गई है और बिहार के प्राय सभी नवयुवक लेखक आज उसी आदर्श के अनुयायी हैं। आपकी 'बालक'-सम्पादन-कला द्विवेदीजी की याद दिलाती है। बाल साहित्य के निर्माण में हिन्दी भाषा में आपका वही स्थान है जो गुजराती भाषा में गिजू भाई का। पुस्तक-प्रकाशन में आपने बिहार का मस्तक वैसे ही उन्नत किया है जैसे गुरुदास चटर्जी ने बगाल का। आपका प्रसिद्ध 'पुस्तक भडार' और यशस्वी 'बालक' इस प्रान्त का ही नहीं, अपितु समस्त देश का गौरव बढा रहा है। शरणजी नि सन्देह बिहार के साहित्यिक दधीचि हैं।

श्रीनगराधीश कुमार गङ्गानन्दसिंह एम्० ए० इस प्रान्त की एक विशिष्ट विभूति हैं। आप रॉयल सोसाइटी आफ ग्रेटब्रिटेन ऐंड आयरलैंड, रायल एशियाटिक सोसाइटी, बगाल एशियाटिक सोसाइटी, बिहार उडीसा रिसर्च सोसाइटी, इम्पायर पार्लामेंटेरियन्स एसोसिएशन आफ ग्रेटब्रिटेन ऐंड आयरलैंड और बिहार लेजिस्लेटिव कौंसिल के फेलो और मेम्बर हैं। इडियन लेजिस्लेटिव एसेम्बली में आप कई साल तक कांग्रेस पार्टी के प्रधान मत्री रह चुके हैं। आप ही एकमात्र बिहारी हैं जिन्हें यह गौरव प्राप्त हुआ था। लगभग चौदह पन्द्रह वर्षों तक आप बिहार-प्रान्तीय हिन्दू-महासभा के सभापति रह चुके हैं। आपकी रचनाएँ उपर्युक्त सस्थाओं के मुखपत्रों में सदा छपा करती हैं। आप अन्ताराष्ट्रिय ख्याति के लेखकों में हैं। अँगरेजी, सस्कृत, फ्रेंच, हिन्दी, मैथिली, बँगला आदि कई विदेशी और देशी भाषाओं के आप प्रकाड पडित हैं। वक्तृत्व कला एव पत्रकार-कला में भी आप निपुण हैं। आप बडे मिष्टभाषी और निरभिमान पुरुष हैं।

प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर पडित अमरनाथ झा बिहार की एक ज्वलत विभूति हैं। आप महामहोपाध्याय डाक्टर सर गगानाथ झा के द्वितीय सुपुत्र हैं। आप ही सर्वप्रथम भारतीय हैं जिन्हें पेरिस विश्वविद्यालय ने अपना 'फेलो' चुनकर सम्मानित किया है। आप भी अन्ताराष्ट्रिय ख्याति के विद्वान् हैं।

हिन्दू-विश्वविद्यालय (काशी) के सस्कृत विभाग के प्रधानाध्यक्ष महामहोपाध्याय बालकृष्ण मिश्र भारत के गिने चुने नैयायिकों में हैं। बिहार की विभूतियों में उनका स्थान अक्षुण्ण है।

इस प्रकार बिहार के अतीत और वर्त्तमान युग की विभूतियों की एक झलक दिखाकर हम निस्सकोच कह सकते हैं कि बिहार चाहे जिस दृष्टि से देखा जाय— ऐतिहासिक, राजनीतिक, साहित्यिक—सब तरह से यह गौरवमडित और भारत-भूमि का एक रत्नखड सिद्ध होता है।

अदर है। इसका आधुनिक नाम 'बिहारशरीफ' ※ है और यह जिले का एक सब-डिवीजन भी है। इसी तहसील में इतिहास-प्रसिद्ध 'नालन्दा' और 'राजगिरि' (राजगृह) के दर्शनीय भग्नावशेष हैं।

बिहार-प्रान्त के अनेक प्रमुख नगरों के नाम 'द्वाविंश अवदान' में दिये गये हैं। उनमें इस 'ओदन्तपुरी' का भी वर्णन मिलता है †। यहाँ पालवंशी राजाओं के महलों के खँडहर आज भी विद्यमान हैं, जो 'गढ' कहे जाते हैं।

लगभग ४०० बरसों तक यहाँ पालवंशी राजाओं की राजधानी थी। स्मिथ के कथनानुसार ‡ पालवंश के प्रवर्त्तक 'गोपाल' ने अपनी राजधानी 'उद्दण्डपुर' में एक विशाल 'बौद्ध विहार' बनवाया था। पाटलिपुत्र कालवश उध्वस्त हो गया था, तब भी गोपाल के पुत्र धर्मपाल ने आठवीं शती में, गंगा के दक्षिण तट पर अवस्थित टेकरी के शिखर पर, सुप्रसिद्ध 'विक्रमशिला - विहार' का निर्माण करवाया था। +

जब इस नगर पर मुसलमान शासकों का आधिपत्य स्थापित हो गया तब यहाँ के 'नवरतन' नामक भवन में मुसलिम 'आमिल' लोग रहा करते थे।

'बिहार' नगर के अतिनिकटस्थ एक पर्वतखंड पर, वायव्य कोण के एक निर्जन स्थान में, एक बौद्ध विहार और है। इस विहार में बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की एक मूर्त्ति है। सप्तम शताब्दी में सुप्रसिद्ध चीनी यात्री 'हुएनसंग' इस विहार की यात्रा के लिये आया था।

ऐश्वरीक उत्तरबुद्ध-सम्प्रदायवाले आदिबुद्ध को सर्वोपरि महत्त्व देते हैं। उनका मत है कि आदिबुद्ध ने अपने ध्यान-बल से श्वेत रंग, वैरोचन (आसमानी रंग), अक्षोभ्य (पीतवर्ण), रत्नसंभव (रक्तवर्ण), अमिताभ और हरितवर्ण (अमोघसिद्ध) पाँच प्रकार के बुद्ध ध्यान की कल्पना की, और पाँचों ने एक एक पुत्र उत्पन्न किया। ये ही 'बोधिसत्व' नाम से विख्यात हुए।

अमिताभ बुद्ध ने ध्यान-बल से अवलोकितेश्वर बोधिसत्व (अथवा 'सिंह-

※ इस नगर का नाम 'बिहार' है, पर मुसलमान इसे 'बिहारशरीफ' कहते हैं—उनके पीरों की बहुत सी दरगाहें यहाँ हैं। नगर की सीमा पर 'पंचाना' नदी बहती है। जनसंख्या लगभग ५० हजार।

† डॉक्टर आर० मित्र का 'नेपाल में संस्कृत-साहित्य' (पृष्ठ ८८) देखें।

‡ विन्सेंट ए० स्मिथ—ईसवी सन् ८१५—८६०

+ देखिये—'डे' का 'विक्रमशिला'—जर्नल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, १९०९, पृ० १।

टना से १९ मील की दूरी पर, 'मनेर' नामक कस्बे में, सन् १६१६ ई० में बनकर तैयार हुआ शाह दौलत नामक
त्वदर्शी संत का मकबरा, जो बिहार का सर्वश्रेष्ठ समाधि मन्दिर या स्मारक भवन समझा जाता है और जिसका
बरामदा फतहपुर सिकरी (आगरा) के बरामदे से प्रतिस्पर्धा करता है। (पृष्ठ २६१

... मही पहाड़ी पर बना, मलिक इब्राहीम बाया नामक

अदर है। इसका आधुनिक नाम 'बिहारशरीफ' ※ है और यह जिले का एक सब-डिवीजन भी है। इसी तहसील में इतिहास-प्रसिद्ध 'नालन्दा' और 'राजगिरि' (राजगृह) के दर्शनीय भग्नावशेष हैं।

बिहार-प्रान्त के अनेक प्रमुख नगरों के नाम 'द्वाविंश अवदान' में दिये गये हैं। उनमें इस 'ओदन्तपुरी' का भी वर्णन मिलता है †। यहाँ पालवंशी राजाओं के महलों के खँडहर आज भी विद्यमान हैं, जो 'गढ' कहे जाते हैं।

लगभग ४०० बरसों तक यहाँ पालवंशी राजाओं की राजधानी थी। स्मिथ के कथनानुसार ‡ पालवंश के प्रवर्त्तक 'गोपाल' ने अपनी राजधानी 'उदंडपुर' में एक विशाल 'बौद्ध विहार' बनवाया था। पाटलिपुत्र कालवश उध्वस्त हो गया था, तब भी गोपाल के पुत्र धर्मपाल ने आठवीं शती में, गंगा के दक्षिण तट पर अवस्थित टेकरी के शिखर पर, सुप्रसिद्ध 'विक्रमशिला - विहार' का निर्माण करवाया था। +

जब इस नगर पर मुसलमान शासकों का आधिपत्य स्थापित हो गया तब यहाँ के 'नवरतन' नामक भवन में मुसलिम 'आमिल' लोग रहा करते थे।

'बिहार' नगर के अतिनिकटस्थ एक पर्वतखंड पर, वायव्य कोण के एक निर्जन स्थान में, एक बौद्ध विहार और है। इस विहार में बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की एक मूर्त्ति है। सप्तम शताब्दी में सुप्रसिद्ध चीनी यात्री 'हुएनसंग' इस विहार की यात्रा के लिये आया था।

ऐश्वरीक उत्तरबुद्ध-सम्प्रदायवाले आदिबुद्ध को सर्वोपरि महत्त्व देते हैं। उनका मत है कि आदिबुद्ध ने अपने ध्यान-बल से श्वेत रंग, वैराचन (आसमानी रंग), अक्षोभ्य (पीतवर्ण), रत्नसंभव (रक्तवर्ण), अमिताभ और हरितवर्ण (अमोघसिद्ध) पाँच प्रकार के बुद्ध ध्यान की कल्पना की, और पाँचों ने एक एक पुत्र उत्पन्न किया। ये ही 'बोधिसत्व' नाम से विख्यात हुए।

अमिताभ बुद्ध ने ध्यान बल से अवलोकितेश्वर बोधिसत्व (अथवा 'सिंह

※ इस नगर का नाम 'बिहार' है, पर मुसलमान इसे 'बिहारशरीफ' कहते हैं—उनके पीरों की बहुत सी दरगाहें यहाँ हैं। नगर की सीमा पर 'पंचाना' नदी बहती है। जनसंख्या लगभग ५० हजार।

† डॉक्टर आर० मित्र का 'नैपाल में संस्कृत-साहित्य' (पृष्ठ ८८) देखें।

‡ विन्सेंट ए० स्मिथ—ईसवी सन् ८१५—८६•

+ देखिये-'डे' का 'विक्रमशिला'—जर्नल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, १९०९, पृ० १।

...नामक
...ा से १९ मील की दूरी पर, 'मनेर' नामक कस्बे में, सन् १६१२ ई० में बनकर तैयार हुआ, शाह दौलत नामक ... और जिसका
...दर्शी संत का मकबरा, जो बिहार का सर्वश्रेष्ठ समाधि-मंदिर या स्मारक भवन समझा जाता है ... (पृष्ठ २२३)

बरामदा फतहपुर सिकरी (आगरा) के बरामदे में प्रतिस्पर्धा करता है।

...बिहारशरीफ (पटना) से दो मील की ... पहुँच हुए फकीर

... पहाड़ी पर बनी मस्जिद इब्राहीम ... या सन् ... के मध्य में बना था।

पावापुरी (पटना) का—जहाँ जैनधर्म के चौबीसवें तीर्थङ्कर महावीर स्वामी को निर्वाण प्राप्ति हुई थी—'जलमन्दिर'। देखें—पृष्ठ ३८६

प्राचीन उद्दन्तपुरी (बिहारशरीफ, पटना) के भग्नावशेष का दृश्य। आठवीं सदी से १२ वीं सदी तक जहाँ पालवंशी राजाओं की राजधानी थी। राजा गोपाल ने यहाँ एक विशाल विहार बनवाया था, जिससे 'बिहार' नाम पड़ा। बख्तियार खिलजी ने इसे उजाड़ा। पीछे यह मुसलमानों का केन्द्र हो 'शरीफ' बन गया। (पृष्ठ १५३)

नाथ लोकेश्वर ') की रचना की। भ्रमवश यह महादेव-मूर्त्ति भी कही जाती है। दूसरा नाम 'पद्मपाणि' भी है। अवलोकितेश्वर को सृष्टि, पालन और सहार करने की क्षमता प्राप्त थी।*

'ईलियट' ने भी अपनी 'हिस्ट्री ऑफ इडिया' मे † इस स्थान का उल्लेख किया है—'नैपाल और उर्विल्व शब्द के अतर्गत विवरण' में। उनके कथनानुरूप भी यहाँ बौद्ध विहार था। बिहार नगर से ७ मील आग्नेय दिशा के 'तितरवा' स्थान मे इस प्रकार के विहार के ध्वसावशेष हैं।

सन् १४५१ ई० तक यहाँ राजधानी का होना पाया जाता है। बाद मे शेर-शाह ने पटना मे राजधानी पलट दी थी, और यह नगर उजड गया। इसी बात को प्रमाणित करनेवाला एक शिला-लेख भी प्राप्त ‡ है।

इस प्रकार बिहार-प्रान्त के अनेक छोटे-बड़े स्थान, भिन्न भिन्न समयों में, ऐतिहासिक महत्त्व रखते रहे हैं। इनके वर्णनो से बुद्धकालीन साहित्य भरा पडा है।

वर्त्तमान बिहार प्रान्त की एक प्रमुख साहित्यिक सस्था 'पुस्तक भडार' की 'रजत-जयती' के इस पावन प्रसग पर हम सक्षेप मे 'उद्दडपुर' का पुण्य स्मरण कर, बिहार के अतीत गौरव के समक्ष, सादर श्रद्धाजलि अर्पित करते हैं।

* 'बुद्ध धर्म और साहित्य'—हॉगसन्—पृ० ६०-६१

† पुस्तक ४, पृष्ठ ४७७

‡ जर्नल एशियाटिक सोसाइटी, बगाल, १८३९, पृष्ठ ३५०

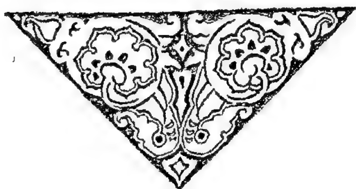

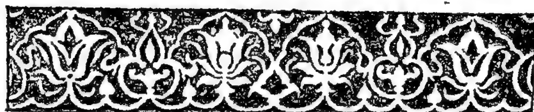

विहार का गोधन और उसकी गोशालाएँ

श्रीधर्मलालसिंह, व्यवस्थापक, दरभंगा गोशाला सोसाइटी

प्राणि-शास्त्रविशारदों ने यह बात एक मत से मान ली है कि मनुष्य-जाति और गो-जाति—दोनों साथ-ही-साथ सृष्टि के प्रारंभ में आईं। ऋग्वेद की व्याख्या करते हुए सायणाचार्य ने लिखा है कि मनुष्यों को गौ से ही बोली प्राप्त हुई। इसका खुलासा मतलब इस प्रकार है कि मनुष्य और गाय दोनों जब एक साथ आये तब दोनों ही चुप थे। गाय पहले रँभाई और फिर उसी धड़ल्ले से मनुष्य ने मुँह खोला और 'मा' शब्द का उच्चारण किया। यह तो हुआ हिन्दू-दृष्टिकोण।

ईसाइयों और मुसलमानों के यहाँ लिखा है कि आदम और इव जब स्वर्ग से निकाले गये तब खुदा ने उनको एक जोड़ी बैल और एक मुट्ठी गेहूँ दिया। इससे भी प्रमाणित होता है कि मनुष्य और गौ साथ-ही-साथ पृथ्वी पर आये।

पशु विज्ञानवेत्ता डाक्टर मैकुलम और डाक्टर स्मिथ का कहना है कि गाय के बिना सभ्यता बन ही नहीं सकती। सभ्यता का आधार और रीढ़ गौ है। इससे यह प्रमाणित होता है कि सृष्टि के आदिकाल में मनुष्य और गौ के साथ-साथ आने पर भी गो-माता ही सभ्यता का प्रथम सोपान रही। और, सभी तत्त्वज्ञ विद्वान् यह बात स्वीकार करते हैं कि सृष्टि की रचना तथा सभ्यता का विस्तार सर्वप्रथम विहार के उत्तर-भाग में, हिमालय की तराई की भूमि पर, हुआ था। एक प्रमुख पाश्चात्य विद्वान् ने हिमालय और गंगा के मध्यस्थित विदेह प्रदेश को

(लेख—पृष्ठ १५६)

गोशाला (दरभंगा) का कार्यालय और संग्रहालय

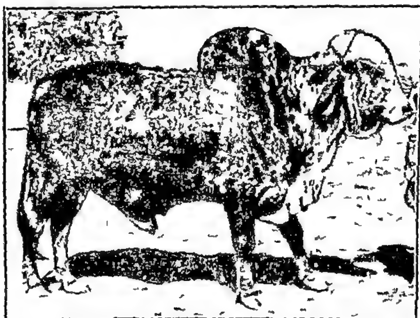

गोशाला सोसाइटी का गीर (गुजरात) जाति का साँड़

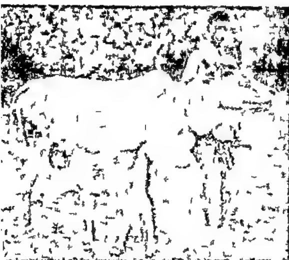

बछौर जाति की दुग्धवती गाय

बछौर जाति का, डेढ़ साल की उम्र का, बछड़ा

बछौर जाति का बधिया बछड़ा

बछौर-जाति का कमठ बैल

बछौर-जाति की एक गाय

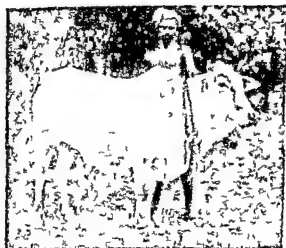

बछौर-जाति का बछड़ा-साँड

[पृष्ठ १६८]

आदिकालीन मानवी सभ्यता का पलना माना है। इसलिये स्वभावत सिद्ध होता है कि विहार के मनुष्यों तथा गोजाति का अति प्राचीन सम्बन्ध रहा है।

बात भी सच है। मगध, वैशाली और मिथिला का प्राचीन इतिहास ससार के लिये पथ प्रदर्शक है। यहाँ के मनुष्यों ने मानव-जाति की सभ्यता के विकास मे जो भाग लिया है उसके लिये सारा ससार उनका अनन्तकाल तक ऋणी रहेगा और सभ्यता के विकास मे गोवश का जो सहयोग रहा वह वैदिक युग के यज्ञकर्त्ता ऋषियों की दिनचर्या से स्पष्ट प्रकट है।

आधुनिक विहार की उत्तरी सीमा के आसपास, हिमालय की तराई मे, अनेक तपोवन और ऋषि आश्रम थे। वहाँ कुँआ, पोखरा आदि के पूर्ण चिह्न आज भी घने जगलों मे मिलते हैं। यहीं उन ऋषियों का वासस्थान था जिन्होंने सृष्टि रचना मे बड़ा जबरदस्त हाथ बँटाया था। उन ऋषियों मे प्रत्येक के पास हजार-हजार गायें थीं। यहाँ से कुछ दूर कैलास पर ब्रह्मा ने महादेव को बहुत सी गौएँ दी थीं, जिससे उनका नाम 'पशुपति' पड़ा। आज भी नैपाल के प्रधान देव पशुपति हैं। वहाँ के सारे सरकारी कागज पत्रों और सिक्कों पर पशुपति का चित्र अकित रहता है। पशुपतिनाथ के दर्शन के लिये हर साल महाशिवरात्रि पर लाखों यात्री दूर-दूर से वहाँ आते हैं।

कहते हैं कि वाणासुर की राजधानी विहार के निकट पड़ोसी नैपाल में थी। वह भगवान महादेव का परम भक्त था। महादेव ने उससे प्रसन्न होकर उसको बारह गायें दी थीं। वाण की गायों के आगे ससार की विभूति का कुछ भी मूल्य न था। पश्चिम मे वैज्ञानिक विधि से प्रतिपालित और परिपुष्ट गौएँ अपने दुग्ध बाहुल्य से आज जो ससार को चकित करती हैं तथा प्रति दिन डेढ़ मन दो मन दूध देती हैं, वे भी वाणासुर की गायों के आगे बकरी की ही उपमा के योग्य हैं। इस प्रसग मे एक कथा है—

जब श्रीकृष्ण ने अपनी अजेय यादवी सेना लेकर वाणासुर की राजधानी पर चढाई की तब वाण ने अपने मत्रियों को बुलाकर मत्रणा की। मत्रियों ने कहा—"श्रीकृष्ण से पार पाना कठिन है। राज्य चला जाय, इसका मोह नहीं। परन्तु अपनी बारह गायों को किसी प्रकार बचा लेना चाहिये, क्योंकि इनके आगे राजपाट कोई चीज नहीं है।"

वाण ने अपनी बारह गाये कुबेर के पास छिपा रक्खीं। उनसे कह दिया कि मेरी अनुमति के बिना आप ये गाये किसीको न दे।

लड़ाई शुरू हुई। बाणासुर हार गया। लूट का माल लेकर कृष्ण चलने लगे। किसी ने उनसे कहा—"महाराज, आपने जीता क्या ? इसकी बारह गायें कुबेर के पास छिपी हैं। यदि आपको वे न मिलीं तो आपकी जीत भी हार ही समझी जायगी।"

श्रीकृष्ण ने कुबेर को कहलाया कि गायें दे दो, परन्तु उन्होंने नहीं दीं। लड़ाई का सामान हुआ। देवता लोगों ने बीच-बचाव में पड़कर श्रीकृष्ण को समझा-बुझा दिया। इस तरह कुबेर का पिंड छूटा। इन बारह गायों के विचरण से विहार की भूमि पवित्र हो चुकी है।

मैथिल महर्षि याज्ञवल्क्य को पुरोहित बनाकर मिथिलेश महाराज देवरात जनक ने यहीं की भूमि पर संसार की सम्पदा को लजानेवाली उत्कृष्ट और सवत्सा एक सहस्र गायों का दान किया था।

बिहार की पूर्वी सीमा के पास, पुर्नियाँ जिले में, बी० एन० डबलू० रेलवे के 'जोगवनी' स्टेशन के समीप, विराटनगर नामक प्राचीन स्थान है। यहीं के राजा मत्स्यनरेश महाराज विराट् की गायें संसार-प्रसिद्ध हैं। यहीं आकर पाडवों ने अपने वनवास का अन्तिम समय बिताया था। विराट् की जातिवन्त उत्कृष्ट गायों की प्रशंसा सुनकर उनके हरण के लिये बड़ी विशाल सेना के साथ कौरव लोग चढ़ आये थे। बड़ी लड़ाई हुई और वे मुँह की खाकर लौटे।

यहीं के तपोवन में उपमन्यु नामक विद्यार्थी भूल से आक का पत्ता खा गया। वह अंधा हो गया। ऋषिगुरु ने उसे चार सौ गौएँ चराने को दीं। गौएँ चराते-चराते उसको दृष्टि-लाभ हुआ।

इन बातों से भी पता चलता है कि बिहार में उस समय गोधन की संख्या बेशुमार थी।

महादेवजी हिमालय पर तपस्या करते थे। वहाँ कपिला गायें इतनी संख्या में चारों ओर भरी पड़ी थीं कि कपिला के बच्चों ने ऊधम मचाया और अपने मुँह का फेन महादेवजी के मस्तक पर गिरा दिया। उनका ध्यान टूटा और क्रोध-भरी दृष्टि से ऊपर देखा तो कपिला के बच्चे नाना रंगों के हो गये।

गोमाहात्म्य की एक कथा गणेशजन्म में वर्णित है। पार्वती ने अश्विनी-कुमार से यह कहकर दवा खाई कि पुत्र लाभ होने पर वैद्यजी को मुँहमाँगी दक्षिणा मिलेगी। मनोरथ पूरा हुआ। पार्वती ने दक्षिणा देनी चाही। अश्विनीकुमार ने दक्षिणा में महादेव को माँग लिया। पार्वती बहुत घबराई। लोगों ने अश्विनी-

कुमार को बहुत समझाया-बुझाया, परन्तु उन्होंने नहीं माना। अन्त में भगवान् विष्णु आये और उनके समझाने-बुझाने पर अश्विनीकुमार राजी हुए। बोले—"महादेव के मूल्य के बराबर कोई चीज हमको दे दी जाय।" फिर गाय मँगाई गई। वही महादेव के मूल्य के रूप में दी गई। उसे पाकर अश्विनीकुमार बड़े प्रसन्न हुए।

अस्तु। पुराण-काल के पश्चात् बुद्ध-काल में भी बिहार में गोधन की बहुलता और प्रचुरता थी।

भगवान् बुद्ध को तपस्या करते छः वर्ष से ऊपर हो गये, परन्तु बुद्धत्व का लाभ नहीं हुआ। सुजाता नामक देवी ने उन्हें सहस्र गौओं के दूध की खीर खिलाई, तब तुरत उनको बुद्धत्व प्राप्त हुआ। कथा यह है—

गया के 'समानी' नामक गाँव के 'उरुवेला' नामक सेनानी-वंश की कन्या सुजाता ने मन्नत मानी थी कि उसका यदि मनचाहा योग्य वर से ब्याह हो गया तो वह वट-वृक्ष को सहस्र गौओं के दूध की खीर चढ़ावेगी। वैसा ही हुआ। उसने सहस्र गौओं को जेठीमधु के वन में चराया। आधी को दुहकर आधी गौओं को पिलाया। फिर उनको दूहा और वह दूध आधी को पिला दिया। इस प्रकार दूहते पिलाते उसने अन्त में सोलह गायों को दूहा और उनका दूध आठ गौओं को पिलाया। फिर उन आठों को दूहकर खीर तैयार की। अपनी दासी 'पूर्णा' को उसने वृक्ष की झाड़ बुहार और लीप-पोत करने के लिये भेजा। पूर्णा वहाँ जाकर भगवान् बुद्ध के कान्तिमय मुखमण्डल को देखकर दबे पाँवों लौट आई। सुजाता से कहा—"मालकिन, आपकी भेंट लेने के लिये पहले से ही वटवृक्षदेव साक्षात् रूप में बैठे हैं।" सुजाता बहुत प्रसन्न हुई। सोने के थाल में खीर परसकर वटवृक्ष के पास गई। भगवान् बुद्ध ने खीर खाई। उसी क्षण उनको बुद्धत्व मिला। बौद्ध-ग्रन्थ के सुत्तनिपात में यह प्रसंग आता है—

यथा माता पिता भाता अञ्ञे वापि च ञातका।
गावो नो परमा मित्ता यासु जायन्ति ओसधा॥

जिस प्रकार मा, बाप, भाई और दूसरे सगे-संबंधी अपने मित्र हैं, उसी प्रकार गाय भी हमारी परम मित्र है, जिससे मृत संजीवनी ओषधियाँ निकलती हैं।

अन्नदा बलदा चेता वण्णदा सुखदा तथा।
एतमत्थवसं ञत्वा नास्सु गावो हनिंसु ते॥

गाय हमें अन्न, बल, कान्ति तथा सुख देनेवाली है। यही जानकर वे लोग गाय को नहीं मारते थे।

न पादा न विसाणेन नास्सु हिंसन्ति केनचि।
गावो एलकसमाना सोरता कुम्भदूहना॥
ता विसाणे गहेत्वान राजा सत्थेन घातयि॥
ततो च देवा पितरो इन्द्रो असुररक्खसा।
अधम्मो इति पक्कन्दु य सत्थ निपति गवे॥
तयो रोगा पुरे आसु इच्छा अनसन जरा।
पसूना च समारम्भा अट्ठानवुतिमागमुम्॥

पर पीछे दिन पलटे। किसी को दुख न देनेवाली, घड़ा भर-भर दूध देने वाली, गाये बकरी की तरह गोमेध मे यज्ञ-बलि दी जाने लगीं। यह देखकर देव, पितर, इन्द्र, असुर, राक्षस, सभी बोले कि यह महा अधर्म है। फल यह हुआ कि पहले तीन ही रोग थे—इच्छा, भूख और बुढापा, पर गोवध शुरू होने पर अठानवे रोग पैदा हो गये।

बुद्ध के समय की एक रोचक कथा है। उससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि उस समय गौओं की कितनी संख्या थी।

मगधराज बिम्बसार के राज्य मे भद्दियनगर में विशाखा के पिता धनजय श्रेष्ठी प्रथम रहते थे। धनजय ने अपनी पुत्री विशाखा का ब्याह श्रावस्ती के जैन मिगार सेठ के पुत्र पुण्यवर्धन के साथ किया। दहेज मे धनजय ने ५०० गाड़ी सुवर्ण-मुद्राएँ, ५०० गाडी सोने की चीजें, ५०० गाडी चॉदी के बर्तन, ५०० गाडी तॉबे के बर्तन, ५०० गाडी खादी, ५०० गाडी घी, ५०० गाडी गुड, ५०० गाडी चावल, ५०० गाडी हल-कुदाल आदि हथियार, ५०० रथ और १५०० दासियाँ दीं।

धनजय ने लड़की को असख्य गाये भी दीं। अपने आदमियों से उन्होंने कहा—"जाओ, छोटा व्रज (गोकुल) खोल दो। एक-एक कोस के अन्तर पर तीन नगाड़े लेकर खड़े रहो। १४० हाथ की जगह बीच मे छोड़कर दोनों किनारे खडे रहो। इससे आगे गायों को मत जाने दो, ठीक खडे हो जाने पर नगाड़े बजाना।"

व्रज से निकलकर गायों के एक कोस पहुँचने पर नगाडा बजा। फिर आधे योजन पर बजा। पीछे तीन कोस पहुँचने पर बजा। इस प्रकार लम्बाई मे तीन कोस और चौड़ाई मे १४० हाथ से अधिक न फैलने दिया। लम्बाई मे तीन

कोस और चौडाई में १४० हाथ के मैदान में, एक दूसरी से देह रगडती हुई गायें, ठसाठस भर गई ।

धनजय ने कहा—"मेरी बेटी के लिये इतनी गायें बहुत है ।" यह कहकर सेठ ने गोशाला का फाटक बन्द करा दिया। दरवाजा बन्द करते-करते भी ६०००० गायें, ६०००० बैल और ६०००० बछडे निकल पडे ।

बौद्ध-काल के पश्चात् जैन-काल का इतिहास देखने से पता लगता है कि बिहार उस समय भी गोधन से परिपूर्ण था। राजगृह के महाशतक के पास अस्सी हजार गायें थीं। कापिल्य के कुडकौलिक के पास साठ हजार गायें थीं। आनन्द श्रावक ने महावीर स्वामी के पास जब श्रावक-व्रत लिया था तब उसके परिग्रह-परिमाण में उसका गोधन चालीस हजार गायों का माना गया था।

बिहार ऐसा गोधन सम्पन्न था !

मुसलमानी शासन-काल तक बिहार मे गोधन की सख्या का चिन्ताजनक ह्रास नहीं हुआ था। उस शासन का अवसान होने पर चमडे का व्यापार बढ़ने से गोवध की अपार वृद्धि हुई। फलत वर्तमान बिहार में, विशेषत उत्तर-बिहार में, चमडे तथा सूखे मास के व्यापार के लिये, अबाध गति से गोवध हो रहा है। हाटों पर अन्यप्रान्तीय और एतद्देशीय दलाल लाखों की सख्या में गोधन खरीदकर प्रतिवर्ष बाहर ले जाते है। नतीजा यह हुआ है कि बिहार मे गोदुग्ध दुष्प्राप्य हो गया है। जहाँ पजाब के गाँवों मे २०—२५ मन दूध सहज ही मे मिल सकता है वहाँ बिहार के गाँवों में १० सेर भी गोदुग्ध मिलना कठिन हो गया है। बडी विपरीत स्थिति है ! जिस भूमि मे जरासध, बाणासुर, चन्द्रगुप्त, अशोक, शेरशाह, गुरु गोविन्दसिंह, कुँवरसिंह आदि के समान पुरुषसिंह उत्पन्न हुए थे, वहाँ के आदमी दूध के अभाव से अब कठिन जाँच के बाद फौज मे भर्ती किये जाते हैं। किसी भी फौजी रिसाले का नाम बिहार पर नहीं है ।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि गोधन से परिपूर्ण बिहार इन दिनों सूना क्यों मालूम पडता है—क्या सिर्फ चमडे और सूखे मास के व्यापार के कारण ही इसका गोधन निम्न श्रेणी का होकर, अवनत दशा मे रहकर, भयकर सख्या में मारा जाता है ?

विचार पूर्वक देखने पर इसके तीन प्रधान कारण मालूम होते हैं—(१) घनी आबादी के कारण गोचर भूमि का अभाव, (२) निम्न श्रेणी के साँडों का

उत्सर्गीकरण और उनके सरक्षण तथा पालन पोपण मे घोर असावधानता, (३) लोगों की भयावनी गरीबी।

बिहार की भूमि बडी उर्वरा है। उत्तर-बिहार और भी अधिक उर्वर है। अत बाहर से अधिक सख्या मे आकर लोग यहाँ बस गये। गोचर, पडती—सारी जमीन जोत-कोडकर कृपि के काम मे लाने लगे। नतीजा यह निकला कि गौओं के चरने के लिये कुछ भी स्थान न बचा। पौष्टिक आहार के अभाव से गौओं का स्वास्थ्य गिरता गया। बल की कमी के कारण उनके गुण भी कमने लगे। अथच बिहार के मनुष्यों की ही तरह उनका गोधन भी बलहीन और गुणहीन हो गया।

बिहार में मृतक-श्राद्ध के अवसर पर प्रतिवर्ष हजारों साँड दागे और छोडे जाते हैं। यह परिपाटी जितनी उत्तर-बिहार मे है, उतनी भारत के अन्य किसी भी प्रान्त मे नहीं। शास्त्रों मे साँड़ की बडी महिमा है। अँगरेज लोग इन दिनों जिस प्रकार गोधन-वृद्धि की कुजी उत्तम साँड को मानते हैं तथा साँड की नस्ल के सुधार मे हजारों रुपये खर्च करते हैं, उसी प्रकार प्राचीन भारतवर्ष के ऋषि अच्छे साँडों के चयन, सवर्द्धन और विकास के लिये बडे सयत्न थे। हजारों वर्ष पूर्व भारतीय ऋषियों ने इसके लिये कडे नियम बना दिये थे, जिनके आधार पर कार्य करके पाश्चात्य जगत् के लोगों ने गोधन-वृद्धि द्वारा अपनी सभ्यता, सस्कृति और सुख-समृद्धि को स्वर्गोपम बना लिया है। और, भारतीय ? इन्हें तो उन नियमों का न ज्ञान है न ध्यान।

ऋषि-प्रणीत उन नियमों का दिग्दर्शन कराने के लिये यहाँ कुछ अवतरण दिये जाते हैं—

"वृपोत्सर्गादृते नान्यत्पुण्यमस्ति महीतले"—समाज सेवा के लिये वृपोत्सर्ग के समान दूसरा कोई पुण्य नहीं है।

पारस्करगृह्यसूत्र के तीसरे काड की नवीं कडिका का छठा सूत्र इस प्रकार है—"एकवर्णं द्विवर्णं वा यो वा यूथ छादयति य वा यूथ छादयेद् रोहितो वैव स्यात्सर्वाङ्गैरुपेतो जीववत्साया पयस्विन्या पुत्रो यूथे च रूपस्वित्तम स्यात्तमलङ्-कृत्य उत्सृजेरन्।" साँड एक या दो रगों का हो—लाल रग का हो तो उत्तम। सारे झुड मे डीलडौल और शरीर-बल मे, सबसे बढा चढा हो, जिसका सारा परिवार जीता हो और जो बहुत दुधार गाय का बछडा हो।

"मुखपुच्छपादेपु सर्वशुक्लो नीलोलोहितो वा लोहित एव वा स्यात्। एव कारेण लोहितस्यैकवर्णद्विवर्णाभ्यां प्राशस्त्यमुच्यते। कृत्स्न वर्गं छादयति स्वपरिमाणे नाध-

करोति।"—मुँह, पूँछ और पैर सफेद, काले और लाल हों। केवल लाल या किन्हीं दो रंगों का मेल विशेष प्रशस्त है। झुंड में सर्वोपरि हो, डीलडौल में सर्वश्रेष्ठ हो।

"सर्वैरंगैः समन्वितो न पुनर्हीनांगोऽधिकांगो वा।"—सर्वाङ्ग-सम्पूर्ण हो, हीन किंवा अधिक अंगोंवाला भी न हो।

"जीवा प्राणवन्तो वत्साः प्रसूतिर्यस्याः सा जीववत्सा तस्या गोः पुत्र पयो बहुक्षीरं विद्यते यस्याः सा पयस्विनी तस्याः बहुक्षीरायाः।"—बछड़ा शक्तिशाली हो, उसकी माता खूब दुधैल और दीर्घजीवी बछड़ों की जननी हो।

"यूथे वर्गविषये रूपमस्त्यस्तीति रूपस्वी अतिशयेन रूपस्वी रूपस्वितम।"—सारे झुंड में सबसे अधिक रूपवान् हो।

ऊपर के सूत्रों पर हरिहर विरचित टीका में लिखा है—

"उन्नतस्कन्धककुद ऋजुलांगूलभूषण।
महाकटितटस्कन्धो वैदूर्यमणिलोचन॥"

साँढ का कंधा और डील ऊँचे और विशाल हों। जाँघ बड़ी, पूँछ सीधी और आँखें वैदूर्यमणि के समान हों।

"प्रवालगर्भश्रृंगाग्र: सुदीर्घऋजुवालधि।
नवाष्टदशसंख्यैस्तु तीक्ष्णाग्रैर्दशनै शुभैः॥"

सींग की नोक मूँगा-जैसी हो, पूँछ लम्बी और सीधी हो, दाँत तेज हों और गिनती में आठ, नौ या दस हों।

"पृथुकर्णो महास्कन्धः सूक्ष्मरोमा च यो भवेत्।"

कन्धा ऊँचा, कान लम्बे और रोएँ छोटे-छोटे हों।

"भूमौ कर्षति लांगूलं पुनश्च स्थूलवालधि।"

पूँछ जमीन तक पहुँचती हो और उसके छोर पर घने बाल हों।

नील साँड विशेष रूप से अच्छे गिने जाते थे—

"चरणानि मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपते।
लाक्षारससवर्णश्च तं नीलमिति निर्दिशेत्॥
लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुर।
श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते॥"

नील साँड़ का रंग लाल होता है। उसके पैर, मुँह और पूँछ उजली होती है। नील साँड़ की दूसरी पहचान—शरीर का रंग लाल, मुँह और पूँछ में पीलापन, खुर और सींग में उजलापन।

ऊपर के अवतरणों से पता चलता है कि हमारे पूर्वज सॉंडों के चयन में पश्चिम के वर्त्तमान गोपालकों से कुछ कम सावधानता नहीं रखते थे। लेकिन श्राद्ध में उत्सर्ग होनेवाले साँड़ों के विषय मे धीरे-धीरे यह भाव कमता गया। पहले बीस पचीस गॉवों के बीच कोई बडा आदमी मुश्किल से सॉड छोडता था। वृषोत्सर्ग-श्राद्ध देखने के लिये लोग झुंड बॉध-बॉधकर जाते थे। परन्तु आज साधारण-से-साधारण श्राद्ध मे भी—जिसमे कठिनता से कुल चालीस पचास रुपये खर्च किये जाते हैं—बड़ी निम्न श्रेणी का बछड़ा लाकर दाग दिया जाता है। फल यह हो रहा है कि प्रतिवर्ष हजारों दगे हुए बछडों (सॉडों) को पकड़कर विधर्मी लोग ले जाते हैं और उनको बधिया करके हल मे जोतते हैं। जो थोडे बच जाते हैं, वे गॉव-गॉव मे जाकर गो-जाति की नस्ल को नष्ट करते हैं। उनसे जोड खाने पर गाय के बछडे बडी नीच श्रेणी के होते हैं। इस प्रकार दिनानुदिन गोवश की नस्ल पतनोन्मुख हो रही है। अब देहात मे कठिनता से सेर-भर दूध देनेवाली गाय मिलती है।

गाय से कुछ विशेष उपकार होते न देखकर लोगों ने भैंस पालना शुरू किया। गाय के पालन-पोषण मे शोचनीय उपेक्षा की गई। अन्ततोगत्वा वे गायें भार हो गईं। दो चार रुपये में भी बिकने लगीं। कसाइयों के हाथों में पडकर बेहद मारी जाने लगीं। आयात-निर्यात के ऑकडे देखने से पता लगता है कि जितनी गौएँ मासार्थ वध करने के लिये बिहार से बाहर जाती हैं उतनी कहीं से नहीं। कैसा घृणित व्यापार है!

इस प्रकार वृषोत्सर्ग ने गोवश की जितनी हानि की है उतनी कसाइयों ने भी नहीं की। निकृष्ट सॉड़ ने गोवश की नस्ल को एकदम बदल डाला। उधर मुसलमान लोगों को मुफ्त मे हजारों बछडे साल मे बैल के लिये मिलने लगे। जब बिहार-प्रान्त बगाल के साथ सम्मिलित था तब सॉड के सम्बन्ध का एक मुकदमा हुआ था। कलकत्ता हाइकोर्ट ने फैसला दिया कि श्राद्ध मे छोड़े गये ये सॉड किसी की सम्पत्ति नहीं हैं—जो जहाँ और जिस लिये चाहें, उन्हें ले जा सकते हैं। इतना बडा विरुद्ध नियम पास हो जाने पर भी सॉडों का छोडा जाना कम न हुआ, उलटे दिन दिन बढता ही गया।

सभी प्रान्तों की अपेक्षा बिहार गरीब है। यहॉ प्रथम श्रेणी के लोग अधिक हैं, मध्यम श्रेणी के कम और निम्न श्रेणी के सैकड़े नब्बे। यह गरीबी इतनी अधिक बढी हुई है कि साल-भर में कठिनता से छ महीने भी एक जून भोजन

लोगों को मिलता है। फाका करने के अलावा लोग चिचोर, सितुआ, घोंघा, आम की गुठली, पानी का शाक आदि खाकर जीते हैं।

जब मनुष्यों की यहाँ यह हालत है तब पशुओं की क्या बात। चारे दाने के अभाव से पशुगण विकलांग हो गये हैं। पंजाब के प्रसिद्ध हिन्दू नेता रायबहादुर लाला रामशरणदास जब दरभंगा आये थे तब मुझसे उन्होंने कहा था कि आपके यहाँ की गायें तो बकरियों से भी गई-गुजरी हैं।

शरीर की पुष्टि तथा वृद्धि के लिये सम्यक् रूप से चारा-दाना मिलना अत्यावश्यक है। किन्तु गरीबी के कारण बिहारी जनता अपने पशुओं को आधा पेट भी नहीं खिला सकती। वे अस्थि पंजर मात्रावशेष हो गये हैं। किसानों के अवलम्ब के बदले वे भार हो गये हैं। किसानों की बढ़ती हुई गरीबी की ज्वाला में ये पशु घृताहुति का काम रहे हैं।

सरकार ने हमारे प्रान्त के पशुधन के लिये पर्याप्त प्रयत्न नहीं किया। इस प्रकार की विपरीत अवस्था रहने, गोपालन विद्या के लुप्त हो जाने और गो-वध की परिपाटी जारी रहने पर भी हमारे प्रान्त में आज भी चार जगहों के गोवंश बड़े नामी हैं—शाहाबाद, सीतामढ़ी (मुजफ्फरपुर), मल्हनी (भागलपुर) और बछौर (दरभंगा)।

प्रश्न उठता है कि बिहार-सरकार ने इन जातियों के गोधन के विकास के लिये अभी तक क्या किया है। उत्तर में 'नहीं' के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

पूसा, सबौर, सेपया, फुलवारी और काँके में सरकारी फार्म हैं, जहाँ गोवंश के सुधार के काम होते हैं। सेपया (जिला सारन) में सिर्फ मूडा जाति की भैंस पाली जाती है। पूसा (दरभंगा) में पहले इम्पीरियल डेयरी थी। उस समय पंजाब से मँगाकर शाहीवाल (मॉटगमरी) जाति के गोवंश का पालन और परिवर्द्धन होता रहा। पहले आयरशायरी विलायती सॉड मँगाकर संकर-वंश पैदा किया गया, परन्तु वह बे-काम साबित हुआ। फिर शुद्ध शाहीवाल का जनन-कार्य प्रारंभ हुआ। इतने में भूकम्प हुआ। वह फार्म पूसा से उठाकर, लाख विरोध के होते हुए भी, दिल्ली ले जाया गया। तब से हिसार के गोवंश का वर्द्धन वहाँ हो रहा है। काँके (राँची) में शाहीवाल और थारपारकर-वंशों के पशुओं की जनन क्रिया जारी है फुलवारी (पटना) में भी थारपारकर-वंश के पशु पाले जाते हैं। सबौर (भागलपुर में भी अन्य फार्मों की तरह अन्य प्रान्तीय गो-धन का लालन-पालन होता है।

इस तरह पुरखानुपुरख रूप से देखने पर मालूम होता है कि आदि-बिहारी गो-धन के जनन और सवर्द्धन के लिये सरकार ने अभी तक कुछ भी नहीं किया। बहुत पैसे खर्च कर, अन्य-प्रान्तीय पशु मँगाकर उनकी नस्ल का सुधार करने से बिहार के किसानों का क्या फायदा हुआ? बिहार के कितने गाँवों में शाहीवाल, थारपाकर और हिसार के गाय-बैल काम आते हैं? इस तरह तो सिर्फ बिहार के पैसे बरबाद हुए, उनसे बिहारी गृहस्थों का रचमात्र भी उपकार न हुआ।

अन्य प्रान्तों के पशु धन के सुधार-सम्बन्धी रचनात्मक कार्यों पर दृष्टि डालने से मालूम होगा कि बिहार को छोडकर सभी प्रान्तीय सरकारें अपने-अपने गो धन के सुधार मे लगी हुई हैं। इससे वहाँ के निवासियों को बहुत लाभ पहुँचा है।

हिसार का डेयरी-फार्म भारत मे सबसे बडा है। पजाब-सरकार उसपर साल में कई लाख रुपये खर्च करती है। उसने हिसार-जाति के गो-धन का बहुत-कुछ सुधार किया है। डिस्ट्रिक्टबोर्ड गाँव-गाँव मे शुद्धवशवाले साँड छोड़े हुए है—बराबर मेला और प्रदर्शनी करके, गृहस्थों को इनाम देकर, उत्साहित करता है। तभी तो वहाँ के साधारण-से-साधारण किसान भी साल मे हजार पाँच सौ रुपये के बछडे बेचकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

उसी प्रकार पजाब के मौंटगमरी जिले मे भी शाहीवाल जाति के गोवश के सुधार के लिये पजाब-सरकार, फौजी छावनी के डेयरी-फार्म के अतिरिक्त, बहुत-से फार्म स्थापित कर उनपर लाखों रुपये खर्च करती है। इसके अतिरिक्त वह सहायता-रूप मे अन्य खानगी फार्मों को भी रुपये और जमीन देती है।

पजाब की ही तरह युक्तप्रान्त मे मथुरा और मध्यभारत मे झाँसी के फार्म, बम्बई में गोरक्षक-मडली, मद्रास मे बॅगलोर-फार्म आदि अपने यहाँ गोवश का विकास करते हैं। काँकरेज, खेलारी गीर, थारपाकर, लालसिधी, मालवी आदि गोवशों की उन्नति के लिये वहाँ की प्रान्तीय सरकारें बडी सावधानता से काम करती है।

लेकिन बिहार सरकार इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं देती। बिहार के कृषि-विभाग के डाइरेक्टर ने एक बार इन पक्तियों के लेखक से कहा था—"बछौर-वश का गोधन बिहार का गौरव है।" सुना था, इस गोवश के सुधार की एक योजना बिहार-सरकार के सामने स्वीकृति के लिये पेश है जिसमें एक लाख रुपये खर्च करने की बात थी। दरभगा-गोशाला ने भी बछौर वश के सुधार के निमित्त सरकार के पास सहायता के लिये लिखापढ़ी की, परन्तु नकारात्मक उत्तर मिला—कहा

गया कि यह स्कीम पूसा मे चालू की जायगी। किन्तु, दरभंगा जिले के उत्तर-खंड मे 'बछौर' इलाका है और जिले के पश्चिम खंड मे पूसा। फिर यह स्कीम वहाँ कैसे चालू होगी? बछौर के वंश का सुधार बछौर ही मे होना चाहिये, जैसा अन्य प्रान्तों मे होता है। परन्तु, बिहार की सरकार तो उलटी गंगा बहाती है। अभीतक न तो पूसा में ही कुछ किया गया और न स्कीम ही काम मे लाई गई। लोगों की यह धारणा सच-सी मालूम पडती है कि सरकार 'कमखर्च बालानशीं' पसन्द नहीं करती।

पशुओं की अच्छाई जलवायु की अपेक्षा भूमि की अवस्था पर विशेष निर्भर करती है। नीची भूमि, नदी के कछार, चूनाम्बर और नमकदार समतल भूमि के पशु कद और डील-डौल मे भरे-पूरे तथा सुन्दर होते हैं। नीची भूमि और नदी के कछार वाली गाय अधिक दूध देती है। उस जमीन मे यदि चूने का भी भाग हो तो चूनाम्बर समतल भूमि के बैल बड़े मजबूत, कष्टसहिष्णु और बलिष्ठ होते हैं। चूने से शरीर का तंतु बनता और हड्डी मोटी तथा मजबूत होती है। हरी घास पशुओं के लिये अमृत-तुल्य है। काफी पानी से सिर्फ हरी घास ही नहीं मिलती, बल्कि काफी पानी पीने से पशु का शरीर मोटा-ताजा होता और उसकी दूध देने की क्षमता बढ़ती है। अनुभव करके देखा गया है कि जिस गाय के आगे सारा दिन बाल्टी-भरा पानी रक्खा रहता है वह उस गाय से अधिक दूध देती है जिसको दिन-भर में सिर्फ एक या दो बार पानी पिलाया जाता है। आगे की पंक्तियाँ पढ़ने के पूर्व ये बातें ध्यान मे अवश्य रख लेनी चाहिये।

शाहाबादी गाय और बैल दुधार और बड़े बलिष्ठ होते हैं। आरा के बड़हरा थाने मे गंगा नदी के किनारे की गायों मे दूध देने की क्षमता बहुत है। शाहपुर थाने मे भी ऐसी गायें मिलती हैं, क्योंकि यह थाना भी गंगातटस्थ है। सोन नदी के दोनों पार्श्वों के गाँवों मे गाय और बैल अच्छे मिलते हैं। वहाँ की भूमि में चूने का अंश है, इसीलिये बैल वहाँ मजबूत मिलते हैं। कलकत्ता के व्यापारी इस इलाके से वर्ष मे हजारों गायें चुनकर ले जाते हैं, इसलिये अच्छे पशुओं का मिलना अब दुष्प्राप्य-सा होता जा रहा है। वहाँ की अच्छी गाय का मूल्य १००) से १५०) रुपये तक होता है और अच्छे बैलों की जोड़ी का दाम तो चार-पाँच सौ रुपये तक होता है।

सीतामढ़ी की नस्ल के बैल बड़े ऊँचे-पूरे और लम्बे-तगड़े तथा कष्ट-सहिष्णु होते हैं। मिथिला की कमला नदी के किनारे के गाँवों मे ये बैल मिलते हैं। उधर

'मुसहरनिया के बैल' नाम से यह गोवंश प्रसिद्ध है। सीतामढ़ी के मेले में ये बैल बहुत मिलते हैं। चार पाँच सौ रुपये तक की जोड़ी खरीदकर लोग बहुत दूर-दूर ले जाते हैं। मुजफ्फरपुर जिले के बेलसंड थाने की बागमती नदी के दोनों पार्श्वों की गायें अच्छी दुधार होती हैं। उसी जिले में सुरसंड के बाजार के आसपास की गायें भी अच्छी होती हैं।

गंगा के दोआब में, पटना के आसपास, मोकामा आदि की गायें ऊँचे कद की बड़ी अच्छी होती हैं। पटना शहर में संकर-जाति का गोवंश बहुत मिलता है। उसकी कहानी इस प्रकार है—

पटना में आज से लगभग अस्सी वर्ष पूर्व टेलर साहब कमिश्नर थे। उन्होंने आस्ट्रेलिया से दो साँड मँगवाये थे। उन्हीं के वंशज ये संकर-जाति के गोवंश हैं। ये 'टेलर ब्रीड' के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनकी गायें अधिक दूध देती हैं, परन्तु मक्खन का भाग कम रहता है। कद में गायें छोटी और सुन्दर होती हैं, पर बैल काम के लायक नहीं होते।

मल्हनी-जाति का गोवंश भी बिहार में बहुत अच्छा है। वहाँ की गायें खूब दुधार होती हैं और बैल सुलक्षणों से सम्पन्न तथा श्रमसहिष्णु होते हैं। अच्छी जोड़ी दो ढाई सौ रुपये तक में बिक जाती है। कोशी और उसकी सहायक नदियों से वहाँ की भूमि सींची जाती है, इससे हरी घास मिलने के कारण वहाँ के पशु पुष्ट रहते हैं। मल्हनी-जाति के बैल कोशी तट के मेलों—सिंहेश्वरस्थान (मधेपुरा, भागलपुर) के मेले और सुपौल (भागलपुर) की हाटों—में मिलते हैं।

बछौर-जाति का गोवंश वास्तव में बिहार का गौरव है। इतनी उपेक्षा, पालन पोषण में इतनी असावधानता और नस्ल-बरबादी का सिलसिला जारी रहते हुए भी यह गोवंश बिहार में सर्वश्रेष्ठ है। बछौर की जलवायु अच्छी है। वहाँ कमला नदी बहती है। भूमि में नमक और चूने का अंश काफी है। इसलिये चराई की कमी होने पर भी यह गोवंश आज भी आदर्श है। नियमित रूप से व्यवस्था-पूर्वक यदि गोवंश-सुधार का थोड़ा भी प्रयत्न किया जाता तो इस वंश के गोधन की टक्कर का गोवंश भारत ही क्या, विदेशों में भी कठिनता से मिलता। बछौर के बछड़े अत्यंत प्रसिद्ध हैं। यहाँ के बैल बड़े श्रम-सहिष्णु, मझोले कद के, साँवले रंग के और निहायत मजबूत होते हैं। अच्छी जोड़ी का दाम सात सौ रुपये तक जाता है। गायें यद्यपि कम दूध देती हैं, फिर भी सुधारे जाने पर अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। अब भी अधिक दूध देनेवाली गायें वहाँ मिलती हैं। वहाँ के बैलों की

पूँछ घुटनों तक लटकती है। वे जब पानी में घुसते हैं, पूँछ उठा लेते हैं। वे ज्यों-ज्यों पुराने होते हैं, उनकी हड्डी मजबूत होती जाती है। यह इलाका दरभगा जिले के खजौली, मधुबनी और जयनगर थानों के गाँवों से बना हुआ है। यदि बछौर-वश के गोधन के लिये थोडा भी उपाय बिहार सरकार करती, तो आज बिहार की किसानी का कायाकल्प हो जाता और दूध के अभाव से बिहार निवासियों के स्वास्थ्य धन पर भी भारी धक्का नहीं लगता। नीचे के ऑकडे देखने से आपको स्पष्ट मालूम हो जायगा कि बिहार की अवस्था कितनी भीषण है—

प्रान्त	गोधन (लाख)	दूध (सेर)	एक आदमी पीछे (छटॉक)	मनुष्य की आबादी (लाख)
अजमेर	१।	६४ लाख	सवा दो	४
आसाम	१७॥	१११८ ,,	पौने दो	८७
बगाल	६२	५५६० ,,	आधा	४५७
बिहार-उडीसा	४४	३६०६ ,,	एक	३८०
बम्बई	३	१८४७ ,,	डेढ	२८०
बर्मा	११	१००१ ,,	आधा	१५
मध्यप्रदेश	२५	२२५२ ,,	पौने दो	११७
कुर्ग	½	२६ ,,	एक	२
दिल्ली	½	१५ ,,	दो	६६
मद्रास	४३	३७६४ ,,	आधा	५००
सरहद	२	१८७ ,,	दो	२५
पंजाब	१८	६६३२ ,,	पौने तीन	२३५
सयुक्तप्रात	४७	४७०६ ,,	डेढ़	५३५

कैसी गिरी हुई दशा है बिहार की।

यह भी बात ठीक नहीं है कि गरीबी के कारण बिहार के गोधन का उद्धार हो ही नहीं सकता। हमारे यहाँ के किसान गोपालन के समान दिलचस्प और लाभदायक तथा सुखप्रद व्यवसाय को एकदम उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं—जनन, पालन और गो चिकित्सा विद्या से सर्वथा अनभिज्ञ हैं—बुरे साँड़ से अपनी गाय को पाल खिलाकर उसकी सतति को दिनानुदिन क्षीण बना रहे हैं। उन्होंने गो-जनन विद्या को एकदम भुला दिया है। कैसे साँड से पाल खिलाना चाहिये—साँड और गाय में रक्त-सबन्ध (पिता, भाई, पितामह, पुत्र आदि का) नहीं होना

ये गोशालाएँ उद्देश्य-सादृश्य होने पर भी अलग-अलग डेढ़ चावल की खिचडी पकाया करती हैं—एक दूसरी की मिथ्या निन्दा में लगी रहती हैं। आपस मे स्पर्द्धा भी खूब है। पर वह स्पर्द्धा ईर्ष्याद्वेषपूर्ण है, सद्भावपूर्ण अच्छी नीति की नहीं।

इन गोशालाओं मे अधिकतर का सस्थापन स्वामी आलाराम सन्यासी, काशी के गोलोकवासी पडित जगन्नारायण तथा पडित अम्बिकादत्त व्यास ने किया है। बिहार मे सबसे पुरानी गोशाला दरभगा की है। इसके सस्थापक मिथिलेश महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह थे।

कई गोशालाओं के ऊपर कर्ज लदा है। पंद्रह गोशालाओं के सिवा किसीके कागज पत्र ठीक नहीं हैं। वर्ष मे लगभग १५०० पशु दाखिल होते हैं और सब मर जाते हैं। लगभग सभी गोशालाओं के मैनेजर गो-रक्षा विज्ञान शास्त्र में कोरे हैं।

गोशालाओं की आय का मुख्य आधार है व्यापार पर लगी हुई बित्ती। महाजन लोग बिक्री पर दो आने सैकडा बित्ती ग्राहकों से वसूल करते हैं। बित्ती की दर भिन्न भिन्न वस्तुओं पर भिन्न भिन्न रूपों मे है। इस तरह वसूले हुए रुपये अपने बही-खाते मे जमा कर महाजन लोग गोशाला को देते हैं। कुछ लोगों को सन्देह है कि वसूली हुई सारी रकम गोशाला को नहीं मिलती है। इसका रहस्य ईश्वर जाने।

देश के नेताओं और बडे लोगों के उपदेशानुसार कई गोशालाओं ने दुग्ध व्यवसाय तथा नस्ल सुधारने का काम जारी किया है। इससे भी उनकी आमदनी बढी है। कई गोशालाओं के अधिकार में भू सम्पत्ति भी है। उससे भी उनको अच्छी आय हुआ करती है।

जिस प्रकार लोगों मे धार्मिक भाव का ह्रास होता जा रहा है और जिस दर्जे के अपरिवर्तनवादी लोगों के हाथों मे इन गोशालाओं का सचालन सूत्र है उसपर ख्याल करते हुए इन गोरक्षिणी सस्थाओं का भविष्य अन्धकारमय मालूम होता है। हमारे देश की जनता गोशाला का कुछ भी महत्त्व नहीं समझती। देश की सरकार की ओर से किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती। राजा-महाराजों की भी इधर दिलचस्पी नहीं। ताल्लुकेदार और जमीन्दार भी उदासीन ही रहते हैं। ऊँचा ओहदावाले नौकरी पेशा लोगों का तो इधर बिलकुल ध्यान नहीं। 'गोशाला' नाम से लोगों को मृतक सस्था का भान होता है। 'गोशाला' शब्द सुनते ही उचशिक्षा-प्राप्त बाबुओं और धनी धोरी रईसों की नाक-भौं चढ जाती है। केवल व्यवसाय परायण वैश्य-जाति ही अपनी बुद्धि और अर्थशक्ति के अनुसार गोशाला सरक्षण

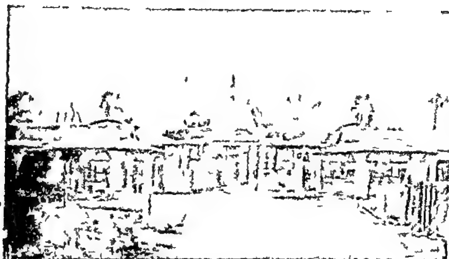

श्रीरमेश्वरी धेनु मन्दिर का मध्य भाग

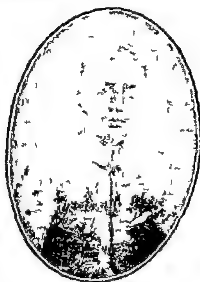

गोशाला सोसाइटी के यशस्वी चेयरमैन
श्रीमान् ओझा मुकुन्द झा
(दरभंगा नरेश के बहनोई)

श्रीरमेश्वरी धेनु मन्दिर ([illegible] पार्श्व

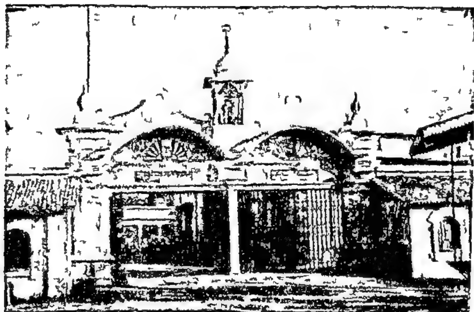

गोशाला सोसाइटी (दरभंगा) का मुख्य गोपाल द्वार

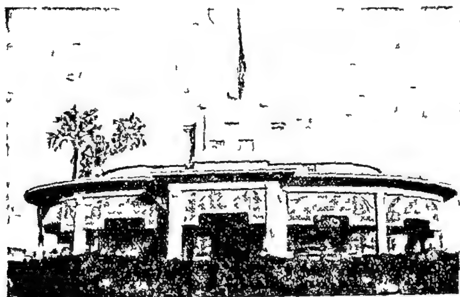

गोशाला-सोसाइटी (दरभंगा) का गो चिकित्सालय

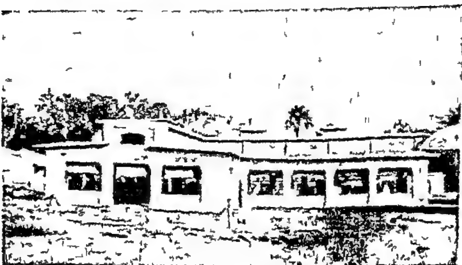

श्रीरमेश्वरी-धेनुमन्दिर (दरभंगा) का उत्तर पार्श्व

में तत्पर है। यदि हमारे व्यापारी महाजन गोशालाओं की सुधि न लें तो फिर अनाथ गौओं का राम ही रखवार है।

बिहार की गोशालाओं को सगठित करने के लिये कई बार उद्योग हुए। आलाराम सन्यासी ने प्रथम प्रयत्न किया, परन्तु वे असफल रहे। काशी के पंडित चुन्नीलाल मालवीय ने भी इसके लिये उद्योग किया। फलस्वरूप बंग बिहार-गोशाला-सम्मेलन का प्रथमाधिवेशन, सन् १६२३ में, वैद्यनाथ धाम में, श्री अमूल्यधन अद्दी के सभापतित्व मे हुआ। दूसरे ही वर्ष उसका दूसरा अधिवेशन दरभगा मे श्री १०८ जगद्गुरु शकराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थ महाराज की अध्यक्षता मे हुआ। तीसरा अधिवेशन मुँगेर मे हुआ। पश्चात् गुटबन्दी के कारण सम्मेलन असफल रहा और उसका अन्त हो गया।

बिहार के ऐतिहासिक भूकप के समय सन् १६३४ ई० में बम्बई की जीवदया मडली के यशस्वी सहकारी मत्री श्रीजयन्तीलाल मानकर के उद्योग से दरभगा में प्रथम बिहार-प्रान्तीय गोरक्षा-सम्मेलन, नवम्बर में, पूज्य मालवीयजी के सभापतित्व में, हुआ। दरभगा-नरेश महाराजाधिराज सर कामेश्वरसिंह बहादुर ने उसका उद्घाटन किया। स्थायी समिति के सभापति निर्वाचित हुए मिथिलेश के अनुज राजाबहादुर विश्वेश्वरसिंहजी तथा मत्री कुमार गगानन्दसिंहजी। उस सम्मेलन मे बिहार की समस्त गोशालाओं की स्थिति का निरीक्षण-परीक्षण किया गया। परन्तु कालान्तर में बिहार के गोशाला-सचालकों की अन्यमनस्कता के कारण उसकी कार्यवाही भी ढीली पड़ गई। इससे इस हिन्दू प्रधान प्रान्त की गोभक्ति का अनुमान किया जा सकता है।

सन १६३१ ई० मे दरभगा की गोशाला ने अपनी स्वर्ण-जयन्ती मनाई थी। उसी अवसर पर गोसाहित्यसम्मेलन का भी आयोजन हुआ था। कविवर पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' सभापति हुए थे। स्वागताध्यक्ष कुमार गगानन्द सिंह तथा स्वागत-मत्री श्रीरामलोचनशरण बिहारी थे। प्रदर्शनी का विराट् आयोजन था। गो-सप्ताह धूमधाम से मनाया गया। परन्तु, जलवृष्टि के कारण बिहार की रामगढ-कांग्रेस की तरह ही उसकी सफलता में बड़ी बाधा पड़ी।

बिहार-कौंसिल मे कुमार गगानन्दसिंहजी ने गोशाला-सुधार के लिये गोशाला बिल पेश किया है। बिल पर जनता की राय ले ली गई है। देखें, क्या परिणाम होता है।

बिहार में निम्न-लिखित अठासी (८८) गोशालाएँ हैं—

स्थान-नाम	स्थापनकाल	पशु	आमद-खर्च	कोष
१ दरभंगा	सन् १८८१ ई०	१७००	३००००)	४५००००)
२ मधुबनी	१८८५	२५०	१००००)	१००००)
३ समस्तीपुर	१९०८	५०	२५००)	१०००)
४ रसियारी	दरभंगा की शाखाएँ			
५ रसवारी				
६ गगवारा				
७ निगौल				
८ ताजपुर	१९०१	२०	२५०)	×
९ जयनगर	१९२८	२२५	५०००)	२१०००)
१० दलसिंगसराय	१९१०	१००	४०००)	×
११ मोहद्दीनगर	१९३०	१००	१५००)	×
१२ चुन्नी	१९२६	१००	५००)	×
१३ मचेपुर	१९१०	१००	१०००)	×
१४ रोसड़ा	१८९०	१००	२५००)	×
१५ कुशेश्वर	१९२०	५०	७००)	×
१६ मुजफ्फरपुर	१८९०	७००	२००००)	३०००००)
१७ हाजीपुर	१८८५	११०	१५००)	२०००)
१८ सीतामढी	१८९३	५००	५०००)	६०००)
१९ लालगंज	१८९२	४०	५००)	×
२० बैरगनिया	१९१२	१००	५०००)	×
२१ सुरसंड	१९२५	४०	१२०००)	×
२२ जनकपुररोड	१९२५	१००	१५००)	६०००)
२३ महनार	१९१०	१५०	३०००)	×
२४ छपरा	१९१०	३००	८०००)	१५०००)
२५ सीवान	१९१५	१००	२०००)	५०००)
२६ गोपालगंज	१९०६	५०	२०००)	×
२७ महाराजगंज	१९१४	१२५	२०००)	×
२८ मोतिहारी	१९१२	२००	५०००)	१५०००)

स्थान-नाम	स्थापन-काल	पशु	आमद-खर्च	कोष
२९ बेतिया	१९०६	२००	५०००)	१००००)
३० रक्सौल	१९१६	२५०	२०००)	५०००)
३१ सुगौली	१९२७	७०	१०००)	×
३२ मधुबन	१९२८	५०	५००)	६०००)
३३ मेहसी	१९११	३३	७००)	×
३४ बाराचकिया	१९१८	१००	२५००)	×
३५ रामगढवा	१९२८	१६०	५००)	×
३६ चनपटिया	१९१८	५०	५००)	×
३७ नरकटियागंज	१९१७	१००	१०००)	×
३८ पटना सिटी	१८८८	७००	२५०००)	२००००)
३९ निहटा	१९२२	५०	७००)	×
४० मोकामा	१९१३	१५०	५०००)	५०००)
४१ बाढ़	१९१०	१५०	२०००)	४०००)
४२ राजगिरि	१९२१	२००	५००)	२०००)
४३ मुरारूपुर	१९१९	७०	७००)	५०००)
४४ बिहार शरीफ	१९१९	२०	१५००)	२०००)
४५ आरा	१८९५	१५०	३०००)	४०००)
४६ सहसराम	१९१७	१५०	५०००)	५०००)
४७ जगदीशपुर	१९१०	५०	१०००)	५०००)
४८ बक्सर	१९१०	२७५	५०००)	७०००)
४९ गया	१८८९	३००	११०००)	५०००)
५० जहानाबाद	१८२५	१८०	३०००)	७०००)
५१ औरंगाबाद	१९१२	१००	२५००)	५०००)
५२ सोनाली	१९१७	१००	५००)	×
५३ नवादा	१९१५	१५०	२५००)	×
५४ भागलपुर	१८९५	७००	३००००)	६००००)
५५ नौगछिया	१९१८	३००	१०००)	२००००)
५६ सुपौल	१९१८	५०	५०००)	×
५७ निर्मली [दरभंगा की शाखा]				

स्थान नाम	स्थापन-काल	पशु	आमद-खर्च	कोष
५८ मधेपुरा	१९०६	५०	१०००)	×
५९ धनगाँव	१९१२	५०	५०००)	×
६० बाँका	१९२१	१५०	१०००)	१००००)
६१ किसनगंज		३००	१५०००)	२००००)
६२ कटिहार	१९१६	३००	१००००)	१००००)
६३ मुंगेर	१८८८	२००	१००००)	२२०००)
६४ खगरिया	१८९१	६००	१५०००)	१००००)
६५ लक्खीसराय	१८९९	३०००	८००००)	१००००)
६६ तेघड़ा	१८९९	१५०	३०००)	२०००)
६७ बेगूसराय	१८८७	२००	३०००)	५०००)
६८ हवेली-खड़गपुर	१९१२	७५	२०००)	३००००)
६९ वैद्यनाथधाम	१८९८	२००	१००००)	१००००)
७० दुमका	१८९९	१००	५०००)	×
७१ मधुपुर	१८९८	५०	२५००)	५०००)
७२ राँची	१८९७	२५०	१५०००)	२००००)
७३ रुका	१९१३	१००	२५०००)	×
७४ गुमला	१९२१	५०	५००)	×
७५ पालकोट	१९२७	४०	५००)	×
७६ पलामू डालटेनगंज	१९०१	२००	१२०००)	×
७७ हजारीबाग [कलकत्ता-पिंजरापोल की शाखा]				
७८ कोडरमा	१९१५	५०	५००)	×
७९ बरही	१९१९	२०	५००)	×
८० कर्णपुर	१९१७	५०	६००)	×
८१ सम्भलपुर	१९०१	३००	५००००)	×
८२ पुरुलिया	१९००	४००	५०००)	×
८३ परमा	१९१९	४०	५००)	×
८४ बाराभूमि	१९२१	५०	५००)	×
८५ चाइबासा	१८९९	३००	१२०००)	×
८६ झरिया	१९०७	३००	१५०००)	

स्थान-नाम	स्थापन-काल	पशु	आमद-खर्च	कोष
८७ जमदा	१६२१	५०	५००)	×
८८ सरदा	१६२५	५०	५००)	×

ये सभी गोशालाएँ प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ल अष्टमी को धूम-धाम से गोपाष्टमी-महोत्सव मनाती हैं। कहते हैं कि भगवान् गोपाल कृष्ण ने इसी दिन गो-चारण का श्रीगणेश किया था। गोपाष्टमी के उत्सव में केवल सभा होती है, कुछ व्याख्यान होते हैं, गायों का जलूस निकलता है, एक त्योहार-सा मनाया जाता है, किसी तरह सिर्फ रस्म पूरी की जाती है—कोई ठोस काम नहीं होता—गोशाला की उन्नति के लिये कोई नई स्कीम नहीं बनती, केवल मेला तमाशा देखकर लोग घर चले जाते हैं, फिर साल-भर गोशाला की ओर कोई आँखें भी नहीं उठाता। गो-जाति की ऐसी उपेक्षा वास्तव में लज्जाजनक है।

गया की गोशाला साल में एक बार गया जिला-गोरक्षा-सम्मेलन किया करती है, नेताओं और उपदेशकों के भाषणादि का प्रबन्ध करती है।

दरभगा-गोशाला बराबर प्रचार-कार्य करती है। उसके तीन मैजिक लैंटर्न, एक सिनेमा और एक कीर्त्तन-मडली है। उसके पास चार्टों का पूरा सग्रह है। उसके पुस्तकालय में गोरक्षा-सम्बन्धी काफी साहित्य है। शायद गोजाति-सम्बन्धी उतना साहित्य देश की किसी गोशाला के पास सग्रहीत नहीं है। प्रान्त भर में उसका भवन विशाल, सुन्दर और दर्शनीय है। उसका कार्य-कलाप शृङ्खलाबद्ध है। वह सबसे अधिक गौओं का पालन करती है। उसने गो-साहित्य विषयक पुस्तक-प्रकाशन का भी कार्यारम्भ किया है। उसके यहाँ से पहले 'जीवदया गोपालन' नामक मासिक पत्र निकला करता था। आजकल 'गोधन' नामक मासिक पत्र निकलता है, जो हिन्दी-ससार में अपने विषय का एक ही पत्र है। पूज्य महामना मालवीयजी, डाक्टर मुंजे, देशपूज्य राजेन्द्र बाबू, लब्धकीर्त्ति कलाविद् रायकृष्णदासजी, महाकवि मैथिलीशरण गुप्त और बिहार के लाट साहब ने इसका निरीक्षण कर इसकी बड़ी प्रशसा की है। कृषि विभाग के डाइरेक्टर ने तो यहाँ तक लिखा है कि इस तरह की व्यवस्था हमने कहीं नहीं देखी। इसके सभापति दरभगा-नरेश हैं। इसमें एक दर्शनीय गोपाल-मन्दिर भी है।

अन्य किसी गोशाला में नियमित रूप से प्रचार कार्य नहीं होता है। अधिकाश गोशालाओं की अवस्था शोचनीय ही है। इनके सुधार के लिये निम्न लिखित बातों पर ध्यान देने की परम आवश्यकता है—

[१] केन्द्रीय गोचर-भूमि का होना अत्यावश्यक है, जहाँ बूढ़ी गौओं को एकत्र करके अर्थकष्टग्रस्त गोशालाओं के खर्च का बोझ हल्का किया जा सके।

[२] वार्षिक प्रान्तीय सम्मेलन हों, जहाँ गोशालाओं के कार्यकर्त्ता एकत्र होकर विचार-विनिमय किया करें।

[३] गौओं की नस्ल के सुधार का काम जारी किया जाय, ताकि पशुओं की विकलागता दूर हो और वे विकृताग होकर काटे जाने के बदले पाले-पोसे जाकर लाभदायक सिद्ध हों।

[४] व्याख्यान, कीर्तन, भजन, पुस्तक-प्रकाशन, चल चित्रादि द्वारा गाँवों और नगरों मे प्रचार-कार्य जारी किया जाय।

[५] गोरक्षा विज्ञान-शास्त्र की शिक्षा का प्रबन्ध गोशाला के कार्यकर्त्ताओं के लिये किया जाय।

[६] आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति से दुग्धालय की व्यवस्था हो।

[७] सामूहिक रूप से विधिवत् गोपालन तथा नस्ल के सुधारने का काम गाँवों में जारी किया जाय।

[८] पत्रकार और लेखक तथा कवि अपनी लेखनी से गोशालाओं की सहायता किया करें। पत्र-सम्पादक अपने खास स्तम्भ मे गोशालाओं के प्रबन्धादि की आलोचना और जनता की सहानुभूति का आवाहन किया करें।

[९] जन्म, विवाह, उत्सव, श्राद्ध आदि अवसरों पर खास तौर से गौओं के निमित्त द्रव्यदान देने की प्रथा जारी की जाय। हिन्दू-गृहस्थ और गो प्रेमी सज्जन गो ग्रास अथवा गो अश के महत्त्व का ध्यान रक्खे।

इस तरह के और भी बहुत से सुझाव हो सकते हैं। यदि इनमें से एक दो योजनाएँ भी कार्य-रूप मे परिणत न हुईं, तो बिहार की अधिकाश गोशालाओं का जीवन सकटापन्न हो जायगा और बहुत सभव है कि उनका अस्तित्व तक मिट जाय, क्योंकि गोशालाओं का सफलतापूर्वक सचालन आधुनिक शैली से ही हो सकता है।

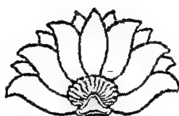

विहार—जैनियों की दृष्टि मे

पंडित के० भुजबली शास्त्री, विद्याभूषण, 'जैनसिद्धान्तभास्कर'-सम्पादक, आरा

इस महत्त्व पूर्ण विषय पर मैं दो दृष्टियों से विचार करूँगा—पौराणिक और ऐतिहासिक। जैनियों का विश्वास है कि वर्त्तमान काल मे, भरतक्षेत्रान्तर्गत आर्य खण्ड मे, एक दूसरे से दीर्घकाल का अन्तर देकर, स्व-पर-कल्याणार्थ चौबीस महापुरुष अवतीर्ण हुए, जिन्हें जैनी लोग तीर्थङ्कर के नाम से सम्बोधित करते और पूजते हैं।

इन तीर्थङ्करों में उन्नीसवें तीर्थङ्कर श्रीमल्लिनाथ, बीसवें तीर्थङ्कर श्री मुनि सुव्रत, बाइसवें तीर्थङ्कर श्रीनेमिनाथ एवं चौबीसवें तीर्थङ्कर श्रीमहावीर की जन्म भूमि कहलाने का सौभाग्य इसी विहार-प्रान्त को है। मल्लिनाथ और नेमिनाथ की जन्मभूमि मिथिला, मुनिसुव्रत की राजगृह तथा महावीर की वैशाली है। इतना ही क्यों, चौबीस तीर्थङ्करों मे बाइसवें श्रीनेमिनाथ और प्रथम श्रीऋषभदेव को छोड़कर शेष बाइस तीर्थङ्कर इसी विहार मे मुक्त हुए हैं। इन बाइसों में बीस तीर्थङ्करों ने वर्त्तमान हजारीबाग जिले के 'सम्मेद-शिखर' (Parshwanath Hill) नामक स्थान मे मुक्ति लाभ किया है, और शेष दो में महावीर ने 'पावा' मे तथा वासुपूज्य ने 'चम्पा' मे।

सम्मेद शिखर, पावापुर और चम्पापुर के अतिरिक्त राजगृह, गुणावाँ,

गुलजारबाग नामक स्थानों को भी जैनी अपने अन्यान्य महापुरुषों का मुक्तिस्थान मानते आ रहे हैं।

सम्मेद शिखर, पावापुर, राजगृहादि स्थानों मे जैनियों ने अतुल द्रव्य व्यय कर अनेक भव्य मन्दिर एव धर्मशालाएँ बनवाई हैं। प्रतिवर्ष, हजारों की सख्या मे, जैनी समस्त भारतवर्ष से, यात्रार्थ वहाँ जाते हैं। जिस विहार-प्रान्त में अपने परमपूज्य एक दो नहीं—बीस तीर्थङ्करों ने दिव्य तपस्या के द्वारा कर्मक्षय कर मोक्ष-लाभ किया है वह पावन प्रदेश जैनीमात्र के लिये कैसा आदरणीय एव श्लाध्य है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि एक श्रद्धालु जैनी के लिये इस विहार का प्रत्येक कण, जो उनके तीर्थङ्करों एव अन्यान्य महा-पुरुषों के चरणरज से स्पृष्ट हुआ है, शिरोधार्य तथा अभिनन्दनीय है। बल्कि इसकी विस्तृत कीर्त्ति-गाथा जैन-ग्रन्थों मे बड़ी श्रद्धा से गाई गई है।

प्रथम तीर्थङ्कर श्रीऋषभदेव इक्ष्वाकुवशीय क्षत्रिय राजकुमार थे। हिन्दू पुराणों के अनुसार ये स्वायम्भुव मनु की पाँचवीं पीढी में हुए। इन्हें हिन्दू एव बौद्ध शास्त्रकार भी सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और इस युग के प्रारभ मे जैनधर्म का स्थापक मानते हैं। हिन्दू अवतारों मे ये आठवें माने गये हैं और सभवत वेदों मे भी इन्हीं का उल्लेख मिलता है। इन्हीं ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र सम्राट् भरत के नाम से यह देश भारतवर्ष कहलाता है।

बीसवें तीर्थङ्कर श्रीमुनिसुव्रतनाथ के काल मे ही मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र एव लक्ष्मण हुए थे। श्रीकृष्ण बाइसवें तीर्थङ्कर श्रीनेमिनाथ के समकालीन ही नहीं, बल्कि इनके भाई थे। अब कई विद्वान् भगवान् नेमिनाथ को भी ऐतिहासिक व्यक्ति मानने लगे हैं। गुजरात मे प्राप्त ईसवी-पूर्व लगभग ग्यारहवीं शताब्दी के एक ताम्रपत्र के आधार पर हिन्दू-विश्वविद्यालय (बनारस) के सुयोग्य प्रोफेसर डाक्टर प्राणनाथ विद्यालङ्कार तो स्पष्टतया इन्हें ऐतिहासिक व्यक्ति घोषित करते हैं, बल्कि उनका कहना है कि मोहेंजोदारो (सिन्ध) मे उपलब्ध पाँच हजार वर्ष पूर्व की वस्तुओं मे कई सील (मुहरें) भी हैं। इन सीलों मे से कुछ मे 'नमो जिनेश्वराय' साफ अकित मिलता है।

१—देखिये—भागवत ५। ४,५,६। २—देखिये—न्यायबिन्दु, अ० ३।
३—देखिये—'इडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली', भाग ७, न० २।

यद्यपि भगवान् पार्श्वनाथ के पूर्व के तीर्थङ्करों के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिये हमारे पास सबल ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं, फिर भी जैन-ग्रन्थों के कथन एवं आज से लगभग ढाई-तीन हजार वर्ष पूर्व के निर्मित अवशेष तथा शिलालेखादि से शेष तीर्थङ्करों के अस्तित्व का पता अवश्य चलता है। बल्कि कई विद्वान् रामायण, महाभारतादि ग्रन्थों में ही नहीं, यजुर्वेदादि सुप्राचीन वैदिक साहित्य में भी जैनधर्म एवं श्रीनेमिनाथ आदि कतिपय तीर्थङ्करों का उल्लेख मानते हैं[3]।

आधुनिक खोज में जैनियों के अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर के पूर्वगामी तेईसवें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ को सभी इतिहासवेत्ता सम्मिलित रूप से ऐतिहासिक व्यक्ति स्वीकार कर चुके हैं, जो भगवान् महावीर से ढाई सौ वर्ष पहले हुए थे। अतएव, आधुनिक दृष्टि से, एक विशेष विश्वसनीय जैन इतिहास का ईसवी-पूर्व नवम शताब्दी से प्रारंभ हुआ, यह निर्विवाद रूप से माना जा सकता है।

'जैनियों की दृष्टि में बिहार' का ऐतिहासिक विवेचन करते हुए मैं सर्वप्रथम अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर को ही लूँगा। इनका जन्म आज से २५३८ वर्ष पूर्व, चैत्रशुक्ल त्रयोदशी के शुभ दिन, वर्त्तमान मुजफ्फरपुर जिले के 'बसाढ' नामक स्थान में हुआ था, जिसका प्राचीन वैभवशाली नाम 'वैशाली' था। इनके श्रद्धेय पिता नृप सिद्धार्थ थे। ये काश्यपगोत्रीय इक्ष्वाकु अथवा नाथ या ज्ञात वंश के क्षत्रिय थे। इनका विवाह वैशाली के लिच्छवि क्षत्रियों के प्रमुख नेता राजा चेटक की पुत्री प्रियकारिणी अथवा त्रिशला के साथ हुआ था। ऐसे सम्भ्रान्त राजवंश से वैवाहिक सम्बन्ध होना ही इनकी प्रतिष्ठा और गौरव का ज्वलन्त निदर्शन है। जैन-ग्रन्थों में नृप सिद्धार्थ नाथवंश के मुकुटमणि कहे गये हैं।

आधुनिक साहित्यान्वेषण से प्रकट हुआ है कि ज्ञात्रिक क्षत्रियों का निवास स्थान प्रधानतया वैशाली (बसाढ), कुण्डग्राम एवं वणिय ग्रामों में था। साथ ही साथ यह भी ज्ञात हुआ है कि नाथवंशीय क्षत्रिय कुण्डग्राम से ऐशान्य दिशा में अवस्थित कोल्लाग में अधिक संख्या में रहते थे। वैशाली के बाहर निकट ही कुण्ड

१—देखिये—कंकाली-टीलावाला मथुरा-जैनस्तूप। २—देखिये—खण्डगिरि-उदयगिरि-सम्बन्धी हाथी-गुफा का शिलालेख। ३—देखिये—'संक्षिप्त जैन इतिहास' (१ भाग) की प्रस्तावना और 'वेद पुराणादि ग्रन्थों में जैनधर्म का अस्तित्व'। ४—देखिये—उत्तर पुराण, पृष्ठ ६०५।

ग्राम वर्त्तमान था, जो सभवत आजकल का 'वसुकुड' गाँव है। जैन-ग्रन्थों के कथनानुसार भगवान महावीर का जन्म यहीं हुआ था। कोई-कोई विद्वान् कोल्लाग को ही इनका जन्मस्थान बताते हैं। परन्तु यह बात दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों की श्रास्था के प्रतिकूल है।

नाथवशीय क्षत्रिय वज्जिप्रदेशीय प्रजातन्त्रात्मक राजसघ मे सम्मिलित थे। कौटिल्य अर्थशास्त्र से स्पष्ट है कि प्रजातन्त्र-राजसघ में क्षत्रियकुलों के मुखियों की कौंसिल मुख्य-कार्य-कर्त्री थी और इस कौंसिल के सदस्यों का नामोल्लेख राजा के रूप मे होता था[1]। यही कारण है कि भगवान् महावीर के पिता सिद्धार्थ कुडपुर के राजा कहलाते थे।

नाथवशीय क्षत्रिय मुख्यत जैनियों के तेईसवें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी थे। बाद जब भगवान् महावीर के दिव्य कर कमलों मे जैनधर्म का शासन-सूत्र आया तब वे नियमानुसार उनके उपासक बने गये।

बौद्ध-ग्रन्थों में भगवान् महावीर 'निगथनाथ पुत्त' के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हैं[2]। इसका कारण यह है कि उस जमाने में जैनसघ इसी नाम से अधिक परिचित था। यह निर्विवाद बात है कि भगवान् महावीर के समय में वैशाली मे जैनियों की सख्या अत्यधिक थी, बल्कि चीन के यात्री हुएनसग (सन् ६३५ ई०) के भारतयात्रा काल तक जैनियों की सख्या में वहाँ कमी नहीं हुई थी, क्योंकि उन्होंने अपने यात्रा-विवरण मे स्पष्ट लिखा है कि वैशाली-राज्य का घेरा करीब एक हजार मील का था—वहाँ की जलवायु अनुकूल थी—लोगों का आचरण पवित्र और श्रेष्ठ था—लोग धर्मप्रेमी थे—विद्या की वहाँ प्रतिष्ठा थी और जैनी बहुत सख्या मे मौजूद थे[3]।

तीस वर्ष की अवस्था में भगवान् महावीर ने ससार से विरक्त हो, अपने आत्मोत्कर्ष को साधने एव ससार के जीवों को सन्मार्ग मे लगाने के लिये, सम्पूर्ण राज-वैभव को ठुकराकर, जगल का रास्ता लिया। दीन-दुखियों की पुकार उनके उदार हृदय में घर कर गई और दुखी जनता की सच्ची सेवा करने के लिये वे दृढ़प्रतिज्ञ हो गये।

१—देखिये—'कौटिल्य अर्थशास्त्र' का मैसूर-सस्करण, पृष्ठ ४१५।

२—देखिये—मिसेज स्टिवेन्सन् का 'हार्ट आफ जैनिज्म' (लदन)।

३—देखिये—'बगाल बिहार-उड़ीसा के प्राचीन जैन स्मारक', पृष्ठ १२।

विशेष सिद्धि के लिये विशेष तपस्या की आवश्यकता होती है—यह बात निर्विवाद सिद्ध है। इसीलिये महावीर को बारह वर्षों तक घोर तपश्चरण करना पड़ा, क्योंकि तपश्चरण ही आन्तरिक मल को छाँटकर आत्मा को शुद्ध, सुयोग्य एव कार्य क्षम बना सकता है।

इस दुर्द्धर तपश्चरण की कुछ घटनाओं का स्मरण कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। परन्तु, साथ-ही-साथ, इनके असाधारण धैर्य, अटल निश्चय, दृढ आत्म विश्वास, अगाध साहस एव लोकोत्तर क्षमा शीलता को देखकर भक्ति से मस्तक झुक जाता है और मुख स्वयमेव स्तुति करने लग जाता है।

बारह वर्षों के उग्र तपश्चरणों के बाद, वैशाख शुक्ल दशमी को, जृम्भक गॉव के निकट, ऋजुकूला नदी के किनारे, साल वृक्ष के नीचे, केवलज्ञान अर्थात् सर्वज्ञत्वज्योति को ये प्राप्त हुए। इस प्रकार मुक्ति मार्ग का नेतृत्व ग्रहण करने के लिये जब ये सर्व प्रकार से उपयुक्त हुए तब जन्म-जन्मान्तर के सञ्चित अपने विशिष्ट शुभ सकल्पानुसार इन्होंने लोकोद्धार के लिये अपना विहार (भ्रमण) प्रारम्भ किया।

ससारी जीवों को सन्मार्ग का उपदेश देने के लिये लगभग ४२ वर्षों तक प्राय समग्र भारत में अविश्रान्त रूप से इनका विहार होता रहा। खासकर दक्षिण एव उत्तर-विहार को यह लाभ प्राप्त करने का अधिक सौभाग्य है। विद्वानों का कहना है कि इस प्रदेश का 'विहार' शुभ नाम महावीर एव गौतम बुद्ध के विहार की ही चिरस्मृति है।

जहाँ पर महावीर का शुभागमन होता था वहाँ के पशु-पक्षी तक भी आकृष्ट होकर इनके निकट पहुँच जाते थे। इनके पास किसी प्रकार के भेद भाव की गुजायश नहीं थी। वास्तव में जिस धर्म में इस प्रकार की उदारता नहीं है वह विश्व धर्म—सार्वभौमिक—होने का दावा नहीं कर सकता। भगवान् महावीर की महती सभा में हिंस्र जन्तु भी सौम्य बन जाते थे और उनकी स्वाभाविक शत्रुता भी मिट जाती थी।

महावीर अहिंसा के एक अप्रतिम अवतार ही थे। इस बात को स्वर्गीय बालगगाधर तिलक, महात्मा गाधी और कवीन्द्र रवीन्द्र-जैसे जैनेतर विद्वानों ने भी मुक्तकण्ठ से स्वीकृत किया है।

भगवान् महावीर ने अपने विहार में असख्य प्राणियों के अज्ञानान्धकार

ग्राम वर्त्तमान था, जो सभवत आजकल का 'वसुकुड' गॉव है। जैन-ग्रन्थों के कथनानुसार भगवान् महावीर का जन्म यहीं हुआ था। कोई-कोई विद्वान् कोल्लाग को ही इनका जन्मस्थान बताते हैं। परन्तु यह बात दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों की आस्था के प्रतिकूल है।

नाथवशीय क्षत्रिय वज्जिप्रदेशीय प्रजातन्त्रात्मक राजसघ मे सम्मिलित थे। कौटिल्य-अर्थशास्त्र से स्पष्ट है कि प्रजातन्त्र-राजसघ मे क्षत्रियकुलों के मुखियों की कौंसिल मुख्य-कार्य-कर्त्री थी और इस कौंसिल के सदस्यों का नामोल्लेख राजा के रूप मे होता था[1]। यही कारण है कि भगवान् महावीर के पिता सिद्धार्थ कुडपुर के राजा कहलाते थे।

नाथवशीय क्षत्रिय मुख्यत जैनियों के तेईसवें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी थे। बाद जब भगवान् महावीर के दिव्य कर कमलों मे जैनधर्म का शासन-सूत्र आया तब वे नियमानुसार उनके उपासक बन गये।

बौद्ध-ग्रन्थों में भगवान् महावीर *'निगथनाथ पुत्त'* के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हैं। इसका कारण यह है कि उस जमाने में जैनसघ इसी नाम से अधिक परिचित था। यह निर्विवाद बात है कि भगवान् महावीर के समय मे वैशाली में जैनियों की सख्या अत्यधिक थी, वल्कि चीन के यात्री हुएनसग (सन् ६३५ ई०) के भारतयात्रा-काल तक जैनियों की सख्या मे वहाँ कमी नहीं हुई थी, क्योंकि उन्होंने अपने यात्रा विवरण मे स्पष्ट लिखा है कि वैशाली-राज्य का घेरा करीब एक हजार मील का था—वहाँ की जलवायु अनुकूल थी—लोगों का आचरण पवित्र और श्रेष्ठ था—लोग धर्मप्रेमी थे—विद्या की बड़ी प्रतिष्ठा थी और जैनी बहुत सख्या मे मौजूद थे[3]।

तीस वर्ष की अवस्था में भगवान् महावीर ने ससार से विरक्त हो, अपने आत्मोत्कर्ष को साधने एव ससार के जीवों को सन्मार्ग मे लगाने के लिये, सम्पूर्ण राज-वैभव को ठुकराकर, जगल का रास्ता लिया। दीन-दुखियों की पुकार उनके उदार हृदय मे घर कर गई और दु खी जनता की सच्ची सेवा करने के लिये वे दृढप्रतिज्ञ हो गये।

१—देखिये— कौटिल्य अर्थशास्त्र' का मैसूर-सस्करण, पृष्ठ ४१५।

२—देखिये—मिसेज स्टिवेन्सन् का 'हार्ट आफ जैनिज्म' (लडन)।

३—देखिये—'बगाल विहार-उड़ीसा के प्राचीन जैन-स्मारक', पृष्ठ १६।

विशेष सिद्धि के लिये विशेष तपस्या की आवश्यकता होती है—यह बात निर्विवाद सिद्ध है। इसीलिये महावीर को बारह वर्षों तक घोर तपश्चरण करना पड़ा, क्योंकि तपश्चरण ही आन्तरिक मल को छाँटकर आत्मा को शुद्ध, सुयोग्य एव कार्य क्षम बना सकता है।

इस दुर्द्धर तपश्चरण की कुछ घटनाओं का स्मरण कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। परन्तु, साथ-ही-साथ, इनके असाधारण धैर्य, अटल निश्चय, दृढ आत्म विश्वास, अगाध साहस एव लोकोत्तर क्षमा शीलता को देखकर भक्ति से मस्तक झुक जाता है और मुख स्वयमेव स्तुति करने लग जाता है।

बारह वर्षों के उग्र तपश्चरणों के बाद, वैशाख शुक्ल दशमी को, जृम्भक गाँव के निकट, ऋजुकूला नदी के किनारे, साल वृक्ष के नीचे, केवलज्ञान अर्थात् सर्वज्ञत्वज्योति को ये प्राप्त हुए। इस प्रकार मुक्ति-मार्ग का नेतृत्व ग्रहण करने के लिये जब ये सर्व प्रकार से उपयुक्त हुए तब जन्म-जन्मान्तर के सञ्चित अपने विशिष्ट शुभ सकल्पानुसार इन्होंने लोकोद्धार के लिये अपना विहार (भ्रमण) प्रारम्भ किया।

ससारी जीवों को सन्मार्ग का उपदेश देने के लिये लगभग ४२ वर्षों तक प्राय समग्र भारत मे अविश्रान्त रूप से इनका विहार होता रहा। खासकर दक्षिण एव उत्तर बिहार को यह लाभ प्राप्त करने का अधिक सौभाग्य है। विद्वानों का कहना है कि इस प्रदेश का 'बिहार' शुभ नाम महावीर एव गौतम बुद्ध के विहार की ही चिरस्मृति है।

जहाँ पर महावीर का शुभागमन होता था वहाँ के पशु-पक्षी तक भी आकृष्ट होकर इनके निकट पहुँच जाते थे। इनके पास किसी प्रकार के भेद भाव की गुंजायश नहीं थी। वास्तव मे जिस धर्म मे इस प्रकार की उदारता नहीं है वह विश्व धर्म—सार्वभौमिक—होने का दावा नहीं कर सकता। भगवान् महावीर की महती सभा मे हिंस्र जन्तु भी सौम्य बन जाते थे और उनकी स्वाभाविक शत्रुता भी मिट जाती थी।

महावीर अहिंसा के एक अप्रतिम अवतार ही थे। इस बात को स्वर्गीय बालगगाधर तिलक, महात्मा गाधी और कवीन्द्र रवीन्द्र-जैसे जैनेतर विद्वानों ने भी मुक्तकण्ठ से स्वीकृत किया है।

भगवान् महावीर ने अपने विहार मे असख्य प्राणियों के अज्ञानान्धकार

यद्यपि उस समय भारत में घननन्द सबसे बड़ा राजा समझा जाता था, फिर भी इसमें इतनी योग्यता नहीं थी कि यह इतने विस्तृत राज्य को समुचित रीति से सँभाल लेता। फलत उधर कलिंग को ऐरवश के एक राजा ने इससे छीन लिया, इधर चाणक्य की सहायता से चन्द्रगुप्त ने इसपर आक्रमण कर दिया। अन्त मे ईसवी-पूर्व ३२६ में नन्दवश की इतिश्री हो गई। सर स्मिथ के कथनानुसार इसने ही जैनियों के तीर्थ पचपहाडी का निर्माण पटना मे कराया था।

मौर्यवश—जैन-साहित्य और शिलालेखों से मौर्य-सम्राट् चन्द्रगुप्त जैन-धर्म का परम भक्त प्रमाणित होता है, परन्तु इतिहास-लेखक दीर्घकाल तक इस बात पर विश्वास करने को तैयार नहीं हुए। अब इधर ऐतिहासिक विद्वानों ने बहुमत से चन्द्रगुप्त का जैन-धर्मानुयायी होना स्वीकार कर लिया है। इन विद्वानों मे विन्सेंट ए० स्मिथ, ई० थामस, विल्सन, बी० लुई राइस, सम्पादक—इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन, जार्ज सी० एम्० वर्डवुड और स्वर्गीय काशीप्रसाद जायसवाल प्रमुख हैं[1]।

ईसा की पाँचवीं शताब्दी तक के प्राचीन जैन ग्रन्थों एव बाद के शिलालेखों का कथन है कि जब उत्तर-भारत में बारह वर्षों का घोर दुर्भिक्ष पड़ा था तब चन्द्रगुप्त अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु के साथ दक्षिण की ओर चला गया और वर्त्तमान मैसूर-राज्यान्तर्गत श्रवणबेलगोल मे—जहाँ अब तक उसके नाम की यादगार है—मुनि के तौर पर रहकर अन्त मे वहीं उपवासपूर्वक स्वर्गासीन हुआ। श्रवणबेलगोल की स्थानीय अनुश्रुति भी भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त का सम्बन्ध जोड़ती है। इतना ही नहीं, अनुश्रुति-द्वारा श्रवणबेलगोल के साथ इन दोनों का भी सम्बन्ध जुड़ता है। श्रवणबेलगोल के दो पर्वतों में से छोटे का नाम 'चन्द्रगिरि' है, जो चन्द्रगुप्त नामक किसी महान् व्यक्ति का स्मृति-चिह्न है। इसी पर एक गुफा भी है जिसका नाम 'भद्रबाहु गुफा' है। इसी पर्वत पर एक सुन्दर प्राचीन मन्दिर भी है, जिसका नाम 'चन्द्रगुप्तबस्ति' है।

सम्राट् चन्द्रगुप्त का उत्तराधिकारी बिन्दुसार भी परिशिष्टपर्व आदि जैन ग्रन्थों से जैन-धर्मावलम्बी सिद्ध होता है। जैन-ग्रन्थों मे इसका दूसरा नाम सिंहसेन मिलता है। यह भी अपने श्रद्धेय पिता के समान ही बड़ा प्रतापी था। इसकी विजयों का पूर्ण वृत्तान्त उपलब्ध होने पर निस्सन्देह इसे भी चन्द्रगुप्त और अशोक जैसे

[1]—देखिये—'मौर्य साम्राज्य के जैनवीर', पृष्ठ ११८–१४८।

गुनेरी (गया) में पाई गई बुद्ध की प्रतिमा, जो कमलासन पर बैठी हुई है। चबूतरे और कमल दल पर सात पंक्तियों का शिलालेख है। ऊपर की दो पंक्तियों में महायान मत का मंत्र है। नीचे की पंक्तियों में लिखा है कि महेन्द्रपाल नामक राजा के समय (संवत् ९) वैशाख सुदी पंचमी को 'गुणचरित' में यह अंजलि अर्पित की गई।

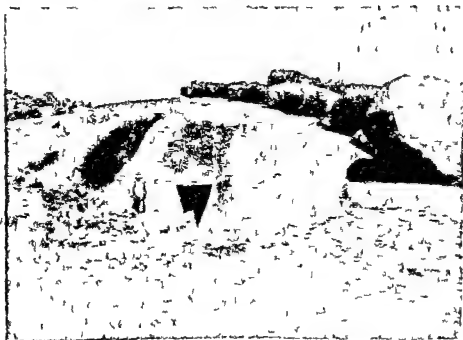

बराबर पहाड़ी (गया) से आध मील दूर नागार्जुनी पहाड़ी की तीन गुफाएँ, जिन्हें सम्राट अशोक के पोते महाराज दशरथ ने खुदाया था। इसका काल ईसा से २१४ वर्ष पूर्व समझा जाता है।

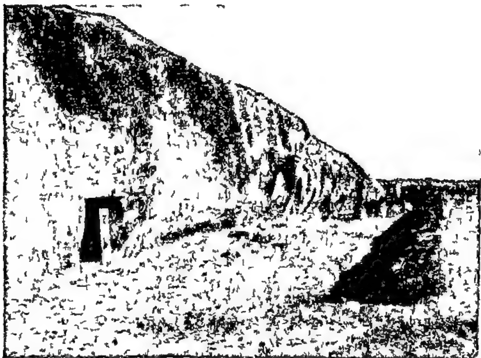

'बराबर' पहाड़ी (गया) में खोदी गई लोमस ऋषि और सुदामा की गुफाओं का साधारण दृश्य। ऐसी चार गुफाएँ सम्राट अशोक ने जैन आजीवकों के रहने के लिये बनवाई थीं, जिन्हें आजकल लोग 'सतघरवा' नाम से पुकारते हैं। पीछे गुप्त-कालीन राजा शार्दूल-वर्मा ने इनमें हिन्दु मूर्त्तियाँ स्थापित कीं। इनका निर्माण काल ईसवी सन् से २४५ साल पूर्व समझा जाता है।

लोमस ऋषि' गुफा का द्वार, जिसे प्रवर गिरिगुहा' भी कहते हैं। इसके भीतर दो कमरे हैं। एक की लम्बाई ३९ फीट ४ इंच और चौड़ाई १९ फीट ४ इंच है। दूसरे की चौड़ाई १४ फीट ३ इंच और लम्बाई १७ फीट है। इसके अन्दर दो प्रशस्तियाँ संस्कृत में खुदी हुई हैं, जिनमें शार्दूलवर्मा और उसके पुत्र अनन्तवर्मा के नाम हैं।

सम्राटों की श्रेणी में अवश्य स्थान मिल सकता है। जैन-ग्रन्थ भी आचार्य चाणक्य को सम्राट् बिन्दुसार का प्रधान मन्त्री प्रकट करते हैं।

बिन्दुसार के स्वर्गस्थ होने पर ईसवी पूर्व २७२ में इसका पुत्र अशोक राज्या रूढ हुआ। कई विद्वानों का मत है कि सम्राट् अशोक ने अपनी प्रशस्तियों में जो अहिंसा, सत्य, शील आदि गुणों पर जोर दिया उससे प्रतीत होता है कि वह स्वय जैन-धर्मावलम्बी रहा हो तो आश्चर्य नहीं। प्रोफेसर कर्न का कहना है कि 'अहिंसा के विषय में अशोक के जो नियम हैं वे बौद्धों की अपेक्षा जैनियों के सिद्धान्तों से अधिक मिलते हैं।' जैन-ग्रन्थों में इसके जैन होने का प्रमाण स्पष्ट उपलब्ध है।

कवि कल्हण की 'राजतरंगिणी' में अशोक-द्वारा काश्मीर में जैन धर्म का प्रचार किये जाने का वर्णन है।[2] यही बात अबुलफजल की 'आइन-ए-अकबरी' से भी विदित होती है। कुछ विद्वानों का मत है कि अशोक पहले जैन धर्म का उपासक था, पश्चात् बौद्ध हो गया।[3] इसका एक प्रमाण यह भी दिया जाता है कि अशोक के उन लेखों में—जिनमे उसके स्पष्टतः बौद्ध होने का कोई सकेत नहीं पाया जाता, बल्कि जैन सिद्धान्तों के ही भावों का आधिक्य है—राजा का उपनाम 'देवाना पिय पियदसी' पाया जाता है। 'देवाना पिय' राज-पदवी विशेषतः जैन ग्रन्थों में ही पाई जाती है। श्वेताम्बरी 'उवाई' (औपपातिक) सूत्र-ग्रन्थों में यह पदवी जैन-राजा श्रेणिक (बिम्बसार) और उसके पुत्र कुणिक (अजातशत्रु) के नामों के साथ लगाई गई है। पर अशोक के बाइसवें वर्ष की 'भबरा' की प्रशस्ति में, जिसमें उसके बौद्ध होने के स्पष्ट प्रमाण हैं, उसकी पदवी केवल 'पियदसि' पाई जाती है, 'देवाना पिय' नहीं। इसी बीच में वह जैन से बौद्ध हुआ होगा। पर आजकल बहुमत यही है कि अशोक बौद्ध था।

जैनियों की वशावलियों और अन्य ग्रन्थों में उल्लेख है कि अशोक का पौत्र 'सम्प्रति' था, उसके गुरु सुहस्ति आचार्य थे और वह जैन धर्म का बड़ा प्रतिपालक था। उसने 'पियदसि' के नाम से बहुत-सी प्रशस्तियाँ शिलाओं पर अंकित कराई थीं।

१—देखिये—'राजवलिकथे' (कन्नड)

२—"य शान्तवृजिनो राजा प्रपन्नो जिनशासनम्। शुष्कलेऽत्र वितस्तात्रौ तस्तार स्तूपमडले ॥"—अध्याय १

३—देखिये—'अर्ली फेथ ऑफ अशोक'—थामस-कृत।

गृह-शिल्प

रायबहादुर भिखारीचरण पट्टनायक, बी० ए०, बी० एल्०, कटक (उड़ीसा)

भारत एक कृषिप्रधान देश है। विदेशी शासन के पूर्व यह धन धान्यसम्पन्न था। खेती की पैदावार उस समय की आबादी के लिये यथेष्ट थी। उस समय की आबादी भी अधिक नहीं थी। यहाँ के लोगों की आवश्यकताएँ भी कम थीं। जो भी अभाव था उसकी पूर्ति सरलता से होती थी।

परन्तु आजकल की हालत दूसरी है। आबादी कई-गुना बढ गई है। लोगों की आवश्यक्ताएँ भी कई तरह से बढ गई हैं। लोगो की रुचि के साथ साथ अभ्यास भी बदल गया है। इसके सिवा सारे भारत के कई स्थानों में कृषि पर कई प्रकार की विपत्ति लगी रहती है। कहीं बाढ से चौपट, कहीं वर्षा न होने से सर्वनाश। अतएव, साधारण गृहस्थ, अपनी खेती पर भरोसा कर, साल भर का जमा-खर्च ठीक नहीं रख सकता। ऐसी परिस्थिति मे कृषि के साथ कुटीर शिल्प का आश्रय लेना ही एकमात्र प्रतीकार है।

किसी समय भारत ने शिल्पोन्नति के विषय मे शीर्ष-स्थान अधिकृत-किया था। जब तक भारत अपने शिल्प-द्वारा विदेश से अर्थोपार्जन करता रहा, तब तक वह बहुत उन्नत रहा। प्रत्यक्ष रूप से यह देखने मे आता है कि जो देश आज शिल्प तथा व्यापार मे जितना ही उन्नत है वह उतना ही धनशाली, बलशाली, क्षमताशाली और प्रसिद्ध है। शिल्प के साथ वाणिज्य का सम्बन्ध हमेशा रहता है। शिल्प की उन्नति के साथ ही वाणिज्य की भी उन्नति स्वत होती है।

शिल्पोन्नति के विना व्यापार-वृद्धि असम्भव है। व्यावसायिक अभ्युदय के लिये शिल्पकौशल का सरक्षण एव सवर्द्धन अत्यन्त आवश्यक है। खासकर कृषि-प्रधान देश के हेतु तो गृहशिल्प सर्वाधिक लाभकारी है। गृहशिल्प की उन्नति से देशवासियों की आय तो बढती ही है, अर्थलाभ के कारण आयु भी वढती है—साथ ही, लोगों मे सुरुचि का विकास होता है और कला नैपुण्य दिन-दिन बढता जाता है।

भारत के बीते हुए इतिहास पर दृष्टि डालकर विचार करने मे मालूम होता है कि शिल्प मे भारतवासियों की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। उनलोगों को शिल्प कौशल का जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त है। केवल सगठन और परिचालन के अभाव से, प्रोत्साहन और सरक्षण की कमी से, शिल्प के विषय मे लोगों का अनुराग कम हो जाने से, शिल्प में भारतवासी गिर गये हैं। शिल्प की उन्नति न होने से भारत की आर्थिक स्थिति अच्छी न होगी—न भारतवासी स्वतत्र होकर अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकते हैं। भारत को फिर से अपनी वह शक्ति नई करनी होगी। वास्तव में गृह शिल्प की शक्ति से ही देश समृद्ध हो सकेगा। यही सबके लिये सभव और साध्य है।

किसी बडे शिल्प का आरम्भ करने से पहले देश के छोटे-छोटे शिल्पों पर ध्यान देना चाहिये। जो शिल्प केवल व्यवहार के अभाव से मृतवत् हो गया है, पर बिल्कुल नष्ट नहीं हुआ है, उसके प्रति ध्यान देने से शीघ्र सफलता मिल सकती है। सबसे पहले तो देश में शिल्प का वातावरण ठीक करना होगा।

आजकल के शिल्प को चार भागों मे बाँट सकते हैं—(१) वृहत् शिल्प, (२) क्षुद्र शिल्प, (३) विना कल-कारखानावाला शिल्प और (४) कुटीर शिल्प या गृह शिल्प। वृहत् शिल्प के लिये विराट् साधन-सामग्री आदि भी चाहिये—बड़ा कारखाना, बड़ी-बडी कलें, लम्बा-चौडा आफिस, बहुत-से कर्मचारी, काफी बड़ी पूँजी। क्षुद्र शिल्प के लिये उसी के अनुसार छोटे-छोटे सभी पदार्थों की आवश्यकता है। तृतीय श्रेणी के शिल्प के लिये भी एक छोटे कारखाने और कुछ कर्मचारियों तथा थोडी पूँजी की जरूरत पड़ती है। भारत के विभिन्न स्थानों मे वृहत् शिल्प और क्षुद्र शिल्प का आरभ हो चुका है। कई स्थानों मे तृतीय श्रेणी के शिल्प के कारखाने भी खुल चुके हैं। किन्तु भारत की शिल्प-शक्ति को पुनरुज्जीवित करने के लिये वह पर्याप्त नहीं है, उसके द्वारा भारत की आर्थिक उन्नति शीघ्र नहीं हो सकती। भारत के घर घर मे जब तक शिल्पकला की उन्नति न होगी, भारत की

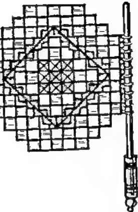

ताड के पत्ते का पंखा

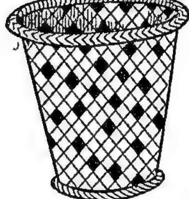

ताड के पत्ते की बनी टोकरी

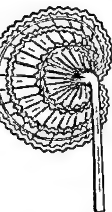

ताड के पत्ते का पंखा

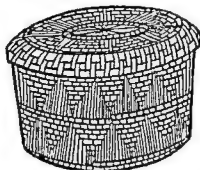

सींक की मंजूषा☞

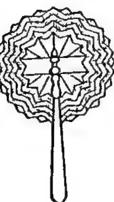

ताड के पत्ते का पंखा

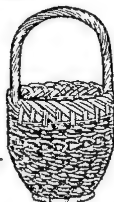

दुधई-लता की बनी डलिया☞

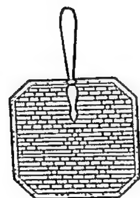

☜सींक का पंखा

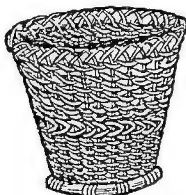

दुधइ-लता की बनी
एक प्रकार की टोकरी☞

शिल्पोन्नति के विना व्यापार-वृद्धि असम्भव है। व्यावसायिक अभ्युदय के लिये शिल्पकौशल का संरक्षण एवं संवर्द्धन अत्यन्त आवश्यक है। खासकर कृषि प्रधान देश के हेतु तो गृहशिल्प सर्वाधिक लाभकारी है। गृहशिल्प की उन्नति से देशवासियों की आय तो बढती ही है, अर्थलाभ के कारण आयु भी बढती है—साथ ही, लोगों मे सुरुचि का विकास होता है और कला-नैपुण्य दिन-दिन बढता जाता है।

भारत के बीते हुए इतिहास पर दृष्टि डालकर विचार करने से मालूम होता है कि शिल्प में भारतवासियों की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। उनलोगों को शिल्प कौशल का जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त है। केवल संगठन और परिचालन के अभाव से, प्रोत्साहन और संरक्षण की कमी से, शिल्प के विषय मे लोगो का अनुराग कम हो जाने से, शिल्प मे भारतवासी गिर गये हैं। शिल्प की उन्नति न होने से भारत की आर्थिक स्थिति अच्छी न होगी—न भारतवासी स्वतंत्र होकर अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकते हैं। भारत को फिर से अपनी वह शक्ति नई करनी होगी। वास्तव में गृह शिल्प की शक्ति से ही देश समृद्ध हो सकेगा। यही सबके लिये संभव और साध्य है।

किसी बडे शिल्प का आरम्भ करने से पहले देश के छोटे-छोटे शिल्पों पर ध्यान देना चाहिये। जो शिल्प केवल व्यवहार के अभाव से मृतवत् हो गया है, पर बिल्कुल नष्ट नहीं हुआ है, उसके प्रति ध्यान देने से शीघ्र सफलता मिल सकती है। सबसे पहले तो देश मे शिल्प का वातावरण ठीक करना होगा।

आजकल के शिल्प को चार भागों में बाँट सकते हैं—(१) वृहत् शिल्प, (२) क्षुद्र शिल्प, (३) विना कल-कारखानावाला शिल्प और (४) कुटीर शिल्प वा गृह शिल्प। वृहत शिल्प के लिये विराट् साधन-सामग्री आदि भी चाहिये—बडा कारखाना, बड़ी-बडी कलें, लम्बा-चोड़ा आफिस, बहुत-से कर्मचारी, काफी बडी पूँजी। क्षुद्र शिल्प के लिये उसी के अनुसार छोटे-छोटे सभी पदार्थों की आवश्यकता है। तृतीय श्रेणी के शिल्प के लिये भी एक छोटे कारखाने और कुछ कर्मचारियों तथा थोडी पूँजी की जरूरत पड़ती है। भारत के विभिन्न स्थानों मे वृहत् शिल्प और क्षुद्र शिल्प का आरंभ हो चुका है। कई स्थानों में तृतीय श्रेणी के शिल्प के कारखाने भी खुल चुके हैं। किन्तु भारत की शिल्प-शक्ति को पुनरुज्जीवित करने के लिये वह पर्याप्त नहीं है, उसके द्वारा भारत की आर्थिक उन्नति शीघ्र नहीं हो सकती। भारत के घर घर मे जब तक शिल्पकला की उन्नति न होगी, भारत की

आर्थिक अवस्था बदल नहीं सकती, और देश में शिल्प का वातावरण तैयार करने के लिये कुटीर शिल्प ही एकमात्र उपाय है।

कुटीर-शिल्प वह है जिसको प्रत्येक ग्रामवासी अपने क्षुद्र कुटीर में बैठकर—मजदूर न लगाकर, अपने ही परिवार की सहायता से—सरलता से कर सकता हो, अथवा गाँव में नष्ट होती हुई चीजों का संग्रह करके, उनकी उपयोगिता समझकर, अपने शारीरिक परिश्रम से, फुरसत के वक्त, कर सकता हो।

कुटीर-वासी यदि स्वय किसान है तो अपने खेत में पैदा हुई बहुत-सी चीजों को अनावश्यक समझकर फेंक देता है, और कितने ही पदार्थों को अल्प मूल्य में बेच देता है। जिस शिल्प के द्वारा वह किसान, अपने हस्त-कौशल के सहारे, उन फेंक दिये जानेवाले पदार्थों से कुछ धन इकट्ठा कर सके और कम दाम में बेच दी जानेवाली चीजों से अधिक दाम पा सके, उसी को कुटीर-शिल्प कहते हैं।

कुटीर-शिल्प के लिये भारत प्रशस्त क्षेत्र है। भारत में शिल्प के योग्य जितने पदार्थ पैदा होते हैं उतने और किसी देश में नहीं। भारत से नाना प्रकार का कच्चा माल विदेश चला जाता है। अनेक पदार्थ केवल नष्ट ही हो जाते हैं। जो कच्चा माल विदेश चला जाता है उसी से विदेशी लोग बहुमूल्य वस्तुएँ बनाकर भारत में भेजते हैं और उनकी बिक्री से प्राप्त अपार द्रव्य स्वदेश ले जाते हैं।

भारतवासी अपनी शिल्प प्रवृत्ति खोकर निश्चेष्ट बैठे हुए हैं। प्रति गाँव में, प्रति घर में, बेकारों की संख्या बढती जाती है। गाँव के किसान, खेती के काम के शेष होने पर कितना समय निरर्थक खोते हैं, इसका ठिकाना नहीं। युवा मनुष्य पढ-लिखकर—चाहे उच्च शिक्षावाले हों या निम्न शिक्षावाले या अशिक्षित—नौकरी खोजते फिरते हैं। नौकरी भी सबको नहीं मिल सकती। तो भी नौकरी के काल्पनिक मोह में मुग्ध होकर अपना समय शक्ति बुद्धि, उत्साह और उद्यम खोकर अन्त में हताश एव अकर्मण्य हो बैठ जाते हैं। यदि वे शिल्प के प्रति मनोयोग देते, और निरर्थक दुश्चिन्ता में जो समय खोते हैं उसको किसी उपयोगी पदार्थ का निर्माण करने में लगाते, तो भारत का शिल्प बहुत उन्नत होता एव देश की आर्थिक स्थिति सुधर जाती।

हमारे गाँवों की दुरवस्था की सीमा नहीं है। जिस ओर देखिये—गृह-कलह, निराशा, अशान्ति, असन्तोष, आलस्य, रोग, शोक, ईर्ष्या-द्वेष, वैर-विरोध और असामयिक मृत्यु की भीषणता सर्वत्र व्याप्त है। शिक्षित लोग गाँव छोड़कर शहर में भाग जाते हैं। हैजा, वसन्त (शीतला), मलेरिया, प्लेग और नाना

प्रकार के महामारी रोग गाँव-गाँव में चिरस्थायी हो गये हैं। उपयुक्त एवं पर्याप्त खाद्य न पाने से लोगों की प्रतिरोध शक्ति कम हो जाती है, इसी से रोगों की वृद्धि होती है। जबतक लोगों के लिये उपयुक्त एवं यथेष्ट आहार की व्यवस्था न होगी तबतक अन्य सभी चेष्टाएँ व्यर्थ हैं। अतएव, जब भारतवासी स्वदेशी शिल्प के प्रति मनोयोग देंगे तब कहीं उपयुक्त आहार पा सकेंगे, हजारों बेकार मनुष्य काम मे लग जायँगे, देश की नष्ट हुई शक्ति का उद्धार होगा, संसार में इसकी धाक जमने लगेगी।

यह बात सत्य है कि गाँववालों को फिर से शिल्प में प्रवृत्त कराने में कुछ कठिनाइयाँ होंगी, क्योंकि वे लोग बहुत दिनों से शिल्प को छोड़ और भूल चुके हैं। उनलोगों का शिल्प का अभ्यास छूट गया है। शिल्प के प्रति उनलोगों के मन मे अभी श्रद्धा और विश्वास नहीं है, बल्कि अश्रद्धा और अविश्वास ही अधिक है। पहले तो उनलोगों का वह अविश्वास और अश्रद्धा दूर करना होगा। यह काम शिक्षितों को करना पड़ेगा। शिक्षित यदि मनोयोग देंगे तो यह कार्य सरलता से हो सकता है। शिक्षितो को यह ध्यान रखना चाहिये कि वे लोग इन्हीं अशिक्षितो के आंशिक अर्थ-साहाय्य से शिक्षित हुए हैं। अतएव उनका इनलोगों के प्रति यथेष्ट कर्त्तव्य और गुरुतर दायित्व है।

यह बात भी सत्य है कि शिक्षित-समाज के लिये अभी शिल्प का काम थोड़ा कठिन होगा। किन्तु दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसलिये शिक्षितों को कुछ कष्ट स्वीकार करके शिल्प का अभ्यास करना पड़ेगा। केवल मनोयोग देने की देर है। यह काम उनलोगो के लिये कठिन न होगा। स्कूल से कालेज तक जिस प्रणाली से शिक्षा उनलोगो ने पाई है उससे उनलोगों के मस्तिष्क की परिचालना तो यथेष्ट हुई है, लेकिन हाथ पैर और शरीर के अन्यान्य अंग-प्रत्यंग की परिचालना बिल्कुल हुई ही नहीं है, वे लोग एक प्रकार से पंगु हो गये हैं। शिल्प के लिये फिर से उन लोगो को अपनी अँगुलियो और आँखों की परिचालना सीखनी पड़ेगी। इसके लिये कुछ धैर्य की जरूरत है। केवल मस्तिष्क परिचालन से ही इस काम में पर्याप्त सफलता न मिलेगी।

अब समय ऐसा आ गया है कि शिक्षित युवक केवल मस्तिष्क-परिचालन से ही काम नहीं चला सकते। वे अपने अंग-प्रत्यंग को काम में लगाकर शरीर को भी उपयोगी बनावें। आज-कल हमारे देश में जो शिक्षा प्रणाली प्रचलित है, वह बालकों और युवकों को मस्तिष्क-परिचालन के सिवा दूसरे अंगों का परिचालन

नहीं सिखाती, वल्कि उनके अगो के परिचालन मे विशेष प्रतिबन्धक होती है। आनन्द की बात है कि अब इसे सभी लोग स्वीकार करते हैं।

यह बात अक्षरश ठीक है कि आजकल की प्रचलित शिक्षा से हमारे युवक नौकरी के सिवा और किसी स्वावलम्बन-वृत्ति के लिये नितान्त अयोग्य हो जाते हैं। अत शिक्षा प्रणाली के आमूल परिवर्त्तन की अनिवार्य आवश्यकता है। वहुत-से अरुचिकर एव अनुपयोगी विषय युवको को केवल परीक्षा पास करने के लिये वाध्य होकर सीखने पडते हैं। परन्तु परीक्षा के वाद उन विषयों को भूलना ही पडता है। वेचारे यह भी नहीं जानते कि हमें ये विषय क्यों सिखाये जाते हैं। यहाँ तक कि शिक्षक भी यह वात नहीं जानते। कितने ही अनावश्यक विषयों के आयत्त करने मे उनकी रुचि, शक्ति और प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है। वे विषय उनके भावी जीवन मे किसी प्रयोजन के नहीं होते। अत उनके वदले मे शिल्प-शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये। इससे वालक-वालिकाओं को पढने लिखने के साथ-साथ शुरू से ही शिल्प के विषय मे सोचने का मौका मिलेगा। वहुतो के मन मे शिल्प के प्रति श्रद्धा और प्रवृत्ति पैदा होगी। स्कूल और कालेज छोडने के वाद अथवा नौकरी पाने से निराश होने पर किसी प्रकार का शिल्प कार्य करने मे उन्हें सकोच न होगा। अपने हाथ से काम करने मे नहीं शर्मायेंगे। कुछ काल के वाद उनमे से कितने ही वडे-वडे शिल्पकार और व्यवसायी वन जायँगे। आज शिल्प के प्रति शिक्षित-समाज मे जो घृणा और अवज्ञा का भाव है, वह कल नहीं रहेगा।

शिक्षित-समाज मे जव शिल्प या वाणिज्य का प्रश्न उठता है तव वे लोग सोचते हैं कि यथेष्ट मूलधन न होने से कोई शिल्प या वाणिज्य चल नहीं सकता और शिल्प से जो चीज तैयार होगी उसकी विक्री के लिये जवतक उपयुक्त क्षेत्र या ग्राहक न होगा तवतक शिल्प के लिये परिश्रम करना निरर्थक है। किन्तु कुटीर-(गृह)-शिल्प के लिये पूँजी की विशेष चिन्ता करना वेकार है। विना पूँजी के ही कुटीर-शिल्प का श्रीगणेश किया जा सकता है। विक्री के योग्य यदि चीज तैयार होगी, तो विक्री के लिये चिन्ता नहीं करनी पडेगी। देश मे या विदेश मे, जो शिल्प की सेवा मे लगे हैं, उनके पास समस्त ससार के प्रत्येक मनुष्य के उपार्जित धन का कुछ-न-कुछ अश जरूर पहुँचता है।

हमारे देश की गरीबी का खयाल करने पर यह वात ध्यान मे आयेगी कि विना खर्च के सभी गाँवों मे मिलनेवाले ताल-पत्र, खजूर-पत्र, घास, भूसा प्रभृति उपकरणों के द्वारा नाना प्रकार के पदार्थों का निर्माण करना कितना आवश्यक

और लाभदायक है। मेरी यह परीक्षा उड़ीसा और उड़ीसा की देशी रियासतों के स्कूलों में प्रचलित हुई है। ताल-पत्र को बहुत ऊँचा स्थान दिया जाता है, क्योंकि ताल पत्र के द्वारा नाना प्रकार के गृह-शिल्प की शिक्षा हो सकती है।

हमारे बालक और बालिकाएँ बचपन से दस-पन्द्रह या बीस वर्ष तक का समय पढने-लिखने में लगाते हैं, पर शिल्पकला के लिये कुछ भी परिश्रम नहीं करते। यदि पुस्तकी शिक्षा के साथ-साथ वे शिल्प शिक्षा का भी अभ्यास करें तो उन्हें उसीके साथ-साथ समाज का अभाव, लोगों की रुचि, चीजों की भिन्न भिन्न आकृतियाँ, कच्चे पदार्थों के प्राप्ति स्थान, भिन्न भिन्न देशों के शिल्पों की उन्नति, लोगों की आर्थिक अवस्था और खरीद करने की शक्ति, विभिन्न स्थानों के बाजार आदि सभी विषयों का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त कराना आवश्यक होगा। यह न होने से शिल्प में दक्षता प्राप्त करना सहज नहीं है।

मैं कह आया हूँ कि गृह शिल्प के लिये किसी प्रकार की पूँजी की जरूरत नहीं है। आरम्भ मे कोई धन देगा भी नहीं। इस काम के लिये धन माँगना भी उचित नहीं। जबतक शिल्प में स्वयं दक्षता न प्राप्त हो तबतक किसी को धन खर्च करने के लिये उपदेश देना भी ठीक नहीं है। शिल्प में कर्तृत्व देखने से बहुत-से लोग स्वयं धन देने के लिये उत्सुक होंगे। इस प्रकार के बहुतेरे गृह शिल्प हैं जिनका आरम्भ बिना पैसे के सभी लोग कर सकते हैं और उनसे अर्थोपार्जन भी हो सकता है। हाँ, शिल्प में दक्षता प्राप्त करने के बाद रुपयों की आवश्यकता हो सकती है। पर उस समय रुपयों का अभाव न होगा। नीचे कुछ शिल्पकार्य दिये जाते हैं, जो बिना पैसे के हो सकते हैं—

(१) ताल-पत्र से नाना प्रकार की टोकरियाँ, भिन्न भिन्न प्रकार के बैग, आसन, पर्दे इत्यादि बन सकते हैं।

(२) सींक से भी उसी तरह नाना प्रकार के बहुत ही मनोहर सामान तैयार हो सकते हैं।

(३) केवड़े के पत्तों से छोटी-बड़ी बहुत ही मुलायम चटाइयाँ बन सकती हैं। केवड़े के सिर या पेड़ से भी बहुत प्रकार के सामान तैयार हो सकते हैं।

(४) फटे चिटे साफ चीथड़ों और दरजी की दूकान की कतरनों से भी अनेक प्रकार की चीजें बन सकती हैं।

(५) रद्दी कागज से विविध प्रकार के पदार्थ बन सकते हैं, नया कागज तक बन सकता है।

(६) मिट्टी से खिलौने, मूर्तियाँ, बरतन आदि चीजें बन सकती है।

(७) अंडी-रेशम पैदा करने के लिये कुछ भी पैसे की जरूरत नहीं पड़ती।

(८) पेड की छाल से रंग, रस्सी और अन्यान्य चीजें भी बन सकती हैं।

(९) अनाज के डठलों से बहुत प्रकार के सुन्दर पदार्थ बन सकते हैं। पुआल और भूसे मे कागज, दफ्ती, स्याहीसोख आदि बन सकते हैं।

(१०) नाना प्रकार की लताओं और घासों से, जो सभी गाँवों मे मिल सकती हैं, कितनी ही सुन्दर चीजें बनाई जा सकती है।

(११) नाना प्रकार के पत्तों और बेंतों से भी बहुत-से पदार्थ बन सकते हैं।

(१२) बाँस और सरकंडे से भी बहुत प्रकार की चीजें बन सकती हैं।

इसी तरह और भी बहुत-सी चीजें हैं जिनसे नाना प्रकार की वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं। इन क्षुद्र पदार्थों से आरम्भ करके आगे शिल्प मे बहुत उन्नति की जा सकती है। गाँव मे बेकार बैठे हुए मनुष्यों के द्वारा यदि बहुत-से उत्कृष्ट पदार्थ प्रचुर परिमाण में बनवाकर देश-विदेश मे चालान किये जायँ तो क्रमश बड़े व्यवसाय की सृष्टि हो सकती है।

सबसे बढकर शिल्प का असल मूलधन है धैर्य और अध्यवसाय। एक दो चीजें बनाकर लोगों को यह नहीं सोचना चाहिये कि हमें इस विषय की कुशलता पूरी-पूरी प्राप्त हो चुकी। एक चीज बनाने के बाद आप उसी चीज को फिर जितनी बार बनावेंगे, वह उतना ही अधिक सुन्दर और रुचिकर होगी—साथ ही, हाथ की गति भी बढने लगेगी।

शिल्प से शीघ्र धनोपार्जन की आशा नहीं की जा सकती। पर जितने कम समय मे जितने ही अधिक सुन्दर पदार्थ बनाने की शक्ति बढने लगेगी उतना ही अधिक धनोपार्जन हो सकता है।

अच्छे शिल्पी प्राय लोगों की रुचि को ध्यान में रखकर ही कोई पदार्थ बनाते हैं। फिर भी बनाये हुए पदार्थ की सुन्दरता से ही लोग उसे खरीदने के लिये आकृष्ट होते हैं। बाजार कभी पदार्थों की सृष्टि नहीं करते। सुन्दर पदार्थ बनाने से न बाजार का अभाव होगा, न खरीदार का ही।

शिल्पकार के हाथ और आँख की विचक्षणता-वृद्धि के साथ-साथ नये-नये भाव, नूतन-नूतन पदार्थों का रूप और पदार्थ की नई-नई आकृतियाँ आप से-आप उसके हृदय में पैदा होती है।

मैं यह नहीं कहता कि हमारे देशवासी केवल छोटे छोटे गृह-शिल्पों द्वारा

थोड़ा-बहुत उपार्जन करके सन्तुष्ट हो जायँ और बेशी कुछ उद्योग न करें। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि भारत मे अभी जो शिल्प की अवस्था है उसकी उन्नति के लिये स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, युवक, ऊँच नीच, धनी, दरिद्र, प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन कुछ-न-कुछ शिल्प-सम्बन्धी अभ्यास करना जरूरी है। बडे शिल्प को सभी लोग नहीं कर सकते। थोडे से आरम्भ करना सबके लिये सहज और सम्भव है। प्रत्येक व्यक्ति जब नियमित रूप से मनोयोग-पूर्वक शिल्प का कुछ-न-कुछ काम करेगा तब थोडे ही दिनों मे देश में शिल्प का वातावरण ठीक हो जायगा। उसके बाद स्वभावत लोग बडे-बडे शिल्पों के लिये अग्रसर होंगे।

हमारे देश में छोटे-बडे सभी प्रकार के शिल्पों के साधन प्राप्त होने का सुभीता है। पहले छोटे-छोटे शिल्पो का आश्रय लेकर बडे-बडे शिल्पों के लिये क्रमश प्रस्तुत होना पड़ेगा। बड़े बडे शिल्पों के लिये नाना उपकरण हमारे देश मे पैदा होते हैं। यहाँ के कच्चे माल विदेश जाकर शिल्प की सहायता से बहुमूल्य पदार्थों मे परिणत हो जाते हैं। वे पदार्थ किस प्रकार यहाँ पर थोडे खर्च मे तैयार हो सकते हैं, इसके लिये प्रबन्ध और विचार करना पडेगा। कच्चा माल विदेश न भेजकर उसके बदले उत्कृष्ट शिल्प से तैयार माल ही विदेश भेजा जाय, इसकी व्यवस्था करनी पडेगी। किस उपाय से विदेश से स्वदेश मे अधिक रुपये आ सकेंगे, यह सोचना पडेगा।

यह बात सभी जानते हैं कि जिस देश के जितने अधिक रुपये बाहर चले जाते हैं, वह देश उतना ही अधिक दरिद्र होता है—जिस देश मे जितने ही अधिक रुपये बाहर से आवेंगे, वह देश उतना ही अधिक धनी होगा, किन्तु केवल जानने और युक्ति-तर्क करने तथा केवल सोचने से ही धन नहीं आ सकता। शिक्षित लोग जो ज्ञान प्राप्त करते हैं उसे कार्य मे परिणत न करने से उसका कुछ मूल्य नहीं। केवल कार्य ही देश की सम्पत्ति है। कार्य ही देश की आर्थिक अवस्था का परिवर्त्तन कर सकता है। अत कार्य का सुमार्ग सोचना पड़ेगा। देश की शक्ति, पारिपार्श्विक अवस्था, कार्य की गुरुता और देशवासी की दक्षता आदि की ठीक ठीक आलोचना करके अग्रसर होना होगा। ऐसा करने से सहज ही सफलता मिलेगी, स्वय धन का आगमन होगा।

कोई-कोई, विशेषत शिक्षित लोग, ग्रामवासियो पर यह दोष लगाते हैं कि गाँववाले सभी आलसी होते हैं। वे लोग किसी का उपदेश नहीं सुनते हैं। जो करते आ रहे हैं, उसके सिवा और कुछ करने के लिये राजी नहीं होते हैं। वे

(६) मिट्टी से खिलौने, मूर्त्तियाँ, बरतन आदि चीजें बन सकती है।

(७) अंडी-रेशम पैदा करने के लिये कुछ भी पैसे की जरूरत नहीं पड़ती।

(८) पेड की छाल से रग, रस्सी और अन्यान्य चीजें भी बन सकती हैं।

(९) अनाज के डठलों से बहुत प्रकार के सुन्दर पदार्थ बन सकते हैं। पुआल और भूसे मे कागज, दफ्ती, स्याहीसोख आदि बन सकते है।

(१०) नाना प्रकार की लताओं और घासों से, जो सभी गाँवों मे मिल सकती है, कितनी ही सुन्दर चीजें बनाई जा सकती हैं।

(११) नाना प्रकार के पत्तों और बेंतों से भी बहुत-से पदार्थ बन सकते हैं।

(१२) बाँस और सरकडे से भी बहुत प्रकार की चीजें बन सकती हैं।

इसी तरह और भी बहुत सी चीजें है जिनसे नाना प्रकार की वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं। इन क्षुद्र पदार्थों से आरम्भ करके आगे शिल्प मे बहुत उन्नति की जा सकती है। गाँव मे बेकार बैठे हुए मनुष्यों के द्वारा यदि बहुत-से उ कृष्ट पदार्थ प्रचुर परिमाण में बनवाकर देश-विदेश में चालान किये जायँ तो क्रमश बड़े व्यवसाय की सृष्टि हो सकती है।

सबसे बढकर शिल्प का असल मूलधन है धैर्य और अध्यवसाय। एक दो चीजें बनाकर लोगों को यह नहीं सोचना चाहिये कि हमें इस विषय की कुशलता पूरी-पूरी प्राप्त हो चुकी। एक चीज बनाने के बाद आप उसी चीज को फिर जितनी बार बनावेंगे, वह उतना ही अधिक सुन्दर और रुचिकर होगी—साथ ही, हाथ की गति भी बढने लगेगी।

शिल्प से शीघ्र धनोपार्जन की आशा नहीं की जा सकती। पर जितने कम समय मे जितने ही अधिक सुन्दर पदार्थ बनाने की शक्ति बढने लगेगी उतना ही अधिक धनोपार्जन हो सकता है।

अच्छे शिल्पी प्राय लोगों की रुचि को ध्यान मे रखकर ही कोई पदार्थ बनाते हैं। फिर भी बनाये हुए पदार्थ की सुन्दरता से ही लोग उसे खरीदने के लिये आकृष्ट होते है। बाजार कभी पदार्थों की सृष्टि नहीं करते। सुन्दर पदार्थ बनाने से न बाजार का अभाव होगा, न खरीदार का ही।

शिल्पकार के हाथ और आँख की विचक्षणता-वृद्धि के साथ-साथ नये-नये भाव, नूतन-नूतन पदार्थों का रूप और पदार्थ की नई-नई आकृतियाँ आप से-आप उसके हृदय में पैदा होती हैं।

मैं यह नहीं कहता कि हमारे देशवासी केवल छोटे छोटे गृह-शिल्पों द्वारा

थोड़ा-बहुत उपार्जन करके सन्तुष्ट हो जायँ और देश का कुछ कल्याण हो सके। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि भारत में अभी जो शिल्प की अवस्था है उसकी उन्नति के लिये स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, युवक, ऊँच नीच, धनी, दरिद्र, प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन कुछ-न-कुछ शिल्प-सम्बन्धी अभ्यास करना जरूरी है। बड़े शिल्प को सभी लोग नहीं कर सकते। थोड़े से आरम्भ करना सबके लिये सहज और सम्भव है। प्रत्येक व्यक्ति जब नियमित रूप से मनोयोग-पूर्वक शिल्प का कुछ-न-कुछ काम करेगा तब थोड़े ही दिनों में देश में शिल्प का वातावरण ठीक हो जायगा। उसके बाद स्वभावतः लोग बड़े बड़े शिल्पों के लिये अग्रसर होंगे।

हमारे देश में छोटे-बड़े सभी प्रकार के शिल्पों के साधन प्राप्त होने का सुभीता है। पहले छोटे-छोटे शिल्पों का आश्रय लेकर बड़े-बड़े शिल्पों के लिये क्रमशः प्रस्तुत होना पड़ेगा। बड़े-बड़े शिल्पों के लिये नाना उपकरण हमारे यहाँ ही पैदा होते हैं। यहाँ के कच्चे माल विदेश जाकर शिल्प की सहायता से बहुमूल्य पदार्थों में परिणत हो जाते हैं। वे पदार्थ किस प्रकार यहाँ पर थोड़े खर्च में तैयार हो सकते हैं, इसके लिये प्रबन्ध और विचार करना पड़ेगा। कच्चा माल विदेश न भेजकर उसके बदले उत्कृष्ट शिल्प से तैयार माल ही विदेश भेजा जाय, इसकी व्यवस्था करनी पड़ेगी। किस उपाय से विदेश से स्वदेश में अधिक रुपये आ सकेंगे, यह सोचना पड़ेगा।

यह बात सभी जानते हैं कि जिस देश के जितने अधिक रुपये बाहर चले जाते हैं, वह देश उतना ही अधिक दरिद्र होता है—जिस देश में जितने ही अधिक रुपये बाहर से आवेंगे, वह देश उतना ही अधिक धनी होगा, किन्तु केवल जानने और युक्ति-तर्क करने तथा केवल सोचने से ही धन नहीं आ सकता। शिक्षित लोग जो ज्ञान प्राप्त करते हैं उसे कार्य में परिणत न करने से उसका कुछ मूल्य नहीं। केवल कार्य ही देश की सम्पत्ति है। कार्य ही देश की आर्थिक अवस्था का परिवर्तन कर सकता है। अतः कार्य का सुमार्ग सोचना पड़ेगा। देश की शक्ति, पारिवारिक अवस्था, कार्य की गुरुता और देशवासी की दक्षता आदि की ठीक ठीक आलोचना करके अग्रसर होना होगा। ऐसा करने से सहज ही सफलता मिलेगी, धन धान्य का आगमन होगा।

कोई-कोई, विशेषतः शिक्षित लोग, ग्रामवासियों पर यह दोष लगाते हैं कि गाँववाले सभी आलसी होते हैं। वे लोग किसी का उपदेश नहीं सुनते हैं। जो करते आ रहे हैं, उसके सिवा और कुछ करने के लिये राजी नहीं होते हैं। वे

स्थान—नालन्दा के भग्नावशेष इस समय भी पटना जिले के बिहार-शरीफ सबडिवीजन में 'बडगाँव' नामक ग्राम से तीन सौ फीट की दूरी पर पाये जाते हैं। 'बडगाँव' राजगिरि से आठ मील दूर है। नालन्दा के अवशेषों के दर्शनोत्सुकों को ईस्ट-इंडियन रेलवे (ई० आइ० आर०) की मेन-लाइन के बख्तियारपुर नामक जंक्शन-स्टेशन से लाइट-रेलवे द्वारा जाना और नालन्दा स्टेशन पर उतरना चाहिये। यहीं से थोड़ी दूर पर बडगाँव है जिसके पास नालन्दा के प्राचीन गौरव की स्मृति को जाग्रत करनेवाले अवशेष लोचन गोचर होंगे।

इतिहास—इसका प्रारंभ एक सामान्य बौद्ध विहार के रूप मे हुआ, जिसमे अनेक स्थविर और भिक्षुगण निवास करते थे। बौद्ध-अनुश्रुति के अनुसार प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य सारिपुत्र ने इसी स्थान पर अपने अस्सी हजार शिष्यों और अर्हतों के साथ निर्वाण-पद प्राप्त किया था। बौद्ध-विहार और संघाराम के रूप में नालदा की कीर्त्ति भगवान् बुद्ध के जीवन काल से ही प्रारभ होती है।

सुविख्यात तिब्बती इतिहासवेत्ता तारानाथ के अनुसार सम्राट् अशोक ने यहॉ पर एक विशाल मंदिर और विहार बनवाया था। अशोक के प्रयत्नों से ही नालन्दा एक शिक्षाकेन्द्र के रूप में परिवर्त्तित होने लगा। सुविष्णु नामक एक ब्राह्मण ने यहॉ अभिधर्म की शिक्षा के लिये एक सौ आठ शिक्षणालयों की स्थापना की। इसके बाद अनेक शतियों तक यह एक प्रमुख शिक्षाकेन्द्र के रूप मे विकसित होता रहा। बाद की राजशक्ति का ध्यान भी इसकी ओर आकृष्ट हुआ। सबसे पहले महाराज शक्रादित्य ने यहॉ अनेक भवनों का निर्माण किया। फिर उनके पीछे बुद्धगुप्त, तथागतगुप्त और बालादित्य ने भी इसकी उन्नति मे बहुत सहायता पहुँचाई। बालादित्य प्रसिद्ध हूण आक्रान्ता मिहिरकुल का समसामयिक और छठी शती मे मगध का अधिपति था।

गुप्त-सम्राटों द्वारा सहायता प्राप्त कर नालन्दा ने बडी उन्नति की—यह विश्वविश्रुत विश्वविद्यालय बन गया। अत अनेक चीनदेशीय तथा विदेशी विद्यार्थियों का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ। विदेशी विद्यार्थी बहुत बडी सख्या मे यहाँ पर ज्ञानोपासना के लिये आने लगे। यहॉ के शिक्षाप्राप्त विदेशी विद्यार्थियों मे कुछ के नाम अधोलिखित हैं—

[१] शर्मन् ह्वून चिन = प्रकाशमति—सातवीं शती में आया और तीन वर्ष तक यहाँ रहा।

के प स्तूप का [illegible] चमी भाग जिसमें ऊपर [illegible] और नीचे

नालंदा के एक विशाल चैत्य का ध्वंसावशेष (उत्तर की ओर का दृश्

(पृ० १०७, २०१)

नालन्दा में प्राप्त, कमल पर अभय मुद्रा में खड़े हुए, बुद्ध की काँसे की मूर्ति—ऊँचाई ११ इंच

नालंदा के उपर्युक्त चैत्य का एक अंश और स्तूप का दृश्य

[२] थी-ही = श्रीदेव—इसने यहाँ पर महायान-सम्प्रदाय का अध्ययन किया।

[३] आर्यवर्मन्—यह कोरिया का एक छात्र था।

[४] एक कोरियन भिक्षु ६८८ ई० में यहाँ आया था।

[५] स्वी हाँग—सातवीं शती में आया और यहाँ आठ वर्ष तक रहा।

[६] ओ-काग = धर्मदत्त—यहाँ तीन वर्ष तक रहा।

[७] इत्सिंग = बुद्धकर्मा—इसने दस वर्ष तक नालन्दा में रहकर शिक्षा पाई।

[८] तोफाँग = चन्द्रदेव—यह नालन्दा के दर्शनार्थ आया था।

[९] ताँग-ताँग—महायान-सम्प्रदाय का था। नालन्दा के दर्शन के लिये आया था।

[१०] ह्यूनसाँग—यहाँ दो वर्ष तक रहकर अध्ययन किया।

[११] ह्यून-सन—यह एक कोरियन भिक्षु था। यह प्रयाणवर्मा नाम से अधिक प्रसिद्ध है। यह भी नालन्दा-दर्शनार्थ आया था।

[१२] किंग-चू = शीलप्रभ—यहाँ रहकर इसने शब्दकोषों का अध्ययन किया।

[१३] ह्यून-तात—यह दस साल तक रहकर पढ़ता रहा।

[१४] वान-होंग = प्राज्ञदेव—यह भी यहाँ रहकर कोष का अध्ययन करता रहा।

इन दूरागत विद्यार्थियों द्वारा वर्णित विवरणों से ही नालन्दा की बहुत-सी ज्ञातव्य बातें मालूम होती हैं।

संचालन—इसका संचालन अनेक राजाओं द्वारा दिये गये निरन्तर दान से होता था। राजाओं ने इसके संचालन के लिये सैकड़ों गाँवों की आमदनी इसके अधीन कर दी थी। ह्यूनसाँग के समय में इसके पास दो सौ गाँव थे। ग्रामों से ही आवश्यक सामग्री प्राप्त होती थी। प्रत्येक विद्यार्थी को नियमित परिमाण में भोज्य पदार्थ मिलते थे—१२० जम्बीर, २० पूग, महाशाली चावलों की एक थैली, तेल, मक्खन इत्यादि।

शिक्षा-क्रम—यहाँ केवल ऊँची शिक्षा ही दी जाती थी। एक अधिकारी-परीक्षा (द्वार परीक्षा) ली जाती थी, जिसमें उत्तीर्ण होने के बाद ही विद्यार्थी

इसमें प्रविष्ट हो सकते थे। इस परीक्षा के लिये निम्नलिखित विषयों में उत्तीर्ण होना आवश्यक था—

[१] *व्याकरण*—इसके पाठ्य विषय में पाँच मुख्य ग्रंथ थे—प्रथम सिद्ध, दूसरा धातु। धातु में एक हजार श्लोक थे। तीसरा सूत्र, चौथा खिल। खिल—मंत्र अष्टधातु, मड और उणादि—इन तीन विभागों में विभक्त होता था, इसमें कुल तीन हजार श्लोक थे। पाँचवाँ ग्रंथ वृत्तिसूत्त था, जो पाणिनीय अष्टाध्यायी के भाष्य का नाम था।

[२] *गद्य और पद्य*—इस परीक्षा में विद्यार्थियों के लिये धारावाहिक रूप से संस्कृत में गद्य लिखना आना आवश्यक था। साथ ही, पद्य-रचना की योग्यता भी आवश्यक थी।

[३] *हेतु-विद्या*—इसमें 'न्याय-द्वार तर्कशास्त्र' नामक ग्रंथ का अनुशीलन कर उसमें उत्तीर्ण होना आवश्यक था।

[४] *अभिधा कोष* (Metaphysics)—यह परीक्षा द्वारपंडित नामक अधिकारी के द्वारा ली जाती थी। ह्यूनसॉग ने लिखा है कि यह अधिकारी परीक्षा बहुत कठिन होती थी। इसमें अनुत्तीर्ण छात्रों की संख्या चालीस प्रतिशत से कम नहीं होती थी। इससे प्रतीत होता है कि नालंदा विद्यापीठ के संचालकों को अपने विद्यापीठ का स्टैंडर्ड ऊँचा रखने का बड़ा ध्यान रहता था।

विश्वविद्यालय में कौन-से विषय मुख्यतया पढ़ाये जाते थे, इसका वृत्तान्त भी चीनी विद्यार्थियों के लेखों से मिलता है। बौद्ध-धर्म का ऊँचा-से-ऊँचा अध्ययन इस विद्यापीठ का मुख्य कार्य था। इसीलिये बौद्ध-धर्म के सभी प्रसिद्ध शास्त्र यहाँ पर पढ़ाये जाते थे। परन्तु केवल बौद्ध धर्म के शास्त्र ही नहीं, अपितु अन्य विद्याओं के पढ़ाने का भी यहाँ समुचित प्रबन्ध था।

शिक्षा-प्रबन्ध—इत्सिंग के अनुसार इस विश्वविद्यालय में इस प्रकार के शिक्षक थे, जो सब सूत्रों और शास्त्रों का अध्ययन करते थे। पाँच सौ ऐसे विद्वान् थे, जो तीस 'विद्यासग्रहों' को पढ़ा सकते थे। दस ऐसे विद्वान् थे, जो पचास 'विद्यासग्रहों' की व्याख्या कर सकते थे। इन्हीं दस विद्वानों में एक कुलपति आचार्य होता था। विद्यापीठ में सौ ऐसी वेदियाँ थीं, जहाँ से शिक्षक लोग व्याख्यान दिया करते थे। ह्यूनसाँग के समय में शीलभद्र यहाँ का प्रधान आचार्य था। यह बंगाल का राजकुमार था, परन्तु इसने राज्य की आकांक्षा छोड़कर शिक्षा में ही अपना संपूर्ण जीवन लगा दिया था।

जहाँ दस हजार विद्यार्थी निःशुल्क विद्याध्ययन करते थे, जिसकी ज्ञान किरणें हिमालय की चोटियों
महासागर की तरंगों को लाँघकर सुदूर तिब्बत, चीन, स्याम और स्वर्णद्वीप तक प्रभा विकीर्ण करती
उस नालंदा विश्वविद्यालय के सर्वप्रधान विशाल स्तूप का ध्वंसावशेष। भगवान बुद्ध ने तीन महीने
जहाँ रहकर धर्मोपदेश किया था, उसी स्थान पर, उन्हीं की स्मृति में, यह स्तूप बनाया गया था।

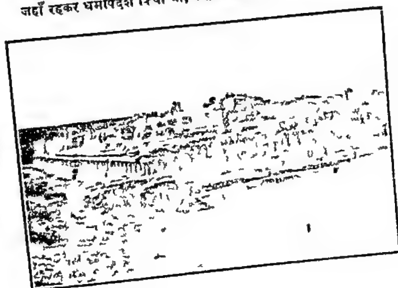

नालन्दा विश्वविद्यालय के
प्रस्तर मन्दिर का ध्वंसावशेष
लम्बाई ११८ फुट और चौ
फुट है। इसका निर्माण
सातवीं शताब्दी के लगभग
जाता है। (पृष्ठ १०

राजगृह (पटना) का मनियार मठ, जिसके नीचे के हिस्से में दीवार पर बनी चूना सिरमिट की मूर्ति का निर्माण काल ३५० से ५०० ई० तक समझा जाता है। नीचे खजाना रखकर ऊपर मणिकार सर्प की स्थापना की गई थी, इसीसे इस मठ का नाम अन्तत मनियार मठ पड़ा।

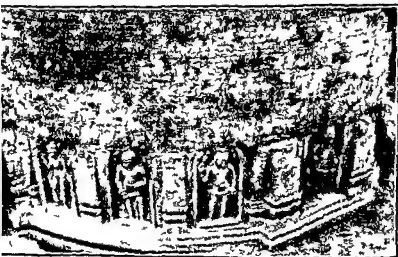

मनियार मठ (राजगृह) में, निचले हिस्से में दीवार पर की चूना सिरमिट की मूर्तियाँ, जो बिहार की सबसे पुरानी मूर्तियाँ समझी जाती है—अफसोस ! ये नष्ट हो गई !

ह्यूनसाँग के कथनानुसार नालन्दा के अध्यापकों और छात्रों का पारस्परिक सम्बन्ध बडा घनिष्ठ होता था। विद्यार्थी अपने गुरुओं की सेवा करते थे। गुरु केवल विद्यादान ही नहीं करते थे, प्रत्युत छात्रों के चारित्र्य को भी उन्नत करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। नालन्दा के स्नातकों की उपाधि राज्य-द्वारा स्वीकृत की गई थी। उन्हें राज्य की ओर से काम मिलता था।

पुस्तकालय—नालदा के 'धर्मगज' नामक विभाग मे तीन ग्रथशालाएँ थीं। तीनों के भवन बडे विशाल थे। उनमें असंख्य ग्रन्थों का दर्शनीय सग्रह था। ग्रथों का वर्गीकरण, उनके सजाने की शैली, उनके विषय विभाग का विवरण, उनके उपयोग के नियम आदि वहाँ की सुव्यवस्था के सूचक थे। समस्त ग्रन्थागार दिव्य धूप की मीठी सुरभि से आमोदित रहता था। ग्रथों को देवोपम आदर प्रदान किया जाता था। बडी श्रद्धा और सावधानता से वे काम मे लाये जाते थे। पुस्तकालय की स्वच्छता आदर्श थी।

वैभव—प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूनसाँग ने इसके अपार वैभव के विषय मे लिखा है—"इस विद्यापीठ के विशाल गगनारोही भवनों के ऊँचे बुर्ज और सुन्दर मीनार पर्वत की चोटिया की तरह शोभायमान हैं। इसकी वेधशालाएँ प्रात कालिक वाष्प मे विलीन रहती हैं। व्योमचुम्बी भवनों की खिडकियों से मेघ और वायु द्वारा निरन्तर चित्रित किया जाता हुआ आकाश देखा जा सकता है। गवाक्षों (रोशनदानों) से सूर्य और चन्द्र के सम्मेलन का अपूर्व दृश्य दिखाई देता है। निर्मल पारदर्शी जलाशयों में नीलकमल और रक्तकमल अनुपम शोभा उत्पन्न करते हैं। सघन आम्रकुञ्जों की शीतल छाया का दृश्य और भी शान्त, सुन्दर और पावन है। उपाध्यायों के मकान एक ही प्रकार के चौमंजिले बनाये गये हैं। सीढियाँ मोडदार बनाई गई हैं। यह विशाल वैभव किसी भी जाति के लिये गौरव का कारण हो सकता है।"

अन्त—नालन्दा विद्यापीठ से थोडी दूर पर विक्रमशिला नामक एक और विश्व-विद्यालय भी विकसित हो रहा था। पालवशीय राजाओं के प्रवर्द्धमान वैभव, प्रताप और श्री के साथ-साथ विक्रमशिला की गौरव-गरिमा, सुकीर्त्ति और समृद्धि बढती गई। पालवशीय नृपतियों ने नालन्दा के स्थान पर विक्रमशिला को ही राजकीय विद्यापीठ बनाया और उसको उन्नत तथा समृद्ध बनाने मे अपना सपूर्ण ध्यान लगाया। फलत राजकीय सहानुभूति

के अभाव मे नालन्दा की प्रभा क्षीण होने लगी। तो भी नालन्दा बहुत समय तक विक्रमशिला के सामने प्रतियोगिता मे टिका रहा—उन्नति-पथ पर डटा रहा।

स्वर्गीय महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री की सम्मति मे १० वीं और ११ वीं शती तक नालन्दा एक शक्तिशाली विश्वविद्यालय था, जो न केवल विक्रमशिला की प्रतिद्वन्द्विता मे खडा रहा, प्रत्युत अपने प्राचीन गौरव को भी अक्षुण्ण बनाये रहा। मुहम्मद बिन-बख्तियार खिलजी के बिहार और बगाल पर आक्रमण के समय भी नालन्दा विद्यमान था। बख्तियार खिलजी के आक्रमणों ने ही इस विश्वविश्रुत शिक्षा केन्द्र और सस्कृति-तीर्थ का अन्त किया। नालन्दा का विनाश भारत के इतिहास की एक रोमाञ्चकारिणी और दु खप्रद घटना है।

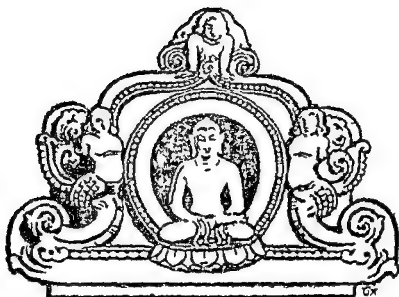

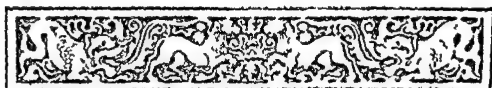

मौर्यकालीन शासन-प्रणाली और आभ्यन्तरिक अवस्था

प्रोफेसर जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम्० ए०, बी० एल्०, मिथिला-कालेज, दरभंगा

मौर्य-सम्राट् चन्द्रगुप्त और अशोक का राज्यकाल भारतवर्ष के इतिहास में स्वर्णयुग समझा जाता है। चाणक्य-रचित 'अर्थशास्त्र' में चन्द्रगुप्त की शासन-प्रणाली और ग्रीक-दूत मेगास्थनीज के ग्रन्थ में अशोक की राज्य-समृद्धि का जो परिचय मिलता है उससे सहज ही हम इस बात का अनुमान कर सकते हैं कि आज से लगभग बाइस-तेइस सौ वर्ष पूर्व इस देश की आभ्यन्तरिक शासनप्रणाली कितनी उन्नत एवं सुव्यवस्थित थी।

उस समय के ऐतिहासिक विवरणों से पता चलता है कि शासनसम्बन्धी विषयों में चन्द्रगुप्त स्वेच्छाचारी राजा के समान नहीं था। अपनी इच्छा से ही उसने शासन-व्यापार के सम्बन्ध में कितनी ही समितियों का संगठन करके उनके हाथ में शासन क्षमता प्रदान की थी। राजधानी पाटलिपुत्र के शासन और उन्नति-साधन का भार एक समिति के ऊपर था। इस समिति से वर्तमानकाल की म्यूनिसिपल कौंसिल बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। पाटलिपुत्र की म्यूनिसिपल समिति में तीस सदस्य थे। यह समिति छः भागों में विभक्त थी, प्रत्येक भाग में पाँच पाँच सदस्य थे। इस प्रकार ग्रामपंचायत-प्रथा का एक उन्नत संस्करण गठित करके उसके ऊपर चन्द्रगुप्त ने निम्नलिखित विषयों का भार अर्पित किया था—

शिल्पकला-सम्बन्धी विषयों की देखभाल का भार प्रथम विभाग के ऊपर था। श्रमजीवियों को किस हिसाब से पारिश्रमिक मिलना चाहिये—इसका

निर्धारण, उपयुक्त पारिश्रमिक प्राप्त करके वे यथोचित रूप में कार्य करें—इसक तत्त्वावधान, और कारीगर लोग उत्कृष्ट माल तैयार करें—इसका निरीक्षण, ये सब काम इस विभाग के जिम्मे थे। उस समय शिल्पी, कारीगर आदि एक प्रकार से राजा के ही कर्मचारी समझे जाते थे। यदि कोई व्यक्ति किसी कारीगर की आँख या उसके हाथ को नष्ट करके उसे अक्षम बना डालता, तो उसे प्राणदण्ड दिया जाता था।

प्रथम विभाग शिल्पकला

तत्कालीन मौर्य-साम्राज्य के साथ अनेक विदेशी राज्यों का सबन्ध था। कार्यवश अनेक विदेशी पाटलिपुत्र में आकर रहा करते थे। इसके सिवा विदेशी पर्यटक भी विभिन्न देशों से भ्रमण करते हुए यहाँ पहुँचते थे। द्वितीय विभाग के राज-कर्मचारी विशेष यत्न के साथ इन विदे-शियों की खोज-खबर लिया करते थे। इतना ही नहीं, उनके लिये उपयुक्त वासस्थान एव अनुचर आदि का भी प्रबन्ध कर दिया करते थे, और आवश्यक होने पर उनकी चिकित्सा की उत्तम व्यवस्था भी करते थे। किसी विदेशी की मृत्यु होने पर, यथारीति उसकी अन्त्येष्टिक्रिया सपन्न की जाती और इस विभाग के कर्मचारी उसके परित्यक्त द्रव्य आदि को बेचकर उसके उत्तराधिकारी के पास मूल्य भेज दिया करते थे।

दूसरा विभाग वैदेशिक

सरकार की जानकारी के लिये और कर-निर्धारण मे सुविधा के ख्याल से विशेष सावधानी एव सुव्यवस्था के साथ इस विभाग द्वारा जन्म-मृत्यु की तालिका तैयार की जाती थी।

तीसरा विभाग जन्म मृत्यु

व्यापार-वाणिज्य के पर्यवेक्षण का भार चतुर्थ विभाग के ऊपर था। उपयुक्त लाभ मे वाणिज्य-वस्तुओं की बिक्री हो और सरकार द्वारा प्रवर्त्तित माप एव परिमाण काम मे लाये जायें, इसकी ओर इस विभाग के कर्मचारियों का ध्यान विशेष रूप में रहता था। व्यवसायियों से एक निर्दिष्ट राजशुल्क लेकर व्यवसाय करने की अनुमति दी जाती थी। जो एकाधिक वस्तुओं का व्यवसाय करते थे उन्हें निर्दिष्ट शुल्क का दूना देना पडता था।

चौथा विभाग वाणिज्य-व्यापार

व्यवसायी नये और पुराने माल को अलग करके रक्खें, इसके लिये एक खास कानून बना हुआ था। जो व्यवसायी इस कानून का उल्लघन करते थे उन्हें अर्थदड दिया जाता था। नये और पुराने माल पर एक ही दर से कर नहीं लगता था।

पाँचवाँ विभाग

सिकन्दर का लौटना

वाणिज्य द्रव्यादि की बिक्री से जो धन प्राप्त होता, उसका दशमांश राज कर के रूप में देना पड़ता था। इस कर के वसूल करने का भार छठे

छठा विभाग

विभाग के ऊपर था। यदि कोई व्यवसायी सरकार को इस कर से वंचित करने के अपराध में पकड़ा जाता तो उसे प्राणदंड दिया जाता था।

केवल पाटलिपुत्र में ही नहीं, मौर्य-साम्राज्य के अन्तर्गत तक्षशिला, उज्जयिनी आदि बड़े-बड़े नगरों में भी इस प्रकार की म्युनिसिपल समितियाँ थीं जिनको नगर के साधारण शासन एवं सुप्रबन्ध का भार सौंपा गया था।

इस प्रकार प्रत्येक विभाग के लिये भिन्न भिन्न कर्त्तव्य निर्धारित करके, म्युनिसिपल समिति के हाथ में समग्र राजधानी के साधारण शासन एवं प्रबन्ध का भार दिया गया था। बाजार, बन्दरगाह, मन्दिर आदि सार्वजनिक संस्थाएँ भी राजकर्मचारियों के तत्त्वावधान में थीं।

दूरवर्त्ती प्रदेशों का शासन कार्य परिचालित करने के लिये एक-एक राज प्रतिनिधि नियुक्त किये गये थे। साधारणतः राजवंश के लोग ही राजप्रतिनिधि नियुक्त होते थे।

दूरवर्त्ती प्रदेशों के राजकर्मचारी किस रूप में अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं, इसकी जानकारी के लिये संवादलेखक एवं संवादवाहक रक्खे जाते थे। वे कर्मचारियों के ऊपर लक्ष्य रक्खा करते थे और नगर या ग्राम में जहाँ जो कुछ संघटित होता, उसकी खबर सरकार को दिया करते थे। इनके सम्बन्ध में विशेष अनुसंधान करके प्राचीन ऐतिहासिक एरियन ने लिखा है कि ये कभी सत्य का अपलाप नहीं करते और उस समय मिथ्या भाषण भारतवासियों के स्वभाव के विरुद्ध था।

अति प्राचीन काल से ही भारत का सैन्यबल चार भागों में विभक्त चला आता था—अश्वारोही गजारोही रथारोही और पैदल। चन्द्रगुप्त ने इन चार

सेनाविभाग

विभागों के अतिरिक्त और दो नये विभागों—नौ सेनाविभाग एवं सैन्यसंग्रह विभाग—की सृष्टि की थी। अपनी सेना में अनुशासन की रक्षा के लिये उसने केवल विधि नियम ही नहीं बनाये थे, बल्कि उन नियमों के अनुसार यथोचित रूप में कार्य होने पर भी उसका पूरा ध्यान रहता था। इस प्रकार के अनुशासन के कारण ही उसका सैन्यबल दोर्दंड प्रतापशाली हो उठा था। इस

सैन्यबल की बदौलत ही चन्द्रगुप्त का पौत्र अशोक समस्त भारत की दिग्विजय करने मे समर्थ हुआ था। इतना ही नहीं, इस सैन्यबल ने मेसिडन की सेना को भी परास्त किया था, और सेलिउकस के आक्रमण को व्यर्थ कर दिया था।

जिस सेना की सहायता से चन्द्रगुप्त ने राजसिंहासन एव साम्राज्य प्राप्त किया था, सम्राट् होने के बाद उस सेना की सख्या में उसने बहुत-कुछ वृद्धि कर दी थी। प्राचीन प्रथानुसार उन्हें धनुर्वेद में सुशिक्षित होना पड़ता था। चन्द्रगुप्त ने शस्त्रास्त्रों का सग्रह भी यथेष्ट रूप में किया था। सैनिकों को नियमित रूप से पर्याप्त वेतन मिलता था। सरकार की ओर से उन्हें घोड़ा, अस्त्र-शस्त्र तथा अन्यान्य आवश्यक सामान दिये जाते थे। बिन्दुसार के समय में ८० हजार घुड़सवार, २ लाख पैदल सेना, ८ हजार रथ और ६ हजार रणहस्ती थे। चन्द्रगुप्त की वाहिनी भी इससे कम न होगी। इसके बाद अशोक ने सैन्यबल में वृद्धि की थी। उसकी सेना में घुड़सवारों की सख्या ६ हजार, पैदल की सख्या ६ लाख और रणहस्तियों की सख्या ६ हजार थी। इसके सिवा उसकी सेना मे बहु-सख्यक रथ भी थे।

सैन्यबल

प्रत्येक घुड़सवार के हाथ मे दो बर्छे और एक ढाल रहती थी। पैदल सेना में प्रत्येक सैनिक के हाथ मे एक चौड़ी धार वाली तलवार होती थी। इसके सिवा छोटे छोटे बर्छे या धनुषबाण भी होते थे। धनुष को जमीन पर टेककर बाये पाँव द्वारा उसे दबाकर प्रचड वेग से बाण छोड़ा जाता था।

अस्त्र शस्त्र

रथ दो या चार घोड़ों द्वारा खींचे जाते थे। प्रत्येक रथ पर एक चालक के सिवा और भी दो योद्धा रहते थे। एक एक हाथी के ऊपर महावत के सिवा और तीन धनुर्धारी सवार होते थे।

रथ और गज

राजस्व या कृषिविभाग के अध्यक्ष को जमीन का लगान निर्धारित करते समय इस बात की ओर भी लक्ष्य रखना पड़ता था कि जमीन की सिंचाई किस तरह हो सकती है। आम तौर से राजा उत्पन्न शस्य का एक-चतुर्थांश राज-कर के रूप में ग्रहण करता था। इसके सिवा सिंचाई के लिये जल-कर के रूप मे भी कृषकों को राज-कर देना पड़ता था। इन सबके अलावा राजा आवश्यकतानुसार प्रजा से चदा भी लिया करता था। इस प्रकार विभिन्न नामों और विभिन्न कारणों से प्रजा को अनेक प्रकार के कर देने पड़ते थे।

राजस्व

चहारदीवारी से घिरे हुए शहरों में पण्य वस्तुओं की बिक्री से जो आमदनी

होती थी उसपर भी राजस्व वसूल किया जाता था। इसके लिये नियम यह था कि जो वस्तु जहाँ उत्पन्न या प्रस्तुत होती थी, वहाँ उसकी बिक्री नहीं हो सकती थी। कानून यह था कि बिक्री के माल को (धान्य और गाय आदि पशुओं को छोड़कर) नगर के सिंहद्वार के बीच मन्त्रगृह के निकट लाकर मौजूद रखना पड़ता था और वहाँ बैठकर उसकी बिक्री करनी पड़ती थी। बिक्री हो जाने पर वहीं राज कर दे देना पड़ता था। बाहर से जो चीजें मँगाई जाती थीं उनके ऊपर सात प्रकार के कर थे। कुल मिलाकर सैकड़े २० रुपये के हिसाब से 'कर' देना पड़ता था। शाक, फलमूल आदि सहज ही नष्ट हो जानेवाली वस्तुओं पर एक पञ्चाश या सैकड़े १६ रुपये के हिसाब से 'कर' लगता था। अन्य प्रकार की बहुत-सी वस्तुओं पर सैकड़े ४ से लेकर १० रुपये तक कर लगता था। मणि-माणिक्य आदि बहुमूल्य जवाहरात का जौहरी लोग जो मूल्य निश्चित कर देते थे उसीके ऊपर राज कर लगाया जाता था। बिक्री के लिये जो सब चीजें लाई जाती थी उनके ऊपर सरकारी मुहर लगा दी जाती थी।

प्रत्येक नगर मे एक नागरक या नगराध्यक्ष हुआ करता था। उसे नगर मे बाहर से आनेवाले और बाहर जानेवाले लोगों का हिसाब रखना पड़ता था।

मनुष्य-गणना

लोक-संख्या का निर्धारण करके उसे प्रत्येक अधिवासी के नाम, जाति, श्रेणी, उपाधि, व्यवसाय, आय, व्यय और पालतू जानवरों की एक तालिका तैयार करनी पड़ती थी। राजस्व-सम्बधी नियमों का उल्लंघन करने पर अपराधी को अर्थदंड दिया जाता था। किन्तु जानबूझकर झूठ बोलनेवाले को चोरी के अपराध मे सजा दी जाती थी।

प्रजावर्ग के मनोगत अभिप्राय की जानकारी के लिये राजा की ओर से

गुप्तचर-विभाग

अनेक गुप्तचर नियुक्त होते थे। इनकी कार्यप्रणाली के सबन्ध मे भी कितने ही नियम और कानून बने हुए थे। राज-कार्यसाधन के लिये ये कोई भी दुष्कर्म बिना किसी हिचक के कर सकते थे।

कृषकों को राजा के युद्ध-कार्य मे कभी सहायता नहीं देनी पड़ती थी। यहाँ तक कि आक्रमणकारी और आक्रान्त दोनों पक्ष समान रूप मे इनकी रक्षा करते थे। मेगस्थनीज ने लिखा है कि अनेक बार ऐसा देखा जाता था कि दोनों पक्षों मे घनघोर संग्राम चल रहा है और पास मे ही किसान निश्चिन्त होकर खेती का काम कर रहे हैं।

करने के लिये दो षड्यन्त्रों का उल्लेख किया गया है। एक दल विष-प्रयोग द्वारा उसकी हत्या करने की ताक में लगा रहता था, दूसरा दल बहुत दूर से उसके सोने के कमरे तक एक सुरंग खोदकर उसमें छिपा रहता था।

एक सुविस्तृत प्रमोद-उद्यान के मध्य में राजप्रासाद अवस्थित था। प्रधानतः लकड़ी का बना होने पर भी यह सौन्दर्य में उस समय संसार भर में अद्वितीय

राजप्रासाद

समझा जाता था। स्तम्भों पर चित्रविचित्र सुनहले कारु कार्य खचित होते थे। स्वर्ण विनिर्मित द्राक्षालताओं से स्तम्भ परिवेष्टित होते थे। उनके ऊपर चाँदी के बने पक्षी फल के लोभ से आकर बैठे हुए होते थे। प्रासाद के चारों तरफ स्थान-स्थान पर मछलियों से भरे हुए जलाशय और नाना प्रकार के पत्र पुष्प-शोभित तरुराजि और लता मंडप निर्मित थे।

दरबार-घर ऐश्वर्य एवं विलासिता की मानों लीला-भूमि था। बड़े बड़े स्वर्णमय पान-पात्र, रत्नखचित कारुकार्य शोभित आसन एवं पात्राधार,

दरबार

ताँबे के बने हुए और मणिमुक्ता से अलकृत बड़े-बड़े पान पात्र और चित्र विचित्र बेलबूटादार वसन और गात्रावरण देखकर उनके चाकचिक्य से आँखें चौंधिया जाती थीं। किसी विशेष अवसर पर राजा स्वर्णमुक्ता-खचित सुचिक्कण मलमल का कपड़ा पहनकर और मोतियों की झालरों से युक्त सोने की पालकी पर सवार होकर सर्वसाधारण के समक्ष उपस्थित होता था यदि किसी समीपवर्ती स्थान पर जाना होता तो राजा साधारणतः घोड़े की सवारी करता था, किन्तु दूर की यात्रा करने पर सोने के हौदे से युक्त हाथी पर चढकर बाहर निकलता था। मल्लों का अस्त्र लेकर युद्ध करना राजदरबार का एक विशेष विनोद समझा जाता था। बीच बीच में भेंड, बैल, भैंसे, हाथी और गैंड़े की लड़ाई भी प्रदर्शित होती थी। कुश्ती या मल्लयुद्ध का भी उस समय काफी प्रचार था। इस समय जिस प्रकार घुड़दौड़ होती है उसी तरह उस समय भी साँड़ों की दौड़ हुआ करती थी। घुड़दौड़ के लिये घोड़े भी रक्खे जाते थे। राजा आग्रह एवं उत्सुकता के साथ इन सब खेल तमाशों में भाग लेता था। साँड़ों की दौड़ में बीच में एक घोड़ा और दोनों तरफ दो साँडों को जोतकर गाड़ी खींची जाती थी।

शिकार राजा का प्रधान व्यसन था। काफी धूमधाम के साथ राजा शिकार के लिये बाहर निकलता था। इस अवसर पर सुरक्षित आखेट-भूमि में एक मचान तैयार किया जाता था, राजा उसपर बैठता था। वन के पशु

सेल्यूकस का आत्म-समर्पण

खदेड़कर मचान की ओर लाये जाते थे, तब राजा धनुषबाण लेकर उनका शिकार करता था। कभी कभी राजा हाथी पर सवार होकर दुर्गम वन के अदर भी शिकार करने जाता था। शिकार के समय भी राजा स्त्री अगरक्षिकाओं द्वारा परिवेष्टित होकर बाहर निकलता था, स्त्रियाँ शिकार का एक प्रधान अग समझी जाती थीं। जिस मार्ग से राजा गमन करता था, उसके दोनों तरफ रस्सी का घेरा लगा हुआ होता था। उस रस्सी को लाँघ-कर कोई सडक के दूसरी ओर जाने की चेष्टा करता तो उसे प्राणदण्ड दिया जाता था। सम्राट् अशोक के समय में यह राजकीय आखेट-प्रथा उठा दी गई थी।

शिकार

एरियन ने लिखा है कि उस समय सवारियों में विशेषत ऊँट, घोड़े और गदहे का व्यवहार होता था। धनी लोग हाथी की सवारी भी किया करते थे। किन्तु हाथी का व्यवहार विशेषत राजकार्य में ही होता था। हाथी, ऊट या चार घोडों की गाड़ी पर सवार होकर बाहर निकलना विशेष धनीमानी व्यक्तियों को ही शोभा देता था। किन्तु घोडे पर या एक घोड़े की गाड़ी पर चढकर सब लोग निकल सकते थे।

सवारी

राज्य की आभ्यन्तरिक शान्ति एव व्यवस्था की रक्षा करने, सैन्यबल को सुशिक्षित एव सुदक्ष बनाने तथा बाहरी और भीतरी शत्रु से राज्य की रक्षा करने के सम्बन्ध मे चन्द्रगुप्त ने जो नियम और कानून बनाये थे, उनसे हमे उच्च कोटि की सभ्यता का परिचय मिलता है।

सम्राट् चन्द्रगुप्त ने अति अल्प वयस् मे साम्राज्यलाभ किया था। उसने सिर्फ २४ वर्ष तक शासन किया। इतने थोड़े समय में एक सामान्य व्यक्ति द्वारा इतने बडे साम्राज्य का स्थापन अवश्य ही आश्चर्य का विषय है।

अशोक के पूर्ववर्ती किसी हिन्दू राजा के ताम्रशासन या शिलालेख अबतक नहीं मिले हैं। किन्तु, पाटलिपुत्र, तक्षशिला, वैशाली प्रभृति प्राचीन नगरों के भू भाग की यदि विशेष रूप से खोदाई हो तो सभव है कि उनके अदर से हिन्दू-सभ्यता के निदर्शन-स्वरूप ऐसे कितने ही चिह्न उपलब्ध हों, जिन्हें देखकर वर्त्तमान सभ्य जगत् चकित एव स्तम्भित हो जाय।

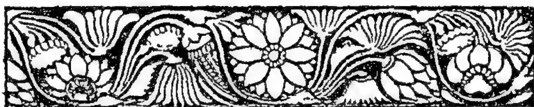

भारत के प्राचीन इतिहास में बिहार का राजनीतिक महत्त्व

पंडित नलिनविलोचन शर्मा, एम्० ए०, बी० ए० (ऑनर्स),

१

भारतवर्ष के प्राचीन राजनीतिक ऐतिह्य में बिहार का स्थान एकाधिक दृष्टि कोणों से असामान्य महत्त्व का है। चूँकि ऐतिहासिक युग के प्रारम्भिक काल में दक्षिण बिहार और उत्तर-बिहार का एक दूसरे से अलग राजनीतिक विकास हुआ है, इसलिये इस विषय का अध्ययन तदनुसार ही सुविधापूर्ण होगा।

दक्षिण-बिहार में जिस मगध साम्राज्यवाद का उत्थान और पतन हुआ उसके पराक्रम और विस्तार का, वैभव और आदर्शवाद का, दूसरा उदाहरण भारतीय इतिहास में तो निश्चय नहीं मिल सकता। दक्षिण बिहार (मगध) को नन्दों की अजय्य वाहिनी का स्रोतस्थल होने का गौरव है जिसके पराक्रम के श्रवण मात्र से विश्वविजयी सिकन्दर की सेना के हौसले पस्त हो गये और उसने भारत के सीमाप्रान्तों के आगे बढने से कतई इनकार कर दिया। इसे चाणक्य राक्षस, कामन्दक-जैसे महामतिमान् नीतिज्ञों को और 'प्रतिज्ञा-दुर्बल' होने पर राजा तक को मृत्यु-दण्ड देने की हिम्मत रखनेवाले पुष्यमित्र-जैसे सेनापतियों को प्रसूत करने का श्रेय है। इसे महापद्मनन्द-जैसे 'एकराट्' एवं 'एकच्छत्र', सेल्यूकस विजयी चन्द्रगुप्त-जैसे भारत की उत्तर पश्चिमीय वैज्ञानिक सीमा के एकमात्र सफल निर्धारक, अशोक-जैसे सफल आदर्शवादी और समुद्रगुप्त-जैसे दिग्विजयी सम्राटों की राजधानी का प्रदेश होने का अभिमान है।

समासत प्राचीन भारतवर्ष के मुख्यतम साम्राज्यों का दक्षिण बिहार ही केन्द्र रहा है। नन्द, मौर्य, शुङ्ग, कण्व, गुप्त प्रभृति साम्राज्यों की दिल्ली यही था।

१—स्कन्दगुप्त को पीछे चलकर हूणों का सामना करने के लिये अपनी राजधानी

वर्तमान बोधिवृक्ष (गया) के नीचे बुद्ध की एक प्राचीन मूर्ति। इसी बोधिवृक्ष की डाल सम्राट् अशोक के पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा लंका ले गये। राजा शशांक ने बोधिवृक्ष को उखाड़ फेंका। राजा हर्षवर्धन ने उसे फिर रोपा। वर्तमान बोधिवृक्ष लंका से लाया गया है।

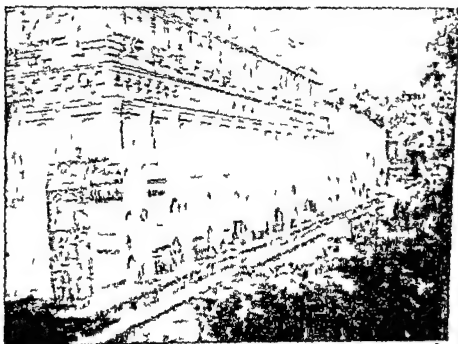

बोधगया के बौद्ध मन्दिर की 'रेलिंग' की भव्य कारीगरी।

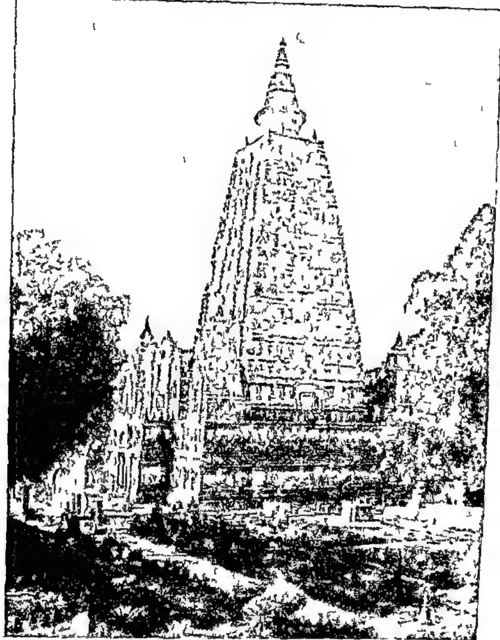

बोध-गया का विशाल मन्दिर (गया), जिसे सम्राट् अशोक ने एक लाख स्वर्णमुद्रा व्यय करके बनवाया था और कई बार टूटते, गिरते, मरम्मत होते वर्त्तमान रूप में आज भी कायम है। ३३० ई० में लंका-नरेश ने इसका विस्तार किया। ६०० ई० में राजा शशांक ने इसे तोड़ डाला, बोधिवृक्ष उखड़वा डाला। हर्षवर्धन ने फिर मन्दिर बनवाया, बोधिवृक्ष लगाया। इस पर पाल-राजाओं की कृपा रही। बरमा नरेश ने १२ वीं शताब्दी में इसकी मरम्मत कराई। मुसलमानी जमाने में इसके फिर बुरे दिन आये। वर्त्तमान मन्दिर का जीर्णोद्धार बरमा-निवासी बौद्धों के आन्दोलन और साहाय्य से १८८४ ई० में किया गया, जिसमें दो लाख रुपये खर्च हुए।

श्रीहेमचन्द्रराय चौधरी ने ठीक ही कहा है—"भारत के प्राचीन इतिहास में मगध ने वही काम कर दिखाया है जो नार्मनों से पहले के इंगलैंड में वेस्सेक्स ने और आधुनिक जर्मनी में प्रशा ने किया है।"[1]

इस छोटे-से प्रदेश के राजन्य आसमुद्रक्षितीश किस प्रकार हुए, मगध साम्राज्यवाद की नींव कब और कैसे पडी, इनका संक्षेप में दिग्दर्शन करा देना असमीचीन न होगा। एक बार प्रतिष्ठापित हो जाने पर, चाहे वह मौर्यों के हाथ में हो या शुंगों के, कण्वों के या गुप्तों के, इसका सातत्य बहुत दिनों तक बना रहा, अत विकास के प्रारंभिक क्रम का ही निर्देश यहाँ पर्याप्त होगा।

२

दक्षिण बिहार का वास्तविक इतिहास बुद्ध के समय से ही आरंभ होता है। ऋग्वेद[2] का कीकट संभवत मगध ही था। यास्क[3] कीकट को अनार्यों का देश कहता है, और भागवतपुराण-जैसे अपेक्षाकृत परवर्त्ती ग्रन्थ कीकट को मगध का पर्याय मानते हैं। जैसे—"बुद्धोनाम्नाञ्जनसुत कीकटेषु भविष्यति।"[4]

वैदिक साहित्य में मगध का नाम पहले पहल अथर्व वेद[5] में आया है। उस समय तो निस्सदेह मगध का महत्त्व उल्लेखनीय नहीं था। अस्तु, मगध पर शासन करनेवाले प्रथम राजवंश की स्थापना कुख्यात जरासन्ध के पिता बृहद्रथ ने की थी[6]। इस वंश का अन्त कदाचित् छठी शताब्दी ईसवी पूर्व में हुआ होगा।

इस शताब्दी के प्रारंभ में वर्तमान राजनीतिक वस्तुस्थिति पर बौद्ध साहित्य द्वारा पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। उस समय भारत में छोटे-छोटे कई गणतन्त्र अवशिष्ट थे, कई लघु राष्ट्र भी स्वतन्त्र सत्ता रखते थे और अनेक अनार्य राज्यों का भी उल्लेख मिलता है। परन्तु तत्कालीन राजनीतिक होड़ में केवल चार शक्तियाँ ही वस्तुत महत्त्वपूर्ण थीं—कोसल, वत्स, अवन्ति और मगध। इन चारों के बुद्ध-समकालीन शासकों के नाम क्रमश इस प्रकार हैं—प्रसेनजित, उदयन, प्रद्योत, बिम्बिसार और अजातशत्रु। इन चारों महत्त्वाकांक्षी शासकों में परस्पर संघर्ष होना अनिवार्य था। इसमें मगध को असाधारण सफलता प्राप्त हुई।

मगध की साम्राज्यवादी लिप्सा को बिम्बिसार के द्वारा ही सक्रिय रूप मिला। बिम्बिसार स्पष्टत एक कर्मकुशल राजनीतिज्ञ था। उसने अपने राज्य के अयोध्या हटानी पड़ी थी जैसा बौद्धों द्वारा दी गई उसकी उपाधि 'अयोध्या का विक्रमादित्य' से प्रतीत होता है।

१—Political History of India, Page 97 २—३, ५३, १४। ३—निरुक्त ६, ३२। ४—भागवत पुराण १, ३, २४। ५—५, २२, १४। ६—महाभारत १, ६३, ३०

मगध और अवन्ति के बीच युद्ध की तैयारियाँ होने का भी उल्लेख है। किन्तु सभवत यह युद्ध हुआ नहीं, और अवन्ति को स्वायत्त करने का काम अजातशत्रु के वशजों के लिये रह गया।

अजातशत्रु के पहले दो वशजों—दर्शक और उदायिभद्र—ने कोई उल्लेखनीय काम नहीं किया। जिस प्रकार इनके पूर्ववर्तियों के समय मगध मत्स्यन्याय से इतनी वृद्धि को प्राप्त हुआ था उसी तरह अवन्ति भी आसपास के राज्यों को आत्मसात् कर अपने प्रतिद्वन्द्वी मगध से लोहा लेने के लिये उत्सुक था। इसका आभास तो अजातशत्रु के समय ही मिल चुका था, पर निर्णयात्मक सघर्ष उदायिभद्र के उत्तराधिकारी शिशुनाग के ही समय हुआ, जब निश्चित रूप से मगध का प्राधान्य स्थापित हुआ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस समय तक विन्ध्य के ऊपर समस्त उत्तर-भारतवर्ष में केवल एक ही प्रधान शक्ति रह गई थी और वह मगध की थी।

इसके बाद वशक्रम अत्यत अस्पष्ट हो गया है, पर इतना कहा जा सकता है कि राजनीतिक दृष्टिकोण से इस बीच कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं घटी थी।[1]

अब नन्दों और मौर्यों का काल आता है। इनके पूर्ववर्त्ती शासकों के समय ही उत्तर-भारत मे मगध का प्रभुत्व व्याप्त हो चुका था। निश्चय ही इन्होंने यत्र तत्र, और विशेषत सीमान्तों में, अपनी शक्ति का विस्तार दृढ किया, किन्तु हम इस प्रसग में इनके द्वारा दक्षिण मे मगध-साम्राज्य का जो पहली बार विस्तार हुआ उसी का उल्लेख कर सन्तोष करेंगे।

दक्षिण में मगध का आधिपत्य स्थापित करने का श्रेय किसे है, यह विषय विवाद से खाली नहीं है। हेमचन्द्रराय चौधरी[2] और कृष्णस्वामी ऐयङ्गर[3] चन्द्रगुप्त मौर्य के पक्ष मे अपना मत देते हैं। विन्सेट स्मिथ[4] और जायसवाल[5] के मतानुसार चन्द्रगुप्त नन्दों के उत्पाटन, यूनानियों के शमन और अपने साम्राज्य के पुन सघटन मे इतना व्यस्त रहा होगा कि उसे विन्ध्य के दक्षिण की ओर विजय यात्रा करने का अवसर नहीं था, और अशोक के बारे मे यह सर्वविदित है कि उसने कलिङ्ग के सिवा और किसी प्रदेश को युद्ध में विजित नहीं किया, इन कारणों से

१—हम यहाँ वश क्रम विषयक विवाद में नहीं पड़ेंगे। २—Political History of India. ३—The Mauryan Invasion of South India ४—History of India ५—'The Empire of Bindusar' in Journal of the Bihar & Orissa Research Society, और आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्पम् की प्रस्तावना।

केसरिया (चम्पारन) का स्तूप, जो 'राजा बेन का देवरा' भी कहलाता है। इसका निचला हिस्सा वैशाली के समकालीन है। ऊपर के हिस्से का समय पहली शताब्दी है।

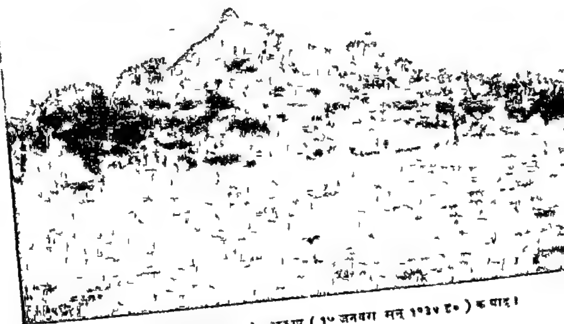

बौद्धस्तूप (केसरिया, चम्पारन)—भूकम्प (१५ जनवरी सन् १९३४ ई०) के बाद।

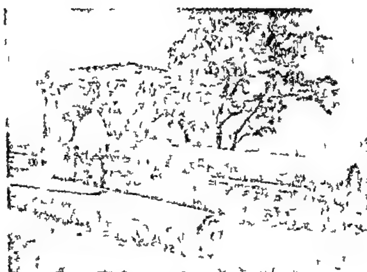

रामपुरवा (चम्पारन) के दो
स्तम्भ, जिनमें एक पर सि
दूसरे पर साँड की मूर्त्ति थी।
की लम्बाई ४४ फीट १०॥
दूसरे की ४३ फीट ४ इंच है।
गिर कर दलदली भूमि में
जहाँ से पुरातत्व-विभाग ने
उन्हें यहाँ सुरक्षित रक्खा है।

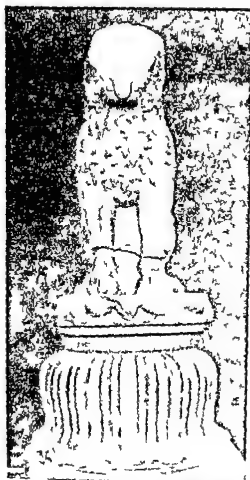

रामपुरवा (चम्पारन) के अशोक स्तम्भ के सिरे पर की सिंहमूर्त्ति, जो सारियानन्दनगढ़ की मूर्त्ति से बिलकुल मिलती है। सिंह की यह मूर्त्ति प्राचीन मूर्ति-निर्माण-कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। समय इसवी सन् से २४२ वर्ष पूर्व।

रामपुरवा (चम्पारन) में प्राप्त दूसरे अ
के सिर पर की साँड की मूर्त्ति, जो ४ फीट
इसका निर्माणकाल भी इसवी सन् से २४
ही है। यह मूर्त्ति अब कलकत्ता म्यूजियम में

वे बिन्दुसार को ही दक्षिण का विजेता मानते हैं। परन्तु हमारी सम्मति में इस नये सिद्धान्त के लिये पर्याप्त प्रमाण हैं, जिनके अनुसार दक्षिण विजय का श्रेय नन्दों को ही मिलना चाहिये। वाल्श ने मुद्राशास्त्रीय तर्कों के आधार पर और डाक्टर शास्त्री ने पुराणों, हिन्दू, बौद्ध और जैन-साहित्य तथा पुरातत्त्व के साक्ष्य पर इस सिद्धान्त का अभिनव प्रतिपादन किया है।

जहाँ तक साम्राज्य विस्तार के सातत्य का प्रश्न है, इसके बाद इसकी तुलना का कोई सफल प्रयत्न भविष्य में मगध में ही क्यों, भारतवर्ष में नहीं हुआ। नन्दों और मौर्यों का राजत्व-काल मागध साम्राज्यवाद की ही नहीं, अपितु प्राचीन भारतीय साम्राज्यवाद की पराकाष्ठा है, जिसका अतिक्रमण तो कभी नहीं हुआ, पर उसकी समता भी नहीं दीख पड़ती। मगध में शुङ्ग और कण्व वंशों का स्थान इस प्रसंग में तुच्छ है। गुप्तों का प्रयत्न उल्लेखनीय है, किन्तु आखिर वह नन्दों और मौर्यों की सफलता की संक्षिप्त पुनरावृत्ति मात्र है। स्कन्दगुप्त को जिस दिन प्राचीन भारत की राजधानी पाटलिपुत्र का त्याग करना पड़ा था, उसके बाद मगध का राजनीतिक प्राधान्य तो लुप्त हुआ ही, साथ-ही साथ समस्त भारत की राजनीति के दुर्दिन भी आसन्न थे।

३

भारतीय साम्राज्यवाद में मगध के अतुलनीय प्राधान्य का निर्देश मात्र कर हम उत्तर-बिहार के सर्वथा भिन्न प्रकार के राजनीतिक महत्त्व का आभास देने का यत्न करेंगे।

उत्तर-बिहार का इतिहास बहुत पुराना है। कुरुक्षेत्र के महायुद्ध के अनन्तर ही भारतीय राजनीति में उत्तर-पश्चिम भारत का प्राधान्य जाता रहा। फिर भी कौरवों के विशाल साम्राज्य का काफी बड़ा हिस्सा पांडु-वंशज परीक्षित और जनमेजय के अधीन अवश्य रहा होगा। परन्तु जनमेजय के परवर्त्ती शासक स्पष्ट ही क्रमशः अधिकाधिक दुर्बल होते गये और अन्ततः 'क्षते क्षार' की तरह बाढ़ अकाल आदि प्राकृतिक उपद्रवों के कारण निचक्षु को हस्तिनापुर से हटकर कौशाम्बी चला आना पड़ा था। इसके बाद तो उत्तर पश्चिम के गौरवपूर्ण परिच्छेद

१—Journal of the Royal Asiatic Society 1937 २—Journal of the Bihar & Orissa Research Society 1937 ३—जनमेजय—शतानीक—अश्वमेधदत्त—अधिसीमकृष्ण—निचक्षु—कौशाम्बी का राजवंश। ४—बृहदारण्यक उपनिषद् ३, ४१, Pargiter, Dynasties of the Kali age, p ५

का अन्त ही समझना चाहिये। आगामी युग में सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व हुआ विदेह के सुप्रसिद्ध राजा जनक का।

जातकों में—और, कहना नहीं होगा, रामायण में भी—विदेह की राजधानी मिथिला का वर्णन बहुधा मिलता है। 'सुरुचि' जातक के अनुसार मिथिला का विस्तार सात योजनों में था और महाजनक-जातक में इस नगरी के वैभव का आकर्षक वर्णन है। जनक के अधीन 'विदेह'—आधिभौतिक और आध्यात्मिक, उभय दृष्टिकोणों से—असाधारण महत्त्वपूर्ण स्थान हो गया था। बृहदारण्यक उपनिषद् में जनक सम्राट् की उपाधि से विभूषित किये गये हैं। यद्यपि वैदिक वाङ्मय में सम्राट् का महत्त्व उसके यज्ञों की संख्या और उत्कर्ष पर ही निर्भर दिखलाया गया है, फिर भी यह अस्वीकृत नहीं किया जा सकता कि इस शब्द से राजनीतिक प्रभुत्व की भी स्पष्ट ध्वनि आती है। उदाहरणार्थ—बृहदारण्यक उपनिषद् और महाभारत में उल्लिखित वैदेह जनक और काशिराज प्रतर्दन के युद्ध।

इस गौरवान्वित वंश का अन्त कराल जनक के साथ हुआ जिसने, कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार, एक ब्राह्मणी पर कुदृष्टि डाली थी।

हमने उत्तर-बिहार के विषय में पहले ही कहा है कि भारत के इतिहास में उसका भी राजनीतिक महत्त्व है, परन्तु वह मगध के महत्त्व की तुलना में सर्वथा भिन्न प्रकार का है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विदेह के राजा जनक, एक राजा की हैसियत से भी, नगण्य नहीं कहे जा सकते। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि साम्राज्यवादी शक्तियों के इतिहास में उत्तर बिहार का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है, विशेषतः पार्श्ववर्त्ती मगध के इतिहास के सामने यह एकदम फीका पड़ जाता है।

परन्तु राजनीतिक महत्त्व का विवेचन किसी राष्ट्र की साम्राज्यवादी सफलता को ही दृष्टि में रखकर नहीं किया जा सकता। राजनीति के विद्यार्थी की आँखों में नार्वे और स्वीडन जैसे लघु राष्ट्रों का भी अपना विशिष्ट स्थान है, और वह इसलिये कि अमेरिका और ब्रिटेन, रूस और जर्मन-जैसे पराक्रमी बृहत् राष्ट्रों की तुलना में वहाँ राजनीति संबंधी असाधारण मनुष्यतापूर्ण प्रयोग हुए हैं।

इसी कारण, उत्तर-बिहार का भी भारत के राजनीतिक इतिहास में एक विशिष्ट स्थान स्वीकृत होगा। अपने सारे वैभव और व्यापकता के बावजूद भी मागध साम्राज्यवाद एक दिन उसी प्रकार विनष्ट हो गया, जिस प्रकार उसीके कारण उत्तर-बिहार में सफलतापूर्वक शासन संचालन करनेवाली वज्जियों की

प्रयोगात्मक गणतन्त्र-प्रणाली। इसकी स्थापना कराल जनक के कुशासन की प्रतिक्रिया के रूप मे हुई थी। उनकी शासन प्रणाली मे प्रजा के बीच समानता, स्वतन्त्रता और भ्रातृत्व की जो भावना प्रारभ मे वर्त्तमान थी वह यदि अक्षुण्ण बनी रहती तो, जैसा बुद्ध ने 'दीघनिकाय' और 'महापरिनिब्बान सुत्तन्त' के अनुसार कहा था, उसे शत्रु कदापि पराजित नहीं कर सकते। किन्तु दुर्भाग्यवश, जैसा हम ऊपर कह आये हैं, पारस्परिक विद्वेष के कारण उनके इस स्तुत्य राजनीतिक प्रयोग का मागध साम्राज्यवाद द्वारा विनाश सभव हुआ।

अल्पकालीन और छोटे पैमाने पर होने पर भी गतानुगतिकता के सर्वथा विरुद्ध किये जानेवाले एक प्रयोग को यहाँ आश्रय मिला, केवल इसी नाते भारत के राजनीतिक इतिहास में उत्तर बिहार का स्थान उल्लेखनीय रहेगा।

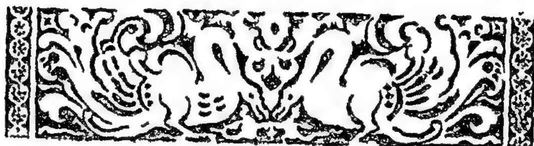

नालन्दा-विश्वविद्यालय के पंडित

अध्यापक शंकरदेव विद्यालंकार, साहित्य मनीषी, गुरुकुल विद्यामंदिर, सूपा, गुजरात

नालन्दा-विश्व विद्यालय में विद्वच्चकचूडामणि पंडितों का अपूर्व जमघट था। बड़े-बड़े उद्भट विद्वान् इस विश्वविद्यालय के ज्ञान-सागर में विराट् पोत के समान विराजमान थे। उनमें से कुछ तो महान् यशस्वी और विश्वविख्यात थे। उनकी कीर्त्ति देश देशान्तर में फैली हुई थी। यथा—

[१] आर्यदेव

भिक्षु आर्यदेव को 'महाकाय' का विशेषण दिया गया है। आप नालदा-विश्वविद्यालय के आरंभिक काल के एक अध्यापक थे। कहा जाता है कि नालदा विहार की स्थापना से आपका भी बहुत हाथ था। आपकी विद्वत्ता का प्रमाण तिब्बत मे विशेष है। संस्कृत भाषा के आप महान् पंडित थे। तिब्बत में आपकी पुस्तकें बहुत लोकप्रिय हुई हैं। श्रीतारानाथ-कृत 'बौद्धधर्म का इतिहास' नामक ग्रंथ में आपके जीवन का वृत्तान्त उपलब्ध होता है। तारानाथ ने आपको 'देव' उपनाम से पुकारा है।

चीनी यात्री ह्यूनसाँग ने भी अपनी यात्रा पुस्तक में आपका उल्लेख किया है—आपके साथ नागार्जुन के मिलाप का वर्णन लिखा है। आचार्य नागार्जुन ने जल से भरा हुआ एक पात्र आपके पास भेजा। आपने उसमें सुई डालकर उसको लौटा दिया। यह देखकर नागार्जुन ने कहा—"आर्यदेव कैसा ज्ञानी पुरुष है।" इसके बाद आपके साथ नागार्जुन का किसी धार्मिक विषय पर वाद विवाद हुआ। उसमें आपकी पराजय हुई। प्रथा के अनुसार आपने नागार्जुन का शिष्य बनना स्वीकार किया—उनसे धार्मिक शिक्षा लेने लगे।

अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद गुरु की आज्ञा लेकर आप मगध में

आये। यहाँ भिक्षु तिरक के साथ आपका शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें आप विजयी हुए।

तारानाथ के कथनानुसार आप नालन्दा विद्यापीठ के आचार्य थे। परन्तु प्रश्न यह है कि आपके समय में नालन्दा विश्वविद्यालय स्थापित हुआ था या नहीं। आप चन्द्रगुप्त के समकालीन थे। चौथी शताब्दी मे जब चीनी पर्यटक फाहियान भारत-यात्रा करने आया तब नालन्दा विश्वविद्यालय 'नाला' नामक स्थान में अपना प्रारंभिक विकास कर रहा था। यह हो सकता है कि आपके समय में यह विश्व विद्यालय प्रसिद्ध न हो पाया हो। आपने तीन पुस्तकों का निर्माण किया है—

(१) शातक शास्त्रम, (२) ब्रह्मप्रमाथन-युक्ति हेतुसिद्धि, और (३) मध्यमाक ब्रह्म घातन्नाम। अन्तिम ग्रन्थ जम्बूद्वीप के राजा के आज्ञानुसार नालन्दा में लिखा गया था। इसका भाषान्तर तिब्बती भाषा मे उपाध्याय दिवाकर ने किया।

[२] कुलपति महास्थविर शीलभद्र

कुलपति शीलभद्र व्यवस्था शक्ति के लिये विख्यात थे। ह्वेनसाँग ने अपने यात्रावर्णन मे इनका वृत्तान्त लिखा है। ह्वेनसाँग इनका शिष्य था। उसने इनसे बौद्धदर्शनों तथा संस्कृतभाषा का अध्ययन किया था। ह्वेनसाँग 'बोधि-तत्त्व विद्' कहा जाता है, तो फिर उसके गुरु के पांडित्य का तो कहना ही क्या! इत्सिंग ने भी अपनी प्रवास-पोथी मे शीलभद्र का उल्लेख किया है।

शीलभद्र 'समतट' (पूर्व-बंगाल) के ब्राह्मण वंशीय राजा के पाटवी कुमार थे। तीस वर्ष की उम्र में इन्होंने सारे भारतवर्ष की यात्रा कर ली थी। इसके बाद नालन्दा मे आकर अन्तेवासी बनकर रहे। विद्यार्थि-अवस्था मे ही इन्होंने एक विदेशी पंडित के साथ धार्मिक वाद विवाद कर विजय प्राप्त की थी। इनकी इस विजय का समाचार राजगृह के राजा ने सुना। उसने इनको अपने यहाँ निमंत्रित किया। एक गाँव भी इनको दिया। पहले तो इन्होंने स्वीकार नहीं किया। तब राजा ने कहा—"बौद्ध धर्म की ख्याति नष्ट और अधर्म की वृद्धि होती जा रही है। यदि आप यहाँ न आवेंगे तो बौद्ध धर्म के विस्तार की आशा करना व्यर्थ है।" राजा की यह विनती सुनकर इन्होंने नालन्दा मे रहना स्वीकार किया।

इस संवाद से यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि कैसी विकट परिस्थिति के समय इन्होंने नालन्दा-विद्यापीठ के संचालन का काम अपने हाथ मे लिया था। इन्होंने किस सफलता से सारा कार्य किया, यह नालन्दा की उत्तरोत्तर उन्नति से विदित होता है।

चीनी यात्री ह्यूनसॉग करीब सन् ६३५ ई० में भारतवर्ष में आया था। उस समय इनकी आयु ५० वर्ष की होनी चाहिये। इस प्रकार इनका समय ई०-सन् ५८५ से ६४० तक माना जा सकता है।

ये प्रखर प्रमाणशास्त्री थे। इन्होंने बहुत-से ग्रन्थों का प्रणयन किया था जिनमें से केवल 'त्रिपिटक' ही तिब्बती भाषा मे उपलब्ध होता है। यह पुस्तक 'आर्य-बुद्ध भूमि-व्याख्यान' नाम से विख्यात है। इस पुस्तक का अनुवाद किसने किया, यह ज्ञात नहीं।

[३] धर्मपाल

धर्मपाल बहुत समय तक नालन्दा-विद्यापीठ के अध्यक्ष (Chancellor) रहे थे। ह्यूनसॉग और इत्सिग, दोनों यात्रियों ने इनका उल्लेख किया है। इन्होंने नालन्दा-विश्वविद्यालय से 'बोधितत्त्वविद्' की उपाधि प्राप्त की थी। बौद्ध धर्म पर एक सुन्दर भाष्य लिखकर इन्होंने धर्मऋण अदा किया था।

ये दक्षिण-भारत के रहनेवाले थे। इनकी जन्मभूमि काचीपुरी थी। एक बार वहाँ के राजा ने इनको भोजन का निमत्रण दिया। परन्तु, सायकाल मे राजा इनसे उदासीन हो गया। उसी रात्रि में भिक्षु का वेश धारण कर ये घर से निकल पड़े। घूमते-घूमते नालन्दा पहुँचे। वहाँ भिक्षु पद पर नियुक्त किये गये। वहाँ रहते हुए ही इन्होंने बौद्धशास्त्रों मे प्रवीणता प्राप्त की। फलत ये नालन्दा के अध्यक्ष बनाये गये। जिस समय ह्यूनसाँग भारतवर्ष मे आया, उसी समय इन्होंने अपनी जगह खाली करके अपना पद महास्थविर शीलभद्र को दे दिया। कौशाम्बी-मठ के पडितों को इन्होंने धार्मिक वाद-विवाद मे परास्त किया था।

महाकाय चन्द्रगोमेन विरचित व्याकरण पर इन्होंने एक टीका लिखी है, जो 'वर्ण-सूत्र-वर्ण-नाम' के नाम से प्रसिद्ध है। सस्कृत मे लिखे हुए बौद्ध धर्म-विषयक इनके चार ग्रन्थ तिब्बत से प्राप्त हुए हैं—(१) आलम्बन-प्रत्यय-ध्यानशास्त्र-व्याकरण, (२) विद्यामत्र सिद्धि शास्त्र-व्याख्या, (३) सतशास्त्र-वैपुल्य-व्याख्या, और (४) बालो-सत्त्व-सममाह।

[४] चन्द्रगोमेन

चन्द्रगोमेन बडे ही प्रखर पडित थे। ये नालन्दा की अनेक प्रवृत्तियों के प्रेरक और ग्रन्थकर्त्ता-रूप में इतिहास मे दृष्टिगोचर होते हैं। इनकी पुस्तकें लोकप्रिय हैं, जिनका प्राय तिब्बती भाषा मे अनुवाद हो चुका है। तारानाथ के विवरण मे

तथा तिब्बती भाषा की पुस्तक 'पाठासम जाअज' मे इनका उल्लेख है। तिब्बती इनको 'थला या-ब्ङज् बसनेन' के नाम से पहचानते है।

ये वारेन्द्र (उत्तर बंगाल) के एक क्षत्रिय कुल मे उत्पन्न हुए थे। आचार्य स्थिरमति से इन्होंने 'सुत्त' और 'अभिधम्म' की शिक्षा ली थी। आचार्य अशोक ने इनको बौद्धधर्म का उपदेश किया था।

ये लंका और दक्षिण भारत की यात्रा करते हुए नालन्दा आये थे। पहले जो भिक्षु के रूप मे नहीं लिये गये, परन्तु पीछे इनको लेने के लिये तीन रथ भेजे गये। पहले रथ में चन्द्रगोमेन बैठे, दूसरे में बैठे चन्द्रकीर्त्ति और तीसरे मे मजुश्री (महायान-मतानुसार शारदादेवी) बैठीं। रथों के पीछे भिक्षु दल पंक्ति बाँधकर खड़ा था। सारा जुलूस गाँव में से होकर मठ में गया।

जब ये दक्षिण भारत मे रहते थे तब इन्होंने एक पाडित्यपूर्ण पुस्तक लिखी थी। नालन्दा आने पर इनको ज्ञात हुआ कि चन्द्रकीर्त्ति ने उससे भी अच्छी एक पुस्तक लिखी है। अत इन्होंने अपनी पुस्तक कुएँ में डाल दी। लोगों के बहुत कहने पर उक्त पुस्तक कुएँ से निकाली गई। अन्ततोगत्वा यह पुस्तक चन्द्रकीर्त्ति की पुस्तक से कहीं अधिक पाडित्यपूर्ण सिद्ध हुई।

इनका समय सन् ७०० ईसवी के करीब है। कहा जाता है कि ये हर्ष के पुत्र राजा शील के समकालीन थे। इन्होंने सब मिलाकर कोई साठ से अधिक बौद्धधर्म-विषयक पुस्तकों का सस्कृत भाषा मे निर्माण किया है। तिब्बत मे इनकी ख्याति वहाँ के दिग्गज विद्वान् दीपङ्कर और अभयङ्कर गुप्त के समान हुई। ये एक प्रचड वैयाकरण भी थे। इनकी पुस्तकें आज भी तिब्बत मे प्रेम के साथ पढी जाती हैं। इसका कारण यह है कि इनकी सब पुस्तकों का वहाँ की भाषा में अनुवाद हो चुका है। इनकी बहुत-सी पुस्तके 'चीनी त्रिपिटक' नाम से प्रसिद्ध हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि इनकी पुस्तकों का अनुवाद भारतीय भिक्षुओं ने ही किया है। वास्तव मे अपने समय के ये प्रकाड पडित थे।

[५] सन्तरक्षित

आठवीं शताब्दी मे तिब्बत में 'खी-स्रोन डा त्सान' नामक राजा राज करता था। यह राजा बौद्धधर्म का बहुत प्रेमी था। राज्य की ओर से धर्म प्रचार करने के लिये यह बौद्ध भिक्षुओं को रखता था। इसीने आचार्य सन्तरक्षित (शान्तरक्षित ?) को तिब्बत मे सम्मानपूर्वक बुलाया।

चीनी यात्री ह्यूनसॉग करीब सन् ६३५ ई० मे भारतवर्ष में आया था। उस समय इनकी आयु ५० वर्ष की होनी चाहिये। इस प्रकार इनका समय ई०-सन् ५८५ से ६४० तक माना जा सकता है।

ये प्रखर प्रमाणशास्त्री थे। इन्होंने बहुत-से ग्रन्थों का प्रणयन किया था जिनमे से केवल 'त्रिपिटक' ही तिब्बती भाषा में उपलब्ध होता है। यह पुस्तक 'आर्य-बुद्ध भूमि-व्याख्यान' नाम से विख्यात है। इस पुस्तक का अनुवाद किसने किया, यह ज्ञात नहीं।

[३] धर्मपाल

धर्मपाल बहुत समय तक नालन्दा-विद्यापीठ के अध्यक्ष (Chancellor) रहे थे। ह्यूनसॉग और इत्सिंग, दोनों यात्रियों ने इनका उल्लेख किया है। इन्होंने नालन्दा विश्वविद्यालय से 'बोधितत्त्वविद्' की उपाधि प्राप्त की थी। बौद्ध-धर्म पर एक सुन्दर भाष्य लिखकर इन्होंने धर्म-ऋण अदा किया था।

ये दक्षिण भारत के रहनेवाले थे। इनकी जन्मभूमि काचीपुरी थी। एक बार वहाँ के राजा ने इनको भोजन का निमन्त्रण दिया। परन्तु, सायकाल मे राजा इनसे उदासीन हो गया। उसी रात्रि मे भिक्षु का वेश धारण कर ये घर से निकल पडे। घूमते-घूमते नालन्दा पहुँचे। वहाँ भिक्षु-पद पर नियुक्त किये गये। वहाँ रहते हुए ही इन्होंने बौद्धशास्त्रों में प्रवीणता प्राप्त की। फलत ये नालन्दा के अध्यक्ष बनाये गये। जिस समय ह्यूनसॉग भारतवर्ष मे आया, उसी समय इन्होंने अपनी जगह खाली करके अपना पद महास्थविर शीलभद्र को दे दिया। कौशाम्बी-मठ के पडितों को इन्होंने धार्मिक वाद-विवाद मे परास्त किया था।

महाकाय चन्द्रगोमेन विरचित व्याकरण पर इन्होंने एक टीका लिखी है, जो 'वर्ण-सूत्र-वर्ण-नाम' के नाम से प्रसिद्ध है। संस्कृत मे लिखे हुए बौद्ध धर्म-विषयक इनके चार ग्रन्थ तिब्बत से प्राप्त हुए हैं—(१) आलम्बन-प्रत्यय ध्यानशास्त्र-व्याकरण, (२) विद्यामत्र सिद्धि शास्त्र-व्याख्या, (३) सतशास्त्र-वैपुल्य-व्याख्या, और (४) वाली-तत्त्व-सममाह।

[४] चन्द्रगोमेन

चन्द्रगोमेन बडे ही प्रखर पडित थे। ये नालन्दा की अनेक प्रवृत्तियों के प्रेरक और ग्रन्थकर्त्ता-रूप मे इतिहास मे दृष्टिगोचर होते हैं। इनकी पुस्तकें लोकप्रिय हैं, जिनका प्राय तिब्बती भाषा मे अनुवाद हो चुका है। तारानाथ के विवरण मे

तथा तिब्बती भाषा की पुस्तक 'पाठासम जाश्रज' मे इनका उल्लेख है। तिब्बती इनको 'नला वा-डज् बसनेन' के नाम से पहचानते हैं।

ये वारेन्द्र (उत्तर बंगाल) के एक क्षत्रिय-कुल में उत्पन्न हुए थे। आचार्य स्थिरमति से इन्होंने 'सुत्त' और 'अभिधम्म' की शिक्षा ली थी। आचार्य अशोक ने इनको बौद्धधर्म का उपदेश किया था।

ये लंका और दक्षिण भारत की यात्रा करते हुए नालन्दा आये थे। पहले जो भिक्षु के रूप में नहीं लिये गये, परन्तु पीछे इनको लेने के लिये तीन रथ भेजे गये। पहले रथ मे चन्द्रगोमेन बैठे, दूसरे में बैठे चन्द्रकीर्त्ति और तीसरे मे मजुश्री (महायान-मतानुसार शारदादेवी) बैठीं। रथों के पीछे भिक्षु दल पंक्ति बाँधकर खड़ा था। सारा जुलूस गाँव मे से होकर मठ में गया।

जब ये दक्षिण भारत में रहते थे तब इन्होंने एक पाडित्यपूर्ण पुस्तक लिखी थी। नालन्दा आने पर इनको ज्ञात हुआ कि चन्द्रकीर्त्ति ने उससे भी अच्छी एक पुस्तक लिखी है। अत इन्होंने अपनी पुस्तक कुएँ मे डाल दी। लोगों के बहुत कहने पर उक्त पुस्तक कुएँ से निकाली गई। अन्ततोगत्वा यह पुस्तक चन्द्रकीर्त्ति की पुस्तक से कहीं अधिक पाडित्यपूर्ण सिद्ध हुई।

इनका समय सन् ७०० ईसवी के करीब है। कहा जाता है कि ये हर्ष के पुत्र राजा शील के समकालीन थे। इन्होंने सब मिलाकर कोई साठ से अधिक बौद्धधर्म-विषयक पुस्तकों का संस्कृत भाषा में निर्माण किया है। तिब्बत में इनकी ख्याति वहाँ के दिग्गज विद्वान् दीपङ्कर और अभयङ्कर गुप्त के समान हुई। ये एक प्रचंड वैयाकरण भी थे। इनकी पुस्तकें आज भी तिब्बत मे प्रेम के साथ पढी जाती हैं। इसका कारण यह है कि इनकी सब पुस्तकों का वहाँ की भाषा में अनुवाद हो चुका है। इनकी बहुत-सी पुस्तके 'चीनी त्रिपिटक' नाम से प्रसिद्ध हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि इनकी पुस्तकों का अनुवाद भारतीय भिक्षुओं ने ही किया है। वास्तव मे अपने समय के ये प्रकाड पंडित थे।

[५] सन्तरक्षित

आठवीं शताब्दी मे तिब्बत में 'खी-सरोन डा त्सान' नामक राजा राज करता था। यह राजा बौद्धधर्म का बहुत प्रेमी था। राज्य की ओर से धर्म-प्रचार करने के लिये यह बौद्ध भिक्षुओं को रखता था। इसीने आचार्य सन्तरक्षित (शान्तरक्षित ?) को तिब्बत में सम्मानपूर्वक बुलाया।

चीनी यात्री ह्यूनसाँग करीब सन् ६३५ ई० मे भारतवर्ष में आया था। उस समय इनकी आयु ५० वर्ष की होनी चाहिये। इस प्रकार इनका समय ई०-सन् ५८५ से ६४० तक माना जा सकता है।

ये प्रखर प्रमाणशाली थे। इन्होंने बहुत-से ग्रन्थों का प्रणयन किया था जिनमें से केवल 'त्रिपिटक' ही तिब्बती भाषा मे उपलब्ध होता है। यह पुस्तक 'आर्य-बुद्ध-भूमि-व्याख्यान' नाम से विख्यात है। इस पुस्तक का अनुवाद किसने किया, यह ज्ञात नहीं।

[३] धर्मपाल

धर्मपाल बहुत समय तक नालन्दा-विद्यापीठ के अध्यक्ष (Chancellor) रहे थे। ह्यूनसाँग और इत्सिंग, दोनों यात्रियों ने इनका उल्लेख किया है। इन्होंने नालन्दा विश्वविद्यालय से 'बोधितत्त्वविद्' की उपाधि प्राप्त की थी। बौद्ध धर्म पर एक सुन्दर भाष्य लिखकर इन्होंने धर्म-ऋण अदा किया था।

ये दक्षिण भारत के रहनेवाले थे। इनकी जन्मभूमि काचीपुरी थी। एक बार वहाँ के राजा ने इनको भोजन का निमत्रण दिया। परन्तु, सायकाल मे राजा इनसे उदासीन हो गया। उसी रात्रि मे भिक्षु का वेश धारण कर ये घर से निकल पडे। घूमते-घूमते नालन्दा पहुँचे। वहाँ भिक्षु पद पर नियुक्त किये गये। वहाँ रहते हुए ही इन्होंने बौद्धशास्त्रों मे प्रवीणता प्राप्त की। फलत ये नालन्दा के अध्यक्ष बनाये गये। जिस समय ह्यूनसाँग भारतवर्ष मे आया, उसी समय इन्होंने अपनी जगह खाली करके अपना पद महास्थविर शीलभद्र को दे दिया। कौशाम्बी-मठ के पडितों को इन्होंने धार्मिक वाद-विवाद मे परास्त किया था।

महाकाय चन्द्रगोमेन-विरचित व्याकरण पर इन्होंने एक टीका लिखी है, जो 'वर्ण-सूत्र-वर्ण-नाम' के नाम से प्रसिद्ध है। सस्कृत मे लिखे हुए बौद्ध धर्म-विषयक इनके चार ग्रन्थ तिब्बत से प्राप्त हुए हैं—(१) आलम्बन-प्रत्यय-ध्यानशास्त्र व्याकरण, (२) विद्यामत्र-सिद्धि शास्त्र-व्याख्या, (३) सतशास्त्र-वैपुल्य-व्याख्या, और (४) वाली-तत्त्व-सममाद।

[४] चन्द्रगोमेन

चन्द्रगोमेन बड़े ही प्रखर पण्डित थे। ये नालन्दा की अनेक प्रवृत्तियों के प्रेरक और ग्रन्थकर्त्ता-रूप मे इतिहास में दृष्टिगोचर होते हैं। इनकी पुस्तकें लोकप्रिय हैं, जिनका प्राय तिब्बती भाषा मे अनुवाद हो चुका है। तारानाथ के विवरण मे

तथा तिब्बती भाषा की पुस्तक 'पाठासम जाञज' में इनका उल्लेख है। तिब्बती इनको 'अला-या-ङज् बसनेन' के नाम से पहचानते हैं।

ये वारेन्द्र (उत्तर बंगाल) के एक क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए थे। आचार्य स्थिरमति से इन्होंने 'सुत्त' और 'अभिधम्म' की शिक्षा ली थी। आचार्य अशोक ने इनको बौद्धधर्म का उपदेश किया था।

ये लंका और दक्षिण भारत की यात्रा करते हुए नालन्दा आये थे। पहले जो भिक्षु के रूप में नहीं लिये गये, परन्तु पीछे इनको लेने के लिये तीन रथ भेजे गये। पहले रथ मे चन्द्रगोमेन बैठे, दूसरे में बैठे चन्द्रकीर्ति और तीसरे में मंजुश्री (महायान-मतानुसार शारदादेवी) बैठीं। रथों के पीछे भिक्षु दल पंक्ति बाँधकर खड़ा था। सारा जुलूस गाँव में से होकर मठ में गया।

जब ये दक्षिण भारत मे रहते थे तब इन्होंने एक पांडित्यपूर्ण पुस्तक लिखी थी। नालन्दा आने पर इनको ज्ञात हुआ कि चन्द्रकीर्ति ने उससे भी अच्छी एक पुस्तक लिखी है। अत इन्होंने अपनी पुस्तक कुएँ में डाल दी। लोगों के बहुत कहने पर उक्त पुस्तक कुएँ से निकाली गई। अन्ततोगत्वा यह पुस्तक चन्द्रकीर्ति की पुस्तक से कहीं अधिक पांडित्यपूर्ण सिद्ध हुई।

इनका समय सन् ७०० ईसवी के करीब है। कहा जाता है कि ये हर्ष के पुत्र राजा शील के समकालीन थे। इन्होंने सब मिलाकर कोई साठ से अधिक बौद्धधर्म विषयक पुस्तकों का संस्कृत भाषा में निर्माण किया है। तिब्बत मे इनकी ख्याति वहाँ के दिग्गज विद्वान् दीपङ्कर और अभयङ्कर गुप्त के समान हुई। ये एक प्रचंड वैयाकरण भी थे। इनकी पुस्तकें आज भी तिब्बत में प्रेम के साथ पढ़ी जाती हैं। इसका कारण यह है कि इनकी सब पुस्तकों का वहाँ की भाषा में अनुवाद हो चुका है। इनकी बहुत-सी पुस्तकें 'चीनी त्रिपिटक' नाम से प्रसिद्ध हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि इनकी पुस्तकों का अनुवाद भारतीय भिक्षुओं ने ही किया है। वास्तव में अपने समय के ये प्रकांड पंडित थे।

[५] सन्तरक्षित

आठवीं शताब्दी में तिब्बत में 'ख्री-सरोन डा त्सान' नामक राजा राज करता था। यह राजा बौद्धधर्म का बहुत प्रेमी था। राज्य की ओर से धर्म-प्रचार करने के लिये यह बौद्ध भिक्षुओं को रखता था। इसीने आचार्य सन्तरक्षित (शान्तरक्षित ?) को तिब्बत में सम्मानपूर्वक बुलाया।

राजा गोपाल के समय में ये उत्पन्न हुए थे। कदाचित् ये भ्राहोर (बगाल) के निवासी थे। तिब्बत जाने से पूर्व ये नालन्दा विद्यापीठ में अध्यापक थे। विद्यापीठ में ये 'स्वतन्त्र माध्यमिक शाला' के अध्यक्ष थे। इनकी विद्वत्ता की प्रसिद्धि सुनकर ही तिब्बत के राजा ने इनको अपने यहाँ बुलाया था। जब ये तिब्बत पहुँचे, इनका स्वागत-सत्कार करने के लिये राज्य के कर्मचारी और सैनिक पक्ति बाँधकर खडे हुए थे। इनके पधारने पर उस दिन राज्य में दुन्दुभी बजाकर इनके आने की सूचना दी गई थी।

तिब्बत में इन्होंने बौद्धधर्म का प्रचार किया और राजा की आज्ञा से ईसवी-सन् ७४९ मे 'सये' नामक एक विहार (मठ) भी स्थापित किया। उदन्तपुरी के विहार की तरह यह भी एक आदर्श विद्या-तीर्थ था। इसके आचार्य पद पर सन्तरक्षित ही आसीन थे। तेरह वर्ष कार्य करने के उपरान्त, सन् ७६२ मे, ये निर्वाण को प्राप्त हुए। ये भी 'बोधिसत्त्वविदु' के नाम से प्रख्यात हैं। इन्होंने दो ग्रन्थ लिखे हैं—(१) वेद-न्याय-वृत्ति विपान सीतार्थ, (२) तत्त्व-समगुह कारिका।

[६] पद्मसंभव

तिब्बत के राजा 'खी-सरोन-डा-स्तान' ने अपने धर्मगुरु सन्तरक्षित की सलाह से एक धुरन्धर पडित को नालन्दा से बुलाया था। यह पडित पद्मसभव ही थे। तिब्बती साहित्य का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि ये काश्मीर के इन्द्रबुद्धि नामक राजा के कुँवर थे। इनका विवाह लाहौर वासिनी कुमारदेवी नामक कन्या से हुआ था।

पद्मसभव भी नालन्दा-विद्यापीठ के ही स्नातक थे। जिस समय तिब्बत से इनके पास निमत्रण आया, उस समय ये नालन्दा के तान्त्रिकवादी विभाग के मुख्य कार्यकर्त्ता थे। सन् ७४७ ई० मे इन्होंने तिब्बत को प्रयाण किया।

तिब्बत में राजा और प्रजा दोनों ने ही इनका खूब सत्कार किया। ये भी तिब्बत पहुँचकर 'सये' मठ की व्यवस्था के कार्य मे आचार्य सतरक्षित की सहायता करने लगे। इन्होंने ही तिब्बत मे 'तान्त्रिकवाद' का प्रारभ किया। उस समय नालन्दा और विक्रमशिला, दोनों ही विद्यापीठ, तान्त्रिक बौद्धधर्म के केन्द्रस्थल थे। तान्त्रिकवाद के मिल जाने पर बौद्धधर्म ने एक नवीन रूप धारण किया। तिब्बत में इसी तान्त्रिकवाद के कारण 'लामा पथ' की नींव पड़ी।

तिब्बत मे चीनी भिक्षुओं और भारतीय भिक्षुओं मे प्राय परस्पर धार्मिक वाद-विवाद हो जाया करते थे। एक बार की बात है कि महायान 'हवाशाङ्' नामक

चीनी भिक्षु ने आचार्य सन्तरक्षित और पद्मसंभव का विरोध किया। इस समय पंडित कमलशील तिब्बत में ही विद्यमान थे। ह्वाशाङ्ग का कमलशील से शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें ह्वाशाङ्ग परास्त हुआ और उसको चीन की ओर लौटना पड़ा।

पद्मसंभव तान्त्रिकवाद-संस्थापक के रूप में पूजे जाते हैं। इनके दायें हाथ में वज्र, बायें में मनुष्य की खोपड़ी और इनके दोनों ओर मांस तथा मदिरा अर्पित करती हुई दो पत्नियाँ खड़ी रहती हैं। इनकी मूर्त्ति तान्त्रिकवाद के सिद्धान्तानुसार सजाई जाती है। इन्होंने 'साम्य पन् कासीक' नामक पुस्तक बनाई है, जिसका अनुवाद भिक्षु आनंदभद्र ने किया है।

[७] कमलशील

कमलशील भी तान्त्रिकवाद के बड़े प्रकांड पंडित थे। इनको भी तिब्बत के राजा ने अपने यहाँ निमंत्रित किया था। नालंदा के प्रख्यात अध्यापकों में से एक ये भी थे। ये सन्तरक्षित और पद्मसंभव के समकालीन थे (सन् ७२८—७६६)। विद्यापीठ में इनका खास अध्यापन-विषय तान्त्रिकवाद ही था। इन्होंने एक चीनी पंडित को वादविवाद में हराया था। इन्होंने पाँच पुस्तकों का प्रणयन किया है—(१) आर्य-सप्त सतीक प्रज्ञा पारामित टीका, (२) आर्य वज्र कचदिक प्रज्ञा पारामित टीका, (३) प्रज्ञा पारामित-हृदमय नाम-टीका, (४) न्याय विन्दु पूर्वोपर-समसीनत्य, और (५) तत्त्व संग्रह।

[८] स्थिरमति

यात्री ह्युनसाँग लिखता है कि स्थिरमति नालंदा में विद्यार्थी थे। पीछे इनको उपाध्याय और फिर आचार्य का पद भी प्राप्त हुआ। इत्सिंग का कहना है कि ये वल्लभीपुर (सौराष्ट्र) के रहनेवाले थे। इन्होंने अपने गुरु द्वारा शुरू किये हुए 'वत्नमाला स्तुति' नामक ग्रन्थ का भाषान्तर पूर्ण किया। ये प्रख्यात व्याकरणवेत्ता थे। संस्कृत भाषा के अनेक ग्रन्थों का इन्होंने तिब्बती भाषा में अनुवाद किया है। साकुन व्याकरण की कलाप शाखा के पुरस्कर्त्ता ये ही हैं।

तिब्बती ग्रन्थों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि ये नालंदा में 'तारा भट्टारीक'-(अर्थात शास्त्रों के केन्द्र) विभाग में काम करते थे। यहाँ इन्होंने पुंडरीक रचित 'आर्य मंजुश्री नाम-संगीत-टीका' नामक पुस्तक का अनुवाद किया। इन्होंने आठ स्वतंत्र पुस्तकें भी लिखी हैं। तिब्बत में बौद्धधर्म के प्रचार के लिये इन्होंने बहुत प्रयत्न किया।

[९] बुद्धकीर्त्ति

ये नालन्दा के एक भिक्षु थे। इन्होंने मगध के महापंडित अभयङ्करगुप्त-कृत तांत्रिक पुस्तकों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया है। विक्रमशिला के महापंडित अभयङ्कर गुप्त के ये सहपाठी थे। अभयङ्कर गुप्त को 'वज्र-यानापत्ति-मंजरी' नामक पुस्तक लिखने में इन्होंने बहुत सहायता दी थी। इनका समय बारहवीं शताब्दी का प्रारंभिक काल है।

[१०] कुमारश्री

ये भी नालंदा में ही रहा करते थे। इन्होंने संस्कृत भाषा में बौद्धधर्म-विषयक ग्रन्थ लिखे हैं, उनका तिब्बती भाषा में अनुवाद हुआ था।

[११] कर्णपति

इनको नालंदा से 'उपाध्याय' और 'पंडित' की पदवियाँ मिली थीं। ये वहाँ तिब्बती भाषा के अध्यापक थे। इन्होंने 'महायान-लक्षण समुदाय' नामक ग्रन्थ का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया है।

[१२—१३] कर्णश्री और सूर्यध्वज

ये दोनों भिक्षु भी नालंदा-विद्यापीठ में काम करते थे। इन्होंने आचार्य 'बुद्धाज्ञानपाद' के बनाये हुए संस्कृत ग्रन्थों का भाषान्तर किया है।

[१४] सुमतिसेन

आप नालंदा में बहुत समय तक रहे थे। आपने संस्कृत भाषा में 'कर्म सिद्ध टीका' नामक पुस्तक लिखी है, जिसका तिब्बती-अनुवाद भारतीय भिक्षु विशुद्धसिंह ने किया है।

इन सबके अतिरिक्त भी नालन्दा में बहुतेरे प्रसिद्ध पंडित थे। नालन्दा विद्वत्ता का गढ़ था। वहाँ के पंडितप्रवर कीर्त्ति और ज्ञान-गरिमा के सच्चे धनी थे।

संस्कृतकाव्यों में विहार की चर्चा

श्रीबदरीनाथ झा, गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, मुजफ्फरपुर

वर्तमान 'विहार-प्रदेश'—जो प्राचीन अग, मगध, मिथिला और करूप नामक देशों के सम्मिश्रण से बना हुआ है—प्राचीन संस्कृत साहित्य में, विशेषत संस्कृत-काव्यों में, बहुत छानबीन करने पर भी, नहीं पाया जाता है। हाँ, 'विहार' शब्द बौद्धकाल में, बौद्धमतानुयायियों के देवालय अर्थ मे, व्यवहृत होने लगा था, जो निम्नाङ्कित उद्धरणों से स्पष्ट है—

"विहारो भ्रमणे स्कन्धे लीलायां सुगतालये।" (मेदिनीकोश)

"चमूचरास्तस्य नृपस्य सादिनो जिनोक्तिषु श्राद्धतयेव सैन्धवाः।
विहारदेशं तमवाप्य मण्डलीमकारयन् भूरि तुरङ्गमानपि॥"
(नैषधीय चरित, १ सर्ग)

"ततो मुनिस्तं प्रियमाल्यहारं वसन्तमासेन रतामिहारम्।
निनाय भग्नप्रमदाविहारं विद्याविहाराभिमतं विहारम्॥"
(सौन्दरनन्द, ५ सर्ग)

यह प्रदेश, बुद्धदेव का लीलास्थल होने के कारण, बौद्धमन्दिरों से परिपूर्ण रहा होगा। इसीलिये इसका नाम 'विहार' पड़ा। इस आधुनिकता को देखकर संस्कृतकवियों ने प्राय इस संज्ञा की उपेक्षा की है। फिर भी इस प्रदेश के अवान्तर जिन देशों तथा स्थानों की चर्चा संस्कृत-काव्यों मे मिलती है, उसीके आधार पर इस अल्पकाय लेख की कल्पना की गई है।

सर्वप्रथम महर्षि वाल्मीकि ने 'आदिकाव्य' में कामाश्रम और अग देश के विषय मे लिखा है—

"अशरीर कृत काम क्रोधाद्देवेश्वरेण ह।
अनङ्ग इतिविख्यातस्तदाप्रभृति राघव'॥

"तत शमविहारस्य मुनेरिक्ष्वाकुचन्द्रमा ।
अराडस्याश्रम भेजे वपुषा पूजयन्निव ॥
"ततो हित्वाऽऽश्रम तस्य श्रेयोऽर्थी कृतनिश्चय ।
भेजे गयस्य राजर्षेनगरीसञ्ज्ञमाश्रमम् ॥"
"स्नानो नेरञ्जनातीरादुत्ततार शनै कृश ।
भक्त्याऽऽनतशाखाऽग्रैर्दत्तहस्तस्तटद्रुमै ॥" (१२ स०)

"जाह्नवीमुत्तरञ्छीघन काश्यपस्याश्रम चोरुबिल्वाभिधान गयाया ययौ।"
"धर्मसञ्ज्ञाटवीसंस्थितान् ससप्तशताश्तास्तापसान् निर्वृतान सव्यधाच्छीघन ।"
"राजगेहाभिधे पत्तने बिम्बिसार नृप बुद्धिसाराग्रजन्मानुमेयं विभुम् ।" (१५ स०)

"व्यवसायद्वितीयोऽथ शाद्वलास्तीर्णभूतलम् ।"
सोऽश्वत्थमूल प्रययौ बोधाय कृतनिश्चयः ॥" (१२ सर्ग)

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि भार्गव च्यवन ऋषि का आश्रम गया से पूर्वोत्तर दिशा में, 'गुरुपा' रेलवे स्टेशन के समीप, 'निमि' ग्राम मे है। राजगृह (राजगेह), गया और धर्मारण्य आज भी प्रसिद्ध हैं। अराडाश्रम, नैरञ्जना नदी और काश्यपाश्रम का पता नहीं है कि इस समय किस नाम से प्रख्यात हैं। अश्वत्थवृक्ष बोधगया मे था। इसके अतिरिक्त उसी के आसपास मे क्षीरिरावन, नारदग्राम, कोवलग्राम, वेणुवन और न्यग्रोधवन का भी उल्लेख है, परन्तु प्राकृतिक परिवर्त्तन के कारण और प्राञ्जल इतिहास के अभाव मे सम्प्रति मगध देश में उसका परिचय प्राय किसीको नहीं है।

फिर उन्हीं के 'सौन्दरनन्द' महाकाव्य मे भी अराडाश्रम, उद्रकाश्रम, गया तथा गिरिव्रज की चर्चा यों की गई है—

"अथ मोक्षवादिनमराडमुपशममतिं तथोद्रकम् ।
तत्त्वकृतमतिरुपास्य जहावयमप्यमार्ग इतिमार्गकोविदः ॥"
"स विनीय काशिषु गयेषु बहुदिनमथो गिरिव्रजे ।
पित्र्यमपि परमकारुणिको नगरं ययावनुजिघृक्षया तदा ॥" (३ सर्ग)

इस समय उद्रकाश्रम भी लुप्त है।

मगध देश का उपादान 'नैषधीय चरित' महाकाव्य मे भी देखा जाता है—

"तथाऽधिकुर्या रुचिरे चिरेप्सिता यथोत्सुक सम्मति सम्प्रतीच्छति ।
अपाङ्गरङ्गस्थललास्यलम्पटा कटाक्षधारास्तव कीकटाधिप ॥" (१२ स०)

इस श्लोक मे जो 'कीकट' शब्द है, वह 'मगध' देश का ही नामान्तर है।

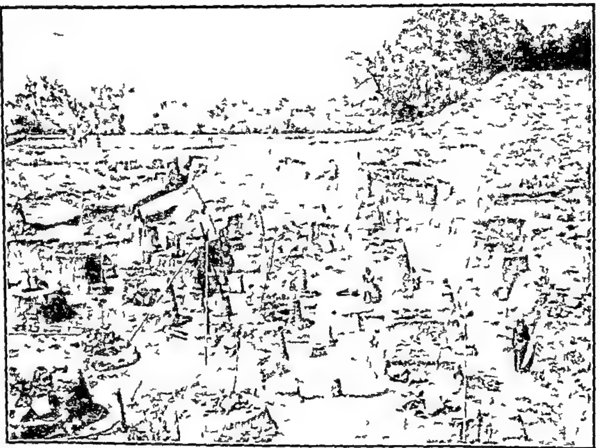

कुम्हरार (पटना) में खुदाई के बाद पाया गया ईसा से तीन शताब्दी पहले का, मौर्यकालीन पाटलीपुत्र का, ध्वसावशेष। इन गोल दूहों पर पहले स्तम्भ खड़े थे जो विशाल सभा मंडप की छत को धारण किये हुए थे। इन गोल दूहों में राख भरी थी, जिससे समझा गया कि आग के द्वारा इस विशाल भवन का नाश हुआ।

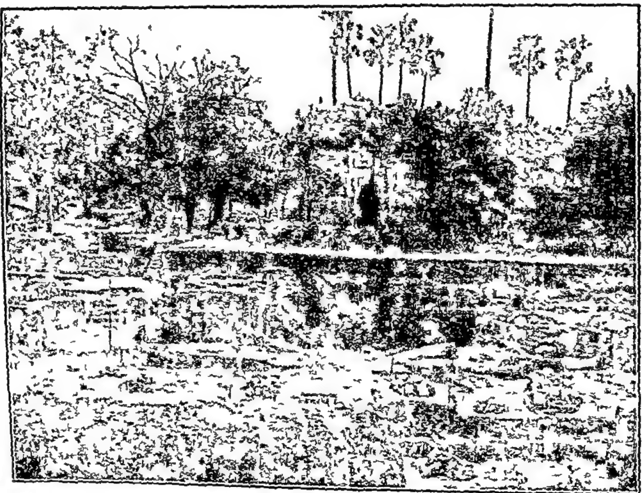

कुम्हरार (पटना) की खुदाई का साधारण दृश्य । बीच में एक पत्थर का स्तम्भ, जो गोल और बहुत चिकना है और जिसकी लम्बाई [illegible]

गङ्गा-गण्डकी-सङ्गम से पश्चिम, सुप्रसिद्ध 'सोनपुर' रेलवे-स्टेशन के निकट, 'हरिहरक्षेत्र' का उल्लेख 'भृङ्गदूत' में मिलता है—

"लोके प्राप्य ननु हरिहरक्षेत्रमीया दर्शनेन।"

अब, मिथिला की चर्चा 'आदिकाव्य' में देखिये—

"स भोऽपि परमां पूजां गौतमस्य महात्मनः ।
सकाशाद्विधिवत् प्राप्य जगाम मिथिलां ततः ॥"

(बालकांड, ४८ सर्ग)

'अनर्घराघव' में मिथिला का नाम इस प्रकार लिया गया है—

"वत्स ! शृणोषि विदेहेषु मिथिला नाम नगरीम्।" (२ अंक)

पीयूषवर्ष जयदेव ने 'प्रसन्नराघव' नाटक में मिथिला का उल्लेख यों किया है—

"तदिह मिथिलायां पञ्चरात्रनिवासेन श्रमोऽपनेतव्यः ।
प्रसङ्गादयं च राजा जनको द्रष्टव्यः ॥" (१ अङ्क)

'रघुवंश' महाकाव्य में भी मिथिला की चर्चा है—

"स न्यमन्त्रयत सम्भृतक्रतुर्मैथिलः स मिथिलां व्रजन्वशी ।
राघवावपि निनाय बिभ्रतौ तद्धनुःश्रवणजं कुतूहलम् ॥" (११ सर्ग)

'नैषधीय चरित' में भी मिथिला का उपादान मिलता है—

"कुल इवैव वरलोकमागतं प्रतिप्रतिज्ञाऽनवलोकनायते ।
अपीयमेनं मिथिलापुरन्दरं निपीयदृष्टिः शिथिलाऽस्तु त वरम् ॥"

(१२ सर्ग)

'रामायण-चम्पू' में भी मिथिला का निर्देश किया गया है—

"अथ मिथिलां प्रतिप्रस्थितः कौशिकस्तमित्थमकथयत्।" (बालकांड)

'दशकुमारचरित' में भी मिथिला का उल्लेख पाया जाता है—

"एषोऽहमस्मि पर्यटन्नेकदा गतो विदेहेषु मिथिलामप्रविश्यैव बहिः क्वचिन्मठिकायां विश्रमितुमवास्थिषि ॥"

(उत्तरपीठिका, ३ उच्छ्वास)

इन स्थलों में 'मिथिला' शब्द से महाराज जनक की केवल राजधानी समझी जाती है, किन्तु मिथिला शब्द 'तीरभुक्ति' और 'विदेह' नाम से प्रख्यात देश का भी बोधक अवश्य है। अतएव मैथिल, मैथिली आदि व्यवहार प्रचुर रूप से

प्रचलित है, और इसीके आधार पर रघुवीर कवि ने 'लक्ष्मीश्वरोपायन' में ऐसा ही प्रयोग किया है—

"देशाः सन्तु सहस्रशोऽपि मम तु स्वाभाविकप्रीतये,
श्रेयान् देशविशेष एष मिथिलानामा क्षमामण्डले।"

कथासरित्सागर' में 'वैदेह' शब्द से मिथिला का उपादान किया गया है—

"ददौ वैदेहदेशे च राज्यं गोपालकाय सः।
सत्कारहेतोर्नृपतिः श्वशुर्यायानुगच्छते॥"

(३ लम्बक, ५ तरङ्ग)

'भृङ्गदूत' में 'तीरभुक्ति' शब्द मिथिला देश का ही नामान्तर मानकर व्यवहृत है—

"गङ्गातीरावधिरधिगता यद्भुवो भृङ्ग भुक्ति
र्नाम्ना सैव त्रिभुवनतले विश्रुता तीरभुक्तिः।"

मैंने भी अपने 'गुणेश्वरचरितचम्पू' में इसी अर्थ में मिथिला शब्द का प्रयोग किया है—

'अस्ति स्वस्तिसमस्तभूमिवलयश्रेयःप्रशस्तिश्रुता,
प्रत्यर्थिक्ष्मयमन्थनाप्तमिथिलानामाऽभिरामाकृतिः।
प्रेक्षाशालिनिपश्चिदालिललितोत्सङ्गाऽभिपङ्कार्दिनी,
नीवृद्वृन्दमचर्चिकाऽर्चितपश्रीःतीरभुक्तिः सदा॥
आलिभ्यामिव पार्श्वयोः कुशिकजा नारायणीभ्यां श्रिता,
रिङ्गत्तुङ्गतरङ्गबाहुभिरलं याऽऽलिङ्गिता गङ्गया।
कामं कण्टकिनोजडस्य वहतः स्वेदं झरच्छद्मना,
क्रोडे क्रीडति पीड्यमाननिविडव्रीडा मृडानीपितुः॥'

'आदिकाव्य' में मिथिलान्तर्गत 'विशाला' नगरी की चर्चा मिलती है—

"गङ्गातीरे निविष्टास्ते विशालां ददृशुः पुरीम्।"

(बा० का०, ४४ स०)

"इक्ष्वाकोस्तु नरव्याघ्र पुत्रः परमधार्मिकः।
अलम्बुसायामुत्पन्नो विशाल इति विश्रुतः॥
तेन चासीदिहस्थाने विशालेति पुरी कृता।"

(बा० का०, ४७ स०)

'रामायण चम्पू' मे भी इस नगरी का नामोल्लेख पाया जाता है—

"अथ दाशरथिराकर्णितभागीरथीकथस्ता सरित
विलङ्घ्य विशाला विलोक्य × × × अपृच्छत् ।" (बा० का०)

फिर 'भृङ्गदूत' मे भी 'विशाला' नगरी का उपादान है—

"सद्यस्तस्माद्द्रुतमनुसरेस्त्वं विशालापथेन ।"

यह 'विशाला' नगरी, मुजफ्फरपुर नगर से दक्षिण पश्चिम कोण में सात कोस की दूरी पर 'बनिया बसाढ' नाम से आज भी प्रख्यात है। बौद्धकाल में यही 'वैशाली' नाम से प्रसिद्ध थी। भारत के इतिहास में प्रसिद्ध लिच्छिविवंश की, बहुत दिनों तक, यह राजधानी रह चुकी है।

यद्यपि 'विशाला' नाम की नगरी का वर्णन 'मेघदूत' मे भी किया गया है, तथापि देशभेद के कारण उससे यह भिन्न है। इसी विशाला के आधार पर आज भी वह परगना 'विसारा' कहा जाता है।

कुशाप्लव की चर्चा करनेवाले आदिकवि ने रामायण' में कहा है—

'कुशाप्लव समासाद्य तपस्तेपे सुदारुणम् ।' (बा० का०, ४६ स०)

इस कुशाप्लव वन के सम्बन्ध मे 'चम्पूरामायण' का भी अधोलिखित उल्लेख है—

"तेषां जननी दिति × × × शतमन्युशासन पुत्रं लब्धुकामा
पत्युर्मारीचस्यवचना कुशाप्लवे सुचिर तपश्चचार ।" (बा० का०)

यह कुशाप्लव नाम का तपोवन विशाला नगरी के निकट पूर्वदिशा मे वर्त्तमान था। सम्प्रति कालचक्र की प्रबलता से लुप्त हो गया है।

'भृङ्गदूत' काव्य में 'भैरवस्थान' का प्रसङ्ग इस प्रकार चलाया गया है—

"रम्यं धाम त्रिभुवनपतेर्भैरवस्याभ्युपेयाः ।"

यह स्थान मुजफ्फरपुर से दस कोस की दूरी पर, राजखण्डग्राम में, इस समय भी वर्त्तमान है।

उसी 'भृङ्गदूत' में गाडीवेश्वर स्थान, ब्रह्मपुर, वाग्वती तथा कमला नदी का भी उपादान यों मिलता है—

"गच्छन्गच्छाञ्जननिभपुरो भृङ्ग तस्या नमस्य,
विष्णुब्रह्मत्रिदशपतिभिर्वन्दितेशं महेशम् ।"
"तस्यादूरे त्रिभुवनपतेर्लोकनेत्राभिरामा,
वन्द्यो धीरत्वजनियसतिर्ब्रह्मपूर्वा पुरी'सा ।"

"यत्सान्निध्ये प्रवहति सदा वाग्वतीनाम सिन्धुः।"
"सा गम्भीरा सपदि कमलालोचनस्यातिथि स्यात्।"

'गाडीवेश्वर महादेव' राजा जनक के दक्षिण द्वारपाल थे, जो इस समय भी दरभगा जिले के 'जोगियारा' रेलवेस्टेशन के समीप, शिवनगर ग्राम में विराज मान हैं। 'ब्रह्मपुर' भी इसी जिले मे, गौतमकुड से पश्चिम, रत्नपुर के निकट, आज भी उसी नाम से, प्रसिद्ध है। 'वाग्वती' नदी दरभगा होकर बहती है। 'कमला' नदी दरभङ्गा से दो कोस पूरब गौसाघाट होकर वहती है।

'कमला' नदी का वर्णन 'गुणेश्वरचरितचम्पू' मे भी किया गया है—

'पीयूषाभपयस्सिता कृशतनुर्दीर्घायिता पावनी,
यस्या मध्यमलङ्करोति कमला यज्ञोपवीताकृति'।"

दरभगा जिले के गौतमाश्रम अहल्या स्थान का उल्लेख 'आदिकाव्य' मे इस प्रकार है—

"गौतमस्य नरश्रेष्ठ पूर्वमासीन्महात्मनः।
आश्रमो दिव्यसकाश सुरैरपि सुपूजित ॥"
"गौतमोऽपि महातेजा अहल्यासहित सुखी।
रामं सम्पूज्य विधिवत् तपस्तेपे महातपा ॥"

(बालकाड, ४८ सर्ग)

'रामायण चम्पू' मे भी इसकी चर्चा पाई जाती है—

"तस्मिन्नहल्यया गौतमेन च कृतमातिथ्य विश्वामित्र सराजपुत्र प्रतिगृह्य मिथिलोपकण्ठभुवि जनकयजनभवनमभजत।" (बा० का०)

'कमतौल' रेलवेस्टेशन से दक्षिण पश्चिम कोण मे एक कोस दूर गौतमाश्रम था। आज भी 'अहियारी' गाँव मे अहल्यास्थान औ। उससे आध कोस की दूरी पर गौतमकुड वर्त्तमान है।

एव 'कोटीश्वर शिवस्थान' और 'सरिसव' ग्राम का वर्णन 'भृङ्गदूत' में मिलता है—

"स्फीताकार वहलसुधया धाम कोटीश्वरस्य।"
"शोभाशालि प्रिय! सरिसवग्रामरत्न परीया।"

कोटीश्वर शिव का स्थान दरभगा जिले के 'सकरी' रेलवेस्टेशन से एव कोस पूरब 'बलिया' गाँव में 'भैरवस्थान' के नाम से प्रसिद्ध है। और, 'सरिसव'

प्राचीन पाटलिपुत्र के खँडहर की खुदाई (कुम्हरार, पटना)

पत्थर की बनी हुई, आसनबद्ध बुद्धदेव की, प्राचीन मूर्ति (अरादाशपुर, पटना)

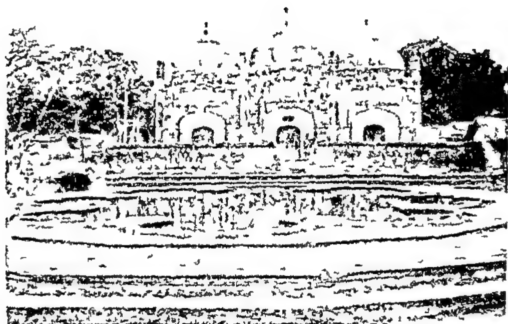

पटना सिटी की, मीर अशरफ की, मसजिद

मुसलमानों के प्रसिद्ध तीर्थस्थान फुल्वारीशरीफ (पटना) की संगीमसजिद जिसमें, कहा जाता है हजरत मुहम्मद साहब की दाढ़ी का एक बाल स्मारक-स्वरूप रक्खा गया है।

ग्राम पूर्वकाल में स्वनामधन्य महामहोपाध्याय भवनाथ मिश्र प्रभृति विद्वानों से तथा सम्प्रति महामहोपाध्याय डाक्टर श्रीगङ्गानाथ झा आदि पंडितों से विभूषित रहने के कारण सर्वथा प्रसिद्ध है।

अन्त में सहृदय पाठक-वृन्द से यही प्रार्थना है कि 'बह्वपि स्वेच्छया काम प्रकीर्णमभिधीयते, अनुज्झितार्थसम्बन्ध प्रबन्धो दुरुदाहर '—इस सूक्ति का अनुस्मरण करते हुए मेरी त्रुटियों का सम्मार्जन करने की कृपा करें।

विहार का ऐतिहासिक महत्त्व

अध्यापक श्रीकृष्णचन्द्र मिश्र, बी० ए० (ऑनर्स), जिलास्कूल, मुँगेर

"Indeed Magadha saw the climax reached in Indian history Magadha occupies that place in Indian history which Athens occupies in the history of Greece, and Wessex in the history of England "* —Pierre de Maillot

जराजर्जर व्यक्ति की युवावस्था की, भूलुठित एव पददलित पँखुरियों से उस पुष्प के पूर्व सौन्दर्य की, राख की राशि से भस्मीभूत वस्तु के पूर्व रूप की, ढूह और अस्तव्यस्त ईंटों से किसी भवन की भव्यता की यथार्थ कल्पना जितना दुष्कर है, उससे भी अधिक दुस्साध्य है भग्नावशेषाच्छादित आधुनिक बिहार को देखकर इसके ऐतिहासिक गौरव का सच्चा एव पूर्ण चित्र अकित करना। किन्तु प्राचीनता, विस्मृति, दारिद्रय और ऐतिहासिक उदासीनता के आवरण से आवृत रहने पर भी बिहार का ऐतिहासिक महत्त्व सर्वत्र अपनी किरणे बिखेर ही देता है। गहनतम श्याम नीरद से आच्छादित रहने पर भी प्रभाकर अपनी प्रभा द्वारा पृथ्वी को प्रकाश प्रदान करते ही हैं।

भारत में नव प्रस्तर युग के प्रवर्त्तक तथा मृत्तिका-पात्र के आदिस्रष्टा आदि-भाषा भाषियों के भिन्न-भिन्न दलों को अपनी गोद में आश्रय देनेवाली† और 'बक्सर'-स्थित कैलकोलिथिक (chalcolithic) युग की नगरी के भग्नावशेषों द्वारा ईसवी पूर्व तृतीय सहस्राब्द या प्राक् आर्य-काल की सभ्यता की ओर सकेत करनेवाली ‡

* Pierre de Maillot's—Aryan Advancement into Magadha—"A peep into Ancient Bihar "

† R K Mukherji's "Hindu Civilisation"—P 34

‡ Dr A Banerji Shastri's "Indian Science Congress Handbook to Patna, 1933",PP —19—23,

बिहार भूमि का अति प्राचीनकाल का ऐतिहासिक गौरव तबतक अज्ञात-सा ही रहेगा जबतक बिहार अवस्थित भूगर्भ से किसी 'महेंजोदड़ो' या 'हरप्पा' का उदय नहीं होता है।

वैदिक युग के बिहार का रूप भी विशेष स्पष्ट नहीं है। 'शतपथ ब्राह्मण' में उल्लिखित माथव और उनके पुरोहित गौतम राहूगण का जाज्वल्यमान वैश्वानर प्रज्वलित हुताशन का अनुसरण करते हुए सदानीरा नदी (गंडक) तक आकर बस जाना एक सच्ची घटना है। प्राचीनता की दृष्टि से वेद के बाद 'ब्राह्मण' का ही स्थान है। फिर भी ऋग्वेद में उल्लिखित राहूगण और शतपथ ब्राह्मण मे उल्लिखित राहूगण यदि एक ही व्यक्ति हों तो ऋग्वेद-काल मे ही आर्यों का बिहार के अन्तर्गत मिथिला मे बस जाना निर्विवाद सत्य माना जा सकता है*। पुनश्च वैदिक ग्रन्थों में मगध और अंग के प्रति जिस घृणा भाव का प्रदर्शन किया गया है उससे ऐसा कुछ बोध होता है कि या तो मगध और अंग की सभ्यता इतनी विकसित थी कि आर्यों की वहाँ कोई दाल नहीं गलती थी, या उन प्रान्तों मे कुछ ऐसे निर्भीक अग्रगामी आर्य आ बसे थे जिनकी प्रगतिशीलता से अन्यान्य आर्यों को चिढ़ थी—ईर्ष्या थी। महान् व्यक्तियों के ईर्ष्यापात्र भी महान् ही होते हैं। तो, क्या अंग तथा मगध अपनी सांस्कृतिक महत्ता के कारण ही सभ्य आर्यों के ईर्ष्यापात्र थे ?

वेदकालीन बिहार से महाकाव्य-युग का बिहार (१४०० ई० पू० से १००० ई० पू०) अधिक स्पष्ट हो उठता है—अधिक प्रकाशमान भी। रामायण कालीन बिहार के सामने सम्पूर्ण भारत नतमस्तक हो जाता है। इसी युग में वरसों या सदियों के अनवरत परिश्रम के फलस्वरूप मिथिला को आर्यभारत का सर्वप्रमुख राज्य होने का श्रेय प्राप्त हुआ। उस युग के भारत के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति राजर्षि जनक मिथिला ही के राजा थे†। इनकी ख्याति भारत के कोने-कोने में फैली हुई थी। विद्या और ज्ञान की प्रधान केन्द्र स्थली जनक की मिथिला सर्वत्र पूजित होती थी। दूर दूर से विद्वानों को अपनी ओर आकृष्ट करनेवाली मिथिला बिहार ही की स्वनामधन्या सुता थी।‡

* Rai Bahadur Shyamnarain Singh's "History of Tirhut"—footnote in page 8

† R C Dutta's "Civilisation in Ancient India" Vol I PP. 132-33

‡ श्रीदेवीभागवत, स्कंध १, अध्याय १६ (श्रीशुकदेवस्य मिथिलागमनम्), शुकं प्रति व्यासवचनम्, श्लोक संख्या ४५, ४६, ४७, ४८।

महाभारत-युग में भी कुछ दिनों तक सम्पूर्ण भारत विहार की अद्वितीय राजनीतिक शक्ति का लोहा मानता रहा। तत्कालीन शीर्षस्थानीय योद्धाओं में अंग के राजा कर्ण भी एक थे। इनकी शक्ति पर दुर्योधन को बड़ा गर्व था। पाण्डवों को भी इनका भय था। दानवीरता में भी इनकी तुलना न थी। आज भी कर्ण की भुजशक्ति और दानशीलता का स्मरण कर हिन्दूभारत पुलकित हो उठता है।

यदि कर्ण की वदान्यता का सम्पूर्ण भारत ऋणी था, तो नतमस्तक था सम्पूर्ण भारत मगध-सम्राट् जरासंध की राजशक्ति के सामने। पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष और युद्ध से जर्जरीभूत, शतशः खंडों में विभक्त, भारत को 'एकच्छत्र' के नीचे लाने का प्रथम—और कुछ काल के लिये सफल—प्रयास करनेवाले सम्राट् जरासन्ध * बिहार के ही वीर पुत्र थे। यदि यह कहा जाय कि युधिष्ठिर की छत्रच्छाया में अखिलभारतीय साम्राज्य की स्थापना के लिये योगेश्वर श्रीकृष्ण जरासन्ध के ऋणी † थे, तो कोई अत्युक्ति न होगी।

यह तो हुआ पूर्व-ऐतिहासिक युग के बिहार का राजकीय महत्त्व। ऐतिहासिक युग ‡ के बिहार का स्मरण आते ही याद आ जाती हैं 'दिनकर' की ये पंक्तियाँ—

"जगती पर छाया करती थी
कभी हमारी भुजा विशाल
बार-बार झुकते थे पद पर
ग्रीक, यवन के उन्नत भाल" +

वस्तुतः ज्यों-ज्यों भारत का इतिहास अधिक प्रकाश में आने लगता है, त्यों-त्यों बिहार की राजकीय महत्ता भी विश्वविश्रुत होने लगती है। बिहार की ही वह प्रचंड सामरिक शक्ति थी जिसने यूनान की विश्वविजयिनी सेना को प्रकम्पित किया—त्रस्त किया—भारतविजय की आकांक्षा त्यागकर स्वदेश लौटने को बाध्य किया—विश्वविजयी सिकन्दर का भी मोह दूर किया।

यही नहीं, सिकन्दर द्वारा अधिकृत भारत को ग्रीकों के दासत्व-बन्धन

* "The Glories of Magadha" P 14

† चमूपति, एम० ए० रचित—"योगेश्वर कृष्ण"।

‡ भारतीय इतिहास का पूर्व ऐतिहासिक युग ईस्वी पूर्व छठी सदी से माना जाता है।

+ 'पाटलिपुत्र की गंगा' शीर्षक कविता से।

गृद्धकूट पर्वत (राजगृह), जिसकी गुफा में,
कितने ही उत्कृष्ट धार्मिक प्रवचन दिये थे।

...के साथ रहते थे और जिसके शिखर से
प्राप्त बुद्ध की मूर्तियाँ और छोटी

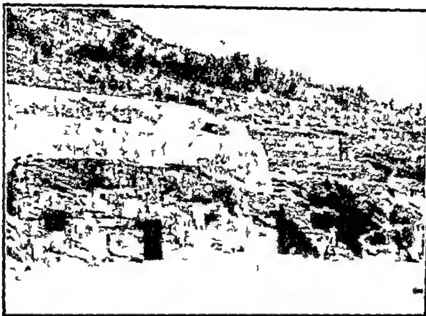

सोनभंडार - गुफा, राजगृह (पटना)। तीसरी या चौथी शताब्दी में, 'वैभार'-पर्वत के नीचे, आचार्य रत्न मुनि वैरदेव ने, तपस्वियों के निर्वाण लाभ के लिये, इस गुफा का निर्माण कराया। यह ३४ फीट लम्बी और १७ फीट चौड़ा है। इसकी बगल में एक और गुफा थी, जो अब नष्ट हो गई है।

सोनभंडार-गुफा का भीतरी दृश्य। दरवाज से भीतर घुसते ही एक लेख खुदा हुआ मिलता है, जिससे उपर्युक्त बातों का पता चलता है। इसके अन्दर की जैन-मूर्ति हाल की रक्खी हुई है।

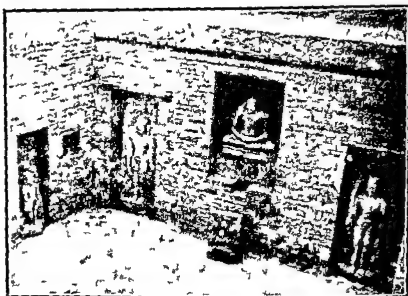

'वैभार' पर्वत (राजगृह) पर एक नष्टप्राय दिगम्बर जैन-मन्दिर की कुछ मूर्तियाँ।

से मुक्त करने का—विजयी सिकन्दर के सर्वश्रेष्ठ सेनापति सेल्यूकस को पूर्णरूप से पराजित करने का—श्रेय एक बिहारी युवक को ही है। यह युवक वही चन्द्रगुप्त मौर्य था, जिसका स्थापित किया हुआ साम्राज्य भारतवर्ष के शक्तिशाली तथा विस्तृत साम्राज्य का पहला दृष्टान्त * है।

अत सम्पूर्ण भारत को राजनीतिक एकता प्रदान करने का—सिकन्दर की मृत्यु के बाद शुरू होनेवाले भारतीय इतिहास के नव महान् युग की सबसे प्रमुख घटना को सम्पादित करने का—श्रेय बिहार को ही है। चन्द्रगुप्त-(मौर्य)-कालीन हिन्दू-साम्राज्य की शक्ति सुशासन द्वारा प्रदत्त धनजन सरक्षण की सुविधा, अखड शान्ति, सिंचाई और कृषि की उन्नतावस्था—एक ऐसा सुखद चित्र है, जिसका स्मरण प्रत्येक भारतीय यथार्थ गर्व के साथ कर सकता है।

छिन्न-भिन्न भारत को एक राजनीतिक सूत्र मे आबद्ध करनेवाले चन्द्रगुप्त (मौर्य) का पौत्र सम्राट् अशोक अपनी महत्ता के कारण भारतवर्ष के इतिहास मे ही नहीं—विश्व के इतिहास में भी अद्वितीय है। भारत मे आर्यों के आने के समय से लेकर आजतक भारतवर्ष मे कोई ऐसा सम्राट् नहीं हुआ जो अशोक की महत्ता की बराबरी कर सके। भारत के किसी भी सम्राट् को इस तरह की विश्व-व्यापिनी कीर्त्ति प्राप्त नहीं हो सकी, और न किसी ने इस तरह सत्य-सुख-प्रसार के अदम्य उत्साह द्वारा ससार के इतिहास पर इतना प्रभाव ही डाला है †। बिहार ही ने विश्व को अशोक के रूप मे एक मात्र ऐसा सम्राट् प्रदान किया है जिसने कलिंग-विजय के बाद लड़ाई छोड़ दी, विजयोल्लास की घड़ियों मे ही युद्ध के नर सहारक रूप के दर्शन किये, सैनिक वेश मे ही सन्यास के तत्त्व को समझा, विजयश्री के आलिङ्गन के समय ही रणविजय को ठुकराकर 'धम्म विजय' को अपनाया।

"इतिहास के पृष्ठ रँगनेवाले ससार के हजारों और लाखों सम्राटों, राज-राजेश्वरों, महाराजाधिराजों और श्रीमानों के नामों म केवल अशोक का नाम ही अतुलित प्रभा से देदीप्यमान है। 'वोल्गा' नदी से जापान तक आज भी उसी के नाम का आदर होता है। चीन, तिब्बत तथा भारतवर्ष ने भी उसकी महत्ता की परम्परा को स्थिर रक्खा है। कान्स्टेंटाइन या शार्लमैन के नाम जाननेवालों से अशोक के नाम को आदर के साथ स्मरण करनेवालों की सख्या आज भी कहीं अधिक है।"

* पडित जवाहरलाल नेहरू—'विश्व इतिहास की झलक'।

†R C Dutta's "Civilisation In Ancient India" Vol II, Bk. IV, P 2

ऐसे नृपश्रेष्ठ की जननी बिहार-भूमि के ऐतिहासिक महत्त्व की तुलना विश्व के किस भूखंड से की जाय ?

मौर्य-साम्राज्य का पतन हुआ (ई० पू० १८३), किन्तु बिहार का गौरव बहुलांश में अक्षुण्ण ही रहा। ऐतिहासिक युग में चक्रवर्त्तित्वसूचक अश्वमेध यज्ञ सर्वप्रथम बिहार-भूमि में ही बिहार के सम्राट् पुष्यमित्र (ई० पू० १८३—१७० ई० पू०) द्वारा सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। किसमें सामर्थ्य था जो प्रतापी पुष्यमित्र के अश्व को रोक रखते ? सम्पूर्ण पश्चिम भारत को विजित करती हुई यवन-राज मिनान्दर (Menandar) की विजय-वाहिनी बिहार साम्राज्य की सीमा पर आ उपस्थित हुई। किन्तु बिहार की सेना के सामने इसकी भी वही दशा हुई जो सदियों पूर्व सेल्यूकस की सेना की हुई थी। इस ग्रीक की भी बिहार विजय की अभिलाषा अपूर्ण ही रही। श्लाघ्य थी बिहार की वह सैनिक शक्ति।

केवल एकतंत्र शासन या साम्राज्य-संस्थापन के लिये ही नहीं, प्रत्युत गण-तंत्रशासन और संघशासन के लिये भी इतिहास में बिहार अमर रहेगा। प्रोफेसर मनोरंजनप्रसाद सिंह एम० ए० के शब्दों में—

"जब जग में थी राजतंत्र की घटा घिरी काली काली।
तब भी इस प्राचीन भूमि में प्रजातंत्र की थी लाली॥"*

वस्तुतः जनक शासित विदेह का एकतंत्र राज्य बुद्ध के समय एक प्रसिद्ध जनतंत्र राज्य गिना जाता था †। गणतंत्र-राष्ट्र वैशाली के लिच्छवियों को गणतंत्र प्रणाली के इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। फ्रांस के विद्रोहियों के समता-स्वतंत्रता भ्रातृत्व प्रचार के दो सहस्र वर्ष से भी पहले, समता-प्रचारक इस्लाम के उद्भव से सदियों पूर्व, ईसा के जन्मग्रहण से सैकड़ों वर्ष पहले और भगवान् बुद्ध की ज्ञान प्राप्ति से भी पहले से वैशाली की जनता स्वशासन का उपभोग करती थी। ‡

बुद्ध के समय में वैशाली के इस गणतंत्र राज्य की गणना शक्तिशाली राज्यों में होती थी। प्रजातंत्र को सफल बनानेवाली सब शक्तियों और गुणों से युक्त यह गणतंत्र राज्य परमज्ञानी बुद्ध से भी प्रशंसित हुआ था। इस प्रकार हम देखते

* वैशाली के आँगन में-शीर्षक कविता से।

† R K Mukherji's "Hindu Civilisation", Page 201

‡ वैशाली की शासन-प्रणाली के विशेष विवरण के लिये देखिये—

Dr K. P Jayaswal's "Hindu Polity"

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य

हैं कि उस सुदूर प्राचीन काल में भी बिहार के एक भाग पर, केवल जनता के कल्याण और देश की सुख समृद्धि के लिये, जनता द्वारा ही जनता का शासन होता था। शासन की यह पद्धति एकमात्र बिहार में ही स्थापित थी।

मौर्यों के पतन और गुप्तों के उदय के बीच का समय भारतीय इतिहास में 'अंधकार-युग' के नाम से प्रसिद्ध है। वास्तव में, मौर्यों के साम्राज्य सूर्य के अस्त होते ही भारत में सर्वत्र अन्धकार फैल गया—राजनीतिक एकता नष्ट हो गई—अनेक छोटे छोटे राज्यों का उदय हुआ—विदेशियों के भी आक्रमण जारी रहे। संक्षेप में, अन्धकार में जितने दुर्गुण पनप सकते हैं, पनप उठे। भारतीय साम्राज्य वाद की जननी बिहार भूमि के लिये यह दृश्य असह्य हो उठा। इसने स्वर्णाभ उषा का आह्वान किया। गणराष्ट्र वैशाली का दामन पकड़कर * चन्द्रगुप्त प्रथम गुप्तवंश की शक्ति, साम्राज्य एवं गौरव का संस्थापक हो सका।

अन्धकार दूर हुआ। बिहार में गुप्तसूर्य चमक उठा। बिहार का दिग्विजयी सम्राट् समुद्रगुप्त, भारत विजय के लिये—भारत को एक छत्रच्छाया के नीचे लाने के लिये—सम्पूर्ण भारत को एक राजनीतिक सूत्र में आबद्ध करने के लिये—पाटलिपुत्र से निकल पड़ा। कोसल, महाकान्तार, केरल आदि राज्यों को पराजित करनेवाला—रुद्रदेव, नागदत्त, चन्द्रवर्मन, गणपति नाग इत्यादि आर्यावर्त्त के अनेक राजाओं को राज्यच्युत करनेवाला—बंगाल, नैपाल, कामरूप कर्तृपुर, मालव इत्यादि राष्ट्रों और जातियों का 'कर' तथा सम्मान प्राप्त करनेवाला समुद्रगुप्त पाटलिपुत्र के ही सिंहासन को सुशोभित करता था। सम्पूर्ण भारत-राष्ट्र एक बार फिर बिहार के पादपद्मों पर नतमस्तक हुआ। इसीलिये तो कवि 'दिनकर' उत्सुकता पूर्वक 'पाटलिपुत्र की गंगा' से पूछ उठते हैं—

"तुझे याद है? चढ़े पदों पर
कितने जय-सुमनों के हार
कितनी बार समुद्रगुप्त ने
धोई है तुझमें तलवार
"तेरे तीरों पर दिग्विजयी
नृप के कितने उड़े निशान
कितने चक्रवर्त्तियों ने हैं
किये कूल पर अवभृथ-स्नान"

*गुप्तवंश के संस्थापक 'चन्द्रगुप्त प्रथम' का ब्याह वैशाली की 'कुमारदेवी' के साथ हुआ था। यही वैवाहिक सम्बन्ध था उसकी शक्ति की जड़ या मूल कारण।

गुप्त-साम्राज्य की राजधानी स्थानान्तरित हुई। पाटलिपुत्र पदच्युत हुआ। बिहार की राजकीय कीर्ति खो सी गई। सदियों की सुषुप्ति के बाद मुगल-काल में बिहार ने फिर एक अँगड़ाई ली। बिहारी वीर शेरशाह की तलवार के सामने मुगल-साम्राज्य की सेना न ठहर सकी। उसके रणकौशल के आगे मुगल सम्राट हुमायूँ को नीचा देखना पड़ा। एक छोटे जागीरदार का उपेक्षित पुत्र होने पर भी शेरशाह ने अपने भुजबल से दिल्ली का सिंहासन अधिकृत कर सम्पूर्ण उत्तर-भारत को अपनी छत्रच्छाया में ले लिया—केवल इसीलिये उसने ऐतिहासिक अमरता नहीं पाई है, बल्कि राज्य की सुव्यवस्था के लिये भी। शासन सौकर्य के लिये साम्राज्य का विभाजन, मुद्रा सुधार, वृक्षच्छाया-समन्वित राजपथों और कूपों तथा पान्थ-शालाओं का निर्माण, सैनिक अनुशासन, धार्मिक सहिष्णुता आदि गुणों के कारण भी शेरशाह भारत के श्रेष्ठ मुसलमान शासकों मे गिना जाता है। शासन-व्यवस्था मे महान् अकबर का पथप्रदर्शक होने का श्रेय उस महत्त्वाकाक्षी वीर शेरशाह* को ही है, जिसका जन्मस्थान बिहार है।

मुगल-काल में अपनी सामरिक स्थिति एव प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण बिहार के पूर्वाञ्चल में स्थित 'राजमहल' को बरसों बंगाल की राजधानी रहने का श्रेय प्राप्त हुआ। मुगल सेनानी मानसिंह तथा शाहजादा शुजा का निवासस्थान होने के कारण मुगल-काल मे 'राजमहल' को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ तो 'राजमहल' का इतिहास अभिन्न रूप से ग्रथित है। इतिहासप्रसिद्ध डाक्टर बाउटन बिहार के इसी जगल प्रान्त मे समाधिस्थ हैं। सक्षेप मे, अनेक वर्षों तक बगाल शासन सूत्र का सचालन करनेवाला 'राजमहल' बिहार ही की गोद में है।

पुनश्च, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अत्याचारों का प्रतिवाद करने का साहस मीरकासिम को, साम्राज्यवाद की जननी तथा गणतन्त्र की पोषिका बिहार-भूमि में ही, प्राप्त हो सका। सन १८५७ ई० के सैनिक विद्रोह के नायकों में प्रसिद्ध अमरसिंह और कुँअरसिंह बिहार ही के मस्त लाल थे। शत्रुओं की गोली लग जाने से अपनी भुजा को ही काटकर पुण्यसलिला गगा मे बहा देनेवाले रण बाँकुरा कुँअरसिंह ही आधुनिक बिहार के अन्तिम वीर थे। दक्षिण अफ्रिका के अँग्रेज-बोअर-युद्ध में अपनी अपूर्व बहादुरी से अँगरेजों और बोअरों को चकित-स्तम्भित करके

* V A Smith's 'History of India',

राजमहल (संतालपरगना) का 'संगी दालान', जिसे सम्राट शाहजहाँ के द्वितीय पुत्र शाहजादा शुजा ने सन् १६५० ई० के लगभग बनवाया था। गंगा के किनारे यह इमारत बड़ी ही खूबसूरत, खुली और हवादार है। कोई-कोई इसे राजा मानसिंह का बनवाया हुआ भी मानते हैं।

राजमहल (संतालपरगना) के निकट हदफ की जामी मसजिद, जो रचना कौशल की दृष्टि से बिहार प्रान्त की बड़ी-बड़ी मसजिदों से भी बढ़ीचढ़ी है। इस मसजिद को राजा मानसिंह ने बनवाया था। (पृष्ठ ९५, २४८)

१—२ हजारीबाग के श्वेताम्बर जैन-मन्दिर के दो दृश्य।
३—'मधुवन' (हजारीबाग) की एक झांकी।
४—दिगम्बर-जैन मंदिर, पारसनाथ (हजारीबाग)

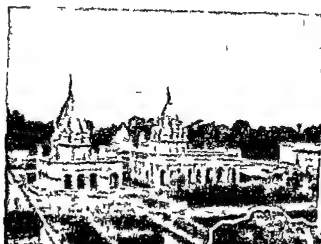

१

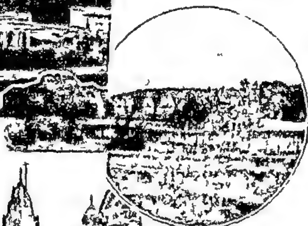

३

२

४

भारत-सरकार द्वारा पुरस्कृत एवं सम्मानित होनेवाले राजपूत किसान 'प्रभुसिंह' की जन्मभूमि भी बिहार ही है।

इस कांग्रेस युग के इतिहास में भी बिहार का मस्तक उन्नत ही है और आगे भी रहेगा। मनसा वाचा-कर्मणा महात्मा गान्धी का अनुयायी होने का श्रेय भारत रत्न देशपूज्य श्रीराजेन्द्रप्रसादजी को ही प्राप्त है, जो वर्त्तमान बिहार की सर्वश्रेष्ठ विभूति हैं। आपने एकाधिक बार भारत की राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का सभापतित्व करके देश की राजनीति-नौका को मँझधार में फँसने से बचाया है। कांग्रेस समाजवादी-दल के प्राण श्रीजयप्रकाशनारायणजी भी बिहार ही के 'जवाहरलाल' हैं।

किन्तु, केवल राजनीतिक महत्त्व ही के कारण नहीं, धार्मिक महत्त्व के कारण भी, विश्व के इतिहास में बिहार अमर रहेगा—अनुपम रहेगा। जिनके ज्ञान के सामने भारतवर्ष के ब्राह्मणों का भी मस्तक नत हो जाता था, जिनके सभा-पण्डित याज्ञवल्क्य ने आर्यावर्त्त के धुरन्धर पंडितों को भी परास्त किया, जिनकी प्रेरणा से शुक्लयजुर्वेद की रचना का श्रीगणेश हुआ, जो उपनिषदों के भी प्रथम प्रवर्त्तक माने जाते हैं, वे राजर्षि जनक ❀ इसी बिहार की वसुन्धरा के गौरवालंकार हैं। प्रथम दर्शनशास्त्र सांख्य के रचयिता कपिल के लिये भी अखिल विश्व बिहार ही का ऋणी रहेगा।

बिहार ही की गोद में था वह बोधिवृक्ष, जिसकी शान्तिदायिनी छाया में राजकुमार सिद्धार्थ † को दिव्य ज्ञान का स्वर्गीय आलोक मिला था। सच्चे गुरु के लिये, ज्ञान ज्योति की प्राप्ति के लिये, वन वन भटकते हुए गौतम को बिहार ही में 'आलार-कालाम' और 'उद्रक रामपुत्र' ‡ जैसे गुरु मिले, और यहीं पर उन्हें बोध-गया में वह अलौकिक ज्ञान प्रकाश मिला जिसके द्वारा उन्होंने भारत में एक अभूतपूर्व धार्मिक क्रान्ति उपस्थित की, और समग्र विश्व को वह चिर अभिलषित शान्ति और अहिंसा का सन्देश दिया जिसके कारण आज भी उनकी गणना विश्व के दो सर्वश्रेष्ठ धर्म प्रवर्त्तकों में होती है +।

❀ R. C Dutta's "Civilisation in Ancient India" Vol I, PP 133-36.

† तिब्बत की एक अनुश्रुति, बुद्ध के पिता शुद्धोदन की स्त्रियों—माया और प्रजावती—को, लिच्छवि-राजकुमारी ही बताती है—"Kshatriya Tribes" P 15

‡ Mrs Rhys David's 'Gotama, the Man" PP 22-25.

+ "The Story of Indian Civilisation"

बौद्धजगत् में, बुद्ध के बाद, सर्वोच्च स्थान प्राप्त करनेवाले 'तिस्सा मोगली पुत्त' और 'उपगुप्त' को रत्नगर्भा बिहार ने ही उत्पन्न किया है। यही नहीं, बिहारोत्पन्न सर्वश्रेष्ठ 'बौद्धसम्राट् अशोक' ने ही 'स्थानीय मत' (local sect) की स्थिति से उठाकर बौद्धधर्म को विश्वधर्म बनाने की सफल चेष्टा की। बिहार से अनेक धर्मोपदेशक केवल भारतवर्ष के ही भिन्न-भिन्न प्रदेशों में नहीं, प्रत्युत तत्कालीन पाश्चात्य जगत के राष्ट्रों में भी ❀ बौद्धधर्मप्रचार के लिये भेजे गये थे। बिहार के ही उपदेशकों ने लङ्का में बोधिवृक्ष की शाखा स्थापित की और चीन में भी जाकर बौद्धधर्म का प्रसार किया।

बिहार के ही विद्वानों † ने समय-समय पर चीन में बौद्धधर्म का सुधार किया और 'लामा'-पद की सृष्टि की। बौद्धधर्म को सुसम्बद्ध, सुसंस्कृत और परिमार्जित करने के लिये बिहार में एकाधिक बौद्धसभाएँ हुईं। महायान-धर्म के आदि प्रवर्त्तक अश्वघोष बिहारी ही थे। वस्तुत बौद्ध इतिहास में बिहार का स्थान सर्वोच्च है।

जैन इतिहास में भी बिहार का सर्वप्रथम स्थान आता है। अति प्राचीन काल में ही 'चम्पा' ‡ को जैनधर्म का केन्द्र होने का श्रेय प्राप्त था। सुधर्मन्, जम्बू, प्रभव, स्वयम्भव, वासुपूज्य, महावीर, वर्द्धमान इत्यादि अनेक तीर्थङ्करों के साथ चम्पा का इतिहास अभिन्न रूप से सम्बद्ध + है।

आठवीं सदी ई० पू० के जैन तीर्थङ्कर 'पार्श्वनाथ' की मृत्यु बिहार ही की शान्तिदायिनी गोद में × हुई। जैनों के अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर वर्द्धमान बिहार स्थित वैशाली में ही उत्पन्न हुए थे। बिहार भूमि के ज्ञान स्तन-पान से ही इन्हें जैनधर्म को पुनरुज्जीवित तथा सुप्रसारित करने की शक्ति मिली थी। सौवीर,

❀ Dr. V A Smith's "The Oxford History of Early India"

† Dr. Levi in his "Ancient India" observes, "In the seventh century, Indian Buddhism conquers yet another field for Indian culture' —another field referred to here is Tibet also, vide, "Glories of Magadha" PP 123 & 129

‡ भागलपुर के समीप स्थित चम्पानगर ही उस समय की 'चम्पा' है।

+ R K Mukherji's "Hindu Civilisation" P 236, & Hem Chandra's "Parishista Parvan" Canto IV,

× Ditto ,, ,, P, 228

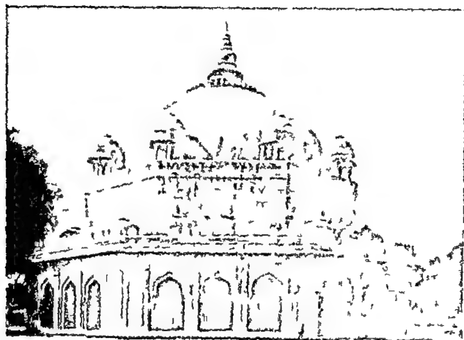

सहसराम (शाहाबाद) का 'हसन खाँ सूरी' का मकबरा। इस मकबरे को शेरशाह ने १५३९-४५ ई० में बनवाया था।

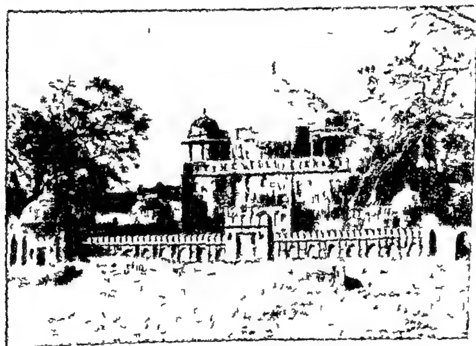

सहसराम (शाहाबाद) का 'हब्बास खाँ' का मकबरा।

सहसराम (शाहाबाद) का शेरशाह का मकबरा, जो पठान-स्थापत्यकला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है। शेरशाह अपनी जिन्दगी में ही इसका निर्माण शुरू किया, जो सन् १५४५ ई० में पूरा हुआ। एक विशाल पक्के सरोवर मध्य में यह बना है, जिसमें एक पहाड़ी झरने से पानी आता है। इसका सरोवर में बनाया जाना और अन्य विशेषताएँ हिन्दू-प्रभाव के सूचक हैं।

वत्स और अवन्ति में जैनधर्म के प्रचार का श्रेय वैशाली-पति 'चेतक' की पुत्रियों को ही है, जिन्होंने अपने प्रभाव द्वारा राजा को भी जैनधर्म में दीक्षित कराया ॐ। निर्युक्ति के भाष्यकार भद्रबाहु तथा जैनधर्मग्रन्थों के सकलनकर्त्ता स्थूलभद्र बिहार ही के थे। †

'आजीविका'-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक 'मक्खली गोशाल' की कर्मभूमि, और शायद जन्मभूमि भी, यही बिहार-भूमि थी। सर्वप्रथम ये महावीर वर्द्धमान ही के शिष्य थे और अन्त में उनसे अलग होकर इन्होंने एक 'आजीविका' नाम का अलग सम्प्रदाय कायम किया। ‡

सिक्खों के इतिहास में भी बिहार का स्थान पूजास्पद माना गया है। उनके गौरवशाली दसवें गुरु, कलियुगी अर्जुन श्रीगुरुगोविन्दसिंह ने बिहार ही की राजधानी 'पटना' में जन्मग्रहण किया। आज भी उस स्थल पर एक प्राचीन मन्दिर स्थित है, जो सिक्खों का गुरुद्वारा और तीर्थस्थान होने के कारण भारतप्रसिद्ध है।

किन्तु बिहार के ऐतिहासिक महत्त्व का हमारा ज्ञान अपूर्ण ही रह जायगा, यदि हम सक्षेप + में भी बिहार की प्राचीन कला, वाङमय, व्यवसाय इत्यादि का वर्णन न करें।

ससार के विश्वविद्यालयों के इतिहास में विश्वविश्रुत नालन्दा, विक्रमशिला तथा उदन्तपुरी के नाम स्वर्णवर्णाङ्कित रहेंगे। बौद्धधर्म, वेद, हेतुविद्या, शब्दविद्या, चिकित्सा, तत्र और साख्य की शिक्षा का केन्द्र नालन्दा ही था। सुदूर चीन के विद्यार्थी भी 卐 दुर्गम पर्वत पथों को पार कर नालन्दा पहुँचते थे—अपनी ज्ञान पिपासा की शान्ति के लिये।

चन्द्रगुप्त मौर्य की राजसभा के अमूल्य रत्न विष्णुगुप्त (चाणक्य) ने ही विश्व को वह 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' प्रदान किया जो मौर्ययुग के समस्त

ॐ R K Mukherji's 'Hindu Civilisation'—P 236

† जयचन्द्र विद्यालकार—"भारतीय इतिहास की रूपरेखा", खड २, पृष्ठ ६६१

‡ R K Mukherji's 'Hindu Civilisation"—P. 223

+ सक्षेपातिसक्षेप में इसीलिये कि इन विषयों पर इस स्मारकग्रन्थ में स्वतन्त्र लेख होंगे।

卐 चीन के ह्यानचौन हानवांग, इत्सिंग, आर्यवर्मन् (कोरिया के), चेहोंग, थोंकोंग, बुद्धकम, ताओफेंग इत्यादि अनेक विद्वान् चीन और कोरिया से यहाँ अध्ययन करने के लिये आये थे। Vide "Glories of Magadha" P 128 (Footnote)

वाङ्मय मे सबसे अधिक महत्त्व की कृति है। इसी ज्ञानी राजनीतिज्ञ ने भारत में उस शासन-व्यवस्था को स्थापित कराया, जिसका—विशेषत. नगरशासनप्रणाली का—अनुकरण कर इस बीसवीं सदी का भी कोई सभ्य राष्ट्र यथार्थ गौरव का अनुभव करेगा।

सर्वप्रथम मगध ने ही सम्राट् अशोक के शिलालेखों की भाषा के रूप मे सम्पूर्ण भारत को एक राष्ट्रभाषा देने की चेष्टा की। कनिष्क को नागार्जुन जैसे विद्वान् मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में ही मिले थे। विद्वद्वर पाणिनि और पिङ्गल, वररुचि और पतञ्जलि ❀ ने बिहार ही के अंक को अलङ्कृत किया था। वैज्ञानिक ज्योतिषशास्त्र के जन्मदाता आर्यभट्ट ने बिहार ही में जन्मग्रहण किया था। पौराणिक आख्यानों में वर्णित च्यवन, दधीचि, शृङ्गी, कपिल, गौतम, विश्वामित्र आदि ऋषि-मुनियों के आश्रम भी बिहार ही में थे।

यदि मध्ययुग में गोवर्द्धनाचार्य, वाचस्पति मिश्र, विद्यापति, मण्डनमिश्र आदि के समान यशोधन विद्वान् बिहार मे हो चुके हैं, तो आधुनिक बिहार में भी महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा, विद्यामहोदधि काशीप्रसाद जायसवाल, डाक्टर सच्चिदानन्द सिंह, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद, त्रिपिटकाचार्य श्रीराहुल साकृत्यायन आदि के समान विद्वान् हुए हैं और हैं, जिनकी ख्याति देश देशान्तर मे फैली हुई है।

किन्तु रत्नगर्भा बिहार-भूमि केवल नर रत्नों की ही नहीं, नारी-रत्नों की भी खान है। सती-सीमन्तिनी सीता, प्रात स्मरणीय पंचकन्याओं मे परिगणित अहल्या, चम्पा † की राजकुमारी और जैनधर्म की सर्वप्रथम भिक्षुणी चन्दना, मैत्रेयी, गार्गी, लक्ष्मी (लखिमा) देवी, मण्डन मिश्र की धर्मपत्नी 'शारदादेवी' आदि बिहार ही की पुत्रियाँ थीं। लंका जाकर बौद्धधर्म का प्रचार करनेवाली 'संघमित्रा' बिहार ही की आदर्श महिला थी।

प्राचीन युग मे व्यवसाय और व्यापार मे भी बिहार किसी से पीछे नहीं था। विशेषत व्यापारिक केन्द्र होने के कारण ही 'चम्पा' की गिनती बुद्धकालीन भारत की छ प्रधान नगरियों में होती थी। गंगातटस्थ चम्पा (भागलपुर) से विशालकाय नौकाएँ निर्यात वस्तुओं को लेकर सुदूर स्वर्णभूमि या बृहत्तर भारत को जाती थीं। ‡

❀ J. N. Sammadar s "Glories of Magadh"—P. 3

† R K Mukherji's "Hindu Civilisation"—P 236

‡ R. K. Mukherji's "A History of Indian Shipping & Maritime Activity" Page 30

आरा हाउस (आरा, शाहाबाद)—सन् १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह में बिहारी वीर बाबू कुँवर सिंह के जीवन से सम्बद्ध।

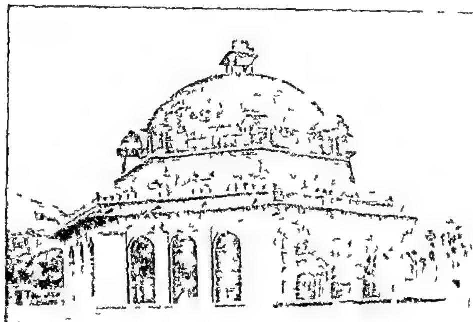

चैनपुर (शाहाबाद) का बख्तियार खाँ का मकबरा, जिसका निर्माण शेरशाह के समय में हुआ था और जो बनावट में 'हसन खाँ सूरी' (सहसराम) के मकबरे से मिलता है।

शेरगढ़ (शाहाबाद) का किला, जो कुदरा स्टेशन से १९ मील पर दुर्गावती नदी के किनारे है। इसे भी शेरशाह ने ही बनवाया था।

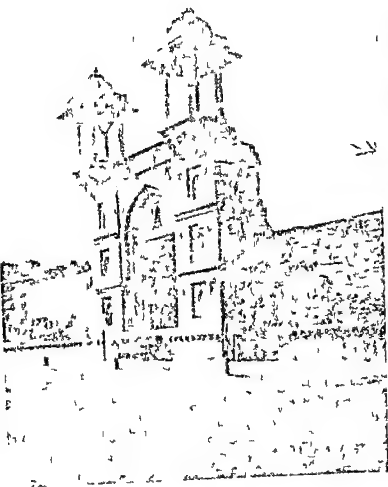

सहसराम (शाहाबाद) का अलावल खाँ का मकबरा। 'अलावल खाँ' शेरशाह का सेनापति था। कहा जाता है, शेरशाह ने अपना मकबरा बनाने का काम इसीके सुपुर्द किया था, किन्तु इसने उस मकबरे के लिये लाये गये अच्छे पत्थर अपने इस मकबरे में लगा लिये। शेरशाह यह जानकर नाराज हुआ और गालियाँ दीं। आज भी इस मकबरे म जाना गाली म शुमार किया जाता है।

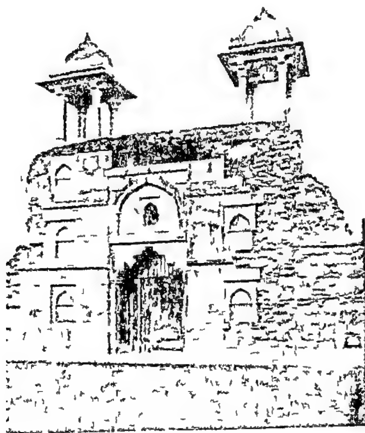

'अलावल खाँ' के मकबरे (सहसराम, शाहाबाद) का फाटक। भीतर का दृश्य। इसका निर्माण काल सन् १५३९ ४५ समझा जाता है।

मौर्य-युग में तो बिहार का व्यापार और भी विस्तृत एवं उन्नत था। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' से ही स्पष्ट है कि उस समय बिहार का व्यापार ताम्रपर्णी, पाण्ड्य-वाट, पारलौहित्य, स्वर्णभूमि, सुवर्णकुड्य तथा अलाक्सान्द्रिया के साथ चलता था। माप-तौल का निश्चित मान शायद पहले पहल मगध के नन्दों § ने ही चलाया था। राष्ट्र की अर्थनीति में भी नन्दों ने कई नई बातों का सूत्रपात किया था। नन्दों ने ही पहले पहल पत्थर, पेड़, चमड़ा, गोंद आदि के व्यापार पर चुंगी लगाई थी। † मौर्य-युग में ही पहले पहल राज्य की तरफ से खानें खुदवाने और कारखाने चलाने की प्रथा चलाई गई।

यन्त्रविद्या, गृहनिर्माणकला, मूर्त्तिलक्षण या स्थापत्यकला में भी बिहार का स्थान कुछ कम ऊँचा न था। बक्सर की खुदाई से प्राप्त वस्तुओं (terra cotta) की कारीगरी सुमेर या सिन्ध—और कुछ तो प्राक्-सुमेर और ईजियन सभ्यता—की कारीगरी का समकक्ष है। "बिहार में कुछ पुराने जमाने के भग्नावशेष मिले हैं जिनसे मालूम होता है कि मौर्ययुग के पहले भी वहाँ एक तरह का शीशा—काँच बनाया जाता था +।" महाशिलाकण्टक और रथमूसल जैसे संहारक युद्ध-अस्त्रों का व्यवहार—और इसीलिये निर्माण भी—सबसे पहले बिहार ही में, वैशाली के विरुद्ध, बिहार ही के अजातशत्रु द्वारा किया गया था ×।

उस प्राचीन युग के बिहार के इञ्जीनियर बड़े-बड़े बाँध बाँध सकते थे, उत्तातुङ्ग गढ़ी (edifice) बना सकते थे, विशालकाय प्रस्तर-स्तम्भों को दूर दूर तक ले जा सकते थे और दे सकते थे उनपर इस तरह का पालिश (polish) कि सदियों बाद आज भी वे दर्पण की तरह चमकीले और चिकने दीखते हैं। बिहार की कारीगरी के अद्भुत नमूने—वे अशोकस्तम्भ—आज भी जगतीतल पर बिहार की प्राचीन कारीगरी को अक्षुण्ण बनाये हुए हैं।

दुर्भाग्यवश बिहार की स्थापत्यकला के बहुत कम नमूने बचे हुए हैं। जो कुछ प्राप्य हैं, उन्हें कलाविद् डाक्टर फरगुसन पाँच भागों में बाँटते हैं—स्तम्भ, स्तूप, वेष्टिनी, चैत्य तथा विहार। अशोकस्तम्भ चुनार के पत्थर से बने हैं। लौरिया

§ जयचन्द्र विद्यालंकार कृत "भारतीय इतिहास की रूपरेखा"—खंड १, पृष्ठ ५८

† " " " "

+ पंडित जवाहरलाल नेहरू—'विश्व इतिहास की झलक', खंड १

× Hoernle's "Uvasgadaso"—II App., P 59

(चम्पारन) का अशोक-स्तम्भ आज भी बिहार की स्तम्भ-निर्माण-कला का ज्वलन्त उदाहरण है। राजगृह मे 'जरासंध की बैठक' बिहार को स्तूप-निर्माण-कला का अवशेष दृष्टान्त है। संसार की प्राचीनतम वेष्टिनियों मे बोधगया की वेष्टिनी भी एक है, जिसे डॉक्टर फरगुसन हिन्दुओं की प्राचीन स्थापत्यकला का सर्वोत्कृष्ट नमूना मानते हैं। बिहार ही मे वह चैत्य था, जिसमे बौद्धों की पहली सभा हुई थी। गया के 'बराबर' पहाड़ मे आज भी कई कलापूर्ण गुहाएँ हैं, पहाड़ काटकर चैत्य बनाये गये हैं। विहारों का तो बिहार मे बाहुल्य ही था। बौद्ध-जगत् का सर्वश्रेष्ठ 'विहार' नालन्दा मे ही था*। अत जिस बिहार में डाक्टर फरगुसन द्वारा वर्णित पाँचो तरह के नमूने प्राप्त हैं, जहाँ कारीगरों को कष्ट देना एक भारी अपराध समझा जाता था, उस बिहार की मूर्त्तितक्षण-कला वस्तुत सर्वमान्य होगी †।

गृह-निर्माण-कला में भी बिहार की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी। पाटलिपुत्र मे ही था अशोक का ‡ वह राजप्रासाद, जिसे विदेशी यात्री मानवेतर रचना समझते थे, जिसके सामने सुसा और इकेटना के राजप्रासाद भी फीके थे। तभी तो बिहार के कारीगरों के लिये दूर-दूर के राजा अपना दूत भेजते थे।

चिकित्सा-विद्या में भी बिहार एक तरह से अग्रणी था। बिहार ही का था वह 'जीवक', जो बुद्ध का चिकित्सक नियुक्त किया गया था। यही जीवक बौद्धसंघ का भी सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक था। मगध-सम्राट् बिम्बिसार को नासूर (नाडी-व्रण) से मुक्त करनेवाला, उज्जयिनी के राजा प्रद्योत का पाण्डुरोग से पिंड छुडानेवाला, बनारस के एक सौदागर के पुत्र को चीरफाड द्वारा आँत के असाध्य रोग से बचानेवाला यही जीवक था। संसार को सार्वजनिक औषधालय प्रदान करनेवाले मगध सम्राट् अशोक ही थे। बिहार के चिकित्सक मित्रराष्ट्रों में जाकर काम किया करते थे। बिहार ही मे शल्यचिकित्सा—शरीरविज्ञान की जानकारी के लिये अंगप्रत्यंग चीरने की क्रिया (vivisection ×)—सफलतापूर्वक सम्पादित होती थी।

* R. C. Dutta's "Civilisation in Ancient India", Vol II, P 76

† पटना की दो यक्ष-मूर्त्तियाँ, तथा दीदारगंज (पटना) की चमरवाहिनी स्त्री की मूर्त्ति, बिहार की मूर्त्तिकला के ज्वलन्त दृष्टान्त हैं।

‡ "अशोक ने पत्थर की रचना को खूब प्रोत्साहित किया और उसके बाद उनका रिवाज खूब चल गया।"—पं० जवाहरलाल नेहरू (विश्व-इतिहास की झलक)।

× Sammadar's "Glories of Magadha" P 4

उपनिवेश-स्थापन के लिये भी बिहार को श्रेय प्राप्त है। अति प्राचीन काल में ही चम्पा के निवासियों ने कोचीन चीन (Cochin China) में एक उपनिवेश स्थापित किया था *। खोतन प्रदेश में, जो भारतवर्ष के कम्बोज और चीन के कानसू प्रान्त के बीच मे था, अशोक के समय मे, और यथासम्भव अशोक की ही प्रेरणा से, एक आर्य-उपनिवेश का संस्थापन हुआ था †। नैपाल की राजधानी 'पत्तन' या 'ललितपत्तन' अशोक की ही बसाई हुई है। अशोक की पुत्री चारुमति स्वयं नैपाल में जा बसी थी और अपने पति देवपाल के नाम से उसने वहाँ 'देवपत्तन' बसाया था। लङ्का को भारतीय संस्कृति में रँगने का श्रेय महेन्द्र और संघमित्रा को ही है।

संक्षेप मे, यही है बिहार के ऐतिहासिक महत्त्व का दिग्दर्शन मात्र। बिहार का इतिहास वास्तव में भारत के इतिहास का तीन चौथाई अंश है। बिहार, अपने अनुपम ऐतिहासिक महत्त्व के कारण ही, निष्पक्ष विद्वानों-द्वारा, ग्रीक-इतिहास का 'एथेन्स' या इंगलैंड के इतिहास का 'वेस्सेक्स' कहा गया है।

* Rhys David's "Buddhist India"—P 35

† जयचन्द्र विद्यालंकार—'भारतीय इतिहास की रूपरेखा', खंड २, पृष्ठ ५७०।

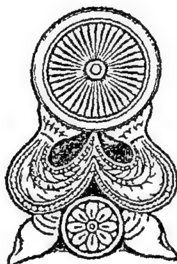

(चम्पारन) का अशोक-स्तम्भ आज भी बिहार की स्तम्भ निर्माण-कला का ज्वलन्त उदाहरण है। राजगृह में 'जरासंध की बैठक' बिहार की स्तूप निर्माण-कला का अवशेष दृष्टान्त है। संसार की प्राचीनतम वेष्ठिनियों में बोधगया की वेष्ठिनी भी एक है, जिसे डॉक्टर फरगुसन हिन्दुओं की प्राचीन स्थापत्यकला का सर्वोत्कृष्ट नमूना मानते हैं। बिहार ही में वह चैत्य था, जिसमें बौद्धों की पहली सभा हुई थी। गया के 'बराबर' पहाड़ में आज भी कई कलापूर्ण गुहाएँ हैं, पहाड़ काटकर चैत्य बनाये गये हैं। विहारों का तो बिहार में बाहुल्य ही था। बौद्ध-जगत् का सर्वश्रेष्ठ 'विहार' नालन्दा में ही था*। अत जिस बिहार में डाक्टर फरगुसन द्वारा वर्णित पाँचो तरह के नमूने प्राप्त हैं, जहाँ कारीगरों को कष्ट देना एक भारी अपराध समझा जाता था, उस बिहार की मूर्त्तिलक्षण-कला वस्तुत सर्वमान्य होगी †।

गृह-निर्माण-कला में भी बिहार की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी। पाटलिपुत्र में ही था अशोक का ‡ वह राजप्रासाद, जिसे विदेशी यात्री मानवेतर रचना समझते थे, जिसके सामने सुसा और इक्बेटना के राजप्रासाद भी फीके थे। तभी तो बिहार के कारीगरों के लिये दूर-दूर के राजा अपना दूत भेजते थे।

चिकित्सा विद्या में भी बिहार एक तरह से अग्रणी था। बिहार ही का था वह 'जीवक', जो बुद्ध का चिकित्सक नियुक्त किया गया था। यही जीवक बौद्धसंघ का भी सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक था। मगध-सम्राट् बिम्बिसार को नासूर (नाडी-व्रण) से मुक्त करनेवाला, उज्जयिनी के राजा प्रद्योत का पाण्डुरोग से पिंड छुडानेवाला, बनारस के एक सौदागर के पुत्र को चीरफाड द्वारा आँत के असाध्य रोग से बचानेवाला यही जीवक था। संसार को सार्वजनिक औषधालय प्रदान करनेवाले मगध सम्राट् अशोक ही थे। बिहार के चिकित्सक मित्रराष्ट्रों में जाकर काम किया करते थे। बिहार ही में शल्यचिकित्सा—शरीरविज्ञान की जानकारी के लिये अंगप्रत्यंग चीरने की क्रिया (vivisection ×)—सफलतापूर्वक सम्पादित होती थी।

* R C Dutta's "Civilisation in Ancient India", Vol II, P 76

† पटना की दो यक्ष-मूर्त्तियाँ, तथा दीदारगंज (पटना) की चमरवाहिनी स्त्री की मूर्त्ति, बिहार की मूर्त्तिकला के ज्वलन्त दृष्टान्त हैं।

‡ "अशोक ने पत्थर की रचना को खूब प्रोत्साहित किया और उसके बाद उनका रिवाज खूब चल गया।"—पं० जवाहरलाल नेहरू (विश्व-इतिहास की झलक)।

× Sammadar's "Glories of Magadha" P 4

उपनिवेश-स्थापन के लिये भी बिहार को श्रेय प्राप्त है। अति प्राचीन काल में ही चम्पा के निवासियों ने कोचीन चीन (Cochin China) में एक उपनिवेश स्थापित किया था *। खोतन प्रदेश में, जो भारतवर्ष के कम्बोज और चीन के कानसू प्रान्त के बीच में था, अशोक के समय में, और यथासम्भव अशोक की ही प्रेरणा से, एक आर्य-उपनिवेश का सस्थापन हुआ था †। नैपाल की राजधानी 'पत्तन' या 'ललितपत्तन' अशोक की ही बसाई हुई है। अशोक की पुत्री चारुमति स्वय नैपाल में जा बसी थी और अपने पति देवपाल के नाम से उसने वहाँ 'देवपत्तन' बसाया था। लङ्का को भारतीय सस्कृति में रँगने का श्रेय महेन्द्र और सघमित्रा को ही है।

सक्षेप में, यही है बिहार के ऐतिहासिक महत्त्व का दिग्दर्शन मात्र। बिहार का इतिहास वास्तव में भारत के इतिहास का तीन चौथाई अश है। बिहार, अपने अनुपम ऐतिहासिक महत्त्व के कारण ही, निष्पक्ष विद्वानों-द्वारा, ग्रीक-इतिहास का 'एथेन्स' या इगलैंड के इतिहास का 'वेस्सेक्स' कहा गया है।

* Rhys David's "Buddhist India"—P 35

† जयचन्द्र विद्यालकार—'भारतीय इतिहास की रूपरेखा', खड २, पृष्ठ ५७०।

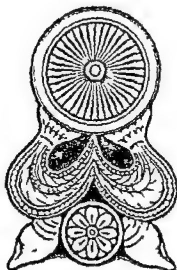

बाल-साहित्य के निर्माण में बिहार का हाथ

श्रीव्रजनन्दन सहाय, 'व्रजवल्लभ', आरा

हिन्दी में बाल-साहित्य के निर्माण का श्रीगणेश भारतेन्दु-युग से पूर्व प्राय नहीं हुआ था। बाल-साहित्य से हमारा तात्पर्य है बालोपयोगी साहित्य। हिन्दी मे बालोपयोगी साहित्य की रचना का आरम्भ उस समय हुआ जिस समय से देश में हिन्दी-भाषा-द्वारा बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा का सूत्रपात हुआ। पहले इस देश में सस्कृत और फारसी द्वारा ही आरम्भिक शिक्षा दी जाती थी। 'अमरकोष' और 'बालकमारी' से ही बालकों का पाठारम्भ होता था। सस्कृत भाषा केवल ब्राह्मणों की पैतृक सम्पत्ति थी। क्षत्रिय, वैश्य, कायस्थ आदि जातियों के बालक मकतब या मदरसे मे ही पहले-पहल खली छूते थे या पट्टी पूजते थे। यह बहुत दिन पहले की बात है। उस समय हिन्दी भाषा तथा नागरी लिपि का प्रचार उतना नहीं था जितना आज है। उस समय हिन्दी की जगह पर व्रजभाषा ही का नाम उजागर था।

व्रजभाषा का युग बीतने पर जब खडी बोली—वर्तमान हिन्दी—का युग आया तब भी बाल-साहित्य की रचना का श्रीगणेश न हुआ, क्योंकि प्रारम्भिक शिक्षा में हिन्दी का कोई स्थान न था। उन दिनों यह दशा थी कि लल्लूलाल का 'प्रेमसागर' तथा गोस्वामी तुलसीदास की 'रामायण'—वह भी हाथ की लिखी हुई अथवा लीथो में छपी—पढ लेने की योग्यता रखनेवाला 'अच्छा हिन्दी जाननेवाला' समझा जाता था। उच्च शिक्षा-प्राप्त लोग तो हिन्दी पढना लिखना और हिन्दी भाषा एव देवनागराक्षर में पत्र-व्यवहार करना अपना अपमान

समझते थे। सरकारी कचहरियों में फारसी लिपि और उर्दू भाषा का बोलबाला था। किन्तु उस समय भी बिहार में कैथीलिपि का प्रचार था। यह लिपि एक प्रकार से शिरोरेखा-हीन देवनागरी ही है अथवा देवनागरी का ही विकृत रूप है। बिहार के लोग बहुत दिनों से चिट्ठीपत्री मे इस लिपि का व्यवहार करते आ रहे थे। जमींदारी के कागज-पत्र इसी लिपि मे लिखे जाते थे। गाँवों मे आज भी ये दोनों बाते देखी जाती हैं, पर अब नागरी लिपि का अधिकाधिक प्रचार होता जा रहा है। जब बिहार में प्रारम्भिक शिक्षा के लिये हिन्दी भाषा का व्यवहार होने लगा तब पहले पहल कैथी-लिपि मे ही पाठ्यपुस्तके छपी थीं। कैथी की पोथियाँ बचपन में पढ़ चुकनेवाले कितने ही शिक्षित वयोवृद्ध सज्जन बिहार मे वर्त्तमान हैं। पुस्तकालयों में कैथी की उन पुरानी पोथियों का सग्रह होना चाहिये, क्योंकि उनके साथ हिन्दीभाषा के इतिहास का महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है।

जिन दिनों बिहार की यह स्थिति थी उन्हीं दिनों हिन्दी भाषा के सौभाग्य से, श्रीगगा तट पर, अविनाशी विश्वनाथपुरी काशी मे, एक ऐसा 'इन्दु' (चन्द्र) उदित हुआ (भारतेन्दु) जिसकी करकौमुदी के स्पर्श से हिन्दी-कुमुदिनी पूर्णतया विकसित हो उठी और उसका सुखद सौरभ दिगन्तव्यापी हो गया। इसके प्रभाव से भारत में जहाँ-तहाँ हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन भवन स्थापित हुए। उनमें प्रधान थे—वेङ्कटेश्वर यन्त्रालय (बम्बई), भारतजीवन प्रेस (काशी), खड्गविलास प्रेस (पटना)। लखनऊवाले मुन्शी नवलकिशोर का छापाखाना तो सन् १८५८ ई० (सवत् १९१५ वि०) मे ही खुल चुका था; हाँ, बनारस का 'लाजरस प्रेस' भी इस दिशा मे कुछ काम करता था। किन्तु इन प्रेसों की दृष्टि बालोपयोगी साहित्य की ओर नहीं गई थी। जहाँ तक हमें स्मरण है राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' की किताबे प्राय इसी लाजरस प्रेस में छपती थीं।

भारतेन्दुजी का ध्यान तो बालोपयोगी साहित्य की ओर गया ही नहीं; क्योंकि उनका लक्ष्य उच्च था, अतएव वे सदा उच्चकोटि के साहित्य का निर्माण करते रहे—चाहे वह गद्य हो या पद्य।

हाँ, राजा शिवप्रसाद की लेखनी से बालोपयोगी पाठ्यपुस्तके प्रस्तुत हुई थीं, किन्तु उनमें मौलिकता अधिक नहीं थी। उनका झुकाव उर्दू की ओर अधिक होने से उनकी भाषा से लोग सन्तुष्ट नहीं थे। पर अच्छी पुस्तकों के अभाव में उन्हीं की किताबे जहाँ तहाँ पाठशालाओं मे पढ़ाई जाती थीं।

हमको याद है कि बचपन में हमने उनका बनाया हुआ 'आलसियों को कोड़ा'

बाल-साहित्य के निर्माण में बिहार का हाथ

श्रीव्रजनन्दन सहाय, 'व्रजवल्लभ', आरा

हिन्दी में बाल-साहित्य के निर्माण का श्रीगणेश भारतेन्दु-युग से पूर्व प्राय नहीं हुआ था। बाल-साहित्य से हमारा तात्पर्य है बालोपयोगी साहित्य। हिन्दी में बालोपयोगी साहित्य की रचना का आरम्भ उस समय हुआ जिस समय से देश में हिन्दी-भाषा-द्वारा बालकों को प्रारम्भिक शिक्षा का सूत्रपात हुआ। पहले इस देश मे संस्कृत और फारसी द्वारा ही आरम्भिक शिक्षा दी जाती थी। 'अमरकोप' और 'खालकबारी' से ही बालकों का पाठारम्भ होता था। संस्कृत भाषा केवल ब्राह्मणों की पैतृक सम्पत्ति थी। क्षत्रिय, वैश्य, कायस्थ आदि जातियों के बालक मकतब या मदरसे मे ही पहले पहल खली छूते थे या पट्टी पूजते थे। यह बहुत दिन पहले की बात है। उस समय हिन्दी-भाषा तथा नागरी लिपि का प्रचार उतना नहीं था जितना आज है। उस समय हिन्दी की जगह पर व्रजभाषा ही का नाम उजागर था।

व्रजभाषा का युग बीतने पर जब खड़ी बोली—वर्त्तमान हिन्दी—का युग आया तब भी बाल-साहित्य की रचना का श्रीगणेश न हुआ, क्योंकि प्रारम्भिक शिक्षा मे हिन्दी का कोई स्थान न था। उन दिनों यह दशा थी कि लल्लूलाल का 'प्रेमसागर' तथा गोस्वामी तुलसीदास की 'रामायण'—वह भी हाथ की लिखी हुई अथवा लीथो में छपी—पढ लेने की योग्यता रखनेवाला 'अच्छा हिन्दी जाननेवाला' समझा जाता था। उच्च शिक्षा-प्राप्त लोग तो हिन्दी पढना लिखना और हिन्दी भाषा एव देवनागराक्षर में पत्र-व्यवहार करना अपना अपमान

समझते थे। सरकारी कचहरियों में फारसी लिपि और उर्दू-भाषा का बोलबाला था। किन्तु उस समय भी बिहार में कैथीलिपि का प्रचार था। यह लिपि एक प्रकार से शिरोरेखा-हीन देवनागरी ही है अथवा देवनागरी का ही विकृत रूप है। बिहार के लोग बहुत दिनों से चिट्ठीपत्री में इस लिपि का व्यवहार करते आ रहे थे। जमींदारी के कागज पत्र इसी लिपि में लिखे जाते थे। गाँवों में आज भी ये दोनों बातें देखी जाती हैं, पर अब नागरी लिपि का अधिकाधिक प्रचार होता जा रहा है। जब बिहार में प्रारम्भिक शिक्षा के लिये हिन्दी भाषा का व्यवहार होने लगा तब पहले पहल कैथी लिपि में ही पाठ्यपुस्तकें छपी थीं। कैथी की पोथियाँ बचपन में पढ़ चुकनेवाले कितने ही शिक्षित वयोवृद्ध सज्जन बिहार में वर्त्तमान हैं। पुस्तकालयों में कैथी की उन पुरानी पोथियों का संग्रह होना चाहिये, क्योंकि उनके साथ हिन्दीभाषा के इतिहास का महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है।

जिन दिनों बिहार की यह स्थिति थी उन्हीं दिनों हिन्दी भाषा के सौभाग्य से, श्रीगंगा तट पर, अविनाशी विश्वनाथपुरी काशी में, एक ऐसा 'इन्दु' (चन्द्र) उदित हुआ (भारतेन्दु) जिसकी करकौमुदी के स्पर्श से हिन्दी-कुमुदिनी पूर्णतया विकसित हो उठी और उसका सुखद सौरभ दिगन्तव्यापी हो गया। इसके प्रभाव से भारत में जहाँ-तहाँ हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन भवन स्थापित हुए। उनमें प्रधान थे—वेङ्कटेश्वर यन्त्रालय (बम्बई), भारतजीवन प्रेस (काशी), खड्गविलास प्रेस (पटना)। लखनऊवाले मुन्शी नवलकिशोर का छापाखाना तो सन् १८५८ ई०, (संवत् १९१५ वि०) में ही खुल चुका था। हाँ, बनारस का 'लाजरस प्रेस' भी इस दिशा में कुछ काम करता था। किन्तु इन प्रेसों की दृष्टि बालोपयोगी साहित्य की ओर नहीं गई थी। जहाँ तक हमें स्मरण है राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' की किताबें प्रायः इसी लाजरस प्रेस में छपती थीं।

भारतेन्दुजी का ध्यान तो बालोपयोगी साहित्य की ओर गया ही नहीं; क्योंकि इनका लक्ष्य उच्च था, अतएव वे सदा उच्चकोटि के साहित्य का निर्माण करते रहे—चाहे वह गद्य हो या पद्य।

हाँ, राजा शिवप्रसाद की लेखनी से बालोपयोगी पाठ्यपुस्तकें प्रस्तुत हुई थीं, किन्तु उनमें मौलिकता अधिक नहीं थी। उनका झुकाव उर्दू की ओर अधिक होने से उनकी भाषा से लोग सन्तुष्ट नहीं थे। पर अच्छी पुस्तकों के अभाव में उन्हीं की किताबें जहाँ तहाँ पाठशालाओं में पढ़ाई जाती थीं।

हमको याद है कि बचपन में हमने उनका बनाया हुआ 'आलसियों का कोड़ा'

इस प्रकार, समय अनुकूल था। 'जैसी हो होतव्यता, वैसो मिले सहाय'। भूदेव बाबू के सहायक हुए पटना-निवासी मुंशी राधालाल माथुर (जो उस समय स्कूल के डिपटी थे, और इनके वंशज आज भी पटना सिटी में रहते हैं), छपरा-निवासी श्रीभगवानप्रसाद (जो पीछे सीतारामशरण भगवानप्रसाद 'रूपकला' के नाम से श्री अयोध्या के एक प्रसिद्ध वैष्णव महात्मा हुए और जिनका उस समय स्कूल विभाग से सम्बन्ध था) तथा शिक्षा विभाग के ही मुंशी सोहन लाल। इन लोगों की लिखी हुई बालोपयोगी पाठ्यपुस्तकों के मुद्रण, प्रकाशन तथा प्रचार का भार खड्गविलास प्रेस (पटना) के स्वामी महाराजकुमार बाबू रामदीनसिंह और उनके मैनेजर बाबू साहबप्रसादसिंह ने लिया। यह खड्गविलास प्रेस भी भूदेव बाबू ने ही स्थापित किया था। पहले इसका नाम बुधोदय प्रेस था। बाबू रामदीनसिंह को भूदेव बाबू ने यह प्रेस दे डाला।

हम कह चुके हैं कि बिहार में पहले पाठ्यपुस्तकें कैथी अक्षरों में छपती थीं। किन्तु सबसे पहले भूदेव बाबू के ही उद्योग से स्कूलों में पढ़ाई जानेवाली पोथियाँ नागरी-अक्षरों में छपने लगीं। बाबू रामदीनसिंह ने भी उनके प्रयत्न में पूर्ण सहयोग दिया। आज तक हमारे पास कई पुस्तकें कैथी अक्षरों में छपीं तथा उस समय के लीथो (पत्थर) छापे की हैं।

उपर्युक्त माथुर महोदय को शब्दकोश (राधा-कोष) लिखने के लिये पुरस्कार मिला था। इन्होंने 'भाषा बोधिनी' चार भागों में लिखी थी। सब पाठशालाओं में आदि से मिड्ल तक यही बोधिनी' पढ़ाई जाती थी।

सन् १८७७ ई० में भूदेव बाबू के बिहार में पधारने के पूर्व ही, १८७५ ई० से, 'बिहार बन्धु' पंडित केशवराम भट्ट के सम्पादकत्व में आ गया था। भट्टजी ने ईश्वरचन्द्र विद्यासागर-कृत 'बोधोदय' का हिन्दी अनुवाद 'विद्या की नेव (नींव)' नाम से किया और भूदेव बाबू की पुस्तक *'हिन्दुस्तान का इतिहास'* का भी हिन्दी अनुवाद किया तथा एक 'हिन्दी-व्याकरण' भी लिखा।

श्रीभगवानप्रसादजी ने 'तन-मन की स्वच्छता', 'शरीर-पालन' आदि कई पाठ्यपुस्तकें लिखीं। राय सोहन लाल ने भी एक बालोपयोगी पाठ्यपुस्तक लिखी—'वायु-विद्या' और मयनपुरा (पटना) के निवासी मुंशी रामप्रकाश लाल ने 'भू-तत्त्व प्रदीप' तैयार किया। ये पुस्तकें बहुत दिनों तक बिहार की हिन्दी-पाठशालाओं में पढ़ाई जाती रहीं।

पर इस काम में सबसे अधिक हाथ बाबू रामदीनसिंह ने बँटाया। इनके

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

स्वर्गीय भूदेव मुखोपाध्याय

स्वर्गीय बाबू रामदीनसिंह

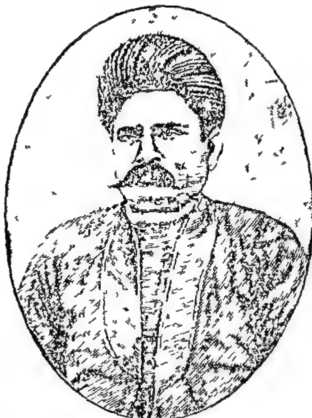

भूमिहार ब्राह्मण कालेज (मुजफ्फरपुर) के सस्थापक
स्वर्गीय लगटसिह, धरहरा (मुजफ्फरपुर)
(पृ० १४५)

बाबू हरिहरशरण
सस्थापक राजेन्द्र कॉलेज, छपरा
(पृ० १४५)

बिहार नेशनल कालेज (पटना) के सस्थापक
स्व बाबू शालग्रामसिंह, कुचदरिया (शाहाबाद)
(पृ० १४५)

स्वर्गीय बाबू देवकीनन्दन खत्री
(पृ० ६५६)

प्रधान ग्रन्थ क्षेत्र तत्त्व, गणित बत्तीसी, हिन्दी-साहित्य, साहित्य-भूषण तथा बाल बोध थे। बाबू साहबप्रसादसिंह का 'भाषा-सार' अपने समय की एक अपूर्व पाठ्य पुस्तक था। इसकी ख्याति देश में ही नहीं, वरन् विदेश में भी थी, क्योंकि इसकी आलोचना इंगलैंड के समाचारपत्र 'होमवर्ड' तथा 'ओवरलैंड मेल' में निकली थी। हमारे पिताजी (स्वर्गीय श्रीशिवनन्दनसहायजी) ने भी स्कूलों के लिये एक 'बंगाल का इतिहास' लिखा था। इन सब बालोपयोगी पुस्तकों की भाषा सुबोध, रोचक तथा प्राञ्जल थी। इन पुस्तकों में अधिकांश खड्गविलास प्रेस में ही छपी थीं। 'खड़ी बोली' का प्राणप्रतिष्ठा करनेवाले मुजफ्फरपुर निवासी बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री ने भी अँगरेजी व्याकरण की रीति पर एक 'हिन्दी-व्याकरण' लिखा था। यह पुस्तक उसी साल लिखी गई थी जिस साल भूदेव बाबू का बिहार में शुभागमन हुआ। यह भी स्कूलों में पढ़ाई जाती थी। बाबू अयोध्याप्रसादजी ने भी बंगाल-बिहार के लाट साहब के पास एक प्रार्थनापत्र (मेमारियल) भेजा था कि प्राइमरी और मिडल परीक्षा का पाठ्यपुस्तकें केवल देवनागरी अक्षरों में ही छापी जायें। इसके लिये आप बर्दवान के महाराज के पास एक डेपुटेशन भी ले गये थे।

हिन्दी का प्रारम्भिक पाठ्यपुस्तकों के सम्बन्ध में भूदेव बाबू का प्रयास सफल हुआ। इस प्रकार बिहार-प्रान्त के बालकों और विद्यार्थियों में हिन्दी भाषा का पूरा प्रचार हुआ। छात्रवर्ग अपनी मातृभाषा में विधिवत् शिक्षा पाने लगा। बिहार को शिक्षण संस्थाओं में अपना अधिकांश जीवन बितानेवाले साहित्याचार्य अम्बिकादत्त व्यास ने भी बिहार के हिन्दी पढ़नेवाले छात्रों को अपना प्रसिद्ध पाठ्यपुस्तक 'साहित्य-नवनीत' द्वारा बहुत लाभ पहुँचाया। यह पुस्तक बहुत दिनों तक यहाँ स्वीकृत पाठ्य थी।

आरम्भ में खड्गविलास प्रेस का प्रधान ध्येय था बालोपयोगी पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन। उस समय के शिक्षा विभाग के लेखकों के सहयोग से उसे इस क्षेत्र में पूर्ण सफलता भी मिली। उस समय दूसरा कोई भी प्रेस इस क्षेत्र में उसकी समता करनेवाला नहीं था। उसने ही सबसे पहले विद्यार्थियों के मनोविनोद और शिक्षकों तथा शिक्षार्थियों का शिक्षा-चर्चा के लिये 'विद्या विनोद' नामक पत्र तथा 'शिक्षा' नामक पत्रिका निकाला था। इससे प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि बालोपयोगी पुस्तकों के प्रकाशन का ओर सर्वप्रथम ध्यान गया बिहार ही का। और, इस क्षेत्र में बिहार का प्रयास बहुत सफल एवं प्रशंसनीय हुआ। बिहार में बाल-

साहित्य निर्माण की जो आधुनिक प्रगति है उसका आरम्भ होने से पहले उपर्युक्त पुस्तकें ही प्रारम्भिक शिक्षा की आधार-शिला रहीं।

देश के सौभाग्य से बाल-साहित्य के आकाश में सहसा एक दीप्तिमान् सूर्य उदित हुए—श्रीरामलोचनशरण। इन्होंने बाल-साहित्य के क्षेत्र में युगान्तर उत्पन्न कर दिया। इनकी रचना इतनी मनोहर, आकर्षक और बालोपयोगी हुई कि अन्यान्य प्रान्तों में भी इनकी शैली का अनुकरण होने लगा।

सन् १६१५ ई० में श्रीरामलोचनशरणजी ने लहेरियासराय (दरभंगा) में 'पुस्तक-भंडार' की स्थापना की। इसके पहले भी इनकी लिखी कई पाठ्यपुस्तक छप चुकी थीं, पर 'भंडार' के स्थापित हो जाने पर इनकी लेखनी से नई शैली और मनोवैज्ञानिक पद्धति की पाठ्यपुस्तकें निकलने लगीं, जिनकी भाषा परिष्कृत और प्रामाणिक थी। आज तक इन्होंने सैकड़ों पाठ्यपुस्तकें निकाल डाली हैं, जो साहित्य, व्याकरण, निबन्धरचना, इतिहास, भूगोल, गणित, स्वास्थ्य विज्ञान आदि विषयों पर बड़े मार्मिक एवं सरल ढंग से लिखी गई हैं। पाठ्यपुस्तकों के सिवा इन्होंने सैकड़ों सुन्दर बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की हैं, जो विविध ज्ञानवर्द्धक विषयों पर सिद्धहस्त लेखकों द्वारा सुरुचिपूर्ण शैली में लिखी गई हैं और जिनकी छपाई सफाई, सजावट तथा चित्रावली हिन्दी संसार में अपने रंग ढंग की अकेली है। 'पुस्तक-भंडार' की पुस्तक-सूची देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि शरणजी बालकों ही की नींद सोते हैं और उन्हीं की नींद जागते हैं। बालोपयोगी पुस्तकों की रचना छोड़कर और कोई विषय उनके सामने रहता ही नहीं।

हिन्दी भाषी बालकों के लिये सचित्र मासिकपत्र 'बालक' निकालकर इन्होंने बाल साहित्य के क्षेत्र में क्रान्ति की एक नई लहर उठा दी। बाल साहित्य में युगान्तर उपस्थित करने का सर्वाधिक श्रेय 'बालक' को ही है। भारत के कोने कोने में इनके 'बालक' का नाम गूंज रहा है। विदेशी के हिन्दीप्रेमियों में भी 'बालक' का खासा प्रचार है। आज कौन ऐसा हिन्दी जाननेवाला है जो 'बालक' से परिचित न हो? 'बालक' गत पन्द्रह वर्षों से आदर्श बाल साहित्य की सृष्टि करता आ रहा है। जिस बालक ने एक बार 'बालक' को देख लिया वह चातकवत् इसके लिये लालायित रहता है और इसे पाकर अवश्य तृप्त हो जाता है। यह कहना, हमारे विचार से, अत्युक्ति न होगा कि 'बालक' के जोड़ का कोई पत्र, बालकों के हित का, कहीं से, प्रकाशित नहीं होता है। हिन्दी संसार के अधिकारी

विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से इस बात की सराहना की है। बिहार को यह गौरव प्रदान करने का श्रेय श्रीरामलोचनशरणजी को ही है।

बालोपयोगी पुस्तकों के प्रणयन तथा प्रकाशन में शाहाबाद (आरा) जिले के निवासी श्रीरामदहिन मिश्रजी का भी श्रम सराहनीय है। बहुत थोड़े दिनों में इन्होंने बहुत कुछ कर दिखाया और बालकों तथा किशोरों को बहुत-कुछ लाभ पहुँचाया। इनकी बाल शिक्षा समिति (पटना) से भी अनेकानेक उत्तम, रोचक तथा उपयोगी पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और होती जा रही हैं। प्रौढ साहित्य का प्रकाशन भी इनका प्रशंसनीय है। इनकी पुस्तकों के 'गेट अप' भी 'अपटु-डेट' होते हैं। पुस्तकों को सुन्दर तथा शुद्ध छापने की इनकी भी चेष्टा रहती है। हिन्दी के मुहावरों का कोश निकालकर इन्होंने विद्यार्थियों को जो सहायता पहुँचाई है उसका तो बखान ही नहीं किया जा सकता। आजकल सचित्र मासिक पत्र 'किशोर' का सम्पादन और प्रकाशन कर विद्यार्थि समाज में इन्होंने हलचल मचा दी है। बालकों और किशोरों के हितार्थ अच्छी अच्छी बहुतेरी पुस्तकें लिख लिखाकर प्रकाशित करने में इन्होंने भी बिहार का गौरव बढ़ाया है।

बिहार के बाल साहित्य निर्माताओं में उपर्युक्त साहित्यसेवियों के अतिरिक्त उनके निम्नलिखित सहायक लेखकों और कवियों के भी नाम उल्लेखनीय हैं— लेखकों में श्रीअच्युतानन्द दत्त, श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, श्रीहरिमोहन झा एम० ए०, श्रीकमलनारायण झा 'कमलेश', श्रीजगदीशनारायण, श्रीरामलोचन शर्मा 'कटक' एम्० ए० इत्यादि और कवियों में श्री 'दिनकर', श्रीआरसीप्रसाद सिंह, श्री 'केसरी', श्रीहंसकुमार तिवारी, स्वर्गीय श्रीराघवप्रसाद सिंह आदि।

श्रीरामलोचनशरणजी की लिखी हुई 'मनोहर पोथी' ने बालवर्ग के हृदय और मस्तिष्क पर जादू फेर दिया है। बाल-मनोविज्ञान के अनुकूल इससे उत्तम आरम्भिक पोथी हिन्दी में है ही नहीं।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी संसार में बालसाहित्य की जो प्रगति अब तक हुई है, उसमें बिहार का पर्याप्त भाग है। हिन्दी के बाल साहित्य की प्रगतिशीलता में सहायक होने के लिये बिहार आज जो कुछ प्रयत्न कर रहा है वह सर्वथा महत्त्वपूर्ण है।

प्रवासी बिहारी

श्रीब्रह्मदत्त-भवानीदयाल, जेकब्स (डरबन), नेटाल, दक्षिण अफ्रिका

बृहत्तर भारत को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—प्राचीन और अर्वाचीन। प्राचीन बृहत्तर भारत का अनुमान करने के लिये अनेक द्वीपों और महाद्वीपों में पाये जानेवाले भारतीय शिल्प के महत्त्वपूर्ण निदर्शन प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। मेक्सिको (अमेरिका) तक में भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्राचीन चिह्न वर्त्तमान हैं, जिनके आधार पर विद्वानों ने निश्चय किया है कि कोलम्बस से बहुत पहले ही भारतीयों ने अमेरिका का पता पाकर वहाँ अपना उपनिवेश स्थापित कर दिया था। एशिया महाखंड के अनेक स्थानों और द्वीपों में तो भारतीय शिल्प कौशल के असंख्य उत्कृष्ट नमूने आज भी पाये जाते हैं जिनसे भारतीयों के साहसिकतापूर्ण अभियान और उपनिवेश-स्थापन का स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध होता है।

किन्तु, बिहार को ही इस बात का गौरव प्राप्त है कि उसके सपूतों ने प्राचीन बृहत्तर भारत का निर्माण किया था। सुवर्णभूमि (बर्मा, स्याम, मलय, हिन्दचीन, सुमात्रा, जावा इत्यादि) की यात्रा करनेवाले विदेह के राजकुमार महाजनक की कथा इतिहासप्रसिद्ध है।

भगवान् बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् उनके अनुयायियों में सबसे प्रसिद्ध और प्रतापी महाराज अशोक हुए, जिन्होंने न केवल पाटलिपुत्र में सिंहासनारूढ़ होकर एक वृहत् भारतीय साम्राज्य की बुनियाद डाली, बल्कि स्वदेश से बाहर भी 'बृहत्तर भारत' (Greater India) के रूप में सांस्कृतिक साम्राज्य की स्थापना की। बिहार से ही आर्य-संस्कृति का सन्देश जापान, चीन, बर्मा, मलय, जावा, सुमात्रा, बाली, लम्बक, स्याम, कम्बोडिया, सिंहल आदि देशों में पहुँचा था।

आजकल के साम्राज्यवादियों की भाँति बिहारियों ने तोप और तलवार

के जोर से किसी देश और राष्ट्र की स्वाधीनता का अपहरण नहीं किया—उनका रक्त-शोषण नहीं किया। किन्तु उन्हें आर्य-संस्कृति की दीक्षा देकर एक ऐसे वृहत्तर भारत का निर्माण किया जिसका युगयुगान्तर तक भारत के साथ सम्बन्ध रहा है और आज भी उस स्नेह सम्बन्ध की स्मृति अवशिष्ट है।

उस युग में केवल ऐसे ही आदमी बिहार से बाहर गये थे, जो सर्वगुण-निधान विद्वान् थे, सात्त्विक वृत्ति के धर्माचार्य थे, धुरन्धर राजनीतिज्ञ थे, वाणिज्यकुशल वैश्य थे। वह बिहार का स्वर्ण युग था।

किन्तु अर्वाचीन विशाल भारत का निर्माण दूसरे ही ढंग से हुआ है। जब संसार से गुलामी की प्रथा उठा दी गई तब ईसवी सन् १८३४ में उसका पुनर्जन्म हिन्दुस्तान में हुआ—शर्त्तबन्द कुलीप्रथा (Indentured Labour System) के रूप में। भारत से मोरिशस, नटाल, ट्रिनिडाड, डेमरारा, जमैका, ग्रनेडा, सुरीनाम, फिजी आदि उपनिवेशों को केवल मजदूर ही भेजे जाने लगे, और वह भी दासता की कठोर बेड़ी में बाँधकर। यह प्रथा भारत के लिये कलंक-स्वरुप थी—इससे संसार में भारत की बड़ी अपकीर्त्ति फैली।

इस युग में जहाँ भारत को अपमानित होना पड़ा वहाँ एक मार्के की बात यह हो गई कि एक बार फिर भारत से बाहर एक नवीन वृहत्तर भारत का निर्माण हो गया और इसके निर्माण में बिहारियों का बहुत बड़ा हिस्सा है।

इस समय भारत से बाहर लगभग पचीस लाख हिन्दुस्तानी बसे हुए हैं जिनमें बिहारियों की काफी संख्या है। बिहारी इन उपनिवेशों में यद्यपि मजदूर होकर आये थे, तो भी अपने उद्योग और परिश्रम से वे वृहत्तर भारत के इतिहास में अपना खास स्थान बना चुके हैं।

भारत की विश्ववन्द्य विभूति महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रिका में ही पहले-पहल बिहारियों से परिचय प्राप्त किया था। मेरे पूज्य पितामह स्वर्गीय श्रीजयराम सिंहजी और स्वर्गीय श्री बद्री—जो (दोनों ही) बिहार प्रान्त के शाहाबाद (आरा) जिले के निवासी थे—के सम्बन्ध में महात्मा गान्धी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—

"इनलोगों ने खास अपने दुःख दूर करने के लिये व्यापारियों के मंडल से अलग अपना खास मंडल बनाया था। इनमें कितने ही बहुत निष्कलिस दिल के, उदार भावनावाले, चरित्रवान् हिन्दुस्थानी भी थे। उनके सभापति का नाम श्रीजयरामसिंह था, और सभापति न होकर भी सभापति जैसे ही काम करनेवाले

दूसरे थे श्रीनद्री। दोनों का ही अब देहान्त हो गया है। दोनों की ही ओर से मुझे बहुत मदद मिली थी। इनके जैसे ही भाइयों के द्वारा मेरा उत्तर और दक्षिण के भारतीयों से गाढ़ा परिचय हुआ। मैं उनका वकील ही भर नहीं, बल्कि भाई बनकर रहा।'

दक्षिण अफ्रिका में, सन् १८६६ में, जो अँगरेज बोअर-युद्ध हुआ था, उसमें भी एक बिहारी ने अपनी वीरता का परिचय देकर ससार को चकित कर दिया था। इस बिहारी वीर का नाम था 'प्रभुसिंह' और यह भी आरा (शाहाबाद) जिले का रहनेवाला राजपूत था। इसके सम्बन्ध में मेरे पूज्य पिता स्वामी भवानीदयालजी संन्यासी ने अपनी आत्म कथा—'प्रवासी की कहानी'—में लिखा है—

"उस समय बोअर सेना ने ऐसा धावा बोला कि नटाल के लेडीस्मिथ नगर तक पहुँचकर जबरदस्त घेरा डाल दिया। वहाँ घिरी हुई अँगरेजी सेना की ऐसी दुर्दशा हुई कि उसे घोड़े, गधे और कुत्ते तक खाने के लिये बाध्य होना पड़ा। लेडीस्मिथ की अँगरेजी फौज के साथ आरा जिले के *प्रभुसिंह* नामक एक हिन्दुस्थानी भी थे। उन्होंने अपनी वीरता का ऐसा परिचय दिया कि उसे देख सुनकर सारा अफ्रिका दग रह गया। लेडीस्मिथ नगर के पास ही 'अम्बुलवाना नाम की एक पहाड़ी है। बोअर-सेना ने उसीके ऊपर अपना 'लाङ्गटॉम' नामक भयकर तोपखाना लगा रक्खा था। वहाँ से जब गोले दगते तो सारे नगर मे हाहाकार मच जाता। उस समय एक ऐसे बहादुर आदमी की जरूरत थी जो जान हथेली पर लिये, एक ऐसी ऊँची जगह पर खड़ा रहे, जहाँ से बोअर तोप में पलीता लगते ही वह उसकी सूचना झडी दिखाकर अँगरेज सेना और नागरिकों को दे दे, और इस प्रकार सावधान करके उनके प्राण बचा दे। उस समय किसी भी अँगरेज-बहादुर की हिम्मत न हुई कि वह इस काम के लिये आगे बढे, लेकिन वीर प्रभुसिंह जान पर खेलने को तैयार हो गये। इस काम पर तैनात होकर वह रात दिन चौकस रहते और तोप में पलीता लगते ही झडों के इशारे अँगरेजी फौज और लेडीस्मिथ के निवासियों को सूचित कर देते। अन्त में जनरल बूलर ने जाकर बोअर घेरे को तोड़ा और अँगरेजी सेना की रक्षा की। प्रभुसिंह की इस ऐतिहासिक वीरता का बदला उन्हें केवल यह मिला कि उनकी शर्त्तबन्दी की बाकी मीयाद पूरी कर दी गई। डरबन के टाउन-हॉल की एक सभा में उसकी कुछ शब्दों में प्रशसा भी कर दी गई और थोड़े-से रुपये इकट्ठा करके उन्हें दे दिये गये। इस सभा में गांधी भी उपस्थित थे और भारत के तत्कालीन बड़े लाट (लार्ड कर्जन ने

की बहादुरी के पुरस्कार-स्वरूप एक चोगा भेजा था। यह तो हुआ, पर अँगरेज इतिहासकारों ने बोअर-युद्ध के इतिहास में प्रभुसिंह और उनकी वीरता का उल्लेख करके अपनी कीर्ति का उज्ज्वल पृष्ठ बिगाड़ना उचित नहीं समझा।"

नवीन बृहत्तर भारत के निर्माण में जिन बिहारियों ने थोड़ा बहुत भाग लिया है उनमें मेरे पूज्य पिता स्वामी भवानीदयाल संन्यासी और मेरी स्वर्गीया माता श्रीमती जगरानी देवी का भी विशेष स्थान है।

अपने माता पिता की बड़ाई में कुछ कहना उचित नहीं, किन्तु उनके कार्यों का उल्लेख किये बिना यह विषय अधूरा ही रह जायगा।

सुप्रसिद्ध भारत हितैषी और लंडन के इंडियन ओवरसीज एसोसिएशन के मन्त्री श्रीपोलक साहब के शब्दों में मेरी माता "एक देशानुरागिणी और वीर महिला तथा भारतमाता की सच्ची दुहिता थीं।"

परलोकगत दीनबन्धु एंड्रूज ने यहाँ तक लिखा था—"वे उन महिलाओं में एक थीं जिनका आचरण कष्ट सहन के द्वारा निर्मित और विकसित होता है। वे सदा दरिद्र नर नारियों की ही चिन्ता किया करती थीं और उनकी सेवा करने को सदा समुद्यत रहती थीं। सबसे बड़ी प्रसन्नता उन्हें तब होती थी जब वे दरिद्र बालकों को पढ़ाती थीं और उनकी सेवा करती थीं। यह जानना आवश्यक है कि दक्षिण अफ्रिका में बहुत-से भारतीय, जो पहले नियम बद्ध मजदूर थे, अभी तक अभाव, अज्ञान और आपत्ति में फँसे हुए हैं। उनका मातृ-हृदय उनलोगों की शोचनीय दशा देखकर द्रवित हो जाता था और उनकी दुःखद स्थिति को दूर करने की वे सदा चेष्टा किया करती थीं। अपने इस कर्मक्षेत्र में ही वे सदा के लिये निद्रित हो गईं।"

सन् १९१३ ई० के दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह में भाग लेकर मेरी माता ने अपने प्रान्त बिहार को गौरवान्वित किया था। उन्हें तीन मास तक कठिन कारावास का दंड भोगना पड़ा था। प्रयाग के प्रसिद्ध हिन्दी-मासिक 'चाँद' के 'प्रवासी अङ्क' में उनका संक्षिप्त परिचय यों छपा था—

"सुदूर विदेशों में जिन पुण्यश्लोक आत्माओं ने भारतमाता के पवित्र गौरव की रक्षा और उसकी विपद्ग्रस्त सन्तानों की सेवा और सहायता के लिये आत्म बलिदान किया है, स्वर्गीया जगरानी देवी उनकी चूड़ामणि थीं। दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह-संग्राम में इन्होंने अपनी अलौकिक वीरता एवं अपूर्व तेजस्विता का परिचय देकर भारतीय मातृजाति का मुख उज्ज्वल किया था। इनके उज्ज्वल

देशानुराग को देखकर भारत के अनन्य प्रेमी श्रीयुत एड्रूज परिमुग्ध हो गये थे और उन्होंने इनके विषय में लिखा था—'ये दरिद्र और दलित के लिये ही जीवित रहीं तथा उन्हीं की सेवा में इन्होंने प्राणोत्सर्ग किया (she lived and died for the oppressed)' । सेवा धर्म की ये प्रतिमा थीं और इनका हृदय वात्सल्य रस से ओतप्रोत रहता था ।"

मेरे पिताजी ने भी विदेशों में विहार का बराबर मुखोज्ज्वल किया है। विहार की सर्वोत्तम विभूति और भारत के पिछले राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी के शब्दों में "हम विहारियों को इसका गौरव है कि स्वामी भवानीदयाल हमारे ही प्रदेश (विहार) के हैं और भारतीय होते हुए भी अपने प्रान्त को नहीं भूले हैं ।'

दीनबन्धु एड्रूज साहब ने लिखा था—' उन्होंने केवल दक्षिण अफ्रिका प्रवासियों की ही नहीं, जहाँ वे गत २६ वर्षों से प्रवास करते हैं, किन्तु ससार के अन्य भागों में रहनेवाले प्रवासी भारतीयों की भी महान् सेवा की है ।"

दक्षिण अफ्रिका में भारत सरकार के भूतपूर्व प्रतिनिधि कुँवर सर महाराज सिंह के कथनानुसार—"स्वामीजी एक उच्च चरित्र के, नम्र स्वभाव के और त्याग-भावनावाले ऐसे व्यक्ति हैं जो प्रशसा से परे हैं । उनमें महान् योग्यता और अनुभव है। न केवल दक्षिण अफ्रिका ही, बल्कि ससार के अन्य भागों के भी प्रवासी भारतीयों की सेवा करते रहने के कारण भारत में उनका नाम प्रतिष्ठा के साथ स्मरण किया जाता है ।"

विहार के हिन्दी-साहित्यसेवी श्रीशिवपूजनसहाय ने लिखा था—"स्वामीजी की सेवा केवल राजनीतिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक क्षेत्र में भी आपकी सेवाएँ स्तुत्य हैं। आपके आदर्श जीवन की यह चौमुखी प्रगति वास्तव में अतुलनीय है। उन्होंने अपनी मुक्ति के लिये सन्यास नहीं ग्रहण किया, स्वदेशबंधुओं की मुक्ति के लिये ही सासारिक सुखों का त्याग किया—चाहे वे स्वदेश-बधु स्वदेश में बसते हों या विदेश में, भारत में हों या भूमडल के विभिन्न भागों में ।'

वृहत्तर भारत के इतिहास में स्वामी भवानीदयाल का नाम अमर रहेगा और उनके साथ ही उनकी पितृभूमि—विहार का भी। अब स्वामीजी ने अजमेर के 'आदर्श नगर' में एक 'प्रवासी-भवन' बनाकर रहने का निश्चय कर लिया है, किन्तु वे चाहे भारत के किसी प्रान्त में रहें अथवा ससार के किसी भी भूभाग में, विहार के साथ उनका अटूट सम्बन्ध है और वह सदा बना रहेगा।

कुँवर सर महाराजसिंह (पृ० २६८)

बाईं ओर से बैठे हुए—श्रीरामजीवनदासजी, भवानीदयाल संन्यासी, श्रीशिवपूजन
खड़े—श्रीनारायणजी के साथ भवानीदयाल संन्यासी के
श्रीअच्युतानन्द दत्त, धर्मेन्द्रकुमार

श्रीनरेन्द्रनाथदास विद्यालङ्कार
दरभंगा—(पृष्ठ ५५३)

श्रीशिवनन्दनसहाय, बी ए
(धरहरवा, मुजफ्फरपुर)

श्रीपीताम्बर झा
[पृष्ठ ६७२ (ड)]

श्रीभोलालाल दास, बी ए , एल् एल् बी
(दरभंगा)—पृष्ठ ५५३

नटाल और मोरिशस, डमरारा और ट्रिनिडाड, सुरीनाम और फिजी, जमैका और बर्मा में प्रवासी बिहारियों की काफी संख्या है। वे वहाँ कुली कबाडी के रूप में गये सही, किन्तु आज उन्होंने पर्याप्त सम्पत्ति और प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है।

मोरिशस में माननीय आर० गजाधर सबसे प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। वे वहाँ की कौंसिल के सदस्य हैं। प्रथम श्रेणी के जमींदार और सम्पन्न किसान भी हैं। वहाँ के सार्वजनिक क्षेत्र में उनकी बडी प्रतिष्ठा है। वे बिहारी हैं। गया जिले के रहनेवाले हैं। प्रसिद्ध पूँजीपति हैं।

मोरिशस के तीन लाख हिन्दुस्तानियों में बिहारियों की बहुत बड़ी संख्या है। उनमें कितने ही उच्चशिक्षाप्राप्त और धनी व्यवसायी हैं।

ट्रिनिडाड के रेवरेंड सी० डी० लाला वहाँ की कौंसिल के मेम्बर हैं। बिहार के ही निवासी हैं। उनके पिता आरा जिले से ही वहाँ गये थे और मिशनरियों के पंजे मे फँसकर ईसाई हो गये थे।

फिजी की कौंसिल के वर्त्तमान सदस्य श्रीचतुरसिंह के पिता भी आरा-जिले के ही निवासी थे। फिजी द्वीप में और भी कितने ही बिहारी हैं, जो बडे प्रभावशाली, सुशिक्षित और धनाढ्य व्यापारी हैं।

आज उपनिवेशों में बिहारियों के कितने ही वंशज कौंसिल के मेम्बर हैं, पूँजीपति व्यापारी हैं, वकील हैं, बैरिस्टर हैं, डाक्टर हैं, एडिटर हैं, प्रोफेसर हैं और नवीन बृहत्तर भारत के निर्माण में काफी हिस्सा ले रहे हैं। इस लेख में उन सबका परिचय देना असम्भव है, किन्तु दुःख की बात यही है कि उनमें से अधिकांश अपने बिहार को भूल गये और भूल रहे हैं। भारत से उनका सम्बन्ध दिन दिन इतनी दूर होता जा रहा है कि शायद दो चार पुश्तों के बाद उनको बिहार का नाम भी याद न रह जायगा।

बर्मा प्रान्त भारत के निकट ही है। कुछ ही दिन पहले वह भारत का ही एक अंश था, पर अब भारत का अंगच्छेद करके वह पृथक् कर दिया गया। फिर भी जो भारतीय वहाँ बस गये हैं उनके लिये वहाँ कोई खास खतरा नहीं है। बिहार की प्रसिद्ध रियासत 'डुमराँव' के भूतपूर्व दीवान स्वर्गीय जयप्रकाशलालजी के सुपुत्र रायबहादुर हरिहरप्रसादसिंह (हरीजी) के उद्योग से बर्मा में बहुत-से बिहारी जा बसे हैं। श्रीहरीजी भी अब प्राय वहीं रहा करते हैं। किन्तु सुदूरवर्ती उपनिवेशों में जा बसनेवाले बिहारियों की अवस्था बिलकुल भिन्न है—बिहार से बहुत दूर जा बसने के कारण उनका भविष्य चिन्ताजनक है।

गुजरातियों ने अपना सम्बन्ध स्वदेश से बना रक्खा है, किन्तु बिहारियों, मद्रासियों और युक्तप्रान्तवासियों ने अपने प्रान्त और अपने देश से नेह-नाता तोड़ डाला है।

उपनिवेशों में सभी हिन्दी-भाषा-भाषी 'कलकतिया' नाम से पुकारे जाते हैं—यद्यपि कलकत्ता से उनका उतना ही सम्बन्ध है जितना किसी मराठी का बम्बई से। किन्तु कलकत्ता से जहाज पर सवार होकर टापुओं में आने के कारण सभी हिन्दी भाषाभाषी 'कलकतिया' बन गये हैं! इसी प्रकार तमिल, तेलगु, मलयालम्, कनाड़ी आदि दक्षिणभारतीय भाषाओं के बोलनेवाले 'मद्राजी' कहे जाने लगे और गुजराती तथा मराठी भाषाओं के बोलनेवाले 'बम्बैया'। इसलिये हिन्दी भाषियों में बिहारियों का पता लगाना कठिन होता है।

कुछ भी हो, इस समय संसार के भिन्न भिन्न देशों और उपनिवेशों में बहुत-से बिहारी भी जा बसे हैं, जिन्हें हम प्रवासी बिहारी के नाम से पुकारते हैं। उन्होंने केवल एक ही सदी में कल्पनातीत उन्नति कर ली है। उनमें कई तो ऐसे अमूल्य रत्न हैं जिनपर बिहार साभिमान सिर ऊँचा कर सकता है।

ध्यान रहे कि प्रवासी बिहारी विदेशों में भी बिहार के प्रतिनिधि-स्वरूप हैं। इनके आचार, विचार और व्यवहार को देखकर ही संसार के लोग बिहार के सम्बन्ध में अपनी धारणा बनाते हैं। अतएव ऐसा प्रयत्न होना चाहिये कि ये प्रवासी बिहारी महान् बिहार के सुयोग्य प्रतिनिधि सिद्ध हों और ससार में बिहार की कीर्त्ति-पताका फहराते रहें। भारतीय बिहारियों को चाहिये कि वे अपने प्रवासी भाइयों को कभी न भूलें और उन्हें अपने प्रेम की शृंखला में सदा आबद्ध रक्खें।

वैशाली के लिच्छवि

पण्डित गिरिधारी लाल शर्मा गग, बी० ए० (ऑनर्स), पटना सिटी

स्वनामधन्य इतिहासकार विंसेंट स्मिथ की धारणा है कि वैशाली के लिच्छवियों का रक्त सम्बन्ध तिब्बतियों से था ⁂। उनके प्रतिपादित सिद्धान्त के दो आधार हैं। उनका कहना है, लिच्छवियों में यह प्रथा थी कि वे अपने मृतकों को यों ही जंगल में फेंक दिया करते थे, और यह प्रथा तिब्बत में आज भी प्रचलित है। दूसरा आधार लिच्छवियों की न्याय प्रणाली है, जिसके सम्बन्ध में उनकी धारणा है कि तिब्बत में प्रचलित न्याय प्रणाली से उसकी बहुत कुछ समानता है।

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय काशीप्रसाद जायसवालजी ने इन दोनों तर्कों का सफलतापूर्वक खंडन कर दिया है। स्मिथ के कथन का आधार चीन देश में प्रचलित यह प्राचीन दंत-कथा है कि महात्मा बुद्ध ने वैशाली में बहुत-से वृक्षों के नीचे एक श्मशान या मृतक स्थान देखा था और उस मृतक-स्थान के सम्बंध में ऋषियों ने उनसे कहा था—"इस स्थान पर लोगों के मृत शरीर पक्षियों के खाने के लिये फेंक दिये जाते हैं, और, आप जैसा देख रहे हैं, यहाँ लोग मृतकों की सफेद हड्डियाँ चुन चुनकर ढेर लगाते हैं। यहाँ लोग मृतकों की दाह-क्रिया भी करते हैं और उनकी हड्डियों के ढेर भी लगाते हैं। वे वृक्षों में शव लटका भी देते हैं। जो लोग निहत होते हैं, अथवा अपने सम्बंधियों के द्वारा मार डाले जाते हैं, वे यहाँ गाड़ भी दिये जाते हैं। कारण, उनके सम्बंधियों को भय रहता है कि कहीं ये लोग फिर से जीवित न हो जायें। और, कुछ शव यहाँ यों ही छोड़ दिये जाते हैं—इसलिये कि सम्भव हो तो वे फिर लौटकर अपने घर आ जायें।" †

⁂ इण्डियन एण्टीक्वेरी, १९०३, पृ० ११३—३५

† Romantic Legend of Sakja Buddha

यही वह वाक्य है, जिसके आधार पर स्मिथ साहब ले उड़े कि लिच्छवियों का मूल तिब्बती है। परन्तु, यह वाक्य ऐतिहासिक प्रमाण के रूप में निर्विवाद-रूप से ग्रहण नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि यह वाक्य एक ऐसी दंतकथा से लिया गया है, जो बुद्ध के समय के लगभग एक हजार वर्ष बाद की है।

थोड़ी देर के लिये यदि हम इस वाक्य को इसी रूप में मान भी लें, तो भी कोई हर्ज नहीं। इस वाक्य में एक साधारण श्मशान का ही तो वर्णन है। हिन्दूधर्मशास्त्रों में स्पष्ट उल्लेख है कि कुछ अवस्थाओं में शव जलाया नहीं जाता—या तो वह गाड़ दिया जाता है या यों ही फेंक दिया जाता है।

संस्कृतनाटकों तथा कथानकों में ऐसी कथाएँ हैं कि प्राचीन काल में लोगों को श्मशान में फाँसी दी जाती थी। और, अबतक ऐसा रिवाज है—लोग इस आशा से शव को यों ही फेंक देते हैं कि कदाचित् वह जी उठे।

अब दूसरा तर्क स्मिथ का यह है कि दोनों की न्याय प्रणाली में बहुत अधिक समानता है। परन्तु यह तर्क भी अधिक देर ठहरता दिखाई नहीं देता। लिच्छवियों की शासन प्रणाली महाभारत में बतलाई गई 'गण' की न्याय प्रणाली से बहुत मिलती-जुलती है। लिच्छवियों की न्याय-प्रणाली के आधार वे ही नियम हैं, जो गणों में प्रचलित थे।

यूनानी इतिहासज्ञ टॉलेमी का दूसरा ही मत है। उसका कहना है—"ऐसा मालूम होता है कि लिच्छवि लोग भारतवर्ष में 'निसिबिस' से आये जो भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर में प्राचीन 'एरिया' (आधुनिक 'हिरात') का एक प्रधान नगर था।"

कुछ आधुनिक विद्वानों का कहना है कि मनुस्मृति में * लिच्छवि के स्थान पर 'निच्छवि' शब्द आया है, जो टॉलेमी के 'निसिबिस' से कुछ मिलता-जुलता सा है। टॉलेमी यह भी लिखता है कि भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर में 'निसेई' अथवा 'निसिवि' नाम की एक जाति उस समय बसती थी। मेगास्थनीज ने भी 'नेसेई' नाम की एक जाति का वर्णन अपने भ्रमण-वृत्तान्त में किया है। यह शब्द भी 'निच्छवि' या 'लिच्छवि' से मिलता-जुलता-सा है। अत कुछ इतिहासज्ञ तो इस निष्कर्ष पर निश्चयात्मक-रूप से पहुँच गये हैं कि लिच्छवियों का रक्त सम्बन्ध किसी विदेशी जाति से था।

परन्तु, उनकी यह धारणा नितान्त भ्रमात्मक है। लिच्छवि लोग राष्ट्रीय दृष्टि

* झल्लोमल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छविरेव च।—मनु०

से भारतवासी ही थे। विदेह और लिच्छवि दोनों एक ही राष्ट्रीय नाम 'वृजि' से प्रसिद्ध थे। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि लिच्छवि और विदेह दोनों ही जातियाँ या तो एक ही राष्ट्र की दो शाखाएँ थीं या एक ही जाति की। 'शतपथ ब्राह्मण' (१ ४ १ १०.) में स्पष्ट उल्लेख है कि वैदिक विदेहों ने उत्तरी बिहार में उपनिवेश स्थापित किया था। यदि विदेह लोगों को हम शुद्ध हिन्दू (आर्य) मानने को तैयार हैं, तो फिर कोई ऐसा कारण नहीं दीख पड़ता कि उन्हीं के राष्ट्र या जाति की दूसरी शाखा को हम वर्बर मान लें। अंगुत्तर-निकाय में लिच्छवियों के सबन्ध में भी अन्यान्य क्षत्रिय शासकों की भाँति 'अभिषित्त' शब्द का प्रयोग किया गया है।

सिगाल-जातक से सिद्ध है कि ईसा के पूर्व की तीसरी या चौथी शताब्दी में लिच्छवि लोग बहुत प्रसिद्ध और उच्चकुल के गिने जाते थे। 'जातक' पाली भाषा का बहुत प्राचीन ग्रंथ है। रीज़ डेविड्स साहब के मतानुसार जातक कथाओं का रचना काल ईसा के पूर्व की तीसरी या चौथी शताब्दी है। शृगाल जातक के उस अंश का यहाँ उल्लेख कर देना अनुचित न होगा, जिसमें लिच्छवियों का प्रसग है—

"वेसालिवासिको एको नहापितो एकदिवस राजनिवेसने कम्म कातु गच्छन्तो अत्तनो पुत्त गहेत्वा गतो। सो पुत्तो तत्थ एक लिच्छविकुमारिक दिस्वा किलेसवसेन परिबद्धचित्तो हुत्वा पितरा सद्धिं राजनिवेसना निक्खमित्वा—एत कुमारिकं लभमानो जीविस्सामि, अलभमानस्स मे एत्थ एव मरण इति। आहारुपच्छेदं कत्वा भवक परिसज्जित्वा निपज्जि। अथ न पिता उपसकमित्वा तात, हीनजच्चो त्वं नहापितपुत्तो, लिच्छविकुमारिका खत्तियधीता जातिसम्पन्ना, न सा तुम्ह अनुच्छविका। अञ्ञं ते जातिगोत्तेहि सदिस कुमारिक आनेस्सामीति—आह। सो पितु कथ न गण्हाति। अथ नं माता, भाता, भगिनि सब्बेपि आजातका चेव मित्तसुहज्जा च सन्निपतित्वा सञ्ञपेन्तापि सञ्ञापेतु नासक्खिसु। सो तत्थ एव जीवितक्खय पापुणि।"

अर्थात्—वैशाली का रहनेवाला एक नाई, एक दफा, राजा के महल में हजामत बनाने के लिये, अपने पुत्र के साथ, गया। उसका पुत्र वहाँ एक सुन्दरी लिच्छवि कुमारी को देखकर उसपर प्रेमासक्त हो गया। राजप्रासाद से पिता के साथ जब वह बाहर निकला तब अपने पिता से कहने लगा—"यदि वह लिच्छवि कुमारिका मुझे मिलेगी तो मैं जीऊँगा, नहीं तो अपने प्राण त्याग दूँगा।" यह कहकर वह आहार छोड़कर सो गया। तब उसका पिता समझाने लगा—"तात!

से भारतवासी ही थे। विदेह और लिच्छवि दोनों एक ही राष्ट्रीय नाम 'वृजि' से प्रसिद्ध थे। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि लिच्छवि और विदेह दोनों ही जातियाँ या तो एक ही राष्ट्र की दो शाखाएँ थीं या एक ही जाति की। 'शतपथ ब्राह्मण' (१ ४ १ १०,) में स्पष्ट उल्लेख है कि वैदिक विदेहों ने उत्तरी बिहार में उपनिवेश स्थापित किया था। यदि विदेह लोगों को हम शुद्ध हिन्दू (आर्य) मानने को तैयार हैं, तो फिर कोई ऐसा कारण नहीं दीख पड़ता कि उन्हीं के राष्ट्र या जाति की दूसरी शाखा को हम बर्बर मान लें। अंगुत्तर निकाय मे लिच्छवियों के सबन्ध में भी अन्यान्य क्षत्रिय शासकों की भाँति 'अभिषित्त' शब्द का प्रयोग किया गया है।

सिगाल-जातक से सिद्ध है कि ईसा के पूर्व की तीसरी या चौथी शताब्दी में लिच्छवि लोग बहुत प्रसिद्ध और उच्चकुल के गिने जाते थे। 'जातक' पाली भाषा का बहुत प्राचीन ग्रंथ है। रीज डेविड्स साहब के मतानुसार जातक कथाओं का रचना काल ईसा के पूर्व की तीसरी या चौथी शताब्दी है। शृगाल जातक के उस अंश का यहाँ उल्लेख कर देना अनुचित न होगा, जिसमें लिच्छवियों का प्रसंग है—

"वेसालिवासिको एको नहापितो एकदिवस राजनिवेसनं कम्म कातु गच्छन्त। अत्तनो पुत्त गहेत्वा गतो। सो पुत्तो तत्थ एक लिच्छविकुमारिक दिस्वा किलेसवसेन परिबद्धचित्तो हुत्वा पितरा सद्धिं राजनिवेसना निक्खमित्वा—एत कुमारिकं लभमानो जीविस्सामि, अलभमानस्स मे एत्थ एव मरण इति। आहारुपच्छेदं कत्वा मवक परिसज्जित्वा निपज्जि। अथ न पिता उपसकमित्वा तात, हीनजच्चो त्वं नहापितपुत्तो, लिच्छविकुमारिका खत्तियधीता जातिसम्पन्ना, न सा तुम्ह अनुच्छविका। अञ्ञं ते जातिगोत्तेहि सदिस कुमारिक आनेस्सामीति—आह। सो पितु कथ न गण्हाति। अथ नं माता, भाता, भगिनि सब्बेपि आजातका चेव मित्तसुहज्जा च सन्निपतित्वा सञ्ञपेन्तापि सञ्ञापेतु नासक्खिसु। सो तत्थ एव जीवितक्खय पापुणि।"

अर्थात्—वैशाली का रहनेवाला एक नाई, एक दफा, राजा के महल में हजामत बनाने के लिये, अपने पुत्र के साथ, गया। उसका पुत्र वहाँ एक सुन्दरी लिच्छवि कुमारी को देखकर उसपर प्रेमासक्त हो गया। राजप्रासाद से पिता के साथ जब वह बाहर निकला तब अपने पिता से कहने लगा—"यदि वह लिच्छवि कुमारिका मुझे मिलेगी तो मैं जीऊँगा, नहीं तो अपने प्राण त्याग दूँगा।" यह कहकर वह आहार छोड़कर सो गया। तब उसका पिता समझाने लगा—"तात!

तुम हीनजाति के—नाई के—लड़के हो, और वह लिच्छवि-कुमारिका क्षत्रिय-कन्या तथा उच्च कुल की है। वह तुम्हारे योग्य नहीं। तुम्हारे लिये कोई दूसरी कुमारी ढूँढ देंगे, जो जातिकुल में तुम्हारे अनुरूप होगी।" इसी तरह माता, भ्राता, भगिनी इत्यादि सभी समझाकर थक गये, किन्तु उसने एक की भी न सुनी। बिना अन्नजल के उसने प्राण त्याग दिये।

समस्त बौद्ध-साहित्य में लिच्छवियों को एकस्वर से उत्तम क्षत्रिय कहा है। बौद्धग्रन्थों में उनकी बड़ी महिमा गाई गई है। बौद्धधर्म के इतिहास में इस जाति का बड़ा नाम है। लिखा है—बुद्ध के निर्वाण के बाद उनकी अस्थियों के आठ भाग किये गये। बुद्ध का निर्वाण काल ईसा के पूर्व ४८७ में निश्चित किया गया है। जब अस्थियों का विभाजन होने लगा तब लिच्छवियों ने भी अपना दूत कुशीनगर भेजा और उसके द्वारा कहलवाया कि भगवान् बुद्ध क्षत्रिय थे और हमलोग भी क्षत्रिय हैं, इसलिये हमलोगों को भी बुद्ध की अस्थियों का एक भाग मिलना चाहिये।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि वही लिच्छवि जाति, जो मनुस्मृति में व्रात्य * गिनी गई है, यहाँ क्षत्रिय होने का दावा करती है।

जायसवाल महोदय का कहना है—"लिच्छवि शब्द 'लिच्छु' से निकला है। अर्थात् वे लोग 'लिच्छु' के अनुयायी या वंशज थे। संस्कृत में इस शब्द का रूप 'लिक्षु' होगा। 'लिक्ष' शब्द का अर्थ है चिह्न, और 'लिक्षु' शब्द उसीसे सम्बद्ध है। उनका यह नाम संभवतः उनकी आकृति के किसी विशेष चिह्न के कारण पड़ा होगा। 'लक्ष्मण' शब्द इस बात का एक दूसरा उदाहरण है। बिहार और दुआब में अब तक लोगों का नाम 'लच्छू' होता है, जो इसी बात का सूचक है कि जिस व्यक्ति के शरीर पर कोई बड़ा काला या नीला चिह्न होता है, प्रायः उसका यह नाम पड़ जाता है।"†

कुछ शिलालेखों से पता लगता है कि लिच्छवि सूर्यवंशी थे। प्राचीन मगध का शिशुनाग वंश ही पहला राजवंश है, जिसके विषय में ऐतिहासिक प्रमाण काफी

* झल्लो मल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छिविरेव च।
नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च॥

हिन्दूशास्त्रों में व्रात्य वह कहा गया है जो संस्कार, और प्रधानतया यज्ञोपवीत-संस्कार, न करने से जातिच्युत हो गया हो।

† Hindu Polity

तौर पर मिलते हैं। ईसवी सन् के पूर्व की छठी शताब्दी में, इस वंश का पाँचवाँ राजा बिम्बिसार हुआ। उसने शिशुनागवंश की ख्याति खूब बढाई। नवीन राजगृह की नींव उसीने डाली और अंग देश को जीतकर अपने राज्य में मिलाया। उसने दो विवाह किये—एक तो कोशल देश की राजकन्या से और दूसरा लिच्छवियों की राजकन्या से। सर्वप्रथम लिच्छवियों का जिक्र हमें इसी संबंध में मिलता है। बिम्बिसार की दूसरी रानी—अर्थात् लिच्छवियों की राजकन्या—के गर्भ से बौद्ध इतिहास प्रसिद्ध अजातशत्रु (कुनिक) का जन्म हुआ। कहते हैं कि यह अजातशत्रु अपने पिता को मारकर राज्य का स्वामी बन बैठा। उस समय शिशुनाग वंश का शासन राजगृह, अंग और मगध पर था। अजातशत्रु ने लिच्छवियों का देश—आधुनिक तिरहुत—भी जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। बौद्धग्रन्थों में उल्लेख है कि अजातशत्रु ने भगवान् बुद्ध के सम्मुख अपने समस्त पापों को स्वीकृत कर लिया था और उसके लिये प्रायश्चित्त भी किया था। अन्त में वह तथागत का शिष्य हो गया। प्रसिद्ध जैन तीर्थङ्कर महावीर' की माता भी लिच्छवि वंश की थी।

इस समय के बाद करीब आठ सौ वर्षों तक—ईसा के पूर्व ५०० वर्षों से ईसा के बाद ३०० वर्षों तक—लिच्छवि वंशवालों का जिक्र इतिहास में बिलकुल नहीं मिलता, ईसवी सन् की चौथी शताब्दी में वे एकाएक फिर इतिहास में दिखाई पडते हैं। ईसवी सन् ३०८ के लगभग गुप्तवंशी राजा चन्द्रगुप्त (प्रथम) ने लिच्छवि वंश की कन्या कुमारदेवी से विवाह किया। यह विवाह राजनीतिक दृष्टि से बडे महत्त्व का था। सच पूछिये तो इस विवाह से गुप्तवंश के भाग्य खुल गये।

ऐसा मालूम होता है कि जिस समय यह विवाह हुआ उस समय मगध का आधिपत्य लिच्छवियों के हाथ में था। हर्ष-संवत् १५३ (ई० सन ७५६) के एक लेख से इनका राज्य पुष्पपुर (पटना) में भी होना प्रकट होता है। चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी के विवाह संबंध से वह राजशक्ति, जो अबतक लिच्छवियों के हाथ में थी, चन्द्रगुप्त (प्रथम) के हाथ में चली गई। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस विवाह सम्बंध द्वारा चन्द्रगुप्त (प्रथम) एक छोटे जागीरदार से बढ़कर 'महाराजाधिराज' हो गया।

इस अनुमान का एक कारण है। चन्द्रगुप्त (प्रथम) के समय के एक प्रकार के (विवाह सूचक) सिक्के मिलते हैं। इनपर एक तरफ चन्द्रगुप्त (प्रथम) और उसकी रानी कुमारदेवी दोनों खड़े हैं। इनके निकट ही इनके नाम भी लिखे हैं। दूसरी तरफ भी सिंह पर बैठी हुई अम्बिका देवी का चित्र अंकित है और पास

ही 'लिच्छविय' लिखा है। समुद्रगुप्त तथा अन्य गुप्तवंशी राजा भी बड़े अभिमान के साथ अपनेको 'लिच्छविदौहित्र' लिखते पाये जाते हैं।

इन बातों से तो यही अनुमान होता है कि लिच्छवि-वंश के संबंध को गुप्तवंशी राजा बड़े सौभाग्य की बात समझते थे। तभी तो समुद्रगुप्त और उसके वंशजों ने चन्द्रगुप्त के इस संबंध को बड़े गर्व के साथ प्रकट किया है। इसमें तो कोई शक नहीं कि उस समय भी लिच्छवि वंश प्राचीन और श्रेष्ठतम राजवंशों में गिना जाता था।

इसके अनन्तर फिर ई० सन् ६३५ के लगभग इस वंश के राजाओं के राज्य का पूर्वी नैपाल में होना पाया जाता है। परन्तु, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है कि ये नैपालवाले राजा वैशालीवाली शाखा के ही थे, या उसी वंश की किसी अन्य शाखा के। कुछ इतिहासज्ञों का अनुमान है कि लिच्छवि-वंश की नैपालवाली शाखा ने ई० सन् १११ से अपना संवत् भी प्रचलित किया था। जिस समय ये लिच्छवि पूर्वी नैपाल पर राज करते थे, उसी समय पश्चिमी नैपाल पर ठाकुरी-वंश के राजाओं का प्रभुत्व था। यह भी पता लगता है कि इन दोनों कुलों का प्रभाव कभी घटता और कभी बढ़ता रहा।

काठमाण्डू (नैपाल) में पशुपति के मन्दिर के पश्चिमीय द्वार के सामने एक नन्दी रक्खा हुआ है। इसी के समीप हर्ष संवत् १५३ (वि० सं० ८१६) का लेख लगा है *। यह राजा जयदेव (परचक्रकाम) के समय का है।

इस शिलालेख से पता लगता है कि लिच्छवि जाति नैपाल में इतनी शक्ति सम्पन्न हो गई थी और उन्नति के इतने ऊँचे शिखर पर पहुँच गई थी कि वह वहाँ सूर्यवंश की एक शाखा समझी जाने लगी थी। शिलालेख में राजाओं की वंशावली इस प्रकार दी गई है—

"सूर्यवंश में मनु आदि के बाद राजा दशरथ हुआ। उससे नवाँ राजा लिच्छवि था। उसके वंश में राजा सुपुष्प हुआ। इसका जन्मस्थान पुष्पपुर (पाटलिपुत्र) था। इसके बाद चौबीसवाँ राजा जयदेव हुआ। इसकी बारहवीं पीढ़ी में राजा वृषदेव हुआ। यह बुद्ध का भक्त था। इसके बाद क्रमशः शंकरदेव, धर्मदेव, मानदेव, महीदेव और वसन्तदेव राजा हुए। इनके बाद फिर क्रमशः उदयदेव, नरेन्द्रदेव, शिवदेव (द्वितीय) के नाम लिखे हैं। इस शिवदेव (द्वितीय)

* इण्डियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द ९, पृष्ठ १७८।

'वैशाली' (मुजफ्फरपुर) में प्राप्त— मिट्टी की, पकाई हुई, मूर्ति का, कमर के नीचे का, हिस्सा।

'वैशाली' (मुजफ्फरपुर) में प्राप्त— मिट्टी की, पकाई हुई, मूर्ति का सिर।

☞ 'वैशाली' (मुजफ्फरपुर) के निकट 'कोल्हुआ' नामक गाँव का अशोक-स्तम्भ, जिसे अब लोग 'भीम की लाठी' कहकर पुकारते हैं। इसकी ऊँचाई ३६ फीट और नीचे की गोलाई ४९ ८ इंच से शुरू होकर ऊपर ३८ ७ इंच में खतम हुई है। ऊपर सिंह की सजीव सी मूर्ति है जिसका रुख उत्तर की ओर है। इसे अशोक ने, अपने राज्य के २१ वें वर्ष में, अपनी बुद्धतीर्थयात्रा के सिलसिले में, बनवाया था।

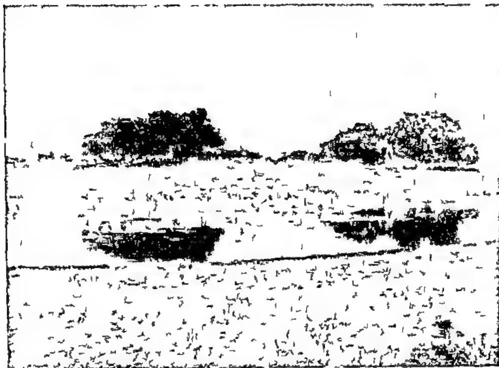

वैशाली (मुजफ्फरपुर) के चारों ओर, शायद नगर रक्षा के लिये बनाई गई खाड, जिसकी चौडाई २०० फीट तक की थी, किन्तु अब चौडाई सिर्फ १५० फीट रह गई है, जिसमें अधिकतर खेती होती है।

भारत के प्राचीनतम प्रजातन्त्र-राज्य 'वैशाली' (मुजफ्फरपुर) का भग्नावशेष, जो लगभग एक मील के घेरे मे है। यहीं बुद्ध ने अपने निर्वाण की भविष्यवाणी की थी, और यहीं बौद्धधम की द्वितीय 'संहति' बैठी थी। साधारणत यह 'राजा विशाल का गढ' के नाम से प्रसिद्ध है।

का विवाह मौखरी-राजा भोगवर्मा की कन्या वत्सदेवी से हुआ था। यह वत्सदेवी मगध देश के राजा आदित्यसेन की नतनी थी। इसीके गर्भ से जयदेव उत्पन्न हुआ। इसकी उपाधि 'परचक्रकाम' थी। इसने गौड़, ओड़, कलिंग और कोशल के राजा हर्षदेव की कन्या राज्यमती से विवाह किया था। यह हर्षदेव भगदत्त के वंश में था।"

इसके बाद अनेक राजा इस वंश में हुए।

गुप्तवंशी राजाओं के समय से, विशेषकर भारतवर्ष में, लिच्छवि वंश का क्या हाल हुआ, यह अतीत के गर्भ में छिपा पड़ा है। गुप्तकाल में, हिन्दूधर्म के पुनरुज्जीवन के साथ ही साथ, हिन्दुओं की प्राचीन वर्ण व्यवस्था का भी पुनरुद्धार अवश्य हुआ होगा। कदाचित् इसी समय वैशाली के प्राचीन लिच्छवि वंश ने भी बौद्धधर्म को छोड़कर हिन्दूधर्म स्वीकार कर लिया। और, यही कारण है कि प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग अपनी भारतयात्रा के वर्णन में लिखता है—

"ईसा की सातवीं शताब्दी में वैशाली में बौद्धधर्म अपनी क्षीण दशा में था और हिन्दूधर्म का प्रचार बढ़ रहा था।"

वैशाली का वर्णन करते हुए उसने आगे लिखा है—"इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग पाँच हजार 'ली' है। • विरोधी और बौद्ध दोनों मिलजुलकर रहते हैं। कई सौ संघाराम यहाँ हैं। परन्तु सब-के-सब खँडहर हो गये हैं। • वैशाली का प्रधान नगर अत्यन्त अधिक उजाड़ है। इसका क्षेत्रफल ६० से ७० 'ली' तक और राजमहल का विस्तार ४ या ५ 'ली' के घेरे में है। बहुत थोड़े से लोग इसमें निवास करते हैं।"

ह्वेनसांग से करीब तीन सौ वर्ष पहले प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान भी वैशाली आया था। उसने वैशाली का वर्णन करते हुए लिखा है—" ••• वैशाली नगर के उत्तर एक महावन कूटागार विहार है—बुद्धदेव का निवासस्थान है—आनन्द का अर्द्धांगस्तूप है। नगर में अम्बपाली वेश्या रहती थी, उसने बुद्धदेव का स्तूप बनवाया—अबतक वैसा ही है। नगर के दक्षिण तीन 'ली' पर अम्बपाली वेश्या का बाग है जिसे उसने बुद्धदेव को दान दिया कि वे उसमें रहें। बुद्धदेव परिनिर्वाण के लिये जब सब शिष्यों सहित वैशाली नगर के पश्चिम द्वार से निकले तब दाहिनी ओर वैशाली नगर को देखकर शिष्यों से कहा, यह मेरी अन्तिम विदा है। पीछे लोगों ने वह स्तूप बनवाया ••• ••• ।"

ईसा की सातवीं शताब्दी से लेकर आजतक, प्राचीन वर्णव्यवस्था में

धार्मिक और सामाजिक तथा राजनीतिक भेदों के आधार पर, इतने परिवर्त्तन हुए हैं कि इस समय भारतवर्ष में लिच्छवि वंश का कोई चिह्न भी बाकी नहीं है।

परन्तु लिच्छवि वंश अपनी एक अमर कीर्त्ति छोड़ गया है। पश्चिमवाले आज प्रजातन्त्र और गण-शासन की रट लगाया करते हैं। वे अपनेको इन महान् सिद्धान्तों का जन्मदाता समझते हैं। लेकिन उन्हें पता नहीं कि आज से कई हजार वर्ष पहले बिहार की 'वैशाली' में प्रजातन्त्र का जीता-जागता ढाँचा मौजूद था। तब शायद उन्होंने इन सिद्धान्तों का स्वप्न भी न देखा होगा।

'जातक' में स्पष्ट रूप से लिखा है—"वेसालि नगरे गणराजकुलाना अभिसेक पोक्खरणीम्"—लिच्छवियों को गणशासक अर्थात् प्रजातन्त्री कहा है।

'अट्ठ-कथा' में लिच्छवियों की राज्यव्यवस्था का विस्तृत विवरण मिलता है। उसमें तीन मुख्य अधिकारियों—राजा, उपराज और सेनापति—का उल्लेख है। इससे भी पहले के एक ग्रंथ में एक चौथे अधिकारी का भी उल्लेख है जो 'भांडागारिक' कहलाता था। इन्हीं चारों का सर्वप्रधान शासनकारी मंडल होता था।

'जातक' में यह भी लिखा है कि राजधानी 'वैशाली' नगरी में थी और उसमें तीन प्रकार के वंधन होते थे। शासन (रज्जम्) अधिवासियों के हाथों में था, जिनकी संख्या ७७०७ थी और जिनमें से प्रत्येक शासक (राजानम्) होने का अधिकारी होता था। इन्हीं लोगों में से राजा, उपराजा, सेनापति तथा भांडागारिक का चुनाव होता था।*

राजा ही सर्वप्रधान न्यायकर्त्ता भी होता था। न्याय विभाग में एक वैतनिक मंत्री होता था, जो बाहरी या दूसरे देश का भी हो सकता था। नागरिकों की स्वतंत्रता का बहुत ध्यान रक्खा जाता था। मुकदमों की आरंभिक जाँच पड़ताल करने के लिये न्यायाधीशों (विनिच्चय महामात्त) का एक स्वतंत्र न्यायालय होता था। इसी में दीवानी तथा साधारण फौजदारी के मुकदमे भी सुने जाते थे। सर्व प्रधान न्यायालय या हाइकोर्ट के न्यायाधीश 'सूत्तधर' कहलाते थे। लेकिन इन सब के ऊपर एक कौंसिल और भी होती थी, जिसमें आठ न्यायकर्त्ता होते थे। इस कौंसिल को 'अष्टकुलक' कहते थे। अपराधी को अधिकार होता था अपील करने का।

*"तत्थ निच्चकाल रज्ज कारेत्वा वसतान एव राजून सत्तसहस्सानि सत्तसतानि सत्त च। राजानो होंति तत्तका, ये च उपराजानो तत्तका सेनापतिनो तत्तका, तत्तका भंडागारिको।" —जातक

बौद्धग्रंथों और लेखों से पता लगता है कि विदेहों और लिच्छवियों ने मिलकर एक 'सयुक्त सघ (लीग) ' की स्थापना की थी। दोनों मिलकर 'सवज्जी' कहलाते थे, जिसका तात्पय है आपस म सयुक्त वज्जी लोग। ❀

यही नहीं, एक जैन लेख से तो पता लगता है कि एक बार लिच्छवियों का इसी प्रकार का मेल उनके पड़ोसी मल्लों के साथ भी हुआ था। इस सयुक्त कौंसिल में अठारह सदस्य थे, जिनमें नौ 'लेच्छकी' और नौ 'मल्लकी' थे। इस कौंसिल के सदस्य 'राजा' कहे जाते थे। डाक्टर जैकोबी ने इन सदस्यों को 'अठारह सयुक्त राजा' कहा है। कहते हैं, यह सयुक्त कौंसिल ई० पू० ५४५ या ५२७ तक बनी रही थी। कुछ प्राचीन ग्रथों से यह भी मालूम होता है कि इस कौंसिल का कोशल के राजा से भी किसी प्रकार का राजनीतिक समझौता या मेल था। +

❀ Buddhist India, Page 22

+ Hindu Polity

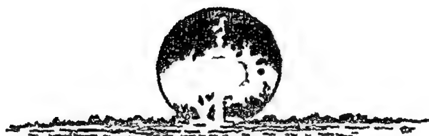

मौलिक स्मारक
श्रीपाठक।

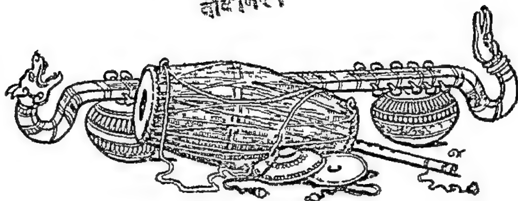

बिहार और संगीत-कला

श्रीमुरारिप्रसाद ऐडवोकेट, पटना हाइकोर्ट

संगीत

'सगीत' शब्द का अर्थ है एक सङ्ग होकर गाना बजाना (सम्=एक साथ+गीत=गाया गया)। 'सगीतरत्नाकर' कहता है—"गीत वाद्य तथा नृत्य त्रय सगीतमुच्यते"—अर्थात् गाना, बजाना और नाचना, तीनों मिलकर सगीत कहलाते हैं। और, यत नृत्य के साथ अभिनय (भाव बताना) एक अविच्छिन्न अग रहता है, इसलिये कोई कोई लास्य—भाव बताने या अभिनय करने—को भी चौथा साथी मानते हैं—"केचित् लास्य चतुथक।"

इस देश में गवैयों के अभ्यास-समय (रेयाज या Practice) को छोड़ और कोई ऐसा समय नहीं जब उनका गाना लय के साथ न होता हो, और अभ्यास करने के समय भी कभी-कभी तबला या मृदग बजता है।

सगीत का पूरा दृश्य नटों और नर्त्तकियों के नाचने में मिलता है—गाना, नाचना, वाद्य बजाना, भाव बताना, सब एक साथ होते हैं।

अँगरेजी या योरप की भाषा में जो शब्द 'सगीत' के लिये व्यवहृत होता है—'म्युजिक' (Music), वह भारतीय सगीत का यथार्थ पर्यायवाचक नहीं होता, क्योंकि योरप में म्युजिक केवल कठगान (Vocal Music) को कहते हैं, और नृत्य (Dance) से इसकी पृथक् गणना होती है, तथा तालवाद्य को भी एक प्रकार से पृथक् ही मानते हैं।

सगीत पद्धति

भारतवर्ष में सगीत की दो पद्धतियाँ (Systems) हैं—एक तो उत्तरभारत की पद्धति, जिसको 'हिन्दुस्तानी-सगीत पद्धति' कहते हैं और दूसरी दक्षिण की

पद्धति, जिसको 'कर्णाटकी पद्धति' कहते हैं। उत्तर भारतवर्ष में बिहार, युक्तप्रान्त, आगरा, दिल्ली, पंजाब, काश्मीर, राजपूताना, बम्बई और बंगाल सम्मिलित हैं। इसलिये, यद्यपि बिहार का हिस्सा हिन्दुस्तानी पद्धति के प्रचार और प्रसार में बहुत अधिक रहा है, तथापि बिहार की पद्धति हिन्दुस्तानी पद्धति से अलग वस्तु नहीं है।

बिहार का प्रदेश

इस समय बिहार प्रान्त का क्षेत्र जितना सकुचित है, प्राचीन समय में बिहार का प्रदेश उतना सकुचित नहीं था। वाल्मीकीय रामायण के समय में तो बिहार और उससे भी पूर्व तक के प्रदेश महाराज दशरथ और श्रीमहाराज रामचन्द्र के राज्य के अन्तर्गत थे, केवल विदेह (मिथिला) में महाराज जनक का राज्य था। मुगल बादशाहों के राजत्वकाल में भी बिहार युक्तप्रान्त से पृथक नहीं था। जब अँगरेजी राज्य शुरू हुआ, तब भी बिहार और सयुक्तप्रान्त—कम से कम बनारस की कमिश्नरी (बनारस, गाजीपुर, बलिया और जौनपुर के जिले)—एक साथ थे।

यदि इस समय के बिहार और बनारस की कमिश्नरी को हम एक साथ मान लें, तो स्पष्ट हो जायगा कि जो इस समय हिन्दुस्तानी सगीत पद्धति कहलाती है, उसका तीन-चौथाई अग बिहारी है। और, बिहार की संगीत पद्धति के भीतर मैथिली सगीत पद्धति का बहुत बडा हिस्सा है।

मैथिली सगीत पद्धति

इस पद्धति का प्रचार बहुत प्राचीन समय से चला आता है। मिथिला में सगीत पर कई अच्छे-अच्छे ग्रन्थ लिखे गये जिनमें लोचन कवि की 'रागतरंगिणी' तो प्रकाशित है, और सब अप्रकाशित हैं। मिथिला में सगीतविद्या पर सिंघ भूपाल ने चौदहवीं शताब्दी में 'सगीत रत्नाकर व्याख्या' नामक ग्रन्थ लिखा। उसके बाद सोलहवीं शताब्दी में पडित जगद्धर ने 'सगीत सर्वस्व' नामक ग्रन्थ प्रस्तुत किया। जगद्धर के पीछे खड्गराम और कल्लीराम ने 'लच्छिराघव' नामक ग्रन्थ की रचना की, उनके पीछे सत्रहवीं शताब्दी के समीप—मिथिला के राजा महीनाथ ठाकुर के राजत्वकाल में—लोचन कवि ने उपर्युक्त 'राग-तरङ्गिणी' लिखी, और एक दूसरा ग्रन्थ 'सगीतसग्रह' भी लिखा जिसका उल्लेख उन्होंने 'रागतरङ्गिणी' में ही किया है। 'लच्छिराघव' मिथिला के राजा शिवसिंह के राजत्वकाल के आसपास में लिखा गया। राजा शिवसिंह के समय में ही जगत्प्रसिद्ध कवि एवं स्वनामधन्य सगीता-

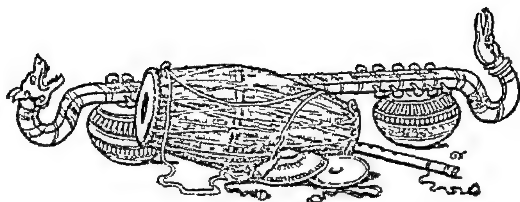

बिहार और संगीत-कला

श्रीमुरारिप्रसाद ऐडवोकेट, पटना हाइकोर्ट

संगीत

'सगीत' शब्द का अर्थ है एक सङ्ग होकर गाना बजाना (सम्=एक साथ+गीत=गाया गया)। 'सगीतरत्नाकर' कहता है—"गीत वाद्य तथा नृत्यं त्रय सगीतमुच्यते"—अर्थात् गाना, बजाना और नाचना, तीनों मिलकर सगीत कहलाते हैं। और, चूंकि नृत्य के साथ अभिनय (भाव बताना) एक अविच्छिन्न अग रहता है, इसलिये कोई कोई लास्य—भाव बताने या अभिनय करने—को भी चौथा साथी मानते हैं—"केचित् लास्य चतुथक।"

इस देश में गवैयों के अभ्यास-समय (रेयाज या Practice) को छोड और कोई ऐसा समय नहीं जब उनका गाना लय के साथ न होता हो, और अभ्यास करने के समय भी कभी कभी तबला या मृदग बजता है।

सगीत का पूरा दृश्य नटों और नर्त्तकियों के नाचने में मिलता है—गाना, नाचना, वाद्य बजाना, भाव बताना, सब एक साथ होते हैं।

अँगरेजी या योरप की भाषा में जो शब्द 'सगीत' के लिये व्यवहृत होता है—'म्युजिक' (Music), वह भारतीय सगीत का यथार्थ पर्यायवाचक नहीं होता, क्योंकि योरप में म्युजिक केवल कठगान (Vocal Music) को कहते हैं, और नृत्य (Dance) से इसकी पृथक् गणना होती है, तथा तालवाद्य को भी एक प्रकार से पृथक् ही मानते हैं।

सगीत-पद्धति

भारतवर्ष में सगीत की दो पद्धतियाँ (Systems) हैं—एक तो उत्तरभारत की पद्धति, जिसको 'हिन्दुस्तानी-सगीत पद्धति' कहते हैं और दूसरी दक्षिण की

पद्धति, जिसको 'कर्णाटकी पद्धति' कहते हैं। उत्तर भारतवर्ष में बिहार, युक्तप्रान्त, आगरा, दिल्ली, पंजाब, काश्मीर, राजपूताना, बम्बई और बंगाल सम्मिलित हैं। इसलिये, यद्यपि बिहार का हिस्सा हिन्दुस्तानी पद्धति के प्रचार और प्रसार में बहुत अधिक रहा है, तथापि बिहार की पद्धति हिन्दुस्तानी पद्धति से अलग वस्तु नहीं है।

बिहार का प्रदेश

इस समय बिहार प्रान्त का क्षेत्र जितना सकुचित है प्राचीन समय में बिहार का प्रदेश उतना सकुचित नहीं था। वाल्मीकीय रामायण के समय म तो बिहार और उससे भी पूर्व तक के प्रदेश महाराज दशरथ और श्रीमहाराज रामचन्द्र के राज्य के अन्तर्गत थे, केवल विदेह (मिथिला) में महाराज जनक का राज्य था। मुगल बादशाहों के राजत्वकाल में भी बिहार युक्तप्रान्त से पृथक् नहीं था। जब अँगरेजी राज्य शुरू हुआ, तब भी बिहार और सयुक्तप्रान्त—कम से कम बनारस की कमिश्नरी (बनारस, गाजीपुर, बलिया और जौनपुर के जिले)—एक साथ थे।

यदि इस समय के बिहार और बनारस की कमिश्नरी को हम एक साथ मान लें, तो स्पष्ट हो जायगा कि जो इस समय हिन्दुस्तानी सगीत पद्धति कहलाती है, उसका तीन-चौथाई अग बिहारी है। और, बिहार की संगीत पद्धति के भीतर मैथिली सगीत पद्धति का बहुत बड़ा हिस्सा है।

मैथिली सगीत-पद्धति

इस पद्धति का प्रचार बहुत प्राचीन समय से चला आता है। मिथिला म सगीत पर कई अच्छे-अच्छे ग्रन्थ लिखे गये जिनमें लोचन कवि की 'रागतरंगिणी' तो प्रकाशित है, और सब अप्रकाशित हैं। मिथिला में सगीतविद्या पर सिंघ भूपाल ने चौदहवीं शताब्दी म 'सगीत रत्नाकर व्याख्या' नामक ग्रन्थ लिखा। उसके बाद सोलहवीं शताब्दी में पडित जगद्धर ने 'सगीत सर्वस्व' नामक ग्रन्थ प्रस्तुत किया। जगद्धर के पीछे रङ्गराम और कल्लीराम ने 'लच्छिराघव' नामक ग्रन्थ की रचना की, उनके पीछे सत्रहवीं शताब्दी के समीप—मिथिला के राजा महीनाथ ठाकुर के राजत्वकाल में—लोचन कवि ने उपर्युक्त 'राग तरङ्गिणी' लिखी, और एक दूसरा ग्रन्थ 'सगीतसग्रह' भी लिखा जिसका उल्लेख उन्होंने 'रागतरङ्गिणी' में ही किया है। 'लच्छिराघव' मिथिला के राजा शिवसिंह के राजत्वकाल के आसपास में लिखा गया। राजा शिवसिंह के समय में ही जगत्प्रसिद्ध कवि एव स्वनामधन्य सगीता-

चार्य विद्यापति ठाकुर हुए थे। राजा महीनाथ ठाकुर के छोटे भ्राता 'रागतर
में 'ध्वनिसिन्धु' की उपाधि से विभूषित हैं, जिससे वे भी सगीत के एक
सूचित होते हैं।

संगीतोत्पत्ति

सगीत के मुख्य आधार तो स्वर हैं और सगीत के स्वर साधारण ध्व
(Sounds) से पृथक् हैं। जितनी ध्वनियाँ होती हैं, सब सगीत के स्वर
कही जा सकतीं। जो प्राणवायु नाक से खींची जाती है या जो अपानवायु
जाती है, योगी लोग तो उसको भी स्वर कहते हैं, किन्तु वे सगीत के स्वर नह
सगीत का स्वर तो वह ध्वनि है, जो एक विशिष्ट ऊँचाई (Pitch) पर कुछ
मित समय तक एक-सौं (*Uniformly, Continuously*) गूँजती र
अर्थात् जिसमें स्थिरता (Duration) हो। जिसमें कुछ स्थिरता नहीं है,
ध्वनि सगीत का स्वर नहीं हो सकती।

स्वरता का ज्ञान

प्राचीन समय में पहले-पहल सगीत के स्वर—स्थिर ध्वनि (Dura
Sound)—का ज्ञान कब हुआ और किस तरह हुआ, इसका केवल अनु
किया जा सकता है। प्राचीन शस्त्रों में धनुष एक प्रसिद्ध शस्त्र था, जो
भी पाया जाता है, और धनुष का टकार 'सगीत स्वर' का विशिष्ट नमूना है, च
इन टकारों से केवल स्वरता का ही ज्ञान नहीं होता है, किन्तु स्वरों की ऊँचाई
नीचाई का भी पता लगता है। धनुष जितना बड़ा होगा, उसका रोदा (प्रत्य
String) उतना ही मोटा और लम्बा होगा तथा उसकी ध्वनि भी नीची
गभीर (Low and deep) होगी। और, क्रमश, धनुष जितना छोटा और त
नुसार रोदा जितना पतला होगा, उसके टकार की ध्वनि उतनी ही पतली
ऊँची होगी।

जब किसी आदमी को हम दूर से पुकारते हैं, जैसे—"रामरतन हो!!
तब अन्तवाली जो 'हो' ध्वनि निकलती है, वह स्थिर ध्वनि होती है। दो बर्तनों
टक्कर लगने से जो एक ध्वनि होती है, वह भी स्थिर ध्वनि (*Durated Soun*
है। इसी तरह, जगलों में सूखे हुए बाँस में भौंरों के द्वारा किये गये छेद के ऊ
से, अथवा दो वृक्षों के बीच में फैली हुई सूखी लता के ऊपर से, हवा के झों
चलने पर जो ध्वनि पैदा होती है वह भी स्थिर ध्वनि है—जितने जोर से बाँस

छेद के ऊपर होकर अथवा लता पर से हवा चलती है, क्रमश उतनी ऊँची ध्वनि भी होती है। इन्हीं सामग्रियों में से किसी एक या एक से अधिक से स्वरता का ज्ञान पहले पहल हुआ।

अनुमान यह होता है कि धनुष के टंकार से और लताओं के ऊपर लगनेवाले हवा के झोंके से जो ध्वनि हुई, उससे तन्त्रवाद्य (Stringed instrument) 'एकतारा' का और उससे आगे बढ़कर वीणा का ज्ञान और प्रचार हुआ, और बाँस के छेद से निकलनेवाली ध्वनि से वंशी (बाँसुरी) का ज्ञान और प्रचार हुआ।

स्वरता का ज्ञान होने पर जो कंठगान शुरू हुआ वह भी आदि में बहुत ही मौलिक—अर्थात् एक और दो सुरों का, ऊँचे नीचे स्थानों का, हुआ। उसीसे बढ़कर पीछे और भी स्थानों का ज्ञान हुआ। क्रमश इन स्थानों के नाम पड़ते गये। अन्त में आकर स्वरों के आधुनिक नाम पड़े।

वैदिक गान

इस समय स्वरों के विषय में क्रमश ज्ञानवृद्धि और उनके नामकरण का तथा एक स्वर-मंडल (आधुनिक सप्तक) के कायम होने का पता, 'सामगान' और सामवेद पर लिखी हुई प्रातिशाख्यों और शिक्षाओं से, लगता है।

आदि में सामगान दो ही स्वरों में, प्रत्युत दो स्थानों पर ही, होता था—एक ऊँचा स्थान, जिसको 'उदात्त' कहते थे (जिस शब्द का अर्थ भी ऊँचा ही है) और दूसरा अनुदात्त (ऊँचा नहीं, नीचा)। व्याकरणाचार्य पाणिनि ने कहा है—"उच्चैरुदात्त नीचैरनुदात्त ।" इन दो उदात्त अनुदात्त स्थानों पर गान होते होते, क्रमश कंठस्वर की शक्तिवृद्धि और प्रसार (Strength and development of the Vo ce) के होते होते, और भी स्थानों एव स्वरों का ज्ञान होता गया तथा उन स्थानों के नाम पड़ते गये—एक समय में क्रुष्ट, उदात्त, अनुदात्त और मन्द्र नाम पड़े जो इस समय के संगीत के पंचम, शुद्ध, मध्यम, षड्ज और निषाद स्वर कहे जा सकते हैं।

आदि में गाना ऊँचे से नीचे की ओर होता था। बहुत दिनों तक वैसा ही चला आया। क्रुष्ट स्वर सबसे ऊँचा था और मन्द्र सबसे नीचा।

देखा जाता है कि उदात्त और अनुदात्त के बीच में जो अन्तर (Space) है, वह एक बड़ा अन्तर है। पीछे आकर उसी अन्तर में दो और सुरों के स्थान

पकड़े गये—उनका नाम भी रक्खा गया, जिससे छ नाम पड़े। एक तो क्रुष्ट रहा, जो अन्तिम ऊँचा स्थान था। दूसरा रहा मन्द्र, जो सबसे नीचा स्थान था। क्रुष्ट के नीचे जो उदात्त प्रथम या आदि स्वर था उसका नाम प्रथम ही रक्खा गया। उसके नीचे इस समय का गाधार स्वर पड़ता है, जिसका नाम द्वितीय पड़ा, और उसके नीचे जो ऋषभ है उसका नाम तृतीय पड़ा। जो पहले का अनुदात्त स्वर—आधुनिक षड्ज स्वर—था, उसका नाम चतुर्थ पड़ा। ये छ नाम क्रमश यों हुए—क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र (प, म, ग, री, सा, नी)। हाँ, आगे बढ़ने पर एक और स्थान पकड़ा गया, जिसका नाम अतिस्वारीय या अतिस्वार्य पड़ा। इस प्रकार पूरा सप्तक या स्वरमंडल कायम हुआ।

ऊपर दिये हुए सात नाम—क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, अतिस्वार्य (प, म, ग, री, सा, नी, ध) ऋक्प्रातिशाख्य तथा राग विबोध में पाये जाते हैं।

हिन्दुस्तानी सगीत-पद्धति में स्वरों की क्रमश वृद्धि और उनके नामकरण का किसी ग्रन्थ में पता नहीं मिलता। इससे यह मालूम होता है कि प्राचीन लौकिक पद्धति ने—जो आगे बढकर हिन्दुस्तानी पद्धति हुई—वैदिक स्वर-मंडल को ही अपना लिया (Adopted), किन्तु लौकिक पद्धति में जो 'षड्ज, ऋषभ, गाधार, मध्यम, पचम, धैवत, निषाद' नाम पाये जाते हैं और उनका क्रम नीचे से ऊपर को देखा जाता है, यह कब कायम हुआ, इसका ठीक पता नहीं लगता। लौकिक पद्धति पर जो आदिग्रन्थ इस समय पाया जाता है, वह भरतमुनि का नाट्यशास्त्र है, उसीमें ये क्रम और नाम पाये जाते हैं।

आधुनिक सगीत की जन्मभूमि

जहाँतक पता चलता है, आदि गान सामगान ही है। उसीके क्रमश बढने का पता लगता है। ऋषि लोग अपने दैनिक पूजा-होम के समय या बड़े-बड़े यज्ञों मे सामगान किया करते थे। कहीं कहीं एक ही समय में पाँच-सात ऋषि एकत्र होकर सामगान करते थे। उस गान मे भाग लेनेवालों का नामकरण हुआ—प्रस्तोता, प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्त्ता। गान के जिन अशों को वे लोग पृथक् पृथक् गाते थे, उनके नाम हुए - प्रणव, प्रस्ताव, उद्गीत और प्रत्याहार। प्रणव तो ॐकार का उच्चारणमात्र था और प्रत्याहार का एक अश 'निधन' था, जो इस समय का 'न्यास स्वर' कहा जा सकता है।

ऋषियों के उपरान्त राजा लोग भी अश्वमेधादि यज्ञ किया करते थे, जिनमें ऋषि लोग प्राय आचार्य होते और सामगान करते थे। उन यज्ञों म ऋषि, राजगण, वैश्यगण और सेवा के लिये शूद्रगण भी उपस्थित रहते थे। वहाँ सब लोग सामगान सुनते थे।

प्राचीन समय में गन्धर्व, किन्नर और अप्सराएँ गान विद्या का अध्ययन और अभ्यास करते थे। किन्तु इनलोगों के विषय में कहा जाता है कि ये लोग स्वर्ग में ही गान करते थे। इस लोक में प्राचीन राजाओं के दरबारों में उनके सूत, मागध और बन्दीजन के अतिरिक्त नर्त्तकों और नर्त्तकियों की जमात भी रहती थी। सामगान से जो कुछ विद्यालाभ होता था उसका प्रचार और यज्ञों से बाहर जनता में और राजगायक-गायिका-मडली में भी हुआ। यही लौकिक गान बढ़ते बढ़ते आजकल की सगीत पद्धति कहलाता है।

सामगान के नियम बहुत क्लिष्ट और कठिन थे। उन नियमों से जकड़ा हुआ वह गान बहुत विस्तृत न हुआ। लेकिन लौकिक गान उन नियमों से बँधा हुआ नहीं था, इसलिये यह अधिक विस्तृत हुआ और आगे चलकर इसमें अपने नये नियम बने।

वैदिक गान में बिहार की सहायता

बिहार का प्रदेश बहुत प्राचीन है। इस प्रदेश के अन्तर्गत गौतम, भृगु, विश्वामित्र, याज्ञवल्क्य आदि कई महर्षियों के आश्रम थे, जिन आश्रमों में वैदिक यज्ञ और गान सतत हुआ करते थे। सबके उपर राजर्षि महाराज जनक विदेह का नगर और आश्रम था, जहाँ बडे-बडे महर्षियों और देवर्षियों की सभाएँ हुआ करती थीं—जहाँ महर्षि-मंडलियाँ ज्ञानोपदेश ग्रहण करने के लिये आया करती थीं। वैदिक गान में एक दो ऋषियों के बनाये हुए कोई एक दो मन्त्र नहीं गाये जाते थे, प्रत्युत ऋग्वेद के मन्त्रसमूह गाया जाया करते थे और उन्हीं मन्त्रों का समूह सामवेद है।

सामगान मे किस ऋषि और किस प्रदेश ने कितना भाग लिया, इसकी कोई निश्चित गणना नहीं है, किन्तु यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि सामगान की उन्नति और प्रसार में बिहार प्रदेश का भाग सामान्य नहीं रहा। महर्षि याज्ञवल्क्य ने जो सस्कृतविद्या के मुख्य केन्द्र मिथिला के ही निवासी थे, संगीत-विद्या के अध्ययन और सगीत की उपासना को मुक्ति-मार्ग का अल्प-प्रयास साधन

पकड़े गये—उनका नाम भी रक्खा गया, जिससे छ नाम पड़े। एक तो क्रुष्ट रहा, जो अन्तिम ऊँचा स्थान था। दूसरा रहा मन्द्र, जो सबसे नीचा स्थान था। क्रुष्ट के नीचे जो उदात्त प्रथम या आदि स्वर था उसका नाम प्रथम ही रक्खा गया। उसके नीचे इस समय का गांधार स्वर पडता है, जिसका नाम द्वितीय पड़ा, और उसके नीचे जो ऋषभ है उसका नाम तृतीय पडा। जो पहले का अनुदात्त स्वर—आधुनिक षड्ज स्वर—था, उसका नाम चतुर्थ पडा। वे छ नाम क्रमश यों हुए—क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र (प, म, ग, री, सा, नी)। हाँ, आगे बढने पर एक और स्थान पकड़ा गया, जिसका नाम अतिस्वारीय या अतिस्वार्य पड़ा। इस प्रकार पूरा सप्तक या स्वरमंडल कायम हुआ।

ऊपर दिये हुए सात नाम—क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, अतिस्वार्य (प, म, ग, री, सा, नी, ध) ऋक्प्रातिशाख्य तथा राग विबोध में पाये जाते हैं।

हिन्दुस्तानी सगीत पद्धति में स्वरों की क्रमश वृद्धि और उनके नामकरण का किसी ग्रन्थ में पता नहीं मिलता। इससे यह मालूम होता है कि प्राचीन लौकिक पद्धति ने—जो आगे बढकर हिन्दुस्तानी पद्धति हुई—वैदिक स्वर-मंडल को ही अपना लिया (Adopted), किन्तु लौकिक पद्धति में जो 'षड्ज, ऋषभ, गाधार, मध्यम, पचम, धैवत, निषाद' नाम पाये जाते हैं और उनका क्रम नीचे से ऊपर को देखा जाता है, यह कब कायम हुआ, इसका ठीक पता नहीं लगता। लौकिक पद्धति पर जो आदिग्रन्थ इस समय पाया जाता है, वह भरतमुनि का नाट्यशास्त्र है, उसीमें ये क्रम और नाम पाये जाते हैं।

आधुनिक सगीत की जन्मभूमि

जहाँतक पता चलता है, आदि-गान सामगान ही है। उसीके क्रमश बढने का पता लगता है। ऋषि लोग अपने दैनिक पूजा-होम के समय या बडे बड़े यज्ञों में सामगान किया करते थे। कहीं कहीं एक ही समय मे पाँच-सात ऋषि एकत्र होकर सामगान करते थे। उस गान में भाग लेनेवालों का नामकरण हुआ—प्रणेता, प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्त्ता। गान के जिन अशों को वे लोग पृथक् पृथक् गाते थे, उनके नाम हुए प्रणव, प्रस्ताव, उद्गीत और प्रत्याहार। प्रणव तो ॐकार का उच्चारणमात्र था और प्रत्याहार का एक अश 'निधन' था, जो इस समय का 'न्यास स्वर' कहा जा सकता है।

ऋषियों के उपरान्त राजा लोग भी अश्वमेधादि यज्ञ किया करते थे, जिनमें ऋषि लोग प्राय आचार्य होते और सामगान करते थे। उन यज्ञों में ऋषि, राजगण, वैश्यगण और सेवा के लिये शूद्रगण भी उपस्थित रहते थे। वहाँ सब लोग सामगान सुनते थे।

प्राचीन समय में गन्धर्व, किन्नर और अप्सराएँ गान-विद्या का अध्ययन और अभ्यास करते थे। किन्तु इनलोगों के विषय में कहा जाता है कि ये लोग स्वर्ग में ही गान करते थे। इस लोक में प्राचीन राजाओं के दरबारों में उनके सूत, मागध और बन्दीजन के अतिरिक्त नर्त्तकों और नर्त्तकियों की जमात भी रहती थी। सामगान से जो कुछ विद्यालाभ होता था उसका प्रचार और यज्ञों से बाहर जनता में और राजगायक-गायिका मडली में भी हुआ। यही लौकिक गान बढते बढते आजकल की सगीत-पद्धति कहलाता है।

सामगान के नियम बहुत क्लिष्ट और कठिन थे। उन नियमों से जकड़ा हुआ वह गान बहुत विस्तृत न हुआ। लेकिन लौकिक गान उन नियमों से बँधा हुआ नहीं था, इसलिये यह अधिक विस्तृत हुआ और आगे चलकर इसमें अपने नये नियम बने।

वैदिक गान में बिहार की सहायता

बिहार का प्रदेश बहुत प्राचीन है। इस प्रदेश के अन्तर्गत गौतम, भृगु, विश्वामित्र, याज्ञवल्क्य आदि कई महर्षियों के आश्रम थे, जिन आश्रमों में वैदिक यज्ञ और गान सतत हुआ करते थे। सबके ऊपर राजर्षि महाराज जनक विदेह का नगर और आश्रम था, जहाँ बडे-बड़े महर्षियों और देवर्षियों की सभाएँ हुआ करती थीं—जहाँ महर्षि-मडलियाँ ज्ञानोपदेश ग्रहण करने के लिये जाया करती थीं। वैदिक गान में एक दो ऋषियों के बनाये हुए कोई एक दो मन्त्र नहीं गाये जाते थे, प्रत्युत ऋग्वेद के मत्रसमूह गाया जाया करते थे और उन्हीं मन्त्रों का समूह सामवेद है।

सामगान में किस ऋषि और किस प्रदेश ने कितना भाग लिया, इसकी कोई निश्चित गणना नहीं है, किन्तु यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि सामगान की उन्नति और प्रसार में बिहार प्रदेश का भाग सामान्य नहीं रहा। महर्षि याज्ञवल्क्य ने, जो सस्कृतविद्या के मुख्य केन्द्र मिथिला के ही निवासी थे, विद्या के अध्ययन और सगीत की उपासना को मुक्ति-मार्ग का अल्प प्रयास

कहा है । यथा—"वीणावादनतत्त्वज्ञ श्रुतिजातिविशारदः । तालज्ञश्चाप्रयासेन मुक्तिमार्गंनिगच्छति ।

बिहार में संगीत के स्वर इत्यादि

बिहार में संगीत के स्वरों का वैसा ही प्रयोग होता है, जैसा हिन्दुस्तानी पद्धति में । यहाँ साधारणतः सात नामों के बारह स्वरों का प्रयोग होता है, जिनके नाम हैं—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद । इनके छोटे नाम हैं—स, री, ग, म, प, ध, नी । इनमें से षड्ज और पंचम सदा शुद्ध या अचल माने जाते हैं—अर्थात् इनमें कोमल और तीव्र (उतरी और चढ़ी) भेद नहीं लिये जाते हैं । बाकी पाँच 'री, ग, म, ध, नी' के तीव्र और कोमल दो प्रकार (भेद) माने जाते हैं । इस समय स, प, तीव्र री, तीव्र ग, तीव्र ध, तीव्र नी और कोमल म को शुद्ध स्वर कहते हैं तथा कोमल री, ग, ध, नी और तीव्र मध्यम (मं) को विकृत कहते हैं ।

स, री, ग, म, प, ध, नी—इन सात स्वरों के सीधे क्रम-समूह को सप्तक कहते हैं, जिस समूह का नाम वैदिक गान में स्वरमंडल था । प्राचीन समय में, जैसा पहले कहा जा चुका है, इन स्वरों का क्रम ऊपर से नीचे की ओर था । आधुनिक समय में इनका क्रम 'स' से ऊपर की ओर 'नी' तक लिया जाता है और नी' से ऊपर जाकर फिर 'स, री, ग, म, प, ध, 'नी' नीचेवाला ही क्रम चलता है । ऐसे ऐसे तीन सप्तक कंठगान (Vocal Music) में लिये जाते हैं । सबसे नीचेवाले सप्तक को मन्द्रसप्तक कहते हैं—बीचवाले को मध्यसप्तक और ऊपरवाले को तारसप्तक । हमारे यहाँ मन्द्रसप्तक के 'स' सुर की कोई एक निश्चित ऊँचाई (Standard Pitch) सबके लिये नहीं रक्खी गई है, हरएक गानेवाला अपने कंठ की सबसे नीची ध्वनि को—मन्द्रसप्तक का 'स'—लेता है और उसीके अनुसार अन्य स्वरों की ऊँचाई रखता है तथा उसीके अनुसार तम्बूरा इत्यादि के तारों को मिलाता है । यह बात प्राचीन समय से मानी जाती चली आई है, और जो अब शब्दविज्ञान की नाप से सही पाया गया है, वह यह है कि मन्द्र सप्तक के 'स, री, ग, म' इत्यादि स्वरों से क्रमश मध्यसप्तक के 'स, री, ग, म' इत्यादि स्वर ऊँचाई (Pitch) में दुगने और मध्यसप्तकवालों से तार-सप्तकवाले भी ऊँचाई में दुगने हैं ।

संगीत के सात स्वर अपनी-अपनी जगह पर सदा से निश्चित हैं । इनकी

जगहों को किसीने बनाया नहीं। जो जगह इनको प्रकृति (Nature) ने कायम है, उसीको क्रमश लोगों ने पकड़ा (Detected), और उनके नाम देते चल गये।

इन सात स्वरों की सात जगहों को नाम हमारे यहाँ श्रुति द्वारा निश्चित की गई थी। 'श्रुति' शब्द का अर्थ है—वह जो सुनी जाय, वह ध्वनि जो साफ और पृथक् सुन पड़े। स्वरों के बीच में ऐसी साफ-साफ और अलग अलग सुनी और पहचानी जाने लायक दो-दो, तीन तीन, चार चार श्रुतियाँ मानी जाती थीं और उनको 'स्वरान्तर' कहते थे। यथा—'स' और 'री' के बीच में तीन श्रुतियों का अन्तर, 'री' और 'ग' के बीच में दो का, 'ग' और 'म' के बीच में चार का, 'म' और 'प' के बीच में भी चार का, 'प' और 'ध' के बीच में तीन का, 'ध' और 'नी' के बीच में दो का, 'नी' और ऊपरवाले 'स' के बीच में चार का, और इसी हिसाब से स्वर चार श्रुतियों, तीन श्रुतियों और दो श्रुतियों के कहे जाते थे। ऐसी श्रुतियाँ बाईस मानी जाती थीं। उनके बाईस नाम थे और हैं। उन्हीं बाईस में से सात श्रुतियों पर ये सात स्वर क्रमश पड़ते थे।

श्रुतियाँ केवल साफ सुनने योग्य ध्वनि ही मानी जाती थीं। उनका कोई ठहराव (Duration) नहीं लिया जाता था। जब श्रुतियाँ ठहरा दी जायँ (Durated), तब वे ही स्वर हो जायँगी।

सात स्वरों का आपस में स्वाभाविक (Natural) सम्बन्ध है, जिसको सवादित्व (Concordance) कहते हैं। 'स' और 'प'-जो आपस में (परस्पर) पाँचवें (Fifths) पड़ते हैं—'पूर्ण सवादी' (Major Concordants) कहलाते हैं। इसी तरीके पर 'म' और 'ध', 'ग' और 'नी' इत्यादि पाँचवें पाँच वे (Fifths) 'पूर्ण सवादी' कहलाते हैं। 'स' और 'म'—जो आपस मे चौथे (Fourths) हैं—और उसी तरीके पर 'री प, ग ध, म नी, प, स' चौथे चौथे (Fourths) 'न्यून सवादी (Minor Concordants) कहलाते हैं। परस्पर तीसरे (Thirds)—यथा स ग, री म, ग, प इत्यादि—'अनुवादी' (Assonants) कहलाते हैं। दो बगलवाले सुर—यथा 'स, री' या 'स, नी'—'परस्पर-विवादी' (Disconcordants) माने जाते हैं।

राग-रागिणी पुत्र-भार्या इत्यादि

सात स्वरों के भिन्न भिन्न प्रकार के समूह (Group) होते हैं। ये समूह कोई पूरे सात स्वरों के (सपूर्ण), कोई पाँच स्वरों के औडव, कोई छ स्वरों के

पाडव होते हैं। इन समूहों के स्वरों को विशिष्ट रूपों में सजाने से भिन्न-भिन्न चित्ताकर्षक स्वर-स्वरूप बनते हैं। इन्हीं स्वर-स्वरूपों को साधारणतः 'राग' (Melody Types या Melody Groups) कहते हैं। ऐसे-ऐसे स्वर-स्वरूप गिनती में बहुत हो जाते हैं। उनको आपस में भिन्न भिन्न समूहों में विभक्त करके किसी को 'राग' नाम दिया गया, किसी को रागिणी और किसी को पुत्र और भार्या।

प्राचीन—अर्थात् भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के—समय में राग, रागिणी, पुत्र, भार्या का विभाग नहीं था। पीछे आकर, ईसवी सन् की सोलहवीं या सत्रहवीं शताब्दी में, श्री दामोदर मिश्र ने छ राग कायम किये तथा एक-एक राग की पाँच-पाँच रागिणियाँ और उनके आठ आठ पुत्र और आठ-आठ पुत्रवधुएँ। रागों को पुरुष माना और रागिणियों को उनकी स्त्रियाँ। भैरव, मालकोष, हिंडोल, दीपक, मेघ और श्री—ये राग कहे गये। इन्हीं छ की रागिणियाँ और पुत्रभार्याएँ कायम हुई। इतना ही नहीं, राग रागिणियों के रूप भी मनुष्यों अथवा देवताओं के समान उन्होंने निश्चित किये। यथा—भैरव राग के वर्णन मे लिखा—उसके माथे पर गंगा, ललाट में चाँद, तीन आँखें, गले में सर्पों की माला, गजचर्म ओढ़े हुए, हाथ में त्रिशूल और नरमुंडों की माला पहने हुए है। यह रूपवर्णन भगवान् शंकर का है। इसी तरह अन्य राग-रागिणियों के भी रूपों का वर्णन किया है। यह रूप वर्णन कहाँ तक बुद्धिग्राह्य है, कहा नहीं जा सकता।

ठाट

पीछे आकर राग श्रेणीबद्ध किये गये। उनमे गाये जानेवाले (उनमें प्रयुक्त किये जानेवाले) स्वरों के अनुसार, उसी श्रेणी का नाम पड़ा ठाट—अर्थात् जिन राग-रागिणियों में एक ही प्रकार के स्वर लगाये जाते हैं उन सबको एक श्रेणी या ठाट में रक्खा। यथा—एक राग 'कल्याण' है, जिसमें 'स, प' अचल और बाकी पाँच सुर तीव्र हैं। कल्याण के अतिरिक्त भूपाली, हिंडोल, शंकरा आदि और भी राग हैं जिनमें सब सुर तीव्र ही लगते हैं। इन रागों को कल्याण ठाट का राग कहते हैं और इस समय ऐसे दस ठाट माने जाते हैं।

मियाँ के राग

किसी विशेष कारणवश, तानसेन ने, स्वामीजी की अनुमति और सहायता से, कई नये राग बनाये, जो इस समय 'मियाँ के राग' कहे जाते हैं। यथा—

मियाँ का मल्लार, मियाँ की टोडी, मियाँ का सारंग, मियाँ का कान्धरा इत्यादि। मियाँ का कान्धरा बादशाह अकबर को बहुत पसन्द था। शाही दरबार में यह अधिकतर गाया जाता था, इसीलिये लोग इसको 'दरबारी कान्धरा' भी कहने लगे—इस समय भी यही नाम प्रसिद्ध है।

ग्रह, न्यास, अंश

राग-रागिणियों के गाने बजाने में कई प्रसिद्ध नियम हैं—अर्थात् किस सुर से राग का गाना शुरू होगा (ग्रह स्वर), किस सुर पर गाना समाप्त होगा (न्यास स्वर), किस सप्तक में राग अधिकतर गाया जायगा—स्थान, उस राग का मुख्य या वादी स्वर (जीव, अंश, स्वर) कौन है—संवादी स्वर कौन है—इत्यादि नियम बने हुए हैं। इन्हीं नियमों के अनुसार जब राग रागिणी का गान होगा तभी एक राग-रागिणी दूसरी राग-रागिणी से पृथक् मालूम होगी। राग रागिणी आदि का यथार्थ रूप यही है, जिसको स्वर-स्वरूप भी कहते हैं। ग्रह स्वर और वादी-संवादी स्वर के बदल देने से राग-रागिणी का गाने का रूप भी बदल जाता है।*

बिहार-(हिन्दुस्तानी) संगीत के गीत

पहले कहा गया है कि आदि गान वैदिक सामगान था, जिससे आगे चलकर लौकिक गान उत्पन्न हुआ। लौकिक गान में भी इस समय कभी कभी मन्दिर आदि में थोड़ा सामगान हो जाता है। वेदमन्त्रों का छन्द अनुष्टुप् या और है, किन्तु उनके बाद महर्षि वाल्मीकि ने पहले पहल श्लोक का उच्चारण किया और रामायण के समान बृहद् ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखा। उनका यह पहला श्लोक—"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समा, यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी काम-मोहितम्"—परम प्रसिद्ध है, जिसके कारण वे आदिकवि कहलाते हैं। और, जब श्लोक बने तब वे ही श्लोक गाये जाने लगे। उन श्लोकों का गान छन्द-गान कहा गया। यह बात प्रसिद्ध है कि स्वयं आदिकवि ने ही रामायण को गीत-बद्ध करके भगवान् रामचन्द्र के दोनों पुत्रों—कुश और लव—को सिखाया।

* स्वर, श्रुति, राग आदि का इससे अधिक वर्णन जिनको जानना हो वे मेरी लिखी हुई 'संगीत प्रवेशिका' (द्वितीय और तृतीय भाग) देखें, या उर्दू में लिखी हुई 'मुआरिफुल-नगमात' या श्रीमान् विष्णुनारायण भातखण्डे की प्रकाशित 'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति की क्रमिक मालिकाएँ' देखें। —लेखक

उनलोगों ने अयोध्या जाकर वह गान नगरों में और भगवान् रामचन्द्र की सभा में सुनाया।

छन्द गान

संस्कृत के श्लोक भिन्न भिन्न छन्दों के बनने लगे। प्राचीन समय से गाने के साथ मृदङ्ग और मृदङ्ग से निकले हुए दूसरे तालवाद्य बजते चले आते हैं। इसलिये जैसे जैसे भिन्न भिन्न मात्राओं के श्लोक बनने लगे, वैसे-ही वैसे, उनके साथ-साथ, मृदङ्ग के भी भिन्न भिन्न मात्राओं के पद बनते गये, जिन्हें इन दिनों 'पखावज की थपिया' कहते हैं। इसी तौर पर मृदङ्ग आदि तालवाद्य में भी भिन्न भिन्न लय अथवा ताल कायम होते गये। लयों की वृद्धि इसी प्रकार हुई।*

प्रबन्ध-गान

संस्कृत के श्लोक चार पदों के हुआ करते थे, जिन्हें आजकल 'तुक' कहते हैं। बाद कविवर जयदेव ने 'गीतगोविन्द' बनाया, जिसमें प्राय सब श्लोक आठ पदों के हैं, और उस गीतगोविन्द को 'प्रबन्ध' कहा। यथा—"वाग्देवता चरितचित्रितचित्तसद्मा · · करोति जयदेवकवि प्रबन्धम्।" उसके बाद मैथिल कोकिल कविवर विद्यापति ठाकुर ने अपनी पदावलियाँ बनाईं। मीराबाई, महात्मा सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास आदि ने भजन बनाये, जो सब प्रबन्ध-ही प्रबन्ध थे। ये गाये जाने लगे। इसी गान का नाम प्रबन्ध-गान पड़ा।

जिस समय अमीर खुसरो हिन्दुस्तान में आये, उस समय यहाँ प्रबन्ध का गान प्रचलित था। बिहार में, बहुत प्राचीन समय से, विद्यापति ठाकुर के 'नाचारी' नाम के—भगवान् शिव की स्तुति के—भजन प्रसिद्ध हैं और इस समय भी गाये जाते हैं। उनका और उनके नाचारी भजनों का उल्लेख अबुलफजल की लिखी हुई 'आईनेअकबरी' में भी मिलता है।

तराना

अमीर खुसरो, सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के समय में (१२९५ से १३१६

* मेरी लिखी हुई 'संगीतप्रवेशिका' के द्वितीय भाग के अन्त में कई संस्कृत-छन्दों के सूत्र और उनकी मात्राएँ पृथक् पृथक् गिनती करके दिखलाई गई हैं। उन छन्दों के अनुरूप जो संगीत के लयों के नाम होते हैं वे भी बतला दिये गये हैं—यथा, चौताला, इकताला, तिताला, झपताला, सौम्य शूल, या शूलफाक्ता आदि। 'संस्कृतरत्नाकर' में भी बहुत से छन्द लिपिबद्ध हैं। —लेखक

ईसवी के बीच) आये। उन्होंने हिन्दुस्तानी संगीत को सीखा और साधा, किन्तु उस वक्त तक उन्हें संस्कृत और हिन्दी की अभिज्ञता नहीं प्राप्त हुई थी। उस समय के प्रचलित प्रबन्धादिक गान के शब्दों के शुद्धतापूर्वक समझने और उच्चारण करने में कदाचित् उनको अधिक कठिनाई पड़ी, इसलिये उन्होंने कई अर्थहीन शब्द—यथा तोम्, तानूम, तना, दिरदिर इत्यादि कई एक बोल (शब्द)—बना लिये और उन्हीं बोलों में राग रागिणियों के गीत बनाये। यथा—"दिरदिर तानुम् तदेर्ना तनन" इत्यादि। इन गीतों का नाम उन्होंने 'तराना' रक्खा। फारसी भाषा में 'तराना' गान ही को कहते हैं। यथा—काबुल का तराना, कोयल का तराना इत्यादि। ये तराने अबतक गाये जाते हैं। अमीर खुसरो के बाद और लोगों ने भी बहुत से तराने बनाये।

कौल

अमीर खुसरो ने 'कौल' नाम का एक तरह का मजहबी (धार्मिक) गीत भी बनाया। इन गीतों के गानेवाले 'कव्वाल' कहलाये। इन गीतों के गानेवाले अबतक वर्त्तमान हैं। धार्मिक स्थानों में, धार्मिक उत्सवों के अवसर पर, विशेषत मुसलमान फकीरों के उर्स के समय, यह गाना गाया जाता है। यह ठीक नहीं कहा जा सकता कि अमीर खुसरो के समय में आजकल का राग-रागिणी और पुत्र-भार्या का विभाग—जो 'संगीत दर्पण' मे दिया हुआ है—प्रचलित हुआ था या नहीं।

ध्रुपद

कहा जाता है कि गवालियर के राजा मानतनवार ने ध्रुवपद (ध्रुपद) के गान चलाये। यह भी कहा जाता है कि उस समय के प्रसिद्ध संगीताचार्य 'नायक बैजू' (प्रसिद्ध बैजू बावरा) राजा मानतनवार के दरबार में रहते थे। हो सकता है कि ध्रुपदों का गान बैजू बावरा ने ही चलाया हो और नाम राजा मानतनवार का हुआ हो।

मुगल बादशाह अकबर के समय में तन्ना मिश्र (प्रसिद्ध तानसेन) बहुत नामी गायक हुए। ये मथुरा के योगी 'स्वामी हरिदास' के शिष्यों में थे। जहाँ तक उनके बनाये हुए गीतों से पता चलता है, वे प्राय ध्रुपद ही गाते थे। संभवत वे अपने गुरु स्वामी हरिदास की बनाई हुई होरियाँ भी गाते रहे होंगे। ये होरियाँ भी एक प्रकार का ध्रुपद ही हैं।

होरी

स्वामी हरिदास होरी गान के उद्भावक और प्रणेता कहे जाते हैं।

ध्रुपद चार पदों या तुकों के होते हैं जिनको स्थायी, संचारी, अन्तरा और आभोग कहते हैं। ये ध्रुपद प्रायः चौताले की लय में गाये जाते हैं, यद्यपि और और लयों मे भी ध्रुपद गाये जाते हैं। होरी—अर्थात् ध्रुपद की चाल की होरी—एक विशिष्ट लय या ताल मे गाई जाती है, जिसको 'धमार' कहते हैं।

फाग या फगुआ

धमार की होरी के उपरान्त एक गीत 'फगुआ' या 'फाग की होली' कहलाता है, जो कई लयों मे गाया जाता है। कहा जाता है कि यह फाग की होली और होली का गान ब्रज-मंडल (मथुरा-वृन्दावन) से प्रचलित हुआ। परन्तु ब्रज की होली 'डफ की होली' कही जाती है, जिसको होली के मौसम मे लोग डफ बजाकर गाया करते हैं और वह गाने में बहुत सुगम तथा सीधी होती है। किन्तु बिहार मे जो फाग की होली गाई जाती है, वह उस डफ की होली से भिन्न और प्रकृष्ट होती है तथा भिन्न भिन्न राग-रागिणियों और तालों में तान आदि अलंकारों से युक्त गाई जाती है। ये फाग की होलियाँ यद्यपि इस समय अन्य प्रदेशों में भी गाई जाती हैं तथापि ये बिहार-प्रान्त से चले हुए गीत और मुख्यत बिहार, बनारस तथा गाजीपुर मे गाये जाते हैं—इन गीतों की भाषा या बोल बिहारी है।

स्वामी हरिदास की होरियाँ प्राय ध्रुपदों के समान चार तुकों वाली—बल्कि अधिकतर दो ही तुकों वाली, अर्थात् स्थायी अन्तरा वाली—होती थीं। किन्तु बिहार के प्रसिद्ध बेतिया राज्य के अधिपति महाराज नवलकिशोर सिंह ने छ पदों की बहुत सी होरियाँ बनाईं—उनको गाया और गवाया भी। छ पदोंवाली वे होरियाँ काशी के संगीत गुरु श्री छोटे रामदास को और काशी के अन्य संगीत-प्रेमियों को याद हैं- वे लोग उन्हें गाते भी हैं। मैंने महाराज नवलकिशोर सिंह की बनाई कई होरियाँ श्री छोटे रामदासजी से सुनी हैं।

सादरा

ध्रुपदों और होरियों के पीछे किसी समय मे, एक प्रकार के छोटे ध्रुपद भी बने और गाये जाने लगे जिनको 'सादरा' कहते हैं, और ये झपताले की लय में गाये जाते हैं। ये सादरे कब बने और इन्हें किसने बनाया, इसका ठीक पता नहीं चलता। किन्तु बिहार में—खासकर पटना, छपरा और दरभंगा में—सादरे गाये जाते हैं।

सरगम

बिहार में—प्रधानतः सारन, चम्पारन, पटना, गया आदि जिलों में—एक गाना गाया जाता है, जिसको 'सरगम' कहते हैं। इन सरगमों में कोई गीत के शब्द नहीं रहते, सिर्फ स्वरों के नाम रहते हैं और ये ही स्वर स्थायी अन्तरा में बँधी हुई लय में गाये जाते हैं। ये सरगम' दो प्रकार के होते हैं—एक 'सुर सरगम' जिसमें स्वरों के नाम गीत में दिये हुए रहते हैं और वे अपने ही नामों के सुरों मे राग-रागिणी की चाल के अनुसार गाये जाते हैं, दूसरे 'बोल सरगम' होते हैं जिनमें गीत के बोल मे तो सुरों ही के नाम रहते हैं, किन्तु वे स्वर सब अपने नाम के सुरों में ही नहीं गाये जाते—अर्थात, अगर गीत के बोल में 'ग, म, धा' इत्यादि हैं तो यह जरूरी नहीं है कि ये 'ग और म' आदि 'ग और म' सुरों में ही कहे जायँ, राग रागिणी की चाल का ध्यान रखते हुए ये दूसरे सुर में भी कहे जा सकते हैं।

बरगम

एक प्रकार के सरगम और भी होते हैं जिनको बरगम कहते हैं। उनका नियम यह है कि जिस लय में वे बँधे रहते हैं, उस लय की एक आवृत्ति में सरगम के बारह बोल आते हैं। ये बरगम कम गाये जाते हैं। किन्तु मैंने छपरा में स्वर्गवासी श्री यदुवीर मिश्र और पकड़ीवाले स्वर्गीय श्री महावीर मिश्र से कई बरगम सुने थे। इन बरगमों के बनानेवाले बेतिया (चम्पारन) के स्वर्गवासी श्री दुल्हित मलिक कहे जाते थे।

ख्याल

ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी में, १४०१—१४४० के बीच में, जौनपुर के (जो बिहार के अन्तर्गत था) सुलतान हुसैन शरकी ने 'ख्याल' गान की प्रणाली की उद्भावना की। दरभंगा-राज के संगीत के प्रोफेसर मेरे उस्ताद स्वर्गीय अजीम बख्श खाँ कहते थे कि तानसेन के गोबरहारबानी के और स्वामी हरिदास के डागुरबानी के ध्रुपदों के अनुकरण स्वरूप ये 'ख्याल' गीत बने और प्राचीन ख्याल एक प्रकार के छोटे ध्रुपद ही होते थे। ध्रुपद गान और ख्याल गान मे फर्क यह था कि ध्रुपदों के गाने में तान आदि अलकारों की आज्ञा नहीं थी, सिर्फ छोटी-छोटी मींड-गमक की तान और बोल-तान के गाने की अनुमति थी, तथा रागों के रूप बहुत शुद्ध और लय बहुत गंभीर होती थी। इसके विपरीत ख्यालों के गाने में तान, पलटे,

मींड, गमक, मुरकी, झटका आदि अलंकारों की पूरी आज्ञा दी गई। साथ ही, इनमें सुन्दरता और रंजकता का ध्यान रखते हुए राग-रागिणी की शुद्धता का भी ध्रुपदों के ऐसा कठिन बन्धन नहीं रक्खा गया। तथापि, प्राचीन ख्यालों में, शुद्धता आदि के नियमों का प्रतिपालन यथासंभव किया जाता था।

बादशाह मुहम्मदशाह 'रँगीला' के समय में 'शाह सदारंग' और 'शाह अदारंग' दो भाई गवैया हुए, जिन्होंने ख्याल गान को खूब प्रशस्त किया। तभी से ख्याल का गाना प्रसिद्ध चला आता है। बिहार में भी प्रसिद्ध गवैयों ने बहुत-से ख्याल बनाये। यहाँ ख्याल अच्छी तरह गाया जाता है।

टप्पा

लखनऊ के नवाब आसफुद्दौला के समय में पंजाब के एक गवैया 'गुलाम नबी' (प्रसिद्ध मियाँ शोरी) ने 'टप्पा' का गाना चलाया। गुलाम नबी की एक प्रेमिका का नाम था 'शोरी'। इसलिये उन्होंने जो टप्पे बनाये उनमें तखल्लुस (उपनाम) 'शोरी' रक्खा। उन्हीं टप्पों को वे गाते थे, जिससे लोगों ने यह समझ लिया कि 'शोरी' उस गवैया का ही नाम था। टप्पों के गाने में गिटकिरी (जमजमा) की तान बहुत रहती है और राग-रागिणी का कठिन नियम ध्रुपदों के ऐसा नहीं रहता।

नवाब आसफुद्दौला का स्वर्गवास होने पर मियाँ शोरी लखनऊ से बनारस चले आये और रामनगर के महाराज (काशी नरेश) के दरबार में गवैया मुकर्रर हुए। काशी में ही उनका देहान्त हुआ, जिससे उनके परिपक्व टप्पे बनारस वालों के हाथ लगे। बनारस में टप्पा बहुत सुन्दर और साफ-सुथरा गाया जाता था। टप्पों का भी गाना अब कम हो गया है, तो भी इस समय बनारस के संगीत गुरु लोग और वहाँ की गायिकाएँ टप्पा अच्छा गाते हैं।

रियासत रामपुर के दरबार में भी टप्पा अच्छा गाया जाता है, किन्तु बनारस के टप्पों में यह विशेषता थी कि तीन सुरों से अधिक की तान टप्पों में नहीं दी जाती थी और अब भी नहीं दी जाती है। अगर कोई बड़ी तान भी हुई तो उसके छोटे छोटे तीन-चार सुरों के टुकड़े करके गाते हैं। लखनऊ इत्यादि स्थानों में जो टप्पे गाये जाते हैं उनमें तानें बड़ी बड़ी आ जाती हैं जिससे लोग उन टप्पों को 'टप ख्याल' कहते हैं।

टप्पों का गाना बिहार में भी खूब होता था और खास करके छपरा, बेतिया,

पटना इत्यादि में अब भी लोग टप्पा थोड़ा बहुत गाते हैं। छपरा के प्रसिद्ध गायक स्वर्गवासी यदुवर मिश्र और महावीर मिश्र टप्पा और तराना बहुत अच्छा गाते थे।

ठुमरी

टप्पों के बाद ठुमरियों का गाना शुरू हुआ। शुरू में ठुमरियाँ लखनऊ और बनारस में गाई जाने लगा और वहाँ से चारों ओर फैलीं। इस समय ठुमरियों का गाना खूब प्रचलित है। ठुमरियों के गाने में ख्यालनुमा तान, टप्पे की खनकमुरकी, गिटकिरी इत्यादि अलंकारों के अतिरिक्त और भी जितना रंग दिया जा सकता है, दिया जाता है और राग रागिणी का कठिन बन्धन न रहने देकर खूबसूरती पर ज्यादा ध्यान रक्खा जाता है।

किन्तु ठुमरियों को नाजुक—मुलायम—गाना कहते हैं। बिहार और बनारस, तथा किसी अंश में लखनऊ तक, ठुमरियों के गाने में छोटी छोटी तानें अलंकारों के साथ दी जाती हैं। बनारस और लखनऊ से पश्चिम भी आजकल गायक और गायिकाएँ ठुमरियाँ गाते हैं, किन्तु उनलोगों के गाने में तानें बहुत और अक्सर बड़ी-बड़ी गाई जाती हैं, जिससे ठुमरियों का रंग बदल कर ख्याल नुमा हो जाता है।

आधुनिक काल में ठुमरियों के एक प्रसिद्ध गायक मौजुद्दीन खाँ हुए, जिनका स्वर्गवास आज से करीब ३०—३५ वर्ष पहले हुआ। उनका ठुमरियाँ गाने का ढंग अति रोचक और मनोहर होता था। उनके देहान्त के बाद भी, अभीतक जो अच्छे ठुमरी गानेवाले या गानेवाली हैं, सब मौजुद्दीन खाँ की चाल पर ही ठुमरी गाते हैं।

गजल दादरा

जिस समय में ठुमरियों का गाना चला, प्रायः उसी समय में अवध के नामी नवाब वाजिदअलीशाह के दरबार (लखनऊ) से गजल और दादरों का गाना शुरू हुआ। ठुमरी, गजल और दादरे बिहार में सब जगह—और बिहार से बाहर भी हर जगह—गाये जाते हैं। इन गानों ने, इस समय, ठुमरियों के समान ही जनता को अपनी मुट्ठी में कर लिया है।

नाचारी गीत—पूरबी गीत

बिहार के मिथिला प्रदेश में विद्यापति ठाकुर की 'नाचारी' और 'लगनी'

प्रसिद्ध गीत हैं। छपरा में एक गीत 'पूरबी' नाम का गाया जाता है, जिसके उद्भावक सारन (छपरा) जिले के पकड़ी गाँव के रहनेवाले श्री महावीर मिश्र थे। उनके समय में इस गीत का नाम 'बिरहिनी' था। उनकी बिरहिनी की धुन फगुआ, कजरी, बारहमासा इत्यादि की एक मिश्रित ध्वनि थी, किन्तु उसकी छटा अलग ही थी। उनके मुँह से यह बिरहिनी सुनने में ऐसी मनोहारिणी प्रतीत होती थी कि उसका वर्णन शब्दों द्वारा नहीं हो सकता। श्री महावीर मलिक ने सारन जिले के देहाती गीत 'जँतसार' को, जिसे औरतें जाँत (चक्की) पीसने के समय गाती हैं, साफ-सुथरा करके इस 'बिरहिनी' में मिला लिया था।

चैत या चैती

बिहार में एक प्रकार का अपना खास गीत है जिसको 'चैत' या 'चैती' कहते हैं। यह गीत चैत के महीने में गाया जाता है, जैसे फगुआ या फाग फागुन के महीने में। शाहाबाद और पटना जिलों में इस गीत का बहुत प्रचार है और यह वहीं का गीत है, यद्यपि फगुआ और चैत दोनों ही बनारस में भी खूब गाये जाते हैं तथा वहाँ से बाहर आसपास की और जगहों में भी।

सोहर या सोहिला

जब किसी के घर में लड़का-लड़की का जन्म होता है, उस अवसर पर स्त्रियाँ यह गीत गाती हैं। उस समय जो गानेवाली तवायफ या गानेवाले कत्थक या नटवा बुलाये जाते हैं, वे लोग भी इसे गाते हैं। खोजा और पँवरिया भी आकर सोहर गाते हैं।

कजरी

'कजरी' गीत भी सावन के महीने में बिहार में खूब गाया जाता है। कजरी प्रथमतः मिर्जापुर से और तत्पश्चात् बनारस से निकली और फैली। बनारस में अब भी कजली के दंगल हुआ करते हैं।

उपर्युक्त गीतों के अतिरिक्त स्थान-स्थान में और भी कई प्रकार के छोटे-मोटे गीत प्रायः गाये जाते हैं। झूमर आदि औरतें गाती हैं। आरा-छपरा जिलों में चाँचर, बिरहा और घाँटो प्रसिद्ध गीत हैं। ढोलक-झाल पर गाया जानेवाला 'चैत' ही घाँटो है।

बिहार के संगीत-केन्द्र और गीतों के बनाने-गानेवाले

बिहार में—और मैं संगीत के संसर्ग में बनारस कमिश्नरी के जिलों को भी बिहार में लेता हूँ—संगीत के मुख्य केन्द्र समयानुसार दरभंगा, चम्पारन,

सारन, पटना, शाहाबाद, गया और काशी चले आये हैं। काशी (बनारस) तो प्राचीन समय से आजतक संगीत का केन्द्र चला आता है और है भी।

दरभंगा

दरभंगा—अर्थात् तिरहुत में, जिसको मिथिला कहते हैं—सिंहभूपाल, जगद्धर, समिति, वितृष्ण, जयत, हरिहर मल्लिक, खड्गराम, कल्लीराम, मिथिला के राजा शिवसिंह, विद्यापति ठाकुर और उनकी पुत्रवधू चन्द्रकला, कविवर गोविन्द दास, नरपति ठाकुर (महाराज महिनाथ ठाकुर के छोटे भाई जो पीछे महाराज हुए), लोचन कवि आदि के समय से लेकर आजतक संगीत का केन्द्र रहा और है। महाराज नरपति ठाकुर का वर्णन लोचन कवि ने 'श्रुतिगानसिन्धु' कहकर किया है।

इधर पचास वर्षों के भीतर, स्वर्गवासी मिथिलेश महाराज सर लक्ष्मीश्वर सिंह के समय में, 'दरभंगा' संगीत और संगीतज्ञों का महान् केन्द्र था। उस समय में खण्डारवाणी के ध्रुपद गानेवाले स्वर्गवासी श्रीकामता मल्लिक, शुद्ध ध्रुपद गानेवाले स्व० श्री क्षितिपाल मल्लिक और उनके भाई श्री राजितरामजी (वर्त्तमान), स्वरोदय (सरोद बजानेवाले स्व० उस्ताद मुरादअली खाँ, सुरसिंगार बजानेवाले स्व० उस्ताद असगरअली खाँ, ख्याल गानेवाले (प्रसिद्ध जोड़ी) स्व० उस्ताद अजीमबख्श खाँ और मौलाबख्श खाँ तथा मृदङ्ग बजानेवाले स्व० भैयालालजी (जो प्रसिद्ध मृदङ्गाचार्य कोदऊ सिंहजी के नाती थे) देश प्रसिद्ध संगीताचार्य थे। इसी समय में भक्ति रस के ललित पदों की रचना करनेवाले और भजन गानेवाले सन्त श्रीलक्ष्मीनाथ गोसाईं बड़े प्रसिद्ध हुए। इनकी कई पुस्तकें सकरपुरा (मुंगेर) निवासी रायबहादुर उदितनारायणसिंह ने प्रकाशित कराई हैं।

श्रीमान् महाराज लक्ष्मीश्वरसिंहजी भी स्वयं सितार अच्छे सुर में बजाते थे और थोड़ा थोड़ा सुरीला गाना भी गाते थे। उनके स्वर्गवास के पश्चात् स्वर्गीय मिथिलेश महाराजाधिराज सर रमेश्वरसिंहजी के समय में भी वक्त सब संगीताचार्य बहुत काल तक जीवित रहे; किन्तु अब सबका स्वर्गवास हो गया—केवल श्रीराजितरामजी और उस्ताद अजीमबख्श खाँ के बड़े पुत्र प्रोफेसर अब्दुलगनी खाँ, जो अपने कलाविद् पिता के समान ही संगीतज्ञ विद्वान् हैं, और श्रीराजितरामजी के पुत्र श्रीरामचतुरजी, जो स्वयं बड़े अच्छे गानेवाले हैं, वर्त्तमान मिथिलेश के प्रिय अनुज श्रीमान् राजा बहादुर विश्वेश्वर सिंहजी की सेवा में रहते हैं।

बहुत बढ गया था। प्रोफेसर अबदुल मजीद खाँ से आपने 'ख्याल' गाना सीखा था। आपके गाँव के पडित रामपाल चौधरी तबला खूब बजाते हैं।

'घटहो' गाँव के स्वर्गीय पडित रूपकान्तजी अपने समय के सर्वप्रधान सगीत-शास्त्री थे और अनेक साज-बाज बजाते थे। आप बड़े स्वाधीनचेता और बेजोड़ कलावन्त थे।

आजकल 'पचोभ' गाँव के पडित रामचन्द्र झा मिथिला के नामी गवैयों में हैं। बिहार-भर में इनकी कला-निपुणता की प्रसिद्धि है। बनैली-नरेश राजा कीर्त्यानन्दसिंह बहादुर और श्रीनगर के कुमार कालिकानन्दसिंह के दरबार से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। गढ़-बनैली के कुमार रमानन्दसिंह बहादुर के दरबार में भी इनका बड़ा मान था। इन्हीं के गाँव के इनके शिष्य पंडित जटाधरजी भी अच्छे गवैया हैं—आप दरभगा-नरेश के दरबार मे रहा करते थे, अब घर पर हैं—आपके शिष्यों में स्वर्गीय नचारी चौधरी अच्छे गवैया हो चुके हैं, जिनके सुपुत्र दिनेश्वर झा भी गान विद्या में बड़े कुशल हैं।

वर्त्तमान मिथिलेश के ममेरे भाई श्रीदयानाथ झा सगीत के अच्छे जानकार हैं। सैदपुर के जमीन्दार श्रीगगाप्रसाद पाडेय इसराज बजाने में पारगत और अच्छे सगीत-मर्मज्ञ हैं। गवैयों में 'अजुआर' के निवासी पडित रामदेव झा भी प्रसिद्ध हैं। 'टमका' निवासी पडित सत्यनारायण चौधरी और 'महुली'-निवासी पडित वासुदेव राय 'ख्याल' के बडे अच्छे गायक हैं।

मुजफ्फरपुर

मुजफ्फरपुर में, पूर्व समय मे, श्री बाँके मल्लिक अच्छे सगीतज्ञ विद्वान् थे। पहले वे केवल गवैया थे, पीछे सारङ्गी भी बजाने लगे। उनके भतीजा श्रीछत्र मल्लिक भी अच्छे गवैया थे, जिन्होंने सगीत की शिक्षा एक प्रसिद्ध मुसलमान गवैया छज्जे खाँ से पाई थी। छत्र मल्लिक के भतीजा श्री कुञ्ज मल्लिक अबतक श्रीमान् राजा विश्वेश्वरसिह बहादुर (दरभगा) की सेवा में हैं। किसी समय ये सारङ्गी अच्छा बजाते थे, किन्तु अब अभ्यास छूट गया है।

मुजफ्फरपुर मे लखनऊ के प्रसिद्ध सारगी बजानेवाले हसनबख्श खाँ साहब के छोटे पुत्र 'मँझले उस्तादजी' आकर बस गये थे। वहीं इनका स्वर्गवास हुआ। ये भी सारङ्गी बहुत अच्छा बजाते थे, किन्तु तवायफों के साथ नहीं।

हसनबख्श खाँ लखनऊ के नवाब वाजिद अलीशाह के दरबार में मुलाजिम थे। उनकी सारङ्गी से नवाब साहब इतना प्रसन्न रहते थे कि उनके साथ साथ

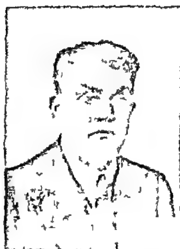

संगीताचार्य श्रीमुरारिप्रसाद,
ऐडवोकेट, पटना हाइकोर्ट
(पृष्ठ २१०)

संगीताचार्य श्रीमिथिलाप्रसादसिंह
(फुलेना बाबू)
रईस, मकोल (मुँगेर)
(पृष्ठ ३१०)

मृदंगाचार्य श्रीशत्रुंजयप्रसाद सिंह
रईस, जमिरा (शाहाबाद)
(पृष्ठ ३०५)

(पृष्ठ ३०१)

संगीतज्ञ
बी. एस-सी., रईस

उनकी सारङ्गी भी एक दूसरी पालकी पर दरबार में आती-जाती थी।

उस समय में सारङ्गी बजानेवाले दो उस्ताद लखनऊ और दिल्ली में मशहूर थे—गया शहर के गोपाली मल्लिक और नैपाल के श्री तमाखूजी। हैदर-बख्श खाँ और गोपाली मल्लिक सारंगी में 'जोड़' (वीणा-सितार के ऐसा राग-रागिणी-आलाप) इत्यादि बजाते थे। हसनबख्श खाँ और तमाखूजी 'सैर' (जिसको आजकल ठुमरी, दादरा, गजल आदि का बाज, रंगीन बाज, कहते हैं) बजाते थे। उपर्युक्त मँझले उस्ताद ख्याल की चाल पर राग-रागिणी का बाज भी बजाते थे। युक्तप्रान्त के आजमगढ़ जिले के रहनेवाले श्री देवीदत्त मल्लिक ने, जो छपरा में रहते थे, गया में गोपाली मल्लिक से जोड़ बजाना और नैपाल जाकर तमाखूजी से सैर बजाना सीखा था। वे अपने समय में सारंगी में जोड़ और सैर दोनों ऐसा बजाते थे कि उनका कोई जोड़ नहीं था। तमाखूजी के एक शिष्य तुलसी मिश्र अपने समय के प्रसिद्ध सारङ्गी बजानेवाले थे और पटना में रहते थे। उनका देहान्त आज से प्राय चालीस वर्ष पूर्व हो गया।

मुजफ्फरपुर शहर में स्वर्गीय बाबू बलदेव साहु और उनके छोटे भाई बाबू गजाधरप्रसाद साहु संगीत विद्या के बड़े प्रेमी थे। बाबू गजाधरप्रसाद साहु हारमोनियम बहुत अच्छा बजाते थे। बाबू बलदेव साहु के बड़े पुत्र बाबू जगन्नाथप्रसाद साहु और बाबू गजाधरप्रसाद साहु के पुत्र बाबू कालीप्रसाद साहु दोनों चचेरे भाई हारमोनियम बहुत अच्छा बजाते हैं। बाबू बलदेवप्रसाद साहु और बाबू गजाधरप्रसाद साहु की सेवा में जोतसिंहजी पखावजी, जो प्रसिद्ध पखावजी श्री कोदऊ सिंहजी के शिष्य थे, बराबर रहे और वहीं उनका स्वर्गवास हुआ। जोतसिंहजी पखावज बजाने के अतिरिक्त ठुमरी बहुत अच्छा गाते थे।

रईसों में उपर्युक्त बाबू जगन्नाथप्रसाद और बाबू कालीप्रसाद के अलावा रायबहादुर नन्दनलालजी के वंशधर श्रीउमाशंकरप्रसाद बी एस सी (श्री बचा बाबू) संगीत के अनन्य प्रेमी और वास्तविक मर्मज्ञ हैं। मुजफ्फरपुर में, सन् १९३७ ई० में, जो अखिलभारतवर्षीय संगीत सम्मेलन हुआ था, उसके मुख्य कर्त्ता-धर्त्ता बचा बाबू ही थे। आप ध्रुपद बहुत अच्छा गाते हैं।

चम्पारन

चम्पारन जिले के अन्तर्गत 'बेतिया' राजधानी में, सौ सवा सौ वर्ष हुए, दुखित मल्लिक एक प्रसिद्ध हिन्दू गवैया हुए थे। उनके वंश में अबतक गान विद्या का ज्ञान और अभ्यास चला आता है। वे ध्रुपद, तराना, सरगम, धरगम बहुत

अच्छा गाते थे और संगीत विद्या का भी उन्होंने अच्छा अध्ययन किया था। उन्होंने अच्छे-अच्छे ध्रुपद, सरगम और वरगम बनाये भी थे, किन्तु कोई पुस्तक नहीं लिखी।

बेतिया के स्वर्गीय महाराज नवलकिशोरसिंह भी स्वयं बहुत अच्छे संगीतज्ञ और संगीताभ्यासी थे। आपने छ-छ पदों की होरियाँ भी बनाई थीं। आप ध्रुपद और होरी अच्छी तरह गाते थे। भगवती की स्तुति में भजनों की एक पुस्तक भी राग-रागिणी के साथ आपने बनाई थी। महाराज आनन्दकिशोरसिंह बहादुर भी संगीत-शास्त्र के पंडित थे। आपके बनाये हुए गीत और भजन आज-तक गाये जाते हैं। प्रसिद्ध दानी महाराज राजेन्द्रकिशोरसिंह भी अनन्य संगीत प्रेमी थे। उनके दरबार में अनेक गुणी-गवैया आश्रित थे।

बेतिया से पाँच-छ कोस दक्खिन 'मिश्रटोला' ग्राम के श्रीजगदीशनारायण दीक्षित हारमोनियम बजाने में बहुत मशहूर हैं, गवैया भी उच्चकोटि के हैं, कविता भी करते हैं, सारा जिला इन्हें जानता है। इनके बाद रढ़िया के रहनेवाले पंडित राजवंशी तिवारी का नाम याद आता है, जिन्होंने कई पुस्तकें भी लिखी हैं। गहिरी निवासी श्रीरघुनाथ ठाकुर भी एक संगीत सम्बन्धी उत्तम पुस्तक लिख रहे हैं—आप कवि और गायक दोनों हैं। इन सबके सिवा पंडित जगन्नाथ तिवारी, जगदीशनारायण, रूपाराम, नरसिंहजी और महन्त शंकरगिरि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। चम्पारन के संगीतानुरागी इन्हें जानते हैं।

शाहाबाद (आरा)

जिस समय बेतिया में दुखित मल्लिक हुए थे, उसी के आसपास शाहाबाद जिले के अन्तर्गत डुमराँव-रियासत में बच्चू मल्लिक (प्रकाश' कवि) महाराज राधाप्रसादसिंह के परम कृपापात्र थे। ये भी उक्त दुखित मल्लिक ही के ऐसे संगीतज्ञ विद्वान् और अभ्यासी थे। इन्होंने 'सुर-प्रकाश' नामक पुस्तक रची थी जो छप चुकी है। इनके बनाये हुए बहुत-से गीत हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इन्हे 'संगीताचार्य' की उपाधि दी थी। इन्हीं के वंश में पहले 'घनाजी' एक प्रसिद्ध गायक और संगीताचार्य हुए थे, जिनकी चीजें आजतक आरा शहर और शाहाबाद जिले के लोग गाते हैं। आरा निवासी श्री प्रताप मिश्र, जो वहाँ के संगीत-विद्यालय में शिक्षक हैं और स्वयं भी अच्छे गुणी हैं, घना जी की और बच्चू मल्लिक की बनाई हुई बहुत सी अच्छी चीजें जानते और गाते हैं।

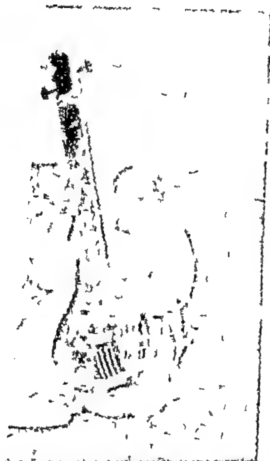

ाधीरा कुमार श्यामानन्द सिंह, चम्पानगर ड्योढ़ी

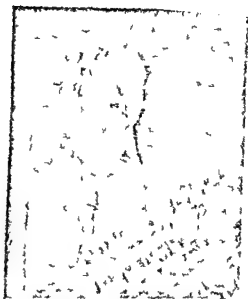

श्रीरामेश्वर पाठक (दरभंगाराज्याश्रित)

मर्मज्ञ श्री श्यामनारायण राय, बी ए, एस डी ओ,
दरभंगा

श्री रामचतुर मल्लिक (दरभंगाराज्याश्रित)

—· ...र्ी (दरभंगाराज्याश्रित)

संगीतज्ञ श्रीराजितरामजी

दरभंगा के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ
श्रीजानकी राय

बाबू देवदयाल सिंह हारमोनियम मास्टर

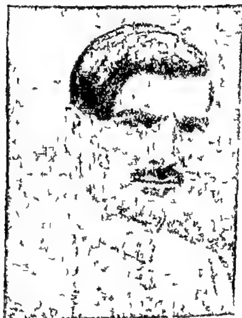

उदीयमान संगीतज्ञ श्रीवासुदेवजी

स्वर्गीय सूर्यपुराधीश राजा राजराजेश्वरीप्रसादसिंह ('प्यारे' कवि) बड़े विख्यात संगीत-मर्मज्ञ थे। गाने बजाने की कला के नामी शौकीन थे। आपके बनाये हुए बहुत-से सरस गीत आपकी ग्रंथावली में प्रकाशित हो चुके हैं। आपके दरबार में बहुत से गुणी, गायक और कलावन्त बराबर रहते थे। आपके रचे हुए अनूठे गीतों में अनेक राग रागिणियों और विविध ताल-स्वरों का अपूर्व समावेश है तथा उनकी स्वरलिपियाँ भी उनके साथ ही प्रकाशित हैं।

इस समय आरा-शहर में जमिरा के धनी मानी जमीन्दार श्री शत्रुञ्जयप्रसाद सिंह (श्रीलल्लनजी) पखावज बहुत अच्छा बजाते हैं। आप ७५ से ज्यादा स्वर्णपदक और ५० से ज्यादा रजतपदक पा चुके हैं। इलाहाबाद, बनारस और लखनऊ के अखिलभारतवर्षीय संगीत सम्मेलनों में आपने पखावज बजाकर सर्वोपरि नाम पैदा किया है। आपके उत्साह से आरा-नगर में संगीत की खासी चर्चा रहती है। अनेक प्रसिद्ध संगीतज्ञों से आपकी घनिष्ठता है।

आरा नगर में श्रीरघुनन्दन मल्लिक भी निपुण संगीतज्ञ हैं। सूर्यपुरा के पास 'धनगाई' गाँव के निवासी हैं। यह सारा गाँव गायनाचार्य मल्लिकों की ही मशहूर बस्ती है। यहाँ कितने ही प्रसिद्ध गायक और वादक हो चुके हैं, जो बिहार के कई राज-दरबारों में सम्मानपूर्वक आश्रय पाते रहे। आज भी यहाँ कई अच्छे संगीतज्ञ मल्लिक हैं।

उपर्युक्त 'धना'जी और बच्चू मल्लिक इसी 'धनगाई' गाँव के निवासी थे। धनाजी का पूरा नाम था श्रीधनारङ्ग दूबे और पिता का नाम तिलक दूबे—आप श्रीमानिकचन्द दूबे और अनूपचन्द दूबे के शिष्य थे—पहले डुमराँव के राजदरबार में रहते थे, पीछे सूर्यपुराधीश के दरबार में आकर वहीं जीवन व्यतीत किया—आपके बनाये हुए पद बड़े कठिन और गूढ़ तथा भावपूर्ण हैं—आप साहित्यमर्मज्ञ भी थे, कृष्णभक्त थे, रचित ग्रंथ 'कृष्णरामायण' प्रकाशित हो चुका है। आप ही के भाई पदारथ दूबे के पुत्र थे उक्त बच्चू दूबे (प्रकाश कवि), जिन्होंने मानिकचन्द दूबे से संगीत शिक्षा पाई थी, किन्तु इन बच्चू मल्लिक को सरस्वती ने अपूर्व शक्ति दी थी, क्योंकि ये संगीत शास्त्र के सभी प्रकार के गीत आशातीत सफलता के साथ गा सकते थे और अनेक ऐसे गीत बना चुके थे जिनमें स्पर्श वर्णों का सर्वथा अभाव था—इनके निरौष्ठिक गीत बड़े विशद भावों से पूर्ण और भक्तिरसगर्भित हैं—ये अंत काल तक डुमराँव-नरेश के ही आश्रित रहे—इनके प्रधान शिष्य 'रेपुरा' (जिला बलिया) के निवासी पंडित शिवदीन पाठक श्रीनगर-

(पूर्णिया)-नरेश के दरबार में आजीवन गायक रहे—इनके दूसरे शिष्य भी उसी ग्राम के निवासी पंडित विश्वनाथ पाठक थे, जो पचगछिया (भागलपुर) के रईस रायबहादुर लक्ष्मीनारायणसिंह के दरबार में रहते थे।

धनगाई के एक मल्लिक श्रीसहदेव दूबे गान-विद्या में बड़े प्रवीण हैं और स्वनामधन्य हिन्दी साहित्यसेवी सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमणप्रसादसिंहजी एम. ए. के दरबार में रहते हैं तथा रियासत के हाइस्कूल में संगीत शिक्षण का काम भी करते हैं—इनके ग्रेजुएट सुपुत्र भी संगीत विशारद हैं। जान पड़ता है, जैसे—पटना जिले के 'नेउरा' ग्राम में उच्च अँगरेजी-शिक्षा की तूती बोलती है वैसे ही शाहाबाद जिले के 'धनगाई' गाँव में भी उच्च संगीत-कला का बोलबाला है। इसी गाँव के पूर्वोक्त श्रीरघुनन्दन मल्लिक ने आरा नगर में बरसों से एक संगीत संघ स्थापित कर रक्खा है, जिसकी उत्तरोत्तर उन्नति का श्रेय उपर्युक्त श्रीशत्रुञ्जय प्रसादसिंह को है। श्रीरघुनन्दन मल्लिक सितार, तबला और जलतरंग बजाने में बड़े सिद्धहस्त हैं।

श्रीशत्रुञ्जयप्रसादसिंह (लल्लनजी) के स्वर्गीय पिता बाबू हितनारायण सिंह भी संगीत के अच्छे मर्मज्ञ थे—ध्रुपद गाने में प्रसिद्ध थे और बलिया जिले के 'रेपुरा'-निवासी पंडित देवकीनन्दन पाठक के शिष्य थे। पाठकजी अभी जीवित हैं और नैपाल-राज्य के किसी कर्नल के यहाँ धनकुट्टा नामक स्थान में रहते हैं—आप 'मऊ' (आजमगढ़) के मृदङ्गाचार्य मदनमोहनजी के सर्वश्रेष्ठ शिष्य हैं, आप भारतप्रसिद्ध पखावजी हैं, आपकी धर्मनिष्ठा और भगवद्भक्ति सर्वथा प्रशंसनीय है। लल्लनजी को अपने पिताजी से ही मृदङ्गवादन की शिक्षा मिली थी और पाठकजी से भी—उनके समान लब्धकीर्त्ति संगीतज्ञ विरले ही हैं।

ब्रह्मपुर-निवासी पंडित रामप्रसाद पाँडेय पहले रायबहादुर श्यामनन्दन-सहाय एम. एल. ए. (बाघी, मुजफ्फरपुर) के दरबार में थे और अब उक्त लल्लनजी के दरबार में हैं। आप अच्छे गवैया हैं। आपके चचा पंडित रामबल पाँडेय धम्मार गाने में बड़े दक्ष थे। आपके दूसरे चचा पंडित शिवप्रसाद पाँडेय सितार के सच्चे गुणी थे और गिद्धौर-नरेश के आश्रित थे। ब्रह्मपुर के ही पंडित राम-प्रताप पाँडेय भी 'ध्रुपद' और 'ख्याल' गाने में काफी नाम कमा चुके हैं—इनके पिता पंडित हरिसहाय पाँडेय भी संगीत विद्या के अच्छे विद्वान् थे।

उपर्युक्त बाबू हितनारायणसिंहजी ३२ वर्ष की उम्र से ७२ वर्ष की बड़ी उम्र तक केवल संगीत की ही धुन में मस्त रहे। आपको कम-से-कम तीन चार सौ

प्रकार के विविध-राग रागिणी-युक्त ध्रुपद याद थे। आपके शिष्यों में प्रोफेसर चन्द्रशेखर पाठक बहुत अच्छा निकले, जिन्होंने कई संगीत-समारोहों में आपका और अपना नाम उजागर किया। आपके असल उस्ताद थे खाँ साहब तसद्दुक हुसेन, जिन्होंने लखनऊ के नवाबी दरबार से निकलकर नैपाल-नरेश के यहाँ से होते हुए 'आरा' नगर में अपना अड्डा जमाया था। वे पचीस-तीस साल तक आरा नगर में रहे और सन १६२२ में ६ जनवरी को आरा में ही स्वर्गगामी हुए। उन दिनों कलकत्ता और दिल्ली के बीच उनके जोड़ का कोई गवैया न था। बाबू साहब ने ध्रुपद और मृदंग में उनसे विशेष शक्ति और स्फूर्त्ति प्राप्त की थी।

जगतपुर निवासी श्रीदेवदयालसिंहजी हारमोनियम के बड़े अच्छे उस्ताद हैं। लखनऊ के रेडियो विभाग ने आपको ब्राडकास्टिंग के लिये बुलाया था।

रामपुर (चौसा) के बाबू श्यामनारायण राय, बी० ए०, बी० एल०, प्राचीन और अर्वाचीन संगीत तथा वाद्यकला के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। आप कलकत्ता, दिल्ली और बनारस के संगीतज्ञों के समक्ष प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। तबला और हारमोनियम बजाने में आपके समकक्ष बहुत ही कम लोग मिलेंगे। ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी और दादरा गाने में आप अपनी कला का विशेष चमत्कार दिखलाते हैं।

'आरा'-नगर के दो और स्वर्गीय रईस भी संगीत के बड़े पक्के अनुरागी थे—बाबू रामकुमार अग्रवाल और बाबू भगवत सहाय वकील (झूलनप्रसाद), इन दोनों रईसों ने उक्त खाँ साहब के सत्संग का सौभाग्य प्राप्त किया था। झूलन प्रसादजी तो सितार के ऐसे रसिक थे कि रात में नित्य नियमपूर्वक सितार बजा लेने के बाद ही शयन करने जाते थे। बाबू रामकुमार बड़ी शौकीन तबीयत के रईस, जमीन्दार और बैंकर थे तथा संगीतज्ञों के सम्मान सत्कार में उनकी विशेष प्रवृत्ति थी।

सारन (छपरा)

सारन जिले में छपरा शहर संगीत का केन्द्र रहा है। जिले का प्रधान नगर यही है। आजकल भी इस शहर में ग्वालियर तक के गवैये आया करते हैं। बिहार-भर में सबसे सुन्दर हिन्दीरंगमंच की सुव्यवस्था होने से यहाँ के नागरिकों में संगीत का अच्छा अनुराग है। सारन जिले की प्रसिद्ध रियासत 'हथुआ' की राजधानी में, वर्त्तमान महाराज के पिता-पितामह के समय में, संगीत का अच्छा प्रचार था। दरभंगा के स्वर्गवासी उस्ताद मुरादअली खाँ और असगर अली खाँ पहले हथुआ रियासत में ही मुलाजिम थे और वहीं से दरभंगा आये थे। वहाँ पर श्रीउदित मिश्र और श्रीमहेन्द्र मिश्र, दो भाई, अच्छे गानेवाले थे।

छपरा-शहर मे श्रीरघुवर मिश्र और उनके छोटे भाई श्रीयदुवर मिश्र संगीत विद्या के अच्छे पंडित और गुणी गायक थे। श्रीरघुवर मिश्र तो पीछे बिल्कुल बहरा हो गये, किन्तु श्रीयदुवर मिश्र अन्त समय तक गाते रहे—सरगम, वरगम, तराना, और विशेषत टप्पा बहुत अच्छा गाते थे।

श्रीरघुवर मिश्र के पुत्र श्रीहाकिम मिश्र गवैया तो नहीं हुए, किन्तु सारङ्गी बजाने मे परम प्रवीण और सुदक्ष हुए। आपने बहुत यश-अर्जन किया। आपके बारे मे यह कहावत प्रचलित थी कि जिसको आपने 'आ' करना सिखा दिया, एक लहरा बता दिया, वह अपनी दाल-रोटी की चिन्ता से मुक्त हो गया।

श्रीहाकिम मिश्र ने पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों को भी सगीत शिक्षा दी। उनकी सिखाई हुई कई गायिकाएँ—बद्रेमनीर, सरजू, रसूलन आदि—छपरा में नामी गानेवाली हो गई हैं। कई अच्छे-अच्छे सारङ्गी बजानेवालों को भी उन्होंने तालीम दी थी, किन्तु सबसे बड़ी विशेषता उनमे यह थी कि उन्होंने किसी तवायफ के साथ सारङ्गी नहीं बजाई। कई बार, अवसर-विशेष पर, उन्होंने प्रसिद्ध गवैयों के साथ सारङ्गी बजाई और बहुत प्रशसा प्राप्त की।

छपरा-शहर में सबसे अधिक नाम पकड़ी-निवासी श्रीमहावीर मिश्र का हुआ। वे खूब गाते और नाचते भी थे। किन्तु नाचने मे नटों के ऐसा भाव नहीं बताते थे। परन्तु भाव न बताने पर भी उनके गाने का ऐसा निराला ढग था कि गाने मे ही भाव बताना हो जाता था। वे सरगम, वरगम, तराना और ध्रुपद अच्छा गाते थे। किन्तु सबसे अच्छा गाते थे बिरहिनी धुन के गीत और चलती हुई ठुमरी—चार-चार लयों मे।

दरभगा-नरेश महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह महावीर मल्लिक के बिरहिनी-गीतों के बड़े प्रेमी थे। उनके दस-पाँच गीतों को आपने याद भी किया था। महावीर मल्लिक की बिरहिनी धुन छपरा से बाहर काशी तक लोग गाते-बजाते थे। उनकी बिरहिनी का अनुकरण काशी के लोगों ने ठुमरियो मे भी किया, और बिरहिनी ठुमरियाँ बनाई गई।

छपरा की गायिकाएँ आजकल जो पूरबी गीत गाती हैं और छपरा से बाहर की भी गायिकाएँ जिन्हें गाती हैं, वे पूरबी गीत भी श्रीमहावीर मल्लिक की बिरहिनी से ही निकले—उनके भी उस्ताद वे ही हैं।

छपरा शहर में स्वर्गवासी बाबू लाडिलीशरणजी मुख्तार सगीत विद्या के अच्छे पंडित थे। गान विद्या में कई आदमियों को उन्होंने शिक्षा दी थी।

इस समय भी छपरा में श्रीमहेन्द्र मिश्र वर्त्तमान हैं, जो स्वयं अच्छा गाते हैं। आपने बहुत से पूरबी गीत, फगुआ के गीत, कजरियाँ, चैत और दूसरे-दूसरे गीत बनाये हैं, जो छपरा में और छपरा से बाहर भी गाये जाते हैं।

'हरदिया' गाँव के निवासी श्रीध्रुवदेव सहाय, एम्० ए०—काशी के सुप्रसिद्ध ध्रुपदाचार्य और पखावजी स्वर्गीय भोलानाथ पाठक के शिष्य हैं। हिन्दू विश्वविद्यालय के मृदङ्गाचार्य पंडित मन्नूजी औदीच्य भी आपके संगीत-गुरु हैं। आपने लगातार नौ बरसों तक मृदङ्ग-वादन की कला सीखी है। औदीच्यजी की पुस्तक 'तालदीपिका' के तीन भागों (तबला प्रकरण) के प्रकाशन में आपका विशेष हाथ रहा है। आप स्वयं भी एक गवेषणापूर्ण संगीत ग्रंथ लिख रहे हैं।

'केवानी' ग्राम के निवासी श्रीशिवेन्द्र दीक्षित, बी० ए०—हिन्दू-विश्वविद्यालय के गायनाचार्य पंडित शिवप्रसाद त्रिपाठी के शिष्य हैं। उक्त पाठकजी और औदीच्यजी से भी आपने संगीत कला सीखी है। आप ध्रुपद गाने में अत्यन्त निपुण हैं। महामना मालवीयजी और आचार्य ध्रुव भी आपके मधुर कंठ और कला कुशलता से तृप्त होकर आपकी प्रशंसा कर चुके हैं। आप 'विजय' नामक साप्ताहिक पत्र (छपरा) के सम्पादक थे, जिसमें प्रायः संगीत की चर्चा और सामग्री रहती थी।

पटना

अनेक सम्राटों, बादशाहों और नवाबों की राजधानी रहने के कारण पटना-शहर बहुत प्राचीन समय से संगीत का प्रसिद्ध केन्द्र रहता चला आया है, किन्तु इस समय पटना में कोई रससिद्ध गायक या गायिका नहीं है। सन् १८१३ ई० में* पटना के प्रसिद्ध संगीतज्ञ रईस मुहम्मद रजा साहब ने, हिन्दुस्तानी राग-रागिणियों का, उनकी गान प्रणाली के अनुसार मेल मिलाकर, एक नया श्रेणी मथन किया, जिसको राग रागिणियों का 'ठाट' कहते हैं और जिसका वर्णन पहले हो चुका है। सितार में भी ऐसी ही ठाटबन्दी की जाती है। पूर्वकाल में जब छोटी सारङ्गी (टोंटा) बजती थी, जिसमें कुल ग्यारह या तेरह तरब रहते थे, तब उसमें भी इसी तरह ठाट बजाया जाता था।

मुहम्मद रजा ने एक पुस्तक 'नगमात आसफी' लिखी थी, जिसका चर्चा एच० ए० पौप्ले (H A Popley) की 'म्युजिक आफ इंडिया' में और फॉक्स स्ट्रांगवे (Fox Strangway) की 'म्युजिक आफ हिन्दुस्तान' (Music of

* H A. Popley's 'Music of India'

छपरा-शहर में श्रीरघुवर मिश्र और उनके छोटे भाई श्रीयदुवर मिश्र संगीत विद्या के अच्छे पंडित और गुणी गायक थे। श्रीरघुवर मिश्र तो पीछे बिल्कुल बहरा हो गये, किन्तु श्रीयदुवर मिश्र अन्त समय तक गाते रहे—सरगम, बरगम, तर्राना, और विशेषत टप्पा बहुत अच्छा गाते थे।

श्रीरघुवर मिश्र के पुत्र श्रीहाकिम मिश्र गवैया तो नहीं हुए, किन्तु सारङ्गी बजाने में परम प्रवीण और सुदक्ष हुए। आपने बहुत यश-अर्जन किया। आपके बारे में यह कहावत प्रचलित थी कि जिसको आपने 'आ' करना सिखा दिया, एक लहरा बता दिया, वह अपनी दाल-रोटी की चिन्ता से मुक्त हो गया।

श्रीहाकिम मिश्र ने पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों को भी संगीत शिक्षा दी। उनकी सिखाई हुई कई गायिकाएँ—बदरेमनीर, सरजू, रसूलन आदि—छपरा में नामी गानेवाली हो गई हैं। कई अच्छे-अच्छे सारङ्गी बजानेवालों को भी उन्होंने तालीम दी थी, किन्तु सबसे बड़ी विशेषता उनमें यह थी कि उन्होंने किसी तवायफ के साथ सारङ्गी नहीं बजाई। कई बार, अवसर-विशेष पर, उन्होंने प्रसिद्ध गवैयों के साथ सारङ्गी बजाई और बहुत प्रशंसा प्राप्त की।

छपरा-शहर में सबसे अधिक नाम पकड़ी-निवासी श्रीमहावीर मिश्र का हुआ। वे खूब गाते और नाचते भी थे। किन्तु नाचने में नर्तों के ऐसा भाव नहीं बताते थे। परन्तु भाव न बताने पर भी उनके गाने का ऐसा निराला ढंग था कि गाने में ही भाव बताना हो जाता था। वे सरगम, बरगम, तर्राना और ध्रुपद अच्छा गाते थे। किन्तु सबसे अच्छा गाते थे बिरहिनी धुन के गीत और चलती हुई ठुमरी—चार-चार लयों में।

दरभंगा-नरेश महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह महावीर मल्लिक के बिरहिनी गीतों के बड़े प्रेमी थे। उनके दस-पाँच गीतों को आपने याद भी किया था। महावीर मल्लिक की बिरहिनी धुन छपरा से बाहर काशी तक लोग गाते-बजाते थे। उनकी बिरहिनी का अनुकरण काशी के लोगों ने ठुमरियों में भी किया, और बिरहिनी ठुमरियाँ बनाई गई।

छपरा की गायिकाएँ आजकल जो पूरबी गीत गाती हैं और छपरा से बाहर की भी गायिकाएँ जिन्हें गाती हैं, वे पूरबी गीत भी श्रीमहावीर मल्लिक की बिरहिनी से ही निकले—उनके भी उस्ताद वे ही हैं।

छपरा शहर में स्वर्गवासी बाबू लाडिलीशरणजी मुख्तार संगीत विद्या के अच्छे पंडित थे। गान विद्या में कई आदमियों को उन्होंने शिक्षा दी थी।

कन्हई गुरु, उस्ताद अली कदर, उस्ताद मुबारक अली (जगान) मशहूर थे। इनलोगों का स्वर्गवास हुए प्राय चालीस वर्ष हुए होंगे।

उस्ताद अली कदर ठेका बहुत अच्छा बजाते थे—यहाँ तक कि उनका ठेका सुनकर लखनऊ के नामी उस्ताद मुन्ने खाँ (लखनऊ के खलीफा के पुत्र) ने भरी सभा में यह कहा था कि "बेटा, तू तो मेरे ही घर का सिक्केकार है, लेकिन जो तेरे हाथ में है, वह मेरे हाथ में भी नहीं है।"

इन उस्तादों के वंशधरों में या इनकी शिष्य परम्परा में अब कोई वर्त्तमान नहीं है। सिर्फ उस्ताद अली कदर के पुत्र मशहूर 'ढहुनजी' ही इस समय पटना के प्रसिद्ध तबलचियों में हैं, किन्तु अपने पिता के ऐसे नहीं हैं।

गया

बिहार में गया शहर भी संगीत का एक मुख्य अड्डा और अखाड़ा था। इस शहर में तीर्थगुरु (पंडा) ढेंढीजी के समय में इसरार बहुत आला दर्जे का बजता था। ढेंढीजी पटना के मशहूर नवाब 'प्यारे साहब' के समकालीन थे। ये स्वयं इसरार उसी दर्जे का बजाते थे जिस दर्जे का नवाब साहब सितार।

ढेंढीजी के समकालीन एक प्रसिद्ध उस्ताद श्रीहनुमानदासजी अबतक वर्त्तमान हैं। संगीत विद्या के ये महान् पंडित हैं। कुछ कुछ संगीत की शिक्षा अबतक देते हैं, किन्तु अब बहुत बूढ़े हो गये हैं। इन्हीं के सुपुत्र श्रीसोनीसिंहजी स्वनामधन्य हारमोनियम मास्टर थे।

ढेंढीजी के समय का चला हुआ इसरार अबतक प्रसिद्ध इसरार-वादक श्री चंडिका दुबे के हाथ में है। दुबेजी गया जिले के 'पवई' गाँव के रहनेवाले हैं। 'पवई' में कई अच्छे गवैये भी हैं।

उस्ताद हनुमानदासजी के शिष्यों में पंडा माधवलाल कटरियार और उस्तादजी के अपने पुत्र श्री शोणीजी (सोनीसिंह) थे। ये दोनों ही हारमोनियम बहुत अच्छा बजाते थे। दोनों का स्वर्गवास हो गया। श्रीसोनीजी तो हार मोनियम बजाने में समस्त भारतवर्ष में प्रसिद्ध थे। केवल प्रसिद्ध ही नहीं, अद्वितीय थे। ये इसराज बजाने में भी परम सिद्धहस्त थे। ठुमरी गाने में इन्हें कमाल हासिल था। हारमोनियम में इन्होंने कितनी ही नई-नई धुन और गत पैदा की थीं। इन्होंने ही हारमोनियम में 'आलाप' और 'जोड़' बजाने की अपूर्व कला का आविष्कार किया था और इस दृष्टि से तो ये सर्वथा अतुलनीय थे।

Hindustan) में पाया जाता है। किन्तु पटना में खोजने पर भी यह किताब नहीं मिलती।

अँगरेजी की एक पुस्तक में मैंने यह भी देखा है कि मुगल दरबार के प्रसिद्ध सगीताचार्य मियाँ तानसेन भी पटना के रहनेवाले थे, किन्तु अभी यह प्रमाण सिद्ध नहीं है। इतना तो मैंने भी सुना है कि मियाँ तानसेन एक बार हैदराबाद (दक्षिण) गये थे और वहाँ से लौटते समय कुछ दिनों तक पटना मे रहे थे।

जो हो, पिछले सत्तर-अस्सी वर्षों के भीतर पटना सगीत का बहुत ही बड़ा केन्द्र रहा। यहाँ हरदत्त मिश्र (मशहूर हरदत्त गुरु) बहुत यशस्वी सगीतज्ञ थे—वे गाना और नाचना दोनों की तालीम दिया करते थे। दूसरे ये थे शिव सहायजी, जो अपने समय के प्रसिद्ध सारङ्गी बजानेवाले हो चुके हैं। हरदत्त गुरु के तो कोई वंशधर या शिष्य अब नहीं हैं, किन्तु शिवसहायजी के भतीजा श्री शम्भू मिश्र भी नामी सारङ्गी बजानेवाले हो गये हैं और शम्भूजी के पुत्र श्री सरजूप्रसाद मिश्र इस समय काशी में प्रसिद्ध सारङ्गी बजानेवाले हैं।

रईसों में स्वर्गवासी सुलतान नवाब (मशहूर सुलतान साहब) सगीत के बड़े प्रेमी थे, थोड़ा बहुत गाते भी थे। रईसों में ही प्यारे नवाब साहब भी, जिनका देहान्त हुए करीब चौदह पन्द्रह वर्ष के हुआ होगा, सगीत-विद्या के महान् पंडित थे। ये तानसेन के वशधरों के शिष्य थे। गिद्धौरवाले उस्ताद मुहम्मद अली खाँ के साथ (जो तानसेन के नवासों के वश में थे,) इनका बहुत सत्सङ्ग रहा करता था। अपने समय में ये बहुत ऊँचे दर्जे के सितार बजानेवाले थे। बड़े-बड़े सगीतज्ञों की मंडली में, यहाँ तक कि स्वनामधन्य वीणावादक बन्दे अली खाँ के मुकाबले में भी, सितार बजा चुके थे। ये सर्व सम्मति से प्रवीण गुणी माने गये।

सारङ्गी बजानेवालों में बहादुर खाँ, जिनका स्वर्गवास हाल ही में हुआ है, बहुत नामी संगीतज्ञ थे। एक तो वे सारङ्गी बहुत सुर में बजाते थे, दूसरे उनके हाथ की तरकीबें ऐसी सुन्दर थीं कि उनका मुकाबला सुप्रसिद्ध ठुमरी गानेवाले उस्ताद मोइजुद्दीन खाँ के गले में ही पाया जाता था।

उस्ताद बहादुर खाँ विशेषत ठुमरी गाने के शिक्षक थे। उनके शिष्यों में इस समय लखनऊ में उस्ताद मुमताज अच्छे सारङ्गी बजानेवाले हैं। बहादुर खाँ के इकलौते पुत्र यद्यपि अभी पन्द्रह-सोलह वर्ष के हैं, सारङ्गी अच्छा बजाते हैं।

पटना शहर में तबला बजानेवाले भी अच्छे अच्छे हो गये हैं, जिनमें

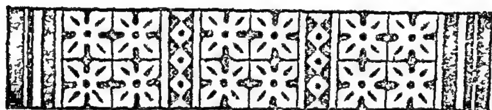

आचार्य द्विवेदीजी के पत्र

इंडियन प्रेस (प्रयाग) के स्वर्गीय स्वामी स्वनामधन्य बाबू चिन्तामणि घोष ने जब—प्राय १९०३ ई० में—काशी-नागरी प्रचारिणी सभा से 'सरस्वती' के प्रकाशन का भार अपने ऊपर ले लिया, तब पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पादकत्व में 'सरस्वती' खूब सजधज के साथ निकलने लगी।

एक उत्साही बंगाली सज्जन का हिन्दी के प्रति ऐसा अनुपम अनुराग और हिन्दी प्रचार की ओर ऐसी अतुलित प्रवृत्ति देखकर हिन्दी-लेखकों का उत्साह दिन-दूना रात चौगुना बढ़ चला। 'सरस्वती' में अच्छे अच्छे लेख छपने लगे, किन्तु ग्राहकों की संख्या थोड़ी होने से प्रकाशक को साल साल बहुत घाटा लगा, जिससे उनका 'सरस्वती' प्रकाशन के लिये खर्च करने का साहस घटने लगा।

आखिर उन्होंने 'सरस्वती' में सूचना दी कि 'सरस्वती' के प्रकाशन में प्रेस को अत्यधिक घाटा सहना पड़ा है, इसलिये यदि इस वर्ष भी ग्राहकों की संख्या न बढ़ी तो अगले साल से 'सरस्वती' नहीं छपेगी, लाचार होकर हमें 'सरस्वती' का प्रकाशन बन्द करना पड़ेगा।

'सरस्वती' में इस आशय की सूचना देखकर बिहार के गौरवस्तम्भ, साहित्य के परमानुरागी, श्रीनगर (पुर्नियाँ) के अधिप, राजा कमलानन्दसिंह को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने उसी घड़ी मुझे आज्ञा दी—"इंडियन प्रेस के मालिक को मेरी ओर से एक पत्र लिख दीजिये कि 'सरस्वती' के प्रकाशन में अब से जो घाटा लगेगा उसकी पूर्ति मैं करूँगा। 'सरस्वती' बन्द न की जाय।" इत्यादि।

राजा साहब का यह पत्र पाकर चिन्तामणि बाबू बड़े विस्मित हुए। उन्हें आश्चर्य हुआ कि मध्यदेश के अनेक राजा महाराजों में से किसी का ध्यान

स्वर्गीय आचार्य प० महावीरप्रसाद द्विवेदी

मनोविनोदार्थ प्रकाशित करा देना ही उचित समझा। आशा करता हूँ कि द्विवेदीजी के हाथ के लिखे इन पत्रों को पढ़कर हिन्दी साहित्य रसिक जनों को एक अपूर्व आनन्द का अनुभव होगा। पत्र अविकल रूप में उद्धृत किये गये हैं, पंक्तियाँ भी ज्यों-की-त्यों रक्खी गई हैं। —जनार्दन झा 'जनसीदन'

[१]

झाँसी,
६-१-०३

महाशय,

आपका कृपापत्र आया—जीवनचरित ❀ भी मिला—उसके छापने का हम यथासमय विचार करेंगे—इसे आप किसके नाम से प्रकाशित कराना चाहते हैं—इसमें कुछ फेरफार की जरूरत होगी—

आपने हमारे विषय में जो कुछ लिखा उसके लिये हम आपको धन्यवाद देते हैं—

बहुत अच्छा, आप अपनी कविता और अपना लेख भेजिए। कृपा होगी—

भवदीय—
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[२]

कानपुर,
१२-२-०३

प्रिय पंडितजी—प्रणाम

शिक्षा शतक की तो समाप्ति हो गई—अब 'पश्चात्ताप' की वेला है—कृपा करके

❀मैंने राजा कमलानन्दसिंह साहब की जीवनी लिखकर भेजी थी, जिसे सुधारकर 'सरस्वती' सम्पादक को अपने नाम से छापने का अधिकार दिया था। द्विवेदीजी ने उसे जून, १९०३ की 'सरस्वती' में प्रकाशित किया था।—ज० झा

अभी तक 'सरस्वती'-संरक्षण की ओर आकृष्ट नहीं हुआ है, परन्तु बिहार के पुर्नियाँ जिले में एक ऐसे हिन्दी-प्रेमी, सरस्वती-सेवक, साहित्यरसिक लक्ष्मीवान विद्यमान हैं जो हमें इस प्रकार ढाढस देकर अपनी उदारता दिखला रहे हैं।

उन्होंने 'सरस्वती' के सम्पादक पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी से उस पत्र का हिन्दी में यों उत्तर लिखवाया—"सरस्वती को जीवित रखने के लिये आपने जो साहाय्य देने की बात कहकर हमारे उत्साह को बढ़ाया है, इसके लिये अनेक धन्यवाद। आपकी उदारताभरी बातों से प्रोत्साहित होकर हम अब घाटा सहने पर भी उसे बन्द नहीं करेंगे। 'सरस्वती'-सञ्चालन के लिये अभी आपसे आर्थिक सहायता लेने की आवश्यकता नहीं है। हम आपसे इतनी ही सहायता चाहते हैं कि 'सरस्वती' की ग्राहक-संख्या आप जहाँ तक बढ़ा सकें, बढ़ाने की कृपा करें।"

इसपर राजा साहब ने अपनी रियासत में 'सरस्वती' के सैकड़ों ग्राहक कायम कर दिये और उनके नाम 'सरस्वती' सम्पादक के पास लिख भेजे।

राजा साहब और द्विवेदीजी के बीच तभी से पत्र व्यवहार होने लगा। मैं उन दिनों राजा साहब की सेवा में नियुक्त था। राजा साहब के साहित्य विभाग का प्राइवेट सेक्रेटरी मैं ही था। राजा साहब की ओर से मुझे जब तब द्विवेदीजी को पत्र लिखना पड़ता था। कभी कभी मैं अपनी ओर से भी उन्हें कुछ लिख दिया करता था। फिर तो उनका स्नेह मुझपर इतना बढ़ गया कि वे मुझको अपने एक हार्दिक मित्र तथा छोटे भाई के बराबर समझने लगे।

हम दोनों मे पत्र व्यवहार की घनिष्ठता दिन दिन बढ़ने लगी। पत्र का तत्काल समीचीन उत्तर देने में द्विवेदीजी एक ही थे। उनके हाथ की लिखी सैकड़ों चिट्ठियाँ मेरे पास आई होंगी, जिनमें कुछ तो अरक्षितरूप में रहकर खो गईं, जिसका मुझे आन्तरिक दुःख है। तब मैं नहीं जानता था कि किसी दिन द्विवेदीजी के पत्र का महत्त्व इतना बढ़ जायगा कि वह आदर्श समझा जाकर साहित्य सेवियों के लिये एक अनुपम रत्न का काम देगा।

जब उनके दिवंगत होने पर 'सरस्वती' में उनके पत्रों के छपने की बात सुनी, तब मैं फाइलों में उनके पत्र ढूँढ़ने लगा। काठ के बक्स में दीमक लग जाने से उनके अनेक पत्र तो नष्ट हो गये, दुष्ट दीमकों ने उनके कुछ पत्रों को बिलकुल चट कर डाला, कुछ पत्रों की इबारत को आंशिक रूप से खाकर उसे अपाठ्य कर दिया। दीमकों के ग्रास से जो कुछ बचे हुए मिले, उन्हें मैंने साहित्य प्रेमियों के

मनोविनोदार्थ प्रकाशित करा देना ही उचित समझा। आशा करता हूँ कि द्विवेदीजी के हाथ के लिखे इन पत्रों को पढ़कर हिन्दी साहित्य रसिक जनों को एक अपूर्व आनन्द का अनुभव होगा। पत्र अविकल रूप में उद्धृत किये गये हैं, पंक्तियाँ भी ज्यों-की-त्यों रक्खी गई हैं।

—जनार्दन झा 'जनसीदन'

[१]

झाँसी,
६-१-०३

महाशय,

आपका कृपापत्र आया—जीवनचरित ❀ *भी मिला—उसके छापने का हम यथासमय विचार करेंगे—इसे आप किसके नाम से प्रकाशित कराना चाहते हैं—इसमें कुछ फेरफार की जरूरत होगी—*

आपने हमारे विषय में जो कुछ लिखा उसके लिये हम आपको धन्यवाद देते हैं—

बहुत अच्छा, आप अपनी कविता और अपना लेख भेजिए। कृपा होगी—

भवदीय—
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[२]

कानपुर,
१२-२-०३

प्रिय पंडितजी—प्रणाम

शिक्षा शतक की तो समाप्ति हो गई—अब 'पश्चात्ताप' की बेला है—कृपा करके

❀मैंने राजा कमलानन्दसिंह साहब की जीवनी लिखकर भेजी थी, जिसे सुधारकर 'सरस्वती'-सम्पादक को अपने नाम से छापने का अधिकार दिया था। द्विवेदीजी ने उसे जून, १९०३ की 'सरस्वती' में प्रकाशित किया था।—ज० झा

अभी तक 'सरस्वती'-सरक्षण की ओर आकृष्ट नहीं हुआ है, परन्तु [illegible] पुर्नियाँ जिले में एक ऐसे हिन्दी-प्रेमी, सरस्वती-सेवक, साहित्यरसिक [illegible] विद्यमान हैं जो हमें इस प्रकार ढाढस देकर अपनी उदारता दिखला रहे हैं।

उन्होंने 'सरस्वती' के सम्पादक पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी से उस का हिन्दी में यों उत्तर लिखवाया—"सरस्वती को जीवित रखने के लिये आ जो साहाय्य देने की बात कहकर हमारे उत्साह को बढाया है, इसके लिये अने धन्यवाद। आपकी उदारताभरी बातों से प्रोत्साहित होकर हम अब घाटा सह पर भी उसे बन्द नहीं करेंगे। 'सरस्वती'-सचालन के लिये अभी आपसे आर्थि सहायता लेने की आवश्यकता नहीं है। हम आपसे इतनी ही सहायता चाहते कि 'सरस्वती' की ग्राहक-सख्या आप जहाँ तक बढा सकें, बढाने की कृपा करें।"

इसपर राजा साहब ने अपनी रियासत में 'सरस्वती' के सैकडों ग्राहक कायम कर दिये और उनके नाम 'सरस्वती'-सम्पादक के पास लिख भेजे।

राजा साहब और द्विवेदीजी के बीच तभी से पत्र व्यवहार होने लगा। मैं उन दिनों राजा साहब की सेवा में नियुक्त था। राजा साहब के साहित्य विभाग का प्राइवेट सेक्रेटरी मैं ही था। राजा साहब की ओर से मुझे जब तब द्विवेदीजी को पत्र लिखना पडता था। कभी कभी मैं अपनी ओर से भी उन्हें कुछ लिख दिया करता था। फिर तो उनका स्नेह मुझपर इतना बढ गया कि वे मुझको अपने एक हार्दिक मित्र तथा छोटे भाई के बराबर समझने लगे।

हम दोनों मे पत्र व्यवहार की घनिष्ठता दिन दिन बढने लगी। पत्र का तत्काल समीचीन उत्तर देने में द्विवेदीजी एक ही थे। उनके हाथ की लिखी सैकडों चिट्ठियाँ मेरे पास आई होंगी, जिनमें कुछ तो अरक्षितरूप में रहकर खो गईं, जिसका मुझे आन्तरिक दु ख है। तब मैं नहीं जानता था कि किसी दिन द्विवेदीजी के पत्र का महत्त्व इतना बढ जायगा कि वह आदर्श समझा जाकर साहित्य सेवियों के लिये एक अनुपम रत्न का काम देगा।

जब उनके दिवगत होने पर 'सरस्वती' में उनके पत्रों के छपने की बात सुनी, तब मैं फाइलों में उनके पत्र ढूँढने लगा। काठ के बक्स में दीमक लग जाने से उनके अनेक पत्र तो नष्ट हो गये, दुष्ट दीमकों ने उनके कुछ पत्रों को बिलकुल चट कर डाला, कुछ पत्रों की इबारत को आंशिक रूप से खाकर उसे अपाठ्य कर दिया। दीमकों के ग्रास से जो कुछ बचे हुए मिले, उन्हें मैंने साहित्य प्रेमियों के

इसलिए उच्चारण के अनुसार यदि किए भी लिखा जाय तो हो सकता है। हम तो दोनों लिखते हैं—जैसा जहाँ कलम से निकल जाय

हिन्दी लिखने में उर्दू फ़ारसी के शब्द आवें तो हम कोई हानि नहीं समझते—कोई कोई उर्दू के शब्द अधिक बोलचाल में आते रहने के कारण अधिक सरल और अधिक बलपूर्ण हो गए हैं—सम्मति से सलाह ही अधिक सरल है—धूल में मिला देने की अपेक्षा खाक में मिला देना कहने ही में अधिक बल है

अपना मत हमने आपकी आज्ञा के अनुसार लिख दिया—सम्भव है, आपका ही मत ठीक हो—सबके विचार पृथक् पृथक् हुआ करते हैं।

जैसी कृपा है, वैसी ही बनाए रखिएगा, यही प्रार्थना है

आपका—
महावीरप्रसादद्विवेदी

[४]

झाँसी,
२३—२—०२

प्रिय महाशय,

२० तारीख का आपका कृपापत्र आया। राजा साहब का पत्र पढ़कर हमारा चित्त क्षुब्ध हो उठा। इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु हमारा क्षोभ हृदय के भीतर ही रहा। उससे हमने किसी प्रकार का अनौचित्य नहीं होने दिया। उसका उत्तर जो हमने राजा साहब को भेजा उसके पाँच चार दिन पीछे हमने उनका जीवनचरित समाप्त किया—उसमें उस क्षोभ का लवलेश भी आपको न मिलेगा।

उसे भी शीघ्र ही समाप्त करके
भेज दीजिए तो छपना शुरू हो जाय—
आशा है, अब श्रीमान्
राजा साहब बखूबी आराम
हो गये होंगे और सब काम-काज
करने लगे होंगे—

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[३]

झाँसी,
२४-२-०३

प्रिय महाशय,

आपका अत्यन्त स्नेहसूचक पत्र आया—आपने जो कुछ हमारी प्रशंसा की उसके हम पात्र नहीं—यह आपके स्नेह—आपकी कृपा ही का फल है जो आप हमें ऐसा समझते हैं

'सरस्वती' की जो भूलें आपने दिखाईं उनके लिए हम कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देते हैं—आपकी दिखाई हुई अनेक भूलें ठीक हैं—परन्तु पत्र द्वारा उन सबका विवेचन हमसे नहीं हो सकता—होने की आवश्यकता भी तादृश नहीं है—हमारे सदृश अल्पज्ञों से यदि भूलें हों तो कोई आश्चर्य की भी बात नहीं

हिन्दी का कोई सर्वसम्मत व्याकरण नहीं है। व्याकरण के बनानेवाले हमारे आपके सदृश ही सामान्य जन थे। अत हिन्दी-लेखप्रणाली में किसके किए हुए नियम माने जायँ? क्रिया का बहुवचन किये ठीक ही है। परन्तु

(पृष्ठ १)

स्वर स्वतन्त्र हैं, व्यंजन अस्वतन्त्र—

इसलिए उच्चारण के अनुसार यदि किए भी लिखा जाय तो हो सकता है। हम तो दोनों लिखते हैं—जैसा जहाँ कलम से निकल जाय

हिंदी लिखने में उर्दू फारसी के शब्द आवें तो हम कोई हानि नहीं समझते—कोई कोई उर्दू के शब्द अधिक बोलचाल में आते रहने के कारण अधिक सरल और अधिक बलपूर्ण हो गए हैं—सम्मति से सलाह ही अधिक सरल है—धूल में मिला देने की अपेक्षा खाक में मिला देना कहने ही में अधिक बल है

अपना मत हमने आपकी आज्ञा के अनुसार लिख दिया—सम्भव है, आपका ही मत ठीक हो—सबके विचार पृथक् पृथक् हुआ करते हैं।

जैसी कृपा है, वैसी ही बनाए रखिएगा, यही प्रार्थना है

आपका—
महावीरप्रसादद्विवेदी

[४]

झाँसी,
२३—२—०२

प्रिय महाशय,

२० तारीख का आपका कृपापत्र आया। राजा साहब का पत्र पढ़कर हमारा चित्त क्षुब्ध हो उठा। इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु हमारा क्षोभ हृदय के भीतर ही रहा। उससे हमने किसी प्रकार का अनौचित्य नहीं होने दिया। उसका उत्तर जो हमने राजा साहब को भेजा उसके पाँच-चार दिन पीछे हमने उनका जीवनचरित समाप्त किया—उसमें उस क्षोभ का लवलेश भी आपको न मिलेगा।

उसे भी शीघ्र ही समाप्त करके
भेज दीजिए तो छपना शुरू हो जाय—
आशा है, अब श्रीमान्
राजा साहब बखूबी आराम
हो गये होंगे और सब काम-काज
करने लगे होंगे—

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[३]

झाँसी,
२४-२-०३

प्रिय महाशय,

आपका अत्यन्त स्नेहसूचक पत्र आया—आपने जो कुछ हमारी प्रशंसा की उसके हम पात्र नहीं—यह आपके स्नेह—आपकी कृपा ही का फल है जो आप हमें ऐसा समझते हैं

'सरस्वती' की जो भूलें आपने दिखाईं उनके लिए हम कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देते हैं—आपकी दिखाई हुई अनेक भूलें ठीक हैं—परन्तु पत्र द्वारा उन सबका विवेचन हमसे नहीं हो सकता—होने की आवश्यकता भी तादृश नहीं है—हमारे सदृश अल्पज्ञों से यदि भूलें हों तो कोई आश्चर्य की भी बात नहीं

हिन्दी का कोई सर्वसम्मत व्याकरण नहीं है। व्याकरण के बनानेवाले हमारे-आपके सदृश ही सामान्य जन थे। अतः हिन्दी-लेखप्रणाली में किसके किए हुए नियम माने जायँ? क्रिया का बहुवचन किये ठीक ही है। परन्तु

(पृष्ठ १)

स्वर स्वतन्त्र हैं, व्यंजन अस्वतन्त्र—

इसलिए उच्चारण के अनुसार यदि किए भी लिखा जाय तो हो सकता है। हम तो दोनों लिखते हैं—जैसा जहाँ कलम से निकल जाय

हिन्दी लिखने में उर्दू फारसी के शब्द आवें तो हम कोई हानि नहीं समझते—कोई कोई उर्दू के शब्द अधिक बोलचाल में आते रहने के कारण अधिक सरल और अधिक बलपूर्ण हो गए हैं—सम्मति से सलाह ही अधिक सरल है—धूल में मिला देने की अपेक्षा खाक में मिला देना कहने ही में अधिक बल है

अपना मत हमने आपकी आज्ञा के अनुसार लिख दिया—सम्भव है, आपका ही मत ठीक हो—सबके विचार पृथक् पृथक् हुआ करते हैं।

जैसी कृपा है, वैसी ही बनाए रखिएगा, यही प्रार्थना है

आपका—

महावीरप्रसादद्विवेदी

[४]

झाँसी,

२३—३—०३

प्रिय महाशय,

२० तारीख का आपका कृपापत्र आया। राजा साहब का पत्र पढ़कर हमारा चित्त क्षुब्ध हो उठा। इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु हमारा क्षोभ हृदय के भीतर ही रहा। उससे हमने किसी प्रकार का अनौचित्य नहीं होने दिया। उसका उत्तर जो हमने राजा साहब को भेजा उसके पाँच चार दिन पीछे हमने उनका जीवनचरित समाप्त किया—उसमें उस क्षोभ का लवलेश भी आपको न मिलेगा।

हम राजा साहब की उदारता और उनके भाषाप्रेम पर मोहित हैं। अतएव यदि वे हमको उससे भी सरत पत्र लिखते तो भी हम सिवाय विनय के और कुछ न कहते। यदि और कोई होता तो हम उसके पत्र का जवाब भर्तृहरि के उस श्लोक से देते जिसका चतुर्थ चरण है—

मय्यप्यास्था न चेत्त्वयि मम सुतरामेष राजन् गतोऽस्मि

परन्तु ऐसा करना हमारे शील के खिलाफ है। धन-

(पृष्ठ २)

वानों में कितने पुरुष साहित्य प्रेमी हैं? एक ही दो। उनको कटुवचन कहना हमारा धर्म्म नहीं है।

फ्रांस में दो कवि हो गये हैं। वे ११ वर्ष तक एक दूसरे से नहीं मिले। परन्तु पत्र द्वारा ही उनका प्रगाढ़ स्नेह हो गया। यहाँ तक कि दोनों ने मिलकर पुस्तक तक लिखीं। हमने समझा कि हमारा और राजा साहब का इतना पत्र-व्यवहार हो चुका है कि हम उनको उस कविता के विषय में लिख सकते हैं—हमको यह भासित हुआ कि वे उस कविता से प्रसन्न होंगे। यदि वे, जैसा आप अब लिखते हैं, सचमुच उसके देखने के लिए उत्कण्ठित हैं तो हम नहीं समझते, क्यों उन्होंने हमको उस प्रकार की कड़ी चिट्ठी लिखी। वह कविता अश्लील है, अतएव हम उसे राजा साहब के पास भेजने का साहस तबतक नहीं कर सकते जबतक वे स्वय हमको उसके लिए यथोचित रीति पर न लिखें। उसकी नकल करने में हमें दो-तीन दिन लगेंगे। उसमें कोई २०० पंक्तियाँ हैं।

नायिका भेद और इस प्रकार की कविता

(पृष्ठ ३)

सब कोई अपने घर में पढ़ सकता है। परन्तु, नायिका-भेद का सर्वसाधारण में प्रचार अच्छा नहीं। हम इसके प्रतिकूल हैं। इसपर एक चित्र भी 'सरस्वती' में निकलेगा। इस प्रकार की पुस्तकों के कर्त्ताओं को पुरस्कार देने में भी हानि नहीं। परन्तु सर्वसाधारण को इसका ज्ञान न होना चाहिए कि अमुक अमुक को अमुक अमुक पुस्तक के लिए यह मिला। पर हमारा मत है—मन्दमति तो हम हुई हैं, परन्तु इसमें हमारा क्या जोर—अपनी अपनी समझ तो है—

उस कविता * को राजा साहब के पास भेजने में हमने कोई हानि नहीं समझी। यदि राजा साहब या आपने वात्सायन, जयदेव, हल्लन, बाइरन आदि के ग्रन्थ देखे हैं तो विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। इनसे बड़ा ऋषि, भक्त और कवि कोई इस समय नहीं है।

रवीन्द्र बाबू की ग्रन्थावली हमको कल तक मिल जायगी—उसके लिए श्रीमान् राजा साहब से हमारा हार्दिक धन्यवाद कहिएगा। राजा साहब का प्रसाद समझकर हम इन पुस्तकों को अत्यन्त प्रेम से पढ़ेंगे और सदैव पास रक्खेंगे। "प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि"।

(पृष्ठ ४)

हमारी तो आपसे यही प्रार्थना थी कि आप भारतमित्र को कुछ न लिखिए। अपना लेख पढ़कर वह यह समझेगा कि हमी ने लिखा है और हमें

* द्विवेदीजी ने 'सुहागरात' शीर्षक की अपनी बनाई एक कविता राजा साहब को गुप्त रीति से भेजी थी जिसे पढ़कर उनके मन में कुछ क्षोभ हुआ। वह कविता अभी तक अविकल रूप में मेरे पास सुरक्षित है। —ज० शर्मा

फिर गालियाँ मिलेंगी। परन्तु यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो छपने दीजिए।

*कोई १ महीना हुआ होगा हमने आपको एक कार्ड लिखकर पूछा था कि 'साम्य कमलानन्दम्' * में पं० अम्बिकादत्त व्यास का कहीं कोई जिक्र क्यों नहीं है। क्या वह कार्ड आपको नहीं मिला? इसका उत्तर अब कृपा करके भेजिए।*

भवदीय—

महावीरप्रसाद

[५]

झाँसी

×—६—०२

प्रिय महोदय,

आपका १२ ता० का कृपापत्र आया। हमने आपको कल पोस्टकार्ड भेजा है। श्रीमान् के पत्र का उत्तर भी दिया है। उससे आपको सरस्वती के समाचार विदित हुए होंगे। हम आपको और श्रीमान् राजा साहब को धन्यवाद दे चुके हैं और फिर भी देते हैं। 'सरस्वती' का जारी रहना कम से कम अगले वर्ष तक निश्चय रहा। श्रीमान् राजा साहब को हमलोग अभी और कोई कष्ट नहीं देना चाहते। हाँ, यदि उनके कोई परिचित, सुहृद् इत्यादिकों में से कोई ऐसे हों जो हिन्दी से प्रेम रखते हों तो उनके लिए 'सरस्वती' की कापियाँ मँगा करके उसे सहायता

* इस नाम का एक काव्य संस्कृत में सोती सलेमपुर (दरभंगा) वासी पं० श्रीकान्त मिश्र ने राजा साहब के सम्बन्ध में लिखा था, जो छपा हुआ है, जिसके लिए राजा साहब ने चार हजार पुरस्कार दिया था। —ज० झा

(पृष्ठ २)

दे सकते हैं।

आपकी कविता में वे शब्द— जिनके बारे में आपने लिखा है हम बदल देंगे।

भवदीय—
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[६]

झाँसी,
८ सितम्बर, ०३

प्रिय महाशय,

आपका कृपाप्लावित पत्र आया। परमानन्द हुआ। हमारी प्रशंसा में आपने जो इतनी बड़ी भूमिका बाँधी है उसकी क्या आवश्यकता थी। पत्र द्वारा हमारा आपका विशेष परिचय हो गया है। अतएव प्रशंसात्मक लौकिकाचार अच्छा नहीं लगता।

'सरस्वती' के जिन शब्दों या वाक्यों पर आपने शंका की थी उनका स्मरण तक हमको नहीं। उस बात ही का विस्मरण हुए बहुत दिन हुए। यह एक अत्यन्त क्षुद्र बात थी। भला इसपर हम क्यों अप्रसन्न होने लगे। हम जानते हैं कि मनुष्य मात्र भूल करते हैं तो क्या हम उनसे बाहर हैं? हम इन बातों का बुरा नहीं मानते।

आप यदि मनोरञ्जक और उपयोगी कवितायें और लेख 'सरस्वती' के लिए भेजेंगे तो हम उनको सहर्ष और सधन्यवाद छापेंगे। 'सरस्वती' के स्वामी उसे अगले वर्ष से बन्द

(पृष्ठ १)

करना चाहते हैं। परन्तु हमारी •• इस बात का

निश्चय नहीं हुआ। ग्राहकों की संख्या भी सवाई बढ़ी है, व्यय भी इस साल बहुत ही कम हुआ है, परन्तु आरम्भ से लगाकर आज तक उनको बहुत व्यय हुआ है। इसी लिए जारी रखते वे घबराते हैं। अगर 'सरस्वती' जीवित रही और हम उसे लिखते रहे तो लेख इत्यादि छपेंगे, नहीं तो सब धरे ही रह जायँगे। हमारे पास न मालूम कितने पड़े हैं। सरस्वती' जारी रहने से हम आपके लेख अवश्यमेव छापेंगे। आप लिखने का अभ्यास बनाए रहिए। आप तो विद्वान् हैं, अभ्यास से निपट मूढ़ विख्यात लेखक हो जाते हैं।

संस्कृत के जिस ग्रन्थ ❀ का आप अनुवाद कर रहे हैं, कीजिए। समाप्त होने पर हम उसे देखेंगे। आपकी कृति को देखना ही क्या है, आपके पत्र की रचना ही देखकर हमको आनन्द आता है, ग्रन्थ देखकर तो और भी अधिक प्रमोद होगा।

भवदीय—
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[७]

झाँसी
२४-६-०३

प्रिय महोदय,

कृपापत्र आया। श्रीमान् की उदारता ने तो हमारे हृदय पर बड़ा ही असर पैदा किया है।

❀ मैं उन दिनों मैथिल महाकवि विद्यापति ठाकुर के 'पुरुष परीक्षा' ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद कर रहा था। उसी के विषय में मैंने द्विवेदीजी को लिखा था। समय पाकर मेरा वह अनूदित ग्रन्थ पुस्तक भंडार और विद्यापति प्रेस (लहेरियासराय) के अध्यक्ष बाबू रामलोचनशरण ने प्रकाशित कर अपने साहित्यानुराग का परिचय दिया। —ज० झा

हम यही ईश्वर से प्रार्थी हैं कि आपकी यह नवीन चिन्ता शीघ्र ही दूर हो जावे।

श्रीमान् ने बड़ी ही कृपा की जो 'सरस्वती' के लिए लेख लिखे। दीनब पु चारू का चरित शीघ्र ही भिजवाइए—फोटो समेत। आप 'सरस्वती' में छपने को जो लेख भेजें उनकी सरलता पर अधिक ध्यान रक्खें। 'सरस्वती' की भाषा के काठि य के विषय में बहुत शिकायतें आती हैं।

यह पता आपको कैसे मिला कि हमारे के• • पुत्र भी हैं—न हमारे पुत्र न पुत्री।

हम अपने वश में कूलद्रुम हो रहे हैं। वृद्धा माता और स्त्री के सिवाय हमारा और कोई निकट सम्बन्धी अथवा कुटुम्बी नहीं।

(पृष्ठ २)

श्रीमान् को देने लायक हमारे पास अपनी फोटो नहीं—तैयार कराके किसी समय हम भेंट करेंगे। हमारा चित्र श्रीमान् ने अपने पास रखने योग्य समझा, इसलिए हम आपके कृतज्ञ हैं, यह हमारे लिए गौरव की बात है।

हमने आपको धन-सम्बन्धी सहायता के विषय में जो 'सरस्वती' का अपील लिखने को कहा था उसे लिखने को मना किया और लेख लिखने को नहीं मना किया, और जो आप जितने ही लिखेंगे उतना ही अधिक हम आपको धन्यवाद देंगे। वे दो कविताएँ जो आपने भेजी हैं उनका शेष भाग भी कृपा करके भेज दीजिए। "सहायता" से हमारा अभिप्राय धन सम्ब धी सहायता स है।

हमको यह जानकर बहुत सन्तोष और प्रसन्नता होती है कि आप 'सरस्वती' के ग्राहक बढ़ाने की चेष्टा कर रहे हैं। ऐसी ही दया बनाए रखिए।

भवदीय—
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[८]

झाँसी,
१२-११-०३

प्रिय महाशय,

आपका कृपापत्र और निमन्त्रण-पत्र दोनों प्राप्त हुए—ईश्वर करे आपका यह सदनुष्ठान निर्विघ्न समाप्त हो—आपके श्रीमान् की उदारता का परिचय हमको मिल चुका है—क्यों न ऐसे अच्छे काम में वे सहायता दें—

हमको बाबू नरनाथ झा की कविता छापने में उजर नहीं है। परन्तु ७०० कुण्डलियों के लिए सात वर्ष नहीं तो ५ वर्ष अवश्य चाहिए—ऐसी बड़ी पुस्तक अलग पुस्तकाकार ही छपनी चाहिए—आपका शिक्षाशतक छप रहा है—इसी महीने में निकलेगा। कृपा करके शेष भी शीघ्र ही भेज दीजिए। और पश्चात्ताप वाली कविता भी समय भेजिए।

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[९]

झाँसी,
२८-१२-०३

प्रिय महाशय,

कृपापत्र आया। गङ्गालहरी की

एक प्रति बाबू नरनाथ झा को जाती है। स्टाम्प भेजने की जरूरत न थी।

अगर १० कुंडलिया भी एक बार में छपी तो १०० के लिए १० महीने चाहिए। रहिमनविलास आज दो वर्ष से छप रहा है तो भी समाप्ति नहीं हुई। उसके समाप्त होने पर हम बाबू साहब की कुंडलियों को छापने का विचार करेंगे।

आपके और श्रीमान् के हम परम कृतज्ञ हैं। जबतक आपकी और श्रीमान् की सहायता पूरी-पूरी न होगी तब तक 'सरस्वती दीर्घायु भी न होगी।

'सरस्वती' के लेखों के विषय में आपने जो लिखा उसकी हम यथासाध्य परिपालना करेंगे।

आशा है, अब आप पहले से अच्छे होंगे।

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[१०]

दौलतपुर,
१८-१-०४

प्रियवर,

कृपापत्र मिला—आज से आप हमको Juhi (जुही) Cawnpur (कानपुर) के पते से पत्र भेजिएगा—

शिक्षाशतक के शेषांश की पहुँच हम भेज चुके हैं—बहुत अच्छा, आप यथावकाश प्रार्थनाशतक वगैरह को समाप्त कीजिएगा—कोई जल्दी नहीं—तब तक शिक्षा को छपने दीजिए—

दीनबन्धु का चरित छप गया—हम प्रूफ देख चुके—परन्तु हमको उसके लिखने का तर्ज पसंद नहीं।

आपने हमारे विषय में राजासाहब को क्यों तकलीफ दी—ऐसा करने के लिए हमने तो आपसे प्रार्थना नहीं की—हमको जो जानते हैं या हमपर जिनका स्नेह है हम उनकी केवल कृपा के

(पृष्ठ २)

भिखारी हैं। तृणादपि लघुस्तूल इत्यादि का स्मरण हमको हमेशा रहता है—इसलिए हमने याचकवृत्ति नहीं स्वीकार की—परन्तु ईश्वर की लीला समझ में नहीं आती—यदि ऐसा ही समय आया तो जिनका सालाना हिसाब रहता है और जिनको राज्यसम्बन्धी कम झमेले रहते हैं, पहले उन्हीं से याचना करेंगे—यों तो ब्राह्मण जन्म से भी और परम्परा से भी भिखारी हैं। परन्तु ब्राह्मण के एक भी लक्षण हममें नहीं। अतः किस बल पर हम प्रतिग्रह का साहस करें—धृष्टता माफ कीजिए—

भवदीय—

महावीरप्रसाद

[११]

२—x—०४

प्रिय पंडितजी,

कृपापत्र आया। २२ ता० का लिखा हुआ कल मिला। हम श्रीमान् की कृपा, श्रीमान् की प्रीति, के भूखे, नहीं ऋणी हैं—नये पुराने का हमको जरा भर भी ख्याल नहीं। जो कुछ वे भेजेंगे उसे हम प्रेमोपहार* समझकर

* राजा साहब ने द्विवेदीजी को लिखा था कि आपके 'सरस्वती' सम्पादन की मनोहरता से प्रसन्न होकर हम आपको कुछ पुरस्कार देना चाहते हैं। इसपर द्विवेदीजी ने

अनमोल और अलभ्य मानेंगे। मैशीन को पैक (बन्द) करके भेजिएगा। दूर का मामला है। रेलवाले जिम्मेवारी भी पैसे नहीं लेते। नुकसान का डर रहता है।

और सब कुशल है।

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[१२]

२१—७—०४

दौलतपुर। डाकघर, भोजपुर। रायबरेली

प्रियवर,

कृपापत्र आया—कविता भी मिली—शिक्षा-शतक का शेषांश भी भेजिए जिसमें हम उसे लगातार छापते जायँ—बन्द न करना पड़े। कविता बहुत अच्छी है—रसालपञ्चक को भी किसी समय प्रकाशित कर देंगे—पश्चात्तापशतक को आप थोड़ा ही सा भेजकर चुप हो गये—क्यों?

अभी हम कई एक महीना यहाँ रहेंगे—अनन्तर कानपुर जाने का विचार है—२ महीने घर पर रहना काफी होगा—यहाँ देहात में दिल नहीं लगता—आम की फसल भी गई—

हम आपके राजा साहब और आपकी कृपा रूपी सहायता के हमेशा इच्छुक रहते हैं। उसके लिए समय और आवश्यकता क्या?

दीनबन्धु का चरित शायद अगस्त में छप जाय—तसवीर नहीं मिली—

भवदीय
महावीर

लिखा था कि द्रव्य के अतिरिक्त कोई ऐसी चीज भेजिये जिसका हम नित्य उपयोग करें और जिससे हमें दैहिक और मानसिक सुख मिले। तब राजा साहब ने उन्हें एक कीमती बाइसिकिल (जो अपने लिये मँगवाई थी) भेजी और एक बँगला-काव्य ग्रन्थावली।
—सं० भा

[१३]

६—६—०४

जुही, कानपुर,

प्रियवर,

कृपापत्र आया—हमारे लिए आपको अभ्यर्थना की जरा भी जुरूरत नहीं थी। जुरूरत है प्रेम-पूजा की—उसीसे आप हमको कृतकृत्य करते रहिए—

श्रीमान् राजा कमलानन्द सिंहजी जो हिन्दी के सुलेखकों को साहाय्य देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं सो उनकी उदारता और कृपा है—श्रीमान् होकर भी जिसने अपनी मातृभाषा-निसहाय हिन्दी पर दया दृष्टि न की उसकी श्री की शोभा ही क्या ? हमारी आन्तरिक इच्छा रहती है कि हम अपने इष्टमित्र और कृपालु सज्जनों को अपना स्मरण पत्र द्वारा कराया करें—परन्तु राजा साहब को हम बारबार अकारण पत्र भेजकर उनके काम में विघ्न नहीं डालना चाहते।

याच्ञा बहुत बुरी वस्तु है। जब तक हाथ-पैर चलता है, हम इससे बचना चाहते हैं—

त्यजत्यसून् शर्म च मानिनो वरं
त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम्।

जिनका हमपर प्रेम अथवा कृपा है उनसे इसके विपरीत व्रत का व्यवहार करने से, डर लगता है, कि

(पृष्ठ २)

कहीं वह कृपा भी उनकी हवा न हो जाय।

श्रीमान् समर्थ हैं—अगर वे 'सरस्वती' के लिए कुछ भी पूजा सामग्री भेजेंगे तो वह उन्हें स्वीकार करेगी और यथोचित रीति पर उसकी

सूचना भी आप देंगी—हम अपने क्षुद्र जीवन के लिए उनको कष्ट नहीं देना चाहते—

हमारी सब पुस्तकें अनेक बक्सों में बद पड़ी हैं—यहाँ वर्ष दो वर्ष रहने का विचार है—मकान तलाश कर रहे हैं—मिल जाने पर आपको लिखेंगे—अभी हमको यह भी नहीं याद कि रामचरितेन्दुप्रकाश हमको मिला है या नहीं और हमने उसकी समालोचना लिख ली है या नहीं।

ईश्वर करे, आप सदैव प्रसन्न और स्वास्थ्यसम्पन्न रहें।

भवदीय
महावीरप्रसाद

[१४]

जुही, कानपुर,
२०-९-०४

श्रीमान् कविशिरोमणि पण्डित जनार्दन झा को बहुविध प्रणाम विनय सुनिए। आपका अद्भुत पत्र आया। पढ़कर चित्त पर ऐसा आतंक जमा कि हम उसका वर्णन नहीं कर सकते। पुराणों में लिखा है कि देवता जब किसी पर प्रसन्न होते थे तब 'वरम्ब्रूहि' कहते थे। ठीक वैसे ही आपने हमसे 'वरं ब्रूहि' का प्रश्न किया है। इससे अधिक श्रीमान् राजा कमलानन्द सिंह की उदारता, गुणग्राहकता और सामर्थ्य का और क्या उदाहरण हो सकता है। आपके उदाहरण से कर्ण, बलि और दधीचि आदि की कथा सब सच जान पड़ती है।

राजा साहब के लिए क्या कहना यशस्कर होगा, य. बतलाने में हम असमर्थ हैं। श्रीमान् की प्रतिष्ठा, कीर्ति और ख्याति अनन्त, अपरिमेय और दिग्व्यापिनी है, उनकी रचना हमारी समझ में है ही नहीं, उसकी किस तरह

वृद्धि होगी, या कौन काम करने से वृद्धि होगी, यह बतलाना हमारे सामर्थ्य के सर्वदा बाहर है।

'सरस्वती' पर यदि कोई प्रसन्न होगा तो दो बातों से होगा—उसकी छपाई, सफाई, कागज इत्यादि पर या उसके लेखों पर। पहली बात का श्रेय छापनेवालों का है, जो 'सरस्वती' के मालिकों के आदमी हैं। दूसरी बात का भार हमपर है। जब हमने 'सरस्वती' का अधिकार अपने हाथ में लिया था तब

(पृष्ठ २)

उसकी दशा हीन—बहुत ही हीन—थी। पर अब यह बात नहीं। अब उसका प्रचार तब से करीब करीब दूना हो गया है। इसलिए उसकी अर्थकृच्छ्रता जाती रही है। उसके मालिक आत्मावलम्बी हैं और ऐसे निर्धन भी नहीं हैं। जब 'सरस्वती' अच्छी हालत में न थी, तब भी उन्होंने दूसरों की सहायता धन्यवाद पूर्वक अस्वीकार कर दी। हाँ, १००—५० कापी 'सरस्वती' की यदि कोई लेकर अपनी गुणज्ञता दिखलाता तो कोई बात न थी। इस बात की सूचना हमने आपको भी दे दी थी। परन्तु शायद आप भूल गये होंगे।

रही हमारी बात। सो इस विषय में भी हमारी प्रार्थना सुनिए। महाराजा गायकवाड, ठाकुर साहब गोंडल, महाराजा योधपुर ने सम्पादकों और लेखकों को हजारों रुपये से मदद की है। जसवन्तजसोभूषण के लिए तो सुनते हैं, लाखों मिले हैं। यह उस तरफ की बात हुई। आपकी तरफ हिन्दी लेखकों को उत्साहित करने में आपके श्रीमान् ही अनन्वयालङ्कार के उदाहरण-स्वरूप हैं। यह हिन्दी के लिए गौरव की बात है और श्रीमान् की उदारता की और गुणज्ञता की परिचायक है। व्यासजी के लिए आपने जो कुछ किया वह शायद ही किसीने किया होगा। श्रीमान् सम्पत्ति का सद्व्यय करना जानते हैं। किसीने ठीक कहा है—

अनुभवत ददत वित्तं मान्यान् मानयत सज्जनान् भजत।
अति-परुष - पवन - विलुलित - दीपशिखा चञ्चला लक्ष्मीः॥

(पृष्ठ ३)

किसी लेखक या ग्रन्थकार की जो सहायता की जाती है वह प्राय उसे उत्साहित करने के लिए की जाती है। सो हम यों ही उत्साहित हो रहे हैं। आपके श्रीमान् की हमपर कृपा दृष्टि है, यह हमारे लिए सबसे अधिक उत्साह वर्द्धक बात है। गत एप्रिल महीने तक हम एक ऐसे पद का उपभोग करते रहे जिसमें खूब द्रव्य प्राप्ति भी थी और प्रभुत्व भी था। अब यद्यपि हम उससे अलग हो गये हैं तो भी आपके आशीर्वाद और श्रीमान् राजा साहेब के जैसे महोदयों के कृपा-कटाक्ष से हमको इस समय भी इतनी प्राप्ति है कि उसके दशांश के लिए भी सैकड़ों अँगरेजी-पढ़े अर्जियाँ लिए इधर-उधर घूमा करते हैं। कुछ चिट्ठियाँ हम आपको भेजते हैं, यह दो ही चार महीने के बीच की हैं। ये सभी राजाओं और राजाधिकारियों की हैं। इनसे आपको विदित हो जायगा कि इस तुच्छ जन पर आपके श्रीमान् ही की तरह और श्रीमानों की भी कृपा है। इन चिट्ठियों में एक और चिट्ठी भी आपको मिलेगी, जिससे आपको मालूम होगा कि जिस रेलवे में हम नौकर थे उसके एजेण्ट ने प्रसन्न होकर अभी इसी महीने ६०० रु० हमें इनाम देने का हुक्म दिया है। इन सब चिट्ठियों को कृपा करके वापस कर दीजिएगा।

यह सब लिखने का यह मतलब है कि परमेश्वर किसी प्रकार भोजन वस्त्र हमें दिये जाता है। परन्तु आपके श्रीमान् राजा हैं, हम ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण को लेने में क्या इन्कार हो सकता है। दान और प्रतिग्रह दो ही तो उसके प्रधान काम हैं।

(पृष्ठ ४)

लेकिन खास हमारे लिए अभी सहायता अपेक्षित नहीं। यदि श्रीमान् की यह इच्छा हो कि लोग जानें कि वे हिन्दी के कहाँतक सहायक हैं, उसके उत्कर्ष-साधन में कहाँतक यत्नवान् हैं, उसके लिखनेवालों के कहाँतक उत्साह-वर्द्धक हैं, तो अपने और 'सरस्वती' के सम्पादक के गौरव का पूरा विचार करके 'सरस्वती' के लेखों पर प्रसन्न होने

का सूचक, जो चाहें भेज दें। तद्विषयक एक लेख 'सरस्वती' में निकल जायगा। हाँ, यदि आपकी सहायता की सूचना देना अनुचित समझा जायगा, तो वह रुपया हम 'सरस्वती' के मालिकों को भेज देंगे। उसके परिवर्तन में श्रीमान् को सरस्वती की यथासंख्य कापियाँ मिला करेंगी और हमसे उससे कुछ सम्बन्ध न रहेगा।

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[१५]

जुही, कानपुर
२०—१०—१६०४

प्रिय पंडितवर,

आपका स्नेहसवलित पत्र आया। आपने हमारी प्रशंसा लिखकर हमको लज्जित किया। हमारे पहले पत्र में आत्मश्लाघा का कुछ कालुष्य रहा हो तो आप क्षमा करें।

हमारी यही × × अभिलाषा है कि आपके श्रीमान् के यहाँ सदैव भीड़भाड़ रहे × × व काम काज की अधिकता रहे और सदैव नये-नये उत्सवों का अनुष्ठान होता रहे। इन कारणों से यदि हमको पत्र लिखने के लिए श्रीमान् को समय न मिले तो विषाद के बदले हमें उलटा हर्ष ही होगा।

शिक्षाशतक छपने गया। अब लगातार उसका प्रकाशन होता रहेगा, 'पश्चात्ताप' को भी पूरा कीजिए। पर श्रीमान् राजासाहब का पत्र हमारे पास आने तक ठहरिए।

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[१६]

जुही, कानपुर
८—११—०४

प्रिय पंडितजी, प्रणाम।

२ नवम्बर से ६ नवम्बर तक हम अवध की हथाहा राजधानी में थे। यहीं आपकी वापस की हुई

पुस्तकें मिलीं—उनके विषय में हम आपको कल लिख चुके हैं। परन्तु यहाँ पर पुनर्वार धन्यवाद देते हैं। पुस्तकों को सुनने और उचित सलाह देने के लिए श्रीमान् से भी हमारी तरफ से × × × × प्रकाशन कीजिए। दशहरा तक × × × श × × ना हुआ है × × यह बात जानकर हमको बड़ा आनंद हुआ—

हम समझते थे कि श्रीमान् राजा साहब कुछ और समझकर हमारी सहायता करना चाहते थे। यदि वे दशहरे के आनंद के उपलक्ष्य में हमको कुछ दो चाहते हैं तो हमें लेने में कुछ उजर नहीं हो सकता। अपने आनंद के उपलक्ष्य में या हमारे ऊपर जो श्रीमान् की कृपा या प्रीति है उसके उपलक्ष्य में वे जो चाहें दे सकते हैं। उसमें पूछने की क्या जरूरत। आपने एक दफा हमको एक पुस्तक भेजी। उसे हमने सादर स्वीकार किया। एक दफा श्रीमान् ने हमको कुछ आम भेजे। उनको भी हमने धन्यवादपूर्वक ग्रहण किया। परन्तु हमारी प्रार्थना है कि दशहरे के उपलक्ष्य में हमको द्रव्य न भेजा जाय। कोई चीज भेज दी जाय, जो हमारे पास बनी रहे और श्रीमान् की कृपा, उदारता या प्रेम का स्मरण कराती रहे। हमारी बाइसिकिल * खराब हो रही है। हम एक नई बाइसिकिल मँगाने के लिए कलकत्ते को लिखनेवाले थे कि आपका पत्र आया × × × × × ×

* राजा साहब ने एक बाइसिकिल २६०) रुपये कीमत की, जो शुरू शुरू ईजाद हुई थी, अपने लिये मँगवाई थी। वह ज्यों-त्यों बहुत दिनों तक रक्खी रही। राजा साहब ने पुरस्कार-स्वरूप द्विवेदीजी के पास वही भेज दी थी। परन्तु द्विवेदीजी ने उसे पुराने फैशन की कहकर ग्रहण किया। अबकी बार राजा साहब ने कलकत्ते से नये फैशन की बाइसिकिल १८१) में खरीद कर उनके पास भेज दी और पुरानी भेजी हुई बाइसिकिल पर जो उनके मन में असंतोष था, उसे दूर कर दिया। —ज० झा

× × × × ×
× & Co × × ×
× × Size × उपलब्ध में भेज दें। इससे श्रीमान् की भी आज्ञा का पालन हो जायगा और हमको लेने में कुछ उजर भी न होगा।

जिस समय हमको द्रव्य अपेक्षित होगा या कोई पुस्तक प्रकाशित कराने के लिए सहायता दरकार होगी उस समय हम श्रीमान् को सकोच छोड़कर लिखेंगे। यह आप श्रीमान् से कह दीजिएगा।

भवदीय
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[१७]

जुही, कानपुर
२०—११—०४

प्रिय पंडितजी, प्रणाम।

कृपापत्र आया। वृन्दावन जाते समय आप अवश्य दर्शन दीजिए। हमारा इरादा अभी यहीं रहने का है।

बाइसिकिल के मूल्य की सीमा निर्दिष्ट हो चुकी है। इसलिए हम मेकर का नाम इत्यादि बताने की तादृश आवश्यकता नहीं समझते। उतने में जहाँ, जिस देश और जिस मेकर की मीडियम साइज मिल सके, भेजिए। हम उसे श्रीमान् का प्रेमोपहार समझ बड़े आदर और सम्मान से रक्खेंगे।

और × जहाँ तक हल्की, नफीस और मजबूत हो × है। उसके साथ उसकी सामग्री लैम्प, पूचर थे (?)× जो अन्य चीजें रहती हैं वे सब रहें तो और भी अच्छा हो।

यदि मेकर, नमूना या नाप इत्यादि जानना या देखना हो तो × × Thomson Co, Calcutta के सूचीपत्र में देख

लीजिएगा। न हो तो एक कार्ड भेजकर मँगा लीजिएगा। इस विषय में हम और कुछ लिखकर आपको अधिक कष्ट देना नहीं चाहते।

भवदीय—
म० प्र० द्वि०

[१८]

× × ×

प्रिय पंडितजी,

कृपापत्र आया। आज्ञानुसार हमने बाबू कालीप्रसाद सिंह को कुमारसम्भवसार की एक कापी भेज दी है। हमारे कुटुम्बीय लेग से तो बच गये—परन्तु घोर विस्फोटक रोग से हमारी दो भांजियाँ × × × यहाँ × × × × × × × ×

(दूसरा पृष्ठ)

× हैं—

कलकत्ते पहुँचकर हमको पत्र ×
× ×—मारफत हम दो एक Gra × ×
× ords मँगावें-सूची देख × ×
× × मगर अच्छे नहीं आये × ×
× प्रार्थनाशतक भेजिए-हम छापने ×
× रहे हैं—आशा है, आप × ×

श्रीमदाय
म० प्र०

[१९]

कानपुर
१२-१२-०४

प्रिय पंडितजी, प्रणाम।

कृपापत्र आया। परमानंद हुआ। आपका हमपर बड़ा प्रेम है। हम आपके ऋणी हैं। हम आपकी इस कृपा के पात्र तो

नहीं। परन्तु यह आपकी उदारता है जो आप हमसे इतना स्नेह भाव रखते हैं। आपने 'सरस्वती' के लेखों के विषय में जो लिखा वह हमारे लिये बहुत उत्साहजनक है। कभी-कभी हमारे दोषों की भी हमको सूचना देते रहिए।

छ महीने ही घर से अलग रहना आप बहुत समझते हैं। शायद आप सस्त्रीक वहाँ नहीं हैं। हम तो तीन-तीन वर्ष घर का मुँह नहीं देखते रहे हैं। श्रीमान् आपको अपनी दृष्टि से दूर नहीं करना चाहते, यह तो आपके लिए सौभाग्य की बात है।

भवदीय
महावीरप्रसाद

[२०]

कानपुर
२०-१२-०४

प्रिय पंडितजी,

आपका लम्बा पत्र आया। उसमें आपने अच्छी कविता की। अजी इन बातों को छोड़िए और × भावों को पता बताइए। हमारे आपके बीच

× × × ×

इसीसे घर का वियोग दुःसह नहीं होता था। स्त्री ही तो घर है। आपकी दशा विपरीत है। आपको चाहिए कि आप अपने तरफ की रूढ़ि को तोड़कर सकुटुम्ब रहना शुरू करें। देखिए, इस तरफ लोगों ने ऐसा ही करना आरम कर दिया है। और आराम भी इसी में है।

भवदीय
महावीरप्र०

[२१]

जुही, कानपुर

× × ×

प्रिय पंडितजी, प्रणाम,

कृपापत्र मिला। खुशी हुई। पंडित × का लिखना सब सच निकला × × × × × भी हो जाय तो हो जाय। हम तो यथासंभव समय को व्यर्थ न खोने की कोशिश करते हैं। और × तरह शाम त × × कर लेते हैं। इसीमें हमारा स्वार्थ और परार्थ × × की सब शर्तें मंजूर हैं। × × × × × × × आपकी × × उसके खिलाफ × × ×

विनीत

महावीरप्रसाद द्विवेदी

[२२]

कानपुर,

१३-१-०५

प्रणाम !

४ ता० का कृपाकार्ड कल आया। बहुत दिन में पहुँचा। परमेश्वर करे श्रीमान् शीघ्र ही सर्वतोभाव से नीरोग हो जायँ और पूर्ववत् प्राबल्य प्राप्त कर लें।

ऐसे मैनेजरों का देशी रियासतों में न होना ही अच्छा है। श्रीमान् ने

यह काम जो अपने कनिष्ठ को देना
चाहा है, यह बहुत अच्छा किया है।
और सब प्रकार कुशल है।
कृपा बनाए रखिए।

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[२२]

कानपुर,
१२-५-०५

प्रिय पण्डितजी,

कृपापत्र आया। हमारे घर के आदमी हमारे यहाँ कानपुर नहीं आये, वहीं काल की डाढ के बीच पड़े हैं। एक हमारी भौजी के देवी निकली हैं, इसीसे वे न बाहर रहने गये न यहाँ आये। हमने उनकी फिकर अब छोड़ दी है। यद्भवतु तद्भवतु।

आपकी चिट्ठी को पढ़कर असीम खेद हुआ। पर सन्तोष इतना ही है कि आप अपने कर्त्तव्य से नहीं चूके। प्रायः समापन्न विपत्तिकाले धियोपि पुंसां मलिनी भवन्ति।

कोई क्या कर सकता है। पर जब

(पृष्ठ २)

समझदार आदमी अपने कर्त्तव्य से भ्रष्ट होते हैं तब कुछ करते नहीं बन पड़ता। आज कल हमारे इस प्रकार के स्वदेशियों की जो दशा है, उसे देखकर दया और घृणा दोनों का आविर्भाव होता है। ईश्वर उनको सद्बुद्धि दे॥ किमधिकेन।

श्रीमदीय
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[२४]

कानपुर
६—१—०६

प्रियवर महाशय,

प्रणाम। कृपाकार्ड × × ×
श्रीमान् के नीरोग होने का वृत्तान्त सुनकर
परमानंद हुआ × × × ×
× × × नव × × × पा है
× × × × दर में
× × × × ×

अहमिहापि वसन्नपि तावक
त्वमपि तत्र वसन्नपि मामक etc
बहुत अच्छा, 'प्रार्थना' छापना शुरू
कर देंगे।

आज्ञानुसार वाल्ट × × × को
हम लिखे देते हैं। परंतु उनका पता हमें
ठीक ठीक मालूम नहीं ×××पत्र न पहुँचे। ठीक
काररवाई आप ही ××× होगी। आप लिख
दीजिये कि वह × × हमारे पास भेज दें
और × × × श्रीमान् की और
आपकी कुशलता के हम आकांक्षी हैं।

विनीत
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[२५]

कानपुर
२-४-०६

प्रिय महाशय,

प्रणामानन्तर विदित हो कि कल
कलकत्ते से एक मैशीन हमारे पास
आ गई और अच्छी हालत में वह
हमको मिल गई। इस कृपा के

लिए हम श्रीमान् के चिरकृतज्ञ रहेंगे। श्रीमान् की उदारता और कृपा के सद्भाव तो सदैव ही से हमारे हृत्पटल में अङ्कित हैं, पर अब वे हमारी आँखों को भी मूर्तिमान् दिखाई देंगे—इस दयादृष्टि में इतनी विशेषता है। श्रीमान् नीरोग रहें और चिरायु हों, यही हमारी ईश्वर से प्रार्थना है।

भवदीय
महावीरप्रसाद

[२६]

कानपुर
३-४-०६

प्रिय पण्डितजी,

कृपापत्र आया। मेशीन भी आ गई। दूसरा पत्र पढ़ लीजिए और यदि जरूरत हो तो श्रीमान् को भी सुना दीजिए। हम आपके बहुत कृतज्ञ हैं। आपको धन्यवाद दें तो क्या और न दे तो क्या, धन्यवाद एक कोरी नाचीज चीज है। बात यह है कि हम एक क्या दो मेशीन ले सकते हैं, पर आपने तो यह अयाचित कृपा हमपर दिखलाई। उसे ग्रहण करने से इनकार करना हमने उचित न समझा। इसी कारण से हमको एक प्रकार की ग्लानि हुई कि जो वस्तु हम स्वयं लेने को समर्थ हैं उसके लिए मित्रों को कष्ट क्यों हमने दिया। अस्तु, मामला निर्विघ्न समाप्ति को पहुँच गया। इसका यश अकेले आप ही को है।

आपके पत्र को पढ़कर हमें बेहद रंज हुआ सच तो यह है कि सेवा वास्तव में बहुत ही निन्द्य है।

हमने तो कोई ११ वर्ष इस वृत्ति में काटे। आपको तो शायद अभी इतने दिन न हुए हों। इससे यदि

(पृष्ठ २)

और कोई आपका जरिया जीविका का न हो तो जहाँ तक हो सके बने रहिए और श्रीमान् की शुभकामना करते रहिए और यथासाध्य सदुपदेश भी देते रहिए।

आपकी कविता का गभीर भाव अब हमारी समझ में आया। आशा है श्रीमान् ने भी उसका गूढ़ाशय समझ लिया होगा। रियासतों की हालत बड़ी खराब हो रही है। जिनके पास पृथ्वी है वे आलसी हो रहे हैं। उनसे उसका प्रबन्ध नहीं बन पड़ता। पर जिनमें वह शक्ति है उनके पास बब्वल भर भी जमीन नहीं। ईश्वर की गति तो देखिए। यदि हमारे प्रभु अँगरेज आपही इस देश को छोड़ कर इंगलैंड जाने लगें और जहाज पर सवार हो जायें तो हमको विश्वास है कि हम अकर्मण्य हिंदुस्तानियों को एडन को तार भेजना पड़े कि आप लौट आइए, हमपर चाहे जैसा शासन कीजिए, हम चूँ नहीं करेंगे—आपके बिना हमारा एक दिन भी सुख से नहीं कट सकेगा।

हमारा जो सद्भाव आपकी तरफ है उसमें कमी जरा भी न्यूनता नहीं हो सकती—इसका आप विश्वास रखिए—

'वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि'

भवदीय
महावीर

[८७]

कानपुर,
८-४-०६

प्रियवर,

आपका कृपापत्र आया। अत्यानन्द हुआ।

जब तक आप श्रीनगर में हैं तब तक वैसा लेख लिखने की हम सलाह नहीं दे सकते, क्योंकि जो कुछ आप लिखेंगे उसका सम्बन्ध राजा साहब की रियासत से लोग लगावेंगे—और जिसके आश्रय में आदमी रहे उसके प्रतिकूल कुछ लिखना या उसकी भूलें आम में जाहिर करना शुभचिन्तक सेवक का धर्म्म नहीं। जहाँ हम अभी तक

(पृष्ठ २)

नौकर थे वहाँ की सैकड़ों बातें हमारी नजर में ऐसी आईं कि लोगों के हजार कहने पर भी हमने उनको प्रकाशित करना उचित न समझा—यद्यपि उनके प्रकाशन से बहुत आदमियों को लाभ पहुँचता।

परन्तु यदि राजा साहब को कोई इन्कार न हो तो आप लिख सकते हैं। छपाने के पहले लेख आप दिखा लीजिएगा। और तो रियासतों की दशा छिपी नहीं, सबपर जाहिर है, राजा प्रजा दोनों पर।

श्रीमदीय—
महावीरप्रसाद

[२८]

दौलतपुर, डा० भोजपुर, रायबरेली।
१५—४—०६

प्रिय पण्डितजी,

कृपापत्र यहाँ मिला। हमारी वृद्ध माता बीमार हैं। उन्हीं को देखने आये। २-४ दिन में कानपुर वापस जायँगे।

भट्टाचार्य्यजी के चरित की सामग्री उनके पुत्र ने भेजी थी। उसमें पिता का

नाम नहीं था। इससे हमने भी पूछने की परवा नहीं × —वैसे ही रहने दिया।

आपके उस पत्र का वह वाक्य हमारे ध्यान में नहीं रहा, इससे वैसी गलती हुई। अब ऐसा न होगा। क्षमा कीजिए—

श्रीमान् ने बाइसिकल के बारे में एक बहुत ही शालीनता-सूचक पत्र हमको भेजा है। आपने तो देखा ही होगा। देना और नम्रता दिखाना सबका काम नहीं। हम श्रीमान् के सौजन्य पर मुग्ध हैं। इसी से हमने बाइसिकल की समालोचना भर कर दी है—

(पृष्ठ १)

उपहार की वस्तु की समालोचना ही क्या। वह तो सिर के बल लेना चाहिए। पर श्रीमान् ने पूछा कि वह कैसी है, इसलिए उसकी त्रुटियाँ हमने लिख दीं। हमको आशा है, हमारा सद्भाव देखकर श्रीमान् उसका विचार न करेंगे। लेकिन Walter Locke को एक फटकार भेजनी चाहिए। उसने बड़ी बेपरवाही से मरम्मत की है। अगर यहाँ उसके ऐब ठीक न हुए, तो शायद हमें भी उसे कलकत्ते या लाहौर भेजना पड़े।

प्रार्थनाशतक को पूरा कीजिए—

भवदीय
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[३८]

कानपुर,
८—६—०६

बहुविध प्रणाम।

कृपापत्र आया। सचमुच ही गङ्गातट पर भ्रमण करना बहुत ही सुखकर और शान्तिदायक होता है—

विशेषकर इस ऋतु में। हमारा भी घर गङ्गातट पर है। दो चार दिन में वहीं जाने और सायङ्काल तट पर बिताने का इरादा है। प्रार्थना के लिए अनेक धन्यवाद। बहुत दिन में आपने इस कविता को पूर्ण किया। आशा है 'सरस्वती' के पाठक इसे पढ़कर प्रसन्न होंगे।

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[३०]

कानपुर,
१०—६—०६

बहुविध प्रणाम,

आपकी भेजी हुई भती॰ धारादिनिर्णय नामक चार पुस्तकें मिलीं। अनेक धन्यवाद। शतक का उत्तरार्द्ध देख लिया। बहुत उत्तम है। तबीयत लगे तो और भी कुछ लिखिए।

विनत
महावीर

[३१]

कानपुर,
१३-६-०६

प्रिय पंडितजी,

११ ता॰ का कृपाकार्ड आया। २१ जून को घर जाने का इरादा है।

प्रार्थना शतक का संशोधन आने पर कर दिया जायगा। वीराङ्गना काव्य के लिए हम श्रीमान् के बहुत कृतज्ञ हैं। जान पड़ता है, श्रीमान् ने यह अनुवाद जल्दी में किया है। यदि श्रीमान् कोई गद्य लेख भी किसी अच्छे विषय पर भेजें तो कृपा हो।

विनत

महावीरप्रसाद

[३२]

दौलतपुर,

३—७—०६

प्रिय पंडितजी,

कृपाकार्ड मिला। यहाँ आये हमें कई दिन हुए। रोज सायङ्काल गङ्गातट पर व्यतीत होता है। पानी खूब बरस रहा है। आम खाने का बड़ा आनन्द है। आशा है, आप भी सुख से कालयापन करते होंगे। प्रार्थना का पूर्वार्द्ध मिल गया। आज्ञानुसार परिवर्तन जरूर कर देंगे। जरा बृहत् लेख का नाम तो बतलाइए। 'सरस्वती' के लिए तो छोटे ही छोटे लेख अच्छे होंगे जिसमें एक लेख एक ही अङ्क में—या अधिक से अधिक दो में—समाप्त हो जाय। श्रीमान् को ईश्वर शीघ्र नीरोग करे।

भवदीय

महावीरप्रसाद

विशेषकर इस ऋतु में। हमारा भी घर गङ्गातट पर है। दो चार दिन में वहीं जाने और सायङ्काल तट पर बिताने का इरादा है। प्रार्थना के लिए अनेक धन्यवाद। बहुत दिन में आपने इस कविता को पूर्ण किया। आशा है 'सरस्वती' के पाठक इसे पढ़कर प्रसन्न होंगे।

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[३०]

कानपुर,
१०—६—०६

बहुविध प्रणाम,

आपकी भेजी हुई ऋतीचारादिनिर्णय नामक चार पुस्तकें मिलीं। अनेक धन्यवाद। शतक का उत्तरार्द्ध देख लिया। बहुत उत्तम है। तबीयत लगे तो और भी कुछ लिखिए।

विनत
महावीर

[३१]

कानपुर,
१२-६-०६

प्रिय पण्डितजी,

११ ता० का कृपाकार्ड आया। २१ जून को घर जाने का इरादा है।

प्रार्थना शतक का संशोधन आने पर कर दिया जायगा। वीराङ्गना काव्य के लिए हम श्रीमान् के बहुत कृतज्ञ हैं। जान पड़ता है, श्रीमान् ने यह अनुवाद जल्दी में किया है। यदि श्रीमान् कोई गद्य लेख भी किसी अच्छे विषय पर भेजें तो कृपा हो।

विनत

महावीरप्रसाद

[३२]

दौलतपुर,

३—७—०६

प्रिय पण्डितजी,

कृपाकार्ड मिला। यहाँ आये हमें कई दिन हुए। रोज सायङ्काल गङ्गातट पर व्यतीत होता है। पानी खूब बरस रहा है। आम खाने का बड़ा आनन्द है। आशा है, आप भी सुख से कालयापन करते होंगे। प्रार्थना का पूर्वार्द्ध मिल गया। आज्ञानुसार परिवर्तन जरूर कर देंगे। जरा बृहत् लेख का नाम तो बतलाइए। 'सरस्वती' के लिए तो छोटे ही छोटे लेख अच्छे होंगे जिसमें एक लेख एक ही अङ्क में—या अधिक से अधिक दो में—समाप्त हो जाय। श्रीमान् को ईश्वर शीघ्र नीरोग करे।

भवदीय

महावीरप्रसाद

[३३]

दौलतपुर,
२१—७—०६

प्रिय पंडितवर

प्रणाम। एलेक्शन पर जो कविता आपने भेजी, बड़ी मजेदार है। यह राजनैतिक विषय है। इससे 'सरस्वती' के नियमों के अनुसार इसके प्रकाशन में हम अक्षम हैं। इसे किसी और पत्र में छपवाइए, पर छपवाइए जरूर। पाँच-चार दिन से हम अस्वस्थ हैं। कई फोड़े हो गये हैं। एक के कारण चल फिर तक नहीं सकते।

भवदीय
म० प्र०

[३४]

×××र, रायबरेली
२२—७—०६

प्रिय पंडितजी,

१८ ता० का कृपापत्र मिला। अबतक हमारे फोड़े अच्छे नहीं हुए। न मालूम क्या सबब है। शायद रुधिर दूषित हो गया है—

कविता हम कल ही वापस कर चुके। पत्र भी आपको लिख चुके हैं। उसका प्रकाशित होना 'सरस्वती' के नियमों के प्रतिकूल है। आशा है श्रीमान् क्षमा करेंगे।

गङ्गाजी आजकल खूब बढ़ा××
हमारे गाँव में एक बहुत अच्छा प××

है। वहीं पर कई एक मंदिर भी हैं। सायङ्काल हम भी वहाँ जाते रहे हैं और एकान्त में बैठकर कभी कभी जगन्नाथ-लहरी के कोई कोई श्लोक पढ़कर दोहराते-तिहराते रहे हैं। पर ५-७ दिन से जाना न हुआ। चलने में तकलीफ होती है।

× × ×

[३५]

दौलतपुर। डाकघर, भोजपुर। रायबरेली।
२२-७-०६

प्रिय पंडितजी,

हम आजकल अपने जन्मग्राम आये हुए हैं। आपके उधर भी बहुत आम होता है और हमारे इधर भी। हम सुईकुने के अनुयायी हैं। फलों के हम भक्त हैं। इस लिए कुछ दिन के लिए हम यहाँ आम खाने चले आये हैं। ७ अगस्त तक कानपुर वापस जायँगे।

आपका पत्र कल मिला। बहुत अच्छा, उत्तरार्द्ध आ जाने पर हम आपकी प्रार्थना प्रकाशित करना आरम्भ करेंगे। माफ कीजिए, आपके पहले २५ पद्य जितने सरस हैं उतने दूसरे २५ नहीं हैं। व्यग्रता में शायद इनको आपने लिखा होगा।

(पृष्ठ २)

आपके घर की बीमारी का हाल सुनकर रंज हुआ। ईश्वर आपके कुटुम्बियों को सदैव नीरोग रक्खे।

प्रसन्नता और अप्रसन्नता के विषय में आपने जो लिखा उसका उत्तर हम इस पत्र में देना उचित नहीं समझते। हम सिर्फ आपको—(१) "दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालै"—अथवा—(२) "अस्मान्

विचित्र वपुपश्चिरपृष्ठलग्नान्" का स्मरण दिलाकर ही चुप रहते हैं।

हमारे पास एक ग्रामोफान है। पर उसके रेकार्ड्स (चूडियाँ) अच्छी नहीं। उनके गीत हमें पसद नहीं। यदि आप किसी ऐसी सडक पर घूमने जायँ जहाँ ग्रामोफोन की कोई बडी दूकान हो तो दो चार रेकार्ड्स सुनिएगा और जो आपको पसद हों उनका नाम, नम्बर और यदि सभव हो तो पूरा गीत हमें लिखिएगा तो हम मँगा लेंगे। रेकार्ड्स हिन्दी, उर्दू या सस्कृत के हों, ७ इचवाले। उर्दू में थियेटर की कोई अच्छी अच्छी गजलें हों तो हम ले लेंगे। सस्कृत

(पृष्ठ ३)

में (१) "बाल्ये दु खातिरेकात्", (२) "वेदानुद्धरते", (३) "नमस्ते पतितजनभयहारी" हमारे पास हैं। अधिक कष्ट न उठाइएगा। बडी जरूरत नहीं है।

श्रीमदीय

महावीरप्रसाद

[३६]

जुही, कानपुर

२३—६—०६

× ×जी,

आपकी बीमारी का हाल सुनकर सख्त रज हुआ। इधर आपके स्वास्थ्य का यह हाल रहा ×
× जलमग्न। इन दैवी विपत्तियों को सिवा
× सहने के और क्या चारा हो सकता है—
× में बूडे के समाचार सुनकर चित्त विकल
× आज स्वय आपके ऊपर की यह आपत्ति
× जानकर यत्परोनास्ति मनस्ताप हुआ।
× का घर बिल्कुल ही जलमग्न हो गया
× गया—अथवा पानी उतर जाने से
× रहने लायक हो गया है—लाखों आदमी

× के हो गये—इन निरन निरावास
× × अब ईश्वर ही रक्षा करे तो वे × ×
× हैं—ईश्वर ने तो दे × ×
× ×
प्रेरणा से अकाल कभी × ×
उधर श्रीमान् की भी तबीयत अच्छी ×
इसका भी अफसोस है, क्या कारण ×
युवावस्था में श्रीमान् को इतना ×
आ गया। ईश्वर श्रीमान् को शीघ्र ×
करे। 'सरस्वती' के कई लेख आपने ×
यह हमारे लिए बड़े उत्साह की बात है ×
होता है। 'सरस्वती' में हम अच्छे लेख ×
का यत्न करते हैं—पर क्या करें लि ×
की विशेष कृपा बिना हमारा यत्न × ×
होगा—आप सदृश मित्रों के आ × ×
साहाय्य से जो कुछ हो जाता है उसी को हम
गनीमत समझते हैं।

विनीत
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[२७]

कानपुर
ता० ७—१२—०६

प्रिय पंडितजी,

२७ का पत्र मिला। हम × ×
छतरपुर चले गये थे। इससे उत्तर
में विलंब हुआ। "माधवनी" की
बात से बड़ा कुतूहल हुआ।

आपने खूब कहा। मेडल हमारे
लिए सर्वथा अयोग्य बात है।
हम दिन भर यों ही कलम रगड़ा करते

हैं। हम श्रीमान् की कृपा ही को हजार मेडल समझते हैं। मेडल देने का अभिप्राय शायद श्रीमान् का यह है कि लेखकों को उत्साह मिले। हमें पहले ही से श्रीमान् ने काफी तौर पर उत्साहित कर दिया है। हमको छोड़कर और लोगों में से जिसका लेख श्रीमान् को पसंद हो उसे मेडल मिलना चाहिए। एडिटर को मेडल देना यों भी सुननेवालों के कान को खटकेगा। आप अपने लेख में यह कह सकते हैं कि किन कारणों से मेडल लेना × × अनुचित समझा। मेडल कलकत्ते में आप ही बनवाइये। उसके एक तरफ पानेवाले का नाम और "१६०५ की 'सरस्वती' में सबसे अच्छा लेख लिखने के उपलक्ष्य में' या ऐसा ही और कोई वाक्य रहे। दूसरी तरफ श्रीमान् का मोनोग्राम इत्यादि।

यदि आपको यह पत्र मकान पर मिले तो इसका आशय आप श्रीमान् को लिख भेजिएगा या इसीको भेज दीजिएगा।

श्रीमदीय
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[३८]

जुही, कानपुर
×—×—०६

प्रणाम,

कृपापत्र के लिए धन्यवाद। अच्छा, आपके यहाँ एक और भगवती पधारीं—कहीं हमलोगों का ऐसा हाल आपके यहाँ तो नहीं—शादी ब्याह में विशेष कष्ट और खर्च तो नहीं होता?

८—१० दिन हुए हम प्रयाग गये थे। वहाँ खानेपीने में व्यतिक्रम हुआ। इससे ज्वर आ गया। तब से तबीयत खराब रहती है। अब कलकत्ते जाने को जी नहीं चाहता। ××× जायँगे तो आपको पहले से सूचना देंगे × × × × × रेलवे स्टेशन के पास होंगे तो मिलने के लिए × × × कर लौटेंगे।

श्रीमान् कविकुलचन्द्र × × × के सर्वथा योग्य है " × × × × जनेन"

हम देखते हैं श्री × × किताब पर किताब अर्पण करते चले जा रहे हैं। हमने आजतक श्रीमान् की इस तरह की कोई सेवा नहीं की। श्रीमान् अपने चित्त में इस कारण कहीं हमसे उदासीन न × × ×। 'स्वाधीनता' महीने दो महीने में छपकर तैयार हो जायगी। यदि उसे श्रीमान् को अर्पण करते × × × × नाम और यश विशेष हो तो हम × × और हर्षपूर्वक उसे अर्पण कर दें। आप श्रीमान् के पास जब वापस जायँ तब उनकी चित्तवृत्ति की आहट लेकर हमें लिखिएगा। कृपापूर्वक क्या आप बतला सकते हैं कि कौन कौन पुस्तकें और किस किस ने श्रीमान् को अर्पण की हैं। हमें याद पड़ता है कि दो एक किताबें तो बहुत ही × × × अर्पण हुई हैं।

श्रीमान् ऐसी × × समर्पण क्यों मंजूर करते हैं। मालूम × × × × समर्पणकर्त्ता लोग पहले से × × × × अनुमति नहीं लेते ?

विनयावनत

महावीरप्रसाद द्विवेदी

[३९]

जुही, कानपुर
१५-२-०७

प्रियवर पंडितजी,

११ ता० का आपका कृपापत्र मिला। × × ×
हम अपने को परम भाग्यवान् समझते हैं कि जो आप और श्रीमान् राजा साहब हम पर इतनी कृपा करते हैं।

आप किस प्रकार का ×× अब ×× बनाते × × × × की कृपा × × × से प्रार्थना कीजिए कि कुछ समय के लिये ही बाहर जरूर चले जायँ। ऐसे समय में वहाँ रहना अच्छा नहीं।

विनीत
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[४०]

दौलतपुर
७-३-०७

अनेक प्रणाम।

कृपापत्र मिला। वृत्त विदित हुआ। प्रार्थनाशतक के विषय में हम जरूर अपराधी हैं। उसे और राजा साहब की एक कविता को अपनी ही चीज समझकर हमने अभी तक नहीं छापा। जहाँ हमारे अनेक लेख बरसों से पड़े हैं वहाँ उन्हें भी हमने डाल रक्खा। औरों के छापते रहे, क्योंकि औरों के मिजाज सँभालने की अधिक जरूरत समझी। "दशरथ के

मति कैकेयी" तो हमने मार्च में छपने भेज दिया। प्रार्थनाशतक भी अब महीने दो महीने में शुरू करेंगे। कोई परिवर्तन दरकार नहीं। एक आध जगह था सो पहले ही हो गया है। ११ मार्च को कानपुर के लिए प्रस्थान है।

भवदीय
महावीर

[४१]

जुही, कानपुर
१२-३-०७

बहुविध प्रणाम।

कृपाकार्ड मिला। आपके पत्र का उत्तर हम दे चुके हैं। बड़ी कृपा है जो 'स्वाधीनता' आप श्रीमान् को सुना रहे हैं। दूसरे पत्र में सविस्तर समाचार भेजने का जो आपने वादा किया है सो शीघ्र पूरा कीजिए। स्वाधीनता इसी महीने छप चुकेगी।

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[४२]

कानपुर
२८—३—०७

प्रियवर,

प्रणाम। कृपापत्र मिला। श्रीमान् 'स्वाधीनता' का समर्पण स्वीकार करते हैं, यह हमारा महोभाग्य है।

हमने देखा कि ×गाली लोग तक श्रीमान् को पुस्तकें समर्पण करते हैं और हमपर क्या सारी हिन्दी

भाषा पर श्रीमान् की इतनी कृपा है, अतएव यदि हम उनकी इस कृपा—इस साहित्यप्रेम का—बदला एक आध पुस्तक समर्पण करके उन्हें न दें तो हमपर कृतघ्नता का दोष आता है—यही हमारा मुख्य अभिप्राय है—

पुरस्कार की बात न पूछिए। श्रीमान् को अपने मान-सम्भ्रम की तरफ देखना चाहिए—हमारे नहीं। हमें यदि वे अपनी कृपा का पात्र बनाना चाहेंगे तो हमें बनना ही पड़ेगा, क्योंकि वैसा न होने से श्रीमान् को क्या कम दु ख होगा ? भाई बात यह है—

वसु यच्छतु वा न वा नरेशो
यदि कर्णेऽपि च भारती करोतु

(पृष्ठ २)

यदि श्रीमान् 'राजारानी' का सशोधन हमसे करावगे तो हम क्या इनकार कर सकेंगे ?

क्या यह भी संभव है ? करना ही पड़ेगा—हम खुशी से करेंगे। हमने सम्पत्तिशास्त्र लिखना शुरू किया है। उसे कुछ दिन के लिए बद कर देंगे। राजारानी की कापी की सतरें दूर दूर हों, हाशिया भी हो, और लिपि साफ हो तो अच्छा, जिसमें सशोधन में सुभीता हो। साथ मूल पुस्तक भी भेजी जाय। कितनी बड़ी पुस्तक है ? शब्द भी जरा दूर दूर हों तो और अच्छा हो—

आपने स्वाधीनता की भाषा को पसन्द किया, यह सुनकर हमें परम सन्तोष हुआ। यह हमारे लिए बड़े उत्साह की बात है—

स्वाधीनता छप गई। भूमिका छप रही है। समर्पणपत्र लिखकर कल परसों तक छपने भेजेंगे। चिट्ठी देखते ही आप राजा साहब का पूरा नाम लिख भेजिए। कुमार कमलानन्द सिंह ठीक है न ? आपकी अस्वस्थता और आपके बहनोई के घर जलने का हाल सुनकर दुःख हुआ। हमें आप अपने दु ख से दुखी समझिए—

विनत—
महावीरप्रसाद

[४३]

कानपुर
६—११—०७

प्रियवर पंडितजी,

आज ×यह आपको एक पत्र भेज चुके हैं। ×सरे पहर आपका २ नवंबर का पत्र आया। पढ़कर विषम परिताप हुआ। परमेश्वर श्रीमान् को सब संकटों से मुक्त करके शीघ्र ही नीरुज करे। जब तक श्रीमान् का स्वास्थ्य विशेष न सुधर जाय, कृपा करके दूसरे तीसरे दिन एक कार्ड डाल दिया कीजिए। चित्त बहुत क्षुब्ध हो रहा है। हमने यदि कोई किसी जन्म पुण्य किया हो तो हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, उसके बल से श्रीमान् के नीरोग होने में वह थोड़ा बहुत साहाय्य पहुँचावे—

(उसपार भी)

विनीत
महावीरप्रसाद

आपकी तरह हम भी आज ३ दिन से ज्वर की हरारत से तंग हैं। आज कुछ औषधि भी × ली है। मौसिम बहुत ही बुरा है। बहुत सँभलकर रहने पर भी ज्वर आये बिना नहीं रहता।

महावीर

[४४]

जुही, कानपुर
१५—११—०७

प्रियवर पंडितजी,

१२ नवम्बर का कृपापत्र मिला।

नवम्बर की 'सरस्वती' को निकले १०—१२ दिन हुए। न मालूम क्यों श्रीमान् को नहीं मिली। कहीं खो तो नहीं गई।

३—४ दिन हुए एक पत्र और एक सचित्र "स्वाधीनता" श्रीमान् को मुँगेर के पते से भेजी है। आशा है, वहाँ से यह श्रीनगर भेज दी गई होगी और श्रीमान् को मिल गई होगी।

श्रीमान् की तबीयत का हाल कृपा करके देते जाइए। हमें विश्वास है, आप सर्वथा हमारे हितचिंतक हैं। हमसे अधिक आपको हमारा खयाल है।

विनीत
महावीर

[४५]

जुही, कानपुर
२७—११—०७

प्रियवर पंडितजी,

ई० आई० आर० में हड़ताल होने के कारण आपका १८ नवंबर का कृपापत्र हमें २५ को मिला। पढ़कर कृतार्थ हुए। स्वाधीनता की एक कापी आज हम आपको भेजते हैं। कृपा करके पहुँच लिखिएगा। यदि आपको इसमें कोई ऐसी त्रुटियाँ मिलें जिनके कारण भावार्थ समझने में बाधा आती हो तो कृपा करके, सूचित कीजिएगा। इसका दूसरा संस्करण भी निकलनेवाला है। उसमें उनका संशोधन हो जायगा। पहले संस्करण की ५०० कापियों में, सप्रेजी

लिखते हैं, थोड़ी ही रह गई हैं। इससे १००० कापियाँ और इसकी छापी जायँगी।

(पृष्ठ २)

श्रीमान् के नाम का संयोग इसके साथ हो जाने से बुरी चीज भी अच्छी हो गई जान पड़ती है। श्रीमान् को इसकी खबर दे दीजिएगा।

आपकी इस अनन्य कृपा के लिए हम चिरऋणी रहेंगे। जहाँ मंगलमय 'जनार्दन' हैं वहाँ विघ्न-बाधाओं का नाम न लीजिए।

आपने अपने यहाँ की विवाह प्रथा की जो बातें लिखीं वे हमारे लिए बिलकुल ही नई हैं। परन्तु इस प्रथा के कारण बहुत कुछ असुविधायें जरूर होती होंगी। इसमें परिवर्तन दरकार मालूम होता है। कन्या के लिए वर बहुत देख सुनकर और अनेक आगे-पीछे की बातों का विचार करके निश्चित करना चाहिये।

छोटी चिट्ठी लिखने के लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। हमारा 'सम्पत्तिशास्त्र' समाप्तप्राय है। तीन चार परिच्छेद लिखना बाकी है। उसीमें हम अपना अधिक समय लगाते हैं।

विनीत

महावीरप्रसाद

[४६]

जुही, कानपुर

६—१२—१९०७

प्रियवर पंडितजी,

सादर प्रणामानन्तर निवेदन। आपका श्रीनगर से भेजा हुआ पत्र यथासमय

मिला था। उसका उत्तर हम मुगेर के पते से भेज चुके हैं। आशा है मिल गया ×।

आज आपका ७ दिसम्बर का × मिला। साथ ही ४०० रुपये के नोट भी ×। आज्ञानुसार श्रीमान् को नोटों की पहुँच हमने अलग भेजी है। वह पत्र भी इसी के साथ पोस्ट करेंगे। इस विषय में आपको क्या कहकर हम धन्यवाद दें हम नहीं जानते। श्रीमान् के तो हम कृतज्ञ हैं ही, पर आपके भी हम थोडे कृतज्ञ नहीं। क्योंकि आप ही इस कृपाकार्य के प्रेरक हैं। आपकी इस निरपेक्ष कृपा ने हमारे हृदय पर बहुत बडा असर किया है। यदि राजेमहाराजों के सदस्य और प्रेरक आप जैसे महानुभाव और सुजनशिरोमणि हों तो न मालूम कितनों का दुखदरिद्र दूर हो जाय। श्रीमान् की इस कृपा ने हमें बहुत कुछ उत्साह दिया है। पर इसका यश सर्वथा आप ही को है। × × हमने अखबारों में पढ़ा है कि मुगेर में

× × × ×

× के पुत्र इसीसे मर गये। इस दशा में आपलोगों को वहाँ अधिक दिन तक रहना नहीं चाहिए। पूर्णिमा के पहले ही आप और श्रीमान् देहात चले जायँ तो अच्छा। ऐसे अवसर में स्थानत्याग करना ही मुनासिब है।

विनीत

महावीरप्रसाद द्विवेदी

[४७]

दौलतपुर, डाकघर भोजपुर, रायबरेली

ता० २१—६—०८

प्रिय पंडितजी,

१६ ता० का कृपापत्र मिला। आजकल हम अपने मकान पर हैं। अभी महीना पन्द्रह रोज यहीं रहने का विचार है।

श्रीमान् राजा साहब ने जो कुछ फरमाया उसके लिए हमारा कृतज्ञता-प्रकाशन उनपर प्रकट कर दीजिएगा।

झालरापाटन के महाराज बड़े ही विद्यारसिक हैं और उनके दीवान पं० परमानन्द चतुर्वेदी भी उन्हीं की तरह विद्याव्यसनी हैं। महाराजा साहब ने अपनी राजधानी में

(पृष्ठ २)

एक विशाल पुस्तकालय अपने विद्वान् दीवान के नाम से खोला है। हजार बारह सौ की पुस्तकें उसमें हर महीने नई मँगाई जाती हैं। बहुत अच्छा, सम्पत्तिशास्त्र छप जाने पर और महाराज के पास पहुँच जाने पर आपको सूचना देंगे।

उस चित्र को जाने दीजिए, और चित्रों में से जिसपर आपका जी चाहे फुरसत मिलने पर कविता भेजिएगा। आपसे सहायता की हमें बहुत कुछ आशा है।

अच्छी बात है, "वक्तव्य" की नकल

कर लीजिए। उत्तम तो तब होता जब
श्रीमान् उसे छपा डालते। और एक
आध कापी हमें भी भेज देते। पब्लिक
के लिए नहीं, प्राइवेट तौर पर छपाने
से हानि न थी। आपकी नकल पूरी
हो जाय तो हमें खबर दीजिएगा।

भवदीय
महावीरप्रसाद

[४८]

जुही, कानपुर
३—८—०८

प्रियवर पंडितजी महाशय,

२७ का कृपापत्र मिला। 'सरस्वती' की पुरानी जिल्दें प्रेस में एक भी नहीं रह गईं। कई लोगों ने हमें लिखा, पर नहीं मिलीं। हमारा इरादा प्रयाग जाने का है। वहाँ जाकर हम खुद ढूँढेंगे और जो दूसरा तीसरा भाग फालतू मिला तो फौरन श्रीमान् को भेज देंगे।

आपको बुखार आ गया, यह सुनकर दुःख हुआ। आशा है, अब आप प्रकृतिस्थ होंगे।

विनीत
महावीरप्रसाद

[४६]

जुही, कानपुर
३१—१—०६

प्रणाम,

कृपापत्र मिला। हमारी तबीयत अभी तक नहीं सुधरी। कोई डेढ़

वर्ष सख्त मेहनत करके सम्पत्तिशास्त्र लिखा। उसी का यह फल है। और कोई फल तो दूर रहा, यही पहले मिला। दिमाग खराब हो रहा है। रात को नींद नहीं आती। डाक्टरों ने कहा है, कुछ काम न करो, खूब हँसो, खेलो, गावो, बजावो। पर यहाँ जंगल में ये बातें कहाँ। कभी-कभी ग्रामोफोन बजाकर मनोरंजन किया करते हैं।

श्रीमान् की कन्या का पाणिग्रहण सुनकर बड़ी खुशी हुई। ईश्वर करे

(पृष्ठ २)

जोड़ी चिरायु रहे, खूब आनन्द से रहे।

बहुत ही अच्छा किया जो श्रीमान् ने 'देवनागर' की सहायता की। श्रीमान् की उदारता की कहाँ तक प्रशंसा की जाय। क्या ही अच्छा होता जो श्रीमान् हैदराबाद या बड़ौदा की तरह किसी बड़े राज्य के अधीश्वर होते। प० उमापतिदत्त को हमने कोई पुस्तक अभी क्या शायद कभी नहीं भेजी। उनके योग्य हमारे पास ऐसी पुस्तक है ही कौन। जो पुस्तकें कलकत्ते वालों को देखने को मिल सकती हैं वे हम अरण्यवासियों के लिए दुर्लभ हैं। उनका पत्र हमारे पास आया था। उन्होंने लेख आदि से सहायता माँगी थी। उसका हमने उत्तर तो अवश्य दिया था। पुस्तक कोई नहीं मिली। आप

(पृष्ठ ३)

श्रीमान् से पूछकर पुस्तक का नाम

बतलाइए। हिन्दीभाषा की उत्पत्ति और विक्रमाङ्कदेवचरितचर्चा जो इण्डियन प्रेस ने कुछ समय हुआ छापी थी वे आपने देखी ही होंगी। यदि उनसे मतलब हो तो हम तत्काल भेजें। वह बहुत ही छोटी और तुच्छ पुस्तकें हैं, इसीसे हमने श्रीमान् को नहीं भेजीं। पर औरों को भी नहीं भेजीं। यह सम्भव नहीं कि कोई पुस्तक श्रीमान् के पढ़ने योग्य हो और हम न भेजें। ये दोनों पुस्तकें हम आपके पास श्रीमान् के लिए भेजते हैं। पहुँच लिखिएगा।

'सरस्वती' जान-बूझकर इस महीने में देरी से निकाली गई है। उसका मूल्य ४)

(पृष्ठ ४)

कर दिया गया है। इससे ग्राहकों के उत्तर की अपेक्षा थी। कई दिन से वह भी जा रही है। इण्डियन प्रेस को आज हम मुलायम नहीं सख्त चिट्ठी लिखते हैं कि क्यों अभी तक श्रीमान् को नहीं भेजी गई।

'कविताकलाप' के लिए कविता जिस छन्द में चाहिए लीजिए। १५ पद्य से अधिक न हों। पर खूब सरस और सरल हों। नमूने की कविता होनी चाहिए। बोलचाल की भाषा ठीक होगी। पर जो आपको पसन्द हो। 'मोहिनी' को जाने दीजिए, आप कृपा करके ४ चित्रों पर लिखिए (१) कृष्णविरहिणी राधिका, (२) गङ्गावतरण, (३) परशुराम, (४) अहल्या। पिछले २ चित्र इसके साथ भेजते हैं। कविता के साथ लौटा

दीजिएगा। गङ्गावतरण 'सरस्वती' में छप चुका है। उसपर किशोरीलाल गोस्वामी की कविता भी छप चुकी है। चित्र आपने देखा होगा। रविवर्मा के अँगरेजी चरित में कृष्णविरहिणी राधिका का चित्र चरित्र है। एक स्त्री शोक में बैठी है। सखी उसकी पास है। उसीपर लिखिए।

विनत
महा०

[५०]

दौलतपुर
६—२—०६

प्रियवर पंडितजी,

कृपाकार्ड मिला। यह जानकर खुशी हुई कि आप अब नीरोग हैं। हमारा वही हाल है। होली के लिए घर आये हैं। १०—४ दिन में कानपुर लौट जायँगे। वहाँ से २-२ मास के लिए विश्रामार्थ अलमोड़ा या हरद्वार जाने का विचार है। आपके लेख में आज्ञानुसार आवश्यकता होने पर उचित संशोधन कर दिया जायगा। आप खातिरजमा रखें। यथावकाश अन्यान्य उपयोगी लेख भेजने की कृपा करें।

विनीत
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[५१]

बनारस,
१—३—०६

प्रणाम।

कृपाकार्ड मिला। आपकी तबीयत पहले से अच्छी है, यह जानकर

खुशी हुई। आपने जो नुस्खे भेजे तदर्थ धन्यवाद। भंग से हमें स्वाभाविक नफरत है। उसके नशे से और भी नींद नहीं आती। यहाँ जलवायु बदलने आये थे। पर भीड़-भड़क्का इतना अधिक है कि और नहीं रह सकते। परसों कानपुर लौट जायँगे। एक महीने तक कुछ दिन के लिए अलमोड़ा जाने का विचार है। आपका लेख शीघ्र निकालने की चेष्टा करेंगे।

विनत

महावीरप्रसाद द्विवेदी

[५२]

इंडियन प्रेस,

प्रयाग,

१८-१२-१९०६

प्रणाम,

बहुत दिनों से आपके कुशल समाचार नहीं मिले। आशा है आप प्रसन्न और स्वस्थ हैं। हमारा स्वास्थ्य अच्छा नहीं। उन्निद्र रोग पीछा नहीं छोड़ता। जनवरी से कुछ समय के लिए 'सरस्वती' से छुट्टी लेने का विचार है। डाक्टरों की राय है कि हमारे लिए पूर्ण रीति से विश्राम लेना बहुत जरूरी है।

कहिए इस समय आप कहाँ हैं—क्या करते हैं। जीविका का क्या प्रबन्ध है?

(पृष्ठ २)

पौराणिक वृत्ति से जी तो नहीं ऊबा?

एक बार आपने कहा था कि हम कहीं किसी रजवाड़े में

आपके लिए प्रबन्ध कर दे। रजवाड़ों की नौकरी कैसी होती है, इसका तो आपको अनुभव हो ही चुका है। हमारी राय में यदि आप कुछ काम करना चाहें तो इंडियन प्रेस में करें। प्रबन्ध हम कर देंगे। आप इधरउधर की दौड़धूप से बचेंगे। आराम से एक जगह रहेंगे। काम सिर्फ १० बजे से ५ बजे तक करना पड़ेगा। काम भी ऐसा जो आप पसन्द करेंगे। अर्थात् सरस्वती-सम्बन्धी कुछ काम तथा हिन्दी और संस्कृत में प्रेस का और भी कुछ काम जो मिले। इसके सिवा यदि आप घर पर भी कुछ काम करना पसन्द करेंगे तो यथासंभव उसका भी प्रबन्ध हो जायगा। उसका पुरस्कार आपको अलग मिलेगा। प्रेस के मालिक बड़े ही उदाराशय, सज्जन, दयालु और उत्साही हैं। आपको किसी तरह का कष्ट न होगा। कहिए कितने वेतन पर आप यहाँ आना पसन्द करेंगे। हमारी सलाह है कि आप जरूर यहाँ आवें। आप यहाँ रहकर खुश होंगे। यह मौका बहुत दिन में हाथ आया है। पत्रोत्तर c/o Post-Master, Mirzapur के पते से भेजिएगा।

भवदीय
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[५३]

मिर्जापुर
२७—१२—०६

कृपापत्र मिला। × × × × यह सुनकर दुःख हुआ। आशा है कि आपकी अर्थकृच्छ्रता शीघ्र दूर हो जायगी।

हम आपके लिए अभी आरंभ में × मासिक वेतन का प्रबन्ध करने की कोशिश करेंगे। × × × × आपके काम × ×

× × प्रेस के मालिक × ×
× × आपकी तरक्की कर × ×
× और करते जायँगे। कुछ काम

(पृष्ठ २)

× × बहुत करके मिल × ×
× × की पुस्तकें भी छप × ×
× × देखना पड़ता है। संस्कृतपुराणादि का सार भी यदाकदा हिन्दी में शायद आपको लिखना पड़े। आप इतनी संस्कृत जानते हैं न ? इस प्रश्न की धृष्टता क्षमा की जाय × × × व्याकरण आपका देखा × है न ? बँगला × आप अच्छी जानते होंगे × ? × जी × नहीं जानते हैं, शीघ्र उत्तर ×

(पृष्ठ ३)

उत्तर × हम आपको एक पत्र × । आप उसे लेकर प्रयाग चले × × ×

स्वास्थ्य हमारा बहुत खराब है। ×से कुछ समय के लिए 'सरस्वती' से छुट्टी लेने का विचार है।

× × द्विवेदी

जनवरी तक यहाँ × फिर
कानपुर जायँगे।

[५४]

जुही, कानपुर
८-१-१०

प्रणाम,

२ जनवरी का आपका कृपापत्र मिला। आपकी संस्कृत कविता बड़ी ही मनोहारिणी है—आपकी सरटीफिकेट हमने इंडियन प्रेस को

भेज दी है। आप फौरन प्रयाग चले जाइये। हमने प्रेस के मालिक को लिख दिया है और खुद सब बातें कह भी आये हैं। पहुँचते ही आपको जगह मिल जायगी। मिर्जापुर से हम आपको प्रयाग जाने के लिये लिख चुके हैं।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[५५]

जुही, कानपुर,
१३-२-१०

प्रणाम,

कृपाकार्ड मिला। 'राजर्षि' को छपने दीजिए। देखने की कोई वैसी जरूरत नहीं। मैं बहुत ही थोड़ा बँगला जानता हूँ। स्वास्थ्य की वर्तमान अवस्था में कापी देखने से तकलीफ भी होगी। अत क्षमा कीजिए।

भवदीय
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[५६]

जुही, कानपुर
११-४-१०

प्रणाम।

कृपापत्र मिला। इसी बृहस्पति या शुक्रवार को सुबह हम प्रयाग आवेंगे। बारह बजे तक प्रेस में ठहरेंगे। दर्शन

दीजिएगा। बड़े बाबू को सूचना दे दीजिएगा।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[५७]

मिर्जापुर,
२०-४-१०

प्रणाम।

राजा साहब का शरीरान्त वृत्तान्त सुनकर बड़ा रंज हुआ। हिन्दी के वे बड़े भारी हित-चिन्तक और सहायक थे।

हमारे ऊपर तो उनकी विशेष रूप से कृपा थी। उनके स्थान की पूर्ति होना असम्भव सा जान पड़ता है।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[५८]

जुही, कानपुर,
×—५—१०

प्रणाम।

आशा है आपकी तबीयत अब अच्छी होगी।

आप निस्सन्देह, निर्भय और निश्चल भाव से काम किये जाइये। बड़े बाबू के हृदय की महत्ता, उनकी सुजनता, उनकी न्यायशीलता, आश्रित जनों पर उनकी कृपा पर विश्वास

रखिए। सब काम चलता ही चला
आयगा। बिगड़ने का डर नहीं।

भवदीय
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[५६]

जुही, कानपुर
१६-३-११

प्रणाम,

आपको आधिव्याधियों में फँसा हुआ सुनकर बड़ा दुःख हुआ। परमेश्वर करे आपकी सारी चिन्तायें शीघ्र ही दूर हों। × × की कोई अच्छी दवा कीजिए। इससे शरीर भी काम का नहीं रह जाता। हमें भी कभी कभी × × हो जाता है। आपकी दशा प्रायः हमारी सी है। बहनोई के मर जाने से ह × × × अपनी × बहन और उसके तीन बच्चों × × × न करना पड़ता है। आप पर भी × × × बोझ है। घबराइए नहीं। × × × × × सामने × × चुपचाप उनका मुकाबला कीजिए। × × × सम्भव के × उस × क के विषय × × × × युक्ति सचमुच ही × × अच्छी है। × × के × × × × × ×

[६०]

कमर्शल प्रेस, कानपुर
४-११-२८

सादर प्रणाम।

बहुत मुद्दत के बाद आपका पत्र मिला। पुराना स्नेह नया हो उठा। परमानन्द हुआ। बड़ी कृपा की जो मेरा स्मरण किया।

आपके कुटुम्ब का हाल मालूम हुआ। ईश्वर करे आप और आपके पुत्र कलत्र प्रसन्न रहें। आपही की तरह मैं भी मकान पर कृषक हो गया हूँ। पर अवर्षण के कारण इस वर्ष यहाँ दुर्भिक्ष सा है।

शरीर मेरा अत्यन्त जीर्ण है। कुछ समय से फिर उन्निद्र रोग हो गया है। निर्बलता की तो सीमा ही नहीं। यहाँ चिकित्सार्थ आया हूँ। एक मास शायद रहना पड़े।

स्नेहभाजन
म० प्र० द्विवेदी

[६१]

दौलतपुर × + ।
१२ फरवरी, १६३•

श्रीमत्सु सादरं प्रणतय सन्तु

चिरकाल बीत जाने पर आपका × × कार्ड मिला। यह जानकर अत्यानन्द ×आ कि आप अच्छी तरह हैं और अपने आत्मजों को उच्च शिक्षा देने के विचार में हैं। बड़े बेटे को जरूर एम. ए. में दाखिल कराइए।

मैं बहुत वृद्ध और बहुत कमजोर होता जा रहा हूँ। चलने-फिरने और लिखने-पढ़ने की शक्ति बहुत ही कम रह गई है। केवल दूध पीकर संयम के बल से शरीररक्षा कर रहा हूँ। टका-पैसा जो कुछ था हिन्दूविश्वविद्यालय आदि को दान देकर महाप्रस्थान की तैयारी में हूँ। पूर्ववत् मुझपर कृपा बनी रहे।

विनमावनत
महावीर प्र० द्विवेदी—

[६२]

दौलतपुर (रायबरेली)
५—३—३१

श्रीमान् पंडित जी को प्रणाम।

१ मार्च का पो० का० मिला। आप कासश्वास से तंग रहते हैं, यह सुनकर दुःख हुआ। भाई, यह वार्धक्य व्याधियों का घर है। मेरी उन्निद्रता फिर उभड़ी है। बहुत कष्ट दे रही है।

मैं अब लिखने-पढ़ने योग्य नहीं रहा। बरसों से कुछ नहीं लिखा। बहुत तंग किये जाने पर ही कभी दस पाँच सतर खींच खाँच देता हूँ। मौका मिलने पर आपकी आज्ञा का जरूर पालन करूँगा। खेद है, आपने कभी पहले उसकी याद नहीं दिलाई।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

[६३]

Daulatpur (Rae Bareli)
1-1-33

My dear Pandit Jee,

Many thanks for your P C half in Sanskrita and half in English Whenever I hear from you I feel greatly delighted

Like your ownself I am somehow dragging on my old and infirm body, suffering from various ailments

I wish your son Hari Mohan a happy and prosperous life I trust he would soon be able to secure a suitable employment

With best wishes for the new year

Yours Sincerely,
M P. Dwivedi

आपके कुटुम्ब का हाल मालूम हुआ। ईश्वर करे आप और आपके पुत्र-कलत्र प्रसन्न रहें। आपही की तरह मैं भी मकान पर कृषक हो गया हूँ। पर अवर्षण के कारण इस वर्ष यहाँ दुर्भिक्ष सा है।

शरीर मेरा अत्यन्त जीर्ण है। कुछ समय से फिर उन्निद्र रोग हो गया है। निर्बलता की तो सीमा ही नहीं। यहाँ चिकित्सार्थ आया हूँ। एक मास शायद रहना पड़े।

स्नेहभाजन
म० प्र० द्विवेदी

[६१]

दौलतपुर × + ।
१२ फरवरी, १९३०

श्रीमत्सु सादरं प्रणतयः सन्तु

चिरकाल बीत जाने पर आपका × × कार्ड मिला। यह जानकर अत्यानन्द ×आ कि आप अच्छी तरह हैं और अपने आत्मजों को उच्च शिक्षा देने के विचार में हैं। बड़े बेटे को जरूर एम. ए. में दाखिल कराइए।

मैं बहुत वृद्ध और बहुत कमजोर होता जा रहा हूँ। चलने-फिरने और लिखने-पढने की शक्ति बहुत ही कम रह गई है। केवल दूध पीकर संयम के बल से शरीररक्षा कर रहा हूँ। टका-पैसा जो कुछ था हिंदूविश्वविद्यालय आदि को दान देकर महाप्रस्थान की तैयारी में हूँ। पूर्ववत् मुझपर कृपा बनी रहे।

विनयावनत
महावीर प्र० द्विवेदी—

[६२]

दौलतपुर (रायबरेली)
५—३—३१

श्रीमान् पंडित जी को प्रणाम।

१ मार्च का पो० का० मिला। आप कासश्वास से तंग रहते हैं, यह सुनकर दु:ख हुआ। भाई, यह वार्धक्य व्याधियों का घर है। मेरी उन्निद्रता फिर उभड़ी है। बहुत कष्ट दे रही है।

मैं अब लिखने-पढ़ने योग्य नहीं रहा। बरसों से कुछ नहीं लिखा। बहुत तंग किये जाने पर ही कभी दस पाँच सतर खींच खाँच देता हूँ। मौका मिलने पर आपकी आज्ञा का जरूर पालन करूँगा। खेद है, आपने कभी पहले उसकी याद नहीं दिलाई।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

[६३]

Daulatpur (Rae Bareli)
1-1-33

My dear Pandit Jee,

Many thanks for your P C half in Sanskrita and half in English Whenever I hear from you I feel greatly delighted

Like your ownself I am somehow dragging on my old and infirm body, suffering from various ailments

I wish your son Hari Mohan a happy and prosperous life I trust he would soon be able to secure a suitable employment.

With best wishes for the new year

Yours Sincerely,
M P. Dwivedi

[६४]

दौलतपुर
रायबरेली
१-८-३३

नमोनम,

पोस्टकार्ड मिला। पुस्तक भी मिली। धन्यवाद—कृतज्ञतानिवेदन।

आपके चिरंजीवी प्रोफेसर नियुक्त हो गये, यह सुनकर अत्यानन्द हुआ। उनकी शिक्षाप्राप्ति और आपका व्ययभारवहन सफल हो गये। ईश्वर करे उनकी दिन पर दिन उन्नति होती रहे।

काशी और प्रयाग में तो आपकी तरफ से कई लोग आये थे। एक महाशय तो काशी में राय कृष्णदास के यहाँ मेरे पास ही ठहरे थे। वहाँ आपके दर्शन न हुए, इसका रंज जरूर रहा।

आपकी कविता पुस्तक देखकर सारी पुरानी बातें नई हो गईं। अन्योक्तियाँ बड़ी सुन्दर हैं। कुतूहल में आलो चनायें भी खूब चुभती हुई हैं।

वार्धक्य का फल मैं भी भोग रहा हूँ। बस नहीं। उससे विरले ही पुण्य-पुरुष बच सकते हैं।

आपका म० प्र० द्विवेदी

भारत । C । ग्रामर।
हैदराबाद

विहार का वन-वैभव

श्रीयोगेन्द्रनाथ सिंह, डिविजनल फॉरेस्ट ऑफिसर, चाइबासा (सिंहभूमि)

एक समय था, जब सारी पृथ्वी जगल से भरी पडी थी। भारत में तो अनेक प्रसिद्ध जगल थे। जगलों मे राक्षस रहते थे। दडकारण्य मे राक्षसों को मारकर रामचन्द्रजी ने कीर्त्ति प्राप्त की थी। अत जगल के नाम से ही भय उत्पन्न होता था। कुछ तो विश्वास-मात्र था और कुछ सच भी कि अभाग्यवश यदि कोई जंगल मे घुस जाय तो फिर निकल नही सकता। यदि राक्षसों और विकराल जतुओं के पजों से निकल भी जाय तो उस घोर वन मे, जहाँ सूर्य की किरणें भी नहीं समातीं, रास्ता कहाँ ? देश की जन-सख्या उन दिनों कम थी। ज्यों-ज्यों आबादी बढ़ती गई, जगल काटकर लोग खेत और बस्ती बनाते गये। जगल साफ करना मिहनत का काम था, बडी नामवरी थी। जिसने जगल काटा, जमीन उसी की हो गई।

वर्त्तमान समय मे पृथ्वी के बहुत-से बीहड जगल कट गये हैं। यहाँ तक कि जिस अश तक जगल बचे रहने चाहिये, उससे बहुत कम बचे हैं। वैज्ञानिकों ने हिसाब लगाया है कि किसी भी देश में, उसकी भलाई के लिये, ८० प्रतिशत भाग में आबादी और २० प्रतिशत भाग मे जगल जरूर होना चाहिये।

बिहार मे ३ प्रतिशत भाग में ही जगल बचा हुआ है। इसके विपरीत, आसाम मे सैकड़े ३८ भाग जगल है, मध्यप्रान्त मे २०, मद्रास और बबई सूबों मे १२, और बर्मा मे ६७। आजकल जंगल साधारणत जगल ही समझा जाता है। सब लोग जंगल का महत्त्व नहीं समझते। जगल मे राक्षस तो अब नहीं हैं, पर भयकर बाघ, भालू, इत्यादि हिंस्र जतु अब भी हैं। लोगों का खयाल है कि

जगल रहने से मलेरिया-बुखार होता है , जगल से कोई लाभ नहीं, इसे काटकर साफ ही कर देना चाहिये, लकडी वगैरह जगल से जरूर आती है, पर यह तो आयेगी ही , पहाडों पर जगल ही तो भरे पडे हैं ! क्या जल निकालने से समुद्र खाली हो जाता है ?

लेकिन यह गलत खयाल है । जगलो से अनेक लाभ हैं । आगे की बातें पढने से यह साफ जाहिर होगा । ईश्वर की सृष्टि मे कोई चीज बेकार नहीं है ।

खासकर बिहार मे वन-वैभव की जानकारी और भी कम है । एक कारण यह है कि बिहार का वन-समूह दूरस्थ (सिंहभूमि जिले मे) होने के कारण अज्ञात दशा मे पड़ा है । इस प्रान्त की घनी आबादी गगा के दोनों ओर की उर्वर भूमि पर है । बड़े-बडे शहर इसी तरफ हैं । पर इस तरफ जगल नहीं हैं ।

बहुत लोगों ने तो असली जगल देखा भी नहीं है । जगल की बातें वे इसी लिये नहीं समझते । सोचते हैं—हम तो सुखी हैं, हमारे खेतो मे फसल कितनी अच्छी होती है, शायद जगल न होने से ही ऐसा होता है । हॉ, वर्षा कभी कम होती है, कभी ज्यादा । कभी धान की फसल मारी जाती है । कभी गगा, सोन, गडक मे इतनी बाढ आती है कि गॉव-के-गॉव बह जाते हैं । यह दु ख तो है, पर यह ईश्वर की मर्जी है ।

यदि ऐसे लोगों को समझाइये कि वर्षा और बाढ का सम्बन्ध जगल से है, तो ये हॅसते हैं, कहते हैं—क्या बकते हो, कहॉ पजाब और हिमालय के जगल, कहॉ पटना और सारन की बाढ ! जगल क्या जादू है कि बाढ को रोक देगा या नीले आसमान से पानी बरसा देगा ! तुम तो होमियोपैथी की बातें करने लगे कि हरद्वार की गगा में एक बूँद दवा डाल दो और पटना मे पी लो तो जड रोग भी दूर हो जाय !

यही साधारण विश्वास और यही तर्क है । जगल नष्ट करने से जो हानि होती है, या उसके सरक्षण से जो लाभ होता है—दोनों परिणामों के सघटन मे समय लगता है । हमारे पास इस तरह के सबूत नहीं हैं कि घी मे ऑच लगे तो पिघल जाय और सर्दी लगे तो जम जाय । हमें तो जगल के लाभ वैसे ही साबित करने पड़ते हैं जैसे पृथ्वी की गोलाई । जैसे यह नहीं कहा जा सकता कि देखो पृथ्वी गोल है, चपटी नहीं, वैसे ही हम सीधी तरह यह नहीं कह सकते कि जगल काट देने से खराबी होगी और बचाकर रखने से लाभ ।

'छोटानागपुर' बिहार का प्रधान वन प्रदेश है। सिंहभूमि जिले का नम्बर पहला है। इसके बाद पलामू, हजारीबाग और मानभूमि जिले हैं। राँची जिले में जंगल की बडी बरबादी की गई है। कुछ दिन हुए, बिहार के एक बड़े पुरुष, जिनके ऊपर जनता के सुख-दु:ख की जिम्मेवारी है, राँची आये। समझा था, 'राँची' छोटानागपुर का आतरिक भाग है और छोटानागपुर मे जगल-ही-जगल हैं—राँची जिले मे तो घोर वन होगा। खैर, उन्होंने खूँटी और मुरहु का दौरा किया। लोहरदगा और गुमला देखा। मुरी गये। जहाँ गये वहीं नगी पहाडियों ने चीर-हरण की कथा सुनाई। तब उनकी आँखें खुलीं। और, मार्के की बात तो यह कि ये सज्जन भी छोटानागपुर के एक इलाके के निवासी हैं।

गगा के उस पार बेतिया (चम्पारन) मे १०२ वर्गमील मे जगल है। बेतिया-राज्य से इसका प्रबन्ध होता है। सरकारी वन विभाग कुछ वैज्ञानिक विषयों मे सलाह देता है।

बिहार-प्रान्त में जगल प्राय ६५०० वर्गमील मे है। इसमे से केवल २००० वर्गमील जगल सरकारी वन-विभाग द्वारा वैज्ञानिक रीति से सचालित एव सरक्षित है। बाकी ७००० वर्गमील से ऊपर जमींदारों के हाथ में है। ये उसका सदुपयोग नहीं करते, काटते हैं, खराब करते हैं, अधाधुध बेचते हैं, गायें घटे-घटे दुहते हैं और दूध न दें तो डडे मारते हैं।

हजारीबाग जिले में रामगढ़ का जगल १६० वर्गमील मे है। इसका प्रबन्ध कुछ अच्छा है, पर सरकारी जगलों-जैसा नहीं।

सरकारी जगल कितने और कहाँ हैं, निम्नलिखित आँकड़ों से यह विदित होगा—

जिला	जंगल (वर्गमील में)
सिंहभूमि	१०३२
संताल-परगना	२६२
पलामू	२४६
हजारीबाग	६४
मानभूमि	१४
गया	११
राँची ...	७

इसके अतिरिक्त प्राय ४०० वर्गमील जमींदारी जगल—प्रधानत जिले और दालभूम में—सरकारी प्रबन्ध मे है। कुछ जमींदारों ने ४५ वर्ष के अपने जगलों के बचाव और आर्थिक लाभ के निमित्त, शर्त्तनामों के जगलों को गवर्नमेंट के सुपुर्द कर दिया है। इन्हें वर्गमील-पीछे ४०) सा किराया मिलता है और मुनाफे का आधा। घाटे मे इनका साझा नहीं। सारा सरकार का होता है। इसमे सरकार को घाटा है, क्योंकि जमींदारी जगल अवस्था बुरी है।

पर, इन जगलों को राष्ट्रीय दृष्टि से बचाना आवश्यक है, खर्च कुछ भी फिर भी, क्षणिक लाभ के प्रलोभन मे, बहुत-से जमीन्दार, इन (उक्त) शर्तों भी, सरकार को जगल का प्रबन्ध करने नहीं देते।

सरकारी जगल कुछ ऐसे भी है जो वन-विभाग के जिम्मे न रहकर ि कलक्टरों की निगरानी मे है। उनकी तफसील यह है—

ज़िला	जगल (वर्गमील में)
सताल-परगना	१४३
सिंहभूमि	६५
शाहाबाद	५०
हजारीबाग	२०,
पलामू	१५

जंगल से प्राप्त पदार्थ

बिहार-प्रान्त के जगल अधिकतर पहाड़ों पर ही है। इनमे साल या सखु प्रधान वृक्ष है। सिंहभूमि की मिट्टी इसके लिये बहुत अच्छी है। आठ-नौ फीट गोलाई के वृक्ष तो मामूली तरह से मिलते हैं। कहीं-कहीं १५ फीट की गोलाई के साल-वृक्ष पाये जाते है। सिंहभूमि से रेलवे-लाइन के सलीपर और मोटे र बहुत चालान होते है। सिंहभूमि के पोराहाट इलाके मे, और पलामू के जगलों साल के साथ बॉस भी बहुत मिलते है। बॉस से कागज बनता है, इसलिये ब की मॉग दिन-दिन बढ रही है।

हाल ही में सोन के तट पर, शाहाबाद जिले मे, 'डिहरी' (डालमिया-नगर मे कागज का एक कारखाना खुला है। इसमे पलामू के जगलों से बाँस आता है कोयल नदी मे बॉस को तैराकर जगल से डिहरी के नजदीक तक सोन में ल हैं। वहाँ से फिर रेल पर लादकर दूर-दूर पच्छिम के शहरों मे बॉस जाता है

सिंहभूमि के कोलहान इलाके मे 'सनाई' या 'साबे' घास बहुत होती है। अधिकतर यह प्राकृतिक है, पर कुछ बोकर भी उपजाई जाती है। इसकी भी खपत खासकर कागज बनाने मे होती है। इसकी रस्सी भी बनती है। रानीगज (बगाल) के कागज के कारखाने में अधिकतर 'सनाई' घास की ही खपत होती है।

आसन, पियासाल या पैसार, गम्हार, धौ, करम इत्यादि और भी कई तरह की उपयोगी लकडियाँ बिहार के वनों मे मिलती हैं। लकडी के अतिरिक्त विविध प्रकार के फूल-फल, जडी-बूटी इत्यादि वस्तुएँ इन जगलों मे मिलती हैं। आँवला, हरा, बहेरा, चिरैता, अनन्तमूल, सत्तमूल, कुरची, गुडच, कत्थ, धुना, लाह, बीडी बनाने के लिये केंद के पत्ते, दवा बनाने की छालें इत्यादि पदार्थ भी मिलते हैं। जगल के नजदीक रहनेवाले कन्द-मूल खोदकर खाते है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध

आप सोचते होंगे, जगल का विज्ञान से क्या सबध ? पेड खडे हैं, काट लो, जगल फिर अपने-आप उत्पन्न हो जायगा। पर इस तरीके से जगल केवल कुछ दिनों तक ही रह सकता है, सब दिन नहीं। वैज्ञानिक दृष्टि से हम वन-समूह को मूलधन मानते है। मूलधन बैंक मे रखिये या कारोबार में लगाइये तो ब्याज या लाभ के रूप मे इसकी वृद्धि होती है। सम्पत्ति-शास्त्र कहता है कि ब्याज या मुनाफे के रुपये आप भले ही खर्च करें, पर मूलधन को न घटाइये, बल्कि कुछ इसकी भी वृद्धि करते रहिये। हमारे जगल के वृक्ष भी बढ़ते हैं। हरएक पेड़ रोज कुछ-न-कुछ बडा होता है। हम यदि इस वृद्धि को प्रति वर्ष काट लिया करें और पेड को जैसा-का-तैसा छोड़ दें, तो हम केवल मुनाफा लेंगे, मूलधन नहीं। यही मुनाफा किस तरह निकाला जाय, यहीं पर विज्ञान काम आता है, क्योंकि हर पेड को छीलकर उसकी बढ़ती नहीं निकाल सकते। इसके लिये हम पेड़ों की गिनती करते हैं—कितनी तरह के पेड हैं, कितने हैं, कितनी मुटाई है आदि। इसके साथ-साथ, खास-खास जगहों में, हमारे अनुसन्धानक्षेत्र भी हैं, जहाँ वृक्षों के उत्पत्ति-काल से लेकर अगले १०० वर्ष तक, हर तीसरे साल नाप होती है। इससे यह पता चलता है कि अमुक जाति का वृक्ष एक वर्ष मे कितना बढ़ता है। यह वृद्धि-परिमाण और वृक्षों की पूरी सख्या जानकर हम हिसाब लगा सकते हैं कि हमारे इस खास जगल मे एक वर्ष मे कितने क्युबिक-फीट की लकड़ी ब्याज या मुनाफे के रूप में पैदा होती है। इस क्युबिक-फीट को हम वृक्षों की सख्या में

परिणत करते हैं, जिसके द्वारा हम यह कह सकते हैं कि इतने पेड इस नाप के हमारे जगल मे इस साल नये हुए। इतने पेडों को हम काट सकते हैं और जगल ज्यों-का-त्यों बना रहेगा। पर इन पेडों के काटने की भी विधि है। उदाहरणत, यदि दस पेड़ घने हैं तो उनके बीच से दो निकाल लेने मे कोई खराबी नहीं, वल्कि फैलने के लिये ज्यादा जगह मिलने से जो पेड खडे रहेंगे वे और भी जोर से बढेंगे—या हो सकता है कि एक पेड के नीचे बहुत-से छोटे-छोटे पौधे हो गये हों, पर छाया के कारण बढने नहीं पाते, ऐसी अवस्था मे उस बडे पेड को काटकर छोटे की हम भलाई करेंगे। पर जहाँ अकेला पेड है, उसके आसपास खाली जगह है—न बड़े पेड हैं न छोटे पौधे ही, उस पेड को हम कभी न काटेंगे। इस पेड से बीज गिरेंगे, पौधे होंगे, और खाली जगह धीरे-धीरे भर जायगी। इसी विधि से हम वार्षिक आय निकालते हैं। वन-नीति की हमे कडी आज्ञा है कि वार्षिक आय से तिल-मात्र भी अधिक न लें और जो लें वह भी इस प्रकार से कि जगल की उन्नति होती रहे, अवनति न होने पावे। जबतक हमे इस बात का निश्चय न हो जाय कि जिस पेड को हम काटना चाहते हैं उसकी जगह वैसा ही या उससे भी अच्छा पेड पैदा कर देंगे, तबतक उस पेड को काटने का हमे हक नहीं।

इससे आप समझ सकते हैं कि वन-रक्षा का यह अर्थ नहीं कि जगल काटिये मत, उसको बचाये रखिये, वल्कि सरकारी जगलों मे कटाई हम बहुत करते हैं। कितनी ही मोटी लकडियाँ, कितने ही रेल के सलीपर, कितने ही बल्ले हमारे सरकारी जगलो से बराबर निकते हैं, फिर भी जगल जैसा-का-तैसा रहता है। इसके विपरीत जमींदारी जगलों को देखिये। थोडी लकड़ी ही हर साल मिलती है, वह भी पतली और घटिया, पर जगल की हालत,हर रोज खराब होती जाती है। सारा भेद प्रबन्ध मे है। सुप्रबन्ध से वन की सम्पत्ति सरक्षित रहती है और कुप्रबन्ध से वन-वैभव विनष्ट हो जाता है। अच्छी व्यवस्था से अन्य लाभों के साथ-साथ, जिनका उल्लेख आगे किया जायगा, वार्षिक आय भी अच्छी होती है।

वन-संरक्षण की कार्यप्रणाली

जब किसी जगल का प्रबन्ध अपने हाथ मे लिया जाता है, तब सबसे पहले कार्य-प्रणाली बनाई जाती है। जगल की पूरी तरह जाँच की जाती है—मिट्टी कैसी है, पत्थर किस किस्म के हैं, वृक्ष-लता, पौधे आदि किस जाति के है, जमीन पहाडी है या समतल, पहाड़ी है तो कितनी ऊँची—किधर का रुख है, ज्यादा माँग किस

नाप की लकड़ी की है और कहाँ है। जगल की मिट्टी और पत्थर यदि अनुकूल न हुए तो वृक्ष अधिक मोटे न हो सकेंगे। बहुत दिन छोड़ने से भीतर-भीतर खोले होने लगेंगे या सड़ने लगेंगे। प्रबन्ध की प्रणाली इन्हीं बातों पर निर्भर रहती है। मान लीजिये, जगल कम है और आसपास बहुत गाँव हैं—जैसे, हजारीबाग जिले मे कोडरमा का जगल। किसानो को हल बनाने की लकड़ी चाहिये, घर और मचान बनाने के लिये बल्ले, और जलाने की लकडी। ऐसी दशा में माँग ज्यादा होगी। हम ऐसा प्रबन्ध करेंगे कि साल के वृक्ष ३ से ४ फीट की मोटाई तक के मिलें जिनसे सारा काम निकल जाय। अनुसन्धान से हमें पता है कि इतने मोटे साल के पेड औसत ४० वर्ष मे होते हैं। इसलिये हम ४० वर्ष की अवधि निश्चित करेंगे। इसका अर्थ यह है कि जगल का जो भाग आज काटा गया वह फिर ४० वर्ष के पहले नहीं काटा जायगा। जगल को हम ४० भाग मे बाँट देंगे और एक-एक भाग को एक-एक वर्ष लेंगे। इस भाग को अँगरेजी मे 'कूप' कहते है। कूप को बेचने के पहले उसमे कुछ पेड़ों पर अलकतरे का दाग देकर और नम्बर लिखकर छोड देते है। ये पेड इसलिये छोड़े जाते है कि खाली जमीन बीज के द्वारा क्रमश पौधों से भर जाय। एकड-पीछे करीब ८ पेड छोडे जाते हैं। कूप नीलाम कर दिया जाता है। ठीकेदार को ये नम्बर वाले पेड छोडकर बाकी सब काट डालना पडता है। काटने का नियम यह है कि पेड कट जाने पर उसका खूँटा (खुत्थ या स्थाणु) छ इच से अधिक जमीन से ऊँचा न रहे। ऐसे खूँटो से फिर पौधे निकलते है। यदि खूँटे ऊँचे रहे तो पौधे पतले और कमजोर होंगे, उनसे आगामी वृक्ष अच्छे न होंगे। इस नियम पर इसी लिये बडा ध्यान रक्खा जाता है। गाँव वाले साधारणत पेड को बड़ी ऊँचाई पर काटते हैं। वे जानते नहीं कि इससे द्वारा वे क्या हानि कर रहे हैं, या जानते भी हैं तो कोई फिक्र नहीं करते। इससे जगल की बरबादी बहुत ज्यादा होती है।

'कूप' नम्बर १ कट जाने पर आगामी वर्ष कूप नम्बर २ काटा जाता है, इसी तरह ४० वें वर्ष मे कूप नम्बर ४०। इधर ४० वर्षो मे कूप नम्बर १ मे पौधे बढकर ४० वर्ष के हो गये रहेंगे, करीब ३ से ४ फीट तक मोटे। इसलिये कूप नम्बर ४० के बाद हम कूप नम्बर १ मे फिर आवेंगे। इसी तरह काम हमेशा होता रहेगा।

कूप कट जाने के बाद एक खूँटे से कई पौधे निकलते है। यदि सब छोड दिये जायँ तो कोई पेड अच्छा नहीं होगा, क्योंकि सबको एक ही जड़ से खाना-

पानी मिलता है—जो कुछ मिलता है उसी में सबको बाँटकर गुजर करना पड़ता है, और जगह की कमी से आपस मे लडाई होती है। आप तो जानते हैं कि मक्के के पौधे बहुत नजदीक-नजदीक हों तो भुट्टे अच्छे नहीं लगते। इसी लिये पौधे क्रमश काटे जाते हैं और अत मे खँटा-पीछे एक छोड दिया जाता है।

'कूप' कटते ही घास-लता इत्यादि इतने जोरों से बढती हैं कि साल और अन्य कीमती पौधे ढक जाते हैं। यदि इन्हें हम यों ही छोड़ दें तो मुख्य पौधे के मरने का डर है। इस लिये हमे घास-लता आदि काटकर अपने उपयोगी पौधों की सहायता करनी पडती है। साराश यह है कि वन भी एक खेती है। जितनी मिहनत और देखभाल किसान को करनी पडती है उतनी ही हमे भी।

सिहभूमि का जगल—दालभूम और कोल्हान का कुछ भाग छोडकर—अधिकतर गाँवों से दूर है। आसपास की आबादी बहुत कम है। वहाँ यदि हम ३ से ४ फीट तक की लकडी काटें तो कोई लेनेवाला नहीं। इन बल्लों को जगल से गाँवों और शहरों मे लाने मे खर्च इतना अधिक है कि परता नहीं बैठता। इस लिये यहाँ खूब मोटी लकडी पैदा की जाती है, छ फीट मोटाई से ऊपर। इन मोटे पेडों से रेल के सलीपर, सिल्ली, धरन इत्यादि चीजें बनती हैं। इन जगलों में १२० वर्ष की अवधि है, अर्थात् आज जो पौधा पनपा या लगाया गया वह १२० वर्ष के बाद काटा जायगा।

बाँस के लिये भिन्न प्रबन्ध-प्रणाली है। इसी तरह सनाई-घास, लाह, कथ इत्यादि के लिये अलग-अलग नियम हैं।

वन विभाग की संस्था

बिहार-सरकार के वन-विभाग के सर्वोच्च अफसर 'कजरवेटर ऑफ फॉरेस्ट' कहलाते हैं। वे राँची मे रहते हैं। सारा प्रान्त उन्हीं का इलाका है। उनके इलाके को 'सर्किल' कहते हैं। 'सर्किल' का विभाग 'डिवीजन' मे हुआ है। 'डिवीजन' के जिम्मेदार अफसर को 'डिवीजनल फॉरेस्ट ऑफिसर' कहते हैं। बिहार में अभी आठ डिवीजन हैं—

डिवीजन का नाम	किस जिले में है	हेडकार्टर
दालभूम	सिंहभूमि	चाइबासा
पोराहाट	"	"
चाइबासा	"	"

कोल्हान	सिंहभूमि	चाइबासा
सारंडा	"	"
पलामू	पलामू	डालटनगंज
संताल-परगना	संताल-परगना	दुमका
रिसर्च और वर्किंङ्ग प्लैन्स (सम्मिलित)	बिहार-प्रान्त	राँची

राँची और सिंहभूमि जिले के कुछ जमींदारी जंगलों के प्रबन्ध के लिये राँची मे एक अफसर रहते हैं, जिनका ओहदा 'डिवीजनल फॉरेस्ट ऑफिसर' का ही है, पर गवर्नमेंट ने अभी डिवीजन नहीं बनाया। इन्हें 'प्राइवेट स्टेट्स फॉरेस्ट आफिसर' कहते हैं।

'डिवीजन' का फिर विभाग 'रेंज' मे हुआ है। रेंज के जिम्मेदार अधिकतर 'रेंजर' होते हैं। 'रेंज' के नीचे 'बीट' होता है जिसके जिम्मेदार 'डिप्टीरेंजर' या 'फारेस्टर' रहते हैं। सबके नीचे 'सब-बीट' है जिसमे 'फॉरेस्ट गार्ड' होते हैं।

शिक्षा

वन-विज्ञान की शिक्षा देहरादून में दी जाती है। अफसरों के लिये एक कॉलेज है, रेंजरों के लिये दूसरा कॉलेज। दोनों मे दो-दो साल की पढ़ाई होती है। फारेस्टरों की शिक्षा फारेस्ट-स्कूल मे होती है जो क्योंझर स्टेट (उड़ीसा) के अन्तर्गत चम्पूआ मे है। फॉरेस्ट-गार्डो की शिक्षा सिंहभूमि मे होती है।

आर्थिक हिसाब

१६३६—४० साल मे, अर्थात् अप्रैल १६३६ से मार्च १६४० तक, वन-विभाग की आय ७,७३,३१४) थी और खर्च ५,६५,६५६) तथा बचत १,७७,६५८)। इसके अतिरिक्त करीब २,३१,०००) की लकड़ी इत्यादि जंगल के पड़ोसी गाँववालों को मुफ्त बाँटी गई। इस रकम को भी आय मे ही गिनना चाहिये—यदि महाजनी हिसाब किया जाय तो। पर जंगल के दूसरे लाभ इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि आर्थिक लाभ को गौण समझना चाहिये।

जंगल के लाभ

जंगल के साधारण लाभ सभी जानते हैं। जंगल से लकड़ी इत्यादि विविध प्रकार के उपयोगी पदार्थ मिलते हैं, जिनके बिना हमारा काम नहीं चल सकता।

हजारों-लाखों आदमी रोजगार पाते हैं। बहुत-से लोग 'कूप' में लकड़ी काटकर ठीकेदारों से पैसे पाते हैं। कुछ लोग जंगल से लकड़ी खरीदकर बाजारों में बेचते हैं और मुनाफा उठाते हैं। कुछ लोग लकड़ी की कंघी, खिलौने इत्यादि बनाकर बेचते हैं। कुछ लोग 'सबाई'-घास काटते हैं और रस्सी बनाते हैं। कुछ लोग लाह (चपड़ा) जमा करते हैं। कुछ लोग काष्ठौषधों का पता लगाते हैं। कुछ तसर के कीड़े लगा रेशम पैदा करते हैं। कुछ लोग कथ बनाते हैं। इसी तरह अधिकांश स्त्री-पुरुष किसी-न-किसी काम में लगे रहते हैं। जंगल में काम अधिकतर ऐसे समय में होता है जब किसानों को खेती से फुर्सत होती है। जंगल के इलाकों में अकाल कभी नहीं सुना जाता। खाने के भी बहुतेरे फल इत्यादि मिलते हैं—जैसे चिरौंजी, बेर, केंद, महुआ, करौंद, मकोय कंद-मूल आदि।

जंगल का असर वृष्टि पर भी है, यह तो साधारणतः सभी जानते हैं। वन-हीन प्रदेश 'सहारा'-मरुस्थल या राजपूताना के रेगिस्तान के समान हो जाते हैं। जंगल के पत्तों से पानी सूखकर हवा में मिलता है, इसलिये जंगल के ऊपर की हवा सर्द रहती है। बादल जंगल के ऊपर आते हैं तो पानी बनकर बरस जाते हैं। मरुभूमि या वन-हीन प्रदेश के ऊपर से बादल यों ही गुजर जाते हैं।

पर, वृष्टि के कारण अनेक हैं। जंगल उन कारणों में केवल एक है। पटना, शाहाबाद, सारन आदि जिलों में जंगल न होने पर भी वृष्टि होती है—यद्यपि छोटानागपुर से कम, और छोटानागपुर की तरह बराबर थोड़ा-थोड़ा करके नहीं, पर केवल बरसात में ही और मूसलधार।

जंगल का सबसे बड़ा काम वर्षा-जल का संरक्षण है। दो पहाड़ों का मानसिक चित्र खींचिये—एक वृक्ष-हीन नग्न, दूसरा वृक्ष-पल्लवों से पूर्णतः आच्छादित। उस नग्न पहाड़ पर वर्षा की बूँदें गोलाबारी की तरह सीधी आ पड़ती हैं—इनको कोई रुकावट नहीं। बौछार से मिट्टी कटती है और धुल-धुलकर नीचे गिरती है। यहाँ की मिट्टी धूप से सूखकर कड़ी हुई रहती है, इसलिये पानी इसमें समाता भी नहीं। पानी ज्यों-ज्यों नीचे उतरता है, इसका जोर और भी बढ़ता जाता है, जैसे आपने पत्थर को लुढ़कते देखा होगा। मिट्टी, बालू, पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े, सभी पानी के साथ बहकर नीचे आते हैं और पहाड़-तले खेतों में जमा होकर उनकी उर्वरता कम करते हैं। थोड़ी ही देर में वर्षा का सारा जल उतरकर नालों में बह जाता है। पानी के जोर से जमीन कटकर खाई बन जाती है और सदा के लिये बेकाम हो जाती है।

मध्य प्रान्त में, इटावा के निकट, यमुना-क्षेत्र में, इसी तरह खाई बन गयी थी। उपजाऊ खेत तो चौपट हो ही रहे थे, इटावा शहर के भी कटकर खाई बन जाने का भय था। कहते हैं, वर्षा होते ही चारों ओर मटियाले पानी की प्रचण्ड धारा इन खाइयों में बहने लगती थी। चलते हुए ढोर भी बह जाते थे। वर्षा के एक घंटे के बाद ही जल की एक बूँद भी देखने को नहीं मिलती थी। इस भयंकर अवस्था को रोकने के लिये जंगल लगाया गया। वृक्ष की जड़ों ने हाथ की उँगलियों की तरह मिट्टी बाँध ली और धीरे धीरे खाई बनना बंद हुआ। बाढ़ का कारण यही है कि वनहीन पहाड़ों और खेतों से प्रचण्ड पानी बहकर सैकड़ों-हजारों नालों में, फिर नदियों में, जाता है जिससे नदियाँ उमड़ पड़ती हैं।

अब वनाच्छादित पर्वत को लीजिये। इस पहाड़ पर बूँदें पहले पत्तों पर पड़ती हैं जिससे इनका जोर टूट जाता है। पत्तों से टपककर पानी जमीन पर आता है। यहाँ की जमीन पर सूखे पत्ते, सूखी लकड़ी के टुकड़े, घास-फूस, पौधे इत्यादि रहते हैं। ये पानी के नीचे बहने में बाधा देते हैं। यहाँ की मिट्टी छाया में रहने से नर्म और हल्की होती है तथा वर्षा का पानी सोख लेती है। इसके अलावा इसमें चूहे, खरहे, तरह-तरह के कीड़े-मकोड़े, बिल बनाकर रहते हैं। इन बिलों में भी पानी घुस जाता है। इस तरह वर्षा का आधे से अधिक जल जमीन में समा जाता है और आधा से कम ही पहाड़ से नीचे उतरता है। उतरता भी है इतना धीरे धीरे कि मिट्टी को नहीं काट सकता। जो पानी जमीन में समा गया वह पीछे झरना बनकर निकलता है। वनों में छोटे-छोटे नाले भी गर्मी में बहते रहते हैं। इनमें झरनों से पानी आता है, किन्तु उजाड़ इलाके में वर्षा के बाद ही नदी-नाले सूख जाते हैं।

इस वर्णन से आप जंगल के निम्न लिखित लाभ समझ सकते हैं—

[१] जंगल नदियों में बाढ़ नहीं आने देता।

[२] झरनों और इनके द्वारा नदी-नालों-झीलों में जल-संचय करता है।

[३] पहाड़ के नीचे के खेतों को बालू-पत्थर से भरने से बचाता है; सिंचाई के लिये पानी बचाकर रखता है।

[४] पहाड़ी इलाकों में उपजाऊ मिट्टी को घुलकर बह जाने से बचाता है; जमीन को कटकर खाई बनने से भी बचाता है।

[५] जंगल के कारण वर्षा अधिक होती है।

जहाँ जंगल की बरबादी हुई है—जैसे धालभूम, मानभूम, राँची इत्यादि—

वहाँ वर्षा होते ही नदियाँ भर जाती हैं, परन्तु इतनी अधिक वर्षा होने पर भी नवम्बर-दिसम्बर मे ही नालों मे एक बूँद जल नहीं रहता। सिंचाई की बात तो छोड़ ही दीजिये, पशुओं को पीने के लिये भी जल नहीं मिलता। एक आखिरी पानी न हो तो धान मर जाता है। इसके विपरीत, सिंहभूमि के वनाच्छादित भागों को देखिये। वहाँ नाले जल्द नहीं भरते, साल-भर उनमे पानी बहता रहता है।

वन से ढका हुआ पर्वत या पार्वत्य प्रदेश उस बुद्धिमान् मनुष्य के सदृश है जो अपनी कमाई का एकांश बचाकर रखता है कि दु:समय मे काम दे। वृक्षहीन उजाड़ पहाड उस बुद्धिहीन मनुष्य की तरह है जिसने कमाया, खाया, साफ कर दिया, और पीछे खुक्ख होकर दु:ख भोगा।

आप कहेंगे, विहार के समतल भागों मे—पटना इत्यादि जिलों में—जगल नहीं हैं, फिर भी कोई बुराई नहीं दीखती। इसका कारण यह है कि वहाँ की जमीन अधिक ऊँची-नीची न होने से पानी बहने नहीं पाता, अधिकतर वहीं सूख जाता है। जगल की खास जरूरत पहाडी इलाकों मे है। वहाँ के लिये वन ही मानों प्राणदाता हैं।

पर समतल प्रदेश भी बाढ से बरी नहीं हैं। गगा मे बाढ इसलिये आती है कि पजाब के हिमालय-प्रदेश मे जगल का नाश हो गया है। छोटानागपुर में जगल नष्ट होने से बगाल और उडीसा मे बाढ़ आती है। इसलिये समतल-भूमि-वासी यह न समझे कि जगल की अच्छाई-बुराई से उनका कुछ मतलब नहीं, या वन-रक्षा मे उनका कोई दायित्व नहीं। जबतक पहाड़ी इलाकों में जंगल का बचाव नहीं किया जायगा, तबतक बाढ नहीं रुक सकती, बल्कि दिन-दिन इसकी विनाशिनी शक्ति बढती ही जायगी।

जमीन्दारी जगल

विहार के जमींदारों के हाथ मे बहुत-से जंगल हैं। यह जगल-धन खूब बरबाद हो रहा है। रुपयों की जरूरत हुई, जगल बेच दिया, चाहे जंगल की दशा कुछ भी हो। एक ही जगह हर साल कटाई होती है। पौधों के बढ़ने का समय नहीं मिलता। काटने का कोई नियम नहीं। रैयत लोग भी जमीन्दार की अनुमति से, या विना अनुमति के भी, अधाधुध काटते हैं।

जंगल एक ऐसा व्यवसाय है, जो गवर्नमेंट के सिवा दूसरे से नहीं हो सकता। आज का लगाया पौधा ४० वर्ष में बल्ला देगा और १२० वर्ष में बड़ी

मोटी सिल्ली। कौन ऐसा व्यक्ति है जो इतने दिन आगे के लिये खर्च या फिक्र करेगा? केवल गवर्नमेंट ही इतनी दूरदर्शिता से काम ले सकती है। और देशों मे—स्विट्जरलैंड, फिनलैंड आदि मे—जमींदारी या खानगी जगलों पर भी गवर्नमेंट का ही अधिकार है। बिना सरकारी अनुमति के कोई अपना जगल नहीं काट सकता। यहाँ लोग कहते हैं, चीज मेरी है, मैं चाहे जो करूँ, सरकार बोलनेवाली कौन? यह तो ठीक है, पर जहाँ आपकी कार्यवाहियों से दूसरों की हानि हो वहाँ सरकार को निस्सदेह दखल देने का अधिकार है। आप अपने लहराते हुए गेहूँ के खेत मे घोडा छोड़ दीजिये, बकरियों से चरा दीजिये, रौंदकर मिट्टी मे मिला दीजिये, नुकसान आपका होगा। शहर के बीच आपका घर हो, उसपर अधिकार आपका है, उसकी मरम्मत कीजिये या न कीजिये, उसे बेचिये या किराये पर दीजिये, पर उसमे आग लगाने का अधिकार आपको नहीं है। जगल की बरबादी करना उस घर मे आग लगाने के बराबर है।

हम यह नहीं कहते कि दुनिया फिर जगल से भर दी जाय, या खेती बढ़ाने के लिये जगल कहीं भी काटा ही न जाय। जहाँ जगल काटने से अच्छा खेत बन सकता है वहाँ काटिये। पर जगल काटकर छोड़ देना और मीलों मरुभूमि बना देना कहाँ की बुद्धिमत्ता है?

जमीन को किसी-न किसी काम मे लगाना चाहिये। जो जमीन जंगल के सिवा किसी काम के लायक नहीं वहाँ जगल क्यों न छोड़ा जाय? बिहार प्रान्त मे आज जितने जगल बचे हुए हैं वे अधिकतर पहाड़ों पर या पहाडी इलाकों मे हैं, जहाँ की जमीन आप और किसी काम मे नहीं ला सकते। इसलिये हम सभी का धर्म है कि जगल की रक्षा मे सहायक हों।

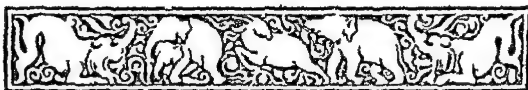

पावापुरी

प्रोफेसर बेनीमाधव अग्रवाल, एम्० ए०, राजेन्द्र-कालेज, छपरा

बिहार के परमपवित्र एवं परमप्रसिद्ध स्थानों में 'पावापुरी' तीर्थ का नाम सादर उल्लेखनीय है। जैनों के अन्तिम अर्थात् चौबीसवें तीर्थङ्कर भगवान् महावीर ने, आज से २४६८ साल पहले, इसी पवित्र भूमि में, निर्वाण प्राप्त किया था और यहीं उनका दाह-संस्कार भी हुआ था। अतएव पावापुरी जैनों का एक प्रधान तीर्थ है और प्रतिवर्ष कार्त्तिक में यहाँ बड़े समारोह से जैन लोग धार्मिक उत्सव मनाते हैं। किन्तु जिस प्रकार महात्मा महावीर का उच्च और उदार संदेश केवल जैनों के लिये ही नहीं, वरन् मनुष्यमात्र के कल्याण के लिये है, उसी प्रकार 'पावापुरी' तीर्थ भी केवल जैन-मतावलंबियों के लिये ही नहीं, वरन् समस्त मनुष्यजाति के लिये महत्त्व रखता है।

पावापुरी (अपापापुरी), पटना जिले में, राजगृह के पास, एक ग्राम है—पटना से ५८ मील दूर—पटना–राँची–सड़क पर स्थित। उसके समीप ही, लगभग ८ मील दूर, 'बिहार शरीफ' नगर है। पावापुरी तक रेलवे-लाइन नहीं है, पर मोटर का रास्ता है। यात्रियों को बिहार-लाइट-रेलवे के 'बिहारशरीफ' स्टेशन पर या साउथ-बिहार-रेलवे के 'नवादा' स्टेशन पर उतरकर मोटर (या टमटम) द्वारा पावापुरी तक जाना पड़ता है। सड़क अच्छी है और मोटरें भी बिना दिक्कत के तथा सस्ते किराये पर मिल जाती हैं।

यद्यपि जैनधर्म अति प्राचीन है, फिर भी उसके इतिहास में महावीर स्वामी का स्थान इतना महत्त्वपूर्ण है कि हम यदि इस प्रेरक और सुधारक महात्मा को उसका संस्थापक, प्रकाशक अथवा उद्धारक कहें, तो भी कोई अत्युक्ति न होगी। बिहार-प्रान्त को ही सौभाग्य प्राप्त है इस महापुरुष की जन्मभूमि और लीलाक्षेत्र होने का।

एक धनी और कुलीन क्षत्रिय-वंश मे, चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन, इनका जन्म कुडग्राम वा कुडनगर मे हुआ था। इनके पिता 'सिद्धार्थ' कुडनगर के प्रधान थे। इनकी माता 'त्रिशला' वैशाली के एक शासक 'चेतक' की बहिन थीं। जब से ये अपनी माता की कुक्षि मे आये, इनके परिवार मे नाना प्रकार की उन्नति और समृद्धि होने लगी। इसी से बालक का नाम 'वर्द्धमान' रक्खा गया।

बचपन ही से वर्द्धमान की रुचि धर्म, दर्शन और तपस्या की तरफ थी। माता पिता की आज्ञा से इन्होंने यशोदा नाम की देवी से विवाह किया। इनके एक कन्या भी हुई—'प्रियदर्शना'। माता-पिता की मृत्यु के बाद, तीस साल की अवस्था में, इन्होंने गृहत्याग किया, और वैराग्य धारण कर सत्ज्ञान की खोज में निकल पडे। बारह वर्ष तक घोर तपस्या और कष्ट-सहन के बाद इनको दिव्य ज्ञान—कैवल्य—प्राप्त हुआ। इन्होंने अपनी इन्द्रियों और परिस्थितियों पर विजय पाई, इसीसे ये 'महावीर' अथवा 'जिन' कहलाये।

इसके अनतर तीस साल तक ये भिन्न-भिन्न स्थानों मे भ्रमण करते और 'केवल-ज्ञान' का उपदेश लोगों को देते रहे। इनके उपदेशों मे अहिंसा, तप और सयम की प्रधानता है। सच पूछिये तो ससार के किसी भी धर्म-सस्थापक ने जीव-दया के सिद्धान्त को उतना अधिक महत्त्व नहीं दिया जितना इस भारतीय सन्त ने। भारतीय जीवन एव विचार धारा पर इस उद्दीपनामयी विभूति का कितना गभीर और अमिट प्रभाव पडा है, इसका अनुमान हम जैनों की सख्या से नहीं कर सक्ते। लाखों भारतवासी ऐसे हैं जो अपनेको जैन नहीं कहते, परन्तु अहिंसा धर्म की उपासना उनके जीवन का एक प्रधान अग है।

७२ साल की अवस्था मे, कार्तिक की अमावस्या को, पावापुरी में, जैनेन्द्र महावीर ने मुक्ति पाई। प्राणिमात्र पर दया करनेवाले, अहिंसा के दृढव्रती महावीर स्वामी का मुक्तिधाम होने के कारण 'पावापुरी' तीर्थ जैनों तथा अन्य भारतवासियों के लिये विशेष महत्त्व रखता है।

पावापुरी के तीन स्थान विशेषतया उल्लेखनीय हैं—समवसरण-मदिर, ग्राम-मदिर और जलमदिर। पहला 'समवसरण-मदिर' जहाँ बना हुआ है वहाँ, कहा जाता है, भगवान् महावीर ने लोगों को अपना अन्तिम उपदेश दिया था।

दूसरा 'ग्राम-मन्दिर' या 'गाँवमदिर', विशालता में, पावापुरी के सब मदिरों और भवनों में प्रथम है, तथा सौन्दर्य मे भी श्रेष्ठ है। जहाँ यह मदिर बना हुआ है वहाँ भगवान् महावीर ने, राजा हस्तिपाल की लेख-शाला मे, प्राण-

त्याग किया था। कहते हैं कि यहाँ पर एक मंदिर भगवान् महावीर के बड़े भाई महाराज नन्दिवर्द्धन ने बनवाया था। लेकिन वर्त्तमान मंदिर उतना पुराना नहीं जान पड़ता। मंदिर के प्रशस्ति-लेख से ज्ञात होता है कि शाहजहाँ के राज्य-काल में, 'बिहार'-नगर के श्वेताम्बरी-संघ ने, सन् १६४१ ईसवी में, इस मंदिर का पुनर्निर्माण, आचार्य जिनराज सूरि की अध्यक्षता में, करवाया था। मंदिर अति सुन्दर और भव्य है। इसके समीप अच्छी धर्मशालाएँ भी हैं। समवसरण-मंदिर तथा ग्राम-मंदिर हिन्दूशैली के बने हैं।

तीसरा 'जलमंदिर' पावापुरी की सबसे अधिक मार्के की इमारत है। यह मंदिर उस स्थान पर बना है जहाँ अर्हत् महावीर का दाह-संस्कार किया गया था। लगभग एक मील के घेरे में स्वच्छ जल का सरोवर है—कमलों और हृष्ट-पुष्ट मछलियों से भरा हुआ। उसीके बीच यह मंदिर अत्यन्त सुन्दर बना हुआ है। घाट से मंदिर तक जाने के लिये पत्थर का एक अच्छा पुल है, जिसकी लम्बाई ६०० फीट है।

जल-मंदिर की बनावट विमान के सदृश है। वहाँ पूजा के लिये भगवान् महावीर की चरण-पादुकाएँ प्रतिष्ठित हैं। कहते हैं, भगवान् के अन्तिम संस्कार के समय इतने लोग उपस्थित थे कि जब उन्होंने श्मशान का भस्म एक-एक चुटकी-भर उठा लिया तब इतना बड़ा गड्ढा जमीन में हो गया कि वहाँ सरोवर बन गया।

अनुपम शोभा है इस स्मरणीय स्थल और भवन की। मंदिर, उसकी सीढ़ियाँ, प्रवेशद्वार और चबूतरे का चिकना सफेद संगमर्मर, उसकी कलापूर्ण सुन्दर बनावट, सरोवर के प्रफुल्ल कमल, चारों तरफ ऊँचे-ऊँचे ताड़ के वृक्षों की कतारें, दूर पर राजगृह की रम्य पर्वतमाला—सब वास्तव में मनोहर हैं। जल-मंदिर और गाँव-मंदिर के दरवाजे तथा पूजा के सब सामान चाँदी के बने हैं।

इन मंदिरों के अतिरिक्त पावापुरी में दिगम्बरी जैनों का एक मंदिर और धर्मशाला है। श्वेताम्बरी जैनों की तो कई सुन्दर और विशाल धर्मशालाएँ हैं तथा एक दीनशाला भी है—सब जैनों की धार्मिकता और दानशीलता की देन। इनमें नवरतन धर्मशाला, गाँव-मंदिर-धर्मशाला, गुलाबकुमारी नाहर-धर्मशाला, मुर्शिदाबाद-धर्मशाला उल्लेखनीय हैं। यात्रियों के आराम का प्रबंध योग्यता और दूरदर्शिता के साथ किया जाता है। उन्हें चारपाई, बिस्तर, बर्तन आदि धर्मशाला की तरफ से मिल जाते हैं। पानी, रोशनी और सफाई का प्रबन्ध बहुत अच्छा है। यत्र-तत्र दीवारों पर आवश्यक निर्देश एवं सुवाक्य लिखे हुए हैं।

वर्षों से इन श्वेताम्बरी मन्दिरों और धर्मशालाओं का प्रबंध 'बिहार' नगर के प्रसिद्ध सुचन्ती-परिवार के हाथ में है। आजकल रायसाहब लक्ष्मीचंद सुचन्ती पावापुरी के अवैतनिक प्रबन्धक (मैनेजर) हैं। वे अत्यंत कार्यकुशल और मिलनसार सज्जन हैं। उनके समय में पावापुरी की काफी उन्नति हुई है। सन् १६३४ के भयंकर भूकम्प से पावापुरी के भवनों को नुकसान पहुँचा था, परन्तु जैनों की दानशीलता एवं संचालकों की बुद्धिमत्ता के कारण यह हानि भी उन्नति का कारण बन गई। रायसाहब सदैव लोगों को—चाहे वे जैन हों या और कोई—'पुरी' दर्शन कराने के लिये तत्पर ही नहीं, वरन् व्यग्र रहा करते हैं।

भारत के अन्यान्य विख्यात जैन तीर्थों की तरह 'पावापुरी' भी जैन-सम्प्रदाय की धार्मिकता, कलाप्रेम, दानशीलता एवं सुप्रबंध का उल्लेखनीय उदाहरण है। साथ-ही साथ इसकी कीर्त्ति का आधार इतिहास की स्मरणीय घटनाएँ भी हैं। पावापुरी का मुक्त और पवित्र वातावरण सहसा 'शान्तिनिकेतन' की याद दिलाता है। महामना पंडित मदनमोहन मालवीय के शब्दों में यहाँ की शान्ति में एक स्फूर्त्ति है, प्रेरणा है—यहाँ आकर मनुष्य थोड़ी देर के लिये संसार की दुःख चिन्ता और कोलाहल को भूल जाता है तथा एक अद्भुत आध्यात्मिक चैतन्य का अनुभव करने लगता है।

खुला हुआ मैदान, हरे-भरे खेत, ताड़ के वृक्षों की श्रेणियाँ, राजगृह की पहाड़ियाँ—इस प्राकृतिक शोभा के बीच बसा हुआ यह पावन तीर्थ, संसार के एक सर्वश्रेष्ठ महात्मा की स्मृति से अनुप्राणित यहाँ के रमणीय मंदिर, सेवाभाव और कार्यकुशलता से संचालित यहाँ की धर्मशालाएँ—वास्तव में ये सब पावापुरी को एक अनुपम स्थान बनाये हुए हैं।

पावापुरी में प्रत्येक श्रद्धालुहृदय के लिये ये वस्तुएँ सुलभ हैं—धार्मिक प्रेरणा, आध्यात्मिक स्फूर्त्ति, मानसिक शान्ति और विश्राम की सुव्यवस्था। यहाँ नहीं है पंडों का गुट्ट और धर्म के नाम पर व्यापार। संसार के भीषण स्वार्थ-संघर्ष, रक्तपात एवं बहुरूपिणी हिंसा से त्रस्त और क्लान्त व्यक्ति आज भी इस पावापुरी में जाकर उस अतिमानुषी विभूति की प्रेरणा का अनुभव कर सकते हैं, जिसने इस जगतीतल पर विश्वप्रेम और जीवदया का वह अमृत बरसाया था, जिसकी आज मानवजाति को करुण आवश्यकता है।

ऐसा परम पुनीत सुरम्य स्थल बिहार प्रान्त में ही है, यह हमारे लिये गौरव और अभिमान तथा उत्तरदायित्व का विषय है।

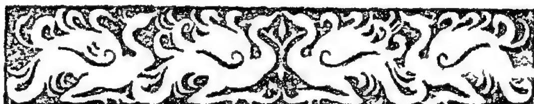

बिहार के हिन्दी-पत्र और हिन्दी-लेखक

श्रीगोपालराम गहमरी, 'जासूस'-सम्पादक, काशी

बिहार मेरी जन्मभूमि का सीवाना है। 'गहमर' (जिला गाजीपुर) और 'चौसा' (जिला शाहाबाद) के बीच में 'कर्मनाशा' नदी बहती है। यही कर्मनाशा युक्तप्रदेश और बिहार को अलग करती है। मेरे जन्मस्थान 'बारा' से डेढ़ मील के बाद ही बिहार शुरू होता है। मेरा जन्म युक्तप्रदेश के पूर्वीय सीमान्त पर होने पर भी मेरी माता का जन्म बिहार ही के 'चौसा' गाँव में हुआ था। इस तरह मैं बिहार के जलवायु का भी उतना ही ऋणी हूँ जितना युक्तप्रदेश का।

मैं सन् १८७६ ई० मे मिडल-वर्नाक्युलर में उत्तीर्ण होने पर सन् १८८३ई० मे पटना-नार्मल-स्कूल मे शिक्षा पाने गया था। इस नाते भी मेरी आधी शिक्षा बिहार मे हुई। उस समय बाँकीपुर (पटना) में खड्गविलास प्रेस मझौली के राजा खड्गबहादुरमल्ल की विमल सुयश-पताका फहरा रहा था। उन्हीं दिनों इस प्रेस के स्वामी अदम्य सदुद्योगी बाबू रामदीन सिंह का दर्शन मिला था।

बाबू रामदीन सिंह हिन्दी के परमोत्साही प्रकाशक और हिन्दी-सुलेखकों के सम्मानदाता थे। बाबू साहबप्रसाद सिंह के हाथ में प्रेस का सब भार देकर वे हिन्दी-सुलेखकों की खोज में घूमा करते थे, और जहाँ हिन्दी के विद्वान् पाते वहाँ पहुँचकर उनकी सेवा करते, उनसे कुछ लिखवाते और उनको आर्थिक सहायता देकर उनका उत्साह बढ़ाते थे। इसी प्रकरण में वे काशी पहुँचकर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के यहाँ भी पधारे थे। उन दिनों भारतेन्दु की विरदावली भारत भर में व्याप्त थी। उन्होंने भारतेन्दुजी की सब पुस्तकों का प्रकाशन-स्वत्व लेकर उनकी कीर्त्ति और उनका साहित्य चिरस्थायी करने का उद्योग किया था।

मैं पटना-नार्मल-स्कूल में पढ़ता ही था कि सन् १८८४ ई० मे बाबू रामदीन सिंह ने भारतेन्दु की 'श्रीहरिश्चन्द्र कला' का वृहदाकार में प्रकाशन आरम्भ कर

दिया था। उस 'कला' की बधाई में बिहार के बड़े-बड़े कवियों ने अपनी काव्य-शक्ति का परिचय दिया था। मुँगेर के पंडित कन्हाईलाल मिश्र, पटना-कालेज के पंडित छोटूराम त्रिपाठी, दरभंगा के पंडित भुवनेश्वर मिश्र, भागलपुर के साहित्याचार्य पंडित अम्बिकादत्त व्यास आदि बड़े-बड़े कवियों की बधाइयाँ मिली थीं। "य नई उनई हरिचन्दकला"—समस्या की पूर्ति में एक बड़ी पुस्तक तैयार हो गई थी।

उन दिनों साहित्याचार्य प० अम्बिकादत्त व्यास हिन्दी का व्याकरण 'साहित्य-सूत्रधार' के नाम से लिख रहे थे। पटना-कालेज के कालीप्रसाद त्रिपाठी ने 'रामकथा' नाम से रामायण की अनोखी रचना की थी। प० बिहारीलाल चौबे ने साहित्य का अनुपम ग्रन्थ 'बिहारी-तुलसी भूषण बोध' लिखा था। ये नार्मल-स्कूल (पटना) में हमलोगों की पाठ्यपुस्तकें थीं। बाबू रामदीन सिंह ने उन्हीं दिनों हिन्दी का 'भाषा-प्रभाकर' नामक व्याकरण प्रकाशित किया था, जो पादरी एथरिंगटन के 'भाषा भास्कर' और राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के 'हिन्दी-व्याकरण' के बाद बड़ा मान्य ग्रंथ था। उन दिनों साहित्य के जो अनुपम ग्रन्थ हम लोगों को पढ़ने को मिलते थे उनका तो अब दर्शन भी नहीं मिलता।

उन दिनों पटना से 'बिहार-बन्धु' साप्ताहिक निकलता था जिसके कर्त्ता-धर्त्ता विधाता बिहारशरीफ के प० केशवराम भट्ट के वंश के लोग थे। जिन दिनों की बात मैं कहता हूँ उन दिनों पं० केशवराम भट्ट के लिखे हिन्दी में दो चुटीले नाटक बिहार-बन्धु प्रेस से निकल चुके थे—'सज्जाद सुम्बुल' और 'शमशाद सौसन'। पंडित केशवराम भट्ट के बाद 'बिहार बन्धु' प० लक्ष्मीनाथ भट्ट लिखते थे। मैं उन दिनों भी पढ़ता ही था। चार वर्ष तक पटना में सन् १८८८ ई० तक मैं रहा था। उन्हीं दिनों सन् १८८४ में भारतेन्दु का आगमन बलिया नगर में हिन्दी के प्रेमी मुंशी चेथरूलाल डिपुटीकलक्टर के आग्रह से हुआ था। उसके बाद साहित्याचार्य प० अम्बिादत्त व्यास छपरा से पटना अक्सर आते और अपने व्याख्यानामृत पान से सबको तृप्त करते रहते थे।

उन दिनों दानापुर में आर्य-समाज का बड़ा जोर था। राँची के बाबू बालकृष्ण सहाय वकील दानापुर में आर्य-समाज के स्तम्भ थे। 'आर्यावर्त्त', जो राँची से प० रुद्रदत्तजी के सम्पादकत्व में निकला था, दानापुर से प्रकाशित होने लगा था। प० अम्बिकादत्त व्यास ने आर्य-समाज की बहती हुई विशाल धारा के सामने बड़े उद्योग से सनातनधर्म की मर्यादा रक्खी थी। कई बार दोनों समाजों

मे टक्कर हुई, और एक बार तो मुजफ्फरपुर मे एक बड़ी महती सभा में व्यासजी को यहाँ तक कहना पड़ा था कि आर्य-समाज मेरी दक्षिण भुजा है। इसपर आर्य समाज के सब पत्रों मे यह तार छप गया था कि व्यासजी आर्य-समाजी हो गये।

आर्यसमाज और सनातनधर्म का यह ग्रहम-गुत्थम उन दिनों बिहार मे बड़े अच्छे ढग से ऐसा चल रहा था कि दोनों उन्नत दशा को प्राप्त होते जाते थे। दोनों का परस्पर उत्साह बढता जाता था। दोनों में वैमनस्य तनक भी न था। दोनों अपने मार्ग पर गम्भीरता से पग उठाते हुए बढते चले जा रहे थे। सनातन-धर्म के पडित अम्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्य और आर्यसमाज के प० रुद्रदत्त शर्मा बिहार मे इस लगन के कार्यकर्त्ता और प्रचारक थे कि बाहर के होने पर भी ये लोग इस कार्य में बिहार के ही समझे जाने योग्य थे।

सन् १८८० से सन् १९०० ई० तक बीस वर्षों मे आर्यसमाज का खूब जोर बिहार मे बढा। बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वान् वक्ताओं का बिहार मे समागम हुआ। उन दिनों सर्वत्र आर्यसमाज का बडा जोर था। युक्तप्रान्त मे भी उसका प्रचार बढा हुआ था। पजाब मे बडा प्राबल्य था। आर्यसमाज मे महाराजा-जोधपुर की इतनी श्रद्धा थी कि उन्होंने देश भर मे विज्ञापन दिया कि 'आर्य-समाज मे स्वामी दयानन्द के बाद उनके समान या लगभग कौन महाशय हैं, इसका निर्णय होने पर उनको बड़ा पुरस्कार दिया जायगा।' उस समय पडित रुद्रदत्तजी का ही नाम अधिक लोगों ने लिया था। स्वामी भास्करानन्द को अधिक मत मिलने से उनको ही पुरस्कार दिया गया। उसके बाद यह विज्ञापन निकला कि 'वेद मे मास खाने का विधान है, इसका मडन किया जाय।' श्रीयुत मान्यवर प० भीमसेन शर्मा का पत्र उस समय 'आर्य-सिद्धान्त' था, जो फिर 'ब्राह्मण-सर्वस्व' होकर अबतक अपनी कीर्त्ति-पताका फहरा रहा है।

उन दिनों बाँकीपुर (पटना) से 'क्षत्रिय-पत्रिका,' 'बिहार-बन्धु,' 'चैतन्य-चन्द्रिका' और 'प्रजाबन्धु,' बेतिया मे 'चम्पारण-चन्द्रिका,' दरभगा से 'मिथिला-मिहिर' *, मुजफ्फरपुर से 'तिरहुत-समाचार' *, छपरा से 'नारद' *, गया से 'लक्ष्मी' और 'गृहस्थ' *, राँची से 'आर्यावर्त्त', पूर्णिया से 'पूर्णिया-समाचार', भागलपुर से 'पीयूष प्रवाह', 'मोतीचूर' और 'कमला', बगहा (चम्पारण) से 'विद्याधर्म-दीपिका', बाढ से 'तेली-समाचार', आरा से 'भवानी-समाचार' मैंने निकलते हुए देखे और पढे थे।

* ऐसे चिह्नवाले पत्र आजतक निकल रहे हैं।

उन दिनों बिहार के लेखकों में रायसाहब प० गोविन्दप्रसाद, प० चन्द्रशेखरधर मिश्र, प० जीवानन्द शर्मा, बाबू जैनेन्द्रकिशोर, मान्यवर प० सकलनारायण शर्मा तीर्थत्रय, प० अक्षयवट मिश्र, बाबू गोकुलानन्द वर्मा, श्रीयशोदानन्द अखौरी, पं० महावीरप्रसाद मिश्र, प० ईश्वरीप्रसाद शर्मा आदि से मेरा परिचय था। उसके बाद की पीढ़ी में बहुत-सी हिन्दी पत्र पत्रिकाओं का जन्म बिहार में हुआ। अच्छे-अच्छे लेखक भी हुए। प० लक्ष्मीनाथ भट्ट के बाद प० हरदेव भट्ट 'बिहार-बन्धु' के अधिकारी हुए। 'बिहार-बन्धु' के सम्पादन के लिये सन् १६०६ मे मेरे झोपडे में आकर वे मुझे भी बुला ले गये। मने भी दो वर्ष 'बिहार-बन्धु' की सेवा की थी। पडित हरदेव भट्ट, पंडित पुरुषोत्तम भट्ट 'बिहार-बन्धु' के उद्योगी प्रवर्त्तक थे। उसके बाद भाई काशीप्रसाद जायसवाल ने पटना से 'पाटलीपुत्र' नामक बडा प्रभावशाली पत्र निकाला था। उसके सहायक सम्पादकों में प० ईश्वरीप्रसाद शर्मा (आरा) और मेरे लघुभ्राता बाबू महावीरप्रसाद गहमरी भी थे।

बिहार में पहले भी अच्छे-अच्छे सुविज्ञ हिन्दी-सुलेखक हो गये हैं—बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री, बाबू शिवनन्दनसहाय, प० रामावतार शर्मा, प० विनयानन्द त्रिपाठी 'श्रीकवि', श्रीदामोदरसहाय 'कविकिंकर', प० चन्द्रशेखर शास्त्री, प० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी आदि। इन दिनों भी श्रीयुत ब्रजनन्दनसहाय, श्रीरामलोचनशरणजी, बेनीपुरीजी, प० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', प० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, श्रीदेवव्रत शास्त्री, प० प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त', श्री 'दिनकर' जी, श्रीआरसीप्रसाद सिंह, बाबू शिवपूजनसहाय आदि सुलेखक हिन्दी की सेवा मे दत्तचित्त हैं। लहेरियासराय का 'बालक' केवल बालक ही नहीं, बडे पुरुषार्थियों और सयानों को भी सीखने की बहुत सामग्री देता हुआ, हर महीने, साहित्योद्यान में अच्छे-अच्छे मकरन्ददायी कुसुम खिला रहा है। पटना से 'आरती' और 'किशोर' नामक दो उत्तम मासिक पत्र, 'नवशक्ति' और 'योगी' नामक दो सुन्दर साप्ताहिक निकल रहे हैं तथा 'राष्ट्रवाणी' और 'आर्यावर्त्त' नामक श्रेष्ठ दैनिक भी। बिहार-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन बिहार में एक सजीव संस्था है। 'पुस्तक भंडार' उत्तमोत्तम पुस्तकों के प्रकाशन-द्वारा हिन्दी की सराहनीय सेवा कर रहा है। सब तरह से इस समय बिहार साहित्य के क्षेत्र में प्रगति के पथ पर है।

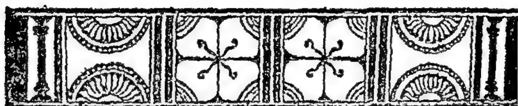

अखिल भारतीय चरखा-संघ की बिहार-शाखा

पंडित रमावल्लभ चतुर्वेदी, मलयपुर, मुंगेर

कहते हैं, १२ वर्ष पर घूरे का भाग भी फिरता है। घूरे का, मालूम नहीं, फिरता है या नहीं, पर खादी का फिरा है। १२ न सही १५० वर्ष बाद सही। भारत का भाग्य फिरे, इसके लिये खादी का भाग्य फिरना जरूरी था भी। भारत की दुर्दशा का सूत्रपात तभी से शुरू है जब से खादी के सूत्र का पतन। देश के दुर्दिन मे जब अकलवाले, होशवाले और जोशवाले सभी अपनी गिरी हालत देखते, समझते और दुखी होते थे, पर कुछ कर नहीं पाते थे, तब ऐसे समय ऐसे नेता की जरूरत थी जो उसे उद्धार की राह पर चलावे। सौभाग्य से उसी समय गाधीजी राष्ट्र की रंगभूमि मे क्रियाशीलता के साथ आये और १५० वर्ष पहले भारत का भाग्यसूत्र जहाँ से टूटा था उसे वहीं पकड़ा। यह कहते सकोच नहीं होता कि तब से भारत का भाग्य-चक्र जिस तेजी से घूम रहा है, अगर उसमें बाधा न पडी तो सफलता बहुत पास है।

सन् १९२१ में गाधीजी ने असहयोग-आन्दोलन छेड़ा था। उसका एक अग चरखा और खादी भी था। बढती हुई राष्ट्रीयता की लहर मे उसके नाम का प्रचार तो कम-से-कम देश के कोने-कोने मे हो ही गया और इधर-उधर चरखे की घन-घन सुन पडने लगी। उस समय खादी के काम को चलाने के लिये कोई सुव्यवस्थित प्रबन्ध नहीं था। प्राय कांग्रेस-कमिटियाँ और आश्रम ही इस विज्ञान के प्रयोगालय थे।

खादी के काम को सुव्यवस्था के साथ चलाने के लिये कोकनद-कांग्रेस ने १९२३ मे एक खादी-बोर्ड बनाया। पर उससे भी काम मे सुविधा नहीं हुई, क्योंकि बोर्ड भी कांग्रेस का एक विभाग ही था और उसे हर छोटी-मोटी बात के लिये कांग्रेस की मजूरी की जरूरत होती थी। इससे काम मे रुकावट होती थी। इसलिये

सन् १९२५ में २५ सितम्बर को अखिलभारतीय कांग्रेस कमिटी ने अपनी बैठक (पटना) में 'अखिलभारतीय चरखा-संघ' का विधान स्वीकार किया। इस महत्त्वपूर्ण संस्था को जन्म देने का गौरव बिहार की भूमि को ही है। तब से अखिलभारतीय चरखा-संघ 'कांग्रेस की आदेश-प्राप्त (Chartered) संस्था' के रूप में खादी के सुधार, विकास और प्रचार का काम करता आ रहा है।

चरखा-संघ कांग्रेस का एक अंग होते हुए भी अपनी सीमा में स्वतन्त्र है। संघ को कांग्रेस से पूरा स्थानीय स्वशासनाधिकार (Autonomy) प्राप्त है। संघ को अपने काम में काफी सफलता मिली है, पर करने को तो अभी बहुत काम बाकी है।

अगर चरखा-संघ को कांग्रेस से अलग मान लें तो महामहिम कांग्रेस के बाद भारत की सबसे बड़ी संस्था यही हो सकती है। अपने सदस्यों, कार्यकर्त्ताओं, कातने-बुनने और तरह-तरह के दूसरे काम करनेवाले कलाविदों की संख्या-बहुलता के कारण भारत की जनता से सबसे अधिक संपर्क इसी संस्था का है। अगर खादी का व्यवहार करनेवालों की संख्या भी इसमें जोड़ दी जाय, तो यह दावा और बढ़ जायगा। भारत के सात लाख गाँवों में से, १९३८ ई० में, १३२६३ गाँवों में चरखा-संघ का काम हुआ था, और २८१५८० कत्तिनों, १८६१२ बुनकरों और ५०९६ दूसरे कलाविदों से संघ का संपर्क हुआ, जिन्हें कुल ३२६१०८१) रुपये मजूरी के दिये गये।

चरखा-संघ की, दातव्य-संस्था-कानून के अनुसार, रजिस्ट्री हो चुकी है। इसका प्रबन्ध आजीवन और निर्वाचित सदस्यों का ट्रस्टी-मंडल करता है जिसके प्रधान स्वयं गांधीजी हैं। प्रत्येक प्रान्त के प्रबन्ध के लिये एजेंट जिम्मेदार हैं। एजेंटों के नीचे प्रान्त की शाखा के मंत्री हैं। बिहार-प्रान्त में भी अखिलभारतीय चरखा-संघ की शाखा है। यहाँ के एजेंट स्वनामधन्य राजेन्द्र बाबू हैं और मंत्री श्रीलक्ष्मीनारायणजी, जिनकी प्रशंसा और जिनका परिचय बिहार का खादी कार्य ही है।

असहयोग-आन्दोलन से पहले दूसरे प्रांतों के किसी-न-किसी भाग में चरखा कुछ-न-कुछ चल ही रहा था, पर बिहार में प्रायः बिलकुल बंद ही हो गया था। दरभंगा जिले में, और खासकर उसके मधुबनी सबडिवीजन में, मैथिल ब्राह्मणों के घर की स्त्रियों में, जनेऊ के लिये, तकली पर बहुत महीन सूत कातने की प्रथा कभी रुकी नहीं थी, और कोकटी-कपास की भी कताई चल ही रही थी। इसलिये खादी के प्रारंभिक कार्यकर्त्ताओं ने इस क्षेत्र को ही पहले चुना। अब बिहार के

खादी कार्य का पचास प्रतिशत दरभंगा जिले और मधुबनी सबडिवीजन में ही हो रहा है। इसी लिये प्रधान कार्यालय, जो पहले मुज़फ्फरपुर में था, काम की सुविधा के लिये, मधुबनी में लाया गया है। आज-कल प्रधान कार्यालय में कार्यालय के सिवा केन्द्र-भंडार, रँगाई-विभाग, छपाई-विभाग, कागज-विभाग, करघा-विभाग और बढ़ई-विभाग है। उत्पत्ति का स्थानीय केन्द्र भी यहीं है।

केन्द्र-भंडार—मधुबनी के आसपास के सभी केन्द्रों की तैयार खादी केन्द्र-भंडार में आती है और यहाँ दाम लगाकर भिन्न-भिन्न बिक्री-भंडारों को भेजी जाती है। पहले रेशमी खादी भी यहीं से सब जगह भेजी जाती थी, पर खर्च घटाने के विचार से अब रेशमी खादी का केन्द्र भागलपुर—जहाँ रेशमी माल काफी तैयार होता है—कर दिया गया है। बिहार की बनी और बाहर की भी तरह-तरह की खादी का बारह-मासी प्रदर्शनी है 'केन्द्र-भंडार'।

छपाईविभाग—इसमें खादी की रंग-बिरंगी छींटों और दूसरी तरह के कपड़ों की छपाई होती है। (हाथ से) फुहारे की छपाई (Spray printing) भी यहाँ होती है। बिजली-डिजाइन के कपड़े के लिये यहाँ हाथ से ही सूत की छपाई होती है।

कागज-विभाग—इसमें हाथ से कागज बनाने का प्रयोग होता है। धान के बेकार पुआल से सुन्दर कागज बनाने का प्रयोग यहाँ सफलता-पूर्वक हुआ है। चरखा-संघ में काम आनेवाले सभी कागज यहीं बनते हैं, मासिक 'खादी-सेवक' का कागज भी। छानने का कागज (Filter paper) अच्छा तैयार हुआ है। पटना के साइन्स कालेज की लेबोरेटरी के लिये सरकार ने उसे खरीदा है। इसकी कीमत लड़ाई के पहले की दर से आधी है।

रँगाई विभाग—इसमें खादी को तरह-तरह के रंगों में रँगने की क्रिया होती है। पहले तो हर नाद के नीचे रंग गरम करने के लिये चूल्हा रहता था, पर अब एक 'बॉयलर' (Boiler) से भाफ लेकर सभी नादों का रंग गरम किया जाता है। इससे काम की सुविधा बढ़ गई है। पुलिस की वर्दी के लिये बिहार-सरकार ने जितनी खादी ली, सबकी रँगाई यहीं हुई है। कई तरह के देशी रंग इस विभाग में बनाये गये हैं।

बढ़ई-विभाग—इसमें खादी के काम के सभी औजार बनाये जाते हैं। औजारों को और अच्छा बनाने के प्रयोग भी इस विभाग में होते हैं और सफलता के साथ उनका उपयोग किया जाता है। सूत गिनने और मजबूती नापने के कई

बिहार चर्खा संघ के प्रधान मंत्री
श्रीलक्ष्मीनारायणजी

महिलाएं कुछ नये ढँग के चर्खे चला रही हैं

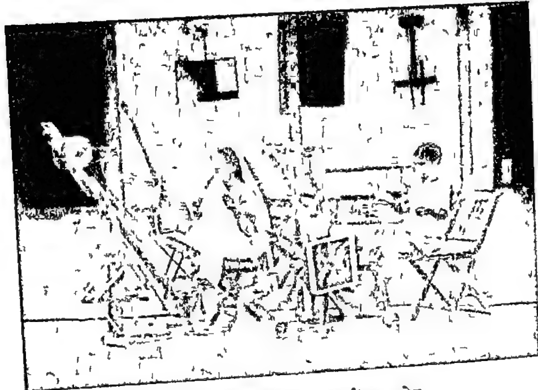

सिमरी शिक्षण केन्द्र में 'मगन चर्खा' का प्रयोग

सिमरी-शिक्षण केन्द्र में दो आधुनिक चर्खे

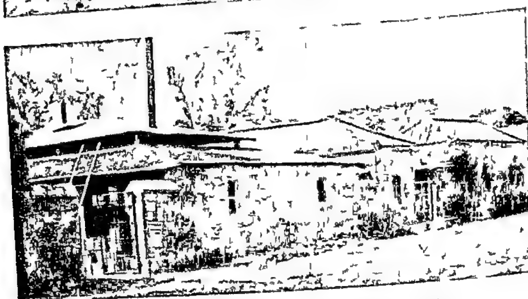

मधुबनी में चर्खा संघ का उत्पादन-केन्द्र—रँगाई विभाग का बाहरी दृश्य

सुन्दर यन्त्र यहाँ बनाये गये हैं। नक्शादार (Gaccurd) कपड़े बनाने का यन्त्र यहीं के कार्यकर्त्ता श्रीगोपी महतो जी ने बनवाया है। सूत बटने का यन्त्र भी यहीं बनाया गया है।

बुनाई विभाग—इसमें ऊनी, सूती, रेशमी और नकशादार कपड़े बनाने के कितने ही प्रयोग होते हैं और सफल प्रयोग गाँव के कारीगरों को सिखाये जाते हैं। खादी की सुन्दर जीन यहाँ तैयार की गई है।

जब से खादी-आन्दोलन शुरू हुआ है, राष्ट्रीयता की लहर की न्यूनाधिकता का असर उसपर भी पड़ता आया है। पर सब कुछ होते हुए भी खादी की गति आगे की ओर बढ़ रही है और प्रायः हर साल, पिछले साल से, बिक्री या उत्पत्ति—किसी-न-किसी दिशा में, अधिक काम होता आया है।

सन् १६३८ ई० में बिहार के १५२७ गाँवों में चरखा-संघ का काम हुआ। उन गाँवों में ४८८६६ कत्तिनों ने चरखा-संघ से ८४६७६६) रुपये पाये। इसी साल १८६४ बुनकरों तथा ओटने-धुनने-रँगनेवाले १२०७ कारीगरों ने क्रम से ६४०५४) और ७३३०८) रुपये पाये। सन् १६३६ में १६३८ से कम सूत काता गया, क्योंकि घटती हुई उत्पत्ति के अनुसार जनता की माँग खादी के लिये नहीं थी, इसलिये कत्तिनों को सन् १६३८ से कम मजूरी दी गई, पर बुनकरों तथा दूसरे कारीगरों को सन् १६३८ से अधिक मजूरी बाँटी गई। सन् १६३६ में बुनकरों को १३७६३७) और दूसरे कारीगरों को ४१८५१) रुपये बाँटे गये। ये आँकड़े देश-प्रेमियों और दानशील व्यक्तियों का ध्यान खादी की ओर खींचने की कोशिश करते हैं।

सन् १६३६ में बिहार-चरखा-संघ के ४६३ कार्यकर्त्ता थे, जिन्हें सहायता-रूप में ६०६३०) रुपये दिये गये। तब से अबतक खादी का विस्तार बहुत बढ़ गया है और कार्यकर्त्ता भी बढ़े हैं।

खादी हमारे गाँवों की आर्थिक भलाई ही नहीं करती, बल्कि उनकी हर-एक समस्या सुलझाती है। गाँववालों को यह आत्मनिर्भर, निर्भीक और परिश्रमी बनाती है। उनमें मिलकर काम करने की भावना जगाती है। खादी हिन्दू, मुस्लिम, ब्राह्मण, अछूत, सबको एक नजर से देखती है और जहाँ-जहाँ खादी कार्य हुआ है, ऐसी भावना का उदय काफी हुआ है।

चरखा-संघ का उद्देश्य है गरीबों को अन्न-वस्त्र देकर उनका संस्कार शुद्ध करना। देश में अनेक दानीय संस्थाएँ हैं, पर उनका उद्देश्य गरीबों को केवल कुछ भोजन-वस्त्र देना ही है। इससे गरीबों की कुछ जरूरतें तो जरूर पूरी हो जाती हैं, पर

उनकी भावना ऊँची नहीं होती। गरीबों में भिखारीपन बढ़ जाता है। चरखा-संघ भी गरीबों को दान ही देता है, पर दान के रूप में नहीं—गरीबों से कुछ काम लेकर उनकी मिहनत की मजूरी के रूप में उन्हें देता है। इससे उपकृत गरीब अपनेको किसी का उपकृत या भिखारी नहीं समझता और उसे अपनी मिहनत का भरोसा होने लगता है। इस तरह से वह अपनी मिहनत की कमाई खाने की आदत भी सीख लेता है।

चरखा-संघ में ऐसे कई उदाहरण हैं जिनसे पता चलता है कि जो गरीब कताई के पहले बुरी हालत में थे, अब अपने दूसरे गरीब भाई-बहनों की सहायता करते हैं। ऐसे उदाहरणों में बेलाही (दरभंगा) की श्रीमती देवकी देवी भी हैं। देवीजी ४५ वर्ष की विधवा ब्राह्मणी हैं। उनके शब्दों में ही, उन्हें, १५ वर्ष पहले, बहुत कष्ट था, पर 'कांग्रेस' * ने उनकी लाज बचा ली। देवीजी ने अपनी कताई की कमाई कुछ-कुछ बचाकर उससे अपने गाँव के चमारों के लिये कुँआ खुदवा उनका भयंकर जलकष्ट दूर किया है।

देवकी देवी के उदाहरण से दानशील व्यक्तियों की आँख खुलनी चाहिये और उन्हें खादी खरीदकर गरीबों को अन्न देकर जिलाना ही नहीं, उनकी मनुष्यता भी बचानी चाहिये। और, इस तरह, खादी लेकर, दुहरा—किन्तु गुप्तदान का—पुण्य कमाना चाहिये।

खादी लोगों में सामूहिकता का कैसे उदय करती है, इसका एक उदाहरण देखने की चीज है। दरभंगा जिले में 'सौराठ' एक गाँव है। यहाँ मैथिल ब्राह्मणों का एक प्रसिद्ध सामाजिक मेला (सभा) होता है। इस गाँव में मैथिल ब्राह्मण ही अधिक हैं। पहले यहाँ के युवक ताश, शतरंज और नशे में अपना समय गँवाया करते थे। आज से कुछ वर्ष पहले उन्होंने चरखा अपनाया। अब सब लोग इकट्ठे होकर नित्य चरखा चला कुछ पैसे कमा लेते हैं। यही नहीं, उनकी अपनी एक गोष्ठी (Club) है, जहाँ वे कताई के तरह-तरह के प्रयोग करते हैं। इसके सिवा गाँव की भलाई की बहुत-सी आलोचना करते हैं और गाँव की सफाई भी किया करते हैं।

१९३८ में अखिलभारतीय चरखा-संघ ने अच्छी कताई की मजूरी प्रति-दिन (८ घंटे) तीन आने की दर से देने का निश्चय किया, जिससे कत्तिनों को निर्वाह के लायक मजूरी मिल जाय। यह निश्चय १९३९ से काम में लाया गया।

* कत्तिनें 'संघ' को ही कांग्रेस कहती हैं।

इस निश्चय से खादी का दाम बढ़ना जरूरी था और यह बढ़ा भी। तब बहुतों को आशंका थी कि इससे खादी-प्रचार में रुकावट होगी। पर इससे खादी की बिक्री घटी नहीं, बढ़ी ही है। १९३८ से ३९ में सारे हिन्दुस्तान में १८.३ प्रति सैकड़ा खादी अधिक बिकी। यही नहीं, मजूरी बढ़ाने के बाद और कुछ पहले के 'बिहार के बिक्री के ऑकड़े' से यह पता चलेगा कि मजूरी बढ़ाने का प्रभाव खादी प्रचार पर कैसा पड़ा—

मजूरी बढ़ने के पहले की बिक्री—	मजूरी बढ़ने के बाद की बिक्री
सन् १९३२—२१९७३४॥≡)।	१९३६—३०७४८७॥–)
,, १९३३—२४३४६१–)	१९३७—५१९६८७॥≡)॥
,, १९३४—२७१८७३।≡)।।।	१९३८—७०३६३८।।।)
,, १९३५—३३०४९०।–)।।।	१९३९—९५३७३५)
	१९४०—११४३३८१)

इससे यह तो मालूम होता ही है कि खादी के मँहगी होने का बहाना वही करते हैं जिन्हें खादी पहनना ही नहीं है। कताई की मजूरी बढ़ाने से लाभ कई हुए हैं। एक तो यही कि सूत का सुधार करते समय उसमें मजबूती और समानता लाने की ओर कत्तिनों का ध्यान और दिलचस्पी बढ़ी है और सूत में बहुत सुधार हुआ है। दूसरे, खादी के कारीगरों में—जो पहले स्वयं खादी नहीं पहनते थे—खादी पहनने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी है, और दिन दिन यह प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। १९३८ में खादी के कारीगरों ने जहाँ १०७४११) की खादी अपने लिये ली थी, वहाँ १९३९ में १७०७२५) की खादी ली।

हिन्दुस्तान में उचित मजूरी देकर हाथ से कते-बुने सूती, ऊनी और रेशमी कपड़े को—गांधीजी के अनुसार—'खादी' कहते हैं। ऐसी तीनों तरह की खादी बिहार में बनती है। सूती खादी तो बारीक-से-बारीक—ऐसी कि जिसका मुकाबला दुनिया भर का बारीक-से-बारीक कपड़ा नहीं कर सकता—बिहार में बनती है। तीन सौ नम्बर का बहुत ही बारीक सूत बिहार की कत्तिनें कातती हैं। रामगढ़-कांग्रेस-प्रदर्शनी में बिहार की श्रीमती देवसुन्दरीदेवी के काते हुए ३०० नम्बर के सूत की खादी दिखाई गई थी। पर अब तो सात बहनें ३०० नम्बर का सूत कात रही हैं, जिनमें श्रीमती सुमित्रा देवी और कमली देवी प्रमुख हैं। श्रीमती फूलमणिदेवी हाथ से ऐसी सुन्दर धुनाई करती हैं कि धुनी हुई रुई अगर अखबार पर रक्खी जाय तो आप रुई के नीचे के अक्षर मजे में पढ़ सकते हैं।

रेशमी—रेशमी खादी भी भागलपुर-केन्द्र में तैयार हो रही है। भागलपुर

का प्रसिद्ध तसर तो बाजारू व्यापारी लोगों ने एकदम नष्ट कर दिया था। अब भी बाजारू भागलपुरी कपड़ा परदेशी तागे से बनता है। चरखा-संघ ने भागलपुरी उद्योग को फिर से जिलाने की सफल कोशिश की है।

ऊनी—चंपारन जिले के मधुबनी स्थान में चरखा कलाशाला में श्रीमथुरादास पुरुषोत्तम की निगरानी में ऊनी माल की कताई का प्रयोग सफलतापूर्वक हो रहा है। यहाँ का कता ऊन प्रधानकार्यालय के बुनाई-विभाग में बहुत सुन्दर बुना जाता है। मथुरादास भाई के यहाँ कम्बल भी सुन्दर और मुलायम बनते हैं, जिनकी कताई से लेकर मलीदागरी तक यहीं होती है।

गया जिले के 'जमोर'स्थान में संघ का दरी-कालीन-विभाग है। यहाँ दरी और सूती तथा ऊनी सुन्दर-सुन्दर कालीनें बनती हैं। रामगढ़-कांग्रेस की सभी छोटी-बड़ी हर तरह की दरी-कालीनें यहीं बनी थीं।

सिमरी (दरभंगा) और मधुबनी (चंपारन) में क्रम से सर्वश्री रामदेव ठाकुर और मथुरादास भाई की अधीनता में शिक्षण-केन्द्र हैं, जहाँ कार्यकर्त्ताओं और कारीगरों को कताई, धुनाई और औजारों के सुधारने की शास्त्र विहित शिक्षा दी जाती है। यहाँ के सीखे हुए कार्यकर्त्ता केन्द्रों में कत्तिनों को काम सिखाते हैं और उनके काम का सुधार भी करते हैं। इससे खादी में बहुत सुधार हुआ है।

बहुत-से आलोचक चरखा-संघ को पूँजीवादी संस्था कहते हैं। हमारे स्वनामधन्य क्रांतिकारी श्रीमानवेन्द्रनाथ राय तो इसे 'ईस्ट-इंडिया कंपनी' कहते हैं। पर यह सब आलोचना करने के पहले सबको चरखा-संघ की नीति और कार्य अच्छी तरह जान लेना चाहिये। चरखा-संघ गरीब कारीगरों की भलाई करनेवाली संस्था है। इससे उसका साल भर का मुनाफा उन्हीं का (कारीगरों का) होना ही चाहिये। और, सचमुच, यह मुनाफा उन्हीं को मिलता भी है।

चरखा-संघ का एक 'कत्तिन-सेवा-कोष' है। इस कोष में संघ का साल-भर का मुनाफा जाता है और वह कत्तिनों की शिक्षा, स्वास्थ्य और संस्कृति के लिये ही खर्च किया जाता है, या किसी अनिवार्य आवश्यकता पर उस रुपये से उनकी और तरह की भी मदद की जाती है।

चरखा-संघ बिहार में क्या कर रहा है, यह लिखकर बताने से अच्छा है कि आपको यह कार्य ही दिखाया जाय। इसलिये चरखा-संघ आपको अपने केंद्रों में आमन्त्रित करता है कि आप आकर उसके कार्यों की जाँच करें। मुझे पूरा भरोसा है कि अपनी आँखों देखने पर आप निश्चय ही संघ के कार्यों की उपयोगिता के कायल हो जायँगे।

चरखा-सघ के पास जो थोड़े रुपये हैं उनसे उसने जितना बड़ा काम किया है, वह सब उदार, देशभक्त और विवेकी लोगों के विचार करने तथा सघ की प्रशसा करने की बात है। लेकिन कोरी प्रशसा का मूल्य ही क्या, यदि आपने उस कार्य मे सहायता नहीं दी। इसलिये पहली बात तो यह है कि आप अपने जरूरत के कपडे ज्यादा-से-ज्यादा या सभी केवल चरखा-सघ की खादी के ही लें। इससे गरीबों का, अपनी मिहनत से, गुजर हो सकेगा। ध्यान रखिये, चरखा-सघ की खादी पहनकर आप अपने कपड़े की जरूरत ही नहीं पूरी करते हैं, बल्कि गरीबों के लिये कुछ दान भी देते हैं।

यहाँ यह पूछा जा सकता है कि चरखा-सघ की ही खादी क्यों, तो यह इसी लिये कि इस खादी के लिये दिया गया पैसा-पैसा गरीबों के हितार्थ ही होता है। दूसरे, यह बात निस्सकोच कही जा सकती है (कम-से-कम बिहार-प्रात मे तो जरूर ही) कि चरखा-सघ को छोडकर दूसरी जगह की खादी चरखे के सूत की शुद्ध खादी नहीं है।

बहुत-से लोगों को यह भी शका है कि चरखे से क्या देश के कपड़े की सभी जरूरतें पूरी हो सकती हैं? मैं कहूँगा, जरूर। चरखा-सघ को तो नित्य नई कत्तिनों को मना करना पड़ता है कि तुम्हारा सूत हम नहीं लेंगे। इसके सिवा पुरानी कत्तिनों को भी यदा-कदा कम कातने के लिये कहा जाता है, क्योंकि खादी की खपत उत्पत्ति के अनुपात से बहुत कम है।

सघ को अपने कार्य-विस्तार मे बहुत कठिनाई रुपयों के अभाव मे होती है। अत धनीमानी लोगों को अपने दान से सघ की पूँजी बढ़ानी चाहिये। और कुछ नहीं, तो कम-से-कम अधिक से अधिक मात्रा मे खादी ही खरीदकर गरीबों का—दरिद्रनारायण का—आशीर्वाद तो सबको लेना ही चाहिये।

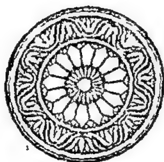

विहार के मैथिली-साहित्यसेवी

श्रीकुलानन्द दास 'नन्दन', मातृमन्दिर पुस्तकालय, बेलाराही (दरभंगा)

The chief glory of every people arises from its authors

—Dr. Johnson

पुण्यभूमि मिथिला सदा से संस्कृत-विद्या का ही विख्यात केन्द्र रहा है। प्राचीन काल में तो विद्वान् चलित भाषा में बोलना तक एक प्रकार से पाप ही समझते थे। चलित भाषा निम्न श्रेणी के जनसमुदाय की भाषा समझी जाती थी। इसलिये मैथिल विद्वान् प्राय चलित भाषा में न लिखकर संस्कृत भाषा में ही ग्रंथ रचना करते थे। हाँ, नाटकों में कभी-कभी स्त्री-पात्रियों और अधम पात्रों के कथोपकथन में लोकभाषा का प्रयोग करते थे। किन्तु बौद्धों ने चलित भाषा को ही अपनाया। यही कारण है कि प्राकृत, पाली, अपभ्रंश आदि भाषाओं में बौद्धों के अनेक ग्रंथ पाये जाते हैं। आठवीं और बारहवीं शतियों के बीच बौद्ध भिक्षुओं ने कुछ पद्यों की रचना की, जिनका समूह 'सिद्धगान' के नाम से प्रसिद्ध है। भाषा तत्त्व-वेत्ताओं (Linguists) ने इन पद्यों की भाषा को मैथिली माना है।

तेरहवीं शती में कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर के 'वर्णन-रत्नाकर' और चौदहवीं शती के कवि-कोकिल विद्यापति के 'कीर्त्तिलता' ग्रंथों की भाषा से इन बौद्ध भिक्षुओं के पद्यों की भाषा की तुलना करने पर साफ मालूम पडता है कि ये पद्य जिस भाषा में रचे गये हैं वह मैथिली का ही प्राचीन स्वरूप है। नीचे के कुछ उद्धरणों से पाठक समझ सकेंगे कि मैथिली-साहित्य का आठवीं शती से ही श्रीगणेश होता है, और इस प्रकार यह अति प्राचीन भाषा है।

"जह मन-पवन न सञ्चरइ, रवि शशि नाह पवेश।
तहि वट चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उवेश॥"

—सिद्ध सरहपाद (८वीं शती)

"दशमि दुआरल चिह्न देखइआ, आइल गराहक अपये बहिआ।
चउराठि पहिये देह पछारा, पइठल गराहक नाहि निछारा॥"

—सिद्ध बिरूपा (९ वीं शती)

"एकें अपूर्व्व विश्वकर्मा जे निर्म्मउलि जाक मुख क शोभा देखि पद्म जल प्रवेश कएल, आँखि क शोभा देखि हरिण वन गेल, केश क शोभा देखि चमरी पलायन कएल, दाँत क शोभा देखि दालिवें हृदय विदीर्ण कएल, अधर क शोभा देखि प्रवाल द्वीपान्तर गेल, कान क शोभा देखि बौद्ध ध्यानस्थित भेल, कठ क शोभा देखि कतु समुद्रप्रवेश कएल, स्तन क शोभा देखि चक्रवाक उच्छन्न भेल, बाँहुँ क शोभा देखि पजुक मृणाल पकनिमग्न भेल, जघयुगल क शोभा देखि स्थलकमलें निकुञ्जआश्रय कएल। एवम्विध रत्नालङ्कारयुक्त त्रिभुवनमोहिनी देषू।"

—'वर्णन रत्नाकर' (१३ वीं शती)

"बालचन्द विज्जावइ भाषा, दुहु नहि लग्गइ दुज्जन हासा।
ओ परमेसर हरसिर सोहइ, ई णिचइ नाअर मन मोहइ॥"

—'कीर्तिलता' (१४ वीं शती)

मैथिली-साहित्य-सेवियों के सम्बन्ध मे यदि वर्षों परिश्रमपूर्वक खोज (Research) की जाय, तो कुछ लिखा जा सकेगा। हम तो यहाँ खोज के लिये एक तालिकामात्र तैयार कर देने का प्रयास कर रहे हैं।

कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर—महाकवि विद्यापति ठाकुर के प्रपितामह भ्राता थे। निवास-स्थान 'सौराठ' (दरभगा)। समय तेरहवीं सदी। मैथिली भाषा में 'वर्णन-रत्नाकर' अपूर्व ग्रथरत्न। मैथिली भाषा का यही सबसे प्राचीन ग्रथ माना जाता है। कहते हैं, महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री अन्वेषण-कार्यवश नैपाल गये थे। वहीं उन्हें इस ग्रथ का पता मिला। बहुत द्रव्य व्यय कर वे इसका एक चित्रपट (फोटो-कापी) अपने साथ हिन्दुस्तान ले आये, और 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बगाल' को दिया। इसके बाद महाराजा सर रमेश्वर सिंह बहादुर इसकी एक प्रतिलिपि तैयार करवाकर राज-लाइब्रेरी (दरभगा) में ले आये। आपका लिखा 'धूर्त्त-समागम' नामक सस्कृत-काव्य-ग्रथ नैपाल-राज-पुस्तकालय मे मिला है। सस्कृत मे भी आपकी अगाध विद्वत्ता थी।

महामहोपाध्याय उमापति उपाध्याय—(देखिये पृष्ठ १०, पक्ति ८)। कोई-कोई आपको 'मङ्गरौनी' (दरभगा) वासी बतलाते हैं। आपका 'पारिजात-

हरण' नाटक मुख्यत संस्कृत और प्राकृत मे लिखा गया है। इसके गीत मैथिली मे ही है। लोकभाषा-सम्बद्ध नाटक-रचना के आप प्रथम प्रवर्त्तक थे। एतद्देशीय आपके परवर्त्ती नाटककारों ने आप ही के निर्द्धारित किये हुए मार्ग का अवलम्बन किया है। आपके समय के सम्बन्ध मे मतभेद है। किसी-किसी का मत है कि आप हरिसिंहदेव के द्वारपडित थे और मैथिल-पञ्जी-प्रबन्ध आप ही की देखरेख मे निर्मित हुआ था। हरिसिंहदेव के समय के सम्बन्ध में एक प्रामाणिक श्लोक है—

वस्वग्निबाहुशशिसम्मितशाकवर्षे।
पौषस्य शुक्लदशमी क्षितिसूनुवारे॥
त्यक्त्वा सुपट्टनपुरीं हरिसिंह देवो।
दुर्दैव-दर्शितपथो गिरिमाविवेश॥

अर्थात्—"(मुसलमान सूबेदार द्वारा पराजित होकर) हरिसिंह देव १२४८ शाके (१३२६ ई०) पौष सुदी दशमी मगल को अपनी राजधानी सुपट्टनपुर छोडकर पर्वतवासी हुए।"

इससे उमापति का समय १३ वीं शती का एकदम आदिभाग मालूम होता है। डॉक्टर ग्रियर्सन और डॉक्टर उमेश मिश्र आपका समय १४ वीं शती बतलाते हैं। स्वर्गीय पडित चेतनाथ झा आपको मिथिलेश राघवसिंह का समसामयिक, १७ वीं शती के आदि-भाग का, कहते हैं। किन्तु मिथिला की प्रसिद्धि आपको बी० एन० डब्लू० रेलवे के 'भपटियाही' स्टेशन के समीप 'सप्तरी' परगना (नैपाल) मे 'मकमानी' के राजा हरिहरदेव का आश्रित बतलाती है। आपने भी 'पारिजात-हरण' मे लिखा है—

सू०—आदिष्टोसिम यवनवनच्छेदन करालकरवालेन हिन्दूपति श्रीहरिहरदेवेन इत्यादि।

आपके 'उषा-हरण' मे भी एक पद्य है—

"सुकवि उमापति हरि होए परसन मान होएत समधाने।
सकल नृपति पति हिन्दूपति जिउ षट-महिषी विरमाने॥"

यहाँ ऊपर के संस्कृत-वाक्य के 'हरिहर' का छोटा रूप 'हरि' और 'हिन्दूपति' दोनों ज्यों-के-त्यों मैथिली पद्य मे आये हैं। फिर मैथिली पद्य की जो भाषा है उसकी, उसी काल के कविशेखराचार्य के 'वर्णन-रत्नाकर' ग्रंथ की भाषा से, तुलना करने पर साफ मालूम होता है कि यह उस समय की भाषा कथमपि नहीं

हो सकती। दूसरा प्रमाण यह मिलता है कि किसी निमत्रण-पत्र के उत्तर मे आपने लिखा था—

"एकहा नाव नदी भरलाहि, हम अति बूढ़ चढ़व नहिं ताहि।
गोकुलनाथ कहै सुधि लैह, हमरो सम्मति जानव सैह॥"

महामहोपाध्याय गोकुलनाथ झा का समय १७ वीं शती के अन्त से १८ वीं शती के आरम्भ तक माना गया है। उस समय आप अपनेको बहुत वृद्ध बतलाते है। इसलिये, इससे भी साबित होता है कि आप १७ वीं शती के आदि-भाग मे रहे हों। विद्वानों को इसपर प्रकाश डालना चाहिये।

कवि-कोकिल विद्यापति ठाकुर—(देखिये पृष्ठ ६ के अत मे)। आपका आदि-निवास-स्थान 'सौराठ' (दरभगा) था। राजा शिवसिंह ने आपको 'बिसपी' ग्राम पुरस्कार मे दिया और तब से आप वहीं रहने लगे। मैथिली भाषा का साहित्य-भाडार भरनेवालो मे आपका विशिष्ट स्थान है। आपने ही इस भाषा को अमरत्व प्रदान किया। आप ही मैथिली के प्राण हैं। आपकी पदावली पर मिथिला और मैथिली को गर्व है। आपके बाद मैथिली, बँगला और हिन्दी के कई कवि ऐसे हुए हैं जो आपकी कविताओं से पूर्ण प्रभावित हैं। 'वगभाषार इतिहास' नामक ग्रथ में रायसाहब श्री दिनेशचद्र सेन लिखते है—"आमादेर अनेकगुलि प्रथमश्रेणीर कवि विद्यापतिर शिष्य। विद्यापतिर शिष्यत्व आमादेर नूतन कथा नहे।" कविसम्राट् श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी लिखा है— "His (Vidyapati's) poems and songs were one of the earliest delights that stirred my youthful imagination" स्वर्गीय महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने भी लिखा है—"प्रथम मुसलमान आक्रमणेर प्रबल स्रोते हिन्दूदिगेर धर्म-कर्म एक प्रकार लोप पाइया आसे। मैथिल पडितेरा नाना ग्रन्थ रचना करिया आबार हिन्दू-समाज के पुनर्गठित करिबार चेष्टा करेन। विद्यापति एइ सकल मैथिल पंडितदिगेर मध्ये एक जन प्रधान। ये समये मुसलमानेरा कुरुक्षेत्र, वृन्दावन, प्रयाग, एमन कि काशीपर्य्यन्त लोप करिया तुलिया छिल, सेइ समय विद्यापति प्रादुर्भूत हइया नाना ग्रन्थ लिखिया अनेक तीर्थेर पुन सस्थापन ओ अनेक हिन्दूसत्कर्मेर पुन प्रचलन करेन।"

—'कीर्त्तिलता' की भूमिका

आप सस्कृत के भी महान् विद्वान और कवि थे। सस्कृत में आपके कई ग्रथ हैं। मैथिली में आपकी 'पदावली' अत्यन्त प्रसिद्ध पुस्तक है। उसका सटीक

संस्करण तथा 'महाकवि विद्यापति' विशाल ग्रंथ 'पुस्तक-भंडार' से प्रकाशित हुआ है। मुजफ्फरपुर जिले के 'बाजितपुर' गाँव मे आपकी चिता पर एक विशाल 'शिवमन्दिर' अब भी विद्यमान है। आपकी मृत्यु के सम्बन्ध में कहा जाता है—

'विद्यापतिक आयु अवसान, कातिक धवल त्रयोदशि जान।'

महामहोपाध्याय महेश ठाकुर—(देखिये पृष्ठ ११) आप खंडवला कुलमूलक श्रोत्रिय-कुल-भूषण थे। आपके पिता का नाम चन्द्रपति ठाकुर था। अकबर से जो मिथिला-राज्य आपको मिला था उसकी बाईसवीं पीढी मे वर्त्तमान मिथिलेश है। आप भगवान् के और मैथिली के बडे भक्त थे। मैथिली मे आपके रचे अनेक पद्य है, किन्तु अद्यापि अप्रकाशित।

कवि देवानन्द शर्मा—आपके संस्कृत-मैथिली-मिश्रित 'उषाहरण' नाटक का पता कवि चन्दा झा के लेख से लगता है। समय १६ वीं शती।

महामहोपाध्याय गोविन्ददास झा—मैथिली भाषा के आप एक उद्भट और प्रतिभाशाली महाकवि हो गये है। 'गोविन्द-गीतावली' आपकी प्रसिद्ध पुस्तक 'पुस्तक-भंडार' से प्रकाशित है। ❋ वाइस-चान्सलर अमरनाथ झा द्वारा सम्पादित यही पुस्तक 'मैथिली-साहित्य' नामक पत्र (दरभंगा-राज प्रेस) मे भी प्रकाशित हुई थी, जो अब पुस्तकाकार मे सुलभ है। आप कात्यायन-गोत्रीय मैथिल ब्राह्मण थे। आपके पिता का नाम पं० कृष्णदास झा था। आपका निवास-स्थान लोहना (दरभंगा) था। कहा जाता है कि संस्कृत-विद्यापीठ आप ही की स्मृति मे महाराज रमेश्वरसिंह ने लोहना मे बनवाया है। आपके वंशज अब भी धर्मपुर, समौल, भटसिमरी आदि ग्रामों मे मौजूद हैं। आप विद्यापति को अपना काव्य-गुरु मानते थे। समय १७ वीं शती। (देखिये पृष्ठ १६ के अंत मे)।

पंडित रामदास झा—आप गोविन्ददास झा के सौतेले भाई थे। उनको आप अपना काव्यगुरु मानते थे, जैसा आपने अपने 'आनन्द-विजय' नाटक की प्रस्तावना मे लिखा है। यह नाटक राजप्रेस (दरभंगा) से तथा श्रीभुवनेश्वरसिंह 'भुवन' द्वारा सुसम्पादित होकर वैशाली प्रेस (मुजफ्फरपुर) से प्रकाशित हो चुका है। (देखिये पृष्ठ २०, पंक्ति ३)।

लोचन कवि—(देखिये पृष्ठ १३ के आरम्भ मे)। मिथिलेश महिनाथ

❋ स्वर्गीय चेतनाथ झा ने एक जगह चर्चा की है कि आपकी रचना 'कृष्णलीला' भी है। किन्तु मुझे इसका पता नहीं है।

ठाकुर के अनुज कुमार नरपति ठाकुर की आज्ञा से आपने संगीत विषयक एक उत्तम ग्रंथ 'रागतरङ्गिणी' लिखा। उसमें एक जगह आपने लिखा है—

"किञ्चित् समाहृत्य कृतञ्चिदन्यत् स्वयम्च सम्पाद्य पदप्रबन्धान्
वितन्यते लोचननामधेय द्विजेन सा रागतरङ्गिणीयम्॥"

पंडित रमापति उपाध्याय—(दे० पृ० १८ का मध्य)। आप पलिवार-मूलक वत्सगोत्रीय मैथिल ब्राह्मण थे। संस्कृत, प्राकृत और मैथिली पर आपका पूर्ण आधिपत्य था, जो आपके 'रुक्मिणीहरण' नाटक का मनन करने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है। आप मैथिली के सफल कवि थे। आपका नाटक अभी तक अप्रकाशित है।

लाल कवि—मङ्गरौनी-(दरभंगा)-निवासी थे। मैथिली के बड़े सफल कवि थे। मिथिलाधीश महाराज नरेन्द्रसिंह के दरबारी कवि थे। आपके लिखे दो ग्रंथ मिलते हैं—'गौरीस्वयंवर' तथा 'कन्दर्पीघाट की लड़ाई'। पहला अभी तक अप्रकाशित है। दूसरा डाक्टर ग्रियर्सन प्रकाशित करा चुके हैं। समय १७ वीं शती।

हरिनाथ उपाध्याय—आपने भी 'पारिजातहरण' नाटक लिखा है।

नन्दीपति—मिथिलेश माधव सिंह के समय में थे। आपकी लिखी 'कृष्णकेलिमाला' नाटिका उपलब्ध है, जिसमें दी हुई आपकी वंशावली से ज्ञात होता है कि आपके पूर्व की छठी पीढ़ी में 'शिवदत्त' नाम के एक कवि थे, जिन्होंने 'पारिजातहरण' नामक अपर नाटक लिखा था।

रत्नपाणि—(प्रसिद्ध नाम 'बबुरैया झा') मैथिली में 'धर्म-सुबोधिनी' आपने लिखी। (देखिये पृष्ठ १७, पंक्ति ३)।

कविरत्न भानुनाथ (भाना झा)—'पिलखवार'-(दरभंगा)-निवासी थे। पिता का नाम महामहोपाध्याय दीनबन्धु (नेनन) उपाध्याय था। महाराज महेश्वरसिंह के दरबारी कवि थे। 'प्रभावती-हरण' नाटक के रचयिता हैं। समय १६ वीं शती।

कवि जयानन्द दास—मैथिल कर्ण कायस्थ। भागीरथपुर-निवासी। मैथिली के बड़े विशिष्ट कवि। 'रुक्माङ्गद' नाटक। १६ वीं शती।

कान्हाराम दास—मैथिल कर्ण कायस्थ। लदहो (दरभंगा)-निवासी। 'गौरी-परिणय' तथा 'सीता-स्वयंवर' दो नाटक उपलब्ध हैं, किन्तु अमुद्रित हैं। १६ वीं शती।

महामहोपाध्याय हर्षनाथ झा—आपके पुत्र प० ऋद्धिनाथ झा और जामाता डाक्टर सर गङ्गानाथ झा हैं। मैथिली मे आपके चार नाटक हैं। (दे० पृ० १६, पक्ति १३)।

भोलन (उपनाम 'मनबोध') कवि—'भराम'-(दरभगा)-ग्राम-निवासी। 'कृष्ण-जन्म' पद्य-ग्रथ है—डाक्टर उमेश मिश्र द्वारा सुसम्पादित, 'पुस्तक-भडार' द्वारा प्रकाशित।

चन्द्रमणि झा (चन्दा झा)—(दे० पृ० २५, प० ३)। आपके निम्नांकित मैथिली-ग्रथ उपलब्ध हैं—(१) पुरुष-परीक्षा, (२) मिथिला-भाषा-रामायण, (३) महेशवानी-सग्रह, (४) चन्द्र-पद्यावली, (५) अहल्या-चरित्र नाटक, (६) गीत-सप्तशती, (७) गीत-सुधा। इनमे दूसरा ग्रन्थ परम रोचक तथा चित्ताकर्षक है। यह राज-प्रेस (दरभगा) से प्रकाशित है। आप मिथिला मे तुलसीदास थे। पहला ग्रथ विद्यापति के उसी नाम के सस्कृत-ग्रथ का मैथिली अनुवाद है। विद्यापति के पदों के सबसे बड़े मर्मज्ञ मिथिला मे आप ही थे। डाक्टर ग्रियर्सन और नगेन्द्रनाथ गुप्त को आपने ही विद्यापति-पदावली समझाई थी, जिसके लिये उनलोगों ने कृतज्ञता प्रकट की है।

फतूर कवि—गोपालपुर परगने मे 'शाहपुर' ग्राम (दरभगा) के निवासी आशुकवि थे। कविता बडी मनोहारिणी होती थी। १८७४ ई० के दुर्भिक्ष का वर्णन बडे ललित पद्यों मे किया है। ये पद्य अमुद्रित हैं।

नन्दी दास—नवादा-(दरभगा)-निवासी कर्ण कायस्थ। 'ब्रजपरिक्रमा' ग्रथ अप्रकाशित है।

नित्यानन्द दास—मैथिल कर्ण कायस्थ। कन्हौली-(झझारपुर, दरभगा)-निवासी। विशिष्ट गणितज्ञ। मुद्रित गणित-ग्रथ 'अङ्कविलास'।

मनमोहन दास—मैथिल कर्ण कायस्थ। राधारमण के विशेष भक्त। सस्कृत के बहुत बड़े विद्वान्। महाकवि जयदेव-कृत 'गीत-गोविन्द' का पद्यमय मैथिली-अनुवाद 'तिलकमोहन-विलास'।

लक्ष्मीनाथ गोसाईं—'परसरमा'-(भागलपुर)-निवासी सिद्ध योगिराज थे। 'गीतावली' के रचयिता। यह मुद्रित है, किन्तु अप्राप्य है।

कवि गंगा दास—मैथिल कर्ण कायस्थ। महाभारत के विराट् पर्व का अनुवाद मिथिला-भाषा मे। फुटकर पद्य भी बहुत मिलते हैं।

महंत साहेबराम दास—सुप्रसिद्ध 'पचा मठ (दरभंगा) के प्रतिष्ठापक तथा मूलपुरुष। जन्म-स्थान कुसुमौल (दरभंगा) मैथिल ब्राह्मण। कहते हैं कि आप किसी कारण पटना के नवाब के कारागार में बन्द थे। वहाँ से नित्य अलक्षित रूप से स्नान-पूजा के लिये गंगा जाया करते थे। किसी तरह नवाब को इसकी खबर लगी। स्नान के समय उन्होंने वहाँ पहुँचकर कोठरी में दो ताले लगा दिये, और वहीं बैठ गये। यह देखकर आप ईश्वर-भजन के पद गाने लगे। गान समाप्त होते-होते आप से आप कोठरी का दरवाजा खुल गया और आप नित्य की भाँति गंगा की ओर चल पड़े। यह अपूर्व चमत्कार देखकर नवाब ने आपको बहुत सम्मान के साथ घर पहुँचवा दिया। आपके भजनों का संग्रह 'गीतावली' के नाम से प्रकाशित है।

लालदास—मैथिल कर्ण कायस्थ। 'खड़ौआ'-(दरभंगा) निवासी। मैथिली भाषा के अगाध विद्वान्। संस्कृत और फारसी के भी अच्छे ज्ञाता। रचित ग्रंथ उपलब्ध—(१) प्रतिव्रताचार, (२) स्त्री शिक्षा, (३) शम्भु विनोद, (४) चण्डी-चरित, (५) जानकी-रामायण, (६) गणेश खंड, (७) रमेश्वर-चरित रामायण, (८) लक्ष्मीश्वर-चरित रामायण, (९) रमेश्वर-चरित, (१०) लक्ष्मीश्वर-चरित, (११) गंगाचरित, (१२) विरुदावली, (१३) दुर्गा-सप्तशती, (१४) हरितालिका-व्रतकथा, (१५) वैधव्यभञ्जिनी, (१६) सत्यनारायण-व्रत-कथा, (१७) कुलदेवता-स्थापन विधि, (१८) अनुष्ठानीय सुन्दर काण्ड रामायण, (१९) सावित्री-सत्यवान नाटक, (२०) तन्त्रोक्त मिथिला-माहात्म्य। 'अनुष्ठानीय सुन्दर-काण्ड रामायण' की प्रस्तावना में आपके पुत्र श्री वनखंडी दासजी ने लिखा है कि इनकी बनाई हुई सातों काण्ड रामायण अप्रकाशित हैं, द्रव्याभाव से केवल अनुष्ठानीय सुन्दर-काण्ड ही—जिसकी बहुत माँग थी—छप सका।

महामहोपाध्याय मुरलीधर झा—जन्म १८६९ ई०। पिता का नाम प० चानन झा। 'भराम' (दरभंगा) के निवासी थे, किन्तु सदैव अपने ननिहाल—बछौड़ परगने के श्यामसीधप ग्राम—में रहे। आपका व्युत्पत्ति-कौशल विलक्षण तथा वक्तृता देने की शक्ति अद्भुत थी। मैथिल ज्योतिषियों में सर्वप्रथम 'महामहोपाध्याय'-उपाधिधारी आप ही हुए। मैथिली के अनन्य भक्त थे। रचित ग्रंथ (१) 'अर्जुन-तपस्या' उपन्यास, (२) हितोपदेश, (३) मैथिली व्याकरण। ६० वर्ष की अवस्था में मृत्यु—६ दिसम्बर, १९२९ ई०। (दे० पृ० २३)।

जीवन झा—समस्तीपुर (दरभंगा) के समीप 'हरिपुर-बढ़ैता'-ग्राम-वासी पंडित घोंघाई झा के सुपुत्र थे। काशी-नरेश महाराज प्रभुनारायण सिंह के आश्रित थे। मैथिली भाषा में पाँच नाटक उपलब्ध हैं—(१) पुनर्जन्म, (२) सामवती पुनर्जन्म, (३) नर्मदासागर सट्टक, (४) मैथिली सट्टक, (५) सुन्दर संयोग। अन्तिम नाटक की भूमिका का अन्तिम वाक्य है—"इति प्रथम ज्येष्ठ कृष्ण ४, भौम, सं० १९६१।"

वैयाकरणकेसरी महामहोपाध्याय परमेश्वर झा—(दे० पृ० २७, पं० १७)। दरभंगा-राज-संस्कृत-पुस्तकालय के अध्यक्ष थे। मैथिली ग्रंथ—मिथिला-तत्त्व-विमर्श, सीमन्तिनी-आख्यायिका, सदाचार-पद्धति (कायस्थ-सदाचार), महिषासुरवध नाटक।

बाबू तुलापतिसिंह साहब—दरभंगा-राज-वंश के लडौरे बबुआन थे। रचित मैथिलीग्रंथ—(१) गुलिस्ताँ (अनुवाद), (२) दुर्गा-सप्तशती, (३) मदनराज-चरित।

महामहोपाध्याय मुकुन्द झा बख्शी—पंडित नन्दलाल झा बख्शी के सुपुत्र थे। पहले स्वर्गीय महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह बहादुर की धर्मपत्नी महारानी लक्ष्मीवती साहबा के द्वार-पंडित थे। फिर मुजफ्फरपुर के धर्म-समाज-संस्कृत-कालेज की प्रोफेसरी से अवकाश ग्रहण कर पटियाला-नरेश के द्वार-पंडित थे। अन्त में काशीवास। मैथिली-ग्रंथ—(१) गीतागीत-विलास, (२) मिथिला-भाषामय इतिहास, (३) व्याकरण, (४) अमरकोष (टीका)।—(दे० पृ० २७, पं० ७)।

रासविहारीलाल दास—भच्छी-(दरभंगा)-निवासी मैथिल कर्णकायस्थ दुलारसिंह दास के सुपुत्र थे। 'सुमति' उपन्यास बड़ा ही रोचक है। 'मिथिला-दर्पण' पुस्तक हिन्दी में लिखी है, जो मिथिला के इतिहास पर अच्छा प्रकाश डालती है।

त्रिलोचन झा—बेतिया-(चम्पारन)-निवासी। काशी के मारवाड़ी-संस्कृत-कालेज के प्रोफेसर थे। मैथिली ग्रंथ—(१) श्रीमद्भगवद्गीता का पद्यानुवाद, (२) शकुन्तलोपाख्यान, (३) महाभारत (अनुवाद)।

बाबू गुणवन्तलाल दास—कर्ण कायस्थ। भच्छी-(दरभंगा)-निवासी। मैथिली ग्रंथ—नलोपाख्यान, कृष्णावतार क मूल-कारण-कथा, मैथिली दुर्गासप्तशती,

सुदर्शनोपाख्यान, गौरी-परिणय, गङ्गालहरी, गजग्राह-उद्धार, सत्यनारायणव्रत-कथा, कृपि-प्रबोध, सुकन्योपाख्यान, कुमारि-भोजन विषय, कामिनी विलास इत्यादि।

कुछ और मैथिली-साहित्यसेवी और उनके ग्रंथ—

शिवानन्द चौधरी—भारत क इतिहास, कपालकुंडला। अनूप मिश्र—हितोपदेश (मित्रलाभ-पर्यन्त), नारद-विवाह। गगाधर मिश्र—सत्यव्रतोपाख्यान, सुकन्योपाख्यान। काशीनाथ झा—सर्पयज्ञकाव्य, वृद्ध विवाह (प्रथम ओ दोसर खंड), राजपूत-जीवन-सध्या, युगलाङ्गुरीय, मायाशंकर। गोकुलानन्द—मान-चरित नाटक। बबे झा—सगुआ (भागलपुर)-निवासी, दुर्गा-सप्तशती (आल्हा-छन्द मे)। हल्की झा—दुर्गा-सप्तशती (पद्यानुवाद), मैथिली व्याकरण। जनार्दन झा—ठाढ़ी-(दरभगा)-निवासी, जानकी-परिणय। जगदीश झा—रामचरितामृत। महेन्द्रनारायण झा—शिशु-रामायण, बँगला के 'राधारानी' उपन्यास का अनुवाद। चेतनाथ झा—महरैल-(दरभगा)-निवासी, जगन्नाथपुरी-यात्रा, गोनू-विनोद (२ भागों में), डाक-वचनामृत (४ भाग), राम-जन्मचरित। यदुनाथ मिश्र—चन्द्रकला-कुसुमायुध नाटक। हरिनारायण झा—'सुदर्शनोपाख्यान' उपन्यास। जनार्दन झा—'प्रेमलता' उपन्यास। पुलकित मिश्र—नवटोली-(दरभगा)-निवासी, 'मोहिनी-मोहन' उपन्यास। चन्द्रशेखर झा—हरिनगर-(दरभगा)-निवासी, मिथिला-सुमति-समागम। विद्यासिन्धु वैद्यनाथ मिश्र—दरभगा-राज-ज्योतिषी रघुनाथ मिश्र के सुपुत्र, घसैंठ (दरभगा)-निवासी, मिथिला-भाषा-व्याकरण, मैथिली-हिन्दी-कोष (अपूर्ण)। मुकुन्द झा—कुलसरा (पूर्णिया)-निवासी, कुमारी-तपोव्रत अथवा गिरिजोद्वाह। शशिनाथ झा—कलिधर्म प्रकाशिका (नाटिका)। मनमोहन मिश्र—अहल्योपाख्यान। शिवानन्द चौधरी—रूपसपुर-(पूर्णिया)-निवासी, भारत क इतिहास। जगदीश झा—बरआरी (भागलपुर)-निवासी, रामायण (सातो काड)। शशिपाल झा—मानेचौक (मुजफ्फरपुर), 'दुर्गासप्तशती' (आल्हा-छन्द मे), इसकी भाषा मैथिली के बदले हिन्दी है, मिथिला-गणित पाटी। जनार्दन झा—पचगछिया (भागलपुर), 'सुमुखी' उपन्यास। पुण्यानन्द झा—मिथिला-दर्पण। हलधर झा—मैथिली-व्याकरण। गणेशदत्त पाठक—मैथिली-व्याकरण। हरिकान्त झा—कोइलख (दरभगा), मिथिला-शब्द-कोष (अपूर्ण)। सदाशिव झा—पञ्चभाषा-प्रकाश (अपूर्ण कोष), इसमें मैथिली शब्दों के अँगरेजी, सस्कृत, हिन्दी तथा बँगला के पर्यायवाची शब्द हैं। जनार्दन

मिश्र—सनौर (भागलपुर), भारत क इतिहास। जगमोहन झा—ढंगाहरिपुर (दरभगा), मैथिल चारुचर्या। जीवछ मिश्र—'विचित्र रहस्य' और 'रामेश्वर' उपन्यास। निर्भयलाल चौधरी—मैथिल कर्ण कायस्थ, तारालाही (दरभगा)-निवासी, भजनामृत-तरगिणी। परमेश्वरी दत्त—इजोत-(दरभगा)-निवासी कवि, मैथिल कर्ण कायस्थ, गौरी-विलाप (पद्य-ग्रथ)। मुकुन्दलाल दास—मैथिल कर्ण कायस्थ, डरूराम-(दरभगा)-निवासी कवि, दरभगा-राज-वशावली (छन्दोवद्ध), दरभगा-राजप्रेस से प्रकाशित। धरणी दास—मैथिल कर्ण कायस्थ, रेवासी-पकडी (मुजफ्फरपुर) निवासी योगी, काया-परिचय (आध्यात्मिक ग्रथ)। आदिनाथ झा—महरैल-(दरभगा)-निवासी, भगवती-भक्त कवि, गीतों का सग्रह 'आदिनाथ-भजनावली' (मुद्रित) मुकुन्द झा—चनौर (दरभगा), अमरकोप, गीता-गीत-विलास। गणेशदत्त ठाकुर—ज्योतिप।

लोचन-कवि-कृत 'रागतरङ्गिणी' मे निम्नाङ्कित कवियो के भी नाम है। किन्तु इनकी रचना और इनमें अधिकाश के वासस्थान का कुछ पता नहीं। यहाँ सिर्फ नाम इसलिये दिये जाते है कि मैथिली-सेवी इनके विपय मे खोज करें—कवि जयकृष्ण, भूपतिसिंह, श्रीनिवास, कवि भवानीनाथ, राजा लक्ष्मी-नारायण, धरणीधर, कवि मुकुन्दी, गदाधर, मधुसूदन, कुमर भीपम, विद्यापति क पुत्रवधू चन्द्रकला, कवि चतुर्भुज, कवि हरिदास, कसनारायण, जीवनाथ, राजा लखनचन्द, गङ्गादास, कवि श्यामसुन्दर, अमृतकर, यशोधर, कवि रत्न, चन्द्र कवि प्राचीन, अमृतकर, प्रीतिनाथ, कवि भीष्म, कवि रजन, दुर्गादत्त।

'मिथिला-गीत-सग्रह' मे इन कवियों के भी नाम है—सुवशलाल, दत्त कवि, सुकविदास, तुलाराम, माधवदास, शकर, सूरदास, दुखरन, कुलपति, सीताराम, यदुनाथ, चन्द्रनाथ, करनाट, शभुदास, परमानन्द, रामनाथ, मोदनाथ, सनाथ, जयनाथ, बबुजन, धैरजपति, रुकमणि, बुद्धिलाल, दुरमिल, जलधर, रुद्रनाथ, कवि वासुकी, कृष्ण कवि, धनपति, यशी, भञ्जन, चिरञ्जीव, मॅगनीराम, दत्तगणक, धर्मेश्वर, मोतीलाल, अमरदास, लोकनाथ, मधुकर, हृदय दास, यदुवर दास इत्यादि।

वर्त्तमान काल के मैथिली-साहित्यसेवी

महामहोपाध्याय डाक्टर सर गंगानाथ झा—जन्म आश्विन कृष्ण सन् १२७६ फसली। ५–६ वर्ष की अवस्था तक अपने ननिहाल 'गन्धवारि' (दरभगा) में ही रहे। राज-स्कूल (दरभगा) से सन् १८८६ ई० मे इन्ट्रेंस पास किया।

इलाहाबाद-विश्वविद्यालय से एफ० ए०, बी० ए० तथा एम० ए० की परीक्षाएँ पास कीं और तीनों में सर्वप्रथम रहे। दरभंगा-राज पुस्तकालय का अध्यक्ष रहते हुए पंडित चित्रधर मिश्र से मीमांसा का अध्ययन किया। मेयोर-सेंट्रल-कॉलेज (प्रयाग) में सन् १६०२ ई० में प्रोफेसर नियुक्त हुए। १६०५ ई० में इलाहाबाद-युनिवर्सिटी के 'फेलो' और १६०६ ई० में वहाँ के सिंडिकेट के मेम्बर चुने गये—इसी वर्ष 'डाक्टर ऑफ लेटर्स' और १६१० ई० में 'महामहोपाध्याय' तथा १६४१ में 'सर' की उपाधियाँ मिलीं। १६१८ ई० में कौंसिल ऑफ स्टेट के सरकारी सदस्य चुने गये। १६२३, १६२६ तथा १६२६ ई० में, तीन बार, प्रयाग-विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर निर्वाचित हुए। संस्कृत, हिन्दी तथा अँगरेजी में अनेक ग्रंथ रचे हैं। मैथिली-पुस्तक 'वेदान्त-दीपक' मैथिली-साहित्य-परिषद् (दरभंगा) से प्रकाशित है। पाँच पुत्ररत्न और पाँच कन्याएँ हैं। 'योग्य पिता के योग्य पुत्र' प्रोफेसर अमरनाथ झा हैं, जो प्रयाग-विश्वविद्यालय के वाइसचान्सलर हैं।

कविवर मुंशी श्रीरघुनन्दन दास—मैथिल कर्ण कायस्थ। सरसवाड़-(दरभंगा)-निवासी। मिथिला-भाषा के प्रथमश्रेणी के विद्वान्। फारसी तथा संस्कृत के भी विशेष ज्ञाता। मैथिलीग्रंथ—मिथिला नाटक, उत्तररामचरित (नाटक), हरितालिका-व्रत-कथा, दूताङ्गदव्यायोग (रूपक) मैथिली-बाल-शिक्षा, सुभद्रा-हरण (महाकाव्य), पावसप्रमोद (हिन्दी में), भर्तृहरि निर्वेद (हिन्दी में)—आदि।

डाक्टर उमेश मिश्र, काव्यतीर्थ—गजहड़ा (दरभंगा) निवासी महा-महोपाध्याय जयदेव मिश्र के सुयोग्य सुपुत्र। प्रयाग-विश्वविद्यालय में संस्कृत-विभाग के प्रधान अध्यक्ष। विद्यार्थि-जीवन से ही आपने मातृभाषा मैथिली की स्तुत्य सेवा की है। सन् १६३३ ई० में मैथिली-साहित्य-परिषद् की घोंघडरिया-(दरभंगा)-वाली सभा के अध्यक्ष पद से बड़ा ही गवेषणा-पूर्ण भाषण किया था, इसका मनन करने से मालूम होता है कि भाषा शास्त्र का आपका अध्ययन अत्यन्त गम्भीर है, मैथिली-साहित्य का तो यह छोटा-मोटा इतिहास ही है। रचित मैथिली ग्रंथ—गद्यकुसुममाला, गद्य-कुसुमाञ्जलि, साहित्य-दर्पण (अनुवाद), शङ्कर मिश्र (जीवनी), भवभूति (जीवनी), मैथिली-वर्णमाला क परिचय, नलो-पाख्यान, यक्ष-पाडव-संवाद आदि।

श्रीबदरीनाथ झा 'कविशेखर'—सरिसव-(दरभंगा)-निवासी हैं। मुजफ्फरपुर-संस्कृत-कालेज में साहित्य के प्रोफेसर हैं। विख्यात सुकवि हैं।

मिश्र—सवौर (भागलपुर), भारत क इतिहास। जगमोहन झा—ढगाहरिपुर (दरभगा), मैथिल चारुचर्चा। जीवछ मिश्र—'विचित्र रहस्य' और 'रामेश्वर' उपन्यास। निर्भयलाल चौधरी—मैथिल कर्ण कायस्थ, तारालाही-(दरभगा)-निवासी, भजनामृत-तरगिणी। परमेश्वरी दत्त—इजोत-(दरभगा)-निवासी कवि, मैथिल कर्ण कायस्थ, गौरी-विलाप (पद्य-ग्रथ)। मुकुन्दलाल दास—मैथिल कर्ण कायस्थ, डरराम-(दरभगा)-निवासी कवि, दरभगा-राज-वशावली (छन्दोवद्ध), दरभगा-राजप्रेस से प्रकाशित। धरणी दास—मैथिल कर्ण कायस्थ, रेवासी-पकडी (मुजफ्फरपुर) निवासी योगी, काया-परिचय (आध्यात्मिक ग्रथ)। आदिनाथ झा—महरैल-(दरभगा)-निवासी, भगवती-भक्त कवि, गीतों का सग्रह 'आदिनाथ-भजनावली' (मुद्रित) मुकुन्द झा—चनौर (दरभगा), अमरकोष, गीता-गीत-विलास। गणेशदत्त ठाकुर—ज्योतिष।

लोचन-कवि-कृत 'रागतरङ्गिणी' मे निम्नाङ्कित कवियो के भी नाम हैं। किन्तु इनकी रचना और इनमें अधिकाश के वासस्थान का कुछ पता नहीं। यहाँ सिर्फ नाम इसलिये दिये जाते हैं कि मैथिली-सेवी इनके विषय मे खोज करें—कवि जयकृष्ण, भूपतिसिंह, श्रीनिवास, कवि भवानीनाथ, राजा लक्ष्मी-नारायण, धरणीधर, कवि मुकुन्दी, गदाधर, मधुसूदन, कुमर भीषम, विद्यापति क पुत्रवधू चन्द्रकला, कवि चतुर्भुज, कवि हरिदास, कसनारायण, जीवनाथ, राजा लखनचन्द, गङ्गादास, कवि श्यामसुन्दर, अमृतकर, यशोधर, कवि रत्न, चन्द्र कवि प्राचीन, अमृतकर, प्रीतिनाथ, कवि भीष्म, कवि रजन, दुर्गादत्त।

'मिथिला-गीत-सग्रह' मे इन कवियों के भी नाम हैं—सुवशलाल, दत्त कवि, सुकविदास, तुलाराम, माधवदास, शकर, सूरदास, दुग्गरन, कुलपति, सीताराम, यदुनाथ, चन्द्रनाथ, करनाट, शभुदास, परमानन्द, रामनाथ, मोदनाथ, सनाथ, जयनाथ, नवुजन, धैरजपति, रकमणि, बुद्धिलाल, दुरमिल, जलधर, रुद्रनाथ, कवि वासुकी, कृष्ण कवि, धनपति, वशी, भञ्जन, चिरञ्जीव, मॅगनीराम, दत्तगणक, धर्मेश्वर, मोतीलाल, अमदास, लोकनाथ, मधुकर, हृदय दास, यदुवर दास इत्यादि।

वर्त्तमान काल के मैथिली-साहित्यसेवी

महामहोपाध्याय डाक्टर सर गंगानाथ झा—जन्म आश्विन कृष्ण सन् १२७६ फसली। ५-६ वर्ष की अवस्था तक अपने ननिहाल 'गन्धवारि' (दरभगा) मे ही रहे। राज-स्कूल (दरभगा) से सन् १८८६ ई० मे इट्रेंस पास किया।

इलाहाबाद-विश्वविद्यालय से एफ० ए०, बी० ए० तथा एम० ए० की परीक्षाएँ पास कीं और तीनों में सर्वप्रथम रहे। दरभंगा-राज-पुस्तकालय का अध्यक्ष रहते हुए पंडित चित्रधर मिश्र से मीमांसा का अध्ययन किया। मेयोर-सेंट्रल-कॉलेज (प्रयाग) में सन् १९०२ ई० में प्रोफेसर नियुक्त हुए। १९०५ ई० में इलाहाबाद-युनिवर्सिटी के 'फेलो' और १९०६ ई० में वहाँ के सिंडिकेट के मेम्बर चुने गये—इसी वर्ष 'डाक्टर ऑफ लेटर्स' और १९१० ई० में 'महामहोपाध्याय' तथा १९४१ में 'सर' की उपाधियाँ मिलीं। १९१८ ई० में कौंसिल ऑफ स्टेट के सरकारी सदस्य चुने गये। १९२३, १९२६ तथा १९२९ ई० में, तीन बार, प्रयाग-विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर निर्वाचित हुए। संस्कृत, हिन्दी तथा अँगरेजी में अनेक ग्रंथ रचे हैं। मैथिली-पुस्तक 'वेदान्त-दीपक' मैथिली-साहित्य-परिषद् (दरभंगा) से प्रकाशित है। पाँच पुत्ररत्न और पाँच कन्याएँ हैं। 'योग्य पिता के योग्य पुत्र' प्रोफेसर अमरनाथ झा हैं, जो प्रयाग-विश्वविद्यालय के वाइसचान्सलर हैं।

कविवर मुंशी श्रीरघुनन्दन दास—मैथिल कर्ण कायस्थ। सरसनाड-(दरभंगा)-निवासी। मिथिला-भाषा के प्रथमश्रेणी के विद्वान्। फारसी तथा संस्कृत के भी विशेष ज्ञाता। मैथिलीग्रंथ—मिथिला नाटक, उत्तररामचरित (नाटक), हरितालिका-व्रत-कथा, दूताङ्गदव्यायोग (रूपक) मैथिली-बाल-शिक्षा, सुभद्रा-हरण (महाकाव्य), पावसप्रमोद (हिन्दी में), भर्तृहरि-निर्वेद (हिन्दी में)—आदि।

डाक्टर उमेश मिश्र, काव्यतीर्थ—गजहडा (दरभंगा)-निवासी महा-महोपाध्याय जयदेव मिश्र के सुयोग्य सुपुत्र। प्रयाग विश्वविद्यालय में संस्कृत-विभाग के प्रधान अध्यक्ष। विद्यार्थि-जीवन से ही आपने मातृभाषा मैथिली की स्तुत्य सेवा की है। सन् १९३३ ई० में मैथिली-साहित्य-परिषद की घोंघड़रिया-(दरभंगा)-वाली सभा के अध्यक्ष-पद से बड़ा ही गवेषणा-पूर्ण भाषण किया था, इसका मनन करने से मालूम होता है कि भाषा-शास्त्र का आपका अध्ययन अत्यन्त गम्भीर है, मैथिली-साहित्य का तो यह छोटा-मोटा इतिहास ही है। रचित मैथिली ग्रंथ—गद्यकुसुममाला, गद्य-कुसुमाञ्जलि, साहित्य-दर्पण (अनुवाद), शङ्कर मिश्र (जीवनी), भवभूति (जीवनी), मैथिली-वर्णमाला क परिचय, नलो-पाख्यान, यक्ष-पाण्डव-सवाद आदि।

श्रीबदरीनाथ झा 'कविशेखर'—सरिसव-(दरभंगा)-निवासी हैं। मुजफ्फरपुर-संस्कृत-कालेज में साहित्य के प्रोफेसर हैं। विख्यात सुकवि हैं।

'सुलोचना-परिणय' नामक सर्वाङ्गसुन्दर महाकाव्य लिखकर मैथिली-साहित्य का असीम उपकार किया है। संस्कृत-महाकाव्य 'राधा-परिणय' आपकी अद्भुत कवित्वशक्ति का परिचायक है।

श्रीगंगापति सिंह, बी० ए०—पचही-मधेपुर-(दरभगा)-निवासी। दरभगा-राजवश से घनिष्ट सम्बन्ध। कलकत्ता-युनिवर्सिटी मे हिन्दी और मैथिली के लेक्चरर थे। हिन्दी के भी सुपरिचित लेखक हैं। मैथिली मे 'बालव्याकरण' तथा 'रचना-निबन्ध' प्रकाशित हैं। और भी अनेक मैथिली-पुस्तकें हैं, जो प्रकाशित नहीं हैं। आपके निबन्ध प्राचीन खोजों से परिपूर्ण रहते है। मिथिला मे प्रचलित किंवदन्तियों एव दन्तकथाओं का विशाल सग्रह तैयार किया है। विनोदप्रिय सहृदय व्यक्ति हैं।

महामहोपाध्याय बालकृष्ण मिश्र—(दे० पृ० ३७, प० ५)। भारत-प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ विद्वान हैं। विद्यापति के पदसग्रह का सुन्दर सम्पादन किया है।

श्रीरामभद्र झा, एम्० ए०—राजपूताना के अलवर-स्टेट मे चीफ जस्टिस थे। मैथिली के सुविदित साहित्यसेवी है। आपकी गद्य पद्य-रचना से मैथिली की गौरव-वृद्धि हुई है।

श्रीबबुआजी मिश्र—कोइलख (दरभगा)-निवासी। कलकत्ता-विश्व-विद्यालय मे मैथिली के लेक्चरर हैं और मैथिली के प्राचीन साहित्यिकों में हैं। ज्योतिष के प्रसिद्ध विद्वान् हैं।

श्रीसीताराम झा—चौगमा - (दरभगा) निवासी प्रसिद्ध आशुकवि हैं। कविता अत्यन्त रोचक और हृदय-ग्राहिणी होती है। काशी के एक सस्कृत-विद्यालय मे ज्योतिष के प्रधान अध्यापक हैं। मैथिली-रचनाएँ—मैथिली-सूक्ति-सुधा, पढुआ-चरित्र, भूकम्प वर्णन, अलकार-दर्पण, शिक्षा-सुधा, मैथिली-छदो-ऽलकार-मजूषा इत्यादि। ज्योतिष के बीसियों ग्रथ लिखे है। प्रतिभा मुग्धकर है। वर्त्तमान मैथिली के कविरत्न कहे जाते हैं।

श्रीबलदेव मिश्र—(दे० पृ० ३७ के अत मे)। राज-पुस्तकालय के सस्कृत-विभाग के अध्यक्ष हैं। सुप्रसिद्ध 'वररुचि' और 'हलायुध' तथा 'चाणक्य' का मैथिलत्व बड़ी खोज के साथ सिद्ध किया है। भक्ति-विषयक बहुत-से पद्य मैथिली मे रचे हैं। प्राचीन सस्कृत विद्वानों की जीवन-कथाओं के विशेषज्ञ माने जाते हैं। लोचन कविकृत 'रागतरंगिणी' तथा 'चन्द्रपद्यावली' का सुन्दर सम्पादन किया है। सदाचारी लब्धप्रतिष्ठ राजाश्रित विद्वान् हैं।

श्रीभुवनेश्वर सिंह साहब 'भुवन'—मुजफ्फरपुर-निवासी प्रतिष्ठित रईस, मैथिली भाषा के सुलेखक, सुकवि और सुरुचिसम्पन्न पत्र-सम्पादक हैं। दरभंगा-राजवंश से अत्यन्त समीप सम्बन्ध है। मैथिली कविताओं का संग्रह 'आषाढ़' प्रकाशित है। 'आनन्द-विजय' नाटिका का सुन्दर सटिप्पण सम्पादन किया है। आपके सम्पादकत्व में 'विभूति' नाम की मैथिली मासिक पत्रिका खूब चली थी। 'लेखमाला', 'विद्यापति', 'वैशाली' आदि हिन्दी-मासिकों के सम्पादन से हिन्दी-संसार में आप प्रसिद्ध हो चुके हैं। आपकी कविताएँ मैथिली की सुन्दर सम्पत्ति हैं। हिन्दी के भी प्रसिद्ध लेखक, कवि और पत्रकार हैं।

श्रीजनार्दन झा 'जनसीदन'—कुमर-बाजितपुर (मुजफ्फरपुर)-निवासी हैं। राष्ट्रभाषा हिन्दी के पुरातन यशस्वी सेवकों में हैं। दरभंगा-राज्य के प्रसिद्ध पत्र 'मिथिला मिहिर' के सम्पादक रह चुके हैं। मैथिली में सुन्दर कविताएँ रचते और पठनीय निबन्ध लिखते हैं। बिहार के प्राचीन साहित्यिकों में ऊँचा स्थान है।

श्रीकुशेश्वर कुमर—कुमर-बाजितपुर-(मुजफ्फरपुर)-निवासी ज्योतिष के विख्यात विद्वान् हैं। मातृभाषानुराग प्रशंसनीय है। आपके सम्पादकत्व में मैथिली की विख्यात पत्रिका 'मिथिला' बड़ी सज-धज से निकली थी। स्त्री-कर्त्तव्य-शिक्षा और शिक्षा-सोपान—दो मैथिली-ग्रंथ प्रकाशित हैं। बहुत-से संस्कृत-ग्रंथों का सम्पादन किया है। मैथिली की कविता बड़ी परिमार्जित होती है।

कुमार श्रीगंगानन्द सिंह, एम् ए, एम् एल सी.—श्रीनगर-राज्य (पुर्णिया) के अधिपति स्वर्गीय दानवीर साहित्यसरोज राजा कमलानन्द सिंह के सुयोग्य सुपुत्र हैं। इस समय वर्त्तमान दरभंगा-नरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी हैं। अँगरेजी, हिन्दी और मैथिली के उद्भट लेखक हैं। 'मैथिली-नाटक-साहित्य' पर आपका विद्वत्तापूर्ण निबंध एशियाटिक सोसाइटी से प्रकाशित है। आपका प्रकाशित मैथिली उपन्यास 'अगिलही' अपने ढंग का अनूठा है। 'विवाह' नामक कहानी की पुस्तक भी प्रकाशित है। आपके मैथिली निबंधों की सूची काफी बड़ी है। आपसे मैथिली-साहित्य को बहुत बड़ी आशा है।

पंडित जीवनाथ राय, बी ए.—बीरसायर-(दरभंगा)-निवासी। जिला-स्कूल (दरभंगा) के हेडपण्डित हैं। मैथिली के अधिकारी विद्वान् माने जाते हैं। 'मैथिली की लेख-शैली' नामक शैली-सम्बन्धी ग्रंथ 'पुस्तक-भंडार' से प्रकाशित हुआ है। मैथिली-लिपि के चिर-विदित प्रचारकों में हैं। लेख-शैली परिमार्जित है।

श्रीभोलालाल दास, बी ए एल्-एल् बी,—कसरौर-(दरभगा)-निवासी कायस्थ। वर्त्तमान मैथिली-साहित्य के उन्नायकों में अग्रगण्य। मैथिली-साहित्य-परिषद् (दरभगा) के प्राणस्तम्भ। आपके सम्पादकत्व मे 'मिथिला' और 'भारती' नामक मैथिली मासिक पत्रिकाएँ निकल चुकी हैं। मैथिली का प्रामाणिक व्याकरण 'व्याकरण-प्रमोद' लिखा है। दर्जनों मैथिली-पुस्तकों का सम्पादन किया है। कुछ मैथिली कविताएँ भी लिखी हैं, बडी ओजस्विनी। राष्ट्रभाषा हिन्दी के भी प्रसिद्ध लेखक हैं। मैथिली के अनन्य अनुरागी।

श्रीदीनबन्धु झा—इसहपुर-(दरभगा)-निवासी। सस्कृत के प्रकाड विद्वान् हैं। आपका 'मैथिली-भाषा-विद्योतन' नामक मैथिली व्याकरण अद्वितीय है। किसी अन्य भाषा मे सस्कृत व्याकरण की शैली पर ऐसा सूत्र-वृत्त्यात्मक ग्रथ शायद ही लिखा गया होगा। मैथिली के शब्द कोष का भी वृहत् सग्रह किया है। मैथिली भाषा के प्रामाणिक आचार्य हैं।

प्रोफेसर श्रीअमरनाथ झा, एम. ए—स्वनामधन्य महामहोपाध्याय डॉक्टर सर गगानाथ झा के सुपुत्र हैं। अँगरेजी भाषा के भारत-प्रसिद्ध विद्वान् हैं। प्रयाग-विश्वविद्यालय के वर्त्तमान वाइस-चान्सलर हैं। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रभावशाली सुवक्ता एव सुलेखक हैं। मातृभाषा मैथिली के बड़े प्रेमी हैं। मैथिली कवि गोविन्ददास की शृगार-भजनावली का सुन्दर सकलन और सम्पादन किया है। हर्षनाथ-ग्रथावली भी आप ही के सम्पादकत्व मे निकली है। मैथिली भाषा को आपपर गर्व है।

प्रोफेसर हरिमोहन झा, एम ए—कुमर-बाजितपुर- (मुजफ्फरपुर)-निवासी श्री 'जनसीदन'जी के सुयोग्य पुत्र। बी एन् कालेज (पटना) के दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर हैं। अत्यन्त प्रतिभाशाली विद्वान् हैं। हास्यरस के बेजोड़ लेखक हैं। मैथिली उपन्यास 'कन्यादान' अपने ढग का अकेला है। मैथिली के गल्प-लेखकों मे अग्रगण्य हैं। सस्कृत, हिन्दी तथा अँगरेजी में बहुत-सी पुस्तकें लिखी हैं। मैथिली में 'द्विरागमन' उपन्यास लिख रहे हैं।

डाक्टर सुधाकर झा, एम् ए., पी-एच. डी.—प्रेमनगर-(मुजफ्फरपुर)-निवासी। पटना-विश्वविद्यालय में मैथिली के प्रौढ विद्वान् हैं। मैथिली भाषा पर आपने सुन्दर 'थीसिस' (निबध) लिखा है। मैथिली भाषा का वृहत् प्रामाणिक कोष लिख रहे हैं।

श्री सुभद्र झा, एम्. ए—नागदह-(दरभगा)-निवासी। मैथिली के,

पटना-विश्वविद्यालय की ओर से, रिसर्च-स्कॉलर रह चुके हैं। मैथिली मे कुछ उपन्यास भी लिखे हैं जो अप्रकाशित हैं। 'मैथिली लिपि और ध्वनि' नामक वृहदाकार 'थीसिस' लिख रहे हैं। आप तीव्र आलोचक हैं।

श्रीअच्युतानन्द दत्त—भलुआही-(भागलपुर)-निवासी कर्णकायस्थ। हिन्दी के भारतप्रसिद्ध बालोपयोगी मासिक पत्र 'बालक' के सहकारी सम्पादक हैं। मैथिली भाषा के उद्‌भट सेवक हैं। 'रघुवंश' का पद्यात्मक अनुवाद पाठ्यग्रन्थों मे है। 'महाभारत' का भी मैथिली में पद्यबद्ध अनुवाद कर चुके हैं। 'बताहि' और 'सत्यहरिश्चन्द्र' नामक मैथिली-खण्डकाव्य हाल ही मे लिखे हैं। हास्यरस के भी आप मँजे हुए लेखक हैं। मैथिली में आपके अनेक प्रकाशित लेख समादरणीय हैं। हिन्दी के आप अधिकारी विद्वान् हैं। हिन्दी मे आपकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं। हिन्दी साहित्य और संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ हैं।

श्रीपुलकितलाल दास 'मधुर'—बभनगामा-(भागलपुर)-निवासी कर्ण कायस्थ। मैथिली के सुकवि और सुलेखक हैं। मातृभाषानुराग आपमे कूट-कूटकर भरा है। प्रसिद्ध मैथिली-रचनाएँ—केतकी (खण्डकाव्य), लोपामुद्रा (उपाख्यान)। स्फुट लेख और कविताएँ बहुत-सी हैं।

श्रीकालीकुमार दास 'कुमर'—भच्छी (दरभंगा)-निवासी कर्ण कायस्थ। मैथिली के सुपरिचित लेखक हैं। मिथिलेश की धौत-परीक्षा मे उत्तीर्ण हैं। स्त्री-साहित्य पर मैथिली में कई छोटी-छोटी पुस्तकें लिखी हैं जिनमें 'भामिनी-जीवन' प्रसिद्ध है। कविता अत्यन्त रोचक होती है। कविता-पुस्तक 'मैथिली-गीताजलि' और बालोपयोगी गद्य-पुस्तक 'नच्चा खेलाइ अछि' प्रकाशित हैं।

श्रीलक्ष्मीपति सिंह, बी ए—मधेपुर-(दरभंगा)-निवासी। दरभंगा-राजवंश के हैं। मैथिली के उत्साही सेवकों मे हैं। 'मैथिली शिक्षक' पुस्तक मे हिन्दी के द्वारा मैथिली की शिक्षा-पद्धति बतलाई है। सचित्र मासिक 'मैथिल-बन्धु' (अजमेर)के संयुक्त सम्पादक हैं। मैथिली तथा हिन्दी में निबन्ध और कविताएँ खूब लिखते हैं।

श्रीहरिनन्दन ठाकुर 'सरोज'—भच्छी-(दरभंगा) निवासी। मैथिली के लोकप्रिय गल्प-लेखक हैं। 'माधवी माधव' मैथिली-उपन्यास बड़ा ही रोचक है। 'विद्यापति' नाटक बहुत सुन्दर है। 'गल्प-संग्रह' काफी बड़ा है।

श्रीपरमानन्द दत्त 'परमार्थी'—पूर्वोक्त सहकारी 'बालक'-सम्पादक श्रीयुत

अच्युतानन्द दत्त के अनुज हैं। मैथिली के उदीयमान साहित्य-सेवियों में अधिक कार्यशील हैं। 'मैथिली मेघदूत' प्रकाशित है। हास्यरस के प्रहसन एवं गल्प सुन्दर लिखते हैं। मैथिली में निबन्ध भी खूब लिखे हैं। मैथिली हरिवंश, मृच्छकटिक (अनुवादित नाटक) आदि मैथिली ग्रंथ और माघ महाकाव्य का हिन्दी-पद्यानुवाद अप्रकाशित हैं। हिन्दी में आपकी कई बालोपयोगी पुस्तकें छप चुकी हैं।

श्रीकपिलेश्वर झा शास्त्री—फुलपरास-(दरभंगा)-निवासी। साप्ताहिक 'मिथिला-मिहिर' (दरभंगा) के सम्पादक वर्षों रह चुके हैं।

श्रीरमानाथ झा, एम् ए, बी एल्., काव्यतीर्थ—उजान-(दरभंगा)-निवासी। 'मैथिली-साहित्य-पत्र' का सम्पादन कर मैथिली में अनेक सुसम्पादित पुस्तकें प्रकाशित की हैं। 'उदयन-चरित' उपाख्यान प्रकाशित है। विद्यापति-साहित्य का गहरा अध्ययन किया है। अपनी खास शैली है। निबन्ध ओज-भरे होते हैं। सुसम्पन्न दरभंगा-राज-लाइब्रेरी के पुस्तकालयाध्यक्ष हैं।

श्रीजयनारायण मल्लिक, एम्. ए. (डबल), काव्यतीर्थ—मैथिली-कविता, छायावाद के ढंग की, बड़ी रोचक होती है। गल्प भी सुन्दर लिखते हैं। मैथिली के सर्वमान्य लेखकों में हैं।

श्रीवेदानन्द झा—कोइलख (दरभंगा) निवासी। काशी में रहते हैं। मैथिली - कविता बड़ी हृदय-ग्राहिणी होती है। 'काव्य-कौमुदी' नामक मैथिली का अलङ्कारशास्त्र 'मिथिला मिहिर' में क्रमशः प्रकाशित हुआ है। कई बँगला-उपन्यासों का मैथिली में अनुवाद किया है।

श्रीशशिनाथ चौधरी बी० ए०, बी० एल०—दरभंगा - (मिश्रटोला) निवासी हैं। मैथिली के निबन्धकार, कहानी-लेखक और आलोचक हैं। मैथिली में मिथिला का इतिहास 'मिथिला दर्पण' प्रकाशित है। सौन्दर्यशास्त्र, सौन्दर्य विज्ञान, बुद्धदेव आदि हिन्दी-पुस्तकें लिखी हैं।

श्रीसुरेन्द्र झा 'सुमन' साहित्याचार्य—बल्लीपुर - (दरभंगा) निवासी हैं। मैथिली कविताएँ और कहानियाँ खूब लिखते हैं। सम्प्रति 'मिथिला मिहिर' के सम्पादक हैं। अपनी कलापूर्ण सम्पादन-शैली से 'मिहिर' की काया पलट दी है। 'मिहिर' को प्रगतिशील साप्ताहिक बनाने का श्रेय आप ही को है।

श्रीछेदी झा—बनगाँव-(भागलपुर) निवासी। मैथिली-व्याकरण प्रकाशित है। 'वैदेही-वनवास' का मैथिली-अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है। 'मैथिली में गीतगोविन्द का अनुवाद' अप्रकाशित है। कविता और निबन्ध सुन्दर लिखते हैं।

श्रीभुवनेश्वर झा—नल्लीपुर-(दरभगा) निवासी। मैथिली के प्राचीन सेवकों मे हैं। आपके कवित्वपूर्ण गीत लोक-प्रचलित हैं। मैथिली योगवाशिष्ठ-सार, स्वर्णपरीक्षा (नाटक), कृष्णचरितावली (पद्य) प्रसिद्ध मैथिलीग्रथ हैं।

श्रीबलदेव मिश्र, ज्योतिषाचार्य—ननगॉव - (भागलपुर) - निवासी। मैथिली के उच्चकोटि के लेखक और आलोचक हैं। समालोचनात्मक मैथिली-ग्रथ 'रामायण शिक्षा' प्रकाशित है।

श्रीदुःखमोचन झा—(दे० पृ० ३६, प० १०)। आपका मैथिली-प्रेम अनन्य है। आलोचना, यात्रा, गल्प इत्यादि बड़ी मॅजी शैली मे लिखते हैं। 'उदयनाचार्य की जीवनी' मैथिली मे लिखी है।

श्रीयदुनाथ झा 'यदुवर'—मुरहो-(भागलपुर) निवासी। मैथिली के अच्छे कवि हैं।

श्रीधनुषधारी दास 'मैथिली वाचस्पति'—रूदुआ-(दरभगा) निवासी। कर्ण कायस्थ। 'मिथिला मित्र' (भागलपुर) के सम्पादक रह चुके हैं। 'विहारी-सतसई' का मैथिली-पद्यानुवाद 'मैथिली मे विहारी' नाम से प्रकाशित है। मैथिली के सुपरिचित सेवकों मे हैं। हिन्दी मे 'प्रजा' नामक साप्ताहिक दरभगा से निकाला था।

श्रीभीमेश्वरसिंह तथा श्रीजलेश्वरसिंह—दोनों पूर्वोक्त श्री 'भुवन' जी के अनुज हैं। मैथिली मे गल्पे बहुत अच्छी लिखते हैं।

श्रीनन्दकिशोरलाल दास—छतनेश्वर-(दरभगा) निवासी। मैथिली मे अनेक सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं। 'मिथिला का इतिहास' अभी अपूर्ण है।

श्रीउपेन्द्र ठाकुर 'मोहन'—चतरिया - (दरभगा) - निवासी। नवीन मैथिली - कवियों मे बडे लोकप्रिय हैं। कविताओं मे आधुनिकता का गहरा रग होता है। वेदनामयी कविताएँ बडी मधुर होती हैं। मैथिली के विशुद्ध पत्र-लेखक हैं।

श्रीदामोदरलाल दास—नरहेता - (दरभगा) - निवासी। 'शकुन्तला' (खडकाव्य) मनोरजक है। हास्य-रस की कविताएँ बड़ी अच्छी होती हैं। हास्यरस की महिलोपयोगी पुस्तक 'प्रेम-पत्रावली' बहुत अच्छी लिखी है। और भी कई छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित हैं।

श्रीश्यामानन्दन झा—लालगज - (दरभगा) - निवासी। सस्कृत के

सुकवि हैं। मैथिली में बहुत-सी अच्छी-अच्छी कविताएँ लिखी हैं। मैथिली में अलकारशास्त्र-सम्बन्धी सुन्दर ग्रथ लिखा है, जिसका कुछ अश 'भारती' में प्रकाशित हो चुका है।

श्रीनरेन्द्रनाथ दास विद्यालंकार—सखवाड़-(दरभगा)-निवासी। मैथिली के सुपरिचित लेखकों में हैं। 'विद्यापति-काव्यालोक' अत्युत्तम समालोचनात्मक ग्रथ हिन्दी में लिखा है। गोविन्ददास पर वैसी ही सूक्ष्मदर्शितापूर्ण समालोचना अभी अप्रकाशित ही है। प्रतिभाशाली समालोचक हैं। मैथिली की प्राचीन कविताओं के अच्छे मर्मज्ञ हैं।

श्रीकाञ्चीनाथ झा 'किरण'—धर्मपुर-(दरभगा) निवासी। मैथिली के सुन्दर गल्प-लेखक हैं। 'चन्द्रग्रहण' पुस्तिका प्रकाशित है। कविता और निबन्ध भी लिखते हैं। 'मिथिला-मोद' (काशी) के अनामक सम्पादक हैं।

श्रीगौरीशङ्कर झा—उजान-(दरभगा) निवासी। 'भर्तृहरि-निर्वेद' (खडकाव्य) प्रकाशित है। 'मेघनादवध' (बॅगला) का अशानुवाद भी प्रकाशित है।

श्रीवैद्यनाथ मिश्र 'वैदेह'—तरौनी-(दरभगा) निवासी। बौद्धधर्म की दीक्षा लेने के कारण 'नागार्जुन' नाम से प्रसिद्ध हैं। अब 'यात्री' नाम से मैथिली कविता लिखते हैं, जो बडी हृदय-ग्राहिणी होती है।

श्रीकपिलेश्वर मिश्र वैयाकरणशिरोमणि—(दे० पृ० ४०, प० ६)।

श्रीहीरालाल झा 'हेम'—भ्रमरपुर (भागलपुर) वासी। 'मिथिला भाषा-व्याकरण' लिखा है।

श्री श्रीनन्तलाल दास, बी० एस्० सी०—बेलारही (दरभगा)-निवासी कायस्थ। विज्ञान, ज्योतिष, गणित इत्यादि के अच्छे ज्ञाता हैं। रचनाएँ मैथिली मे प्रकाशित होती थीं। कुछ अच्छे उपन्यास भी लिखे हैं जो अभी छपे नहीं। पटना कॉलिजियट स्कूल में विज्ञान के अध्यापक हैं। सस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं।

श्रीईशनाथ झा—नवटोल-(दरभगा) वासी। मैथिली में अनूदित 'शकुन्तला' (नाटक) प्रकाशित है। दूसरा नाटक 'चीनी क लड्डू' भी प्रकाशित है। रचना मनोरजक होती है।

श्रीतन्त्रनाथ झा, एम्० ए०—उजान-(दरभगा)-वासी। बँगला के

प्रसिद्ध कवि स्व० माइकेल मधुसूदन दत्त की शैली के चतुर्दशपदी एवं अमिताक्षर छन्द को मैथिली में प्रवर्त्तित किया है। 'कीचकवध' काव्य उसी ढंग का है।

श्रीदीनानाथ झा, एम्० ए०—नवटोल (दरभंगा) - वासी। 'वेकफिल्ड के पादरी' (मैथिली-उपन्यास) अनुवादित उपन्यासों में श्रेष्ठ है।

श्रीदुर्गाधर झा—उजान (दरभंगा)-वासी। सांख्य शास्त्र-सम्बन्धी सुन्दर निबन्ध-ग्रंथ प्रकाशित है।

श्रीजीवनाथ झा—इसहपुर-(दरभंगा) निवासी पंडित श्रीदीनबन्धु झा के पुत्र हैं। मैथिली के सुयोग्य गद्य-पद्य-लेखक हैं। विद्यापति पर एक खंडकाव्य और शंकरमिश्र पर एकाङ्की नाटक लिखा है।

श्रीकाशीकान्त मिश्र 'मधुप'—कोर्थु-(दरभंगा)-निवासी। 'मैथिली-रस-मंजरी' साप्ताहिक 'मिथिला मिहिर' में प्रकाशित हुई है। 'सतीसुकन्या' (खंडकाव्य)। अनेक स्फुट कविताएँ।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक मैथिली-साहित्य-सेवी हैं, जिनके परिचय स्थानाभाव से यहाँ नहीं दिये जा सके। कुछ के नाम और निवास-स्थान आगे दिये जाते हैं—श्री ऋद्धिनाथ झा—उजान (दरभंगा)। श्री गणेश झा—लालगंज (दरभंगा)। श्री आनन्द झा—सिंहवाड (दरभंगा)। श्री जगदीश मिश्र—सहवाजपुर (मुजफ्फरपुर)। श्री यदुनन्दन शर्मा—शुभंकरपुर (दरभंगा)। श्री रामनिरूपण मिश्र—बल्लीपुर (दरभंगा)। श्री काशीनाथ ठाकुर—भच्छी (दरभंगा)। श्री काशीनाथ झा—धर्मपुर (दरभंगा)। श्री महावीर झा 'वीर'—उजान(दरभंगा)। श्री जीवनाथ झा—हाटी (दरभंगा)। श्री यदुनन्दन दास 'यदुनाथ'—गंगापुर (दरभंगा)। श्री राजदेव झा—भगरवाइन (दरभंगा)।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट विदित होगा कि भारतवर्ष की प्रान्तीय भाषाओं में मैथिली-भाषा का साहित्य कितना उन्नत और सम्पन्न है। उसका प्राचीन साहित्य जैसा समृद्ध है, वैसा ही अर्वाचीन साहित्य भी प्रगतिशील है।

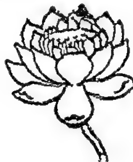

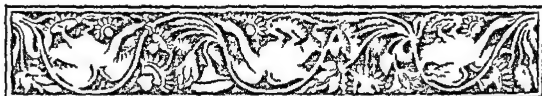

'सारन' जिले में प्राचीन बौद्धकाल के स्थल

श्रीरघुवीरनारायण, बी० ए०, छपरा-निवासी, प्राइवेट-सेक्रेटरी, बनैली राज्य

उत्तर-बिहार मे, तिरहुत कमिश्नरी मे, सारन (छपरा) जिला है।

सन् १६२४ ई० मे मैं लम्बी छुट्टी लेकर छपरा आया। एक दिन अपने घर की प्राचीन पाडुलिपियों को, जिन्हें मेरे पूर्वजों ने सुरक्षित रक्खा था, देखने लगा। अचानक फारसी की एक हस्तलिखित पुस्तक मुझे मिली, जिसे मुशी दिगम्बरलाल ने—जो मेरे दादा के बडे भाई थे—अपने हाथ से उतारा था। ईस्ट-इडिया-कम्पनी के शासन-काल मे मुशी दिगम्बरलाल परगना कसमर के कानूनगो 'तरफ-सारग-विहार' थे। एक दूसरे कानूनगो बाबू लक्ष्मणसिह और भी इस परगने मे थे, जो 'तरफ दान-योगिराज' कहलाते थे। दिगम्बरलाल का इलाका सोनपुर से डुमरी या शीतलपुर तक था। और, शीतलपुर से सठा तक का इलाका बाबू लक्ष्मण-सिह का था।

इन लोगों की पदवी मे जो 'सारग-विहार' और 'दान-योगिराज' शब्द आये हैं, उनसे ज्ञात होता है कि ये दोनो स्थल बौद्धकाल के दो प्राचीन ससारक थे, जिनके नाम मे मुसलमान अमलदारों ने या ईस्ट-इडिया-कम्पनीवालों ने भी कोई परिवर्त्तन नहीं किया था।

बस, मैं इसकी खोज मे लग गया। कई वर्षों के बाद मैं यह पता लगा सका कि सारग-विहार का डीह *, मही नदी के किनारे, डुमरी गाँव मे, जो नयागाँव के निकट है, मौजूद है। वहाँ के लोग इस खँड़हर को 'सारग-डीह' या 'सारन-डीह' के नाम से पुकारते हैं। उस डीह को एक सज्जन खुदवा रहे थे। उसमे से भगवान बुद्ध की सगमरमर की एक मूर्त्ति निकली, बहुत ही सुन्दर। हजारों वर्ष निकल गये, वह मूर्त्ति ज्यों-की-त्यों है। उस गाँव के लोग उस मूर्त्ति को भ्रमवश भगवान् विष्णु मानकर एक मदिर मे प्रतिष्ठित कर पूजते हैं।

* डीह = ढूह = ऊँचा टीला।

उस मूर्ति में भगवान् बुद्ध की योग-मुद्रा है। मूर्ति के प्रस्तर-आसन पर पाली-भाषा में कुछ लिखा हुआ है, जो अभी तक पढ़ा नहीं गया है, पर जिसके पढ़-वाने की कोशिश मैं कर रहा हूँ। इस अनुसन्धान के सम्बन्ध में पटना के अँगरेजी दैनिक 'सर्चलाइट' में एक लेख मैं लिख चुका हूँ।

अब रहा 'दान-योगिराज' के स्मारक-चिह्न का शोध करना। चीनी यात्री हुएन-सांग जब गाजीपुर से शाहाबाद होता हुआ वैशाली की ओर चला, तब गंगा के उत्तरी किनारे पर उसने नारायण-देव का मंदिर देखा था। यह मंदिर जरूर सारन जिले में था। जेनरल कनिंघम ने अन्दाज किया है कि हुएन-सांग अवश्य रिविलगंज के नजदीक गंगा के पार आया होगा।

रिविलगंज में गौतम ऋषि के प्राचीन आश्रम का होना माना जाता है। गौतम का ही अपभ्रंश 'गोदना' कहा जाता है। उस घाट को 'गोदना-सेमरिया-घाट' भी कहते हैं। इसी चिह्न के आधार पर कनिंघम का अन्दाज था कि हुएन-सांग ने यहीं वैशाली जाने के लिये गंगा-पार किया होगा। कनिंघम का शायद यह खयाल था कि गौतम के नाम पर ही लोगों ने इसे गौतम ऋषि का आश्रम कहना शुरू कर दिया होगा। मगर यह कनिंघम की गलती है। यही कारण है कि वे नारायण देव के मंदिर का पता न लगा सके।

मिस्टर कारलाइल ने भी कनिंघम की खोज को आधार मानकर काम करना आरम्भ किया, इसलिये उनका परिश्रम भी निष्फल हुआ।

हुएन-सांग के लिखने के मुताबिक तीन स्मारक-चिह्न थे। एक था नारायण देव का मन्दिर। उसके करीब तीन कोस पूरब एक स्तूप था, जहाँ भगवान् बुद्ध ने नर मांसाहारी दुष्टों को अपनी शरण में लेकर बौद्धधर्म में दीक्षित किया था। इसको कनिंघम 'सारन-स्तूप' कहते थे। परन्तु बौद्धग्रन्थों से ज्ञात होता है कि 'सारन दद्-चैत्य' वैशाली में था या वैशाली के आसपास था, जिसका जिक्र भगवान् बुद्ध ने स्वयं किया है। मेरा अन्दाज है कि यही चैत्य या विहार मुसलमानी अमलदारी में 'दान-योगिराज' कहकर पुकारा गया, जिसका जिक्र फारसी की उपर्युक्त पाडुलिपि में है।

इस 'दान-योगिराज' का पता लगाने के लिये नारायणदेव के मन्दिर के प्राचीन स्थान की खोज निकालना आवश्यक है। जिस समय मैं इस खोज में लगा हुआ था उसी समय कोठिया नरॉव (सारन) के निवासी मित्रवर बाबू मथुराप्रसाद सिंह (पोस्टमास्टर, बनैली, पूर्णिया) ने मुझे बतलाया कि उनकी बस्ती

में, जो गंगा-तट पर है, एक बड़ा पुराना डीह है, जिसपर एक प्राचीन देवता 'नारायण ठाकुर' नाम से पूजे जाते हैं। विदित होता है कि पहले यहाँ नारायण-देव का मन्दिर था, जिसकी सुन्दर बनावट के सम्बन्ध में हुयग-सांग ने वर्णन किया है, लेकिन जो अब गिरकर डीह और खँडहर के रूप में वर्त्तमान है। उनसे यह भी मालूम हुआ कि वहाँ की एक विधवा ने उस डीह पर नारायण ठाकुर का एक मन्दिर बनवा दिया है।

उस डीह से उत्तर एक दूसरा बडा डीह है। कोठिया-नराँव के थोडी दूर पूरब एक बस्ती 'बोद्धा-छपरा' है। यह बस्ती गंगा के कटाव में पड़ गई थी।

कोठिया-नरॉव में ही एक पुराना टूटा पुल भी है, जिसे आज तक 'बोद्धा का पुल' कहते हैं। कोठिआ-नरॉव के घाट का नाम 'चपर-घाट' (चपल या चपला) है। इससे सिद्ध होता है कि बुद्धदेव के समय का प्रसिद्ध चपला-चैत्य, जिसके बारे में 'डाक्टर हे' (Dr. Hoey) ने अन्दाज किया था कि छपरा शहर के तेलपा मुहल्ले के आसपास था, यही है। वह स्थान कोठिया-नरॉव और बोद्धा-छपरा के निकट ही कहीं था, क्योंकि छपरा शहर 'चिरान छपरा' कहलाता है। यह विदित है कि एक पुरानी असभ्य जाति, जो 'चेरो' वा 'चेरन' के नाम से विख्यात थी, सारन के इस हिस्से पर किसी काल में शासन करती थी और चेरों की राजधानी थी 'चिरान'।

डाक्टर हे (Dr Hoey) की धारणा थी कि बौद्धकाल का 'चपला चैत्य' छपरा शहर के पूरबी हिस्से में था। वे पता नहीं लगा सके थे कि 'बोद्धा-छपरा', जो शायद बौद्धकाल में कोठिया-नरॉव तक कहा जाता था, गंगा के किनारे सठा के समीप वर्त्तमान था, और चपला-चैत्य का स्थल कहीं कोठिया-नराँव या बोद्धा-छपरा के निकट ही पाया जायगा। बौद्धकाल का 'चपला' बोद्धा-छपरा से ज्ञात होता है। वहाँ के घाट का नाम 'चपर-घाट' भी 'चपला-चैत्य' के नाम से ही सम्बद्ध है। मालूम होता है, हुयग-सांग इसी प्राचीन घाट पर गंगा-पार कर उतरा था और अपने सामने नारायणदेव के सुरम्य मन्दिर को देखा था, जिसका स्थल अभी तक 'नारायण ठाकुर का थान' नाम से विख्यात है, और जिसको कारलाइल तथा कनिंघम रिविलगंज की ओर खोज रहे थे, पर पा न सके।

नारायणदेव के मन्दिर का पता लगाने के पहले यह याद रखना होगा कि नारायणदेव के लगभग एक मील उत्तर एक विशाल डीह है। वह यदि 'चपला-चैत्य' का डीह है तो अनेकानेक ग्रन्थों के अनुसार वैशाली नगर भी इससे बहुत दूर

नहीं था। चूँकि बौद्धग्रन्थों से ज्ञात होता है कि वैशाली की सीमा पार करने के बाद चपला-चैत्य कुछ ही दूर पर था, इसलिये यह सिद्ध होता है कि इस जगह से पूरब और उत्तर दो-चार कोस पर ही वैशाली नगर था।

आगे चलकर यह सिद्ध किया जायगा कि वैशाली नगर 'बनिया-बसाढ़' (मुजफ्फरपुर) से लेकर 'हरदिया-चोर' *(सारन) में नयागाँव और डुमरी के उत्तर तक फैला हुआ था, जिसके अबतक बहुत-से अवशिष्ट चिह्न हैं।

अब नारायणदेव के डीह से पूरब आगे चलकर उस स्थान का पता लगाना है जहाँ पहले एक स्तूप और एक अशोक-स्तंभ खड़ा था—यह बताते हुए कि इसी स्थल पर भगवान् बुद्ध ने कुछ नर-राक्षसों को अपनी शरण में ले लिया था। यह अन्दाज किया जाता है कि फारसी-पाण्डुलिपि में 'दान-योगिराज' इसी स्थान को कहा है, क्योंकि योगिराज बुद्ध ने इसी स्थल पर उन नरमांसाहारियों को ब्रह्मज्ञान का दान किया था। कनिंघम इसको 'सारन-स्तूप' कहते थे, क्योंकि बुद्ध ने यहाँ नर-राक्षसों को 'शरण' दिया था। पहले कहा भी जा चुका है कि बुद्धदेव भी स्वयं एक 'सारन-दद्-चैत्य' का जिक्र किये हुए हैं। शायद इसी चैत्य के खराब होने के पश्चात् उस स्थान पर उक्त स्तूप और स्तम्भ कायम किये गये थे। यह स्तूप नारायणदेव के मन्दिर से लगभग तीन कोस पूरब था। इससे अनुमान होता है कि दिघवारा या शीतलपुर के आसपास इसका स्थल पड़ेगा। यह बात मुझे मालूम भी हुई है कि शीतलपुर और बेला गाँवों के बीच की किसी बस्ती में गड़ा हुआ एक प्राचीन स्तंभ है। स्तंभ के सन्निकट ही एक प्राचीन डीह भी है।

अब, इसके बाद, 'द्रोण' या 'कुंभ' स्तूप का पता लगाना होगा। कुंभ-स्तूप सारन-स्तूप से करीब दस कोस दक्षिण-पूर्व कोने पर था। शायद यह स्तूप पटना जिले की ओर, दानापुर के पास कहीं देहात में, पाया जायगा, क्योंकि हुन्-यन-साँग ने लिखा है कि इस स्तूप को देखने के बाद गंगा पार कर वह वैशाली आया था।

वैशाली के स्थल की खोज करने पर बौद्धग्रन्थों में यह लिखा मिलता है कि 'चपला-चैत्य' वैशाली की सीमा से कुछ ही दूरी पर था। और, यह भी लिखा पाया जाता है कि 'पावा'—जहाँ एक सोनार ने भगवान बुद्ध को भोजन का निमंत्रण दिया था और जहाँ भोजन के बाद ही बुद्ध को वह भयानक बीमारी शुरू हुई जिसने इन्हें शरीर-परिवर्त्तन के लिये बाध्य किया—कोसल देश में था और वैशाली नगर पावा से दूर नहीं था।

* चौर = पानी से भरा हुआ विस्तृत मैदान।

यह तो विदित ही है कि 'सारन' जिला, प्राचीन काल में, कोसल देश की अति पूर्वीय सीमा था। अतएव जब 'चपला-चैत्य' का निश्चित चिह्न सारन जिले मे पाया जाता है तब तो 'पावा' का स्थान भी निश्चित रूप से इसी जिले मे पाया जायगा।

मैं जब महापडित राहुल सांकृत्यायन से पटना मे मिला था, मैने उनसे कहा था कि जो चिह्न मुझे सारन जिले में मिले हैं उनसे मुझे ज्ञात होता है कि वैशाली नगर मुजफ्फरपुर जिले के बसाढ़ गॉव से सारन जिले के हरदिया-चॅार मे 'चिलावॅं' और 'ककरा' गाँवों से कुछ दक्षिण तक अर्थात् नयागाँव और डुमरी के उत्तर तक फैला हुआ था, तब उन्होंने तुरत कहा कि उस युग मे गडक नदी का प्रधान स्रोत वर्त्तमान काल के समान नहीं था—इस समय जो मही नदी की धारा है, जिसे 'गडकी' भी कहते हैं, पुराने समय मे यही गडक नदी की धारा थी।

मेरा अनुमान सच निकला, क्योंकि वैशाली के असख्य चिह्न बसाढ के दक्षिण सारन जिले मे पाये जाते हैं। ह्वेनसांग ने भी दो वैशालियों का जिक्र किया है। ज्ञात होता है कि एक नन्दिवर्द्धन के समय की वैशाली है जो सारन जिले में है, और दूसरी प्राचीन काल की वैशाली है जो मुजफ्फरपुर जिले मे थी।

एक दिन मैं चिलावॅं और ककरा की ओर कुछ मित्रों के साथ टहलने गया था। उस समय एक विशेष स्थान को दिखलाते हुए एक ने कहा कि यह स्थान 'भिमल' या 'विमल'-चौरा कहलाता है—कुछ दिन पहले तक यहॉ एक कूप और ध्वस्त मकानों के अवशिष्ट चिह्न वर्त्तमान थे। यह सुनकर ह्वेनसाँग का वैशाली-वर्णन याद आ गया। उसने लिखा है कि एक सघाराम था, जहाँ कई बौद्ध चेले पढा करते थे और उसी के आसपास थोडी ही दूर पर एक स्तूप था जहॉ तथागत ने विमल-कीर्त्ति-सूत्र पढ़कर लोगों को समझाया था।

यह टूटा हुआ सघाराम आज तक चिलावॅं-मठ के नाम से मशहूर है, जिसपर अब 'अतीथ' जाति के लोग बसे हुए हैं। इसका असल नाम 'चेलावन' है जो गवर्नमेंट के सेटलमेंट-रेकर्ड में भी दर्ज है। मालूम होता है कि बौद्ध भिक्षु यहॉ पढ़ा सकते थे और जब ह्वेनसाँग आया था तब उनकी सख्या बहुत थोड़ी थी। इसी के निकट वह स्तूप था जो आज तक विमल-चौरा कहलाता है। इस स्तूप से पूरब एक स्तूप और भी था, जहॉ 'सारि-पुत्त' को पूर्ण ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति

हुई थी। वह स्थान भी आज तक कायम है। हरदिया-चौर में जैसे और चिह्न मिलते हैं वैसे ही इसके चिह्न भी हैं। आज भी उसी स्थान को शिवपुर-मठ के नाम से पुकारते हैं।

सारन जिले में बहुत-से प्राचीन मठ हैं जहाँ अब अतीथ लोग रहते हैं। मालूम होता है कि ये सब प्राचीन बौद्ध मठ थे, जो समय के प्रवाह में टूट गये और अब उनके ध्वंसावशेष के ऊपर अतीथों की बस्ती बसी हुई है। आज तक ये बस्तियाँ बहुत ऊँचे स्थान पर हैं, जहाँ बाढ़ के दिनों में भी पानी नहीं पहुँच सकता।

हुएन-सॉंग के मुताबिक राजा के महल और उसके घेरा से यह 'चेला-बन-संघाराम' (चिलावे-मठ) केवल एक मील के करीब उत्तर-पश्चिम था। इस कारण, जब चेलाबन (चिलावे) और विमल-कीर्त्ति-स्तूप वाले स्तूप की जगह आज तक विमल-चौरा के नाम से प्रसिद्ध है तब महल के स्थान का पता लगा लेना केवल नाप-जोख का काम है।

चेलाबन संघाराम से एक मील से भी कुछ कम ही दूर दूसरा स्तूप था, जहाँ विमलकीर्त्ति का मकान था। यह भी आज तक कायम है। इसका पुराना खँड़हर वर्त्तमान है। कोई इसे 'मठ-शंकर' कहते हैं और कुछ कहते हैं कि मुसलमानी अमलदारी में कोई अमीर-उमरा यहाँ रहते थे। मालूम होता है कि जगद्गुरु शंकराचार्य ने इस स्थान पर बौद्धधर्म को पराजित कर हिन्दू-धर्म की पताका उड़ाने के लिये एक संस्था कायम कर दी थी। इसी कारण पुराने आदमी इसे आज तक मठ-शंकर कहते हैं।

इससे थोड़ी ही दूर 'हुएन-सॉंग' के कथनानुसार एक विहार या चैत्य था, जो बिलकुल पत्थर या कंकड़ का बना हुआ था। यह स्थल आज तक कंकड़ा-मठ के नाम से मशहूर है। लोग कहते हैं, यह बिलकुल कंकड़ का बना हुआ था। इसी मठ से, हुएन सॉंग के कथनानुसार, विमल-कीर्त्ति ने, जो वैशाली का रहनेवाला था, अपनी बीमारी की अवस्था में ही, बौद्धधर्म पर भाषण किया था। इसी कंकड़ा-मठ के निकट, हुएन-सॉंग के कथनानुसार, विमल-कीर्त्ति के पुत्र 'रत्नाकर' का मकान था और उसके समीप ही एक दूसरा स्तूप था, जो 'अम्बापाली' के मकान का स्थान था। इसी मकान में बुद्ध की काकी और शाक्यवंश की अन्य भिक्षुणियों ने निर्वाण प्राप्त किया था।

रत्नाकर के मकान का स्थान अब एक खेत में पड़ता है जिसे देहाती लोग

'बघवा-चौरा' कहते हैं। वह ककड़ा-मठ के ठीक दक्षिण है। और, बघवा-चौरा के पास ही पश्चिम की ओर एक खँडहर है, जिसके देखने से मालूम होता है कि चार-पाँच सौ वर्ष पहले यहाँ कोई सुरम्य मकान कायम था। यही अम्बापाली का मकान था।

चीनी यात्री फा-ही-यान ने अपने वर्णन में लिखा है कि अम्बापाली वाला मकान या विहार, जो वैशाली शहर में था, उसके समय में भी, वैसी ही खूबसूरती के साथ खड़ा था जैसे पहले रहा होगा। इस खँडहर पर अब शनिग्रह की पूजा होती है। यह विदित है कि अम्बापाली मगध के राजा बिम्बिसार की दासता (पालिता) थी। इससे ज्ञात होता है कि राजा बिम्बिसार के, अपने पुत्र अजातशत्रु के हाथों, मारे जाने के बाद वह वैशाली भाग आई और बौद्धधर्म में दीक्षित हुई।

राजा बिम्बिसार की सैनिक पदवी 'सेनिया' थी। सभव है कि वैशाली में बस जाने के बाद अम्बापाली ने अपने मृत प्रेमी बिम्बिसार की पूजा प्रारम्भ कर दी हो। हजारों वर्ष बीत जाने के बाद शायद उसी 'सेनिया' का अपभ्रंश 'शनि' हो गया।

बिलावें-मठ और ककड़ा-मठ के बीच एक झील है जिसे लोग आज 'काठखार' कहते हैं। इस झील का दक्षिणी भाग 'निझारी'-नाला कहा जाता है, जो वैशाली का अपभ्रंश मालूम होता है। और, ककरा से पूरब बढ़ने पर इसी काठखार का नाम 'महुरा' पड जाता है, जो हरदिया-चौर होकर मही नदी में सोनपुर के निकट गिरता है। इससे साफ ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में काठखार और वैशाली-झील, खेती की सुविधा के लिये, नहर के रूप में काटकर सोनपुर तक बढा दी गई थी। इसी वजह से इसका नाम 'मौर्या नाला' पड़ा जिसका अपभ्रंश 'महुरा नाला' है। प्राचीन इतिहास देखने से भी विदित होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने किसानों की सुविधा के लिये बहुत-से नाले और नहरें बनवाई थीं। इसी काठखार-झील के किनारे, नाप-जोख करने से, पुराने वैशाली नगर के राजमहल का पता लग सकता है। कारण, यह राजमहल और राजग्राम, फा-ही-यान और हुन-यग-साँग के कथनानुसार, उसी जमाने में बिल्कुल टूट-फूट गया था, और इस समय देखने से बिल्कुल सादा खेत मालूम होता है।

बौद्धग्रन्थों में लिखा हुआ है कि वैशाली के उत्तर एक घना जगल था,

जिसके दक्षिणी छोर पर एक 'दह' (हद) था और उसी के किनारे कोटागार-शाला थी, जिसमे भगवान् बुद्ध वैशाली जाने पर प्राय ठहरा करते थे। मालूम होता है, उसी कोटागार के नजदीक से और उसी 'हद' से यह काठरार-झील खोदी गई थी। स्पष्ट विदित होता है कि 'कोटागार' से 'काठरार' का कोई सम्बन्ध अवश्य है।

उपर्युक्त चेला-वन-सघाराम से एक मील के भीतर ही, उत्तर-दिशा मे, एक स्तूप था जहाँ भगवान् बुद्ध कुशीनगर जाते समय ठहर गये थे। यह स्थान, चिलावें-मठ से थोड़ी दूर उत्तर, 'हरदा-ब्रह्मचौग' नाम से प्रसिद्ध है। इससे थोड़ी ही दूर उत्तर-पश्चिम एक स्तूप था, जहाँ से भगवान् बुद्ध ने वैशाली नगर के अन्तिम दर्शन किये थे। उससे भी थोड़ी दूर दक्षिण, वैशाली नगर से बाहर, एक विहार था, जिसके सामने एक स्तूप था। यही अम्बापाली के उस आम्रवन का चिह्नस्थान है जिसे उसने भगवान् बुद्ध को दान में दे दिया था। इस आम्रवन के भी एक ओर एक स्तूप था, जहाँ भगवान् बुद्ध ने अपने चचेरा भाई आनन्द से अपनी आनेवाली मृत्यु के बारे मे कहा था। बौद्धग्रन्थों से मालूम होता है कि इस स्थान का नाम 'बेलूग्गामक' था। आजतक बेला गाँव उसी स्थान पर स्थित है।

बेला से थोड़ी दूर पर एक स्तूप था जहाँ हजार-पुत्रो ने अपनी माँ को पहचाना और अस्त्र-शस्त्र डाल दिये। यह आज तक 'कपरफोड़ा' के नाम से प्रसिद्ध है। 'कपर' को पहले 'चपर' कहते होंगे और चपर 'चापालय' का टूटा रूप है, जहाँ चाप डाल दिया गया था, और 'फोड़ा' निश्चय ही 'पुर' वा 'पुरा' का अपभ्रंश है।

उक्त स्थान से थोड़ी ही दूर पर एक स्तूप था, जहाँ भगवान् बुद्ध व्यायाम के खयाल से टहलते थे और उनके चरण का चिह्न हुन्-यन-सॉग के समय तक वर्त्तमान था। ज्ञात होता है कि यह चिह्न 'देवती' गाँव मे था, जहाँ आजतक एक पत्थर 'सुदर्शन-चक्र' के नाम से पूजा जाता है। हुन्-यन-सॉग के जीवन-चरित से, जिसे 'हवाई ली' (Hwui Lie) ने लिखा है, मालूम होता है कि पटना मे भी एक ऐसा ही पत्थर था जिसपर भगवान् बुद्ध के चरण का निशान था। उस पत्थर मे भी, हवाई-ली लिखता है, कमल और चक्र बने हुए थे। आश्चर्य नहीं कि देवती वाले पत्थर पर भी चक्र का चिह्न होने के कारण ही लोगों ने उसे सुदर्शन-चक्र समझकर पूजना शुरू कर दिया हो।

देवती गाँव में एक बहुत बड़ा पुराना तालाब है। और भी अनेकानेक पुराने चिह्न हैं जिनसे यह साफ जाहिर होता है कि यह एक प्राचीन बौद्धस्थान है। यह भी हरदिया-चौर ही में पड़ता है। इस चरण-चिह्नवाले पत्थर से भी उपर्युक्त सभी स्थानों की दूरी उतनी ही पड़ती है जितनी हु-यग-सॉग ने लिखी है।

देवती से कुछ दूर पूरब एक पुराना खँडहर था जहाँ बुद्धदेव के धर्म-प्रचार करने के लिये एक विशाल उपदेश-मंदिर (Turretted preaching hall) था, जिसमें भगवान् ने स्वयं अपने मुख से 'सामन्त-मुख-धारिणी' और दूसरे सूत्रों का उच्चारण किया था। मेरे विचार से यह स्थान, कोटागारशाला और फा-ही-यान का 'डबल गैलरीवाला विहार' (Double-galleried Vihar)—सब एक ही हैं। वह स्थान आजतक 'बॉड़ा-डीह' के नाम से, चिलावें और ककरा के उत्तर, हरदिया चौर में मशहूर है। हु-यग-सॉग ने लिखा है कि इस खँडहर से एक उज्ज्वल-ज्योति-शिखा निकला करती थी। एक हजार वर्ष से ज्यादा समय निकल गया, पर आज भी लोग कहते हैं कि 'बाँड़ा-डीह' से जब-तब रोशनी देख पड़ती है—खासकर होली के समय संवत् जलाने की रात में।

बॉड़ा-डीह के पूरब एक बड़ा चिह्न 'दह' या झील का है। यही 'दह' बौद्ध ग्रन्थों में 'मर्कटा-ह्रद' के नाम से मशहूर है। इसी 'ह्रद' के कारण आजतक शायद उस चौर का नाम हरदिया-चौर है। उस चौर में, चिलावें के उत्तर, जो 'ब्रह्म' पूजे जाते हैं उनको लोग आजतक 'हरदा ब्रह्म' कहते हैं।

बौद्धग्रन्थों से विदित होता है कि 'मर्कटा-ह्रद' बन्दरों का बनाया हुआ नहीं था, बल्कि वैशाली-निवासी 'मर्कट' नामक एक नागरिक ने यह झील खुदवाई थी। मालूम होता है, यह 'ह्रद' वैशाली के महावन से सटा हुआ दक्षिण-भाग में था। चूँकि हु-यग-सॉग ने लिखा है कि इस ह्रद के एक ओर एक बन्दर का आकार बनाया हुआ था, इसलिये विदित होता है कि पुराने समय में 'बाँड़ा-डीह' को लोग शायद 'बनरा-डीह' कहते थे, जिससे बिगड़कर यह आज 'बाँड़ा-डीह' हो गया है।

वैशाली से करीब छ कोस उत्तर-पच्छिम एक बड़ा स्तूप था। इसी स्थान से लिच्छवि और वज्जि सरदारों को भगवान् बुद्ध ने अपना कमंडलु देकर लौटा दिया था। वे भगवान् बुद्ध के कुशीनारा जाते समय उनका पीछा नहीं छोड़ते थे, क्योंकि वे जानते थे कि भगवान् वहाँ शरीर-त्याग करने जा रहे हैं। उनके बहुत हठ करने पर भगवान् बुद्ध ने एक बड़ी नहर, बहुत दूर से, अपनी अलौकिक दैविक शक्ति से, बहवा दी थी। यह नहर अब भी नाले के रूप में बहुत दूर तक

सारन जिले में बहती है। इसका नाम आज भी 'बौधा धार' है। उक्त स्तूप का स्थल शायद अजनी सिस्टी गाँव में था, जहाँ आज भी एक पुराना तालाब और एक बड़ा टीला (डीह) मौजूद है। यह बौधा धार के निकट ही है।

अन्त में फा-ही-यान और हु-यन-सॉग दोनों यात्रियों ने उस विहार का जिक्र किया है, जहाँ राजा नन्दिवर्द्धन के समय में बौद्ध भिक्षुओं के बौद्धसंघ का दूसरा अधिवेशन (Second Buddhist Council of Buddhist Monks) हुआ था। दोनों यात्रियों के इस स्थल के वर्णन में भिन्नता है, किन्तु फा-ही-यान का वर्णन ठीक और साफ है। वह लिखता है कि जिस जगह भगवान् बुद्ध ने आनन्द से अपनी आगामी मृत्यु के बारे में कहा, उससे इस संघसभा (Council) का स्थल केवल एक मील पूरब था। पहले कहा जा चुका है कि 'वेलुगामक' वह स्थान था जहाँ बुद्ध ने अपनी मृत्यु के बारे में पहले-पहल आनन्द से कहा था और यही वेलुगामक आजकल 'बेला' नाम से प्रसिद्ध है। बेला से एक मील पूरब एक बहुत प्राचीन एवं विशाल मठ का एक स्थान है, जिसे लोग आजकल पियरा-मठ कहते हैं। यही द्वितीय बौद्धसंघ की बैठक का स्थल होगा, क्योंकि फा-ही-यान के कथनानुसार 'वेलुगामक' से वह संघ का स्थल एक ही मील के लगभग था। बौद्ध ग्रंथों में लिखा हुआ है कि इसका नाम 'कुसुमपुरी विहार' था। इससे स्पष्ट है कि इसका बाहरी रंग कुसुम के फूल-सा पीला होगा, जिससे यह आजतक पियरा-मठ कहलाता है।

बेला, देवती, चिलावें और ककरा के बीच इतने मठ और डीह हैं कि साफ विदित होता है, ये सब पुराने बौद्धस्थल हैं। हु-यन सॉग ने अपने विवरण (Records) में लिखा है कि वैशाली में बहुत से तालाब, झीलें और अनेकानेक ध्वस्त स्थल थे। ये सब चिह्न सारन जिले के इस हिस्से में आज तक जीर्णशीर्ण अवस्था में अवशिष्ट हैं। इससे यह भी साफ जाहिर है कि महाराज नन्दिवर्द्धन की, जिन्होंने वैशाली में दूसरी राजधानी बनाई थी, हरदिया-चौर के इसी हिस्से में राजधानी थी। इसका कारण स्पष्ट है। यह हिस्सा, पाटलिपुत्र के एकदम सामने, गंगा के उत्तरी तट के पास, है।

आशा है, बिहार के हजारों विद्यार्थी, पुरातत्त्व की खोज में जिनकी दिलचस्पी है, स्वतंत्र रूप से, इस खोज को आगे बढ़ायेंगे।

कविवर हलधरदास

श्री अच्युतानन्द दत्त, सहकारी 'बालक'-सम्पादक

प्राचीन काल से लेकर आज तक हिन्दी-साहित्य के विभिन्न अंगों के निर्माण में विहार का प्रधान हाथ रहा है। यही क्यों, यदि हम महापंडित राहुल सांकृत्यायन के शोधों के अनुसार बौद्ध-सिद्धों के दोहों और गान की भाषा को हिन्दी मानें तो प्राचीन हिन्दी-साहित्य की जन्मभूमि भी बिहार को ही मानना पड़ेगा, क्योंकि उन बौद्ध भिक्षुओं के सदियों बाद हिन्दी के आदिकवि चन्द-बरदाई का आविर्भाव हुआ था। अस्तु।

हिन्दी-साहित्य में एक विचित्रता है। उसमें सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र पहले ही उगे और अस्तमित हुए, परन्तु आकाश (!) का आविर्भाव उन सबसे पीछे हुआ। माननीय मिश्रबन्धुओं का ऐसा ही मत है, परन्तु इन मान्य भ्राताओं की दृष्टि उस नीहारिका-पुंज पर नहीं गई जिसकी आभा से हिन्दी के वे सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र-मंडल प्रभान्वित हुए थे। हमें यह सूचित करते हर्ष होता है कि उस नीहारिका पुंज का जन्मस्थान भी बिहार ही था। वह नीहारिका-पुंज 'विद्यापति' के रूप में प्रकट हुआ था।

यह कहने की धृष्टता हम इसलिये करते हैं कि विद्यापति की भाषा को बंगालियों ने 'ब्रजबूलि' (ब्रजभाषा) कहा है। यद्यपि विद्यापति और गोविन्ददास की भाषा मैथिली है, तथापि वह प्राचीन हिन्दी-साहित्य की भाषा के अतिनिकट है, इसीसे आज कुछ भाषातत्त्वविद् मैथिली को भी हिन्दी का एक उपभेद मानते हैं। इसपर कुछ मैथिल विद्वानों की राय है कि मैथिली हिन्दी का एक उपभेद नहीं, वरन् बँगला, मराठी, उड़िया इत्यादि की भाँति स्वतंत्र भाषा है। हमारा मत है कि इसमें विवाद का स्थल नहीं है और न हिन्दी तथा मैथिली के मूल रूपों के अन्वेषण की ही आवश्यकता है, क्योंकि हिन्दुस्तान भर में बोली जानेवाली सभी भाषाओं

को 'हिन्दी' ही मानना चाहिये । केवल मैथिली ही क्यों—बँगला, मराठी, गुजराती, उड़िया, तामिल, तेलगु इत्यादि सभी भाषाएँ हिन्दी की ही शाखा प्रशाखाएँ मानी जायँ । हिन्दी-भाषा के दायरे को सकुचित करना उसकी महत्ता को घटाना है ।

यद्यपि हमारा यह कथन कुछ अवैज्ञानिक-सा जँचता है और भाषा विज्ञान के मर्मज्ञ इसकी खिल्ली उड़ाये बिना नहीं रह सकते, तथापि है यह कठोर सत्य । भला, जो भाषा बगाल, आसाम, उड़ीसा, सिन्ध, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र इत्यादि की भाषाओं से अपना सम्पर्क रखना नहीं चाहती और उनको नहीं अपनाती उसे भाषा-क्षेत्र मे सम्पूर्ण हिन्दुस्तान का प्रतिनिधित्व करने का—'हिन्दी' या 'हिन्दुस्तानी' कहलाने का—क्या अधिकार है ? यदि वह ऐसा नहीं कर सकती, तो उसके लिये मैथिली, मगही या भोजपुरी को ही अपनाने की चेष्टा करना व्यर्थ है ।

हाँ, अब हम अपने विषय पर आते हैं । सोलहवीं शती से लेकर उन्नीसवीं शती तक का समय मोटामोटी हिन्दी-साहित्य का रीतिकाल कहलाता है । इतने लम्बे अरसे मे रामचरितमानस, सूरसागर, रामचन्द्रिका इत्यादि कुछ ही ग्रथ ऐसे लिखे जा सके जिनसे सर्वसाधारण का उपकार साधित हो सका है । शेष प्राय अन्य सभी राज दरबार को प्रसन्न करने के लिये और रसिक विलासियों के मनो विनोदार्थ रस, छन्द और अलकार पर ही, एक दूसरे की नकल पर, ग्रन्थ लिख-लिखकर पिष्टपेषण कर गये हैं ।

उसी रीति काल मे—जब पीयूषवर्ष बिहारीलाल जयपुर-नरेश जयसिंह को 'नहि पराग नहिं मधुर मधु' का मजा चखा रहे थे, जब दक्षिण मे भूषण 'जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को' यह कहकर शिव अवतार शिवाजी को उत्साहित कर रहे थे और जब महामति मतिराम 'ज्यों-ज्यों नेरे ह्वै' निहारते थे उनको अपनी कविता में 'त्यों-त्यों खरी निकरै-सी निकाई' देख पड़ती थी—बिहार के अधे 'हलधर दास' ने भगवान् कृष्ण की आज्ञा से उनके मित्र (सुदामा) का चरित-गान करना आरभ किया था, जिसको सुन-सुनकर लोगों का विश्वास अटल हो गया कि सुदामा की तरह हमारे दारिद्र्य का भी अत होगा । आश्चर्य तो यह है कि साहित्य की उतनी बड़ी सेवा पर न तो 'सरोज'-कार ही की आँख गई, न 'विनोद'-कार की ही । और तो और, 'कौमुदी' में भी त्रिपाठीजी उसकी झलक न देख सके । इतना ही क्यों, इन 'विनोद,' 'सरोज' इत्यादि अन्वेषणग्रन्थों मे बिहार के शताधिक सत्कवियों और सुलेखकों के नाम छूट गये हैं, और जो थोड़े-बहुत सौभाग्यवश

उल्लिखित हुए हैं उनके भी उटपटाँग परिचय दिये गये हैं। ऐसा करने से हिन्दी साहित्य का सर्वाङ्गपूर्ण इतिहास प्रस्तुत नहीं हो सकता।

यहाँ हम हिन्दी भाषा के चिर उपेक्षित कवि 'हलधर दासजी' के जीवनवृत्त पर कुछ प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे। आपका 'सुदामा-चरित' हिन्दी-साहित्य में अद्वितीय है।

बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के अन्तर्गत बिसौरा परगने में पद्मौल नाम का एक गाँव है। कहते हैं कि इस गाँव को एक वैश्य महाजन पद्मसाहु ने बसाया था। पहले इस गाँव मे पाँच सौ घर श्रीवास्तव्य कायस्थों के थे। उस गाँव के कायस्थ बादशाही जमाने मे बडे-बड़े पदों पर रहकर प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे। कविवर 'हलधर दास' का जन्म उसी गाँव मे एक प्रतिष्ठित और सम्पन्न कायस्थ-परिवार मे हुआ था। सयोग ऐसा हुआ कि बचपन मे ही आपके माँ-बाप मर गये।

बचपन ही से आपको फारसी और सस्कृत की शिक्षा दी गई। आप अपनी दादी से सुनी हुई कहानियों को हिन्दी के छोटे-छोटे सरल पद्यो मे बनाकर लिख लिया करते और उन्हें अपने साथियों को सुनाया करते थे। कुछ वयस्क होने पर पुराण, शास्त्र और व्याकरण भी थोडा-बहुत पढने लगे, परन्तु अभी तक आपमे विद्या का पूरा विकास नहीं हो पाया था।

महाभारत मे लिखा है कि जो अत्यन्त मेधावी होता है उसकी चार में एक गति जरूर होती है। वह या तो अल्पायु होता है या निस्सतान रहकर दु ख भोगता है अथवा दरिद्र होता है वा चिररोगी हो जाता है। इसी अटल नियम का शिकार हमारे बालक हलधर दास को भी हो जाना पडा। आप एक बार शीतला से आक्रान्त हो गये। उसकी जलन से घबराकर आप अवसर पा घर के अन्दर चावल के कोठिले में जा छिपे। लोगों ने आपकी बहुत खोज-ढूँढ की, आप न मिले। घर-भर मे कुहराम मच गया। इतने में आपके घर की एक दासी उसी कोठिले के पास गई। हलधर दास उसीमे पडे कराह रहे थे। दासी डरकर भाग गई, और बाहर आकर सब वृत्तान्त लोगों से कहा। लोगों ने उस कोठिले से बालक हलधर को निकाला। आपकी दोनों आँखें शीतला से मारी गईं। कुछ दिनों मे आप अच्छे तो हुए, परन्तु अधे हो गये। लोग आपको 'सूर हलधर' कहने लगे।

अधा होने पर आप भगवान् श्रीकृष्ण के शरणापन्न हुए। गाँव के बालकों को बुलाकर आप हरिकीर्त्तन कराते और स्वय भी हरिकीर्त्तन के सुन्दर-सुन्दर पद

बनाकर गाते-गवाते थे। धीरे-धीरे आपकी गिनती प्रेमी भक्तों में होने लगी। यों आपका नाम चारों ओर फैल गया।

एक बार उस गाँव के लोग जगन्नाथ-धाम को रवाना हुए। पहले रेलगाड़ी नहीं थी। रास्ते में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। जो जगन्नाथजी के दर्शनों के लिये विदा होता, उसके घरवाले उसके लौटने की कम आशा रखते थे और विदाई के समय तो वह करुण दृश्य उपस्थित हो जाता कि पत्थर भी मोम की तरह पिघल जाय। बहुत-से लोग तो बीच राह से ही लौट आते थे और उनकी बड़ी भद उड़ती थी। कहने का अभिप्राय यह है कि उस समय आज की तरह जगन्नाथजी की यात्रा सहज नहीं थी और जो जगन्नाथजी के दर्शन कर लौट आता, समाज में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा होती।

'सूर हलधर' ने भी गाँव के लोगों के साथ जगन्नाथजी जाने की इच्छा प्रकट की। पहले तो आपको अंधा होने के कारण लोगों ने साथ ले चलने में आपत्ति प्रकट की, परन्तु विशेष आग्रह देखकर आपको भी साथ ले लिया।

मार्ग में आपने एक स्वप्न देखा कि दिव्य वस्त्राभरण विभूषित वेणुवादन-तत्पर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द प्रकट हुए और मन्द-मन्द मुसकुराते हुए आपको आदेश देते हुए कहने लगे—"हे हलधर, तुम मेरे पूर्ण भक्त हो और साथ ही कवि भी। आज से तुमको हरिलीला के गूढ़ रहस्य स्वयमेव ज्ञात हो जायँगे—तुम पूर्ण पंडित बन जाओगे। कलियुग के कवियों ने मेरी लीला का तो सविस्तर वर्णन किया है, परन्तु तुम यहाँ से घर लौट जाओ और मेरे मित्र सुदामाजी के चरित्र का सविस्तर वर्णन करो। तुम इसमें सफल हो जाओगे। मेरे अभिन्न भगवान् भूत भावन चन्द्रचूड़ शिवजी का स्मरण किया करो। तुम पूर्ण योगी और इच्छामृत्यु बन जाओगे। तुम चाहो तो तुम्हारी आँखें आज ही की तरह कायम रह जायँ।"

हलधरजी भगवान् की उस अलौकिक रूप-राशि में निमग्न हो गये और जैसे बालक ध्रुव को विष्णु के पाञ्चजन्य शंख के स्पर्श-मात्र से सम्पूर्ण वेद-वेदांगों का ज्ञान हो गया था, वैसे ही आपमें भी सभी विद्याओं का विकास हो गया। आप बड़ी दीनता से बोले—"नाथ, आपने मुझ दीन पर कृपा की। मैं कृतकृत्य हो गया। आपने मुझ अधम को उबारकर अपना 'पतित-पावन' नाम सार्थक कर लिया। आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। किन्तु, नाथ! जिन आँखों से आपको देख लिया, फिर उन आँखों से असार संसार को क्या देखूँ? अतएव आप ऐसी कृपा कीजिये कि अपने अन्तःकरण में आपको बराबर देखता रहूँ।"

भगवान् श्रीकृष्ण 'एवमस्तु' कहकर अन्तर्हित हो गये। हलधर जाग उठे और 'सुदामाचरित' की रचना करने लगे। अब आपको जगन्नाथदर्शनों की आवश्यकता न रही और आप घर लौट आये।

इस घटना का वर्णन आपने 'सुदामाचरित' के आरंभ में यों किया है—

अनचक ही प्रभु स्वप्न में, टेरि सुनायो बैनु।
जागु - जागु रे हलधरा, चन्द्रचूड - पद - रेनु॥
चन्द्रचूड - पद - जपन करु, जग सपना को ऐन।
और कछुक तू कान धरु, सुधा - सरिस मो बैन॥
कलऊ के कविगन अमित, बरने चरित अनन्त।
कहँ लगि सुजस बखानऊँ, सबै सलोने संत॥
तू चरित्र मम मित्र को, करु प्रसिद्ध संसार।
जासु चाहुरी प्रेम सों, हम कीन्हीं आहार॥
उठे ततच्छन शब्द सुनि, लगे करन गुनगान।
प्रथमै इहै उचारि गुरु, पूरन ब्रह्म समान॥

'सुदामा-चरित' की रचना होने लगी। आप प्रतिदिन एक-एक छन्द बनाने लगे और आपके मित्र मुंशी रामलालजी उन पदों को लिख रखने लगे। आश्चर्य की बात तो यह थी कि मुंशीजी से लिखने में यदि भूल हो जाती तो हलधरदासजी चट उसे सुधारकर लिखवाया करते थे। मुंशीजी को आपकी प्रतिभा और पांडित्य पर आश्चर्य हुआ करता था। इस प्रकार एक वर्ष में यह 'सुदामाचरित' पूरा हो गया। लोगों में इसका प्रचार भी थोड़े ही दिनों में हो गया।

चूँकि भगवान् कृष्ण ने आपको शिवभक्त बनने का आदेश दिया था, इससे आप विश्वनाथ शिव के पूर्ण भक्त बन गये। आपका रचा संस्कृत में 'शिव-स्तोत्र' इस बात का प्रमाण है। आप अनन्य भक्त होते हुए भी स्मार्त्त मत का अवलम्बन कर अन्य देव देवियों की निन्दा के पक्ष-पाती न थे। आपके 'सुदामाचरित' से यह बात स्पष्ट है।

पद्मौल गाँव में आपके स्थापित नर्मदेश्वरनाथ महादेव हैं जो 'हलधरेश्वर' भी कहे जाते हैं। आपका यह स्मारक भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

जो कोई आपके सामने कुछ अशुद्ध लिखता, आप झट उसे बतला दिया करते थे। इससे कुछ लड़के आपसे चिढ़ गये और आपकी अनुपस्थिति में आपके बिछौने पर उन लड़कों ने काँटा रख दिया। आप बाहर से आते ही नौकर से

बोले—"इस काँटे को बिछावन पर से हटा दो और मुझे अंधा जानकर मेरे साथ शरारत करनेवाले उन लड़कों से कह दो कि आज से उनके कुल में कोई विद्वान् न होगा। बड़ों से हँसी करने का यही फल है।"

कहा जाता है कि भक्तवर हलधर दास के शाप का प्रभाव आजतक उन वंशों में विद्यमान है।

आप घर के सुखी थे। आपके बड़े भाई ही आपके अभिभावक रहे। आप दरिद्रों के साथ बड़ी सहानुभूति रखते थे और समय-समय पर उनकी सहायता करते थे। बड़े भाई साहब बराबर इस यत्न में रहते थे कि हलधर दास को किसी तरह का कष्ट न होने पावे।

आपने आजन्म ब्रह्मचर्य में रहने का प्रण कर लिया था। बड़े भाई ने आपके विवाह के लिये बहुत जोर दिया। आपके इष्ट मित्रों ने भी समझाया कि धृतराष्ट्र भी अंधे ही थे, फिर भी उन्होंने विवाह किया था, वंश की रक्षा के लिये दार-परिग्रह आवश्यक है। परन्तु, आप अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे, बोले—"प्रतिज्ञा से च्युत होना नरक का मार्ग है। मैं भगवान के सामने ब्रह्मचर्य से रहने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। भीष्म ने, गुरु परशुराम के कहने पर भी, अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध विवाह नहीं किया था, फिर भी उनको गुरु-अपमान का पाप नहीं लगा। अब रही वंशवृद्धि की बात। मेरा वंश 'सुदामाचरित' से ही 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ' कायम रहेगा। भगवान् कृष्ण मेरा उद्धार कर चुके हैं, इसलिये पिंड पाने की अभिलाषा मुझको नहीं है। आपलोग मेरी चिन्ता छोड़ दीजिये।"

विवश होकर सब चुप रह गये। आपका विवाह नहीं हुआ। आपने आजन्म कठोर ब्रह्मचर्य-व्रत निबाहा। इस घटना से आपके चरित्र पर पूरा प्रकाश पड़ता है।

हलधर दासजी १०१ वर्ष की आयु तक जीते रहे। फिर आपने जीते-जी समाधि ले ली। पद्मौल में वह समाधि अब तक है। एक बार मुंशी मजलिस सहाय इस समाधि को खुदवाने लगे। उसमें से एक माला और एक खड़ाऊँ निकली। परन्तु मुंशीजी की जीभ मुँह से बाहर निकल आई और उनके प्राणों की नौबत आ गई। हलधरेश्वर महादेवजी की आराधना से वे स्वस्थ हो सके थे। यह घटना प्रमाणित करती है कि हलधर दासजी कितने बड़े योगी थे।

हलधर दासजी के जन्ममरण-काल का पता नहीं है, पर अपने 'सुदामा-चरित' की समाप्ति के काल का यों उल्लेख किया है—

गज सहस रस रस विसद, कुसुमाकर सुदि पचदस।
सम्पूरन पोथी नवीन दीनउद्धरन प्रेम रस॥

इस पद्यांश मे सन् १०६६ का उल्लेख हुआ है। इस सन् का चलन बगाल और बिहार मे है, जो प्राय हिजरी-सन् का समकालीन है। इसका नाम फसली है, जो ईसवी-सन् से ५६२ वर्ष छोटा है। अब सन् १०६६ में ५६२ जोड दिया जाय तो सन् १६५८ ई० होता है। यही 'सुदामाचरित' की समाप्ति का काल है। हिन्दी मे यह समय रीतिकाल के अन्तर्गत है। उस काल मे, जब शृंगार-रस का समुद्र उमड रहा था, 'सुदामाचरित' के समान सरस प्रबन्ध-काव्य की रचना करना कवि के लिये कम महत्त्व की बात नहीं है।

कवि को 'सुदामाचरित' बहुत प्रिय था। इसको वह अपना वश चलानेवाला समझता था। उसके शब्दों मे यह ग्रन्थ-रत्न 'दीन-उद्धरण' और 'प्रेमरस' है। हिन्दी-साहित्य मे यही एक उसकी रचना * है। इसलिये मैं भी इसपर कुछ विशेष रूप से कहना चाहता हूँ।

'सुदामाचरित' मे कुल ३६५ छप्पय हैं। छप्पय वह छन्द है जिसमे छ चरण होते हैं—चार चरण रोला छन्द के और दो चरण उल्लाला छन्द के। कवि ने स्वतत्र प्रकृति के कारण, महाकवियों की तरह, कहीं-कहीं एकाध मात्रा घटा या बढा दी है। नये-नये शब्दों के निर्माण और उनके प्रयोग मे भी कवि ने स्वतत्रता से काम लिया है। 'सुदामाचरित' की रचना का कारण पाँच दोहों में कहा गया है, जो यथास्थान उद्धृत हैं।

इस ग्रन्थ मे सुदामा की भयकर दरिद्रता, उनकी पत्नी [जिसको कवि ने 'स्वकीया' से 'सुकिय' बना दिया है] का पातिव्रत्य और प्रेरणा, धन की महिमा, पत्नी की प्रेरणा से सुदामा का द्वारका जाना, कृष्ण-सुदामा का मिलन, चाहुरी-भक्षण, कृष्ण-पत्नियों का हास-विलास, कृष्ण-कृत सुदामा के आदर-मान से देव-मडली मे चिन्ता, कृष्ण की कृपा से सुदामा का राजा होना आदि विषय बडे ही रोचक ढग से वर्णित हैं। साथ ही नगर-वर्णन, वर्षा-वर्णन, दशावतार-वर्णन भी प्रसगवश आ ही गये हैं। सक्षेप में यों कहना पड़ता है कि जहाँ नरोत्तमदास का सुदामाचरित कुछ ही साहित्य-प्रेमियों तक सीमित है वहाँ हलधर दास के सुदामा-चरित का प्रचार उत्तर बिहार में घर-घर है। मैंने आँखों देखा है कि लोग जिस

* यह ग्रथ मोटे अक्षरों में खड्गविलास प्रेस (बाँकीपुर, पटना) में छपा था, पर अब अलभ्य हो रहा है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति मेरे पास है। —लेखक

श्रद्धा से गोस्वामी तुलसीदासजी के रामचरितमानस का पाठ करते हैं उसी श्रद्धा से हलधर दासजी के सुदामाचरित का भी पारायण किया करते हैं। उत्तर-बिहार में लोकप्रियता की दृष्टि से रामचरितमानस के बाद इसी ग्रन्थ-रत्न का नम्बर है।

अच्छा, पहले सुदामाजी के दारिद्र्य का वर्णन कवि के शब्दों में सुन लीजिये—

बिप्र सुदामा एक दीन होते पुहुमी पर।
निर्धन निपट निकाज जनम ते परम दुखी नर॥
बसनहीन कोपीन एक सोऊ बल्कल के।
दुर्बल दसा मलीन मूँज मेषन बिह्वल के॥
टूटी मढी पुरान में बरसा हिम आतप सहत।
खट प्रकार दुरलभ सदा कंद मूल फल भखि रहत॥

साथ ही, सुदामा की पत्नी का भी चित्र देखते चलिये। आप देखियेगा कि बेचारी पद्मिनी किस तरह दरिद्रता की रात में दुःख के पाले से विकल हो रही है—

सुक्रिय सुदामा नारि कन्त की सदा अधीनी।
भूषन बसन मलीन नयन कज्जल बिनु दीनी॥
बिनु परिमल तन तपत तेल बिनु चिकुर मलिन सन।
मानों मधुप समाज दीनू हारे मधु बिनु तन॥
दुख तुषार निसि मलिन मन परत होत अति बेकला।
तौं पति रबि सेवा सुमुखि आलस करे न बिह्वला॥

यद्यपि इस दरिद्र दम्पती पर विपत्ति के पहाड़ टूट पड़े हैं, फिर भी उनका मन-मधुकर भगवान् के पद पद्मों में आसक्त है—

उनछ कर्म करि कत कतिनी दिवस गँवावत।
बहुत काल तिय कहे कनिक भिच्छा करि लावत॥
विद्यावारिधि भक्तिइन्दु पै दीन बने हैं।
निर्बिवेक बिधि पदुमनाल में कंट घने हैं॥
यदपि मीन मन दम्पती परेउ जाल सम दुख बिहुन।
तदपि ललक नित मिलन को बिमल बारि श्रीपतिचरन॥

अब इस दरिद्र दम्पती का वार्त्तालाप भी जरा सुन लीजिये। किस प्रकार धन-प्राप्ति के उपाय पर दोनों प्रेमियों में प्रेम कलह हो रहा है। पद्य सरल और सरस है,

इसलिये उनके अर्थ देने की जरूरत नहीं है। अच्छा तो सुनिये, सुकिय क्या कहती हैं—

एक समय दुख-भरी नारि कतहि समुझावै।
सुनहु कंत मम विनय दीनता अधिक सतावै॥
बिनु उद्यम संतुष्ट आतमा सुन्यौ न साईं।
बिनु हरि-भक्ति न मुक्ति काहु त्रिभुवन में पाई॥
कनिक भीख से नाहिं धन अधिक मान आदर न रह।
जौं महेस त्रिभुवनधनी तौं भिखारि संसार कह॥

अब सुदामा का उत्तर भी सुन लीजिये—

धन कारन हरिभजन छाड़ि कै जाउँ नृपतिपुर।
सुरपदवी लै शुक्र शुक पुनि भयउ दैत्यगुरु॥
चिंतामनि पद चिंत्य चिंतनो अपर कहा धन।
धन - कारन हरि द्वारपाल जलचर धारन तन॥
धर्म रहे निर्धन रहे धनिक भये नहिं धर्म रहु।
इहै दसा तिय मानि सुख चरन सरन गोविंद गहु॥

विदुषी पत्नी कब चुप होनेवाली थीं ? फिर समझाया—

धन बल बेद पुरान ग्रन्थ मत श्रुति की हो है।
धन बल बिबिध प्रकार दान बिप्रहि दीन्हो है॥
धन-बल यज्ञ-समूह सारि सुरपति-पदवी लह।
धन-बल गोपुर पिंड-दान ते पितर त्रिपित रह॥
धन बल धनिक जगत्र में, बहु दुख संकट ते बचे।
धन बिनु पिय वारिधि-जगत धर्मसेतु कैसे रचे॥

लाचार सुदामा पूछते हैं कि धन कैसे मिलेगा। इसका उत्तर भी उनकी पत्नी देती हैं—

जेहि उपाय धन मिले कन्त नर लहै परम सुख।
करन कहौं सो कियो नाथ अब बढ़ै दुगुन दुख॥
एक उपाय सुखेन नाथ हित हृदय गुन्यौ है।
द्वारावति में कृष्णराय के धनिक बन्यौ है॥
आजु सबै राजा जगत कहत महाराजा उन्हैं।
तिन्हहिं जाय पिय जाँचिये परम सीलसागर सुनैं॥

भगवान् कृष्ण सुदामा के बालसखा थे। आज राजा हुए तो क्या, उनके सभी चरित सुदामाजी जानते हैं। बोले—

कृष्णराय को सील कतिनी तुम न सुनी है।
नंदराय जसुमती पालि कै सीस धुनी है॥
बृज गोपी निज नाथ जानि कुल-कानि गँवायो।
तेहि वियोगिनी कियो कूबरी कंत कहायो॥
प्राननाथ जानत रहे, बृजबासी उत्तम किया।
तेहि त्यागत नहि बार भो, कौन सील उनमें प्रिया॥

परन्तु पत्नी ने क्या कोदो देकर पढ़ा था जो इसका उत्तर न देतीं ? देखिये, श्रीकृष्ण पर आरोपित दोषों का निराकरण किस ढग से कर रही है—

दया हेतु ब्रज तजेउ बंदि बसुदेव छुडायो।
जदुकुल छप्पन कोटि बमन कहँ भानु कहायो॥
जो बृजबधू रहस्य-केलि में कान्ह भुलाते।
तो दस अष्ट सहस्र छूटि कैसे घर जाते॥
नृपकन्या सोलह सहस रहीं बिकल तेहि सरन दिय।
दयासिंधु गोबिंद गुनि तुमहुँ द्वारका जाहु पिय॥

अब सुदामाजी अपनी पत्नी के कायल हो गये और—

जब समुझाई नारि नाह तंदुल तब लीन्हो।
'शुक्लाम्बर शशि' चरण भाखि मारग पग दीन्हो॥
चले जाहि पै अधिक सोच हिरदय मो आनें।
कृष्णराय नृपराज दीन केहि विधि पहिचानें॥
तदपि जाइहौं देखिहौं प्रिया प्रससेउ बहुत बिधि।
जो मों पर कछु रीझिहैं तौं तो जानिहौं सीलनिधि॥

सुदामाजी विद्यावारिधि हैं। फिर भी उनकी पत्नी ने उन्हें अच्छी राह सुझाई है। इससे जान पडता है कि कवि के हृदय में स्त्रियों के लिये कितना ऊँचा स्थान था। उस रीतिकाल में—जिसमे स्त्रियों के नखशिख का खुला वर्णन केवल शृगार के उद्दीपन के लिये किया जाता था—स्त्री का ऐसा महत्त्वपूर्ण चित्र उरेहना किसी भी कवि के लिये कम महत्त्व की बात नहीं है।

बीच में द्वारका के विशाल वैभव का बहुत लम्बा वर्णन छूट जाता है। सुदामाजी कृष्ण के द्वार पर पहुँच जाते हैं। द्वारपाल उनके मुँह से यह सुनकर

अचरज में पड गया है कि वे कृष्ण के सहपाठी मित्र हैं । उसे चकित देख सुदामाजी कहते हैं—

हों भिखारि ससार दीन दुर्बल दुर्देस हौं।
उनछ कर्म के करनहार दारिद के बस हौं॥
विप्र सुदामा नाम कृष्ण हैं मित्र हमारे।
मित्र-मिलन हो द्वारपाल आये हरि द्वारे॥
अब एतनी विनती सुनौ, अहो पवरि तुम चतुर नर।
कहो जाय गोपाल ते खडो सुदामा द्वार पर॥

अब कृष्ण सुदामा के मिलन का प्रसग देखिये—

सुनत सुदामा नाम नाथ सुभ घडी गुन्यौ है।
बहुत दिनन पर आजु मित्र आगमन सुन्यौ है॥
कर बीरी परपूर पान कर ते डारी है।
रही न सुधि पट पीत पानही पगु धारी है॥
रही लटपटी पाग सिर, सोउ न सके बनाइकै।
तजि भूषन ऐसेहि चले, मिले सुदामहि धाइकै॥
सजल नयन गोपाल मित्र के पायँ गहे हैं।
अंकमालिका देत बहुरि उर लाय रहे हैं॥
दोउ मित्र के नेत्र नीर ढरकन लागे हैं।
द्वारावति के लोग देखि धीरज त्यागे हैं॥
जौं यादव समुझावते महाराज धीरज धरैं।
तौं अधीर होते अधिक बिलखि बिलखि अंकम भरैं॥
जब ऊधो अक्रूर आदि यादव समुझायौ।
तब गोपाल तजि अकमाल भुज कध चढायौ॥
कुसल बूझते चले जहाँ रुकमिनी भवन है।
हरि-बधूटियाँ हँसैं कहैं यह दीन कवन है॥
बहुत बधू हँसि हँसि कहैं जौं यह प्रभु की रीत है।
तौं सुनियत कुब्जा रमन अरु माली के मीत हैं॥
दहिन कमल कर लिये कनक झारी हरिबामा।
बाम कमल कर ते पखारती चरन सुदाम॥

जासु चरन-रज धरत ध्यान मुनि जन्म गँवायो।
जाकी गति नहिं शिव बिरंचि पन्नगपति पायो॥
जेहि सुर सदा पुकारते जगदम्बा जगतारिणी।
तिन्हें आजु सुर देखते भिक्षुक-चरण पखारिणी॥

इस पद मे 'पखारिणी' शब्द पर ध्यान दीजिये। कवि ने स्वतन्त्रता से पखारनेवाली के अर्थ मे इसका प्रयोग किया है। पूर्वी शब्दो का प्रयोग तो इस कवि के लिये स्वाभाविक ही है।

अब तडुल या चाहुरी के भक्षण का प्रसग पढकर आनद लूटिये। भगवान् कृष्ण अपने मित्र से मित्राणी का सदेश मॉगते है। मित्र महोदय सकुचकर कहते हैं कि वह बेचारी दुखिया आपके लिये क्या सदेश भेजे? इसपर भगवान् का विनोद सुनिये—

दोउ मित्र हम गुरु दयाल ते पढे सरल मत।
रहे बसत इक सग सर्वदा निपट कपटगत।
हम ते कबहुँ न मित्र जीव कीन्ही चतुराई।
अब कदापि कछु शयन-सेज पर सखी सिखाई॥
तनिक ढिठाई होइ पर्‌यो, मित्र छमा सो कीजिये।
दीन आपुनो जानिकै, सखी सँदेसो दीजिये॥
जौं प्रबोध दइ मित्र दीन ते मित्र नृपतिवर।
तौं पुनि तजी न लाज चाहुरी लई न निजकर॥
प्रभु देख्यौ मम मित्र लाज ते धरत न आगे।
लई मोटरी ऐंचि काँख ते खोलन लागे॥
अधिक लजाने विप्र तब, कह्यो त्रिया मति छोट री।
जिन दीनी मम साथ कै, मर्म गँवावन मोटरी॥

यहाँ स्त्री से चिढकर सुदामा से 'प्रिया' के बदले 'त्रिया' कहलाना भी प्रसगानुकूल बहुत ही समुचित है। हॉ, तो आगे चलिये—

लै गोपाल इक मुठी चाहुरी मुख डारी है।
अधिक स्वाद के चले सखी-प्रश मनुधारी है।
बहुरि • दूसरी मुठी चाहुरी भरे गुसाईं।
दुगुनो स्वाद सुगध दूसरी बार जनाईं॥

चपरि लई पुनि तीसरी, असन करन चाह्यो हरी।
तुरत हाथ श्रीनाथ के, लपकि पाटधंघी धरी॥
हटकि रहे हरि हस हसनी कहा करी है।
सुगग स्वाद में कहा कतिनी बाँह धरी है॥
हो दयाल, दुइ मुठी चाहुरी यह खायो है।
दुइ ही ते द्विज दीन लोक दोनों पायो है॥
पुनिक तीसरी खाइकै, लोक तीसरो दीजिये।
हम सबको लै कन्त जू, बसोबास कहँ कीजिये॥
हो सुंदरि सुभमती प्रेम तुम सखी न जानी।
देत मित्र पै तीन लोक सका कस आनी॥
इन फरुही ते आजु प्रिया अस तृप्त भये हम।
तीन लोक दै दीन मित्र करते मघवा सम॥
हौं लै सकल सहेलियाँ, लघु अनुचर कहलावते।
सखी-सहित श्रीमित्र-पद, सेवत ही सुख पावते॥

हे जीवन-सहचरियो, हमारा तो विचार है कि—

अमिअ बसै ससि माहि अग्निभोगी खग भाखैं।
भक्त कहैं सुरलोक माहि किंनर सुर चाखैं॥
कोउ कहै अस नागलोक में बसत अमिअ-रस।
रसिक भाखते सदा अधर-पल्लव-कामिनि बस॥
गुंजि गुंजि मधुकर कहै, मो अमरित सुरतरु लसै।
हम जानत हैं कंतिनी, सखी-चाहुरी में बसै॥

केवल रुक्मिणी आदि रानियों के ही नहीं, वरन् देवताओं के मन में भी खलबली मची हुई है कि अब क्या होगा। कवि के शब्दों में ही सुनिये—

विधि हैं मुग्ध विचार सोच मन महँ कीन्हो है।
आजु किधौं मम नाथ दान मोहू दीन्हो है॥
ओढ़ि पीत पट छीरसिन्धु महँ रहे गुसाईं।
आजु किधौं द्विज दीन दान मोहूँ को पाईं॥
दहलि-दहलि सुरगन कहैं, हम छपाहिं काके सरन।
द्विज खवाइ लघु चाहुरी, सबै चाह चेरो करन॥

अमरनगर ते अमिअ साजि सुरबधू चली है।
इत नाचे सुरनटी जात तेहि बीच मिली है॥
इन पूछे तुम किते जाहु सुरबधू सयानी।
उन भाखी लिये अमिअ पूजिये हरि जगदानी॥
बहुरि कह्यौ इन सपथ दै, लेइ अमरित घर जाहु री।
जो चाहहु हरि पूजिबो, तो ढूँढौ कछु बाहुरी॥

इतना ही नहीं, स्वय भगवान् को अब अन्य प्रकार के भोजनों मे स्वाद नहीं मिल रहा है। इसपर सत्यावती या सत्यभामा की चुटकियाँ भी बडी मार्मिक हैं। इनका रस भी चखते चलिये—

भोजन करत कृपाल नाथ बोले मृदुबानी।
महा अचंभौ एक आज लागत है रानी॥
जब ते बाहुरी सखी-हाथ की हम खाई है।
तब ते जानत मधुर मोद में करुआई है॥
मुसुकानी सत्यावती, कह्यौ अहीरिन को सही।
कै फरुही मृदु मोद सम, कै पियूष जानत मही॥

सत्यभामा ने तो यहाँ तक कहा—

'आजु सुभद्रहि देत कन्त करते न लुटाई'।

इसपर भगवान् ने कहा—

'मित्र निकट में आपुनो निरमल नाम नटी सुनौ'।

सत्यभामा कहती है—

क्यों न होहि हम नटी नाथ मम नट कहलायो।
कालिन्दी-तट नाचि नाचि ब्रजबधू रिझायो॥

और आगे कहती हैं कि इनपर रामावतार के समय से ही स्त्रियों की नजर लग रही है। स्त्रियाँ इनको वश मे करने के लिये कौन-कौन टोटके नहीं करतीं! सुनो—

जदपि भीलनी रही टोनही तदपि न ससौ।
रूपगर्विता बाकनन्दिनी रही असंसौ॥
जौं भिलनी मत ठानि दुर्ग टोनो अनुसार्‌यो।
तौं कमला ते नेह नाथ कबहूँ न बिसार्‌यो॥
अब की बार हौ सौतिनी अस परबल टोनो लहे।
फरुही-फरुही रटत पिय सखी-पास जानो चहे॥

सचमुच सखी को भगवान् नहीं भूले। उनको विपुल ऐश्वर्य देकर उनके पास पहुँचे। देखिये—

अर्ध निसा गत होत रैन सोये नर-नारी।
सिलराय को संग लाइकै चले बिहारी।
पहुँचि मित्र के नगर बिस्वकर्महिं समुझायो।
छिनक एक महँ कनककोट मनिमहल बनायो॥
सकल लोक की संपदा तुरत आनि मंदिर भरी।
श्रीगोपाल टेरन लगे जागु जागु सखि सुन्दरी॥

सखी चौंक उठीं। सामने अपने आराध्य देव को खड़ा देखा। हाथ जोड़-कर कहने लगीं—

हो गोपाल करुनानिधान करतार गोसाईं।
तुम ही ते गज गीध ब्याध गनिका गति पाई॥
रजहिं न दर्प महेस-सीस चढ़ि ससि सरबर कर।
कृपानिधान सुजान हरन जब लसत ताहि पर॥
रजहूँ ते हम नीच तिय नाथ नाथ-दृग सहसधर।
अपनो बिरुद बढ़ावनो सखी कहत राजाधिपर॥

जब भगवान् ने विदा माँगी तब उनकी सखी कहती हैं—

दृग फूटे तब दरस नाथ छूटे मम दृग ते।
हते ब्याध तन प्रीति नाहिं टूटे उन मृग ते॥
जो प्रभु चरन-सरोज पेखते सखी सोहाहीं।
तो कैसे हम कहहिं नाथ मो गृह ते जाहीं॥
प्रभु इच्छा जो ऐसई मो ते कहा बसाइहैं।
मो विहग पद विटप रखि नाथ द्वारका जाइहैं॥

अब, सुदामा द्वारका से विदा हुए हैं। पास एक कौड़ी भी नहीं है। द्वारका के लोग कृष्ण की इस निष्ठुरता पर चकित हैं।

भक्ति करुहौ प्रभु जगत द्रव्य ले द्विज गृह पूरे।
लूटे जाहिं कुबेर रुद्र जब खात धतूरे॥
द्वारावति के लोग जानते निठुर गोसाईं।
हेम छेम कृत कियो दीन प्रति दृगनि छिपाई॥

सबै कहै जत दीन जन इतै आइ निर्धन गलै।
सबै धनिक है सचरै एई दीन निर्धन चलै॥

इधर सुदामा कृष्णजी के शील पर मुग्ध हो उनकी बड़ाई करते चले जा रहे हैं—

जेते धन संग्रह तेतई सील बड़ाई।
जेते राजमहत्त्व मेरु तेते नवताई॥
हमते उन तो अधिक प्रीति सौं भाव जनाई।
और कहा जो लघु सँदेस फरुही उन पाई॥
तैसइ ज्ञानविचारिणी महाराज की रानियाँ।
तौं जपि जपि सब बस भये सकल भूत के ज्ञानियाँ॥

फिर घर की सुधि आई, पर पास एक कौडी भी न देखकर लगे अपना क्रोध भगवान् ही पर झाडने—

धन सर्बस ले जिन भिखारि बलि-पीठ नपायौ।
तिन्हैं कतिनी महाराज दानी ठहरायौ॥
जिन मूसे में जूठ भीलनी नहि पाँची है।
तिन्हैं जाँचनो कह्यौ, कतिनी मति काँची है॥
जे लालच ते कनक के कनकमृगा पाछे परै।
ते कनिका भरि कनक दे कब काहू को उपकरै॥

खैर, क्या करते? इसी तरह बकते झकते सुदामाजी अपने गाँव के पास पहुँचे तो—

चले दीन चिन्ता बिहाइ निज पुर अमरे हैं।
मनिमदिर सौबर्न धाम तत देखि परे है॥
जह देखे तहँ धवल धाम है कनक अटारी।
रत्न लाल विद्रुम प्रवाल भूषित नरनारी॥
फहराती चामर धुजा लागी माल मुक्तावली।
करि करिनी की भीर महँ रनित सब्द घंटावली॥

अरे, फिर द्वारका ही पहुँच गये क्या? पर—

अस मति गति मम हरी नाथ जो कहि न परत है।
द्वारावति में बहुरि आनिकै निलज करत है॥

नहि कोउ करहि प्रमान दीन को गैल भुलान्यौ।
सबै कहैंगे दीन मीत सुख देखि लुभान्यौ॥
पुनि बोले नहि द्वारिका भूले हम संका करैं।
यह तो देखियत नगर में नृप सुदाम डंका परैं॥

यह राजा सुदामा कौन है? इसने मेरी झोपडी उजडवा दी, तो क्या मेरी स्त्री भी ले ली? धर्मात्मा राजा तो ऐसा नहीं करता। पर—

नृप को कहा विचार पांडु से महा बिचारी।
मृग ही के भ्रम बिप्र बिप्रनी हत्यौ प्रचारी॥
गज-भ्रम ते सर मौंह सब्दभेदी सर मार्‌यौ।
ते सर कठिन कराल तीन मूरति सहार्‌यौ॥
परसुराम जननी हती जासु ज्ञान गुन अजर ते।
अस बिचार पूर्वहिं छुट्‌यौ, नृप सुदाम तो अपर ते॥

परन्तु, अब स्त्री के लिये किसके पास फरियाद पहुँचाई जाय? राजा के विरुद्ध यहाँ कौन सुनेगा? देवलोक में भी जाने से कठिनाइयाँ है। सुदामा का तर्क-वितर्क सुनिये—

निज दुख बिधि ते उचित भाखिबो जगत कहत है।
उनहूँ को कत कोटि टकटकी लगी रहत है॥
मीत हमारे निठुर नारि को बिरह न जानैं।
बिरह समय उन अस्वमेध मंगल मख ठानैं॥

× ×

सिव लइ आक धतूर मातु लीन्ही बिकलाई।
हम गरीब केहि पास जाइकै बिपति सुनावैं।
तीन ठौर तीनों अगाध गोचर कबि गावैं॥

× ×

सबै देव ते निर्भरोस हम दीन भये हैं।
काहु देव नहि बिप्र दीन को बाहु लये हैं॥
उद्दालक-सी होति नारि तो सोच न होते।
भिच्छुक ही सी होति तऊ कबहूँ नहि रोते॥
मम तिय रही पतिव्रता निसि ससि छबि अँधियार में।
अस तिय बिनु पिय जीवनो धृग जीवन संसार में॥

ऐसा सोचकर सुदामाजी जगल को चले। इतने मे उनकी पत्नी की दृष्टि उनपर पडी। वे अन्न दीन न थीं—महारानी थीं। आरती सजकर सहेलियों के साथ स्वामी की अगवानी करने चलीं। यह देखकर सुदामा सोचते हैं—

रानी सखी समाज पेखि द्विज को भरम्यो मति।
इहाँ कहाँ उडुगन समेत आवत रजनीपति॥
सची किधौं सुरवधू साथ नभ ते सँचरी है।
रती किधों निज पतिहिं जोहती भूलि परी है॥
समुझि कह्यो पीछे पुनि पुराचीन सो भारती।
यह नवीन सोभा लसत नृप सुदाम-रानी हुती॥

दोनों मे योग्यतापूर्ण वार्त्तालाप हुआ है। वह स्थल बहुत ही मनोरजक है। उसमे अनेक चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ हैं। किन्तु विस्तार भय से उसे छोडना पडता है। सुदामा ने अपनी पत्नी को पहचान लिया है। सब बातें मालूम होने पर राजभवन मे आ गये, और कृतकृत्य हो युगल दम्पती भगवान् कृष्ण से प्रार्थना करते हैं—

हो काली फनि के मयूर, मधुकर मधुबन के।
सजीवन ब्रज के, उदार पारस निर्धन के॥
हौं पामर द्विज पर्यो भूलि अज्ञान मोहबन।
अनजाने में बिन नाथ सौं कियो कछुक मन॥
अब साँचे अनुमानेऊ भृगु अघ दोष-छमा करन।
भजु रे मूढ़मन हलधरा कृष्णचरन सकट हरन॥
हो नवीन नीरद सरीर सिर काकपच्छ धर।
मोरपच्छ सोभासमेत मुरली बिचित्र कर॥
दई दीन को महाराजगी देस देस की।
भक्तिसुधा की हमें प्यास नहि आस ओस की॥
अब साँचे पहिचानेऊ महाराज औढर ढरन।
भजु रे मूढमन हलधरा कृष्णचरन सकट हरन॥

बस, सुदामाचरित की कविता की बानगी हम दिखला चुके। विज्ञ पाठक देखें कि हलधर दासजी केवल इसी एक ग्रथ से महाकवि न सही—कवि कहलाने के भी अधिकारी हैं या नहीं। मैंने समालोचना नहीं लिखी है जिसमें इनकी कविता के गुण-दोषों की पूरी समीक्षा की जाती। हमने हिन्दी ससार के सामने कविवर हलधर दास के जीवनवृत्त और उनकी कविता का सक्षिप्त परिचय मात्र दे दिया है।

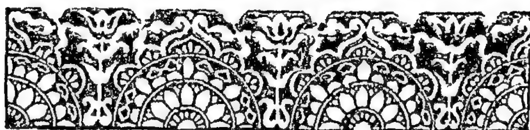

विहार का वैभव

पंडित कपिलेश्वर मिश्र, वैयाकरणशिरोमणि

जिससे किसी वस्तु के गौरव की वृद्धि हो, यश का विस्तार हो, गुण का कीर्त्तन हो, सौन्दर्य का उत्कर्ष हो और महत्त्व की चर्चा हो, वही उसका वैभव है। विहार के भी कुछ वैभव ऐसे हैं जिनसे उसकी गुरुता, कीर्त्ति, कुशलता, शोभा और महत्ता की बड़ी ख्याति है। इस लेख में ऐसे ही वैभवों का वर्णन है। उस वर्णन को सम्पन्न एवं आकर्षक बनाने के लिये प्राचीन ग्रंथों के सुलभ प्रमाणों के साथ साथ कहीं कहीं लोकविश्रुत किंवदन्तियों का भी आश्रय लेना पड़ा है। अपनी पुरातन सभ्यता और संस्कृति का अभिमान रखनेवाले श्रद्धालु राष्ट्रभक्तों के लिये तो प्राचीन प्रमाण सर्वमान्य और आदरणीय हैं ही, किंवदन्तियों को भी हम सर्वथा निराधार नहीं कह सकते। अनुसन्धानशील ऐतिहासिकों के लिये कभी कभी किंवदन्तियाँ भी महत्त्व प्रसविनी सिद्ध होती हैं। इस दृष्टि से हमने उन्हें तिरस्करणीय न समझ सग्रहणीय ही समझा है। आशा है, विचारशील पाठक अपनी सारग्राहिणी बुद्धि से इस लेख का उपयोग करेंगे।

पहले विहार-प्रदेश का यह रूप न था, जो आज हम देखते हैं। इसके अनेक भाग थे और वे तीरभुक्ति (तिरहुत=मिथिला), अङ्ग, मगध, कीकट, कारूष इत्यादि नाम से प्रसिद्ध थे।

नाम 'विदेह' या 'तीरभुक्ति' था। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि नदियों की अधिकता से दलदल बनी हुई भूमि पर जब ऋषियों ने नदियों के किनारे अगणित यज्ञ किये, तब असख्य होम होने से इस भूमि मे कठोरता आ गई। इसी कारण इस भूमि का नाम तीरभुक्ति (तिरहुत) हुआ। मिथिला और विदेह के नाम से तो यह प्रदेश पीछे प्रसिद्ध हुआ।

भविष्यपुराण के अनुसार अयोध्या के महाराज मनु के पुत्र 'निमि' इस यज्ञभूमि मे पदार्पण कर असख्य यज्ञो और ऋषियो के दर्शनों से अपनेको कृतार्थ समझते थे। उनके पुत्र 'मिथि' ने अपने बाहु-बल से यहाँ एक नगर बसाया, जो 'मिथिला' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पुरी निर्माता होने के कारण 'मिथि' का दूसरा नाम 'जनक' भी पडा। यथा—

निमेःपुत्रस्तु तत्रैव मिथिर्नाम महान्स्मृतः।
प्रथम भुजबलैर्येन तैरहूतस्य पार्श्वतः॥
निर्मित स्वीयनाम्ना च मिथिलापुरमुत्तमम्।
पुरीजननसामर्थ्याज्जनक स च कीर्तित॥
—(भविष्यपुराण)

राजाऽभूत्त्रिषु लोकेषु विश्रुत स्वेन कर्मणा
निमि परमधर्मात्मा सर्वसत्त्ववतां वरः।
तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जनको मिथिपुत्रकः॥
—(वाल्मीकीय रामायण)

यज्ञाभिलाषी निमि का निमन्त्रण अस्वीकृत कर जब वसिष्ठ इन्द्र के पुरोहित हो स्वर्ग चले गये, तब वसिष्ठ की अनुपस्थिति मे भृगु आदि मुनियों की सहायता से निमि ने यज्ञ-सम्पादन किया। इस काम से वसिष्ठ को स्वर्ग से लौटने पर बहुत क्रोध हुआ और निमि को 'विदेह' हो जाने का शाप दिया। वसिष्ठ के इस काम से सब जगह हाहाकार मच गया। प्रजा घबरा गई। तब ऋषियों ने अराजकता के डर से निमि को मथ डाला, जिससे जो उत्पन्न हुए उनका नाम 'मिथिल' या 'विदेह' पडा। ये 'जनक' नाम से भी प्रसिद्ध हुए।

जन्मना जनक सोऽभूद्वैदेहस्तु विदेहजः।
मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता॥
—(श्रीमद्भागवत)

निमि की उन्नीसवीं पीढ़ी में राजर्षि 'सीरध्वज जनक' हुए, ये जीवन्मुक्त थे।

वंशेऽस्मिन्येऽपि राजानस्ते सर्वे जनकास्तथा।
विख्याता ज्ञानिनः सर्वे विदेहाः परिकीर्त्तिताः॥

—देवीभागवत, स्कन्ध ६

एते वै मैथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः।
योगेश्वरप्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि॥

—(श्रीमद्भागवत)

इससे साफ झलकता है कि महाराज जनक ने ऐसा वातावरण तैयार कर दिया था कि उनके पार्श्ववर्त्ती गृहस्थ भी सुख-दुःख से मुक्त थे।

जब व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी ने अपने पिता से तपश्चर्या के लिये आज्ञा माँगी, तब व्यास जी ने योगिराज जनक का दृष्टान्त देकर अपने ही घर में रहकर तपस्या करने के लिये अनुरोध किया। इस बात से शुकदेवजी को सन्तुष्ट न देखकर व्यासजी ने उन्हें राजर्षि जनक के यहाँ उपदेश-ग्रहण करने के लिये जाने की आज्ञा दी।

वर्षद्वयेन मेरुं च समुल्लङ्घ्य महामतिः। हिमालयं च वर्षेण जगाम मिथिलां प्रति॥
प्रविष्टो मिथिलां मध्ये पश्यन् सर्वर्द्धिमुत्तमम्। प्रजाश्च सुखिताः सर्वाः सदाचाराः सुसंस्थिताः।

—(देवीभागवत)

मिथिला पहुँचकर जनक के द्वारपाल की विद्वत्ता से शुकदेवजी चकित हो गये। 'किं सुखं, किं दुःखम्' इत्यादि द्वारपाल के प्रश्नों के समीचीन उत्तर दिये बिना वे भीतर न जा सके। शुकदेवजी का स्वरूप बड़ा ही तेजस्वी था। वे बहुत बड़े ज्ञानी थे। उनका अपने यहाँ आना सुनकर जनक बहुत प्रसन्न हुए। जनक ने उनके विश्राम के लिये सब उचित प्रबन्ध कर दिया और उनके योगी होने की परीक्षा के लिये उनके पास अत्यन्त सुन्दरी दासियाँ भेजीं।

गीतवादित्रकुशलाः कामशास्त्रविशारदाः।
ता आदिश्य च सेवार्थं शुकस्य मन्त्रिसत्तमः॥

—(देवीभागवत)

जनक के इस काम से शुकदेवजी चकित हो गये। साथ ही, अपना अपमान समझकर दुःखी भी हुए। वे उन दासियों को मातृवत् समझकर योग में लीन हो गये।

दासियों के मुख से ये सब बातें सुनकर महाराज जनक प्रसन्न हो अपने

गिरियक (पटना की पहाडी पर एक स्तूप

गिरियक (पटना) की पहाडी के शिखर पर ईंटों का प्राचीन स्तूप (दूर का दृश्य)

ऊपर—खुदाई के बाद मनियार-मठ (राजगृह) का साधारण दृश्य। नीचे—खुदाई में पाये गये मिट्टी के पात्र

गुरु, पुरोहित, मन्त्री आदि के साथ शुकदेवजी के पास आये। जनक के सब अभिप्राय और अपने सब प्रश्नों के समुचित उत्तर सुन-समझकर शुकदेवजी का सारा सन्देह दूर हो गया। जनक का शिष्यत्व-स्वीकार कर वे अपने आश्रम को लौटे।

स्वयं भगवान् कृष्ण भी ज्ञान चर्चा के लिये जनक के पास आये थे। इसीसे उस समय के यहाँ के आध्यात्मिक ज्ञान और महत्त्व का पूरा पता चलता है। पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण, रामायण इत्यादि ग्रन्थों में इन्हीं सब कारणों से मिथिला को ज्ञानभूमि कहा है।

मिथिला के धर्मव्याध का महत्त्वपूर्ण उल्लेख महाभारत में पाया जाता है। इनकी ज्ञान-चर्चा आज भी मिथिला में प्रसिद्ध है। इन्होंने एक क्रोधी ब्राह्मण को गृह-तपस्या की शिक्षा देकर गृहस्थ बनाया था।

आनन्दरामायण के अनुसार रावण ने सर्वत्र त्रिलोक-सुन्दरी लक्ष्मी-रूपा पद्मा के रूप-गुण की प्रशंसा सुनकर उनके पिता से उनकी याचना की। इस प्रार्थना के अस्वीकृत होने पर रावण ने जब उनके पिता को मारकर उनको पकड़ना चाहा तब वे अग्नि में प्रवेश कर गईं। अग्नि प्रवेश के बाद वे रत्न-रूप में परिणत हो गईं। यह देखकर रावण बड़ा चकित हुआ। उसने कुबेर को भी जीतकर उनके सब बहुमूल्य रत्न आत्मसात् किये थे, किन्तु ऐसा अपूर्व रत्न अपने जीवन में उसने कभी देखा न था। उस अद्वितीय रत्न को देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसे अपने यहाँ लाकर पूजा की पेटी में रक्खा।

दूसरे दिन मन्दोदरी को दिखलाने के लिये जब पेटी खोली गई, उसमें अत्यन्त विकराल सहस्रमुखी पद्मा को देखकर रावण बहुत त्रस्त हो गया। पद्मा ने उस समय रावण से कहा—"तुमने यहाँ लाकर मुझे बहुत अपमानित किया है। जहाँ पाप का लेश न हो उस पवित्र भूमि में मुझे अभी ले जाकर मिट्टी के नीचे रख आओ, नहीं तो अपना सर्वनाश ही समझो। आज से हजारों वर्ष बाद उसी पवित्र भूमि से उत्पन्न होकर मैं ही तुम्हारे सर्वनाश का कारण होऊँगी। जब उस भूमि से कोई उत्पन्न हो तब तुम समझना कि अब शीघ्र ही मेरा सर्वनाश अवश्यम्भावी है।"

उस समय एकमात्र मिथिला ही ऐसी भूमि मिली, जहाँ पाप का लेश भी न था। यहीं लाकर उस लक्ष्मी-रत्न को रावण ने मिट्टी के नीचे स्थापित किया। इस भूमि को कलुषित करने के लिये रावण ने कोई उपाय उठा न रक्खा, यहाँ तक कि

ऋषियों के रक्त से परिपूर्ण घडा भी यहीं लाकर गाड़ा, जिससे भविष्य में इस पुण्यभूमि से किसी ऐसी शक्ति की उत्पत्ति न हो जो उसके सर्वनाश का कारण हो सके। किन्तु भावी होकर ही रहती है। अन्त में इसी पुण्यभूमि से उत्पन्न होकर जगज्जननी जानकी ने रावण का सर्वनाश किया।

सीता का-सा स्वयवर आजतक संसार मे दूसरा न हुआ। जिस शिव-धनुप का उठाना अत्यन्त कोमल बालिका सीता के बाँयें हाथ का खेल था, उसके उठाने मे त्रिलोक विजयी रावण, बाणासुर आदि को भी मुँह की खानी पडी, औरों की तो बात ही क्या, क्षत्रियों के धूमकेतु परशुराम को भी इसी भूमि मे नीचा देखना पडा।

मिथिला का परिमाण नाना प्राचीन ग्रन्थों मे इस प्रकार है—

गण्डकीतीरमारभ्य चम्पारण्यान्तग शिवे।
विदेहभू. समाख्याता तीरभुक्त्यभिध स तु॥
—(शक्तिसगमतन्त्र)

यह 'चम्पारण्य' कौशिकी नदी के तीर पर था—

"गण्डकी कौशिकी चैव तयोर्मध्ये वरस्थलम्।"
—(स्कन्द पुराण)

कौशिकीन्तु समारभ्य गण्डकीमधिगम्य वै।
योजनानि चतुर्विंशद्व्यायाम परिकीर्त्तितः॥
गङ्गाप्रवाहमारभ्य यावद्धैमवत वनम्।
विस्तारः षोडश प्रोक्तो देशस्य कुलनदन।
मिथिला नाम नगरी तत्रास्ते लोकविश्रुता॥
—(बृहद्विष्णुपुराण)

अर्थात् गडकी से कौशिकी और गङ्गा से हिमालय तक लोक-प्रसिद्ध 'मिथिला' नगरी है। देवीभागवत (स्कन्ध ६) मे इसकी प्रशसा इस तरह की गई है—

एव निमिसुतो राजा प्रथितो जनकोऽभवत्
नगरी निर्मिता तेन गङ्गातीरे मनोहरा।
मिथिलेति सुविख्याता गोपुराट्टालसयुता
धनधान्यसमायुक्ता हट्टशालाविराजिता॥

धार्मिक दृष्टि से भी मिथिला की विशेषता अनेक पुराण, इतिहास और तन्त्र के प्राचीन ग्रन्थों मे इस प्रकार मिलती है—

यथाऽयोध्यापुरी नित्या मिथिलाऽपि तथा स्मृता।
सर्वैश्वर्यगुणैर्वापि नायोध्यातः पृथङ्मता॥
तत्र यात्रा महापुण्या सर्वकामसमृद्धिनी।
इयं तु मिथिला पुण्या स्वयं रामस्वरूपिणी॥
मिथिला सर्वतः पुण्या सुराणामपि दुर्लभा।
अतस्तीर्थेषु सर्वेषु मिथिला पूज्यते सदा॥
मायापुर्यादिका प्रोक्ता सामान्येन विमुक्तिदा।
एषा तु मिथिला राजन् विष्णुसायुज्यकारिणी॥

—(बृहद्विष्णुपुराण)

'यामलसारोद्धार' में शिव-जनक-संवाद—

वैकुण्ठगानपुरस्तस्य लोकाल्लँक्ष्मीरवातरत्।
वैकुण्ठस्तु निजांशेन मिथिलाभूमिमाविशत्॥
अतोनिवासभूमिस्ते सर्वस्माद्विशिष्यते।
वैकुण्ठान्न कला न्यूना दृश्यते मिथिला मया॥
मिथिलावाससमासाद्य जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।
देहान्ते राघवं प्राप्य तद्भक्तैः सह मोदते॥

—(बृहद्विष्णुपुराण)

यहाँ के बहुत से तीर्थों के नाम रामायण, विष्णुपुराण, स्कन्दपुराण आदि ग्रन्थों में मिलते हैं—

वैदेहोपवनस्यान्ते दिश्यैशान्यां मनोहरम्।
विशालं सरसस्तीरे गौरीमन्दिरमुत्तमम्॥
वैदेही वाटिका तत्र नानापुष्पसुगुम्फिता।
रक्षिता मालिकैर्याभिः सर्वर्तुसुखदा शुभा॥
प्रभाते प्रत्यहं तत्र गत्वा स्नात्वालिभिःसह।
गौरीमपूजयत्सीता मात्राज्ञप्ता सुभक्तितः॥

—(अगस्त्यरामायण)

यह 'गिरिजा स्थान' मिथिला में बहुत प्रसिद्ध तीर्थ है। दरभंगा जिले में कमतौल स्टेशन के पास 'फुलहर' गाँव में है। यहाँ विदेह वाटिका के ईशान कोन में सरोवर के तट पर आज भी गौरी का मन्दिर है। यहीं प्रतिदिन प्रातःकाल अपनी माता से आज्ञा लेकर सीता सखियों के साथ भक्तिपूर्वक गौरी की पूजा

करती थीं, जिसका वर्णन उपर्युक्त श्लोकों के आधार पर तुलसीदासजी ने भी 'रामचरितमानस' (बालकाड—'फुलवारी') में किया है।

मिथिला को शस्यश्यामला और तीर्थ समझकर अनेक ऋषि-मुनि यहाँ अपना-अपना आश्रम बनाकर तपस्या करते थे। इनमें योगिराज याज्ञवल्क्य का नाम विशेष उल्लेखनीय है। शतपथब्राह्मण से साफ पता चलता है कि याज्ञवल्क्य मिथिला के ही निवासी थे। उस समय के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् यही थे। विदेह की राजसभा में कुरु, पाञ्चाल आदि देशों के बडे-बडे विद्वान् ब्राह्मणों का समुदाय रहता था। उसमें रूस, चीन, जावा, सुमात्रा, मलाया, तिब्बत, श्याम आदि देशों के अनेक विद्वान् भी थे। उसमें समय-समय पर विद्वानों में शास्त्रार्थ (तर्क वितर्क) हुआ करता था। उसमें याज्ञवल्क्य ने अन्यान्य देशों के विख्यात विद्वानों को भी शास्त्रार्थ में पराजित किया था।

शतपथब्राह्मण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि एक समय महाराज जनक ने सर्वश्रेष्ठ विद्वान् के लिये स्वर्णशृङ्ग, रौप्यखुर और बहुमूल्य वस्त्रालकृत एक सहस्र गायें देने की घोषणा की, किन्तु बहुत शास्त्रार्थ और प्रश्नोत्तर के बाद सर्वसम्मति से वे गौएँ याज्ञवल्क्य ही को दी गईं।

शुक्लयजुर्वेद के सम्पादन का श्रेय भी मिथिला को ही प्राप्त हुआ था। कुरु, पाञ्चाल आदि देशों के आर्यों को भी मिथिला के सामने सिर झुकाना पडता था। बृहदारण्यकोपनिषद् (अध्याय ४) से जान पडता है कि मिथिला में केवल पुरुषों तक ही विद्वत्ता सीमित न थी, गार्गी, मैत्रेयी आदि ब्रह्मवादिनी विदुषियाँ भी उस युग में मिथिला की शोभा बढा रही थीं। और, उसके बाद भी बहुत-सी विदुषी स्त्रियाँ मिथिला को अलकृत कर गईं। इनमें सरस्वती देवी, लखिमा देवी और विहासा देवी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। विद्यापति की पुत्रवधू चन्द्रकला देवी तो 'महामहोपाध्याय' पद से भी विभूषित थीं। महाराज शिवसिंह की रानी लखिमा देवी के अतिरिक्त एक अन्य 'महामहोपाध्याय लखिमा देवी' भी हो चुकी हैं, जो एक महिला की अग्निपरीक्षा में सम्यस्थ हुई थीं। सरस्वती देवी और विहासा देवी की पाण्डित्य-प्रखरता भी मिथिला में प्रसिद्ध है।

दरभगा जिले के 'भरवडा' परगने में 'खिरोई' नदी के निकट 'ब्रह्मपुर' गाँव में न्यायदर्शन के प्रवर्त्तक गौतमऋषि का आश्रम है। उसके दक्षिण-पश्चिम कोने में 'गौतमकुण्ड' है, जिसके पास ही 'अहियारी' गाँव में 'अहल्याकुण्ड' विद्यमान है।

बुलन्दीबाग (पटना) की खुदाई में निक
हुए मौर्यकालीन (ईसा से तीन शताब्दी पह
की) कठघर की पाँत (पश्चिम से पूरब)

बुलन्दीबाग (पटना) में मिली—मिट्टी की, पकाई हुई, नारी-मूर्ति, जिसके दाहिने कान में बड़ा सा झुमका है।

माँझी (सारन) के पुराने गढ़ का भग्नावशेष। इसकी एक ईंट पर जो लेख मिला है, उससे पता चलता है कि यह गढ़ छठी शताब्दि में, गुप्तकाल में, वर्त्तमान था। जनश्रुति है, इस किले में कोई मल्लाह (माँझी) राजा रहता था।

राजगृह की बाहरी दीवार का एक अंश—यह हिन्दुस्तान के सबसे पुराने निर्माण-कार्य का अवशेषांश माना जाता है। यह दीवार जरासंध के समय में पूर्वैतिहासिक काल में, पत्थर के बड़े-बड़े खंडों से, पहाड़ों के ऊपर, बनाई गई थी। इसकी लम्बाई २५ से ३० मील तक है और चौड़ाई ३ फ़ीट से ५ फीट तक।

आसीद्ब्रह्मपुरी नाम्ना मिथिलायां विराजिता ।
तस्यां लसति धर्मात्मा गौतमो नाम तापसः ॥
अहल्या नाम तत्पत्नी पतिभक्ता प्रियंवदा ।
सर्वलक्षणसम्पन्ना साक्षीत्सर्वाङ्गसुन्दरी ॥

—(स्कन्दपुराण)

गौतमस्याश्रमे याम्ये पातालोत्थितपाथसि ।
स्नात्वा कुण्डे नमेद्भक्त्या यदु पाठफल लभेत् ॥

—(वृहद्विष्णुपुराण)

गौतमाश्रम से कुछ ही दूर 'विभाण्डक' मुनि का आश्रम है, जिसका नाम इस समय 'जगवन' (योगिवन) है—

विभाण्डको महायोगी दक्षिणो निवसत्यसौ ।
गौतमस्याश्रमात्पुण्याद्याम्यपश्चिमकोणके ॥

—(वृहद्विष्णुपुराण)

मिथिला शब्द ही से यह प्रतीत होता है कि केवल अध्यात्म-विद्या में ही नहीं, शस्त्र और शास्त्र दोनों में इसका समान अधिकार था ।

अन्तोबहिश्च सर्वत्र मथ्यन्ते रिपव सदा ।
मिथिला नाम सा ज्ञेया जनकैश्च कृता मही ॥

—(पराशर मैत्रेय सवाद)

अर्थात्—भीतर और बाहर, सब जगह, सब समय, जहाँ पर शत्रुओं का मथन हो, वही जनक निर्मित मिथिला है ।

वाल्मीकीय रामायण में विश्वामित्र से महाराज जनक कहते हैं—

कस्यचित्त्वथकालस्य सांकाश्यादागत पुरा ।
सुधन्वा वीर्य्यवान् राजा मिथिलामवरोधकः ॥
स च मे प्रेषयामास शैव धनुरनुत्तमम् ।
सीतां च कन्यां पद्माक्षीं मह्य वै दीयतामिति ॥
तस्याप्रदानान्महर्षे युद्धमासीन्मया सह ।
स हतो विमुखो राजा सुधन्वा तु मया रणे ॥
निहत्य तं मुनिश्रेष्ठ सुधन्वान नराधिपम् ।
सांकाश्ये भ्रातर शूरमभ्यषिञ्चि कुशध्वजम् ॥

अर्थात्—मिथिला पर घेरा डालनेवाले राजा सुधन्वा ने मेरे पास शिवधनुष

भेज दिया और दबाव डालकर पशाची सीता की याचना की। उसके न देने से मेरे साथ युद्ध हुआ। उस युद्ध मे वे मारे गये। हे मुनिश्रेष्ठ। राजा सुधन्वा को मारकर मैंने साकाश्य मे अपने वीर भ्राता कुशध्वज का अभिषेक किया।

इससे साफ झलकता है कि महाराज जनक विषय-विरागी होते हुए भी राज-काज अथवा सासारिक कर्त्तव्य से विमुख नहीं थे। इसी लिये वे राजर्षि, योगी, जीवन्मुक्त, विदेह इत्यादि विविध उपाधियों से विभूषित थे। तुलसीदासजी ने कहा है—

"योग भोग महँ राखेउ गोई, राम विलोकत प्रगटेउ सोई।"

उसके बाद भी मिथिला में एक से एक अद्वितीय विद्वान् हो गये हैं, जिनकी कीर्त्ति देशव्यापी है। महामहोपाध्याय रघुनन्दन राय की वदान्यता अनुपम है, जिन्होंने दिल्लीश्वर अकबर की सभा मे सब विद्वानों को परास्त कर मिथिला का राज्य पाया था और फिर हाथी के हलके के साथ यहाँ आकर गुरु-दक्षिणा में अपने गुरु महामहोपाध्याय महेश ठाकुर को सारा राज्य दे दिया था। हाथी के हलके के साथ यहाँ उनके आने के सम्बन्ध मे एक पद्य प्रचलित है —

"*आयाते रघुनन्दने गजघटाघण्टारव श्रूयते।*"

घोर सकट के समय नास्तिकों से वैदिक धर्म को बचाने का श्रेय विद्वद्वर कुमारिल भट्ट को है, जिनके मैथिल होने का प्रमाण 'किरणावली' की भूमिका और 'न्यायकणिका' मे मिलता है। महाराष्ट्र के यशस्वी विद्वान् श्रीआपटे और श्रीरामचन्द्र काले भी यह बात स्वीकार करते हैं।

आधुनिक काल मे भी मिथिला की राजधानी 'दरभगा'-नगरी में मिथिलेश का राजप्रासाद, गोशाला और 'पुस्तक-भडार' दर्शनीय वैभव हैं।

वैशाली

उत्तर बिहार मे, मुजफ्फरपुर से दक्षिण पश्चिम, सात कोस की दूरी पर, गडकी के बायें किनारे, 'बसाढ' बहुत प्राचीन स्थान है। अलम्बुषा के गर्भ से उत्पन्न सूर्यवशी राजा इक्ष्वाकु के पुत्र 'विशाल' ने इस नगरी ('विशाला') का निर्माण किया था। इसका 'वैशाली' नाम बहुत पुराना है। वाल्मीकीय रामायण (सर्ग ४४) मे मिलता है—

इक्ष्वाकोस्तु नरव्याघ्र पुत्रः परमधार्मिकः
अलम्बुषायामुत्पन्नो विशाल इति विश्रुतः।
तेन चासीदिह स्थाने विशालेति पुरी कृता॥

…रिया नन्दनगढ़ (चम्पारन) का ईंटों का बना ८० फुट ऊँचा स्तूप जो सात बीघे जमीन को घेरे हुए है। मि० …मथ के अनुसार यह स्तूप बुद्धदेव की अस्थि पर बनाया गया स्मारक है और मि० ब्लाच के अनुसार यह किसी प्राचीन राजधानी का ध्वंसावशेष है।

…लौरिया नन्दनगढ़ (चम्पारन) की वैदिक समाधि भूमि। …का समय ईसवी सन् से ८००—६०० वर्ष पहले का माना …ता है। इसके खोदने पर मनुष्यों की हड्डियाँ और खोपड़ियाँ …ली हैं। चाँदी और सोने की कुछ वस्तुएँ भी प्राप्त हुई हैं।

लौरिया-नन्दनगढ़ (चम्पारन) में वैदिक समाधिभूमि के खोदने से निकली हुई, स्वर्णपत्र पर अंकित पृथ्वी माता की मूर्ति।

'अशोक-स्तम्भ'—
(लौरिया - नन्दनगढ़
चम्पारन), इसकी लम्बाई
३२ फीट ९ इंच है और
गोलाई नीचे ३५.१ इंच
और ऊपर २६ २ इंच है।
इसका स्थापना-काल
ईसवी सन् से २४१ वर्ष
पूर्व है। स्तम्भ के सिरे
पर सिंह की मूर्त्ति है,
जिसकी सजीव रचना
अतीव मनोहारिणी है।
इस पर खुदी हुई ६
प्रशस्तियाँ अक्षर अक्षर
अरेराज (चम्पारन) के
स्तम्भ से मिलती है।

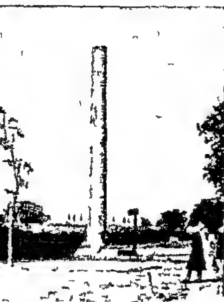

लौरिया अरेराज (चम्पारन) का अशोक-स्तम्भ, जिसे स्थानीय लोग 'लौर' या 'भीमसेन की लाठी' कहते हैं। यह ३६ फीट ६ इंच लम्बा है और इसकी गोलाई नीचे ४१ ८ इंच और ऊपर ३७ ६.इंच है। इस स्तम्भ पर अशोक की सुप्रसिद्ध ६ प्रशस्तियाँ खुदी हुई हैं।

राजा विक्रमादित्य और राजा भोज की राजधानी 'उज्जयिनी' को, बहुत विस्तृत होने के कारण, लोग 'विशाला' भी कहते थे। किन्तु मिथिला की यह 'विशाला' पुरी उससे भी कहीं बड़ी और पुरानी थी। इसी नगरी में जैनियों के चौबीसवें तीर्थङ्कर 'महावीर' का जन्म हुआ था। इस नगरी से गौतम बुद्ध को बहुत ही प्रेम था। कई बार गौतम बुद्ध ने यहाँ आकर अपने उपदेशों से लोगों को तृप्त किया था। यहाँ के लोग भी उनके बहुत भक्त थे।

'वैशाली' का विस्तार हिमालय तक था। तेरह सौ वर्ष पहले चीनी यात्री युवानच्वाग यहाँ आया था। उसके अनुसार उस समय इसका घेरा २० मील का था। नगर के निकट उत्तर की ओर एक 'महावन' था। उसमें देव विमान के आकार का 'कूटागारशाला' नामक एक दोमंजिला विहार था, जिसमें भगवान् बुद्ध रहते थे।

'वैशाली' लिच्छवि-वंशी क्षत्रियों की राजधानी थी। ये लोग बड़े वैभव-शाली और प्रतापी थे। इनकी गणतन्त्र-शासन-प्रणाली अतुलनीय थी। यहाँ सात हज़ार सात सौ राजा थे। यहाँ का शासन एक संघ द्वारा होता था। अब 'वैशाली' का खँड़हर मात्र रह गया है।

अङ्ग

दक्षिण बिहार में आधुनिक भागलपुर और मुङ्गेर जिले प्राचीन अङ्ग देश हैं। महाभारतीय युद्ध के समय यहाँ के राजा कर्ण थे। इनकी वीरता और वदान्यता जगत्प्रसिद्ध है। मुङ्गेर के दुर्ग में इनका चौरा (चत्वर) आज भी अतीत का स्मरण दिला रहा है, जहाँ ये प्रतिदिन सवा मन स्वर्ण दान किया करते थे।

भागलपुर से कुछ दूर, कहलगाँव के पास, गंगा-तट पर, 'विक्रमशिला-' महाविद्यालय का ध्वंसावशेष है। नालन्दा विश्वविद्यालय के बाद इसी का नम्बर आता है। यहाँ चीन, जापान, तिब्बत, स्याम आदि सुदूरवर्त्ती देशों के छात्र शिक्षा पाने आते थे।

सारन और चम्पारन

सारन (छपरा) और चम्पारन (मोतीहारी) जिले पहले जंगल से भरे थे, इस कारण इनका पहला नाम सारङ्गारण्य और चम्पकारण्य था, सारन और चम्पारन इन्हीं के अपभ्रंश जान पड़ते हैं। चम्पारण्य विदेह भूमि के निकट

था। इसलिये उससे इसका घनिष्ठ सम्पर्क था। इसी तपोवन मे बहुत-से ब्रह्मज्ञानी ऋषि और बौद्ध भिक्षु साधना करते थे। कुछ बौद्ध स्तूप अब भी वहाँ विद्यमान हैं। लौरिया-नन्दन ग्राम मे सम्राट् अशोक का स्तम्भ है, जिसपर उनके अहिंसात्मक धर्मोपदेश-वाक्य अंकित हैं। महात्मा गांधी ने भी पहले-पहल अहिंसात्मक सत्याग्रह का शंख चम्पारन मे ही फूँका था। सारन जिले मे भी कई प्राचीन ऐतिहासिक स्थल और तीर्थ के चिह्न अवशिष्ट हैं।※

मगध

'मगध' और 'कीकट' शब्द वेदों मे पाये जाते हैं। ऋग्वेद में जो कीकट है वही अथर्ववेद में मगध है। भाष्यकार यास्क ने इसको अनार्यभूमि कहा है—

अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च।
तीर्थयात्रां विना गच्छेत्पुनः संस्कारमर्हति॥

वायुपुराण के अनुसार मगध मे गया, पुनपुन नदी, च्यवन मुनि का आश्रम, राजगृह-वन इत्यादि कुछ इने-गिने स्थान ही पुण्यभूमि हैं। अथर्ववेद में 'व्रात्य' कहकर मगधवासियों की निन्दा की गई है। 'भविष्य-ब्रह्मखण्ड' नामक पौराणिक ग्रन्थ मे लिखा है—"मगध की उत्तरी सीमा पर गंडकी नदी बहती है, जहाँ हरिहरनाथ महादेव विद्यमान हैं। पश्चिम मे 'चारल गाँव' भोज देश की सीमा पर वर्त्तमान है। पूर्वसीमा पर गङ्गा और दक्षिण मे सूर्यपुर है। कलि मे यहाँ के मनुष्य आचार-हीन होंगे।"

बौद्धधर्म और जैनधर्म का प्रधान केन्द्र मगध रहा है। इसी की गोद मे सिद्धार्थ को शान्ति मिली थी। महावीरस्वामी की निर्वाणप्राप्ति यहीं हुई थी। जिस बौद्धधर्म के प्रचार के लिये ६४००० उपदेशक थे, मठों की संख्या ८४००० थी, वह मगध मे ही फूला-फला था। मगध-सम्राट् अशोक ने ही अपने प्रिय पुत्र और पुत्री तक को धर्मप्रचारार्थ समुद्र-पार भेजा था। जनमेजय के बाद अश्वमेध यज्ञ करने का श्रेय मगध-सम्राट् पुष्यमित्र को ही प्राप्त है। विधर्म्मियों के द्वारा पददलित सनातन धर्म की—शक, हूण, ग्रीक इत्यादि विदेशियों के अत्याचार से पीडित हिन्दू-जाति की—रक्षा मगध के सपूतों ने ही की थी। ऐसी मगध भूमि को अनार्यभूमि कहना उचित नहीं। यह तो धर्मवीरों और युद्धवीरों की भूमि है।

※ सारन जिले के ऐतिहासिक महत्त्व का सूचक एक स्वतन्त्र लेख अन्यत्र प्रकाशित है। —स०

'शक्ति-संगम' तन्त्र में कीकट (मगध) की सीमा इस तरह मानी गई है—

चरणाद्रिं समारभ्य गृध्रकूटान्तकं शिवे।
तावत्कीकटदेशः स्यात्तदन्तर्मगधो भवेत्॥

अर्थात् चुनार से गिद्धौर तक कीकट देश है और उसके भीतर मगध है।

रामायण में 'मगध' और 'गिरिव्रज' दो नाम मिलते हैं। गिरिव्रज मगध की सबसे पुरानी नगरी का नाम है। भगवान् रामचन्द्र के पूर्वज कुशात्मज-वसु ने गंगा और सोन के संगम पर यह नगरी बसाई थी। यथा—

चक्रे पुरवरं राजा वसुर्नाम गिरिव्रजम्।
एषा वसुमती नाम वसोस्तस्य महात्मनः॥
एते शैलवराः पञ्च प्रकाशन्ते समन्ततः।
सुमागधी नदी रम्या मगधान्विश्रुता ययौ॥
पञ्चानां शैलमुख्यानां मध्ये मालेव शोभते।
सैषा हि मागधी राम वसोस्तस्य महात्मनः।
पूर्वाभिचरिता राम सुक्षेत्रा शस्यमालिनी॥

—(वाल्मीकीय रामायण, बालकांड)

पीछे यह नगरी राजा जरासन्ध की राजधानी बनी। वैभार, वृषभ, ऋषिगिरि और चैत्यक नामक पर्वतों से चारों तरफ घिरे रहने के कारण गिरिव्रज तक शत्रुओं का पहुँचना बहुत कठिन था। महाभारत में, सभापर्व के बीसवें अध्याय में, इन बातों का उल्लेख है। जरासन्ध के उत्तराधिकारी बार्हद्रथों के बहुत दिनों तक गिरिव्रज का राज्यत्व करने के बाद इसपर १२८ वर्ष तक शुनक-वंशियों का और ३६० वर्ष तक शिशुनागवंश का अधिकार रहा। इसी वंश के राजा बिम्बिसार के शासनकाल में बुद्धदेव का आविर्भाव हुआ। बुद्ध के उपदेश सुनकर राजा मुग्ध हो गये। राजा के पुत्र अजातशत्रु ने बौद्धधर्म ग्रहण किया। उस समय बिम्बिसार की राजधानी राजगृह में थी। यही स्थान गिरिव्रज है। यून-च्वङ्ग ने लिखा है कि बिम्बिसार ने पहले कुशागार या प्राचीन गिरिव्रजपुर में ही अपनी राजधानी बनाई थी। बहुत दिनों तक दूसरे-दूसरे देशों पर गिरिव्रज का शासन रहा। पुराणों के अनुसार नन्दवंश ने १०० वर्ष, मौर्यवंश ने १३७ वर्ष, शुङ्गवंश ने ११० वर्ष और कण्ववंश ने ४५ वर्ष तक राज किया।

राजगृह के वन में उस समय बहुत-से घास-फूस भी सुगन्धित थे, इसी लिये चीनी परिव्राजक के अनुसार राजगृह का प्राचीन नाम 'सुगन्धितकुशतृण' प्रसिद्ध

काबाडोल (गया) के
कुछ प्रस्तर स्तम्भ

शमशेरगढ़ (गया) में शमशेर खाँ का मकबरा । 'शमशेर खाँ' हिन्दी के प्रख्यात कवि 'रहीम' खानखाना के सुपुत्र जो उनकी दूसरी पत्नी से पैदा हुए थे । इनका मूल नाम 'इब्राहीम खाँ' था । इनकी परवरिश इनके चाचा दाऊद खाँ की थी, जो बिहार के गवर्नर थे । दाऊद खाँ के मरने के बाद, इब्राहीम खाँ, मनिकपुर के और पीछे शाहाबाद सरकार के, फौजदार बनाये गये । जिस समय रहीम खाँ अफगान ने विद्रोह किया, इब्राहीम ने उसका जबरदस्त मुकाबला कर अपने तीर का उसे निशाना बनाया । इनकी बहादुरी पर मुग्ध हो बादशाह ने शमशेर खाँ की उपाधि के साथ इन्हें अजीमाबाद (पटना), अवध और गोरखपुर का सूबेदार बनाया । औरंगजेब के मरने पर इन्होंने शाहजादे का पक्ष लिया और युद्ध में अपने बड़े अज़ीज़ों के साथ १७१२ ई० में शहीद हुए ।

'शक्ति-संगम' तन्त्र में कीकट (मगध) की सीमा इस तरह मानी गई है—

चरणाद्रिं समारभ्य गृध्रकूटान्तकं शिवे।
तावत्कीकटदेशः स्यात्तदन्तर्मगधो भवेत्॥

अर्थात् चुनार से गिद्धौर तक कीकट देश है और उसके भीतर मगध है।

रामायण में 'मगध' और 'गिरिव्रज' दो नाम मिलते हैं। गिरिव्रज मगध की सबसे पुरानी नगरी का नाम है। भगवान् रामचन्द्र के पूर्वज कुशात्मज-वसु ने गंगा और सोन के संगम पर यह नगरी बसाई थी। यथा—

चक्रे पुरवरं राजा वसुर्नाम गिरिव्रजम्।
एषा वसुमती नाम वसोस्तस्य महात्मनः॥
एते शैलवरा पञ्च प्रकाशन्ते समन्ततः।
सुमागधी नदी रम्या मगधान्विश्रुता ययौ॥
पञ्चानां शैलमुख्यानां मध्ये मालेव शोभते।
सैषा हि मागधी राम वसोस्तस्य महात्मनः।
पूर्वाभिचरिता राम सुक्षेत्रा शस्यमालिनी॥

—(वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड)

पीछे यह नगरी राजा जरासन्ध की राजधानी बनी। वैभार, वृषभ, ऋषिगिरि और चैत्यक नामक पर्वतों से चारों तरफ घिरे रहने के कारण गिरिव्रज तक शत्रुओं का पहुँचना बहुत कठिन था। महाभारत में, सभापर्व के बीसवें अध्याय में, इन बातों का उल्लेख है। जरासन्ध के उत्तराधिकारी बार्हद्रथों के बहुत दिनों तक गिरिव्रज का राज्यत्व करने के बाद इसपर १२८ वर्ष तक शुनक-वंशियों का और ३६० वर्ष तक शिशुनागवंश का अधिकार रहा। इसी वंश के राजा बिम्बिसार के शासनकाल में बुद्धदेव का आविर्भाव हुआ। बुद्ध के उपदेश सुनकर राजा मुग्ध हो गये। राजा के पुत्र अजातशत्रु ने बौद्धधर्म ग्रहण किया। उस समय बिम्बिसार की राजधानी राजगृह में थी। यही स्थान गिरिव्रज है। यूएन-चुवङ्ग ने लिखा है कि बिम्बिसार ने पहले कुशागार या प्राचीन गिरिव्रजपुर में ही अपनी राजधानी बनाई थी। बहुत दिनों तक दूसरे-दूसरे देशों पर गिरिव्रज का शासन रहा। पुराणों के अनुसार नन्दवंश ने १०० वर्ष, मौर्यवंश ने १३७ वर्ष, शुङ्गवंश ने ११० वर्ष और कण्ववंश ने ४५ वर्ष तक राज किया।

राजगृह के वन में उस समय बहुत-से घास-फूस भी सुगन्धित थे, इसी लिये चीनी परिव्राजक के अनुसार राजगृह का प्राचीन नाम 'सुगन्धितकुशतृण' प्रसिद्ध

था। जैन-ग्रन्थों मे 'कुशागारपुर' या 'कोपागारपुर' नाम भी मिलते हैं। राजा बिम्बिसार के सदा यहाँ रहने से इसका नाम 'राजगृह' हुआ। यहाँ का 'ऋष्यशृङ्ग-कुड' तीर्थ समझा जाता है। हिन्दुओं का विश्वास है कि मलमास में सब देवता राजगृह चले जाते हैं, इसलिये उस समय वहाँ यात्रियों की बडी भीड़ रहती है।

मगध के विशाल वैभव की चर्चा सारी दुनिया मे फैल गई थी। कहते हैं कि उसी से आकृष्ट होकर सिकन्दर ने भारत पर चढाई की थी। किन्तु मगध-सम्राट् चन्द्रगुप्त के रणकौशल को देखकर विजयी सिकन्दर की भी हिम्मत पस्त हो गई। सिकन्दर के आक्रमण के समय मगध-साम्राज्य का नाम प्राच्यराज्य था। पालवश के प्रथम राजा गोपाल के समय मे मगध 'विहार' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

धर्मपाल के वशज विक्रमशील ने मगध की दूसरी राजधानी बनाई थी, जो विक्रमशिला के नाम प्रसिद्ध हुई।

मगध का इतिहास वास्तव मे भारतवर्ष का इतिहास है। मगधराज जरासन्ध ने अनेक बार स्वय भगवान् कृष्ण से भी लोहा लिया था। ऐतिहासिक युग मे भी मगध मे बडे-बड़े साम्राज्य स्थापित हुए। किन्तु केवल नगी तलवारों को नचाकर या भालों को चमकाकर साम्राज्य-विस्तार करना ही किसी देश का महत्त्व नहीं है। उसके साथ ही वहाँ की राजनीति, विद्वत्ता और ज्ञानचर्चा भी महत्त्वपूर्ण होनी चाहिये। ससार मे भारत का सिर ऊँचा करनेवाला नालन्दा-विश्वविद्यालय इसी मगध-भूमि का अलङ्कार था। ससार के राजनीतिज्ञमडल के आचार्य 'चाणक्य' (कौटिल्य) इसी मगध-भूमि को सुशोभित करते थे। ससार-प्रसिद्ध अद्वितीय प्रतिभा-सम्पन्न पाणिनि की परीक्षा इसी मगध की प्रधान नगरी पाटलिपुत्र मे हुई थी। इसी भूमि मे आचार्यवर्य 'वर्ष' से इनकी शिक्षा-दीक्षा भी हुई थी।

अस्ति पाटलिक नाम पुर नन्दस्य भूपतेः।
तत्रास्ति वर्षो वर्षाख्यो विप्रस्तस्मादवाप्स्यथ।
इत्यस्माभिर्विद्यामतस्तत्र युवाभ्यां गम्यतामिति॥

—(कथासरित्सागर, १ लम्बक, २ तरग)

विहार के नगरों मे इस समय 'पटना' सबसे बढकर है। यह नगर बहुत ही प्राचीन है। इसको मगध का शिरोमुकुट कहना भी अत्युक्ति नहीं है। पाटलिपुत्र, पुष्पपुर, कुसुमपुर आदि इसके अनेक प्राचीन नाम हैं। इस समय यह समस्त विहार की राजधानी है। यह सुयोग इसको पहली ही बार नहीं मिला है। बहुत समय तक

आर्यभट

इसको भारत साम्राज्य की राजधानी बनने का भी सौभाग्य प्राप्त था। कभी इसका प्रताप-सूर्य सारे संसार में चमकता था। इसने अनेक महान् राज्यों का उदय और अस्त देखा है। अपने बुद्धि विभव से सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के घूमने का सिद्धान्त निश्चित करनेवाले 'आर्यभट्ट' यहीं के थे। अपनी कठोर शास्ति से अत्याचारियों का दमन करनेवाले दसवें सिक्ख-गुरु वीरशिरोमणि गुरु गोविन्दसिंह को जन्म देनेवाली यही वीरप्रसविनी नगरी है। दक्षप्रजापति के यज्ञकुंड में शरीर-त्याग करनेवाली 'सती' की देह को कन्धे पर लेकर जब शोकविह्वल शंकर उन्मत्तवत् परिभ्रमण करने लगे थे तब सती का 'पट' यहीं गिरा था। आज भी 'पटनदेवी' का मंदिर बहुत प्रसिद्ध दर्शनीय स्थान है। 'पटना' नाम का उसीसे सम्पर्क जान पड़ता है। मिट्टी के नीचे से खोदकर निकाली हुई पुराने जमाने की बहुत-सी चीजें इस नगरी की प्राचीन कीर्त्ति की याद दिला रही हैं।

पटना जिले के 'मनेर' (मणिगढ़) गाँव में वार्त्तिककार कात्यायनजी का जन्म हुआ था। आज भी वहाँ जीर्णशीर्ण अवस्था में कात्यायनी देवी का मंदिर विद्यमान है। उन्हीं की आराधना से जन्म होने के कारण इनका नाम कात्यायन पड़ा था।

आरा [शाहाबाद]

वर्त्तमान आरा या शाहाबाद जिले का ही पुराना नाम कारूष है। यह स्थान बहुत ही प्राचीन और ऐतिहासिक है। यह ऋषियों की तपस्थली, वीरों की रणस्थली, ताड़का-मारीच आदि राक्षसों की क्रीडास्थली है। वैवस्वत मनु के पुत्र करूष के नाम पर यह भूखंड कारूष कहलाया। रामायण में गङ्गातट पर इसका अवस्थान लिखा है। पहले यह प्रदेश अरण्यमय था। ताड़का राक्षसी यहाँ रहती थी। महर्षि विश्वामित्र जब ताड़कावध के लिये राम और लक्ष्मण को साथ लेकर गङ्गा और सरयू के संगम पर आये तब दूसरे दिन सवेरे नित्यकृत्य समाप्त कर नौका पर चढ़ गङ्गा के दक्षिण पार चले। राह में उन्होंने घोर जंगल देखा। रामचन्द्रजी ने विश्वामित्र से पूछा—महामुने! इस वन का क्या नाम है? इसपर विश्वामित्र ने कहा—

एतौ जनपदौ स्फीतौ पूर्वमास्तां नरोत्तम।
मलदाश्च करूपाश्च देवनिर्माणनिर्मितौ॥

—(वाल्मी०, बाल० २४ सर्ग)

गुरु गोविन्द सिंह

इसको भारत साम्राज्य की राजधानी बनने का भी सौभाग्य प्राप्त था। कभी इसका प्रताप-सूर्य सारे ससार मे चमकता था। इसने अनेक महान् राज्यों का उदय और अस्त देखा है। अपने बुद्धि-विभव से सूर्य के चारो ओर पृथ्वी के घूमने का सिद्धान्त निश्चित करनेवाले 'आर्यभट्ट' यहीं के थे। अपनी कठोर शास्ति से अत्याचारियों का दमन करनेवाले दसवें सिक्ख-गुरु वीरशिरोमणि गुरु गोविन्दसिंह को जन्म देनेवाली यही वीरप्रसविनी नगरी है। दक्षप्रजापति के यज्ञकुंड में शरीर-त्याग करनेवाली 'सती' की देह को कन्धे पर लेकर जब शोकविह्वल शकर उन्मत्तवत् परिभ्रमण करने लगे थे तब सती का 'पट' यहीं गिरा था। आज भी 'पटनदेवी' का मदिर बहुत प्रसिद्ध दर्शनीय स्थान है। 'पटना' नाम का उसीसे सम्पर्क जान पड़ता है। मिट्टी के नीचे से खोदकर निकाली हुई पुराने जमाने की बहुत-सी चीजें इस नगरी की प्राचीन कीर्ति की याद दिला रही हैं।

पटना जिले के 'मनेर' (मणिगढ) गॉव मे वार्त्तिककार कात्यायनजी का जन्म हुआ था। आज भी वहाँ जीर्ण शीर्ण अवस्था मे कात्यायनी देवी का मन्दिर विद्यमान है। उन्हीं की आराधना से जन्म होने के कारण इनका नाम कात्यायन पड़ा था।

आरा [शाहाबाद]

वर्त्तमान आरा या शाहाबाद जिले का ही पुराना नाम कारूष है। यह स्थान बहुत ही प्राचीन और ऐतिहासिक है। यह ऋषियों की तपस्थली, वीरों की रणस्थली, ताडका-मारीच आदि राक्षसों की क्रीडास्थली है। वैवस्वत मनु के पुत्र करूप के नाम पर यह भूखड कारूप कहलाया। रामायण मे गङ्गातट पर इसका अवस्थान लिखा है। पहले यह प्रदेश अरण्यमय था। ताडका राक्षसी यहाँ रहती थी। महर्षि विश्वामित्र जब ताडकावध के लिये राम और लक्ष्मण को साथ लेकर गङ्गा और सरयू के सगम पर आये तब दूसरे दिन सवेरे नित्यकृत्य समाप्त कर नौका पर चढ गङ्गा के दक्षिण पार चले। राह मे उन्होंने घोर जगल देखा। रामचन्द्रजी ने विश्वामित्र से पूछा—महामुने! इस वन का क्या नाम है? इसपर विश्वामित्र ने कहा—

एतौ जनपदौ स्फीतौ पूर्वमास्तां नरोत्तम।
मलदाश्च करूपाश्च देवनिर्माणनिर्मितौ॥
—(वाल्मी०, बाल० २४ सर्ग)

अर्थात् प्राचीन समय में यहाँ 'मलद' और 'करूष' नाम के दो देव-निर्मित जनपद थे।

सुन्द की स्त्री ताडका और उसके पुत्र मारीच ने इन दोनों देशों का ध्वस किया था, यह सुनकर राम और लक्ष्मण ताडका को मारकर महात्मा वामन के आश्रम में पधारे। रामचन्द्र के प्रति विश्वामित्र की उक्ति—

एष पूर्वाश्रमो राम वामनस्य महात्मनः।
सिद्धाश्रम इति ख्यातः सिद्धोऽह्यत्र महात्मन ॥

—(वाल्मी०)

यह सिद्धाश्रम बक्सर के पास गंगातट पर अब भी प्रसिद्ध है।

'आरा' अरण्य का अपभ्रंश है। उसका दूसरा पुराना नाम एकचक्रापुरी भी कहते हैं। लाक्षागृह से निकलकर पांडवों ने व्यासजी की आज्ञा से इसी पुरी में एक ब्राह्मण के घर आश्रय लिया था। इसके समीपवर्त्ती अरण्य में रहनेवाले बकासुर को मारकर भीम ने यहाँ की जनता का उद्धार किया था। 'आरा' नगर से एक कोस दक्षिण, नहर के किनारे, 'बकरी' गाँव में अब भी एक बहुत ऊँचा टीला है, जिसे वहाँ के लोग 'बकासुर का गढ़' कहते हैं।*

आरा के रेलवे-स्टेशन के पास डुमराँव के महाराज के बगीचे में एक विशाल प्रस्तर-मूर्त्ति है जिसको वहाँ के लोग बाणासुर की मूर्त्ति बतलाते हैं। आरा से चार-पाँच कोस पच्छिम मसाढ गाँव में एक बहुत विस्तृत तालाब है जिसे लोग बाणासुर की कन्या उषा का पोखरा कहते हैं। उसके पास के मिट्टी के टीले से अनेक शिवलिङ्ग निकले हैं, जो आसपास के गाँवों में मौजूद हैं। लोगों का अनुमान है कि परम शिवभक्त बाणासुर की राजधानी (शोणितपुर) यहीं थी।

'आरा' के विषय में कुछ लोगों का यह भी कहना है कि पुराण-प्रसिद्ध राजा मयूरध्वज ने धर्म-परीक्षा में अपने पुत्र को यहाँ 'आरा' से चीरा था, इसी लिये इसका नाम 'आरा' हुआ। किन्तु छपरा में भी मयूरध्वज की राजधानी का चिह्न है। वहाँ भी इस प्रकार की किंवदन्ती है। यह स्थान 'चीराँद छपरा' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें सन्देह नहीं कि आरा और छपरा के भूभाग में उनका राज्य था। इसके अतिरिक्त एक और भी पुराण-प्रसिद्ध मयूरध्वज हो गये हैं, जिनका राज्य मुरादाबाद (युक्तप्रांत) के पास होने का अनुमान किया जाता है।

इसी जिले में वह प्रसिद्ध 'भोजपुर' परगना है, जिसके विषय में लोग यहा

* 'आरा-पुरातत्त्व' (पं० सकलनारायण शर्मा)—आरा ना० प्र० सभा।

कहते हैं कि उज्जयिनी के विद्या-प्रेमी राजा भोज के वंशज 'गया' श्राद्ध करने आये थे और रास्ते में यहाँ के जंगल में उनलोगों ने कुत्ते-खरगोश और चूहे-बिल्ली को आपस में लड़ते देखा, जो लड़ते-लड़ते मर गये, किन्तु आखिरी दम तक उनकी हिम्मत न टूटी। यह देख इस भूमि को क्षत्रियोचित वीरभूमि समझकर उन लोगों ने सेना के साथ यहीं पड़ाव डाला। तब से इस भूभाग का नाम भोजपुर पड़ा। इन्हीं उज्जैन क्षत्रियों के वंशज राजा रुद्रप्रतापनारायण ने भोजपुर गाँव बसाकर वहाँ 'नवरत्न' नाम का महल बनवाया, जिसका भव्य भग्नावशेष अद्यापि वर्त्तमान है।

इसी उज्जैन-वंश के वीर-पुङ्गव योद्धा थे जगदीशपुर के बाबू कुँवर सिंह, जिन्होंने सिपाही-विद्रोह में उपर्युक्त स्वभाव का परिचय दिया था। कहते हैं कि इनके पूर्वजों के यहाँ मधु साहु नाम के एक कोषाध्यक्ष थे। यह वही समृद्धिशाली मधु साहु हैं, जिन्होंने शेरशाह को हुमायूँ से लड़ने के लिये धन दिया था। इतिहास-प्रसिद्ध हेमू इसी वंश के साहसी सुपूत थे। इस वंश की एक शाखा मुजफ्फरपुर जिले के 'राघाउर' गाँव में है, जिसमें श्रीरामलोचनशरण बिहारी का जन्म है।

सन् १६२३ ई० में अपने पिता से रुष्ट होकर शाहजहाँ ने बिहार में आकर जहाँ खीमा डाला था उसी ढाई बीघे जमीन का नाम 'शाहाबाद' हुआ। पुराने सरकारी नक्शों में भी 'आरा' नगर की उस जगह का यही नाम दर्ज है। पीछे वही जिले के नाम से मशहूर हुआ।

मुसलमानी साम्राज्य के आरम्भ-काल में इस जिले की गिनती अवधप्रान्त में थी। उस समय अवध की सीमा सोन नदी के पास तक थी। अब भी वहाँ एक गाँव 'सरौंवा' है, जो 'सरहदे अवध' का विकृत रूप है।

यह जिला मगध के अंतर्गत न होते हुए भी मुसलमानी राज्य-काल के पहले मगध-साम्राज्य के अधीन था। इसलिये इसकी गिनती बिहार में होने लगी।

जो हो, बक्सर इस जिले में बहुत ही प्रसिद्ध स्थान है। इसका पहला नाम 'वेदगर्भ' था, क्योंकि सृष्टि के आदि में सबसे पहले यहीं वेद का प्रकाश हुआ था। यहाँ गंगातट पर विश्वामित्र और रामचन्द्रजी की स्थापित की हुई शिव पिंडी है तथा सेंट्रल जेल के पास पूर्वोक्त वामनाश्रम (सिद्धाश्रम) के स्मारक स्वरूप वामनेश्वर महादेव हैं।

बक्सर-सबडिवीजन में 'रघुनाथपुर' और 'ब्रह्मपुर' उल्लेखनीय स्थान हैं। महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी घूमते घूमते रघुनाथपुर आकर ठहरे थे।

इस गाँव का पहला नाम 'चेलयात' था, गोसाईंजी ने नया (रघुनाथपुर) नाम करण किया। इस गाँव से एक कोस उत्तर 'ब्रह्मपुर' गाँव मे पश्चिम द्वार का एक विशाल शिव-मन्दिर है जैसा और कहीं भी नहीं देखने मे आता। परम्परा से ऐसी किंवदन्ती है कि ब्रह्माजी का स्थापित यह शिवलिङ्ग है। कहते हैं कि कासिम अली नामक किसी मुसलमान शासनाधिकारी ने जब मदिर तोड़ना चाहा, तब गभीर गर्जन-सहित उसका द्वार पश्चिम तरफ फिर गया, जिसे देख डरकर वह भाग गया। जो हो, इस मन्दिर का भीतरी भाग अत्यन्त प्रशस्त है तथा शिवलिङ्ग भी विशाल है। फागुन और वैसाख की शिवरात्रि पर यहाँ बहुत बडा मेला - हुआ करता है, जो बिहार-भर मे प्रसिद्ध है। ब्रह्मपुर के पास ही 'काँट' गाँव है। यहाँ भी तुलसीदासजी पधारे थे। बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने इन गाँवों को बलिया जिले मे लिखा है, पर ये शाहाबाद मे ही हैं।

आदर्श सती 'महती' नाम की ब्राह्मणी इसी जिले की थी, जो कामातुर हैहयवशी राजा भूपतिदेव से बलात् शरीर-स्पर्श होने के कारण अनुताप से स्वय जलकर मर गई। 'बिहिया'-स्टेशन (ई० आइ० आर०) के पास जगल मे 'महथिन दाई' का मदिर अब भी विद्यमान है, जो बडा सिद्ध स्थान माना जाता है।

इस जिले का 'रोहतासगढ'-किला भी बहुत प्रसिद्ध है। यह दुर्ग पहाड (विन्ध्य-श्रेणी) पर है, जो समुद्र-तल से १४६० फीट ऊँचा है। कहा जाता है कि सूर्यवशी राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व ने इसका निर्माण करवाया था। लोग इसका व्यास चौदह कोस का बतलाते हैं। इसके आसपास की जङ्गली जातियों—चेरो, खरवार, ओराँव आदि—का कहना है कि हमलोग सूर्यवशी क्षत्रिय हैं। वे कहा करते हैं कि १५३६ ई० मे शेरशाह ने हुमायूँ से लड़ते समय यहाँ के क्षत्रिय राजा से अपने परिवार की रक्षा के लिये इस किले मे शरण माँगी थी और इसी व्याज से इस किले पर दखल जमाया था।

इस जिले का ससराम शहर भी ऐतिहासिक स्थान है। वहाँ चन्दनपीड की पहाड़ी गुफा 'चिराग-दीन' मे अशोक की आज्ञा खुदी है, जिसमे महात्मा बुद्ध के निर्वाण की तिथि आदि भी अकित है। वहाँ एक बहुत बडे पक्के तालाब में शेरशाह का दर्शनीय मकबरा (समाधि-मदिर) है। ससराम से थोड़ी दूर पर एक पहाड़ी गुफा में गुप्तेश्वरनाथ महादेव हैं। शिवपुराण मे इनका वर्णन आता है। लगभग आध मील तक पहाड की एक तग सुरग में अँधेरी राह चलने पर इनके दर्शन होते हैं। बहुत दूर-दूर से इनके दर्शनार्थी आते हैं।

गरवाए

आरा नगर में सन् १८५७ ई० के सैनिक विद्रोह के कुछ स्मारक चिह्न हैं, जिन्हें देखने के लिये सन् १६१२ ई० में, दिल्ली में राज्याभिषेक हो जाने के बाद, स्वयं सम्राट् पंचम जार्ज पधारे थे। यहाँ जैनियों के अनेक बड़े-बड़े मंदिर भी हैं जिनके दर्शनों के लिये दूर-दूर से जैनी तीर्थयात्री आते हैं।

इस जिले के 'भभुआ' सबडिवीजन और परगना चैनपुर में 'श्री हरसू ब्रह्म' का स्थान अत्यन्त प्रसिद्ध और प्राचीन है। ये बड़े तेजस्वी ब्रह्म हैं। इनकी महिमा के विषय में हिन्दी के प्रख्यात लेखक स्वर्गीय प्रोफेसर रामदास गौड़ एम० ए० ने बहुत कुछ लिखा है। मिर्जापुर, बनारस, गाजीपुर, जौनपुर, बलिया आदि युक्तप्रान्तीय पूर्वी जिलों के लोग भी यहाँ आकर अपना विश्वास और मनोरथ सफल करते हैं।

परिशिष्ट

बिहार नदीमातृक देश है। इसलिये यहाँ के अधिकांश भूभाग में उर्वरा शक्ति अधिक है। इस प्रान्त की भूमि पश्चिमी प्रान्तों की अपेक्षा अधिक शस्य-श्यामला है। यहाँ असंख्य प्रकार के उत्तम धान पैदा होते हैं। यहाँ के फलों में आम और लीची विशेष प्रसिद्ध हैं। जलफलों में मखाना अत्युत्तम फल है, बिहार छोड़कर इसकी उपज संसार में और कहीं नहीं होती।

बिहार में बहुत-से बड़े-बड़े मेले होते हैं। पूर्णियाँ जिले में मेलों की संख्या सबसे बढ़कर है। वहाँ बरसात-भर एक स्थान से उठकर दूसरे स्थान में मेला लगा करता है। किन्तु सारन (छपरा) जिले का सोनपुर का मेला सबसे प्रसिद्ध है। इसका नाम 'हरिहरक्षेत्र' है। गंगा और गंडक के संगम पर हरिहरनाथ महादेव का मन्दिर है। पुराण के अनुसार गजग्राह का युद्ध यहीं हुआ था। यह एक प्रधान तीर्थ समझा जाता है। पुराणों के सिवा रामायण आदि ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख है। यहाँ कार्त्तिक-पूर्णिमा को बहुत बड़ा मेला लगता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष के श्रीमान्, साधु-सन्यासी, व्यापारी और दर्शक यहाँ जुटते हैं। यह 'छतर का मेला' कहलाता है। बिजली-बत्ती और पानी के नल तथा सड़कों का प्रबन्ध रहता है। लगभग एक महीने तक बड़ी चहल-पहल और धूमधाम रहती है। संसार में इस मेले का दूसरा स्थान है। सोनपुर का रेलवे-प्लेटफार्म भी दुनिया में सबसे बड़ा कहा जाता है।

बिहार में खनिज पदार्थों और उद्योगधंधे के साधनों का भी बाहुल्य है। 'जमशेदपुर' (टाटानगर) का लोहे का कारखाना समस्त एशिया में प्रसिद्ध

और भारत में अद्वितीय है। शाहाबाद जिले के 'डिहरी' नामक स्थान में, सोन नदी के किनारे, 'डालमिया-नगर' बहुत बड़ा उद्योग-केन्द्र बन गया है। टाटा के कारखाने की तरह यह कारखाना भी बिहार का वैभव बढ़ानेवाला है।

महात्मा गांधी के चरखा-खादी-आन्दोलन में भी बिहार का मिथिला-प्रान्त विशेष सहायक सिद्ध हुआ है। अखिलभारतीय चरखासंघ की बिहार-शाखा का प्रधान केन्द्र मधुबनी (दरभंगा) में है, जहाँ मिथिला के हस्तशिल्प और कुटीर-शिल्प का वैभव देखते ही बनता है। दरभंगा जिले के कथवार-विष्णुपुर ग्राम के जयगोविन्द मिश्र की माता नागरि देवी ने २५० नम्बर का सर्वोत्तम सूत कातकर हरिपुरा-कांग्रेस में सबसे प्रथम पारितोषिक प्राप्त किया था। उक्त महाशय की पत्नी श्रीमती वागीश्वरी देवी ने तो रामगढ़-कांग्रेस में ४५० नम्बर का सूत कातकर सबको चकित कर दिया था। महात्मा गान्धी ने इन सूतों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए स्पष्ट कहा था कि अभी तक इस तरह के बारीक सूतों से कपड़े तैयार करने के लिये किसी यन्त्र का निर्माण नहीं हुआ है। मिथिला में आज भी बहुत बारीक और सुन्दर जनेऊ बनता है जिसका एक जोड़ा हरे चने की ढेंढी के छिलके में अँट जाता है।

भारत की प्रसिद्ध वस्तुओं में शेरशाह का 'ग्रैंडट्रंक रोड' नामक राजपथ भी है, जिसका बहुत बड़ा भाग बिहार के दक्षिणी खंड में पड़ता है। किंवदन्ती है कि सम्राट् अशोक-निर्म्मित राजपथ का ही वृहत्संस्कार कर शेरशाह इस महान् कीर्त्ति का भागी हुआ।

बिहार के वैभव-स्वरूप, हिन्दू-जाति के लोकमान्य नेता, दरभंगा के स्वर्गीय महाराज रमेश्वरसिंह बहादुर, हरद्वार में गंगा-नहर का बाँध कटवाकर, गङ्गा के रुके हुए प्रवाह को फिर से भगीरथ-खात में लाकर, 'अपर भगीरथ' कहलाये।

मिथिला का पञ्जी-प्रबन्ध भी बिहार का एक प्राचीन वैभव है। मिथिला में शिवसिंह और हरिसिंहदेव बड़े यशस्वी राजा हो गये हैं। विद्यापति इन्हीं शिवसिंह के सभा-पंडित थे। मिथिला में इनकी अनेक कीर्त्तियाँ हैं। इनका खुदवाया हुआ एक कोस का एक विराट पोखर (सरोवर) है जो 'घोड़दौड़' या 'रजोखर' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके सम्बन्ध की एक कहावत है—

"पोखरि रजोखरि, और सब पोखरा, राजा शिवसिंह, और सब छोकरा"

हरिसिंहदेव के शासनकाल में ही एक यज्ञ हुआ था, जिसमें प्रत्येक मैथिल ब्राह्मण और मैथिल कर्ण-कायस्थ का पूरा वंश-परिचय लिखा गया था, और

रोहतासगढ़ (शाहाबाद) के किले का [illegible]

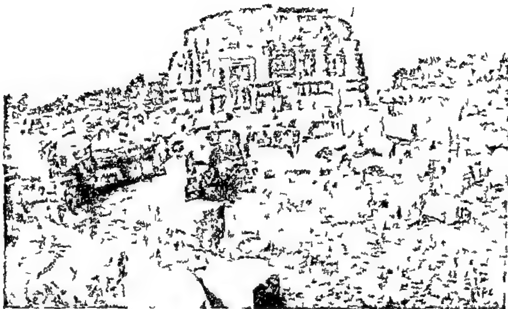

६०० फीट ऊँची पहाडी पर, भभुआ (शाहाबाद) से ७ मील दूर, रामगढ के निकट गुप्तकालीन मुन्डेश्वरी मन्दिर का भग्नावशेष, जिसकी अवस्थिति एक शिला लेख के अनुसार ६३५ ई० तक की सिद्ध है।

मुन्डेश्वरी-मन्दिर (शाहाबाद) में पाये गये शिलाखंड में खोदी हुई एक मूर्त्ति जिसकी सुन्दर रचना अतीव मनोमुग्धकर है।

[illegible] हुआ। [illegible] से, [illegible] मैथिल ब्राह्मण और [illegible] मिलने पर व्यवस्था- [illegible] है। [illegible] पर 'पंजीकार' [illegible] है। [illegible] 'सिद्धान्त' लिखकर अपना हस्ताक्षर कर [illegible] है। [illegible] वैवाहिक व्यवस्था और [illegible]।

इस तरह बिहार के [illegible] अनेक विषय हैं, जिनमें बिहार के प्राचीन [illegible] है।

सरोज सौरभ

[राजा कमलानन्द सिंह 'साहित्य सरोज' के साहित्यिक संस्मरण]

पण्डित जनार्दन झा 'जनसीदन'

सरस अभंग राग-रंग सों सने ही रहैं,
सुजस बखानैं कवि जाके गुन ओज को।
सुमन असेष में विसेष अनुमानि जाहि,
बिबुध चढावैं सीस गहि मन मौज को॥
कोमल न जासों 'जनसीदन' जहान बीच,
कमला दिखावै कृपा जापै रोज रोज को।
ताप कों हरनवारो सीतल करनवारो,
फैलि रह्यौ चारों ओर 'सौरभ सरोज' को॥

उपोद्घात

जब मेरी उम्र २७ वर्ष की थी, तब मैं जैंतपुर (मुजफ्फरपुर) के महन्त चौधरी रघुनाथदासजी की छत्रछाया में रहकर सुख से समय बिता रहा था। उन्हीं दिनों, सन् १८९८ ई० में, कानपुर से पंडित मनोहरलाल शर्मा के सम्पादकत्व में 'रसिकमित्र' नामक समस्यापूर्त्ति का एक पत्र प्रकाशित होने लगा था। उसमें समस्याएँ दी जाती थीं। कवि भेजते थे। पूर्त्तियाँ छपती थीं। सम्पादक महोदय कवितानुरागी मनोविनोदार्थ 'रसिकमित्र' उनके पास भेजते थे। वे भी चन्दा दिया

उसी समय कानपुर से राय देवीप्रसादजी ने निरीक्षकता में 'रसिक-वाटिका' नामक समस्यापूर्त्ति पत्रिका और भी निकलने लगी थी। परन्तु 'रसिकमित्र' का था

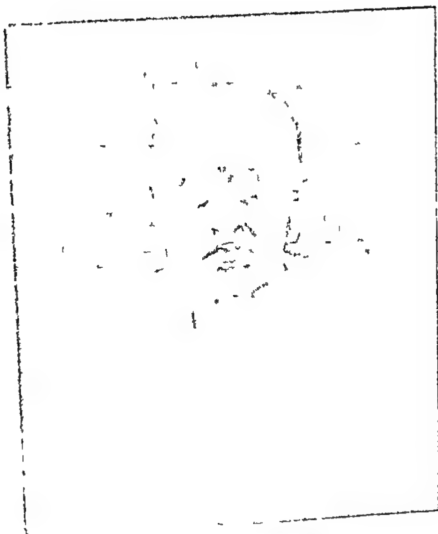

पं० जनार्दन झा 'जनसीदन'
[द्विवेदी-युग के बिहार के प्रतिनिधि लेखक]

श्री 'जनसीदन'जी के सुपुत्र प्रोफेसर श्रीहरिमोहन झा, एम्० ए०

कि भारतवर्ष के प्राय सभी प्रान्तों के कवि तथा कतिपय विदेशस्थ कवि भी अपनी पूर्त्तियाँ उसमे भेजते थे। समय समय पर समस्या-पूर्त्तियों की समालोचना भी निकलती रहती थी।

जैतपुर के महन्तजी के पास भी 'रसिकमित्र' आता था। वहाँ के मिडिल इंग्लिश स्कूल के कोई-कोई शिक्षक भी उसमें अपनी पूर्त्तियाँ भेजा करते थे। एक दिन महन्तजी ने वह मासिक पत्र मुझको देखने दिया और कहा कि इसमें जो समस्या छपी है, उसकी पूर्त्ति करके सम्पादक के पास भेज दीजिये। मैं उनकी आज्ञा मानकर उस पत्र को अपने वासस्थान पर ले गया। देखा कि श्रीनगर (पूर्णियाँ) के राजा कमलानन्द सिंह 'साहित्य-सरोज' की तथा उनके आश्रित कवियों की पूर्त्तियाँ भी उसमे छपी हैं। मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ कि मैथिल-समाज मे एक ऐसे भी धनी-मानी महान् कवितानुरागी पुरुष है, जो स्वय कविता करते हैं और कवियों के आश्रयदाता भी हैं। राजा साहब का नाम उसी समय मेरे हृत्पट पर अङ्कित हो गया और मैंने उनसे मिलने का मन मे सकल्प कर लिया।

स्वर्गीय पडित जीवनाथ ठाकुर, जो स्व० प० देवीकान्त ठाकुर के पिता और अयरी-निवासी प० मुक्तिनाथ ठाकुर के छोटे भाई थे, एक बार महन्तजी से मिलने आये थे। मेरी ही कोठरी मे ठहरे और महीनों वहाँ रह गये। आप सस्कृत के अच्छे विद्वान थे। तन्त्रशास्त्र मे आपकी विशेष प्रगति थी। आपने 'रसिकमित्र' में छपी समस्या को सस्कृत पद मे परिवर्तित करके संस्कृत-पद्य म उसकी पूर्त्ति की थी। श्लोक आप शीघ्र बना लेते थे। आपने महन्तजी को अपनी पूर्त्ति सुनाई और उसकी व्याख्या की। सुनकर महन्तजी तथा उनके आश्रित विद्वान बड़े प्रसन्न हुए। चलने के समय महन्तजी ने आपकी अच्छी विदाई की।

'रसिकमित्र' के जिस अङ्क मे मुझे राजा साहब का परिचय मिला था, उसमे समस्या थी 'गाय के' जिसकी पूर्त्ति मैंने दो कवित्तों में की थी—

भारतप्रसिद्ध शुचि विद्या गुन धाम जामें,
रसिक-सुमित्र सर सोहै सरसाय के।
सरस कवित्त जलपूरन विराजि रह्यौ,
सुकवि अनेक हस जामें रहैं छाय के॥
विकच विलोकि एक 'साहित-सरोज' तामें,
गुञ्जत मलिंद मन० मेरो हरषाय के।

धन्य रसिकेस* हैं दिनेस 'जनसीदन' जू,
कुकवि हिये को तम दीन्हों बिलगाय कै ॥१॥
जाती तजि कन्त को न दासिन बुलाती जऊँ,
ननदी रिसाती रहि जाती है चुपाय कै।
हीय हुलसाती ना सकाती 'जनसीदन' त्यों,
सखिन समाज हूँ सों रहति छिपाय कै।
मैन-मदमाती अंग-अंग उमगाती रस-
बचन सुनाती सकुचाती मुसुकाय कै।
धन्य जग जाहि ऐसी प्रेमरंग-राती सति,
सोवै या हिमन्त राती छाती सों लगाय कै ॥२॥

जब ये दोनों कवित्त 'रसिकमित्र' में छपकर राजा साहब की नजर से गुजरे, वे बड़े प्रसन्न हुए—यह उनके प्राइवेट सेक्रेटरी के हाथ की लिखी धन्यवाद-सूचक चिट्ठी से मुझे ज्ञात हुआ।

प्रतिवर्ष दुर्गा-पूजा के अवसर पर श्रीनगर मे पहलवान लोग जुटते थे, कुश्तियाँ होती थीं। दगल देखने के लिये दूर-दूर से दर्शक आते थे। जैंतपुर के पहलवान भी वहाँ जाते थे और कुश्ती मे विजय प्राप्त करके अच्छा पुरस्कार पाते थे। उनलोगों के मुँह से राजा साहब की तारीफ सुनकर मेरा मन उनसे मिलने के लिये और भी उत्कठित हो उठा।

आखिर मैंने महन्तजी से कुछ दिनों की छुट्टी लेकर श्रीनगर जाने का सकल्प किया। मेरा इरादा पहले बनैली जाने का हुआ, क्योंकि इसके पूर्व मैं यह भी सुन चुका था कि बनैली (रामनगर) के प्रसिद्ध राजा पद्मानन्द सिंह भी बड़े उदार हैं और कवियों का अच्छा सम्मान करते हैं।

मैं छुट्टी लेकर रामनगर गया। बरसात का आरम्भकाल (आषाढ) था। धर्मशाला मे जाकर ठहरा। मेरे आने की खबर राजा पद्मानन्द सिंह को दी गई। उन्होंने दूसरे दिन सवेरे मुझे बुला भेजा। मैं उनसे जाकर मिला। जो कवित्त उनकी तारीफ मे बनाकर मैं ले गया था, उन्हें सुनाया। बहुत प्रसन्न हुए। मेरा परिचय पूछा। मैंने अपना परिचय दिया। जैतपुर के महन्तजी के विषय में

* 'रसिकमित्र' के सम्पादक प० मनोहरलाल शर्मा कविता में अपना उपनाम 'रसिकेश' लिखा करते थे।—ज० झा

(देखो—पृष्ठ ४१०)

१

२

३

१
श्रीनगर (पूर्णिया) के अधिपति
साहित्य सेवी
स्वर्गीय राजा कमलानन्द सिंहजी

२
राजा कमलानन्द सिंहजी के अनुज
स्व० कुमार कालिकानन्द सिंहजी

३
वर्तमान श्रीनगराधीश
कुमार गंगानन्द सिंह, एम० ए०

बाईं ओर—स्वर्गीय महाराजाधिराज सर रमेश्वर सिंह, दरभंगा
दाहिनी ओर—स्व० रायबहादुर रामानुग्रहनारायण सिंह, मदनपुरा

उन्होंने बहुत-सी बातें पूछीं। मैंने सबका उचित उत्तर दिया। उन्हें यह जानकर विशेष हर्ष हुआ कि मैथिल-समाज का एक नवयुवक व्रजभाषा में ऐसा अच्छा कवित्त बनाता है। मैंने जो कवित्त सुनाये थे, उनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं—

जानें सब कोऊ रामनगर - नरेश ऐसो,
दूसरो न कोऊ नृप दीन - दुःखहारी है।
आज लौं न देख्यौ निज नैनहू न कानों सुन्यौ,
आपके समान जग दूजो उपकारी है।
कहै 'जनसीदन' बेहाल जाहि देखैं ताहि,
करहिं निहाल दया दीह उर धारी है।
कोऊ सरनागत ह्वै अरज लगावै ताकी,
बिपद रहै ना कवि कीरति प्रचारी है॥१॥
होती गंगधार तो समाती यह जटा बीच,
जानि ना परति गति स्वच्छता सजी की है।
कोऊ गंधसार में घनेरो घनसार घोरि,
लेपन बनाय भेजि कीन्ही भक्ति जी की है।
कैधौं मुकुता को पुंज मानि या हिमालय को,
पंक्ति राजहंसन की जुटी सो छटा नीकी है।
आयो कछु ज्ञान में न ध्यान करि जायो सिव,
कीरति बनैली - पति पद्मानन्दजी की है॥२॥

मेरी कविता सुनकर राजा साहब और दरबार के पंडित तथा कवि बड़े प्रसन्न हुए। राजा साहब उसी दिन पुर्नियाँ जानेवाले थे। उनके प्राइवेट सेक्रेटरी ने मुझे उनके साथ पुर्नियाँ चलने की सूचना दी। किन्तु मेरा तो श्रीनगर जाना भी जरूरी था। इसलिये मैंने उनसे यह वादा किया कि कुछ दिनों के बाद फिर राजा साहब की सेवा में हाजिर होऊँगा। इस प्रस्ताव को उन्होंने स्वीकार कर लिया।

रामनगर से श्रीनगर छ मील दूर है। सड़क अच्छी है। साँझ होते-होते अपने नौकर के साथ पैदल ही चलकर वहाँ पहुँच गया। उसी समय राजा कमलानन्द सिंह साहब अपने सहचरों के साथ टहलने के लिये फाटक से बाहर हुए थे। मैंने आगे बढ़कर उन्हें आशीर्वाद दिया। उन्होंने मेरा परिचय पूछा। मैंने अपना नाम बतलाया और जैतपुर से आने की बात कही। उन्होंने कुछ पहचान

लिया और जमादार को हुक्म दिया कि मुझे तहसीलदार के पास ले जाकर ठहरावे तथा खाने-पीने का प्रबन्ध कर दे।

तहसीलदार मैथिल ब्राह्मण थे। नाम था उनका विश्वनाथ झा। श्रीनगर के समीप ही किसी गाँव के रहनेवाले थे। बड़े हँसमुख और उदार थे। उन्होंने एक कोठरी मे चारपाई रखवाकर मेरे रहने की सारी सल्तनत कर दी। वे मुझे मैथिल ब्राह्मण और हिन्दी का कवि जानकर बड़े खुश हुए। उनके मुँह से यह सुना कि साहित्याचार्य प० अम्बिकादत्त व्यास भी यहाँ आये हुए हैं, रात के दरबार मे नित्य कविता की अविरल धारा बहती है, राजा साहब के दरबार मे तीन-चार कवि नियुक्त हैं जो प्राय नित्य अपनी बनाई कविता राजा साहब को सुनाते हैं। यह सब जानकर बड़ा हर्ष हुआ।

रात के आठ बजे दरबार मे मेरी बुलाहट हुई। राजा साहब की प्रशसा के कवित्त बनाकर मे लाया था, साथ लेता गया। राजा साहब से भेंट तो हो ही चुकी थी। उनके सामने जिस पक्ति मे कवि और पडित बैठे थे, मैं भी बैठा। कुछ देर तक इधर-उधर की बात होने के बाद दरबारी कवि यज्ञराजजी ने मुझसे कहा कि अपनी बनाई कविता सरकार को सुनाने के लिये लाये हों तो पढ़कर सुनाइये। मैंने लिखित कवित्त जेब से निकालकर श्रीमान् को सुनाना आरम्भ किया। उनमे से कुछ ये हैं—

विद्या में गनेस सुखभोग में सुरेस,
रिद्धिवृद्धि में धनेस धीरता में अवधेस हों।
बानी-कृत कौसल में सेष त्यों दिनेस तीखे
तेज में, सुकीरति-कला में कुमुदेस हों॥
सान्ति-सुख-भोग में रमेस 'जगदीस' जू,
ज्ञान-गुरुता में नृप जनक जनेस हों।
विबुध-सभा में सुरपूज्य कविमण्डली में,
सुकबि प्रसंसित श्रीनगर-नरेस हों॥१॥
कोऊ मृगअंक, कोऊ बारिधि को पंक मानै,
मिटै नाहि पाप को कलंक उर धारो है।
कोऊ कहै रोहिनी-दृगंजन की रेख लागी,
जानै जन कोऊ भूमि छाया छापि डारो है॥

कोऊ कछु मानै अनुमान्यो 'जनसीदन' जो
'साहित-सरोज' दूजे भोज सों उचारो है।
सुजस तिहारो देखि अजस अमित्रन को,
छिप्यो जाय चन्द माँहि सोई यह कारो है ॥२॥

(सवैया)

साधन सिद्धि चहौ सुखवृद्धि, समृद्धि चहौ जो चहौ दुख छीजै।
धर्म चहौ, शुभकर्म चहौ, नित सर्म चहौ, कविता रस पीजै॥
त्यों 'जनसीदन' मान चहौ, गुन ज्ञान चहौ, जग में जस लीजै।
श्रीकमलानँद सिंह महीपहि सेइ मनोरथ पूरन कीजै ॥३॥
दीनन को दुख दूर करें प्रभु, को हमसों बढ़ि दीन जहान।
विप्रन को उपकार करें यदि हैं हम मैथिल विप्र महान॥
जो सरनागत पै करुना बढ़ि हौं सरनागत सीलनिधान।
आन करें 'जनसीदन' को जग धर्म न जीवन-दान समान॥४॥
इसी अवसर पर सुनाया हुआ एक कवित्त इस लेख के आरंभ में है।

कविता सुनकर राजा साहब तथा दरबारी कवि और पंडित बहुत प्रसन्न हुए। उस दिन व्यासजी किसी कारण-वश दरबार में नहीं आ सके थे। दूसरे दिन मैंने उनके वासस्थान पर जाकर उनके दर्शन किये और अपनी कुछ नई-पुरानी कविताएँ उन्हें सुनाई। उन्होंने प्रसन्नता का भाव प्रकट करते हुए पूछा कि साहित्य का अध्ययन तुमने कहाँ किया। मैंने कहा—साहित्य की पुस्तकें मँगाकर स्वयं पढ़ी हैं, किसी गुरु से साहित्य-ग्रन्थ पढ़ने का अब तक अवसर नहीं मिला है। इसपर उन्होंने मेरा उत्साह बढ़ाते हुए कहा—तुम्हारी सूझ अच्छी है, किसी अच्छे साहित्यज्ञ के पास कुछ दिन रहकर शिक्षा ग्रहण करोगे तो तुम अच्छे कवियों में गिने जा सकोगे।

इतना कहकर उन्होंने कुछ आम खाने का आग्रह किया। उनके पास ढेर-के-ढेर आम पड़े थे। मुझे कुछ सकुचाते देखकर कहा—अच्छा, अगर अकेले खाने में तुम्हें कुछ संकोच होता है, तो लो, पहले मैं ही आरम्भ करता हूँ। उनकी आज्ञा के अनुसार उनके विद्यार्थी ने मेरे आगे भी अच्छे अच्छे आम रख दिये। मैं उन दिनों आम कुछ अधिक खाता था। इससे व्यासजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने विद्यार्थी को और लाने का संकेत किया। विद्यार्थी ने दस-बीस आम और भी लाकर रख दिये। मैंने यथेष्ट आम खाये। व्यासजी ने मिथिला में आम की विशेषता पर एक संस्कृत पद्य पढ़ा, जो मुझे याद नहीं है। भाव यही था

कि जिस मिथिला के जड़ वृक्ष रसाल के फल में इतना सरस माधुर्य भरा है, उसके मनुष्यों में कितना माधुर्य और सरसता होगी।

आम खाने के अनन्तर व्यासजी ने अपने हाथ से मुझे दो बीड़े पान के देकर अपना सौजन्य दिखलाया। मैंने उस आदर-सूचक पान को बड़ी श्रद्धा और भक्ति से ग्रहण किया।

दूसरे दिन के दरबार में राजा साहब ने कुछ समस्याएँ पूर्त्ति करने को दीं—(१) मारकौन छीन याहि नैनसुख दीजिये, (२) कानन तें निकरि दुकानन पसरिगो, (३) जोतसी जो हैं तो नेक सगुन बिचारिये, (४) साँवरे बदन पर भाँवरे भरत है, (५) बार-हि-बार उछालत निम्बू।

पाँचवीं समस्या राजा साहब के मौसेरे भाई की दी हुई थी। मैंने उसी समय सबकी पूर्त्ति की—

बसन खरीदे मिस चली है सहेली संग,
मन मनमोहन सों मिलन पतीजिये।
आवत बिहारी को बिलोकि सखि बोली तहाँ,
कब सों खड़ी है झट दाम कर लीजिये।
रावरी प्रतीति करि ल्याई यहाँ एती दूर,
सुनिये बजाज बहु मोल मत कीजिये।
बिलम लगाइए न, राखिए, न लैहौं यह,
मार कौन छीन याहि नैनसुख दीजिये ॥१॥
काहे यों अकेली बन बीच सखि बैठी यहाँ,
खबरि न देह की है, नीबीहू ससरि गो।
हाँफति हो बोलति न मोसों 'जनसीदन' क्यों,
चलति न भौन देखु घोसहू निछरि गो।
नजरि लगी है कहूँ काहू की डरी हो, सुधि
देह की न, मेरी कही बातहू बिसरि गो।
तेरो नाम लै लै कान्ह बाँसुरी बजावै यह
कानन तें निकरि दुकानन पसरि गो ॥२॥
सोचति किते हो बैठि औघट अकेली भरी,
बोलति न काहे नीर नैन कोर भरि गो।

लेती हौ जम्हाई 'जनसीदन' क्यों बार बार,
सिथिल भई है देह बारह बिथरि गो ॥
दन्त दाबि ओठ, कर ओट कैं छिपाओ गाल,
हमसों बताती क्यों न हाल तो उभरिगो।
कानन में काहू सों मिली तू यह बात आज
कानन ते निकरि दुकानन पसरि गो ॥३॥
पख है अँधेरो, भई साँझ 'जनसीदन' ह्याँ,
पथिक हमारे घर आतिथ सकारिये।
आये बहु दूर चलि थकित भये हैं आप,
ठहरि भले ही स्रम दूर करि डारिये।
ननद जिठानी गई रूसि कै पडोसी घर,
इत मैं अकेली बात मेरी मत टारिये।
पाँय परि पूछौं कब ऐहैं घर कन्त मेरो,
जोतसी जो हैं तो नेक सगुन बिचारिये ॥४॥
जा दिन सों नजर लगाई 'जनसीदन' ने,
ता दिन सों मेरे उर कल ना परत है।
भावत न भौन, चित चचल चकोर यह
वाको मुखचद बिन देखे हहरत है॥
जतन घनेरे करि हारी पै न मानै बीर,
प्रेमरस लोभी मन धीर ना धरत है।
चचल हमारो चख भौंर नील पकज से
साँवरे बदन पर भाँवरे भरत है॥५॥

(सवैया)

कंचुकी पीन पयोधर पै कसि लीन्ही है छाजति ज्यों तनि तम्बू।
बेसरि में बिलसै मनि नीलम चाखत कीर मनो फल जम्बू॥
ताकति है तिरछे 'जनसीदन' माल सुसोभित कठ सुकम्बू।
ताहि दिखाय लगाय हिये हरि बार-हि-बार उछालत निम्बू ॥६॥

राजा साहब ने मेरी समस्या-पूर्त्तियाँ सुनकर प्रसन्नता प्रकट की। दरबार मे जितने पडित और कवि थे, मेरी प्रशसा करने लगे। पहले-ही-पहल आज राज दरबार में विद्वानों के सम्मुख मुझे कवित्त पढने का अवसर प्राप्त हुआ था।

राज-दरबार की नीति-रीति-व्यवस्था से अनभिज्ञ रहने पर भी मैं प्रशंसा-भाजन बना, यह क्या कम सौभाग्य की बात थी।

दरबार मे उस समय सलेमपुर (दरभगा) के वैयाकरण श्रीकान्त मिश्र, कोइलख के प्रसिद्ध पडित खुद्दी झा, तिलाठी (उत्तर-भागलपुर) के ज्योतिषी परमेश्वरीदत्त मिश्र, पचाढ़ी के वैदिक वासुदेव ठाकुर, सुलतानपुर जिले के नोनरा-ग्रामवासी यज्ञराज कवि और पुर्नियाँ जिले के मनियारी-ग्रामवासी कवीश्वर जयगोविन्द महाराज नियुक्त थे। राजा साहब का नाम सुनकर कितने ही पडित और कवि नित्य आते-जाते थे।

राजा साहब जैसे साहित्य-सेवी और काव्य के अनुरागी थे, वैसे ही उनके छोटे भाई कुमार कालिकानन्द सिंह सगीत के ज्ञाता और प्रेमी थे। उन्होंने एक नामी सितारिया शिवदीन पाठक और उनके बडे भाई कमलदीन पाठक गवैया को अपने यहाँ नियुक्त कर लिया था। रात मे सात-आठ बजे से दस बजे तक एक तरफ साहित्य की चर्चा होती थी और दूसरी तरफ सगीत की मधुर ध्वनि से कमरे मे आनन्द का स्रोत उमड पडता था।

नित्य नये-नये गुणी लोग आते और अपने गुण से दोनों भाइयों को रिझाते तथा दरबार की शोभा बढाते थे। कुछ दिन वे रहकर यथायोग्य सम्मानित हो श्रीनगर का यश गाते हुए अपने घर जाते थे।

साहित्याचार्य शतावधानी पडित अम्बिकादत्त व्यास राजा साहब के प्रीत्यर्थ नायिका-भेद का एक ग्रन्थ 'सुकवि-सरोज-विकास' बनाकर लाये थे, जिसमें नायक-नायिका आदि के लक्षण तो सस्कृत-सूत्र मे थे और उनकी व्याख्या हिन्दी मे तथा उदाहरण व्रजभाषा के कवित्त-सवैयों मे दिये थे। वह ग्रन्थ उन्होंने राजा साहब को समर्पित किया। खेद है कि वह ग्रथ प्रकाशित नहीं हो पाया।

राजा साहब जब भागलपुर-जिला-स्कूल मे अँगरेजी पढ़ते थे तब उस स्कूल में व्यासजी सस्कृत के हेडपडित थे। व्यासजी मे उनकी सच्ची गुरुभक्ति थी। दूसरे, साहित्य के नाते उनमें विशेष अनुराग था। राजा साहब ने 'सुकविसरोजविकास' के पुरस्कार मे व्यासजी को दो हजार रुपये नकद, बहुमूल्य वस्त्र एव आभूषण तथा एक हाथी दिया। व्यासजी अतीव प्रसन्न होकर गये। उस समय तक उनको उतनी बडी बिदाई किसी राजधानी से नहीं मिली थी। यह उन्होंने अपनी कविता मे, जो उन्होंने सम्मानित होने के बाद सुनाई थी, स्पष्ट रूप से लिखा है—

(कवित्त)

कीन्हों भलो मान सिरीनगर नरेसुर ने,
देखिबे को भीर भरि गई चहुँधा मगै।
बसन अभूषन अदूषन दे अंग-अंग,
संग दीने चोपदार लखि हियरा पगै।
ऊँचे गजराज पै चढाय कै बिदाई दीन्ही,
चलते 'सुकवि' हिय ससय यहै जगै।
मति धों बघेला, कै बुँदेला कै चँदेला जानि,
कहूँ तैं चहूँघा पै सलामी दगिबे लगै ॥१॥

(सवैया)

तू जयसिंह सो है महाराज बिहारी सो स्याम लह्यो सुख सारो।
दूसरो तू छत्रसाल अहै, 'सुकवी' तों सभा महँ लाल निहारो।
श्रीकमलानँद सिंह सुनो, जस आपको चारहू ओर पसारो।
तू सिवराज अहै मिथिला को औ भूषन अम्बिकादत्त तिहारो।२॥
है गुनगाहक औेर गुनी, इन दोउन दुर्लभ लोग कहै हैं।
जो पै कहीं गुनगाहक होंहि तो आप गुनी तहँ खोजत जैहैं।
भागन तें 'सुकवी' कों मिले तुम तोऊ इहा हम और लजैहैं।
आप इतो गुन देखि दियो गुनगाहकता पै कहा हम दैहैं ॥३॥

(कवित्त)

चूमि रह्यो भूमि लों दिगतन को फल चयो,
चाँदनी अलिन्नै अजहू न हिय हारो है।
अमरधून अंगरागन लपटि रह्यो,
रंगरत छीरधि तरंगन निहारो है।
सुकवि सुनो तो कमलानँद जू महाराज,
याते गुनी-गनन गरूर गहि गारो है।
कुलटा सुनी ही तिय उलटा पुलट देख्यौ,
नायक कुचट एक सुजस तिहारो है ॥४॥
बरबस दौरि कै दबावत है जाय जाय,
और और भूपन की कीरति कुमारी है।

दसहूँ दिसान अबलान कों अलिंगन कै,
चूमत चमकि चन्द-किरन कतारी है।
परम नवेली अलबेली मेरी कविता है,
सुकवि ज्यों मन्त्र मारि बस करि डारी है।
अधम अपारी अब नाहिन सहा री जात,
सुजस तिहारो भयो भारी बिभचारी है ॥५॥

व्यासजी जब श्रीनगर से विदा हुए, तब राजा साहब अपनी समस्त पंडित मंडली के साथ पुर्नियाँ तक पहुँचाने गये। मैं भी उनके साथ चला। सब लोग राजा साहब की मधुबनी वाली कोठी में ठहरे।

पुर्नियाँ के रईसों ने जब व्यासजी के आने की बात सुनी, सबने बड़े उल्लास के साथ आ-आकर व्यासजी के दर्शन किये। सर्व-सम्मति से निश्चय हुआ कि व्यासजी का अवधान हो। एक निश्चित तिथि को सायंकाल सब लोग डाक-बँगले में एकत्र हुए। व्यासजी के साथ राजा साहब और हमलोग भी अवधान देखने के लिये वहाँ गये। सात बजे से अवधान शुरू हुआ। एक साथ कई विषयों का अवधान हुआ। अवधान में सिर्फ एक घंटा लगा होगा। जहाँ तक मुझे स्मरण है, निम्नलिखित विषय अवधान के लिये चुने गये थे—

(१) संस्कृत-श्लोक की समस्या पूर्त्ति, (२) हिन्दी-सवैया-छन्द की समस्यापूर्त्ति, (३) निर्दिष्ट विषय पर सरस्वती-यन्त्र, अर्थात् अनुष्टुप् छन्द के आठ आठ अक्षरों के चार कोष्ठ बनाकर बँगलो रक्खे हुए कोष्ठ में तुरन्त अक्षर-न्यास करके श्लोक रचना, (४) निर्दिष्ट संख्याओं का जोड़, (५) निर्दिष्ट अङ्क का गुना, (६) व्यवकलन अर्थात् अङ्क में अङ्क घटाने का प्रश्न, (७) ताश दिखलाया जाना (उसे स्मरण रखना), (८) घंटानाद।

प्राय ये ही आठ अवधान हुए थे। नियम यह था कि पहली आवृत्ति में आठों प्रश्नों का एक चतुर्थांश उनसे कहा गया, जिसकी पूर्त्ति उन्होंने की। इसी प्रकार चार आवृत्तियों में सब प्रश्नों के उत्तर देकर अन्त में उन्होंने एक साथ किये हुए अवधानों को पृथक् पृथक् सुना दिया।

सभास्थ सभी लोग उनकी स्मरणशक्ति पर चकित हो गये और सब लोग एक स्वर से उनकी प्रशंसा करने लगे। अन्त में राजा साहब की ओर से पान-इलायची बँट जाने के अनन्तर सभा विसर्जित हुई।

इस प्रकार अपने अवधान से पुर्नियाँ के सभ्य समाज को चकित पुलकित

करके व्यासजी बनारस चले गये। चलते समय उन्होंने मुझसे कहा कि भागलपुर होकर घर जाना।

उन दिनों कौशिकी नदी में पुल नहीं बना था। पुर्नियाँ से फारबीसगंज होकर अचला-घाट तक रेलगाड़ी गई थी। उस पार का नाम कनमाघाट था। कौशिकी की प्रखर धारा में डोंगी पर सवार होकर यात्री इस पार से उस पार और उस पार से इस पार जाते आते थे। असाढ़ में कौशिकी के प्रवाह का वेग कितना उत्तुङ्ग और भयङ्कर होता है, यह मुझे बिलकुल मालूम न था। शायद व्यासजी को यह ज्ञात था, इसीसे उन्होंने मुझे भागलपुर होकर जाने का आदेश किया था।

दूसरे दिन मैंने भी राजा साहब से विदा होने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने मुझे ऊँचे दरजे के भाषा-कवि की जो विदाई नियत थी वह दी और चलते समय कहा—हमारे यहाँ शारदीय पूजा में विशेष उत्सव होता है, अवकाश हो तो यहाँ आ जाइयेगा।

मैं राजा साहब के सौजन्य, सद्व्यवहार और उदारता से अत्यन्त प्रसन्न होकर चला। राजा पद्मानन्दसिंह बहादुर तबतक पुर्नियाँ में ही ठहरे थे। वहाँ पहुँचकर उनके प्राइवेट सेक्रेटरी से मैंने भेंट की। वे मुझे देखकर बड़े प्रसन्न हुए। मेरे ठहरने और खाने-पीने का सारा प्रबन्ध ठीक कर दिया और कहा कि कल सवेरे राजा साहब से भेंट होगी।

दूसरे दिन जब राजा साहब दरबार में बैठे, मेरी बुलाहट हुई। मैं पहले ही से तैयार था। ९ बजे दरबार में हाजिर हो गया। राजा साहब को आशीर्वाद देकर, जिधर बैठने का संकेत हुआ, बैठा। राजा साहब ने कहा—अच्छा, हम कुछ समस्याएँ देते हैं, उनकी पूर्त्ति अभी करके सुनाइये।

दरबारी लोग मेरे मुँह की ओर देखने लगे और यह कहकर मेरा उत्साह बढ़ाने लगे कि शीघ्र समस्या-पूर्त्ति करके हुजूर के आदेश का पालन कीजिये। समस्याएँ निम्नलिखित थीं—(१) मोर-पच्छधर हैं सो मोर पच्छकर हैं, (२) आधा सिन्धु बीच, आधा बसत नटावा घर, दोऊ मिल कहा होत कहा नाम धरिये, (३) वाह-वाह कहिहा, (४) केहि कारन पर्वत पच्छ कटायो।

मैंने पहली समस्या की पूर्त्ति तुरन्त कर डाली। पूर्त्ति तो साधारण हुई, परन्तु राजा साहब तथा दरबारी लोग उसे सुनकर वाह-वाह करने लगे। राजा साहब ने तो कई बार मुझसे पढ़वाकर सुना।

विप्र पच्छकर हैं सो दैत्य-पच्छहर हैं,
जो दैत्य-पच्छहर हैं सो देव-रच्छकर हैं।
जो देव-रच्छकर हैं सो सैल-सृंगधर हैं,
जो सैल-सृंगधर हैं सो नन्द-मोदकर हैं।
जो नन्द-मोदकर हैं सो चन्द-मन्दकर हैं,
जो चन्द-मन्दकर हैं सो मोर पच्छकर हैं।
जो मोर पच्छकर हैं सो मोर-पच्छधर हैं,
जो मोर-पच्छधर हैं सो मोर पच्छकर हैं ॥१॥

शेष दो समस्याओं की पूर्त्तियाँ मैं वासस्थान से कर लाया और दिन के ५ बजे राजा साहब को सुनाया। सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए और अपने एक मुसाहब से मेरी समस्यापूर्त्तियों को लिख लेने के लिये कहा—

आधा तिहि नाम को प्रसिद्ध 'हरि' सिंधु बीच,
रहत सदा ही सो प्रतीत मन गहिये।
आधा नाम 'ताल' सो नटावा-घर पाइयत,
दोऊ मिलि होत गिरि ऊपर सो लहिये।
ताको नाम जानें 'हरिताल' जनसीदनजू,
राखत पसारी, पद चौथे अनुसरिये
आधा सिन्धु बीच आधा बसत नटावा-घर,
दोऊ मिलि यही होत यही नाम धरिये ॥२॥

काहे करो रार इत आयकै कलिन्दी-तीर,
बालक न हौ जो रिस रोकि बात सहिहौं।
माँगौ दधिदान, क्यों गुमान करो एतो कान्ह,
होती बटपारी अब ब्रज में न बसिहौं।
चाहौ 'जनसीदन' जो मों सो कछु लेन आज,
नाचि कै रिझाओ मोहि, साँचे सुख लहिहौं।
पैहौ मुँहमाँगा दान, तभी तुम सुनो कान्ह,
गान सुनि तेरो जब वाह-वाह कहिहौं ॥३॥

धन्य जटायु भये जग में, जिन जानकी-कारन प्रान गँवायो।
धन्य समीर-तनै कपि जो, बिन पैरत समुद्र को पार ह्वै आयो।

लंक जराय सिया-सुधि लै, 'जगसीदन' राम को दु ख दुरायो।
हौं लहि पस कियो न कछु, एहि कारन पर्वत पच्छ कटायो ॥४॥

समस्यापूर्त्ति सुनकर राजा साहब बड़े खुश हुए। बार-बार मेरी तारीफ की। प्राइवेट सेक्रेटरी से कह दिया कि वे मेरे रहने का सब प्रबन्ध ठीक कर दें।

बाहर आकर उन्होंने मुझसे कहा कि आपको एक रुपया रोज भोजन के लिये मिलेगा। खाने-पीने का इन्तजाम आप स्वय कर लेंगे। हाँ, जिस चीज की जरूरत हो, हमसे कहियेगा।

दूसरे दिन के दरबार मे मैं फिर उपस्थित हुआ। राजा साहब की आज्ञा के अनुसार कुछ अपनी और कुछ अन्य कवियों की कविताएँ पढ़ीं। दरबार में जो साहित्य प्रेमी थे, सब मेरी प्रशसा करने लगे।

एक दिन मैंने राजा साहब के समक्ष अपने जाने का जिक्र किया। दरबारी लोग कहने लगे—"कुछ दिन यहाँ रहकर अपनी कविता से सरकार का मनोरजन कीजिये। जाने मे इतनी जल्दी क्यों कर रहे हैं ? सरकार आपकी कविता से प्रसन्न हैं।"

राजा साहब के ड्योढ़ी-सुपरिंटेंडेंट बाबू तीर्थमणि झा (मँगरौनी निवासी) ने मुझे बुलाकर कहा—"आप यहाँ कुछ दिन और रह जाइये। राजा साहब की आपके ऊपर बड़ी कृपा है। आप यहाँ नौकरी करना चाहें तो हम सरकार से कहकर आपको बहाल करवा दें। आपको यहाँ रहने मे कोई कष्ट होता हो तो कहिये, हम आपके आराम का सारा प्रबन्ध कर दें। कम-से-कम एक महीना भी तो यहाँ रहिये। कुछ रुपये की जरूरत हो तो वह भी मिल जा सकता है।"

किन्तु मेरे अदृष्ट-योग मे वहाँ का रहना नहीं लिखा था।

आखिर उन्होंने राह-खर्च कहकर कुछ रुपये दिये और कहा कि राजा साहब से तो आपको पूरी बिदाई तब मिलती जब आप उनकी मर्जी से जाते।

मैंने उनको धन्यवाद देकर वहाँ से प्रस्थान किया। पुर्नियाँ स्टेशन आकर सोचा—भागलपुर होकर जाने मे एक तो रेलवे-महसूल ज्यादा लगेगा, दूसरे देर से घर पहुँचूँगा। इतना बडा द्राविडी प्राणायाम कौन करे ? कौशिकी पार उतरकर शीघ्र घर पहुँच जाऊँगा। इसलिये कनमाघाट का ही टिकट कटाया। साथ एक नौकर भी था।

जब कौशिकी के किनारे गाडी से उतरा, घाट पर कई डोंगियाँ लगी थीं। उत्तुङ्ग तरङ्गें देखकर होश उड गये। सुना कि कई नावें डूब चुकी हैं। तो भी कितने

ही यात्री उस पार जाने को तैयार थे। मड़ुकिया गाँव के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी यदुनाथ झा कूचबिहार (बंगाल) से अपने विद्यार्थी के साथ आ रहे थे। कुछ देर बाद एक साथ सात-आठ नावें खुलीं। हरेक नाव पर २५—२५ यात्री सवार थे। सबके पीछेवाली डोंगी पर मैं और उपर्युक्त ज्योतिषीजी तथा अन्यान्य यात्री आरूढ हुए।

जब कौशिकी की बीच धार में डोंगी पहुँची, तब तो सबकी छाती दहल उठी। ताड़-बराबर तरङ्गें ऊपर उठती थीं और फिर उतना ही नीचे गिरती थीं। मन में होता था, इस बार नाव कौशिकी के गर्भ में विलीन हो जायगी। सब लोग 'जय कौशिकी महारानी की' पुकार करने लगे। ज्योतिषीजी चंडी-पाठ करने लगे। मैं भी अपने इष्टदेव का स्मरण करने लगा। लेकिन यह आशा न थी कि हमलोग उस पार पहुँच सकेंगे। जो नावें आगे निकल चुकी थीं, पता नहीं चलता था कि कौन बची और कौन जलमग्न हुई। मल्लाह लोग जान हथेली पर लिये, हमलोगों को धीरज बँधाते, नाव खेते आगे बढ़ रहे थे।

जब हमारी नाव किसी तरह बीच धारा से निकल गई, तब सबकी जान में जान आई और सब अपना पुनर्जन्म समझ कौशिकी महारानी का जय-जयकार करने लगे। राम राम करके हमलोग किनारे लगे। सब नावें सकुशल किनारे पहुँच गईं।

कौशिकी की प्रखर धारा देखकर मुझे स्मरण हो आया कि त्रिकालदर्शी व्यासजी ने भागलपुर होकर जाने का आदेश क्यों किया था। उन्हीं के आशीर्वाद से डूबते-डूबते जान बची।

फनमाघाट से मैंने दरभंगा का टिकट कटाया। दरभंगा से ६—७ कोस आग्नेय कोण में हमारे श्वसुर पंडित नचारी झा का आवासस्थान (बहेड़ी) था। वहाँ जाने का विचार पहले ही कर लिया था। उन दिनों मेरी सहधर्मिणी अपने मायके में ही थीं। उन्हें वहाँ से अपने घर ले जाना जरूरी था। दरभंगा से एक्के पर मैं बहेड़ी पहुँचा। वहाँ आठ-दस दिन रहा। वहाँ से स्त्री के बिदा होने की तिथि का निश्चय कराकर अपने घर गया।

कुछ दिन बीतने के बाद श्रीनगर से एक पत्र आया। वह राजा साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी बाबू नरनाथ झा के हाथ का लिखा था। उसमें उन्होंने मुझसे पूछा था कि शारदी पूजा में मैं वहाँ जा सकूँगा या नहीं।

कलश-स्थापन से दो दिन पहले ही मैं श्रीनगर-ड्यौढ़ी पहुँचा। राजा कमलानन्दसिंह मुझे उपस्थित देखकर बड़े प्रसन्न हुए।

नवरात्र में वहाँ हर साल की तरह उत्सव हुआ। गुनी-गवैये जो हर साल आते थे, आये। कुश्ती भी पाँच-सात जोड़े अच्छे पहलवानों की हुई। राजा साहब का यश सुनकर पंजाब से ३—४ जोड़े नामी पहलवान आये हुए थे।

उत्सव सकुशल समाप्त हो गया। समागत लोग अपने अपने घर जाने की तैयारी करने लगे। जिन्हें जो मिलने का नियम था, मिल गया। जब मैं जाने को उद्यत हुआ, राजा साहब ने मुझसे अपने मौसेरे भाई बाबू नरनाथ झा द्वारा पुछवाया कि मेरे यहाँ यदि इनको रहना स्वीकार हो तो जो वेतन कवियों को यहाँ मिलता है, इन्हें भी मिलेगा। विशेषता इनमें यह है कि ये मैथिल हैं, इसलिये इनके भोजन का प्रबन्ध मेरे रसोई-घर में ही हो जायगा। इन्हें अलग रसोई बनाने का झमट नहीं उठाना पड़ेगा।

मैंने उनके आदेश को स्वीकार कर लिया। राजा साहब ने जब मेरी स्वीकृति की बात सुनी, बड़े प्रसन्न हुए। नवरात्र के दान विभाग से मुझे ५०) रुपये घर पर भेज देने के लिये दिलवा दिये गये। मैं राजा साहब की सेवा में स्थायी रूप से रहने लगा।

राजा साहब का परिचय

जन्म स्थान और पूर्वज

मिथिला के पूर्व-भाग में पुर्नियाँ जिले के अन्तर्गत बनैली-राजधानी की एक शाखा 'श्रीनगर' नाम से प्रसिद्ध है। वहीं राजा साहब का जन्म हुआ था।

राजा साहब के प्रपितामह राजा दुलारसिंह ने सर्वप्रथम बनैली-राजधानी का स्थापन किया था। वे यजुर्वेदीय वत्सगोत्र मैथिल ब्राह्मण थे। उन्होंने बनैली में निवास करके सर्वत्र अपना यश फैलाया। सारे बिहार-प्रदेश में उनका प्रताप प्रचंड मार्त्तण्ड की भाँति उद्दीप्त था। जिस समय नैपाल के सीमास्थित मोरङ्ग-प्रदेश के लिये नैपालियों और अँगरेजों के बीच विरोधाग्नि प्रज्वलित हुई, उस समय उन्होंने अँगरेजों की बड़ी सहायता की। उन्हीं के सुप्रबन्ध, दूरदर्शिता और नीतिकौशल से अति शीघ्र सीमा-बन्दी हो गई। यदि वे उस समय गवर्नमेंट की सहायता नहीं करते तो प्रायः सन्धि न होकर युद्ध अनिवार्य हो जाता, जिससे दोनों पक्षों की बड़ी हानि होती। उनके इस साहाय्य और कौशल के उपलक्ष में भारत-सरकार ने १८११ ई० में उन्हें राजा-बहादुर की उपाधि दी। तब से वे राजा दुलारसिंह बहादुर कहलाने लगे। सरकार की कृपादृष्टि से उनके ऐश्वर्य की दिन दिन वृद्धि होने लगी।

राजा दुलारसिंह के दो पुत्र हुए—वेदानन्दसिंह और रुद्रानन्दसिंह। दोनों सौतेले भाई थे। पिता के परलोकवासी होने पर कुछ दिन तक दोनों भाइयों में प्रेमभाव बना रहा। तदनन्तर हृदय का भाव बदल जाने से राज्य आधा-आध बँट गया। दोनों भाई अपना-अपना अंश लेकर अलग हो गये।

राजा वेदानन्दसिंह के एकमात्र पुत्र लीलानन्दसिंह हुए। वे बड़े दानी थे। राजा वेदानन्दसिंह भी हिन्दी के अच्छे लेखक थे। उनका बनाया हुआ वैद्यक-ग्रन्थ 'वेदानन्द-विनोद' प्रसिद्ध है।

राजा रुद्रानन्दसिंह अल्पायु हुए। उनकी पाँच सन्तानों में एकमात्र राजा श्रीनन्दसिंह बच गये। इनके शुभचिन्तकों ने इन्हें स्वतंत्र रूप से अन्यत्र निवास करने की सम्मति दी। इसलिये उनलोगों ने वहाँ से कुछ दूर हटकर एक नगर बसाया, अच्छे-अच्छे महल बनवाये। वहीं अल्पवयस्क श्रीनन्दसिंह को ले गये। वह नगर श्रीनन्दसिंह के नाम से बसाया गया, अतएव उसका नाम 'श्रीनगर' रक्खा गया।

राजा श्रीनन्दसिंह को यह संसार छोड़े ६० वर्ष के लगभग हो गये। परन्तु उनका कीर्त्तिकलाप अब भी विद्यमान है। उन्होंने बड़ी योग्यता से राज किया और अनेक लोकोपकारी कार्य किये। उन्हें अपने सुख-दुःख का उतना ध्यान नहीं रहता था जितना अपनी प्रजा के सुख-दुःख का। वे ३४ वर्ष की आयु में ही इस संसार से चल बसे।

राजा श्रीनन्दसिंह की तीसरी धर्मपत्नी (रानी जगरमा देवी) से दो पुत्र हुए—एक कमलानन्द सिंह, दूसरे कालिकानन्द सिंह।

जन्म-काल और बाल्यावस्था

राजा कमलानन्दसिंह का जन्म संवत् १९३३ में जेठ शुक्ल षष्ठी सोमवार (१८७६ ई० में २९ मई) को हुआ था। जब वे ५ वर्ष के हुए, तभी उनके पिता का देहान्त हो गया। उनकी माता बड़ी विदुषी और कर्त्तव्यपरायणा थीं। उन्होंने पतिविहीन होने पर धैर्य धारण करके शीघ्र ही पुत्र की शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया।

छठे वर्ष में उनका अक्षरारम्भ कराया गया। लिखने-पढ़ने का थोड़ा अभ्यास हो जाने पर वे चाणक्यनीति और अमरकोष के श्लोकों का थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करने लगे। इसके साथ ही उनको उर्दू-भाषा की भी कुछ-कुछ शिक्षा दी जाने लगी। ९ वर्ष की उम्र तक वे राजभवन में ही शिक्षा पाते रहे। उसके बाद उनको अँगरेजी पढ़ाने के लिये एक शिक्षक नियुक्त किये गये। उन्होंने एक वर्ष

तक अँगरेजी पढ़ी। अँगरेजी का कुछ बोध हो जाने पर पुर्नियाँ जिला-स्कूल में उनका नाम लिखाया गया। वहाँ उन्होंने दो वर्ष तक पढ़ा। बारहवें वर्ष में उनका यज्ञोपवीत हुआ।

बाबू मन्मथनाथ मुकुर्जी बी एल—एक विद्वान् बंगाली सज्जन—उनके अभिभावक नियुक्त हुए। उनकी संरक्षकता में पढ़ने के लिये वे भागलपुर गये। वहाँ जिला-स्कूल में उन्होंने नाम लिखवाया। फारसी का कुछ बोध उन्हें पहले ही से था, परन्तु उसमें उनकी विशेष रुचि न थी। इसलिये उन्होंने पढ़ने में द्वितीय भाषा संस्कृत ली। जब वे वहाँ पढ़ते थे, जिला-स्कूल के हेडपंडित साहित्याचार्य अम्बिकादत्त व्यास थे। व्यासजी की काव्यरचना और हृदय हारिणी वक्तृता सुनकर उनको हिन्दी-काव्य का ज्ञान प्राप्त करने का अनुराग हुआ। यह अभिलाषा उन्होंने अपने अभिभावक बाबू मन्मथनाथ से प्रकट की। वे महाशय हिन्दी-काव्य के रसास्वादन से सर्वथा अपरिचित थे। इसलिये वे उनके इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हुए। उन्होंने राजा साहब को बँगला-काव्य पढ़ने का परामर्श दिया। वे उनकी सम्मति के अनुसार बँगला-काव्य पढ़ने लगे। बंकिम बाबू, माइकेल मधुसूदन दत्त, रमेशचन्द्र दत्त तथा अन्यान्य बङ्गीय ग्रन्थकारों की सारी पुस्तकें पढ़ डालीं। थोड़े ही दिनों में बँगला-काव्य के मर्म को भली भाँति समझ गये।

१६ वर्ष की उम्र में राजा साहब प्रवेशिका-कक्षा (Entrance) में पहुँचे। परीक्षा का समय समीप आते देख पढ़ने में अत्यधिक परिश्रम करने लगे, जिसका परिणाम अच्छा नहीं हुआ। स्वास्थ्य बिगड़ जाने से परीक्षा न दे सके। सिर के दर्द से दिन-रात बेचैन रहने लगे। अनेक उपचार करने पर भी सिर-दर्द से निवृत्ति न हुई। इसलिये सिविल-सर्जन की राय से जलवायु बदलने के लिये शीत-प्रधान प्रदेश में घूमने जाना पड़ा।

दो वर्ष तक पहाड़ी प्रदेशों में भ्रमण करने से उनको विशेष लाभ हुआ। शिरोरोग निवृत्त होने के साथ-साथ अनेक महात्माओं और विद्वानों के दर्शन हुए तथा अनेक प्रकार की शिक्षाएँ भी मिलीं। भिन्न भिन्न प्रदेशों के भिन्न भिन्न आचार-व्यवहार और रस्म रिवाज देखकर उन्हें बहुदर्शिता भी प्राप्त हुई। तबतक उनका राज्य 'कोर्ट आफ वार्ड्स' अर्थात् सरकारी प्रबन्धकर्त्ताओं के अधीन था।

१८६१ ई० में सरकार ने राज्य का अधिकार उन्हें सौंप दिया। किन्तु वे उस समय भी पूर्ण रूप से वयस्क नहीं हुए थे। इसलिये उनकी विदुषी माता ने राज्य-रक्षा का भार अपने हाथ में लिया और भली भाँति राज-काज देखने लगीं,

राज्य शासन मे इन्हें समय-समय पर पुर्नियाँ के कलक्टर से सहायता मिलती थी।

राजा साहब की आगे पढने की इच्छा थी, परन्तु रियासत का प्रबन्ध माता के हाथ में जाने से उन्हें भी उसमे यथासाध्य साहाय्य देना पड़ता था। इसलिये वरवस स्कूल छोडना पडा। स्कूल छोड दिया, परन्तु विद्याध्ययन का व्यासङ्ग नहीं छोडा। घर पर रहते हुए भी हिन्दी, बँगला और अँगरेजी ग्रन्थो का अध्ययन करके अपनी वहुज्ञता वढाते रहे। थोडे ही दिनों मे उन्होंने हिन्दी-साहित्य मे अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

कुछ दिन बाद उन्हें अपने राज्य-शासन का पूरा अधिकार मिल गया। तव से राजकाज में उनका अधिक समय जाने लगा। तव भी वे अपने प्रिय विपय साहित्य को कभी न भूले, उसकी सेवा के लिये कुछ समय निकाल ही लेते थे।

साहित्य-सेवन के साथ ही उन्हें आखेट और कुश्ती का भी कम शौक न था। जव वालिग हुए, कौशिकी के किनारे, नेपाल-राज्य की सीमा के समीप, अपने राज्य मे तथा नैपाल के जगल मे, जाडे के मौसम मे प्राय प्रतिवर्प, शिकार खेलने जाते थे। वन्दूक चलाने मे वडे सिद्धहस्त थे। निशाना शायद कभी खाली नहीं जाता था। उनका नाम सुनकर एक दफा मुक्तागाछो (मैमनसिंह) के जमींदार राजा जगतकिशोराचार्य और गोवरडॉगा (वगाल) के जमींदार ज्ञानदा वावू उनके साथ शिकार खेलने आये थे। उनसे सत्कृत होकर वे लोग वडे प्रसन्न हुए। तव से उन लोगों में मित्रता हो गई।

नित्य नियम-पूर्वक वे व्यायाम करते थे। कुश्ती लडने और पहलवानों को कुश्ती लडाकर देखने के भी वे वड़े शौकीन थे। कई पहलवानों को नौकर रख लिया था, जिनमे एक का नाम मजहर हुसेन था।

साहित्यिक जीवन

राजा साहव का साहित्यानुराग दिन-दिन वढता गया। व्रजभापा मे दो-एक पद्यों की रचना तो आप नित्य ही करते थे। इसके अतिरिक्त सर्वप्रथम उन्होंने वङ्किम वावू के बँगला उपन्यास 'आनन्द-मठ' का अनुवाद हिन्दी-भापा मे किया, जिसका सशोधन पडित अम्बिकादत्त व्यास ने किया था और वम्बई के वेङ्कटेश्वर प्रेस ने उसे प्रकाशित किया था।

पडित श्रीकान्त मिश्र ने, जो उनके दरवार मे चिरकाल से नियुक्त थे, उनसे अनुमति लेकर, 'साम्यकमलानन्दकुलरत्न' ※ नामक एक सस्कृत-काव्य रचा,

※ देखिये—पृष्ठ ३८ का अतिम और ३६ की चौथी पंक्ति तथा पृष्ठ ३२० का टिप्पणी।

जिसे राजा साहब ने छपवा डाला। यह काव्य ललित पद्य में १५ सर्गों का है। इसमें राजा साहब के पितृवंश तथा मातृवंश का वर्णन है।

पंडित अम्बिकादत्त व्यास से उनको हिन्दी-साहित्य में विशेष साहाय्य मिलता था। देश के दौर्भाग्य से १९०० ई० में व्यासजी का काशी में देहान्त हो गया। इसलिये 'सुकवि-सरोज-विकास' * ग्रन्थ राजा साहब की लाइब्रेरी † में अपूर्ण ही पड़ा रह गया। राजा साहब की इच्छा स्वयं उसे पूरा करके प्रकाशित करने की थी, परन्तु वे भी असमय में ही कालकवलित हो गये। इस कारण वह अधूरा ही रह गया और प्रकाशित भी न हो सका। हाँ, उनके चिरंजीवी पुत्र सर्व-गुण-सम्पन्न कुमार गङ्गानन्द सिंह साहब, एम्. ए., उसकी पूर्त्ति चाहें तो कर सकते हैं—ये भी काव्य-रसिक, कविता के मर्मज्ञ तथा निपुण निबन्ध-लेखक हैं।

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के किसी ‡ अङ्क में 'श्रीमान् राजा कमलानन्द सिंह' शीर्षक लेख में लिखा है—"जब हम १९०० ई० में काशी जाकर व्यासजी से मिले थे, तब व्यासजी ने उस पुस्तक की भूमिका बड़े प्रेम से पढ़कर हमें सुनाई थी। उस भूमिका में अनेक प्राचीन कवियों की बातें थीं। सारी भूमिका पद्यमय थी।"

व्यासजी पर राजा साहब की कितनी भक्ति और कैसा प्रेम था, यह उनके तथा उनके आश्रित कवियों के द्वारा रचित 'शोकप्रकाश' (व्यासजी की मृत्यु के बाद लिखी गई पुस्तक) से ज्ञात हो सकता है। राजा साहब को जिस दिन व्यासजी के देहान्त की खबर मिली उस दिन उन्होंने अन्न जल ग्रहण नहीं किया। रोते-रोते उनकी आँखें सूज गईं। यह आँखों-देखी बात है। हमलोग उन्हें आश्वासन देते-देते थक गये, परन्तु उनके मन में धैर्य न होता था। आजकल का शायद ही कोई राजा-महाराज कवियों और विद्वानों में ऐसा गहरा प्रेम रखनेवाला मिलेगा।

राजा साहब केवल आँसू बहाकर ही चुप न बैठे। उन्होंने स्वर्गीय व्यासजी की निःसहाय पत्नी और थोड़ी उम्र के बालक के निर्वाह के लिये २००) रुपये

* पंडित अम्बिकादत्त व्यास कविता में अपना उपनाम 'सुकवि' और राजा कमलानन्द सिंह 'सरोज' लिखते थे। इसीसे उस ग्रन्थ का नाम 'सुकवि सरोज विकास' रक्खा गया था।

† दैवदुर्विपाकवश सन् १९३२ ई० में वह लाइब्रेरी भीषण अग्निकाण्ड में भस्म हो गई जिससे अमूल्य साहित्य समूह स्वाहा हो गया !!!

‡ भाग ४, संख्या ६, पृष्ठ १९१ से १९८ तक, जून १९०३ ई०

वार्षिक नियत कर दिया, और जबतक राजा साहब जीवित रहे, बराबर उनके पास भेजते रहे।

व्यासजी का एकमात्र पुत्र राधाकुमार जब कभी अपना दुःख राजा साहब को सूचित करता था तब वे उसे अपने छोटे भाई के समान समझ उसे आश्वासन देते थे और यथासाध्य उसके दुःख दूर करते थे। राधाकुमार भी अपने पिता की भाँति मेधावी और अनेक-गुण-सम्पन्न हो चला था, पर वह भी दैवदुर्योग से अल्पायु—२१ वर्ष की उम्र का—होकर संसार से चल बसा। उसका एकमात्र पुत्र है—अत्यन्त विनीत और विचारवान्। काशी (मानमन्दिर) में रहता है। व्यासजी के रचित ग्रन्थों की बिक्री से साल में जो कुछ आय हो जाती है, उसीसे परिवार-पोषण होता है।

इलाहाबाद की कमिश्नरी में एक जिला फतेहपुर है। उसमें गङ्गा के किनारे एक प्रसिद्ध गाँव 'असनी' है। वहाँ व्रजभाषा के अनेक विख्यात कवि हो गये हैं। नरहरि (जो सम्राट् अकबर के दरबार में थे), हरिनाथ (जिनके लिये यह कहावत मशहूर है कि 'दान पाय दो ही बढ़े कै हरि कै हरिनाथ'), ठाकुर आदि नामी कवि वहीं के निवासी थे। वहीं के रहनेवाले 'सेवक' कवि का बनाया हुआ 'वाग्विलास' (नायिका-भेद का ग्रन्थ) लुप्त सा हो गया था। राजा साहब ने उसे बड़े प्रयत्न से, बहुत द्रव्य खर्च करके, ढूँढ निकाला। व्यासजी से संशोधित कराकर उसे छपवाया। उसके प्रकाशन काल में व्यासजी बीमार थे, इस कारण वे उसका पूर्णरूप से संशोधन न कर सके। कहीं-कहीं टिप्पणी-मात्र कुछ कर दी। राजा साहब को हिन्दी-साहित्य से कितना प्रेम था, यह उनके इस अदम्य उत्साह से जाना जा सकता है।

अयोध्या के महाराज (सर प्रतापनारायणसिंह बहादुर) के दरबार में प्राचीन ढर्रे के एक कवि थे। नाम था उनका 'कवीश्वर लछिराम' (ब्रह्मभट्ट)। राजा कमलानन्द सिंह अपनी माता के साथ तीर्थ-भ्रमण करते हुए अयोध्या पहुँचे। लछिराम उनसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। उनसे कहा कि हम आपके नाम पर 'कमलानन्द-कल्पतरु' नामक एक अलङ्कार-ग्रन्थ लिख रहे हैं, उसे आपके करकमलों में समर्पित करेंगे, यह आप स्वीकार करें।

राजा साहब ने उनकी अभ्यर्थना को स्वीकार कर लिया। इस ग्रन्थ के नाम में 'कल्पतरु' शब्द ध्यान में रखने योग्य है। कवीश्वरजी का मनोरथ सफल हुआ, ग्रन्थ का नाम सार्थक हुआ।

लछिरामजी उस पुस्तक को लेकर देवी-पूजा के उत्सव पर श्रीनगर आये। उनके शिष्य यज्ञराज कवि राजा साहब के दरबार में पहले ही से नियुक्त थे। वे अपने गुरु महाराज को साथ लेकर दरबार में उपस्थित हुए। कवित्तमय आलंकारिक 'कल्पतरु' राजा साहब को समर्पित करके कवीश्वरजी सफल-मनोरथ हुए। अयोध्या-नरेश के दरबार में प्रतिष्ठा पाये हुए वृद्ध कवि का राजा साहब ने अच्छा सम्मान किया। उनके रचित ग्रन्थ के कुछ कवित्त भी उनके मुख से सुन लिये। ग्रन्थ की कल्पतरुता राजा साहब के हाथ आकर कविजी के लिये सार्थक हुई। राजा साहब ने कवीश्वरजी को १५००) रुपये और बहुमूल्य वस्त्राभरण देकर अपनी कल्पतरुता का परिचय दिया। राजा साहब की इच्छा उस ग्रन्थ को छपवाने की थी, किन्तु उनकी असामयिक मृत्यु से वह नहीं छप सका।

राजा साहब की गुणग्राहिता की प्रशंसा सुनकर कितने ही कवि और विद्वान् उनसे मिलने आते थे और उनकी गुणज्ञता तथा उनके स-सम्मान दान से सन्तुष्ट होकर जाते थे।

एक समय बंगलोर-(मैसोर)-निवासी भिमोरी रामशास्त्री शतावधानी ने श्रीनगर आकर अपने अनेक अवधानों से राजा साहब को चकित और अतिशय प्रसन्न किया था।

आरा (शाहाबाद) जिले के निलौटी-ग्रामवासी (स्व०) पंडित विजयानन्द त्रिपाठी 'श्रीकवि' अपने छोटे भाई पंडित शिवनन्दन त्रिपाठी के साथ राजा साहब को निज निर्मित 'रणधीर प्रेममोहिनी' नाटक का संस्कृत अनुवाद समर्पित करने के लिये आये। राजा साहब ने उनके अनुवाद को सादर ग्रहण करके उन्हें पुरस्कार देकर सन्तुष्ट किया।

इस सदी के शुरू में जब 'सरस्वती' निकलने लगी और उसके प्रकाशन में दो साल पूरा घाटा सहना पड़ा, तब राजा साहब उसकी पूर्ति करने के लिये तैयार हो गये—१०० ग्राहक 'सरस्वती' के बढ़ा दिये ❀। उनकी कविता 'सरस्वती' में जब-तब छपती थी। अपने लेखों द्वारा भी 'सरस्वती' की सेवा-सहायता किया करते थे।

कानपुर से निकलनेवाले 'रसिक मित्र' (समस्या पूर्त्ति विषयक मासिक पत्र) में राजा साहब बराबर अपनी पूर्त्तियाँ भेजा करते थे। कवि-समाज ने उनकी कविता से प्रसन्न होकर उनको 'साहित्यसरोज' की पदवी प्रदान की थी। साहित्य-

❀ देखिये पृष्ठ ३१३—१४

वार्षिक नियत कर दिया, और जबतक राजा साहब जीवित रहे, बराबर उनके पास भेजते रहे।

व्यासजी का एकमात्र पुत्र राधाकुमार जब कभी अपना दुःख राजा साहब को सूचित करता था तब वे उसे अपने छोटे भाई के समान समझ उसे आश्वासन देते थे और यथासाध्य उसके दुःख दूर करते थे। राधाकुमार भी अपने पिता की भाँति मेधावी और अनेक-गुण-सम्पन्न हो चला था, पर वह भी दैवदुर्योग से अल्पायु—२१ वर्ष की उम्र का—होकर संसार से चल बसा। उसका एकमात्र पुत्र है—अत्यन्त विनीत और विचारवान्। काशी (मानमन्दिर) में रहता है। व्यासजी के रचित ग्रन्थों की बिक्री से साल में जो कुछ आय हो जाती है, उसीसे परिवार-पोषण होता है।

इलाहाबाद की कमिश्नरी में एक जिला फतेहपुर है। उसमें गङ्गा के किनारे एक प्रसिद्ध गाँव 'असनी' है। वहाँ ब्रजभाषा के अनेक विख्यात कवि हो गये हैं। नरहरि (जो सम्राट् अकबर के दरबार में थे), हरिनाथ (जिनके लिये यह कहावत मशहूर है कि 'दान पाय दो ही बढ़े कै हरि कै हरिनाथ'), ठाकुर आदि नामी कवि यहीं के निवासी थे। वहीं के रहनेवाले 'सेवक' कवि का बनाया हुआ 'वाग्विलास' (नायिका-भेद का ग्रन्थ) लुप्त-सा हो गया था। राजा साहब ने उसे बड़े प्रयत्न से, बहुत द्रव्य खर्च करके, ढूँढ निकाला। व्यासजी से संशोधित कराकर उसे छपवाया। उसके प्रकाशन काल में व्यासजी बीमार थे, इस कारण वे उसका पूर्णरूप से संशोधन न कर सके। कहीं-कहीं टिप्पणी-मात्र कुछ कर दी। राजा साहब को हिन्दी-साहित्य से कितना प्रेम था, यह उनके इस अदम्य उत्साह से जाना जा सकता है।

अयोध्या के महाराज (सर प्रतापनारायणसिंह बहादुर) के दरबार में प्राचीन ढर्रे के एक कवि थे। नाम था उनका 'कवीश्वर लछिराम' (ब्रह्मभट्ट)। राजा कमलानन्द सिंह अपनी माता के साथ तीर्थ-भ्रमण करते हुए अयोध्या पहुँचे। लछिराम उनसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। उनसे कहा कि हम आपके नाम पर 'कमलानन्द-कल्पतरु' नामक एक अलङ्कार-ग्रन्थ लिख रहे हैं, उसे आपके करकमलों में समर्पित करेंगे, यह आप स्वीकार करें।

राजा साहब ने उनकी अभ्यर्थना को स्वीकार कर लिया। इस ग्रन्थ के नाम में 'कल्पतरु' शब्द ध्यान में रखने योग्य है। कवीश्वरजी का मनोरथ सफल हुआ, ग्रन्थ का नाम सार्थक हुआ।

लछिरामजी उस पुस्तक को लेकर देवी पूजा के उत्सव पर श्रीनगर आये। उनके शिष्य यशराज कवि राजा साहब के दरबार में पहले ही से नियुक्त थे। वे अपने गुरु महाराज को साथ लेकर दरबार में उपस्थित हुए। कवित्तमय आलंकारिक 'कल्पतरु' राजा साहब को समर्पित करके कवीश्वरजी सफल-मनोरथ हुए। अयोध्या-नरेश के दरबार में प्रतिष्ठा पाये हुए वृद्ध कवि का राजा साहब ने अच्छा सम्मान किया। उनके रचित ग्रन्थ के कुछ कवित्त भी उनके मुख से सुन लिये। ग्रन्थ की कल्पतरुता राजा साहब के हाथ आकर कविजी के लिये सार्थक हुई। राजा साहब ने कवीश्वरजी को १५००) रुपये और बहुमूल्य वस्त्राभरण देकर अपनी कल्पतरुता का परिचय दिया। राजा साहब की इच्छा उस ग्रन्थ को छपवाने की थी, किन्तु उनकी असामयिक मृत्यु से वह नहीं छप सका।

राजा साहब की गुणग्राहिता की प्रशंसा सुनकर कितने ही कवि और विद्वान् उनसे मिलने आते थे और उनकी गुणज्ञता तथा उनके स-सम्मान दान से सन्तुष्ट होकर जाते थे।

एक समय बंगलोर-(मैसोर)-निवासी भिमोरी रामशास्त्री शतावधानी ने श्रीनगर आकर अपने अनेक अवधानों से राजा साहब को चकित और अतिशय प्रसन्न किया था।

आरा (शाहाबाद) जिले के निलौटी-ग्रामवासी (स्व०) पंडित विजयानन्द त्रिपाठी 'श्रीकवि' अपने छोटे भाई पंडित शिवनन्दन त्रिपाठी के साथ राजा साहब को निज निर्मित 'रणधीर प्रेममोहिनी' नाटक का संस्कृत-अनुवाद समर्पित करने के लिये आये। राजा साहब ने उनके अनुवाद को सादर ग्रहण करके उन्हें पुरस्कार देकर सन्तुष्ट किया।

इस सदी के शुरू में जब 'सरस्वती' निकलने लगी और उसके प्रकाशन में दो साल पूरा घाटा सहना पड़ा, तब राजा साहब उसकी पूर्ति करने के लिये तैयार हो गये—१०० ग्राहक 'सरस्वती' के बढ़ा दिये ॐ। उनकी कविता 'सरस्वती' में जब-तब छपती थी। अपने लेखों द्वारा भी 'सरस्वती' की सेवा-सहायता किया करते थे।

कानपुर से निकलनेवाले 'रसिक मित्र' (समस्या पूर्ति विषयक मासिक पत्र) में राजा साहब बराबर अपनी पूर्त्तियाँ भेजा करते थे। कवि-समाज ने उनकी कविता से प्रसन्न होकर उनको 'साहित्यसरोज' की पदवी प्रदान की थी। साहित्य-

ॐ देखिये पृष्ठ ३१३—१४

सम्बन्धी कई मासिक पत्रों के संरक्षक होने के कारण कवि-मंडली की ओर से उनको 'द्वितीय भोज' की उपाधि मिली थी। भारत-धर्म-महामण्डल (काशी) ने उनकी साहित्य सेवा से प्रसन्न होकर उनको 'कविकुलचन्द्र' की उपाधि से अलंकृत किया था।

दरभंगा-नरेश महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह बहादुर का देहान्त होने पर उनके शोक में राजा साहब ने 'मिथिला-चन्द्रास्त' नामक एक छोटी-सी पुस्तक छपवाकर अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट की थी। उसमें राजा साहब के तथा उनके आश्रितों के बनाये शोक-सूचक भाषा-पद्य हैं।

सम्राट् सप्तम एडवर्ड के राज्याभिषेक के उत्सव में राजा साहब ने 'एडवर्ड-बत्तीसी' पद्यों में लिखकर छपवाई थी। उसके अन्त में एक दोहा अँगरेजी में उन्हीं का बनाया हुआ है—

कौरोनेशन डे टुडे, लेट अस कम एंड सिंग।
प्रे टु गौड ऑलमाइटी, लौंग लिव दि किंग॥

राजा साहब की माता ने १६०२ ई० में कार्त्तिक-व्रत का उद्यापन किया था। मिथिला के प्राय सभी प्रसिद्ध पंडितों को निमन्त्रण-पत्र भेजा था। सैकड़ों विद्वान् उपस्थित हुए थे। पंडितों में शास्त्रार्थ छिड़ा। मध्यस्थ माने गये दरबारी पंडित श्रीकान्त मिश्र * और पंडित खुद्दी झा † तथा दो-एक और भी आमन्त्रित पंडितों में श्रेष्ठ। नैयायिक अपृष्ठ झा न्याय के शास्त्रार्थ में विजयी हुए। राजा साहब ने उन्हें सम्मान सूचक एक स्वर्णपदक दिया।‡

एक बार काशी में महाराष्ट्रीय कीर्त्तनकार श्री रामचन्द्र बवा का कीर्त्तन सुनकर राजा साहब अत्यन्त प्रसन्न हुए। किन्तु दो-एक दिन के कीर्त्तन से उनकी तृप्ति नहीं हुई। इसलिये उन्हें अपने यहाँ (श्रीनगर) बुलाकर महीनों रोज-रोज कीर्त्तन सुना, उनको हजारों रुपये नकद और बहुमूल्य वस्त्र-भूषण दिये तथा 'कीर्त्तनाचार्य' पद से अङ्कित एक स्वर्णपदक भी दिया। इतना देने पर भी राजा-साहब को सन्तोष न हुआ। वे रामचन्द्र बवा का कीर्त्तन सुनने के इतने अनुरागी थे कि शारदी पूजा के महोत्सव में प्रतिवर्ष आने के लिये उन्हें एक सनद दी थी। उसमें दस दिन तक कीर्त्तन करने के उपलक्ष्य में २००) नकद, अलावा

* देखिये पृष्ठ १८ के अन्त में।
† देखिये पृष्ठ १४ के मध्य में।
‡ देखिये पृष्ठ १६ के अन्त में।

भोजन वस्त्र और आने-जाने का मार्गव्यय देने की भी बात लिखी गई थी। उस सनद को पाकर कीर्त्तनाचार्य बड़े प्रसन्न हुए और जबतक वे जीवित रहे, प्रतिवर्ष नवरात्र में श्रीनगर आकर कीर्त्तन * करते थे। जिस साल किसी कारण से वे स्वयं नहीं आ सकते थे, उस साल उनके सुयोग्य पुत्र श्रीयुत गङ्गाधर बबा श्रीनगर में उपस्थित होते थे। सुना है, अब वे गवालियर-स्टेट में नियुक्त हो गये हैं।

काशी के प्रसिद्ध कवि बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' बी० ए० भी राजा साहब से मिलने के लिये दो-तीन बार श्रीनगर आये। उनका काव्यानुराग तथा गुण-ग्राहिता देखकर रत्नाकरजी बड़े प्रसन्न हुए। रत्नाकरजी ने अँगरेजी में कल्पित अक्षरों द्वारा लिखे हुए लेख पढ़ने का चमत्कार राजा साहब के छोटे भाई कुमार कालिकानन्द सिंह को दिखलाकर चकित कर दिया था। कुमार साहब ऐसे मेधावी थे कि रत्नाकरजी के चमत्कार का अनुभव करके स्वयं भी कल्पित अक्षरों के लेख पढ़ने और लोगों को विस्मित करने लगे। एक बार उन्होंने बनैली-नरेश राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर से अँगरेजी में कल्पित अक्षरों के द्वारा लेख लिखवाकर पढ़ दिया, जो देख उक्त राजा साहब को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। इस विषय में कुमार साहब ने मुझे मैथिली भाषा में एक पत्र लिखा था। उसे मैं यहाँ पाठकों के मनोरञ्जनार्थ उद्धृत करता हूँ—

सुहृद् कविवर श्रीजनसीदन, २१ मई, १६०३

अहाँक पत्र पहुँचल। अहाँक माता क समाचार बुझल। पत्रोत्तर में हमरा विलम्ब भेल। तकर कारण जे हमरा माथ मे दर्द नौ दिन धरि बड़े कष्ट देलक। तदुत्तर कर्णवेध, अक्षरारम्भ क कार्य में पड़ि गेलहुँ। काल्हि कार्य सम्पन्न भेल कुशलपूर्वक। अक्षरारम्भ चम्पानगर क कनिष्ठ कुमार करौलथिन। दुनू भाई आएल रहथि। ई हाल विस्तर रूपें भेंटें वहब। अहाँ अपना गाम और माता क समाचार विशेष रूपें लिखब। हमरा लोकनि कुशल-पूर्वक छी। चम्पानगर क कुमार क सोभा दूटा गुप्त लेख पढ़ल। बैंक ठाम अशुद्ध छलैह से देखा देलिऐन्ह। मुदा फरू की, सरस नहि। और हाल पश्चात् लिखब। इति—

कालिकानन्द सिंह

* कीर्त्तन में जो प्रासङ्गिक सुभाषित श्लोक भी रामचन्द्र बबा के मुख से निकलते थे, उन्हें राजा साहब का सङ्केत पाकर मैं नोट कर लेता था। दूसरे दिन उनके पास जाकर वे सब श्लोक लिख लाता था। श्लोकों की संख्या पाँच सौ से ऊपर हो गई थी।—ज० झा

पडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'स्वाधीनता' नामक एक उत्तम पुस्तक (अँगरेजी 'लिबर्टी' का हिन्दी-अनुवाद) राजा साहब को समर्पित की थी। उन्होंने स्वय श्रीनगर न आकर समर्पण वाक्य-सहित तथा राजा साहब के चित्र से विभूपित पूरी पुस्तक डाक के जरिये भेज दी थी। राजा साहब ने ५००) रुपये के नोट चुपचाप बीमा कराकर उनको भेज दिये।

नागरी-प्रचारिणी सभा (काशी) को उन्होंने दो हजार रुपये दिये थे। सभा की प्रार्थना पर 'ट्रस्टी' का पद भी ग्रहण किया। अपनी राजधानी (श्रीनगर) में एक 'हिन्दी-साहित्य-प्रचारक-समिति' भी स्थापित की थी। हिन्दी के सुलेखकों का उत्साह बढाने के लिये समय-समय पर उन्हें द्रव्य की सहायता देते थे।

जो विद्यार्थी द्रव्य के अभाव से पढने के निमित्त काशी जाने मे असमर्थ होकर उनकी शरण मे आता था, उसे वे खर्च देकर पढने के लिये काशी भेजते थे। ऐसे विद्यार्थी कृतविद्य होकर काशी से घर आते थे।

हिन्दी के सिवा अँगरेजी, सस्कृत और उर्दू के भी वे ज्ञाता थे। बँगला-साहित्य में तो उनकी पूर्ण योग्यता थी। 'आनन्द-मठ' का अनुवाद तो उनका छप चुका है, 'राजारानी' (बँगला-नाटक) का अनुवाद प्राय अबतक नहीं छपा है। सबसे अधिक प्रशसा की बात तो यह थी कि वे हिन्दी के सुलेखक और आशुकवि थे।

राजपूताना से एक बार दो चारण-कवि आये थे। उन्होंने राजा साहब को डिंगल-भाषा की कविता सुनाई। सुनकर और उसका भाव समझकर राजा साहब बडे प्रसन्न हुए। उनसे कविता सुनने के लिये अपने यहाँ उन्हें महीनों टिका रक्खा और चलने के समय उनकी पूरी विदाई करके उन्हें प्रसन्न किया।

राजा साहब का नाम सुनकर भगवन्त, बालदत्त, अजान, सुजान, शिवहर्ष आदि अनेक हिन्दी-कवि उनसे मिलने आये और सभी प्रसन्न होकर वापस गये। सभी ने उनकी कवित्व-शक्ति और काव्यमर्मज्ञता की मुक्त कठ से प्रशासा की।

राजा साहब के एकमात्र अनुज कुमार कालिकानन्द सिंह अब इस ससार में नहीं हैं। वे अँगरेजी, बँगला, सस्कृत और हिन्दी के वेत्ता थे। शिल्पकला और सगीत में तो बड़े ही प्रवीण थे। कविता करने की शक्ति रखते हुए भी वे काव्य की रचना तो नहीं करते थे, किन्तु काव्य के पूरे रसिक और मर्मज्ञ थे। बड़े उदार और दयालु थे। बाघ का शिकार करने में अपने बड़े भाई के अनुरूप

ही थे। परन्तु दया उनमें इतनी थी कि सहसा किसी जीव पर अस्त्र प्रहार नहीं करते थे। आश्रितों की रक्षा करना अपना परम धर्म समझते थे। बड़े हँसमुख और मधुरभाषी थे।

राजा साहब की निरभिमानिता

आत्मगौरव उनके रोम रोम में भरा था, परन्तु अभिमानी न थे। जो लोग मिलने आते थे, उनका यथायोग्य सम्मान करते थे। सबसे मीठी बातें करते थे। अपने बुद्धिबल या धन का उनको जरा भी घमंड न था। साधारण-से-साधारण लोगों के साथ बातचीत करने में भी अपना अपमान नहीं समझते थे। गुरुजनों के प्रति उनकी नम्रता सराहनीय थी। पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने जब उनकी तारीफ में कविता सुनाई तब उन्होंने एक सवैया रचकर व्यासजी को सुनाया, जिससे उनके हृदय की कोमलता, सरसता और विनय का भाव स्पष्ट झलकता है—

घोर अगम्य गभीर जलाशय ऐसे कुदेस में बास है रोज को।
पास में भेकसमाज सदा तब कैसे बढाय सकौं गुन ओज को॥
नेक दया कमला की रहै तिहि सों नित फूलि करौं मन मौज को।
जो सुकवी न विराजते तो कहो कौन सराहते आज 'सरोज' को॥

राजा साहब की दयालुता और क्षमाशीलता—

जो कोई दुखिया उनकी शरण में आकर अपना दुःख सुनाता था, उसका वे यथासाध्य अवश्य उपकार करते थे। दूसरे का दुःख देखकर उनका हृदय द्रवित हो जाता था। जो कोई अतिथि आता था, उसका उचित स्वागत-सम्मान होता था। कोई याचक विमुख न जाता था।

एक समय की बात है। पूर्वोक्त पंडित नित्यानन्द त्रिपाठी 'श्रीकवि' ने, किसी प्रकार का सङ्कट आ पड़ने पर, सहायता के लिये राजा साहब को पत्र लिखा। उन्होंने तुरन्त त्रिपाठीजी के सहायतार्थ रुपये भेज दिये। सङ्कट मुक्त होने पर पंडितजी ने उनको अनेकानेक धन्यवाद दिये।

एक बार पौषी पूर्णिमा को राजमाता साहबा कौशिकी-स्नान करने गई थीं। उनके साथ राजा साहब और हमलोग भी गये थे। कौशिकी के किनारे साधारण-सा जंगल था, जिसमें हिरन और बनैले सूअर रहते थे। राजमाता तो स्नान करके ड्योढी चली गई। जो लोग खासकर उनकी सेवा में रहनेवाले थे, वे भी चले गये। ड्योढी वहाँ से छः-सात कोस दूर थी। राजा साहब शिकार खेलने के

लिये रह गये। हमलोग, जो गिनती में दस-बारह व्यक्ति उनके अनुयायी थे, उनके साथ रहे। हाथी की सवारी थी। राजा साहब शाम को एक दवा खाते थे। दवा की शीशी रखने के लिये मुझे दी गई। मैंने जेब में शीशी रख ली।

एक जगह हमलोग पानी पीने के लिये हाथी से उतरे। उतरते समय शायद शीशी जेब से गिर पडी। जब शाम को उन्होंने दवा की शीशी माँगी, मैंने जेब मे हाथ डाला, शीशी का कहीं पता नहीं। मैं तो अवाक् हो रहा। वे समझ गये कि शीशी कहीं गिर पडी है। उन्होंने हँसते हुए कहा—'दवा का खो जाना शुभ लक्षण है। उसके लिये आप सोच न कीजिये। हम अब बिना दवा खाये ही अच्छे हो जायँगे।'

इस प्रकार उन्होंने अपनी क्षमा-शीलता दिखाकर मुझे अनुगृहीत किया।

जब मैं शुरू-शुरू श्रीनगर-दरबार मे बहाल हुआ था, बाबू नरनाथ झा छुट्टी लेकर किसी काम से घर गये थे। राजा साहब की आज्ञा से वे अपना चार्ज मुझे दे गये। आलमारियों की कुंजियों का गुच्छा मेरे जिम्मे कर गये। एक दिन कुँए पर स्नान करते समय वह गुच्छा वहीं छूट गया। दूसरा आदमी वहाँ स्नान करने आया तो यह जानकर कि ये चाबियाँ सरकारी हैं, राजा साहब को दे आया।

कुछ देर बाद राजा साहब ने मुझे आलमारी से कोई चीज निकालने को कहा। चाबी तो मैं बराबर कमर में रखता था, टटोलकर देखा, गुच्छा नदारद! मुँह सूख गया। तमाम खोजा, नहीं मिला। कुँए पर जाकर ढूँढा, कहीं पता नहीं।

मुझे इस प्रकार व्यग्र देखकर राजा साहब ने बुलाया और कहा कि कार्त्त वीर्य * को कुछ कबूलिये तो चाबी मिल जा सकती है। मैंने कहा—क्या कबूलूँ? बोले—बस, दो रुपये की मिठाई। मैंने कहा, एवमस्तु।

राजा साहब ने तबतक मेरी चारपाई के नीचे किसी के द्वारा गुच्छा रखवा दिया। थोडी देर बाद कहा कि एक बार जाकर फिर अपनी कोठरी मे ढूँढिये, शायद कहीं रक्खी हो। मैंने जाते ही देखा कि गुच्छा चारपाई के नीचे पडा है। समझ गया कि यह सब कौतुक राजा साहब का है।

चाबी लेकर मुसकुराता हुआ राजा साहब के पास पहुँचा। उन्होंने हँस कर पूछा—क्या चाबी मिल गई? मैंने गुच्छा दिखला दिया। उनके पास जितने

इतने में रसोई परसी जाने की खबर आई। राजा साहब के साथ हमलोग भोजन करने गये। उन्होंने कहा—कार्त्तवीर्य को दो रुपये की मिठाई कबूल करने पर 'जनसीदन' को चाभी मिल गई है, इसलिये एक आदमी खजाची से दो रुपये लेकर जल्दी हलवाई की दूकान से जलेबी ले आवे।

एक आदमी दौड़ा गया और गरमागरम जलेबियाँ खरीद लाया। सबको पत्तलों पर जलेबियाँ परसी गईं। तरह-तरह के विनोद होने लगे। कोई कहता, भगवान करें कि फिर इनकी चाभी खो जाय तो हमलोगों को मिठाई मिले। इसी प्रकार लोग चुहल करने लगे। मैं चुप सबकी बातें सुनता रहा। मेरा कुछ लज्जित-सा भाव देखकर राजा साहब ने इस प्रसग को दबा दिया। राजा-महाराजों में अब ऐसी परिहास प्रियता कहाँ देखने में आती है?

मुझमें अनेक दोष रहते हुए भी राजा साहब ने मेरे कामों से प्रसन्न होकर अपने हाथ से यह सर्टिफिकेट लिखकर मुझे दिया था—

श्रीनगर—पुर्नियाँ

१२ नोवम्बर १६०४ ई०

पंडित श्रीजनार्दन झा (जनसीदन) मेरे यहाँ १६०० ई० से नौकर हुए और आजतक मेरे यहाँ नौकर हैं। इनके रहने से बहुत उपकार हुआ है, क्योंकि एक सज्ञ कवि, वैयाकरण, लेखक और मोसाहब का काम इनके रखने से चलता है। ज्योतिषी का काम भी ये अच्छी तरह कर सकते हैं और मेरे यहाँ कभी-कभी किया करते हैं। ये भाषा और संस्कृत के अच्छे कवि हैं। आशु कविता भी किया करते हैं। मुझे इनसे राजकीय कार्यों में सलाह भी मिला करती है। ये परिश्रमी अत्यन्त हैं। मेरे यहाँ नित्य ७—८ घंटे काम करके भी अपना काम किया करते हैं। ये मेरे परम विश्वासी हैं। इनका स्वभाव इतना अच्छा है कि इतने दिन यहाँ पर इनको रहते हुआ है, परन्तु इनको किसी पर अथवा इनपर किसी को रंज होते नहीं देखा है। यदि मुझे एक भी नौकर रखने की शक्ति रहेगी तो मैं सदा इनको अपने पास नौकर रक्खूँगा, क्योंकि ये मेरे ८—६ नौकरों का काम अकेले किया करते हैं। जब कभी ये घर जाते हैं, तब मुझे बड़ा परिश्रम उठाना पड़ता है। इन चार वर्षों के काम से प्रसन्न होकर मैंने यह सर्टिफिकेट दिया है कि इनको भविष्य में काम आवे। इति।

श्रीकमलानन्दसिंह

बिहार के मल्ल

कविवर श्रीरामधारीसिंह 'दिनकर', बी० ए० 'ऑनर्स'

वयं चैव महाराज जरासन्धभयात्तदा।
मथुरां संपरित्यज्य गता द्वारवतीं पुरीम्॥

—(महाभारत, जरासन्ध-वध पर्व, अध्याय १४)

दिल्ली (इन्द्रप्रस्थ) के राजा युधिष्ठिर द्वारकानिवासी राजा श्रीकृष्ण के मत्र से राजसूय यज्ञ करके अपरिमित कीर्त्ति के भागी होना चाहते थे। सभी देशों के राजाओं ने अधीनता स्वीकार कर ली थी और अपने 'कर' भेज दिये थे, केवल मगध का राजा जरासन्ध ही ऐसा था जिससे 'कर' माँगने की हिम्मत भी नहीं की जा सकती थी। शायद यह भी सोचा जा रहा था कि राजा जरासन्ध को सूचित किये बिना ही यज्ञ सपन्न कर लिया जाय।

लेकिन श्रीकृष्ण मगधराज के पराक्रम को जानते थे, और भारतवर्ष-भर में उसकी जो धाक थी उसे देखते हुए जरासन्ध को भुला देना भी कठिन था*। फिर श्रीकृष्ण खुद भी उससे खार खाते थे और उसी के भय से मथुरापुरी छोड़ कर द्वारका में जा बसे थे। उनका दृढ मत था कि संग्राम करके तो उसे देव और असुर भी नहीं जीत सकते थे।†

जरासन्ध अपने समय का अद्वितीय मल्ल था और उसे पराजित करने के

* न तु शक्यं जरासन्धे जीवमाने महाबले।
राजसूयस्त्वयाऽऽवाप्तुमेषा राजन्मतिर्मम॥
† न शक्योऽसौ रणे जेतुं सर्वैरपि सुरासुरैः।
प्राणयुद्धेन जेतव्य स इत्युपलभामहे।
—महाभारत, जरासन्ध-वध पर्व (युधिष्ठिर के प्रति श्रीकृष्ण वचन)

लिये इसी फनवाले किसी पहलवान की जरूरत थी। बहुत सोच विचार के बाद यह निश्चय हुआ कि अपनी जान हथेली पर लेकर भीम ही जरासन्ध से युद्ध करें।

महाभारतकार ने जरासन्ध और भीम के मल्लयुद्ध का बड़ा ही रोचक वर्णन किया है। अखाड़े में उतरते ही जरासन्ध ने किरीट उतारकर अपने बालों को बाँध लिया। खम ठोंकने पर उसका शरीर कस्त (कश ?) से फूल उठा और वह उद्वेलित समुद्र की भाँति उछलने लगा। भीम और जरासन्ध ने पहले एक दूसरे के कन्धों पर भुजाएँ डालकर बार बार मारना और फिर अंगों से अंगों को रगड़ना शुरू किया। इसके अनन्तर चित्रहस्त आदि दावँ करके वे कक्षा-बन्धन करने लगे। उनके मस्तक जब परस्पर टकराते थे तब चिनगारियाँ उड़ने लगती थीं।

जरासन्ध के अखाड़े की प्रसिद्धि सारे संसार में थी और उससे भिड़ने में कृतान्त मल्ल भी भय खाते थे। पुराणेतिहास के अन्दर राजा जरासन्ध बिहार का अग्रणी मल्ल है और उसकी स्थापित परम्परा उस प्रदेश में अब तक अक्षुण्ण चली जा रही है।

मल्लयुद्ध में महाभारत के सुप्रसिद्ध दानवीर बाँके-बहादुर अंगराज कर्ण का भी नाम कम प्रसिद्ध नहीं है। उसने प्राग्ज्योतिषपुर (कामाख्या आसाम) के राजा भगदत्त की कन्या भानुमती के स्वयंवर में मगधराज जरासंध को मल्लयुद्ध में ही पछाड़ा था।

मिथिला के राजा सुमति जनक का भी अखाड़ा उन दिनों बहुत प्रसिद्ध था। भगवान् कृष्ण के बड़े भाई बलरामजी की पद्धति पर ही यह अखाड़ा बना था, और तात्कालिक मिथिला-नरेश ने उन्हीं बलरामजी से मल्लयुद्ध और गदायुद्ध की शिक्षा पाई थी।

इतिहासाभाव से हमें यह पता नहीं कि जरासन्ध के बाद से बिहार अथवा भारतवर्ष में कौन-कौन नामी पहलवान * हुए, लेकिन गाँवों में मल्ल-विद्या विषयक

* यों तो मल्लों की श्रेणी में रावण, हनुमान्, बलराम, कंस, भीम, मुष्टिक, चाणूर आदि के नाम गिनाये जाते हैं, पर श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम श्लोक के प्रथम चरण (धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः) के अंतिम शब्द से मालूम होता है कि प्राचीन भारत में मल्लविद्या का बहुत प्रचार था, क्योंकि जितने वीर योद्धा कुरुक्षेत्र में जुटे थे, सब के सब व्यायामशील और हृष्टपुष्टाङ्ग थे। भारत की 'युयुत्सु'-कला ही आज जापान में 'जुजुत्सु'-रूप में विद्यमान है।

—सम्पादक

जो कथाएँ प्रचलित हैं उनसे साफ जाहिर होता है कि यहाँ मल्लों का क्रम टूटा नहीं, बराबर चलता ही रहा है।

जगदीशपुर के राजा कुँवरसिंह योद्धा के साथ-साथ बहुत बड़े मल्ल भी थे, और कहते हैं कि अखाड़े से लौटने पर दोपहर तक उनका दरबार धूप मे ही चलता था और तबतक दरबार मे ही चार-चार छ-छ मल्ल उनके बदन मे सरसों के तेल की मालिश करते रहते थे।

मगध और मिथिला दोनों ही मल्लों की खान रहे हैं, बल्कि यों कहना चाहिये कि इधर आकर बलरामीय परम्परा के स्थान पर जरासन्धीय परम्परा मिथिला मे ही आन बसी है और अभी हाल तक यहाँ ऐसे-ऐसे पहलवान होते रहे हैं जिनके बल के सामने भीमकाय गजराज भी मात थे।

शंकरदत्त झा मिथिला के ही निवासी थे जो दुम पकड़कर घुटनों की चोट से हाथी को बैठा देते थे। कहते हैं, एक बार नैपाल-नरेश ने इन्हें अपने पाले हुए शेर से भिड़ा दिया। इन्होंने शेर के मुँह मे हाथ डालकर उसकी जीभ बाहर खींच ली। इस क्रिया मे शेर ने इनके हाथ का कुछ मास चबा डाला, लेकिन जीभ बाहर निकल जाने पर वह खुद भी मर गया। इसी वीरता के पुरस्कार मे इनको कुछ गाँव दिये गये थे जो आज भी इनके वशधरों के उपभोग मे हैं।

मिथिलेश महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह से परवरिश पानेवाले एक दूसरे व्यक्ति शिवनन्दन झा भी अपने समय के विकट मल्ल थे। कहते हैं कि उनके शरीर मे भी एक हाथी का बल था। उनके दो लड़कों—सत्यनारायण और जगदीश—की गणना आज भी देश के अच्छे पहलवानों मे की जाती है। उनके प्रथम पुत्र उदितनारायण का नाम आज के पहलवान करुणापूर्वक लेते हैं और कहते हैं कि वह अगर जीवित रहता तो आज देश मे उसका जोड़ नहीं मिलता और गामा की जगह शायद उसे ही मिली होती। बीस साल की उठती जवानी मे ही, मिथिला में क्या, दरभगा-नरेश के बाहरी पहलवानों मे भी, उससे हाथ मिलानेवाला कोई नहीं था। कहते हैं कि उसकी उमड़ती हुई वीरता से सहमे हुए किसी बाहरी पहलवान की कुत्सित क्रिया ने ही कापुरुषतापूर्वक उसकी जान ली।

जब मझुआर (दरभगा) मे शिवनन्दन झा की जवानी ढल रही थी, उन्हीं दिनों चिहुँटा (मुजफ्फरपुर) के एक नौजवान जमींदार बाबू मथुराप्रसाद सिंह पहलवानी के हुनर सीख रहे थे। मथुरा बाबू अभी जीवित हैं और आज भी दूर देहातों के लोग उनके दर्शन करने प्राय आते ही रहते हैं। एकडगा (बाढ़,

पटना) के पोखन सिंह और चिहुँटा के मथुराप्रसाद सिंह समसामयिक रहे होंगे। मथुरा बाबू की पहलवानी कुल दस बारह वरसों तक कायम रही। एक मार्मिक दुखद प्रसंग के कारण उन्होंने मल्ल-विद्या की साधना छोड़ दी और पहलवानी से झल्लाकर चुप बैठ गये। बल के उभाड़ के समय उन्होंने प्रान्त से बाहर जा-जाकर बनारस, प्रयाग और लाहौर में दंगल मारे और गौरव के साथ घर लौटे। मुजफ्फरपुर के कलक्टर के तत्त्वावधान में उनकी कुश्ती प्रसिद्ध मल्ल 'सिद्दीक' से हुई, जिसे उन्होंने हाथ छूते ही पट्ट छाप पर खींच लिया।

उन्हीं दिनों किसी बली प्रतिद्वन्द्वी की तलाश में वे दरभंगा पहुँचे और राज में पलनेवाले पहलवानों को कुश्ती के लिये ललकारा। उस समय वर्त्तमान तिरहुत-चैम्पियन सुखदेव झा के पिता बोतल झा अपनी पूरी जवानी पर थे, लेकिन उन्होंने मथुरा बाबू से लड़ने से इनकार कर दिया। अत महाराज की ओर से मथुरा सिंह को यह लिखित प्रमाण पत्र दिया गया कि यहाँ आपसे लड़ने लायक कोई पहलवान नहीं है।

सन् १६११ में मथुरा बाबू ने गामा से मुलाकात की और उससे कुश्ती चाही, लेकिन गामा ने कुश्ती नहीं की, और उनसे मित्रतापूर्वक मिलकर अलग हो गया। ढाक, पट्ट, पट्ट-छाप और बाजूबन्द मथुरा बाबू के प्रिय दावँ थे और प्राय इन्हीं दावों के प्रयोग से वे अपने प्रतिद्वन्द्वी को पछाड़ा करते थे। प्रसिद्ध पजाबी पहलवान कपलू को भी उन्होंने पट्ट-छाप पर ही मारा था।

मथुरा बाबू को मैंने देखा है। अब तो वे बहुत ही बूढ़े हो गये हैं, लेकिन आज भी उनके बदन में डेढ़-दो मन से कम हड्डियाँ न होंगी। पुरानी बातें बहुत सुनाते हैं, नये पहलवानों को देखकर हँस देते हैं। कहते हैं, इनमें पुराने हुनर नहीं रहे। सुखदेव की बहुत तारीफ करते हैं और कहते हैं कि उसने अपनी पूरी हिफाजत नहीं की, नहीं तो आज उसके जोड़ का पहलवान शायद खोजने पर ही मिलता।

दावँ-पेच की कला के साथ-साथ मथुरा बाबू में बल भी अपार था। जमींदारी के झगड़े में एक बार बलहा (पूर्णियाँ) में बन्दूकवाले बाबुओं से उनका सामना हो गया। हाथी की पीठ पर से बन्दूक चला और मथुरा बाबू की टाँग में उसका निशाना लगा। गोली खाकर वे क्रोध से गरज उठे और दाहिने हाथ से हाथी की पूँछ खींचकर बायें हाथ से एक ऐसी लाठी जमाई कि हाथी वहीं-का वहीं बैठ गया और उन्होंने गजारूढ बाबू साहब के हाथ से बन्दूक छीन

जो कथाएँ प्रचलित हैं उनसे साफ जाहिर होता है कि यहाँ मल्लों का क्रम टूटा नहीं, बराबर चलता ही रहा है।

जगदीशपुर के राजा कुँवरसिंह योद्धा के साथ-साथ बहुत बड़े मल्ल भी थे, और कहते हैं कि अखाड़े से लौटने पर दोपहर तक उनका दरबार धूप में ही चलता था और तबतक दरबार में ही चार-चार छ-छ मल्ल उनके बदन में सरसों के तेल की मालिश करते रहते थे।

मगध और मिथिला दोनों ही मल्लों की खान रहे हैं, बल्कि यों कहना चाहिये कि इधर आकर बलरामीय परम्परा के स्थान पर जरासन्धीय परम्परा मिथिला में ही आन बसी है और अभी हाल तक यहाँ ऐसे-ऐसे पहलवान होते रहे हैं जिनके बल के सामने भीमकाय गजराज भी मात थे।

शकरदत्त झा मिथिला के ही निवासी थे जो दुम पकड़कर घुटनों की चोट से हाथी को बैठा देते थे। कहते हैं, एक बार नैपाल-नरेश ने इन्हें अपने पाले हुए शेर से भिड़ा दिया। इन्होंने शेर के मुँह में हाथ डालकर उसकी जीभ बाहर खींच ली। इस क्रिया में शेर ने इनके हाथ का कुछ मास चबा डाला, लेकिन जीभ बाहर निकल जाने पर वह खुद भी मर गया। इसी वीरता के पुरस्कार में इनको कुछ गाँव दिये गये थे जो आज भी इनके वंशधरों के उपभोग में हैं।

मिथिलेश महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह से परवरिश पानेवाले एक दूसरे व्यक्ति शिवनन्दन झा भी अपने समय के विकट मल्ल थे। कहते हैं कि उनके शरीर में भी एक हाथी का बल था। उनके दो लडकों—सत्यनारायण और जगदीश—की गणना आज भी देश के अच्छे पहलवानों में की जाती है। उनके प्रथम पुत्र उदितनारायण का नाम आज के पहलवान करुणापूर्वक लेते हैं और कहते हैं कि वह अगर जीवित रहता तो आज देश में उसका जोड़ नहीं मिलता और गामा की जगह शायद उसे ही मिली होती। बीस साल की उठती जवानी में ही, मिथिला में क्या, दरभंगा-नरेश के बाहरी पहलवानों में भी, उससे हाथ मिलानेवाला कोई नहीं था। कहते हैं कि उसकी उमडती हुई वीरता से सहमे हुए किसी बाहरी पहलवान की कुत्सित क्रिया ने ही कापुरुषतापूर्वक उसकी जान ली।

जब मट्ठुआर (दरभंगा) में शिवनन्दन झा की जवानी ढल रही थी, उन्हीं दिनों चिहुँटा (मुजफ्फरपुर) के एक नौजवान जमींदार बाबू मथुराप्रसाद सिंह पहलवानी के हुनर सीख रहे थे। मथुरा बाबू अभी जीवित हैं और आज भी दूर देहातों के लोग उनके दर्शन करने प्राय आते ही रहते हैं। एकडगा (बाढ़,

पटना) के पोरान सिंह और चिहुँटा के मथुराप्रसाद सिंह समसामयिक रहे होंगे। मथुरा बाबू की पहलवानी कुल दस-बारह बरसों तक कायम रही। एक मार्मिक दुःखद प्रसंग के कारण उन्होंने मल्ल विद्या की साधना छोड़ दी और पहलवानी से झल्लाकर चुप बैठ गये। बल के उभाड़ के समय उन्होंने प्रान्त से बाहर जा-जाकर बनारस, प्रयाग और लाहौर में दगल मारे और गौरव के साथ घर लौटे। मुजफ्फरपुर के कलक्टर के तत्त्वावधान में उनकी कुश्ती प्रसिद्ध मल्ल 'सिद्दीक' से हुई, जिसे उन्होंने हाथ छूते ही पट्ट-छाप पर खींच लिया।

उन्हीं दिनों किसी जली प्रतिद्वन्द्वी की तलाश में वे दरभंगा पहुँचे और राज में पलनेवाले पहलवानों को कुश्ती के लिये ललकारा। उस समय वर्तमान तिरहुत-चैम्पियन सुखदेव झा के पिता बोतल झा अपनी पूरी जवानी पर थे, लेकिन उन्होंने मथुरा बाबू से लड़ने से इनकार कर दिया। अतः महाराज की ओर से मथुरा सिंह को यह लिखित प्रमाण-पत्र दिया गया कि यहाँ आपसे लड़ने लायक कोई पहलवान नहीं है।

सन् १६११ में मथुरा बाबू ने गामा से मुलाकात की और उससे कुश्ती चाही, लेकिन गामा ने कुश्ती नहीं की, और उनसे मित्रतापूर्वक मिलकर अलग हो गया। ढाक, पट्ट, पट्ट-छाप और बाजूबन्द मथुरा बाबू के प्रिय दावँ थे और प्रायः इन्हीं दावों के प्रयोग से वे अपने प्रतिद्वन्द्वी को पछाड़ा करते थे। प्रसिद्ध पंजाबी पहलवान झपसू को भी उन्होंने पट्ट-छाप पर ही मारा था।

मथुरा बाबू को मैंने देखा है। अब तो वे बहुत ही बूढ़े हो गये हैं, लेकिन आज भी उनके बदन में डेढ़-दो मन से कम हड्डियाँ न होंगी। पुरानी बातें बहुत सुनाते हैं, नये पहलवानों को देखकर हँस देते हैं। कहते हैं, इनमें पुराने हुनर नहीं रहे। सुखदेव की बहुत तारीफ करते हैं और कहते हैं कि उसने अपनी पूरी हिफाजत नहीं की, नहीं तो आज उसके जोड़ का पहलवान शायद खोजने पर ही मिलता।

दावँ-पेच की कला के साथ-साथ मथुरा बाबू में बल भी अपार था। जमींदारी के झगड़े में एक बार मलहा (पूर्णियाँ) में बन्दूकवाले बाबुओं से उनका सामना हो गया। हाथी की पीठ पर से बन्दूक चला और मथुरा बाबू की टाँग में उसका निशाना लगा। गोली खाकर वे क्रोध से गरज उठे और दाहिने हाथ से हाथी की पूँछ खींचकर बायें हाथ से एक देसी लाठी जमाई कि हाथी वहीं-का वहीं बैठ गया और उन्होंने गजारूढ़ बाबू साहब के हाथ से बन्दूक छीन

जो कथाएँ प्रचलित हैं उनसे साफ जाहिर होता है कि यहाँ मल्लों का क्रम टूटा नहीं, बराबर चलता ही रहा है।

जगदीशपुर के राजा कुँवरसिंह योद्धा के साथ-साथ बहुत बड़े मल्ल भी थे, और कहते हैं कि अखाड़े से लौटने पर दोपहर तक उनका दरबार धूप में ही चलता था और तबतक दरबार में ही चार-चार छः-छः मल्ल उनके बदन में सरसों के तेल की मालिश करते रहते थे।

मगध और मिथिला दोनों ही मल्लों की खान रहे हैं, बल्कि यों कहना चाहिये कि इधर आकर बलरामीय परम्परा के स्थान पर जरासन्धीय परम्परा मिथिला में ही आन बसी है और अभी हाल तक यहाँ ऐसे-ऐसे पहलवान होते रहे हैं जिनके बल के सामने भीमकाय गजराज भी मात थे।

शकरदत्त झा मिथिला के ही निवासी थे जो दुम पकड़कर घुटनों की चोट से हाथी को बैठा देते थे। कहते हैं, एक बार नैपाल-नरेश ने इन्हें अपने पाले हुए शेर से भिड़ा दिया। इन्होंने शेर के मुँह में हाथ डालकर उसकी जीभ बाहर खींच ली। इस क्रिया में शेर ने इनके हाथ का कुछ मांस चबा डाला, लेकिन जीभ बाहर निकल जाने पर वह खुद भी मर गया। इसी वीरता के पुरस्कार में इनको कुछ गाँव दिये गये थे जो आज भी इनके वंशधरों के उपभोग में हैं।

मिथिलेश महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह से परवरिश पानेवाले एक दूसरे व्यक्ति शिवनन्दन झा भी अपने समय के विकट मल्ल थे। कहते हैं कि उनके शरीर में भी एक हाथी का बल था। उनके दो लड़कों—सत्यनारायण और जगदीश—की गणना आज भी देश के अच्छे पहलवानों में की जाती है। उनके प्रथम पुत्र उदितनारायण का नाम आज के पहलवान करुणापूर्वक लेते हैं और कहते हैं कि वह अगर जीवित रहता तो आज देश में उसका जोड़ नहीं मिलता और गामा की जगह शायद उसे ही मिली होती। बीस साल की उठती जवानी में ही, मिथिला में क्या, दरभंगा-नरेश के बाहरी पहलवानों में भी, उससे हाथ मिलानेवाला कोई नहीं था। कहते हैं कि उसकी उमड़ती हुई वीरता से सहमे हुए किसी बाहरी पहलवान की कुत्सित क्रिया ने ही कापुरुषतापूर्वक उसकी जान ली।

जब महुआर (दरभंगा) में शिवनन्दन झा की जवानी ढल रही थी, उन्हीं दिनों चिहुँटा (मुजफ्फरपुर) के एक नौजवान जमींदार बाबू मथुराप्रसाद सिंह पहलवानी के हुनर सीख रहे थे। मथुरा बाबू अभी जीवित हैं और आज भी दूर देहातों के लोग उनके दर्शन करने प्रायः आते ही रहते हैं। एकडगा (बाढ़,

पटना) के पोखन सिह और चिहुँटा के मथुराप्रसाद सिंह समसामयिक रहे होंगे। मथुरा बाबू की पहलवानी कुल दस बारह बरसों तक कायम रही। एक मार्मिक दुखद प्रसग के कारण उन्होंने मल्ल-विद्या की साधना छोड़ दी और पहलवानी से झल्लाकर चुप बैठ गये। बल के उभाड के समय उन्होंने प्रान्त से बाहर जा-जाकर बनारस, प्रयाग और लाहौर मे दगल मारे और गौरव के साथ घर लौटे। मुजफ्फरपुर के कलक्टर के तत्त्वावधान मे उनकी कुश्ती प्रसिद्ध मल्ल 'सिद्दीक' से हुई, जिसे उन्होंने हाथ छूते ही पट्ट-छाप पर खींच लिया।

उन्हीं दिनों किसी बली प्रतिद्वन्द्वी की तलाश मे वे दरभगा पहुँचे और राज में पलनेवाले पहलवानों को कुश्ती के लिये ललकारा। उस समय वर्त्तमान तिरहुत चैम्पियन सुखदेव झा के पिता बोतल झा अपनी पूरी जवानी पर थे, लेकिन उन्होंने मथुरा बाबू से लड़ने से इनकार कर दिया। अत महाराज की ओर से मथुरा सिंह को यह लिखित प्रमाण-पत्र दिया गया कि यहाँ आपसे लड़ने लायक कोई पहलवान नहीं है।

सन् १६११ मे मथुरा बाबू ने गामा से मुलाकात की और उससे कुश्ती चाही, लेकिन गामा ने कुश्ती नहीं की, और उनसे मित्रतापूर्वक मिलकर अलग हो गया। ढाक, पट्ट, पट्ट-छाप और बाजूबन्द मथुरा बाबू के प्रिय दावँ थे और प्राय इन्हीं दावों के प्रयोग से वे अपने प्रतिद्वन्द्वी को पछाडा करते थे। प्रसिद्ध पजाबी पहलवान झपसू को भी उन्होंने पट्ट-छाप पर ही मारा था।

मथुरा बाबू को मैंने देखा है। अब तो वे बहुत ही बूढ़े हो गये हैं, लेकिन आज भी उनके बदन मे डेढ-दो मन से कम हड्डियाँ न होंगी। पुरानी बातें बहुत सुनाते हैं, नये पहलवानों को देखकर हँस देते हैं। कहते हैं, इनमे पुराने हुनर नहीं रहे। सुखदेव की बहुत तारीफ करते हैं और कहते हैं कि उसने अपनी पूरी हिफाजत नहीं की, नहीं तो आज उसके जोड का पहलवान शायद खोजने पर ही मिलता।

दावँ-पेच की कला के साथ-साथ मथुरा बाबू मे बल भी अपार था। जमींदारी के झगडे मे एक बार मलहा (पूर्णियाँ) मे बन्दूकवाले बाबुओं से उनका सामना हो गया। हाथी को पीठ पर से बन्दूक चला और मथुरा बाबू की टाँग मे उसका निशाना लगा। गोली खाकर वे क्रोध से गरज उठे और दाहिने हाथ से हाथी की पूँछ खींचकर बायें हाथ से एक ऐसी लाठी जमाई कि हाथी वहीं-का वहीं बैठ गया और उन्होंने गजारूढ बाबू साहब के हाथ से बन्दूक छीन

लिया। एक दूसरे हाथी की सूँड में उन्होंने ऐसी चोट दी कि वह भाग खड़ा हुआ। अपने समय मे वे बड़े ही सरल और सयमी पहलवान रहे।

प्रमुखता के विचार से मथुरा बाबू के बाद जिन पहलवान का नम्बर आता है उनका नाम पोखन सिंह है। वे एकडगा (बाढ, पटना) के निवासी राजपूत हैं। पहलवानी करते उन्हें ५० वर्ष हो गये, लेकिन ७४ वर्ष की उम्र मे आज भी उनका दावा है कि अगर ४० दिनों तक उन्हें पहलवानी खूराक मिल जाय तो वे गामा के साथ सफल कुश्ती कर सकते हैं। १६२६ ई० मे गामा को उन्होंने खुला चैलेंज भी दिया था, लेकिन उससे कुश्ती हुई नहीं। देश के कोने-कोने में घूमकर उन्होंने कुश्ती की है और प्राय सर्वत्र ही गौरव प्राप्त किया है।

हिन्दू-सगठन के दिनों मे वे महामना मालवीयजी और दानवीर बिडलाजी के परम प्रिय पहलवान थे। इनलोगों की प्रेरणा से उन्होंने कलकत्ता और बनारस मे कई अखाड़े भी खोले थे। नवजवानों को कुश्ती लड़ाना और डंड-पट्टे सिखाना, बरसों उनका यही काम रहा। कहते हैं, कलकत्ता के हिन्दू—विशेषत मारवाड़ी—युवकों मे आज जो निर्भीकता देखने को मिलती है उसका बहुत-कुछ श्रेय उन्हीं को मिलना चाहिये। बिहार के किसी भी पहलवान ने, प्रान्त से बाहर जाकर, वह नाम नहीं पैदा किया जो उन्होंने। देश के सभी प्रमुख दगलों मे उन्हें निमत्रण दिया जाता था, और इस सिलसिले मे वे कई बार पेशावर से ढाका तक की यात्राएँ कर चुके हैं।

इन्दौर के एक दगल का हाल उन्होंने कहा है, जो बड़ा ही मनोरजक है। वहाँ इन्दौर-नरेश की ओर से एक ऐसा दगल आयोजित किया गया, जिसमे १४००० पहलवान इकट्ठे हुए थे, और जो लगातार ३० दिनों तक चलता रहा। प्रतिदिन सौ जोड़ों के हिसाब से उसमें तीन हजार पहलवानों ने कुश्ती की। अखाड़ा अबीर से भरा गया था और उसमे केसर घोलकर छिड़काव किया जाता था। इस दगल मे उनकी कुश्ती कई नामी पहलवानों के साथ हुई थी। उन्हें बहुत सुयश और इनाम मिला।

उन्होंने अपनी जिन्दगी मे सैकड़ो नामी पहलवानों से कुश्ती की है। उनसे लड़नेवाले नामी पहलवानों मे कुछ के नाम ये हैं—नब्बा (पजाब), गुलगू (गुलाम का भाई), सुभान (स्यालकोट), करीम (गया), ताज खॉ,* तिनकौड़ी

* यह पहलवान ईरान का था और 'एशिया का चैम्पियन' होने की गरज से देश देशान्तर में कुश्ती करने निकला था। बाढ (पटना) में मिस्टर टॉमलिंग के सामने पोखन सिंह ने ताज खाँ को १ मिनट में फेंक दिया। —ले॰

चौबे (मथुरा), हाशिम (लखनऊ), छोटा आगा (दिल्ली), गामू (बडोदा), रमजानी नट (पानीपत) और गूजन (बनारस) ।

बडा सैयद कानपुरिया से पोखन सिंह की कुश्ती रामनगर (बनारस) मे सम्राट् पचम जार्ज के सामने हुई थी, जिसमें बाजी पोखन सिंह की रही। वे बहुत ही गुणवन्त पहलवान हैं। उनका दावा है कि सारे भारतवर्ष मे एक भी ऐसा दावँ नहीं है जिसे वे भली भाँति न जानते हों।

छपरा के सूचित सिह भी देश के नामी पहलवान हो गये हैं। जब गुलाम, कल्लू और रहीम—तीनों भाई दुनिया मे नाम मार रहे थे, सूचित सिह भी अपनी पूरी जवानी पर थे। गुलाम और कल्लू अपने समय के सर्वश्रेष्ठ पहलवान थे—इनसे हाथ मिलानेवालों की सख्या बहुत ही कम थी। आज का नामी पहलवान हमीदा इन्हीं भाइयों में से एक (रहीम) का लडका है। गुलाम ने किंकर सिंह (लाहौर) को इन्दौर मे पछाड़ा था।

सूचित सिंह ने गया (बिहार) मे गुलाम से कुश्ती की, लेकिन पछड़ गये। फिर कलकत्ता मे उनकी कुश्ती कल्लू पहलवान से हुई, जिसमे वे मिट्टी पर नीचे आ गये। कल्लू ने खपका-दावँ लगाकर उनको चित करना चाहा, लेकिन कर न सका। मालूम होता है, इस दावँ से उनके किसी मर्म-स्थान पर अनुचित दबाव पड गया था, क्योंकि अखाड़े से लौटने पर दो दिनों के बाद ही वे मर गये।

शाहाबाद जिले के जीवित पहलवानों मे कई पुराने और प्रसिद्ध पहलवानों के नाम उल्लेखनीय हैं। सूर्यपुरा-दरबार के अँगरापिटाठ-(पीरो-थाना)-निवासी सहदेवचन्द दो-दो हजार की बाजी के दगल जीत चुके हैं। सूर्यपुरा के स्वर्गीय राजा राजराजेश्वरीप्रसाद सिंहजी स्वय पहलवान थे और पहलवानी के ऐसे मशहूर शौकीन थे कि अपने दरबार में अच्छे अच्छे कुश्तवान बराबर रखते थे। उनके दरबार के नामी पहलवान लाल चौबे अब वृद्ध हो गये हैं। उसी प्रकार चोगाईं के प्रतिष्ठित जमीन्दार बाबू रघुनन्दनप्रसाद सिंह को भी स्वय अखाड़े की धूल मलने का बडा शौक था और उनके दरबार में गउसपुर-निवासी श्री पाँड़ बहुत अच्छे पहलवान थे। सलेमपुर के बँगला दुबे तो शाहाबाद के पहलवानों में बडे ही प्रतिष्ठित हैं। वे अब कलकत्ता मे रहकर बुढ़ापे मे भी अपने दर्शनीय शरीर की रोटी खा रहे हैं। ओयना-सोनबरसा का निवासी बिल्लर अहीर भी कलकत्ता मे ही पहलवानी की कमाई खाता है। उसके दोनों गुरु—नवरंगा-

नैनीजोर के निवासी भूमिहार-ब्राह्मण वसुधर ठाकुर और ओयना-सोनवरसा के ही बलेश्वर मिश्र—इस समय बड़े अखाड़िया पहलवान माने जाते हैं।

समहुती-निवासी स्वर्गीय जमींदार बाबू बखा सिंह शाहाबाद के पहलवानों के प्रसिद्ध आश्रयदाता थे और स्वय भी अच्छे मल्ल थे। उनका गुरु—फौदीराम-मकोढ़ी (रामगढ़-थाना) का निवासी मोतीलाल ग्वाला—वृद्धावस्था के निकट होने पर भी कुश्ती के करतब दिखाने में उस्ताद है। ईसरपुरा (नटवार-थाना) का बल्हकू ग्वाला और धनगाई (सूर्यपुरा) का भिखारी ग्वाला, दोनों ही, अपनी जाति की स्वाभाविक शारीरिक शक्ति के प्रबल प्रतिनिधि हैं। जमुआँव (पीरो-थाना) के शिवसरन पाठक को भी ईश्वर ने मस्त भैंसे का-सा शरीर दिया है, जो अखाड़े में चट्टान की तरह दीख पड़ता है। उपर्युक्त सलेमपुर के व्यास दुबे और डुमराँव के भूमिहार-ब्राह्मण छत्रपति राय भी शाहाबाद के पहलवानों में अपनी कला और शक्ति के लिये बहुत विख्यात हैं। कलकत्ता-निवासी शाहाबादी पहलवानों में बम्हवार (पीरो थाना) का शीतल अहीर भी बड़ा नामी है जो वहाँ कई दगल मार चुका है। इस जिले के उत्तर-खड में, जो गगा-तट के समीप है, कई अच्छे शक्तिशाली पहलवान हैं। गगा तट के गाँवों में अनेक घराने ऐसे हैं जिनमें परम्परागत रीति से पहलवानी की कला का अचल अनुराग पाया जाता है—हर घर में व्यायामशील युवक और प्रौढ पुरुष देखने में आते हैं—गगातट पर अखाड़ों की भरमार है।

आजकल बिहार में सबसे अधिक प्रसिद्ध मल्ल छपरा जिले के बाबू वशी सिंह हैं। वे भूमिहार-ब्राह्मण हैं। तगड़ा बदन के बहुत गठीले जवान हैं। ताकत के लिहाज से उनकी गिनती देश के प्रथम श्रेणी के पहलवानों में की जाती है। लेकिन आरभ ही से अच्छे उस्तादों की सगति न होने के कारण दावँ-पेच में वे उतने दक्ष नहीं हैं। मशहूर पहलवान 'खयाली' से, जिसने 'अदालत' को पछाड़कर बड़ा नाम कमाया था, उनकी कुश्ती इलाहाबाद के दगल में हुई थी, लेकिन कुश्ती साफ न हो सकी, दोनों मल्ल बराबर पर ही छुड़ा दिये गये।

वशी सिंह प्राय कलकत्ता में रहते हैं। वहीं के दगलों से देश में उनके नाम की प्रसिद्धि हुई है। वहीं के एक विशाल दगल में उन्होंने गामा को चैलेंज दिया, लेकिन उसने कुश्ती लड़ना कबूल नहीं किया। तब से वे उसके पीछे पड़े हुए थे, लेकिन वह यह कहकर कुश्ती टालता रहा कि वे पहले इमामबख्श से लड़ लें। आखिर बम्बई में वे इमाम से पछड़ गये।

हाँ, कलकत्ता के दंगलों में उन्होंने कई नामी मल्लों को पछाड़ा है। वहाँ उनकी आखिरी कुश्ती पूरन सिंह (पजाबी) से हुई, लेकिन फैसला न हो सका। उनके नीचे जाते ही दोनों तरफ के जवानों में मार-पीट शुरू हो गई। कहते हैं, किसी तरफ के एक जवान का खून भी हो गया। जो हो, उनकी कुश्ती गोरखपुर के नामी पहलवान तप्पे से भी हुई थी, लेकिन समयाभाव के कारण तप्पे को वे चित न कर सके, कुश्ती बराबर पर छुड़ा दी गई।

मथुरा के भूतेश्वर अखाड़े के पहलवान हिन्दुस्तान में हमेशा ही नामी रहे हैं। इसी अखाड़े के 'छोटा रतन' ने अपनी जवानी में रीवाँ के दगल में गामा को पटका था। इसी अखाड़े के चन्द्रसेन पहलवान ने गामा के प्रधान शिष्य 'जाली' (लाहौर) को तीन घंटे लडकर पछाड़ा था। आजकल इस अखाड़े के धुरें चौबे और काला पहाड़ बड़े नामी मल्ल गिने जाते हैं। उपर्युक्त बशी सिंह की कुश्ती काला पहाड़ और हमीदा से होनेवाली थी।

बशी सिंह के बाद जिन्होंने मल्ल विद्या में सबसे अधिक नाम पैदा किया है वे हैं सुखदेव झा*। दुःख है कि इनकी पहलवानी अब उखड़ रही है। इसके लिये ये चिन्तित भी नहीं दीखते। इनका रंग साफ, कद लम्बा और शरीर वजनदार है। लँगोट बाँधकर अखाड़े में उतरने पर इनकी शोभा देखते ही बनती है। दानवी शरीर में सुन्दरता कूट-कूटकर भरी हुई है। अखाड़े में खड़ा होते ही ये जनता के प्रिय पहलवान हो जाते हैं। इनका स्वभाव भी बड़ा ही मधुर है। ऐसा कोई भी दंगल मैंने नहीं देखा जिसमें जनता की शुभकामना इनके साथ न रही हो। मथुरा के उठते शेर चुन्नी चौबे के साथ कुश्ती में जब इन्हें दम आने लगा तब जनता ने घबराकर बड़े जोर का शोर मचाया और कुश्ती बराबर पर छुड़वाकर इन्हें अखाड़े से उतार लिया। गत बीस वर्षों से ये दंगलों में भाग लेते रहे हैं। प्राय सर्वत्र ही इन्होंने अपनी प्रतिष्ठा को कायम रक्खा है।

इनके पिता बोतल झा भी बड़े नामी पहलवान थे। उनका कद और उनकी ऊँचाई मशहूर थी। सिमरिया-घाट (मुँगेर) के मेले में दूर से ही जिसकी गरदन सबसे ऊँची दीख पड़ती थी, लोग उसे बोतल झा समझ लेते थे, और यह पहचान ठीक भी थी। झपसू पहलवान ने बुढ़ापे में उनको पटक दिया था। सुखदेव झा ने इक्कीस वर्ष की उम्र में ही अपने बाप का बदला लिया—झपसू को पटक दिया। कुछ दिन हुए, चम्पारन जिले की बेतिया-राजधानी में सुखदेव की कुश्ती करनैल

* 'बालक' (वर्ष ३, कार्त्तिक, संवत् १९८५) में इनकी सचित्र जीवनी छप चुकी है।

नैनीजोर के निवासी भूमिहार-ब्राह्मण वसुधर ठाकुर और ओमना-सोननरसा के ही वलेश्वर मिश्र—इस समय बड़े अखाड़िया पहलवान माने जाते हैं।

समहुती निवासी स्वर्गीय जमीन्दार बाबू बचा सिंह शाहाबाद के पहलवानों के प्रसिद्ध आश्रयदाता थे और स्वयं भी अच्छे मल्ल थे। उनका गुरु—कोरीराम-मकोढ़ी (रामगढ़-थाना) का निवासी मोतीलाल ग्वाला—वृद्धावस्था के निकट होने पर भी कुश्ती के करतब दिखाने में उस्ताद है। ईसरपुरा (नटवार-थाना) का चल्हकू ग्वाला और धनगाईं (सूर्यपुरा) का भिखारी ग्वाला, दोनों ही, अपनी जाति की स्वाभाविक शारीरिक शक्ति के प्रबल प्रतिनिधि हैं। जमुआँव (पीरो-थाना) के शिवमरन पाठक को भी ईश्वर ने मस्त भैंसे का-सा शरीर दिया है, जो अखाड़े में चट्टान की तरह दीख पड़ता है। उपर्युक्त सलेमपुर के व्यास दुबे और डुमराँव के भूमिहार-ब्राह्मण छत्रपति राय भी शाहाबाद के पहलवानों में अपनी कला और शक्ति के लिये बहुत विख्यात हैं। कलकत्ता निवासी शाहाबादी पहलवानों में नन्हवार (पीरो थाना) का शीतल अहीर भी बड़ा नामी है जो वहाँ कई दंगल मार चुका है। इस जिले के उत्तर-खण्ड में, जो गंगा-तट के समीप है, कई अच्छे शक्तिशाली पहलवान हैं। गंगा तट के गाँवों में अनेक घराने ऐसे हैं जिनमें परम्परागत रीति से पहलवानी की कला का अचल अनुराग पाया जाता है—हर घर में व्यायामशील युवक और प्रौढ पुरुष देखने में आते हैं—गंगातट पर अखाड़ों की भरमार है।

आजकल बिहार में सबसे अधिक प्रसिद्ध मल्ल छपरा जिले के बाबू वशी सिंह हैं। वे भूमिहार-ब्राह्मण हैं। तगड़ा बदन के बहुत माडील जवान हैं। ताकत के लिहाज से उनकी गिनती देश के प्रथम श्रेणी के पहलवानों में की जाती है। लेकिन आरंभ ही से अच्छे उस्तादों की संगति न होने के कारण दाँव-पेच में वे उतने दक्ष नहीं हैं। मशहूर पहलवान 'खयाली' से, जिसने 'अदालत' को पछाड़कर बड़ा नाम कमाया था, उनकी कुश्ती इलाहाबाद के दंगल में हुई थी, लेकिन कुश्ती साफ न हो सकी, दोनों मल्ल बराबर पर ही छुड़ा दिये गये।

वशी सिंह प्राय कलकत्ता में रहते हैं। वहीं के दंगलों से देश में उनके नाम की प्रसिद्धि हुई है। वहीं के एक विशाल दंगल में उन्होंने गामा को चैलेंज दिया, लेकिन उसने कुश्ती लड़ना कबूल नहीं किया। तब से वे उसके पीछे पड़े हुए थे, लेकिन वह यह कहकर कुश्ती टालता रहा कि वे पहले इमामबख्श से लड़ लें। आखिर बम्बई में वे इमाम से पछड़ गये।

हाँ, कलकत्ता के दंगलों में उन्होंने कई नामी मल्लों को पछाड़ा है। यहाँ उनकी आखिरी कुश्ती पूरन सिंह (पजाबी) से हुई, लेकिन फैसला न हो सका। उनके नीचे जाते ही दोनों तरफ के जवानों मे मार-पीट शुरू हो गई। कहते हैं, किसी तरफ के एक जवान का खून भी हो गया। जो हो, उनकी कुश्ती गोरखपुर के नामी पहलवान तप्पे से भी हुई थी, लेकिन समयाभाव के कारण तप्पे को वे चित न कर सके, कुश्ती बराबर पर छुड़ा दी गई।

मथुरा के भूतेश्वर अखाड़े के पहलवान हिन्दुस्तान मे हमेशा ही नामी रहे हैं। इसी अखाड़े के 'छोटा रतन' ने अपनी जवानी में रीवाँ के दगल में गामा को पटका था। इसी अखाड़े के चन्द्रसेन पहलवान ने गामा के प्रधान शिष्य 'जाली' (लाहौर) को तीन घटे लडकर पछाड़ा था। आजकल इस अखाड़े के धुर्रे चौबे और काला पहाड बड़े नामी मल्ल गिने जाते हैं। उपर्युक्त बशी सिंह की कुश्ती काला पहाड और हमीन्न से होनेवाली थी।

बशी सिंह के बाद जिन्होंने मल्ल विद्या में सबसे अधिक नाम पैदा किया है वे हैं सुखदेव झा*। दु ख है कि इनकी पहलवानी अब उखड रही है। इसके लिये ये चिन्तित भी नहीं दीखते। इनका रग साफ, कद लम्बा और शरीर बलनदार है। लँगोट बाँधकर अखाड़े मे उतरने पर इनकी शोभा देखते ही बनती है। दानवी शरीर मे सुन्दरता कूट-कूटकर भरी हुई है। अखाड़े में खड़ा होते ही ये जनता के प्रिय पहलवान हो जाते हैं। इनका स्वभाव भी बड़ा ही मधुर है। ऐसा कोई भी दगल मैंने नहीं देखा जिसमे जनता की शुभकामना इनके साथ न रही हो। मथुरा के उठते शेर चुन्नी चौबे के साथ कुश्ती मे जब इन्हें दम आने लगा तब जनता ने घबराकर बड़े जोर का शोर मचाया और कुश्ती बराबर पर छुड़वाकर इन्हें अखाड़े से उतार लिया। गत बीस वर्षों से ये दगलों मे भाग लेते रहे हैं। प्राय सर्वत्र ही इन्होंने अपनी प्रतिष्ठा को कायम रक्खा है।

इनके पिता बोतल झा भी बड़े नामी पहलवान थे। उनका कद और उनकी ऊँचाई मशहूर थी। सिमरिया-घाट (मुँगेर) के मेले मे दूर से ही जिसकी गरदन सबसे ऊँची दीख पडती थी, लोग उसे बोतल झा समझ लेते थे, और यह पहचान ठीक भी थी। झपसू पहलवान ने बुढापे म उनको पटक दिया था। सुखदेव झा ने इक्कीस वर्ष की उम्र में ही अपने बाप का बदला लिया—झपसू को पटक दिया। कुछ दिन हुए, चम्पारन जिले की बेतिया-राजधानी में सुखदेव की कुश्ती करनैल

* 'बालक' (वर्ष ३, कार्तिक, संवत् १९८५) में इनकी सचित्र जीवनी छप चुकी है।

सिंह (कुरुक्षेत्र) से हुई थी, जिसमें सात मिनट के अन्दर ही करनैल सिंह चित हो गये।

सुखदेव तिरहुत के चैम्पियन गिने जाते हैं। ये मिथिला के अत्यन्त प्रिय पहलवान हैं। जिस प्रकार गामा सभी नये पहलवानों की ईर्ष्या का लक्ष्य हो रहा है उसी प्रकार इनसे लड़ने को भी बहुत-से उठते जवान उभड़ते ही रहते हैं। लेकिन ईश्वरेच्छा से अभी इनकी इज्जत बनी हुई है। बालकृष्ण नेपाली, गुलाम मुहम्मद (गया), बस्सू मुलतानी, सरवन सिंह (पटियाला), शानू (कोल्हापुर), अलीदत्ता पंजाबी, उत्तम सिंह मुजफ्फरपुरी, गुलाम हैदर अमृतसरी, केरसिंह (पटियाला), रामकिसुन सिंह और जागा गोप (छपरा) के साथ कुश्ती लड़कर ये विजयी हो चुके हैं।

छपरा जिले के जागा गोप, लोहा सिंह, रामलखन सिंह और सभा सिंह बहुत अच्छे पहलवान हैं। जागा और लोहा के शरीर की बनावट देखते ही बनती है। फेकन चौधरी, शकूर, उस्मान, गफ्फार और अब्दुल्ला (सीतामढ़ी, मुजफ्फरपुर), अधिकलाल गोप और महावीर चौबे तथा रामभरोससिंह (मुँगेर), जगदीश और सत्यनारायण (दरभंगा)—इनकी गिनती बढ़िया पहलवानों में होती है। महावीर चौबे और गफ्फार उठते पहलवान हैं और उम्मीद की जाती है कि ये लोग अच्छा नाम पैदा करेंगे। वशीसिंह की मंडली में भी कई पहलवान बहुत ताकतवर समझे जाते हैं।

लेकिन सब कुछ होते हुए भी अभी तक तिरहुत का भीम मंगल गोप (मुजफ्फरपुर) ही है। उसकी उम्र ४० के आसपास होगी। ऊँचाई लगभग छ फीट तथा शरीर भरा पूरा और सुडौल है। जो लोग उसके बल को जानते हैं वे उससे भिड़ने में काँप जाते हैं। बेतिया के दंगल में पंजाब के नामी पहलवान 'बगा' को उसने सिर्फ एक मिनट में आसमान दिखा दिया। सीतामढ़ी के दंगल में—जिसमें जागा, अदालत और सुखदेव भी थे—उसकी कुश्ती लोहा सिंह से हुई। अखाड़े में दोनों की जोड़ी देखने ही लायक थी। दोनों दो सुपुष्ट गजराजों की भाँति झूम रहे थे। उनके आपस में टकराने पर ऐसा लगता था मानों दो भैंसे टकरा रहे हों। लेकिन सात आठ मिनट में ही लोहा सिंह गिर गया और हाँफने लगा। आखिर जागा की सिफारिश से कुश्ती बराबर जोड़ पर छुड़ा दी गई। अखाड़े से उतरने पर लोहा सिंह ने कहा—"मंगला तिरहुत का भीम है और इसे पछाड़नेवाला पहलवान इस अखाड़े में कोई नहीं है।"

लड़ने को कोई तैयार न हुआ, और पूर्वोक्त उदितनारायण की तरह ही शायद उन्हें भी अपनी जान गँवानी पड़ी।

हमारे प्रदेश में, सभी क्षेत्रों में, गुण या गुणियों के संरक्षकों (Patrons) का अभाव है। नहीं तो यहाँ एक की क्या चर्चा, अनेक गामा पैदा होकर दिखा चुके हैं। रामकिशोर सिंह और उदितनारायण-जैसे अगउधत पहलवान आकर चले गये, मगर ये लोग वे करतब न दिखला सके जिनके लिये इनका जन्म हुआ था। ऐसे ही कितने गुणी 'बिन खिले मुरझा गये'।

भारतवर्ष में मथुरा एक ऐसी जगह है जहाँ मल्लों की संख्या सबसे अधिक है और सचमुच मथुरा को मल्लपुरी ही कहना चाहिये। अत्यन्त प्राचीन काल से ही उसकी यह उपाधि उपयुक्त है। यहाँ दो मशहूर अखाड़े हैं—चौबे का अखाड़ा और भूतेश्वर का अखाड़ा। इन दोनों अखाड़ों से बड़े-बड़े पहलवान निकलते रहे हैं, जिन्होंने अपने देश का मस्तक ऊँचा किया है। मथुरा के बाद पंजाब का नम्बर आता है। आज गामा, हमीदा, इमामबख्श आदि के कारण पंजाब ही मल्ल-विद्या में अग्रणी गिना जा रहा है। पहले भी पंजाब ने कल्लू, गुलाम, रहीम और किक्कर-जैसे दर्जनों पहलवान पैदा किये थे। बिहार का नम्बर इन दोनों जगहों के बाद आता है, लेकिन सूबा भर में कहीं भी संगठित अखाड़ों के न रहने के कारण पहलवानी का हुनर यहाँ पूरे उभार से खिल नहीं रहा है। वंशी सिंह को ही लीजिये। अगर यहाँ कोई संगठित अखाड़ा रहा होता, अथवा किसी सर्वमान्य उस्ताद की संगति उदीयमान मल्लों को प्राप्त रही होती, तो आज वंशी सिंह भारत का नाम बढ़ानेवाला पहलवान गिना जाता—किन्तु अलं विलापेन॥

पहलवानों का प्रधान भोजन दूध, घी और बादाम है। कुछ पहलवान मांस को भी प्रधानता देते हैं। पंजाब के पहलवान अखनी (मांस का शोरबा या अर्क) खूब पीते हैं। हिन्दुओं और सिक्खों के यहाँ फलों की भी चलन है। लेकिन मथुरा के चौबे तो मोदक प्रिय ठहरे। उनके यहाँ रबड़ी, मलाई, लड्डू और हलवे पर सबसे अधिक चोट है, दूध में घी डालकर भी पीते हैं, भंग और बादाम पीना भी प्रायः उनके लिये जरूरी होता है। विश्वविख्यात भारतीय मल्ल 'गामा' भी अखनी अधिक पीता है। दूध और घी का सम्मिलित पेय भी उसे बहुत पसन्द है। बंगाली मल्ल गोबर बाबू दस-पन्द्रह रुपयों के फलों का शर्बत पी जाते हैं।

किन्तु बिहार के पहलवान अखनी नहीं पीते, क्योंकि यहाँ उसकी चलन

मूँगा नट अपने समय मे दावॅ-पेच के लिये बहुत मशहूर थे। वडहिया (मुगेर)-निवासी अम्बिका सिंह और द्वारका सिंह के बल का पता किसी को न लगा। मत्तूमल कहता था कि इन दोनों भाइयों से पार पाना कठिन है।

शाहाबाद जिले में जगदीशपुर-राजवश के बाबू ज्वालाप्रसाद सिंह (दिलीपपुर-देवढी) बडे मस्त पहलवान थे। हाथी की पूँछ पकड लेते थे तो वह एक डग भी आगे नहीं बढ सकता था। ये तबला बजाने मे भी पक्के उस्ताद थे। दिलीपपुर के ही भुआल गुसाई और दिलन खलीफा भी अपने समय के बेजोड पहलवान थे, जिनकी पीठ कभी कहीं लगी ही नहीं। बेलहरी (नावानगर थाना) के निवासी रामजी दुबे सूर्यपुरा के राजा साहब के दरबार मे रहते थे। उनका शरीर इतना भारी था कि लोहे की मजबूत खाट पर ही सोते थे। यही हाल नडका सिधनपुरा (डुमरॉव-थाना) के बिवेखी ओझा का था। इनका शरीर भी अकेला ही एक बैलगाडी का बोझ था। कहते हैं कि शरीर की सुगठित बनावट में उनवॉस का रामचरित्र अहीर और मझौआ का रामस्वरूप सिंह दोनों बेजोड थे। दोनों ने कितने ही दगल मारे, कहीं भी इनकी पीठ मे धूल न लगी। रामस्वरूप सिंह आरा मे पुलिस का सिपाही था और रामचरित्र बक्सर-थाना का चौकीदार। रामस्वरूप सिंह बावन जिलों के पुलिस पहलवानों के दगल मे विजयी हुआ था। रामचरित्र की आवाज ठीक सॉड के समान थी और वह लाठी चलाने मे अपना सानी नहीं रखता था। गिरहबाज कबूतर की तरह उसके गठीले बदन मे फुर्ती थी। उसी का सगा छोटा भाई राम-आदित था, जिसका नाम पहले आ चुका है और जो खुल्थ की तरह अटल रहकर अपनी भुजाओं पर बडे-बडे लडाके भेडों की लगातार टक्करें आडता था।

गया जिले मे तिलोक सिंह टिकारी राज का पहलवान था। कहते हैं, उसका आकार भीमकाय दानव का-सा था। पोखन सिंह से सुना है कि वह दस सेर चावल नाश्ते मे फॉक जाता था और उसके दोनों जून के भोजन—चावल, दाल और आटा—की तौल छ पसेरी (तीस सेर) होती थी। इतना खाकर भी वह टिकारी से पटना तक डाक लेकर रोज आता-जाता था।

बडहिया (मुगेर) के एक बहुत ही जबरदस्त पहलवान बाबू रामकिशोर सिंह का नाम छूटा जा रहा है। वे प्राय लाख में एक थे। बिहार मे जब जोड न मिला, तब वे प्रतिद्वन्द्वी की तलाश में मथुरा पहुँचे, लेकिन वहाँ भी उनसे

विहार के पुस्तकालय और संग्रहालय

श्रीलयकान्त मिश्र,'ज्योतिषी'-सम्पादक, सहकारी 'आर्यावर्त'-सम्पादक, सीतामढ़ी (मुजफ्फरपुर)

प्राचीन काल मे विहार अपने विद्याव्यसन के लिये बहुत प्रसिद्ध था। इसके उत्तरी भाग 'मिथिला' को तो इतिहासकारों ने 'सरस्वती विद्यापीठ' के नाम से ही पुकारा है। प्राचीन मिथिला के प्रत्येक ग्राम में एक विद्यालय और उसी के भवन मे एक पुस्तकालय था। उन दिनों मुद्रण-कला का आविष्कार नहीं हुआ था। पुस्तकें हाथ से ही लिखी जाती थीं। पुस्तकालयों मे रक्खी गई पुस्तकों से विद्यार्थी अपने पाठ नकल कर लिया करते थे। पडितों के घर इसी तरह की हस्तलिखित पुस्तकों के संग्रहालय थे। ब्राह्मणों का मुख्य कार्य अध्ययन और अध्यापन था, जिसके साथ गरीबी का भाव आरभ से ही जुड़ा हुआ था। यह आर्य-सस्कृति की ही विशेषता है कि उसमे ज्ञान और दारिद्र्य का सम्मान कभी समृद्धि से कम न रहा। मिथिला के ब्राह्मणों की सम्पत्ति उनकी पुस्तकें ही थीं।

विहार के नालदा और विक्रमशिला नामक विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों मे लाखों पुस्तकें थीं, जिन्हें विदेशी आक्रमणकारियों ने नष्ट कर डाला। इन विशाल ग्रन्थागारों की ख्याति देश देशान्तर में फैली हुई थी। इतिहासों में भी इनका महत्त्वपूर्ण उल्लेख पाया जाता है।

देश के अशान्ति-युग और अव्यवस्था-काल मे जनता का जीवन अस्तव्यस्त होने तथा समाज की स्थिति अनिश्चित रहने के कारण बहुत-से पुराने पुस्तकालय नष्ट हो गये। आक्रमणकारी विदेशियों द्वारा अनेक ग्रन्थागार अग्नि की भेंट चढा दिये गये—पुस्तकें जलाकर स्नानागार का पानी गरम करने की कहानी प्रसिद्ध ही है। देश की उस अव्यवस्थित दशा मे छोटे-मोटे बचे-खुचे पुस्तकालय भी बिखर गये, जिनकी छिट-फुट पुस्तकें गॉवों और शहरों के पुराने घरानों में यत्रतत्र आज भी पाई जाती हैं।

नहीं है। रोटी खाते हैं और कच्चा दूध पीते हैं। फलों की प्राप्ति भी उन्हें संयोग से ही होती है। सब मिलाकर दूध, घी और रोटी उनका प्रधान आहार है। मिथिला के पहलवान मास-मछली भी खाते हैं। कहते हैं, बोतल झा भी बड़े खाऊ थे, प्राय सात-सात सेर मास आसानी से खा जाते थे, और वे ढाई सेर जलेबियाँ खाकर दोपहर के भोजन के लिये भूखे रहते थे। उनके पुत्र सुखदेव झा भी एक सेर बादाम, आध सेर मिसरी, छ सेर दूध और एक सेर पिस्ता केवल जलपान करते थे। एक सेर आटा, दो सेर मास, आध सेर घी और एक सेर मलाई इनका कलेवा था। प्रतिदिन दो बार जलपान और एक बार भोजन का नियम था। पर अब तो इनकी शारीरिक स्थिति सन्तोषप्रद नहीं है।

दूध और रोटी बहुत अच्छे खाद्य हैं, लेकिन अखनी का पेय पहलवानों के लिये आवश्यक समझा जाना चाहिये। दूध पीनेवाले मल्लों का बदन समुचित नियन्त्रण मे नहीं रह पाता और प्राय वे सिलसिला फैलकर कुरूप हो जाता है। जो मल्ल मास खाते हैं उन्हें तो अखनी पीने में कोई उज्र होना ही न चाहिये।

विहार मे पहले पट और बॉह-बल्ली के दावँ बहुत चालू थे। लेकिन पोखन सिंह, मथुरा बाबू, दरभंगा-राज के अखाड़े और टिकारी-राज मे पलनेवाले पहलवानों के जरिये अब प्राय सभी दावँ यहाँ प्रचलित हो गये हैं। मैंने देखा है कि दिहात के अखाड़ों मे भी कम-से-कम सौ दावँ चालू हैं।

पहलवानी एक विचित्र हुनर है। इसमे न तो शरीर की विशालता प्रधान है, न ताकत और न दावँ। सबके बीच उचित सामजस्य की प्राप्ति जिसे हो जाती है वही अच्छा पहलवान निकलता है। छोटे कद के अदालत नट (गोरखपुर) को देखिये कि वह कैसा चतुर मल्ल है।

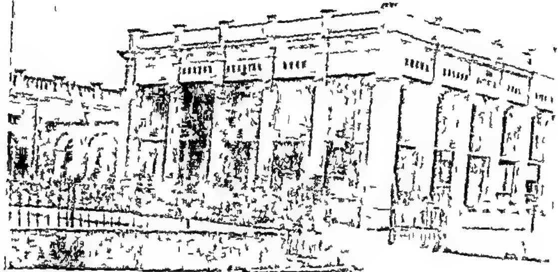

ओरियंटल (खुदाबख्श खाँ) लाइब्रेरी, पटना—पृष्ठ ५१२

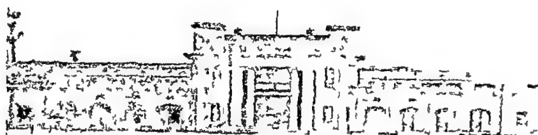

पटना-युनिवर्सिटी-लाइब्रेरी—पृष्ठ ५१२

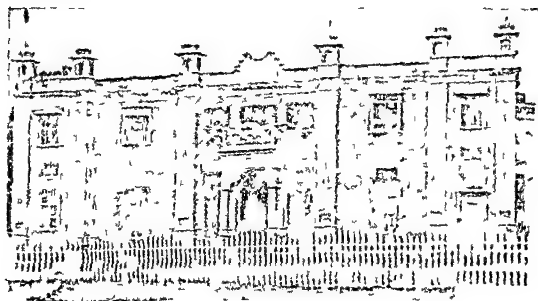

बिहार हितैषी पुस्तकालय, मंगलतालाब, पटना सिटी—पृष्ठ ५१३

अँगरेजी राज मे छापे की कला आई। लेखन-कला विदा हुई। बेचारे लिपि-विशारद बेकार हो गये। किन्तु पुस्तकें सुलभ हो गईं। ज्ञान का द्वार सबके लिये खुल गया। क्रमश पुस्तकों की सख्या बढती चली। स्वभावत पुस्तकालयों की भी सख्यावृद्धि होने लगी।

पुरानी बातें गत हुईं। इन दिनों भी विहार मे ऐसे पुस्तकालय हैं, जो भारत-भर में प्रसिद्ध हैं। कुछ पुस्तकालय तो आदर्श हैं।

खुदाबख्श खाँ की ओरियटल लाइब्रेरी (पटना)—भारत की प्रसिद्ध लाइब्रेरियों मे इसका एक खास स्थान है, यों तो यह ससार की प्रसिद्ध लाइब्रेरियों मे गिनी जाने योग्य है। यह मुसलमानी साहित्य का एक अनुपम भाडार है। इसके सस्थापक खॉ-बहादुर खुदाबख्श खॉ छपरा (सारन) जिले के निवासी और पटना मे सरकारी वकील थे। उनके पितामह मरते समय ३०० हस्तलिखित ग्रन्थ छोड गये थे। उनके पिता ने भी १२०० हस्त-लिखित ग्रन्थों का सग्रह किया था। इन्हीं डेढ हजार ग्रन्थों से इस लाइब्रेरी का जन्म हुआ। कहा जाता है कि उनके पिता ने मरते समय अपने सग्रहालय के ग्रन्थों से एक लाइब्रेरी खोलने की राय दी थी। अत वे आजीवन अपने पिता की आज्ञा का पालन करने मे लगे रहे। वकालत से उनकी अच्छी आमदनी थी, जिसे वे अधिकतर पुस्तकों के सग्रह करने मे व्यय किया करते थे। सन् १६०८ ई० मे वे स्वर्गवासी हो गये। किन्तु उनकी यह उज्ज्वल कीर्त्ति आज भी उनके पवित्र नाम और अखड विद्याप्रेम को अमर बना रही है। यह विहार-प्रान्त का एक अमूल्य अलकार है। इसकी इमारत मे प्राय एक लाख रुपये खर्च हुए हैं। फर्श सगमर्मर का है। दीवारें रँगी हुई हैं। इसकी सम्पत्ति सब मिलाकर प्राय नव लाख रुपये की है। खुदाबख्श खाँ ने सन् १८६१ ई० मे ही इसको ट्रस्टियो (सरक्षकों) के हवाले कर दिया था। ट्रस्टियों के अधिकारपत्र में उन्होंने यह शर्त्त भी लगा दी है कि लाइब्रेरी की कोई भी पुस्तक कहीं बाहर ले जाने के लिये किसी को न दी जाय। उनके जीवन-काल मे ही लदन के 'ब्रिटिश म्यूजियम' के अधिकारियों ने काफी रुपयों का लोभ दिखाकर इसे खरीदना चाहा था, पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। इस पुस्तकालय को देखकर स्वर्गीय सम्राट् पचम जॉर्ज, भूतपूर्व सम्राट् अष्टम एडवर्ड (जब प्रिंस आफ वेल्स थे), लार्ड कर्जन आदि भी मुग्ध हो चुके हैं। इसमे कई ऐसे प्राचीन हस्तलिखित दुर्लभ ग्रन्थ हैं जो बड़े-बड़े राज्य निछावर करने पर भी कहीं नहीं मिल सकते। इसमें सौभाग

पाँच हजार हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। अरबी और फारसी के छपे हुए ग्रन्थों की संख्या चार हजार है। लगभग एक लाख रुपये की लागत के मुद्रित अँगरेजी ग्रन्थ भी हैं। सभी ग्रंथ बहुमूल्य और महत्त्वपूर्ण ही हैं। साधारण पुस्तकों के संग्रह पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। अनुसंधानकर्त्ताओं के लिये यह संग्रहालय बड़े लाभ की वस्तु है। आरम्भ में ग्रन्थों की खोज और संग्रह करने के लिये खाँ-बहादुर ने 'मुहम्मद मकी' नामक एक विद्या-प्रेमी सज्जन को नियुक्त किया था। 'मकी साहब' सचमुच ही पुस्तकों के शिकारी थे। अठारह साल वे देश-देशान्तर में घूम घूमकर ग्रन्थों का पता लगाते और संग्रह करते रहे। वे भारत के सिवा सीरिया, अरब, मिस्र, फारस आदि देशों से भी ग्रंथ-संग्रह कर लाये थे। उनके सम्बन्ध में 'मिस्टर सी० सी० स्कॉट ओकौनर' ने अपने ग्रन्थ 'ऐन ईस्टर्न लायब्रेरी' (An Eastern Library) में जो कुछ लिखा है, उसका भावार्थ इस प्रकार है—"खुदाबख्श-खाँ अपने निकटवर्त्ती एक राजकुमार के यहाँ से एक योग्य पुस्तक-संग्रहकर्त्ता को फुसला लाये थे और साथ ही उन्होंने एक अरब को भी नौकर रक्खा था, जिसने अठारह वर्षों तक कैरो, दमिश्क, बेरूत, अरब, मिस्र, फारस आदि महानगरों और देशों में भ्रमण कर पुस्तकों का संग्रह किया था।" इसके अतिरिक्त खाँ-बहादुर स्वयं भी विज्ञापन प्रकाशित करते रहते थे कि जिसके पास कोई हस्तलिखित उत्तम ग्रन्थ हो, वह उसे लेकर आवे, यहाँ उसको ग्रन्थ के उचित मूल्य के सिवा मार्ग-व्यय भी दिया जायगा। इस तरह भी उन्होंने बहुत-से प्राचीन ग्रन्थों का संग्रह किया। कहा जाता है कि अपनी मृत्यु के समय तक उन्होंने साढ़े तीन हजार प्राचीन ग्रन्थ संग्रह कर लिये थे। कुछ उदार सज्जनों ने तो उनके अविरल विद्या-प्रेम पर मुग्ध होकर बहुत-से प्राचीन ग्रन्थ उपहार-स्वरूप भी दिये थे। उन्होंने साठ हजार रुपये खर्च कर इंगलैंड का एक पूरा संग्रहालय ही नीलाम में खरीद लिया था। उन्हें स्पेन के कार्डोवा विश्वविद्यालय से भी कई प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ हाथ लग गये थे। दक्षिण-हैदराबाद हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश रहते हुए भी उन्होंने बहुत से प्राचीन ग्रन्थों का संग्रह किया था। वे दिन-रात ग्रंथ-संग्रह की चिन्ता में ही लीन रहते थे। धुन पक्की थी, लगन सच्ची, इसलिये लाइब्रेरी भी अद्वितीय हुई। इसमें एक ग्रन्थ तो स्वयं सम्राट् जहाँगीर का लिखा हुआ है, जिसमें उन्होंने खुद ही अपनी जीवनी लिखी है। यह ग्रन्थ सम्राट् ने गोलकुंडा के बादशाह को भेंट में दिया था। एक ग्रन्थ और है, जो

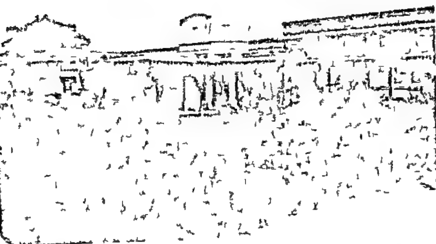

पृष्ठ—५१९

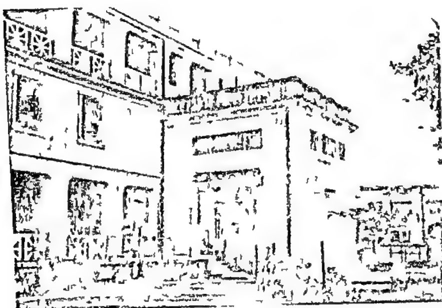

श्रीराधिका सिंह-
इन्स्टीच्यूट-लाइब्रेरी
पटना
पृष्ठ ५१४

श्रीमन्नूलाल पुस्तकालय
गया
पृष्ठ ५१८

पाँच हजार हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। अरबी और फारसी के छपे हुए ग्रन्थों की संख्या चार हजार है। लगभग एक लाख रुपये की लागत के मुद्रित अँगरेजी ग्रन्थ भी हैं। सभी ग्रंथ बहुमूल्य और महत्त्वपूर्ण ही हैं। साधारण पुस्तकों के संग्रह पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। अनुसंधानकर्त्ताओं के लिये यह संग्रहालय बड़े लाभ की वस्तु है। आरम्भ में ग्रन्थों की खोज और संग्रह करने के लिये खाँ बहादुर ने 'मुहम्मद मकी' नामक एक विद्या-प्रेमी सज्जन को नियुक्त किया था। 'मकी साहब' सचमुच ही पुस्तकों के शिकारी थे। अठारह साल वे देश-देशान्तर में घूम घूमकर ग्रन्थों का पता लगाते और संग्रह करते रहे। वे भारत के सिवा सीरिया, अरब, मिस्र, फारस आदि देशों से भी ग्रंथ-संग्रह कर लाये थे। उनके सम्बन्ध में 'मिस्टर बी० सी० स्कॉट ओकोनर' ने अपने ग्रन्थ 'ऐन ईस्टर्न लायब्रेरी' (An Eastern Library) में जो कुछ लिखा है, उसका भावार्थ इस प्रकार है—"खुदाबख्श-खाँ अपने निकटवर्त्ती एक राजकुमार के यहाँ से एक योग्य पुस्तक-संग्रहकर्त्ता को फुसला लाये थे और साथ ही उन्होंने एक अरब को भी नौकर रक्खा था, जिसने अठारह वर्षों तक कैरो, दमिश्क, बेरूत, अरब, मिस्र, फारस आदि महानगरों और देशों में भ्रमण कर पुस्तकों का संग्रह किया था।" इसके अतिरिक्त खाँ-बहादुर स्वयं भी विज्ञापन प्रकाशित करते रहते थे कि जिसके पास कोई हस्तलिखित उत्तम ग्रन्थ हो, वह उसे लेकर आवे, यहाँ उसको ग्रन्थ के उचित मूल्य के सिवा मार्ग-व्यय भी दिया जायगा। इस तरह भी उन्होंने बहुत-से प्राचीन ग्रन्थों का संग्रह किया। कहा जाता है कि अपनी मृत्यु के समय तक उन्होंने साढ़े तीन हजार प्राचीन ग्रन्थ संग्रह कर लिये थे। कुछ उदार सज्जनों ने तो उनके अविरल विद्या-प्रेम पर मुग्ध होकर बहुत से प्राचीन ग्रन्थ उपहार-स्वरूप भी दिये थे। उन्होंने साठ हजार रुपये खर्च कर इंगलैंड का एक पूरा संग्रहालय ही नीलाम में खरीद लिया था। उन्हें स्पेन के कर्डोवा-विश्वविद्यालय से भी कई प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ हाथ लग गये थे। दक्षिण हैदराबाद हाइकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश रहते हुए भी उन्होंने बहुत से प्राचीन ग्रन्थों का संग्रह किया था। वे दिन-रात ग्रंथ-संग्रह की चिन्ता में ही लीन रहते थे। धुन पक्की थी, लगन सच्ची, इसलिये लाइब्रेरी भी अद्वितीय हुई। इसमें एक ग्रन्थ तो स्वयं सम्राट् जहाँगीर का लिखा हुआ है, जिसमें उन्होंने खुद ही अपनी जीवनी लिखी है। यह ग्रन्थ सम्राट् ने गोलकुंडा के बादशाह को भेंट में दिया था। एक ग्रन्थ और है, जो

कुस्तुनतुनियाँ में—सोलहवीं सदी के अन्त में—लिखा गया था। समस्त संसार में इस ग्रन्थ की यही एक प्रति है। कई ग्रन्थ ऐसे हैं, जो सुनहले अक्षरों में लिखे हुए हैं, बहुतों में तो सुनहले चित्र भी हैं। ऐसे ग्रन्थों में कुरान, हफ्तातदे-काशी, 'जामी' का सुप्रसिद्ध उपन्यास-ग्रन्थ 'युसुफ-जुलेखा' और दीवान-मिर्जा कामरान (जहाँगीर और शाहजहाँ के आत्म-चरित) मुख्य हैं। अरबी-फारसी में लिखे हुए अतीव प्राचीन एवं अप्राप्य ऐतिहासिक ग्रन्थ भी हैं। जगत्प्रसिद्ध 'शाहनामा' की वह प्रति भी है, जिसे काबुल और काश्मीर के शासक अलीमर्दान खाँ ने सम्राट् शाहजहाँ को भेंट की थी। एक प्रति 'तारीखे-खान्दाने-तैमूरिया' की है, जिसमें १३३ चित्रित पृष्ठ हैं, जिन्हें अकबर के समय के तीस सुप्रसिद्ध चित्रकारों ने अंकित किया था। इतना ही नहीं, ग्रन्थों के सिवा कई पुराने सुनहले चित्र भी हैं—एक-से-एक बढ़कर। ये किसी समय मुसलमान बादशाहों और नवाबों की चित्रशालाओं को सुशोभित कर चुके हैं। महाराज रणजीत सिंह के चित्र-संग्रह में से भी कई चित्र यहाँ मौजूद हैं। भारत के सिवा विदेशों के प्रसिद्ध चित्रकारों के चित्र भी इसमें संगृहीत हैं। इतिहास-प्रसिद्ध वीर बाबू कुँवरसिंह का शिकारी चित्र देखने ही योग्य है। यह संग्रहालय सब तरह से अनूठा है।

श्रीमती राधिकासिंह इंस्टीट्यूट लाइब्रेरी (पटना)— इसके जन्मदाता हैं पटना-विश्वविद्यालय के वर्त्तमान वाइस-चांसलर डॉक्टर सच्चिदानन्द सिंह, जो भारतप्रसिद्ध पत्रकार, सुवक्ता और सुलेखक हैं। आपने अपनी सहधर्मिणी स्वर्गीया श्रीमती राधिका देवी के स्मारक-स्वरूप इसकी स्थापना की है। इसके भवन के बनवाने और सजाने में लगभग एक लाख रुपये खर्च हुए हैं। सन् १९२४ ई० (फरवरी) में बिहार-उड़ीसा के तात्कालिक गवर्नर 'सर हेनरी ह्वीलर' ने इसके भवन का उद्घाटन किया था। संगृहीत पुस्तकों का दाम लगभग दो लाख रुपये कहा जाता है। बिहार-सरकार ने हाल ही इस पुस्तकालय को आठ हजार रुपये वार्षिक सहायता देना स्वीकार किया है। सन् १९३२ ई० में, पटना विश्वविद्यालय के दीक्षान्त-भाषण में, पटना-हाइकोर्ट के चीफ-जस्टिस 'सर कर्टनी टेलर' (स्वर्गीय) ने इसे 'सार्वजनिक साहित्य का शानदार पुस्तकालय' (Splendid Library of General Literature) कहा था। इसके साथ एकान्त अध्ययनालय और अनुसंधानालय तथा सार्वजनिक वाचनालय और समाचार-पत्रालय भी सम्बद्ध हैं। समाचार-पत्रालय में देश-विदेश के अनेक

मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्रों की फाइलें सुरक्षित हैं। इसका 'उल्लेख-विभाग' (Reference Section) अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसमें कई विश्वकोष, शब्दकोष, ज्ञानकोष, पुस्तक-सूची और विभिन्न विषयों के उल्लेखनीय ग्रन्थों का संग्रह है। ग्रन्थों की कुल संख्या लगभग बीस हजार है। सर्वसाधारण के लाभ के लिये इसमें हिन्दी की भी बहुतेरी पुस्तकें हैं। इसकी प्रबन्धशैली प्रशंसनीय है। इसके जन्मदाता की निजी लाइब्रेरी भी देखने ही योग्य है और अपने ढंग की अकेली भी। उसमें अखबारों की कतरनों का विराट् संग्रह आश्चर्यजनक है।

पटना-युनिवर्सिटी लाइब्रेरी (पटना)— इसमें तीन विभाग हैं— साधारण पुस्तकालय, बेली-मेमोरियल संग्रहालय (The Bayley Memorial Collection) और बनैली अर्थशास्त्रीय पुस्तकालय। प्रथम साधारण विभाग में छ हजार रुपये हर साल खर्च किये जाते हैं, इसमें इस समय लगभग अठारह हजार ग्रन्थ हैं। द्वितीय बेली-मेमोरियल में लगभग दस हजार, इसकी स्थापना बिहार-उड़ीसा के सर्वप्रथम लेफ्टिनेंट गवर्नर 'सर चार्ल्स बेली' की स्मृति में हुई थी। यह सर्वसाधारण के काम में आ सकता है। सन् १९२३ के सितम्बर में बिहार-उड़ीसा की सरकार ने इसे पचास हजार रुपये दिये थे। फिर सन् १९२४ ई० में पटना युनिवर्सिटी के बेली-मेमोरियल-ट्रस्ट से ४६०४९) रुपये मिले थे। दरभंगा और हथुआ के महाराजों और बेतिया की महारानी ने दस-दस हजार रुपये दिये। गिद्धौर के महाराज ने चार हजार, अमावाँ के राजा ने चार हजार, बनैली-नरेश राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर ने दो हजार, बिहार के भूतपूर्व लेफ्टिनेंट गवर्नर 'एडवर्ड गेट' ने एक हजार और पचेतगढ (छोटानागपुर) के राजा ज्योति प्रसादसिंह देव ने भी एक हजार रुपये प्रदान किये थे। इस तरह एक फंड कायम किया गया, जिससे इन दिनों पटना-युनिवर्सिटी को ४२५७।।) की वार्षिक आय है और उसीसे इस विभाग की अभिवृद्धि होती जा रही है। सन् १९३१ ई० से इस विभाग के लिये ग्रंथों का खरीदना जारी है। संभव है, यदि यही सिलसिला जारी रहा तो, यह विभाग बिहार के लिये गौरव की एक वस्तु हो जायगा। तृतीय विभाग के लिये, सन् १९२० ई० में, बनैली-नरेश राजा कीर्त्यानन्दसिंह बहादुर बी ए (स्वर्गीय) ने पटना-विश्वविद्यालय को पाँच हजार रुपये दान दिये थे, जिनसे अर्थशास्त्र-सम्बन्धी ग्रंथ खरीदे गये। इस विभाग की देखभाल युनिवर्सिटी द्वारा मनोनीत दो बोर्डों के सदस्य करते हैं। युनिवर्सिटी-लाइब्रेरी में हिन्दी की पुस्तकों और पत्रपत्रिकाओं का भी उपयोगी संग्रह है।

कुस्तुनतुनियाँ में—सोलहवीं सदी के अन्त मे—लिखा गया था। समस्त ससार मे इस ग्रन्थ की यही एक प्रति है। कई ग्रन्थ ऐसे हैं, जो सुनहले अक्षरों मे लिखे हुए है, बहुतों में तो सुनहले चित्र भी है। ऐसे ग्रन्थों में कुरान, हफ्तावदे-काशी, 'जामी' का सुप्रसिद्ध उपन्यास-ग्रन्थ 'युसुफ-जुलेखा' और दीवान-मिर्जा कामरान (जहाँगीर और शाहजहाँ के आत्म-चरित) मुख्य है। अरबी-फारसी मे लिखे हुए अतीव प्राचीन एव अप्राप्य ऐतिहासिक ग्रन्थ भी हैं। जगत्प्रसिद्ध 'शाहनामा' की वह प्रति भी है, जिसे काबुल और काश्मीर के शासक अलीमर्दान खाँ ने सम्राट् शाहजहाँ को भेंट की थी। एक प्रति 'तारीखे-खान्दाने-तैमूरिया' की है, जिसमें १३३ चित्रित पृष्ठ हैं, जिन्हें अकबर के समय के तीस सुप्रसिद्ध चित्रकारों ने अकित किया था। इतना ही नहीं, ग्रन्थों के सिवा कई पुराने सुनहले चित्र भी हैं—एक-से-एक बढकर। ये किसी समय मुसलमान बादशाहों और नवाबों की चित्रशालाओं को सुशोभित कर चुके हैं। महाराज रणजीत सिंह के चित्र-सग्रह मे से भी कई चित्र यहाँ मौजूद हैं। भारत के सिवा विदेशों के प्रसिद्ध चित्रकारों के चित्र भी इसमे सगृहीत हैं। इतिहास प्रसिद्ध वीर बाबू कुँवरसिंह का शिकारी चित्र देखने ही योग्य है। यह सग्रहालय सब तरह से अनूठा है।

श्रीमती राधिकासिंह इंस्टीच्यूट लाइब्रेरी (पटना)— इसके जन्मदाता हैं पटना-विश्वविद्यालय के वर्त्तमान वाइस-चासलर डॉक्टर सच्चिदानन्द सिंह, जो भारतप्रसिद्ध पत्रकार, सुवक्ता और सुलेखक हैं। आपने अपनी सहधर्मिणी स्वर्गीया श्रीमती राधिका देवी के स्मारक-स्वरूप इसकी स्थापना की है। इसके भवन के बनवाने और सजाने मे लगभग एक लाख रुपये खर्च हुए हैं। सन् १९२४ ई० (फरवरी) मे बिहार-उडीसा के तात्कालिक गवर्नर 'सर हेनरी ह्वीलर' ने इसके भवन का उद्घाटन किया था। सगृहीत पुस्तकों का दाम लगभग दो लाख रुपये कहा जाता है। बिहार-सरकार ने हाल ही इस पुस्तकालय को आठ हजार रुपये वार्षिक सहायता देना स्वीकार किया है। सन् १९३२ ई० में, पटना विश्वविद्यालय के दीक्षान्त-भाषण मे, पटना-हाइकोर्ट के चीफ-जस्टिस 'सर कर्टनी टेलर' (स्वर्गीय) ने इसे 'सार्वजनिक साहित्य का शानदार पुस्तकालय' (C... of General Literature) कहा था। इसके साथ ... और अनुसधानालय तथा सार्वजनिक वाचनालय और भी सम्बद्ध हैं। समाचार-पत्रालय मे देश-विदेश के अनेक

मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्रों की फाइलें सुरक्षित हैं। इसका 'उद्देश-विभाग' (Reference Section) अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसमें कई विश्वकोष, शब्दकोष, ज्ञानकोष, पुस्तक-सूची और विभिन्न विषयों के उल्लेखनीय ग्रन्थों का संग्रह है। ग्रन्थों की कुल संख्या लगभग बीस हजार है। सर्वसाधारण के लाभ के लिये इसमें हिन्दी की भी बहुतेरी पुस्तकें हैं। इसकी प्रबन्धशैली प्रशंसनीय है। इसके जन्मदाता की निजी लाइब्रेरी भी देखने ही योग्य है और अपने ढंग की अकेली भी। उसमें पत्रकारों की कतरनों का विराट् संग्रह आश्चर्यजनक है।

पटना-युनिवर्सिटी लाइब्रेरी (पटना)— इसमें तीन विभाग हैं— साधारण पुस्तकालय, बेली-मेमोरियल संग्रहालय The Bayley Memorial Collection) और बनैली अर्थशास्त्रीय पुस्तकालय। प्रथम साधारण विभाग में छः हजार रुपये हर साल खर्च किये जाते हैं, इसमें इस समय लगभग अठारह हजार ग्रन्थ हैं। द्वितीय बेली-मेमोरियल में लगभग दस हजार, इसकी स्थापना बिहार-उड़ीसा के सर्वप्रथम लेफ्टिनेंट गवर्नर 'सर चार्ल्स बेली' की स्मृति में हुई थी। यह सर्वसाधारण के काम में आ सकता है। सन् १६२३ के सितम्बर में बिहार-उडीसा की सरकार ने इसे पचास हजार रुपये दिये थे। फिर सन् १६२४ ई० में पटना युनिवर्सिटी के बेली-मेमोरियल-ट्रस्ट से ४६०४६) रुपये मिले थे। दरभंगा और हथुआ के महाराजों और बेतिया की महारानी ने दस-दस हजार रुपये दिये। गिद्धौर के महाराज ने चार हजार, अमावाँ के राजा ने चार हजार, बनैली-नरेश राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर ने दो हजार, बिहार के भूतपूर्व लेफ्टिनेंट गवर्नर 'एडवर्ड गेट' ने एक हजार और पचेतगढ (छोटानागपुर) के राजा ज्योति प्रसादसिंह देव ने भी एक हजार रुपये प्रदान किये थे। इस तरह एक फंड कायम किया गया, जिससे इन दिनों पटना-युनिवर्सिटी को ४२५२॥) की वार्षिक आय है और उसीसे इस विभाग की अभिवृद्धि होती जा रही है। सन् १६३१ ई० से इस विभाग के लिये ग्रंथों का खरीदना जारी है। संभव है, यदि यही सिलसिला जारी रहा तो, यह विभाग बिहार के लिये गौरव की एक वस्तु हो जायगा। तृतीय विभाग के लिये, सन् १६२० ई० में, बनैली-नरेश राजा कीर्त्यानन्दसिंह बहादुर बी ए (स्वर्गीय) ने पटना-विश्वविद्यालय को पाँच हजार रुपये दान दिये थे, जिनसे अर्थशास्त्र-सम्बंधी ग्रंथ खरीदे गये। इस विभाग की देखभाल युनिवर्सिटी द्वारा मनोनीत दो बोर्डों के सदस्य करते हैं। युनिवर्सिटी-लाइब्रेरी में हिन्दी की पुस्तकों और पत्रपत्रिकाओं का भी उपयोगी संग्रह है।

कुस्तुनतुनियाँ में—सोलहवीं सदी के अन्त में—लिखा गया था। समस्त संसार में इस ग्रन्थ की यही एक प्रति है। कई ग्रन्थ ऐसे हैं, जो सुनहले अक्षरों में लिखे हुए हैं, बहुतों में तो सुनहले चित्र भी हैं। ऐसे ग्रन्थों में कुरान, हफ्तानदे-काशी, 'जामी' का सुप्रसिद्ध उपन्यास-ग्रन्थ 'युसुफ-जुलेखा' और दीवान-मिर्जा कामरान (जहाँगीर और शाहजहाँ के आत्म-चरित) मुख्य हैं। अरबी-फारसी में लिखे हुए अतीव प्राचीन एवं अप्राप्य ऐतिहासिक ग्रन्थ भी हैं। जगत्प्रसिद्ध 'शाहनामा' की वह प्रति भी है, जिसे काबुल और कश्मीर के शासक अलीमर्दान खाँ ने सम्राट् शाहजहाँ को भेंट की थी। एक प्रति 'तारीखे-खान्दाने-तैमूरिया' की है, जिसमें १३२ चित्रित पृष्ठ हैं, जिन्हें अकबर के समय के तीस सुप्रसिद्ध चित्रकारों ने अंकित किया था। इतना ही नहीं, ग्रन्थों के सिवा कई पुराने सुनहले चित्र भी हैं—एक-से-एक बढ़कर। ये किसी समय मुसलमान बादशाहों और नवाबों की चित्रशालाओं को सुशोभित कर चुके हैं। महाराज रणजीत सिंह के चित्र-संग्रह में से भी कई चित्र यहाँ मौजूद हैं। भारत के सिवा विदेशों के प्रसिद्ध चित्रकारों के चित्र भी इसमें संगृहीत हैं। इतिहास-प्रसिद्ध वीर बाबू कुँवरसिंह का शिकारी चित्र देखने ही योग्य है। यह संग्रहालय सब तरह से अनूठा है।

श्रीमती राधिकासिंह इंस्टीट्यूट लाइब्रेरी (पटना)—इसके जन्मदाता हैं पटना-विश्वविद्यालय के वर्त्तमान वाइस-चांसलर डॉक्टर सच्चिदानन्द सिंह, जो भारतप्रसिद्ध पत्रकार, सुवक्ता और सुलेखक हैं। आपने अपनी सहधर्मिणी स्वर्गीया श्रीमती राधिका देवी के स्मारक-स्वरूप इसकी स्थापना की है। इसके भवन के बनवाने और सजाने में लगभग एक लाख रुपये खर्च हुए हैं। सन् १९२४ ई० (फरवरी) में बिहार-उड़ीसा के तात्कालिक गवर्नर 'सर हेनरी ह्वीलर' ने इसके भवन का उद्घाटन किया था। संगृहीत पुस्तकों का दाम लगभग दो लाख रुपये कहा जाता है। बिहार-सरकार ने हाल ही इस पुस्तकालय को आठ हजार रुपये वार्षिक सहायता देना स्वीकार किया है। सन् १९३२ ई० में, पटना-विश्वविद्यालय के दीक्षान्त-भाषण में, पटना-हाइकोर्ट के चीफ-जस्टिस 'सर कर्टनी टेलर' (स्वर्गीय) ने इसे 'सार्वजनिक साहित्य का शानदार पुस्तकालय' (Splendid Library of General Literature) कहा था। इसके साथ एकान्त अध्ययनालय और अनुसंधानालय तथा सार्वजनिक वाचनालय और समाचार-पत्रालय भी सम्बद्ध हैं। समाचार-पत्रालय में देश-विदेश के अनेक

मेडिकल कालेज-लाइब्रेरी (पटना)—इसमें लगभग दो हजार ग्रन्थ हैं। सरकार इसे प्रति वर्ष ढाई हजार रुपये देती है। हिन्दी में चिकित्सा-सम्बन्धी अनेक पुस्तकों के होते हुए भी इसमें उनकी पर्याप्त सख्या नहीं है।

टी० एन० जुबली-कालेज-लाइब्रेरी (भागलपुर)—इसमें बीस हजार से भी अधिक पुस्तकों का संग्रह है जिसमें अँगरेजी, संस्कृत और हिन्दी की पुस्तकें सबसे अधिक हैं। रेफरेन्स-बुक के अलावा पत्र-पत्रिकाओं की फाइलें भी काफी सख्या में हैं।

जी० बी० बी० कालेज-लाइब्रेरी (मुजफ्फरपुर)—इसमें संस्कृत और इतिहास की अँगरेजी पुस्तकें सबसे अधिक हैं। संस्कृत-कालेज का पुस्तकालय सम्मिलित कर लेने पर लगभग बीस हजार पुस्तकें यहाँ हैं। पत्र-पत्रिकाओं की रक्षा का भी प्रबन्ध है। हिन्दी का ग्रन्थ संग्रह उपयोगी है।

बिहार-यगमेंस इन्स्टीच्यूट-लाइब्रेरी (पटना)—इसमें साहित्य, दर्शन, धर्म आदि विषयों के ६००० ग्रन्थ हैं। स्वनामधन्य महात्मा श्रीरूपकलाजी के शिष्यों ने अपने धार्मिक ग्रन्थों का संग्रह इसी पुस्तकालय को दे दिया। इसलिये इसमें हिन्दी की भक्ति साहित्य सम्बन्धी, दार्शनिक और धार्मिक पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। डाक्टर सच्चिदानन्द सिंह और स्वर्गीय मिस्टर ई० ए० हॉर्न ने भी इसे कई बहुमूल्य ग्रन्थ-रत्न प्रदान किये हैं। नवयुवकों के लिये विशेष लाभदायक, विविध भाषाओं और विषयों के, बहुत-से अच्छे ग्रन्थ हैं। इसका अपना स्वतंत्र भवन भी है।

बिहार हितैषी पुस्तकालय-(पटना)—स्वर्गीय रायसाहब नारायण प्रसाद ने, सन् १८८३ ई० में, इसकी स्थापना की थी। पटना सिटी में मंगल-तालाब पर, इसका भवन स्थित है, जिसमें ७००० ग्रन्थ हैं। सिटी-म्युनिसिपैलिटी से इसे हर साल तीन सौ रुपये ग्रन्थ-संग्रह के निमित्त और तीन सौ रुपये चलता फिरता पुस्तकालय के खर्च के निमित्त मिलते हैं। इसमें कई विभाग हैं। यह बिहार के प्रगतिशील पुस्तकालयों में है। सजीव संस्था होने से भविष्य उज्ज्वल है।

महेश्वर पब्लिक-लाइब्रेरी (पटना)— सन् १९२८ ई० में, सेठ पुरुषोत्तम प्रसाद ने, अपने पिता स्वर्गीय सेठ महेश्वरप्रसाद के स्मारक रूप में, इसकी स्थापना की थी। इन दिनों यह सार्वजनिक पुस्तकालय के रूप में है। इसमें लगभग आठ हजार ग्रन्थ हैं। हिन्दी की पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ बहुसंख्यक हैं। व्यवस्था बड़ी अच्छी है। वाचनालय में हिन्दी के सामयिक पत्रों का बड़ा सुन्दर संग्रह है।

बिहार-उड़ीसा रिसर्च - सोसाइटी - लाइब्रेरी (पटना)—इसकी स्थापना सन् १६१५ ई० में हुई थी। इसके संस्थापकों में स्वर्गीय महामहोपाध्याय डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल प्रमुख थे। इसका भवन अत्यन्त सुन्दर है। इसमें बहुत-से बहुमूल्य हस्तलिखित और मुद्रित ग्रंथ संगृहीत हैं। प्रान्तीय सरकार प्रति वर्ष एक हजार रुपये इसे दिया करती है। सन् १६२० ई० से यह सोसाइटी मिथिला और उड़ीसा के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह करती आ रही है। मिथिला में जितने प्राचीन ग्रन्थों का पता चला है, उनकी वर्णनात्मक सूची दो पोथों में छपी है। इनके सिवा तिब्बत से प्राप्त हस्तलिखित बौद्ध ग्रन्थों के ७०० बोझे (बंडल) भी यहाँ मौजूद हैं। तिब्बत से उक्त दुष्प्राप्य ग्रन्थों के लाने का श्रेय त्रिपिटकाचार्य महापंडित राहुल सांकृत्यायन को ही है। इन्हीं ग्रंथों के आधार पर अब हिन्दी-कविता का आदिकाल आठवीं शताब्दी निश्चित हुआ है।

पटना-कालेज लाइब्रेरी—यह उसी भवन में है, जो सत्रहवीं शताब्दी में 'डचों की कोठी' था। इसमें लगभग २७ हजार ग्रन्थ हैं। सरकार हर साल ५५००) रुपये इसे देती है। पटना में पहला हाइस्कूल सन् १८३५ ई० में खुला और वही सन् १८६३ ई० में कालेज के रूप में परिणत हो गया। इसलिये उसी समय से इसमें पुस्तकों का संग्रह होता रहा। इसमें हिन्दी की नई-पुरानी पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं की पर्याप्त संख्या है।

साइंस-कालेज-लाइब्रेरी (पटना) इसकी स्थापना सन् १६२७ ई० में हुई। इसके पुस्तकालय में लगभग एक हजार ग्रन्थ हैं। अधिकांश पुस्तकें विज्ञान सम्बन्धी ही हैं। हिन्दी की वैज्ञानिक पुस्तकों का केवल चुनिन्दा संग्रह है।

बिहार-नेशनल-(बी० एन०)-कालेज-लाइब्रेरी (पटना)—सन् १८८६ ई० में इसकी स्थापना हुई। इसके पुस्तकालय में साढ़े सात हजार से अधिक ग्रन्थ हैं। विभिन्न भाषाओं की पत्र-पत्रिकाएँ लगभग साढ़े इक्कीस हजार हैं। इसमें हिन्दी की पुरानी और नई पुस्तकें तथा पत्रिकाएँ भी हजारों की संख्या में हैं।

इंजीनियरिंग-कालेज-लाइब्रेरी (पटना)—इसमें व्यावहारिक विषयों की करीब ढाई हजार पुस्तकें हैं। शिल्प-कौशल-सम्बन्धी ग्रन्थों और सामयिक पत्र पत्रिकाओं के खरीदने के लिये सरकार हर साल इसे एक हजार रुपये देती है। इसमें हिन्दी की एतद्विषयक पुस्तकें अत्यल्प हैं।

देख—पृष्ठ- ५१

स्मा शाह रिजवीं नामक फारसी की एक हस्तलिखित पुस्तक चित्र, जिसमें पहाड़ी जंगल के अन्दर एक घुड़सवार शिकारी, से हिरन का शिकार कर रहा है। यह सन १०८९ हिजरी का त किया हुआ चित्र है—२७१ वर्ष का पुराना। श्रीअनूलाल कालय (गया) में सुरक्षित है।

'न्याय सार-दीपिका' नामक प्राचीन संस्कृत ग्रंथ का एक पृष्ठ जो संवत् १५२४ वि० में भाद्र-शुक्ल १५ (शनिवार) को लिखा गया था—४७४ वर्ष पूर्व। यह भी श्रीअनूलाल पुस्तकालय (गया) में सुरक्षित है।

सुहृद्-परिषद् एवं हेमचन्द्र-लाइब्रेरी (पटना)—इसके प्राय. सभी ग्रन्थ बँगला-भाषा मे हैं। बँगला के बहुत-से बहुमूल्य ग्रन्थों के प्रथम सस्करण मौजूद हैं। ग्रन्थों की सख्या लगभग छ हजार है। कुछ हिन्दी प्रेमी भी इससे लाभ उठाते हैं।

'मानुक'-सग्रहालय—पटना के सुप्रसिद्ध बारिस्टर मिस्टर पी० सी० मानुक ने चालीस वर्षों मे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का जो सग्रह किया है वह दर्शनीय और प्रशसनीय है। इनके इस सग्रहालय मे मुगल-काल के बहुत-से बहुमूल्य चित्र मौजूद हैं। स्वर्गीय महामहोपाध्याय डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल ने इस सग्रहालय को 'ससार के सुन्दर सग्रहालयो मे एक' लिखा है। इसमे राजा मानसिंह, राजा टोडरमल, दारा शिकोह, जेबुन्निसा आदि इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्तियों के भी प्राचीन चित्र हैं। ऐतिहासिक और कलापूर्ण चित्रों तथा अलभ्य ग्रंथों का यह अनुपम भाडार है।

'जालान'-सग्रहालय—पटना सिटी के सुप्रसिद्ध कलाविद् रईस रायबहादुर राधाकृष्ण जालान के सग्रहालय मे भी दुर्लभ ग्रन्थों और मुगल-काल के चित्रों का अच्छा सग्रह है। यह कलामदिर भी अपने ढँग का अकेला ही है।

बिहार-व्यवस्थापिका सभा की लाइब्रेरी (पटना)—इसकी स्थापना सन् १९१२ ई० मे हुई। सिर्फ व्यवस्थापिका सभा (कौंसिल) के सदस्य ही इससे लाभ उठा सकते हैं। इसके ग्रन्थों की सख्या लगभग पन्द्रह हजार है। हिन्दी के लिये इसमें स्थान कहाँ!

श्रीमन्नूलाल-पुस्तकालय (गया)—बिहार के पुस्तकालयों में इसका प्रमुख स्थान है। इसके सस्थापक हैं गया के सुप्रतिष्ठित रईस बाबू सूर्यप्रसादजी महाजन। यह उनके पिता स्वर्गीय बाबू मन्नूलालजी के स्मारक के रूप मे है। इसके सजाने मे बाबूसाहब ने हजारों रुपये खर्च किये हैं। इसके विशाल भवन का उद्‍घाटन, महामना पडित मदनमोहनजी मालवीय के कर-कमलों से, सन् १९१४ ई० की २६ वीं मई को, हुआ था। इसे चलाने के लिये तीन हजार दो सौ रुपये की सालाना आमदनी दे दी गई है। इसमे सस्कृत और हिन्दी के प्राचीन तथा नवीन ग्रथों का अभिनन्दनीय सग्रह है। सस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अँगरेजी, बँगला आदि भाषाओं की छपी हुई पुस्तकों की सख्या १५२३६ है। हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ १७२४ हैं। सस्कृत के १३७३ ग्रन्थ हैं। इनके सिवा इसके सग्रह विभाग में पुराने चित्रों, मूर्त्तियों, शिलालेखों, ताम्रपत्रों और प्राचीन सिक्कों की भरमार है।

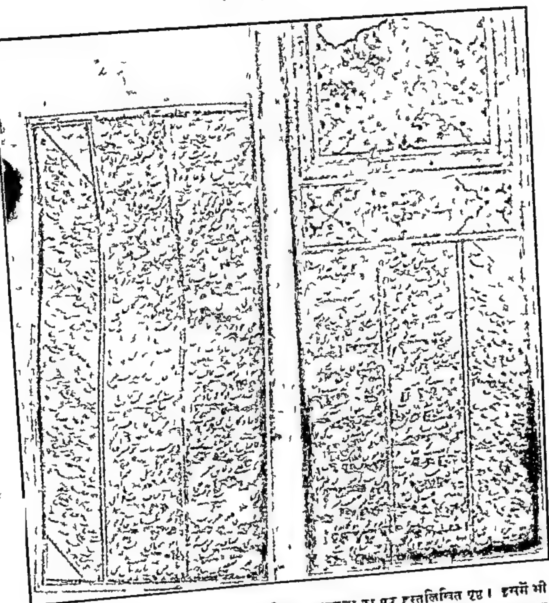

'कुल्लियात शेख सादी' नामक फारसी के प्रसिद्ध काव्यग्रन्थ का एक हस्तलिखित पृष्ठ। इसमें भी लिखनेवाले के हाथ की सफाई काबिल तारीफ है। बारीक रवानी बहुत सुन्दर है। यह पुस्तक सन् १०११ हिजरी में लिखी गई थी—आज से ३४९ वर्ष पहले। इस समय १३६० हिजरी है। यह भी श्रीमन्नूलाल पुस्तकालय (गया) में सुरक्षित है।

श्रीमन्नूलाल-पुस्तकालय (गया) में सुरक्षित 'पंज सुरा-कुरान' का एक पृष्ठ
हाथ की सुन्दर लिखावट के साथ बेलबूटे और फूल पत्तियों की सजावट देखकर दंग रह जाना पड़ता है

[लेख—पृष्ठ ५१८]

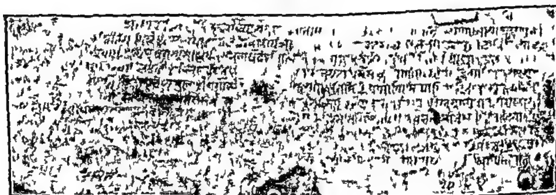

विक्रम-संवत् १४६६ की लिखी हुई एक पोथी का पृष्ठ, जो श्रीमन्नूलाल पुस्तकालय के हस्तलिपि विभाग में सुरक्षित है

देखो—पृष्ठ ५१८

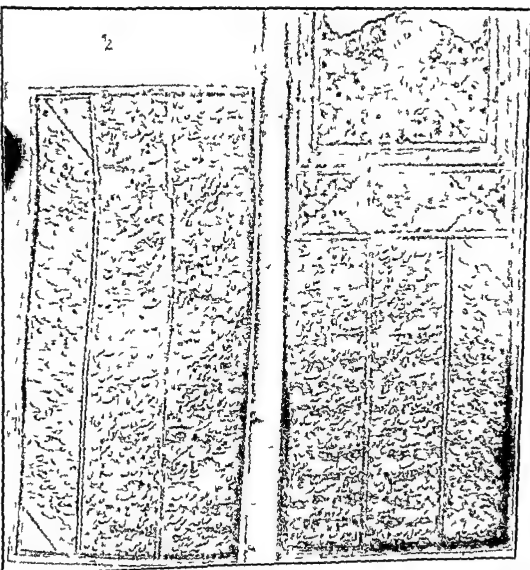

'कुल्लियात शेख सादी' नामक फारसी के प्रसिद्ध काव्यग्रन्थ का एक हस्तलिखित पृष्ठ। इसमें भी लिखनेवाले के हाथ की सफाई काबिल तारीफ है। बारीक नक्काशी बहुत सुन्दर है। यह पुस्तक सन १०११ हिजरी में लिखी गई थी—आज से ३४९ वर्ष पहले। इस समय १३६० हिजरी है। यह भी श्रीमन्नूलाल पुस्तकालय (गया) में सुरक्षित है।

संगृहीत वस्तुओं में दो बडे ही अमूल्य -रत्न हैं—(१) भगवान् बुद्ध की मूर्त्ति, जिसमे पाली-भाषा में लेख अंकित है और जो एक हजार वर्ष की पुरानी है। (२) पलामू की लड़ाई का दृश्य कपडे पर चित्रित है, कपड़ा २८ फीट ५ इंच लम्बा है और १० फीट १ इंच चौड़ा। यह लड़ाई पलामू के राजा और औरंगजेब के सेनापति के बीच हुई थी—इसके संबंध में एक लेख बिहार-उडीसा रिसर्च-सोसाइटी के मुखपत्र मे छप चुका है।※

सुहृद् संघ पुस्तकालय (मुजफ्फरपुर)—यह अपने सुयोग्य मंत्री श्री नीतीश्वर प्रसाद सिंह के सतत और सजग प्रयत्न से, गत पाँच-छः बरसों से, प्रशंसनीय जन-सेवा कर रहा है। प्रतिवर्ष इसका वार्षिकोत्सव बडे समारोह से होता है। बिहार की कांग्रेसी सरकार के समय में इसको आर्थिक सहायता भी मिली थी। अपनी जमीन में इसका छोटा-सा सुन्दर भवन भी बन गया है। इसके उद्योगी मंत्री के उत्साह से इसकी दिन दिन उन्नति हो रही है और भविष्य इसका बड़ा उज्ज्वल है। बिहार के साहित्यिक आन्दोलनों में यह प्रमुख भाग लेता है। बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्यालय पहले मुजफ्फरपुर में ही था। उसी के पुस्तकालय की बची खुची पुस्तकों से इसका श्रीगणेश हुआ। किन्तु अब यह साहित्यचर्चा का केन्द्र बन गया है। इसमें हिन्दी की पुस्तकों और पत्र पत्रिकाओं के संरक्षण और वितरण की बहुत ही अच्छी व्यवस्था है। इसने नवयुवकों में अच्छी जागृति पैदा की है।

राज-लाइब्रेरी (दरभंगा)—यह बिहार का एक विशाल पुस्तकालय है। इसमें अँगरेजी, संस्कृत, हिन्दी और मैथिली के असंख्य ग्रन्थ हैं। बहुत-से अमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थ भी हैं। मिथिला नरेश सदा से विद्वान् होते आये हैं। आजतक जितने महाराज मिथिला की गद्दी पर बैठे हैं, सबने संस्कृत, हिन्दी और मैथिली के हस्तलिखित ग्रन्थों का दर्शनीय संग्रह किया है। इसका नवीन विशाल भवन अत्यन्त रमणीय उद्यान के मध्य स्थित है। श्रीमान् मिथिलेश की खास अनुमति बिना कोई भी व्यक्ति इससे लाभ नहीं उठा सकता। महामहोपाध्याय डॉक्टर सर गंगानाथ झा अपने जीवन के आरंभिक काल में इसी पुस्तकालय के अध्यक्ष थे। अँगरेजी के मूल्यवान् प्रामाणिक ग्रन्थों का यहाँ अपूर्व संग्रह है। लाखों रुपये

※ इस पुस्तकालय का सुविस्तृत सचित्र परिचय 'बालक' (वर्ष ११ अंक ४, अप्रैल, १९३७) में छप चुका है। —सम्पादक

की ग्रन्थराशि देख चकित रहना पड़ता है। यह सर्वथा दरभगा-राज्य की महत्ता के अनुरूप ही है।

श्रीराजराजेश्वरी पुस्तकालय (सूर्यपुरा, शाहाबाद)—इसके सरक्षक हैं सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, एम० ए०, जिनके स्वर्गीय पूज्य पिता राजा राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह का यह स्मारक है। इसमे स्वर्गीय राजा साहब के समय से लेकर आजतक के सग्रहीत ग्रन्थों का समुदाय है। हिन्दी, सस्कृत, उर्दू-फारसी, बँगला और अँगरेजी की बहुत-सी पुरानी और अलभ्य पुस्तकें इसमें भरी हैं। वर्त्तमान राजा साहब ने भी नवीन साहित्य से इसको सम्पन्न किया है, उन्हीं के अविरल साहित्यानुराग से इसकी अनुदिन वृद्धि हो रही है।

श्रीनगर-(पूर्णिया)-राज-लाइब्रेरी—यह पुस्तकालय अपने अमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थों के लिये प्रसिद्ध था, किन्तु सन् १९३२ ई० मे अचानक आग लगने से जलकर भस्म हो गया। इसके सस्थापक थे 'अभिनव भोज' स्वर्गीय राजा कमलानन्द सिंह, जो कवियों के आश्रयदाता के रूप में विख्यात थे। पुरस्कार के लोभ से बहुत-से कवि अपनी रचनाएँ इन्हें अर्पित करते थे, जिन्हें ये पुस्तकालय में रखते जाते थे। इनके सिवा अँगरेजी और हिन्दी की कई हजार मुद्रित पुस्तकें इसमे थीं। शुरू से सन् १९३२ तक की हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ इसमें सुरक्षित थीं। कहा जाता है कि इसमें सग्रहीत पुस्तकों का मूल्य कई लाख रुपये था। किन्तु अब श्रीनगर-राज्य के स्वामी श्रीमान् कुमार गगानन्द सिंह का अपना खास पुस्तकालय भी दर्शनीय है, जिसमें चुनी हुई उत्तमोत्तम पुस्तकों के अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाएँ, अखबारों की कतरनें, चिट्ठियाँ आदि बड़े ही सुन्दर ढँग से सगृहीत हैं।

लक्ष्मीश्वर-पब्लिक-लाइब्रेरी (दरभगा)—इसमे हिन्दी और अँगरेजी के हजारों ग्रन्थ सगृहीत हैं। स्वर्गीय मिथिला-नरेश महाराज सर लक्ष्मीश्वर सिंह बहादुर की धर्मपत्नी महारानी लक्ष्मीवती साहबा ने इसकी स्थापना की है। इसका भवन एव उद्यान अत्यन्त सुन्दर है। अँगरेजी और हिन्दी की सामयिक पत्र-पत्रिकाओं की सुरक्षित फाइलों के लिये यह विशेष प्रसिद्ध है। इसकी आर्थिक अवस्था और सुव्यवस्था सर्वथा सन्तोषजनक है।

नागरी प्रचारक पुस्तकालय (नागरी प्रचारिणी सभा, आरा)—यह बिहार का बड़ा पुराना और प्रसिद्ध पुस्तकालय है। इसमे अनेक प्राचीन अप्राप्य ग्रन्थ और हिन्दी की बहुमूल्य पत्र-पत्रिकाएँ सगृहीत हैं। पुरानी पत्र-पत्रिकाओं

को सुरक्षित फाइलें रिसर्च-स्कालरों के बड़े काम की हैं। इसकी स्थापना सन् १९०१ ई० मे १७ अक्टूबर को हुई थी। संस्थापकों मे पंडित सकलनारायण पांडेय, बाबू जयबहादुर, बाबू रामकृष्ण दास, बाबू देवकुमार जैन, बाबू जैनेन्द्र-किशोर जैन और रायसाहब हरसू प्रसाद सिंह के नाम स्मरणीय हैं। सभा के सर्व-प्रथम सभापति हुए वैद्यराज पंडित बालगोविन्द तिवारी। सन् १९१६ में सभा के उद्योग से ही कैथी लिपि की जगह बिहार की कचहरियों और सरकारी दफ्तरों मे देवनागरी लिपि का प्रचार हुआ। इसमें पुस्तकों की संख्या ७००० है। हस्तलिखित संस्कृत-हिन्दी-पुस्तकों की संख्या २०० से ज्यादा है। शाहाबाद जिला-बोर्ड से ४८०) और म्युनिसिपैलिटी से ६०) सालाना मिलता है। उपर्युक्त बाबू रामकृष्ण दास ने सभा को जो मकान दान दिया था, उससे २६४) वार्षिक भाड़ा आता है। बिहार-सरकार ने सभा को दो बीघे जमीन और ३०००) रुपये दिये थे। आरा के धनी-मानी रईस और उपर्युक्त बाबू जयबहादुर के अनुज बाबू अमीरचन्दजी ने ५०००) का दान सभा को दिया था। इन रुपयों से पुस्तकालय और वाचनालय के लिये भव्य भवन बन चुका है। भवन की स्कीम ५००००) की है। भवन अभी अधूरा ही है। सभा ने कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी प्रकाशित किये हैं। जैसे—मैथिलकोकिल विद्यापति, मेगास्थनीज की भारत-यात्रा, सिक्खगुरुओं की जीवनी, नवरस, हिन्दी सिद्धान्त-प्रकाश, गत पचास वर्षों का हिन्दी का इतिहास इत्यादि। महाकवि 'हरिऔध' को अभिनन्दन ग्रंथ अर्पित करके सभा ने सम्मानित किया था। अगले साल देशपूज्य डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी को भी एक सर्वाङ्गसुन्दर अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करेगी। सभा के पुस्तकालय से अनुसन्धानकर्त्ता साहित्य-सेवियों को लाभ उठाना चाहिये।

बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-पुस्तकालय (पटना)—यह पटना के कदमकुँआ मुहल्ले में 'सम्मेलन' के विशाल भवन में ही है। इसमें बहुत-से प्राचीन एवं प्रामाणिक ग्रन्थ और अनेक नई पुरानी पत्र पत्रिकाओं की फाइलें हैं। हस्तलिखित पुस्तकों और प्राचीन चित्रों का भी संग्रह है। कितनी ही अप्राप्य पुस्तकें भी इसमें हैं। संग्रहालय की सामग्री का संकलन हो रहा है।

विद्यापति-पुस्तकालय (लहेरियासराय)—यह 'पुस्तक-भंडार' का ग्रन्थागार है। सन् १९२६ ई० में श्रीरामलोचनशरणजी बिहारी ने इसका नाम-करण और संस्थापन किया था। इसमें लगभग दस हजार पुस्तकों का संग्रह है। पत्र-पत्रिकाओं की संख्या इससे भी अधिक है। अँगरेजी और हिन्दी के अनेक बहु-

की ग्रन्थराशि देख चकित रहना पड़ता है। यह सर्वथा दरभंगा-राज्य की महत्ता के अनुरूप ही है।

श्रीराजराजेश्वरी पुस्तकालय (सूर्यपुरा, शाहाबाद)—इसके संरक्षक हैं सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, एम० ए०, जिनके स्वर्गीय पूज्य पिता राजा राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह का यह स्मारक है। इसमें स्वर्गीय राजा साहब के समय से लेकर आजतक के संग्रहीत ग्रन्थों का समुदाय है। हिन्दी, संस्कृत, उर्दू-फारसी, बँगला और अँगरेजी की बहुत-सी पुरानी और अलभ्य पुस्तकें इसमें भरी हैं। वर्त्तमान राजा साहब ने भी नवीन साहित्य से इसको सम्पन्न किया है, उन्हीं के अविरल साहित्यानुराग से इसकी अनुदिन वृद्धि हो रही है।

श्रीनगर-(पूर्णिया)-राज-लाइब्रेरी—यह पुस्तकालय अपने अमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थों के लिये प्रसिद्ध था, किन्तु सन् १९३२ ई० में अचानक आग लगने से जलकर भस्म हो गया। इसके संस्थापक थे 'अभिनव भोज' स्वर्गीय राजा कमलानन्द सिंह, जो कवियों के आश्रयदाता के रूप में विख्यात थे। पुरस्कार के लोभ से बहुत-से कवि अपनी रचनाएँ इन्हें अर्पित करते थे, जिन्हें ये पुस्तकालय में रखते जाते थे। इनके सिवा अँगरेजी और हिन्दी की कई हजार मुद्रित पुस्तकें इसमें थीं। शुरू से सन् १९३२ तक की हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ इसमें सुरक्षित थीं। कहा जाता है कि इसमें संग्रहीत पुस्तकों का मूल्य कई लाख रुपये था। किन्तु अब श्रीनगर-राज्य के स्वामी श्रीमान् कुमार गंगानन्द सिंह का अपना खास पुस्तकालय भी दर्शनीय है, जिसमें चुनी हुई उत्तमोत्तम पुस्तकों के अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाएँ, अखबारों की कतरनें, चिट्ठियाँ आदि बड़े ही सुन्दर ढंग से संगृहीत हैं।

लक्ष्मीश्वर-पब्लिक-लाइब्रेरी (दरभंगा)—इसमें हिन्दी और अँगरेजी के हजारों ग्रन्थ संगृहीत हैं। स्वर्गीय मिथिला-नरेश महाराज सर लक्ष्मीश्वर सिंह बहादुर की धर्मपत्नी महारानी लक्ष्मीवती साहबा ने इसकी स्थापना की है। इसका भवन एवं उद्यान अत्यन्त सुन्दर है। अँगरेजी और हिन्दी की सामयिक पत्र-पत्रिकाओं की सुरक्षित फाइलों के लिये यह विशेष प्रसिद्ध है। इसकी आर्थिक अवस्था और सुव्यवस्था सर्वथा सन्तोषजनक है।

नागरी प्रचारक पुस्तकालय (नागरी प्रचारिणी सभा, आरा)—यह बिहार का बड़ा पुराना और प्रसिद्ध पुस्तकालय है। इसमें अनेक प्राचीन अप्राप्य ग्रन्थ और हिन्दी की बहुमूल्य पत्र-पत्रिकाएँ संगृहीत हैं। पुरानी पत्र-पत्रिकाओं

पृष्ठ-पृष्ठ में प्रसगानुकूल बहुरगे चित्र। 'सीता की अग्निपरीक्षा'-सम्बन्धी इसके दो चित्र सन् १९१२—१३ में 'सरस्वती' (प्रयाग) में प्रकाशित हुए थे। मुद्रित ग्रथों की सख्या ७८२५ है। सन् १९४० के जून तक कुल ग्रन्थसख्या १२९०३ है। एक छोटे-से कार्ड पर लिखा हुआ 'भक्तामरस्तोत्र' दर्शनीय पदार्थ है—वसत-तिलका-छद में ४८ पद्य हैं, जो आसानी से पढ़े जा सकते हैं। 'तत्त्वार्थसूत्र' भी एक कार्ड पर ही लिखा हुआ है जिसमें ३५७ सूत्र हैं। चमेली के पत्ते, सरसों, तिल और चावल के दाने पर लिखी सूक्ष्म लिपियाँ विशेष दर्शनीय हैं। सवत् ११८६ के लिखे हुए 'आवश्यक सूत्र' का केवल एक ही (अन्तिम) पृष्ठ (तालपत्र) है, जो अत्यत प्राचीन होने के कारण विशेष महत्त्वपूर्ण है। जैन-पुराणों के अनुसार, सैकड़ों रुपये व्यय करके, बहुत-से बड़े-बड़े रगीन चित्र तैयार कराये गये हैं जो देखने ही योग्य हैं। यथा—सोलह स्वप्न, समवशरण, पावापुरी, महाराज चन्द्रगुप्त, सम्मेदशिखर, चम्पापुरी, ससारवृक्ष आदि। इनके सिवा सिक्के, नोट, स्टाम्प आदि का सग्रह भी अवलोकनीय है। भारत के सुप्रसिद्ध पुस्तकालयों की पुस्तक-सूचियाँ और जैनतीर्थों की फोटो-तसवीरें भी सगृहीत हैं। सर्वथा दर्शनीय सग्रहालय है।

मिथिला-कालेज-लाइब्रेरी (दरभगा)—इसमें पाँच हजार पुस्तकें हैं। हिन्दी की पुस्तकें लगभग एक हजार हैं। बिहार-महिला विद्यापीठ (मझौलिया, दरभगा) के सस्थापक श्रीरामनन्दन मिश्र ने मझौलिया के मगन-आश्रम का पुस्तकालय इसी में सम्मिलित कर दिया है। और भी कई सज्जनों ने पुस्तकें दी हैं। दिन दिन सग्रह बढ़ता ही जाता है।

पटना-म्युजियम—यह बिहार का दर्शनीय सरकारी सग्रहालय है। इसे लोग अजायब घर भी कहते हैं। पटना गया-रोड पर मुगल-राजपूत-शैली में बनी हुई इसकी खूबसूरत इमारत का उद्घाटन सन् १९२९ ई० में हुआ था। कहा जाता है कि ब्रिटिश भारत में दूसरे किसी म्यूजियम की इमारत इतनी सुन्दर नहीं बनी है। इसकी इमारत बनने से पहले इसकी चीजें पटना-हाइकोर्ट की दो-चार कोठरियों में कई साल रक्खी रहीं। अब सारी नई इमारत सुसज्जित है। इसमें मौर्यकालीन कला की सुन्दर कृतियाँ, मौर्यकाल से भी पहले की वस्तुएँ, गुप्तकालीन अङ्कित स्तभखड, मौर्यकालीन रथों के पहिये, मध्य-युग की मूर्त्तियाँ आदि सगृहीत हैं। राजपूत, मुगल और पठान राजा-महाराजाओं और बादशाहों के सिक्के

मूल्य ग्रंथ इसकी शोभा बढाते हैं। इसमें विहार के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों के भी शिक्षा-विभाग की विविध विषयों की हिन्दी-पाठ्य-पुस्तकों का पर्याप्त संग्रह है। हिन्दी की अनेक दुष्प्राप्य पुस्तकें इसमें सगृहीत हैं। दैनिक, साप्ताहिक, मासिक आदि पत्र-पत्रिकाओं के लिये विहार के सभी पुस्तकालयों से यह धनी है। अभी यह 'पुस्तक-भडार' के भवन में ही स्थित है, किन्तु इसके स्वतंत्र भवन का निर्माण निकट भविष्य में ही होनेवाला है। तब यह साहित्यिक अनुसन्धान करनेवालों को विशेष आकृष्ट करेगा।

ओरियंटल लाइब्रेरी (जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा)—इसके दो नाम हैं—अँगरेजी में 'दि सेंट्रल जैन ओरिएटल लाइब्रेरी' और हिन्दी में 'श्रीजैन सिद्धान्त-भवन'। सन् १६११ ई० में १ जून को इसकी स्थापना हुई थी। इसके संस्थापक थे आरा-निवासी स्वनामधन्य रईस स्वर्गीय दानवीर श्रीदेवकुमारजी जैन। वे बड़े धर्मनिष्ठ और विद्याप्रेमी थे। काशी में जैन-महाविद्यालय स्थापित करने के लिये प्रभुघाट में स्थित अपना विशाल भवन उन्होंने सहर्ष दे दिया था, जिसमें आज भी वह संस्था चल रही है। इस जैन-सिद्धान्त-भवन के सचालन के लिये भी उन्होंने अपनी जमीन्दारी से डेढ हजार रुपये वार्षिक आय का एक अंश अलग निकाल दिया है। उनके सुपुत्र श्रीनिर्मलकुमारजी जैन ने सन् १६२४ ई० में लगभग तीस हजार रुपये व्यय करके इसके लिये एक सुन्दर भवन बनवा दिया। इसके पहले यह एक विशाल जैनमन्दिर में था। वर्त्तमान नवीन भवन दोतल्ला है। इसके प्रवेशद्वार के ऊपर सरस्वती की एक दर्शनीय मूर्त्ति बनी हुई है। वाचनालय में पाँच सौ पाठकों के लिये बैठने का प्रशस्त स्थान है और उसी में एक ओर उपर्युक्त संस्थापक महोदय का तैलचित्र (३ फुट लम्बा, २७ इंच चौडा) लगा हुआ है। तीस बडी-बडी आलमारियों में संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलगु, बँगला, कन्नड, अँगरेजी आदि प्राच्य एव पाश्चात्य भाषाओं के उत्तमोत्तम ग्रंथ सुरक्षित हैं। इसके मंत्री स्वय श्रीमान् बाबू निर्मलकुमारजी जैन हैं और पुस्तकालयाध्यक्ष हैं संस्कृत, प्राकृत, कन्नड, मराठी आदि भाषाओं के ज्ञाता तथा जैनपुरातत्त्व के विशेषज्ञ श्रीमान् पंडित के० भुजबली शास्त्री विद्याभूषण, ये कर्णाटक के निवासी हैं। इसमें तालपत्र पर लिखे हुए प्राचीन ग्रन्थों की संख्या १८७६ है। इनके पत्र चार अंगुल चौडे और डेढ दो वालिश्त लम्बे हैं, कोई-कोई डेढ़ हाथ तक लम्बे। पुराने कागज पर हस्तलिखित ग्रन्थों की संख्या ४४८६ है। इनमें एक जैन-रामायण दर्शनीय वस्तु है—पतला चमकदार कागज,

श्रीकमला स्मारक-पुस्तकालय (लहेरियासराय)—यह स्वर्गीय श्रीमती कमला नेहरू की स्मृति में स्थापित है। नवयुवकों के उत्साह से अच्छा काम हो रहा है। पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं की रक्षा का यथेष्ट प्रबन्ध है। स्वतन्त्र भवन-निर्माण का प्रयत्न हो रहा है। बड़े-बड़े नेता और साहित्यसेवी इसे देखकर सन्तोष प्रकट कर चुके हैं। उन्नतिशील संस्था है।

श्रीसरस्वती पुस्तकालय (लहेरियासराय)—यह श्रीशैलेन्द्रमोहन झा नामक दशवर्षीय बालक के समुत्साह का फल है। सन् १६३६ ई० के सितम्बर में प्रसिद्ध कांग्रेस-कर्मी श्रीनारायणदास ने इसका उद्घाटन किया। पुस्तकों की संख्या सात सौ के लगभग है। इसकी ओर से समय-समय पर साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक महोत्सव और शोक-सभाएँ भी की जाती हैं। उन्नतिशील है।

श्रीगान्धी-आश्रम-पुस्तकालय (मलखाचक, दिघवारा, सारन)—यह राष्ट्रीय आन्दोलन के आरम्भ-काल से ही चल रहा है। एक सुन्दर दोतल्ला भवन है। अँगरेजी और हिन्दी की राजनीतिक पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं की पुरानी फाइलें सुरक्षित हैं। कई बार राजनीतिक आन्दोलन में यह बहुत-कुछ खो चुका है। इसमें कभी पुलिस का अड्डा था। इसके संस्थापक श्रीरामविनोद सिंह प्रसिद्ध कांग्रेस-कार्यकर्त्ता हैं। उनके अनुज स्वनामधन्य विद्वान् हिन्दी-लेखक डाक्टर सत्यनारायण, पी-एच० डी०, इसके वर्त्तमान संरक्षक हैं और वही इसका सदुपयोग करते हैं। इन्होंने इसमें बहुत-सी नई पुस्तकों का भी संग्रह करना शुरू किया है, जिससे यह 'अप-टु-डेट' बनता जा रहा है।

स्वर्णजयन्ती-पुस्तकालय (बेगूसराय, मुँगेर)—सन् १६३६ से स्थापित है। एक हजार से अधिक पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ हैं। सरकारी सहायता मिल चुकी है। कांग्रेस की स्वर्णजयन्ती की स्मृति में स्थापित हुआ था।

जगदम्बी-पुस्तकालय (मँझौल, मुँगेर)—इसमें डेढ़ हजार से अधिक हिन्दी-पुस्तकें हैं। आसपास के गाँवों में इसकी शाखाएँ भी हैं। ज्ञानप्रचार का प्रयत्न श्लाघ्य है।

वैदिक हिन्दी पुस्तकालय (बाँकीपुर, पटना)—इसमें तीन हजार हिन्दी पुस्तकें हैं। दस अच्छे मासिक पत्र और पन्द्रह चुने हुए विविध दैनिक तथा साप्ताहिक पत्र इसके वाचनालय में आते हैं। बहुत लोकप्रिय संस्था है। इसकी सेवा से पड़ोस की जनता आकृष्ट है।

वस्तुत दर्शनीय हैं। बड़े-बड़े हाकिमों और अँगरेज अफसरों की हस्तलिपियाँ, कुछ चीनी और जापानी तथा भारतीय चित्र, अन्यान्य रग बिरगी वस्तुएँ भी दर्शनीय हैं। मौर्य-सम्राटों के छत्र (छाता) के टुकड़े और उनके राजप्रासाद के खभों में लगी हुई सोने की अँगूरी लत्तियों की लच्छियाँ भी सगृहीत हैं। वास्तव में यह म्यूजियम बिहार का गौरव है। रिसर्च-स्कॉलरों के लिये इसमें काफी मसाला है।

श्रीवागीश्वरी पुस्तकालय—यह 'उनवाँस' ग्राम मे है। डाकघर—इटाढ़ी, रेलवे-स्टेशन—बक्सर, जिला—शाहाबाद। सन् १६२१ ई० मे श्रीरामनवमी की शुभ तिथि को, श्रीशिवपूजनसहाय ने, अपने पूज्य स्वर्गीय पिता मुशी वागीश्वरी-दयाल की स्मृति में, इसकी स्थापना की थी। इसमे तीन हजार पुस्तकें, दो हजार मासिक पत्र-पत्रिकाएँ, पाँच हजार साहित्यिक चिट्ठियाँ और दो सौ चुने हुए चित्र सगृहीत हैं। सस्थाओं के कार्य विवरण, सभाओं के भाषण, पुस्तकों के सूचीपत्र, डाक के देशी-विदेशी टिकट, पत्र पत्रिकाओं के आवरण (रैपर) आदि सब मिलकर एक हजार हैं। दैनिक और साप्ताहिक पत्रों की भी फाइलें हैं। कतरनों के बावन बडल हैं। अर्थाभाव से आजतक स्वतत्र भवन नहीं बना है। स्थानाभाव के कारण बहुतेरी चीजें बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन (पटना) को श्रीवागीश्वरी-स्मारक-सग्रह के रूप में दे दी गई हैं।

शर्मा लाइब्रेरी (राजेन्द्र-कालेज), छपरा—यह स्वर्गीय महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा के नाम पर उन्हीं की स्मृति में स्थापित है। सन् १६३८ में कालेज के साथ ही इसकी स्थापना हुई। इसमें अँगरेजी, सस्कृत, फारसी, हिन्दी, उर्दू, बँगला आदि भाषाओं की विविध विषयक आठ हजार पुस्तकें और पत्र पत्रिकाएँ हैं। केवल हिन्दी की पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ दो हजार हैं। सग्रह का सतत प्रयत्न होता रहता है।

श्रीसनातनधर्म हिन्दी पुस्तकालय (सीतामढ़ी, मुजफ्फरपुर)—यह बडा पुराना और सुप्रतिष्ठित पुस्तकालय है। इसका स्वतत्र पक्का भवन बड़ा सुन्दर और प्रशस्त है। इसके मत्री डाक्टर रामाशीष ठाकुर बडे उत्साही और उद्योगी हैं। इसमे कई हजार हिन्दी पुस्तकें हैं। वाचनालय मे पत्र पत्रिकाएँ पर्याप्त हैं। प्रति वर्ष उत्सव और जयन्तियाँ नियमित रूप से मनाई जाती हैं। यहाँ एक सब-डिवीजनल लाइब्रेरी-एसोसिएशन भी कायम हुआ है, जो पुस्तकालयों की उन्नति और पुस्तकों के सग्रह में विशेष दत्तचित है।

श्रीकमला-स्मारक-पुस्तकालय (लहेरियासराय)—यह स्वर्गीय श्रीमती कमला नेहरू की स्मृति मे स्थापित है। नवयुवकों के उत्साह से अच्छा काम हो रहा है। पुस्तकों और पत्र पत्रिकाओं की रक्षा का यथेष्ट प्रबन्ध है। स्वतत्र भवन-निर्माण का प्रयत्न हो रहा है। बड़े-बड़े नेता और साहित्यसेवी इसे देखकर सन्तोष प्रकट कर चुके हैं। उन्नतिशील सस्था है।

श्रीसरस्वती पुस्तकालय (लहेरियासराय)—यह श्रीशैलेन्द्रमोहन झा नामक दशवर्षीय बालक के समुत्साह का फल है। सन् १६३६ ई० के सितम्बर में प्रसिद्ध कांग्रेस-कर्मी श्रीनारायणदास ने इसका उद्घाटन किया। पुस्तकों की सख्या सात सौ के लगभग है। इसकी ओर से समय-समय पर साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक महोत्सव और शोक-सभाएँ भी की जाती हैं। उन्नतिशील है।

श्रीगान्धी-आश्रम पुस्तकालय (मलखाचक, दिघवारा, सारन)—यह राष्ट्रीय आन्दोलन के आरम्भ-काल से ही चल रहा है। एक सुन्दर दोतल्ला भवन है। अँगरेजी और हिन्दी की राजनीतिक पुस्तकों का अच्छा सग्रह है। राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं की पुरानी फाइलें सुरक्षित हैं। कई बार राजनीतिक आन्दोलन मे यह बहुत-कुछ खो चुका है। इसमें कभी पुलिस का अड्डा था। इसके सस्थापक श्रीरामविनोद सिंह प्रसिद्ध कांग्रेस-कार्यकर्त्ता हैं। उनके अनुज स्वनामधन्य विद्वान् हिन्दी-लेखक डाक्टर सत्यनारायण, पी-एच० डी०, इसके वर्त्तमान सरक्षक हैं और वही इसका सदुपयोग करते हैं। इन्होंने इसमे बहुत-सी नई पुस्तकों का भी सग्रह करना शुरू किया है, जिससे यह 'अप टु-डेट' बनता जा रहा है।

स्वर्णजयन्ती-पुस्तकालय (बेगूसराय, मुँगेर)—सन १६३६ से स्थापित है। एक हजार से अधिक पुस्तकें और पत्र पत्रिकाएँ है। सरकारी सहायता मिल चुकी है। कांग्रेस की स्वर्णजयन्ती की स्मृति मे स्थापित हुआ था।

जगदम्बी-पुस्तकालय (मँझौल, मुँगेर)—इसमे डेढ हजार से अधिक हिन्दी पुस्तकें हैं। आसपास के गाँवों मे इसकी शाखाएँ भी हैं। ज्ञानप्रचार का प्रयत्न श्लाघ्य है।

वैदिक हिन्दी पुस्तकालय (बाँकीपुर, पटना)—इसमे तीन हजार हिन्दी पुस्तकें हैं। दस अच्छे मासिक पत्र और पन्द्रह चुने हुए विविध दैनिक तथा साप्ताहिक पत्र इसके वाचनालय मे आते हैं। बहुत लोकप्रिय सस्था है। इसकी सेवा से पड़ोस की जनता आकृष्ट है।

वस्तुत दर्शनीय हैं। बड़े-बड़े हाकिमों और अँगरेज अफसरों की हस्तलिपियाँ, कुछ चीनी और जापानी तथा भारतीय चित्र, अन्यान्य रग बिरगी वस्तुएँ भी दर्शनीय हैं। मौर्य-सम्राटों के छत्र (छाता) के टुकड़े और उनके राजप्रासाद के खभों मे लगी हुई सोने की अँगूरी लत्तियों की लच्छियाँ भी सगृहीत हैं। वास्तव में यह म्यूजियम बिहार का गौरव है। रिसर्च-स्कॉलरों के लिये इसमें काफी मसाला है।

श्रीवागीश्वरी पुस्तकालय—यह 'उनवाँस' ग्राम मे है। डाकघर—इटाढ़ी, रेलवे-स्टेशन—बक्सर, जिला—शाहाबाद। सन् १९२१ ई० मे श्रीरामनवमी की शुभ तिथि को, श्रीशिवपूजनसहाय ने, अपने पूज्य स्वर्गीय पिता मुशी वागीश्वरी-दयाल की स्मृति मे, इसकी स्थापना की थी। इसमे तीन हजार पुस्तकें, दो हजार मासिक पत्र-पत्रिकाएँ, पाँच हजार साहित्यिक चिट्ठियाँ और दो सौ चुने हुए चित्र सगृहीत हैं। सस्थाओं के कार्य विवरण, सभाओं के भाषण, पुस्तकों के सूचीपत्र, डाक के देशी-विदेशी टिकट, पत्र पत्रिकाओं के आवरण (रैपर) आदि सब मिलकर एक हजार हैं। दैनिक और साप्ताहिक पत्रों की भी फाइलें हैं। कतरनों के बावन बडल हैं। अर्थाभाव से आजतक स्वतत्र भवन नहीं बना है। स्थानाभाव के कारण बहुतेरी चीजें बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (पटना) को श्रीवागीश्वरी-स्मारक-सग्रह के रूप में दे दी गई है।

शर्मा-लाइब्रेरी (राजेन्द्र-कालेज), छपरा—यह स्वर्गीय महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा के नाम पर उन्हीं की स्मृति में स्थापित है। सन् १९३८ में कालेज के साथ ही इसकी स्थापना हुई। इसमें अँगरेजी, सस्कृत, फारसी, हिन्दी, उर्दू, बँगला आदि भाषाओं की विविध विषयक आठ हजार पुस्तकें और पत्र पत्रिकाएँ हैं। केवल हिन्दी की पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ दो हजार हैं। सग्रह का सतत प्रयत्न होता रहता है।

श्रीसनातनधर्म हिन्दी पुस्तकालय (सीतामढ़ी, मुजफ्फरपुर)—यह बड़ा पुराना और सुप्रतिष्ठित पुस्तकालय है। इसका स्वतत्र पक्का भवन बड़ा सुन्दर और प्रशस्त है। इसके मत्री डाक्टर रामाशीष ठाकुर बड़े उत्साही और उद्योगी हैं। इसमें कई हजार हिन्दी पुस्तकें हैं। वाचनालय मे पत्र पत्रिकाएँ पर्याप्त हैं। प्रति वर्ष उत्सव और जयन्तियाँ नियमित रूप से मनाई जाती हैं। यहाँ एक सब-डिवीजनल लाइब्रेरी-एसोसिएशन भी कायम हुआ है, जो पुस्तकालयों की उन्नति और पुस्तकों के सग्रह में विशेष दत्तचित्त है।

नया नामकरण हुआ। इसमें लगभग दो हजार पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ हैं। एक भ्रमणशील विभाग भी है जिसके द्वारा आसपास के करीब तीस गाँवों में पुस्तकें पहुँचाई जाती हैं। ज्ञान विस्तार का सुकार्य उत्साहपूर्वक होता है। अपनी जमीन में मकान है।

श्रीराजेन्द्र-पुस्तकालय—यह पटना जिले के 'सेवदह' ग्राम में, श्रीराजेन्द्र-साहित्य-महाविद्यालय के सरक्षण में, है। इसका डाकघर 'निरजूमिलकी' है। सन् १९३७ ई० में २४ जुलाई को देशपूज्य भारत-रत्न डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादजी के नाम पर महाविद्यालय खुला और उसी के साथ पुस्तकालय भी। इसके दो विभाग हैं—एक है गाँवों में शिक्षा प्रचार के निमित्त, दूसरा है केवल विद्यालय के छात्रों के लिये। एक छोटा-सा भवन भी बन गया है, पर कर्मक्षेत्र विस्तृत होने से स्थान-सकोच बहुत खलता है।

श्रीशिवबालक-पुस्तकालय—यह 'वम्हनार' ग्राम (डा० दिलीपपुर, जि० शाहाबाद) में है। सन् १९१६ ई० में श्रीकृष्णजन्माष्टमी को मुन्शी कालिका प्रसाद ने अपने पूज्य स्वर्गीय पिता मुन्शी शिवबालकलाल की स्मृति में स्थापित किया था। इसमें हिन्दी और सस्कृत की डेढ हजार पुस्तकें तथा पाँच सौ पत्र-पत्रिकाएँ हैं। डेढ सौ सुन्दर चित्र और मानचित्र तथा व्यग्यचित्र हैं। पचाग, जंत्री और सूचीपत्र भी डेढ सौ हैं। मुन्शी कालिकाप्रसाद ने अयोध्या नरेश के दुष्प्राप्य 'रसकुसुमाकर' ग्रथ की नकल अपने हाथ से पूरी कर ली थी, वह भी है। काशी नरेश के छन्दोबद्ध बृहत् महाभारत से उन्होंने सारी भगवद्गीता भी उतार ली थी, वह भी सुरक्षित है। उन्होंने प्राचीन ब्रजभाषा-साहित्य का अच्छा सग्रह किया था। अब उनके दिवगत होने पर उनके सुपुत्र श्रीविन्ध्येश्वरी सिद्धेश्वरीप्रसाद ने उनके स्मारक के रूप में आठ सौ पुरानी पुस्तकें और पत्र पत्रिकाएँ बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (पटना) को अर्पित कर दी हैं।

बाल-हिन्दी-पुस्तकालय (आरा)—यह हिन्दी-प्रेमी नवयुवकों के उत्साह से, सन् १९११ ई० के लगभग, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक के कर-कमलों द्वारा, स्थापित हुआ था। इसके कार्यकर्त्ता राजनीतिक आन्दोलन में सम्मिलित हुए जिसके परिणाम स्वरूप यह कई बार जब्त हुआ और महीनों बन्द रहा। इसमें बहुत-सी पुरानी चीजें थीं, पर अस्तव्यस्त हो गईं। इसका स्वतंत्र भवन बन गया है, पर अधूरा है। इसके कार्यकर्त्ता देश-सेवा के विभिन्न कार्यक्षेत्रों में बिखर गये हैं। फिर भी सजीव सस्था है।

श्रीनन्दन-स्मारक-पुस्तकालय (छपरा)—जिलाबोर्ड के भूतपूर्व (स्व०) चेयरमैन की स्मृति में स्थापित है। स्वतंत्र नया भवन बन गया है। हथुआ-नरेश ने पाँच हजार रुपये की सहायता दी है और रेडियो का एक सेट भी। भवन में बिजली भी लग गई है। पुस्तकों और पत्र पत्रिकाओं के रखने और बाँटने का बढ़िया इन्तजाम है।

सरस्वती-पुस्तकालय (पूर्णिया सिटी)—यह बारह बरसों से जनता की सेवा कर रहा है। एक हजार से अधिक पुस्तकें और पत्रिकाएँ हैं। एक सेट रेडियो भी है। उन्नतिपरायण है।

भगवान-पुस्तकालय (भागलपुर)—यह पुरानी संस्था है। निजी पक्का भवन है। इसकी ओर से पहले तुलसीकृत रामायण की परीक्षाएँ प्रचलित थीं। अब केवल वाचनालय का संचालन होता है। पुरानी चीजों का कुछ संग्रह अब भी बचा है। श्रीभगवान् चौबे का स्मारक है।

वैदिक पुस्तकालय (पुनपुन, पटना)—सन् १९३६ से स्थापित है। इसका नया भवन बन रहा है। वैदिक साहित्य का संग्रह और प्रचार इसका मुख्य लक्ष्य है। आर्यसमाजी सज्जनों की सहानुभूति और सहायता से उन्नति-पथ पर अग्रसर हो रहा है। किसी खास विषय की पुस्तकों का संग्रह और प्रचार करनेवाले पुस्तकालयों का भी कम महत्त्व नहीं है। ऐतिहासिक, भौगोलिक, पौराणिक, धार्मिक, सामाजिक आदि विषयों के ग्रंथसंग्रह का स्वतंत्र लक्ष्य सर्वथा स्तुत्य है। पर ऐसे पुस्तकालय बहुत ही कम देख पड़ते हैं।

बिहार-विद्यापीठ-पुस्तकालय (सदाकत-आश्रम, दीघा, पटना)—इसमें से बहुत-सी चीजें समय-समय पर पुलिस उठा ले गई जिससे अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ लुप्त हो गई। फिर भी इसमें पिछले बीस-इक्कीस बरसों के राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्ध रखनेवाले साहित्य का बड़ा सुन्दर संग्रह है। राजनीतिक और आर्थिक विषयों की पुस्तकें ही अधिक हैं। स्वदेश दशा दर्शन के साधनों का संग्रह विशेष रूप से है। राष्ट्र की जागृति के इतिहास में काम देनेवाली कई चीजें हैं।

श्री अन्नपूर्णा-पुस्तकालय (हिलसा, पटना)—विक्रम-संवत् १९९२ में श्रीवसन्तपंचमी (मंगलवार) को इसकी स्थापना हुई। पहले इसका नाम सरस्वती पुस्तकालय था। सन् १९३८ ई० में पहली दिसम्बर को स्थानीय जमींदार और रईस श्रीराम बाबू की धर्मपत्नी श्रीमती अन्नपूर्णा देवी के नाम पर इसका

वह सचमुच शुद्ध साहित्यिक संग्रहालय है। उसमें संगृहीत वस्तुओं की रक्षा बड़ी लगन और सुव्यवस्था के साथ की जाती है। कहते हैं कि 'भुवन' जी के पितृव्य के पुस्तकालय (आनन्दपुर-देवढी, दरभंगा) में प्राचीन ग्रन्थों का अपूर्व संग्रह है। मुंगेर नगर के कुछ धनी रईसों को पुस्तक संग्रह का बडा शौक है और उनके घरेलू पुस्तकालय वास्तव में दर्शनीय हैं। बरारी (भागलपुर) का समृद्धिशाली ठाकुर-परिवार भी विद्याव्यसनी और कलाप्रेमी होने के कारण ग्रन्थसंग्रह का विशेष अनुरागी है। दिलीपपुर (शाहाबाद) के रईस महाराजकुमार बाबू दुर्गाशंकरप्रसादसिंह के पास बडा पुराना ग्रन्थभांडार है जिसे वे अपने पूर्वजों की संचित की हुई सर्वोत्तम निधि—सच्ची पैतृक सम्पत्ति—मानते हैं। उस भांडार से कई पुराने ग्रंथ और चित्र उन्होंने बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय मे भी दिये हैं। मिथिला-कालेज को पचास हजार रुपये दान देनेवाले दानवीर बाबू चन्द्रधारी सिंहजी का निजी पुस्तक संग्रहालय भी बहुत प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि उसमें हस्तलिखित संस्कृत-ग्रन्थों का द्रष्टव्य संग्रह है। इसी प्रकार कितने ही वकील-मुख्तार अपनी कानूनी किताबों के साथ कुछ मनोरंजक साहित्य का भी संग्रह रखते हैं। बिहार मे ऐसा कोई नगर नहीं जहाँ दो-चार अच्छे हिन्दी-प्रेमी वकील या कानूनदाँ न हों। उनके घरेलू पुस्तकालय में सिर्फ चुनी-चुनाई हिन्दी-पुस्तकें ही रहती हैं। गीताप्रेस (गोरखपुर) ने कितने ही घरों में धार्मिक पुस्तकालय खुलवा दिये हैं। साहित्य-सेवियों के घर मे पुस्तकालय होना तो स्वाभाविक है। आरा निवासी बाबू ब्रजनन्दनसहाय का निजी हिन्दी पुस्तकालय अनुसन्धानपरायण साहित्यिकों के लिये एक आकर्षण है। उसमें कितनी ही ऐसी पुरानी चीजें हैं जो अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ हैं। महामहोपाध्याय सकलनारायण शर्मा के घर में जो सरस्वती-पुस्तकालय है उसमे संस्कृत-ग्रंथों का अभिनन्दनीय संग्रह है। भलुआही (भागलपुर)-निवासी श्रीअच्युतानन्द दत्त (सहकारी 'बालक'-सम्पादक) द्वारा सन् १६१६ ई० में स्थापित घरेलू पुस्तकालय (इन्दिरा-पुस्तकालय) मे भी संस्कृत, बँगला और हिन्दी के प्राचीन ग्रंथों का बड़ा ही अनमोल संग्रह है। ऐसे-ऐसे छिपे संग्रहालयों का सदुपयोग होने से ही साहित्य की श्रीवृद्धि होगी।

पुस्तकालय-आन्दोलन—बिहार में पुस्तकालयों की संख्या दिन दिन बढ रही है। गत पाँच बरसों मे कई अच्छे पुस्तकालय खुल गये हैं। साप्ताहिक

जिला-हाइस्कूलों के पुस्तकालय—सरकारी जिला-स्कूलों के पुस्तकालय भी कम महत्त्व के नहीं हैं। उनमे अँगरेजी, फारसी, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, बँगला आदि भाषाओं की बहुत-सी ऐसी पुस्तके हैं जो अन्यत्र कहीं कठिनता से मिल सकेंगी। दरभगा, मुजफ्फरपुर, भागलपुर, छपरा, आरा, गया, राँची, हजारीबाग आदि स्थानों के जिला-स्कूल मे हिन्दी की ऐसी अनेक पुस्तकों का पता लगा है जो किसी हिन्दी-पुस्तकालय मे भी नहीं हैं। सरकारी स्कूलों के सिवा अन्य हाइस्कूल भी कितने ऐसे पुराने हैं कि उनके पुस्तकालय मे बहुत-सी ला-पता किताबें पडी हुई हैं, सिर्फ खोज करनेवालों की कमी है। इसी प्रकार कहीं-कहीं मिड्ल स्कूलों और प्राइमरी स्कूलों के भी पुस्तकालय बहुत अच्छी अवस्था मे हैं।

राजाओं के पुस्तकालय—दरभगा राज्य के प्रधान पुस्तकालय का वर्णन पहले किया जा चुका है। श्रीनगर और सूर्यपुरा के राज-पुस्तकालयों की भी चर्चा हो चुकी है। किन्तु बेतिया, हथुआ, टिकारी, अमावाँ, डुमराँव, रामनगर, रामगढ, शिवहर, गढ-बनैली (चम्पानगर) आदि प्रसिद्ध रियासतों मे जो राजकीय पुस्तकालय हैं उनमें अनेक अलभ्य एव मूल्यवान् ग्रथ विद्यमान हैं। कितने ही हस्तलिखित ग्रथ भी हैं, जिनमे उन दरबारों के आश्रित कवियों की रचनाएँ मिल सकती हैं। बेतिया, हथुआ, टिकारी, डुमराँव और बनैली के राज पुस्तकालयों मे ऐसी सामग्री के बहुतायत से मिलने की सभावना है। हर्ष का विषय है कि बेतिया-राज के देशभक्त मैनेजर श्रीबिपिनविहारी वर्मा बारिस्टर के उद्योग से अब राजपुस्तकालय ने नवीन कलेवर धारण कर सार्वजनिक रूप ग्रहण कर लिया है। यदि सभी रियासतों के अधीश्वर अपनी प्रजा के हित के लिये ऐसी ही उदारता दिखावें तो हरएक राजधानी मे ज्ञान की ज्योति जगमगा उठे।

घरेलू पुस्तकालय—बहुत-से रईस, वकील, साहित्यसेवी आदि अपने घरों मे निजी पुस्तकालय रक्खे हुए हैं। ऐसे पुस्तकालयों की सख्या सार्वजनिक पुस्तकालयों से कदाचित् कम न होगी। ऐसे घरू पुस्तकालयों के कुछ स्वामियों ने अपने ग्रथागार का कोई एक नाम भी रख लिया है। सुनने मे आता है कि कुरसेला (पूर्णिया) के सुप्रतिष्ठित जमीन्दार और हिन्दी-प्रेमी रईस रायबहादुर रघुवशनारायणसिंह के पास हिन्दी-पुस्तकों का अत्यन्त सुन्दर और सुसम्पन्न सग्रह है। कृष्णगढ (सुलतानगज, भागलपुर) के कुमार कृष्णानन्दसिंह बहादुर का गगा-पुस्तकालय भी उत्तम ग्रथरत्नों से सुसज्जित है। मुजफ्फरपुर के साहित्यानुरागी रईस श्रीभुवनेश्वरसिंह 'भुवन' का वैशाली-पुस्तकालय तो अपने ढँग का अकेला है।

लाइब्रेरी, अरवल का हिन्दी-पुस्तकालय, औरंगाबाद का सार्वजनिक पुस्तकालय, नवयुवक-पुस्तकालय, हरियापुर, बारसलीगंज, दाऊदनगर का -हिन्दी पुस्तकालय। [३] शाहाबाद जिले में—नवजीवन-पुस्तकालय, भभुआ, सरस्वती-पुस्तकालय, बक्सर, सरस्वती-पुस्तकालय, डुमराँव, हिन्दी पुस्तकालय, ससराम, सनातनधर्म-वर्द्धक पुस्तकालय, अन्धारी, श्रीउमेद-पुस्तकालय, सेमरिया, हिन्दी-पुस्तकालय, गजियापुर, हरप्रसाद दास जैन पब्लिक लाइब्रेरी, आरा। [४] मुजफ्फरपुर नगर और मुफस्सिल में—टाउन-हॉल-लाइब्रेरी, आर्यकुमार-पुस्तकालय, अजीजपुर, सेवक-सदन-पुस्तकालय, करनौती, कुशेश्वर पुस्तकालय, घघरी। [५] चम्पारन जिले में—प्रकाश पुस्तकालय, सोवैया, केसरिया, राजेन्द्र-पुस्तकालय, छतौनी और मितहा, श्रीगंगाधर पुस्तकालय, धनकुटवा, नवयुवक-पुस्तकालय, मोतीहारी, प्रताप-पुस्तकालय, बेतिया, हिन्दी पुस्तकालय, मेहसी, हिन्दी भवन, नरकटियागंज। [६] दरभंगा जिले में—मॉडर्न लाइब्रेरी, लहेरियासराय, नवयुवक-मित्र पुस्तकालय, सिंधिया, सुभाष-भारती भवन पुस्तकालय, रामपुर, हितैषी-पुस्तकालय, हसनपुर, इंडियन क्लब लाइब्रेरी, समस्तीपुर, श्रीमुक्तेश्वर-पुस्तकालय, बेहटा, बेनीपट्टी। [७] भागलपुर नगर और जिले में—गणेश पुस्तकालय, खोसला लाइब्रेरी, श्रीराम-पुस्तकालय, गोपालपुर, जगन्नाथ-पुस्तकालय, अरसी, मारवाड़ी-पुस्तकालय, कहलगाँव, हिन्दी-पुस्तकालय, सुलतानगंज। [८] मुँगेर जिले में—झाझा रेलवे पुस्तकालय, चित्तरंजन पुस्तकालय, लक्खीसराय, इंडियन रेलवे इंस्टीट्यूट लाइब्रेरी, जमालपुर, आनन्द-पुस्तकालय, बीहट, राष्ट्रीय पुस्तकालय, नौगाई, हिन्दी पुस्तकालय, खड़गपुर, साहित्य-सदन, उलाव। [९] पूर्णिया जिले में—श्रीकाली-पुस्तकालय, धलिया, रुपौली, हिन्दी पुस्तकालय, कटिहार, साहित्य-मंदिर, धमदाहा, हिन्दी-भवन, अररिया, हिन्दी-सेवासदन, किशनगंज। [१०] सन्ताल-परगना जिले में—मारवाड़ी-पुस्तकालय, दुमका, सार्वजनिक लाइब्रेरी, देवघर, वैद्यनाथधाम-गुरुकुल -पुस्तकालय, देवघर, हिन्दी हितैषी पुस्तकालय, गोड्डा।

जहाँ तक पता लग सका है, विवरण दिया है। बड़ी कठिनाई से सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं। चेष्टा करने पर भी यथेष्ट सामग्री न मिल सकी। कहीं भ्रम हो, छूट हो, अभाव हो, जैसा बहुत संभव है, तो पाठक मेरी कठिनाइयों का अनुमान कर सन्तोष कर लें। प्रस्तुत सामग्री से ही लेख का मुख्य उद्देश्य सिद्ध है।

'नवशक्ति' ने पुस्तकालय-आन्दोलन को प्रगतिशील बनाने के लिये अपना स्वतंत्र एक पृष्ठ नियमित रूप से सुरक्षित कर दिया। यदि उसकी हर साल की फाइल सिलसिले से देखी जाय तो बिहार के पुस्तकालयों का इतिहास स्पष्ट दृष्टिगोचर हो सकता है। पुस्तकालयों के प्रति जनता मे अनुराग, विश्वास और उत्साह उत्पन्न करने मे 'नवशक्ति' सतत सचेष्ट है और इस दिशा मे उसकी सेवाएँ सचमुच अभिनन्दनीय हैं। पुस्तकालय सम्बन्धी जागृति का अधिकाश श्रेय उसी को है।

सरकारी सहायता का प्रोत्साहन—काग्रेसी मन्त्रिमडल के शासन-काल मे निरक्षरता-निवारण और ग्रामोद्धार के जो आन्दोलन चालू हुए उनसे भी बिहार मे पुस्तकालयों को बडी प्रगति मिली। कितने ही ग्रामीण और नागरिक पुस्तकालयों को काग्रेसी सरकार ने आर्थिक सहायता देकर सजीव एव सुदृढ बनाया। 'पुस्तक-भडार' द्वारा प्रकाशित विविध लोकोपयोगी विषयों की एक-एक पैसेवाली एक सौ पुस्तिकाओं के वितरण से सरकार ने कई पुस्तकालयों को प्रोत्साहन प्रदान किया। देखादेखी जिला-बोर्डों और म्युनिसिपल बोर्डों ने भी पुस्तकालयों की यथाशक्ति सहायता करने मे दिलचस्पी दिखाई। इससे कितने ही पुस्तकालयों को प्रेरणा मिली और बहुतों का अस्तित्व स्थिर हो गया।

जिला पुस्तकालय-सघ—इस नाम की कुछ सस्थाएँ प्रान्त के कुछ जिलों में कायम हो गई हैं। जैसे—पटना, दरभगा, मुजफ्फरपुर आदि। इन सघों द्वारा जिला-भर के पुस्तकालयों के सगठन और सचालन मे नवजीवन का सचार होने की आशा और सभावना है। जिला-साहित्य-सम्मेलन, थाना-साहित्य-सम्मेलन, साहित्य-परिषद्, साहित्य-सघ आदि सस्थाएँ भी कई स्थानों मे स्थापित होकर अपनी सजीवता के लक्षण प्रदर्शित कर रही हैं। इनके उद्योग से नगरों और ग्रामों की जनता मे साहित्यिक अभिरुचि का विकास क्रमश हो रहा है तथा पुस्तकालयों और वाचनालयों के रूप मे उसके प्रमाण भी मिल रहे हैं।

अन्यान्य उल्लेखनीय पुस्तकालय—[१] पटना नगर और जिले के कुछ पुस्तकालय—सेक्रेटेरिएट लाइब्रेरी, थियोसाफिकल लाइब्रेरी, बाँकीपुर, ऐडवोकेट्स लाइब्रेरी, हाइकोर्ट, इडियन इस्टीट्यूट लाइब्रेरी, दानापुर, आर्यसमाज-पुस्तकालय, दानापुर, युवक-सघ-पुस्तकालय, रवाइच, सरस्वती पुस्तकालय, अकौना, पुनपुन, युवक-हितैषी पुस्तकालय, बाहरी धवलपुरा, वेणी-पुस्तकालय, तारणपुर, पुनपुन, श्रीहिन्दी-पुस्तकालय, सिलाव, बिहार हिन्दी-पुस्तकालय, बिहारशरीफ, नागरी-प्रचारक-पुस्तकालय, बाढ़। [२] गया नगर और जिले मे—पब्लिक

लाइब्रेरी, अरवल का हिन्दी पुस्तकालय, औरंगाबाद का सार्वजनिक पुस्तकालय, नवयुवक-पुस्तकालय, दरियापुर, धार्सलीगंज, दाऊदनगर का हिन्दी पुस्तकालय। [३] शाहाबाद जिले में—नवजीवन-पुस्तकालय, भभुआ, सरस्वती-पुस्तकालय, बक्सर, सरस्वती-पुस्तकालय, डुमराँव, हिन्दी-पुस्तकालय, ससराम, सनातनधर्म-वर्द्धक पुस्तकालय, अन्धारी, श्रीउमेद-पुस्तकालय, सेमरिया, हिन्दी पुस्तकालय, गजियापुर, हरप्रसाद दास जैन पब्लिक लाइब्रेरी, आरा। [४] मुजफ्फरपुर नगर और मुफस्सिल में—टाउन-हॉल-लाइब्रेरी, आर्यकुमार-पुस्तकालय, अजीजपुर, सेवक-सदन-पुस्तकालय, करनौती, कुशेश्वर-पुस्तकालय, घघरी। [५] चम्पारन जिले में—प्रकाश पुस्तकालय, सोवैया, केसरिया, राजेन्द्र-पुस्तकालय, छतौनी और मितहा, श्रीगंगाधर-पुस्तकालय, धनउटवा, नवयुवक पुस्तकालय, मोतीहारी, प्रताप-पुस्तकालय, बेतिया, हिन्दी-पुस्तकालय, मेहसी, हिन्दी भवन, नरकटियागंज। [६] दरभंगा जिले में—मॉडर्न लाइब्रेरी, लहेरियासराय, नवयुवक मित्र पुस्तकालय, सिंघिया, सुभाष-भारती भवन पुस्तकालय, रामपुर, हितैषी पुस्तकालय, हसनपुर, इण्डियन क्लब लाइब्रेरी, समस्तीपुर, श्रीमुक्तेश्वर पुस्तकालय, बेहटा, बेनीपट्टी। [७] भागलपुर नगर और जिले में—गणेश पुस्तकालय, खोसला लाइब्रेरी, श्रीराम-पुस्तकालय, गोपालपुर, जगन्नाथ-पुस्तकालय, अरसी, मारवाड़ी-पुस्तकालय, कहलगाँव, हिन्दी-पुस्तकालय, सुलतानगंज। [८] मुँगेर जिले में—झाझा रेलवे पुस्तकालय, चित्तरंजन पुस्तकालय, लक्खीसराय, इंडियन रेलवे इन्स्टीट्यूट लाइब्रेरी, जमालपुर, आनन्द पुस्तकालय, बीहट, राष्ट्रीय पुस्तकालय, नौगाई, हिन्दी-पुस्तकालय, खड़गपुर, साहित्य-सदन, बनाव। [९] पूर्णिया जिले में—श्रीकाली-पुस्तकालय, बलिया, रुपौली, हिन्दी-पुस्तकालय, कटिहार, साहित्य-मंदिर, धमदाहा, हिन्दी-भवन, अररिया, हिन्दी सेवासदन, किशनगंज। [१०] सन्ताल परगना जिले में—मारवाड़ी-पुस्तकालय, दुमका, सार्वजनिक लाइब्रेरी, देवघर, वैद्यनाथधाम-गुरुकुल-पुस्तकालय, देवघर, हिन्दी-हितैषी पुस्तकालय, गोड्डा।

जहाँ तक पता लग सका है, विवरण दिया है। बड़ी कठिनाई से सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं। चेष्टा करने पर भी यथेष्ट सामग्री न मिल सकी। कहीं भ्रम हो, छूट हो, अभाव हो, जैसा बहुत सभव है, तो पाठक मेरी कठिनाइयों का अनुमान कर सन्तोष कर लें। प्रस्तुत सामग्री से ही लेख का मुख्य उद्देश्य सिद्ध है।

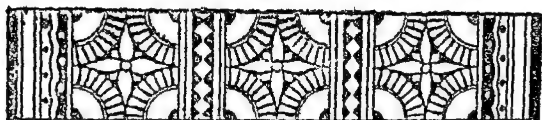

हिन्दी-गद्य-निर्माण में बिहार का हाथ

पंडित सुरेन्द्र झा 'सुमन', साहित्याचार्य, 'मिथिला मिहिर'-सम्पादक, दरभंगा

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'

विद्वानों की योग्यता की कसौटी गद्य-रचना है। पद्य कृत्रिम होता है, गद्य स्वाभाविक। पद्य में, छंदों की आड़ में, कभी-कभी निरङ्कुशता से भी काम ले लिया जाता है, परन्तु गद्य में तो विन्दु-विसर्ग-मात्र की त्रुटि भी अक्षम्य है।

फिर भी, बिहार की साहित्यिक प्रतिभा, सदा से, गद्य की कसौटी पर खरी उतरती आई है। सुप्रसिद्ध संस्कृत-गद्य-ग्रंथ 'कादम्बरी' के रचयिता 'बाणभट्ट' बिहार ही के रत्न थे। उनके समान ललित अलंकृत गद्य का लेखक प्राय किसी भी भाषा में मिलना कठिन है। 'कादम्बरी' का सुधा-धवल गद्य-प्रासाद आज भी ताजमहल की भाँति दर्शनीय है—अनुपम चमत्कारपूर्ण एवं निष्कलङ्क सौन्दर्य का प्रतीक है।

संस्कृत के सिद्धहस्त गद्य-लेखक दार्शनिक-प्रवर वाचस्पति मिश्र की प्रौढ़ लेखनी से प्रसूत वाग्वैदग्ध्यपूर्ण रचना का रसास्वादन उनके भाष्य-ग्रन्थों में किया जा सकता है। इतिहास-प्रसिद्ध कौटिल्य का अर्थशास्त्र भी संस्कृत-गद्य-साहित्य का एक उत्कृष्ट ग्रंथ है। 'पञ्चतन्त्र' के प्रसिद्ध कथाकार और 'हितोपदेश' के मूल संग्रहकर्त्ता विष्णुशर्मा भी बिहारी थे। बाल-सुलभ सरल गद्य लिखने में इन्हें आश्चर्यजनक निपुणता प्राप्त थी। इस तरह संस्कृत-साहित्य के गद्य-निर्माण में भी बिहार का प्रमुख स्थान रहता आया है।

प्राकृत-प्रसूत 'पाली' में भी जो गद्यात्मक जातक-ग्रन्थ मिलते हैं, वे बिहार में ही लिखे गये थे। आगे चलकर भी, जिस समय प्राकृत से उद्भूत प्रान्तीय भाषा-शिशुओं का कंठ कठिनता से फूट पाया था, एक-आध छंद सुनाने के अतिरिक्त भारत की कोई परवर्त्ती भाषा तुतलाकर भी गद्य बोलना नहीं सीख पाई थी, बिहार के एक कोने में, मिथिला के शान्त वातावरण में, आज से सात सौ वर्ष पूर्व,

महाकवि ज्योतिरीश्वर ठाकुर 'वर्णन-रत्नाकर'-जैसा पाण्डित्यपूर्ण गद्य-ग्रन्थ मैथिली में लिख चुके थे। ये महाकवि सुप्रसिद्ध मैथिल-कोकिल विद्यापति के पितामह-भ्राता थे। सौभाग्य से उक्त पुस्तक की ताल-पत्र पर लिखी प्रति नेपाल से प्राप्त कर कलकत्ता की 'एशियाटिक सोसाइटी' ने हाल ही प्रकाशित की है। इस तरह वर्त्तमान प्रान्तीय भाषाओं के गद्य निर्माण में भी बिहार का नाम निस्सन्देह अग्रगण्य है।

साधारणतः प्राचीन साहित्य पद्य-प्रधान है, आधुनिक गद्य-प्रधान। संसार की सभी भाषाओं के इतिहास में प्रायः यही विकास-क्रम देखा जाता है। यदि मुद्रण-कला के आविष्कार से पुस्तक-प्रकाशन सुलभ न होता तो जो गद्य आज महासागर के रूप में लहरा रहा है, छोटी तलैया के रूप में ही उपलब्ध हो पाता। इसीसे आधुनिक हिन्दी के गद्य-साहित्य का विकास (देवनागरी की) मुद्रण कला के उदय के साथ चलता है।

हिन्दी-गद्य का अरुणोदय

[सन् १८०० ई०—१८५० ई०]

हिन्दी-गद्य का प्रथम प्रभात बिहार के क्षितिज पर ही हुआ। एशियाटिक सोसाइटी (कलकत्ता) द्वारा प्रकाशित पंडित सदलमिश्र-रचित 'चन्द्रावती' परिष्कृत हिन्दी-गद्य का पहला ग्रन्थ है*। बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सर्व-

*परिष्कृत हिन्दी गद्य का पहला ग्रंथ है रामप्रसाद निरंजनी का लिखा हुआ 'भाषा योगवासिष्ठ' जो संवत् १७९८ (सन् १७४१ ई०) में ही लिखा जा चुका था। इसके विषय में आचार्य शुक्लजी ने लिखा है—'निरंजनी ने गद्यमय बहुत साफ-सुथरी खड़ी बोली में लिखा। ग्रंथ को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि मुंशी सदासुख और लल्लूलाल से ६२ वर्ष पहले खड़ी बोली का गद्य अच्छे परिमार्जित रूप में पुस्तकें आदि लिखने में व्यवहृत होता था। अबतक पाई गई पुस्तकों में 'योगवासिष्ठ' ही सबसे पुराना है जिसमें गद्य अपने परिष्कृत रूप में दिखाई पड़ता है।" यह निरंजनी महाशय पंजाबी थे। इनके अतिरिक्त मुंशी सदासुखलाल (उपनाम 'सुखसागर') ने भी सन् १८०० के पहले ही श्रीमद्भागवत का हिंदी-अनुवाद किया था, जो 'सुखसागर' नाम से बहुत प्रसिद्ध है, जिसकी भाषा 'साफ-सुथरी 'खड़ी बोली' है, जिसमें 'शुद्ध तत्सम और तद्भव शब्द हैं' और 'विदेशी शब्द एक भी नहीं आया है'। आचार्य शुक्लजी ने स्पष्ट और यथार्थ लिखा है—"जिस समय फोर्ट विलियम कालेज की ओर से उर्दू और हिन्दी गद्य की पुस्तकें लिखने की व्यवस्था हुई उसके पहले हिंदी खड़ी बोली में गद्य की कई पुस्तकें लिखी जा चुकी थीं।"—सम्पादक

प्रथम अध्यक्ष पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने अपने भाषण में कहा था–'बिहार को अपने सदल मिश्र का गर्व है।' उसी आसन से कहे गये राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह के शब्द इस प्रकार हैं—'हम बिहारियों के लिये यह गौरव की बात है कि हिन्दी के सर्वप्रथम गद्य-लेखक हमारे ही प्रान्त के निवासी थे, हिन्दी का इतिहास उनके पक्ष में न्याय करने को तैयार है।' पुन उसी पद से प्रकट किये गये बाबू शिवनंदन सहाय के उद्गार भी सुनिये—"सदलमिश्र तथा लल्लूलालजी के सम-सामयिक एव साथी होने पर भी सदलमिश्र की भाषा लल्लूलालजी की भाषा से कहीं प्रौढ तथा परिमार्जित है और साहित्य का लालित्य भी इनमें विशेष पाया जाता है।"*

उन्नीसवीं शताब्दी का प्रारम्भिक काल था। अँगरेजी शिक्षा की ज्योति फैलने लग गई थी। देशी भाषाओं के नक्षत्र जग रहे थे। व्रजभाषा शृंगारपूर्ण अवश्य थी, पर पद्य के परदे से ही झाँक रही थी। खडी बोली का गद्योदय हो रहा था। फोर्ट विलियम कालेज (कलकत्ता) की वर्नाक्युलर-सोसाइटी के अधिकारियों ने पाठ्य पुस्तकों के लिये गद्य-निर्माण की आवश्यकता समझी। प० सदल मिश्र और प० लल्लूलाल को हिन्दी-गद्य ग्रथ तैयार करने का भार सौंपा गया। सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' के आधार पर 'चद्रावती' † और लल्लूलाल ने श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर 'प्रेमसागर' की रचना की। इन दोनों की भाषा पर यदि विवेचनात्मक दृष्टि डाली जाय तो यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि लल्लूलालजी की भाषा पर जहाँ व्रजभाषा की छाप है, वहाँ सदलमिश्र की भाषा कुछ-कुछ पुरानी शैली की होने पर भी आज-कल की परिष्कृत हिन्दी के बहुत निकट पहुँची हुई है और उससे आँखें बराबर कर सकती है। ‡ उदाहरणार्थ दोनों के गद्य की बानगी नीचे दी जाती है—

लल्लूलाल—"जिस समय घन जो गरजता था सोई तो धौंसा बजता था और वर्ण-वर्ण की घटा घिर आई थी सोई शूरवीर रावत थे तिनके बीच

* 'बिहार के कथाकार' नामक लेख इसी ग्रथ में अन्यत्र प्रकाशित है। उसके आरम्भिक अश में पण्डित सदलमिश्र के विषय में विशेष विवरण पढिये।—सम्पादक

† यह ग्रथ विक्रम सवत् १८६० (सन् १८०३ ई०) में लिखा गया था।—सम्पादक

‡ "लल्लूलाल के प्रेमसागर से सदलमिश्र के नासिकेतोपाख्यान की भाषा अधिक पुष्ट और सुन्दर है। प्रेमसागर में भिन्न भिन्न प्रयोगों के रूप स्थिर नहीं देख पड़ते। सदलमिश्र में यह बात नहीं है।"—श्यामसुन्दरदास

बिजली की दमक शस्त्र की सी चमकती थी, धगपाँत ठौर-ठौर ध्वजा सी फहराय रही थी।"

सदल मिश्र—"उस वन मे व्याघ्र और सिंह के भय से यह अकेली कमल के समान चचल नेत्रवाली व्याकुल हो ऊँचे स्वर से रो-रो कहने लगी कि अरे विधना तैंने यह क्या किया और निछुरी हुई हिरनी के समान चारों ओर देखने लगी।"

इशाअल्ला खाँ और मुन्शी सदासुख लाल सरकारी क्षेत्र से बाहर ही रहकर गद्य-रचना में प्रवृत्त हुए थे। तो भी उक्त दोनों गद्यकारों के समान ही ये दोनों भी गद्यशैली के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। खाँ साहब की भाषा यद्यपि मँजी हुई और मुहावरेदार है तथापि उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों का पूर्णतया बहिष्कार किया है, उनकी भाषा पर उर्दू की छाप है। और, मुन्शीजी की शैली पडिताऊ है तथा उसमे कितने ही संस्कृत शब्दों का रूप विकृत कर दिया गया है। किन्तु इन दोनों की तुलना मे भी, विचारपूर्वक देखने पर, प० सदल मिश्र की भाषा का शब्द-सगठन और वाक्य विन्यास आधुनिक हिन्दी के निकटतम है। बाबू श्यामसुन्दर दास और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी हिन्दीगद्य के प्रतिष्ठापक उपर्युक्त चार लेखकों में सदासुख लाल और सदल मिश्र की भाषा को ही 'अधिक उपयुक्त' माना है तथा उसमें 'आधुनिक हिन्दी का पूरा-पूरा आभास' पाया है।

हिन्दी-गद्य का प्रारम्भिक युग मंदगामी था। सदल मिश्र आदि के बाद हिन्दी-भाषी प्रान्तों मे पद्य की बहुल रचना होते हुए भी गद्य-रचना की स्वल्पता ही थी। फिर भी बिहार में गद्य निर्माण का काम चालू था। यहाँ के मिशनरी पादरियों ने, धर्म-प्रचार के निमित्त, हिन्दी का आश्रय लिया। १८०६ ई० में इजिल का अनुवाद 'नये धर्म के नियम' नाम से छपा। सन् १८१८ ई० मे बाइबिल का हिन्दी अनुवाद पूरा होकर प्रकाशित हुआ। इन पादरियों के प्रचार-केन्द्र थे मुँगेर* और भागलपुर। इनलोगों का 'प्रधान अड्डा' था सिरामपुर (बंगाल)। इनका यह हिन्दी-गद्य-निर्माण, प्रचार-मूलक होने पर भी, सर्वथा श्लाघ्य माना जायगा और बिहारी ही नहीं, अन्यप्रान्तवासी भी इसके लिये इनके कृतज्ञ रहेंगे।

* मुँगेर के पादरी जॉन साहब कविता भी करते थे, हिन्दी में उनकी 'मुक्ति-मुक्तावली' प्रकाशित है। देखिये बि० प्रा० हिं० सा० स० का प्रथम भाषण। —संपादक

हिन्दी-गद्य का सुप्रभात

[सन् १८५०—१६०० ई०]

उन्नीसवीं सदी का मध्य-भाग हिन्दी-गद्य की उन्नति की दृष्टि से विशेष महत्त्व का नहीं प्रतीत होता। कचहरियों में उर्दू की प्रधानता थी। पाठ्य पुस्तकों में भी अरबी-फारसी के शब्दों के बोझ से हिन्दी दबी पड़ी थी। इस दिशा में राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिन्द' भाषा-सुधार का प्रयत्न कर रहे थे। पर हिन्दी के पक्षपाती होते हुए भी वे उर्दू का मोह न छोड़ सके। सन् सत्तावन के गदर से एक साल पहले वे युक्तप्रांत के शिक्षा-विभाग में इन्स्पेक्टर नियुक्त हुए थे। उन्हीं की लिखी पाठ्य पुस्तकें लगभग बीस बरसों तक बिहार के स्कूलों में भी चलती रहीं। पिनकाट साहब की लिखी 'बालदीपक' नामक पाठ्य-पुस्तक भी, जो चार भागों में खड्गविलास प्रेस (पटना) से निकली थी, बिहार के स्कूलों में पढ़ाई जाती थी। किन्तु जब भूदेव मुखोपाध्याय के उद्योग से बिहार में पाठ्य पुस्तकों की रचना होने लगी तब बिहार के शिक्षाक्रम में भी परिमार्जित हिन्दी-गद्य की पुस्तकों का साहाय्य प्राप्त होने लगा।

इस क्षेत्र में भूदेव मुखोपाध्याय के प्रयत्न चिरस्मरणीय हैं। शिक्षा विभाग के इन्स्पेक्टर के पद पर वे बिहार में १८७१ के लगभग आये। हिन्दी की दुर्दशा पर उनकी दृष्टि गई। उनके सत्प्रयत्न से विशुद्ध बोलचाल की हिन्दी में गद्य-ग्रंथ लिखे जाने लगे। फलस्वरूप राजा शिवप्रसाद की उर्दू-मिश्रित पुस्तकों के बदले बिहार में शुद्ध हिन्दी की पाठ्य पुस्तकों का निर्माण धड़ल्ले से होने लगा। सन् १८८० में भूदेव बाबू की प्रेरणा से 'बिहार-दर्पण' नाम की पुस्तक बाबू रामदीन सिंह ने प्रस्तुत की, जिसमें बिहार के तेइस महापुरुषों की जीवनियाँ हैं। उसी समय, बिहार में हिन्दी की प्राणप्रतिष्ठा करनेवाले पं० केशवराम भट्ट (बिहारशरीफ-निवासी) ने 'हिन्दी-व्याकरण' लिखा, जिसको प्रामाणिक मानकर हिन्दी-ग्रंथों का प्रणयन होने लगा। गणपति सिंह ने 'भूगोल', बंगाली विद्वान् गोविन्द बाबू ने 'पुरावृत्त-सार', लक्ष्मण-लाल ने 'क्षेत्रमिति', रामप्रकाश लाल ने 'भूतत्त्व-प्रदीप', सीतारामशरण भगवान-प्रसाद (श्रीरूपकलाजी) ने 'शरीर-पालन' और 'तन-मन की स्वच्छता', श्याम-बिहारी लाल ने 'देशी लेखा-जोखा', सञ्जीवन लाल ने 'ज्यामिति' आदि विविध विषयों की पाठ्य पुस्तकें गद्य में लिखीं। १८७३ ई० में मुन्शी राधालाल ने 'शब्दकोष' तैयार किया जो सरकार-द्वारा प्रशंसित एवं पुरस्कृत हुआ। यह कोष

और उपर्युक्त भट्टजी का व्याकरण—दोनों पुस्तकें हिन्दी में अपने विषय की पहली, सबसे पहली, पोथी हैं। इसी तरह मोहनप्रसाद सिंह ने 'भाषा-सार' नाम की पुस्तक लिखी, जिसका सर्वत्र आदर हुआ। बाद तो प० बलदेव राम की 'विज्ञान शिक्षा' एव 'नीति प्रवाह' तथा बाबू गोकर्ण सिंह की 'विज्ञान-सोपान' आदि पुस्तकें खूब चलीं। इस प्रकार थोड़े ही दिनों के प्रयास से, शिक्षा के क्षेत्र में, बिहार ने हिन्दी के पैर जमा दिये। खेद है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने ग्रथ (हिन्दी-साहित्य का इतिहास) में इस प्रसग की चर्चा तक नहीं की है। युक्तप्रान्त में राजा शिवप्रसाद और पजाब में बाबू नवीनचन्द्र सेन द्वारा किये गये शिक्षा सम्बन्धी कार्यों के साथ भूदेव बाबू तथा उनके समय के लेखकों की सेवा का उल्लेख न करके शुक्लजी ने बिहार की उपेक्षा की है। यदि वे 'सरस्वती'* में भूदेव बाबू की जीवनी पढ़ गये होते तो कदापि ऐसी उपेक्षा न करते।

जो हो, उसी समय, १८७२ ई० में, 'बिहारबन्धु' नाम का हिन्दी-पत्र निकला, जिसके द्वारा लगातार तीस बरसों तक प० केशवराम भट्ट ने हिन्दी की शैली परिमार्जित करने का अथक प्रयत्न किया। जो पौधा बीसवीं सदी के प्रारम्भ में 'सरस्वती' ने उगाया उसका बीज पचीस साल पहले ही भट्टजी ने बोया, सींचा और पनपाया था। भट्टजी बाबू हरिश्चन्द्र के समकालीन थे। वे 'भारतेन्दु के साथ हिन्दी की उन्नति में योग देनेवालों में विशेष उल्लेख योग्य हैं'। हरिश्चन्द्र की 'कला' उन दिनों हिन्दी-साहित्य-गगन को उद्भासित कर रही थी। भारतेन्दु की 'कला' की ओर साहित्यिक चकोरों के सतृष्ण लोचन लगे हुए थे। उस समय बिहार ने हिन्दी की आराधना में स्पृहणीय तत्परता दिखाई। इस साहित्यिक जागृति के परिणाम-स्वरूप बिहार के कोने-कोने से पत्र-पत्रिकाएँ निकलने लगीं। 'भारत-रत्न', 'हरिश्चन्द्र-कला', 'पीयूष-प्रवाह', 'सारन-सरोज', 'चम्पारन-चन्द्रिका', 'क्षत्रिय-पत्रिका', 'खत्री-हितैषी' आदि पत्र कार्यक्षेत्र में उतरकर गद्य-निर्माण में जुट पड़े। इनमें 'कला', 'प्रवाह' और 'चन्द्रिका' तथा 'पत्रिका' का गद्य ही आदर्श मानने योग्य है।

हरिश्चन्द्र-काल की साहित्यिक प्रगति में बिहार का योग-दान

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी का गद्य-साहित्य बाबू हरिश्चन्द्र की प्रचेष्टा से अनुप्राणित हुआ। दो दशकों में ही भारतेन्दु ने गद्य-पद्य की धारा पलट दी—

* देखिये—'सरस्वती', भाग १३, अंक ८, (अगस्त, १९१२), पृष्ठ ४१८ में हिन्दीहितैषी स्वर्गीय श्रीभूदेव मुखोपाध्याय, सी० आई० ई०।
—ले०

युगान्तर उपस्थित कर दिया—हिन्दी-वाटिका में नव वसन्त बसा दिया। यह समय हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे 'हरिश्चन्द्र-युग' कहा जाता है।

बाबू हरिश्चन्द्र के इस साहित्योत्थान के महायज्ञ मे बिहारी लेखकों का होतृवर्ग भी सम्मिलित रहा। बाबू रामदीन सिंह के द्वारा न केवल भारतेन्दु की रचनाओं के प्रकाशन का सर्वप्रथम श्रेय बिहार को मिला, अपितु बिहारी लेखकों के सहयोग से हिन्दी के उत्थान का सकल्प भी बहुत अशों मे पूरा हुआ। प० केशवराम भट्ट ने नाटक, निबन्ध, व्याकरण, आलोचना एव पत्र सम्पादन के द्वारा भारतेन्दु-युग में बिहार को सदा अग्रसर रक्खा। प० विजयानन्द त्रिपाठी 'श्रीकवि' भारतेन्दु के प्रिय मित्रों मे थे। इन्होंने भी उस समय साहित्य के निर्माण मे पूरा भाग लिया। ये उद्भट वैयाकरण, दार्शनिक, पत्रकार, सुवक्ता, सुकवि और नाटककार थे। महाकवि भास और कालिदास के कई सस्कृत-नाटकों और काव्यों का भी इन्होंने हिन्दी-अनुवाद किया। 'महा अधेर नगरी' इनका एक उत्तम हास्य-प्रधान नाटक है। इनकी सस्कृत-सपुटित शैली बडी प्राञ्जल होती थी। ये बहुभाषाभिज्ञ और सस्कृत के भी उत्कृष्ट कवि थे। इन के अप्रकाशित 'प्रेम-साम्राज्यादर्श' नाटक मे सस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी, मागधी आदि भाषाओं का सफल प्रयोग देखकर चकित रह जाना पडता है। काशी के भारतेन्दु-कालीन हिन्दी-साप्ताहिक 'भारत-जीवन' इन्हीं की प्रेरणा से निकला था और उसमे ये बराबर गद्य-पद्य लिखा करते थे। भारतेन्दु की 'कविवचनसुधा' पत्रिका मे भी इनकी अनेक गद्य-पद्य-रचनाएँ छपी हैं। सस्कृत की प्रसिद्ध नाटिका 'रत्नावली' का हिन्दी अनुवाद भारतेन्दु ने अधूरा छोड दिया था, उसे इन्होंने ही पूरा किया था। अखिल-भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के दशम अधिवेशन (पटना) के स्वागताध्यक्ष के पद से इन्होंने जो अपना मुद्रित भाषण पढा था, वह इनके पांडित्य और परिष्कृत गद्य का सुन्दर नमूना है। इनकी गद्यरचनाएँ बहुत उच्च कोटि की हैं।

बिहार के वयोवृद्ध साहित्यसेवी चम्पारन-निवासी प० चन्द्रशेखरधर मिश्र ने हरिश्चन्द्रजी के जीवनकाल मे ही सयुक्तप्रान्त के पूर्वी और बिहार के पश्चिमी जिलों में अपने खर्च से घूम-घूमकर अनेक भारतेन्दु-सभाएँ और साहित्यिक सस्थाएँ स्थापित की थीं। आपके द्वारा हिन्दी की ढाई सौ सस्थाएँ उन दिनों स्थापित हुई थीं। इसमें आपने अपनी जमीन्दारी से हजारों रुपये खर्च किये थे। भारतेन्दुजी से इस विषय में आपको पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था और आप कई बार उनसे मिलकर हिन्दी-प्रचार के विषय मे परामर्श कर चुके थे। ईश्वर की दया से आप

दूर करने के पक्षपाती थे। नीचे के उद्धरण से आपकी शैली और विचारधारा का परिचय मिल सकता है—

"जैसे पतित-पावनी कलकल नादिनी परम सुखदायिनी पवित्र सलिला गंगा हिमालय की गह्वर-गुहा से गंगोत्री की राह बहिर्मुखी होकर मार्गस्थ भिन्न भिन्न स्थानों में और भिन्न-भिन्न समयों पर भाँति-भाँति की मनोहर छवि धारण करती, कहीं चौड़ी, कहीं पतली, कहीं सीधी, कहीं टेढ़ी धारा से प्रवाहित होती, यमुना आदि बड़ी और छोटी सहायक नदियों को अंक में लगाती और जहाँ-तहाँ निज अगोह्वय नहरों की बहार दिखलाती, बंगप्रदेश में गंगासागर के समीप द्विधारा प्रवाहिणी होकर जलनिधि में प्रवेश करती है, उसी प्रकार हिन्दी भाषा संस्कृत की गंभीर गुफा से प्राकृत द्वारा समुद्भूत होकर समय समय पर परिवर्तित छटा प्रदर्शित करती, ठौर-ठौर विविध नामों से विख्यात होती और अनेक प्रादेशिक तथा प्रान्तिक भाषाओं को अपने में सम्मिलित करती, परिपक्वता-सागर की समीप-वर्त्तिनी होने पर, हिन्दी तथा हिन्दुस्तानी दो प्रत्यक्ष स्वरूपों में शोभायमान हो रही है, जो दोनों वस्तुत एक ही हैं—यदि आग्रह तथा पक्षपात की दृष्टि से नहीं देखी जायँ।"

दरभंगा निवासी प० भुवनेश्वर मिश्र भी इस काल के बड़े प्रसिद्ध लेखक हुए हैं। आप भारतेन्दु के घनिष्ठ मित्र थे। आपके यहाँ आकर भारतेन्दु आतिथ्य ग्रहण कर चुके हैं। आपने हिन्दी की बहुमूल्य सेवा की। आपका 'घराऊ घटना' मौलिक उपन्यास गृहस्थ-जीवन का सजीव चित्र है। इसकी भाषा फड़कती हुई और शैली चित्त लुभानेवाली है।

भूतपूर्व सूर्यपुराधीश राजा राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह से भी भारतेन्दुजी की घनी मैत्री थी। भारतेन्दुजी सूर्यपुरा-दरबार में पधारे थे और उनका यथेष्ट सत्कार भी हुआ था। राजा साहब ने कवीन्द्र रवीन्द्र के 'चित्रांगदा' नाटक का अनुवाद तत्सम ललित गद्य में किया है। आप कवित्वपूर्ण सुपुष्ट गद्य के सिद्धहस्त लेखक थे। नाटककार और सुकवि भी थे। आपकी सचित्र ग्रन्थावली हिन्दी में एक दर्शनीय ग्रंथ है।

इसी समय धर्म-समाज-विद्यालय (मुजफ्फरपुर) के अध्यापक प० गोपीनाथ कुमर ने सरल हिन्दी-गद्य में 'रामचरितेन्दु-प्रकाश' नामक सुन्दर ग्रंथ लिखकर प्रकाशित किया। यह ग्रन्थ विशुद्ध हिन्दी का नमूना है। इसमें एक भी विदेशी शब्द नहीं आने पाया है।

(पृष्ठ ५३९)

स्वर्गीय बाबू शिवनन्दन सहाय
आरा निवासी

स्वर्गीय पं० विजयानन्द त्रिपाठी
(शाहाबाद)

(पृष्ठ ५३८)

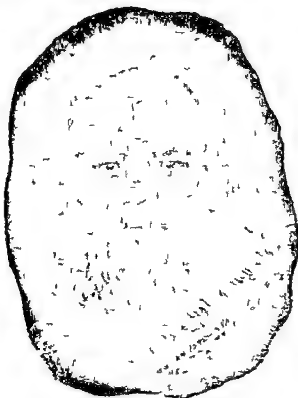

(पृष्ठ ५४२)

(पृष्ठ ५४४)

स्व० साहित्याचार्य पं० रामावतार
शर्मा एम० ए०, महामहोपाध्याय
छपरा
(पृष्ठ १४५, ५४२)

स्वर्गीय प्रो० अक्षयवट मिश्र
'विप्रचन्द्र', डुमराँव (शाहाबाद)

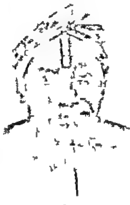

स्वर्गीय पं० जगन्नाथप्रसाद
चतुर्वेदी, मलयपुर (मुँगेर)

दूर करने के पक्षपाती थे। नीचे के उद्धरण से आपकी शैली और विचारधारा का परिचय मिल सकता है—

"जैसे पतित-पावनी कलकल नादिनी परम सुखदायिनी पवित्र सलिला गंगा हिमालय की गह्वर-गुहा से गंगोत्री की राह बहिर्मुखी होकर मार्गस्थ भिन्न भिन्न स्थानों में और भिन्न-भिन्न समयों पर भाँति-भाँति की मनोहर छवि धारण करती, कहीं चौड़ी, कहीं पतली, कहीं सीधी, कहीं टेढ़ी धारा से प्रवाहित होती, यमुना आदि बड़ी और छोटी सहायक नदियों को अंक में लगाती और जहाँ-तहाँ निज अंगोद्भव नहरों की बहार दिखलाती, बंगप्रदेश में गंगासागर के समीप द्विधारा प्रवाहिणी होकर जलनिधि में प्रवेश करती है, उसी प्रकार हिन्दी भाषा संस्कृत की गंभीर गुफा से प्राकृत द्वारा समुद्भूत होकर समय समय पर परिवर्तित छटा प्रदर्शित करती, ठौर-ठौर विविध नामों से विख्यात होती और अनेक प्रादेशिक तथा प्रान्तिक भाषाओं को अपने में सम्मिलित करती, परिपक्वता-सागर की समीपवर्तिनी होने पर, हिन्दी तथा हिन्दुस्तानी दो प्रत्यक्ष स्वरूपों में शोभायमान हो रही है, जो दोनों वस्तुत एक ही हैं—यदि आग्रह तथा पक्षपात की दृष्टि से नहीं देखी जायँ।"

दरभंगा निवासी प० भुवनेश्वर मिश्र भी इस काल के बड़े प्रसिद्ध लेखक हुए हैं। आप भारतेन्दु के घनिष्ठ मित्र थे। आपके यहाँ आकर भारतेन्दु आतिथ्य ग्रहण कर चुके हैं। आपने हिन्दी की बहुमूल्य सेवा की। आपका 'घराऊ घटना' मौलिक उपन्यास गृहस्थ-जीवन का सजीव चित्र है। इसकी भाषा फड़कती हुई और शैली चित्त लुभानेवाली है।

भूतपूर्व सूर्यपुराधीश राजा राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह से भी भारतेन्दुजी की घनी मैत्री थी। भारतेन्दुजी सूर्यपुरा-दरबार में पधारे थे और उनका यथेष्ट सत्कार भी हुआ था। राजा साहब ने कवीन्द्र रवीन्द्र के 'चित्रांगदा' नाटक का अनुवाद तत्सम ललित गद्य में किया है। आप कवित्वपूर्ण सुपुष्ट गद्य के सिद्धहस्त लेखक थे। नाटककार और सुकवि भी थे। आपकी सचित्र ग्रन्थावली हिन्दी में एक दर्शनीय ग्रंथ है।

इसी समय धर्म-समाज-विद्यालय (मुजफ्फरपुर) के अध्यापक पं० गोपीनाथ कुमर ने सरल हिन्दी-गद्य में 'रामचरितेन्दु-प्रकाश' नामक सुन्दर ग्रंथ लिखकर प्रकाशित किया। यह ग्रन्थ विशुद्ध हिन्दी का नमूना है। इसमें एक भी विदेशी शब्द नहीं आने पाया है।

इसी युग में दिलीपपुर (शाहाबाद) के रईस महाराजकुमार बाबू नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह 'ईश' ने 'धर्म प्रदर्शनी' नामक एक अपूर्व गद्यग्रन्थ लिखा था, जो सम्राट् सप्तम एडवर्ड के राज्याभिषेक के अवसर पर छपकर सम्राट् को समर्पित हुआ था। ऐसा विद्वत्तापूर्ण धर्मनीति ग्रन्थ आज भी हिन्दी में कोई नहीं है।

आरा के शौकीन रईस बाबू जैनेन्द्रकिशोर ने 'कमलिनी', 'मनोरमा', 'सुलोचना', 'सोमा सती', 'चुड़ैल', 'परख' आदि कई गद्य-पुस्तकें लिखी थीं, जो छपने के उपरान्त बहुत लोकप्रिय हुईं। भारतेन्दु ने जिस प्रकार अनेक नाटक लिखकर उनके अभिनय द्वारा हिन्दी प्रचार को उत्तेजन दिया था, उसी प्रकार इन्होंने भी कई नाटक लिखकर तथा अपने द्रव्य से नाटक-मंडली खोलकर जनता में साहित्यानुराग उत्पन्न किया था। ये आरा की नागरी-प्रचारिणी सभा के संस्थापकों में थे। गद्य-रचना के समान कविता करने में भी बड़े कुशल थे।

इसके अतिरिक्त डुमरॉव निवासी पं० नकछेदी तिवारी ('अजान' कवि), दीनदयाल सिंह, लालदास (दरभंगा), मठुकपुर (शाहाबाद) निवासी मुन्शी ब्रजबिहारीलाल आदि भी भारतेन्दु के समय में ही सुन्दर गद्य-रचना कर गये हैं। तिवारीजी की 'कविकीर्त्तिकलानिधि' और मुन्शीजी की 'बालबोध' आदि पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिनसे उनकी स्वच्छ गद्यशैली की सुघराई प्रकट होती है।

यही नहीं, इस युग में साहित्य-सेवा की भावना झोपड़ी से महल तक अपना प्रभाव दिखा रही थी। दरभंगा के महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह साहब के राज्य-काल में भी हिन्दी के कई गद्य-ग्रंथ लिखे गये। मैथिली के साथ हिन्दी के भी विकास में यहाँ से अच्छी सहायता मिली। इसी प्रकार गिद्धौर, बनैली, श्रीनगर, टेकारी, सूर्यपुरा, बेतिया, हथुआ, डुमरॉव आदि रियासतों के दरबारों से भी हिन्दी-साहित्य के विकास में बड़ी सहायता मिली। बेतिया, डुमरॉव, सूर्यपुरा आदि से भारतेन्दुजी का साहित्यिक सम्बन्ध बराबर बना रहा।

हाँ, महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह की चर्चा के बिना भारतेन्दु-काल में बिहार-द्वारा की गई हिन्दी सेवा अधूरी रह जायगी। वे 'भारतेन्दु के सहयोगियों में' थे। उनके 'बिहार दर्पण' नामक गद्यग्रन्थ को भारतेन्दु ने 'हिन्दी में अपने विषय और ढँग का सबसे पहला ग्रंथ' कहा था। उन्होंने न केवल भारतेन्दु की रचनाओं को प्रकाश में लाने की स्तुत्य योजना की, अपितु अनेक पत्र-पुस्तकों का प्रकाशन कर अपनेको हिन्दी-साहित्य के इतिहास में चिरस्मरणीय बना डाला। उनकी भाषा प्रौढ़ तथा सर्वबोधगम्य होती थी। इसका प्रमाण उनका

पृष्ठ ५५६

(भागलपुर-जिला-निवासी)
पंडित लक्ष्मीकान्त झा, आइ०सी०एस०

पृष्ठ ५७४

सारन-जिला नि
डाक्टर सत्यनार
पी एच० डी०

श्रीलक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु'
एम० ए० (पूर्णिया)
(पृष्ठ ५५२)

भागलपुर-जिला निवासी
साहित्याचार्य 'मग'

प्रोफेसर माहेश्वरी
'महेश', एम० ए० (भा

इसी युग में दिलीपपुर (शाहाबाद) के रईस महाराजकुमार बाबू नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह 'ईश' ने 'धर्म प्रदर्शो' नामक एक अपूर्व गद्यग्रन्थ लिखा था, जो सम्राट् सप्तम एडवर्ड के राज्याभिषेक के अवसर पर छपकर सम्राट् को समर्पित हुआ था। ऐसा विद्वत्तापूर्ण धर्मनीति ग्रन्थ आज भी हिन्दी मे कोई नहीं है।

आरा के शौकीन रईस बाबू जैनेन्द्रकिशोर ने 'कमलिनी', 'मनोरमा', 'सुलोचना', 'सोमा सती', 'चुड़ैल', 'परख' आदि कई गद्य-पुस्तकें लिखी थीं, जो छपने के उपरान्त बहुत लोकप्रिय हुईं। भारतेन्दु ने जिस प्रकार अनेक नाटक लिखकर उनके अभिनय द्वारा हिन्दी-प्रचार को उत्तेजन दिया था, उसी प्रकार इन्होंने भी कई नाटक लिखकर तथा अपने द्रव्य से नाटक-मडली खोलकर जनता मे साहित्यानुराग उत्पन्न किया था। ये आरा की नागरी-प्रचारिणी सभा के सस्थापकों मे थे। गद्य-रचना के समान कविता करने मे भी बड़े कुशल थे।

इसके अतिरिक्त डुमरॉव-निवासी पं० नकछेदी तिवारी ('अजान' कवि), दीनदयाल सिंह, लालदास (दरभगा), मटुकपुर (शाहाबाद) निवासी मुन्शी ब्रजबिहारीलाल आदि भी भारतेन्दु के समय मे ही सुन्दर गद्य-रचना कर गये हैं। तिवारीजी की 'कविकीर्तिकलानिधि' और मुन्शीजी की 'बालबोध' आदि पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिनसे उनकी स्वच्छ गद्यशैली की सुघराई प्रकट होती है।

यही नहीं, इस युग मे साहित्य-सेवा की भावना झोपड़ी से महल तक अपना प्रभाव दिखा रही थी। दरभगा के महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह साहब के राज्य-काल में भी हिन्दी के कई गद्य-ग्रथ लिखे गये। मैथिली के साथ हिन्दी के भी विकास में यहाँ से अच्छी सहायता मिली। इसी प्रकार गिद्धौर, बनैली, श्रीनगर, टेकारी, सूर्यपुरा, बेतिया, हथुआ, डुमरॉव आदि रियासतों के दरबारों से भी हिन्दी-साहित्य के विकास मे बडी सहायता मिली। बेतिया, डुमराँव, सूर्यपुरा आदि से भारतेन्दुजी का साहित्यिक सम्बन्ध बराबर बना रहा।

हाँ, महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह की चर्चा के बिना भारतेन्दु-काल में बिहार-द्वारा की गई हिन्दी-सेवा अधूरी रह जायगी। वे 'भारतेन्दु के सहयोगियों में' थे। उनके 'बिहार-दर्पण' नामक गद्यग्रन्थ को भारतेन्दु ने 'हिन्दी में अपने विषय और ढँग का सबसे पहला ग्रन्थ' कहा था। उन्होंने न केवल भारतेन्दु की रचनाओं को प्रकाश मे लाने की स्तुत्य योजना की, अपितु अनेक पत्र-पुस्तकों का प्रकाशन कर अपनेको हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे चिरस्मरणीय बना डाला। उनकी भाषा प्रौढ तथा सर्वबोधगम्य होती थी। इसका प्रमाण उनका

'बिहार-दर्पण' प्रत्यक्ष है, जिसके दो संस्करण, उनके जीवन-काल में ही, दो-तीन साल के अन्दर ही, हुए थे—उस युग मे भी! उन्होंने सच्ची लगन के साथ कर्त्तव्य-पालन करके अपनेको भारतेन्दु का अभिन्न एव अनन्य मित्र प्रमाणित कर दिया। भारतेन्दु के अस्त हो जाने के बाद अनेक वर्षों तक भारतेन्दु की साहित्यिक कीर्त्ति को अमर बनाने के प्रयत्न मे दत्तचित्त रहे।

इस प्रकार यह निर्विवाद सिद्ध है कि २०वीं शताब्दी के पूर्वकाल मे बिहार ने हिन्दी-गद्य-निर्माण में जो योग-दान किया वह आदर एव गौरव की वस्तु है। अन्य प्रान्तों की तुलना मे इसकी सेवा अद्वितीय है, इस बात को कोई अस्वीकृत नहीं कर सकता।

द्विवेदी-युग मे बिहार की साहित्यिक प्रगति

बीसवीं सदी के आरम्भ तक हिंदी के प्रति लोक-रुचि जागृत हो चुकी थी। सन् १९०० ई० मे इडियन प्रेस (प्रयाग) से 'सरस्वती' निकली। सौभाग्यवश १९०३ ई० से उसका सम्पादन-सूत्र आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के यशस्वी हाथों मे आया। फलस्वरूप 'सरस्वती' के उद्योग एव सहयोग से हिन्दी-साहित्य का रुद्ध प्रवाह शत-शत धाराओं मे फूट निकला। आचार्य द्विवेदीजी की अमृतमयी रससिद्ध लेखनी ने हिन्दी के गद्य पद्य-क्षेत्रो में अभिनव क्रान्ति उपस्थित कर दी। हिन्दी-गद्य मे सजीवता, सुकरता, सुस्थुता, सुरुचि और सामयिकता लाने में द्विवेदीजी ने अथक और अकथ परिश्रम किया, जिसमें उन्हें उल्लेखनीय सफलता भी मिली। लगातार १५ बरसों तक वे गद्य-शैली के सॅवारने मे ही लगे रहे। हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे यह समय 'द्विवेदी-युग' के नाम से विख्यात हुआ। सदासुखलाल, सदल मिश्र, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, केशवराम भट्ट, रामदीनसिंह, प्रताप-नारायण मिश्र, प्रेमघनजी, बालकृष्ण भट्ट, अम्बिकादत्त व्यास आदि की सींची और सजाई हुई हिन्दी-गद्य-वाटिका इस समय लहलहा उठी। पर इस नव वसन्त के आह्वान मे बिहार भी अग्रदूत का काम कर रहा था।

राजा कमलानन्दसिंह* द्विवेदी-युग के सर्वप्रथम बिहारी लेखक थे, जिनके साथ 'सरस्वती' और द्विवेदीजी का यावज्जीवन बहुत ही घनिष्ठ सम्पर्क रहा।

* एक लेख आपके संस्मरण के रूप में इसी ग्रंथ में अन्यत्र छपा है। 'आचार्य द्विवेदीजी के पत्र' नाम से भी इसी में है। दोनों के पढने से स्पष्ट मालूम होगा कि द्विवेदीजी से आपका कैसा घना सम्बन्ध था।

आपने बंग-साहित्य-सम्राट् बंकिम बाबू के सर्वतोऽधिक प्रसिद्ध 'आनन्द-मठ' उपन्यास का सुन्दर अनुवाद किया था। आपकी गद्य रचनाएँ 'सरस्वती' में भी प्रायः छपती थीं।

द्विवेदी-युग के दूसरे सर्वश्रेष्ठ बिहारी लेखक थे साहित्याचार्य प० रामावतार शर्मा। ये मौलिक विचारों के विद्वान् गद्य-लेखक थे। जब कभी इनके लेख निकलते, 'सरस्वती' गम्भीराशया हो जाती। उसी प्रकार 'सरस्वती' में छपे महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा के दार्शनिक निबंध हिन्दी-संसार के लिये वरदान-स्वरूप होते थे। बिहार के गौरवालंकार इन दोनों साहित्य महारथियों से द्विवेदीजी आग्रह-पूर्वक लेख लिखवाते थे।

प० सकलनारायण शर्मा, जिनकी व्याकरण-कसौटी पर कसी भाषा खरा सोने के समान दमकती और कीमती होती है, इस युग के धुरन्धर बिहारी लेखक हैं। आप संस्कृत के प्रकांड विद्वान, सुवक्ता और हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ पत्रकार तथा व्याख्याता हैं। हिन्दी-गद्य निर्माताओं में आपका स्थान महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि आप 'सरस्वती' में लेख नहीं लिखा करते थे, तथापि उसके क्षेत्र से बाहर रहकर भी वही काम कर रहे थे जो 'सरस्वती' करती थी, अर्थात् व्याकरण-संगत भाषा लिखने की परिपाटी स्थापित करने में आपकी समर्थ लेखनी बड़ी सावधानता के साथ तत्पर थी। आपका एक-एक लेख भाषा-तत्त्व तथा शब्दशास्त्र-विचार की दृष्टि से परमोज्ज्वल रत्न है। 'शिक्षा' के सम्पादन-द्वारा आपने हिन्दी की गद्यशैली के परिष्कार का काम लगातार पचीस तीस बरसों तक किया। आरा की नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना कर नागरी लिपि और हिन्दी भाषा के प्रचार का भी प्रशंसनीय प्रयत्न किया। आज बीस बाईस बरसों से आप कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत-व्याख्याता हैं।

द्विवेदी-युग में द्विवेदीजी के विशेष स्नेहभाजन लेखकों का भी एक स्वतंत्र मंडल था। उन द्विवेदी-मंडल के विशिष्ट लेखकों में बिहार के कृतविद्य साहित्यसेवी प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र 'विप्रचंद्र' भी थे, जो अपने सरस लेखों से सदा 'सरस्वती' के पाठकों को आह्लादित करते रहते थे। विविध विषयों पर आलंकारिक भाषा में इनके लेख बड़े रोचक और प्रसादगुणपूर्ण होते थे। जिस समय द्विवेदीजी की लेखनी से इनके लेखों की भेंट भी नहीं हुई थी, उस समय भी ये उत्कृष्ट गद्यरचना में पारंगत थे। जिस साल (१९०३ ई० में) द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' का सम्पादन-भार-ग्रहण किया उसी साल इनकी एक पुस्तक भारतमित्र प्रेस (कलकत्ता) से प्रकाशित

हुई थी। वह पंडितराज जगन्नाथ के 'भामिनीविलास' का हिन्दी-पद्यानुवाद (भामिनीविलास-प्रतिबिम्ब) है। उसकी भूमिका से इनके गद्य का नमूना यहाँ दिया जाता है—" सत्कवियों में दिल्लीश्वर-सभा सम्मानित पंडितराज जगन्नाथ अन्तिम कवि थे। इनके बाद ऐसा विलक्षण उद्भट कवि कोई न हुआ। इनके काव्य में शब्दमाधुर्य, पदलालित्य, भावगाम्भीर्य, सरस यमक अनुप्रास ऐसे उत्तम होते हैं कि श्रवण मात्र ही से साधारण विद्वान् का भी हृदय आनन्दोद्रेक-परवश हो जाता है। जब हमने इनके बनाये हुए भामिनीविलास को देखा तो चित्त में अनिर्वचनीय आनन्द उत्पन्न हुआ। पर दुःख हुआ कि हा! इसके अनुपम सुख को केवल संस्कृत ही के कवि लूटते हैं। बिचारे हिन्दीभाषा के रसिक कवि इस सुख से सर्वदा वंचित हो रहे हैं। इस कारण यह अत्युत्तम ग्रंथ हिन्दी के अनेक प्रसिद्ध छन्दों में अनुवाद किया।" फिर सन् १६०५ ई० में प्रकाशित अपने 'आनन्द-कुसुमोद्यान' के समर्पण में लिखते हैं—"रसिकशिरोमणे! यह आनन्दकुसुमोद्यान आप ही के विराजने के लिये लगाया गया है। इसमें अनेक प्रकार की लहलहाती लोनी-लोनी लताएँ तथा सुंदर सुहावने वृक्ष शोभित हैं। यहाँ आइये, विराजिये, कविताकुसुमों की सुगन्ध लीजिये, और विप्रचन्द्र-कोकिल का कलरव सुनकर आनन्दित हूजिये।"

पं० जनार्दन झा 'जनसीदन' ने निरन्तर न केवल पद्य से, अपितु मौलिक गद्य-रचनाओं और अनुवादों से भी, हिन्दी का भांडार भरने में पूरा हाथ बँटाया। बँगला की अनेक प्रसिद्ध पुस्तकों का इन्होंने हिन्दी अनुवाद किया। ये भी द्विवेदीजी के परमप्रिय लेखकों में थे। 'सरस्वती' में सदा लिखा करते थे। इनका गद्य बड़ा मंजु मनोहर है।

पं० गिरीन्द्रमोहन मिश्र एम ए बी एल का नाम भी इस युग की साहित्य सेवा के इतिहास में उल्लेखनीय रहेगा, क्योंकि उन दिनों कचहरियों की फारसी-अरबी प्रधान भाषा के विरुद्ध इनकी प्रखर लेखनी ने जबरदस्त आन्दोलन किया था। ये भी 'सरस्वती' में लिखते थे।

इसी समय विनोद-भरी रचना-प्रणाली, चोखी शैली एवं मँजी भाषा के लिये प्रसिद्ध पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी तेजस्वी नक्षत्र की भाँति बिहार के साहित्याकाश में उदित हुए। ये भी पं० सकलनारायण शर्मा की भाँति द्विवेदीजी के क्षेत्र से पृथक् ही गद्य की चुहल भरी शैली की सृष्टि में प्रवृत्त थे। ये द्विवेदी-दल के प्रतिद्वन्द्वी पक्ष के अग्रगण्य मल्ल थे। व्यापार-सम्बन्ध से कलकत्ता-प्रवासी होने के कारण बाबू

रामनगर- चम्पारन -निवासी
वैद्यराज चिकित्सकचूड़ामणि
पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र
(५२८,५५६,५६१,६१२)

आरा निवासी, महामहोपाध्याय
प० सकलनारायण शर्मा
व्याख्याता — कलकत्ता विश्वविद्यालय
(पृष्ठ ४७, ५४१)

प० जनार्दन झा 'जनसीदन'
(कुमरबाजितपुर, मुजफ्फरपुर)
(१,२१२,४७०,५४४,५६०)

प्रो० रामदास राय (गाजीपुर)
भूतपूर्व हिन्दी-अध्यापक
मुजफ्फरपुर-कालेज

भूतपूर्व 'लक्ष्मी-सम्पादक
रायसाहब लक्ष्मीनारायण लाल
(गया)

प्रो० [illegible]
भूतपूर्व [illegible]

ीक - निवासी
ु -सम्पादक
रिशयराम भट्ट
५३७)

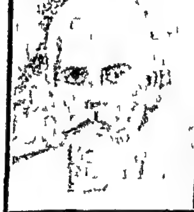

स्व० यशोदानन्दन अखौरी (शाहाबाद) पृ० ५३६

ा निवासी स्व० प० जीवानन्द शर्मा काव्यतीर्थ
(पृ० ५६०)

सारन जिला निवासी
स्व० दामोदरसहाय कविकिंकर' (पृ० ११२)

बालमुकुन्द गुप्त से इनका सतत संसर्ग रहा। गुप्तजी की प्रेरणा से ये अहर्निश तात्कालिक गद्यशैली की परख में दत्तचित्त रहते थे। इनकी गद्य परीक्षा की कसौटी पर कौन न कसा गया! इन्होंने स्वयं द्विवेदीजी की आलोचना कर हिन्दी-संसार को चौंका दिया। द्विवेदीजी की लिखी लेखमाला 'कालिदास की निरङ्कुशता' के उत्तर में इन्होंने जो आलोचनात्मक लेखमाला 'भारत मित्र' में लिखी वह समस्त हिन्दीजगत् में बड़े चाव से पढ़ी गई, और पीछे पुस्तकाकार में 'निरंकुशता निदर्शन' नाम से छपी भी। अपनी व्यंग्यपूर्ण शैली के कारण ये 'हास्यरसावतार' कहे जाने लगे। अखिलभारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के द्वादश अधिवेशन (लाहौर) के अध्यक्ष पद से किया गया इनका भाषण हिन्दी-गद्य शैली के सुधार और निखार पर तथ्यपूर्ण परामर्श देनेवाला है।

इस युग में बाबू ब्रजनंदन सहाय 'ब्रजवल्लभ' ने बड़ी सफलता से उपन्यास-क्षेत्र में पदार्पण किया। उन दिनों हिन्दी में भावपूर्ण मौलिक उपन्यासों की बड़ी कमी थी। बँगला के उपन्यासों के अनुवादों का ही बाहुल्य था। 'सौन्दर्योपासक' और 'लालचीन' द्वारा आपने इस कमी की पूर्त्ति की। 'सरस्वती' में भी प्राय आपकी गद्यपद्यमयी रचनाएँ छपी थीं। 'विस्मृत सम्राट' और 'विश्वदर्शन' आपके नये मौलिक उपन्यास हैं। आप गद्यकाव्य के सफल रचयिता हैं। मनोभावों का हृदयग्राही चित्रण करने के कारण ही आपके उपन्यास समादृत हुए हैं। 'मैथिल कोकिल विद्यापति' नाम की आलोचना पुस्तक लिखकर सबसे पहले आपने ही सप्रमाण सिद्ध किया कि महाकवि विद्यापति ठाकुर बिहार के थे, बंगाल के नहीं। हिन्दीक्षेत्र में विद्यापति की सादर प्रतिष्ठा करके आपने साहित्य की चिरस्थायी सेवा की है। आपकी भाषा बड़ी ही अलङ्कार-पूर्ण और काव्यमयी है।

उपन्यास-क्षेत्र में अपनी एक ही रचना से सर्वप्रिय बननेवालों में दरभंगा के बाबू अवधनारायण का नाम भी चिरस्मरणीय रहेगा। 'विमाता' की करुण कथा, उसकी सरल शैली एवं मर्मस्पर्शी चरित्र चित्रण ने ही हिन्दी में आपको आदरणीय स्थान दिलाया है। 'सरस्वती' ने इसकी आलोचना करते हुए इसे 'कभी न मुर्झानेवाला फूल' कहा था। आपने इधर कहानियाँ भी लिखी हैं। आपकी भाषा निराडम्बर, सहज एवं सुहावनी होती है। आपका नया उपन्यास 'सेकंड-हैंड लेडी' शीघ्र छपनेवाला है।

'बिहारी'-सम्पादक श्रीगोकुलानन्द प्रसाद वर्मा और छपरा निवासी पंडित जीवानन्द शर्मा इस युग में बिहार के अच्छे पत्रकार हुए। वर्माजी ने 'आत्मविद्या'

और 'प्रेमाभक्ति' तथा 'सत्संग' का भी सम्पादन किया था। कमला-सरस्वती, पवित्र जीवन, मोती, गार्हस्थ्य जीवन आदि उनके गद्य-ग्रंथ हैं। शर्माजी ने 'श्रीकमला' और 'प्रज्ञाबन्धु' द्वारा इस प्रान्त की और हिन्दी-संसार की बड़ी सेवा की। आप बड़े विख्यात कथावाचक थे। गायक, कवि, नाटककार और हिन्दी प्रचारक के रूप में आप विशेष सुपरिचित थे।

इस युग में पटना के नामी बारिस्टर डॉक्टर श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल की सेवाएँ भी स्तुत्य एवं बहुमूल्य हैं। आपकी जन्मभूमि मिर्जापुर में थी, पर यावज्जीवन बिहार ही आपकी कर्मभूमि रहा। आपके अनेक लेख 'सरस्वती' में छपे हैं। आप द्विवेदीजी के श्रद्धालु शिष्य लेखकों में अपनेको मानते थे। आप इतिहास और पुरातत्त्व के ठोस विद्वान् थे। आपकी भाषा में बड़ी सादगी है। आपके गद्य-लेख बड़े सुचिन्तित और संयत होते थे।

आरा के पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा विलक्षण प्रतिभाशाली लेखक थे। जिस प्रकार युक्तप्रान्त में श्री गणेशशंकर विद्यार्थी की पैनी लेखनी 'प्रताप' के सम्पादकीय स्तंभों के द्वारा भाषा के गौरव की वृद्धि करती रही, उसी प्रकार शर्माजी की चुटीली लेखनी 'मनोरंजन' और 'हिन्दू-पञ्च' के द्वारा भाषा में सरसता का संचार करती रही। एक आलोचक के शब्दों में—"शर्माजी की लेखनी संवेग धारा की तरह बहती जाती थी और कागज पर नीलम की बूँदें बिछती जाती थीं।" 'मनोरंजन, लक्ष्मी, धर्माभ्युदय, पाटलिपुत्र, विद्या, शिक्षा, साहित्यपत्रिका, हिन्दू-पञ्च' आदि पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन में अपनी सफलता दिखाकर आप लब्ध-प्रतिष्ठ पत्रकार कहलाये। अनेक मौलिक ग्रंथों एवं अनूदित उपन्यासों तथा कहानियों द्वारा आपने हिन्दी का भांडार भरने में अपना जीवन खपा दिया। आप समुज्ज्वल नक्षत्र की भाँति हिन्दी-जगत् को सहसा आलोकित करते आये और देखते-देखते विलीन हो गये। फिर भी, अपने अल्प जीवन-काल में ही, अपनी सुन्दर कृतियों की जो छाप आप छोड़ गये हैं, वह अमिट है। शिवपूजन सहाय जैसे साहित्यसेवी के गुरु-पद पर आसीन होने का जिसे महत्त्व मिला, उस अमर साहित्यिक का कीर्त्तिस्तम्भ अशोकस्तम्भ की भाँति गर्वोन्नत है।

साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री का नाम इस युग में चिरस्मरणीय है। उन्होंने जैसे 'शारदा' द्वारा संस्कृत की सेवा की, वैसे ही मौलिक पुस्तकों एवं धार्मिक ग्रंथों के अनुवादों द्वारा हिन्दी की भी। वे विद्वद्वर पंडित रामावतार शर्मा के सहपाठी और गुरुभाई थे। महाभारत, श्रीमद्भागवत और श्रीमद्वाल्मीकीय

रामायण की विशुद्ध टीकाएँ लिखकर आपने संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं पर अपने असाधारण अधिकार का परिचय दिया है।

पं० जगदीश्वरीप्रसाद ओझा इस युग के अनुभवी लेखक हैं। आपके लेख हिन्दी प्रचार से अधिक सम्बद्ध थे।

पं० रामदहिन मिश्र भी इसी युग के लेखक हैं। वे 'सरस्वती' में बहुधा लिखा करते थे। उनका 'मेघदूत-विमर्श' एक रमणीय आलोचनात्मक गद्य-ग्रंथ है। उनका वास्तविक रचना-नैपुण्य बाल-साहित्य के निर्माण में आगे चलकर प्रकट हुआ।

'मिथिला मिहिर' के भूतपूर्व सम्पादक पं० योगानन्द कुमर की सेवा भी भुलाने योग्य नहीं है। इन्होंने लगातार कई वर्षों तक अपने विचारपूर्ण लेखों के द्वारा हिंदी की श्लाघ्य सेवा की।

एतदतिरिक्त और भी बहुत से लेखक इस युग मे हुए, जिन्होंने हिन्दी के भिन्न भिन्न क्षेत्रों मे काफी काम किया, और जिनमे से कई ने 'सरस्वती' के द्वारा भी अपना रचना-कौशल प्रदर्शित किया। यथा—श्रीदामोदरसहाय 'कविकिंकर', श्रीपारसनाथ सिंह एम० ए०, श्रीपीरमुहम्मद मूनिस, श्रीयुगलकिशोर अखौरी, श्रीसुपार्श्वदास गुप्त एम० ए०, प्रोफेसर राधाकृष्ण झा एम० ए०, श्रीईश्वरदास जालान एम० ए०, श्रीनरेन्द्रनारायण सिंह इत्यादि।

इस प्रसङ्ग मे यह कहना आवश्यक है कि हिन्दी-संसार मे उस समय दो गद्य धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं—एक द्विवेदीजी की, दूसरी प्रसिद्ध उपन्यासकार बाबू देवकीनन्दन खत्री को। द्विवेदीजी गम्भीर और आलोचनात्मक तथा सार्वकालिक साहित्य का निर्माण कर रहे थे और देवकीनन्दनजी रोचक कथा-साहित्य की सृष्टि। सच पूछिये तो उनकी 'चंद्रकांता' ने वह काम किया जो सैकडों हिन्दी प्रचारक मिलकर नहीं कर सकते थे। जो लोग हिंदी की तरफ आँख उठाकर देखते तक नहीं थे, उन्हें केवल 'चंद्रकान्ता' पढने के लोभ से विवश हो हिन्दी सीखनी पडी। हिन्दी में यह एक ऐसा उपन्यास निकला, जिसको पढते-पढते लोग भूख-प्यास भूल जाते थे और एक भाग समाप्त होने पर दूसरे भाग के लिये तार भेजते थे। अगर द्विवेदीजी साहित्य के विकास के लिये कीर्तिशाली हैं तो खत्रीजी हिन्दी को लोकप्रिय बनाने के लिये यशोभागी हैं। साधारणत लोग इस बात से कम परिचित हैं कि खत्रीजी बिहार के ही लाल हैं। संवत् १६१८ (सन् १८६१ ई०) मे इनका जन्म मुजफ्फरपुर जिले मे हुआ था। दस वर्ष की अवस्था के बाद ये टेकारी (गया) चले गये और चौबीस वर्ष की अवस्था तक वहीं के दरबार मे रहे, जहाँ

और 'प्रेमाभक्ति' तथा 'सत्संग' का भी सम्पादन किया था। कमला-सरस्वती, पवित्र जीवन, मोती, गार्हस्थ्य जीवन आदि उनके गद्य-ग्रंथ हैं। शर्माजी ने 'श्रीकमला' और 'प्रजाबन्धु' द्वारा इस प्रान्त की और हिन्दी-ससार की बडी सेवा की। आप बड़े विख्यात कथावाचक थे। गायक, कवि, नाटककार और हिन्दी प्रचारक के रूप मे आप विशेष सुपरिचित थे।

इस युग मे पटना के नामी बारिस्टर डॉक्टर श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल की सेवाएँ भी स्तुत्य एव बहुमूल्य हैं। आपकी जन्मभूमि मिर्जापुर मे थी, पर यावज्जीवन बिहार ही आपकी कर्मभूमि रहा। आपके अनेक लेख 'सरस्वती' मे छपे हैं। आप द्विवेदीजी के श्रद्धालु शिष्य लेखकों मे अपनेको मानते थे। आप इतिहास और पुरातत्त्व के ठोस विद्वान् थे। आपकी भाषा में बड़ी सादगी है। आपके गद्य-लेख बड़े सुचिन्तित और सयत होते थे।

आरा के प० ईश्वरीप्रसाद शर्मा विलक्षण प्रतिभाशाली लेखक थे। जिस प्रकार युक्तप्रान्त मे श्री गणेशशकर विद्यार्थी की पैनी लेखनी 'प्रताप' के सम्पादकीय स्तभों के द्वारा भाषा के गौरव की वृद्धि करती रही, उसी प्रकार शर्माजी की चुटीली लेखनी 'मनोरजन' और 'हिन्दू-पञ्च' के द्वारा भाषा मे सरसता का सचार करती रही। एक आलोचक के शब्दों मे—"शर्माजी की लेखनी सवेग धारा की तरह बहती जाती थी और कागज पर नीलम की बूँदें बिछती जाती थीं।" 'मनोरजन, लक्ष्मी, धर्माभ्युदय, पाटलिपुत्र, विद्या, शिक्षा, साहित्यपत्रिका, हिन्दू-पञ्च' आदि पत्र पत्रिकाओं के सम्पादन मे अपनी सफलता दिखाकर आप लब्ध-प्रतिष्ठ पत्रकार कहलाये। अनेक मौलिक ग्रथों एव अनूदित उपन्यासों तथा कहानियों द्वारा आपने हिन्दी का भाडार भरने मे अपना जीवन खपा दिया। आप समुज्ज्वल नक्षत्र की भाँति हिन्दी-जगत् को सहसा आलोकित करते आये और देखते-देखते विलीन हो गये। फिर भी, अपने अल्प जीवन-काल मे ही, अपनी सुन्दर कृतियों की जो छाप आप छोड़ गये हैं, वह अमिट है। शिवपूजन सहाय-जैसे साहित्यसेवी के गुरु-पद पर आसीन होने का जिसे महत्त्व मिला, उस अमर साहित्यिक का कीर्त्तिस्तम्भ अशोकस्तम्भ की भाँति गर्वोन्नत है।

साहित्याचार्य प० चन्द्रशेखर शास्त्री का नाम इस युग में चिरस्मरणीय है। उन्होंने जैसे 'शारदा' द्वारा सस्कृत की सेवा की, वैसे ही मौलिक पुस्तकों एवं धार्मिक ग्रथों के अनुवादों द्वारा हिन्दी की भी। वे विद्वद्वर पडित रामावतार शर्मा के सहपाठी और गुरुभाई थे। महाभारत, श्रीमद्भागवत और श्रीमद्वाल्मीकीय

रामायण की विशुद्ध टीकाएँ लिखकर आपने संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं पर अपने असाधारण अधिकार का परिचय दिया है।

प० जगदीश्वरीप्रसाद ओझा इस युग के अनुभवी लेखक हैं। आपके लेख हिन्दी-प्रचार से अधिक सम्बद्ध थे।

प० रामदहिन मिश्र भी इसी युग के लेखक हैं। वे 'सरस्वती' में बहुधा लिखा करते थे। उनका 'मेघदूत-विमर्श' एक रमणीय आलोचनात्मक गद्य-ग्रंथ है। उनका वास्तविक रचना-नैपुण्य बाल-साहित्य के निर्माण में आगे चलकर प्रकट हुआ।

'मिथिला मिहिर' के भूतपूर्व सम्पादक प० योगानन्द कुमार की सेवा भी भुलाने योग्य नहीं है। इन्होंने लगातार कई वर्षों तक अपने विचारपूर्ण लेखों के द्वारा हिंदी की श्लाघ्य सेवा की।

एतदतिरिक्त और भी बहुत से लेखक इस युग मे हुए, जिन्होंने हिन्दी के भिन्न भिन्न क्षेत्रों मे काफी काम किया, और जिनमे से कई ने 'सरस्वती' के द्वारा भी अपना रचना-कौशल प्रदर्शित किया। यथा—श्रीदामोदरसहाय 'कविकिंकर', श्रीपारसनाथ सिंह एम० ए०, श्रीपीरमुहम्मद मूनिस, श्रीयुगलकिशोर अखौरी, श्रीसुपार्श्वदास गुप्त एम० ए०, प्रोफेसर राधाकृष्ण झा एम० ए०, श्रीईश्वरदास जालान एम० ए०, श्रीनरेन्द्रनारायण सिंह इत्यादि।

इस प्रसङ्ग मे यह कहना आवश्यक है कि हिन्दी-संसार मे उस समय दो गद्य धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं—एक द्विवेदीजी की, दूसरी प्रसिद्ध उपन्यासकार बाबू देवकीनन्दन खत्री की। द्विवेदीजी गम्भीर और आलोचनात्मक तथा सार्व-कालिक साहित्य का निर्माण कर रहे थे और देवकीनन्दनजी रोचक कथा-साहित्य की सृष्टि। सच पूछिये तो उनकी 'चन्द्रकांता' ने वह काम किया जो सैकड़ों हिन्दी-प्रचारक मिलकर नहीं कर सकते थे। जो लोग हिंदी की तरफ आँख उठाकर देखते तक नहीं थे, उन्हें केवल 'चन्द्रकान्ता' पढने के लोभ से विवश हो हिन्दी सीखनी पडी। हिन्दी मे यह एक ऐसा उपन्यास निकला, जिसको पढते-पढते लोग भूख-प्यास भूल जाते थे और एक भाग समाप्त होने पर दूसरे भाग के लिये तार भेजते थे। अगर द्विवेदीजी साहित्य के विकास के लिये कीर्त्तिशाली हैं तो खत्रीजी हिन्दी को लोकप्रिय बनाने के लिये यशोभागी हैं। साधारणत लोग इस बात से कम परिचित हैं कि खत्रीजी बिहार के ही लाल हैं। संवत् १६१८ (सन् १७६१ ई०) में इनका जन्म मुजफ्फरपुर जिले में हुआ था। दस वर्ष की अवस्था के बाद ये टेकारी (गया) चले गये और चौबीस वर्ष की अवस्था तक वहीं के दरबार मे रहे, जहाँ

से काशी-नरेश की सेवा में पहुँचने का सूत्र मिला। तीस वर्ष की अवस्था में, सन् १८६१ ई० में, बनारस राज्य और मिर्जापुर के जगलों मे ठीकेदारी करते हुए, इन्हें उपन्यास-रचना की प्रेरणा और प्रवृत्ति हुई। इनकी लोक-प्रियता का अशभागी बिहार भी है।

वर्त्तमान काल में बिहार की गद्य-गंगा

बिहार के उर्वर साहित्यक्षेत्र में हिन्दी-गद्य का जो अखड प्रवाह सन् १६११ से १६३० तक प्रवाहित हुआ है, उसको उपमा गगा से दी जा सकती है। भारतेन्दु की यह भागीरथी, उनके समकालीन साहित्य-रसिकों की रचना कालिन्दी के सयोग से विस्तृत होती हुई, द्विवेदीजी की 'सरस्वती' के व्यक्त प्रवाह से हिन्दी-साहित्य को तीर्थराज बना गई। फिर आगे बढकर, बिहार मे आकर—शोण, सरयू, गडक, कोशी आदि के समान विविध बिहारी लेखकों के सहयोग-समावेश से—पुष्टतर होती चली गई।

किन्तु, जिनकी लेखनी का प्रवाह अजस्र रूप से गगा की मध्य-धारा के समान प्रवाहित होता रहा है, वे हैं बिहार के द्विवेदी श्रीरामलोचनशरणजी। 'बालक' के यशोधन सम्पादक, अगणित पाठ्य पुस्तकों के निर्माता, सैकड़ों साहित्यिक ग्रन्थों के सम्पादक, आधुनिक हिन्दी-व्याकरण के परिष्कर्त्ता, बाल-शिक्षण-विज्ञान के अनुभवी आचार्य, प्रारभिक शिक्षा-क्रम मे आरोह-विधि के आविष्कर्त्ता श्रीशरणजी का नाम हिन्दी-ससार का बच्चा-बच्चा जानता है।

शरणजी की भाषा की छाप, ज्ञात या अज्ञात रूप से, बिहार के अनेक नवयुवक लेखकों की रचना मे स्पष्ट रूप से झलकती है। जिनकी एक-एक पुस्तक, लक्ष-लक्ष की सख्या मे, बिहार के कोने-कोने मे, पाठ्य सामग्री बनकर प्रचलित हो रही हो, वह भी प्राय तीस वर्षों तक, चाहे उसपर सरकारी मुहर हो या नहीं—और ऐसी पुस्तकें एक-दो नहीं, पचासों हैं, उनके प्रभाव का परिधि-विस्तार मापना साधारण काम नहीं।

आपने प्रारम्भिक शिक्षण-पद्धति को सुगम बनाने के लिये जिस स्वाभाविक शैली का सृजन किया है उसका अनुकरण केवल बिहार मे ही नहीं, अन्य प्रान्तों मे भी हो रहा है। बिहार की क्या बात, अन्य प्रान्तों के लेखक भी, आपके आदर्श पर, आप ही की विधि का अनुसरण करते हुए, पाठ्य पुस्तकों का प्रणयन करते हुए दिखाई देते हैं। अपनी स्वतन्त्र मनोवैज्ञानिक सत्ता रखनेवाली गद्य-शैली के प्रवर्त्तक के रूप में आपकी यह सफलता बिहार के लिये गौरव की वस्तु है।

आपकी भाषा विशुद्ध, व्याकरण मर्यादित, वागाडम्बर-रहित एवं टकसाली होती है। वाक्य-विन्यास ऐसा चुस्त-दुरुस्त कि एक शब्द भी इधर-उधर नहीं किया जा सकता। कठिन और दुरूह शैली से, कटुता और अश्लीलता से, आपका कोई नाता नहीं। चंचलता और कल्पना-प्रवणता को आपने कभी अपनी रचना में स्थान नहीं दिया। आपकी भाषा में प्रवाह है, उफान नहीं, वेग है, आवर्त्त नहीं, शुभ्रता है, विविध रंगों का सम्मिश्रण नहीं।

आप बाल-मनोविज्ञान के विशेषज्ञ हैं। इसीलिये बाल-साहित्य के निर्माण में आपको सबसे अधिक सफलता मिली है। कोमल मस्तिष्क वाले बालकों को कठिन-से-कठिन विषय हृदयंगम कराने की कला में आप इतने प्रवीण हैं कि अपनी चटपटी शैली के द्वारा बीहड़ विषय को भी हस्तामलकवत् बना देते हैं। इस फन में आपको कमाल हासिल है।

आपकी लेखनी की सबसे बड़ी विजय यह है कि आरम्भ ही से आपने जिस सर्वजन-सुलभ गद्यशैली का सूत्रपात किया, वही आज देशव्यापिनी भाषा के लिये उपयुक्त समझी जा रही है। वास्तविक राष्ट्रभाषा का निखरा हुआ रूप आपकी गद्यशैली में पाया जाता है। बिहार की गद्यगंगा को प्रशस्त प्रवाह क्षेत्र देने में आपने भगीरथ प्रयत्न किया है।

आपकी गद्यशैली की सर्वजनोपयोगिता समझकर ही आलंकारिक भाषा लिखनेवाले भी उसी की ओर आकृष्ट होते दीख पड़ते हैं। 'गांधी-टोपी' में 'राम-रहीम' के शिल्पी की वही प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है और 'विभूति' का लेखक 'देहाती दुनिया' में उसी सरलता की ओर उन्मुख दृष्टिगोचर होता है। भाषा द्वारा जनता के अन्तस्तल तक पहुँचने का मार्ग-प्रदर्शन करने में ही आपकी सफलता का श्रेय है।

त्रिपथगा गंगा की तरह हिन्दी-गद्य-गंगा की भी तीन धाराएँ फूटी हुई परिलक्षित होती हैं। एक तो सरल गद्य की वह धारा, जिसमें अवगाहन करने के अधिकारी साधारण जन भी होते हैं। अनुदिन लेखकों का ध्यान, अधिकाधिक मात्रा में, इसी तरफ आकृष्ट होता जाता है। दूसरी गम्भीर गद्य की वह धारा है, जिसकी तरङ्ग-भङ्गियों में अवगाहन करनेवाले निष्णात पाठक ही हुआ करते हैं। साधारण पाठक दूर से उसके चंचल प्रवाह को देखकर चमत्कृत होता है, पर उसमें प्रवेश करने का साहस नहीं करता। तीसरी धारा सरल एवं गम्भीर गद्य स्रोतों की मिश्रित धारा है। इस वर्ग के लेखकों में जन साहित्य का लालित्य प्रदर्शन

करने की प्रवृत्ति होती है, पाठकों की हृदय-भूमि को रस-लहरी से आप्लावित करने की धुन समाती है, तब वे गम्भीर स्रोत को प्रगति देते हैं। पर जिस समय उन्हें जन-वर्ग के साथ तादात्म्य स्थापित करने की स्पृहा होती है, विराट् पाठक समुदाय के मस्तिष्क को विकसित करने की इच्छा होती है, उस समय वे सरल गद्य की धारा प्रवाहित करते हैं।

उपरि-कथित तीनों शैलियों में हम पहली के परिपोषकों की चर्चा पहले करेंगे। श्रीरामवृक्ष बेनीपुरीजी इसके प्रथम प्रगतिशील लेखक हैं। अपनी चुभती शैली और फड़कती भाषा के लिये वे अपने ढँग के एक ही लेखक हैं। उनकी खास अपनी शैली है, जो बिना नाम-मुहर के भी चमकती रहती है। यदि वे अपनी चीज छिपाना भी चाहें तो छिप नहीं सकती। उनकी शैली बोलती है, उनके विराम-चिह्न बोलते हैं। उनकी मुहावरेदार भाषा मे जो लोच और लहर है, वह बिहार की सीमा के बाहर भी बहुत कम देख पडती है।

प्रोफेसर जनार्दन झा 'द्विज' एम ए की साहित्य-सेवा से हिन्दी की समृद्धि वृद्धि हुई है। आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभा जिधर प्रधावित हुई, चमत्कार प्रकट करती गई। आपकी करुणरसार्द्र कहानियों मे सरल शैली की ही प्रधानता है। आपके भाव चाहे जितने गहरे और मर्मस्पर्शी हों, पर भाषा दुर्बोध नहीं होने पाती। जहाँ आप गद्यकाव्य की छटा दिखलाते हैं वहाँ भी सारल्य का ही प्राबल्य रहता है। आपकी भाषा में वही ओजस्विता और प्रासादिकता है जो आपकी वाणी—वक्तृत्वशक्ति—में।

प्रोफेसर हरिमोहन झा की रचना मौलिक विचारों से परिपूर्ण होते हुए भी सरल और आकर्षक होती है। इनकी तेजस्विनी लेखनी बालोपयोगी सरल विषय से लेकर दर्शन-जैसे कठिन विषय तक अबाध गति से चलती है। इनकी रचना मे विनोद और परिहास का पुट बडा सुन्दर रहता है। अत्यन्त गहन विषय को भी खुलासा तौर से समझाने की इनमें अद्भुत क्षमता है। इसी प्रकार बाबू अच्युतानद दत्तजी की भाषा भी स्वच्छता और सरलता का नमूना होती है। गम्भीर गवेषणात्मक निबध से लेकर हास्यरस की रचनाओं तक मे ये अपनी स्वाभाविक सरल शैली नहीं छोड़ते। [illegible] दत्तजी दोनों ही शरणजी की

श्रीव्रजनन्दन सहायजी 'व्रजवल्लभ'
(आरा निवासी)

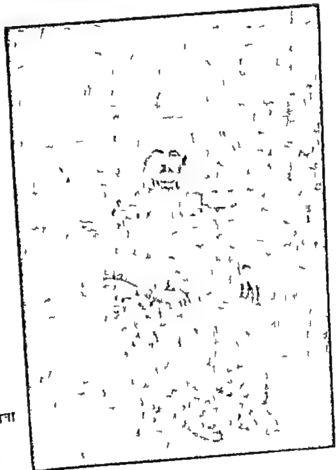

श्रीमान् सूर्यपुराधीश राजा
राधिकारमणप्रसादसिंह,
एम० ए०

(पृ० ५५०-५१)

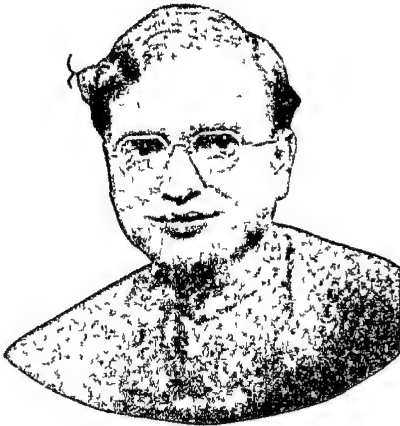

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

'किशोर'-सम्पादक प० रामदहिन मिश्र काव्यतीर्थ की रुचिर रचनाओं में भी सरल भाषा का ही प्रवाह है, जिसमे बच्चे और प्रौढ सभी अवगाहन कर सकते हैं।

'नवशक्ति' और 'राष्ट्रवाणी' के ख्यातनामा सम्पादक श्री देवव्रत शास्त्री की भाषा भी साफ-सुथरी और सुलझी हुई होती है। आपकी गद्यशैली मे राष्ट्रीयता का ओज और लोकरुचि को स्फूर्ति देनेवाला तेज होता है।

दूसरे वर्ग के अन्तर्गत सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह एम ए का नाम अग्रगण्य है। सस्कृत के अलकरणों एव उर्दू फारसी के सेहरों से सजी सजाई आपकी भाषा बिजली की तरह चकाचौंध डालती है। आपके 'रामरहीम' का गद्य, साहित्य के सग्रहालय का, जाज्वल्यमान रत्न है। आपकी शैली मे अद्भुत आकर्षण और दिल को फड़का देनेवाली चुहलबाजी है। 'गल्पकुसुमावली' और 'नवजीवन-प्रेमलहरी' में आपने जिस सुसस्कृत एव विशद हिन्दीगद्य का मनोज्ञ रूप प्रदर्शित किया था, उसकी रगीन रश्मि अब यत्रतत्र ही आपकी रचना मे बाँकी झाँकी दिखाती है। इधर आप हिन्दीगद्य मे उर्दू-फारसी के भावद्योतक शब्दों और मुहावरों को बड़ी सफाई और सफलता के साथ खपाने लगे हैं। आपकी इस प्रवृत्ति से हिन्दीगद्य की व्यापकता और मधुरिमा कहाँ तक बढ़ेगी, यह तो भविष्य ही बतलावेगा। किन्तु इसमे अत्युक्ति नहीं कि आप यथार्थत विचक्षण शब्द शिल्पी हैं।

कुमार गगानन्द सिंह एम ए भी सरल-गम्भीर शैली के विद्वान् लेखक हैं। किन्तु आपका ध्यान शब्दों की अपेक्षा भावों पर अधिक रहता है।

'कर्मवीर'-सम्पादक प० माखनलाल चतुर्वेदी के शब्दों मे 'मालतीमाला की तरह गद्यमाला पिरोनेवाले साहित्यिक' प्रोफेसर शिवपूजन सहाय हैं, जिनकी गम्भीर गद्य-रचना शैली प्राञ्जल होती है। भद्दी-से-भद्दी रचना भी आपके हाथ मे पड़कर आपकी लेखनी से कट-छँटकर निखर उठती है। मिट्टी को छूकर सोना बनाना आप ही का काम है।

प० जगदीश झा 'विमल' भी इस वर्ग के विख्यात लेखक हैं। इनका गद्य सरल और गभीर दोनों प्रकार का है। इनमें भी शब्दालकार और भावगाम्भीर्य की विशेषताऍ प्राय पाई जाती हैं।

गम्भीर गद्य लेखकों मे उद्भट प्रतिभाशाली प० नदकिशोर तिवारी बी ए का नाम गौरव के साथ लिया जायगा। आप महारथी, चाँद, भविष्य, कर्मयोगी, सुधा

(पृ० ५५०-५१)

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

'दिनकर'जी कवि-रूप मे प्रकाशमान हैं। पर जहाँ-कहीं गम्भीर या सहज गद्य लिखा है वहाँ अपने नाम के अनुरूप चमक रहे हैं।

प्रसिद्ध औपन्यासिक श्रीअनूपलाल मडल की भाषा भी कहीं गम्भीर और कहीं सरल होती है। श्रीभुवनेश्वर सिंह 'भुवन' की गद्यशैली भी यथोचित प्रसग के अनुकूल बडी मनभावनी होती है। इनकी गद्य-गरिमा 'वैशाली' के प्रागण मे चमक चुकी है।

श्रीजयकिशोरनारायण सिंह मे ललित साहित्य की रचना की आश्चर्यजनक प्रतिभा है। आपके कलामडित निबन्ध सचमुच साहित्य की अक्षय्य सम्पत्ति हैं। आपके गद्य मे आपकी कवित्व शक्ति का सहयोग मणिकाञ्चन-सयोग के सदृश आह्लादकर प्रतीत होता है।

कविवर 'आरसी' जी की गद्य-रचना भी मनोहारिणी होती है। उनकी चितचोर कहानियाँ बडी दिलचस्पी से पढ़ी जाती हैं। उनका गद्य सुस्वादु और चित्तप्रसादक होता है।

गोपालसिंह 'नेपाली' का कविहृदय गद्य का हीरक-हार पहने देख पडता है। इनका गद्य बडा स्निग्ध, शीतल, सुरुचिवर्द्धक और शोभन होता है।

श्रीभोलालाल दास, बी० ए०, बी० एल० ने गम्भीर गद्य भी लिखा है, सरल भी। 'अक्षरों की लडाई'-सरीखी नये ढग की पुस्तक मे सरसता और सरलता पूरी सफाई से दिखाई है।

'विद्यापति-साहित्य' के स्वाध्यायी आलोचक श्रीनरेन्द्रनाथ दास भी इसी शैली के लेखक हैं। इनका 'विद्यापति-काव्यालोक' कमनीय गद्य-ग्रन्थ है।

इनके अतिरिक्त बिहार में और भी उच्च कोटि के गद्यकार हैं जिनकी शैली बडी निर्मल, मधुर, प्रसन्न और आलोकप्रद होती है। यथा—डाक्टर जनार्दन मिश्र, प्रोफेसर कृपानाथ मिश्र एम० ए०, प्रोफेसर धर्मेन्द्रब्रह्मचारी शास्त्री एम० ए०, प्रोफेसर विश्वनाथप्रसाद साहित्याचार्य साहित्यरत्न एम० ए०, प्रोफेसर महेश्वरीप्रसाद सिंह 'महेश' एम० ए०, श्रीरामावतार शर्मा एम० ए० बी० एल०, श्रीदुर्गाशकरप्रसाद सिंह, साहित्याचार्य मग, श्रीरामधारीप्रसाद 'विशारद', श्रीमथुराप्रसाद दीक्षित, श्रीगोवर्द्धनलाल गुप्त एम० ए० बी० एल०, श्रीजानकीवल्लभ शास्त्री, श्रीहसकुमार तिवारी, श्रीललितकुमार सिंह 'नटवर', श्रीराधारमण शास्त्री, प्रोफेसर नवलकिशोर गौड़ एम० ए० इत्यादि। इनमे डाक्टर जनार्दन मिश्र और प्रोफेसर धर्मेन्द्र शास्त्री बड़े विद्वान समालोचक और अन्वेषक हैं। दोनों के गद्य-ग्रन्थ प्रकाशित और प्रचारित

आदि प्रथितयशा पत्र पत्रिकाओं का सफलतापूर्वक सम्पादन करके पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। आपके लिखे हुए सम्पादकीय लेख आपकी प्रगतिशील विचार-धारा के परिचायक हैं।

प० दिनेशदत्त झा बी ए हिन्दी-ससार के अनुभवी पत्रकार हैं। आपके गम्भीराशय विशुद्ध गद्य से सर्वश्रेष्ठ दैनिक 'आज' लगभग पन्द्रह-बीस वर्षों तक उपकृत रहा। इस समय आप पटना के सुन्दर दैनिक 'आर्यावर्त्त' के प्रधान सम्पादक हैं। आपका गद्य भारतीय सस्कृति का भावोद्रेक करता है।

मासिक 'विश्वमित्र' के भूतपूर्व सफल सम्पादक प्रोफेसर जगन्नाथप्रसाद मिश्र की गम्भीर लेखन-शैली से हिन्दीससार पूर्ण परिचित है। आपका गद्य उदात्त-भावपूर्ण शब्दयोजना से अलंकृत होता है। उसके प्रत्येक वाक्यविन्यास में उत्साहोत्तेजन का बल रहता है।

ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधाशु' एम० ए० वस्तुत गम्भीर विचारपूर्ण गद्य के अत्युत्कृष्ट लेखक हैं। आप आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शिष्य ही नहीं, उनकी अभिव्यजना शैली के प्रतिनिधि भी हैं। आपके साहित्यिक निबधों और मार्मिकतापूर्ण आलोचनाओं मे आचार्य शुक्लजी की दिव्यात्मा बोलती है। 'काव्य मे अभिव्यजनावाद' आपका बड़ा ही अनूठा गद्य-ग्रथ है।

प० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' एम० ए० की साधु गद्य-रचनाओं ने भक्ति साहित्य और सन्त-साहित्य का मर्मोद्घाटन करने मे अभूतपूर्व भावुकता एव सहृदयता प्रदर्शित की है। आप 'कल्याण', (गीता प्रेस) के सम्पादक-मडल के पुण्यश्लोक सदस्य हैं। यदि सुधाशुजी बिहार के रामचन्द्र शुक्ल हैं, तो माधवजी बिहार के वियोगी हरि हैं।

तीसरी शैली की गद्य धारा के प्रधान कर्णधारों में श्रीमोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी' एव महापडित राहुल साकृत्यायन के नाम अग्रगण्य हैं। 'वियोगी'जी के गद्य में कविकल्पना का चमत्कार ठौर-ठौर बड़ा मनोरम मिलता है। इन्होंने कहानियों एव सस्मरणों में कहीं गम्भीर और कहीं सरल शैली की छटा दिखाई है। और, राहुलजी ने तो कुछ ही वर्षों मे हिन्दी का भांडार इस प्रकार सुसम्पन्न कर दिया है कि हिन्दी-साहित्य के इतिहास में उनकी यह सेवा चिरस्मरणीय रहेगी। उनके दर्जनों सुन्दर और उपादेय गद्य-ग्रथ प्रकाशित होकर यथेष्ट लोकप्रियता सम्पादित कर चुके हैं।

'दिनकर'जी कवि-रूप मे प्रकाशमान हैं। पर जहाँ-कहीं गम्भीर या सहज गद्य लिखा है वहाँ अपने नाम के अनुरूप चमक रहे हैं।

प्रसिद्ध औपन्यासिक श्रीअनूपलाल मडल की भाषा भी कहीं गम्भीर और कहीं सरल होती है। श्रीभुवनेश्वर सिंह 'भुवन' की गद्यशैली भी यथोचित प्रसग के अनुकूल बडी मनभावनी होती है। इनकी गद्य गरिमा 'वैशाली' के प्रांगण मे चमक चुकी है।

श्रीजयकिशोरनारायण सिंह मे ललित साहित्य की रचना की आश्चर्यजनक प्रतिभा है। आपके कलामडित निबन्ध सचमुच साहित्य की अक्षय्य सम्पत्ति हैं। आपके गद्य मे आपकी कवित्व शक्ति का सहयोग मणिकाञ्चन-सयोग के सदृश आह्लादकर प्रतीत होता है।

कविवर 'आरसी' जी की गद्य-रचना भी मनोहारिणी होती है। उनकी चितचोर कहानियाँ बडी दिलचस्पी से पढ़ी जाती हैं। उनका गद्य सुस्वादु और चित्तप्रसादक होता है।

गोपालसिंह 'नैपाली' का कविहृदय गद्य का हीरक-हार पहने देख पड़ता है। इनका गद्य बडा स्निग्ध, शीतल, सुरुचिवर्द्धक और शोभन होता है।

श्रीभोलालाल दास, बी० ए०, बी० एल० ने गम्भीर गद्य भी लिखा है, सरल भी। 'अक्षरों की लडाई'-सरीखी नये ढग की पुस्तक मे सरसता और सरलता पूरी सफाई से दिखाई है।

'विद्यापति-साहित्य' के स्वाध्यायी आलोचक श्रीनरेन्द्रनाथ दास भी इसी शैली के लेखक हैं। इनका 'विद्यापति-काव्यालोक' कमनीय गद्य-ग्रन्थ है।

इनके अतिरिक्त बिहार मे और भी उच्च कोटि के गद्यकार हैं जिनकी शैली बडी निर्मल, मधुर, प्रसन्न और आलोकप्रद होती है। यथा—डाक्टर जनार्दन मिश्र, प्रोफेसर कृपानाथ मिश्र एम० ए०, प्रोफेसर धर्मेन्द्रब्रह्मचारी शास्त्री एम० ए०, प्रोफेसर विश्वनाथप्रसाद साहित्याचार्य साहित्यरत्न एम० ए०, प्रोफेसर महेश्वरीप्रसाद सिंह 'महेश' एम० ए०, श्रीरामावतार शर्मा एम० ए० बी० एल०, श्रीदुर्गाशङ्करप्रसाद सिंह, साहित्याचार्य मग, श्रीरामधारीप्रसाद 'विशारद', श्रीरघुवरप्रसाद दीक्षित, श्रीगोवर्द्धन लाल गुप्त एम० ए० बी० एल०, श्रीजानकीवल्लभ शास्त्री, श्रीरामकुमार तिवारी, श्रीललितकुमार सिह 'नटवर', श्रीराधारमण शास्त्री, प्रोफेसर नवलकिशोर गौड़ एम० ए० इत्यादि। इनमें डाक्टर जनार्दन मिश्र और प्रोफेसर धर्मेन्द्र शर्मा के विद्वान समालोचक और अन्वेषक हैं। दोनों के गद्य-ग्रन्थ प्रकाशित और प्रशंसित

होकर हिन्दी-प्रेमियों-द्वारा सम्मानित हो चुके हैं। महेशजी और रामावतारजी प्रभावशाली गद्य लेखक हैं। दुर्गाशंकरजी और 'मग'जी गद्यकाव्य और कहानी में बडी रसज्ञता दिखाते हैं। रामधारी बाबू और दीक्षितजी बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के संस्थापकों में हैं और गद्यक्षेत्र में बरसों कीर्त्ति कमा चुके हैं। गुप्तजी सुप्रतिष्ठित निबन्धकार हैं। जानकीवल्लभजी समालोचना, कहानी और निबंध के सिद्धहस्त लेखक हैं—साथ ही, संस्कृत के बहुत ही अच्छे विद्वान् और कवि भी। तिवारीजी भी कवि होने के साथ-साथ निबंधकार और समालोचक हैं। 'नटवर' जी का गद्य बड़ा चटकीला-भड़कीला होता है और उसमें चुलबुलाहट काफी रहती है। राधारमणजी की कहानियाँ साहित्यिक आनन्द देती हैं। गौडजी का एकांकी नाटक बडा सुन्दर बन पडा है। हर तरह से और हर तरफ से गद्य की उन्नति और परिपुष्टि तथा सजावट का ही प्रयत्न हो रहा है। बिहार के गद्यकारों का यह सामूहिक प्रयत्न उज्ज्वल भविष्य के सामीप्य का सूचक है।

वर्त्तमान समय के बिहारी गद्य-लेखकों में सारन (छपरा) जिले के डॉक्टर सत्यनारायण, पी-एच्० डी० का नाम अपूर्व ज्योति के साथ जाज्वल्यमान दृष्टिगत होता है। आपके समान बहुज्ञ एवं बहुश्रुत लेखक पर बिहार को गर्व होना स्वाभाविक है। आपने सर्वथा नूतन गद्य-रचना प्रणाली का सूत्रपात किया है। आपकी हृदयहारिणी गद्य शैली हिन्दी-पाठकों के लिये अद्भुत आकर्षण की वस्तु है। 'अपराजित अबीसीनिया', 'आवारे की योरप-यात्रा', 'युद्ध-यात्रा', 'रोमांचक रूस में', 'हवाई युद्ध', 'लडाई के मोर्चे पर', 'उन्नीस सौ चालीस' आदि आपकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं, जो हिन्दी-संसार में अपने विषय और अपनी शैली का कोई जोड नहीं रखतीं। बिलकुल नया विषय, नई वर्णन-शैली, नई कल्पना, नई सूझ। अब आप बँगला-भाषा में अपनी हिन्दी पुस्तकों को स्वयं ही लिखकर प्रकाशित करा रहे हैं। बँगला की प्रसिद्ध पत्रिका 'शनिवारेर चिट्ठी' (कलकत्ता) के सम्पादक ने उसके एक अंक (जनवरी, १९४१) में आपके विषय में जो कुछ लिखा है, उसका यथार्थ अनुवाद हम नीचे दे रहे हैं। हिन्दी-पत्र-सम्पादक क्या इस प्रतिभा-सम्पन्न बिहारी लेखक के विषय में इस तरह दिल खोलकर कभी लिख सकेंगे ?—

"श्रीसत्यनारायण अबंगाली भारतवासी हैं। जर्मनी के फ्राकफोर्ट-विश्वविद्यालय से आपने 'डाक्टरेट' की उपाधि पाई है। आपके विषय थे अर्थनीति और राष्ट्रनीति। ऐसे विचित्र और अभिज्ञता-सम्पन्न मनुष्य भारत में बहुत थोड़े ही देखे गये हैं। इस समय आपकी अवस्था तीस से अधिक नहीं है। इसी अल्प

वयस में आपने भारत, अफ्रिका का उत्तरी भाग और सारा योरप छान डाला है—वह भी खाली हाथ! भारत की कई प्रान्तीय तथा योरप की अनेक भाषाओं पर आपका अधिकार उन स्थानों के निवासियों-सा है। रूस में रूसी और जर्मनी में जर्मन के रूप में आप अपनेको प्रकट करने में समर्थ हुए थे। इन दिनों आप बंगाल में ही हैं। बातचीत, वेशभूषा से हम आपको अबंगाली कह ही नहीं सकते। विभिन्न देशों की भाषाएँ और संस्कृतियाँ अपनाने में आप बड़े पटु हैं, इनमें आपको आश्चर्यजनक सफलता मिली है। अपने घुमक्कड़ जीवन के आरम्भ में आपने अपने गुरु से जो तीन बहुमूल्य शिक्षाएँ प्राप्त की थीं उनका पालन आप आज तक करते आ रहे हैं। उन्हीं शिक्षाओं के फलस्वरूप आपने अपने जीवन में खूब ही जानकारी पाई है। उन शिक्षाओं का सारांश है—'पृथ्वी के देशों और मनुष्यों को जानने के लिये जिस ओर आँखें जायँ, निकल पड़ो, उस देश के मनुष्यों के बीच अपनेको खपा दो, यदि वहाँ की भाषा का ज्ञान न हो तो इशारे से या किसी तरह उनके संग बोलने की चेष्टा करो, उनलोगों की तरह उन्हीं के बीच बैठ आहार करो।' वस्तुत यही आदर्श अपनाकर आपने अनेक देशों का सच्चा परिचय प्राप्त किया है। रूस और जर्मनी की आन्तरिक स्थिति का सच्चा परिचय इस प्रकार किसी ने पाया है, हम नहीं कह सकते। साधारण भ्रमणकारियों के समान ट्रेन, मोटर, होटल और विलास के साथ, गाइडबुकों में वर्णित प्रसिद्ध स्थानों को छूकर ही, आपने अपना कर्त्तव्य समाप्त नहीं कर लिया, बल्कि बहुत आत्मत्याग और दुःख झेलने के उपरान्त प्रत्येक देश के मर्म का स्पर्श करने में आप समर्थ हो सके हैं। जर्मनी के युवक-आन्दोलन में आपने स्वयं विशेष रूप से योगदान किया था। वहाँ की सोशल डेमोक्रेटिक-पार्टी के आप मेम्बर थे। हिटलर के अभ्युदय काल में नेशनल, सोशल और सोशल-डेमोक्रेटिक पार्टियों के बीच जो संघर्ष हुआ था, उसे देखने का आपको सुयोग मिला था। रूस का प्रथम परिचय आपने मैक्सिम गोर्की की सहायता से पाया। वहाँ की वर्णमाला से गोर्की ने ही आपका परिचय कराया। गोर्की की सहायता से ही आपने 'सोवियट' की राष्ट्र-नीति और उसका आदर्श समझा। इटली अबीसीनिया-युद्ध के समय योरप की एक प्रसिद्ध समाचार-एजेन्सी के प्रथम श्रेणी के संवाद-दाता की हैसियत से आप अबीसीनिया गये। व्यक्तिगत रूप से आपने अबीसीनिया के पक्ष में योगदान किया, वहाँ के भारतवासियों के उद्धार में सहायता पहुँचाई। सन् १९३६ में स्वदेश लौटकर, तीन वर्षों के अन्दर, योरप और इटली-अबीसीनिया-युद्ध के विषय में

आपने हिन्दी में दस पुस्तकें लिखीं और उन्हें प्रकाशित करवाया। हाल में बंगभाषा में आपकी 'रोमांचक रहियाव' नामक पुस्तक निकली है। इसे पढ़ने पर कवित्व का सूक्ष्म और अपूर्व परिचय मिलता है। रवीन्द्रनाथ ने पुस्तक पढ़कर आश्चर्य प्रकट किया है। हमलोग बंगभाषा में आपको पाकर अनेक आशाएँ करते हैं। इन दिनों आप 'दिशेहारा योरपे' नामक पुस्तक लिखने में व्यस्त हैं। इसके एक-दो अध्याय 'शनिवारेर चिट्ठी' में भी प्रकाशित होंगे। इसके अतिरिक्त योरप के अनुभवों के विषय में आपकी रचनाएँ भी हम प्रकाशित करेंगे।"

नये ढंग की गद्य-शैली में कलापूर्ण एवं चमत्कारपूर्ण रचना करनेवाले एक दूसरे बिहारी लेखक भी हैं, जिनका शुभ नाम है पंडित लक्ष्मीकान्त झा, एम० ए०। आप 'आइ० सी० एस०' हैं और बेकन, एडिसन, चेस्टर्टन, गार्डिनर आदि जगत्प्रसिद्ध अँगरेजी लेखकों की शैली पर आपने हिन्दी में कई ऐसे मनोहर निबंध रचे हैं, जिनमें आपकी प्रतिभा की प्रभा देखकर स्वभावतः गौरव का अनुभव होता है। आपकी ऐसी रचनाओं का एक संग्रह, 'मैंने कहा' नाम से, प्रयाग के लीडर प्रेस से निकला है। यद्यपि अब आप शासक वर्ग में चले गये, तथापि हिन्दी को आपसे बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।

उदीयमान साहित्यिकों में सुपरिचित कहानीकार एवं व्यंग्यविनोद-लेखक श्रीराधाकृष्णजी, हास्यरस के रसिक लेखक श्रीसरयू पंडा गौड़, गद्य-पद्य के उत्साही लेखक साहित्याचार्य श्रीहवलदार त्रिपाठी 'सहृदय', श्रीतारकेश्वर प्रसाद वर्मा, श्रीमोहनलाल गुप्त, श्रीसूर्यदेवनारायण श्रीवास्तव, श्रीराधाकृष्णप्रसाद, श्रीमधु, श्रीनगेन्द्र कुमार बी० ए०, श्रीजयकान्त मिश्र, श्रीउमाशंकर, श्रीलक्ष्मीपति सिंह, श्रीराकेश, श्रीपरमानन्द दत्त 'परमार्थी', श्रीलक्ष्मीनारायण गुप्त, श्रीगिरिधारीलाल शर्मा 'गर्ग' बी० ए०, श्रीशुकदेवनारायण आदि प्रतिभावान् लेखकों की सुघड़ लेखनी से हिन्दी-गद्य का जो शृंगार हो रहा है, वह बिहार के लिये बहुत ही आशाप्रद है।

इस तरह बिहार में हिन्दी गद्य निर्माण की जो चेष्टाएँ हुई हैं और हो रही हैं, उन्हें देखकर बहुलांश में सन्तोष ही होता है। आशा है, बिहार में हिन्दी-गद्य निर्माण का कार्य दिन-दिन प्रगतिशील होता जायगा। और, बिहार की गद्य गंगा में अवगाहन कर हिन्दी-संसार मानसिक शीतलता प्राप्त करेगा।

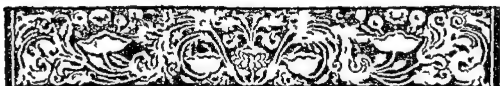

बिहार के कथाकार

श्रीसूर्यदेवनारायण श्रीवास्तव, समस्तीपुर (दरभंगा)*

साहित्य में कथाओं का बड़ा महत्त्व है। मानव जीवन और मानव-हृदय के साथ कथा-साहित्य का अभिन्न सम्बन्ध है। इस युग में कथा-साहित्य का स्थान सर्वोपरि है। किन्तु सभी युगों में मानव हृदय को आकृष्ट करने के लिये कथाओं का ही उपयोग किया गया है। मानव-जाति के सबसे पुराने ग्रंथ 'ऋग्वेद' में भी मूल रूप में कथाएँ हैं। मानव-विकास के साथ-साथ कथा-साहित्य का भी विकास हुआ। संस्कृत साहित्य में तो कथाएँ भरी पड़ी हैं। हिन्दी में पद्यबद्ध कथाएँ कई हैं और पुराने गद्य में भी कुछ हैं, पर वर्त्तमान गद्य में बहुत दिनों तक गिनी-चुनी कहानियाँ ही रहीं। आधुनिक गद्य के आदि-कथाकारों—सदासुखलाल, सदल मिश्र, इंशा अल्ला खाँ और लल्लूलाल—में सदल मिश्र बिहार के ही थे। इस प्रकार बिहार आधुनिक हिन्दी-गद्य के आदि-काल से ही कथा की सृष्टि में हाथ बँटाता आ रहा है।

पंडित सदल मिश्र† आरा नगर के मिश्रटोला मुहल्ले के रहनेवाले शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। अपनी विद्वत्ता के कारण सरकार-द्वारा आप आरा से

* आप स्वयं भी बिहार के एक होनहार कथाकार हैं। आप उन कथाकारों में हैं जो कल्पना के यान पर उड़ते नहीं, बल्कि अपने ही इर्दगिर्द के चित्रों को सूक्ष्म नेत्रों से देखकर कागज पर उतारते हैं। इसीलिये आपकी कहानी केवल कहानी ही नहीं, जीवन की बोलती तस्वीर बन जाती है। सरिता, समाज की चिता, पराया पाप, युवक, देशभक्त, होमशिखा आदि कहानी संग्रह हैं। आप नाटककार और अभिनेता भी हैं। आपके लिखे नाटक—करुण पुकार, भर्त्तृत मारा, छोटी आग आदि—रंगमंच पर सफलता से अभिनीत होने योग्य हैं।

—सम्पादक

† विक्रम संवत् १८२५ से संवत् १९०२ तक। रचना-काल संवत् १८६०।

पटना बुलाये गये और वहाँ से फोर्ट विलियम कालेज (कलकत्ता) में भेजे गये। आपकी भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित है, उसमें वह शिथिलता या अस्थिरता नहीं है जो लल्लूलाल के 'प्रेम सागर' में है।

बाबू श्यामसुन्दर दासजी आपके विषय में लिखते हैं—"मेरी समझ में लल्लूलाल कोई बड़े विद्वान् नहीं थे। किन्तु सदल मिश्र पंडित थे और इन्होंने अपनी शक्ति पर भरोसा करके रचना की। इस दृष्टि से इनका आसन लल्लूलाल से ऊँचा है। भाव-प्रकाश की सुन्दर और आकर्षक पद्धति, भाषा की परिपक्वता, शुद्धता, सजीवता और वृत्त का निर्वाह, उसकी क्रम-बद्धता जैसी इनकी है, वैसी इनके समकालीनों की नहीं। इन्होंने मुहावरों का सुन्दर उपयोग किया है और तुकान्त के लटके से अपनेको बचाया है। इनका 'नासिकेतोपाख्यान' कथा साहित्य में प्रमुख स्थान रखता है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी लिखा है—"एक साथ गद्य की परम्परा चलानेवाले उपर्युक्त चार लेखकों में से आधुनिक हिन्दी का पूरा पूरा आभास मुंशी सदासुख और सदल मिश्र की भाषा में ही मिलता है। व्यवहारोपयोगी इन्हीं की भाषा ठहरती है। लल्लूलाल के समान सदल मिश्र की भाषा में न तो ब्रज-भाषा के रूपों की वैसी भरमार है और न परम्परागत काव्यभाषा की पदावली का स्थान-स्थान पर समावेश। इन्होंने व्यवहारोपयोगी भाषा लिखने का प्रयत्न किया है और जहाँतक हो सका है, खड़ी बोली का ही व्यवहार किया है।"

हिन्दी के सर्वप्रथम मौलिक कथाकार बाबू देवकीनन्दन खत्री का जन्म भी बिहार में ही—मालीनगर (मुजफ्फरपुर) में—हुआ था। उनकी बाल्यावस्था उत्तर-बिहार में और युवावस्था दक्षिण बिहार के [illegible] में बीती थी। वहीं से काशीनरेश के दरबार में [illegible] का सूत्र मिल [illegible] लिख[illegible]

हिन्दी के स्वनामधन्य मौलिक कथाकार पंडित किशोरीलाल गोस्वामी के आरंभिक साहित्यिक जीवन का बहुत बड़ा भाग बिहार में ही कटा है। आपके औपन्यासिक जीवन का आरंभ बिहार के आरा शहर में ही हुआ था। सेठ नारायणदास के कृष्ण-मंदिर में लगातार कई साल आप प्रधान पुजारी रहे। आपके ६१ उपन्यासों में शुरू के दो चार बिहार में ही लिखे गये और आपके एकमात्र सुपुत्र पंडित छबीलेलाल गोस्वामी का, जो स्वयं बड़े प्रसिद्ध गल्प लेखक हैं, बिहार के आरा नगर में ही जन्म हुआ था। इस प्रकार आपकी कृति और कीर्त्ति की जन्मभूमि बिहार ही है।

बिहार के प्राचीन कथाकारों में पंडित चन्द्रशेखरधर मिश्र (चम्पारन) और पंडित भुवनेश्वर मिश्र (दरभंगा) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रथम मिश्रजी के लिखे कई उपन्यास एक अग्निकांड में स्वाहा हो गये, जैसा बाबू श्यामसुन्दर दासजी ने 'हिन्दी कोविदरत्नमाला' में लिखा है, और द्वितीय मिश्रजी का 'घराऊ घटना' उपन्यास लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित होकर हिन्दी-संसार में काफी प्रसिद्ध हो चुका है। हिन्दी के पुराने मौलिक उपन्यासों में 'घराऊ घटना' आरम्भिक काल का उपन्यास माना जाता है।

आरा निवासी बाबू जैनेन्द्रकिशोर जैन और पंडित सकलनारायण शर्मा ने भी उस समय मौलिक उपन्यास लिखे थे, जब हिन्दी में मौलिक उपन्यासों की संख्या उँगलियों पर गिन लेने योग्य थी। 'प्रमिला' और 'सुलोचना' जैन महाशय के दो उपन्यास प्रकाशित हैं, आपने कई धार्मिक कहानियाँ और नाटक भी लिखे थे। शर्माजी का उपन्यास 'अपराजिता' नागरीप्रचारिणी सभा (आरा) से प्रकाशित है।

आरा निवासी बाबू व्रजनन्दन सहाय बिहार के परम यशस्वी कथाकार हैं। आपके सम्बन्ध में आचार्य शुक्लजी ने लिखा है—"काव्य-कोटि में आनेवाले भाव-प्रधान उपन्यास, जिनमें भावों या मनोविकारों की प्रगल्भ और वेगवती व्यंजना का लक्ष्य प्रधान हो—चरित्र चित्रण या घटनावैचित्र्य का लक्ष्य नहीं, हिन्दी में न देख, बाबू व्रजनन्दनसहाय ने दो उपन्यास इस ढंग के प्रस्तुत किये—'सौन्दर्योपासक' और 'राधाकान्त' (सम्वत् १६६६)।"

बाबू व्रजनन्दनसहाय का स्थान हिन्दी के कथा-साहित्य में बहुत ऊँचा है। आपने उपन्यास-लेखकों को एक नई दिशा सुझाई। एक आलोचक के शब्दों में "जो प्रभविष्णुता वक्ता की वाणी में रहती है वही इनकी शैली में है। लेखक अपनी कला से पाठक को इतना वशीभूत कर लेता है कि वह उसके संकेतों पर

उपस्थित किया है वह वास्तव में एक शाश्वत—किन्तु जटिल—समस्या है। हिन्दू-समाज का ऐसा चित्ताकर्षक व्यंग्यात्मक चित्र ऐसी सजीव भाषा में शायद ही किसी उपन्यास में मिलेगा। 'पुरुष और नारी' में पुरुषजाति की स्वाभाविक दुर्बलता और नारी की अजेय शक्ति के संघर्ष का बड़ा ही विश्लेषणात्मक और मर्म-स्पर्शी वर्णन है। भाषा, भाव, कल्पना, कथावस्तु आदि की दृष्टि से यह उपन्यास पहले उपन्यास से कहीं ज्यादा निखरा हुआ है इन उपन्यासों में ही नहीं, उक्त कहानी संग्रहों और गद्यकाव्यों में भी राजा साहब की हृदयग्राहिणी भाषा पढ़कर चित्त चकित हो उठता है। सूक्तियों की तो आपकी रचना में इतनी अधिकता है कि इनके संग्रह से एक अलग पुस्तक बन सकती है। आपके बारे में एक विद्वान् समालोचक ने ठीक लिखा है—"जीवन के गहन तत्त्वों की परख इस कलाकार को है और उन्हें वह सजीव रसवन्ती भाषा में अंकित कर सकता है। इस प्रकार के अनेक सौन्दर्यस्थल यत्रतत्र बिखरे पड़े हैं। जीवन के संघर्ष से ऊबकर हम इन निकुंजों में विचरण कर अपनी व्यथा को हल्का कर सकते हैं। शब्दों के चुनाव में ये लेखक विशेष पटु हैं। चुन चुनकर बड़े परिश्रम से महल बनाते हैं। हाथी दाँत पर जिस सावधानी से काम किया जाता है, वही सावधानी राजा साहब भाषा के साथ बरतते हैं। रूपकात्मक शैली के तो आप धनी हैं। साथ ही अपने विचारों को सूक्तिरूप में व्यक्त करने में भी आप सिद्धहस्त हैं। आपकी भाषा में लय सुर है और है संगीत की मनमोहकता।"

प्रोफेसर शिवपूजनसहायजी साहित्य के सच्चे उपासक हैं। गद्य लेखकों में आपका अच्छा स्थान है। 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास' के लेखक पंडित कृष्णशंकर शुक्ल एम ए के शब्दों में—"जितनी सफलता से गद्य का प्रयोग आप कर लेते हैं, उतनी कम लेखकों में मिलती है। 'देहाती दुनिया' अपने ढंग की हिन्दी-साहित्य में अनोखी है।" आपकी अलंकार-युक्त भाषा और गंभीर शैली देखकर कोई नहीं कह सकता कि आप हास्यरस की भी उतनी ही अच्छी चीज लिखते होंगे। पाक्षिक 'जागरण' (काशी) के 'क्षणभर' और साप्ताहिक 'मत-वाला' (कलकत्ता) की 'चलती चक्की' तथा 'मतवाले की बहक' के आप ही लेखक थे। 'देहाती दुनिया' (उपन्यास) और 'विभूति' (कहानी-संग्रह) आपकी बहुत ही प्रिय कृतियाँ हैं, जो 'पुस्तक-भंडार' से ही प्रकाशित हुई हैं। आपकी अधि-कांश रचनाएँ अप्रकाशित हैं।

पंडित जगदीश झा 'विमल' (भागलपुर) बहुत अरसे से कहानी और

श्रीयुत शिवपूजनसहाय

पुस्तक-भंडार के ख्यातनामा चित्रकार श्रीउपेन्द्र महारथी

श्री सरयू पडा गौड़ (जगदीशपुर, शाहाबाद) हास्यरस की चीजें अच्छी लिख लेते हैं। 'लेखक की बीबी', 'मिस्टर तिवारी का टेलीफोन-काल', 'भूली हुई कहानियाँ,' और 'वेदना' आपकी अच्छी रचनाएँ हैं। कहीं कहीं आपकी कहानियों में बहुत-से ठेठ देहाती शब्द बड़े उपयुक्त स्थान पर प्रयुक्त दीख पड़ते हैं। आपके विनोद कभी कभी कथानक को बडा सरस बना देते हैं।

आरा निवासी, 'बालकेसरी' सपादक, श्री त्रिवेणीप्रसाद, बी० ए०, ने भी कुछ कहानियाँ और 'विसर्जन' नामक एक मनोहर उपन्यास लिखा है। इस समय आप बालोपयोगी कथा-साहित्य की रचना मे प्रवृत्त हैं।

श्री लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधाशु', एम ए (पूर्णिया) मननशील विचारक, गभीर समालोचक और उत्कृष्ट निबंध लेखक हैं। किन्तु आपने पहले कुछ कहानियाँ भी लिखी थीं। 'रसरग' और 'गुलाब की कलियाँ' आपकी सरस कहानियों के दो रमणीय समह प्रकाशित हैं। आपकी भाषा मे शब्दालकार और अर्थालकार की अच्छी बहार है। शब्दयोजना का चमत्कार और रसपरिप्लावित भावों की मनोहरता आपकी कहानियों की विशेषताएँ हैं।

मासिक 'आरती' के सपादक पडित प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' (शाहाबाद) अपने बाल्यकाल से ही लिखते आ रहे हैं। आपके साहित्यिक जीवन के विकास में आपके पूज्य पिता स्वर्गीय पडित चन्द्रशेखर शास्त्री का बहुत बडा हाथ रहा है। 'पतझड़, पाप और पुण्य, लालिमा, तलाक, जेल-यात्रा और दो दिन की दुनिया' लिखकर आपने कथा-साहित्य को सिंगारा है। आप एक अनुभवी सपादक भी हैं, किन्तु जीवन की बाधाएँ आपको आगे बढने नहीं देतीं। 'मैं फिर आऊँगी'-जैसी कहानी लिखकर आपने कहानी-कला के अध्ययन का सूक्ष्म परिचय दिया है। आपके कई उपन्यास और कहानी-सग्रह अभी तक अप्रकाशित हैं। आपकी सुलझी हुई भाषा बडी साफ-सुथरी और प्रवाहमयी होती है।

प्रोफेसर कन्हैयालालजी और प्रोफेसर ललितकिशोरसिंह भी अच्छे कथाकार हैं। कन्हैयाजी का कहानी-सग्रह 'चित्रकथा' छपरा के 'वाणीमन्दिर' से प्रकाशित है। ललित बाबू की कहानियाँ पत्रिकाओं मे कभी-कभी देख पडती हैं। इनकी कहानियों को प्रेमचन्दजी बहुत पसन्द करते थे। उनके सम्पादन-काल में इनकी कहानियाँ 'हस' और 'जागरण' मे बडे चाव से पढी जाती थीं।

श्रीविश्वमोहनजी मे कथाकार की बडी अच्छी प्रतिभा है। आपका एक उपन्यास था। 'जागरण' में प्रेमचन्दजी ने प्रकाशित किया

लेखनी मनोव्यथाओं की हरावी छेड़ने में परम पटु है। एक आलोचक का कथन है—"जीवन के जिन-जिन क्षेत्रों मे पीडा तथा वेदना के नग्न ताडव हुआ करते हैं, वहीं 'द्विज' जी को कहानियों की सामग्री मिलती है। 'द्विज' जी आवरण हटाकर भीतरी दृश्य सम्मुख उपस्थित करते हैं। उनकी प्रत्येक कहानी एक छोटा-सा उपन्यास है।" आपकी कलामडित कहानियों के कई सुन्दर सग्रह निकल चुके हैं। जैसे—किसलय, मल्लिका, मृदुदल, मधुमयी आदि। 'प्रेमचन्द की उपन्यास-कला' आपकी समालोचनात्मक कृति है और कथासाहित्य-सम्बन्धी स्वतत्र आलोचना की प्राथमिक पुस्तक है।

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी से हिन्दी-जगत् खूब परिचित है। आज का जो प्रगतिशील कथा-साहित्य है, उसे पनपाने का श्रेय आपको भी है। आप एक अग्रगामी विचार के निर्भीक लेखक हैं, प्रभावशाली वक्ता हैं, यशस्वी पत्रकार हैं, और हैं साहित्य तथा राजनीति के बीच की कडी। बिहार के राजनीतिक क्षेत्र में भी आपका बडा आदरणीय स्थान है। आपने एक स्वच्छन्द कवि का हृदय पाया है। हिन्दी के कथासाहित्य को आपकी तेजस्विनी लेखनी ने कई उत्तम पुस्तकें दी हैं। बालकों और युवकों के योग्य जो कथासाहित्य आपने निर्मित किया है वह बड़ा उत्साहवर्द्धक, प्रेरणामूलक और स्फूर्त्तिदायक है। आपकी भाषा बड़ी सरल और मुहावरेदार होती है, जोरदार और जानदार तो होती ही है। 'लाल तारा' में आपकी प्रतिभा का अपूर्व विकास दीखता है। आपकी कहानियों की शैली 'उग्र' की शैली का आभास कराती है। किन्तु 'उग्र' की शैली से अधिक सयम आपकी शैली में दीख पडती है। आप क्षुधित, पीडित, दलित और शोषित की गीली आवाज को अपनी कहानियों के रेकर्ड मे बन्द करते हैं। आपकी रचनाओं में ग्रामीणों और श्रमजीवियों को विशेष स्थान मिला है। आप जनता के लिये ही लिखते हैं। इस कारण आपकी रचनाएँ लोक-समाज मे बहुत पसद की जाती हैं। आपका प्रसिद्ध उपन्यास है 'पतितों के देश में'। बिहार के इस क्रान्तिकारी कथाकार के उर्वर मस्तिष्क से भविष्य में अभी बहुत-कुछ आशा लगी हुई है।

श्रीमोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी' हिन्दी-ससार के प्रतिष्ठित साहित्यिकों में हैं। आपने कविता, कहानी, उपन्यास, सस्मरण, आलोचना, निबन्ध, सभी कुछ लिखे हैं और बड़ी खूबी से लिखे हैं। आप बड़े सहृदय और अनुभवी कथाकार हैं। कथा-साहित्य को आपकी देन है—रेखा, रजकण और भाई बहन। आपकी कहानियों में कवित्व का आनन्द भी मिलता है।

श्री सरयू पडा गौड़ (जगदीशपुर, शाहाबाद) हास्यरस की चीजें अच्छी लिख लेते हैं। 'लेखक की बीबी', 'मिस्टर तिवारी का टेलीफोन काल', 'भूली हुई कहानियाँ,' और 'वेदना' आपकी अच्छी रचनाएँ हैं। कहीं-कहीं आपकी कहानियों में बहुत-से ठेठ देहाती शब्द बड़े उपयुक्त स्थान पर प्रयुक्त दीख पड़ते हैं। आपके विनोद कभी कभी कथानक को बड़ा सरस बना देते हैं।

आरा-निवासी, 'नालकेसरी' सपादक, श्री त्रिवेणीप्रसाद, बी० ए०, ने भी कुछ कहानियाँ और 'विसर्जन' नामक एक मनोहर उपन्यास लिखा है। इस समय आप बालोपयोगी कथा-साहित्य की रचना में प्रवृत्त हैं।

श्री लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु', एम ए (पूर्णिया) मननशील विचारक, गभीर समालोचक और उत्कृष्ट निबध-लेखक हैं। किन्तु आपने पहले कुछ कहानियाँ भी लिखी थीं। 'रसरग' और 'गुलाब की कलियाँ' आपकी सरस कहानियों के दो रमणीय सग्रह प्रकाशित हैं। आपकी भाषा में शब्दालकार और अर्थालकार की अच्छी बहार है। शब्दयोजना का चमत्कार और रसपरिप्लावित भावों की मनोहरता आपकी कहानियों की विशेषताएँ हैं।

मासिक 'आरती' के सपादक पडित प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' (शाहाबाद) अपने बाल्यकाल से ही लिखते आ रहे हैं। आपके साहित्यिक जीवन के विकास में आपके पूज्य पिता स्वर्गीय पडित चन्द्रशेखर शास्त्री का बहुत बडा हाथ रहा है। 'पतझड़, पाप और पुण्य, लालिमा, तलाक, जेल-यात्रा और दो दिन की दुनिया' लिखकर आपने कथा साहित्य को सिंगारा है। आप एक अनुभवी सपादक भी हैं, किन्तु जीवन की बाधाएँ आपको आगे बढने नहीं देतीं। 'मैं फिर आऊँगी'-जैसी कहानी लिखकर आपने कहानी-कला के अध्ययन का सूक्ष्म परिचय दिया है। आपके कई उपन्यास और कहानी-सग्रह अभी तक अप्रकाशित हैं। आपकी सुलझी हुई भाषा बड़ी साफ-सुथरी और प्रवाहमयी होती है।

प्रोफेसर कन्हैयालालजी और प्रोफेसर ललितकिशोरसिंह भी अच्छे कथाकार हैं। कन्हैयाजी का कहानी-सग्रह 'चित्रकथा' छपरा के 'वाणीमन्दिर' से प्रकाशित है। ललित बाबू की कहानियाँ पत्रिकाओं में कभी-कभी देख पड़ती हैं। इनकी कहानियों को प्रेमचन्दजी बहुत पसन्द करते थे। उनके सम्पादन-काल में इनकी कहानियाँ 'हस' और 'जागरण' में बडे चाव से पढी जाती थीं।

श्रीविश्वमोहनजी में कथाकार की बडी अच्छी प्रतिभा है। आपका एक उपन्यास धारावाहिक रूप से साप्ताहिक 'जागरण' में प्रेमचन्दजी ने प्रकाशित किया

था, इधर पुस्तकाकार भी प्रकाशित हो चुका है। अब आप कथा-साहित्य की ओर से विरक्त हो गये हैं। हिन्दी के लिये यह बड़ी शोचनीय बात है कि बहुतेरे कहानी-लेखक एक बार झलक दिखाकर हमेशा के लिये गुम हो जाते हैं। आप मिथिला-कालेज (दरभंगा) के प्रिन्सिपल हैं।

भागलपुर-निवासी प्रोफेसर कृपानाथ मिश्र अपनी स्वतंत्र शैली के विलक्षण कथाकार हैं। आपकी 'प्यास' बहुत ही आकर्षक रचना है। इसके अतिरिक्त आपने कई कहानियाँ ठेठ हिन्दी में लिखी हैं। 'मणि गोस्वामी' नाटक भी लिखा है। आपमें भी कथा-साहित्य की सृष्टि करने का अद्भुत कौशल है, पर हिन्दी का दुर्भाग्य है कि आप-जैसे सुयोग्य लेखक उदासीन हैं।

श्रीअनूपलाल मंडल (पूर्णिया) बड़ी सच्ची लगन के और बहुत ही पक्की धुन के कथाकार हैं। एकान्त भाव से केवल लिखा करते हैं। इस समय हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासकारों में आपका स्थान है। अनेक वर्षों से आप कथा-साहित्य का भंडार भरते आ रहे हैं। आप ही सर्वप्रथम बिहारी कथाकार हैं जिनके उपन्यास (मीमांसा) का फिल्म (बहूरानी) बनाया गया है। बिहारियों के लिये यह गौरव की बात है कि उनमें एक ऐसा कथाकार भी मौजूद है जो फिल्म-कम्पनी को आकृष्ट कर सका। समाज की वेदी पर, सविता, निर्वासिता, साकी, रूपरेखा, ज्योतिर्मयी, मीमांसा, गरीबी के दिन, ज्वाला, वे अभागे, अभिशाप, दर्द की तस्वीरें आदि आपके मौलिक उपन्यास प्रकाशित होकर हिन्दी-संसार में काफी प्रसिद्धि पा चुके हैं। आपके उपन्यास हिन्दी के कथा-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। आपके समान स्वावलम्बी कथाकार हिन्दी-संसार में इने-गिने हैं। यदि आप चिन्तामुक्त होकर स्वेच्छानुसार लिख पाते तो बिहार का बड़ा नाम होता और हिन्दी का कथा-साहित्य भी आपके निश्चिन्त मस्तिष्क की पूँजी पाकर धनी बनता।

दिलीपपुर-(शाहाबाद)-निवासी महाराजकुमार बाबू दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह एक धुनी साहित्य-सेवी हैं। बराबर कुछ-न-कुछ लिखते रहते हैं। 'ज्वालामुखी' (गद्यकाव्य) से आपकी बड़ी प्रसिद्धि हुई, जो काशी के सरस्वती प्रेस ('हंस'-कार्यालय) से प्रकाशित है। 'हृदय की ओर' आपका सामाजिक उपन्यास भी प्रकाशित हो चुका है। उसमें विचारों का अन्तर्द्वन्द्व और मनोभावों का संघर्ष बड़ी निपुणता से चित्रित है। आपकी नई रचना 'भूख की ज्वाला' उपर्युक्त 'हंस'-कार्यालय से प्रकाशित हुई है, जो वास्तव में एक गद्यकाव्य ही है, पर कथानक के रूप में प्रस्तुत की गई है। आपकी कई भावपूर्ण कहानियाँ सामयिक पत्रों में छप

चुकी हैं। आप भी राजनीतिक आन्दोलन के चक्कर में पड़कर साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन बनाये हुए हैं। यह चिन्त्य विषय है।

इसी प्रसंग में दो-चार उल्लेखनीय कथाकारों की चर्चा कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। श्रीबनारसीप्रसाद भोजपुरी (शाहाबाद) ने 'समाज का पाप' नामक एक सामाजिक उपन्यास लिखा है और 'मैदाने जंग' एक ऐतिहासिक। आपकी हास्यरसात्मक रचनाएँ बड़ी चटपटी होती हैं। कई पत्रों के सम्पादकीय विभाग में काम करके अब आप आरा के 'बालकेसरी' के सम्पादन विभाग में काम कर रहे हैं। डुमरॉव निवासी श्रीशंकरचरण श्रीवास्तव की कहानियों से भविष्य के लिये बड़ी आशा बँधी थी, पर वे अकाल काल-कवलित हो गये। डुमराँव के श्रीगुप्तेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव भी कुछ दिन उदीयमान कथाकार होने की आशा दिखाकर मौन हो गये। 'कसौटी' के लेखक श्रीविश्वनाथ सिंह शर्मा भी मौन ही बैठे हुए हैं।

वर्तमान शताब्दी के पूर्वार्द्ध के द्वितीय प्रहर में बिहार के कथासाहित्य को कुछ ऐसे कुशल कथाकार मिले हैं, जिनके विषय में यह कहना अत्युक्ति नहीं कि भविष्य इन्हीं का है। दूसरी दशाब्दी इनके शुभ जन्म से गौरवान्वित हुई है और इनकी प्रगतिशील रचनाओं से हिन्दी के कथासाहित्य की शोभावृद्धि भी हुई है। इनमें से कई की लेखनी ने नवयुवकों की प्रवृत्तियों और अनुभूतियों में सजीवनी डालने का सफल प्रयास किया है।

ऐसे ही गौरवशाली कथाकारों में राँची के श्रीराधाकृष्णजी हैं। बिहार के सफल कहानी-लेखकों में आप अग्रगण्य हैं। गंभीर भावपूर्ण और तरल हास्यमय दोनों प्रकार की रचनाओं पर आपका समान रूप से असाधारण अधिकार है। 'सजला' आपकी कहानियों का संग्रह है। परिस्थितियाँ आपको सदा सताती रहीं। सांसारिक कठिनाइयों के कारण साधारण शिक्षा पाकर भी अपने स्वाध्याय-बल से आपने अच्छा कौशल अर्जित किया है। चरित्र चित्रण में आपकी लेखनी कमाल करती है। आपकी सैकड़ों कहानियाँ अप्रकाशित हैं। 'घोष-बोस-बनर्जी-चटर्जी' नाम से आप व्यंग्य विनोद पूर्ण कहानियाँ लिखते हैं, जो हिन्दी में अपने ढंग की बिल्कुल नई चीज हैं। कथा-रचना के अभ्यास में आपकी साधना खूब सफल हुई है। आपकी भाषा सुबोध, शैली मँजी हुई और कल्पना गहरी पैठवाली है। यदि आप सारा समय कथा-साहित्य को दे सकते तो हिन्दी निहाल हो जाती।

दूसरे गौरवास्पद कथाकार हैं श्री वीरेश्वर सिंह, एम्० ए०, एल्० एल्० बी० (शाहाबाद)। आप साधारण विषय पर भी खूबी के साथ अभिनव कला पूर्ण कहानी लिख सकते हैं, और यही आपकी विशेषता है। 'उँगली का घाव' आपकी उत्कृष्ट कहानियों का बड़ा मनोरम संग्रह है। हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान आपकी मौसी हैं। साहित्यिक वातावरण में पनपने के कारण ही आप ऐसी सुन्दर सुकुमार प्रतिभा के धनी हुए हैं। इन दिनों आप मुजफ्फरनगर (युक्तप्रान्त) में वकालत करते हैं। आप हिन्दी के कथा साहित्य की श्रीवृद्धि करने में यदि तत्पर हो जायँ तो निश्चय ही हिन्दी का कथा कोष एक अभूतपूर्व ज्योति से आलोकित हो उठे।

आरा के अध्यापक वृन्दावनविहारी भी भावपूर्ण और कलात्मक कहानियाँ लिखते हैं। 'मधुवन' आपकी कहानियों का संग्रह है और 'आकांक्षा' एक छोटा उपन्यास। पारिवारिक झंझटों से आपकी प्रतिभा को आगे बढ़ने का सुअवसर नहीं मिलता।

श्री आरसीप्रसाद सिंह (दरभंगा) कवि के नाते हिन्दी की दुनिया में विख्यात हो चुके हैं। इधर आपने अनेक सुन्दर कहानियाँ भी लिखी हैं और बड़ी खूबी से लिखी हैं। आपके कहने का ढँग बहुत सुन्दर होता है। आपकी कहानियों में कविता का माधुर्य है। कहानियाँ आपकी बड़ी होती हैं, पर होती हैं मंजुल और मनोज्ञ। आपकी कहानियाँ पाठक के हृदय में मीठी गुदगुदी पैदा करती हैं। पाठक की हृत्तंत्री के छेड़ने में आपके रसज्ञ-रंजन भाव बड़े शोख और चुहलबाज होते हैं। आपकी कल्पना के मणिमय प्राङ्गण में जब कवि प्रतिभा के साथ यौवनोच्छ्वास की छेड़खानियाँ चलती हैं तब भाषा की चुलबुलाहट पाठकों को मुग्ध कर छोड़ती है। आपकी कहानियों के रूप का निखार और हृदय का विकास दिन-दिन सलोना और सुहावना होता जायगा, ऐसे लक्षण परिलक्षित हो रहे हैं।

प्रोफेसर केसरीकिशोर शरण, एम्० ए०, बी० एल्० (राजेन्द्र-कालेज, छपरा) ने 'मरीचिका' नामक एक सुन्दर उपन्यास लिखा है। कुछ मनोवैज्ञानिक कहानियाँ भी आपने लिखी हैं। हिन्दी के अमर कथाकार प्रेमचन्द की रचनाओं की समीक्षा आपने 'चाँद' में धारावाहिक लेख लिखकर की थी, जो अब पुस्तकाकार में निकलनेवाली है।

श्री लक्ष्मीकांत झा, आइ० सी० एस्०, भागलपुर जिले के हैं। उन्होंने

हिन्दी मे चेस्टर्टन आदि के ढँग पर अच्छी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। अपने ढँग के आप अकेला हैं। 'मैंने कहा' आपकी कमनीय कहानियों का अवलोकनीय सग्रह लीडर प्रेस (प्रयाग) से निकला है। आप उच्च कोटि के निवन्ध भी बड़े सुन्दर लिखते हैं। काशी के दैनिक 'आज' और पाक्षिक 'जागरण' में छपे आपके कई निबध बड़े लोकप्रिय सिद्ध हुए।

उच्चकोटि के साहित्यिक निबध लिखने मे श्रीजयकिशोरनारायण सिंह (मुजफ्फरपुर) की पहुँच और सूझ बड़ी अच्छी है। किन्तु उससे भी अच्छी उनमें कथाकार की प्रतिभा है। वे हिन्दी की आधुनिक कविता धारा के प्रतिनिधि-कवियों मे हैं, पर उनकी कला प्राण रचनाओं के देखने से जान पड़ता है कि वे चाहें तो प्रतिनिधि-कथाकारों मे भी आदरणीय स्थान अधिकृत कर सकते हैं। मगर हैं पूरे मनमौजी।

पटना कालेज के अँगरेजी-साहित्य के प्रोफेसर श्री दिवाकरप्रसाद विद्यार्थी, एम्० ए०, (चम्पारन), बिहार के उत्तम श्रेणी के कहानीकारों में हैं। मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखने में आप बड़े दक्ष हैं। आपकी कहानियों मे आधुनिकता का पूर्ण समावेश है। 'सजन रहहो कि जइयो, मेरी सिगरेट, वह मुस्कुराई थी' आदि प्रगतिशील कहानियाँ इसके उदाहरण हैं। आपकी लिखी आलोचनाएँ भी मनोवैज्ञानिक ही होती हैं। आप आधुनिक काव्यधारा के एक सहृदय सुकवि हैं।

श्री बद्रीनारायण लाल (मुजफ्फरपुर) बड़े ही सरस और भावुक साहित्यिक हैं। 'प्रायश्चित्त' आपका एक सुन्दर सामाजिक उपन्यास है। मुजफ्फरपुर जिले के ही श्री नवलकिशोर गौड़, एम्० ए० (प्रोफेसर, बी० एन० कालेज, पटना) मनोवैज्ञानिक कहानियाँ और एकाकी नाटक लिखने मे बड़े प्रवीण हैं। और, यहीं के श्री रेवतीरमणजी दिल पकड़नेवाली चुटीली कहानियाँ लिखने मे खासे अभ्यस्त हैं। ये एक अच्छे गायक-कवि हैं। इनकी कहानियों मे कवि का हृदय बोलता है। 'अपर्णा' इनकी कहानियों का सग्रह है और 'रागिणी' उपन्यास।

श्री हसकुमार तिवारी (भागलपुर) की प्रतिभा चौमुखी है। कहानी, उपन्यास, कविता, आलोचना—आपने सबको गले लगाया है। आपका अध्ययन गहरा है। आपने साहित्यिक निबध की रचना में भी सफलता प्रदर्शित की है। आपकी रचनाएँ प्रौढ होती हैं। चेखव, गोर्की आदि रूसी लेखकों की कुछ कहानियों का आपने हिन्दी-रूपान्तर भी किया है। आपने स्वय भी कई सुन्दर

मौलिक कहानियाँ लिखी हैं। विषम आर्थिक अवस्था ने आपकी प्रतिभा को पर्याप्त अवकाश नहीं दिया। 'बिजली', 'छाया' और 'किशोर' का आपने योग्यता से सम्पादन किया है। आपकी कविताएँ इस युग के सुरुचि-प्रिय पाठकों के लिये आकर्षण की वस्तु होती हैं। आपकी रचनाओं का संग्रह जब प्रकाशित होगा, साहित्य की कान्ति बढ़ा देगा।

श्री द्वारकाप्रसाद (लोहरदगा, राँची) सहज स्वाभाविक कहानियाँ लिखने में सिद्धहस्त हैं। 'स्वयंसेवक, भटका साथी, परियों की कहानियाँ' आदि किशोरोपयोगी संग्रह आपकी प्रतिभा के परिचायक हैं।

श्री राधाकृष्णप्रसाद (आरा) नवयुवक कथाकारों की टोली में अग्रदूत की भाँति अगली पाँती पर नायकत्व का झंडा लिये खड़े हैं। आपकी कहानियाँ 'सादगी और सुन्दरता' का नमूना हैं। छोटी-छबीली कहानियाँ, फालतू एक शब्द भी नहीं, भरती का एक वाक्य नहीं, जीवन के मर्म पक्ष को छूनेवाली कल्पना, पाठक के हृदय और मस्तिष्क को दोनों हाथों पर गेंद की तरह संतुलन के साथ उछालनेवाली भावना-लहरी, अकृत्रिम कृषक-कन्या की-सी भोली भाली भाषा, दुधमुँहे बच्चे की मुस्कान-जैसी मनभावनी शैली। 'देवता', 'विभेद' और 'अन्तर की बात'—तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, और अभी एक सौ छपी कहानियाँ संग्रह रूप में प्रकाशित होने की बाट जोह रही हैं, एक नूतन उपन्यास भी प्रकाश की प्रतीक्षा में है। आप कालेज की उच्च कक्षा के छात्र हैं अभी, पर भविष्य के कथा-साहित्य-क्षेत्र की उर्वरता आपकी सुपुष्ट प्रतिभा के कणों के लिये उत्सुक जान पड़ती है। बँगला के कथा साहित्य-सागर का आपने तन्मयता से मन्थन किया है। आपके पूर्ण विकास का युग बिहार का प्रभापूर्ण स्वर्णयुग होगा, इसमें सन्देह नहीं।

स्वर्गीय महामहोपाध्याय पंडित रामावतार शर्मा के सुपुत्र पंडित नलिन-विलोचन शर्मा, एम्० ए०, एक मर्मज्ञ आलोचक और तलस्पर्शी कथाकार हैं। इनकी शैली इनकी अपनी चीज है। साधारण पाठक को इनकी कहानियाँ कठिन प्रतीत होंगी, भाव में और भाषा में भी। इनकी चीजें उच्चकोटि की होती हैं। कहानी-कला की 'टेकनीक' इनकी कहानियों में प्रचुर मात्रा में है। परिष्कृत मस्तिष्क और विद्याविलासी मनोवृत्ति के पाठक इनकी कहानियों के साथ अपने हृदय का सुर खूब मिला सकते हैं।

मुजफ्फरपुर के बाबू राजेश्वरप्रसादनारायण सिंह, बी० ए०, बड़ी मस्ती भरी

कहानियाँ लिखते हैं। 'आजादी की कुर्बानियाँ' आपकी प्रसिद्ध मस्तानी रचना है। आपके स्वाध्याय का गाम्भीर्य आपकी रचनाओं से व्यक्त होता है।

शाहाबाद के श्रीकमलाकान्त वर्मा, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, बिहार के कीर्त्तिशाली कथाकारों मे हैं। 'पगडंडी', 'आषाढस्य प्रथम दिवसे' आदि कहानियाँ बहुत ही दिलचस्प हुई हैं।

गया जिले के श्री जानकीवल्लभ शास्त्री संस्कृत-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान होते हुए भी हिन्दी के मार्मिक आलोचक, रससिद्ध कवि और भावुक कथाकार हैं। आप वस्तुत एक विशुद्ध साहित्य-सेवी हैं। आपके पांडित्यपूर्ण साहित्यिक लेख आपकी गहन अध्ययनशीलता और मननशीलता की सूचना देते हैं। आपकी ललित संस्कृत-कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित हो चुका है। 'कानन' आपकी हिन्दी-कहानियों का अनूठा संग्रह है। आपकी कहानियों मे भाव-प्रवणता और भाषा में कवित्व की छटा होती है।

गया जिले के ही श्रीकामताप्रसाद सिंह एक विकासोन्मुख कहानीकार हैं। आपकी कहानियाँ प्रफुल्ल और कलापूर्ण होती हैं।

भागलपुर की अस्तंगत पत्रिका 'बीसवीं सदी' के संपादक श्रीतारकेश्वर प्रसाद ने कई अच्छी कहानियाँ लिखी हैं। 'गाँव की जमीन पर' आपका एक रोचक उपन्यास है। पूर्वोक्त प्रख्यात कथाकार पंडित जगदीश झा 'विमल' के सुपुत्र श्रीपीताम्बर झा एक भावुक कहानीकार हैं। आपने नये ढंग की कहानियाँ लिखी हैं। आपकी कहानियों का संग्रह 'रसबिन्दु' प्रकाशित है।

इन सबके अतिरिक्त अभी और कितने ही कहानी-लेखक बिहार मे हैं। यथासम्भव हमने प्रमुख लेखकों के विषय मे ही लिखने का प्रयास किया है। समालोचनात्मक दृष्टि से हमने किसी को नहीं देखा, संक्षिप्त परिचय मात्र देना लक्ष्य था। पटना सिटी के पंडित गिरिधारीलाल शर्मा 'गर्ग', बी० ए० (ऑनर्स) की लिखी हुई 'कहानी-कला' नामक नई पुस्तक हाल ही मे प्रकाशित हुई है, जो बिहार मे इस तरह का पहला प्रयत्न होने के कारण इस प्रसंग मे विशेष उल्लेखनीय है।

हॉं, कहानी-लेखिकाओं का भी प्रादुर्भाव बिहार मे हुआ है। प्रथम बिहारी महिला कथाकार श्रीमती शैलकुमारी देवी का जन्म १८६५ ई० में हुआ। आप ही के उद्योग से, सन् १६१७ में, छपरा शहर मे, 'महिला-समिति' की स्थापना हुई और मासिक 'महिला दर्पण' आपकी ही देखरेख मे निकला। 'उमासुंदरी' आपका एक रोचक उपन्यास 'चॉंद' कार्यालय (इलाहाबाद) से प्रकाशित हुआ था।

दूसरी कहानी-लेखिका हैं श्रीमती शारदाकुमारी देवी। आपका जन्म सन् १८६८ में, मुजफ्फरपुर में, हुआ। आप ब्याह के कुछ ही वर्ष बाद विधवा हो गईं। तब से बराबर साहित्य, समाज और देश की सेवा कर रही हैं। सन् १९३७ में आप 'एम० एल० ए०' चुनी गईं। हिन्दी और अँगरेजी के सिवा आप बँगला, गुजराती और मराठी भी जानती हैं। 'महिला-दर्पण' की आप भी बहुत दिनों तक सम्पादिका रहीं। १९२६ ई० में आपकी कहानियों का संग्रह 'गल्प-विनोद' उपर्युक्त चाद-कार्यालय से प्रकाशित हुआ।

इनके अतिरिक्त और भी कई कहानी-लेखिकाएँ हैं—श्रीमती अन्नपूर्णाकुमारी सिंह, श्रीमती विमला देवी 'रमा', विदुषी सुशीला देवी सामंत, श्रीमती प्रकाशवती श्रीवास्तव, श्रीमती प्रभावती देवी, श्रीमती विद्यावती एम्० ए०, श्रीमती तारा देवी, सुश्री शकुन्तला देवी साहित्यालंकार, कुमारी सुशीला सिंह और ललिता देवी 'लता'। इन सबकी रचनाएँ पत्रों में प्राय निकलती रहती हैं।

आशा है, हिन्दी के कथा-साहित्य को समृद्धिशाली बनाने में बिहार अपना हिस्सा पूरा करेगा और उसके इस महत्त्वपूर्ण कार्य में हमारे सभी कथाकार सहायक होंगे। तथास्तु।

बिहार की हिन्दी-पत्र पत्रिकाएँ

श्रीराधाकृष्णप्रसाद, आरा (शाहाबाद)

समाचार-पत्रों का आज हमारे जीवन में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज के इस वैज्ञानिक युग में समाचार पत्रों का महत्त्व निर्विवाद सर्वोपरि है। सुबह होते ही आज का शिक्षित-समाज समाचार पत्रों की ओर टूट पड़ता है। संसार की हलचलें, तेजी-मन्दी के भाव, और न जाने कितनी बातें जानने को हम नित्य उत्सुक रहते हैं। नये समाचार जानने की उत्कंठा मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

हिन्दी के समाचार-पत्र अब बहुत पिछड़े नहीं हैं। देश की किसी भी प्रान्तीय भाषा के पत्रों से हिन्दी के समाचार-पत्र अधिक प्रगतिशील हैं। राष्ट्रीयता की भावना को देशव्यापी बनाने में हिन्दी के पत्रों ने सबसे अधिक प्रयास किया है, आज भी कर रहे हैं। 'आज, भारत, हिन्दुस्तान, विश्वमित्र और राष्ट्रवाणी'-जैसे दैनिक तथा 'आज, प्रताप, सैनिक, नवशक्ति, देश-दूत, भारत, विश्वमित्र एवं अर्जुन'-जैसे साप्ताहिक तथा 'विशाल भारत, हंस, सुधा, माधुरी, सरस्वती, वीणा, विश्वमित्र और विश्ववाणी'-जैसी मासिक पत्रिकाएँ हिन्दी को आज प्राप्त हैं। हिन्दी की यह प्रगति निस्सन्देह आशावर्द्धक एवं संतोषप्रद है। यद्यपि अभी हिन्दी-संसार की जनता यथेष्ट उदार नहीं बनी है और न हमारे पाठकों का मानसिक धरातल ही उतना ऊँचा हुआ है, तथापि हम पूर्णतया निराश भी नहीं हैं। हिन्दी का अधिकांश पाठक-समुदाय उस श्रेणी का है जो सदा रोटी की समस्या में उलझ रहा है—उसके पास इतने पैसे नहीं कि वह रोज अखबार खरीद सके। जो धनी-समाज से आते हैं वे अधिकतर अँगरेजी पत्रों के प्रेमी और समर्थक होते हैं। इस कारण हिन्दी-पत्रों का समुचित विकास नहीं हो पाता। फिर भी उनके सुदिन बहुत दूर नहीं हैं।

रामदीन सिंह को दे डाला और इन्हींने इसे यह नया नाम दिया। फिर एक साल बाद ही इन्होंने अपने सम्पादकत्व मे 'क्षत्रिय-पत्रिका' निकाली। हिन्दू-कुल-सूर्य उदयपुराधीश महाराणा सज्जन सिंह बहादुर ने तीन हजार रुपये देकर इस पत्रिका की सहायता की थी। मझौली-नरेश लाल खड्ग-बहादुर मल्ल की भी इसपर विशेष कृपा रहती थी, क्योंकि उन्हीं के नाम पर प्रेस खुला था। अत यह पत्रिका बहुत दिनों तक चलती रही। केवल यही एक पत्रिका नहीं, कई पत्र-पत्रिकाएँ कर्मवीर बाबू रामदीन सिंह के सरक्षण मे पलती रहीं। उन दिनों पडित प्रतापनारायण मिश्र के सम्पादकत्व मे कानपुर से मासिक 'ब्राह्मण' निकलता था, बाबू साहब ने उसकी प्रसिद्धि और लोकप्रियता देखकर, सन् १८६७ ई० मे, उसका स्वत्व खरीद लिया। साथ-साथ वह भी चलने लगा। एक तीसरी पत्रिका और भी थी, जो सन् १८८७ ई० से ही निकल रही थी—'हरिश्चन्द्रकला'। यह तीस पैंतीस बरसों तक चलती रही। और, बीच मे, सन् १८६७ ई० मे, पूर्वोक्त 'विद्या-विनोद' भी पुन जीवित हो उठा था। यह चौथा मासिक भी इसी प्रेस से निकलता रहा। कैसा अदम्य उत्साह था! कैसी सच्ची लगन थी!

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के अन्तिम प्रहर में बिहार मे हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की खासी धूम और चहल-पहल रही। सन् १८६७ ई० में, पटना के बिहार-नेशनल (बी० एन०) कालेज के छात्रों के उत्साह से, 'पटना-कवि-समाज' की स्थापना हुई। इस समाज ने अपनी मुख पत्रिका 'समस्या-पूर्ति' निकाली। आरा निवासी बाबू ब्रजनन्दन सहाय इसके सम्पादक हुए। अपने समय में यह बहुत लोकप्रिय थी। देश के सभी भागों से कविजन इसमें पूर्तियाँ भेजते थे। स्वनामधन्य बाबा सुमेरदास की पूर्त्तियाँ भी इसमें छपती थीं। किन्तु इतनी पत्र-पत्रिकाओं से भी उन दिनों लोगों को साहित्यिक भूख मिटती न थी। इसी लिये सन् १८६७ ई० मे ही, खड्गविलास प्रेस से, पाँचवीं मासिक पत्रिका 'शिक्षा' निकली, जो बाद साप्ताहिक होकर अन्त मे फिर मासिक हुई। यह लगभग चालीस वर्षों तक हिन्दी-सेवा कर सन् १९३५-३६ के लगभग समाधिस्थ हुई। इसकी सेवाएँ चिरस्मरणीय हैं। बिहार के दीर्घजीवी पत्रों मे इसका बड़ा ऊँचा स्थान है। इसके सम्पादक थे पडित सकलनारायण शर्मा तीर्थत्रय (अब महामहोपाध्याय), जो आजकल कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत के व्याख्याता हैं। शिक्षा के सम्पादकों में बाबू ब्रजनन्दन सहाय, थिकेट साहब, पडित ईश्वरीप्रसाद शर्मा, पडित दुर्गाप्रसाद त्रिपाठी, पंडित पारसनाथ त्रिपाठी और प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र के भी नाम गिनाये

चाँद महारथी, सुधा, कर्मयोगी,
भविष्य आदि के सम्पादक
पं० नन्दकिशोर तिवारी, बी० ए०

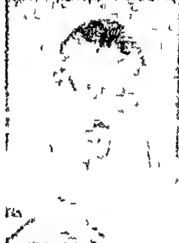

पं० श्रीकान्त ठाकुर विद्यालंकार
दैनिक 'विश्वमित्र' सम्पादक
बम्बई

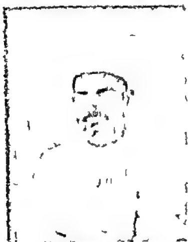

श्रीदेवव्रत शास्त्री
('नवशक्ति'-'राष्ट्रवाणी'-सम्पादक)

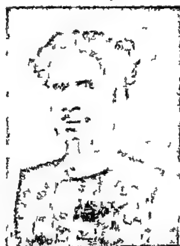

'योगी'-सम्पादक
श्रीव्रजशंकरजी

मासिक 'विश्वमित्र' (कलकत्ता) के भूतपूर्व
सम्पादक—प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र,
एम० ए०, बी० एल० (चन्द्रधारी-
मिथिला कालेज,

दैनिक 'राष्ट्रबन्धु' (कलकत्ता)
और मासिक 'जन्मभूमि'
(पटना) के भूतपूर्व सम्पादक
श्रीविश्वनाथसिंह शर्मा

प्रोफेसर अमरनाथ झा, एम० ए०
(वाइसचान्सलर, प्रयाग विश्वविद्यालय)

प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा एम० एस् सी०
(हिन्दू विश्वविद्यालय)

प्रो० कृपानाथ मिश्र, एम० ए०
(साइन्स-कालेज, पटना)

प्रिन्सिपल विश्वमोहनकुमार सिंह
(चन्द्रधारी-मिथिला-कालेज, दरभंगा)

प्रो० धर्मेन्द्रब्रह्मचारी शास्त्री, एम० ए०
पटना-कालेज

प्रो० केसरीकिशोरशरण, एम० ए०,
बी० एल०, राजेन्द्र-कालेज (छपरा)

जाते हैं, परन्तु प्रधानता पंडित सकलनारायणजी की ही रही—यद्यपि इन सबका सहयोग पंडितजी को प्राप्त था।

पटना के पुराने पत्रों में 'खत्री हितैषी', 'भारत-रत्न', पं० विजयानन्द त्रिपाठी-सम्पादित मासिक 'उद्योग', पं० कृष्णचैतन्य गोस्वामी सम्पादित मासिक 'चैतन्य-चन्द्रिका', बाबू गोकुलानन्द प्रसाद वर्मा-सम्पादित दैनिक 'बिहारी' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। त्रिपाठीजी के 'उद्योग' और गोस्वामीजी की 'चन्द्रिका' में साहित्यिक गुणों की अधिकता थी। ये दोनों सचित्र मासिक थे।

पटना के नामी बारिस्टर और विद्वान् हिन्दी-लेखक श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल के सम्पादकत्व में, सन् १९१४ ई० के मध्य में, साप्ताहिक 'पाटलिपुत्र' निकला। जायसवालजी छ महीने तक इसे सुसम्पादित मासिक पत्र की तरह निकालते रहे। यह हथुआ-राज्य का पत्र था। राज्य के संरक्षण में यह बहुत बरसों तक चलता रहा। जायसवालजी के अलग होने पर इसके संपादक हुए पटना निवासी बाबू सोनासिंह चौधरी, जिनके सुयोग्य सहकारियों में पंडित पारसनाथ त्रिपाठी और रामानन्द द्विवेदी मुख्य थे। त्रिपाठीजी शाहाबादी थे और द्विवेदीजी मिर्जापुरी। चौधरीजी के विनोदी स्वभाव से इन सहकारियों का खासा मेल था। पत्र बहुत सुन्दर निकलता था। एक विशेषांक तो ऐसा सर्वाङ्गसुन्दर निकला था कि आजतक वैसा विशेषांक किसी साप्ताहिक का न देखा गया।

देशरत्न बाबू राजेन्द्र प्रसाद के सम्पादकत्व में, सन् १९१९ ई० में, पटना से साप्ताहिक 'देश' निकला। उक्त 'बिहारी' के बन्द हो जाने से प्रान्त में जो सूनापन छाया हुआ था, वह दूर हुआ। हिन्दी-संसार में इसकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई। पीछे आचार्य बदरीनाथ वर्मा, एम० ए०, काव्यतीर्थ, इसके सम्पादक हुए। पंडित मथुराप्रसाद दीक्षित और पंडित पारसनाथ त्रिपाठी भी इसके सम्पादकीय विभाग में खूब काम कर चुके हैं। यह करीब दस साल तक प्रान्त में राष्ट्रीय भावों का निर्भीकता-पूर्वक प्रचार करता रहा। अन्त में यह भी आर्थिक और राजनीतिक संकटों का शिकार हो गया। सन् १९४० ई० में, प० रामचन्द्र त्रिवेदी के सम्पादकत्व में, इसी नाम का साप्ताहिक फिर निकला, किन्तु मुश्किल से एक ही साल चल सका।

राष्ट्रीय'देश' के बाद, ही महात्मा गान्धी के 'यंग इंडिया' का हिन्दी रूपान्तर स्वरूप, पटना से 'तरुण भारत' साप्ताहिक निकला था, जिसके संपादक थे वही उपर्युक्त 'देश' वाले पंडित मथुराप्रसाद दीक्षित और उनके सहकारी थे श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी। चौधरी-टोला (पटना) के सुप्रतिष्ठित रईस श्रीमान् लाल बाबू इसके

परिस्थितियों से विवश होकर इसे भी महाशून्य में निलीन होना पड़ा। पर 'बिजली' के आकाश के आवरण में छिपने पर भी पटना के साहित्य-क्षेत्र में अंधकार का अधिकार न हुआ। बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से त्रैमासिक 'साहित्य' जगमगाता निकल पड़ा। हिन्दी साहित्याकाश के दो देदीप्यमान नक्षत्र इसके सम्पादक थे—श्री लक्ष्मीनारायण-सिंह 'सुधांशु', एम० ए० और श्री जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', एम० ए०। उस समय ये दोनों सज्जन देवघर के गोवर्द्धन-साहित्य विद्यापीठ के कर्णधार थे। इससे सम्पादन कार्य में असुविधा होने लगी। तब आचार्य बदरीनाथ वर्मा ने काम सँभाला। इसके निबन्ध बहुत ऊँचे दर्जे के होते थे। इसकी आलोचनाएँ पांडित्यपूर्ण होती थीं। किन्तु गम्भीर साहित्यिक होने के कारण जनता की हल्की रुचि पर इसका सिक्का न जम सका। चार-पाँच अंकों के बाद विश्राम ही लेना पड़ा।

सन् १९३८ में, साम्यवादी दल के 'जन-साहित्य-संघ' (पटना) की ओर से, 'जनता' नामक साप्ताहिक पत्रिका निकली। इसके सम्पादक हुए हिन्दी के सुप्रसिद्ध पत्रकार श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी। समाजवादी विचार की यह प्रगतिशील पत्रिका दलितों, पीड़ितों और शोषितों की आवाज बुलन्द करके एक अभिनव क्रान्ति का आवाहन करने में समर्थ हुई। १९३९ के किसान आन्दोलन को आगे बढ़ाने का श्रेय इसी को है। इसकी तीव्र आलोचनाओं के कारण सरकार की वक्र दृष्टि इसपर पड़ी। अधिकारिवर्ग का कोपभाजन होकर इसे अपना कार्यक्षेत्र सूना छोड़ जाना पड़ा।

उन्हीं दिनों बिहार-लैंडहोल्डर्स-एसोसिएशन (पटना) की ओर से एक साधारण साप्ताहिक 'जीवन' निकला था। यह जमीन्दारों का पत्र था। युग-प्रभाव से जनप्रिय न हो सका। कुछ ही दिनों बाद बेचारा 'जीवन' निर्जीव हो गया।

'इंडियन नेशन' प्रेस (पटना) से कुछ दिनों तक दैनिक 'जनक' निकलता रहा। यह पूरा विदेह था।

हाँ, बिहार-सरकार का कृषि विभाग दस साल से जो मासिक 'किसान' निकाल रहा है, जिसमें किसानों के हित की बहुत-सी उपयोगी बातें रहती हैं, वह वस्तुतः बड़ा लाभदायक पत्र है। शुरू में उसके त्रैमासिक रूप के सम्पादक थे बिहार-कौंसिल के उस समय के अध्यक्ष माननीय बाबू रजनधारी सिंह। इन दिनों संपादक हैं बिहार के वयोवृद्ध पत्रकार श्रीनरेन्द्रनारायण सिंह। आप सीतामढ़ी (मुजफ्फरपुर) के निवासी हैं। आप अखिलभारतवर्षीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन

श्रीअवधनारायण लाल (दरभंगा) पृष्ठ ५८३

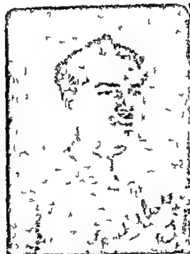

सा० र० श्रीअनूपलाल मंडल (पूर्णिया)

सुप्रसिद्ध कहानी लेखक श्रीराधाकृष्णजी
(राँची)

श्रीप्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' (शाहाबाद)

आरा निवासी प्रसिद्ध कहानी लेखक
श्रीराधाकृष्णप्रसाद

श्रीसूर्यदेवनारायण श्रीवास्तव
(समस्तीपुर)

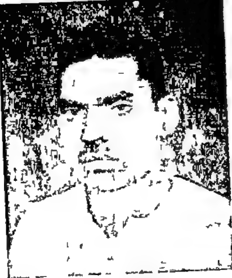

श्रीयुगलकिशोर शास्त्री (मुँगेर) 'प्रताप'-सम्पादक

सुरेन्द्र झा 'सुमन' मिथिलामिहिर सम्पादक

श्रीदिनेशदत्त झा, (भागलपुर) दैनिक 'आर्यावर्त्त'-सम्पादक

श्रीत्रिवेणी प्रसाद बी ए 'बालकेसरी'-सम्पादक, आ

(प्रयाग) के उपमंत्री और उसकी 'सम्मेलन पत्रिका' के सम्पादक रह चुके हैं। 'हरिश्चन्द्र कला' के भी कुछ दिन सम्पादक रहे। 'शिक्षा' की भी सेवा की है।

बिहार-कोआपरेटिव फेडरेशन (सहयोग-संघ) से चार साल से 'गाँव' प्रति मास निकलता है। इसके संपादक हैं रायसाहब मथुराप्रसाद, बी० ए०, और पहले थे श्रीदीपनारायण सिंह, बी० ए०, एम० एल० ए०। इसमें ग्रामीणों के योग्य अच्छे अच्छे लेख रहते हैं। इसका कार्यालय पटना-गया-रोड पर पटना में है।

इधर कुछ दिनों से, बिहार सरकार के पब्लिसिटी डिपार्टमेंट की ओर से, सचित्र साप्ताहिक 'देहात' निकलता है। इसके संपादक हैं बाबू विश्वनाथप्रसाद वर्मा, जो पहले बिहार के अँगरेजी-दैनिक 'इंडियन नेशन' के सम्पादकीय विभाग में थे। अपने ढंग का यह अच्छा पत्र है। इसके द्वारा वर्त्तमान विश्वव्यापी युद्ध के प्रामाणिक समाचार सरल भाषा में देहाती जनता तक पहुँचाये जाते हैं।

बिहार सरकार की निरक्षरता निवारण-समिति की ओर से भी 'रोशनी' नामक पाक्षिक पत्रिका निकलती है। इसके संपादकों में प्रमुख हैं प्रोफेसर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, एम० ए० (त्रितय) और प्रो० कृपानाथ मिश्र, एम० ए०। नागरी और फारसी लिपियों में एक ही तरह के विषय छपते हैं। भाषा बहुत ही सरल रहती है—दोनों लिपियों में एक-सी।

दो अस्तगत मासिकों को हम नहीं भूल सकते—बिहारशरीफ का 'नालन्दा' और पटना की 'जन्मभूमि'। प्रथम का जन्म सन् १९३५-३६ में हुआ। प्रोफेसर रत्नचन्द्र छत्रपति, एम० ए०, साहित्यरत्न, और पं० छेदीलाल झा सम्पादक थे। दूसरी पत्रिका १९३८ में निकली थी। सम्पादक थे श्रीविश्वनाथसिंह शर्मा। छत्रपतिजी बिहार-शरीफ के निवासी हैं और झा जी भी। शर्माजी मुजफ्फरपुर जिले के हैं। शर्माजी इसके पहले कलकत्ता से दैनिक 'राष्ट्रबंधु' निकाल चुके हैं। उक्त दोनों मासिक शुद्ध साहित्यिक थे। 'नालन्दा' को तो एक-डेढ़ साल टिकने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, पर 'जन्मभूमि' दो-तीन मास ही बाँकी झाँकी दिखाकर अपनी लीला समाप्त कर गई।

सन् १९३८ में ही, बाल शिक्षा समिति (बाँकीपुर) से, पंडित रामदहिन मिश्र के सम्पादकत्व में, किशोरोपयोगी सचित्र मासिक 'किशोर' निकला। इसके सहकारी संपादक हुए पंडित हंसकुमार तिवारी। दो-ढाई साल के बाद तिवारीजी अब अलग हो गये। 'किशोर' की गणना अच्छे पत्रों में है। इसके जन्म से पत्र प्रकाशन-क्षेत्र में बिहार की प्रतिष्ठा और भी बढ़ी है।

बिहार के गौरव स्वरूप तीन पत्र इधर पटना से और निकले हैं—एक मासिक 'आरती' और दो दैनिक—'राष्ट्रवाणी' तथा 'आर्यावर्त्त'। प० प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' ने सन् १९४० में 'आरती' को प्रकाशित करके बिहार को एक नई चीज दी है। हिन्दी के यशस्वी लेखक और कवि तथा 'विशालभारत' के भूतपूर्व सपादक श्रीसच्चिदानन्द-हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का सहयोग 'आरती' को प्राप्त है। यह विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका है, किन्तु भारतीय और अ तर्राष्ट्रीय राजनीतिक समस्याओं पर भी सम्पादकीय विचारों द्वारा प्रकाश डाला जाता है। 'आरती' के जगमगाते रहने से ही बिहार की लाली रहेगी। बिहार के प्रत्येक हिन्दीप्रेमी को इसे स्नेहसिक्त करना चाहिये।

'राष्ट्रवाणी' को जन्म देने का श्रेय इसके सपादक श्रीदेवव्रतजी को है, जो पूर्वोक्त 'नवशक्ति' के भी प्राणदाता हैं। बिहार एक दैनिक पत्र का अभाव अनुभव कर रहा था। 'नवशक्ति' भी कुछ दिनों तक दैनिक रूप में निकली थी, किन्तु अर्थाभाव के कारण आगे न बढ सकी। 'नवशक्ति' के भवन की नींव भी राष्ट्र धन पडित जवाहरलाल नेहरू के हाथों पड चुकी है, पर उसका निर्माण भी अर्थाभाव ही के कारण रुका हुआ है। यह बात भी बिहारियों को ध्यान में रखनी चाहिये। किन्तु देवव्रतजी की लगन और धुन इतनी पक्की है कि 'राष्ट्रवाणी' चलाकर और 'नवशक्ति'-भवन बनवा कर ही कल करेंगे। उनकी 'राष्ट्रवाणी' का उद्‌घाटन देशपूज्य डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी ने किया है, इसलिये यशोधन कर-कमलों की रोपी हुई लता दिन दिन लहलहाती और ऊँचा चढती जायगी। इसके अतिरिक्त 'राष्ट्रवाणी' जिस गति से लोकप्रियता-सम्पादन कर रही है वह निश्चय ही उसे सफलता की चोटी पर पहुँचाकर रहेगी।

'इडियन नेशन प्रेस' से निकलनेवाले, श्रीमान् मिथिलेश द्वारा सरक्षित, 'आर्यावर्त्त' की तो बात ही निराली है। दरभगा राज्य की छत्रच्छाया में उसको कभी अर्थसन्ताप नहीं सता सकता। उसके सुयोग्य प्रधान सम्पादक हैं पडित दिनेशदत्त झा, बी ए, जो हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ दैनिक 'आज' (काशी) के सम्पादकीय विभाग में बरसों रहकर पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर चुके हैं। आप भागलपुर जिले के निवासी हैं। आपके सहकारी हैं श्रीललितप्रसादजी, बिहारशरीफ-निवासी, जो बहुत दिनों तक कलकत्ता के राष्ट्रीय दैनिक 'स्वतत्र' के सम्पादकीय विभाग में काम कर चुके हैं। ऐसे मँजे हाथों में पड़ने से ही उसका रूप स्वच्छ कान्ति पा सका है। उसका दाम सिर्फ एक पैसा है। यह भी दरभगा-राज्य के

सरक्षण का प्रताप है और श्रीमन्त मिथिलेश का सहज औदार्य भी। इससे वह बहुत लोकरंजक प्रमाणित हो रहा है।

बिहार मे दो अँगरेजी दैनिक भी हैं—'इडियन नेशन' और 'सर्चलाइट'। पहला मिथिलेश-सरक्षित है। दूसरा पुराना राष्ट्रीय पत्र है। इस दूसरे के सम्पादक श्रीमुरलीमनोहरप्रसादजी बडे सुयोग्य और अनुभवी पत्रकार हैं। इस दूसरे के कार्यालय से ही पिछले राष्ट्रीय आन्दोलन मे इसी के नाम का हिन्दी-दैनिक (सर्चलाइट—हिन्दी-सप्लिमेंट) निकलता था। पहले के कार्यालय से उपर्युक्त दैनिक 'आर्यावर्त्त' निकल रहा है। अँगरेजी और हिन्दी के ये चारों दैनिक तन मन-धन से बिहार की सेवा कर रहे हैं। इनकी सेवा से बिहार का जो उपकार हो रहा है उससे आशा बँधती है कि बिहार अब दिन-दिन उन्नति के प्रशस्त पथ पर अग्रसर होता चला जायगा। तथास्तु।

शाहाबाद

आरा की नागरी-प्रचारिणी सभा की त्रैमासिक 'नागरी हितैषिणी पत्रिका' ही इस जिले की सबसे पहली पत्रिका है, जो बीसवीं सदी के आरम्भिक प्रहर मे ही प्रकाशित हुई थी। इसके सम्पादक थे हिन्दी और सस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् पंडित सकलनारायण शर्मा। श्रीजैनेन्द्रकिशोर जैन, बाबू शिवनन्दन सहाय, बाबू ब्रजनन्दन सहाय आदि के सहयोग से यह बरसों चलती रही। अन्त में इसका नाम 'साहित्य-पत्रिका' हो गया और इस नाम से यह मासिक रूप मे प्रकट हुई। इसके सम्पादक हुए सभा के प्रधान मत्री और हिन्दी के विख्यात लेखक बाबू ब्रजनन्दन सहाय। प० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, बाबू अवधबिहारीशरण एम० ए० बी० एल०, बाबू रघुनाथ प्रसाद मुख्तार, बाबू कृष्णजी सहाय आदि हिन्दी-लेखकों के सहयोग से कई साल निकलकर यह भी बन्द हो गई।

दूसरा सचित्र मासिक प० ईश्वरीप्रसाद शर्मा ने सन् १६१७ ई० मे निकाला—'मनोरंजन'। यह अपने समय का बडा लोकप्रिय पत्र था। शुद्ध साहित्यिक था। सम्पादनशैली मे सामयिकता थी। हिन्दी पत्रों मे यह अपना एक स्थान छोड गया है। यद्यपि यह तीन ही वर्ष तक निकला, तथापि यह नये ढँग का एक बहुत ही सुसज्जित और सुन्दर मासिक पत्र था। तृतीय बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति बाबू शिवनन्दनसहाय के शब्दों में—"'मनोरंजन' खूब सजधज कर निकलता था और अपने सुन्दर लेखों से मन को रंजित किया करता था।" इसके दो महत्त्वपूर्ण विशेषाङ्क भी निकले थे।

'मनोरंजन' के बन्द होने पर कुछ दिनों तक उक्त 'साहित्य पत्रिका' आँसू पोंछती रही। यह भी १९२० के लगभग बन्द हो गई।

सन् १९२० मे आरा से साप्ताहिक 'राम' निकला। इसके सम्पादक हुए श्रीहरिहरप्रसाद मुख्तार और फिर पंडित रामप्रीत शर्मा 'विशारद'। लगभग तीन वर्ष निकलकर यह भी बन्द हुआ। कुछ दिन यह मासिक रूप में भी चला था। सहयोग-समिति और कृषि पर इसका विशेष ध्यान रहता था।

आरा से निकलनेवाला 'जैनसिद्धान्त-भास्कर' हिन्दी में अपने ढंग का अकेला त्रैमासिक है। ओरियंटल जैन-लाइब्रेरी के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री के० भुजबली शास्त्री इसका सम्पादन करते हैं। जैन धर्म-सम्बन्धी खोज-भरे लेख इसमे रहते हैं। यह सन् १९१४—१५ से बराबर निकल रहा है।

आरा से ही निकलनेवाला 'हितैषी' भी एक साधारण साप्ताहिक पत्र है। इसके संपादक हैं श्रीवैद्यनाथप्रसादजी। अधिकतर इसमे देहातियों और स्कूल के विद्यार्थियों के काम की चीजें छपती हैं। नीलामी अदालती इश्तहार भी छपा करते हैं।

आरा से प्रकाशित होनेवाले सचित्र मासिक 'मारवाड़ी सुधार' की गिनती अच्छे पत्रों मे होती थी। श्रीहरद्वारप्रसाद जालान और श्रीनवरंगलाल तुलस्यान तथा श्रीदुर्गाप्रसाद पोद्दार नामक तीन उत्साही मारवाड़ी युवकों के प्रयत्न से, 'मारवाड़ी-सुधार-समिति' के मुखपत्र के रूप मे, इसका जन्म सन् १९२१ ई० मे हुआ। इसके सम्पादक हुए बाबू शिवपूजनसहाय। पत्र के सम्बन्ध में उपर्युक्त बाबू शिवनन्दन सहाय ने अपने उसी भाषण मे कहा था—"'मारवाड़ी-सुधार' की छपाई-सफाई सराहनीय है। लेख भी उत्तम और लाभदायक हैं।" यह कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, कानपुर, भागलपुर, मुजफ्फरपुर, रानीगंज, झरिया आदि नगरों के धनाढ्य मारवाड़ियों की आर्थिक सहायता से प्रकाशित होता था। जब 'अखिलभारतवर्षीय मारवाड़ी-अग्रवाल-महासभा' की ओर से उसका मुखपत्र 'मारवाड़ी-अग्रवाल' कलकत्ता से निकलने लगा तब पूरे दो वर्ष तक निकालकर यह पत्र बन्द कर दिया गया। यह सामाजिक होते हुए भी साहित्यिक था।

पंडित पारसनाथ त्रिपाठी, जो किसी समय पटना के 'पाटलिपुत्र' के सम्पादक-मंडल मे थे, सन् १९३७ मे आरा से साप्ताहिक रूप में 'पाटलिपुत्र' निकालने लगे। पत्र अच्छा निकला, पर प्राय एक वर्ष निकलकर, त्रिपाठीजी की असामयिक मृत्यु के कारण, जो मोटर की दुर्घटना से हुई थी, बन्द हो गया।

त्रिपाठीजी एक कर्मठ पुरुष थे। यदि वे जीवित रहते तो उनका 'पाटलिपुत्र' आज बिहार के एक अलङ्कृत सर्वोत्तम साप्ताहिक पत्र का स्मारक बना रहता।

सन् १९३७ के दिसम्बर में आरा में बिहार-प्रादेशिक हिंदी साहित्य-सम्मेलन का पन्द्रहवाँ अधिवेशन हुआ। उसी अवसर पर साप्ताहिक 'स्वाधीन भारत' का जन्म हुआ। इसके संपादक हुए श्रीरामायणप्रसाद, एम० एल० ए०, और श्रीबनारसी प्रसाद भोजपुरी। इसका सम्पादन अच्छे ढँग से होता था। इसके संचालन के लिये 'भारत प्रिंटिङ्ग वर्क्स लिमिटेड' की स्थापना हुई थी। लगभग दो साल यह जीवित रहा। राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रधान सम्पादक के फँस जाने से प्रेस के अधिकारियों ने इसे नामशेष कर दिया।

सन् १९३९ में श्रीकृष्णमोहन वर्मा ने आरा से 'अग्रदूत' नामक एक प्रगतिशील सुसम्पादित साप्ताहिक निकाला। किन्तु, अर्थाभाव के कारण, चार ही अंक निकालकर, इसका प्रकाशन बन्द करना पड़ा। यह बहुत ही सुन्दर निकला था।

आरा से, अप्रैल १९४१ से, 'बाल केसरी' नामक एक सर्वाङ्ग-सुन्दर सचित्र बालोपयोगी मासिक पत्र निकल रहा है। आरा के सुपरिचित स्वर्गीय हिन्दी-लेखक श्री जैनेन्द्रकिशोर जैन के सुपुत्र श्री देवेन्द्रकिशोर जैन अपने 'सरस्वती प्रिंटिङ्ग वर्क्स' नामक प्रेस से इसे निकालते हैं। इसके सम्पादक हैं अनुभवी पत्रकार और लेखक श्रीत्रिवेणीप्रसाद, बी० ए०, जो 'चाँद' और 'कर्मयोगी' (प्रयाग) के सम्पादकीय विभाग में बहुत दिनों तक रह चुके हैं। पत्र का संपादन और प्रकाशन सुन्दर ढँग से होता है। भविष्य आशाप्रद है।

गया

इस जिले से कई अच्छे पत्र निकले। किन्तु स्थायी कोई न रहा। सबसे पहली मासिक पत्रिका 'लक्ष्मी उपदेश लहरी' है। सबसे अधिक उल्लेखनीय यही है। औरंगाबाद के रायसाहब लक्ष्मीनारायणलाल इसके जन्मदाता हैं। सन् १९०३ में औरंगाबाद (गया) से यह निकली। कुछ साल बाद इसीका नाम केवल 'लक्ष्मी' हो गया और यह गया शहर के लक्ष्मी प्रेस से निकलने लगी। इस नाम से यह सन् १९२०-२१ तक निकलती रही। हिन्दी-संसार में इसने अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया। बिहार की यही एकमात्र पत्रिका समझी जाती रही। इसके कई सम्पादक हुए, जिनमें स्वयं रायसाहब के अतिरिक्त बाबू गोरेलाल, कविवर लाला भगवान 'दीन', पंडित ईश्वरीप्रसाद शर्मा और रायसाहब के सुपुत्र बाबू रामानुग्रहनारायण-

लाल, बी० ए०, बी० एल०, विख्यात हैं। 'लक्ष्मी' के बन्द होने के बाद ही रायसाहब ने 'गृहस्थ' नामक कृषि सम्बन्धी साप्ताहिक निकाला। कुछ दिन यह मासिक रूप में भी निकला। पीछे साप्ताहिक रूप मे बरसों चला। लक्ष्मी प्रेस के मैनेजर श्री बाबूलाल गुप्त भी इसके सम्पादक हुए थे और उनके सुपुत्र श्री द्वारकाप्रसाद गुप्त इसमें बिहार के साहित्य-सेवियों का परिचयात्मक विवरण धारावाहिक रूप से लिखा करते थे। यह हाल ही मे बन्द हुआ है।

बीसवीं सदी के आरम्भ मे जमोर (गया) से 'हरिश्चन्द्र-कौमुदी', गया से 'उपन्यास-कुसुमाजलि' और 'साहित्य माला' नामक पत्रिकाएँ निकलीं। प्रथम दो तो अल्पायु हुईं, किन्तु 'साहित्य-माला' कुछ समय बाद तक चलती रही। इसके बाद गया के प्रसिद्ध पुस्तक विक्रेता बाबू रामसहायलाल ने शिक्षाप्रद 'विद्या' नामक मासिक पत्रिका निकाली। इसके सपादक थे अखौरी शिवनदनप्रसाद और पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा। यह भी कुछ साल बाद बन्द हो गई। 'हसुआ' ग्राम से श्रीगोपीचदलाल ने भी सन् १९१९ में 'माहुरी-मयक' नामक एक जातीय पत्र निकाला था। वे स्वय ही इसके सम्पादक भी थे। यह कई साल तक अनियमित रूप से चलता रहा। इसके कई विशेषाक भी निकले थे।

देव (गया) के राजा राणा जगन्नाथप्रसादसिंह की प्रेरणा से तीसरी दशाब्दी मे 'कृष्ण' नामक एक सुन्दर मासिक पत्र निकला। इसके सम्पादक हुए आज के 'माधुरी'-सपादक लखनऊ निवासी पडित रूपनारायण पाडेय। किन्तु दुर्भाग्यवश राजा साहब का अचानक देहान्त हो गया। इसलिये सिर्फ एक ही अक निकल सका। इसके लिये खुला हुआ छापाखाना भी तहसनहस हो गया।

इस जिले के करमा-भगवान ग्राम के निवासी कुमार बदरीनारायण सिंह के उद्योग से, गया के क्रान्तिकारी युवक श्री श्याम बरथवार के सम्पादकत्व में, 'चिनगारी' नाम की सुन्दर साप्ताहिक पत्रिका सन् १९३८ मे निकली थी। यह समाजवाद के सिद्धान्त का प्रचार करनेवाली पत्रिका थी। इसलिये अधिक दिन जीने न पाई। इसकी सम्पादनशैली मे बड़ी ओजस्विता और तेजस्विता थी।

गया के सुप्रसिद्ध साहित्यसेवी श्रीमोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी' के सम्पादकत्व मे 'बिहार' और 'त्रिलोचन' नामक साप्ताहिक पत्र निकले थे, पर 'वियोगी' जी से इनका भी वियोग हो गया। उनके हटते ही इनको भी कर्मक्षेत्र से हटना पड़ा। 'वियोगी' जी सुरुचिशील पत्रकार भी हैं।

भागलपुर

'पीयूष-प्रवाह' नामक मासिक पत्र, सन् १८८४ में, भागलपुर से निकला था। यही पत्र, १८८३ मे, 'वैष्णव-पत्रिका' के नाम से निकलता था। यही भागलपुर का सबसे पहला पत्र है। 'पीयूष-प्रवाह' का सम्पादन पंडित अम्बिकादत्त व्यास करते थे। व्यासजी वहाँ जिला-स्कूल मे हेडपंडित थे। उनकी बदली होने के बाद यह पत्र बन्द हो गया। सन् १८८४ मे ही 'भारतपंचामृत' नामक मासिक पत्र भी भागलपुर से ही निकला था, पर चला नहीं।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में 'आत्मविद्या' और 'श्रीकमला' नामक दो मासिक पत्रिकाएँ भागलपुर से निकलीं। 'श्रीकमला' का संपादन छपरा-निवासी पंडित जीवानन्द शर्मा काव्यतीर्थ करते थे। यह सचित्र और सुसम्पादित निकलती थी। ये दोनों पत्रिकाएँ कुछ साल तक निकलकर बन्द हो गईं। किन्तु 'आत्मविद्या' के सम्पादक श्रीगोकुलानन्दप्रसाद वर्मा ने फिर 'प्रेमाभक्ति' और 'सत्संग' नामक दो धार्मिक पत्र निकाले थे। ये दोनों पत्र नियमित नहीं थे। वर्मा जी नामी पत्रकार थे।

भागलपुर जिले को ही 'गंगा' के समान उच्च कोटि की साहित्यिक मासिक पत्रिका के जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यह सन् १९३० मे, बनैली-राज्याधीश श्रीमान् कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुर के संरक्षण और पंडित गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ के संचालन तथा पंडित रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्त-शास्त्री के सम्पादकत्व मे, सुलतानगंज से निकली थी। इसके विशेषांक हिन्दी-साहित्य-भांडार के अमूल्य रत्न हैं—वेदांक, गंगांक, विज्ञानांक, पुरातत्त्वांक, चरितांक इत्यादि विशेषांक हिन्दी-संसार मे बहुत विख्यात हो चुके हैं। इसके संपादकों मे श्री शिवपूजनसहाय और पंडित गौरीनाथ झा भी थे। अन्त मे साहित्याचार्य 'मग' भी इसके सम्पादक-मंडल मे सम्मिलित हुए। पाँच छ साल निकलने के बाद यह बन्द हो गई। इसकी जगह 'हलधर' ने ले ली। पंडित गौरीनाथ झा के सम्पादकत्व में, सन् १९३६ से, साप्ताहिक 'हलधर' निकल रहा है। 'मग'जी इसके सम्पादन विभाग में हैं।

दो अन्य सुन्दर मासिक पत्रिकाएँ भी भागलपुर से निकलकर बन्द हो गईं। एक 'बीसवीं सदी', जो सन् १९३८ में निकली। इसके संपादकों मे थे श्रीतारकेश्वरप्रसाद, श्रीसत्येन्द्र अग्रवाल और श्रीमाहेश्वरीसिंह 'महेश' एम० ए०।

यह काफी प्रगतिशील थी। स्वच्छ रूप था। पाठ्यसामग्री सामयिक होती थी। किन्तु यह पूरे दो वर्ष भी न चल सकी। और, दूसरी थी 'छाया', जो पंडित हसकुमार तिवारी के सम्पादकत्व मे निकली। यह सिनेमा की, सुसस्कृत रुचि की, कलामयी, अप-टु-डेट पत्रिका थी।

भागलपुर से ही पडित अशर्फी शुक्ल ने 'शान्ति' नामक दैनिक पत्रिका निकाली थी, जो कुछ दिनों बाद क्रमश द्विदैनिक और अर्द्धसाप्ताहिक तथा साप्ताहिक रूप मे निकलकर बन्द हो गई। प० जनार्दन मिश्र 'परमेश' का मासिक 'सुप्रभात' भी इसी गति को प्राप्त हुआ।

मुँगेर

'देश-सेवक' और 'मुँगेर समाचार' इस जिले के दो पुराने पत्र थे। 'देश-सेवक' एक अच्छा साप्ताहिक था। इसके सुयोग्य सम्पादक प० श्रीकृष्ण मिश्र ने अच्छे ढँग से इसे चलाया। किन्तु यह भी टिक न सका। हाँ, यहाँ का 'प्रभाकर' विहार का एक सुदर साप्ताहिक है। सन् १६३७ से, पडित सुरेश्वर विद्यालकार के सम्पादकत्व मे, प्रभाकर प्रेस से, निकल रहा है। इसकी गणना विहार के अच्छे पत्रों मे है। इसके कई अच्छे विशेषाक भी निकले हैं। बेगूसराय के श्रीराम प्रेस से श्रीहृदयनारायण अग्रवाल के सम्पादकत्व मे सन् १६२६ से १६२६ ई० तक साप्ताहिक 'प्रकाश' भी निकला था।

मुजफ्फरपुर

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में मुजफ्फरपुर के बोस प्रेस में 'तिरहुत-समाचार' का जन्म हुआ। श्रीसिद्धेश्वरप्रसाद शर्मा (स्वर्गीय) इसके सम्पादक थे, आजकल पडित राधाकान्त झा हैं। यह साप्ताहिक पत्र तैंतीस बरसों से निकलता आ रहा है। इधर श्रीभुवनेश्वरसिंह 'भुवन' और श्रीमोहनलाल गुप्त के सहयोग मे इसकी काफी तरक्की हुई है। 'भुवन' जी इसको विशुद्ध साहित्यिक पत्र बना रहे हैं। इसके कई उत्तम सग्रहणीय विशेषाक प्रकाशित हुए हैं। यही इस जिले का सबसे पहला और पुराना पत्र है। दूसरा पुराना पत्र है 'सत्ययुग'—जिसका मुजफ्फरपुर में ही जन्म हुआ था। यह एक सुन्दर मासिक पत्र था। इसके सपादक थे शिकारपुर-(चम्पारन) निवासी पाडेय जगन्नाथ प्रसाद, दर्शनकेसरी, एम० ए०। हिन्दीजगत के सुपरिचित श्रीहेमचन्द्र जोशी और पडित नन्दकुमारदेव शर्मा भी इसके सम्पादकीय विभाग में थे। खडी बोली की कविता के कट्टर समर्थक और प्रवर्तक बाबू अयोध्या

प्रसाद खत्री के वंशधरों ने इसे निकाला था, पर अधिक दिन चला न सके। इसमें स्वामी सत्यदेव परिव्राजक बहुत लिखा करते थे।

मुजफ्फरपुर से कई पत्र निकले और बन्द हुए। उनमें वैद्यराज पंडित शिवचन्द्र शर्मा का 'आयुर्वेद प्रदीप' विशेष उल्लेखनीय है। यह सुन्दर मासिक पत्र था। 'आर्य-बाल हितैषी', 'भूमिहार-ब्राह्मण पत्रिका', 'रौनियार-हितैषी', 'कायस्थ-कौमुदी', 'मध्यदेशीय वणिक पत्रिका' इत्यादि के नाम भी उल्लेखनीय हैं। 'कायस्थ-कौमुदी' के सम्पादक थे उक्त श्रीगोकुलानन्दजी। किन्तु ये सभी पत्र जातीय अथवा सामाजिक थे, इसलिये अपने सीमित क्षेत्र में अपना काम कर चले गये। 'भूमिहार-ब्राह्मण पत्रिका' लगभग पन्द्रह बीस बरसों तक भूमिहार-ब्राह्मण प्रेस से निकलती रही। इसके सम्पादक थे श्रीयोगेश्वरप्रसादसिंह, बी० ए०, बी० एल०।

लगभग सन् १९३१ ई० में दरभंगा-राजवंश के श्रीभुवनेश्वरसिंह 'भुवन' ने 'लेखमाला' नामक त्रैमासिक पत्रिका निकाली। इसका 'विद्यापति अंक' एक अच्छा विशेषांक था। इसी को कुछ साल के बाद 'भुवन' जी ने मासिक रूप में 'वैशाली' नाम से निकाला। यह सुसम्पादित और साहित्यिक पत्रिका थी। मुजफ्फरपुर से 'वैशाली' के समान सुन्दर मासिक पत्रिका आजतक न निकली। इसका संपादन स्वयं 'भुवन' जी करते थे। उन्होंने मुजफ्फरपुर के अपने मकान में वैशाली प्रेस भी खोल लिया था। 'वैशाली' की गणना हिन्दी की श्रेष्ठ मासिक पत्रिकाओं में होती थी।

बिहार के प्रसिद्ध कवि और अभिनेता श्रीललितकुमार सिंह 'नटवर' के सम्पादकत्व में मुजफ्फरपुर से ही 'आशा' नामक साप्ताहिक पत्रिका अच्छी निकली थी। किन्तु इससे भी निराशा ही मिली, कुछ दिन पहुनाई कर गई।

किसानों के नेता स्वामी सहजानन्द सरस्वती द्वारा सचालित और श्रीयमुना कार्यी द्वारा सम्पादित 'लोकसंग्रह' मुजफ्फरपुर का एक उत्तम साप्ताहिक पत्र था। इसके सम्पादकीय विभाग में श्रीबेनीपुरीजी भी थे। हिन्दी के सुसम्पादित साप्ताहिकों में इसकी गिनती होती थी। पहले इसका जन्म पटना में हुआ था—सन् १९२७—२८ में। शुरू में लगभग एक साल के बाद यह बन्द हो गया और फिर कुछ दिनों बाद मुजफ्फरपुर से निकला। सन् १९३४ के भीषण भूकम्प के बाद इसका अंत हुआ।

सन् १९३८ में मुजफ्फरपुर से श्रीमथुराप्रसाद दीक्षित के सम्पादकत्व में साप्ताहिक 'नवयुवक' निकला। एक साल से कुछ अधिक समय तक चला। पत्र

होनहार था, पर बन्द हो गया। दीक्षितजी अनुभवी पत्रकार हैं, किन्तु आर्थिक कठिनाइयों ने अनुभव को भी धोखा दिया।

सन् १६४१ से विष्णुपुर (सीतामढी, मुजफ्फरपुर) से पंडित जयकान्त मिश्र जी 'ज्योति श्री' नामक एक सुन्दर मासिक पत्रिका निकालने लगे हैं। यह एक प्रगतिशील पत्रिका है। इसकी शैली काफी अच्छी है। यदि यह जीवित रही तो बिहार मे साहित्यिक रुचि का विकास करने में सहायक हो सकेगी। इसी साल 'मुकुल' नामक सचित्र त्रैमासिक पत्र भी मुजफ्फरपुर से निकला है, जिसके सम्पादक हैं श्रीहरिहरनाथ सहाय 'मधुप'। यह बड़ा सुन्दर साहित्यिक पत्र है।

सारन

'सारन सरोज' इस जिले का सबसे प्राचीन पत्र है, जो सन् १८८८ ई० मे मासिक रूप मे छपरा से निकला था। इसके सपादकों में पंडित अम्बिकादत्त व्यास और श्रीभवानीचरण मुखोपाध्याय का नाम उल्लेखनीय है। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और पत्रकार छपरा-निवासी पंडित कार्त्तिकेयचरण मुखोपाध्याय के पूर्वज ही इसके जन्मदाता थे। पंडित अवधविहारीशरण मिश्र इसके मैनेजर थे। आपने पत्र के चलाने मे पूरा सहयोग दिया। लगभग तीन वर्ष तक निकलकर यह बन्द हुआ। हाँ, छपरा से निकलनेवाला साप्ताहिक 'नारद' भी इस जिले के पुराने पत्रों मे है। सन् १६०५ ई० (मार्च) मे इसका पहला अंक निकला था। दरभंगा के 'मिथिलामिहिर' की तरह प्रारम्भ मे यह भी मासिक था। अब यह साप्ताहिक है। 'तिरहुत-समाचार' और 'पूर्णिया-समाचार' की तरह इसमे भी अदालती नीलामी इश्तहार छपते हैं। यही इसके दीर्घ जीवन का सहारा है।

छपरा से निकलनेवाला महिलोपयोगी मासिक पत्र 'महिला दर्पण' इस प्रान्त का सबसे पहला स्त्रीशिक्षासम्बन्धी पत्र था। इसकी सम्पादिका थीं श्रीमती शारदा देवी। प्राय चार साल तक निकलकर यह बन्द हो गया।

साप्ताहिक 'विजय' सन् १६३७-३८ मे श्रीशिवेन्द्र दीक्षित, बी० ए०, के सम्पादकत्व मे छपरा से निकला। साल-भर बाद इसने भी समाधि ले ली। दीक्षितजी बड़े अच्छे संगीतज्ञ हैं। इसलिये इसमें यदाकदा संगीत-चर्चा भी छपती थी। चौतरिया के साहित्यानुरागी जमीन्दार बाबू भगवतीप्रसाद सिंह 'शूर' ने इसमे धारावाहिक रूप से महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा के संस्मरण लिखे थे।

चम्पारन

'चम्पारन-हितकारी' इस जिले के प्राचीन पत्रों मे है। सन् १८८४ ई० में

इसका जन्म हुआ था। यह एक साप्ताहिक पत्र था, पीछे पाक्षिक हो गया। इसके संपादक थे पंडित शक्तिनाथ झा। ये बेतिया-राज के पुरोहित थे।

रत्नमाला बगहा-निवासी पंडित चन्द्रशेखरधर मिश्र अपने गाँव (रत्नमाला) से ही 'विद्या-धर्म-दीपिका' नामक साहित्यिक मासिक पत्रिका सन् १८८८ ई० से निकालने लगे। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि मिश्रजी हिन्दी प्रेमवश अपनी पत्रिका मुफ्त बाँटते थे। केवल हिन्दी-प्रचार ही इस पत्रिका का प्रमुख लक्ष्य था। कई साल तक निकलने के बाद इसका प्रकाशन स्थगित हुआ।

सन् १८६० ई० में दरभंगा-निवासी पंडित भुवनेश्वर मिश्र ने बेतिया-राजधानी से 'चम्पारन चन्द्रिका' नामक मासिक पत्रिका निकाली थी। पंडित बलराम मिश्र भी इसके सम्पादक हुए थे। प० ब्रजयशीलाल मिश्र प्रबंधक थे।

सन् १६०७ से १६१० तक बेतिया के मिशनरी पादरियों ने 'सत्यसंवाद' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला था। पत्र का मुख्य उद्देश्य था इसाई धर्म का प्रचार।

कुसुमाञ्जलि प्रेस (मोतीहारी) से दो पत्र निकले थे—बाबू हरवंशसहाय, बी० ए० के सम्पादकत्व में 'कुसुमाञ्जलि' नामक मासिक और पंडित आनन्दबिहारी के सम्पादकत्व में 'निर्भय' नामक साप्ताहिक। दोनों अल्पायु हुए। फिर 'आदर्श' नामक मासिक पत्र सन् १६२४ में मोतीहारी से निकला। कुछ ही महीनों बाद यह भी बन्द हो गया। बहुत दिनों के बाद, अन्त में, 'किसान सेवक' नामक साप्ताहिक पत्र, मोतीहारी से ही, श्रीरामधारीप्रसाद 'विशारद' के सम्पादकत्व में, सन् १६३६ में निकला। श्रीरामधारी बाबू प्रसिद्ध साहित्यसेवी हैं, और कांग्रेस के नामी कार्यकर्त्ता भी। किन्तु छ मास निकलकर यह भी बन्द हुआ।

बेतिया से इधर तीन पत्र निकले, तीनों साप्ताहिक—'मस्ताना', 'अंकुश' और 'चम्पारन'। 'मस्ताना' के सम्पादक थे श्री कपिलेश्वरप्रसाद 'कपिल'। यह मनोरंजक पत्र था। 'अंकुश' भी जोशीला था। पर तीनों एक ही गति को प्राप्त हुए।

दरभंगा

इस जिले का सर्वप्रथम पत्र 'मिथिला मिहिर', सन् १६०८ ई० में, दरभंगा के राज प्रेस से, महाराजाधिराज सर रमेश्वर सिंह बहादुर की प्रेरणा से, निकला। पंडित विष्णुकान्त झा, बी० ए०, इसके सम्पादक हुए। पहले यह मासिक रूप में निकलता था, पीछे साप्ताहिक हो गया, आज भी साप्ताहिक ही है। पंडित विष्णुकान्त झा के बाद क्रमशः पंडित जनार्दन झा 'जनसीदन', पंडित योगानन्द

कुमर, पंडित कपिलेश्वर झा शास्त्री इसके सम्पादक हुए। इन दिनों साहित्याचार्य पंडित सुरेन्द्र झा 'सुमन' इसके सपादक हैं। इसमें मैथिली भाषा की भी रचनाएँ छपती हैं। 'सुमन' जी के सम्पादकत्व में इसका कलेवर बदल गया है। उन्होंने इसका कायाकल्प कर डाला है। इसका 'मिथिलाक' सन् १९३६ में बहुत ही सुन्दर निकला था। विशेष अवसरों पर इसके विशेषांक प्रायः निकला करते हैं।

'पत्र पत्रिकाओं के लिये बिहार मरुस्थल है'—यह कलंक सबसे पहले लहेरियासराय (दरभंगा) के 'बालक' ने ही मिटाया। 'बालक' का जन्म सन् १९२६ ई० में वसंतपंचमी को हुआ। इसके जन्मदाता हैं 'पुस्तक भंडार' और विद्यापति प्रेस के संस्थापक और संचालक रायसाहब श्री रामलोचनशरणजी बिहारी। इसके भूतपूर्व सपादकों में श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, श्रीशिवपूजनसहाय, पंडित पारसनाथ त्रिपाठी (स्वर्गीय) आदि मुख्य हैं। इन दिनों इसके सपादक श्रीरामलोचनशरण और सहकारी सपादक श्रीअच्युतानन्द दत्त हैं। इसकी गणना हिन्दी के श्रेष्ठ बालोपयोगी सचित्र मासिक पत्रों में होती है। हिन्दी के सभी पत्रों और विद्वानों ने मुक्त कंठ से इसको हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ बालोपयोगी पत्र कहा है। हिन्दी के अनेक आधुनिक लेखकों और कवियों के जन्म देने का सौभाग्य इसे प्राप्त है। इसके एक दर्जन उत्तमोत्तम विशेषांक हिन्दीससार में विख्यात हो चुके हैं। बिहार, उड़ीसा, युक्तप्रान्त, मध्यप्रदेश, बम्बई-प्रान्त, सिन्धप्रान्त, अलवर राज्य आदि के शिक्षाविभागों द्वारा यह स्वीकृत है। विदेशों के प्रवासी भारतवासियों में भी इसका काफी प्रचार है। इसके आदि-सम्पादक श्रीबेनीपुरीजी हैं।

सन् १९३९ में 'होनहार' नामक सचित्र मासिक पत्र भी 'पुस्तक भंडार' से ही निकला था। इसके भी सम्पादक थे श्रीरामलोचनशरणजी। इसका एक उर्दू-संस्करण भी निकलता था। दानापुर-निवासी मौलवी अनीसुर्रहमान भी संयुक्त सम्पादक थे। यह छः महीने तक निकालकर बन्द कर दिया गया। यह भी बिहार की कांग्रेसी सरकार के युग में बहुत लोकप्रिय हुआ।

बहुत दिन पहले, गत तीसरी दशाब्दी में, मधुबनी से श्रीचन्द्रमा राय शर्मा के सम्पादकत्व में 'धर्मवीर' नामक साप्ताहिक पत्र निकला था। वह मठाधीश महन्तों के अधिकारों का संरक्षक और समर्थक था। इसलिये कुछ ही दिनों का मेहमान रहा।

मधुबनी से निकलनेवाला 'खादी-सेवक' बिहार चर्खा संघ का मासिक मुख पत्र था। यह हाथ के बने स्वदेशी कागज पर छपता था। अपने ढंग का यह हिन्दी

में अकेला था। मोकामा (पटना) निवासी श्रीकामेश्वर शर्मा 'कमल' इसके प्रथम सम्पादक हुए। दूसरे साल से इसका सम्पादन मुजफ्फरपुर निवासी श्रीरमाचरणजी करने लगे। तीन साल तक निकलकर जुलाई १६४१ में यह बन्द हो गया।

दरभंगा से निकलनेवाला 'कायस्थ हितैषी' एक जातीय पत्र था। यह कुछ ही समय तक चला। 'रौनियार वैश्य' भी एक जातीय पत्र है, जो बहुत दिनों से श्री रामलोचनशरणजी बिहारी की संरक्षकता और श्रीलक्ष्मीनारायण गुप्त 'किशोर' के सम्पादकत्व में निकलता आ रहा है।

'प्रजा' और 'सेवक' नामक दो साप्ताहिक सन् १६३७—३८ में दरभंगा से निकले थे। पहले के सम्पादक थे श्रीधनुषधारीदास और दूसरे के श्रीयदुनन्दन शर्मा। दोनों अपने सूतिका गृह में ही दम तोड़ गये।

दरभंगा गोशाला के व्यवस्थापक श्रीधर्मलाल सिंह ने 'जीवदया और गोपालन' नामक मासिक पत्र सन् १६३६—३७ में निकाला था, जो अब केवल 'गोपालन' नाम से निकलता है। यह अपने विषय का बड़ा उपयोगी पत्र है।

पूर्णिया

पूर्णिया जिला बंगाल की पश्चिमी सीमा के निकट होने के कारण बँगला-भाषा से प्रभावित है। 'पूर्णिया-समाचार' और 'पूर्णिया-दर्पण' इस जिले के पुराने पत्र हैं। 'पूर्णिया-समाचार' तो अब भी जीवित है। इसका आधा अंश बँगला भाषा से अधिकृत है। यह अति सामान्य साप्ताहिक है। हाँ, पूर्णिया से ही प्रकाशित होने वाला 'राष्ट्र-संदेश' एक सुन्दर साप्ताहिक है। पहले इसके संपादक थे श्रीलक्ष्मी-नारायण सिंह 'सुधांशु' एम ए, जो इसके जन्मदाता और उन्नायक हैं। बाद श्रीदेवनारायण कुँवर, 'किसलय', साहित्यालंकार, संपादक हुए। अब श्रीप्रताप साहित्यालंकार संपादक हैं। स्थानीय पत्र होते हुए भी देशव्यापी दृष्टिवाला पत्र है। पूर्णिया जिले के साहित्यसेवियों का परिचय प्रायः इसमें प्रकाशित होता रहता है। साहित्यिक रुचि का एक छोटा-सा सुसम्पादित पत्र है।

छोटानागपुर

पहले राँची से 'आर्यावर्त्त' निकला था, किन्तु कुछ दिनों तक चलकर बन्द हो गया। श्री ईश्वरीप्रसाद सिंह के सम्पादकत्व में 'झारखंड' नामक एक छोटा मासिक पत्र भी निकला था, किन्तु वह भी अब न रहा। मासिक पत्रिका 'विन्ध्य' भी अच्छी निकली थी, पर चली नहीं।

कुमर, पडित कपिलेश्वर झा शास्त्री इसके सम्पादक हुए। इन दिनों साहित्याचार्य पडित सुरेन्द्र झा 'सुमन' इसके सपादक हैं। इसमे मैथिली भाषा की भी रचनाएँ छपती हैं। 'सुमन' जी के सम्पादकत्व मे इसका कलेवर बदल गया है। उन्होंने इसका कायाकल्प कर डाला है। इसका 'मिथिलाक' सन् १९३६ मे बहुत ही सुन्दर निकला था। विशेष अवसरो पर इसके विशेषाक प्राय निकला करते हैं।

'पत्र-पत्रिकाओ के लिये बिहार मरुस्थल है'—यह कलक सबसे पहले लहेरियासराय (दरभगा) के 'बालक' ने ही मिटाया। 'बालक' का जन्म सन् १९२६ ई० मे बसतपचमी को हुआ। इसके जन्मदाता हैं 'पुस्तक भडार' और विद्यापति प्रेस के सस्थापक और सचालक रायसाहब श्री रामलोचनशरणजी बिहारी। इसके भूतपूर्व सपादकों मे श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, श्रीशिवपूजनसहाय, पडित पारसनाथ त्रिपाठी (स्वर्गीय) आदि मुख्य हैं। इन दिनों इसके सपादक श्रीरामलोचनशरण और सहकारी सपादक श्रीअच्युतानन्द दत्त हैं। इसकी गणना हिन्दी के श्रेष्ठ बालोपयोगी सचित्र मासिक पत्रों मे होती है। हिन्दी के सभी पत्रों और विद्वानों ने मुक्त कठ से इसको हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ बालोपयोगी पत्र कहा है। हिन्दी के अनेक आधुनिक लेखकों और कवियों के जन्म देने का सौभाग्य इसे प्राप्त है। इसके एक दर्जन उत्तमोत्तम विशेपाक हिन्दीससार मे विख्यात हो चुके हैं। बिहार, उडीसा, युक्तप्रान्त, मध्यप्रदेश, बम्बई-प्रान्त, सिन्धप्रान्त, अलवर-राज्य आदि के शिक्षाविभागों द्वारा यह स्वीकृत है। विदेशों के प्रवासी भारतवासियों में भी इसका काफी प्रचार है। इसके आदि-सम्पादक श्रीबेनीपुरीजी हैं।

सन् १९३९ मे 'होनहार' नामक सचित्र मासिक पत्र भी 'पुस्तक भडार' से ही निकला था। इसके भी सम्पादक थे श्रीरामलोचनशरणजी। इसका एक उर्दू-सस्करण भी निकलता था। दानापुर निवासी मौलवी अनीसुर्रहमान भी सयुक्त सम्पादक थे। यह छ महीने तक निकालकर बन्द कर दिया गया। यह भी बिहार की कामेसी सरकार के युग मे बहुत लोकप्रिय हुआ।

बहुत दिन पहले, गत तीसरी दशाब्दी मे, मधुबनी से श्रीचन्द्रमा राय शर्मा के सम्पादकत्व मे 'धर्मवीर' नामक साप्ताहिक पत्र निकला था। यह मठाधीश महन्तों के अधिकारों का सरक्षक और समर्थक था। इसलिये कुछ ही दिनों का मेहमान रहा।

मधुबनी से निकलनेवाला 'खादी-सेवक' बिहार चर्खा-सघ का मासिक मुख पत्र था। यह हाथ के बने स्वदेशी कागज पर छपता था। अपने ढँग का यह हिन्दी

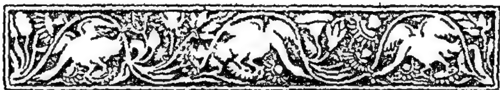

बिहार की आधुनिक काव्य-साधना

[एक विश्लेषणात्मक अध्ययन]

अध्यापक रामखेलावन पाडेय, बी० ए०, पटना-कालेजिएट

साहित्य अजस्र प्रवाहिनी सरिता है, अन्य धाराएँ और उपधाराएँ उसे सबल और प्रगतिशील बनाती हैं। किसी नई धारा के सयोग से उसके पूर्व निश्चित पथ और गति में व्यवधान उपस्थित होता है और पूर्व धारा को परिवर्तित परिस्थिति के अनुरूप अपना रूप ग्रहण करना पडता है। सबल धाराएँ उसका मार्ग पलट देती हैं और क्षीण तथा अक्षम धाराएँ उसे प्रदान करती हैं सबलता और सवेदनशीलता। इस प्रकार धाराओं और उपधाराओं—दोनों—का सरिता के गत्यात्मक जीवन में प्रमुख स्थान है। अत सरिता के सम्यक् ज्ञान के लिये उसके उद्भव और लय—आदि और अवसान—का तारतम्य-पूर्वक ज्ञान उचित होगा।

साहित्य पूर्ण इकाई है। इसका अश मात्र देखनेवाला इसकी सम्पूर्णता एव विस्तार का निरूपण नहीं कर सकेगा। इस स्थान पर कुछ मेरी चेष्टा भी ऐसी ही ज्ञात होगी, क्योंकि इस निबध के लघु कलेवर में सम्पूर्ण साहित्यिक धारा के दर्शन न कर काल-स्थान-विशेष के कवियों की काव्यगत प्रवृत्तियों की थाह लेना चाह रहा हूँ। साधारण मोह की अनुभूति जो मेरे भीतर है, उसका अचेतन अनुभव इन पक्तियों में मिलेगा—ऐसा मनस्तत्त्व के विज्ञ पाठक कह सकेंगे, पर बूँद में सागर की विशालता का चित्र है, इस न्याय के बल पर ही यह साधारण अध्ययन उपस्थित कर रहा हूँ।

आधुनिक साहित्य की पृष्ठभूमि—सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्या—ने जिस रूप में इसे अभिव्यक्ति दी, उसका अवलम्बन कर हिन्दी काव्य में जिन नवीन प्रवृत्तियों का आकर्षण हुआ उनमें से मुख्य हैं—रहस्य भावना,

'मोमिन' नामक एक मजहबी पत्र निकला था—सन् १६२६ में हजारीबाग से। जोश दिखलाकर वह भी गायब हो गया।

पंडित रामावतार शर्मा, एम ए, बी एल, ने डालटनगंज (पलामू) से 'किसान' नामक एक उपयोगी पत्र निकाला था। किन्तु वह भी अल्पजीवी हुआ।

× × × ×

इन सब पत्र पत्रिकाओं के अतिरिक्त बिहार के कालेजों और कई हाइस्कूलों से भी मासिक और त्रैमासिक रूप में पत्र निकलते हैं, जिनमें अँगरेजी आदि भाषाओं के साथ हिन्दी-भाषा की रचनाएँ भी अच्छी छपती हैं। ये पत्र सदा नियमित रूप से सुन्दरता के साथ प्रकाशित होते हैं।

संक्षेप में यहाँ बिहार की हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं पर कुछ प्रकाश डाला गया है। संभव है, कुछ पत्र-पत्रिकाओं के नाम छूट भी गये हों। कुछ के कालनिर्णय में भी भ्रान्ति की संभावना है। फिर भी यथाशक्ति अनुसंधान करके यह लेख तैयार किया गया है। यह केवल एक आधार-शिला है। इसपर आगे के अन्वेषक भड़कीली इमारत खड़ी कर सकते हैं।

बिहार के पत्रों की दशा कैसी शोचनीय रही है, यह बात किसी से छिपी नहीं। किन्तु यह भी अब किसी से छिपा न रहा कि बिहार में दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रों की जड़ धीरे-धीरे पाताल में जा रही है। कुछ तो ऐसे बद्धमूल हो गये हैं कि उनके अस्तित्व के विषय में किसी को कभी कोई शंका हो ही नहीं सकती। ईश्वर की दया से इन्हीं पत्रों के कारण प्रान्त में साहित्यिक जागृति भी फैल रही है। अतएव पत्रों की दिशा में भविष्य आशाजनक है।

अन्त में हम बिहार के पाठकों से सविनय अनुरोध करेंगे कि वे बिहार की पत्र-पत्रिकाओं को—अपने घर की चीजों को—अपनायें, प्रोत्साहन दें, यथासंभव सहायता दें, और यदि इसके लिये थोड़ा त्याग भी करना पड़े तो मुँह न मोड़ें।

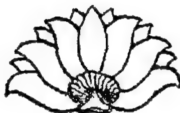

नहीं, बल्कि शुद्ध तथ्य है। रहस्यवाद को केवल 'आत्मा परमात्मा सम्बंधी अनुभूति' की परिधि मे बॉध देना इसे अति सकुचित, सकीर्ण और साम्प्रदायिक बनाना है।

वर्णनात्मक काव्य पद्धति की प्रतिक्रिया के रूप में जिस 'रोमाटिक' प्रणाली का—श्रीमनोरजनप्रसाद के अनुसार 'रोमाचक' प्रणाली कहना उचित होगा—प्रचार हिन्दी मे हुआ, उसकी मूलभित्ति सौन्दर्य है। मुझे सौन्दर्य न कह 'सौन्दर्य के प्रति बौद्धिक एव रागात्मक औत्सुक्य' कहना चाहिये, क्योंकि वर्णनात्मक काव्य पद्धति मे भी सौन्दर्य कम समादृत नहीं। मैं यहाँ स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि काव्य मे विषय प्रमुख स्थान नहीं रखता, काव्य की कला और पूर्ण परिणति कवि की तीव्र अनुभूति और उसके दृष्टिकोण मे है। विषय का काव्य मे अत्यन्त गौण स्थान है। कवि की इस उत्सुकता के कारण उन्हें सौन्दर्यानुभूति सर्वत्र होने लगी। सौन्दर्य केवल परम्परागत उपमाओं का ही प्रतीकत्व न करता रहा, बल्कि स्वतन्त्रचेता हो नवीन मार्ग पर चला। तात्पर्य यह कि सौन्दर्य केवल सस्कार (Pattern) ही न रहा, इसमे प्राण शक्ति एव उत्तेजना भी मिली। 'क्लासिकल' (Classical, सास्कृतिक) एव रोमाटिक (Romantic) मे विरोध वस्तुत नियम-बद्धता एव उसके त्याग के रूप मे प्रकट हुआ।

सौन्दर्य को—इसके वर्त्तमान रूप में—समझने के लिये स्थूल जगत् से ऊपर उठना पड़ेगा। सौन्दर्य भावात्मक और सश्लेषणात्मक है। इस प्रकार सौन्दर्य बाह्य का विषय कम किन्तु अतर का विषय अधिक हो उठता है। सौन्दर्य का चाहनेवाला सर्वत्र सौन्दर्य के दर्शन कर तज्जनित आनद की उपलब्धि करता है। सौन्दर्य के प्रति यह जागरूकता निम्नोद्धृत पक्तियों मे स्पष्ट दीखती है—

काली, अँधियारी रजनी में भरी चाँदनी, खिल निर्मल
चाँदी से धो डाल कलुष-सा इस रजनी का सारा मल
चमक उठे कण-कण जगती का निर्मल जल, थल, नभमडल
मेरी दुनिया हो चाँदी की, चाँदी सी ही हो उज्ज्वल।—'नेपाली'

मधु यामिनी अचल-ओट में सोई थी
बालिका जूही उमग भरी
विधुरजित ओस कणों से भरी
थी बिछी नव स्वप्न सी दूब हरी
मृदु चाँदनी बीच थी खेल रही

सौन्दर्य के प्रति बौद्धिक एव रागात्मक औत्सुक्य, तथा मानव का मानव-रूप में ग्रहण करने की सद्भावना। इन प्रवृत्तियों के मूल में रागात्मक सधि होने के कारण मुख्यतया काव्य आत्माभिव्यक्ति का माध्यम लेकर आगे बढा। अभिव्यञ्जना की आधारभूत भित्ति के रूप में प्रतीक-पद्धति का प्राधान्य रहा—यह पश्चिम के अनुकरण का रूप मात्र नहीं अपितु स्वतत्र चेतना का परिचायक।

हिन्दी-काव्य-क्षेत्र मे 'रहस्य' वाद का आश्रय ग्रहण कर 'आत्मा परमात्मा के सम्बध चिन्तन के अर्थ मे' रूढि की सीमा मे पदार्पण कर चुका है, अत इस शब्द के प्रयोग मे भय स्वाभाविक ही है। 'रहस्य-भावना' का प्रयोग इस स्थान में इसके प्रचलित और रूढ अर्थ मे नहीं हुआ है। वस्तु की वास्तविकता भी रहस्य मूलक होती है। जबतक किसी वस्तु से पूर्ण परिचय नहीं रहता तबतक उसकी वास्तविकता भी रहस्य है। अत रहस्य-भावना का सम्बध मन के उस आन्तरिक क्षोभ से है, जिसके कारण वह वस्तु एव भाव-विशेष के तल को छूने का प्रयास करता है। रहस्य-भावना से मेरा तात्पर्य वर्णन की उस पद्धति से नहीं जिसका आधार लेकर हिन्दी के अनेकानेक समालोचकों ने रहस्यवाद और छायावाद के विवाद में श्रम व्यर्थ नष्ट किया है। यह दृष्टिकोण का परिचायक है—विषय के प्रति जागरूक होने का लक्षण है।

जल - तरग-सा रहकर भी
तेरा न पा सका प्रकृत पता
हे सुन्दर ! हे कर्मवीर !!
हे भैरव !!! तू है कौन बता ?—'वियोगी'
आदि अंत तक घूम गये तुम
मिलता कहाँ सवेरा है !
निशि तो सदा अँधेरी ही है
दिन भी यहाँ अँधेरा है !—'प्रभात'

सम्भव है, समालोचक-प्रवर इन पक्तियों मे 'बाल की खाल उधेड़ना' कहावत को चरितार्थ करनेवाली नीति का अवलम्बन कर आत्मा-परमात्मा के अविच्छिन्न योग-सूत्र की थाह पा लें, वैसे लोगों से मुझे कुछ कहना नहीं। बस, इतनी बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि इन कवियों मे वस्तुओं के प्रति रहस्यात्मक दृष्टिकोण रहा है। रहस्य और विस्मय का सम्बध अविच्छिन्न है। इन पक्तियों में विस्मय का स्पष्ट आभास मिलता है, अत इनमे रहस्य-भावना की प्रतीति भ्रम

नहीं, बल्कि शुद्ध तथ्य है। रहस्यवाद को केवल 'आत्मा-परमात्मा-सम्बधी अनुभूति' की परिधि में बाँध देना इसे अति सकुचित, सकीर्ण और साम्प्रदायिक बनाना है।

वर्णनात्मक काव्य पद्धति की प्रतिक्रिया के रूप मे जिस 'रोमाटिक' प्रणाली का—श्रीमनोरजनप्रसाद के अनुसार 'रोमाचक' प्रणाली कहना उचित होगा—प्रचार हिन्दी में हुआ, उसकी मूलभित्ति सौन्दर्य है। मुझे सौन्दर्य न कह 'सौन्दर्य के प्रति बौद्धिक एवं रागात्मक औत्सुक्य' कहना चाहिये, क्योंकि वर्णनात्मक काव्य पद्धति मे भी सौन्दर्य कम समादृत नहीं। मैं यहाँ स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि काव्य मे विषय प्रमुख स्थान नहीं रखता, काव्य की कला और पूर्ण परिणति कवि की तीव्र अनुभूति और उसके दृष्टिकोण में है। विषय का काव्य में अत्यन्त गौण स्थान है। कवि की इस उत्सुकता के कारण उन्हें सौन्दर्यानुभूति सर्वत्र होने लगी। सौन्दर्य केवल परम्परागत उपमानों का ही प्रतीकत्व न करता रहा, बल्कि स्वतत्र चेता हो नवीन मार्ग पर चला। तात्पर्य यह कि सौन्दर्य केवल सस्कार (Pattern) ही न रहा, इसमे प्राण-शक्ति एव उत्तेजना भी मिली। 'क्लासिकल' (Classical, सास्कृतिक) एव रोमाटिक (Romantic) मे विरोध वस्तुत नियम-बद्धता एव उसके त्याग के रूप मे प्रकट हुआ।

सौन्दर्य को—इसके वर्त्तमान रूप मे—समझने के लिये स्थूल जगत् से ऊपर उठना पड़ेगा। सौन्दर्य भावात्मक और सश्लेषणात्मक है। इस प्रकार सौन्दर्य बाह्य का विषय कम किन्तु अतर का विषय अधिक हो उठता है। सौन्दर्य का चाहनेवाला सर्वत्र सौन्दर्य के दर्शन कर तज्जनित आनद की उपलब्धि करता है। सौन्दर्य के प्रति यह जागरूकता निम्नोद्धृत पक्तियों मे स्पष्टत दीखती है—

काली, अँधियारी रजनी में भरी चाँदनी, खिल निर्मल
चाँदी से धो डाल कलुष-सा इस रजनी का सारा मल
चमक उठे कण-कण जगती का निर्मल जल, थल, नभमडल
मेरी दुनिया हो चाँदी की, चाँदी सी ही हो उज्ज्वल।—'नेपाली'

मधु यामिनी अचल-ओट में सोई थी
बालिका जूही उमग भरी
विधु-रजित ओस कणों से भरी
थी बिछी नव स्वप्न सी दूब हरी
मृदु चाँदनी बीच थी खेल रही

सौन्दर्य के प्रति बौद्धिक एव रागात्मक औत्सुक्य, तथा मानव का मानव-रूप में ग्रहण करने की सद्भावना। इन प्रवृत्तियो के मूल में रागात्मक सधि होने के कारण मुख्यतया काव्य आत्माभिव्यक्ति का माध्यम लेकर आगे बढा। अभिव्यञ्जना की आधारभूत भित्ति के रूप में प्रतीक-पद्धति का प्राधान्य रहा—यह पश्चिम के अनुकरण का रूप मात्र नहीं अपितु स्वतत्र चेतना का परिचायक।

हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में 'रहस्य' वाद का आश्रय ग्रहण कर 'आत्मा परमात्मा के सम्बध-चिन्तन के अर्थ मे' रूढि की सीमा मे पदार्पण कर चुका है, अत इस शब्द के प्रयोग मे भय स्वाभाविक ही है। 'रहस्य-भावना' का प्रयोग इस स्थान मे इसके प्रचलित और रूढ अर्थ मे नहीं हुआ है। वस्तु की वास्तविकता भी रहस्य मूलक होती है। जबतक किसी वस्तु से पूर्ण परिचय नहीं रहता तबतक उसकी वास्तविकता भी रहस्य है। अत रहस्य-भावना का सम्बध मन के उस आन्तरिक क्षोभ से है, जिसके कारण वह वस्तु एव भाव-विशेष के तल को छूने का प्रयास करता है। रहस्य भावना से मेरा तात्पर्य वर्णन की उस पद्धति से नहीं जिसका आधार लेकर हिन्दी के अनेकानेक समालोचकों ने रहस्यवाद और छायावाद के विवाद मे श्रम व्यर्थ नष्ट किया है। यह दृष्टिकोण का परिचायक है—विषय के प्रति जागरूक होने का लक्षण है।

जल - तरंग-सा रहकर भी
तेरा न पा सका प्रकृत पता
हे सुदर ! हे कर्मवीर !!
हे भैरव !!! तू है कौन बता ?—'वियोगी'
आदि अंत तक घूम गये तुम
मिलता कहाँ सवेरा है !
निशि तो सदा अँधेरी ही है
दिन भी यहाँ अँधेरा है !—'प्रभात'

सम्भव है, समालोचक प्रवर इन पक्तियों मे 'बाल की खाल उधेड़ना' कहावत को चरितार्थ करनेवाली नीति का अवलम्बन कर आत्मा-परमात्मा के अविच्छिन्न योग-सूत्र की थाह पा लें, वैसे लोगों से मुझे कुछ कहना नहीं। बस, इतनी बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि इन कवियों मे वस्तुओं के प्रति रहस्यात्मक दृष्टिकोण रहा है। रहस्य और विस्मय का सम्बध अविच्छिन्न है। इन पक्तियों मे विस्मय का स्पष्ट आभास मिलता है, अत इनमे रहस्य भावना की प्रतीति भ्रम

नहीं, बल्कि शुद्ध तथ्य है। रहस्यवाद को केवल 'आत्मा-परमात्मा-सम्बधी अनुभूति' की परिधि में बाँध देना इसे अति सङ्कुचित, सकीर्ण और साम्प्रदायिक बनाना है।

वर्णनात्मक काव्य-पद्धति की प्रतिक्रिया के रूप में जिस 'रोमांटिक' प्रणाली का—श्रीमनोरंजनप्रसाद के अनुसार 'रोमांचक' प्रणाली कहना उचित होगा—प्रचार हिन्दी में हुआ, उसकी मूलभित्ति सौन्दर्य है। मुझे सौन्दर्य न कह 'सौन्दर्य के प्रति बौद्धिक एवं रागात्मक औत्सुक्य' कहना चाहिये, क्योंकि वर्णनात्मक काव्य-पद्धति में भी सौन्दर्य कम समादृत नहीं। मैं यहाँ स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि काव्य में विषय प्रमुख स्थान नहीं रखता, काव्य की कला और पूर्ण परिणति कवि की तीव्र अनुभूति और उसके दृष्टिकोण में है। विषय का काव्य में अत्यन्त गौण स्थान है। कवि की इस उत्सुकता के कारण उन्हें सौन्दर्यानुभूति सर्वत्र होने लगी। सौन्दर्य केवल परम्परागत उपमानों का ही प्रतीकत्व न करता रहा, बल्कि स्वतन्त्र-चेता हो नवीन मार्ग पर चला। तात्पर्य यह कि सौन्दर्य केवल संस्कार (Pattern) ही न रहा, इसमें प्राण शक्ति एवं उत्तेजना भी मिली। 'क्लासिकल' (Classical, सांस्कृतिक) एवं रोमांटिक (Romantic) में विरोध वस्तुतः नियम-बद्धता एवं उसके त्याग के रूप में प्रकट हुआ।

सौन्दर्य को—इसके वर्त्तमान रूप में—समझने के लिये स्थूल जगत् से ऊपर उठना पड़ेगा। सौन्दर्य भावात्मक और संश्लेषणात्मक है। इस प्रकार सौन्दर्य बाह्य का विषय कम किन्तु अंतर का विषय अधिक हो उठता है। सौन्दर्य का चाहनेवाला सर्वत्र सौन्दर्य के दर्शन कर तज्जनित आनंद की उपलब्धि करता है। सौन्दर्य के प्रति यह जागरूकता निम्नोद्धृत पंक्तियों में स्पष्टत दीखती है—

काली, अँधियारी रजनी में भरी चाँदनी, खिल निर्मल
चाँदी से धो डाल कलुष-सा इस रजनी का सारा मल
चमक उठे कण-कण जगती का निर्मल जल, थल, नभमंडल
मेरी दुनिया हो चाँदी की, चाँदी सी ही हो उज्ज्वल।—'वैशाली'

मधु यामिनी अंचल-ओट में सोई थी
बालिका-जूही उमग भरी
विधु-रंजित ओस कणों से भरी
थी बिछी वन स्वप्न-सी दूब हरी
मृदु चाँदनी बीच थी खेल रही

अथवा—

हर हर हर ! हहर-हहर !!
हाहाकार, वज्रपात, क्रंदन-ध्वनि
लघुतर कितने ही नगण्य
अन्य शिखरों की
इति ही नहीं, सत्ता कहाँ ?
सारी तुषार हार मंडित गिरि चोटियाँ
सो गईं धरातल पर सदा के लिये
महायात्रा पथिक-सी श्रांत, क्लांत
नगाधीश, गर्व्वोन्नत !
कहाँ गया गौरव का मणि-मुकुट ? —'आरसी'

युग की प्रवृत्तियों के अनुकूल मानव को मानवीय वृत्ति को प्रमुख स्थान आज की कविता मे मिला। 'क्लासिकल' कविता मे मनुष्य मानव नहीं, केवल साधन था आदर्श की अभिव्यक्ति का, इस सासारिक व्यवस्था मे मनुष्य का कोई उल्लेखनीय स्थान नहीं था। व्यक्ति के इस वैयक्तिक महत्त्व के मूल्यांकन और आदर्श के द्वंद्व ने आदर्श और यथार्थ का विरोध उपस्थित किया। आदर्श के कारण मनुष्य की कल्पना अति मानवीय रूप से की जाती है और यथार्थ मे पूर्ण मानव रूप मे—उसमे गुण भी हैं और दोष भी। मानव के प्रति मानवीय भावना के उदय के साथ दलित और पतित के प्रति हार्दिक और बौद्धिक सहानुभूति का श्रीगणेश काव्य मे हुआ—

'दूध दूध !' ओ वत्स ! मंदिरों में
बहरे पाषाण यहाँ हैं !
'दूध दूध !' तारे, बोलो, इन
बच्चों के भगवान कहाँ हैं ?
'दूध दूध !' फिर 'दूध' अरे
क्या याद दूध की खो न सकोगे ?
'दूध दूध' मरकर भी क्या तुम
बिना दूध के सो न सकोगे ?
हटो व्योम के मेघ पथ से
स्वर्ग लूटने हम आते हैं

'दूध दूध !' ओ वत्स ! तुम्हारा
दूध खोजने हम जाते हैं ।—'दिनकर'

इन पंक्तियों में प्रताड़ित, लांछित और पीड़ित मानवता के प्रति केवल मौखिक तथा बौद्धिक सहानुभूति ही नहीं, बल्कि हृदय की सारी वृत्तियों का एकीकरण भी है।

क्या समझो, है पीड़ा कितनी इन पाँवों के छालों में
मिलकर देखो जननी के हित भस्म रमाने वालों में
बच्चे करुणा-पूर्ण दृष्टि से अपनी माँ को देख रहे
जननी की आँखें अटकी हैं कब से अपने लालों में ।—'नेपाली'

आज अमावस की रजनी में
दीपक का भी नाम नहीं
कहाँ जायँ, क्या करें, माघ का
विकट शीत है नेध रही

दानों के मुहताज बने
रहने का भी न ठिकाना है
भग्न भवन के पास बैठकर
आज मसान जगाना है ।—'मनोरंजन'

सौन्दर्य की ऐकान्तिक सौन्दर्य भावना मानवता के यथार्थ कुत्सित रूप के साथ अपना मेल नहीं देखती। सम्भव है, दृष्टिकोण के एकान्त भाव के कारण किसी कवि को इस कुत्सितता में भी सौन्दर्य दीख पड़े, किन्तु अधिकांश अवस्थाओं में ऐसा सम्भाव्य नहीं है। काव्य में यथार्थ से पलायन का सिद्धान्त (Escapist Theory) इसी प्रवाह के कारण आया। इस प्रकार कवियों के अंतर में सौन्दर्य-भावना एवं मानवीय भावना का द्वंद्व चलता रहा। 'क्रोसे' (Croce) के अनुयायियों के लिये यह द्वंद्व सत्य नहीं। कारण, उनके लिये सौन्दर्य-भावना के अतिरिक्त और किसी भावना का स्थान मन में प्रधानता सहित नहीं है। अंतर की वासनाएँ उमड़ती ही हैं, उमड़ेंगी ही, अतः सौन्दर्य और मानवीय भावनाओं का संघर्ष होता है और उसका व्यक्तीकरण उनकी (भावनाओं की) तीव्रता के रूप में होता है। एक ही विषय विभिन्न कवियों को भिन्न-भिन्न रूप में प्रभावित करेगा, क्योंकि नैयक्तिक मानस की संतुलनशक्ति एवं अन्य मानसिक शक्तियों से इसका संबंध है।

सौन्दर्य मे आकर्पण-शक्ति है, प्रभावित करने की शक्ति है। सौन्दर्य-प्रिय स्वभावत उसके प्रति आकृष्ट है, और इधर मानवता की पुकार। किसे सुने? किसकी अनसुनी करे? भीतर का यह द्वद्व चलता है। क्रांति-द्रष्टा हो कवि या सौन्दर्य-प्रेमी, दोनों के सामने यह समस्या आती है, आवेगी ही, समाधान इसका चाहे जिस रूप में हो, प्रश्न का अस्तित्व मिट नहीं सकता। 'दिनकर' और 'आरसी' दोनों के अन्तर में यह द्वद्व चलता है, किंतु उद्वेग की सापेक्षिक मात्रा के कारण दोनों का समाधान भिन्न है। 'दिनकर' का सौन्दर्य के प्रति स्वाभाविक आकर्पण इन पक्तियों में फूट पडता है—

एक चाह कवि की, यह देखूँ—
छिपकर कभी मालिनी के तट
किस प्रकार चलती मुनि-बाला
यौवनवती लिये कटि पर घट
झाँकूँ उस माधवी-कुन्ज में
जो बन रहा स्वर्ग कानन में
प्रथम परस की जहाँ लालिमा
सिहर उठी तरुणी-आनन में

किन्तु सौन्दर्य का यह मोह उसे रोक नहीं पाता। जग का आर्त्तनाद, उफ, पीडितों की पुकार रह-रहकर उसके कानों पर आघात करती है—

रणित विपम रागिनी मरण की
आज विकट हिंसा उत्सव में

यह पुकार, यह ध्वसक रागिनी उसे अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। उसके पाँव रुकते नहीं, वह चिल्ला उठता है—

फेंकता हूँ, लो तोड-मरोड
अरी निष्ठुरे! बीन के तार
उठा चाँदी का उज्ज्वल शख
फूँकता हूँ भैरव हुकार

यही समस्या 'आरसी' के सामने भी आती है। सौन्दर्य और मानवता दोनो मे किसे अपनाये, किसे त्यागे? वह सौन्दर्य—वासनापूर्ण नारी-सौन्दर्य—का वरण करता है। मानवता की पुकार उसे रोक रखने में क्षम नहीं, सौन्दर्य की शक्ति उसे आविष्ट कर लेती है—

दीनों को मैंने देखा है
मैं सुनता हूँ जग का क्रंदन
नवयुग को करता आमंत्रित
करता मैं विप्लव का वंदन

और शोषितों का करुणामय
हाहाकार सुना है मैंने
चिता बुझाई है निःश्वासों
से, अंगार चुना है मैंने

किन्तु—

प्रेम चाहता हूँ मैं तुमसे
हे सुहासिनी, हे चिर-कामिनि

देवालय में जो न झुका सिर
तुम्हें देखकर अवनत है
जिस भुज बल से काल काँपता
वही तुम्हारे पद में रत है

वज्र-हृदय जो महाप्रलय में
भी न कभी हो सकता कातर
एक तुम्हारे भृकुटि पात से
व्याकुल है मर्माहत है

कवियों की यह सौन्दर्य साधना क्रमशः शक्ति-साधना से आक्रांत होती जा रही है। सौन्दर्य-भावना की यह उदार प्रतिक्रिया है, सौन्दर्य भावना की अति संकीर्णता के प्रति कवि का अदमनीय विद्रोह है। वास्तव में सौन्दर्य सदा गत्यात्मक है, अगति-मूलक इसे मानना भ्रमपूर्ण और अवास्तविक है। शक्ति की साधना तरुण कवि 'हरेन्द्र' में देखें—

टूट पड़ेगा भीम नाद कर
जिस दिन नीला वृहत् गगन
तरुण हास से पूर्ण रहेगा
उस दिन भी यह कवि जीवन

रामदयाल पांडेय भी इसी शक्ति का साधक है—

सिन्धु का प्रति बिन्दु लघुतम
सिन्धु से कुछ भी नहीं कम
व्यक्त जिसका नृत्य घन में
जो नहीं अँटता गगन में
तप्त मरु का क्षुद्रतम कण
बाँधकर आकाश का तन
रेणु को पर्याप्ति देकर
क्षितिज को अव्याप्ति देकर
गा रहा यह एक ही सुर, 'मैं नहीं हूँ दीन'

वर्त्तमान की बातें करता मैं आधुनिकता में ही उलझा रह गया, और उसकी चर्चा ही करना भूल गया जो आधुनिक तो नहीं है, किन्तु अतीत की परिधि के भीतर भी नहीं। हिन्दी-काव्य में करुणा की जो भावगम्य धारा प्रवाहित हुई थी, जिसकी पूर्ण परिणति 'महादेवी' में लक्षित होती है, उसमें यहाँ की किसी वेगवती धारा ने योग नहीं दिया है—ऐसी बात नहीं। करुणा की उस धारा को चाहे हम विकृत मानस की प्रतिक्रिया, प्रगति का विरोधी अथवा जो जी मे आवे मानें, किन्तु इतना तो स्वीकार करना पड़ेगा कि एक समय हिन्दी-काव्य में उससे बढ़कर और कोई दूसरी वेगवती धारा न थी और उसने अपने रस-सिञ्चन द्वारा आधुनिक प्रवृत्तियों के लिये क्षेत्र तैयार किया। भवभूति का 'करुणावाद' अस्वीकृत करने पर भी उसकी सबलता और क्षमता मे अविश्वास करना मनोवैज्ञानिक भ्रम है। 'द्विज' की कविताओं मे व्यथा मूर्त्तिमती हो उठती है। उस वेदना में प्राप्ति की कोई इच्छा नहीं, आकांक्षा नहीं। वेदना श्रेय है, अभाव गेय है। वेदना उसके लिये अभिशाप नहीं, वरदान है—

यह शीतल संताप, किसी
पावन तप का है पुण्य प्रसाद
भरा हुआ है इसी सिसकने में
समस्त जीवन - आह्लाद

वेदना उसकी चिर संगिनी—प्रेयसी—बन बैठती है और कवि गा उठता है—

अयि अमर शान्ति की जननि जलन
अक्षय तेरा रहे

जीवन - धन - स्मृति - सा अमिट
निरंतर तेरा - मेरा प्यार रहे

अभाव ही व्यथा है, फिर जिसका अभाव भाव की सम्पूर्ण भावना का अतिक्रमण कर स्वय अपने लिये रहस्य बन जाता है, उसकी व्यथा को क्या कहा जाय। इसी को लक्ष्य कर किसी उर्दू-कवि ने लिखा था—

मुनहसर मरने पै हो जिसकी उमीद
नाउमेदी उसकी देखा चाहिये

उसी व्यथा की अभिव्यक्ति 'द्विज' की इन पंक्तियों का लक्ष्य है, उद्देश्य है—

कैसी आग भरी है
रोती आशा की इन आहों में!
चिनगारियाँ खेलतीं हिलमिल
लपटों के सँग चाहों में!
जाकर कहाँ रहूँ? है मेरा
अपना अब संसार कहाँ!
रौंद दिया जाता हूँ, जब
जा पडता जिनकी राहों में!

'जाकर कहाँ रहूँ?' में कितनी व्यथा, कितनी विवशता है। वेदना की वही टीस, वही जलन 'प्रभात' में जगती है। इस जलन में मिठास है, विष अमृत हो गया है, और वह गा उठता है—

लोटूँगा उस निर्जन पथ की
धूलों में—सुख पाऊँगा
दीपक ले पद चिह्नों को
खोजूँगा—अलख जगाऊँगा

वेदना कवि को कितनी प्यारी है, यह यहाँ देखने योग्य है—

अयि वेदने! हृदय में भीषण
प्रलय मचाने वाली
कूक पिकी सी प्रिय उजडे
जीवन की डाली - डाली
देख न खाली हो जाये
तेरे सुहाग की प्याली

अयि ज्वालाओं की रानी !
मिट जाय न तेरी लाली
अमर रहे तेरा असीम यह
पूर्ण प्रेम सुकुमार
भरती जा इस जीवन में
अपनी मदिरा की धार !

\+ + + + +

संक्षेप में आधुनिक काव्य-साधना के साधक बिहारी कवियों की प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन मात्र मैंने यहाँ कराया है। जिन कवियों के उद्धरण मैंने उपस्थित किये हैं उनके अतिरिक्त भी कई प्रतिभासम्पन्न कवि बिहार में हैं। इस निबंध के लघु कलेवर में सभी का आलोचनात्मक अध्ययन उपस्थित करना सम्भव न था, अत विशिष्ट प्रवृत्तियों के दिग्दर्शन मात्र से संतोष-लाभ करना चाहता हूँ।

जिन कवियों की चर्चा की गई है उनकी कविताओं का भी पूर्ण विश्लेषण उपस्थित नहीं किया जा सका है, केवल प्रवृत्तियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते समय उन कवियों की कविताओं से उद्धरण मात्र दे दिये गये हैं। जिनकी कविताओं के उद्धरण इस निबंध में आये हैं उनके अतिरिक्त श्रीजयकिशोर-नारायण सिंह, श्री हंसकुमार तिवारी, श्री मोहनलाल गुप्त, श्री 'रमण' आदि भी भावुक कवि हैं। इनकी कविताओं ने मुझे रिझाया है। श्रीजयकिशोरनारायण सिंह-कृत 'मेघदूत' के कुछ छन्दों का अनुवाद, श्रीमोहनलाल गुप्त की 'लहर', तथा श्री रमण की 'अन्तरदीप' आदि कविताएँ मुझे हृदयग्राहिणी प्रतीत हुईं। मैंने बारबार इन्हें पढ़ा है। और, गुनगुनाया भी हूँ। श्रीविमल, कैरव, भुवन, अरविन्द, माधव, सुजन, दिवाकर आदि कवियों ने भी पर्याप्त ख्याति पाई है। इनकी कविताएँ भी काव्यक्षेत्र को रसार्द्र बनाने में सहायक हुई हैं।

बिहार के साहित्य की एक झाँकी

रायसाहब पंडित सिद्धिनाथ मिश्र, बी ए, एल. टी, एफ पी यू, पटना

भारतवर्ष मे सदा से बिहार गौरव का क्षेत्र और संस्कृत-साहित्य के महारथियों की पुण्यभूमि रहा है। साहित्य चर्चा यहाँ के विद्वानों की दिनचर्या थी। साहित्य-समृद्धि के लिये यहाँ के आचार्यों ने विश्व भूमडल के जिज्ञासु छात्रों को भिन्न भिन्न शास्त्रीय विषयो की शिक्षा दीक्षा देकर सफलमनोरथ किया। बिहार के नालन्दा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों मे धुरन्धर विद्वानों का जमघट था। मिथिला के गॉव-गॉव और घर घर मे संस्कृत-साहित्य का अध्ययनाध्यापन होता रहता था, और अब भी यत्किञ्चित् है। पर प्रश्न तो संस्कृत-साहित्य बिहार ही से क्यों, सारे भारतवर्ष से विदा होने पर है! हम देवार्चना तक मे शुद्ध संस्कृत-शब्दों का उच्चारण नहीं कर पाते हैं! सकल्प में भी शुद्धता का अभाव होता जा रहा है!

किसी जाति की उन्नति और उसकी भाषा मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। भाषा के उत्कर्ष और अपकर्ष पर ही उसकी उन्नति और अवनति अवलम्बित है। भाषा ही संस्कृति का निर्माण करती है। जिस समय इस आर्यभूमि की भाषा देववाणी संस्कृत थी—भाषा ही नहीं, बल्कि मातृभाषा भी—उस समय इन्द्र भी इसपर बरसते थे, देवता भी नर-रूप धारण कर यहाँ विचरते थे, भगवान् भी मनुष्य रूप मे यहाँ लीला करने आते थे। पर आज हमने अपनी भाषा भुला दी—संस्कृत ही नहीं, संस्कृति भी लुटा दी। हमारे ही अलौकिक संस्कृत-ग्रन्थों की गवेषणापूर्वक विशद व्याख्या कर आज जर्मन अपनेको विज्ञान का ज्ञाता मानते हैं। हमारे

ही संस्कृत ग्रन्थों के सूत्रों और मन्त्रों की विवेचना कर संसार के कतिपय देश अपनेको विद्याविशारद मान बैठे हैं। हमारे ही मनु और याज्ञवल्क्य ने उन्हें विधानाचार्य बनाया है। हमारे ही चाणक्य के नीतिशास्त्र का अनुवाद कर वे लोग राजनीति-वेत्ता होने का दम भरते हैं।

पर दुःख है कि हम अपने साहित्य का गौरव भूल गये हैं। संस्कृत साहित्य के पुनरुद्धार की ओर भी लोगों की अभिरुचि नहीं दीखती। संस्कृत-भाषा के प्रचार-क्षेत्र की परिधि संकुचित कर दी गई है। इसके प्रचार के लिये सरकार भी विशेष यत्न या व्यय नहीं करती। धनी-मानी सज्जनों की भी दृष्टि इसकी ओर नहीं है। पुराने समय में राजा रईसों के दरबार में भी संस्कृत-प्रचार पर विशेष ध्यान दिया जाता था, पर आज तो सब दूसरे ही रंग में रँग गये हैं। हमारे प्रान्त में केवल दरभंगा के महाराजाधिराज को संस्कृत से प्रेम है। इस दरबार के द्वारा सदियों से संस्कृत-सेवा होती आ रही है। पर इतनी ही सेवा को हम यथेष्ट नहीं मान सकते।

सच पूछा जाय तो संस्कृत ही हिन्दी की जननी है। संस्कृत के पश्चात् प्राकृत के उपरान्त हिन्दी की सृष्टि हुई। हिन्दी ही आज भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा हो रही है। अधिकांश भारतवासी इसी भाषा में अपने मनोगत भावों को व्यक्त करते हैं। भारत में सर्वजनप्रिय अन्तःप्रान्तीय भाषा यही है।

बहुत पुरानी बात है। सन् १६०८ के अक्टूबर में बडोदा राजधानी में महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन हुआ था। लेफटिनेंट कर्नल कन्होबा रणछोडदास कीर्त्तिकर उसके सभापति थे। उस समय बडोदा-नरेश के दीवान थे बंग-साहित्यमहारथी श्रीरमेशचन्द्र दत्त (आर सी दत्त)। बडोदा-नरेश का हिन्दीप्रेम तो प्रसिद्ध ही है, उनके दीवान दत्त महोदय ने भी उक्त सम्मेलन में अपना हिन्दीप्रेम प्रत्यक्ष प्रकट कर दिया था। सम्मेलन में एक प्रस्ताव पास हुआ था कि हिन्दी को समस्त भारत की राष्ट्रीय भाषा बनाना चाहिये। इतना ही नहीं, इस प्रस्ताव को विशेष महत्त्व देने के लिये सम्मेलन का एक विशेषाधिवेशन शीघ्र ही (२६ अक्तूबर को) किया गया था, जिसके सभापति थे विद्वद्वर डाक्टर भांडारकर। इसी विशेषाधिवेशन में उक्त दीवान साहब (दत्त महोदय) ने अपनी प्रस्तावना में हिन्दी को ही राष्ट्रीय भाषा होने के योग्य बताया था। बम्बई-हाइकोर्ट के नामी वकील श्रीमाधव राव बोडस ने तो अपने विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान से यह भी सिद्ध कर दिया कि समस्त भारत की एक लिपि होने के योग्य देवनागरी ही है—भारत की प्रत्येक भाषा इसी लिपि में लिखी जानी चाहिये। फिर बम्बई के सुविख्यात विद्वान् रावबहादुर

चिन्तामणि वैद्य ने प्रस्ताव उपस्थित किया कि भारत के भिन्न भिन्न प्रदेशों की एक भाषा हिन्दी ही होनी चाहिये। उन्होंने इस बात को भली भाँति सप्रमाण सिद्ध कर दिया कि भारत की अन्यान्य भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी ही इस योग्य है कि उसको राष्ट्रीय भाषा का पद दिया जाय। उनका व्याख्यान हिन्दी में ही हुआ था।

बिहार ने आरम्भ से ही राष्ट्रभाषा हिन्दी के अभ्युत्थान में योगदान किया है। उसकी हिन्दी साहित्य सेवा सराहनीय है। अन्य प्रान्तों की नाईं वह भी इस विषय में अपनेको गौरवान्वित मानता है। बिहार के महाकवि मैथिल-कोकिल विद्यापति को हिन्दी-साहित्य कानन में सुप्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। हिन्दी-ससार में इनकी पदावलियाँ अमर हैं। आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व ही इन्होंने लोकभाषा में काव्यरचना की थी। गद्य निर्माण मे भी बिहार का प्रधान हाथ रहा है। आरा-निवासी प० सदल मिश्र का हमे गर्व है। इन्हीं के जिले (शाहाबाद) के कविराज चन्दनराम बन्दीजन अत्यन्त प्रसिद्ध कवि हो चुके हैं। चन्दनराम के पिता साहबराम को किसी दरबार मे कवियों को परास्त करने से 'कविराजाधिराज' की उपाधि मिली थी। साहबराम ने 'रस-दीपिका' आदि तीन काव्यग्रथ बनाये थे। कहते हैं कि हिन्दी-कवि कालिदास के पुत्र उदयनाथ कविन्द ने अमेठी-नरेश से चन्दनराम को 'कविराज' की उपाधि दिलाई थी। पदमाकर, बेनी, दत्त, भजन आदि कवियों से चन्दनराम की मैत्री थी। डुमराँव, मझौली, बलरामपुर आदि राज-दरबारों से इनको आर्थिक लाभ था। इनका जन्म सवत् १७६६ में हुआ था और निधन सवत् १८७० मे। अन्तिम समय में इन्होंने 'नामार्णव' और 'अनेकार्थ' नामक दो कविता पुस्तकें बनाई थीं। अपने समय में बिहार के कविरत्न थे चन्दनराम। इनका घर आरा-सबडिवीजन के अम्बागाँव में था।

चन्दनराम से भी पहले, सारन जिले के इसुआपुर निवासी, भक्तवर शकर-दास बड़े सिद्ध महात्मा और कवि हो चुके हैं। इनका जन्म सवत् १७२६ के लगभग हुआ था। सवत् १८०६ मे अस्सी वर्ष की आयु में इनका गगालाभ हुआ था। ये नित्य-गगास्नान के अनन्य अनुरागी और अभ्यासी थे। इसी के प्रभाव से इनका कुष्ठरोग छूट गया था। गगा, यमुना आदि पुण्यसलिला नदियों के माहात्म्य का वर्णन इन्होंने अपनी कविताओं मे बड़े अच्छे ढँग से किया है। इनके शिवा-शिव-सम्बन्धी पद बड़े अनूठे हैं। इनके ग्रथ 'राममाला' मे एक सौ आठ खड हैं और प्रत्येक खड मे एक सौ आठ भजन हैं। कवित्त-सवैया आदि छन्दों में इनकी बहुत सी भक्तिप्रधान कविताएँ हैं। इनके पुत्र जीवाराम भी अच्छे भजनानन्दी

ही संस्कृत ग्रन्थों के सूत्रों और मन्त्रों की विवेचना कर संसार के कतिपय देश अपनेको विद्याविशारद मान बैठे हैं। हमारे ही मनु और याज्ञवल्क्य ने उन्हें विधानाचार्य बनाया है। हमारे ही चाणक्य के नीतिशास्त्र का अनुवाद कर वे लोग राजनीति-वेत्ता होने का दम भरते हैं।

पर दुःख है कि हम अपने साहित्य का गौरव भूल गये हैं। संस्कृत-साहित्य के पुनरुद्धार की ओर भी लोगों की अभिरुचि नहीं दीखती। संस्कृत-भाषा के प्रचार-क्षेत्र की परिधि संकुचित कर दी गई है। इसके प्रचार के लिये सरकार भी विशेष यत्न या व्यय नहीं करती। धनी-मानी सज्जनों की भी दृष्टि इसकी ओर नहीं है। पुराने समय में राजा-रईसों के दरबार में भी संस्कृत-प्रचार पर विशेष ध्यान दिया जाता था, पर आज तो सब दूसरे ही रंग में रँग गये हैं। हमारे प्रान्त में केवल दरभंगा के महाराजाधिराज को संस्कृत से प्रेम है। इस दरबार के द्वारा सदियों से संस्कृत-सेवा होती आ रही है। पर इतनी ही सेवा को हम यथेष्ट नहीं मान सकते।

सच पूछा जाय तो संस्कृत ही हिन्दी की जननी है। संस्कृत के पश्चात् प्राकृत के उपरान्त हिन्दी की सृष्टि हुई। हिन्दी ही आज भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा हो रही है। अधिकांश भारतवासी इसी भाषा में अपने मनोगत भावों को व्यक्त करते हैं। भारत में सर्वजनप्रिय अन्त प्रान्तीय भाषा यही है।

बहुत पुरानी बात है। सन् १९०८ के अक्टूबर में बडोदा राजधानी में महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन हुआ था। लेफटिनेंट कर्नल कन्होबा रणछोड़दास कीर्त्तिकर उसके सभापति थे। उस समय बडोदा-नरेश के दीवान थे बंग-साहित्यमहारथी श्रीरमेशचन्द्र दत्त (आर सी दत्त)। बडोदा-नरेश का हिन्दीप्रेम तो प्रसिद्ध ही है, उनके दीवान दत्त महोदय ने भी उक्त सम्मेलन में अपना हिन्दीप्रेम प्रत्यक्ष प्रकट कर दिया था। सम्मेलन में एक प्रस्ताव पास हुआ था कि हिन्दी को समस्त भारत की राष्ट्रीय भाषा बनाना चाहिये। इतना ही नहीं, इस प्रस्ताव को विशेष महत्त्व देने के लिये सम्मेलन का एक विशेषाधिवेशन शीघ्र ही (२६ अक्तूबर को) किया गया था, जिसके सभापति थे विद्वद्वर डाक्टर भांडारकर। इसी विशेषाधिवेशन में उक्त दीवान साहब (दत्त महोदय) ने अपनी प्रस्तावना में हिन्दी को ही राष्ट्रीय भाषा होने के योग्य बताया था। बम्बई-हाइकोर्ट के नामी वकील श्रीमाधव राव बोडस ने तो अपने विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान से यह भी सिद्ध कर दिया कि समस्त भारत की एक लिपि होने के योग्य देवनागरी ही है—भारत की प्रत्येक भाषा इसी लिपि में लिखी जानी चाहिये। फिर बम्बई के सुविख्यात विद्वान् रायबहादुर

चिन्तामणि वैद्य ने प्रस्ताव उपस्थित किया कि भारत के भिन्न भिन्न प्रदेशों की एक भाषा हिन्दी ही होनी चाहिये। उन्होंने इस बात को भली भाँति सप्रमाण सिद्ध कर दिया कि भारत की अन्यान्य भाषाओं को अपेक्षा हिन्दी ही इस योग्य है कि उसको राष्ट्रीय भाषा का पद दिया जाय। उनका व्याख्यान हिन्दी मे ही हुआ था।

बिहार ने आरम्भ से ही राष्ट्रभाषा हिन्दी के अभ्युत्थान मे योगदान किया है। उसकी हिन्दी-साहित्य सेवा सराहनीय है। अन्य प्रान्तों की नाईं वह भी इस विषय में अपनेको गौरवान्वित मानता है। बिहार के महाकवि मैथिल-कोकिल विद्यापति को हिन्दी-साहित्य कानन मे सुप्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। हिन्दी-ससार मे इनकी पदावलियाँ अमर हैं। आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व ही इन्होंने लोकभाषा में काव्यरचना की थी। गद्य निर्माण मे भी बिहार का प्रधान हाथ रहा है। आरा-निवासी प० सदल मिश्र का हमें गर्व है। इन्हीं के जिले (शाहाबाद) के कविराज चन्दनराम बन्दीजन अत्यन्त प्रसिद्ध कवि हो चुके हैं। चन्दनराम के पिता साहबराम को किसी दरबार मे कवियों को परास्त करने से 'कविराजाधिराज' की उपाधि मिली थी। साहबराम ने 'रस-दीपिका' आदि तीन काव्यग्रथ बनाये थे। कहते हैं कि हिन्दी कवि कालिदास के पुत्र उदयनाथ कविन्द ने अमेठी-नरेश से चन्दनराम को 'कविराज' की उपाधि दिलाई थी। पद्माकर, बेनी, दत्त, भंजन आदि कवियों से चन्दनराम की मैत्री थी। डुमराँव, मझौली, बलरामपुर आदि राज-दरबारों से इनको आर्थिक लाभ था। इनका जन्म सवत् १७६६ में हुआ था और निधन सवत् १८७० मे। *अन्तिम समय में इन्होंने 'नामार्णव' और 'अनेकार्थ'* नामक दो कविता पुस्तकें बनाई थीं। अपने समय मे बिहार के कविरत्न थे चन्दनराम। इनका घर आरा-सबडिवीजन के अम्बागाँव में था।

चन्दनराम से भी पहले, सारन जिले के इसुआपुर निवासी, भक्तवर शकर-दास बड़े सिद्ध महात्मा और कवि हो चुके है। इनका जन्म सवत् १७२६ के लगभग हुआ था। सवत् १८०६ मे अस्सी वर्ष की आयु में इनका गगालाभ हुआ था। ये नित्य-गगास्नान के अनन्य अनुरागी और अभ्यासी थे। इसी के प्रभाव से इनका कुष्ठरोग छूट गया था। गगा, यमुना आदि पुण्यसलिला नदियों के माहात्म्य का वर्णन इन्होंने अपनी कविताओं में बड़े अच्छे ढँग से किया है। इनके शिवा-शिव-सम्बन्धी पद बड़े अनूठे हैं। इनके ग्रथ 'राममाला' मे एक सौ आठ खड हैं और प्रत्येक खड मे एक सौ आठ भजन हैं। कवित्त-सवैया आदि छन्दों में इनकी बहुत-सी भक्तिप्रधान कविताएँ हैं। इनके पुत्र जीवाराम भी अच्छे भजनानन्दी

उत्तम पुस्तक' (काव्यकला) तैयार करके छपवाई थी, जिसमें ब्रजभाषा की समस्या-पूर्तियाँ छपी थीं। माननीय पंडित मदनमोहन मालवीयजी की कविताएँ भी उसमें छपी हैं। माँझा (सारन) के बाबू श्रीधरशाही, दाऊदनगर (गया) के मुन्शी जवाहर-लाल, दिलीपपुर (शाहाबाद) के बाबू नर्मदेश्वरप्रसादसिंह 'ईश' आदि बिहारी कवियों की कविताएँ उसमें मिलती हैं। उन्होंने 'भाषासार' नामक पुस्तक भी दो ही भागों में तैयार कर प्रकाशित की थी, जो उन दिनों बिहार के शिक्षाविभाग में पाठ्य पुस्तक थी। उनकी लिखी हुई स्त्री-शिक्षा, गणित-बत्तीसी, गुरु-गणित-शतक, पद्यार्थप्रकाश, भाषातत्त्वबोध आदि पुस्तकें भी उस समय बहुत प्रचलित थीं। सज्जनविलास, मानसपाठान्तर, मयंकसंग्रह, सुताप्रबोध आदि उनकी पुस्तकें भी छपी हुई हैं। उन्होंने हिन्दी की बरसों चिरस्मरणीय सेवा की। सन् १६०१ ई० में २६ अगस्त को उनका शरीरपात हुआ था।

शाहाबाद जिले के डुमराँव निवासी प० नकछेदी तिवारी 'अजान' कवि की सेवाएँ भी चिरस्मरणीय हैं। 'काशी के भारतजीवन प्रेस में जितने पुराने काव्यग्रंथ छपे थे, प्रायः सब इन्हीं के दिये हुए थे। इस कार्य में किसी प्रान्त का कोई पुरुष इनकी समता नहीं कर सकता।' इन्होंने डुमराँव और सूर्यपुरा के राज-पुस्तकालयों तथा अन्यान्य स्थानों से खोज ढूँढकर प्राचीन हिन्दीकवियों के अप्रकाशित काव्यग्रंथों की अनेक पाडुलिपियाँ भारतजीवन प्रेस को प्रकाशनार्थ दी थीं। दिलीपपुर के उक्त 'ईश' कवि ने भी इन्हें 'मुबारक' कवि की दो अप्रकाशित पुस्तकें दी थीं—'अलक शतक' और 'तिल-शतक'। इस प्रकार इन्होंने अनेक हस्तलिखित काव्यग्रंथों का उद्धार निरंतर किया। इनके द्वारा संग्रहीत और सम्पादित अनेक प्राचीन कविता पुस्तकें काशी के उक्त प्रेस से निकल चुकी हैं। गुजरात के हिन्दीकवि गोविन्द-गिल्लाभाई के साथ मिलकर इन्होंने बलभद्र-कृत 'नखशिख' को शोधा और छपवाया था, जो १८६४ ई० में निकला था। बीसवीं सदी की प्रथम दशाब्दी तक इनके द्वारा संकलित ग्रंथों का प्रकाशन बराबर होता रहा। इनसे बिहार को बड़ा भारी साहित्यिक गौरव मिला है।

बिहार के श्रीनगर, बनैली, दरभंगा, हथुआ, डुमराँव, सूर्यपुरा, बेतिया, टेकारी आदि राज्यों के स्वामियों ने जो हिन्दी-साहित्य के अभ्युदय में योगदान किया है वह साहित्य के इतिहास में बड़े गौरव का अध्याय है। इन नरेशों के अतिरिक्त, अन्य देशों और प्रदेशों के रहनेवाले बहुत से सज्जनों ने, साहित्यसेवा के लिये बिहार को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाकर, हिन्दी-संसार में बिहार का जो

मुख उज्ज्वल किया, वह भी प्रशंसात्मक शब्दों में सहर्ष स्मरण करने योग्य है। डाक्टर ग्रियर्सन बरसों बिहार में रहे थे। दरभंगा, पटना, गया आदि जिलों में शासनाधिकारी रहकर भी इन्होंने अनेक प्रकार के साहित्यिक कार्य किये। इनकी हिन्दी-सम्बन्धिनी साहित्यिक रचनाओं की जन्मभूमि बिहार ही है। इनका सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है 'बिहार पीजेंट लाइफ', जो सन् १८८३ ई० में बंगाल-सरकार की ओर से प्रकाशित हुआ था। इस अपूर्व ग्रंथ में बिहार के गाँवों में प्रचलित कहावतों, शब्दों और व्यवहारोपयोगी वस्तुओं के विवरणात्मक परिचयों का दर्शनीय संग्रह है। इस अद्वितीय ग्रंथ के आधार पर बिहार के सम्बन्ध में एक अभूतपूर्व हिन्दीग्रंथ तैयार किया जा सकता है। पटना के कमिश्नर ओल्डहम साहब भी हिन्दी के बड़े प्रेमी थे। उन्होंने अपने कई भाषणों में हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा कहा था। वे हिन्दी में शुद्ध भाषण कर सकते थे। उनके शासनकाल में यहाँ की हिन्दी-संस्थाओं का बड़ा हितसाधन हुआ था। पटना-ट्रेनिंग-कालेज के प्रिन्सिपल थिकेट साहब तो हिन्दी के सच्चे प्रेमी ही थे। प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र से इन्होंने हिन्दी सीखी थी। 'शिक्षा' का सम्पादन भी इन्होंने किया था। इनके द्वारा हिन्दी के कई बिहारी लेखकों को बड़ा सहारा मिला था। इसी प्रकार युक्तप्रदेशवासी पं० अम्बिकादत्त व्यास, डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल, पंडित किशोरीलाल गोस्वामी आदि धुरन्धर साहित्य-सेवियों का भी साहित्यिक कर्मक्षेत्र बिहार ही रहा है। व्यासजी दरभंगा, मुजफ्फरपुर, छपरा, भागलपुर, पटना आदि नगरों में जिला-स्कूल के हेडपंडित और संस्कृताध्यापक तथा कालेज के प्रोफेसर रहकर बरसों बिहार में साहित्यसेवा कर चुके थे। श्रीनगर और दरभंगा के नरेशों ने आपका बड़ा सम्मान भी किया था। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध की चौथी दशाब्दी में भागलपुर से आपने 'पीयूष-प्रवाह' नामक मासिक पत्र निकाला था, जिसके द्वारा बिहार में साहित्यिक अभिरुचि एवं जागृति का प्रसार हुआ। आपका सबसे बड़ा काम है 'बिहार-संस्कृत-संजीवन-समाज' की स्थापना, जो आज भी आपका गुणगान करा रहा है। जायसवालजी तो बिलकुल बिहार के ही हो गये थे। उनका सारा जीवन इसी प्रान्त में बीता। उनकी साहित्यिक कृतियाँ यहीं प्रसूत हुई थीं। आज भी उनकी कन्या श्रीमती धर्मशीलादेवी पटना हाइकोर्ट में ही बारिस्टरी करती हैं। गोस्वामीजी ने प्रौढ़ावस्था तक आरा-नगर में रहकर साहित्यसेवा की थी। इन्होंने ही बिहार में सबसे पहला सार्वजनिक पुस्तकालय आरा में खोला था—सन् १८८८ ई० में १ अप्रैल को, जिसका नाम था

लाँघकर भी बड़े कार्यक्षम और स्वस्थ-सबल हैं। आजकल आप 'आत्मकथा' लिख रहे हैं, जो साहित्य की एक अमूल्य निधि होगी। अक्षौरीजी दार्शनिक विचार के धार्मिक लेख तथा गम्भीर साहित्यिक निबन्ध लिखने में बड़े प्रवीण थे।

प० रामावतारजी तो भारत के विद्वद्रत्नों में अपनी प्रभा छिटका गये। उनके कारण आज भी बिहार का सिर ऊँचा है। वे अपने समय में तो विद्वन्मडली के सिरमौर थे ही, आज भी उनका नाम विद्वत्ता के गौरव-शिखर पर अकेला चमक रहा है। बिहार के हिन्दी-लेखकों में सर्वप्रथम वही अखिलभारतीय सप्तम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (जबलपुर) के सभापति हुए थे। प० सकलनारायणजी ने आरा में नागरीप्रचारिणी सभा स्थापित कर बिहार में हिन्दी-भाषा और नागरी लिपि का पर्याप्त प्रसार किया। इन्होंने 'शिक्षा' के सम्पादन द्वारा भाषा के रूप को स्थिरता निश्चित करने में श्लाघ्य उद्योग किया। बाबू व्रजनन्दन सहाय ने ललित भाषा में ललित साहित्य की सृष्टि करके बिहार के लेखक-मडल को गौरव-मडित कर दिया। आपकी भाषा के लालित्य और प्रेम की दार्शनिक व्याख्या पर मुग्ध होकर छतरपुर (बुन्देलखड) के साहित्यानुरागी नरेश (स्वर्गीय महाराज) ने आपको अपनी राजधानी में सादर बुलाकर सम्मानित किया था। प० ईश्वरी प्रसादजी को भी बनैली-नरेश राजा कीर्त्यानन्दसिंह बहादुर ने एक हजार मुद्राएँ देकर समादृत किया था। इनकी लेखनी में गजब की बिजली थी। भारत की प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं के तो पडित थे ही, सस्कृत और उर्दू तथा अँगरेजी भाषाएँ लिखने में भी इनकी लेखनी कमाल करती थी। इनकी हास्यरसमयी कविताओं का सग्रह 'चनाचबेना' नाम से प्रकाशित हो चुका है, जिससे इनकी कवित्वशक्ति का भी आभास मिलता है। इन्होंने अपना जीवन साहित्यमय बना लिया था। इनके कारण अन्य प्रान्तों में भी बिहार की साहित्यसेवा का सम्मान हुआ। श्रीचतुर्वेदीजी तो हास्यरसावतार ही थे। लाहौर के अखिलभारतीय द्वादश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तथा सोनपुर के प्रथम बिहार-प्रादेशिक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति पद से आपने जो भाषण किये थे, वे अपने ढँग के निराले हैं। उन भाषणों में भाषा की शुद्धता और स्वच्छता तथा अनुप्रास की बहार देखते ही बनती है। प्रयाग के षष्ठ अखिलभारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन में आपने जो 'अनुप्रास अन्वेषण' नामक विनोदपूर्ण निबन्ध पढ सुनाया था उसमें स्वाभाविक रीति से बहती हुई अनुप्रास की धारा सहृदय साहित्यिकों के अवगाहन करने योग्य है।

श्रीरामलोचनशरणजी तो हिन्दी के उन उन्नायकों में हैं, जिन्होंने साहित्य

के उन्नयन में अपना सारा जीवन खपा दिया है। बिहार के हिन्दी प्रकाशन क्षेत्र में आपने युगान्तर उपस्थित कर दिया। आपने लगभग पाँच सौ हिन्दी के उत्तम साहित्यिक एवं पाठ्य ग्रन्थ समयानुकूल सजधज के साथ प्रकाशित किये, जिनकी भाषा और शैली प्रामाणिक एवं अनुकरणीय मानी जाने लगी। पाठ्य ग्रन्थों के निर्माण में आप नवयुग के प्रवर्त्तक हैं। आपकी बोधगम्य भाषा का स्वाभाविक प्रवाह और आपकी मनोवैज्ञानिक विषय प्रतिपादनशैली का चमत्कार सचमुच अद्‌भुत है। आपकी लेखनी ने केवल बिहार के शिक्षा विभाग में ही विजय नहीं पाई है, बल्कि युक्तप्रान्त और मध्यप्रदेश तथा पंजाब के शिक्षा विभाग में भी आदर पाया है। दक्षिण भारत तथा देशी राज्यों के हिन्दी-संसार में भी आपकी पाठ्य पुस्तकों ने धाक जमाई है। आपका 'बालक' तो पन्द्रह बरसों से नवयुवकोपयोगी उत्कृष्ट साहित्य तैयार कर रहा है।

श्रीकालिकाप्रसादजी बिहार के अध्यापक वर्ग में बड़े प्रतिष्ठित और प्रभावशाली व्यक्तित्व के अधिकारी थे। उनकी सदाचारिता की बड़ी धाक थी। शुद्ध भाषा लिखने के विचार से वे प्रमाण माने जाते थे। और, शास्त्रीजी तो स्वाभिमान की मूर्त्ति थे। संस्कृत और हिन्दी पर विलक्षण प्रभुत्व था आपका *। संस्कृतज्ञ हिन्दी लेखकों की रचनाओं में त्रुटियाँ देखकर आप मुस्कुराहट के साथ विनोदपूर्ण आलोचना सुनाया करते थे। मिश्रजी भी हिन्दी को सँवारने सिंगारने में एक ही थे। उनकी अलंकृत भाषा बड़ी लच्छेदार होती थी। काशी-'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' में एक समालोचक ने उनके विषय में लिखा था—"द्विवेदीयुग के गद्यकारों में प्रोफेसर अक्षयवट मिश्रजी का आदरणीय स्थान है। द्विवेदीजी के प्रोत्साहन से आप समय समय पर विविध विषयों पर निबंध लिखते रहे। निबंधों की भाषा में बड़ी सफाई है। मिश्रजी संस्कृत-साहित्य के विद्वान् हैं, अतएव इनके शब्दों और वाक्यों पर संस्कृत का पूरा प्रभाव है। इनकी भाषा को देखकर स्वर्गीय पंडित गोविन्दनारायण मिश्र की याद आ जाती है। मिश्रजी छोटे-छोटे वाक्योंवाली चलती भाषा भी लिखते हैं। परन्तु भाषा-सुन्दरी को सजाकर निकालनेवाली पुरानी परिपाटी आप नहीं छोड़ते। मिश्रजी की विनोदप्रियता देख भारतेन्दु के दिनों की याद आ जाती है।" इनकी आत्मकथा (आत्मचरित चम्पू†) हिन्दी

* श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण का हिन्दी भाषानुवाद काशी से प्रकाशित है।—ले०

† 'पुस्तक भंडार' से 'आत्मचरितचम्पू' और 'लेखमणिमाला' दो पुस्तकें मिश्रजी की निकली हुई हैं।—लेखक

मे एक अनूठी पुस्तक है। ये व्रजभाषा के प्राचीन कवियों के जोड की कविता करते थे और अपनी संस्कृत-कविता में भी इन्होंने बडी सफलता से व्रजभाषा छन्दों का प्रयोग किया था। इनके संस्कृत के दोहे बडे अनूठे बन पड़े हैं।

श्रीकालिकासिंह का 'गीताभाष्य' हिन्दी मे अपने ढँग का अनुपम ग्रन्थ है। आप रायसाहब थे। आदर्श हेडमास्टर होने के साथ-साथ आप निष्णात शिक्षण शास्त्री भी थे। प्रोफेसर झा बडे प्रसन्नवदन और मित्रव्यसनी साहित्यसेवी थे। उनके लिखे दोनों ग्रंथ ('भारतीय शासनपद्धति' और 'सम्पत्ति-शास्त्र') हिन्दी मे अपने ढँग के सर्वप्रथम माने गये थे। अर्थशास्त्र और इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाले उनके लेख बडे प्रामाणिक समझे जाते थे। मन्द मुस्कान उनकी चिरसंगिनी थी।

राजा राधिकारमणप्रसादसिंह तो भाषा-भगवती के अनन्य आराधक हैं। आपकी भाषा का राजसी ठाट बडा आकर्षक है। भाषा की नक्काशी आपसे कोई सीखे। पहले आपकी भाषा को लोग 'रवीन्द्री हिन्दी' कहा करते थे। अब इधर आपने एक नई लोचदार शैली अपनाई है। राजकाज में व्यस्त रहते हुए भी आपको स्वान्त सुखाय साहित्यसेवा करने का व्यसन-सा लग गया है।

इस प्रकार उपर्युक्त साहित्य सेवियों की साहित्य-साधना से बिहार की यथेष्ट गौरववृद्धि हुई है।

बिहार के विद्वान् लेखकों मे देशपूज्य डाक्टर राजेन्द्रसादजी सर्वश्रेष्ठ हैं। यह उचित और स्वाभाविक भी है। आपके महान् व्यक्तित्व का प्रभाव बिहार के साहित्यजगत् पर भी पड़ा है। राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत सर्वजनानुमोदित भाषा लिखने में आप बड़े यशस्वी हैं। राष्ट्रभाषा-सम्मेलन के आप तीन-तीन बार अध्यक्ष हो चुके हैं—कोकनाडा, काशी और कलकत्ता। तीनों भाषण मनन करने योग्य हैं। इस साल मुजफ्फरपुर के संस्कृत-कानवोकेशन मे आपका दीक्षान्त भाषण हिन्दी में हुआ है। यह संस्कृत कालेज के इतिहास में सबसे पहली घटना है। आपका वह बृहद्भाषण ग्रंथरूप मे मुद्रित हो रहा है।

बिहार के राष्ट्रीय विचारवाले ओजस्वी लेखकों मे आचार्य बदरीनाथ वर्मा, श्रीदेवव्रत शास्त्री, श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, प्रोफेसर जगन्नाथप्रसाद मिश्र, श्री दिनेशदत्त झा, श्रीव्रजशंकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये पत्र-सम्पादन-कला कुशल भी हैं। आचार्यजी 'भारतमित्र' और 'देश' का सम्पादन कर चुके हैं। शास्त्रीजी 'नवशक्ति' और 'राष्ट्रवाणी' द्वारा अपनी पत्रकार-कला-कुशलता का प्रत्यक्ष परिचय दे रहे हैं। बेनीपुरीजी की लेखनी में जादू है। उनकी भावनाओं

महलगाँव (भागलपुर) निवासी
स्वर्गीय प्रोफेसर राधाकृष्ण झा, एम० ए०
(पृ० ६१६)

निमेज (शाहाबाद)-निवासी
स्वर्गीय साहित्याचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री (पृ० ५१६)
(पृष्ठ ५४६, ५६०, ५८२ ☞

स्व० बाबू कालिकाप्रसादजी, बी० ए०, बी० टी०
(गया)—पृ० ६१५

स्व० जनाधरप्रसाद शर्मा 'विकल'
कुमरवाजितपुर (मुजफ्फरपुर)

आरा-निवासी
स्वर्गीय पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा

(पृ० ६१७)

रायसाहब रामशरण उपाध्याय
(हेडमास्टर, पटना ट्रेनिङ्ग-स्कूल)

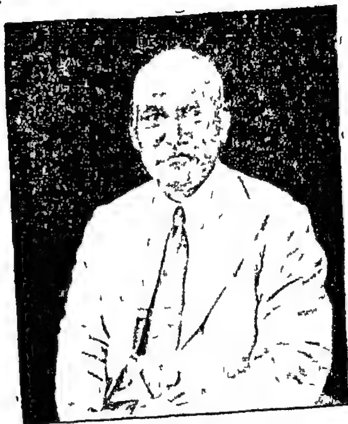

रायबहादुर बेचूनारायण, पटना (पृ० ७०६)

(पृ० ६१६)

स्व० रायसाहब श्रीकालिकासिंह, बी० ए०, बी० टी०
(सारन जिला निवासी)

पं० जीवनाथ राय, बी० ए०, तीर्थत्रय
(हेडपंडित, दरभंगा जिला-स्कूल)

मे अभिनव क्रान्ति की लहर है। अबतक वे पाँच-छः अच्छे पत्रो का सम्पादन कर चुके। उनके द्वारा सम्पादित पत्र सुरक्षित रखने योग्य होते हैं। मिश्रजी भी सफल सम्पादक हैं। मासिक 'विश्वमित्र' आपके सम्पादकत्व मे अपना उत्कर्ष दिखा चुका है। बेनीपुरीजी और मिश्रजी अच्छे वक्ता भी हैं। झा जी एकान्तप्रिय अनुभवी पत्रकार हैं। इनका दैनिक 'आर्यावर्त्त' इनके राष्ट्रीय विचारों का भार-वहन करने मे बहुत सकुचाता है। व्रजशंकरजी बड़े परिश्रम और अध्यवसाय से 'योगी' का सचालन और सम्पादन करते हैं। उसमे आपके राष्ट्रीय भाव निर्भीकतापूर्ण स्पष्टोक्तियों मे व्यक्त होते हैं।

बिहार के अन्य पत्रकारों मे प० नन्दकिशोर तिवारी, प० मथुराप्रसाद दीक्षित, प० श्रीकान्त ठाकुर विद्यालकार, प० प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त', ठाकुर राजकिशोर सिंह, श्रीपारसनाथ सिंह, श्रीसाहित्याचार्य 'मग', श्रीरामजीवन शर्मा, श्रीभुवनेश्वरसिंह 'भुवन', श्रीसुरेन्द्र झा 'सुमन', श्रीअच्युतानन्द दत्त, श्रीललितकुमार सिंह 'नटवर', श्रीललिताप्रसाद, श्रीहसकुमार तिवारी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनमे कई ऐसे हैं जिन्होंने अपने सम्पादन-कौशल से प्रान्त की गौरव-वृद्धि की है—कुछ तो आज भी कर रहे हैं। श्रीकान्तजी साप्ताहिक 'विश्वमित्र' में (अब बम्बई के दैनिक 'विश्वमित्र' में), मुक्तजी 'आरती' मे, भुवनजी 'तिरहुत-समाचार' मे, सुमनजी 'मिथिला मिहिर' मे और दत्तजी 'बालक' में अपना जौहर दिखा रहे हैं—भुवनजी ने 'वैशाली' मे भी खूब दिखाया था।

प्रोफेसर शिवपूजनसहाय ने भी बिहार के गौरव को बढ़ाया है। आपकी टकसाली हिन्दी और मँजी भाषा तथा आपके अलकार-पूर्ण वाक्य पाठकों के हृदय को अपनी ओर खींच लेते हैं। जो चाहता है, आपकी रचना बराबर पढ़ें। आप द्विवेदी अभिनदन ग्रथ का सम्पादन कर चुके है।

हमारे यहाँ समीक्षात्मक साहित्य तैयार करनेवाले भी हैं—ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह 'सुधांशु', प्रोफेसर जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', डाक्टर जनार्दन मिश्र, प्रोफेसर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, अध्यापक रामखेलावन पांडेय, प्रोफेसर दिवाकर प्रसाद विद्यार्थी, प्रोफेसर केसरीकिशोर शरण, श्रीनरेन्द्रनाथ दास विद्यालकार आदि सफल समीक्षक हैं। सुधांशुजी ने 'काव्य मे अभिव्यजनावाद', द्विजजी की 'प्रेमचन्द की उपन्यासकला', मिश्रजी ने 'विद्यापति', ब्रह्मचारीजी ने 'प्रियप्रवास' और विद्यालकारजी ने 'विद्यापति-काव्यालोक' लिखकर अपनी समीक्षण-शक्ति का अच्छा परिचय दिया है।

हमारे प्रान्त के कवियों मे 'वियोगी', 'विमल', 'द्विज', 'कैरव', 'नटवर', 'प्रभात', 'दिनकर', 'आरसी', 'केसरी', 'मनोरञ्जन', 'माधव', 'नेपाली', 'सुहृद', 'रमण', 'मोहन', 'दिवाकर', 'किसलय', हसकुमार आदि हिन्दी-जगत् मे विशेष विख्यात हैं। साहित्याचार्य श्रीजयकिशोरनारायण सिंह भी इस प्रान्त के बहुत प्रसिद्ध कवि हैं। और, श्रीजानकीवल्लभ शास्त्रीजी भी। संस्कृत-साहित्य में इन दोनों की अच्छी पैठ है, दोनों की प्रतिभा प्रशसनीय है।

हास्यरस के बिहारी लेखकों में श्रीसरयू पडा गौड (शाहाबाद) और श्रीहरेश्वरदत्त मिमिकमैन (छपरा) तथा श्रीराधाकृष्ण (राँची) बड़े प्रसिद्ध हैं। पडाजी और मिमिकमैन की सरस रचनाओं से सब परिचित हैं। राधाकृष्णजी 'घोष बोस-बनर्जी-चटर्जी' गुप्त नाम से लिखते हैं, इसलिये उनकी इस कला से बहुत कम लोग परिचित हैं। किन्तु उनकी रचनाएँ वास्तव में इस कला की प्रफुल्लता प्रकट करती हैं। पडाजी और मिमिकमैन के देहाती चित्रण खासे विनोदपूर्ण होते हैं।

बिहार में हिन्दी प्रचार करने मे तथा हिन्दी-साहित्य का भाडार भरने में 'पुस्तक-भडार' ने प्रशसनीय प्रयत्न किया है। इस सस्था के सस्थापक और सचालक श्रीरामलोचनशरण बिहारी के प्रबल प्रयास से बिहार हिन्दी के सेवा क्षेत्र में विशेष रूप से प्रसिद्ध हुआ। जबतक ये कार्यक्षेत्र मे नहीं आये थे तबतक बिहार इस क्षेत्र मे नगण्य था। इन्होंने अपनी पुस्तकों की सर्वाङ्ग-सुन्दरता से बिहार के नाम को इस क्षेत्र मे चमका दिया। इनकी सुबोध शैली से हिन्दी की सरलता खूब बढ़ी है और भाषा की शुद्धता के विचार मे इन्होंने बहुत अधिक मनोयोग दिया है। नये प्रकार की शिक्षण-पद्धति निकालने मे इनको अपूर्व सफलता मिली है। इनके द्वारा सम्पादित और सरक्षित 'बालक' हिन्दी जगत् मे बड़ा ही लोकप्रिय है। हिन्दी-ससार के बालकों मे हिन्दी के प्रति प्रेम उत्पन्न करने का अधिकाश श्रेय 'बालक' ही को है। 'बालक' ने बिहार के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों मे भी अनेक होनहार लेखक पैदा किये हैं।

पटना की 'बाल-शिक्षा-समिति' की हिन्दी सेवा भी प्रशसनीय है। उसके सस्थापक और सचालक प० रामदहिन मिश्र काव्यतीर्थ स्वय हिन्दी के विद्वान् लेखक हैं। अब आप भी प्रतिवर्ष नई-नई सुन्दर साहित्यिक पुस्तकें निकालकर हिन्दी की सेवा कर रहे हैं। आपके सम्पादकत्व मे 'किशोर' नामक सचित्र मासिक पत्र भी चार साल से निकल रहा है। शिक्षा और साहित्य से सम्बन्ध

रखनेवाली आपकी कई पुस्तकें बहुत अच्छी हैं। आपके साहित्यिक प्रकाशन-विभाग का नाम ग्रंथमाला-कार्यालय है।

'बिहारबन्धु' के बाद खड्गविलास प्रेस (पटना) को भी बिहार में हिन्दी-प्रचार करने का श्रेय प्राप्त है। इसी के प्रयत्नों से बिहार के लोगों में साहित्यानुराग उत्पन्न हुआ था। पर इस समय यह केवल पाठ्यपुस्तकों पर ही ध्यान रखता है। किन्तु इसके पुराने प्रकाशित साहित्यिक ग्रन्थ बड़े महत्त्वपूर्ण हैं।

पटना की हिन्दी-प्रचारिणी सभा और मुजफ्फरपुर का 'सुहृद-सघ' दोनों इस समय साहित्यसेवा के क्षेत्र मे बहुत प्रगतिशील हैं। छपरा, मुँगेर आदि नगरों में साहित्य-परिषदों द्वारा अच्छी साहित्यिक जागृति हो रही है। पटना, भागलपुर, मुजफ्फरपुर, छपरा, दरभगा आदि नगरों के कालेजों में भी साहित्य-परिषदों के विशेष उत्सव प्राय प्रति वर्ष बडे समारोह से हुआ करते हैं, जिनके कारण साहित्यिक प्रगति के पथ पर बिहार को बड़ा उत्तेजन मिला करता है। प्रान्त के सभी भागों मे पुस्तकालयों की सख्या धीरे-धीरे बढ रही है। इनमें कितने ही पुस्तकालयों के वार्षिकोत्सव प्राय हुआ करते हैं, जिनसे साहित्यिक चर्चा बराबर जारी रहती है। स्कूलों, कालेजों और पुस्तकालयों में साहित्यिक जयन्तियाँ भी अब नियमित रूप से मनाई जाने लगी हैं। इन सब प्रयत्नों का सामूहिक प्रभाव बिहार के साहित्यिक जागरण में बड़ा सहायक सिद्ध हो रहा है।

बिहार के पत्र-ससार मे 'नवशक्ति' का स्थान सर्वोपरि है। बिहार के कोने-कोने मे इसका प्रचार है। इसके सुयोग्य सम्पादक श्रीदेवव्रतजी बड़े अध्यवसायी, कर्मशील और कार्यदक्ष हैं। दैनिक 'राष्ट्रवाणी' का प्रकाशन उन्हीं के उद्योग और उत्साह का फल है। 'योगी' और 'प्रभाकर' भी इस प्रान्त मे हिन्दी की चर्चा फैलाने मे सफल हुए हैं। ये दोनों भी अपने प्रान्त को अग्रसर करते रहने मे तत्पर हैं। हिन्दी के सुपाठ्य पत्रों में इनकी गणना होती है।

बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के समान प्रान्तीय साहित्यिक सस्थाएँ देश में बहुत कम हैं। हर्ष का विषय है कि उसके वर्त्तमान प्रधान मंत्री प० छविनाथ पाडेय, बी ए, एल-एल बी, के मन्त्रित्व में इधर पाँच-सात वर्षों के अन्दर ही सम्मेलन को आशातीत सफलता मिली है। आप मिर्जापुर (युक्तप्रान्त) के निवासी हैं, पर पिछले अनेक बरसों से आपका प्रधान कर्मक्षेत्र बिहार ही है। सम्मेलन को आप-सरीखे साहित्यानुरागी और कर्मठ कार्यकर्त्ता तथा प्रभावशाली व्यक्ति की बड़ी आवश्यकता थी। आपने सम्मेलन को सजीव संस्था बना दिया

हमारे प्रान्त के कवियों मे 'वियोगी', 'विमल', 'द्विज', 'कैरव', 'नटवर', 'प्रभात', 'दिनकर', 'आरसी', 'केसरी', 'मनोरजन', 'माधव', 'नेपाली', 'सुहृद', 'रमण', 'मोहन', 'दिवाकर', 'किसलय', हसकुमार आदि हिन्दी-जगत् में विशेष विख्यात हैं। साहित्याचार्य श्रीजयकिशोरनारायण सिंह भी इस प्रान्त के बहुत प्रसिद्ध कवि हैं। और, श्रीजानकीवल्लभ शास्त्रीजी भी। सस्कृत-साहित्य मे इन दोनों की अच्छी पैठ है, दोनों की प्रतिभा प्रशसनीय है।

हास्यरस के बिहारी लेखकों मे श्रीसरयू पडा गौड (शाहाबाद) और श्रीहरेश्वरदत्त मिमिकमैन (छपरा) तथा श्रीराधाकृष्ण (राँची) बड़े प्रसिद्ध हैं। पडाजी और मिमिकमैन की सरस रचनाओं से सब परिचित हैं। राधाकृष्णजी 'घोष बोस बनर्जी-चटर्जी' गुप्त नाम से लिखते हैं, इसलिये उनकी इस कला से बहुत कम लोग परिचित हैं। किन्तु उनकी रचनाएँ वास्तव मे इस कला की प्रफुल्लता प्रकट करती हैं। पडाजी और मिमिकमैन के देहाती चित्रण खासे विनोदपूर्ण होते हैं।

बिहार मे हिन्दी प्रचार करने मे तथा हिन्दी-साहित्य का भाडार भरने मे 'पुस्तक-भडार' ने प्रशसनीय प्रयत्न किया है। इस सस्था के सस्थापक और सचालक श्रीरामलोचनशरण बिहारी के प्रबल प्रयास से बिहार हिन्दी के सेवा क्षेत्र में विशेष रूप से प्रसिद्ध हुआ। जबतक ये कार्यक्षेत्र में नहीं आये थे तबतक बिहार इस क्षेत्र मे नगण्य था। इन्होंने अपनी पुस्तकों की सर्वाङ्ग-सुन्दरता से बिहार के नाम को इस क्षेत्र मे चमका दिया। इनकी सुबोध शैली से हिन्दी की सरलता खूब बढ़ी है और भाषा की शुद्धता के विचार मे इन्होंने बहुत अधिक मनोयोग दिया है। नये प्रकार की शिक्षण-पद्धति निकालने मे इनको अपूर्व सफलता मिली है। इनके द्वारा सम्पादित और सरक्षित 'बालक' हिन्दी जगत् मे बड़ा ही लोकप्रिय है। हिन्दी-ससार के बालकों मे हिन्दी के प्रति प्रेम उत्पन्न करने का अधिकाश श्रेय 'बालक' ही को है। 'बालक' ने बिहार के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में भी अनेक होनहार लेखक पैदा किये हैं।

पटना की 'बाल शिक्षा-समिति' की हिन्दी सेवा भी प्रशसनीय है। उसके सस्थापक और सचालक प० रामदहिन मिश्र काव्यतीर्थ स्वय हिन्दी के विद्वान् लेखक हैं। अब आप भी प्रतिवर्ष नई-नई सुन्दर साहित्यिक पुस्तकें निकालकर हिन्दी की सेवा कर रहे हैं। आपके सम्पादकत्व मे 'किशोर' नामक सचित्र मासिक पत्र भी चार साल से निकल रहा है। शिक्षा और साहित्य से सम्बन्ध

रखनेवाली आपकी कई पुस्तकें बहुत अच्छी हैं। आपके साहित्यिक प्रकाशन-विभाग का नाम ग्रथमाला-कार्यालय है।

'बिहारबन्धु' के बाद खड्गविलास प्रेस (पटना) को भी बिहार में हिन्दी-प्रचार करने का श्रेय प्राप्त है। इसी के प्रयत्नों से बिहार के लोगों में साहित्यानुराग उत्पन्न हुआ था। पर इस समय यह केवल पाठ्यपुस्तकों पर ही ध्यान रखता है। किन्तु इसके पुराने प्रकाशित साहित्यिक ग्रन्थ बड़े महत्त्वपूर्ण हैं।

पटना की हिन्दी-प्रचारिणी सभा और मुजफ्फरपुर का 'सुहृद-सघ' दोनों इस समय साहित्यसेवा के क्षेत्र में बहुत प्रगतिशील हैं। छपरा, मुँगेर आदि नगरों में साहित्य-परिषदों द्वारा अच्छी साहित्यिक जागृति हो रही है। पटना, भागलपुर, मुजफ्फरपुर, छपरा, दरभगा आदि नगरों के कालेजों में भी साहित्य-परिषदों के विशेष उत्सव प्राय प्रति वर्ष बड़े समारोह से हुआ करते हैं, जिनके कारण साहित्यिक प्रगति के पथ पर बिहार को बड़ा उत्तेजन मिला करता है। प्रान्त के सभी भागों में पुस्तकालयों की सख्या धीरे-धीरे बढ रही है। इनमें कितने ही पुस्तकालयों के वार्षिकोत्सव प्राय हुआ करते हैं, जिनसे साहित्यिक चर्चा बराबर जारी रहती है। स्कूलों, कालेजों और पुस्तकालयों मे साहित्यिक जयन्तियाँ भी अब नियमित रूप से मनाई जाने लगी हैं। इन सब प्रयत्नों का सामूहिक प्रभाव बिहार के साहित्यिक जागरण में बडा सहायक सिद्ध हो रहा है।

बिहार के पत्र-ससार मे 'नवशक्ति' का स्थान सर्वोपरि है। बिहार के कोने-कोने मे इसका प्रचार है। इसके सुयोग्य सम्पादक श्रीदेवव्रतजी बड़े अध्यवसायी, कर्मशील और कार्यदक्ष हैं। दैनिक 'राष्ट्रवाणी' का प्रकाशन उन्हीं के उद्योग और उत्साह का फल है। 'योगी' और 'प्रभाकर' भी इस प्रान्त मे हिन्दी की चर्चा फैलाने मे सफल हुए हैं। ये दोनों भी अपने प्रान्त को अग्रसर करते रहने में तत्पर हैं। हिन्दी के सुपाठ्य पत्रों में इनकी गणना होती है।

बिहार-प्रादेशिक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के समान प्रान्तीय साहित्यिक सस्थाएँ देश मे बहुत कम हैं। हर्ष का विषय है कि उसके वर्त्तमान प्रधान मत्री प० छविनाथ पाडेय, बी ए, एल-एल बी, के मत्रित्व में इधर पाँच-सात वर्षों के अन्दर ही सम्मेलन को आशातीत सफलता मिली है। आप मिर्जापुर (युक्तप्रान्त) के निवासी हैं, पर पिछले अनेक बरसों से आपका प्रधान कर्मक्षेत्र बिहार ही है। सम्मेलन को आप-सरीखे साहित्यानुरागी और कर्मठ कार्यकर्त्ता तथा प्रभावशाली व्यक्ति की बड़ी आवश्यकता थी। आपने सम्मेलन को सजीव सस्था बना दिया

हमारे प्रान्त के कवियों में 'वियोगी', 'विमल', 'द्विज', 'कैरव', 'नटवर', 'प्रभात', 'दिनकर', 'आरसी', 'केसरी', 'मनोरञ्जन', 'माधव', 'नेपाली', 'सुहृद', 'रमण', 'मोहन', 'दिवाकर', 'किसलय', हंसकुमार आदि हिन्दी-जगत् में विशेष विख्यात हैं। साहित्याचार्य श्रीजयकिशोरनारायण सिंह भी इस प्रान्त के बहुत प्रसिद्ध कवि हैं। और, श्रीजानकीवल्लभ शास्त्रीजी भी। संस्कृत-साहित्य में इन दोनों की अच्छी पैठ है; दोनों की प्रतिभा प्रशंसनीय है।

हास्यरस के बिहारी लेखकों में श्रीसरयू पण्डा गौड़ (शाहाबाद) और श्रीहरेश्वरदत्त मिमिकमैन (छपरा) तथा श्रीराधाकृष्ण (राँची) बड़े प्रसिद्ध हैं। पण्डाजी और मिमिकमैन की सरस रचनाओं से सब परिचित हैं। राधाकृष्णजी 'घोष बोस-बनर्जी-चटर्जी' गुप्त नाम से लिखते हैं, इसलिये उनकी इस कला से बहुत कम लोग परिचित हैं। किन्तु उनकी रचनाएँ वास्तव में इस कला की प्रफुल्लता प्रकट करती हैं। पण्डाजी और मिमिकमैन के देहाती चित्रण खासे विनोदपूर्ण होते हैं।

बिहार में हिन्दी प्रचार करने में तथा हिन्दी-साहित्य का भाण्डार भरने में 'पुस्तक-भण्डार' ने प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। इस संस्था के संस्थापक और संचालक श्रीरामलोचनशरण बिहारी के प्रबल प्रयास से बिहार हिन्दी के सेवा क्षेत्र में विशेष रूप से प्रसिद्ध हुआ। जबतक ये कार्यक्षेत्र में नहीं आये थे तबतक बिहार इस क्षेत्र में नगण्य था। इन्होंने अपनी पुस्तकों की सर्वाङ्ग-सुन्दरता से बिहार के नाम को इस क्षेत्र में चमका दिया। इनकी सुबोध शैली से हिन्दी की सरलता खूब बढ़ी है और भाषा की शुद्धता के विचार में इन्होंने बहुत अधिक मनोयोग दिया है। नये प्रकार की शिक्षण-पद्धति निकालने में इनको अपूर्व सफलता मिली है। इनके द्वारा सम्पादित और संरक्षित 'बालक' हिन्दी जगत् में बड़ा ही लोकप्रिय है। हिन्दी-संसार के बालकों में हिन्दी के प्रति प्रेम उत्पन्न करने का अधिकांश श्रेय 'बालक' ही को है। 'बालक' ने बिहार के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में भी अनेक होनहार लेखक पैदा किये हैं।

पटना की 'बाल शिक्षा-समिति' की हिन्दी-सेवा भी प्रशंसनीय है। उसके संस्थापक और संचालक प० रामदहिन मिश्र काव्यतीर्थ स्वयं हिन्दी के विद्वान् लेखक हैं। अब आप भी प्रतिवर्ष नई नई सुन्दर साहित्यिक पुस्तकें निकालकर हिन्दी की सेवा कर रहे हैं। आपके सम्पादकत्व में 'किशोर' नामक सचित्र मासिक पत्र भी चार साल से निकल रहा है। शिक्षा और साहित्य से सम्बन्ध

रखनेवाली आपकी कई पुस्तकें बहुत अच्छी हैं। आपके साहित्यिक प्रकाशन-विभाग का नाम ग्रथमाला-कार्यालय है।

'बिहारबन्धु' के बाद खड्गविलास प्रेस (पटना) को भी बिहार मे हिन्दी-प्रचार करने का श्रेय प्राप्त है। इसी के प्रयत्नों से बिहार के लोगों में साहित्यानुराग उत्पन्न हुआ था। पर इस समय यह केवल पाठ्यपुस्तकों पर ही ध्यान रखता है। किन्तु इसके पुराने प्रकाशित साहित्यिक ग्रन्थ बड़े महत्त्वपूर्ण हैं।

पटना की हिन्दी-प्रचारिणी सभा और मुजफ्फरपुर का 'सुहृद-सघ' दोनों इस समय साहित्यसेवा के क्षेत्र में बहुत प्रगतिशील हैं। छपरा, मुँगेर आदि नगरों में साहित्य-परिषदों द्वारा अच्छी साहित्यिक जागृति हो रही है। पटना, भागलपुर, मुजफ्फरपुर, छपरा, दरभगा आदि नगरों के कालेजों में भी साहित्य परिषदों के विशेष उत्सव प्राय प्रति वर्ष बड़े समारोह से हुआ करते हैं, जिनके कारण साहित्यिक प्रगति के पथ पर बिहार को बड़ा उत्तेजन मिला करता है। प्रान्त के सभी भागों में पुस्तकालयों की सख्या धीरे धीरे बढ रही है। इनमें कितने ही पुस्तकालयों के वार्षिकोत्सव प्राय हुआ करते हैं, जिनसे साहित्यिक चर्चा बराबर जारी रहती है। स्कूलों, कालेजों और पुस्तकालयों मे साहित्यिक जयन्तियाँ भी अब नियमित रूप से मनाई जाने लगी हैं। इन सब प्रयत्नों का सामूहिक प्रभाव बिहार के साहित्यिक जागरण में बडा सहायक सिद्ध हो रहा है।

बिहार के पत्र-ससार में 'नवशक्ति' का स्थान सर्वोपरि है। बिहार के कोने-कोने में इसका प्रचार है। इसके सुयोग्य सम्पादक श्रीदेवव्रतजी बड़े अध्यवसायी, कर्मशील और कार्यदक्ष हैं। दैनिक 'राष्ट्रवाणी' का प्रकाशन उन्हीं के उद्योग और उत्साह का फल है। 'योगी' और 'प्रभाकर' भी इस प्रान्त मे हिन्दी की चर्चा फैलाने में सफल हुए हैं। ये दोनों भी अपने प्रान्त को अग्रसर करते रहने मे तत्पर हैं। हिन्दी के सुपाठ्य पत्रों में इनकी गणना होती है।

बिहार-प्रादेशिक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के समान प्रान्तीय साहित्यिक सस्थाएँ देश मे बहुत कम हैं। हर्ष का विषय है कि उसके वर्त्तमान प्रधान मत्री प० छविनाथ पाडेय, बी ए., एल-एल बी, के मन्त्रित्व में इधर पाँच-सात वर्षों के अन्दर ही सम्मेलन को आशातीत सफलता मिली है। आप मिर्जापुर (युक्तप्रान्त) के निवासी हैं, पर पिछले अनेक बरसों से आपका प्रधान कर्मक्षेत्र बिहार ही है। सम्मेलन को आप-सरीखे साहित्यानुरागी और कर्मठ कार्यकर्त्ता तथा प्रभावशाली व्यक्ति की बड़ी आवश्यकता थी। आपने सम्मेलन को सजीव सस्था बना दिया

है। आपकी देखरेख में सम्मेलन का जो विशाल भव्य भवन पटना मे बना है, वह बिहार के लिये गौरववर्द्धक है। उस भवन मे आपने पुस्तकालय, वाचनालय और संग्रहालय भी स्थापित कर दिया है। आपने बडी लगन से सम्मेलन की सच्ची सेवा की है। उसकी उन्नति करने में आपने काफी परिश्रम भी किया है। आप ही के उद्योग से सम्मेलन का त्रैमासिक मुखपत्र 'साहित्य' निकला था, जो बिहार के हिन्दी हितैषियों की उदासीनता से एक-डेढ ही साल चल सका। इस सम्मेलन के कारण बिहार में हिन्दी-साहित्य की उन्नति के विविध प्रयत्न हो रहे हैं। इसकी स्थापना संवत् १९७६–७७ मे हरिहरक्षेत्र (सोनपुर) मे हुई थी। तब से आजतक इसके सत्रह-अठारह अधिवेशन हो चुके हैं। इन अधिवेशनों मे स्वागताध्यक्षों और सभापतियों के जो भाषण हुए हैं, उनसे भी बिहार की साहित्य सेवा का महत्त्व भली भाँति आँका जा सकता है।

बिहार के होनहार नवयुवक लेखकों मे श्रीगिरिधारीलाल शर्मा 'गर्ग', बी ए (ऑनर्स), श्रीशुकदेवनारायण, श्रीराधाकृष्णप्रसाद, श्रीशशिनाथ तिवारी, बी ए (ऑनर्स), श्रीमनोरंजनप्रसाद श्रीवास्तव, श्रीचन्द्रिकाप्रसादसिंह, बी ए (ऑनर्स), श्रीनलिनविलोचन शर्मा, एम ए आदि के नाम स्मरण रखने योग्य हैं। इनकी रचनाएँ प्राय बिहार और बाहर के पत्रों मे दीख पड़ती हैं। 'गर्ग' जी अपने लेखों के लिये बिल्कुल नये-नये विषयों का चुनाव करने मे बडे निपुण हैं। शुकदेवजी भी प्राणिशास्त्र के विद्यार्थी की भाँति पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में हमेशा नई-नई विचित्र बातें बतलाकर पाठकों का मनोरंजन किया करते हैं। राधाकृष्णजी की कहानियाँ हृदय के साथ दूध-मिसरी की तरह घुल मिल जाती हैं। इन सब लेखकों का भावी संसार बडा मनोरम जान पडता है।

सन्तोष की बात है कि बिहार के कालेजों मे हिन्दी की नियमित पढाई होने लगी है। पटना-विश्वविद्यालय में भी अब एम ए तक हिन्दी की पढाई हो रही है। बिहार के कालेजों में हिन्दी के सुयोग्य अध्यापक नियुक्त हैं। उनमें कई नामी भी साहित्यसेवी हैं। जैसे—पटना-कालेज मे डाक्टर ईश्वरदत्त, प्रोफेसर विश्वनाथप्रसाद, प्रोफेसर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी और प्रोफेसर जगन्नाथराय शर्मा, बी० एन० कालेज (पटना) में डाक्टर जनार्दन मिश्र और प्रोफेसर नवलकिशोर गौड, दरभंगा के मिथिला कालेज मे प्रोफेसर जगन्नाथप्रसाद मिश्र, मुजफ्फरपुर के कालेज मे प्रोफेसर रामदीन पाडेय, भागलपुर के कालेज में प्रोफेसर माहेश्वरीसिंह 'महेश', छपरा के राजेन्द्र-कालेज मे प्रोफेसर जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' और प्रोफेसर

शिवपूजन सहाय। इसके अतिरिक्त कुछ बडे कालेजों के प्रिन्सिपल भी हिन्दी के हितैषी और सुलेखक हैं। जैसे—पटना-कालेज के डाक्टर हरिचाँद शास्त्री, मिथिला-कालेज के श्रीविश्वमोहनकुमारसिंह तथा राजेन्द्र-कालेज के श्रीमनोरजन प्रसादसिंह। शास्त्रीजी तो हिन्दी के अनुरागी और समर्थक हैं ही, पिछले दोनों प्रिन्सिपल हिन्दी के प्रसिद्ध सुलेखक भी हैं। इन कारणों से उच्च श्रेणी के शिक्षित एव सभ्य समाज में हिन्दी के प्रति श्रद्धाभाव उत्पन्न होता जा रहा है। इसका परिणाम बहुत अच्छा हो रहा है। इससे कितने ही उदीयमान नवयुवक साहित्य क्षेत्र मे क्रमश पदार्पण करते जा रहे हैं। देवघर (वैद्यनाथधाम) का गोवर्द्धन साहित्य महाविद्यालय भी साहित्य रसिक नवयुवकों की टोली तैयार करने में प्रवृत्त है। इस प्रकार बिहार के साहित्य की झाँकी देखकर हृदय में स्वभावत आनन्द सचार होता है।

बिहार के प्राचीन और अर्वाचीन हिन्दी-साहित्यसेवी

श्रीपरमानन्द दत्त 'परमार्थी', भलुआही (भागलपुर)

बिहार के दो इतिहासवेत्ता विद्वानों ने अपनी अपूर्व खोज से हिन्दी-साहित्य के इतिहास की व्यापकता का क्षेत्र चार पाँच सौ वर्ष पूर्व तक विस्तृत कर दिया है। पहले आठवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक के हिन्दी साहित्य का इतिहास संदिग्ध और अंधकारमय था। तेरहवीं शताब्दी के महाकवि चन्दवरदाई से ही हिन्दी-साहित्य के इतिहास का आरम्भ माना जाता था। उसके पहले के दो-चार-दस कवियों का बहुत ही धुँधला पता मिलता था। किन्तु पटना-निवासी पुरातत्त्वज्ञ बारिस्टर श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल (स्वर्गीय) और छपरा निवासी त्रिपिटकाचार्य महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अब सप्रमाण सिद्ध कर दिया है कि हिन्दी-साहित्य के इतिहास का सूत्र लगातार सातवीं-आठवीं शताब्दी से ही मिलता है। इन दोनों बिहारी विद्वानों के मतानुसार अत्यन्त प्राचीन हिन्दी का नमूना पिछली सातवीं शताब्दी से ही मिलता है। श्रीसांकृत्यायनजी ने तिब्बत के साहित्यिक अभियान में जिन प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों का अनुसंधान और संग्रह किया है उनसे साफ पता लग गया है कि आज से बारह तेरह सौ वर्ष पूर्व ही बिहार के तात्कालिक बौद्ध कवियों ने प्राचीन हिन्दी में अच्छी कविता की थी।

'मिश्रबंधु विनोद' के चौथे भाग में माननीय मिश्रबंधुओं ने लिखा है—"२४ नाथ कवियों के विवरण *त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन* ने १९८९ (संवत्) की 'गंगा' पत्रिका में निकाला है। इनमें से बहुतेरे आठवीं, नवीं, दसवीं

आदि परम प्राचीन शताब्दियों के हिन्दी-कवि कहे गये हैं। उनके ग्रंथ बहुधा तंजौर (मद्रास प्रान्त) में हैं। कवियों की प्राचीनता बहुत महत्ता-युक्त है, और दृढ़ आधारों पर अवलम्बित जान पड़ती है। साकृत्यायन महाशय की खोजें कितनी महत्त्वपूर्ण हैं, सो प्रकट ही है। इन नाथ कवियों के समय प्रमाणित होने से हिन्दी-साहित्य का आरम्भ-काल संवत् ८०० तक सिद्ध हो जाता है। हाल ही में *प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता बाबू काशीप्रसाद जायसवाल* ने संवत् ६६३ में राजा होनेवाले महाराजा हर्ष के समकालीन *बाण* कवि के ग्रंथ में प्राकृत के साथ भाषा का भी चलन पाया है। इस भाषा शब्द से हिन्दी-भाषा का प्रयोजन निकलता है सो हिन्दी भाषा की प्राचीनता उस काल तक पहुँचती है।"

ध्यान रहे कि बाण कवि (बाणभट्ट) बिहार-प्रान्त के ही निवासी थे, और, प्राचीन हिन्दी का सबसे पहला कवि भी बिहार का ही था। उसका नाम था 'सरहपा सिद्ध'। राहुल जी के आधार पर मिश्रबन्धुओं ने उसका समय संवत् ८०० लिखा है—उसके सोलह ग्रंथों के नाम भी लिखे हैं—यह भी लिखा है कि उस कवि के दूसरे नाम 'राहुलभद्र' और 'सरोजभद्र' भी हैं, तथा वह *नालन्दा विश्वविद्यालय* का भिक्षु था—इतना ही नहीं, उसके उक्त सोलहो काव्य ग्रंथ भी *मगही भाषा* में थे, जो भोटिया में अनुवादित हुए हैं। मगही भाषा दक्षिण बिहार की भाषा आज भी है। जिस कवि के सब के-सब ग्रन्थ मगही भाषा में हैं वह निश्चय ही मगह (दक्षिण बिहार) का रहनेवाला था। उसके उपर्युक्त दोनों नाम भी इस बात के साक्षी हैं कि वह बौद्धधर्म के केन्द्र (बिहार) का निवासी था।

श्रीराहुलजी की खोज ही के बल पर मिश्रबन्धुओं ने अनेक बौद्ध कवियों का विवरण 'मिश्रबन्धु विनोद' (भाग ४) में दिया है। वे प्रत्यक्ष ही बिहार के कवि प्रमाणित होते हैं। यथा—"संवत् ८४० के लगभग 'आर्यदेव या कर्णरीपा' भिक्षु होकर नालन्द-विहार में रहे। ८६० के लगभग 'विरूपा'—अमृतसिद्धि, दोहा-कोष आदि आठ ग्रन्थ—पूर्व देश में जन्म हुआ था—नालन्द विहार में शिक्षा पाई। ८७० के लगभग 'डोंभिपा'—मगध निवासी क्षत्री—गुरु थे विरूपा—तजूर में २१ ग्रन्थ मिलते हैं। ८७० के लगभग 'भूसुक या शान्तिदेव'—ग्रन्थ 'सहजगीति'—नालन्द के पास क्षत्रिय वंश में पैदा हुए और भिक्षु होकर उसी विहार में रहने लगे—उपर्युक्त ग्रंथ *मागधी हिन्दी* में लिखा हुआ भोटिया भाषा में मिलता है। ८८० के लगभग 'कर्णपा या कृष्णपा'—वसन्त तिलक, वज्रगीति, दोहा-कोष आदि ग्रंथ *मगही-भाषा* में हैं—जन्म कर्णाटक में हुआ था। ८८० के लगभग 'तांतिपा' ने

कुछ कम नहीं हैं और उनमें से कई तो छप भी चुके हैं। दरभंगा नरेश महाराज प्रतापसिंह ने 'राधागोविन्दसंगीतसार' नामक ग्रंथ बनाया था (संवत् १८३२)। कवि हरिनाथ झा और माधवनारायण उपनाम 'केसन कवि' इन्हीं के दरबार में आश्रित थे।

ईसा की उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में, महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह और महाराज रमेश्वरसिंह के समय में, दरभंगा का राज दरबार अनेक हिन्दी-कवियों का आश्रयस्थल रहा। इन्हीं दोनों भाइयों के समय में सुप्रसिद्ध प्रकाशित ग्रंथ 'मैथिली रामायण' के रचयिता कविवर चन्दा झा दरभंगा-दरबार में रहते थे। पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने अपना 'सोमवती' संस्कृत-नाटक महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह को समर्पित कर पर्याप्त पुरस्कार पाया था। उनके द्वारा भारतेन्दुजी भी आमंत्रित और सम्मानित हुए थे। उनके समय में कविवर लछिरामजी भी दरभंगा दरबार में आया करते थे। इन्होंने 'लक्ष्मीश्वर-रत्नाकर' नामक ग्रंथ बनाकर प्रचुर पुरस्कार पाया था। मार्कण्डेय कवि 'चिरंजीव' ने 'लक्ष्मीश्वरविनोद' नामक नवरसमय हिन्दी-काव्य-ग्रंथ रचकर उनसे प्रभूत द्रव्य प्राप्त किया था। यह ग्रन्थ अयोध्या नरेश के सुप्रसिद्ध 'रसकुसुमाकर' के समान सर्वाङ्गसुन्दर छपकर वितरित हुआ था।

महाराजाधिराज सर रमेश्वरसिंह के समय में कविवर विश्वनाथ झा 'बाला जी' ने 'रमेश्वरचंद्रिका' नामक काव्यग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रन्थ सन् १९१० में दरभंगा-राज-प्रेस से प्रकाशित किया गया था। 'बाला जी' दरभंगा जिले के 'नवटोल'–ग्रामवासी पं० बदरीनाथ झा के पुत्र थे। उन्होंने 'बिहारी सतसई' के दोहों पर जो कुंडलियाँ रची हैं, वे उनकी कवि-प्रतिभा का अच्छा परिचय देती हैं। दरभंगा-दरबार के ही कवि लालदास ने 'रमेश्वरचंद्रिका' की अपनी भूमिका में उन कुंडलियों की बड़ी प्रशंसा की है। मुन्शी रघुनन्दनदास, पं० शिवप्रसाद राजकवीश्वर और उनके सुपुत्र देवीशरण भी उस समय दरभंगा दरबार के कवि थे।

महाराजाधिराज सर रमेश्वरसिंह बहादुर के संरक्षण में ही राज्य के छापाखाने से १९०८ ई० में 'मिथिला-मिहिर' मासिक पत्र निकला था। उसके सम्पादक पं० योगानन्द कुमर की लिखी कई हिन्दीपुस्तकें राजप्रेस से निकली थीं। जैसे—'वाजसनेयी नित्यकर्मपद्धति' और 'छन्दोग-सन्ध्यातर्पण' का हिन्दी-भाष्य तथा 'मिथिलाब्राह्मण-डाइरेक्टरी'। महाराजाधिराज के दरबार में

पुरातत्त्वेतिहास के मर्मज्ञ विद्वान्
पटना-निवासी विख्यात बारिस्टर
महामहोपाध्याय, विद्यामहोदधि
स्व० डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल

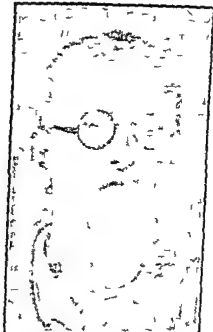

छ
प
रा

त्रिपिटकाचार्य महापंडित राहुल सांकृत्यायन

स्वामी भवानीदयाल संन्यासी (शाहाबाद)

प
ट
ना

आचार्य बदरीनाथ वर्मा, एम० ए०, काव्यतीर्थ

श्री[illegible]नारायणसिंह
(मुजफ्फरपुर)

श्रीमोहनलाल महतो 'वियोगी' (गया)

भागलपुर

प्रोफेसर जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज', एम० ए०, (राजेन्द्र कालेज छपरा)

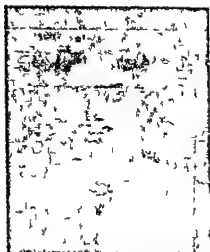

[सेमरियाघाट-(मुँगेर) निवासी]
श्री 'दिनकर'

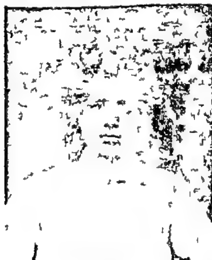

श्रीगोपालसिंह नेपाली
(चम्पारन)

श्री 'केसरी', एम० ए० (शाहाबाद)

श्रीआरसीप्रसाद सिंह (दरभंगा)

प० गोपीनाथजी और प० मथुराप्रसादजी दीक्षित अन्त तक रहे। वयोवृद्ध पं० गोपीनाथजी काश्मीरी थे, हिन्दी के पुराने प्रसिद्ध लेखक, 'श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार' और 'मित्रविलास' के सम्पादक, भारत-धर्म महामडल (काशी) के उपदेशक और भारतेन्दु-युग के साहित्यिक संस्मरणों के धनी। दीक्षितजी भी बिहार के प्रसिद्ध हिन्दी-लेखक हैं, बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के संस्थापकों में हैं, 'देश' और 'तरुणभारत' तथा 'नवयुवक' के सम्पादक रह चुके हैं—वर्त्तमान मिथिलेश के दरबार में भी कई साल तक थे।

वर्त्तमान मिथिलेश महाराजाधिराज सर कामेश्वर सिंह बहादुर भी हिन्दी के बड़े प्रेमी हैं। इस समय आपके राज्य में दो साहित्यिक व्यक्ति विशेष उल्लेख-योग्य हैं—श्रीमान् कुमार गगानन्द सिंह, एम० ए० और पडित गिरीन्द्रमोहन मिश्र, एम० ए०, बी० एल०। इसके अतिरिक्त आप ही की छत्रच्छाया में पटना से हिन्दी का दैनिक 'आर्यावर्त्त' और अँगरेजी का दैनिक 'इडियन नेशन' प्रकाशित हो रहे हैं, और राजप्रेस से तो पूर्ववत् 'मिथिलामिहिर' बराबर निकल ही रहा है, जो साहित्याचार्य श्री सुरेन्द्र झा 'सुमन' के समान सुयोग्य हिन्दी लेखक के सम्पादकत्व में इस समय हिन्दी का बड़ा उपयोगी साप्ताहिक पत्र बन गया है।

बिहार के अति प्राचीन राज्य 'हथुआ' के नरेश भी हिन्दी कवियों और सगीतज्ञों का सत्कार तथा पोषण करने में बड़े उदाराशय थे। प्रसिद्ध कवि 'पजनेस' बराबर इस दरबार में आते थे। उनके भाई 'भुवनेस' का तो सारा जीवन छपरा नगर में ही बीता था। दशहरे के अवसर पर प्रति वर्ष हथुआ-राजधानी में बहुत दिनों से मेला लगा करता है और मेले के साथ-साथ राज्य की ओर से रामलीला का भी विशेष प्रबन्ध होता है। 'भुवनेस' कवि हमेशा इस उत्सव के समय दरबार में जाया करते थे। महाराज छत्रधारी साही, जिन्होंने हथुआ में राजधानी स्थापित की थी, हिन्दी कवियों को मुक्त-हस्त हो पुरस्कार दिया करते थे। महाराजा बहादुर सर कृष्णप्रताप साही वर्त्तमान महाराज के पिता थे। वे परम शिवभक्त थे। शिवभक्ति सम्बन्धी कविताएँ सुनानेवाले अनेक हिन्दी-कवियों को उन्होंने बहुमान-पुरस्सर पुरस्कृत किया था।

वर्त्तमान हथुआ नरेश महाराज गुरुमहादेवाश्रम प्रसाद साही बहादुर तो हिन्दी के केवल प्रेमी ही नहीं, उसके बड़े भक्त और विद्वान् भी हैं। आपके ही समय में राज्य की ओर से 'पाटलिपुत्र' निकला था, जिसके लिये पटना में एक बहुत बड़ा प्रेस स्थापित हुआ था। उस प्रेस से हिन्दी की कई अच्छी पुस्तकें भी

निकली थीं। 'पाटलिपुत्र' ने इस प्रान्त में बरसों हिन्दी की सराहनीय सेवा की। इसके अतिरिक्त कई धार्मिक पत्रों ने भी इस राज्य से गुप्त आर्थिक सहायता पाई है। महाराजा बहादुर को साहित्यचर्चा बहुत प्रिय है। हिन्दी के भक्ति साहित्य और सन्त-साहित्य में आपका विशेष अनुराग है।

हथुआ-राज्य के सम्बन्धी माँझा (सारन) के नरेश भी बड़े प्रसिद्ध साहित्यानुरागी थे। माँझा नरेश श्रीमान् सुन्दर साही बड़े अच्छे कवि थे। श्रीमान् श्यामशिवेन्द्र साही (लाल साहब) और श्रीमान् श्रीधर साही भी भारतेन्दु-स्थापित कवि-समाज (काशी) में अपनी समस्या-पूर्तियाँ बराबर भेजा करते थे। श्री शिवेन्द्र साही की शादी बेतिया राजघराने में हुई थी। आज भी माँझा दरबार में हिन्दी का वही आदर है। इस दरबार में भी पहले कवियों की सादर विदाई हुआ करती थी। यह दरबार संगीतज्ञों का भी अखाड़ा था। ध्रुपद के बड़े-बड़े गायक इस दरबार के आश्रित थे।

पूर्णिया जिले के बनैली-राज्य की हिन्दी-सेवा भली भाँति जग-जाहिर है। राजा वेदानन्द सिंह बहादुर का लिखा हुआ 'वेदानन्द-विनोद' प्रसिद्ध ग्रन्थ है। उनके प्रपौत्र राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर, बी० ए०, हिन्दी के विख्यात लेखक थे। आप बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (मुजफ्फरपुर) के सभापति हो चुके थे। अखिलभारतीय चतुर्थ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (भागलपुर) के भी आप स्वागताध्यक्ष थे। आप भारतप्रसिद्ध शिकारी थे। आपने हिन्दी में 'मेरे शिकार के अनुभव' नामक सुविस्तृत लेखमाला लिखकर हिन्दी-साहित्य को एक नया विषय दिया। आपने ही पटना से हिन्दी-दैनिक 'बिहारी' निकाला था, जिसका अँगरेजी-संस्करण भी निकलता था। आपके सुपुत्र कुमार श्यामानन्द सिंह बहादुर और कुमार तारानन्द सिंह बहादुर ने आपकी स्मृति-रक्षा के लिये बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को दस हजार रुपये दान दिये हैं, जिससे पटना में सम्मेलन का विशाल भवन (श्रीकीर्त्यानन्द-भवन) बना है। आपके प्राइवेट सेक्रेटरी थे छपरा निवासी बाबू रघुवीरनारायण, बी० ए०, जो हिन्दी के तो पुराने कवि हैं ही, अँगरेजी के भी बड़े नामी कवि हैं। इन्हें इङ्गलैंड के राजकवि ने भी महत्त्वपूर्ण प्रशंसापत्र दिया है। इनका भोजपुरी भाषा का 'बटोहिया' गीत समस्त बिहार में प्रसिद्ध है—इनके दो कविता संग्रह भी छप चुके हैं। इनके लिये आप जिन्दगी-भर की पेन्शन मंजूर कर गये हैं। इनका जितना आदर आप साहित्य के नाते करते थे उतना कोई राजा अपने प्राइवेट

सेक्रेटरी का नहीं कर सकता। आपके राजकुमार भी इनका वैसा ही आदर करते हैं। आपके राजकुमारों का हिन्दी-प्रेम उपर्युक्त आदर्श दान से भलीभाँति प्रमाणित होता है।

कुमार श्यामानन्द सिंह तो संगीत-साहित्य के अनन्य अनुरागी हैं। भारत-प्रसिद्ध बंगाली संगीताचार्य प्रोफेसर भीष्मदेव चट्टोपाध्याय उनके गुरुदेव हैं। सुविख्यात संगीतज्ञ उस्ताद फैज खाँ साहब भी उनके दरबार में बराबर आते रहते हैं। उन्होंने अपने-आपको संगीत-कला में ऐसा तल्लीन कर दिया है कि वही उनकी प्राणशक्ति बन गई है। साहित्य संगीत-कला में इस तरह निमग्न हो जानेवाले राजकुमार विरले ही होंगे।

स्वर्गीय राजा कीर्त्यानन्दसिंह के ही भ्रातुष्पुत्र श्रीमान् कुमार कृष्णानन्दसिंह बहादुर ने सुलतानगंज (भागलपुर) के अपने गंगातटस्थ कृष्णगढ़ पैलेस से 'गंगा' नामक मासिक पत्रिका निकाली थी, जो बिहार में अबतक निकली हुई साहित्यिक मासिक पत्रिकाओं में सर्वश्रेष्ठ थी।

बनैली राज्य से ही सम्बद्ध श्रीनगर-राज्य के दरबार में दिन-रात साहित्य की चर्चा होती रहती थी *। श्रीनगराधीश राजा कमलानन्दसिंह अपने समय के अनन्य साहित्यसेवी थे। साहित्य की आराधना में ही उनके जीवन का प्रत्येक क्षण बीता †। उन्होंने अनेक साहित्यसेवियों को पुरस्कार-प्रदान द्वारा उत्साहित किया था ‡। डुमराँव निवासी पं० नकछेदी तिवारी 'अजान' कवि ने कविराज लछिराम जी की जीवनी × में लिखा है कि राजा कमलानन्दसिंह की प्रशंसा में लछिराम कवि ने 'कमलानन्द कल्पतरु' नामक काव्यग्रंथ बनाया था, जिसके लिये 'राजा साहब ने जी खोलकर दान सम्मान से आपको प्रसन्न किया।

मुँगेर जिले के गिद्धौर-राज्य से भी हिन्दी साहित्य की उल्लेखनीय सेवा हुई है। इस राज्य के नरेश बड़े शिवभक्त होते थे। कहा जाता है कि वैद्यनाथ

* इसी ग्रंथ के पृष्ठ १७० में श्रीनगर-दरबार की साहित्यिक चर्चा पढ़िये।—सं०

† इसी ग्रंथ के पृष्ठ २११ में 'आचार्य द्विवेदीजी के पत्र' पढ़िये।—सं०

‡ "पूर्णिया नरेश राजा कमलानन्दसिंह ने निश्चय किया था कि इस वर्ष (संवत् १९६२) की 'सरस्वती' वाले सर्वोत्कृष्ट लेख के रचयिता को वह स्वर्णपदक देंगे। उन्होंने इसी लेख ('सम्मिलित हिन्दू कुटुम्ब') को उत्तम जानकर हमें एक अच्छा स्वर्णपदक सम्मानार्थ दिया।" —"मिश्रबंधु" (—'विनोद', तृतीय संस्करण, भाग १, पृष्ठ ८७)

× भारतजीवन-प्रेस (काशी) से सन् १९०४ ई० में प्रकाशित।—सं०

धाम का शिवमन्दिर इसी राज्य की कीर्त्ति है। शिवभक्ति-परक कविताओं पर इस राज्य के दरबार से अनेक कवियों को पुरस्कार और सम्मान मिल चुका है। सन् १८९५–९६ में काशी में एक कवि-समाज स्थापित हुआ था। उसमें गिद्धौर-नरेश श्रीमन्महाराज रावणेश्वरप्रसादसिंह, महाराजकुमार श्रीगौरीप्रसादसिंह और महाराजकुमार श्रीगुरुप्रसादसिंह सदैव समस्यापूर्त्तियाँ भेजा करते थे। श्रीगुरुप्रसादसिंह की लिखी हुई तीन पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं—राजनीतिरत्नमाला, भारत सगीत और चुटकुला (स्फुट पद्य-सग्रह)। कविराज लछिरामजी ने 'रावणेश्वर-कल्पतरु' नामक काव्यग्रथ बनाकर उक्त गिद्धौर नरेश से भी 'सन्तोषजनक पारितोषिक' पाया था। 'रघुवीरविलास' नामक ग्रथ बनाकर श्रीगुरुप्रसादसिंह को भी कविराज ने रिझाया था। लछिरामजी इस दरबार में हमेशा आते और पुजाते थे। महाराज चन्द्रमौलीश्वरप्रसादसिंह और महाराज चन्द्रचूडेश्वरप्रसादसिंह भी हिन्दी के बडे प्रेमी थे। इनके समय में स्वर्गीय पडित जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी का केवल साहित्य के नाते दरबार में बडा सम्मान था। अन्तिम महाराज श्रीचतुर्वेदीजी के अनुरोध से खडी बोली में बडी अच्छी कविता करने लगे थे। अपने प्रान्त की 'गगा' पत्रिका के वे सरक्षकों में थे। भरी जवानी में उनके कैलासवासी होने से हिन्दी का एक अनन्य अनुरागी नरेश उठ गया। ईश्वर उनके एकमात्र बालक राजकुमार को अपने राज्य की साहित्यिक परम्परा का सच्चा प्रतिनिधि बनावें।

इसी प्रकार गया जिले का टेकारी-राज्य भी पुराने समय से साहित्य-मर्मज्ञ विद्वानों का आश्रयस्थल रहा है। गया जिला शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का अड्डा है। उस जिले में बड़े-बडे धुरन्धर पडित हो गये हैं। आज भी कितने ही हैं। उन पडितों में से अनेक वाक्पटु शास्त्रमर्मज्ञ विद्वान् टेकारी-दरबार में प्रतिपालित और सम्मानित हो चुके हैं। सस्कृत साहित्य की चर्चा के साथ-साथ वहाँ हिन्दी की काव्यचर्चा भी बराबर होती रही है। सन् १८२६ ई० में इस दरबार के आश्रित 'दिनेस' कवि ने 'रसरहस्य' नामक ग्रथ रचा था। उस समय इस ग्रन्थ की बड़ी प्रसिद्धि हुई थी। बाद यह दरबार की ओर से छपवाया भी गया था। इसके रचयिता 'दिनेस' के यश और मान से आकृष्ट होकर अनेक हिन्दीकवि इस दरबार में आते और आदर पाते थे। उन्नीसवीं सदी के मध्य में महाराज मित्रजित्सिंह के आश्रित कवि पडित नाथ पाठक भी बड़े प्रसिद्ध हुए। महाराज हितनारायणसिंह और महाराज रामकृष्णसिंह अतिशय धर्मनिष्ठ होने के कारण ईश्वरभक्ति विषयक कविताएँ सुनानेवाले कवियों के बड़े चाहक थे। इनके समय में अनेक कवियों के

(छपरा निवासी)
कविवर श्रीरघुवीरनारायण, बी० ए०

श्री जगदीश झा 'विमल'
(भागलपुर)

श्रीजनार्दन मिश्र 'परमेश'
(संताल परगना)

पं० बुद्धिनाथ झा 'कैरव' एम०एल० ए०,
रजिस्ट्रार, गोवर्द्धन साहित्य महाविद्यालय,
देवघर संताल परगना

ताजपुर (दरभंगा) निवासी
श्रीअनिरुद्धलाल 'कमलेश'

(सारन जिला निवासी)
श्रीकपिलदेवनारायण [illegible]

श्रीजयकिशोरनारायण सिंह, साहित्याचार्य

मुजफ्फर
पुर

आनन्दपुर रुवड़ी (दरभंगा)-निवासी
श्रीभुवनेश्वरसिंह 'भुवन'

श्रीजानकीवल्लभ शास्त्री (गया)

श्रीहंसकुमार तिवारी (भागलपुर)

श्रीरामदयाल पाण्डेय

(शाहाबाद)

श्रीहवलदार त्रिपाठी 'सहृदय', साहित्याचार्य

लिये सालाना बिदाई की रकम बँधी हुई थी। अब, वर्त्तमान टेकारी नरेश को केवल शिकार-साहित्य का बड़ा शौक है।

इस तरह यह स्पष्ट देखने मे आता है कि बिहार की रियासतों मे आज की तरह नीरसता नहीं थी, बल्कि साहित्यिक सरसता से हरएक दरबार ओतप्रोत था। शिवहर (मुजफ्फरपुर), नरहन (दरभगा), सुरसंड (मुजफ्फरपुर), आनन्दपुर-देवढ़ी (दरभगा), सोनबरसा (भागलपुर), तिलौथू (शाहाबाद), चैनपुर (सारन), मधुबन (चम्पारन) आदि रियासतों के दरबार भी साहित्यकारों और कलाकारों के लिये बहुत बड़े अवलम्ब थे। पहले कहे हुए चारों दरबार तो साहित्यानुराग और काव्यशास्त्र विनोद के केन्द्र रह चुके हैं तथा आज भी उनमें साहित्य का सत्कार बड़े प्रेम से होता है।

काव्ययुग मे बिहार मे कितने और कैसे साहित्यसेवी थे, इसका कुछ आभास उपर्युक्त वर्णन वा विवरण से मिल जाता है। उस युग के रत्नों की खोज के लिये सगठित रूप से अनुसन्धान होना चाहिये। हिन्दीहितैषिणी सस्थाओं का यह कर्त्तव्य है।

गद्ययुग मे भी बिहार आरम्भ ही से सेवामार्ग पर अग्रसर होता रहा। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ मे ही सदल मिश्र ने सुन्दर गद्य की सृष्टि की थी। किंतु 'मिश्रबन्धुविनोद' * (द्वितीय भाग) से पता लगता है कि सवत् १७६० (सन् १७०३ ई०) मे भी भगवान मिश्र मैथिल नामक गद्य लेखक थे। इस प्रकार सदल मिश्र से एक सौ वर्ष पूर्व के एक बिहारी गद्यलेखक का अस्तित्व प्रमाणित होता है। सयोगवश दोनों 'मिश्र' ही थे। किन्तु मिथिला निवासी भगवान मिश्र ने ईसा की अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में जो गद्य लिखा है, वह उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में लिखे गये सदल मिश्र के गद्य का प्राचीन रूप-सा जान पड़ता है। भगवान मिश्र का लिखा हुआ, बस्तर-राज्यान्तर्गत 'दन्तावारा' ग्राम (मध्यप्रदेश) † मे, एक हिन्दी शिलालेख मिला था, जिसकी भाषा का नमूना यह है—

* द्वितीय सस्करण (स० १९८४)—पृष्ठ ५३४-३६ ।—ले०

† मध्यप्रदेश, मध्यभारत, राजपूताना आदि प्रान्तों में अत्यन्त प्राचीन काल से मैथिल पंडितों के प्रवास के प्रमाण मिलते हैं। इन प्रान्तों के देशी राज्यों में मिथिला के बहुत-से विद्वान् राजगुरु, सभा-पडित, ज्योतिषी, कर्मकाडी आदि पदों पर रह चुके हैं—आज भी कई दरबारों में हैं। उनके द्वारा अर्जित प्रभूत भू-सम्पत्ति को आजतक उनके वंशधर भोगते हैं। इन राजाश्रित प्रवासी मैथिल विद्वानों में महामहोपाध्याय मधुसूदन झा (जयपुर), जस्टिस रामभद्र झा (अलवर), विद्वद्वर रमानाथ मिश्र (ग्वालियर) आदि कितनों ही के नाम प्रसिद्ध हैं।—लेखक

"दन्तावाला देवी जयति। देववाणी मह प्रशस्ति लिखाए राजा दिक्पाल देव के कलियुग महँ सस्कृत के वचनैया थोर हो हैं तें पाइ भाषा लिखे हैं। सोमवशी पाडव अर्जुन के सतान तुरुकान हस्तिनापुर छाडि ओरगल के राजा भए। ते वश महँ काकती प्रतापरुद्र नाम राजा भए जे राजा शिव के अश नउ लाख धानुक के ठाकुर जे के राज्य सुवर्न वर्षो भै ते राजा के भाई अन्नमराज वस्तर महँ राजा भए ओरगल छाडि कै। ते के सतान हमीरदेव राजा भए। ताके पुत्र भैरव राजदेव राजा। ताके पुत्र पुरुसोत्तमदेव महाराजा ताके पुत्र जैसिंहदेव राजा ताके पुत्र नरसिंहराय देव महाराजा जेकर महारानी लछिमादेई अनेक ताल बाग करि सोरह महादान दीन्हें। ताके पुत्र जगदीश राय देव राजा। ताके पुत्र वीरसिंह देवनाम धर्म अवतार, पडित दाता, सर्वगुन-सहित, देव ब्राह्मन-पालक चदेलिन वदन कुमरि महारानी विषै दतावली के प्रसाद तें दिक्पालदेव पुत्र पाए। शतसठि वर्ष राज्य करि दिक्पालदेव कहँ राज सौंपि कै वैशाखी पूर्णिमा महँ प्राणायाम समाधि वैकुठ गए। ताके पुत्र स्वस्तिश्री महाराजाधिराज सक प्रशस्ति सहित पृथुराज के अवतार, बुद्धिगणेश, बलभीम, सोभाकाम, पन परशुराम, दानकर्ण, सीलसागर, रीझे कुबेर, खीझे यम, प्रताप अगिनि, सेना सरदार इद्र आचार ब्रह्मा, विद्या सेसनाग एहूँ भाँति दस दिक्पाल के गुन जानि 'पडित वामन' दिक्पाल देव नाम धरे। ते दिक्पाल देव बिआह कीन्हें बरदी के चदेलराव रतन राजा के कन्या अजब कुमरि महारानी विषै अठारहें वर्ष रक्षपाल देव नाम युवराज पुत्र भए। तब हल्ला तें 'नवरगपुर' गढ टोरि फारि सकल बन्द करि जगन्नाथ वस्तर पठै के फेरि नवरगपुर देकै ओडिया राजा थापे । पुनि सकल पुरवासी लोग समेत दतावाला के 'कुटुम जात्रा' सवत् सत्रह से साठि १७६० चैत्र सुदी १४ आरम्भ वैशाख बदी ३ ते सपूर्न भै जात्रा। कतेको हजार भैंसा बोकरा मारे तेकर रकत प्रवाह बह पाँच दिन सपिनी नदी लाल कुसुम वर्न भए। ई अर्थ मैथिल भगवान मिश्र राजगुरु पडित भाषा औ सस्कृत दोउ पाथर महि लिखाए। अस राजा श्रीदिक्पालदेव समान। कलियुग न होहै आन राजा।" *

* मिश्रबन्धुविनोद—द्वितीय भाग—(द्वि० स० १९८४)—पृष्ठ ५३६-३७। और, देखिये 'सरस्वती' (भाग १७, खंड २, संख्या ५, पृ २८१) में प० कामताप्रसाद गुरु का लेख।—ले०

बिहार में गद्ययुग के आदिकाल के पुराने † लेखकों में भगवान मिश्र मैथिल और आरा निवासी सदल मिश्र ‡ के अतिरिक्त दो अन्य लेखकों के नाम भी मिलते हैं। जैसे—'रामकथा' नामक गद्यग्रन्थ के लेखक बाँकीपुर-(पटना)-निवासी छोटूराम और 'प्रवीण पथिक' के लेखक मुजफ्फरपुर निवासी देवीप्रसाद। इनके समय का ठीक पता नहीं, पर जान पड़ता है कि भारतेन्दु-युग के आरम्भ के आसपास ही इनका समय रहा होगा। हाँ, भारतेन्दु युग से आज तक के बिहारी लेखकों और कवियों के सम्बन्ध में विस्तृत और संक्षिप्त विवरण यत्र तत्र बिखरे मिलते हैं, जिनका यथाशक्य संग्रह करने का प्रयत्न हमने किया है। संगृहीत सामग्री को हमने बिहार के जिलों में अलग-अलग बाँट दिया है, जिससे आगे के अन्वेषकों में अपने अपने जिले के अभावों की पूर्त्ति कर डालने का उत्साह संचार हो। निम्नांकित सूची यथासम्भव कालानुसार तैयार की गई है। इसमें सर्वत्र विक्रम-संवत का प्रयोग किया गया है, जो ईसवी सन से ५७ वर्ष पहले का है। यदि कहीं ईसवी सन का प्रयोग मिल जाय, तो कोई भ्रम न होना चाहिये।

बिहार के हरएक जिले के साहित्यसेवियों का संक्षिप्त परिचय—

पटना

बिहारीलाल चौबे। मथुरापुर (बनारस) के निवासी थे, पर बिहार में ही हिन्दीसेवा करते हुए अधिकांश जीवन बिताया। राँची के नार्मल स्कूल में पाँच वर्ष हिन्दी अध्यापक रहे। फिर पटना-कालेजियट में अध्यापक हुए और पीछे सिटी-स्कूल में बदलकर वहीं से पेन्शन ली। संवत् १९८२ में काशी में शिवरात्रि को कैलासवासी हुए। रचनाएँ—भाषाबोध, पत्रबोध, बिहारी-तुलसी-भूषण, वर्णनबोध, पदवाक्यबोध, प्रबोध, बालोपहार, चालचलनबोध, व्याकरणसार, तुलसीसतसई की टीका, शिक्षाप्रणाली आदि। ×

प० केशवराम भट्ट। बिहारशरीफ। जन्म १९१०, मृत्यु १९६२। ...

† 'हमारे यहाँ पद्यरचना तो प्राचीन काल से [illegible] थी, किन्तु गद्य का [illegible] में पहले-पहल प्रयोग ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने किया।'—मिश्रबन्धुविनोद, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ १६८।—देखिये इसी ग्रंथ का पृष्ठ ११३।—सं०

‡ 'सदल मिश्रवाली भाषप्रकाशन की [illegible] थी।''—[illegible] (भा० ४, पृ० १६८)

× देखिये—'सरस्वती', भाग १, खण्ड १, संख्या १, जून [illegible]

'बिहारबन्धु' के संस्थापक और सम्पादक। रचनाएँ—विद्या की नींव, भारतवर्ष का इतिहास, शमशाद सौसन और सज्जाद सम्बुल (नाटक), हिन्दी-व्याकरण, एक जोड़ अँगूठी, रासेलस। देखिये पृष्ठ ५३७, ५७४। बिहार में हिन्दी के प्रथम प्रचारक और परमोत्साही सफल पत्रकार।

महाराजकुमार रामदीनसिंह। जन्म १९१२, मृत्यु १९६०। रचनाएँ—बिहार-दर्पण, हितोपदेश आदि। (देखिये पृष्ठ २६०, ३६०, ५३८, ५०६, ६१३)। अनेक पत्र-पत्रिकाओं के संचालक और सम्पादक, साहित्यसेवियों के पृष्ठपोषक, भारतेन्दु के अन्तरङ्ग मित्र और उनके ग्रंथों के प्रथम प्रकाशक तथा प्रचारक, खड्गविलास प्रेस के संस्थापक, बिहार में हिन्दी के समर्थ उन्नायक।

बाबू महेशनारायण। पटना-निवासी। 'बिहारबंधु' में बराबर खड़ी बोली की कविताएँ लिखते थे। बिहार के निर्माताओं में एक माने जाते हैं। रचनाकाल—सन् १८७५-८५ ई०।

जनकधारीलाल, जन्म १९०९, दानापुर-निवासी, रचना—सुनीति संग्रह।

रघुनाथ शाकद्वीपी, कवि, राघवपुर, जन्म १९२५, रच०—सूक्तिविलास, उद्धवचम्पू, आर्याचारादर्श, रसमंजूषा।

व्रजनाथ शास्त्री, पटना, ज० १९३०, रच०—अनुरागशतक।

महादेवप्रसाद 'मदनेश'। झाऊगंज, पटना सिटी। कवि। रच०—गंगालहरी, रामचन्द्र नखशिख, मदनेश-कल्पद्रुम, संकट मोचन आरसी, मदनेश-कोष, तनतोत्र-ताला की तरहदार कुञ्जी, भैरवाष्टक।

गिरिजानन्दन तिवारी, बिहारशरीफ, उपन्यास-लेखक—विद्याधरी, पद्मिनी, सुलोचना (भारतजीवन प्रेस से क्रमश सन् १९०४ ई०, १९०५ ई० और १९०६ ई० में प्रकाशित।)

हरिहरप्रसाद (जीतूलाल), मुख्तार, बाकरगंज-बाँकीपुर, रच०—'सनातन धर्म विजय' (१९१२ ई० में ख० वि० प्रेस में छपा १४० पृष्ठों का दयानन्द-मत-खंडनात्मक ग्रंथ)।

बाबू बाँकेबिहारीलाल, नयाटोला—बाँकीपुर, सावित्री (नाटक, १९०८ ई० में ख० वि० प्रेस में छपा था)।

हरसहायलाल, बी० ए०, डिपटी-मजिस्टर, बाँकीपुर, कवि, रच०—अवतार-परामर्ष, कान्ता वियोग, शकुन्तला (अनुवाद)।

चन्द्रशेखर पाठक, बिहारशरीफ, जन्म १९४४, मृत्यु १९८८, उपन्यास-लेखक।

स्वर्गीय रूपकला भगवानजी, जिन्होंने बिहार के स्कूलों के लिये हिन्दी में पाँच ग्रंथ लिखे

पोखरपुर (सारन) निवासी
स्वर्गीय मंगलप्रसाद सिंह
(धार्मी-मन्दिर, छपरा के संस्थापक)

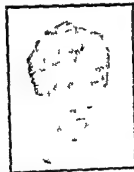

भागलपुर निवासी स्वर्गीय 'विभूति'

पटना-निवासी
स्वर्गीय श्री नागेश्वरप्रसाद सिंह शर्मा
(लालबाबू) 'तरुणभारत' के
संचालक और सम्पादक

ओहनी (दरभंगा)-निवासी
स्वर्गीय राघवप्रसाद सिंह महोदय
बिहारप्रादेशिक हिन्दी-साहित्य
सम्मेलन के संस्थापकों में से एक

पटना निवासी
श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

मुजफ्फरपुर-निवासी
श्री रेवतीरमण 'रमण'

श्री रामवचन द्विवेदी 'अरविन्द'

श्री उपेन्द्रनाथ मिश्र 'मञ्जुल
सीतामढ़ी (मुजफ्फरपुर) निवासी

मदई (मुजफ्फरपुर) निवासी
श्री रामइकबाल सिंह 'राकेश'

बाजितपुर (मुजफ्फरपुर) निवासी
श्री योगेन्द्र मिश्र

रमाबाई (१९०७ ई०), वाराङ्गना-रहस्य, मायापुरी आदि उपन्यास, पाठक ऐंड कम्पनी (कलकत्ता) के स्वामी, अनेक सुन्दर पुस्तकों के प्रकाशक।

स्वर्गीय रायबहादुर रामरणविजयसिंह, खड्गविलास प्रेस के स्वामी, 'शिक्षा' पत्रिका के सचालक, स्वनामधन्य बाबू रामदीनसिंह के ज्येष्ठ सुपुत्र, बिहारप्रादेशिक हिन्दी-साहित्य सम्मेलन (मुँगेर) के सभापति।

स्वर्गीय शिवप्रसाद पाडेय 'सुमति', कवि, महेन्द्रू—पटना, बिहारप्रान्तीय हिन्दी-कवि-सम्मेलन (भागलपुर) के सभापति, रच०—सुमति विनोद।

स्वर्गीय नागेश्वरप्रसादसिंह (लालबाबू), चौधरीटोला-पटना, 'तरुणभारत' के जन्मदाता और सचालक, साहित्यसेवी रईस।

स्वर्गीय सोनासिंह चौधरी, चौधरी टोला, 'पाटलिपुत्र'-सम्पादक, सहृदय विनोद-प्रिय साहित्यरसिक।

मुकुटलाल मिश्र, फुलौरीगज पटना, र०-दुर्गासप्तशती का पद्यात्मक अनुवाद।

रामानन्दसिंह, बी० ए०, बाँकीपुर, रच०—पाटलिपुत्र में गुप्ताई।

मेवालाल चौधरी, सगौल, दानापुर, रच०—व्यापाररहस्य (दो भाग), हिन्दी रेलवे गाइड (दो भाग)—वहीं के शारदा पुस्तकालय से प्रकाशित।

स्वर्गीय महामहोपाध्याय डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल विद्यामहोदधि, बारिस्टर, पटना। पुरातत्त्वेतिहास के प्रामाणिक विद्वान, द्विवेदी-युग में 'सरस्वती' के प्रसिद्ध लेखक, अनेक ऐतिहासिक लेख, 'पाटलिपुत्र' के आदि सम्पादक, बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य सम्मेलन (भागलपुर) के सभापति।

स्व० टेकनारायणप्रसाद तर्कवागीश, 'मगल' कवि, गानदरीधा (पटना सिटी), पुरातत्त्व-सम्बन्धी स्फुट लेख, रच०—बिहार विभव (१८८४ ई० में पटना सिटी के राजनीति-प्रेस में छपा काव्य), फाग बहार (१८६७ ई० में बिहारबन्धु प्रेस में छपी)।

स्वर्गीय रामचन्द्र द्विवेदी, जन्म १९३८, नैरायणरामन्देवनगर के गुरुकुल विद्यालय के सस्थापक, रच०—तुलसी साहित्य-रत्नाकर (अपूर्व ग्रन्थ है), उपदेश कुसुमाकर, धर्म, ईश्वरास्तित्व, हिन्दूजाति का सगठन और सुधार, प्राचीन और अर्वाचीन भारत।

आचार्य बदरीनाथ वर्मा, एम० ए०, काव्यतीर्थ, गायघाट पटना। 'भारतमित्र' (कलकत्ता) और 'देश' (पटना) के भूतपूर्व सम्पादक, बिहारविद्यापीठ के आचार्य और पीठस्थविर, बि० प्रा० हिन्दी सा० सम्मे० (गया) के सभापति।

श्रीमती सुदर्शन देवी, कटारी, लई, स्त्रीशिक्षा-सम्बन्धी स्फुट लेख।

ईश्वरीप्रसाद वर्मा 'शब्द', कमगर गली, पटना सिटी,-स्फुट रचनाएँ।

प्रोफेसर कृष्णनन्दन सहाय, एम० ए०। भागलपुर के टी० एन०जे० कालेज में हिन्दी के प्रोफेसर, उत्साही सुन्दर लेखक।

पारसनाथसिंह 'विशारद'। हिन्दीप्रचारिणी सभा (पटना) के प्रधान मन्त्री। हिन्दुस्तानी विरोधी आन्दोलन के उत्साही कार्यकर्त्ता। तत्सम्बन्धी स्फुट लेख।

प्रोफेसर नारायणप्रसाद शास्त्री, मुजफ्फरपुर में भूमिहार-ब्राह्मण कालेज के अध्यापक, 'रौनियार-वैश्य' पत्र के सम्पादक।

गिरिधारीलाल शर्मा 'गर्ग', बी० ए० (ऑनर्स), मिरचाई गली, पटना सिटी, प्रतिभाशाली उत्साही लेखक, रच०—विमान, कहानी कला, आकाश की सैर। (देखिये पृष्ठ ५७१)

गया

पत्तनलाल 'सुशील', जन्म १९१६, दाऊदनगर-निवासी। रचनाएँ—रोला रामायण, जुगली माठिका, भर्तृहरि-शतक, नीति शतक, साधु, उजाड़ गाँव, यात्री, देशी खेल (दो भाग), ग्रियर्सन साहब की विदाई।

शीतलप्रसादसिंह, इमामगंज, जन्म १९२२, र०—श्रीसीतारामचरितायन।

कान्हलाल 'कान्ह', नवागढ़ी, जन्म १९२४, रच०—संगीत-मकरन्द, सावन-मयूर, सुधातरंगिणी, आनन्द-लहरी, जगन्नाथ-माहात्म्य, नखशिख, आनन्दसार रामायण, कामविनोद, वैद्यनाथमाहात्म्य, हास्य पंचरत्न, सुहृद्‌शिक्षक, विश्वमोहिनी संग्रह।

स्वर्गीय कालिकाप्रसाद, बी० ए०, बी० टी०। जिला और ट्रेनिंग स्कूलों के यशस्वी हेडमास्टर, टेक्स्टबुक कमिटी के सेक्रेटरी, अनुभवी और आदर्श अध्यापक, रचनाएँ—व्याकरण पढ़ाने की विधि, अनेक शिक्षा सम्बन्धी स्फुट लेख।

प्रबोधचन्द्र, कतरीसराय, जन्म १९२८। स्फुट रचनाएँ।

जानकीशरण 'स्नेहलता', जन्म १९३२, परम वैष्णव। सौर दरियापुर-निवासी। गोस्वामी तुलसीदासजी की शिष्यपरम्परा में से हैं। रच०—विरहानल, श्रीहरिकीर्त्तनपद्यावली, गजाष्टक, श्रीहंसकला-सप्तक, नवीन भक्तमाल (१००० छप्पय अप्रकाशित), मानस-उत्तर-पद्यावली (३०० दोहे अप्रकाशित), स्फुट पद।

रामगुलामराम, जन्म १९३३, जमोर-निवासी। रच०—रामगुलाम शब्द-कोष, शकुनावली रामायण, नाम-रामायण, मैसा प्रताप पचासा।

भगवानपुर (मुजफ्फरपुर) निवासी भ्रातृद्वय
श्री रामधारी प्रसादजी और
श्री श्यामधारी प्रसादजी

मुजफ्फरपुर निवासी
श्री ललितकुमार सिंह 'नटवर'

शाहाबाद जिला निवासी
पं० रामदहिन मिश्र काव्यतीर्थ

मुंगेर निवासी पं० श्रीकृष्ण मिश्र
बी० ए०, बी० एल०

दरभंगा जिला निवासी
रायसाहब पं० सिद्धिनाथ मिश्र

प्रोफेसर जगन्नाथराय शर्मा, एम ए
(पटना कालेज)

'बीसवीं सदी' के संयुक्त सम्पादक
भागलपुर निवासी श्री तारकेश्वरप्रसाद

प्रोफेसर दिवाकरप्रसाद विद्यार्थी, एम ए
(पटना कालेज)

'बीसवीं सदी' के संयुक्त सम्पादक
भागलपुर निवासी श्री सत्येन्द्रनारायण

प्रोफेसर नवलकिशोर गौड़, एम ए
(बी एन० कालेज)

शिवहर (मुजफ्फरपुर) निवासी
श्री परमेश्वर सिंह

रायसाहब लक्ष्मीनारायणलाल। औरंगाबाद निवासी वकील और रईस। लक्ष्मी प्रेस (गया) के संस्थापक। 'लक्ष्मी' और 'गृहस्थ' के संचालक तथा सम्पादक। इनकी जीवनी (द्वारकाप्रसाद गुप्त लिखित) लक्ष्मी प्रेस से प्रकाशित है। इनके सुपुत्र श्रीरामानुग्रहनारायणलाल भी 'लक्ष्मी' के सम्पादक हुए थे। (देखिये पृष्ठ ५८५)

महादेवनारायण, जन्म १९३६, बेलवा निवासी। रच०—कलिचरित्र, कृपण-चरित्र, कलियुगचरित्र।

जानकीशरण वर्मा, बी ए, बी एल, गया निवासी। प्रयाग-सेवा-समिति की मुखपत्रिका 'सेवा' के सम्पादक और प्रसिद्ध बालचरनायक। 'जीवनसखा' (प्रयाग) के भूतपूर्व सम्पादक। बालचर्य्य के विशेषज्ञ। स्काउटिङ्ग और जन-सेवा के सम्बन्ध में अनेक अनुभवपूर्ण लेख।

पन्नालाल भैया गयावाल 'छैल', रच०—कजली-विनोद, बसंतबहार, काली घटा, कुंडलिया-कुंडल, उर्वशी, मोहनकुमारी, भर्तृहरिभूषण, मेघमंजरी, जमालमाला (कविवर 'जमाल' के १०८ अनूठे दोहों पर रोला-छन्द मिश्रित कुंडलियाँ)।

रामचीज पाण्डेय, अरवल निवासी। ग्रंथ—बिहारी वीर, मित्रवेश में शत्रु, जैनी हिन्दी-कोष। हिन्दी-अध्यापक।

बजरंगदत्त शर्मा, गया निवासी, स्फुट रचनाएँ, बिहार-प्रान्तीय हिन्दूसभा के पूर्व मंत्री, ओजस्वी वक्ता, सार्वजनिक सेवा-परायण।

सूर्यप्रसाद महाजन, सुप्रसिद्ध मन्नूलाल पुस्तकालय (गया) के संस्थापक, हिन्दीप्रेमी, रईस।

गोवर्द्धनलाल गुप्त, एम० ए०, बी० एल०। विद्वान्, निबंध-रचयिता। रच०—नीतिविज्ञान (हिन्दीग्रंथरत्नाकर, बम्बई से प्रकाशित)। नि० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रस्तावित अठारहवें अधिवेशन (गया) के मनोनीत स्वागताध्यक्ष।

अनुग्रहनारायणसिंह, बिहार की कांग्रेसी सरकार के भूतपूर्व अर्थमंत्री। हिन्दी में आत्मकथा लिखी है।

बाबूलाल गुप्त, लक्ष्मी प्रेस के प्रबंधक, स्फुट लेख।

द्वारकाप्रसाद गुप्त, उक्त बाबूलालजी के सुपुत्र, गया जिले के हिन्दी-साहित्य-सेवियों का परिचय लिखा है। 'गृहस्थ' के सम्पादन में सहयोग दिया है।

पार्वतीप्रसाद, एम० एस-सी०, विज्ञानाचार्य। साइंस कालेज (पटना) के सीनियर प्रोफेसर। बिहारप्रादेशिक हिन्दी विज्ञान सम्मेलन के अध्यक्ष।

गंगाधर मिश्र, काव्यतीर्थ, सुप्रसिद्ध वैद्य। स्फुट लेख। प्रसिद्ध कहानी-लेखक आचार्य राधारमण शास्त्री इन्हीं के सुपुत्र हैं।

पंडित अयोध्याप्रसादजी, अमावाँ-निवासी। जन्म १६४१, मृत्यु १६६१। आर्यसमाज के भारत प्रसिद्ध विद्वान् व्याख्याता। अनेक भाषाओं के पंडित। आर्य-समाज सम्बन्धी कई ग्रंथ लिखे। (देखिये 'बालक', वर्ष ६, अंक ६, पृष्ठ ५१२, सितम्बर १६३५)।

अवधकिशोर सहाय वर्मा 'बाण', एम० ए०। जन्म १६५७, कचनपुर-निवासी। रच०—चित्तौरोद्धार, दार्शनिक एवं शिक्षा-सम्बन्धी स्फुट लेख। अब स्वर्गीय। प्रसिद्ध लेखक थे।

गोविन्दलाल झागर, जन्म १६५८, रच०—सलिला।

रामचन्द्र शर्मा 'साहित्यरत्न'। स्फुट लेख। जिलाबोर्ड के चेयरमैन।

चन्द्रदेव शर्मा शाडिल्य, जहानाबाद-निवासी, 'गुरुचेला'-सम्पादक।

मोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी', ऊपरडीह, गया शहर। जन्म १६५६। आधुनिक शैली के सुप्रसिद्ध सुकवि। प्रतिभाशाली कहानी लेखक। हृदयग्राही संस्मरण-लेखक। सहृदय मिष्टभाषी। रच०—निर्माल्य, एकतारा, रेखा, आरती के दीप, कल्पना, विचारधारा आदि। गद्य और कविता लिखने तथा व्यंग्यचित्र बनाने में सिद्धहस्त। (देखिये पृष्ठ ५६४)।

श्रीनारायण जिंजल, एम० ए०, बी० एल०। स्फुट लेख। अब स्वर्गीय।

श्याम बरथवार। 'चिनगारी'-सम्पादक।

राधारमण शास्त्री, साहित्याचार्य। गया निवासी। प्रसिद्ध कहानी लेखक। उत्साही साहित्यसेवी। स्फुट लेख, कविता आदि। (दे पृ ५५३–५४)।

जानकीवल्लभ शास्त्री, साहित्याचार्य, वेदान्ताचार्य। मैगरा निवासी। सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक, सुकवि, समालोचक। संस्कृत साहित्य-मर्मज्ञ विद्वान्। रच०—काकली (संस्कृत-कविता-संग्रह), रूप और अरूप (हिन्दी कविता-संग्रह) कानन (कहानी-संग्रह), अपर्णा (कहानी-संग्रह), साहित्यदर्शन (आलोचनात्मक साहित्यिक निबन्ध संग्रह)। इनके विषय में हिन्दी के स्वनामधन्य युगान्तरकारी कवि श्रीसूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जी ने लिखा है—"श्रीजानकीवल्लभ शास्त्री, शास्त्राचार्य, हिन्दी के श्रेष्ठ कवि, आलोचक और कहानी लेखक हैं। अपनी प्रतिभा, विद्वत्ता, लेखनकौशल और दिव्य व्यवहार से उन्होंने अनेक बार मुझपर अपनी गहरी छाप डाली है। हिन्दी के साहित्यिक उत्थान में बिहार की आधुनिक प्रतिभा

को मानना पड़ता है। जानकीवल्लभ यहाँ के और समस्त हिन्दीभाषी प्रान्तों के प्रतिभाशालियों में एक हैं। उनके संस्कृत और हिन्दी के भावपूर्ण ध्वन्यात्मक कलामय पद्य और आलोचनाएँ मैं पहले देख चुका था, इधर 'कानन' में उनकी कहानियाँ देखीं। कहानियों की भाषा मँजी हुई, वाक्यन्यास संगीतमय, बातचीत, स्थल और घटनाओं का वर्णन—उठान, पूर्त्ति और परिसमाप्ति की कलात्मिकता लिये हुए—ध्वनि और अलंकारों से सज्जित हैं। आनन्द लेने और सीखने की उसमें बहुत-सी सामग्री है।" (देखिये पृष्ठ ५८१)

रामगोपालसिंह 'रुद्र'। भावपूर्ण एवं सरस स्फुट कविताएँ। सुयोग्य अध्यापक।

'गुलाब'—होनहार प्रतिभावान् नवयुवक कवि। स्फुट कविताएँ।

अवधकिशोर सहाय 'नुसरत'। उर्दू के भी कवि हैं।

नागेश्वरप्रसाद 'ब्रलिश'। 'नवीन भारत'-सम्पादक।

बदरीनाथ शर्मा 'मधुकर'। केतकी निवासी। जन्म १६८५। कवि और लेखक।

पन्नालाल महतो। स्फुट कविताएँ।

शाहाबाद

साधुशरणप्रसाद, भदवर निवासी, जन्म १६०८, मृत्यु १६६६। व्यापार-सम्बन्ध से 'बलिया'-प्रवासी थे। रच०—भारतभ्रमण (५ भाग) अत्यंत महत्त्वपूर्ण और विशाल ग्रंथ है, धर्मशास्त्रसंग्रह। (शास्त्रों और स्मृतियों के सिद्धान्तप्रमाण-वाक्यों का संकलन करके इन्होंने जो शास्त्रीय व्यवस्थासंग्रह तैयार किया था वह बम्बई के वेंकटेश्वर प्रेस से १०) में प्राप्य है और इसी में इन्होंने अपनी जीवनी भी लिखी है।)

महाराजकुमार हरिहरप्रसादसिंह, दिलीपपुर निवासी। जन्म १६११, मृत्यु १६४६। रच०—हरिहरशतक, षटपदावली, नखशिखवर्णन, स्मरणी।

महामहोपाध्याय रघुनन्दन त्रिपाठी, दिलीपपुर-निवासी। जन्म १६१२, मृत्यु १६८४। इनकी सचित्र जीवनी ('बिहार के विद्यासागर') 'पुस्तक-भंडार' से प्रकाशित हुई है। स्फुट लेख और भाषण। इनके सुपुत्र देवदत्त त्रिपाठी अच्छे लेखक हैं।

विजयानन्द त्रिपाठी, 'श्रीकवि', 'विद्यारत्न', वेलांटी-निवासी। जन्म १६१३, मृत्यु १६८२। रच०—महामोहविद्रावण, मधा सपना, महाअंधेरनगरी, प्रेमसात्रा-ज्यादर्श, भारतीय इतिहासपंजिका, नीतिमुक्तावली, अन्योक्तिमुक्तावली, रत्नावली नाटिका, उच्चकोटि की स्फुट कविताएँ (संस्कृत और हिन्दी में)। 'उद्योग'-सम्पादक।

गगाधर मिश्र, काव्यतीर्थ, सुप्रसिद्ध वैद्य। स्फुट लेख। प्रसिद्ध कहानी-लेखक आचार्य राधारमण शास्त्री इन्हीं के सुपुत्र है।

पंडित अयोध्याप्रसादजी, अमावाँ-निवासी। जन्म १६४१, मृत्यु १६६१। आर्यसमाज के भारत-प्रसिद्ध विद्वान् व्याख्याता। अनेक भाषाओं के पंडित। आर्य समाज सम्बन्धी कई ग्रथ लिखे। (देखिये 'बालक', वर्ष ६, अक ८, पृष्ठ ५१०, सितम्बर १६३५)।

अवधकिशोर सहाय वर्मा 'बाण', एम० ए०। जन्म १६५७, कचनपुर निवासी। रच०—चित्तौरोद्धार, दार्शनिक एव शिक्षा-सम्बन्धी स्फुट लेख। अब स्वर्गीय। प्रसिद्ध लेखक थे।

गोविन्दलाल झगर, जन्म १६५८, रच०—सलिला।

रामचन्द्र शर्मा 'साहित्यरत्न'। स्फुट लेख। जिलाबोर्ड के चेयरमैन।

चन्द्रदेव शर्मा शांडिल्य, जहानाबाद निवासी, 'गुरुचेला'-सम्पादक।

मोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी', ऊपरडीह, गया शहर। जन्म १६५६। आधुनिक शैली के सुप्रसिद्ध सुकवि। प्रतिभाशाली कहानी लेखक। हृदयग्राही ससमरण-लेखक। सहृदय मिष्टभाषी। रच०—निर्माल्य, एकतारा, रेखा, आरती के दीप, कल्पना, विचारधारा आदि। गद्य और कविता लिखने तथा व्यग्यचित्र बनाने मे सिद्धहस्त। (देखिये पृष्ठ ५६४)।

श्रीनारायण जिजल, एम० ए०, बी० एल०। स्फुट लेख। अब स्वर्गीय।

श्याम बरथवार। 'चिनगारी'-सम्पादक।

राधारमण शास्त्री, साहित्याचार्य। गया-निवासी। प्रसिद्ध कहानी लेखक। उत्साही साहित्यसेवी। स्फुट लेख, कविता आदि। (दे पृ ५५३—५४)।

जानकीवल्लभ शास्त्री, साहित्याचार्य, वेदान्ताचार्य। मैगरा निवासी। सुप्रसिद्ध कहानी लेखक, सुकवि, समालोचक। सस्कृत साहित्य-मर्मज्ञ विद्वान्। रच०—काकली (सस्कृत-कविता-सग्रह), रूप और अरूप (हिन्दी कविता-सग्रह) कानन (कहानी-सग्रह), अपर्णा (कहानी-सग्रह), साहित्यदर्शन (आलोचनात्मक साहित्यिक निबन्ध-सग्रह)। इनके विषय मे हिन्दी के स्वनामधन्य युगान्तरकारी कवि श्रीसूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जी ने लिखा है—"श्रीजानकीवल्लभ शास्त्री, शास्त्राचार्य, हिन्दी के श्रेष्ठ कवि, आलोचक और कहानी लेखक हैं। अपनी प्रतिभा, विद्वत्ता, लेखनकौशल और दिव्य व्यवहार से उन्होंने अनेक बार मुझपर अपनी छाप डाली है। हिन्दी के साहित्यिक उत्थान मे बिहार की आधुनिक प्रतिभा

को मानना पडता है। जानकीवल्लभ यहाँ के और समस्त हिन्दीभाषी प्रान्तो के प्रतिभाशालियों मे एक हैं। उनके संस्कृत और हिन्दी के भावपूर्ण ध्वन्यात्मक कलामय पद्य और आलोचनाएँ मैं पहले देख चुका था, इधर 'कानन' मे उनकी कहानियाँ देखीं। कहानियों की भाषा मँजी हुई, वाक्यन्यास संगीतमय, बातचीत, स्थल और घटनाओं का वर्णन—उठान, पूर्ति और परिसमाप्ति की कलात्मिकता लिये हुए—ध्वनि और अलकारों से सज्जित हैं। आनन्द लेने और सीखने की उसमे बहुत-सी सामग्री है।" (देखिये पृष्ठ ५७१)

रामगोपालसिंह 'रुद्र'। भावपूर्ण एव सरस स्फुट कविताएँ। सुयोग्य अध्यापक।

'गुलाब'—होनहार प्रतिभावान् नवयुवक कवि। स्फुट कविताएँ।

अवधकिशोर सहाय 'रुस्वा'। उर्दू के भी कवि हैं।

जागेश्वरप्रसाद 'खलिश'। 'नवीन भारत'-सम्पादक।

बदरीनाथ शर्मा 'मधुकर'। केतकी निवासी। जन्म १८८५। कवि और लेखक।

पन्नालाल महतो। स्फुट कविताएँ।

शाहाबाद

साधुशरणप्रसाद, भदवर-निवासी, जन्म १८०८, मृत्यु १९६९। व्यापार-सम्बन्ध से 'बलिया'-प्रवासी थे। रच०—भारतभ्रमण (५ भाग) अत्यत महत्त्वपूर्ण और विशाल ग्रथ है, धर्मशास्त्रसग्रह। (शास्त्रों और स्मृतियों के सिद्धान्तप्रमाण वाक्यों का सकलन करके इन्होंने जो शास्त्रीय व्यवस्थासग्रह तैयार किया था वह बम्बई के वेंकटेश्वर प्रेस से १०) मे प्राप्य है और इसी मे इन्होंने अपनी जीवनी भी लिखी है।)

महाराजकुमार हरिहरप्रसादसिंह, दिलीपपुर निवासी। जन्म १९११, मृत्यु १९४६। रच०— हरिहरशतक, पदपदावली, नखशिखवर्णन, स्मरणी।

महामहोपाध्याय रघुनन्दन त्रिपाठी, दिलीपपुर निवासी। जन्म १९१२, मृत्यु १९८४। इनकी सचित्र जीवनी ('बिहार के विद्यासागर') 'पुस्तक-भडार' से प्रकाशित हुई है। स्फुट लेख और भाषण। इनके सुपुत्र देवदत्त त्रिपाठी अच्छे लेखक हैं।

विजयानन्द त्रिपाठी, 'श्रीकवि', 'विद्यारत्न', नेलौंटी निवासी। जन्म १९१३, मृत्यु १९८२। रच०—महामोहविद्रावण, सच्चा सपना, महाअधेरनगरी, प्रेमसाम्राज्यादर्श, भारतीय इतिहासपजिका, नीतिमुक्तावली, अन्योक्तिमुक्तावली, रत्नावली नाटिका, उच्चकोटि की स्फुट कविताएँ (संस्कृत और हिन्दी में)। 'उद्योग'-सम्पादक।

बी० एन० कालेजिएट में संस्कृत हिन्दी अध्यापक। अखिलभारतीय हिन्दीसाहित्य-सम्मेलन के दशम अधिवेशन (पटना) के स्वागताध्यक्ष। अनेक भारतीय भाषाओं के मर्मज्ञ विद्वान्। बिहार के पुराने कवियों में केवल इन्हीं की जीवनी 'कविता-कौमुदी' (भाग २) में छपी है। 'सरस्वती' (सितम्बर १९१७ ई०, भाद्रपद संवत् १९७४) में भी प्रथम पृष्ठ पर प० रामदहिन मिश्र की लिखी हुई इनकी सचित्र जीवनी छपी है। इनके छोटे भाई शिवनन्दन त्रिपाठी भी अच्छे लेखक थे, उन्होंने 'बिहारबंधु' को पुनः जीवित करके उसका सम्पादन भी किया था। (देखिये पृष्ठ ५३८)

शिवनन्दनसहाय, अख्तियारपुर-आरा निवासी। जन्म १९१७, मृत्यु १९८९। बिहारप्रादेशिक हिन्दीसाहित्यसम्मेलन के तीसरे अधिवेशन (सीतामढ़ी) के सभापति। बिहार के प्राचीन हिन्दीसाहित्यसेवियों के जीवनचरित और ग्रंथों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करानेवाले जंगम विश्वकोष थे। रच०—गोस्वामी तुलसीदास की वृहत् जीवनी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की विस्तृत जीवनी, बाबू साहबप्रसादसिंह की जीवनी, श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसाद की जीवनी, बाबा सुमेरसिंह साहबजादे की जीवनी, सिक्खगुरुओं की जीवनी, गत ५० वर्षों में बिहार में हिन्दी की अवस्था, कृष्णसुदामा, सुदामा नाटक, कविताकुसुम, विचित्र संग्रह, बंगाल का इतिहास आदि। (देखिये पृष्ठ—५३९), इन्हीं के सुपुत्र बाबू ब्रजनन्दनसहाय प्रसिद्ध उपन्यास लेखक हैं।

राजा राजराजेश्वरीप्रसादसिंह 'प्यारे' कवि, सूर्यपुराधीश, जन्म १९२२, मृत्यु १९९०, इनकी ललित कविताओं का बड़ा ही अनूठा संग्रह इनकी सचित्र ग्रंथावली में प्रकाशित है। (देखिये पृष्ठ १२५, २०३, ५४०, ६३०)। इनके सुपुत्र राजा राधिकारमणप्रसादसिंह एम० ए० प्रसिद्ध कहानीकार और उपन्यासकार हैं।

गणपति मिश्र, आरा निवासी, जन्म १९२६, अब स्वर्गीय। रच०—मुक्तिमार्ग-प्रकाश, सुतानन्दप्रकाश, ऋतुवर्णन, सिद्धेश्वरी-स्तोत्र-अभिषेक। कवि थे।

यशोदानन्दन अखौरी, जन्म १९२३, मृत्यु १९९४, नवादा-निवासी। रच०—जोजेफ विलमट का अनुवाद पाँच भागों में, भगवान रामकृष्णदेव के उपदेश शतक, विवेक वचनावली, शिक्षाविज्ञान की भूमिका, होली की भेंट (पद्य)। देवनागर, प्रभाकर, भारतमित्र, देशसेवक के सम्पादक और प्रबन्धक। (दे० पृ० ५३९)— ('बालक', वर्ष ६, अंक ११, पृष्ठ ६२९, नवम्बर १९३५ ई० में विस्तृत-जीवनी)

पाडेय सकलनारायण शर्मा, महामहोपाध्याय, कलकत्ता-संस्कृत-कालेज के

व्याख्याता, जन्म १६२८, आरा निवासी। नागरी-प्रचारिणी सभा (आरा) के प्रधान संस्थापक। लगभग २०–२५ वर्ष 'शिक्षा' के सम्पादक। बि० प्रा० हिन्दी-सा० सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन (छपरा) के सभापति। रच०—हिन्दी-सिद्धान्तप्रकाश, सृष्टितत्त्व, प्रेमतत्त्व, आरा-पुरातत्त्व, व्याकरण-तत्त्व, वीरबालानिर्णय मञ्जरी, राजरानी (उपन्यास), अपराजिता (उपन्यास), जैनेन्द्रकिशोर (जीवनी)। ओजस्वी विद्वान् वक्ता। परम शिवभक्त। (पृष्ठ ५४३ देखिये)।

जैनेन्द्रकिशोर जैन, आरा निवासी प्रतिष्ठित रईस। स्वर्गीय। रच०—कमलिनी, मनोरमा, प्रमिला, सुलोचना, सोमा सती, चुड़ैल परम, सतीत्व विजय, सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक। (दे० पृ० ५४१, ५५६)। इन्हीं के सुपुत्र ज्ञानेन्द्रकिशोर जैन अपने सरस्वती प्रेस से सचित्र मासिक 'बालकेसरी' निकाल रहे हैं। ये नागरी-प्रचारिणी सभा (आरा) के संस्थापकों में थे।

व्रजनन्दनसहाय 'व्रजवल्लभ', आरा निवासी वकील, जन्म १६३१। नागरी-प्रचारिणी सभा (आरा) के भूतपूर्व मंत्री। बि० प्रा० हिन्दी-सा० सम्मे० (बेगूसराय,
८ मुंगेर) के सभापति। सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखक। 'शिक्षा', 'मनोरञ्जन' और 'साहित्यपत्रिका' के सम्पादक। रच०—राजेन्द्रमालती, मदनविनोद, हनुमान-लहरी, सप्तम प्रतिमा, बूढ़ा वर, कमलाकान्त का इज़हार, रजनी, अद्भुत प्रायश्चित्त, चन्द्रशेखर, लालचीन, विस्मृत सम्राट्, राधाकान्त, सौन्दर्योपासक, विश्वदर्शन, अरण्यबाला, उपाङ्गिनी, उद्धव, सत्यभामा-मङ्गल, निर्जन द्वीपवासी का विलाप, अर्थ-शास्त्र, बलदेवप्रसाद मिश्र, राधाकृष्णदास, बंकिमचन्द्र, मैथिल कोकिल विद्यापति। इनके विख्यात उपन्यास 'सौन्दर्योपासक' का मराठी और गुजराती में तथा 'लालचीन' का अँगरेजी में अनुवाद हुआ है। इनके ज्येष्ठ सुपुत्र रमेशनन्दन सहाय, एम० ए०, बी० एल० भी 'माधुरी' आदि पत्रिकाओं में प्रायः लिखा करते हैं। (पृ० ५४४, ५५६ देखिये)

श्यामजी शर्मा, भदवर निवासी। जन्म १६३१। रच०—श्यामविनोद रामायण (१६०० ई०), श्यामविनोद दोहावली (७०० दोहे, १६०४ ई०), रामचरितामृत महाकाव्य (सन् १६०२ ई०) रामचरितामृत महाकाव्य (१६११ ई०), वृन्दविलास (वृन्दसतसई के दोहों पर कुंडलियाँ), अवतारक, खड़ीबोली पद्यादर्श, भाग्य-परिवर्त्तन, प्रेममोहिनी, प्रियावल्लभ, श्यामहर्षवर्द्धन, ज्ञानतत्त्वकाञ्चन, बालविधवा-गुहार, स्वाधीन विचार, विधवा विवाह, पतित माता शिक्षा-पत्रिका, स्फुट समस्यापूर्त्तियाँ।

अक्षयवट मिश्र, 'विप्रचद्र' कवि, डुमरॉव निवासी, जन्म १८३१, मृत्यु १६६६, पटना कालेज मे हिन्दी अध्यापक थे। रच०—दुर्गादत्त परमहस (जीवनी), लेखमणिमाला (निबधसग्रह), आत्मचरितचम्पू (आत्मकथा) प्रसिद्ध हैं। इनके लिखे अनेक ग्रथ प्रकाशित हैं। इनकी लिखी, अनुवादित और सटीक पुस्तकों के नाम ये हैं—राधामाधव विलास, स्तोत्रकुसुमाञ्जलि, पद्यपुष्पोपहार, कृष्णकीर्त्तन, विनयमालिका, शोकसूक्ति, उपदेशरामायण, दशावतार-कथा, आनन्दकुसुमोद्यान, सदावहार, मार्कण्डेयपुराण, दशकुमारचरितसार, देवी चौधुरानी, मृणालिनी, रजनी, (उपन्यास), शिवमहिम्नस्तोत्र, शिवताडवस्तोत्र, गगालहरी, गगाष्टक, भामिनी विलास, महाराणा प्रतापसिंह, अजान कवि, बच्चू मल्लिक, कवि गोविन्द गिल्लाभाई, बालराम स्वामी, अयोध्यानरेश, पडित राधावल्लभ जोशी, पडित उमापतिदत्त शर्मा इत्यादि। पूर्वोक्त तीनों ग्रथ 'पुस्तकभडार' से निकले हैं। (देखिये पृष्ठ ५४३, ६'५)

उमापतिदत्त शर्मा, चिलहरी निवासी। विशुद्धानन्द-विद्यालय (कलकत्ता) और मेरठ के कालेज मे सस्कृत हिन्दी-अध्यापक थे। हिन्दी ससार में सबसे पहले इन्होंने ही यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि हिन्दी के साहित्यसेवियों का एक अखिलभारतीय सम्मेलन होना चाहिये। साल-भर आन्दोलन करने के बाद इनका देहान्त हो गया। 'भारतमित्र' और 'उचितवक्ता' तथा 'हिन्दीबगवासी' (कलकत्ता) में इनके अनेक लेख छपे हैं।

परमेश्वरदयाल 'रसिक', जन्म १९३२, स्वर्गीय, डुमरॉव-निवासी, रच०—भक्तिलता, गाने की चीजें।

अमीराय, जन्म १८३७, स्वर्गीय, भभुआ निवासी, रच०—बालकांड (छप्पयों में), गुलिस्ताँ का आठवॉ बाब (कवित्तों मे)।

मुन्शी हरिहरप्रसाद, जगदीशपुर निवासी। रच०—दिल्लीदरबार-चरितावली (दो भाग)।

जयनारायणलाल, शाहपुरपट्टी-निवासी। रच०—कृष्णप्रति रुक्मिणीपत्र, चन्द्रमा की आत्मकहानी, भारत मिस्र का प्राचीन सम्बन्ध, कवितादेवी।

चन्द्रशेखर शास्त्री साहित्याचार्य, निमेज निवासी, जन्म १८४०। स्वर्गीय। महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा के सहपाठी। सस्कृतमासिक पत्रिका 'शारदा' के सम्पादक। प्रयाग से 'समाज' मासिक निकाला था। 'शिक्षा' (पटना) का भी सम्पादन किया। वाल्मीकीय रामायण, श्रीमद्भागवत और महाभारत का हिन्दी-अनुवाद करके हिन्दी-पाठकों का महत् उपकार किया। अन्य ग्रथ—दरिद्रकथा,

विधवा के पत्र, समाज का फोड़, भारत की सती नारियाँ। साहित्यिक तपस्वी थे। त्याग विराग-मय आदर्श जीवन था। स्वावलम्बी, स्वाभिमानी और स्वाधीनचेता सात्विक पुरुष थे। इन्हीं के सुपुत्र हैं 'आरती'-सम्पादक 'मुक्तजी'। (पृष्ठ ५४६)— (दे० 'बालक', वर्ष ८, पृ० ४५७)

ईश्वरीप्रसाद शर्मा, मिश्रटोला-आरा निवासी। जन्म १६४१, मृत्यु १६८४। मनोरंजन, पाटलिपुत्र, लक्ष्मी, श्रीविद्या, शिक्षा, धर्माभ्युदय, हिन्दूपंच आदि के सम्पादक। सिद्धहस्त अनुवादक। अनेक प्रमुख भारतीय भाषाओं के पंडित। कुशल अभिनेता। अद्भुत प्रत्युत्पन्नमति। नागरीप्रचारिणी सभा (आरा) के मंत्री। हास्य विनोद-प्रिय। रच०—श्रीरामचरित्र, सीता, सिपाही विद्रोह, बँगला हिन्दी कोष, सूर्योदय (नाटक), रँगीली दुनिया (नाटक), मानमर्दन (नाटक), पंचशर (गद्यकाव्य), मागधी कुसुम (उपन्यास), उद्भ्रान्त प्रेम, अन्नपूर्णा का मन्दिर, किन्नरी, इन्दुमती, प्रेमगंगा, प्रेमिका, जलचिकित्सा, चनाचबेना (पद्यसंग्रह), सौरभ, सुशीलशिक्षा, चन्द्रकुमार मनोरमा, हिरण्मयी, गल्पमाला, सखी मैत्रा, बालगल्पमाला, मानमोचन आदि सब मिलाकर इनकी लिखी और अनुवादित लगभग एक सौ पुस्तकें हैं। मराठी, गुजराती, बँगला, अँगरेजी से तो हिन्दी अनुवाद किया ही, हिन्दी से बँगला में पंजाब हत्याकांड का अनुवाद किया। और, अभी इनकी कई रचनाएँ अधूरी एवं अप्रकाशित हैं। इन्हीं के साहित्यिक शिष्य हैं शिवपूजनसहाय। (दे० पृ०,५४६, ५६०, ५८३, ६१४)। इनके बड़े चचेरे भाई पं० गुरुदेवप्रसाद शर्मा, बी० ए०, एल० टी०, रिटायर्ड हेडमास्टर भी हिन्दी के विद्वान् लेखक हैं। 'लक्ष्मी' और मनोरंजन' में उनके कई विद्वत्तापूर्ण लेख छपे हैं।

शिवनन्दन त्रिपाठी, चेलाँडी निवासी, पं० विजयानन्दजी के भाई, 'विहार-बंधु' के सम्पादक। कलकत्ता में हिन्दी के अध्यापक भी थे।

स्वामी भवानीदयाल सन्यासी, बहुआरा निवासी, दक्षिण अफ्रिका प्रवासी। जन्म १६४१। बि० प्रा० हि० सा० सम्मे० (देवघर) के सभापति। ग्रंथ—दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास, ट्रान्सवाल के भारतवासी, कारावास की कहानी, नेटाली हिन्दू, शिक्षित और किसान, वैदिक धर्म और आर्यसभ्यता, महात्मा गांधी, भजनप्रकाश, प्रवासी की कहानी, वैदिक प्रार्थना, वर्णव्यवस्था या मरणावस्था। दक्षिण अफ्रिका में, 'हिन्दी' नामक साप्ताहिक पत्रिका निकालते थे, जिसके अनेक विशेषांक अत्यन्त सुन्दर निकले थे। प्रवासी भारतवासियों के प्रसिद्ध नेता। सुवक्ता। राजनीति-कुशल आन्दोलक। अब अजमेर (राजपुताना) के आदर्श आर्यनगर

मे 'प्रवासी भवन' बनवाकर वहीं से प्रवासी भारतीय साहित्य का प्रकाशन कर रहे हैं। इनके सुपुत्र ब्रह्मदत्त भवानीदयाल भी हिन्दी के प्रतिभाशाली कहानी-लेखक और उपन्यासकार हैं, जिनका 'प्रवासीप्रपंच' पुस्तक भंडार से निकला है। स्वामीजी ने प्रवासी भारतवासियों मे हिन्दी का खूब प्रचार किया है।

धर्मराज ओझा, एम ए, देकुली-निवासी। पटना-कालेज में हिन्दी संस्कृत के अध्यापक और धर्मसमाज-संस्कृत-कालेज (मुजफ्फरपुर) के प्रिंसिपल थे। 'शिक्षा' मे स्फुट लेख।

चन्द्रहास द्विवेदी, काव्यतीर्थ, देकुली-निवासी, हाइस्कूल (दानापुर) के हिन्दी-अध्यापक, रच०—हिन्दीबोध।

देवदत्त त्रिपाठी, काव्यतीर्थ, दिलीपपुर निवासी, जन्म १९३६। म० म० रघुनन्दन त्रिपाठी के सुपुत्र। पटना कालेज के भूतपूर्व संस्कृत हिन्दी-अध्यापक। 'शिक्षा' मे स्फुट गद्य-लेख। ग्र०—तुलसी-साहित्य। दे०-'बालक', वर्ष ९, पृ० २४९)

रामदहिन मिश्र, काव्यतीर्थ, थार-निवासी। बालशिक्षा समिति और ग्रंथमाला-कार्यालय तथा हिन्दुस्तानी प्रेस (पटना) के संस्थापक और संचालक। बाल शिक्षा ग्रंथमाला (मासिक) तथा 'किशोर' के जन्मदाता और सम्पादक। ग्रंथ—साहित्य-मीमांसा, साहित्यपरिचय, साहित्यालंकार, मेघदूत विमर्श, हिन्दी के मुहावरे, रचना विचार साहित्यमंजूषा, महाभारतीय सुनीति कथा आदि। अन्य अनेक बालोपयोगी पाठ्य पुस्तकों के लेखक, सम्पादक और प्रकाशक। शाहाबाद जिला साहित्य सम्मेलन के प्रथम सभापति।

चन्दाबाई जैन, आरा निवासिनी, विदुषी महिला। जैनबाला विश्राम (कन्या-विद्यालय) की प्रधानाध्यक्षा। रच०—उपदेशरत्नमाला, सौभाग्यरत्नमाला, महिलाओं का चक्रवर्त्तित्व आदि।

राजा राधिकारमणप्रसादसिंह, एम ए, सूर्यपुराधीश, जन्म १९४८, वि० प्रा० हिं० सा० सम्मे० के द्वितीय अधिवेशन (बेतिया, चम्पारन) के सभापति और उसीके पन्द्रहवें अधिवेशन (आरा) के स्वागताध्यक्ष। नागरीप्रचारिणी सभा (आरा) के वर्त्तमान सभापति। ग्रंथ—गल्पकुसुमावली, नवजीवन-प्रेमलहरी, तरङ्ग, राम रहीम, गांधी टोपी, सावनी समा पुरुष और नारी, टूटा तारा। (देखिये पृष्ठ ५५१, ५६१, ६१६)। अपनी राजधानी मे राजराजेश्वरी साहित्य मंदिर स्थापित कर अपनी रचनाओं का सुन्दर प्रकाशन करा रहे हैं। आपके विषय में समालोचक-शिरोमणि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दीसाहित्य का इतिहास' मे लिखा

है—"सूर्यपुरा के राजा राधिकारमणप्रसादसिंहजी हिन्दी के एक अत्यन्त भावुक और भाषा की शक्तियों पर अद्भुत अधिकार रखनेवाले पुराने लेखक हैं। इनकी एक अत्यन्त भावुकतापूर्ण कहानी 'कानों में कँगना' सम्वत् १९७० (सन् १९१३ ई०) में 'इन्दु' (काशी) में निकली थी। उसके पीछे आपने 'बिजली' आदि कुछ और सुन्दर कहानियाँ भी लिखीं। उनका 'रामरहीम' भिन्न भिन्न जातियों और मतानुयायियों के बीच मनुष्यता के व्यापक सम्बन्ध पर जोर देनेवाला (उपन्यास) है।"

अवधविहारीशरण, एम ए, बी एल , आरा निवासी। स्वाध्याय निरत गम्भीर विद्वान् लेखक। शिक्षा, साहित्यपत्रिका आदि में सुन्दर निबन्ध। रच०—मेगास्थनीज का भारतविवरण।

रघुनाथप्रसाद, मुख्तार, डुमराँव निवासी, शिक्षा और साहित्य पत्रिका तथा मनोरंजन में अनेक लेख। बँगला से अनुवादित कई उपन्यास। कई मौलिक रचनाएँ।

श्रीकृष्णजी सहाय। मुहम्मदपुर। शिक्षा और साहित्यपत्रिका में गद्यपद्यरचनाएँ।

पारसनाथ त्रिपाठी, काव्यतीर्थ, शाहपुरपट्टी-निवासी। अब स्वर्गीय। पाटलिपुत्र, देश, शिक्षा, बालक, लोकमान्य के सम्पादक और सहकारी। आरा से 'पाटलिपुत्र' पुनः निकाला था। पुस्तकें—जालिया क्लाइव, सीतावनवास, शकुन्तला आदि। अनेक पुस्तकों के अनुवादक।

हरिनारायणसिंह बी० ए०, शाहपुरपट्टी। डुमराँव राज्य के असिस्टेंट मैनेजर थे। प्रतिष्ठित जमीन्दार और रईस। सार्वजनिक सेवा के अनुरागी। 'शिक्षा' में स्फुट लेख। रच०—एक शिक्षा सम्बन्धी पुस्तक 'सुधांशु' (पाँच किरणें)।

शिवपूजन सहाय, उनवाँस निवासी, जन्म १९५० । द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रस्तावक और सम्पादक। बिहारप्रादेशिक हिन्दीसाहित्यसम्मेलन के सत्रहवें अधिवेशन (पटना) के सभापति। मारवाड़ीसुधार, आदर्श, उपन्यासतरंग, बालक, गंगा, जागरण (पाक्षिक) के सम्पादक। मतवाला, माधुरी, समन्वय, गोलमाल, मौजी के सम्पादकीय विभाग में काम किया। रचनाएँ—विभूति (महिलामहत्त्व), देहाती दुनिया, बिहार का विहार, भीष्म, भीम, अर्जुन, अभिमन्यु, हिन्दी-ट्रान्सलेशन। संकलित और सम्पादित पुस्तकें—प्रेमकली, प्रेमपुष्पांजलि, सेवाधर्म, त्रिवेणी, संसार के पहलवान। अनेकानेक पुस्तकों के सम्पादक। वर्तमान प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)—राजेन्द्रकालेज, छपरा।

रमेशप्रसाद, बी० एस्-सी०, जन्म १९५०, मुरार-निवासी। रमेश प्रिंटिङ्ग वर्क्स (मीठापुर , पटना) के संस्थापक और संचालक। विज्ञान-सम्बन्धी अनेक

शाहाबाद जिला साहित्य सम्मेलन और आरा साहित्य परिषद् के प्रधान मंत्री। भोजपुरी-शब्दकोष का निर्माण कर रहे हैं।

श्रीमती विमलादेवी 'रमा', 'साहित्यचन्द्रिका', डुमराँव निवासिनी। माधुरी आदि सामयिक पत्रिकाओं में स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी अनेक लेख। रच०—शिक्षासौरभ, स्फुट गद्यपद्य।

गुप्तेश्वर प्रसाद श्रीवास्तव, डुमरॉव-निवासी रईस, कहानी लेखक।

रामप्रीत शर्मा 'शिव', 'विशारद', केसठ-निवासी, हाइस्कूल में हिन्दी-अध्यापक। 'हरिऔध-अभिनन्दन ग्रंथ' (नागरीप्रचारिणी सभा, आरा) के अन्यतम सम्पादक। स्फुट गद्य पद्य।

कमलाकान्त वर्मा, बी० ए०, एल० एल बी०, आरा निवासी। प्रसिद्ध कहानी-लेखक और संगीतविद्याविशारद। 'विशालभारत' के भूतपूर्व सहकारी सम्पादक। (दे० पृ० ५७१)

जगन्नाथरायशर्मा, एम० ए०, साहित्याचार्य, रामपुर-टिहरी-निवासी। पटना विश्वविद्यालय में हिन्दी के व्याख्याता। विद्वान् लेखक और कवि। रच०—अपभ्रंश दर्पण, विक्रम-विजय (कविता-पुस्तक) आदि।

मार्कण्डेय पाडेय, खरेंदा निवासी, जन्म १९९३, 'देशसेवक' (आरा) के सम्पादक थे।

प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त', 'आरती सम्पादक, निमेज निवासी। जन्म १९६६। स्व० साहित्याचार्य चन्द्रशेखरशास्त्री के सुपुत्र। रच०—पतझड़, पाप पुण्य, सन्यासी, लालिमा, धारा, तलाक, जेलयात्रा, दो दिन की दुनिया आदि। प्रसिद्ध कहानी उपन्यास लेखक और पत्रकार तथा कवि। भूतपूर्व 'बिजली' सम्पादक। (देखिये पृष्ठ ५६१)

महाराजकुमार दुर्गाशंकरप्रसादसिंह, दिलीपपुर निवासी रईस। इन्हीं के पितामह श्रीनर्मदेश्वरप्रसादसिंह 'ईश' बड़े विद्वान् लेखक और ब्रजभाषा के सुन्दर कवि थे। (दे० पृ० ४४१, ६११)। ये स्वयं बड़े प्रसिद्ध कथाकार हैं। रच०—ज्वालामुखी (गद्यकाव्य), हृदय की ओर (उपन्यास), भूख की ज्वाला। अनेक कहानियाँ पत्र पत्रिकाओं में। (दे० पृ० ५६६)

सरयूपंडा गौड़, जगदीशपुर-निवासी। हास्यरस की रचनाओं के लिये विशेष प्रसिद्ध। कुशल कहानी-लेखक। प्र०—लेखक की बीबी, मिस्टर तिवारी का टेली-फोन-कॉल, कोर्टशिप, अश्रुगंगा, भूली हुई कहानियाँ, वेदना। (दे० पृ० ५६५)। 'आर्यमहिला' (काशी) के सम्पादक थे।

चूड़ामणिपुर का रास्ता पूछा। औरत ने आपको चकमा देकर कहा—"चलो मेरे साथ।"

उसके पीछे-पीछे आप चले। जब सवेरा हो गया, वह औरत अपने घर के पास पहुँच गई। उसने कहा—'अब पूछते-पूछते चले जाओ, चूड़ामणिपुर पहुँच जाओगे।' आपने दरियाफ्त किया तो मालूम हुआ कि स्टेशन से आप चार मील दूर दक्खिन चले आये हैं, चूड़ामणिपुर तो स्टेशन से चार मील उत्तर है।

आप अपनी सिधाई पर पछताते वापस आये। दुनियादारी का पहला सबक आपको यही मिला। सोचा—"अधिक सुधाइहुँ ते बड दोषू"। खैर, चूड़ामणिपुर में भी आपने ठीक बाइस रोज तक काम किया।

एक दिन आपके नाम से एक पत्र आ पहुँचा। यह भक्तवर रायसाहब भगवननारायण का पत्र था। उन्होंने लिखा था—"सिमरा (मुजफ्फरपुर) के मिड्लस्कूल में हेडपंडित की जगह खाली है, पत्र देखते ही सेक्रेटरी से मिलो।"

आपको फिर अपनी प्यारी जन्मभूमि के दर्शन का सुअवसर मिला। सिमरा के स्कूल में आकर नई उमंग के साथ काम करने लगे।

इसी बीच एक ऐसी बात हुई कि आपको सिमरा का स्कूल छोड़ना पड़ा। स्कूल के हेडमास्टर का व्यक्तिगत चरित्र कुछ ऐसा था, जिसके कारण उनकी अधीनता में काम करना आपने अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझा। बस निर्भीकता-पूर्वक त्यागपत्र दे वहाँ से चले आये।

परन्तु ईश्वर का हाथ आपके सिर पर था। अभी एक सप्ताह भी न बीतने पाया था कि अनायास आपको एक सरकारी चिट्ठी मिली—"दरभंगा के नार्थब्रुक-स्कूल में तुम १५) महीने पर शिक्षक नियुक्त किये गये।"

नार्थब्रुक स्कूल में आपकी इतनी धाक जमी कि सौ-सवा सौ रुपये माहवार ट्यूशन से आने लगे। उस समय ज्ञान बाबू हेडमास्टर थे। एक दिन का जिक्र है, मास्टर लोग आपकी हिन्दी की तारीफ करने लगे। आपको यह ठकुरसुहाती पसन्द न आई। आपने हेडमास्टर के सामने ही उन शिक्षकों के हिन्दी-ज्ञान की यथार्थ समालोचना शुरू की। इस छोटी-सी घटना से आपकी सत्यप्रियता और निर्भीकता प्रकट होती है।

दूसरे वर्ष आपकी बदली गया के जिला-स्कूल में हो गई। आप जब क्लास में ड्राइंग सिखलाते थे तब खली लेकर बोर्ड पर चुटकियों में सुन्दर चित्र खींच देते थे। उन दिनों रायबहादुर भगवती सहाय अस्थायी रूप से शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर थे। जब वे स्कूल का निरीक्षण करने आये, आपका विलक्षण अध्यापन और हस्तलाघव देखकर मुग्ध हो गये। उन्होंने आपके विषय में बहुत ही सुन्दर

सम्मति लिखी। आपकी तरक्की के लिये वचन भी दिया। इसी समय आपने 'लक्ष्मी'-सम्पादक लाला भगवान 'दीन' से 'बिहारी-सतसई' पढ़ी। यहीं आपकी साहित्यिकता का बीज-वपन हुआ।

जब आप गया में थे, तभी आपको अपने स्कूल के शिक्षकों में ही एक अपूर्व महात्मा मिल गये। वे थे भक्तवर बाबा सोहराईराम दास वैष्णव। उन्होंने आपको वैष्णव-धर्म की प्रारम्भिक शिक्षा दी—भक्ति-मार्ग सुझाया। समय-समय पर वे अपने साथ भगवान् के भजन-कीर्त्तन और झाँकियों में भी आपको ले जाने लगे।

आपको रामलीला से इतना गहरा प्रेम हुआ कि गर्मी की छुट्टी में महीना-भर 'बाढ़' (पटना) में रहे और वहाँ काशीराम की मडली के साथ रहकर राम-लीला देखते रहे।

तीन वर्ष बाद आप फिर दरभगा के नार्थब्रुक-स्कूल में आ पहुँचे। आपने देखा कि हिन्दी-व्याकरण की ऐसी कोई भी निर्दोष और सर्वाङ्गसुन्दर पुस्तक नहीं है, जो बालकों के लिये सुगम हो। इसी बीच युक्तप्रान्त की सरकार ने सर्वोत्तम व्याकरण की पुस्तक पर पुरस्कार देने की घोषणा की। आप दस वर्ष पहले ही से व्याकरण का अनुशीलन कर रहे थे। बस नवीन आगमनात्मक-विधि (Inductive Method) की शैली का अनुशीलन कर चटपट एक पुस्तक तैयार कर डाली। पुस्तक का नाम था 'व्याकरण-बोध', जिसके आधार पर पीछे 'व्याकरण-चन्द्रिका', 'व्याकरण-नवनीत', 'व्याकरण-चन्द्रोदय' आदि बीसियों पुस्तकें लिखी गई।

अब यह प्रश्न उठा कि पुस्तक का प्रकाशन कैसे किया जाय। उन दिनों प्रकाशन-क्षेत्र में बिहार बहुत पिछड़ा हुआ था। इने-गिने दो-चार प्रकाशकों को छोड़ और कोई था ही नहीं। आप पुस्तक छपवाने के लिये ३०) लेकर गया पहुँचे। किन्तु वहाँ के प्रकाशक शीघ्र और सुन्दर छापने को तैयार न हुए। उनसे अपना पावना—पुस्तकों की लिखाई, जो ढाई आने फी पेज की दर से तय हुई थी—४२) वसूल करते हुए बनारस चले गये। इसी ७२) की पूँजी से आपने कार्य का श्रीगणेश किया। ईश्वर की दया से यही बहत्तर हजारों बहत्तरों का विधाता हुआ।

काशी में आप हितचिन्तक प्रेस के मालिक श्रीयुत कृष्णबलवन्त पावगीजी से मिले। अपना अभिप्राय जताया। पावगीजी आपकी लगन देख बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने आपको प्रकाशन-सम्बन्धी छोटी-मोटी बातें भी बतला दीं। यही पावगीजी प्रकाशन-क्षेत्र में आपके आदि-गुरु हुए।

काशी में पहुँचते ही आपके हृदय का सुषुप्त भक्ति-भाव जाग उठा। आप वैष्णव-धर्म में विधि-पूर्वक दीक्षित होने के लिये अयोध्या पहुँचे। वहाँ प्रमोद-वन

(वड़ी शुटिया) के बूढ़े महाराज श्री १०८ राजकुमार दासजी की कृपादृष्टि आप-पर हुई। आप उनके शिष्य हुए।

दीक्षा ग्रहण कर पुन काशी होते हुए दरभगा लौट आये। यहाँ आने पर युक्त-प्रान्त की सरकार की चिट्ठी मिली—"तुम्हारी लिखी हुई व्याकरण की पुस्तक सर्वोत्कृष्ट सिद्ध हुई है, अतएव तुम्हें १६७) पारितोषिक प्रदान किया जाता है।"

सिर्फ दो फार्म (३२ पेज) की किताब पर आपको सरकार ने १६७) इनाम देकर सम्मानित किया। यहीं से आपके साहित्यिक जीवन का विकास शुरू हुआ। जीवन के इतिहास का दूसरा परिच्छेद प्रारम्भ हुआ।

× × × ×

१९१६ ई० की तीसरी जनवरी बड़ी महत्त्वपूर्ण थी। उसी दिन लहेरिया-सराय की एक छोटी-सी झोपड़ी में एक ऐसी सस्था का जन्म हुआ जिसपर आज सारे बिहार को गर्व है, जिसका समस्त हिन्दी-भाषियों को गौरव है। वह सस्था है 'पुस्तक-भडार'।

यह सस्था आरम्भ से ही उन्नति-पथ की ओर अग्रसर होने लगी। दिन-दिन इसकी लोकप्रियता बढने लगी। दिन-दूनी रात-चौगुनी प्रसिद्धि होने लगी।

आपने एकमात्र अपनी लेखनी और अपने अध्यवसाय के बल पर 'भडार' की नींव डाली। 'भडार' की अभिवृद्धि के लिये आपने भगीरथ प्रयत्न किया—दिन-रात लिखा, खूब लिखा, ऐसा लिखा जैसा पहले किसी ने नहीं लिखा था। तरुण तपस्वी की भाँति साहित्य-मन्दिर मे समाधि लगाई और उसी में मस्त रहे।

पाँच-सात वर्षों के निरन्तर घोर परिश्रम से आपने ढेर-की ढेर पुस्तकें लिख डालीं। शायद ही कोई दिन ऐसा बीता हो जिसमें आपने सोलह घटे से कम काम किया हो। लगन हो तो ऐसी।

जो कुछ आपने लिखा, उसे अपने रग में रँग दिया। आपकी कोई पुस्तक ऐसी नहीं, जिसमें आपके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट अकित न हो। आपका 'व्याकरण-चन्द्रोदय' हिन्दी मे अपना खास स्थान रखता है। ऐसा सर्वाङ्गसुन्दर व्याकरण हिन्दी में पहले न था।

आपका सबसे बडा कार्य है बालसाहित्य का निर्माण। बालकों का मनो-विज्ञान परखने की आपमें अद्भुत शक्ति है। कठिन-से-कठिन बात को भी आप इस रूप में रख देंगे कि छोटे से छोटा बच्चा भी आसानी के साथ समझ जाय। चाहे कोई भी विषय दीजिये, आप तुरत उसे अपने साँचे मे ढाल देंगे। इस कला में आप अपना सानी नहीं रखते। आपकी नकल पर बहुत-से लोग चले, पर आपकी खूबी को अभी तक कोई पा न सका।

सम्मति लिखी। आपकी तरक्की के लिये वचन भी दिया। इसी समय आपने 'लक्ष्मी'-सम्पादक लाला भगवान 'दीन' से 'विहारी-सतसई' पढी। यहीं आपकी साहित्यिकता का बीज-वपन हुआ।

जब आप गया में थे, तभी आपको अपने स्कूल के शिक्षकों मे ही एक अपूर्व महात्मा मिल गये। वे थे भक्तवर बाबा सोहराईराम दास वैष्णव। उन्होंने आपको वैष्णव-धर्म की प्रारम्भिक शिक्षा दी—भक्ति-मार्ग सुझाया। समय-समय पर वे अपने साथ भगवान् के भजन-कीर्त्तन और झाँकियों में भी आपको ले जाने लगे।

आपको रामलीला से इतना गहरा प्रेम हुआ कि गर्मी की छुट्टी में महीना-भर 'बाढ' (पटना) में रहे और वहाँ काशीराम की मडली के साथ रहकर राम-लीला देखते रहे।

तीन वर्ष बाद आप फिर दरभगा के नार्थब्रुक-स्कूल में आ पहुँचे। आपने देखा कि हिन्दी-व्याकरण की ऐसी कोई भी निर्दोष और सर्वाङ्गसुन्दर पुस्तक नहीं है, जो बालकों के लिये सुगम हो। इसी बीच युक्तप्रान्त की सरकार ने सर्वोत्तम व्याकरण की पुस्तक पर पुरस्कार देने की घोषणा की। आप दस वर्ष पहले ही से व्याकरण का अनुशीलन कर रहे थे। बस नवीन आगमनात्मक-विधि (Inductive Method) की शैली का अनुशीलन कर चटपट एक पुस्तक तैयार कर डाली। पुस्तक का नाम था 'व्याकरण-बोध', जिसके आधार पर पीछे 'व्याकरण-चन्द्रिका', 'व्याकरण-नवनीत', 'व्याकरण-चन्द्रोदय' आदि बीसियों पुस्तकें लिखी गईं।

अब यह प्रश्न उठा कि पुस्तक का प्रकाशन कैसे किया जाय। उन दिनों प्रकाशन-क्षेत्र में बिहार बहुत पिछडा हुआ था। इने-गिने दो-चार प्रकाशकों को छोड़ और कोई था ही नहीं। आप पुस्तक छपवाने के लिये ३०) लेकर गया पहुँचे। किन्तु वहाँ के प्रकाशक शीघ्र और सुन्दर छापने को तैयार न हुए। उनसे अपना पावना—पुस्तकों की लिखाई, जो ढाई आने फी पेज की दर से तय हुई थी—४२) वसूल करते हुए बनारस चले गये। इसी ७२) की पूँजी से आपने कार्य का श्रीगणेश किया। ईश्वर की दया से यही बहत्तर हजारों बहत्तरों का विधाता हुआ।

काशी में आप हितचिन्तक प्रेस के मालिक श्रीयुत कृष्णबलवन्त पावगीजी से मिले। अपना अभिप्राय जताया। पावगीजी आपकी लगन देख बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने आपको प्रकाशन-सम्बन्धी छोटी-मोटी बातें भी बतला दीं। यही पावगीजी प्रकाशन-क्षेत्र मे आपके आदि-गुरु हुए।

काशी में पहुँचते ही आपके हृदय का सुषुप्त भक्ति-भाव जाग उठा। आप वैष्णव-धर्म में विधि-पूर्वक दीक्षित होने के लिये अयोध्या पहुँचे। वहाँ प्रमोद-वन

(बड़ी कुटिया) के बूढ़े महाराज श्री १०८ राजकुमार दासजी की कृपादृष्टि आप-पर हुई। आप उनके शिष्य हुए।

दीक्षा ग्रहण कर पुन काशी होते हुए दरभगा लौट आये। यहाँ आने पर युक्त-प्रान्त की सरकार की चिट्ठी मिली—"तुम्हारी लिखी हुई व्याकरण की पुस्तक सर्वोत्कृष्ट सिद्ध हुई है, अतएव तुम्हे १६७) पारितोषिक प्रदान किया जाता है।"

सिर्फ दो फार्म (३२ पेज) की किताब पर आपको सरकार ने १६७) इनाम देकर सम्मानित किया। यहीं से आपके साहित्यिक जीवन का विकास शुरू हुआ। जीवन के इतिहास का दूसरा परिच्छेद प्रारम्भ हुआ।

× × × ×

१९१६ ई० की तीसरी जनवरी बडी महत्त्वपूर्ण थी। उसी दिन लहेरिया-सराय की एक छोटी-सी झोपडी में एक ऐसी सस्था का जन्म हुआ जिसपर आज सारे बिहार को गर्व है, जिसका समस्त हिन्दी-भाषियो को गौरव है। यह सस्था है 'पुस्तक-भडार'।

यह सस्था आरम्भ से ही उन्नति-पथ की ओर अग्रसर होने लगी। दिन-दिन इसकी लोकप्रियता बढने लगी। दिन-दूनी रात-चौगुनी प्रसिद्धि होने लगी।

आपने एकमात्र अपनी लेखनी और अपने अध्यवसाय के बल पर 'भडार' की नींव डाली। 'भडार' की अभिवृद्धि के लिये आपने भगीरथ प्रयत्न किया—दिन-रात लिखा, खूब लिखा, ऐसा लिखा जैसा पहले किसी ने नहीं लिखा था। तरुण तपस्वी की भाँति साहित्य-मन्दिर में समाधि लगाई और उसी में मस्त रहे।

पाँच-सात वर्षों के निरन्तर घोर परिश्रम से आपने ढेर-की ढेर पुस्तकें लिख डालीं। शायद ही कोई दिन ऐसा बीता हो जिसमे आपने सोलह घटे से कम काम किया हो। लगन हो तो ऐसी।

जो कुछ आपने लिखा, उसे अपने रग मे रँग दिया। आपकी कोई पुस्तक ऐसी नहीं, जिसमें आपके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट अकित न हो। आपका 'व्याकरण-चन्द्रोदय' हिन्दी मे अपना खास स्थान रखता है। ऐसा सर्वाङ्गसुन्दर व्याकरण हिन्दी मे पहले न था।

आपका सबसे बडा कार्य है बालसाहित्य का निर्माण। बालकों का मनोविज्ञान परखने की आपमे अद्भुत शक्ति है। कठिन-से-कठिन बात को भी आप इस रूप में रख देंगे कि छोटे से छोटा बच्चा भी आसानी के साथ समझ जाय। चाहे कोई भी विषय दीजिये, आप तुरत उसे अपने साँचे में ढाल देंगे। इस कला में आप अपना सानी नहीं रखते। आपकी नकल पर बहुत-से लोग चले, पर आपकी खूबी को अभी तक कोई पा न सका।

आपने बालसाहित्य का भंडार भरने के लिये व्याकरण, साहित्य, इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य, विज्ञान, नीतिधर्म आदि विषयों की उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखने में कमाल कर दिखलाया। आपकी लिखी हुई सभी पुस्तकों की यदि गिनती की जाय तो कई सौ तक पहुँच जायगी। इसके अतिरिक्त आपने अन्यान्य अनेक पुस्तकों का जो संपादन और संशोधन किया है, उनकी संख्या अलग है। निम्न कक्षा से लेकर आजकल के विश्वविद्यालय की उच्च कक्षा तक में आपकी पुस्तकें पाठ्य हैं।

आपकी पुस्तकों को लोगों ने खूब पसन्द किया, दिल खोलकर अपनाया। शिक्षक आपकी पुस्तकों पर लट्टू हो गये। लड़कों के लिये तो मानों नया युग ही आ गया।

लेकिन ईश्वर की इच्छा थी कि आपकी कुछ और कठिन परीक्षा ली जाय। आपकी दो-चार किताबें भी अभी मंजूर न होने पाई थीं कि कुछ सज्जनों ने आपके विरुद्ध अधिकारियों के कान भर दिये। आपकी नई किताबें स्वीकृत न हो सकीं, बल्कि शिक्षकों को पूरी ताकीद की गई कि आपकी पुरानी किताबें भी न पढ़ाई जायँ। परन्तु आप कब हताश होनेवाले थे। आपकी किताबें तो इतनी लोकप्रिय हो उठी थीं कि विरोध में जोरदार आन्दोलन होने पर भी उनकी बाढ़ न रुकी—न रुकी। कई पुस्तकों की तो पाँच-पाँच लाख प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक गईं, और फिर भी जनता की माँग पूरी न हुई, बारबार नये संस्करण निकालने ही पड़े।

देखते-ही-देखते आप गरीब मास्टर से लखपती हो गये। जो १५) माहवार पाकर गुजर करते थे, वही अब प्रति मास १५००) अपने नौकरों को तनखाह बाँटने लगे। 'पुस्तक-भंडार' टूटी-फूटी झोपड़ी से उठकर अब सुन्दर भव्य भवन में आ गया।

अधिकारियों की कोपदृष्टि देखकर आपने स्कूली किताबों से कुछ समय के लिये अपना हाथ खींच लिया। अब साहित्यिक पुस्तकों की ओर झुके। चार वर्षों में ही अनेक उत्कृष्ट जीवन-चरित, उपन्यास, गद्य-काव्य, काव्य-ग्रन्थ और कहानी-संग्रह 'भंडार' से निकले। हिन्दी-संसार ने उन्हें खूब सराहा। सच्चे हृदय से सभी पत्र-पत्रिकाओं ने प्रशंसा की। आपने देखा, अब बिना अपना खास प्रेस हुए काम नहीं चलने का।

सन् १९२८ ई० में आपने अपने 'भंडार' में ही विद्यापति प्रेस की स्थापना की। इस प्रेस ने छपाई-सफाई की सुन्दरता से सबको चकित कर दिया। सरस्वती, प्रताप, मतवाला, सम्मेलन-पत्रिका, त्यागभूमि, महारथी आदि हिन्दी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं ने दिल खोलकर एक स्वर से 'भंडार' के प्रकाशन और

विद्यापति प्रेस की मुद्रणकला की तारीफ की। सबने यही कहा कि बिहार के लिये यह बिल्कुल नई चीज है। इस तरह बिहार में मुद्रण-कला का गौरव स्थापित करने में भी आपका ही सबसे बड़ा हाथ है।

सन् १९२६ ई० में आपने, पूरी सजधज के साथ, बालकों का सुपरिचित, बाल-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ सचित्र मासिक पत्र, 'बालक' निकाला। हिन्दी-संसार के सभी विद्वानों ने 'बालक' को हृदय से आशीर्वाद और बढ़ावा दिया। प्रवासी भारतवासियों में भी उसकी ख्याति बढ़ने लगी।

कुछ ही सालों के अन्दर आपने साहित्यिक पुस्तकों का ताँता लगा दिया। हिन्दी के धुरन्धर लेखक आचार्य द्विवेदीजी, श्रीपदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, प० अयोध्यासिंह उपाध्याय, प० जनार्दन झा 'जनसीदन', लाला भगवान 'दीन', प० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, श्रीजयशंकर प्रसाद, श्रीशिवपूजन सहाय आदि लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों ने 'भंडार' के साथ सहर्ष सम्बन्ध स्थापित किया।

इसके अतिरिक्त आपने बिहार के कितने ही उदीयमान लेखकों और कवियों को हिन्दी-संसार के समक्ष उपस्थित कर बिहार का यश बढ़ाया, जिनमें प० रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, प० मोहनलाल महतो 'वियोगी', प० हरिमोहन झा एम० ए०, प० रामलोचन शर्मा 'कंटक', एम० ए०, श्रीअच्युतानन्द दत्त, प० जटाधर शर्मा 'विकल' और श्रीचन्द्रमाराय शर्मा के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। बिहार के आधुनिक गद्य-शैली-निर्माण और साहित्य-प्रचार का जितना श्रेय आपको है, उतना और किसी को नहीं। महाराज-कुमार रामदीन सिंह ने बिहार में हिन्दी प्रचार और हिन्दी-लेखन की जो नींव डाली, आपने उसपर एक सुन्दर इमारत तैयार कर डाली। यही आपका महान् गौरव है।

इतना होते हुए भी, नामवरी की कुछ भी परवा न कर, आप चुपचाप अपना काम करते चले जाते हैं—अपनी धुन में मस्त रहते हैं। यदि कोई जरूरत आ पड़ी तो कहीं किसी से मिलने गये, नहीं तो बाहरी दुनिया से कोई सरोकार नहीं। आपने जो काम दस वर्षों में कर दिखाया है, वह पिछली अर्द्ध-शताब्दी में भी बिहार में नहीं हो पाया था। आपके 'पुस्तक-भंडार' ने बिहार के सूने भंडार को भरा-पूरा कर दिया है। इसी महान् कार्य के लिये आपका जन्म हुआ था। इस महत्कार्य को आपने जिस उद्योग, साहस, आत्मबल और अध्यवसाय के साथ पूरा करने की चेष्टा की है, वह सर्वथा अभिनन्दनीय और अनुकरणीय है।

सन् १९२९ में बिहार-सरकार की कृपादृष्टि 'भंडार' पर हुई। आपकी पुस्तकें हर-एक कक्षा में मंजूर होने लगीं। प्राथमिक कक्षा से लेकर एम० ए०

आपने बालसाहित्य का भडार भरने के लिये व्याकरण, साहित्य, इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य, विज्ञान, नीतिधर्म आदि विषयों की उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखने में कमाल कर दिखलाया। आपकी लिखी हुई सभी पुस्तकों की यदि गिनती की जाय तो कई सौ तक पहुँच जायगी। इसके अतिरिक्त आपने अन्यान्य अनेक पुस्तकों का जो सपादन और सशोधन किया है, उनकी सख्या अलग है। निम्न कक्षा से लेकर आजकल के विश्वविद्यालय की उच्च कक्षा तक में आपकी पुस्तकें पाठ्य हैं।

आपकी पुस्तकों को लोगों ने खूब पसन्द किया, दिल खोलकर अपनाया। शिक्षक आपकी पुस्तकों पर लट्टू हो गये। लडकों के लिये तो मानो नया युग ही आ गया।

लेकिन ईश्वर की इच्छा थी कि आपकी कुछ और कठिन परीक्षा ली जाय। आपकी दो-चार किताबें भी अभी मजूर न होने पाई थीं कि कुछ सज्जनों ने आपके विरुद्ध अधिकारियों के कान भर दिये। आपकी नई किताबें स्वीकृत न हो सकीं, बल्कि शिक्षकों को पूरी ताकीद की गई कि आपकी पुरानी किताबें भी न पढाई जायँ। परन्तु आप कब हताश होनेवाले थे। आपकी किताबें तो इतनी लोकप्रिय हो उठी थीं कि विरोध में जोरदार आन्दोलन होने पर भी उनकी बाढ न रुकी—न रुकी। कई पुस्तकों की तो पाँच-पाँच लाख प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक गई, और फिर भी जनता की माँग पूरी न हुई, बारबार नये सस्करण निकालने ही पडे।

देखते-ही-देखते आप गरीब मास्टर से लखपती हो गये। जो १५) माहवार पाकर गुजर करते थे, वही अब प्रति मास १५००) अपने नौकरों को तनखाह बाँटने लगे। 'पुस्तक-भडार' टूटी-फूटी झोपडी से उठकर अब सुन्दर भव्य भवन में आ गया।

अधिकारियों की कोपदृष्टि देखकर आपने स्कूली किताबों से कुछ समय के लिये अपना हाथ खींच लिया। अब साहित्यिक पुस्तकों की ओर झुके। चार वर्षों में ही अनेक उत्कृष्ट जीवन-चरित, उपन्यास, गद्य-काव्य, काव्य-ग्रन्थ और कहानी-सग्रह 'भडार' से निकले। हिन्दी-ससार ने उन्हें खूब सराहा। सच्चे हृदय से सभी पत्र-पत्रिकाओं ने प्रशसा की। आपने देखा, अब बिना अपना खास प्रेस हुए काम नहीं चलने का।

सन् १९२८ ई० में आपने अपने 'भडार' में ही विद्यापति प्रेस की स्थापना की। इस प्रेस ने छपाई-सफाई की सुन्दरता से सबको चकित कर दिया। सरस्वती, प्रताप, मतवाला, सम्मेलन-पत्रिका, त्यागभूमि, महारथी आदि हिन्दी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं ने दिल खोलकर एक स्वर से 'भडार' के प्रकाशन और

विद्यापति प्रेस की मुद्रणकला की तारीफ की। सबने यही कहा कि बिहार के लिये यह बिल्कुल नई चीज है। इस तरह बिहार में मुद्रण-कला का गौरव स्थापित करने में भी आपका ही सबसे बड़ा हाथ है।

सन् १९२६ ई० में आपने, पूरी सजधज के साथ, बालकों का सुपरिचित, बाल-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ सचित्र मासिक पत्र, 'बालक' निकाला। हिन्दी-संसार के सभी विद्वानों ने 'बालक' को हृदय से आशीर्वाद और बढ़ावा दिया। प्रवासी भारतवासियों में भी उसकी ख्याति बढ़ने लगी।

कुछ ही सालों के अन्दर आपने साहित्यिक पुस्तकों का ताँता लगा दिया। हिन्दी के धुरन्धर लेखक आचार्य द्विवेदीजी, श्रीपदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, प० अयोध्यासिंह उपाध्याय, प० जनार्दन झा 'जनसीदन', लाला भगवान 'दीन', प० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, श्रीजयशंकर प्रसाद, श्रीशिवपूजन सहाय आदि लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों ने 'भंडार' के साथ सहर्ष सम्बन्ध स्थापित किया।

इसके अतिरिक्त आपने बिहार के कितने ही उदीयमान लेखकों और कवियों को हिन्दी-संसार के समक्ष उपस्थित कर बिहार का यश बढ़ाया, जिनमें प० रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, प० मोहनलाल महतो 'वियोगी', प० हरिमोहन झा एम० ए०, प० रामलोचन शर्मा 'कंटक', एम० ए०, श्रीअच्युतानन्द दत्त, प० जटाधर शर्मा 'विकल' और श्रीचन्द्रमाराय शर्मा के नाम विशेषत उल्लेखनीय हैं। बिहार के आधुनिक गद्य-शैली-निर्माण और साहित्य-प्रचार का जितना श्रेय आपको है, उतना और किसी को नहीं। महाराज-कुमार रामदीन सिंह ने बिहार में हिन्दी प्रचार और हिन्दी-लेखन की जो नींव डाली, आपने उसपर एक सुन्दर इमारत तैयार कर डाली। यही आपका महान गौरव है।

इतना होते हुए भी, नामवरी की कुछ भी परवा न कर, आप चुपचाप अपना काम करते चले जाते हैं—अपनी धुन में मस्त रहते हैं। यदि कोई जरूरत आ पड़ी तो कहीं किसी से मिलने गये, नहीं तो बाहरी दुनिया से कोई सरोकार नहीं। आपने जो काम दस वर्षों में कर दिखाया है, वह पिछली अर्द्ध-शताब्दी में भी बिहार में नहीं हो पाया था। आपके 'पुस्तक-भंडार' ने बिहार के सूने भंडार को भरा-पूरा कर दिया है। इसी महान् कार्य के लिये आपका जन्म हुआ था। इस महत्कार्य को आपने जिस उद्योग, साहस, आत्मबल और अध्यवसाय के साथ पूरा करने की चेष्टा की है, वह सर्वथा अभिनन्दनीय और अनुकरणीय है।

सन् १९२९ में बिहार-सरकार की कृपादृष्टि 'भंडार' पर हुई। आपकी पुस्तकें हर-एक कक्षा में मंजूर होने लगीं। प्राथमिक कक्षा से लेकर एम० ए०

तक में आपकी जो किताबें जारी हैं, उनकी संख्या चालीस से कम न होगी। यह देखकर आप द्विगुणित उत्साह से पाठ्य पुस्तकें तैयार करने लगे।

सन् १९३० में आपने पटना में 'पुस्तक-भंडार' की शाखा खोल दी। वहाँ का 'भंडार' भी खुलते ही चमक उठा। साल-दो-साल बीतते-बीतते बीसियों उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित हो गईं। उनमें कई शिक्षा-विभाग में मंजूर भी हुईं।

छात्रों के प्रति तो आपका अगाध प्रेम है। जिसको आप होनहार और प्रतिभाशाली देखते हैं, उसपर तो आपकी और भी प्रीति जम जाती है। दो छात्रों को तो आपने अपने लड़के की तरह हजारों रुपये खर्च कर पढ़ाया-लिखाया। उन दोनों ने भी योग्यतापूर्वक, सर्वप्रथम होकर, एम० ए० की परीक्षा पास की। उनमें एक हैं पं० रामलोचन शर्मा 'कंटक', जो कलकत्ता के बंगवासी-कालेज में हिन्दी के प्रोफेसर हैं, और दूसरे हैं प्रोफेसर हरिमोहन झा।

अपने गाँव के एक ब्राह्मण छात्र को भी आपने सहायता देकर काशी से ज्योतिषाचार्य की परीक्षा पास कराई। इसके अतिरिक्त छोटे-मोटे निर्धन विद्यार्थियों की जो सहायता आपने रुपयों से, पुस्तकों से और अन्यान्य वस्तुओं से की है, और आजतक करते आ रहे हैं, उन सबका यदि सविस्तर वर्णन किया जाय, तो एक बड़ा-सा पोथा बन जायगा।

आपकी नीति है कि स्वयं भी ऊपर चढ़ें और साथ-ही-साथ औरों को भी ऊपर चढ़ाते चलें। आपका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार है। सामूहिक लाभ के आगे अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को आप कुछ भी नहीं समझते। महापुरुष की यही सच्ची पहचान है। इसी उदार नीति के कारण 'भंडार' के आश्रित लोग आपको कठोर शासक न समझकर पथप्रदर्शक समझते हैं, स्वामी न समझकर हितैषी समझते हैं। सैकड़ों कर्मचारियों की संस्था होते हुए भी 'भंडार' एक परिवार-सा प्रतीत होता है। यहाँ का वातावरण एक आफिस-सा उतना नहीं जान पड़ता जितना एक आश्रम-सा। और-और संस्थाओं में यह बात देखने में नहीं आती।

एक बार 'भंडार' का एक कर्मचारी एक लिफाफा रजिस्ट्री कराने के लिये पोस्ट-आफिस भेजा गया। उस लिफाफे में बीस रुपये के नोट थे। १०) महीना पानेवाले नौकर को लालच ने धर दबाया। उसने चुपचाप नोट निकाल लिफाफे में रद्दी कागज भरकर भेज दिया। जब वहाँ से शिकायत आ पहुँची, और आफिस में जाँच हुई, तब वह नौकर पकड़ा गया। डर के मारे उसने अपना कसूर कबूल कर लिया। अन्त में आपके कानों तक यह बात पहुँची। लोगों ने समझा, अब खैर नहीं, यह पुलिस के सुपुर्द किया जायगा। किन्तु आप मानव-हृदय की दुर्बलताओं से परिचित थे। आपने उस गरीब को अभयदान दे दिया। उसे पूरी तनखाह

देकर ईमानदारी के साथ शेष जीवन बिताने की सलाह दी। वह लज्जित हो अनुताप करता हुआ आपके पैरों पर गिर पड़ा।

एक बार आपको मालूम हुआ कि एक कर्मचारी 'भंडार' की किताबें चुरा चुराकर बेचता आ रहा है। उसकी चोरी साबित हो गई। वह सबके सामने बुलाया गया। आपने उसकी पूरी परिस्थिति जानकर, उसे अपनी ओर से १) और अधिक तनख्वाह देकर, विदा किया। कहा कि आगे पेट न भरे तो मालिक से अधिक माँग लिया करना, इस प्रकार चोरी मत करना। उसकी आँखों में आँसू भर आये। तब से वह आपका बे-दाम का गुलाम बन गया।

किन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि आप 'मामू रशीद' की तरह आवश्यकता से अधिक क्षमाशील और सीधे हैं। आप स्वयं कर्मशील हैं और दूसरों को भी कर्मठ देखना चाहते हैं। अकर्मण्यता के तो आप मानों जानी दुश्मन हैं। आपका सिद्धान्त है—'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।'—'कर्म करते जाओ, अनवरत चेष्टाओं में लगे रहो, फल देनेवाला ईश्वर है।' काम से जी चुराना, खाली बैठकर व्यर्थ की गप्पें हाँकना, और इधर-की-उधर लगाना-बझाना, आपको फूटी आँखों भी नहीं सुहाता। आप चाहते हैं, सब अपने-अपने समय का सदुपयोग करें और उससे लाभ उठावें—खूब जी लगाकर काम करें और झगड़कर अधिक-से-अधिक पैसे लें।

आप सच्चे कर्मयोगी हैं। जिस धुन में लग जायँगे, उसके लिये आकाश-पाताल एक कर डालेंगे। चाहे आँधी हो या तूफान, शान्ति हो या विप्लव, आप नेपोलियन-बोनापार्ट की तरह आगे ही बढ़ते जायँगे, रास्ते में रुक नहीं सकते। इसी में आपकी महत्ता छिपी हुई है।

सङ्कल्प की दृढ़ता और चित्त की एकाग्रता, दोनों शक्तियाँ, मनुष्य को ऊपर उठा देती हैं। ये दोनों बातें आपमें कूट-कूटकर भरी हुई हैं। जिस समय आप अपने काम में लग जाते हैं, उस समय आपकी मुखमुद्रा देखने योग्य रहती है। वह तन्मयता, वह गम्भीरता, वह मनोनिवेश देख बड़े-बड़े साधक भी दंग रह जायँ। जब तक वह काम पूरा नहीं होता, तब तक क्या मजाल कि घर की चिन्ता आपके पास फटक सके। और, जब आप घर के अन्दर पाँव रखते हैं, तब फिर वहीं के हो रहते हैं। उस समय क्या मजाल कि कोई बाहरी झंझट घर की चौखट के भीतर झाँक सके। आपका अपने मन पर इतना नियन्त्रण है कि आप उसे जहाँ लगा देंगे, वहाँ से वह तिल-भर इधर-उधर बहक नहीं सकता। इसी का नाम है कर्मयोग। यही आपकी सबसे बड़ी विशेषता है।

आपने अपनी जन्मभूमि के लिये जो कुछ किया है, वह आदर्श है।

आपकी नस-नस मे मिथिला के लिये प्रेम की धारा प्रवाहित होती है। आपने हजारों का घाटा सहकर भी मिथिला-भाषा की एक मासिक पत्रिका निकाली—मैथिल-कोकिल विद्यापति की पदावली निकाली। मिथिला के प्रति आपका इतना असीम अनुराग है कि अपने प्रेस का नामकरण तक विद्यापति के नाम पर ही किया। पुत्रो का नामकरण भी किया तो वैदेहीशरण, मैथिलीशरण, सीताशरण, सियारामशरण इत्यादि। जन्मभूमि से प्रेम करना कोई आपसे सीखे।

आपने अपनी जाति की उन्नति मे भी खूब हाथ बटाया। सामाजिक सुधार के आप पक्षपाती हैं। आगे बढने की सलाह तो देते हैं, किन्तु सरपट दौडकर नहीं, सोच-समझकर, सँभलकर। रौनियार-वैश्य-जाति को आपसे बढकर भला और कौन सुयोग्य नेता मिल सकता था। उसने एक स्वर से आपको जातीय सभा का मन्त्री चुना। लगभग बीस वर्षों से अपनी जातीय सभा का मन्त्रित्व-भार उठाकर बड़ी कुशलता और तत्परता के साथ आप कार्य-सम्पादन करते आ रहे हैं। आपने अपने खर्च और उद्योग से 'रौनियार-वैश्य' नामक मासिक पत्र निकाला। बरसो आप योग्यता-पूर्वक उसका सम्पादन करते रहे हैं। जातीय सस्थाओ मे, प्रकट रूप से और गुप्त रूप मे, आपने जितना दान किया, उतना यदि दूसरे लोग करते तो चारों ओर ढोल पीटते फिरते।

इन्हीं गुणो की बदौलत आपने लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का पूर्ण प्रसाद प्राप्त किया। किन्तु इतना प्रतिष्ठित और यशस्वी होते हुए भी घमड तो आपको छू तक नहीं गया। आपकी रहन-सहन देखकर कोई भी इस बात का अनुमान नहीं कर सकता कि आप ही लाखों की सम्पत्ति के स्वामी और देश-देशान्तर मे विख्यात 'पुस्तक-भडार' के प्राण हैं। एक धोती और एक कुरता, बस, यही आपकी पोशाक है। अगर कहीं बाहर जाने लगे, तो सिर पर एक टोपी रख ली। पाँवो मे मामूली जूते। यह सादगी देखकर किसे विश्वास हो सकता है कि ये ही वह मास्टर साहब हैं, जो रुपये को रुपया नहीं समझते और मौका पडने पर ठीकरे की तरह उससे खेल सकते हैं।

आपका खान-पान भी वैसा ही सादा है। जिनके नौकर तक कचौरियाँ और रसगुल्ले उड़ाते हैं, वही अपने बालबच्चो के साथ बैठकर, अदरख-नमक के साथ, तर या हरे चने खाने मे ही अधिक स्वाद पाते हैं। जिनके बहुत-से नौकर कलाई में घड़ी बाँधकर बाबू बने पान खाते हुए सैर को निकलते हैं, वही अपने हाथ से पानी खींचकर नाली तक साफ करने में अपनी हेठी नहीं समझते। बड़प्पन इसी का नाम है।

आपका पारिवारिक जीवन भी वैसा ही सुन्दर, सात्त्विक और सुखमय है।

रायसाहब श्रीरामलोचनशरणजी (मास्टर साहब) का परिवार

रायसाहब श्रीरामलोचनशरणजी की बड़ी लड़की अपनी नवजात कन्या के साथ

अपने जीवन के प्रथम भाग में, जब आप मास्टर साहब थे, आपकी प्रथमा पत्नी सरस्वती-रूप में मौजूद थीं। अब जीवन के द्वितीय भाग में, जब आप 'भंडार' के अधिपति हैं, आपकी द्वितीया पत्नी लक्ष्मी के रूप में मौजूद हैं। ऐसी आदर्श गृहिणी पाना पुराकृत पुण्य का ही फल कहा जा सकता है। उनमें ऐसी शासन-क्षमता है कि आपकी अनुपस्थिति में भी गृह-प्रबन्ध में शिथिलता नहीं आने देतीं।

आपने अपने कर्त्तव्य को खूब निबाहा। ईश्वरीय आदेश का पालन करने में कोई कोर-कसर न की। इसका फल भी आपको भगवान् की कृपा से मिल गया है। जो कभी 'मास्टर साहब' थे, आज 'रायसाहब' हैं। जो कभी दस आने भाड़े के मकान में रहते थे, आज सुबह-शाम दस हजार का वारा-न्यारा किया करते हैं। यदि किसी स्वतंत्र देश में आप होते, तो नार्थक्लिफ और कार्नेगी की तरह सार्वजनिक सम्मान पाते। फिर भी, बिहार के स्वनामधन्य साहित्यसेवी बाबू रामदीनसिंह और दानवीर बाबू लंगटसिंह के साथ आपका नाम भी सदियों तक इस प्रान्त के इतिहास में अमर रहेगा।

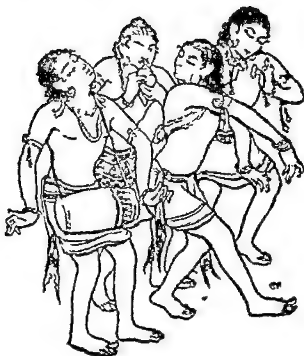

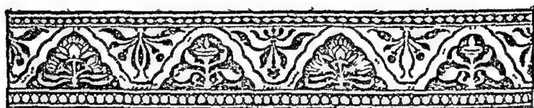

हिन्दी-संसार की अमर कीर्त्ति

(स्वर्गीय) प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र 'विप्रचन्द्र'

बाबू रामलोचनशरण एक प्रतिभाशाली एवं उन्नतिशील पुरुष हैं। आपका सर्वप्रथम एक व्याकरण मैंने देखा। उसे आपने रायसाहब राजेन्द्रप्रसादजी (भूतपूर्व हेडमास्टर, पटना-नार्मल-ट्रेनिंग-स्कूल) के द्वारा मुझे देखने तथा उसपर सम्मति देने के लिये दिया। मुझे वह पुस्तक बहुत ही अच्छी जँची। मैंने सम्मति भी बहुत अच्छी लिखी। यही मेरा-आपका सर्वप्रथम परस्पर-परिचय है। यह घटना सन् १९०३ ई० की है।

अब आपने पुस्तकें लिखने का कार्य आरम्भ किया और अनेक उपयोगी पाठ्य पुस्तके लिखकर यश तथा धन प्राप्त किया। धीरे-धीरे आपके पास एक पुस्तक-भंडार तैयार हो गया। क्रमशः इसका कलेवर ऐसा बढ़ा कि यह पूर्वोक्त नाम से प्रसिद्ध हो चला। इससे आपका उत्साह बढ़ा। आपने लहेरियासराय के अतिरिक्त पटना नगर में भी एक पुस्तक-भंडार स्थापित करने का विचार किया।

सन् १९२७ ई० में मैंने पटना के लालबाग महल्ले में एक मकान बनवाया और उसमें रहना प्रारम्भ किया। इसी अवसर में आप आये और मेरे पड़ोस ही में एक छोटा-सा मकान लेकर रहने लगे। आपने मुझसे अपना मनोगत भाव प्रकट किया और गोविन्दमित्र-रोड पर एक विशाल भवन भाड़े में लेकर पुस्तक-भंडार का स्थापन किया। यहाँ पाठ्य पुस्तकें निकने लगीं और चारों ओर पुस्तक-भंडार की प्रसिद्धि बढ़ने लगी। मेरा भी पुस्तक-भंडार में विशेषतः आने-जाने का कार्य प्रारंभ हुआ। कारण यह कि नई-नई पुस्तकें पढ़ने की लालसा मेरी चिरसंगिनी है।

अब पुस्तक-भंडार के स्वामी तथा कर्मचारियों से मेरा पूरा परिचय हो गया। मैंने अनुभव किया कि बाबू रामलोचनशरणजी की मुझपर कृपा बढ़ती जाती है। ऐसे ही सुअवसर में मेरे हृदय में स्वार्थ सिद्ध करने का लोभ उत्पन्न हुआ। मैंने निज-रचित 'दुर्गादत्त परमहंस' नामक ग्रंथ प्रकाशित करने के लिये

आपको दिया। आपने सहर्ष स्वीकार कर उसे प्रकाशित किया। आपपर मेरी प्रीति और श्रद्धा विशेष बढ़ गई। अनन्तर आपने मेरा 'कृष्णकीर्त्तन' नामक दोहा-छंदोबद्ध काव्य भी बड़े उत्साह से प्रकाशित किया।

'पुस्तक-भंडार' का कलेवर बढ़ता गया और आपकी—स्वतंत्र निज भवन बनवाकर उसमें पुस्तक-भंडार को स्थापित करने की—लालसा बढ़ती गई। भक्तों के मनोरथ को पूर्ण करनेवाले दशरथनंदन, कौसल्या-हृदय-चंदन, जानकी-जीवन की असीम अनुकम्पा से गोविन्दमित्र-रोड में एक बहुत प्रशस्त भूमि मिल गई और आपने पंद्रह हजार रुपये देकर उसे खरीद लिया। उसी में उपयोगी भवन का निर्माण कराकर 'पुस्तक-भंडार' का स्थापन किया। इस 'भंडार' की प्रसिद्धि दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती गई और बढ़ती जा रही है। इसी अवसर में गंगालहरी, गंगाष्टक, लेखमणिमाला, आत्मचरितचम्पू—मेरी चार पुस्तकें प्रकाशित हुईं।

मैं अध्ययनशील पुरुष हूँ। पुस्तकाध्ययन बिना जीवन व्यर्थ जान पड़ता है। 'पुस्तक-भंडार' से मेरे अध्ययन में बड़ी सहायता पहुँची है। कारण यह कि यहाँ से सदा नई-नई साहित्यिक पुस्तकें प्रकाशित होती रहती हैं।

मासिक पुस्तकें पढ़ना भी मुझे बहुत पसंद है। 'भंडार' से बाबू रामलोचन-शरण के द्वारा सुसम्पादित होकर 'बालक' प्रकाशित होता है। आपकी सम्पादन-शैली बहुत ही मनोहर है। लेखों के चुनाव में आप बड़ी दूरदर्शिता से काम लेते हैं। आपका विचार स्वतंत्र और गम्भीर है। आप द्विवेदीजी की श्रेणी के सम्पादकों में हैं। बालक-सम्बन्धी जितने पत्र हैं, सबमें 'बालक' उत्तम और सर्वांगसुन्दर है, इसको सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं। इसके साधारण अंक भी विशेषांक के समान होते हैं। इसके द्वारा सर्वसाधारण में हिन्दी का बहुत प्रचार हुआ है, बालकों में हिन्दी पढ़ने की रुचि बढ़ी है। इसका बहिरंग नयनाभिराम तथा अंतरंग हृदयाभिराम है। पत्र सर्वप्रकार श्रेष्ठ है। इसके सम्पादक का स्वभाव नम्र, उदार, दयालु, सहनशील, शान्त, परोपकारनिरत, परदुःखकातर, गुणग्राही तथा उत्साहपूर्ण है।

आपकी उदारता का परिचय मुझे कई बार मिल चुका है। १९२७ ई० में मैंने लालबाग महल्ले में एक विशाल भवन बनवाया। उसमें पूर्व-सङ्कल्पित विचार से बहुत अधिक खर्च पड़ गया। तकाजावालों से जी ऊब गया। कई मित्रों से सहायता के लिये प्रार्थना की, किन्तु सभी व्यर्थ—कारण यह कि बहुत बड़ी रकम थी। अन्त में विवश होकर मैंने आपसे प्रार्थना करने का साहस किया। उस समय आपसे बहुत ही साधारण परिचय था। मैंने लहेरियासराय में आपके पास पत्र लिखकर अपना अर्थसंकट प्रकट किया। आपने दूसरे ही दिन आकर मेरा

संकट दूर कर दिया । धन्य है आपकी उदारता ! आपके जन्म से वैश्यकुल गौरवान्वित हुआ है ।

जब मैं रोगी हो गया और दवा-दारू में विशेष खर्च हो गया, अर्थ की संकीर्णता हो गई, उस समय भी आपने अच्छी सहायता की और फिर कभी लौटाने का नाम भी नहीं लिया ।

एक बार मेरा विचार सीतामढी और जनकपुर देखने का हुआ । साथ ही यह भी इच्छा हुई कि मैं लहेरियासराय का पुस्तक-भंडार तथा प्रेस आदि भी देखूँ । मेरे साथ मेरी धर्मपत्नी और सहोदर मँझले भाई थे । हमलोग आपके घर पर उतरे, जिससे आपको अपार हर्ष हुआ । आपने आशातीत सत्कार किया । चलने के समय आपने ऐसी पूजा दी जिससे आपकी महती उदारता का परिचय मिलता है ।

आपके पूज्यपाद पिताजी का स्वर्गवास हो गया है । आपने उनका नाम अमर करने के लिये एक संस्कृत-पाठशाला का स्थापन किया है । उसमें भू-सम्पत्ति सम्मिलित कर सरकार को समर्पित कर दिया है जिससे वह चिरस्थायी हो । आपके हाथ से लेखकों तथा कवियो का सदा सत्कार होता रहता है, इसलिये वे सदा आपके वशीभूत रहते हैं । प्रेस तथा भंडार के कर्मचारी आपके सद्व्यवहार से सदा प्रसन्न रहते हैं ।

आप और आपका पुस्तक-भंडार हिन्दी-संसार की अमर कीर्त्ति हैं ।

वास्तव मे उस समय जितना ये पढ़ने में तीव्र थे, उतना ही डरते भी थे। लडका पकडना ही उस समय हमारा काम था। अन्य लड़के जो सजा पाते थे उसे देखकर ही ये थरथर कॉपना शुरू कर देते थे—प्यास की भी नौबत आ जाती थी। कभी तो इस प्रकार नटखटपन करते थे कि हमें देखते ही घर के दूसरे दरवाजे से बाहर निकल जाते थे। अपनी पितामही के ये अधिक दुलारे थे। उस समय वही घर की मुखिया थीं। इनको तो वे उचित शिक्षा देकर सतोष देती थीं, लेकिन हमसे कहती थीं कि यह आज बहुत रोता था।

जिस दिन ये स्कूल पढने नहीं जाते थे उस दिन गो-सेवा मे लग जाते थे। उस समय ये रट्टूमल नहीं थे, कुशाग्रबुद्धि थे। घर पर किताब नहीं पढते थे, लेकिन अपना पाठ कभी अधूरा नहीं रखते थे। हिसाब इनका बहुत अच्छा था। प्राय सभी विषयों में ये बहुत तेज थे।

आत्माभिमान इनमें कूट-कूटकर भरा था। गॉव मे तिवारी-खानदान सब दिनो से धनी था। उस घराने के लडके भी स्कूल में पढते थे। पर ये ऐसा कभी नहीं समझते थे कि हम गरीब हैं। उनलोगों से झगडा और बराबरी करने मे भी ये कभी हिचकते न थे।

पढने मे अच्छा रहने का फल यह हुआ कि इन्हे अपर-प्राइमरी से ही स्कॉलरशिप मिला। उसके बाद ये शिवहर (मुजफ्फरपुर) पढने चले गये।

श्रीरामलोचनशरण का औदार्य

प० जनार्दन झा 'जनसीदन', कुमरवाजितपुर (मुजफ्फरपुर)

लगभग बीस वर्ष पहले की बात है। मैं दरभगा-राज-प्रेस के साप्ताहिक 'मिथिलामिहिर' का प्रधान सम्पादक था। उसी समय एक घटना हुई। जिला-स्कूल के एक हिन्दी-शिक्षक ने मास्टरी छोडकर साहित्याराधन के क्षेत्र में प्रवेश किया। देखते-ही-देखते वे साहित्यिकों के मास्टर बन गये। वही हैं श्रीरामलोचनशरणजी, जो समस्त बिहार में विशेषत 'मास्टर साहब' के नाम से विख्यात हैं। उक्त घटना देखने मे छोटी थी, किन्तु वह युगान्तरकारी सिद्ध हुई। अब तो वह ऐतिहासिक महत्त्व की चीज हो गई है।

इनके पूर्वज * ऐतिहासिक पुरुष थे। ये पश्चिम प्रदेश से आकर मिथिला मे बस गये। इनका 'राघाउर' गाँव दरभगा-राज्य के अधीन है।

उस समय 'मास्टर साहब' एक छोटे-से खपरैल मकान में रहते थे। उसी किराये के छोटे मकान में बिहार का भावी साहित्यिक इतिहास बन रहा था।

इनके 'हिन्दी-व्याकरण-चन्द्रोदय' ने इनके सुयश का आलोक दिग्दिगन्त में फैला दिया। इनकी पुस्तके इतनी लोकप्रिय हुई कि इनका नाम साहित्य-क्षेत्र म चमक उठा। विशेषत बाल-साहित्य के आकाश मे तो ये पूर्णचन्द्र के समान उदित हो उठे।

* इनके पूर्वज मेवात (राजपूताना) से आकर सहसराम (शाहाबाद) में बसे थे। उनमें मधुशाह का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिनके नाम से 'मधुशाही पैसा' चलता था। इन्हीं के पुत्र 'हेमू' थे जो इतिहास-प्रसिद्ध सूर-वंश के शासन से सम्बन्ध रखते हैं। सहसराम के बाद मास्टर साहब के पूर्वज भोजपुर (शाहाबाद) में आकर बस गये और बाबू कुँवरसिंह के जगदीशपुर-दरबार के आश्रय में रहने लगे। सन् सत्तावन के गदर के समय से ये लोग मुजफ्फरपुर जिले में आकर रहने लगे।—लेखक

अपने संकल्प के अनुसार फिर दूसरे महीने में भी मैंने २५) इनके पास भेजा। अबकी बार इन्होंने रुपया न लेकर मनीआर्डर वापस कर दिया और पत्र लिखा कि रुपये के बदले कोई सुपाठ्य पुस्तक लिख दीजिये, रुपया मत भेजिये।

इनकी ऐसी उदारता देखकर मैं मुग्ध हो गया। मन में कहा, साहित्य से इतना प्रगाढ़ प्रेम रखनेवाला और साहित्य-सेवियों पर इतनी दया दिखलानेवाला व्यक्ति और कौन मिलेगा ?

जब मैं श्रीनगर (पूर्निया) के दरबार में था, तब (१९०६ में) महाकवि विद्यापति के नीति-विषयक 'पुरुष-परीक्षा' ग्रन्थ का हिन्दी-गद्य-पद्य में अनुवाद करने लग गया था। इनके उदार विचार ने अब मुझे उसे पूरा करने को प्रोत्साहित किया। इन्होंने सहर्ष उसे छपवा डाला और ऋण-बंधन से मुझे मुक्त कर दिया। बाद इन्होंने मुझसे और भी पुस्तकें लिखवाईं और तदर्थ उचित पुरस्कार भी दिये।

× × × ×

सन् १९२३ में लहेरियासराय में कचहरी के समीप 'गोल कोठी'* खरीदी गई, जिसके साथ बहुत बड़ा हाता था। उसी में 'भंडार' का कारबार चलने लगा। कलकत्ता से मशीनें मँगवाई गईं। विद्यापति प्रेस खुल गया। विद्यापति-पुस्तकालय भी खुला। सुन्दर 'बालक' पत्र का भी प्रादुर्भाव हुआ। सुरुचिपूर्ण सम्पादन, आकर्षक चित्र, नयनाभिराम छपाई, शिक्षित समाज में सर्वत्र उसकी प्रशंसा होने लगी। इस प्रकार 'भंडार' का सर्वत्र आदर होते देख इन्होंने पटना में भी जमीन खरीदकर 'भंडार' की शाखा खोल दी।

× × × ×

सार्वजनिक संस्थाओं को दान देने में आप सर्वदा अग्रसर रहे हैं। बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को भवन बनाने के लिये जमीन खरीदने में आरम्भिक सहायता देकर आपने उसे चिरऋणी बना लिया। देशोपकारी, धार्मिक तथा जातीय कार्यों में भी आपने हजारों रुपये दान दिये हैं।

* जनवरी १९३४ ई० में भयंकर भूकम्प होने से यह गोल कोठी भूमिसात् हो गई, जिसमें हजारों रुपये का सामान नष्ट हो गया। परन्तु इस दैवी दुर्घटना से शरणजी जरा भी विचलित नहीं हुए। जो मकान मरम्मत के लायक था उसकी मरम्मत करवा दी और एक बहुत बड़ी इमारत सड़क के पास बनवा दी, जिसके बनने में कम से कम दो वर्ष समय लगा। यह सर्वाङ्गसम्पन्न होकर आज पथिकजनों के मन को अपनी ओर खींचती है। विशाल भवन की शोभा देख दर्शकों के नेत्र अँटक जाते हैं। आज बिजली के पंखों और बिजली-बत्तियों से यह जगमगा रहा है। अब उसीमें 'भंडार' के काम हो रहे हैं।—लेखक

पुस्तक-भंडार से साहित्यसेवी और विद्वान् जितना उपकृत और सत्कृत हुए हैं, उतना बिहार की दूसरी किसी भी साहित्यिक संस्था से नहीं। बिहार के इस गौरवान्वित 'भंडार' की यह उदारता सर्वथा प्रशंसनीय है।

इस रजत-जयन्ती-महोत्सव के शुभावसर पर हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह भंडार को सर्वदा उन्नतिशील और चिरस्थायी रक्खे तथा श्रीरामलोचनशरणजी दीर्घजीवी होकर साहित्यिकों के लिये आधुनिक भोज बने रहें।

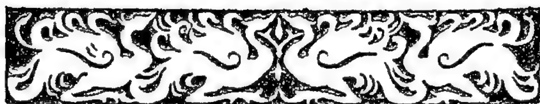

साहित्य के तीर्थ-स्थान में

स्वामी भवानीदयाल सन्यासी, जेकब्स, नेटाल, दक्षिण अफ्रिका

वर्षों से 'पुस्तक-भडार' का नाम सुन रहा था। उसके द्वारा स्वदेश भ हिन्दी-साहित्य की जो अभिवृद्धि हुई है, उससे भी परिचित था। उसके प्रवर्त्तक भाई रामलोचनशरण बिहारी ने हिन्दी-साहित्य-भडार को अनमोल रत्नों से अलकृत करने के लिये जो आत्मोत्सर्ग किया है, उसके प्रति मेरे हृदय में श्रद्धा भी जम गई थी। किन्तु अबतक न 'भडार' को देखा था और न उसके प्रवर्त्तक को। देखने की बडी लालसा थी, किन्तु वह पूर्ण नहीं होने पाती थी।

जब सन् १९३१ मे मेरे बिहारी भाइयो ने मुझे दशम बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (देवघर) का सभापति चुना तब मेरी यह लालसा बलवती हो उठी कि बिहार की प्रमुख हिन्दी-सस्थाओ और विशेषत 'भडार' को देखना चाहिये। उस समय मैं पटना मे साप्ताहिक 'आर्यावर्त्त' का सम्पादन कर रहा था। किन्तु दक्षिण-अफ्रिका के प्रवासी भारतवासी भाइयो की स्थिति ऐसी भयावह हो उठी कि मुझे अपनी सारी आकाक्षाओ का दमन करके वहाँ जाना ही पडा।

सन् १९३६ मे जब मैं फिर भारत गया और बिहार पहुँचा तब 'भडार' का स्मरण आये बिना न रहा। लेकिन उस समय भी प्रवासियो के प्रश्न के सामने और किसी काम के लिये अवकाश निकालना कठिन था। सच तो यह है कि इधर राजनीतिक झमेले में पडकर मैं साहित्य की ओर से पराङ्मुख हो रहा हूँ।

सन् १९३९ मे मैं पृथक्करण कानून (Segregation Bill) के विरुद्ध आन्दोलन करने के लिये, दक्षिण-अफ्रिका के हिन्दुस्थानियो का प्रतिनिधि बनकर, भारत पहुँचा। बम्बई, दिल्ली, आगरा, अजमेर, कलकत्ता आदि का पर्यटन करते

हुए बिहार पर दृष्टि पड़ी। सबसे पहले मुझे 'भंडार' याद हो आया। उस समय भी मुझे बिल्कुल अवकाश न था। फिर भी मैं 'भंडार' को भूला न था। उसकी शक्ति बरबस मुझे अपनी ओर खींचने लगी। मैंने निश्चय कर लिया कि इस बार बिहार में सबसे पहले लहेरियासराय जाऊँगा। इस चिरपोषित अभिलाषा का दमन करना अब कठिन हो गया।

मैंने कलकत्ता से लहेरियासराय के लिये कूच कर दिया। गंगा पार कर उत्तरीय बिहार के सौन्दर्य की छटा निहारते हुए ठीक समय पर वहाँ पहुँच गया। स्टेशन पर 'भंडार' के अनेक कर्मचारी उपस्थित थे, जिनमें केवल भाई शिवपूजन सहाय और वैदेहीशरण को ही मैं पहचान सका। शिवपूजन बाबू ने सब भाइयों से परिचय करा दिया। गाड़ी से उतरते ही मैंने सबसे पहले 'मास्टर साहब' की तलाश की। मुझे यह जानकर निराशा हुई कि वे पटना गये हुए हैं। मुझे यह आशा दिलाई गई कि वे आज-कल में ही वापस आ जायँगे।

मैं थका-माँदा 'भंडार' के प्रसिद्ध चित्रकार श्री उपेन्द्र महारथी के बँगले पर पहुँचा। तीन दिन वहीं आसन रहा। महारथीजी की शक्ल-सूरत देखकर मैं यह कल्पना भी न कर सका कि वे बिहार के एक ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने अपनी कृतियों से स्वदेश का मुख उज्ज्वल किया है। महारथीजी का स्वभाव जैसा नम्र है, हृदय भी वैसा ही कोमल है। उनमें श्रेष्ठ कलाकार के सभी गुण विद्यमान हैं। यदि वे यूरोप या अमेरिका में पैदा हुए होते, तो आज संसार उनकी कृतियों का आदर किये बिना नहीं रहता। यदि उनको अनुकूल अवसर मिला होता तो भारतीय कलाकारों में उनका अपना एक स्थान होता। संतोष इतना ही है कि मास्टर साहब ने इस होनहार कलाकार को पहचाना और इसकी कलाओं से अपने 'भंडार' को सजाया। इस कलाकार के लिये मेरे हृदय में स्नेह-भाव उत्पन्न हो गया है और मैं उसकी कला का पुजारी बन गया हूँ। मेरा तो यह खयाल है कि इस कलाकार को उत्साह और सहायता देकर विशेष अध्ययन के लिये विदेश भेजना चाहिये, ताकि यह अपनी कृतियों से भारत माता की अधिकाधिक मानवृद्धि कर सके। तथास्तु।

महारथीजी के बँगले, मेरे आराम की यथेष्ट व्यवस्था थी। वातावरण में कला की छाप थी। वास्तव में महारथीजी 'भंडार' के गौरव और गर्व हैं। महारथीजी और शिवपूजन बाबू को 'भंडार' की छत्रच्छाया में पाकर मैं समझ गया कि मास्टर साहब कैसे नर-रत्न पारखी हैं। अभीतक उनसे भेंट नहीं हुई थी, किन्तु उनकी बुद्धिमत्ता और कार्य-कुशलता की धाक मुझपर जम गई।

हुए बिहार पर दृष्टि पड़ी। सबसे पहले मुझे 'भंडार' याद हो आया। उस समय भी मुझे बिल्कुल अवकाश न था। फिर भी मैं 'भंडार' को भूला न था। उसकी शक्ति बरबस मुझे अपनी ओर खींचने लगी। मैंने निश्चय कर लिया कि इस बार बिहार में सबसे पहले लहेरियासराय जाऊँगा। इस चिरपोषित अभिलाषा का दमन करना अब कठिन हो गया।

मैंने कलकत्ता से लहेरियासराय के लिये कूच कर दिया। गंगा पार कर उत्तरीय बिहार के सौन्दर्य की छटा निहारते हुए ठीक समय पर वहाँ पहुँच गया। स्टेशन पर 'भंडार' के अनेक कर्मचारी उपस्थित थे, जिनमें केवल भाई शिवपूजन सहाय और वैदेहीशरण को ही मैं पहचान सका। शिवपूजन बाबू ने सब भाइयों से परिचय करा दिया। गाड़ी से उतरते ही मैंने सबसे पहले 'मास्टर साहब' की तलाश की। मुझे यह जानकर निराशा हुई कि वे पटना गये हुए हैं। मुझे यह आशा दिलाई गई कि वे आज-कल में ही वापस आ जायँगे।

मैं थका-माँदा 'भंडार' के प्रसिद्ध चित्रकार श्री उपेन्द्र महारथी के बँगले पर पहुँचा। तीन दिन वहीं आसन रहा। महारथीजी की शक्ल-सूरत देखकर मैं यह कल्पना भी न कर सका कि वे बिहार के एक ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने अपनी कृतियों से स्वदेश का मुख उज्ज्वल किया है। महारथीजी का स्वभाव जैसा नम्र है, हृदय भी वैसा ही कोमल है। उनमें श्रेष्ठ कलाकार के सभी गुण विद्यमान हैं। यदि वे यूरोप या अमेरिका में पैदा हुए होते, तो आज संसार उनकी कृतियों का आदर किये बिना नहीं रहता। यदि उनको अनुकूल अवसर मिला होता तो भारतीय कलाकारों में उनका अपना एक स्थान होता। संतोष इतना ही है कि मास्टर साहब ने इस होनहार कलाकार को पहचाना और इसकी कलाओं से अपने 'भंडार' को सजाया। इस कलाकार के लिये मेरे हृदय में स्नेह-भाव उत्पन्न हो गया है और मैं उसकी कला का पुजारी बन गया हूँ। मेरा तो यह खयाल है कि इस कलाकार को उत्साह और सहायता देकर विशेष अध्ययन के लिये विदेश भेजना चाहिये, ताकि यह अपनी कृतियों से भारत माता की अधिकाधिक मानवृद्धि कर सके। तथास्तु।

महारथीजी के बँगले, मेरे आराम की यथेष्ट व्यवस्था थी। वातावरण में कला की छाप थी। वास्तव में महारथीजी 'भंडार' के गौरव और गर्व हैं। महारथीजी और शिवपूजन बाबू को 'भंडार' की छत्रछाया में पाकर मैं समझ गया कि मास्टर साहब कैसे नर-रत्न पारखी हैं। अभीतक उनसे भेंट नहीं हुई थी, किन्तु उनकी बुद्धिमत्ता और कार्य कुशलता की धाक मुझपर जम गई।

शिवपूजन बाबू से मिलकर तो मेरे आनंद की सीमा न रही। 'भंडार' के वे अनमोल रत्न हैं और 'भंडार' की उनपर अनुपम छत्र-छाया है।

उसी दिन शिवपूजन बाबू और महारथीजी को पटना जाना था—राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद का आदेश पाकर। बिहार ही (रामगढ) में राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का महाधिवेशन होनेवाला था, जिसमें सभी बिहारियों के सहयोग की आवश्यकता थी। प्राचीन और अर्वाचीन बिहार को चित्रों में चित्रित करना था, उसके लिये महारथीजी की जरूरत थी, और बिहार का एक बृहत् इतिहास छपवाना था, उसमें शिवपूजन बाबू की सहायता आवश्यक थी। दोनों भाई पटना चले गये, किन्तु वचन दे गये कि दूसरे दिन अवश्य लौट आवेंगे। मुझे वैदेहीशरणजी की देख-रेख में छोड़ गये। इन्होंने बड़े प्रेम और लगन से मेरी सेवा की। इनके साथ दत्तजी भी साहित्य-चर्चा से मेरा बडा मनोरंजन करते थे। सचमुच सहकारी 'बालक'-सम्पादक श्रीअच्युतानंद दत्त हिन्दी और संस्कृत तथा मैथिली के प्रकांड पंडित हैं।

दूसरे दिन भाई रामलोचनशरणजी के दर्शन हुए। आप ही 'पुस्तक-भंडार' और 'बालक' के शरीर, हृदय और आत्मा हैं। आप ठीक वैसे ही मिले जैसे कोई अपने बिछुडे भाई से बहुत दिनो पर मिलता है। उस मिलन की स्मृति मेरे हृदय में सदा सुरक्षित रहेगी। जब मुझे यह मालूम हुआ कि आप भी पूर्वज-परम्परा के अनुसार आरा (शाहाबाद) जिले के ही एक रत्न हैं, तब तो मेरे हर्ष की सीमा न रही। आपकी मंजुल मूर्त्ति को देखते ही आपकी सेवाओं की जीती-जागती तसवीर मेरी आँखों के सामने आ गई।

मास्टर साहब बिहार की एक ऐसी विभूति हैं, जिनपर हम गर्व से मस्तक उठा सकते हैं। राष्ट्रभाषा के चरणों पर उन्होंने सर्वस्व निछावर कर दिया है। हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि करके उन्होंने मातृभूमि की जो महान् सेवा की है, उसके सामने श्रद्धा से हमारा सिर झुक जाता है। उनके कार्यों का विवरण वास्तव में बिहार के हिन्दी-साहित्य के इतिहास का एक अनुपम अध्याय है।

मैंने मास्टर साहब को अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से देखा, किन्तु उनमें व्यापारिक भावनाओं का पता न चला। मैंने बहुत ढूँढ़ा, खूब टटोलकर देखा, फिर भी उनको विशुद्ध साहित्यिक ही पाया। मुझे तो ऐसा प्रतीत हुआ कि साहित्य ही उनका धर्म, कर्म और भगवान् है।

साहित्य की रचना और प्रकाशन के लिये साधन की आवश्यकता होती है। उसी साधन का नाम है रुपया। किन्तु साधन को उन्होंने साध्य नहीं बनाया, केवल अर्थोपार्जन की दृष्टि से उन्होंने इस व्यवसाय को नहीं अपनाया।

वे जन्म से वैश्य हैं सही, किन्तु उनके कर्म में ब्राह्मणवृत्ति और वैश्यवृत्ति का अनुपम सम्मिश्रण है। जहाँ उन्होंने स्वय साहित्य की सृष्टि और सेवा की है, वहाँ दूसरों को भी सहायता और प्रोत्साहन देकर वैसा ही करने का अवसर दिया है। उनके अन्दर एक ऐसा दिल है जिसमें देश के लिये दर्द है और उसी का प्रतिबिम्ब है—'पुस्तक-भडार'।

मास्टर साहब और उनके 'पुस्तक-भडार' के विरुद्ध उस समय एक तूफान-सा मचा हुआ था। उनपर यह आक्षेप किया जा रहा था कि वे हिन्दुस्तानी के अग्रदूत बन रहे हैं। लेकिन जहाँ तक मैंने उनको समझा है—विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि यह आक्षेप निराधार ही नहीं, निन्दनीय भी है।

मास्टर साहब ने मुझे 'भडार' के भिन्न-भिन्न भाग दिखलाये। विशाल छापाखाना देखा, गोदाम देखा, पुस्तकों का थोक देखा, 'बालक' और 'भंडार' के दफ्तर देखे। सब कुछ देख-सुनकर जब मास्टर साहब के खास दफ्तर में आया तब वहाँ दीवार पर टँगी हुई तसवीरों पर मेरी आँखें अटक गईं। बिहार के सभी प्रमुख साहित्य-सेवियों के बडे आकार के सुन्दर चित्र थे। उनमें अपना भी एक चित्र देखकर मुझे बडा ही सकोच हुआ। वास्तव मे न मैं साहित्यिक हूँ और न भाषा-विज्ञान का मर्मज्ञ ही। किन्तु जिस प्रकार प्रवासी भारतवासी हिन्दी-प्रेमी होने के कारण ही मैं अखिलभारतीय हिन्दी-सम्पादक-सम्मेलन (कलकत्ता) और बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति के आसन पर बैठाया गया, शायद उसी प्रकार मास्टर साहब ने मुझे बिहार का एक हिन्दी-सेवक मानकर वहाँ स्थान दे दिया था।

मास्टर साहब के स्वभाव का मुझपर गहरा असर पड़ा। उनकी योग्यता और अनुभव का मैं कायल हो गया। 'भडार' के अन्य कर्मचारियों ने भी अपने प्रेम का परिचय देकर मुझे मोह लिया।

लहेरियासराय से प्रस्थान करने से पहले मैंने शिवपूजन बाबू के घर पर जाकर भोजन करने की ठान ली, क्योंकि वे प्रति दिन भोजन तैयार कराकर महारथीजी के बँगले पर भेज दिया करते थे और यह बात मुझे बहुत खटक रही थी। वे एक झोपडे में रहते थे और वहाँ मुझे ले जाने में सकोच करते थे। अन्त मे मेरे हठ के सामने उनको झुक जाना पडा। उस दिन उनकी देवीजी के हाथों से प्रसाद पाकर मैं तृप्त हो गया और उनके बच्चों का स्नेह पाकर और भी अघाया।

'पुस्तक-भडार' से मुझे जो दक्षिणा मिली थी वह मेरे पुस्तकालय की अमूल्य सम्पत्ति है। मैं वहाँ विश्राम करने के लिये गया था, किन्तु अन्तिम दिन स्थानीय कांग्रेस-कमिटी के अनुरोध से, कांग्रेस-आश्रम के मैदान मे, सार्वजनिक

सभा में व्याख्यान देना पड़ा। इस प्रकार तीन दिन इस साहित्यिक तीर्थ में बिताकर मैं राजनीतिक क्षेत्र मे आग के लिये प्रस्थान किया।

आज मैं समुद्र-पार विदेश में बैठा हूँ, फिर भी मास्टर साहब, शिवपूजन सहाय, महारथीजी, अच्युतानन्द दत्तजी तथा 'भंडार' के अन्य कर्मचारियों की प्रेम-पूर्ण प्रतिमाएँ मेरे सामने हैं। वहाँ की स्नेहमयी स्मृतियाँ न अबतक भूली हैं और न कभी भूल ही सकती हैं।

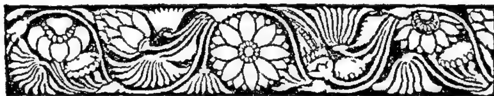

सुदामा के कृष्ण

अध्यापक श्रीरामदास राय, अशोकाश्रम, गाजीपुर (युक्तप्रान्त)

'स जातो येन जातेन याति वंश समुन्नितम्'—इस संसार मे उसी का जन्म लेना सार्थक है जिससे वंश उन्नति प्राप्त करे।

आज लहेरियासराय में एक भव्य भवन खड़ा है और उसमें कितने ही जीव अपना निर्वाह कर रहे हैं। उसे जिस माई के लाल ने वहाँ खड़ा कर दिया है, वह सन् १८९७ में—मेरे इन्ट्रेंस पास कर लेने पर हेडमास्टर होने के बाद—अपने पिता के द्वारा, मेरे पास, शिवहर (मुजफ्फरपुर) के मिड्ल इंगलिश स्कूल में लाया गया। उसकी अवस्था उस समय दस-बारह वर्ष की रही होगी। देखने मे लडका हृष्ट-पुष्ट और प्रसन्न मालूम पडा। अपर पास कर मिड्ल में पढने आया था। 'होनहार विरवान के होत चीकने पात' उसके देखने से कहावत चरितार्थ होती जान पड़ती थी। वह अपनी धुन का पक्का जान पडता था। साधारण स्थिति के पिता के लड़के में सादगी होनी ही चाहिये, वह उसमें भरपूर थी।

पिता उसके यद्यपि बहुत साधारण स्थिति के आदमी थे, तथापि धर्म-कर्म में उनकी प्रबल निष्ठा थी। माँ भी किसी तीर्थ-यात्रा से—संभवत वाराह-क्षेत्र से—लौटी थीं जब मैं संयोगवश लहेरियासराय पहुँचा था। माँ-बाप दोनों धार्मिक प्रवृत्ति के थे। पुत्र है ही क्या, माता-पिता के भावों का सम्मिश्रण। धार्मिक भाव उस समय रामलोचन में अंकुर-रूप से रहे, पीछे पल्लवित हुए हैं।

बालक रामलोचन को लड़के तंग करते थे, पर रामलोचन उनसे बदला लेना नहीं जानता था—अपना काम करता जाता था। जो लड़के अपर पास कर

आते थे, वे दो वर्षों में मिड्ल इगलिश तभी कर सकते थे जब तेज होते थे। राम-लोचन ने यह काम आसानी से कर लिया।

उस समय रामलोचन के लिये 'हजारी गाछी'—हजार पेड़ों वाला आम का बागीचा, जो स्कूल के पास था—दौड़-धूप और खेल-कूद की जगह थी, और शिवहर के राजा साहब का दिव्य दरबार देखने-सुनने की वस्तु था।

रामलोचन के पिता ने दो बोरे दूध के ऐसा उज्ज्वल चावल मेरे घर भेजा था। रामलोचन ने १००) मेरे लड़के गौरीशकर को मिठाई खाने को दिया। बालक रामलोचन के प्रति मेरे हृदय मे जो स्नेह था, वह उसके पिता की गुरुभक्ति के कारण और भी बढ़ा हुआ था।

उस समय के सब लड़के स्कूल में ऐसे मालूम पड़ते थे मानो वे एक परिवार के हों। श्रीकृष्ण और सुदामा की याद दिलाने के लिये आज भी प्रियवर सूचालाल कर्ण रामलोचन के साथ हैं। भगवान् इस पुरानी जोड़ी की यह सगति बहुत दिनों तक निबाहें। रामलोचन अपने प्रेमी वर्गों के साथ बहुत दिनो तक फूलें-फलें और साहित्य की सेवा करें।

—

विहार का साहित्यिक गौरव

रायबहादुर वैचूनारायण, रिटायर्ड इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स, पटना

मैं 'पुस्तक-भडार' को विहार का रत्न-भडार समझता हूँ। इसके सस्थापक और सरक्षक श्रीमान् बाबू रामलोचनशरणजी को एक सच्चे देश-सेवक के रूप म अलौकिक पुरुष समझता हूँ।

'भडार' की रजत-जयन्ती के अवसर पर शरणजी की स्वर्ण-जयन्ती मनाने का आयोजन मणि-काञ्चन-सयोग है। इसे विहार का एक महान् साहित्यिक पर्व या महोत्सव समझना चाहिये। कौन जानता था कि आपकी स्वर्ण-जयन्ती के साथ 'भडार' की रजत-जयन्ती का इस प्रकार शुभ मिलन होगा। यह विधाता का ही मगलमय और आनन्दप्रद विधान है।

जिस तरह मनुष्य और मनुष्य की छाया परस्पर अभिन्न हैं, उसी तरह 'भडार' और रामलोचनशरणजी हैं। यथार्थ ही आप रामलोचन हैं। आपने अपने नाम को सार्थक किया है। धन्य हैं आपके माता-पिता, जिन्होंने पचास वर्ष पहले आपके लिये ऐसा नाम चुना था। पचीस वर्ष पहले आपकी आँखों ने देश की सच्ची अवस्था देखी थी, मानो इन आँखों मे राम ही की सत्ता थी। राम की शरण ही शरणजी की इस उन्नति का कारण है। अगर आप राम की शरण न लेते, तो विहार मे 'रत्न-भडार' की स्थापना नहीं कर सकते।

प्रश्न उठ सकता है कि आपने तो अपनी जीविका के उपार्जन के लिये उपाय सोचकर 'भडार' की नींव डाली थी। लेकिन यहाँ पर यह निवेदन करता हूँ कि जीविका के उपार्जन के अनेकानेक उपाय हैं। किन्तु भगवान् ने आपमें

आते थे, वे दो वर्षों में मिड्ल इंगलिश तभी कर सकते थे जब तेज होते थे। राम-लोचन ने यह काम आसानी से कर लिया।

उस समय रामलोचन के लिये 'हजारी गाछी'—हजार पेड़ों वाला आम का बागीचा, जो स्कूल के पास था—दौड़-धूप और खेल-कूद की जगह थी, और शिवहर के राजा साहब का दिव्य दरबार देखने-सुनने की वस्तु था।

रामलोचन के पिता ने दो बोरे दूध के ऐसा उज्ज्वल चावल मेरे घर भेजा था। रामलोचन ने १००) मेरे लड़के गौरीशंकर को मिठाई खाने को दिया। बालक रामलोचन के प्रति मेरे हृदय में जो स्नेह था, वह उसके पिता की गुरुभक्ति के कारण और भी बढ़ा हुआ था।

उस समय के सब लड़के स्कूल में ऐसे मालूम पड़ते थे मानो वे एक परिवार के हों। श्रीकृष्ण और सुदामा की याद दिलाने के लिये आज भी प्रियवर सूबालाल कर्ण रामलोचन के साथ हैं। भगवान् इस पुरानी जोड़ी की यह संगति बहुत दिनों तक निबाहें। रामलोचन अपने प्रेमी वर्गों के साथ बहुत दिनों तक फूलें-फलें और साहित्य की सेवा करें।

—

बिहार का साहित्यिक गौरव

रायबहादुर बैजूनारायण, रिटायर्ड इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स, पटना

मैं 'पुस्तक-भंडार' को बिहार का रत्न-भंडार समझता हूँ। इसके संस्थापक और संरक्षक श्रीमान् बाबू रामलोचनशरणजी को एक सच्चे देश-सेवक के रूप में अलौकिक पुरुष समझता हूँ।

'भंडार' की रजत-जयन्ती के अवसर पर शरणजी की स्वर्ण-जयन्ती मनाने का आयोजन मणि-काञ्चन-संयोग है। इसे बिहार का एक महान् साहित्यिक पर्व या महोत्सव समझना चाहिये। कौन जानता था कि आपकी स्वर्ण-जयन्ती के साथ 'भंडार' की रजत-जयन्ती का इस प्रकार शुभ मिलन होगा। यह विधाता का ही मंगलमय और आनन्दप्रद विधान है।

जिस तरह मनुष्य और मनुष्य की छाया परस्पर अभिन्न हैं, उसी तरह 'भंडार' और रामलोचनशरणजी हैं। यथार्थ ही आप रामलोचन हैं। आपने अपने नाम को सार्थक किया है। धन्य हैं आपके माता-पिता, जिन्होंने पचास वर्ष पहले आपके लिये ऐसा नाम चुना था। पचीस वर्ष पहले आपकी आँखों ने देश की सच्ची अवस्था देखी थी, मानो इन आँखों में राम ही की सत्ता थी। राम की शरण ही शरणजी की इस उन्नति का कारण है। अगर आप राम की शरण न लेते, तो बिहार में 'रत्न-भंडार' की स्थापना नहीं कर सकते।

प्रश्न उठ सकता है कि आपने तो अपनी जीविका के उपार्जन के लिये उपाय सोचकर 'भंडार' की नींव डाली थी। लेकिन यहाँ पर यह निवेदन करता हूँ कि जीविका के उपार्जन के अनेकानेक उपाय हैं। किन्तु भगवान् ने आपमें

शिक्षा-प्रचार की ही प्रेरणा दी। उसी से अनुप्राणित हो आपने इस महान् कार्य का भार उठाया।

रामलोचनजी ने शिक्षा-प्रसार द्वारा देश-सेवा करने के लिये पचीस वर्ष पहले कटिबद्ध हो दृढ़ सकल्प किया था। विशेषत देश के मूलधन बच्चों की शिक्षा की ओर आपकी दृष्टि पडी। आपकी चिन्ता सदा यही रही कि बच्चों की शिक्षा के लिये किस प्रकार भली-भली शिक्षाप्रद पुस्तकें लिखकर उनकी सच्ची सेवा करें। आपने शिशुओं की सेवा में अपनेको उत्सर्ग कर दिया। बच्चों के योग्य सुन्दर-सुन्दर पुस्तिकाएं प्रकाशित कर सचमुच उन्हें साहित्य-रस-पान कराया। इतना ही नहीं, शिक्षक, युवक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, सभी के लिये आपने नाना प्रकार की उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित कीं। फिर 'बालक' भी आपकी सेवा का एक अपूर्व और ज्वलन्त प्रमाण है।

१९३५ में जब सम्राट् पचम जार्ज की रजत-जयन्ती मनाई गई थी, आपने बहुत ही उत्साह के साथ उसमें योग दिया था—'बालक' का रजत-जयन्ती-अक बहुत ही सुन्दर निकाला था। सम्राट् अष्टम एडवर्ड और वर्त्तमान सम्राट् षष्ठ जार्ज के अभिषेकोत्सव में भी आपने उसी उत्साह से सेवा की थी। उस अवसर पर भी 'बालक' के द्वारा आपने राज्याभिषेक-महोत्सवो का सचित्र विवरण हिन्दी-ससार के सामने उपस्थित किया था। सम्राट् पचम जार्ज के स्वर्गारोहण के समय भी आपका शोक-प्रकाश 'बालक' के विशेषाक मे प्रकट हुआ था। साक्षरता-आन्दोलन में आपने जिस उदारता तथा सेवा-भाव का परिचय दिया, वह सर्वथा स्तुत्य है। इस सेवा के उपलक्ष्य मे सरकार ने आपको स्वर्ण-पदक प्रदान कर अपनी गुणज्ञता का परिचय दिया।

रामलोचनजी ने सदा अपने सरल, सच्चे और आनन्दमय स्वभाव से सबको सतुष्ट और प्रसन्न रक्खा है। स्कूल, पाठशाला, शिक्षक और छात्र तथा शिक्षा-विभाग के साथ आपका सम्बन्ध बराबर बहुत ही सराहनीय रहा। उनके साथ आज भी आपका व्यवहार बहुत ही प्रेमपूर्ण है।

मैंने जो कुछ कहा है, सुनी-सुनाई बातें नहीं, मेरी आँखों-देखी हैं।

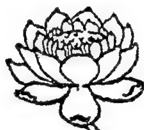

विद्यापति पुस्तकालय का वाचनालय

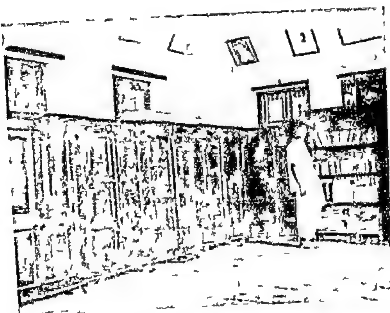

पुस्तक-भंडार का विद्यापति-पुस्तकालय
पुस्तकालय-प्रबन्धक—
श्रीलक्ष्मीनारायण झा (दरभंगा)

पुस्तक भंडार का पुस्तक-बिक्री विभाग

आगे खड़े—पं० ब्रजविहार त्रिवेदी (पटना), बैठे—पं० चतु झा (प्रधान), पीछे खड़े दाहिन ओर से—शिवनारायणलाल क झींगुर और रद्दल।

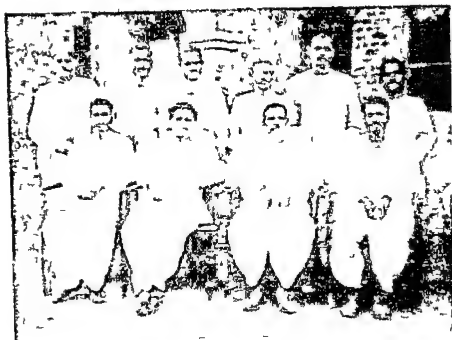

विद्यापति प्रेस के ऑफिस-कर्मचारी
दाहिनी ओर से दूसरे (कुर्सी पर)— श्रीहनुमानप्रसाद (काशीनिवासी) मैनेजर

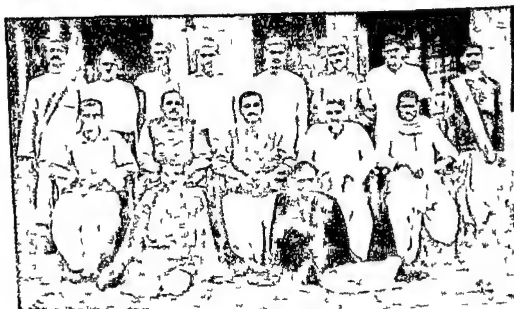

पुस्तक भंडार (पटना) के कर्मचारी
बीच में कुर्सी पर—मैनेजर पं० जयनाथ मिश्र (दरभंगा), बाईं ओर से दो—पं० कमलाकान्त झा, बाबू परमेश्वरसिंह। दाहिनी ओर से दो—श्रीमणिशंकरलाल वर्मा, मुंशी रुकन।

मास्टर साहब की अनुकरणीय सरलता

रायसाहब श्रीरामशरण उपाध्याय, एम॰ ए॰, प्रधानाध्यापक, ट्रेनिंग स्कूल, पटना

सन १९१४ की जुलाई की पहली तारीख। मैं कालेज से निकलकर पहले-पहल, शिक्षण-कार्य के लिये, सहायक शिक्षक के रूप में, दरभंगा के नार्थब्रुक स्कूल में पहुँचा। मेरी जन्मभूमि दरभंगा जिले में है, लेकिन दरभंगा शहर में निवास करने का सुअवसर मुझे कुछ महीनों के लिये ही सन् १९०५ में मिला था—मिड्ल-वर्नाक्युलर की छात्र-वृत्ति-परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर। इसलिये परिचय वहाँ बहुत कम लोगों से था। स्कूल में प्रविष्ट होने पर तत्कालीन प्रधानाध्यापक श्रीयुत (अब रायसाहब) ज्ञानदाचरण मजुमदार ने बहुत ही आह्लाद तथा उत्साह के साथ मेरा स्वागत किया।

मैं उस समय इक्कीस वर्ष का था। लड़कों में बहुत-से मेरी उम्र के थे। शिक्षकों की मंडली में जब मैं पहले पहल जाकर बैठा तब उनलोगों ने कुछ विनोद-पूर्ण भाव से, किन्तु प्रेम-पूर्वक, मुझे अपने में सम्मिलित किया। श्रीरामलोचन-शरणजी से वहीं भेंट हुई।

अवस्था में शरणजी मुझसे कुछ ही बड़े थे, शिक्षा-विभाग में भी केवल कुछ ही वर्ष पहले सम्मिलित हुए थे। उन दिनों स्कूलों में हिन्दी की तरफ प्रायः अल्पसंख्यक छात्रों तथा अभिभावकों का झुकाव था। इन्होंने इस क्षेत्र में लहेरियासराय में तथा नार्थब्रुक स्कूल में कुछ कार्य का श्रीगणेश किया था। लहेरियासराय में पंडित गिरीन्द्रमोहन मिश्रजी, जो अब दरभंगा-राज्य के असिस्टैंट मैनेजर हैं, तथा श्रीयुत ब्रजकिशोरप्रसादजी वकील (अब वयोवृद्ध राष्ट्रीय नेता) के संरक्षण में एक साहित्य-सभा स्थापित हुई थी। स्कूलों में भी कुछ छात्रों के उत्साह तथा हिन्दी-प्रेम से लाभ उठाकर एक हिन्दी-सभा की स्थापना की गई थी।

इन्होंने मेरा सप्रेम हार्दिक स्वागत एक हिन्दी-भाषा-भाषी एकमात्र ग्रेजुएट शिक्षक के नाते किया। 'एकमात्र' का तात्पर्य यह कि उस समय नार्थब्रुक स्कूल मे एक भी हिन्दी-भाषा-भाषी ग्रेजुएट शिक्षक नहीं था। हाँ, मेरे जाने के दो वर्ष पूर्व एक हिन्दी-भाषी ग्रेजुएट पडित गुरुदेवप्रसाद शर्माजी, जो आरा के स्व० प० ईश्वरीप्रसाद शर्मा के बड़े भाई हैं, कुछ महीनो तक रहकर वहाँ से अन्यत्र जा चुके थे। मिलने के साथ इन्होने हिन्दी की अवस्था के सबध मे मुझसे बातें कीं तथा अपने शुभ अनुष्ठान मे हाथ बँटाने का प्रोत्साहन दिया।

इनकी व्याकरण-विषयक पहली किताब उस समय तैयार हो चुकी थी। प्रयाग के 'विद्यार्थी' मासिक पत्र का, स्कूल में तथा नगर मे, इनके द्वारा खूब प्रचार हो रहा था। स्कूल तथा नगर की हिन्दी-सभाओं की बैठकें नियमित रूप से हुआ करती थीं। इनकी प्रेरणा के फल-स्वरूप मुझे भी उक्त सभाओ में सहयोग देने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

पटना-विश्वविद्यालय का स्थापन उस समय नहीं हुआ था। नार्थब्रुक स्कूल कलकत्ता-विश्वविद्यालय से सबद्ध था। उक्त विश्वविद्यालय ने इतिहास तथा भूगोल के प्रश्न-पत्रो का इच्छानुसार अँगरेजी अथवा देशी भाषाओ में उत्तर देने का अधिकार दिया था। किन्तु उसका उपयोग कदाचित् ही कोई छात्र करता था। देशी भाषाओं में, विशेषत हिन्दी में, पुस्तको का अभाव तो था ही—अनुकूल वायुमडल का भी अभाव था।

प्रवेशिका-वर्ग में इतिहास पढ़ाने का काम मुझे सौंपा गया। इन्होने मुझसे आग्रह किया कि मैं हिन्दी में उत्तर लिखने के लिये कुछ छात्रों को उत्साहित करूँ तथा उसके लिये इतिहास की पाठ्य पुस्तक का एक सक्षिप्त अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत कर दूँ। इनकी प्रेरणा से मैंने चेष्टा की। १९१५ और १९१६ के कुछ परीक्षार्थियो ने हिन्दी म इतिहास-पत्र का उत्तर लिखा। उनमें श्रीयुत परमानद दारुका तथा श्रीयुत यमुना कार्यी का स्मरण अभी तक है।

इनका जीवन तो अभी तक सादा है। किन्तु १९१४ में इनकी जैसी आर्थिक स्थिति थी, उसमे सादगी अनिवार्य थी। ये सादा कुरता तथा दुपल्ली टोपी पहनकर प्राय स्कूल आया करते थे। जूता देशी पहनते थे।

१९१४ के अगस्त में, स्कूलों के इस्पेक्टर की हैसियत से, श्रीयुत (अब रायसाहब) पडित बलदेव मिश्रजी ने स्कूल का निरीक्षण किया। सभी शिक्षकों को आज्ञा मिली कि अवसर के उपयुक्त कपड़े पहनकर आवे। कोट-पतलून चपकन-पाजामा अथवा कम-से-कम कुरता या कमीज और धोती के ऊपर कोट या अचकन

श्रीमान् रामलोचन-शरणजी (मास्टर साहब १९१२ ई०)—
आप जब गया जिला - स्कूल में हिन्दी - शिक्षक थे।

की गणना उपयुक्त पोशाक में हो जाती थी। नहीं तो कुरते के ऊपर एक चादर रखना जरूरी था।

निरीक्षण के दिन सभी शिक्षक कपड़ों में कुछ-न-कुछ परिवर्त्तन कर आये, किन्तु केवल ये ही पूर्ववत् धोती-कुरते में आये। इसके लिये इन्हें हेड मास्टर के पास कैफियत भी देनी पड़ी।

समय का कैसा परिवर्त्तन है। धोती और कुरते का प्रवेश, गत पचीस वर्षों के भीतर बड़े-से-बड़े लोगों के बैठकखानों में तथा बड़े-से-बड़े पदाधिकारियों के दफ्तरों मे निस्संकोच हो रहा है।

इनका और मेरा साथ केवल छ महीनों का रहा। जनवरी, १९१५ में मैं 'पूसा' (दरभगा) चला गया। किन्तु इनके प्रेम का पात्र सदा बना रहा। हिन्दी-सेवा में इनसे सदा उत्साह-वर्द्धन पाता रहा।

'पुस्तक-भडार' तथा 'बालक' विहार प्रान्त के गौरव हैं। जब तक दोनों रहेंगे, इनकी प्रतिभा, कार्यक्षमता तथा सुसगठन-शक्ति के परिचायक बने रहेंगे।

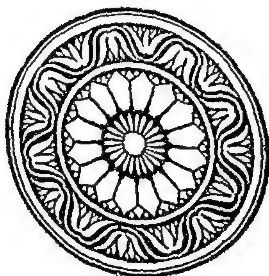

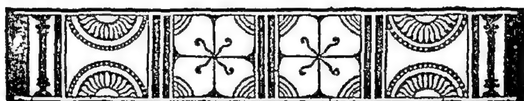

विहार का गौरव 'पुस्तक-भंडार'

रायसाहब प० सिद्धिनाथ मिश्र, बी० ए०, एल० टी०, एफ० पी० यू०, पटना

कौन जानता था कि बाबू रामलोचनशरण के भीतर उन्नति की ऐसी चिनगारी है, जो बरसों शिक्षक का कार्य करने पर भी बुझी नहीं, बल्कि दिन-दिन धधकती गई, और अन्त मे जिसने आपको एक अकिंचन पद से उठाकर भारत-विख्यात सम्भ्रात व्यक्ति बनाकर ही छोड़ा।

जिस समय आप अपने शिक्षण-कार्य को तिलांजलि दे रहे थे, उस समय आपके मित्रों को कदापि यह विश्वास न था कि आप पुस्तक-प्रकाशन-कार्य का योग्यता-पूर्वक परिचालन कर सकेंगे। किन्तु अध्यवसाय भी एक चीज है। जिसने इसका वरण किया, ससार मे उसका नाम निकला।

आज के उन्नत 'भडार' की नींव सन् १९१६ ई० मे ३ जनवरी को पडी थी। कैसा शुभ मुहूर्त्त था वह। दिन-दिन उन्नति-पथ पर अग्रसर होकर 'भडार' ने उत्तम रूप से साहित्य-सेवा की है। छोटे बच्चों से लेकर बी० ए० और एम० ए० तक के छात्रों के पढने योग्य उसने उत्तमोत्तम पुस्तकें तैयार कराई है। केवल विहार-सरकार ने ही नहीं, उसकी पुस्तकों का आदर अन्यान्य प्रान्तीय सरकारों ने भी किया।

जिस समय विहार के कांग्रेसी शिक्षा-मन्त्री डाक्टर सैयद महमूद साहब ने निरक्षरता-निवारण का आन्दोलन चलाया, उस समय जनता में शिक्षा की ज्योति जगाने के उद्देश्य से 'भडार' को प्राय पन्द्रह-बीस हजार रुपये व्यय करने पडे।

धन्य भडार! यह तुम्हारी कीर्त्ति अनपढ जनता अब पढ-पढकर सदा गाया करेगी और तुम्हारी आयु-वृद्धि की प्रार्थना वह परमात्मा से करती रहेगी,

जिसे शीघ्र सु न ेवाले ६२ग दिता तुम्हारी इस उदारता से ई है दिन दूनी रात-चौगुनी आगे बढ़ाने का मंगलमय आशीर्वाद देंगे।

'भंडार' ने सयाने जनपदों में केवल पुस्तक-वितरण ही नहीं किया, कई सौ लालटेनें और हजारों स्लेटें भी बाँटीं, जिसमे 'भंडार' कुबेर के भंडार की भाँति चमकने लगा।

'भंडार' की भावी उन्नति पर भूकंप की क्रूरता ने भयानक आक्रमण किया। लगभग लाखों की क्षति हुई। किन्तु परमात्मा ने 'भंडार' को अपनी कृपादृष्टि की अमृत-वृष्टि से पुन जीवित किया।

'भंडार' की पुस्तकों की छपाई उत्तम होती है। इसके लेखक चुने हुए अनुभवी विद्वान् हैं। इसका ज्वलत प्रमाण यह है कि इसके द्वारा प्रकाशित स्कूल और कालेज की अनेक पाठ्य पुस्तकें प्राय स्वीकृत हैं। शिक्षकों तथा छात्रों ने सर्वत्र इसकी पुस्तकों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इसने समय-समय पर दरिद्र विद्यार्थियों और संस्थाओं की जो सहायता की है, उससे प्रत्यक्ष है कि इसने केवल अपने लिये ही द्रव्य नहीं उपार्जित किया, बल्कि असमर्थों की सहायता के लिये भी। इसकी समयानुकूल उपयुक्त सहायता से उपकृत होनेवाले असंख्य हैं।

मैं तो देखता हूँ कि 'पुस्तक भंडार' के कार्य-कलाप सब-के-सब श्रीरामलोचनशरणजी के सतत उद्योग के परिणाम हैं। इसको यों समझिये कि दोनों मे अभिन्नता है। हाँ, इतना मैं और इसमें बढ़ाता हूँ कि श्रीरामलोचनशरणजी साहित्य के क्षेत्र में भी अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं, और आपकी लेखनी का प्रभाव बिहार के उन नवयुवक लेखकों की साहित्य-सेवा में भी है, जिन्होंने गत पचीस वर्षों मे शिक्षा पाई है। हो सकता है कि बिहार के कुछ व्यक्ति आपकी पुस्तकों का अध्ययन न कर सके हों, परन्तु उनकी संख्या प्रति शत दस से अधिक न होगी।

मुझे, शिक्षा-विभाग मे कार्य करने के कारण, यह स्वीकार करते हुए आनन्द होता है कि आपने बाल-साहित्य को उन्नत बनाकर बिहार का मस्तक ऊँचा किया है। और, आपकी पढ़ाने की कई विधियाँ ऐसी सुन्दर प्रमाणित हुई हैं, जिनके अनुसार यहाँ पढ़ाई हो रही है, और उन विधियों की छाप भारत में बहुत दूर तक फैल गई है। मैं तो गुजराती साहित्य के आचार्य गिजूभाई से आपकी उपमा देते तनिक भी संकोच नहीं करता। आपकी गद्य-शैली इतनी सरल है कि विद्यार्थियों के ऊपर वह अपनी अमिट छाप छोड़ जाती है।

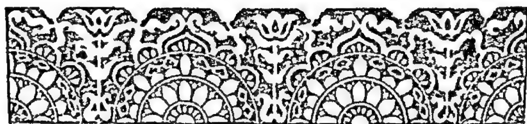

'पुस्तक-भंडार' अथवा रत्न-भंडार

श्रीजगदीश झा 'विमल', भागलपुर

सन् १९११ ई० की बात है। मैं भागलपुर में शिक्षक था। उस समय बाबू रामलोचनशरणजी गया-जिला-स्कूल में अध्यापक थे। अध्यापन-कार्य करते हुए आपने 'लोअर प्रकृति-परिचय' और 'लोअर भूगोल-परिचय' नाम की किताबें स्कूली लड़कों के लिये लिखी थीं। आपकी वे पुस्तकें इतनी सुन्दर और काम की हुई थीं कि वर्ष के भीतर ही उनकी कई हजार प्रतियाँ बिक गईं।

जब आप गया से बदलकर लहेरियासराय आये, अपनी पुस्तकों का विशेष प्रचार देख, आपने लहेरियासराय में 'पुस्तक-भंडार' की स्थापना की। आपने अपर और मिड्ल के लिये भी गणित, व्याकरण, विज्ञान, भूगोल, स्वास्थ्य, इतिहास आदि विविध विषयों की बेजोड़ पुस्तकें लिखीं जिनका आदर बिहार-प्रान्त ही मे नहीं—अन्यान्य प्रान्तों मे भी है। उस समय 'भंडार' का अपना प्रेस न था। इसलिये आपकी पुस्तकें कलकत्ता, बनारस, इलाहाबाद और लखनऊ के प्रेसों में छपा करती थीं।

आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभा में वह चमत्कार है कि जिस विषय को आप छूते हैं, उसीको हस्तामलकवत् बना देते हैं। आपकी [illegible] विषयों की पुस्तकें इतनी सुन्दर और खरी उतरीं [illegible] ही गय[illegible] कार्य की अधिकता के कारण आप[illegible] पुजारी बन गये।

अब, स्कूली पुस्तकों के [illegible] साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशन की [illegible]

से सुन्दर साहित्यिक पुस्तकें प्रकाशित होने लगीं। साहित्यिकों को आश्रय मिला। आपने हृदय खोलकर उनका स्वागत किया। आपने उनकी सुन्दर पुस्तकें सुसम्पादित कर प्रकाशित कीं। हिन्दी-ससार में उन पुस्तकों का खूब आदर और प्रचार हुआ। सचमुच आपका 'भडार' बहुमूल्य हिन्दी-ग्रथ-रत्नों का भाण्डागार हो गया।

इतने से ही आपको सताप न हुआ। आपने बालकों को विशेष रूप से आकृष्ट करने और लाभ पहुँचाने के लिये 'बालक' नाम का एक सुन्दर मासिक पत्र निकाला, जो अपनी अभिनव विशेषताओं के कारण इतना अधिक लोकप्रिय हुआ कि जन्म लेते ही देश विदेश के हिन्दी-क्षेत्र मे सबका दुलारा बन गया। 'बालक' ने अनेक बालकों को सुन्दर लेखक बनाया। आप उसको विशेष रूप से क्रमश रुचिकर बनाते गये। अवकाश के अभाव मे भी उसका सम्पादन-भार ग्रहण किये रहे। उसकी आकार वृद्धि की। सुन्दर सुपाठ्य लेख स्वय लिख और लिखाकर उसको उन्नत बनाने लगे। 'बालक' चमक उठा, और चमक उठे 'बालक' को अपनानेवाले बालक भी।

हिन्दी के विद्वान् लेखकों के साथ शरणजी का जैसा मधुर व्यवहार है, वैसा दूसरे प्रकाशकों का नहीं। आप उनकी सुन्दर रचनाओं पर आशा से अधिक पुरस्कार देकर उनका सम्मान-वर्द्धन करते हैं। आपका मधुर भाषण, निष्कपट आचरण और प्रशसनीय कार्य-पद्धति किसी को निराश और विमुख नहीं होने देती। आपके हृदय में साहित्य-सेवा की जो सच्ची लगन है, उसीका यह मीठा फल है।

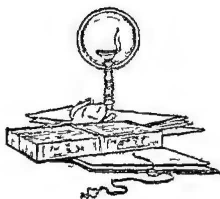

'पुस्तक-भंडार' और उसके भंडारी

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, भूतपूर्व सम्पादक,—'बालक', 'युवक', 'योगी', 'जनता'

प्रारम्भ में ही साहित्य-क्षेत्र में दरिद्रता का दौर-दौरा देखकर भी साहित्य-सेवी बनने की जो सुनहली आकांक्षा मन में पैदा हुई थी, वह असमय में ही तिरोहित होने जा रही थी कि अकस्मात् मेरा सम्बन्ध 'पुस्तक-भंडार' से स्थापित हुआ। यदि उसके गुणग्राही भंडारी बाबू रामलोचनशरण के वरदहस्त की छाया न मिली होती, तो मेरी उस समय की सुकुमार प्रतिभा-लता शायद इस तरह झुलस गई होती कि मातृभाषा के चरणों में मैंने जो कुछ 'पत्र-पुष्प' अर्पित किये हैं, उनका आज नाम-निशान भी न होता। प्रतिभा की अमोघता पर मुझे विश्वास है। यदि मुझमें प्रतिभा थी, तो वह कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रूप में, प्रकट होती ही, लेकिन सुविधा और सुयोग भी सफलता के प्रभावशाली साधन हैं, यह भूल जाना कृतघ्नता ही नहीं, वास्तविक सत्य से आँखें मूँदना भी है।

मुजफ्फरपुर में बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन, बनैली-नरेश राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर की अध्यक्षता में, हो रहा था। कवि सम्मेलन के सभापति थे हास्य-रसावतार प० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी। मनोरंजन-मूर्त्ति पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा भी पधारे थे। ईश्वरीजी ने खादीधारी देशभक्त एवं चतुर्वेदीजी के लम्बे-लम्बे बालों पर चुटकियाँ लेते हुए कुछ ऐसे कवित्त सुनाये कि लोग लोटपोट हो गये। लेकिन 'खद्दर चद्दर भेष दरिद्दर' और 'चदा-धन पै अँखियाँ अँटकीं' सुनकर कुछ देशभक्तों के दिल पर काफी चोट भी लगी। लेकिन उसका प्रतिकार क्या हो सकता था ?

उसी समय मुझे कुछ सूझ गया। झट एक तुकबन्दी बना, सभापति से

समय माँग, मैंने जवाब में सुना दी। बस, उस तुकबदी ने धारा पलट दी। हँसी का फव्वारा तो छूटा ही, बार-बार उसकी आवृत्ति कराई गई। प्रान्त के कई नेताओं ने आकर मेरी पीठ ठोंकी। लेकिन मुझे सबसे मीठी लगी ईश्वरीजी की वह चपत, जो नजदीक आकर हँसते-हँसते उन्होंने मेरे गाल पर जड दी और गाढालिंगन करते हुए कहा—'जिन्दगी मे पहली ही बार मैं इस तरह छकाया गया हूँ।'

मैं सबकी आँखो पर था। मेरी प्रशसा हो रही थी। राजा बहादुर ने स्वर्ण-पदक का वचन दिया। क्षणिक आवेग मे मैं भी बहा जा रहा था।

लेकिन मेरे अन्तस्तल मे तो दूसरा ही हाहाकार था—बहन की शादी और बाढ के प्रकोप के कारण अकाल पडने से परिवार के भरण-पोषण की चिन्ता। मैं चाहता था कोई ऐसी साहित्यिक नौकरी, जो साहित्य-सेवा की इच्छा-पूर्त्ति के साथ-साथ आर्थिक समस्याओं को भी हल कर दे। मैंने वहीं से तीन खत लिखे—एक भाई शिवपूजनजी के पास 'माधुरी'-कार्यालय में, दूसरा खड्ग-विलास प्रेस के सर्वेसर्वा बाबू गोकर्ण सिहजी के पास, तीसरा लहेरियासराय। मन-ही-मन निर्णय किया—जहाँ से पहली बुलाहट आयगी, जाऊँगा। किन्तु सबसे पहला खत जो मुझे घर पर मिला, 'पुस्तक-भडार' का था। मुझे उसका मजमून आज भी याद है।—"प्रिय महाशय, जय सीताराम। आपका पत्र पहुँचा। 'भडार' अपनेको अभी इस योग्य नहीं समझता कि आप ऐसे विद्वानों की सेवा कर सके, तो भी आप पधारें। हमसे जहाँ तक बन पडेगा, हम पत्र-पुष्प से आपको सतुष्ट करने की चेष्टा करेंगे।"

अपनेको विद्वान् मैंने कभी माना नहीं। मेरी आवश्यकता भी कोई ऐसी बडी नहीं थी, जिसकी पूर्त्ति मे विशेष कठिनाई हो। अत मैं शीघ्र वहाँ जा पहुँचा। फिर तो वहीं का हो रहा। साढे तीन वर्षों तक वहीं रहा। सयोगवश वहाँ से हटा भी, तो आजतक अपना सबध नहीं तोड सका।

'भडार' मे पहुँचने के कई दिनों बाद तक तो अतिथि-सत्कार के ही मजे लेता रहा, फिर अपने मिशन की याद आई। लेकिन देखा, मास्टर साहब कुछ चर्चा नहीं करते। मैं जरा पशोपेश में था। सुन रक्खा था, व्यवहार में स्पष्टता चाहिये। लेकिन अपना स्वभाव लेन-देन के मामले में हमेशा सकोची। इसी बीच मास्टर साहब ने मुझे अपनी एक रचना-सबधी पुस्तक दी और कहा, इसका नया सस्करण होने जा रहा है, देखिये और जहाँ-जहाँ सुधार की आवश्यकता समझिये, कर दीजिये। यह मेरी जाँच थी। किन्तु मेरे कार्य से वे सतुष्ट होते दीख पडे। फिर उन्होंने अन्य त्रुटियों की तरफ मेरा ध्यान आकृष्ट कर संशोधन कला की शिक्षा दी। यही मेरे नवजीवन की शिक्षा का श्रीगणेश था।

दूसरे ही दिन जिला-स्कूल की तरफ टहलने जाते हुए उन्होंने मुझे साथ कर लिया, और शाम के धुँधले मे जब हम लौट रहे थे, एक जगह बैठ मेरे घर की बातें पूछने लगे। मैं क्या चाहता हूँ, यह भी पूछा और कहा—"देखिये, रुपये की चिन्ता मत कीजिये। यदि आपमें लगन होगी तो समय पाकर आप 'भडार' के गोकर्णसिंह बन जाइयेगा।"

मैं कह सकता हूँ, जब तक मैं उनके यहाँ था, तभी तक नहीं, बाद भी हमेशा उन्होंने अपना वचन निभाया, आजतक निभाये जा रहे हैं।

मास्टर साहब की सिद्ध लेखनी ने मुझपर जादू का काम किया। उन्होंने बालोपयोगी सरल पुस्तको के लिखने में, मैं दावे से कह सकता हूँ, कमाल किया था। यद्यपि वे पुस्तकें सरकार से स्वीकृत नहीं थीं और सिर्फ हैंडबुक ही समझी जाती थीं, तो भी उनकी बिक्री अधाधुध होती थी। 'सवा पहर सोना बरसने' की बात बचपन मे सुनी थी, लेकिन 'भडार' में 'सवा पहर चाँदी बरसते' तो मैंने अपनी आँखों देखा। स्कूली सीजन मे कर्मचारी सिर्फ चार-पाँच घटे रात में सो पाते—नहीं तो सात बजे भोर से रात के दो बजे तक कारबार चला करता। एक बार एक दिन में ५२००) से भी अधिक की बिक्री हुई थी।

मैं जिस समय पहुँचा, 'भडार' ने किसी जिलाबोर्ड से स्कूलों के लिये आर्डर-बुक-सप्लाइ करने का एक अच्छा-सा आर्डर पाया था। अत सबसे पहले मुझे वही काम दिया गया था। उसी समय मास्टर साहब 'बिहारी-सतसई' की टीका तैयार कर रहे थे। करीब पचीस दोहो की सुन्दर टीका उन्होंने लिखी थी। वह काम भी मुझे ही सौंपा गया। मैंने उन्हीं के ढर्रे पर शेप दोहो की टीका पूरी की। उनको मेरी टीका पसन्द आई। फिर तो उनकी बतलाई हुई प्रणाली के अनुसार मैंने कई बालोपयोगी और युवकोपयोगी पुस्तकें लिख डालीं। इसके पहले पुस्तक-प्रकाशन का मुझे कुछ भी ज्ञान न था। उनके साथ दो-एक महीने काशी मे रहने पर मुझे इस विषय में भी काफी अनुभव हुआ। उसके बाद तो मैं ही काशी जा-जाकर पुस्तकें छपवाने लगा। मेरी कार्य-दक्षता से वे सतुष्ट हुए। इसके पुरस्कार-स्वरूप जो कुछ उन्होंने किया, वह मैं कभी भूल नहीं सकता।

एक दिन अचानक मुझसे अकेले मे उन्होंने पूछा—"तुमने कहा था, बहन की शादी करनी है (अब मुझे वे अपना अनुज-सा समझ 'तुम' ही कहा करते), तो उसके बारे मे क्या कर रहे हो?" मैंने कहा—"अभी तो दो-तीन महीने ही मैंने काम किये हैं, रुपया कहाँ है कि मैं उसपर सोच भी सकूँ।" उन्होंने शीघ्र ही मुझे छुट्टी दी। एक नई साइकिल खरीद दी कि मैं घर के आसपास

ही कहीं योग्य वर ढूँढूँ। शादी का कुल खर्च भी उन्होंने उठा लिया। मेरी वह बहन अकाल-मृत्यु का शिकार हुई, यों तो सब किया-कराया व्यर्थ गया, लेकिन कृतज्ञता को तो काल भी विनष्ट नहीं कर सकता।

मास्टर साहब ने साहित्यिक पुस्तकों की कई मनोहर मालाएँ निकालीं। हर माला में चुन-चुनकर सुन्दर पुस्तक-पुष्प पिरोये गये। इन पुस्तकों में सुरुचिपूर्ण विषयों के अतिरिक्त छपाई-सफाई, गेट-अप आदि पर खास ध्यान रक्खा जाता था। ये पुस्तकें ज्योंही बाजार में आईं कि धूम-सी मच गई। बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने अपनी रिपोर्ट में सराहा। श्रद्धेय राजेन्द्र बाबू ने अपने भाषण में प्रशंसा की। बिहार के अखबारों ने भी प्रोत्साहन दिया। अन्य प्रान्तों की पत्र-पत्रिकाओं ने भी मास्टर साहब के इस प्रयत्न की भूरि-भूरि प्रशंसा की और 'भंडार' की कितनी ही कृतियों को अद्वितीय बताया।

किन्तु, सबसे बड़ी अद्वितीय चीज तो अब आनेवाली थी। मेरे आने से पहले ही मास्टर साहब ने 'बालक' निकालने की सूचना दे रक्खी थी। उन्होंने इंगलैंड और अमेरिका से अँगरेजी के कई बालोपयोगी मासिक पत्र और वार्षिक पुस्तकें (इयर-बुक) मँगाईं। बँगला, गुजराती, मराठी और उर्दू के प्रमुख बालोपयोगी पत्र भी मँगाये। बच्चों के लिये अँगरेजी में 'बुक-ऑफ नॉलेज' (Book of Knowledge) आदि जो प्रसिद्ध ग्रन्थ-मालाएँ हैं, उन्हें भी मँगाया।

इन सबके मँगाने में बहुत ज्यादा खर्च पड़ा। लेकिन उन्होंने इसके लिये रुपये को रुपया नहीं समझा। एक बार मुझे कलकत्ता भेजकर वहाँ से मैकमिलन, न्यूमैन, थैकर आदि अँगरेजी कम्पनियों की दूकानों और बँगला-प्रकाशकों की सुप्रसिद्ध दूकानों से लगभग एक हजार रुपये की बालोपयोगी पुस्तकें मँगवाईं। इन सबके अध्ययन और परीक्षण के बाद उन्होंने 'बालक' के लिये उपयुक्त विषयों तथा शीर्षकों का चुनाव किया। बाल-साहित्य के निर्माण में उनकी जो प्रगाढ योग्यता और अगाध अनुभूति थी, उसने 'बालक' के लिये सोने में सुगंध का काम किया।

भाई शिवपूजनजी को मैं हमेशा से ही अपना साहित्यिक अग्रज मानता हूँ। वे 'माधुरी' से फिर 'मतवाला' में आ गये थे। उनकी सलाह और स्वीकृति से हेडिंग, कवर आदि के डिजाइन हिन्दी के ख्यातनामा चित्रकार श्रीरामेश्वर प्रसाद वर्मा * से तैयार कराये गये।

* सन् १९२९ ई० में जब मास्टर साहब कलकत्ते गये थे, तब वर्मा जी से उनका साक्षात्कार हुआ था। वर्माजी इसी साल इंगलैंड जाने के सिलसिले में 'पुस्तक-भंडार'

दूसरे ही दिन जिला-स्कूल की तरफ टहलने जाते हुए उन्होंने मुझे साथ कर लिया, और शाम के धुँधले में जब हम लौट रहे थे, एक जगह बैठ मेरे घर की बातें पूछने लगे। मैं क्या चाहता हूँ, यह भी पूछा और कहा—"देखिये, रुपये की चिन्ता मत कीजिये। यदि आपमें लगन होगी तो समय पाकर आप 'भंडार' के गोकर्णसिंह बन जाइयेगा।"

मैं कह सकता हूँ, जब तक मैं उनके यहाँ था, तभी तक नहीं, बाद भी हमेशा उन्होंने अपना वचन निभाया, आजतक निभाये जा रहे हैं।

मास्टर साहब की सिद्ध लेखनी ने मुझपर जादू का काम किया। उन्होंने बालोपयोगी सरल पुस्तकों के लिखने में, मैं दावे से कह सकता हूँ, कमाल किया था। यद्यपि वे पुस्तकें सरकार से स्वीकृत नहीं थीं और सिर्फ हैंडबुक ही समझी जाती थीं, तो भी उनकी बिक्री धुआधुंध होती थी। 'सवा पहर सोना बरसने' की बात बचपन में सुनी थी, लेकिन 'भंडार' में 'सवा पहर चाँदी बरसते' तो मैंने अपनी आँखों देखा। स्कूली सीजन में कर्मचारी सिर्फ चार-पाँच घंटे रात में सो पाते—नहीं तो सात बजे भोर से रात के दो बजे तक कारबार चला करता। एक बार एक दिन में ५२००) से भी अधिक की बिक्री हुई थी।

मैं जिस समय पहुँचा, 'भंडार' ने किसी जिलाबोर्ड से स्कूलों के लिये आर्डर-बुक-सप्लाइ करने का एक अच्छा-सा आर्डर पाया था। अतः सबसे पहले मुझे वही काम दिया गया था। उसी समय मास्टर साहब 'बिहारी-सतसई' की टीका तैयार कर रहे थे। करीब पचीस दोहों की सुन्दर टीका उन्होंने लिखी थी। वह काम भी मुझे ही सौंपा गया। मैंने उन्हीं के ढर्रे पर शेष दोहों की टीका पूरी की। उनको मेरी टीका पसन्द आई। फिर तो उनकी बतलाई हुई प्रणाली के अनुसार मैंने कई बालोपयोगी और युवकोपयोगी पुस्तकें लिख डालीं। इसके पहले पुस्तक-प्रकाशन का मुझे कुछ भी ज्ञान न था। उनके साथ दो-एक महीने काशी में रहने पर मुझे इस विषय में भी काफी अनुभव हुआ। उसके बाद तो मैं ही काशी जा-जाकर पुस्तकें छपवाने लगा। मेरी कार्य-दक्षता से वे सतुष्ट हुए। इसके पुरस्कार-स्वरूप जो कुछ उन्होंने किया, वह मैं कभी भूल नहीं सकता।

एक दिन अचानक मुझसे अकेले में उन्होंने पूछा—"तुमने कहा था, बहन की शादी करनी है (अब मुझे वे अपना अनुज-सा समझ 'तुम' ही कहा करते), तो उसके बारे में क्या कर रहे हो?" मैंने कहा—"अभी तो दो-तीन महीने ही मैंने काम किये हैं, रुपया कहाँ है कि मैं उसपर सोच भी सकूँ।" उन्होंने शीघ्र ही मुझे छुट्टी दी। एक नई साईकिल खरीद दी कि मैं घर के आसपास

ही कहीं योग्य वर ढूँढूँ। शादी का कुल खर्च भी उन्होंने उठा लिया। मेरी वह बहन अकाल-मृत्यु का शिकार हुई, यों तो सब किया-कराया व्यर्थ गया, लेकिन कृतज्ञता को तो काल भी विनष्ट नहीं कर सकता।

मास्टर साहब ने साहित्यिक पुस्तकों की कई मनोहर मालाएँ निकालीं। हर माला में चुन-चुनकर सुन्दर पुस्तक-पुष्प पिरोये गये। इन पुस्तकों में सुरुचिपूर्ण विषयों के अतिरिक्त छपाई-सफाई, गेट-अप आदि पर खास ध्यान रक्खा जाता था। ये पुस्तकें ज्योंही बाजार में आईं कि धूम-सी मच गई। बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने अपनी रिपोर्ट में सराहा। श्रद्धेय राजेन्द्र बाबू ने अपने भाषण में प्रशंसा की। बिहार के अखबारों ने भी प्रोत्साहन दिया। अन्य प्रान्तों की पत्र-पत्रिकाओं ने भी मास्टर साहब के इस प्रयत्न की भूरि भूरि प्रशंसा की और 'भंडार' की कितनी ही कृतियों को अद्वितीय बताया।

किन्तु, सबसे बड़ी अद्वितीय चीज तो अब आनेवाली थी। मेरे आने से पहले ही मास्टर साहब ने 'बालक' निकालने की सूचना दे रक्खी थी। उन्होंने इंगलैंड और अमेरिका से अँगरेजी के कई बालोपयोगी मासिक पत्र और वार्षिक पुस्तकें (इयर-बुक) मँगाईं। बँगला, गुजराती, मराठी और उर्दू के प्रमुख बालोपयोगी पत्र भी मँगाये। बच्चों के लिये अँगरेजी में 'बुक-ऑफ नॉलेज' (Book of Knowledge) आदि जो प्रसिद्ध ग्रन्थ-मालाएँ हैं, उन्हें भी मँगाया।

इन सबके मँगाने में बहुत ज्यादा खर्च पड़ा। लेकिन उन्होंने इसके लिये रुपये को रुपया नहीं समझा। एक बार मुझे कलकत्ता भेजकर वहाँ से मैकमिलन, न्यूमैन, थैकर आदि अँगरेजी कम्पनियों की दूकानों और बँगला-प्रकाशकों की सुप्रसिद्ध दूकानों से लगभग एक हजार रुपये की बालोपयोगी पुस्तकें मँगवाईं। उन सबके अध्ययन और परीक्षण के बाद उन्होंने 'बालक' के लिये उपयुक्त विषयों तथा शीर्षकों का चुनाव किया। बाल-साहित्य के निर्माण में उनकी जो प्रगाढ़ योग्यता और अगाध अनुभूति थी, उसने 'बालक' के लिये सोने में सुगंध का काम किया।

भाई शिवपूजनजी को मैं हमेशा से ही अपना साहित्यिक अग्रज मानता हूँ। वे 'माधुरी' से फिर 'मतवाला' में आ गये थे। उनकी सलाह और स्वीकृति से हेडिंग, कवर आदि के डिजाइन हिन्दी के ख्यातनामा चित्रकार श्रीरामेश्वर प्रसाद वर्मा * से तैयार कराये गये।

* सन् १९२९ ई० में जब मास्टर साहब कलकत्ते गये थे, तब वर्मा जी से उनका साक्षात्कार हुआ था। वर्माजी इसी साल इंगलैंड जाने के सिलसिले में 'पुस्तक-भंडार'

दूसरे ही दिन जिला-स्कूल की तरफ टहलने जाते हुए उन्होंने मुझे साथ कर लिया, और शाम के धुँधले में जब हम लौट रहे थे, एक जगह बैठ मेरे घर की बातें पूछने लगे। मैं क्या चाहता हूँ, यह भी पूछा और कहा—"देखिये, रुपये की चिन्ता मत कीजिये। यदि आपमें लगन होगी तो समय पाकर आप 'भंडार' के गोकर्णसिंह बन जाइयेगा।"

मैं कह सकता हूँ, जब तक मैं उनके यहाँ था, तभी तक नहीं, बाद भी हमेशा उन्होंने अपना वचन निभाया, आजतक निभाये जा रहे हैं।

मास्टर साहब की सिद्ध लेखनी ने मुझपर जादू का काम किया। उन्होंने बालोपयोगी सरल पुस्तकों के लिखने में, मैं दावे से कह सकता हूँ, कमाल किया था। यद्यपि वे पुस्तकें सरकार से स्वीकृत नहीं थीं और सिर्फ हैंडबुक ही समझी जाती थीं, तो भी उनकी बिक्री अधाधुंध होती थी। 'सवा पहर सोना बरसने' की बात बचपन में सुनी थी, लेकिन 'भंडार' में 'सवा पहर चाँदी बरसते' तो मैंने अपनी आँखों देखा। स्कूली सीजन में कर्मचारी सिर्फ चार-पाँच घंटे रात में सो पाते—नहीं तो सात बजे भोर से रात के दो बजे तक कारबार चला करता। एक बार एक दिन में ५२००) से भी अधिक की बिक्री हुई थी।

मैं जिस समय पहुँचा, 'भंडार' ने किसी जिलाबोर्ड से स्कूलों के लिये आर्डर-बुक-सप्लाइ करने का एक अच्छा-सा आर्डर पाया था। अतः सबसे पहले मुझे वही काम दिया गया था। उसी समय मास्टर साहब 'बिहारी-सतसई' की टीका तैयार कर रहे थे। करीब पचीस दोहों की सुन्दर टीका उन्होंने लिखी थी। वह काम भी मुझे ही सौंपा गया। मैंने उन्हीं के ढर्रे पर शेष दोहों की टीका पूरी की। उनको मेरी टीका पसन्द आई। फिर तो उनकी बतलाई हुई प्रणाली के अनुसार मैंने कई बालोपयोगी और युवकोपयोगी पुस्तकें लिख डालीं। इसके पहले पुस्तक-प्रकाशन का मुझे कुछ भी ज्ञान न था। उनके साथ दो-एक महीने काशी में रहने पर मुझे इस विषय में भी काफी अनुभव हुआ। उसके बाद तो मैं ही काशी जा-जाकर पुस्तकें छपवाने लगा। मेरी कार्य-दक्षता से वे सन्तुष्ट हुए। इसके पुरस्कार-स्वरूप जो कुछ उन्होंने किया, वह मैं कभी भूल नहीं सकता।

एक दिन अचानक मुझसे अकेले में उन्होंने पूछा—"तुमने कहा था, बहन की शादी करनी है (अब मुझे वे अपना अनुज-सा समझ 'तुम' ही कहा करते), तो उसके बारे में क्या कर रहे हो?" मैंने कहा—"अभी तो दो-तीन महीने ही मैंने काम किये हैं, रुपया कहाँ है कि मैं उसपर सोच भी सकूँ।" उन्होंने शीघ्र ही मुझे छुट्टी दी। एक नई साइकिल खरीद दी कि मैं घर के आसपास

ही कहीं योग्य वर ढूँढूँ। शादी का कुल खर्च भी उन्होंने उठा लिया। मेरी वह बहन अकाल-मृत्यु का शिकार हुई, यों तो सब किया-कराया व्यर्थ गया, लेकिन कृतज्ञता को तो काल भी विनष्ट नहीं कर सकता।

मास्टर साहब ने साहित्यिक पुस्तकों की कई मनोहर मालाएँ निकालीं। हर माला में चुन-चुनकर सुन्दर पुस्तक-पुष्प पिरोये गये। इन पुस्तकों में सुरुचिपूर्ण विषयों के अतिरिक्त छपाई-सफाई, गेट-अप आदि पर खास ध्यान रक्खा जाता था। ये पुस्तकें ज्योंही बाजार में आईं कि धूम-सी मच गई। बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने अपनी रिपोर्ट में सराहा। श्रद्धेय राजेन्द्र बाबू ने अपने भाषण में प्रशंसा की। बिहार के अखबारों ने भी प्रोत्साहन दिया। अन्य प्रान्तों की पत्र-पत्रिकाओं ने भी मास्टर साहब के इस प्रयत्न की भूरि भूरि प्रशंसा की और 'भंडार' की कितनी ही कृतियों को अद्वितीय बताया।

किन्तु, सबसे बड़ी अद्वितीय चीज तो अब आनेवाली थी। मेरे आने से पहले ही मास्टर साहब ने 'बालक' निकालने की सूचना दे रक्खी थी। उन्होंने इंगलैंड और अमेरिका से अँगरेजी के कई बालोपयोगी मासिक पत्र और वार्षिक पुस्तकें (इयर-बुक) मँगाईं। बँगला, गुजराती, मराठी और उर्दू के प्रमुख बालोपयोगी पत्र भी मँगाये। बच्चों के लिये अँगरेजी में 'बुक-ऑफ नॉलेज' (Book of Knowledge) आदि जो प्रसिद्ध ग्रन्थ-मालाएँ हैं, उन्हें भी मँगाया।

इन सबके मँगाने में बहुत ज्यादा खर्च पड़ा। लेकिन उन्होंने इसके लिये रुपये को रुपया नहीं समझा। एक बार मुझे कलकत्ता भेजकर वहाँ से मैकमिलन, न्यूमैन, थैकर आदि अँगरेजी कम्पनियों की दूकानों और बँगला-प्रकाशकों की सुप्रसिद्ध दूकानों से लगभग एक हजार रुपये की बालोपयोगी पुस्तकें मँगवाईं। उन सबके अध्ययन और परीक्षण के बाद उन्होंने 'बालक' के लिये उपयुक्त विषयों तथा शीर्षकों का चुनाव किया। बाल-साहित्य के निर्माण में उनकी जो प्रगाढ़ योग्यता और अगाध अनुभूति थी, उसने 'बालक' के लिये सोने में सुगंध का काम किया।

भाई शिवपूजनजी को मैं हमेशा से ही अपना साहित्यिक अग्रज मानता हूँ। वे 'माधुरी' से फिर 'मतवाला' में आ गये थे। उनकी सलाह और स्वीकृति से हेडिंग, कवर आदि के डिजाइन हिन्दी के ख्यातनामा चित्रकार श्रीरामेश्वर प्रसाद वर्मा * से तैयार कराये गये।

* सन् १९२९ ई० में जब मास्टर साहब कलकत्ते गये थे, तब वर्मा जी से उनका साक्षात्कार हुआ था। वर्माजी इसी साल इंगलैंड जाने के सिलसिले में 'पुस्तक-भंडार'

'बालक' का पहला अंक वणिक् प्रेस, (कलकत्ता) में छपाया गया। बाद वह ज्ञानमंडल प्रेस (बनारस) में छपने लगा। पुस्तक-मालाओं और 'बालक' का काम कुछ ऐसी प्रगति से बढ़ा कि अब वह अकेले हमलोगों के सँभालने योग्य नहीं रह गया। मास्टर साहब की यह हार्दिक इच्छा थी कि भाई शिवपूजन सहायजी किसी तरह बिहार में लाकर बैठाये जायँ और उनकी प्रतिभा का पूरा उपयोग प्रान्त की साहित्य-वृद्धि में किया जाय। चूँकि छपाई का काम काशी में होता था, अतः शिवपूजन भाई को वहीं रखने का निश्चय हुआ। बाबा विश्वनाथ के अनन्य भक्त शिव भैया को तो यही चाहिये था। जिस दिन कलकत्ता से सपरिवार भाई शिवपूजन काशी आये, उस दिन हमलोगों के कन्धे से एक बहुत बड़ा भार उतर गया।

'बालक' ने निकलते ही एक अजीब धूम मचा दी। इंडियन प्रेस (प्रयाग) से उस समय 'बालसखा' बड़ा सुन्दर निकलता था, अब भी निकलता है। वहीं के सुदर्शन प्रेस से 'शिशु' भी अच्छा निकलता था, जो आज भी निकल रहा है। कई बालोपयोगी पत्र और भी थे। पीछे और कई नये पत्र निकले। किन्तु 'बालक' ने अपनी उम्र से बड़ों को कहीं पीछे छोड़ दिया और छोटों को तो छाया भी न छूने दी। हिन्दी के महारथियों और आचार्यों ने एक स्वर में कहा—"यह तो हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ बालोपयोगी पत्र है।" बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों के पत्रों ने भी यह माना कि 'बालक' की कोटि का बालोपयोगी पत्र उन प्रान्तों की भाषाओं में भी नहीं निकलता।

इधर 'बालक' शान से निकलता रहा, उधर पुस्तक-मालाओं में भी धीरे-धीरे मनोहर पुस्तक-कुसुम गूँथे जाने लगे। हिन्दी-संसार के धुरंधर विद्वानों, कवियों, लेखकों और कथाकारों का अधिकाधिक सहयोग प्राप्त होता गया। लहेरियासराय का 'पुस्तक-भंडार' अब प्रान्त के एक कोने में स्थित एक छोटी-सी संस्था नहीं रह गया। निस्सन्देह उसे इस हालत में पहुँचाने में मास्टर साहब की लेखनी, सहृदयता, महाशयता और सूक्ष्म व्यापारिक सूझ ने बहुत बड़ा काम किया।

शुरू से ही मास्टर साहब का ध्यान बिहार के लेखकों और कलाकारों को प्रोत्साहन देने की ओर था। बिहार में प्रतिभा की कमी नहीं, किन्तु बिहारियों के

में आये थे। मास्टर साहब ने उन्हें एक हजार रुपये दिये थे। जब तक वर्माजी इंगलैंड में रहे, तब तक उनके घर २०) माहवार 'भंडार' से जाता रहा। इंगलैंड से भी वर्माजी की फिर माँग आई तो भंडार से ६००) और भेजे गये थे। वहाँ से लौटने पर दुर्भाग्यवश वर्माजी अधिक दिनों तक नहीं जी सके। अन्यथा वे भी इस अवसर पर कृतज्ञता प्रकट करते।—लेखक

१

२

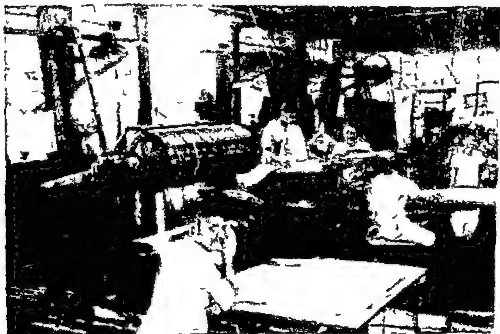

१–२ – विद्यापति प्रेस में बड़ी (फ्लैट) मशीनों पर छपाई हो रही है

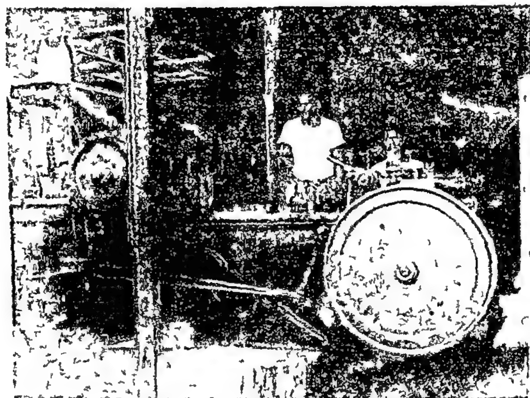

विद्यापति प्रेस की लीथो-मशीन

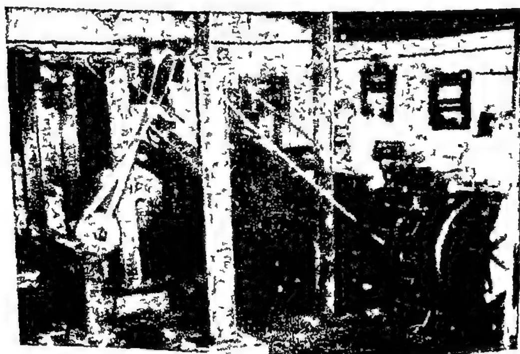

विद्यापति प्रेस में ट्रेडिल मशीनों पर काम हो रहा है

संकोचशील स्वभाव के कारण वह ढकी रह जाती है। अतः उन्होंने सिर्फ नवीन लेखकों और कवियों को ही लिखने के लिये प्रोत्साहित नहीं किया, बल्कि उन बड़े-बूढ़े लेखकों को भी उकसाया जो एक तरह से सन्यास ले चुके थे। वे भी अपना प्रसाद देने को बाध्य हुए। 'बालक' के आरम्भिक अंकों को देख जाइये, पुस्तक-मालाओं की लेखक-नामावली देखिये, आप-से-आप इस बात की सत्यता प्रकट हो जायगी। आज बिहार के जिन नवयुवक कवियों ने अपनी प्रतिभा से हिन्दी-संसार को चकित विस्मित कर रक्खा है, उन्हें 'बालक' के पन्नों में ढूँढ़िये, एकाध को छोड़ सबकी प्रारम्भिक रचनाएँ आपको दीख पड़ेंगी। यही नहीं, साहित्याचार्य प० चन्द्रशेखर शास्त्री, बाबू शिवनंदन सहाय, प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र, प्रोफेसर राधाकृष्ण झा, बाबू व्रजनंदन सहाय, डाक्टर गंगानाथ झा, पंडित सकलनारायण शर्मा, प० जनार्दन झा 'जनसीदन', आचार्य बदरीनाथ वर्मा आदि मनीषियों की रचनाएँ भी आपको 'बालक' के नन्हें कलेवर में अंकित मिलेंगी।

किन्तु मास्टर साहब के स्वप्रान्त-प्रेम का अर्थ अन्य प्रान्तों से विद्वेष नहीं था। संकीर्ण-हृदयता से वे हमेशा बचते रहे। यही कारण है कि सभी प्रान्तों के नूतन और पुरातन हिन्दी-सेवकों से उनका साहित्यिक संबंध आज तक निभ रहा है।

उनके स्नेह से सभी प्रकार की आर्थिक झंझटों से निश्चिन्त होकर दिन-रात मैं भी साहित्य-सेवा में ही व्यतीत करता—नित नये साहित्यिकों की संगति का लाभ उठाता। तबतक 'पुस्तक-भंडार' का अपना प्रेस नहीं खुला था। छपाई का सारा काम काशी में ही होता रहा। अतः मेरे ज्यादा दिन काशी के साहित्यिक वायु-मंडल में ही व्यतीत होते। बड़े-बूढ़ों में प० अयोध्या सिंह उपाध्याय, लाला भगवान 'दीन', प्रेमचंदजी, जयशंकर 'प्रसाद' जी, रायकृष्ण दासजी, बाबू व्रजरत्न दासजी, बाबू रामचंद्र वर्मा आदि एवं समवयस्कों में उग्र, सुमन, द्विज, लक्ष्मीनारायण मिश्र, श्री विनोदशंकर व्यास, श्रीवाचस्पति पाठक, श्री केदारनाथ शर्मा सारस्वत आदि की वह गोष्ठी भूलने की चीज नहीं।

मास्टर साहब के 'पुस्तक-भंडार' से सिर्फ पुस्तक-प्रकाशन ही नहीं हुआ, लहेरियासराय में एक साहित्यिक वातावरण भी पैदा होने लगा। प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन का जो अधिवेशन लहेरियासराय में हुआ, वह शायद सर्वश्रेष्ठ अधिवेशन था। सम्मेलन के सभापति थे श्रद्धेय राजेन्द्र बाबू, कवि-सम्मेलन के कुमार गंगानंद सिंह और सम्पादक-सम्मेलन के काशी-निवासी श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे। उसी अवसर पर 'भंडार' के अहाते में विद्यापति-वाचनालय भी खोल दिया गया। 'पुस्तक-भंडार' बिहार का भारती-पीठ बन गया।

किन्तु, ईश्वर की इच्छा थी कि मैं साहित्य-सुरसरि की स्वच्छ-शीतल धारा को छोड़कर राजनीति के प्रखर निर्झर में अवगाहन करूँ। शुरू से राजनीतिक विषयों की तरफ मेरा झुकाव था। अब वह दिन-दिन उग्रतर होता गया। अन्तत वह एक ऐसे विन्दु पर पहुँचा, जहाँ से विशुद्ध साहित्य-सेवी मास्टर साहब के साथ मेरा सबध-विच्छेद होना अनिवार्य हो गया। यद्यपि न यह मेरी इच्छा थी, न मास्टर साहब की।

'बालक' छोड़कर मैंने 'युवक' चलाना शुरू कर दिया। मेरे अबतक के विशुद्ध साहित्यिक जीवन में सहसा राजनीति ने प्रवेश किया, जिसका रग अब दिन-दिन गहरा ही होता जा रहा है। लेकिन मास्टर साहब और 'भडार' से मेरा सद्भाव आज भी वैसा ही है। 'भडार' से हटने के बाद भी मैंने कितनी ही पुस्तकें लिखकर 'भडार' को दीं और मेरी जरूरतों पर मास्टर साहब ने हमेशा ही ध्यान रक्खा है।

मुझे सबसे बडी खुशी इस बात की है कि जो साहित्यिक योजनाएँ मास्टर साहब ने तैयार की थीं, वे आज भी जारी हैं। खासकर शिवपूजन भाई के सहयोग से उनमे कोई व्याघात नहीं हो रहा है। 'बालक' का सम्पादन-भार अब स्वय मास्टर साहब ने ग्रहण किया है और नाना प्रकार की व्यापारिक झमटों में व्यस्त रहने पर भी वे बाल साहित्य-निर्माण के अपने अगाध अनुभव के बल पर उसे अब तक शान से चलाते जा रहे हैं। पुस्तक-मालाओं का कार्य भी जारी है और कितने ही उपयोगी पुस्तक-पुष्प उनमें गुम्फित होते चले जा रहे हैं।

'भडार' ने अपने स्कूली पुस्तकों के प्रकाशन क्षेत्र में भी बडी उन्नति की है। उच्च-से-उच्च श्रेणी की पुस्तकें ऐसी सजधज से निकली हैं कि कलकत्ता-बम्बई की कौन बात, विलायती प्रकाशन से भी वे होड कर सकती हैं। प्रान्त के शिक्षा-विभाग ने भी उन्हें दिल खोलकर अपनाया है।

'भडार' का अपना एक विशाल अप-टु-डेट प्रेस भी हो गया है, जो मिथिला के महाकवि विद्यापति ठाकुर की स्मृति में स्थापित होने से 'विद्यापति प्रेस' नाम से विख्यात है। पटना में भी 'भडार' की शाखा खुल गई है। वहाँ भी 'हिमालय प्रेस' खुल गया है। श्री उपेन्द्र महारथी-जैसे निपुण चित्रकार के सहयोग ने प्रकाशन में चार चाँद लगा दिये हैं।

'पुस्तक-भडार' का श्रीगणेश सिर्फ सत्तर-पचहत्तर रुपये से हुआ था। मास्टर साहब एक गरीब परिवार के सपूत हैं, जिन्होंने बडी मुश्किल से नार्मल की परीक्षा पास कर हिन्दी-अध्यापन का काम शुरू किया था। अध्यापक रहते हुए ही उन्होंने

कि सितम्बर-अक्तूबर तक भी दरभंगे मे आम मिल सकते हैं या नहीं। उस समय तक मैंने बिहार की सीमा मे कभी पैर भी नहीं रक्खा था—यद्यपि हमारे कई मित्र और रिश्तेदार बिहार में हैं।

मैंने एक पत्र में यों ही मास्टर साहब या बेनीपुरीजी से पूछा कि आम खतम हो चुके या नहीं। मैं यह नहीं समझता था कि उत्तर के स्थान मे मुझे पके आम ही मिल जायँगे, क्योकि एक तो फसल बीत चुकी थी, दूसरे लहेरियासराय से खुर्जा इतनी दूर था कि आते-आते आम सड जाते। पर देखता क्या हूँ कि एक सप्ताह के भीतर ही एक दिन मुझे रेलवे पार्सल की एक रसीद मिलती है। पार्सल जब घर पहुँचा, विद्यार्थियों तथा मित्रो ने घेर लिया। भला दिल्ली के दरवाजे पर दरभगा के पके आमो की सुगध कैसे छिपी रह सकती थी? एक-एक करके सब आम समाप्त हो गये। मेरे हिस्से में तो उतने आम भी न आये जितने भेजनेवाले ने समझा होगा।

मुझे उर्दू में मौलाना हाली वाली आमो की तारीफ और हिन्दी मे 'आम दयाराम के' वाली पक्ति स्मरण हो आई। पर साथ-ही-साथ जापान गये हुए उन पजाबी भाइयों की भी याद आ गई, जिन्होने स्वदेश से दिवाली के अवसर पर मिठाइयों का पार्सल मँगाया था। कथा यों है। कुछ पजाबी सज्जन पार्सल लेकर आ रहे थे। रास्ते मे चुगीवालों ने तग करना शुरू किया। पूछा, इसमे क्या है? पजाबी मसखरे तो ठहरे ही, ये लोग नवयुवक विद्यार्थी भी थे, सब ने कहा—कुछ नहीं है। चुगीवाले आश्चर्य से ताक ही रहे थे कि इनलोगों ने पार्सल खोलकर सब मिठाइयाँ वहीं खा डालीं, चुगी का एक पैसा भी न दिया। बेचारे चुगीवाले दग रह गये। पता नहीं, पजाबी मित्रो ने कुछ मिठाइयाँ चुगीवालो को दी थीं या नहीं, पर मेरे साथ तो पजाब के उन पडोसियों ने कुछ ज्यादती नहीं की, और करते भी तो अपना लगा ही क्या था—मास्टर साहब ने तो पार्सल के सारे पैसे पहले ही चुका दिये थे। हाँ, कुछ आम दबकर खराब अवश्य हो गये थे।

मैं चकित रह गया। पत्र में पूछने मात्र स ही पार्सल आ पहुँचा, यह साहित्यिक मैत्री का ही नमूना था। इसके पहले ही मैंने अपने बडे लडके चिरंजीव सुधाकर को 'बालक' का उपनाम दे दिया था। कारण यह था कि पुस्तक-भडार से 'बालक' थोडे ही दिन पूर्व निकला था। वह हम सब लोगों को इतना पसद आया कि उसी समय से घर के सभी लोग सुधाकर को 'बालक' कहने लगे। तभी से उसका यह उपनाम सारे परिवार और नातेदारो मे पूर्णरूप से प्रचलित है।

उस समय 'बालक' बनारस में छपता था। तब से इस बीच मे 'बालक' सुधाकरजी तो एक-दो बार दरभगा और लहेरियासराय हो भी आये हैं। हाँ,

मास्टर साहब की सरसता

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी, 'समीर', एम ए., कप्तानगंज, बस्ती (युक्तप्रांत)

मेरे मित्रों मे अनेक ऐसे हैं जिनसे मेरा प्रथम परिचय साक्षात्कार द्वारा नहीं, पत्र-द्वारा हुआ है। पता नहीं, यह दुर्भाग्य की बात है या सौभाग्य की, पर बचपन से ही मेरा यह सिद्धान्त रहा है कि कोई दिन ऐसा न जाने देना चाहिये जब मनुष्य कोई नई बात न जान ले या किसी अच्छे व्यक्ति से परिचय न प्राप्त कर ले। इसका फल यह हुआ है कि मेरे परिचितों की संख्या बहुत अधिक हो गई है और कभी-कभी तो मैं प्रसिद्ध अँगरेजी कहावत कह बैठता हूँ—"God save me from my friends—परमात्मा मुझे मेरे मित्रो से बचावे।" पर हर्ष इस बात का है कि इसी पुरानी आदत के कारण मेरे कई ऐसे मित्र भी मिले, जिनका मेरे जीवन पर अद्भुत प्रभाव पड़ा और जिन्हें जीवन-भर मैं कभी न भूलूँगा। मास्टर साहब भी मेरे ऐसे ही पुराने मित्रों में हैं।

आज से १३-१४ वर्ष पहले की बात है। मैं दिल्ली के पास एडवर्ड कौरोनेशन कालेज में प्रोफेसर था। उसके तीन-चार वर्ष पहले ही मेरी दो पुस्तकें—'सौरभ' तथा 'सोने की गाड़ी'—भंडार से प्रकाशित हो चुकी थीं, पर न तो बेनीपुरीजी से और न मास्टर साहब से ही मेरा साक्षात्कार हुआ था। हाँ, पत्रों द्वारा अलबत्ता बहुत दिनों से परिचय था।

खुर्जा (बुलन्दशहर) में रहते हुए एक दिन मुझे बिहार की लीचियों और विशेषत दरभंगा के आमों की याद आ गई। खाने की इच्छा तो उतनी नहीं थी—यद्यपि ब्राह्मण के नाते तो किसी भी मीठी वस्तु के खाने से इनकार करना पाप में दाखिल हो जायगा (ब्राह्मणो मधुरप्रिय), पर यह जानने की बहुत इच्छा थी

हमारी स्मृति

श्रीविश्वमोहनकुमारसिंह, बी० ए० ऑनर्स (लंदन), एम ए (पटना) प्रिंसिपल,
चन्द्रधारी मिथिला-कालेज, दरभंगा

साहित्य की सेवा कई प्रकार से होती है। एक तो ग्रन्थकार करते हैं, जो अपने जीवन की अनुभूतियों को एकत्र कर अपनी कल्पना-शक्ति द्वारा उन्हें सजीव तथा प्रत्यक्ष कर दिखाते हैं। दूसरी सेवा प्रकाशकों द्वारा होती है, जो अपनी सहज बुद्धि से नवीन भावों को ताड़ जाते हैं और उनके उत्पादकों को संसार के सामने ला रखते हैं। इन दोनों के संयोग से ही नवयुग का जन्म होता है।

इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी में नवयुग का प्रादुर्भाव हुआ है। इसकी किरणें धीरे-धीरे उज्ज्वल और भासमान होती जा रही हैं। आशा है, थोड़े ही समय में जीवन का सारा आकाश इनसे उद्भासित हो उठेगा।

मैं बहुत छोटा था। हृदय की आकांक्षाएँ शनै-शनै खिलती जा रही थीं। उस समय की मुझे याद है। श्रीरामलोचनशरणजी की पुस्तकों ने ही मेरी मानसिक तृषा शान्त की थी। जिस समय असहयोग आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ और हिन्दुस्तान उमंग की तरंगों से उद्वेलित हो उठा था, उस समय भी विहार में यदि कोई प्रकाशक उन उमंग-तरंगों को सीमाबद्ध कर साहित्य का सुन्दर स्वरूप दे सका, तो वे श्रीरामलोचनशरण ही थे। इनका सारा जीवन ही साहित्यमय रहा है। पुस्तकों द्वारा अर्थ-साधन तो इनका ध्येय न था, लेकिन पुस्तकों द्वारा मानसिक मोक्ष का रास्ता दिखाने का श्रेय इनको अवश्य है। नवयुग का प्रादुर्भाव एक मनुष्य से नहीं होता, परन्तु विहार में नवयुग लानेवालों में श्रीरामलोचनशरणजी का स्थान बहुत ऊँचा रहेगा।

स्वप्न मे भी मेरे ध्यान मे यह नहीं आया था कि मैं मास्टर साहब का ऐसा साक्षात्कार प्राप्त कर सकूँगा कि मुझे स्थायी रूप से उनके पड़ोस मे ही रहना पडेगा। वेनीपुरीजी तो मुझसे प० माखनलाल चतुर्वेदी के साथ मध्यभारत (धार) मे ही मिल चुके थे और मेरा आतिथ्य भी स्वीकार कर चुके थे, पर मैं जब धार के महाराजा-कालेज से पिताजी के देहात के पश्चात् घर के पास आया तब दरभगा-राज्य के शिक्षा-विभाग का अध्यक्ष होकर। मुझे यह पता भी न था कि लहेरिया-सराय दरभगा जिले की राजधानी है। जब दरभगा के रास्ते में लहेरियासराय स्टेशन का नाम देखा, ट्रेन में ही उछल पडा।

मास्टर साहब की आवभगत का क्या कहना! भाई वेनीपुरीजी के स्थान मे पुराने मित्र शिवपूजनजी को देखकर सतोष हुआ। 'बालक' के सहकारी सम्पादक दत्तजी से परिचय हुआ और 'कमलेश' जी से भी। पर सबसे अपार हर्ष हुआ स्वय मास्टर साहब के दर्शनों से और उनके छोटे बच्चे प्यारे लालबाबू (मैथिलीशरण) को देखकर। यह १९३८ की बात है, जब लालबाबू केवल ६ वर्ष के थे और एक छोटे अँगरेजी-हिन्दी-शिशुकोष (Baby Dictionary) का प्रकाशन करा रहे थे। परमात्मा लाल बाबू को दीर्घायु करे। इनसे बिहार में हिन्दी की कीर्त्ति स्थायी होनेवाली है।

पिता-पुत्र दोनों मेरे आग्रह से दरभगा-राज्य के लालबाग के गेस्ट-हाउस में मेरे पास आये। मैंने मास्टर साहब को कुछ खिलाना चाहा, पर वे कुछ भी खाने को राजी न हुए। चलते समय उन्होंने हँसी मे कहा—"मैंने आमों का पार्सल भेजा था, बदले मे आप भी एक-दो आम दे दीजिये।" मैंने लालबाबू को बस्ती के पेड़े और नमकीन खिलाकर ही सतोष किया।

'भडार' से तो दूर रहकर भी मेरा वैसा ही नाता बना रहेगा। मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि जैसी उदारता तथा त्याग से मास्टर साहब ने इस साहित्यिक यज्ञ का आयोजन किया है—जिसे अब २५ वर्ष हो गये हैं—वैसी ही लगन एव तपस्या से वे और उनके पुत्र-पौत्र इस महान् यज्ञ को सम्पन्न करते रहें। तथास्तु।

कर, और अंत में जो लाभ हो उसमें से लेखकों को उचित पारिश्रमिक देकर अपना हिस्सा निकाल लें।

जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, लहेरियासराय का पुस्तक-भंडार 'दाल में नमक' खाकर ही संतोष करता आया है। उसने पाठ्य पुस्तकें अवश्य प्रकाशित की हैं—इसके लिये हम उसपर दोषारोपण कर ही नहीं सकते, फिर तो शायद ही कोई प्रकाशक इस दोष से बच सके—परन्तु पाठ्य पुस्तकों से होनेवाले लाभ को 'भंडार' ने अन्य प्रकाशकों की भाँति सैर-सपाटे में और होटलों के बिल चुकाने में नहीं खर्च किया है, वरन् उससे साहित्य की सुन्दर-सुन्दर पुस्तकें प्रकाशित की हैं। यों एक ओर तो उसे हिन्दी-साहित्य की उन्नति में योग देने का सुयोग प्राप्त हो सका और दूसरी ओर उसको हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवियों—यथा लाला भगवान 'दीन', आचार्य द्विवेदीजी, 'प्रसादजी', आचार्य शुक्लजी, 'हरिऔधजी' आदि की सुन्दर रचनाएँ हिन्दी-संसार को भेंट करने का। इसके लिये हम उसे बधाई देते हैं, उसके भाग्य की सराहना करते हैं। इस संबंध में हमें यह कहते संकोच न होना चाहिये कि संयुक्तप्रान्त के प्रकाशकों में इंडियन प्रेस के बाद—नागरी-प्रचारिणी सभा का क्षेत्र दूसरा है—हिन्दी भाषा और साहित्य के लिये जितना कार्य किसी भी दूसरे प्रकाशक ने किया है, उतना ही कार्य बिहार के प्रकाशकों में पुस्तक-भंडार ने किया है। हमारे कुछ प्रकाशकों से पुस्तक-भंडार इसलिये भी बढ़ जाता है कि उसके अध्यक्ष स्वयं भी संपादक, लेखक और बाल-साहित्य के सुंदर पारखी हैं।

एक बात और। काशी में उपर्युक्त साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर पुस्तक-भंडार से प्रकाशित होनेवाले 'होनहार' की भाषा की कड़ी आलोचना की गई थी। सम्मेलन के बाद भी यह आलोचना उग्र रूप धारण करती रही। इस संबंध में मुझे केवल इतना ही कहना है कि पुस्तक-भंडार की हिन्दी-सेवा पर दृष्टि रखते हुए यदि आलोचना की जाती तो विशेष लाभ होता। दोष देखनेवाली आँख को साफ करके यदि देखें तो 'पुस्तक-भंडार' की गिनती हम उच्चकोटि के ग्रंथ प्रकाशित करनेवाले प्रकाशकों में करने को बाध्य होंगे।

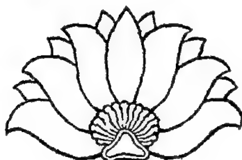

प्रकाशन-कार्य और पुस्तक-भंडार

श्रीप्रेमनारायण टंडन, रानीकटरा, लखनऊ

काशी में अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर मुझसे एक प्रकाशक ने कहा था—पुस्तक-प्रकाशन से सस्ता कोई व्यवसाय नहीं। मैं भी इससे सहमत हूँ। व्यवसाय का प्रधान उद्देश्य पैसा कमाना है। प्रकाशक भी इसीलिये पुस्तकें प्रकाशित करते हैं कि उन्हें चार पैसे मिल जायँ। तभी तो वे प्रत्येक पुस्तक का प्रकाशन करते समय लेखकों से अथवा अपने सलाहकारों से पूछ लिया करते हैं कि अमुक पुस्तक कितनी निकल जायगी अथवा निकल सकती है। साधारण व्यापार में यदि व्यवसायी 'दाल में नमक' खाता है, तो हम इसे उसका हक—उसके परिश्रम की मजदूरी समझते हैं। परन्तु यदि वह बेईमानी करता है तो हम झुँझला पड़ते हैं। मैं समझता हूँ, अन्य व्यवसायों की अपेक्षा पुस्तक-प्रकाशन-कार्य में अधिक मुनाफे के साथ-साथ बेईमानी भी ज्यादा करने की गुंजाइश है।

शायद हमारे कुछ हिन्दी-प्रकाशक इन दोनो बातों को सुनकर चौंक पड़ेंगे। कारण, एक ओर तो डिपार्टमेंट का दरवाजा बंद है, दूसरी ओर लड़ाई के कारण, छपाई का सामान और कागज बहुत मँहगा हो गया है। अत आज तो उनका चौंकना ठीक समझा जायगा। परन्तु उन्हें यह भी मानना पड़ेगा कि पिछले बीस वर्षों में ज्यों-ज्यों हिन्दी प्रचार हुआ है त्यों-त्यों उनका व्यवसाय बढा है, और प्राय सभी प्रकाशक दाल में नमक नहीं, दाल की दाल उड़ाकर मोटे हो गये हैं।

यदि प्रकाशक दाल में 'नमक' खायें तो कोई हानि नहीं, पर 'दाल की दाल' उड़ा जाना वैसा ही बुरा है जैसा रिशवत लेकर पैसा कमाना। मेरा आशय यह है कि प्रकाशक सुन्दर-सुन्दर पुस्तकें प्रकाशित करें, उनके विज्ञापन का प्रबंध

उसी समय कुछ ऐसी छोटी स्कूली पुस्तके मिलीं, जिनपर प्रकाशक का नाम था पुस्तक-भडार, लहेरियासराय। चूँकि लेखको के नामों की ओर हमलोगों का ध्यान न गया, इसलिये आज भी वह स्मरण नहीं। सबसे अधिक कौतूहल का भाग था 'लहेरियासराय'। पता नहीं क्यों, हमलोग समझते थे कि बिहार मे पटना के अतिरिक्त और किसी शहर के लिये प्रकाशन के क्षेत्र मे या पुस्तक-प्रणयन के क्षेत्र में—क्योंकि प्रकाशन और प्रणयन का भेद उस समय अच्छी तरह नहीं जानते—प्रवेश करना एकदम असम्भव था। शायद अकारण ही मन मे यह भी आता था कि यह 'भडार' की अनधिकार चेष्टा है।

पाँच-सात साल हाइस्कूल और कालेज की पढ़ाई मे निकल गये। उन दिनों 'भडार' की प्रगति की ओर विशेष ध्यान न गया। अवसर भी नहीं था। पर सयोग-वश फिर प्राइमरी और मिड्ल वर्गों की पुस्तकें देखने का अवसर मिला। घर के छोटे-छोटे लडके उन्हें पढते थे। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि उन दिनों 'पुस्तक-भडार' इतना उन्नत हो गया था कि अधिकाश हिन्दी-शिक्षक वहीं की प्रकाशित पुस्तकें पढाना पसन्द करते थे, क्योंकि वहाँ की पुस्तकें कुछ नवीन और सशोधित शैली की हुआ करती थीं।

कुछ वर्षों के बाद यह देखकर और अधिक हर्ष हुआ कि पुस्तक-भडार का कार्य-क्षेत्र अब पाठ्यपुस्तकें निकालने तक ही सीमित नहीं है, उसने बहुत-सी साहित्यिक पुस्तके भी हिन्दी के प्रतिष्ठित कवियों और लेखकों से लिखवाकर निकाली हैं। आज तक उसका यह काम जारी है। 'बालक' का प्रकाशन, सुरुचि-पूर्ण सम्पादन और सबसे बढकर उसका स्थायित्व, न केवल 'भडार' और बिहार के लिये, बल्कि हिन्दी-ससार के लिये भी गौरव का विषय है।

इस प्रकार बहुत अरसे तक मैं पुस्तक-भडार को केवल नाम से जानता रहा। इस सफल उद्योग के पीछे कौन-सा व्यक्तित्व है, यहाँ मुझे जानने का मौका न मिला था। किन्तु आज से कुछ साल पहले 'भडार' के 'मास्टर-साहब' से भेंट हुई। उनसे बातचीत करने पर, और उनके व्यक्तित्व से परिचित होने पर, मुझे 'भडार' की सारी सफलता का रहस्य स्पष्ट मालूम हो गया। उनका मनोहर व्यक्तित्व, अपनापनवाला सद्व्यवहार, आनन्ददायक बात-चीत, और अटूट लगन देखकर विस्मयपूर्ण आनन्द हुआ। तब पता चला कि क्योंकर इस व्यक्ति ने जीवन के दौरान में एक सामान्य स्थिति से उठकर इतना ऊँचा स्थान प्राप्त किया है। उन्होंने बिहार मे नये क्षेत्र मे कार्य्य प्रारम्भ किया, समय की गति को पहचाना, और अपनी व्यावसायिक उन्नति के साथ ही देश का इतना बड़ा उपकार किया।

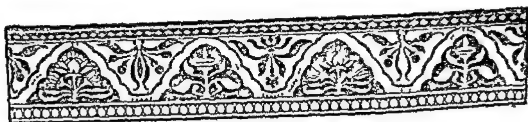

'पुस्तक-भंडार'—एक आदर्श संस्था

प्रोफेसर सतीशचन्द्र मिश्र, एम० ए०, बी० एन० कालेज पटना

आज से लगभग बीस साल पहले की बात है। हमलोग शायद अपर या मिड्ल की कक्षा में पढ़ते थे। उन दिनों पुस्तकों के प्रकाशक या लेखक के नाम जानने का अधिक कौतूहल नहीं रहता था। पुस्तक जैसी भी हो और जहाँ-कहीं से भी प्रकाशित हो, उसके प्रति एक प्रकार की विशेष श्रद्धा हुआ करती थी। पुस्तक-प्रणयन हमलोगों की कल्पना में एक ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्य था, जो असाधारण व्यक्तियों के लिये ही सम्भव हो सकता था। इस धारणा के अनुसार मैं समझता था कि लेखक या प्रकाशक कोई ऐसा-वैसा व्यक्ति नहीं हो सकता, जो समीप के गाँवों या शहरों का रहनेवाला हो। उसे ऐसा होना चाहिये जिसको देखना हमलोगों को नसीब न हो, और उसका निवास-स्थान ऐसी जगह हो जहाँ तक बचपन में हमलोगों का पहुँचना कठिन हो। अतएव हमलोग स्वभावतः यही सोचते थे कि लेखक या प्रकाशक इलाहाबाद या बनारस में ही जन्म ले सकता है या पनप सकता है—अधिक-से-अधिक पटना में। उससे आगे भागलपुर, मुंगेर, पूर्णिया, दरभंगा आदि के लिये लेखक पैदा करना कल्पना से परे था।

इलाहाबाद या बनारस के प्रकाशकों के नाम तो मालूम नहीं होते थे। शायद देखने पर भी उन दिनों हमलोग उन्हें अपनी स्मृति में रख नहीं सकते थे। बिहार के प्रकाशकों में बाँकीपुर के खड्ग-विलास प्रेस का नाम अलबत्ता हमलोगों को अच्छी तरह मालूम था। हिन्दी की पुस्तकों के अतिरिक्त बचपन में हमलोग और किसी भाषा की पुस्तकों से कोई सरोकार नहीं रखते थे। अपने समय में हमलोग ठोस हिन्दी-युग में पैदा हुए थे। हिन्दू विद्यार्थियों के लिये हिन्दी के सिवा और किसी देशी भाषा का खयाल भी नहीं हो सकता था।

विहार की अनुपम विभूति

श्रीमथुरानारायणलाल, शुभंकरपुर, दरभंगा

हमने मास्टर साहब का बहुत मनन किया, मगर कुछ पता न चला। उनमें लौकिक और अलौकिक बातों का समावेश है। हमारे लिये वे अभी तक एक रहस्य ही रह गये।

सद्गुणों के वे भंडार हैं। सद्गुणी के पास सभी विभूतियाँ स्वतः चली आती हैं। सरस्वती की सेवा करते-करते उनपर लक्ष्मी की भी बहुत कृपा हो गई। मगर उनमें अभीतक अहंकार का लेश भी नहीं आया। उनके धार्मिक विचार भी घटने के बदले दिन-दिन बढ़ते ही जा रहे हैं।

धनी और गरीब, विद्वान् और मूर्ख, सबसे वे एक-सा मिलते हैं। तारीफ तो यह कि जिसका उनसे सम्पर्क है, सब यही समझते हैं कि मास्टर साहब सबसे ज्यादा हमी को मानते हैं और हमारे ही ऊपर उनका सबसे बेशी ख्याल है।

जिस समय वे लेखन और प्रकाशन के क्षेत्र में एकाएक कूद पड़े थे, उस समय विहार इस कार्य में सबसे पीछे पड़ा हुआ था। अब कलकत्ता, बम्बई और मद्रास को छोड़कर और कौन दूसरी जगह है जो हमारे दरभंगा का मुकाबला करे? विहार में वे लेखन प्रकाशन-कार्य के पायनियर (Pioneer) हैं।

भारतवर्ष में वे अपने ढँग के एक ही आदमी है। कोई बता दे—किसी एक प्रकाशक का नाम, जिसने स्वयं इतनी पुस्तकों का निर्माण किया हो, और जिसका जीते-जी इतना आदर हुआ हो। लेखकों का आदर भी उनके यहाँ से बढ़कर और कहाँ है? उनका 'बालक' तो बाल संस्कृति के उत्थान का बहुत बड़ा साधन है।

मास्टर साहब की देख-रेख में भंडार, हिन्दी की प्रकाशन-संस्थाओं में, एक ऊँचा स्थान रखता है। कितने ही लेखक और विद्वान् इससे हर प्रकार की सहायता और प्रोत्साहन पाते हैं। कितने ही आवश्यकता-ग्रस्त लेखक और विद्वान् इसके ऋणी हैं। कितने ही विद्यार्थियों ने इसके द्वारा शिक्षा प्राप्त करने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहायता पाई है। जनता की सामूहिक शिक्षा के लिये इसने जो काम किया उसके उपलक्ष्य में सरकार से मास्टर साहब को स्वर्णपदक मिल चुका है। निरक्षरों के लिये इन्होंने जो वर्णमाला के चार्ट बनवाये हैं, वे तो उनकी उसी प्रवृत्ति के अन्दर शामिल हैं जो उनकी सफलता का मूलमंत्र रही है। जहाँ तक मेरा अनुभव है, व्यावसायिक नीति की जो सफाई उनके यहाँ है, यह बहुत-से अन्य प्रकाशकों के लिये अनुकरणीय है।

इस प्रकार मास्टर साहब हमारे समक्ष एक व्युत्पन्न प्रकाशक के रूप में आते हैं। किन्तु उनके कार्य-क्षेत्र का दूसरा पहलू भी कम महत्त्व का नहीं है। वह है उनका बाल-साहित्य का निर्माण-कार्य। इन्होंने अपना जीवन शिक्षक की तरह प्रारम्भ किया। उससे यथेष्ट अनुभव भी प्राप्त किया। उसी अनुभव की प्रेरणा से उन्होंने प्रकाशन-क्षेत्र में भी प्रवेश किया। किन्तु उनकी शिक्षण-प्रवृत्ति और उनके विद्या-प्रेम ने अभी तक उनका साथ नहीं छोड़ा है। उन्होंने घोर परिश्रम करके व्याकरण, निबंध-रचना, इतिहास, अंकगणित, नीति इत्यादि विषयों पर बालकों के लिये अनेक उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखी हैं। उनकी विषय-प्रतिपादन शैली से पता चलता है कि अनेक विषयों के ज्ञान के साथ उनमें बाल-मनोविज्ञान का भी गहरा अनुभव है। अनेक स्पष्ट और सरल उदाहरण, इतिहास की कहानियों का रोचक वर्णन, प्रबन्ध-रचना की कठिनाइयों पर वैज्ञानिक प्रकाश इत्यादि उनकी अपनी विशेषताएँ हैं। व्यवसाय का व्यस्त जीवन रहते हुए भी व्यक्तिगत परिश्रम द्वारा इतनी अधिक संख्या में अच्छी-से-अच्छी पुस्तकों का प्रणयन और सम्पादन कोई साधारण बात नहीं। उनकी प्रतिभा और कार्य-क्षमता अद्भुत है। अब उन्होंने अँगरेजी के प्रकाशन-क्षेत्र में भी प्रवेश किया है। मुझे 'भंडार' के पिछले इतिहास को देखते हुए इस बात की पूरी आशा है कि इस कार्य में भी उन्हें पूरी सफलता मिलेगी। ऐसी लोक-हितकारी संस्था उत्तरोत्तर उन्नति करे, यही मेरी शुभकामना है।

वे दिन !

ज्योतिर्विद् पं० कुशेश्वर कुमर, बाजितपुर (मुजफ्फरपुर)

जिनकी स्मृति में आज मैं कुछ लिख रहा हूँ, उन महापुरुष का नाम है बाबू रामलोचनशरणजी। आप चतुर, उदार और अध्यवसायी हैं। सन् १९२० ई० के मार्च महीने में मैं आपके यहाँ उपस्थित हुआ। उस समय एक छोटी-सी दूकान बाजार में थी। आप स्वयं किराये के साधारण मकान में रहते हुए पुस्तक-प्रणयन करते थे। विशेष ध्यान आपका दो कामों की ओर मैंने देखा—प्रथम, अधिक समय तक किताबों की रचना में दत्तचित्त रहते थे—द्वितीय, प्रतिदिन अपराह्न में घर के अन्दर जाकर अपनी नवोढा सहधर्मिणी को पढ़ाया करते थे। आपका विद्यानुराग देखकर मैंने विशेष आग्रह किया कि मेरा बनाया हुआ 'मिथिलादेशीय पचाग' आप प्रकाशित करें। आपने बड़ी प्रसन्नता से पूछा—"आपको क्या मिलना चाहिये ?" मैंने उत्तर दिया—"जो कुछ मिले, मंजूर है।" इतना सुनकर आपने कहा—"पचाग से मुझे लाभ उठाना नहीं है, मैं इस कार्य के द्वारा देश-सेवा करना चाहता हूँ और आप अपनी प्रतिष्ठा समझें।" हम दोनों का सिद्धान्त मिल गया। तब से लगातार दस वर्षों तक प्रतिवर्ष अधिक संख्या में बड़े-छोटे दो आकारों के पचाग प्रकाशित होने लगे और समाज में इस पवित्र कार्य से हम दोनों आदरणीय हुए। पचाग-प्रकाशन के बाद मेरे ऊपर आपकी कृपा बढ़ने लगी। आप पूर्ण उत्साह से कर्मकाण्ड, धर्मशास्त्र आदि विषयों की बहुसंख्यक पुस्तकें मेरे सम्पादकत्व में प्रकाशित कराने लगे, जिससे मेरी जीविका का भी मार्ग प्रशस्त हो गया।

गुरुवर महामहोपाध्याय श्रीमुरलीधर झा (प्रोफेसर, क्वीन्स कालेज,

उनकी बदौलत लेखन-प्रकाशन-व्यवसाय की अपार उन्नति हुई। कितनों की रोटी का सवाल हल हो रहा है। मेरे पास आँकडे तो नहीं हैं, मगर अनुमान से कह सकता हूँ कि १९१६ में, जिस समय 'पुस्तक-भडार' की उन्होंने स्थापना की थी, समग्र बिहार मे पुस्तको की दूकानें बीस-पचीस से अधिक न रही होगी। आज छोटी-बडी सब मिलाकर एक हजार से कम न होंगी। यह किसकी कीर्ति है? उन्हीं की प्रेरणा का फल है।

उन्होंने अपने कुल की, ग्राम की, जाति की और देश की कितनी बडी सेवा की है, यह बहुतेरे जानते हैं। परिश्रम, धीरता और अध्यवसाय के वे अवतार हैं। धन, मान, प्रतिष्ठा पाकर उनमें न अहकार है, न बड़प्पन का दिखावा। छोटे-से-छोटे कुली तक से जिस तरह वे प्रेम से बातें करते हैं, देख-सुनकर हम मुग्ध हो जाते हैं।

ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना है कि दयामय उन्हे दीर्घजीवी करें, जिससे हिन्दी और बिहार की सेवा होती रहे। वे बिहार की अनुपम विभूति हैं, इसमें सदेह नहीं।

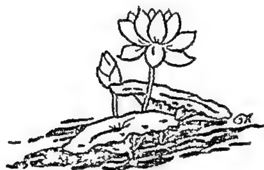

बिहार का साहित्यिक तीर्थस्थान

अध्यापक श्रीजनार्दन मिश्र 'परमेश', कुरसेला (पूर्णिया)

कुछ दिन पहले हिन्दी-ससार में लेखकों के साथ प्रकाशकों का व्यावहारिक सामञ्जस्य नहीं था। विहार में तो खड्गविलास प्रेस को छोड़ साहित्यिक पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली दूसरी सस्था थी ही नहीं। पर वह प्रेस नवीन युग का अनुसरण नहीं कर सका। इसलिये विहार को एक ऐसी प्रकाशन-सस्था की जरूरत थी, जिसका मेल नवयुग की प्रगति के साथ होता।

लगभग बीस साल पहले की बात है। मैं उन दिनों भागलपुर से 'सुप्रभात' नामक मासिक पत्र निकालने में व्यस्त था। लगन थी, पर वातावरण अनुकूल न था। उन्हीं दिनों बाबू शिवपूजनसहाय आरा से प्रकाशित 'मारवाड़ी-सुधार' मासिक पत्र का सम्पादन कर रहे थे। श्रीमोहनलाल महतो 'वियोगी' की कलापूर्ण लेखनी और तूलिका से गया में हिन्दी का शृगार हो रहा था। प० मथुराप्रसाद दीक्षित और बाबू रामधारीप्रसादजी के अथक परिश्रम से प्रातीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का जन्म हो चुका था। हमारे बेनीपुरी, द्विज, कैरव आदि साहित्य-मदिर की शोभा बढा रहे थे।

एक दिन मैं अपने घर पर बैठा हुआ था। किसी ने 'बालक' का पहला अक मेरे हाथ में रख दिया। मैं अत्यन्त हर्ष, विस्मय और कौतूहल के साथ उसे देखने लगा। सम्पादक थे श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी और प्रकाशक श्रीरामलोचन शरण विहारी का पुस्तक-भडार। बेनीपुरीजी को तो मैं अब तक नहीं जानता था, किन्तु शरणजी के नाम से अवश्य परिचित था—यद्यपि उनसे मुलाकात नहीं थी। मासिक साहित्य के सचालन की कठिनाइयों का मुझे काफी अनुभव था। यही मेरे विस्मय का कारण था। फिर 'बालक' का अतरग देखा। उसके सम्पादक को भी अलग से पहचान सका। कलम में जान थी। विचारों में मौलिकता भी थी। साथ ही प्रौढता और सुलझन भी। मैंने उस अक में प्रकाशित

बनारस) की लिखी 'भारती' नामक संस्कृत पुस्तक के प्रकाशन का भार भी मुझे ही सौंपा गया। उड़िया, बँगला और देवनागरी लिपियों में उसे छपवाने के लिये मुझे कलकत्ता जाना पड़ा। मेरे काम से आप बहुत संतुष्ट हुए। अतएव, सन् १९२८ ई० में १७ फरवरी को जब 'विद्यापति' प्रेस का श्रीगणेश हुआ तब आपने मुझको ५०) मासिक वेतन पर प्रेस का मैनेजर बनाया। कुछ समय के बाद आपने 'मिथिला' नामक मैथिली पत्रिका निकाली, जिसके सम्पादन के लिये मुझको तथा बाबू भोलालालदास, बी० ए०, एल० एल० बी० को नियुक्त किया। इस प्रकार, 'भंडार' की वृद्धि शुक्लपक्ष की चंद्रकला की तरह दिनानुदिन होती रही। ईश्वर शरणजी को चिरायु करे, तथा, 'भंडार' की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि हो—यही मेरी कामना है।

बिहार का साहित्यिक तीर्थस्थान

अध्यापक श्रीजनार्दन मिश्र 'परमेश', कुरसेला (पूर्णिया)

कुछ दिन पहले हिन्दी-संसार में लेखकों के साथ प्रकाशकों का व्यावहारिक सामञ्जस्य नहीं था। बिहार में तो खड्गविलास प्रेस को छोड़ साहित्यिक पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली दूसरी संस्था थी ही नहीं। पर वह प्रेस नवीन युग का अनुसरण नहीं कर सका। इसलिये बिहार को एक ऐसी प्रकाशन-संस्था की जरूरत थी, जिसका मेल नवयुग की प्रगति के साथ होता।

लगभग बीस साल पहले की बात है। मैं उन दिनों भागलपुर से 'सुप्रभात' नामक मासिक पत्र निकालने में व्यस्त था। लगन थी, पर वातावरण अनुकूल न था। उन्हीं दिनों बाबू शिवपूजनसहाय आरा से प्रकाशित 'मारवाड़ी-सुधार' मासिक पत्र का सम्पादन कर रहे थे। श्रीमोहनलाल महतो 'वियोगी' की कलापूर्ण लेखनी और तूलिका से गया में हिन्दी का शृंगार हो रहा था। पं० मथुराप्रसाद दीक्षित और बाबू रामधारीप्रसादजी के अथक परिश्रम से प्रांतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का जन्म हो चुका था। हमारे बेनीपुरी, द्विज, कैरव आदि साहित्य-मंदिर की शोभा बढ़ा रहे थे।

एक दिन मैं अपने घर पर बैठा हुआ था। किसी ने 'बालक' का पहला अंक मेरे हाथ में रख दिया। मैं अत्यन्त हर्ष, विस्मय और कौतूहल के साथ उसे देखने लगा। सम्पादक थे श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी और प्रकाशक श्रीरामलोचन शरण बिहारी का पुस्तक भंडार। बेनीपुरीजी को तो मैं अब तक नहीं जानता था, किन्तु शरणजी के नाम से अवश्य परिचित था—यद्यपि उनसे मुलाकात नहीं थी। मासिक साहित्य के संचालन की कठिनाइयों का मुझे काफी अनुभव था। यही मेरे विस्मय का कारण था। फिर 'बालक' का अंतरंग देखा। उसके सम्पादक को भी अलग से पहचान सका। कलम में जान थी। विचारों में मौलिकता भी थी। साथ ही प्रौढ़ता और सुलझन भी। मैंने उस अंक में प्रकाशित

विज्ञापनों से यह भी जान लिया कि 'भंडार' बालकोपयोगी साहित्यिक पुस्तकों के साथ-साथ उच्चकोटि के साहित्यिक ग्रंथों की प्रकाशन-संस्था भी बनने जा रहा है। स्वभावत इसके प्रति एक आकर्षण और सहानुभूति जग उठी।

'बालक' के परिवार से मिलने का संयोग चार-पाँच साल बाद हुआ। उस समय बेनीपुरी जी उससे अलग हो चुके थे। शिवपूजन सहायजी के हाथों में 'बालक' का सम्पादन आ गया था। मेरी पहली दरभंगा-यात्रा थी। 'भंडार' में पहुँचकर देखा, फर्श पर मामूली-सी चटाई बिछी थी और उसपर एक शांताकार पुरुष बैठा था। मुझे पता लगा कि वे ही मास्टर साहब हैं। मैंने एक बार उन्हें देखा—आकार सारल्य, नेत्रों में ज्योति, वाणी में गंभीरता, ललाट पर चिन्तनशीलता की तरंगे, विचारों में उच्चता। शरीर पर गाढे की मोटी धोती। सामने फर्श पर कुछ कागज पडे थे। कलम-दावात रक्खी थी।

उनके शिष्टाचार-प्रदर्शन के साथ-साथ मैं भी वहीं बैठ गया। मेरा परिचय पाते ही उनका मुख-मंडल आह्लाद से प्रकाशित हो उठा। अब वे एक चिरस्नेही की तरह बातचीत करने लगे। जब बीच-बीच मे वे 'जनार्दनजी' कहकर संबोधन करते, मुझे उसी कीमती प्यार का स्वाद मिलता जो एक बडे भाई के द्वारा पुकारे जाने पर छोटे को मिल सकता है। इतनी आत्मीयता।

मेरे साथ, बगल में, कुछ कागजों का पुलिंदा कपडे मे लपेटा हुआ था। मैं उसे संकोच से छिपाने की चेष्टा करता था। मेरी इस हरकत को वे ताड गये। उन्होंने उसे लेकर देखा—'वीरों की कहानियाँ।' * उदारतापूर्वक बोले—"मैं इसे सचित्र प्रकाशित करूँगा।" और, कुछ 'नोट' मँगाकर मेरे हाथों मे रख दिये। मेरा सिर आभार से झुक पडा। हृदय कृतज्ञता से पुलकित हो उठा।

'भंडार' को देखकर मैं बडा ही प्रभावित हुआ। जैसी आदर्श प्रकाशन-संस्था की बिहार को आवश्यकता थी, उसकी पूर्त्ति 'भंडार' के द्वारा होती देख मैंने एक उल्लास-पूर्ण सन्तोष का अनुभव किया। वास्तव में इसे एक व्यापारिक कार्यालय कहने की अपेक्षा एक साहित्यिक तीर्थ कहना अधिक उपयुक्त होगा।

'भंडार' ने इधर कितनी ही उच्च कोटि की साहित्यिक पुस्तकें प्रकाशित कर बिहार का गौरव बढाया है। कितने ही नये साहित्यिक इसके द्वारा प्रोत्साहन पाकर आगे बढ सके हैं। श्रीमान् बाबू रामलोचनशरणजी के हृदय में साहित्य-सेवा के साथ-साथ साहित्य-सेवियों की सेवा-सहायता करते रहने की भावना हमेशा जाग्रत रहती है। मैं 'भंडार' और 'मास्टर साहब' की एकान्त मंगल-कामना करता हूँ।

* मेरे ही दोष से यह पुस्तक प्रकाशित न हो सकी। इसकी कुछ कहानियाँ समय-समय पर 'बालक' में प्रकाशित हुई हैं। —लेखक

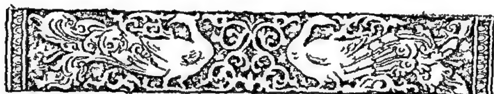

श्रीरामलोचनशरणजी का सम्पादन-कौशल

अध्यापक सूर्यनारायण सिंह, एम० ए०, डिप० एड, साहित्य भूषण, मुजफ्फरपुर

बिहार में हिन्दी-प्रचार के शुभ आयोजन में श्रीरामलोचनशरणजी का अमूल्य सहयोग है। सम्पादन और प्रकाशन के क्षेत्र में एक साधारण हिन्दी-शिक्षक को जो आशातीत सफलता मिली है उससे बिहारी प्रकाशकों और सम्पादकों में नवजीवन का संचार हुआ है। मास्टर साहब की साहित्यिक सेवा से बिहार का मुख उज्ज्वल हुआ है। आपने पुस्तक-प्रकाशन के द्वारा आकर्षण और लोकरंजन में अद्भुत व्यापारिक प्रतिभा का परिचय देकर बिहार का कलंक-मोचन किया है। आपके शिष्टाचार, सादगी, सचाई और अध्यवसाय के प्रसाद से ही पुस्तक-भंडार समुन्नत हुआ है।

मुझको एक बार आपकी वह अपूर्व शक्ति देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जो आपकी सफलता का प्रधान रहस्य है। आपके स्वावलम्बन और कार्य-कुशलता की वह पवित्र स्मृति मुझे सदा उत्साह प्रदान करती रहेगी।

दिसम्बर, १९२८ के कठोर जाड़े की रात थी। रात ही भर में लगभग ५० पृष्ठ का मैटर कम्पोज कराकर उसका प्रूफ देखकर उसे प्रातःकाल होते-होते छपवाना था और क्षत्रिय-महासभा के सभापति के समक्ष स्वीकृत्यर्थ पेश करना था। आपने मुझे आफिस में ही एक कोमल शय्या पर शयन करने का आदेश दिया। मेरी लेखनशैली और वर्णनशैली से आप शीघ्र ही इतने परिचित हो गये कि काट-छाँट कर प्रेस-कापी तैयार कर दी। आपके अध्यवसाय की शक्ति से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ। मैंने आपको आवश्यक संशोधन और परिवर्तन का पूर्ण अधिकार दे दिया, क्योंकि आपके भाषा-ज्ञान का मैं कायल हो गया था। सफल सम्पादक की

काट-छाँट देखकर मैं मुग्ध रह गया। मैंने अनुभव किया कि सफल सम्पादक की कला ही मर्मज्ञ विद्वान् की काव्य-कला को भी चमका सकती है। वह सुखद रात्रि, जिसमें मैंने आपसे कुछ सीखा, सदा स्मरण रहेगी।

किन्तु, सबसे अधिक स्मरण रहेगा आपका वह वात्सल्य भाव जिसमें अपनापन था, सहानुभूति थी, और थी सहृदयतापूर्वक कुछ सिखाने की प्रवृत्ति। मेरी धारणा है कि अध्यापन-कला के ज्ञान के कारण ही आप सफल सम्पादक (लोक-गुरु) हो सके हैं। आप इसी लिये 'बालक' के सफल सम्पादक हो सके कि आप बाल-गुरु रह चुके हैं। आपको बालकों की आवश्यकताओं तथा उनके मनस्तत्त्व का पूर्ण ज्ञान है।

प्रातःकाल सूर्योदय के समय मेरी निद्रा भंग हुई। मैं आश्चर्यित हुआ कि इतने कम समय में ऐसा कठोर काम इतनी सुन्दरता के साथ कैसे हुआ। वास्तव में आपका सम्पादन-कौशल सर्वथा प्रशंसनीय है।

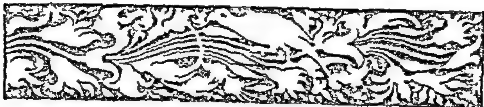

कर्मवीर रामलोचनशरणजी

अध्यापक श्रीहवलदारीराम गुप्त 'हलधर', राँची जिला स्कूल

लगभग २५ वर्ष पहले की बात है। बिहार में लोअर से लेकर मिडिल तक मैकमिलन-कम्पनी की पुस्तकों—विज्ञान-पाठ, इतिहास-पाठ, भूगोल-पाठ—आदि—की धूम थी। पटना, गया आदि शहरों से चन्द छोटी-छोटी पुस्तकें निकली थीं, पर उनसे शिक्षक-मंडली को सन्तोष न था। उसी समय 'भंडार' से रामलोचनशरणजी की कई छोटी-छोटी पुस्तकें—प्रकृति-परिचय, स्वास्थ्य-परिचय, पत्र-चन्द्रिका आदि—बाजार में आईं। शिक्षक और शिक्षार्थी उनपर टूट पड़े। मैंने सोचा, उन पुस्तकों में कौन-सी खूबियाँ हैं जो ये इतनी लोकप्रिय हो रही हैं कि टेक्स्टबुक-कमिटी ने उन्हें मंजूर भी नहीं किया और लोग धड़ल्ले से खरीद रहे हैं। आखिर उनको पढ़कर देखा—उनमें नई सिलेबस के अनुसार सभी पाठ बहुत ठिकाने से सजाये गये थे। भाषा सुबोध थी। शैली मनोवैज्ञानिक थी। सूझ बड़ी पैनी थी। विषय-प्रतिपादन चमत्कारपूर्ण था।

गया से भी छोटी-छोटी बालोपयोगी पुस्तकें, बाबू रामसहायलाल प्रकाशक के यहाँ से, निकली थीं जिनमें अधिकांश के लेखक बाबू रामलोचनशरण थे। बहुत-सी पुस्तकें दूसरों के नामों से थीं, पर उनमें भी प्रायः इन्हीं का हाथ था। कारण, उस समय ये गया जिला-स्कूल के एक प्रसिद्ध हिन्दी-शिक्षक थे। इन्होंने दस-पैसे प्रति पृष्ठ के हिसाब से पुरस्कार लेकर पुस्तकें लिखी थीं। इसी तरह इनको हजार-बारह सौ रुपये मिले थे। इतने ही से इनकी श्रमशीलता का अनुमान किया जा सकता है।

'भंडार' की पुस्तकों से प्रभावित होकर मैं उनके लेखक शरणजी के दर्शनों

निकल जाता है। 'भंडार' उनको सदा के लिये अपना आभारी बना लेता है। इसके उदाहरण हैं बी. एन कालेज (पटना) के फिलासफी के प्रोफेसर श्रीहरिमोहन झा, एम० ए० और श्रीनगेन्द्रकुमार, बी० ए०, सब-डिपुटी-कलक्टर।

लहेरियासराय से विदा हो मैं पटना की 'भंडार'-शाला में पहुँचा। वहाँ भी १५-२० कर्मचारी रहते हैं। जनाना अस्पताल के सामने, गोविन्दमित्र-रोड में एक बड़े अहाते के अन्दर यह स्थित है। देखा, यहाँ भी 'भंडार' से सम्बन्ध रखनेवालों का यथेष्ट समादर होता है।

पचीस रुपये मासिक वेतन पानेवाला एक हिन्दी-शिक्षक आज हजारों रुपये मासिक वेतन बाँटता है। उसके कई कर्मचारी ऐसे हैं जिनको ५०) से १००) तक मासिक वेतन मिलता है। किन्तु लाखों के मालिक होकर भी शरणजी 'मास्टर साहब' कहलाने में कुंठित नहीं होते। यह इनका बडप्पन है।

पुरुलिया-(मानभूमि)-जिला स्कूल की बात है। शरणजी पहुँचे हुए थे। एक हिन्दी-शिक्षक बात के सिलसिले में कह बैठे—"हुजूर, आप बडे आदमी हैं, आपकी दयादृष्टि हमपर रहनी चाहिये।" शरणजी हाथ जोड़कर बोले—"हुजूर और 'बडे आदमी' कहकर मुझको लज्जित न करें। मैं भी आप ही के ऐसा शिक्षक था। आज भी शिक्षक कहलाने में ही प्रसन्न होता हूँ। मुझको अपना भाई समझें। भाई के नाते, कहिये, आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।" शिक्षक महाशय ने कहा—"मेरा एक छोटा भतीजा दसवीं श्रेणी में पढता है। उसके लिये, आपकी कई पुस्तकों की जरूरत है।" शरणजी ने कहा—"आप पत्र लिखकर मँगा लीजिये। मैं एक पुर्जा देता हूँ। और, आपको जब-जब जरूरत हो, मँगा लिया करें।"

एक बार, राँची-जिला-स्कूल में। शरणजी, मिस्टर दास वर्मा हेडमास्टर से बातें करने के बाद, मुझसे मिलने आये। मैं छठे दर्जे में हिन्दी-व्याकरण पढा रहा था। इन्होंने एक सज्जन से मिलने का अनुरोध किया। मैं संकुचित चित्त जाने को उद्यत हुआ। इन्होंने कहा—"तुम ड्यूटी में हो, मैं क्लास देखता हूँ।" बस, क्लास में घुस गये। दस मिनट के बाद लौटकर देखता हूँ, शरणजी आज पचीस वर्षों के बाद फिर मास्टर साहब बने हुए हैं। बोर्ड पर डटे हैं। लडके निमुग्ध चित्त इन्हें निहार रहे हैं।" मैंने कहा—"लडको। ये कौन हैं, पहचाना? ये वही हैं जिनकी लिखी हिन्दी-पुस्तकें तुमलोग पढा करते हो। ये तुम्हारे प्यारे 'बालक' के सम्पादक हैं।" सब लड़के चकित चित्त खड़े हो गये। सबका मस्तक झुक गया। सबके चेहरे पर श्रद्धा झलक रही थी—आँखों में प्रेम थिरक रहा था। इन्होंने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया और फिर उसी घाव को

पुस्तक भंडार का प्राइवेट आफिस। बाईं ओर से—पं० सूर्यनारायण झा, श्रीवैदेहीशरण, श्रीरघुनीप्रसाद माणिक (मैनेजर), पं० रामेश्वर झा

पुस्तक भंडार का आफिस। पीछे खड़े—दो चपरासी। कुर्सी पर बैठे बाईं ओर से—सर्वश्री रामदेव प्रसाद, मल्लिकाकालाल कर्ण, भदारणीलाल वर्मा। बैठे हुए बाईं ओर से—सर्वश्री दर्पनारायण चौधरी, कपिलदेव नारायण, रामवक्षाल सिंह।

उर्दू विभाग के लेखक (खुशनवीस) कुर्सी पर बाईं ओर से—मुन्शी अब्दुल हलीम (दरभंगा), बिहार शरीफ निवासी मुन्शी मुहम्मद एकराम उद्दीन (कातिब) मुन्शी मुहम्मद मुसलिम (दरभंगा)। बाईं ओर से खड़े—नूर आलम (दरभंगा) मुहम्मद नफीक (भागलपुर) वसीअहमद (बिहारशरीफ)।

पुस्तक भडार का साहित्य विभाग। कुर्सी पर बाईं ओर से—श्रीअविनाश चन्द्र कुइ, प्रा० हरिमोहन झा, प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, श्रीरामलोचन शरण, प्रो० शिवपूजनसहाय, प० कपिलेश्वर मिश्र। बैठे बाईं ओर से—सर्वश्री अच्युतानन्द दत्त, कामेश्वर झा हवल्दार त्रिपाठी 'सहृदय', राधा झा, कमलनारायण झा 'कमलेश', जयकान्त मिश्र।

'बालक' का सम्पादन विभाग। ओर से—श्री अच्युतानन्द दत्त (सहकारी सम्पादक), श्रीरामलोचन- (प्रधान सम्पादक), श्री हवलदार ठी 'सहृदय' साहित्याचार्य, ...फीलाल वर्मा (क्लर्क)।

...स्तक-भंडार का चित्रकला विभाग। ...र्सी पर दाहिनी ओर से—श्रीहरलाल ...ता (मुजफ्फरपुर) मुन्शी मुहम्मद ...रामउद्दीन कातिब, श्रीश्यामदेव ...वास्तव (दरभंगा) पीछे खड़े दायें ...—श्रीकुलानन्द दास (दरभंगा), ... वर्मा (शाहाबाद)।

दुहराया—"मैं भी आज से बहुत पहले जिला-स्कूल का शिक्षक था। तुमलोग छोटे-छोटे लेख 'बालक' के लिये लिखकर भेजना, मैं छपवा दूँगा।"

उसी दिन, सन्ध्या समय, आर्य-निवास होटल में मैं इनसे मिलने गया। मैंने कहा—"क्या मेरी कुटिया पवित्र न होगी ? क्या मालूम न था कि मैं राँची में ही हूँ ?" उत्तर मिला—"भाई ! जब 'भंडार' पनप रहा था तभी से मैं इसी 'निवास' में ठहरता आया हूँ, इसलिये इससे अधिक प्रेम हो गया है। यदि कल भोर में न जा सका तो तुम्हारे यहाँ आऊँगा।" दूसरे रोज शाम को रिम-झिम पानी बरस रहा था। रिक्शे पर लाल बाबू के साथ मेरी कुटिया में आ पहुँचे। पहुँचते ही बोले—"लो, आ गया, खिलाओ। हाँ, याद रहे, जो तुम खाते हो वही खाऊँगा। मेरे लिये कोई भूल न करो।" इस तरह अपनी सादगी का आदर्श दिखा, उसी रिम झिम पानी में, वापस गये।

जैसी चरम सीमा की सादगी, वैसी ही उदारता। दोनों गुण इनमें वर्त्तमान हैं। 'भंडार' को उपयुक्त मालिक, और मालिक को उपयुक्त 'भंडार' मिला है। फिर 'भंडार' अपने नाम को सार्थक क्यों न करे ? 'भंडार' ने अबतक लगभग चार सौ सु-सम्पादित साहित्यिक ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। लोअर प्राइमरी स्कूल से कालेज तक की कोर्स की किताबें—संस्कृत, हिन्दी, बंगला, उड़िया, उर्दू, अँगरेजी, संथाली आदि भाषाओं में—हजार की संख्या में प्रकाशित कर अपने नाम को सार्थक किया है। साहित्य-क्षेत्र में जो जो महत्त्वपूर्ण काम बिहार ने अबतक नहीं किये थे, 'भंडार' उन्हीं कामों को पूरा कर बिहार का मस्तक ऊँचा करने में संलग्न है। सच पूछिये तो पुस्तक-प्रकाशन के क्षेत्र में अन्य प्रान्तों के सामने खड़ा होने लायक बिहार को इसी 'भंडार' ने बनाया है। अतः बिहार को 'पुस्तक-भंडार' और उसके निर्माता शरणजी पर गर्व होना स्वाभाविक है। भगवान् ! 'भंडार' को चिर-स्थायी करे।

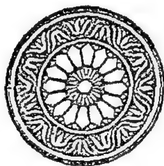

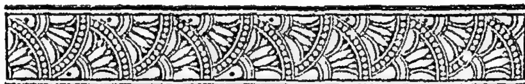

मास्टर साहब की सहृदयता

श्रीशशिनाथ चौधरी, बी. ए., बी. एड, दरभंगा

'मास्टर साहब' नार्थब्रुक-जिला-स्कूल (दरभंगा) के शिक्षक थे। मैं था राज-हाइ-स्कूल (दरभंगा) का विद्यार्थी। १९०७ ई० में मैंने हाइ-स्कूल मे पढ़ना प्रारम्भ किया। आप अनुमानत लगभग उसी समय में शिक्षक नियुक्त हुए थे। यद्यपि उक्त दोनों स्कूलों के शिक्षको और विद्यार्थियो मे कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध न था, तथापि स्कूल में प्रवेश करने के कुछ ही वर्षों के बाद मुझे आपकी सहानुभूति-शीलता तथा सहृदयता के कितने ही उदाहरण आपके विद्यार्थियों के द्वारा सुन पड़े। असहाय तथा दीन विद्यार्थियो के प्रति आप सदैव उदारता दिखलाते थे और आज भी दिखला रहे हैं। कभी पुस्तक देकर विद्यार्थियों की सहायता करना, कभी उनके नाम कटने के समय मे स्कूली फीस देना, कभी विना ट्यूशन-फी के ही विद्यार्थियो को पढ़ाना—यही आपका सहज व्यापार था। पहले यह परोपकार का भाव बीज-रूप मे था, जो आज प्रस्फुटित होकर एक विशाल वट-वृक्ष के रूप में देख पड़ता है। उस महान् वृक्ष की छाया मे आज अनेक शिक्षक, विद्यार्थी तथा साहित्यिक व्यक्ति विश्राम कर रहे हैं।

हम यह निस्संकोच भाव से कह सकते हैं कि आपने 'पुस्तक-भंडार' की स्थापना करके साधारण रूप से हिन्दी तथा हिन्दी-भाषी जनता की, और विशेष रूप से विहार-प्रान्त की वह अपूर्व सेवा की है, जिसके लिये विहार के इतिहास में आपका नाम चिर-स्मरणीय रहेगा। विहार पहले पाठ्य पुस्तको के लिये अन्य प्रान्तों का मुखापेक्षी था। आपने उसे अपने पैरों पर खड़ा किया। विहार के एक-आध प्रकाशक कुछ पाठ्य पुस्तकें अवश्य प्रकाशित करते थे, पर अन्य प्रान्तवाला

की स्पर्धा में ठहरते नहीं थे। 'भंडार' ने अपनी कार्य-कुशलता से प्रतिस्पर्द्धा के क्षेत्र में बाजी मारकर अपनी प्रगति बहुत अधिक बढ़ा ली है। और, पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त 'भंडार' ने अनेक सुरुचिपूर्ण साहित्यिक पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं, जो हिन्दी-संसार में आदर की दृष्टि से देखी जाती हैं।

मेरी समझ में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य 'भंडार' ने यह किया है कि बिहार के कितने ही लेखकों को प्रोत्साहन तथा सहायता प्रदान कर आदरणीय साहित्य-सेवियों की श्रेणी में स्थान दिलाया है। यदि आप बिहार के वर्त्तमान लेखकों और साहित्य-सेवियों की सूची उठाकर देखें, तो उसमें अधिकांश नाम ऐसे व्यक्तियों के पाये जायँगे, जिनका सम्बन्ध किसी-न किसी रूप में 'भंडार' से अवश्य ही रहा है, और आज भी है।

मेरे पूज्य (स्वर्गवासी) पिताजी इम्पीरियल बैंक में काम करते थे। मास्टर साहब के साथ उनका विशेष परिचय था। वे भी सर्वदा आपकी प्रशंसा ही किया करते थे। अतएव 'भंडार' के अनेक ग्रन्थों का परिचय मुझे घर बैठे ही मिल जाया करता था। सन् १९२६ ई० में मेरी नियुक्ति 'सब-इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स' के पद पर हुई। तब से आपके साथ मेरा प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हुआ। मेरे हृदय में आपके प्रति पहले से ही आदर का भाव भरा हुआ था। अब व्यक्तिगत सम्पर्क से वह भाव उमड़ पड़ा। इसके कई कारण थे। मैंने देखा कि यद्यपि आप उम्र में मुझसे कहीं अधिक बड़े थे तथापि मेरे सम्मुख इतनी नम्रता प्रकट करते थे और मेरा इतना आदर करते थे कि मुझे स्वयं संकोच से लज्जित-सा होना पड़ता था। और, आज भी, जब कभी मैं 'भंडार' जाता हूँ, वही नम्रतापूर्वक 'प्रणाम' सुन पड़ता है। लोग कहते हैं, अधिक धन होने से आदमी मतवाला हो जाता है, परन्तु आपका व्यापार यद्यपि लाखों का होगा, फिर भी आज आपमें वही सादगी और नम्रता है, जो बीस वर्ष पूर्व थी। व्यक्तिगत रूप से मैं आपका अत्यन्त आभारी इसलिये हूँ कि आपने मेरे 'भगवान् बुद्ध' नामक ग्रन्थ को प्रकाशित कर तथा पटना विश्वविद्यालय की पाठ्य पुस्तकों में उसे स्थान दिलाकर मेरे नाम और उत्साह को बढ़ाया है।

आपकी उदारता का परिचय एक घटना के उल्लेख द्वारा देना अनुचित न होगा। सन् १९३० के पूर्व की बात है। मैंने 'सौन्दर्य-विज्ञान' नामक एक पुस्तक लिखी। नागरी-प्रचारिणी सभा (काशी) ने उसे लेना स्वीकार किया। पर कुछ कारणों से उसे न दे सका। आखिर 'चाँद'-कार्यालय (प्रयाग) से सब बातें तय पा गईं। पर, उसने रुपये देने की शर्त यह रक्खी कि पुस्तक के प्रकाशित

होने के एक महीना बाद पुरस्कार मिलेगा। इसपर तुर्रा यह कि पुस्तक के प्रकाशित होने की कोई निश्चित तिथि नहीं। विवश होकर मुझे पुस्तक वापस लेनी पड़ी।

मैंने सब बातें 'मास्टर साहब' से कहीं। आपने बिना सोचे-विचारे पुस्तक ले लेने की सम्मति प्रकट की। आपने पुस्तक देखी तक नहीं। मुझे पुरस्कार के रुपये भी मिल गये। अनेक लेखकों को आप इसी प्रकार पुरस्कार का द्रव्य दे दिया करते हैं। फिर उनकी पुस्तकें सुविधानुसार छापते रहते हैं।

आपकी उदारता की एक और कहानी लिखना चाहता हूँ। एक बार दो गुरुओं ने मुझसे प्रार्थना की कि मुझे 'भंडार' से कुछ पुस्तकें दिलवा दीजिये। मैंने आपसे इसकी चर्चा की। आपने ढाई-ढाई सौ रुपयों के दो पार्सल दोनों गुरुओं के नाम भिजवा दिये। जब भेंट हुई, गुरुओं ने बड़ा हर्ष प्रकट किया। वे आपकी उदारता का बड़ा बखान करने लगे। एक ने तो कुछ पुस्तकें वापस भी कर दीं, पर दूसरे ने एक पैसा भी न भेजा, तकाजा करने पर उत्तर तक न दिया। आखिर मैंने आपसे कहा—"आप नालिश कर दें। ढाई सौ रुपये कुछ कम नहीं होते।" आपने सरल-भाव से कहा—"ऐसे बहुतेरे महानुभाव हैं, कितनों पर नालिश करूँ ?" आज तक उस कृतघ्न गुरु ने एक पैसा भी न दिया।

मैं इस बात का उल्लेख किये बिना नहीं रह सकता कि आपके व्यक्तिगत गुणों का प्रभाव आपके कर्मचारियों पर भी स्पष्ट रूप से पाया जाता है। 'भंडार' के मैनेजर नथुनी बाबू, 'बालक' के सहकारी सम्पादक दत्तजी और चित्रकार महारथीजी नम्रता की सजीव मूर्त्ति हैं। प्रोफेसर शिवपूजन सहाय जैसे सरस, सहृदय, साहित्यिक व्यक्ति के साथ मेरे घनिष्ठ सम्बन्ध की स्थापना 'भंडार' के द्वारा ही हुई है।

अन्त मे मैं आपके हृदय की विशालता की चर्चा करना अपना धर्म समझता हूँ। जब कभी मुझे रुपये-पैसे की जरूरत होती रही है, आपके यहाँ पहुँचा हूँ, आपने तुरत मेरे कष्ट को दूर कर दिया है। यहाँ तक कि कभी-कभी केवल सबाद भेजने से ही मेरा काम चल गया है। इसलिये यदि मैं आपको 'औढर-ढरन' भी कहूँ तो कोई अत्युक्ति न होगी।

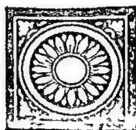

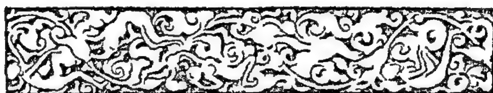

बिहार के 'चिन्तामणि घोष'

श्रीनारायण राजाराम सोमण, भूतपूर्व मैनेजर, श्री लक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी

मैं महाराष्ट्रीय ब्राह्मण हूँ। काशी में मेरे पूर्वज शायद दो-तीन सौ वर्ष पूर्व आकर बस गये थे। इसलिये आनुवंशिक गुणों के रहते हुए भी मैं अब संयुक्तप्रान्त का निवासी हूँ।

पुस्तक-भंडार के संस्थापक श्रीरामलोचनशरणजी से मेरा सम्पर्क सन् १९१७ में हुआ। इसी वर्ष से उनका छपाई का काम लक्ष्मीनारायण प्रेस में होने लगा। हिन्दी-संसार का शायद ही कोई प्रसिद्ध पुस्तक-प्रकाशक या प्रकाशन-संस्था होगी, जिसका कोई-न-कोई काम इस प्रेस में न हुआ हो। शरणजी की भी प्रेस पर कृपा हुई, और कहते हर्ष होता है कि वह कृपा अबतक बनी हुई है।

शरणजी से परिचय बढ़ते-बढ़ते घनिष्ठ होने लगा। मेरी ओर उनका ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। इस बीच उन्होंने मेरे साथ जैसा व्यवहार किया वह आदर्श और प्रशंसनीय है। मैं लेखक नहीं, और न बुक्सेलर ही हूँ। मैं तो प्रेस-व्यवसाय का जानकार 'मजदूर-पेशा' आदमी हूँ। लेकिन इतना मैं जरूर कहूँगा कि जहाँ तक 'सुव्यवहार' का विस्तृत अर्थ किया जा सकता है वहाँ तक मैंने उनको हमेशा ठोस पाया। खासकर रुपये-पैसे के विषय में उन्होंने कभी भी वैसी वणिक्वृत्ति का परिचय नहीं दिया जैसी अक्सर सफल और सम्पन्न व्यवसायियों में पाई जाती है।

सन् १९२९ में मेरा और प्रेस के तात्कालिक मैनेजर स्वर्गीय गुर्जरजी का कुछ सैद्धान्तिक मतभेद हुआ। मैंने खुशी से त्याग-पत्र दिया और नौ महीने तक यों ही बैठा रहा। इसी वर्ष के अन्त में शरणजी ने मुझे प्रेमपूर्वक बुलाया

विहार और हिन्दी

श्रीमती शीलकुमारी चतुर्वेदी 'हिन्दी-भूषण', जयपुर (राजपूताना)

बिहार-प्रान्त, भारतवर्ष के पूर्व में, बगाल और सयुक्तप्रान्त के मध्य मे बसा हुआ है। इसी प्रान्त ने हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में श्रीजगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, श्रीईश्वरीप्रसाद शर्मा, श्रीरामलोचनशरण, श्रीनदकिशोर तिवारी, श्रीराजा राधिकारमण प्रसादसिंह, श्रीशिवपूजनसहाय-जैसे लेखक और सर्वश्री 'द्विज', दिनकर, वियोगी, केसरी, नेपाली, आरसी-जैसे कवि उत्पन्न किये हैं। क्या हिन्दी साहित्य इस उपकार को भूल सकता है ?

इस प्रान्त की अनेक पत्र-पत्रिकाओ ने भी हिन्दी-साहित्य में अच्छा स्थान प्राप्त किया है। उनमे 'बालक', 'नवशक्ति', 'योगी', 'किशोर' आदि प्रसिद्ध हैं। लेखको और कवियो के अतिरिक्त कुछ प्रकाशकों ने भी हिन्दी-साहित्य का अच्छा उपकार किया। हिन्दी-भाषा का प्रचार करनेवाली कुछ सभाएँ भी बिहार में स्थापित हैं। बिहार मे हिन्दी का अच्छा प्रचार है। सर्वसाधारण मे हिन्दी के प्रति प्रेम बढता ही जा रहा है। हिन्दी-साहित्य की जैसी प्रगति अन्य प्रान्तों मे है उससे कम बिहार मे नहीं है।

बिहार मे हिन्दी के प्रचार का श्रेय बहुत-कुछ 'पुस्तक-भडार' और उसके सचालक श्रीरामलोचनशरणजी को है। यदि पुस्तक-भडार को हम 'हिन्दी-प्रचारक-सघ' कहे तो अनुचित न होगा। पुस्तक-भडार हिन्दी की अगणित पुस्तकें प्रकाशित कर चुका है। उन पुस्तको मे अधिकाश हिन्दी-साहित्य में उच्चकोटि की मानी जाती हैं। 'भडार' की प्राय सभी पुस्तकें सुलेखकों और सुकवियों की सुललित रचनाएँ हैं। 'भडार' द्वारा प्रकाशित साहित्य साधारण कोटि का साहित्य नहीं है।

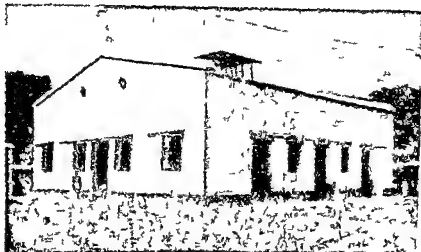

हिमालय प्रेस (पुस्तक भंडार), पटना का नया भवन

विद्यापति प्रेस का जिल्दबंधाई विभाग

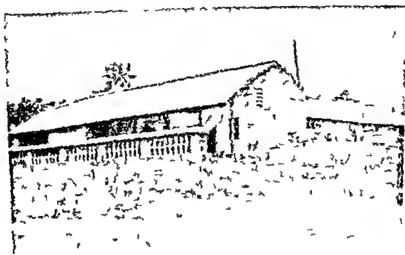

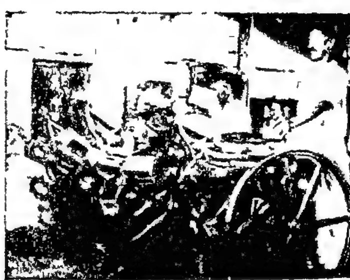

१—दफ्तरीखाने के कटिङ्ग मशीन विभा[illegible] का एक अंश—प्रधान—ताजमहम्म[illegible] मोमिन (दरभगा)

२—विद्यापति प्रेस—ट्रेडिल-मशीन [illegible] काम हो रहा है।

३—पुस्तक भंडार (लहेरियासराय) डाकखाने का बाहरी दृश्य

४—ब्लाक-विभाग—श्रीराजवल्लभ मल्लिक

५—बही खाता-विभाग के तीन मुन्शी-[illegible] ओर से—मुन्शी श्यामसुन्दर गु[illegible] मुन्शी मेहीलाल, मुन्शी सीताराम

सुप्रसिद्ध मासिक पत्र 'बालक' पुस्तक-भंडार की ही एक अनुपम भेंट है। यह पत्र सोलह वर्षों से हिन्दी की निरंतर सेवा कर रहा है। देश के बड़े-बड़े विद्वान् इसको बाल-साहित्य का सर्वोत्तम मासिक पत्र स्वीकार कर चुके हैं। 'बालक' ने बिहार प्रान्त में एक-दो को नहीं, अनेक को—विशेषतया बालकों तथा बालिकाओं को—हिन्दी लिखना सिखाया।

श्रीरामलोचनशरणजी बिहार-प्रान्त के प्रमुख साहित्यिकों में हैं। आपने कई पुस्तकें लिखी हैं। अपने जीवन का उद्देश्य भी आपने हिन्दी-साहित्य की सेवा ही बना रक्खा है। निःस्वार्थ भाव से आप लगभग तीस वर्षों से हिन्दी की सेवा कर रहे हैं। 'पुस्तक-भंडार' और 'बालक' आपके साहित्य-प्रेम के ज्वलंत प्रमाण हैं। बिहार-सरकार को शिक्षा प्रचार में आपने काफी सहायता प्रदान की है। बिहार की साक्षरता-समिति ने जब 'रोशनी' नामक पत्रिका निकाली तब आपने 'होनहार' को जनता के सम्मुख उपस्थित किया। आपकी साहित्य-सेवा वास्तव में स्तुत्य है। हिन्दी के लिये आपका परिश्रम श्लाघ्य है। यह आपके ही परिश्रम का फल है कि आज 'बालक' का स्थान उच्च कोटि के पत्रों में है। हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में उसका नाम सम्मान से लिया जाता है। यदि 'पुस्तक-भंडार' का नाम बिहार के हिन्दी के इतिहास से निकाल दिया जाय तो अवश्य ही वह इतिहास शुष्क हो जायगा।

बिहारी सज्जनों ने हिन्दी प्रचार के लिये काफी परिश्रम किया है और आज तक कर रहे हैं। उनका परिश्रम सफल भी हुआ। जो कुछ भी उन्होंने किया, और कर रहे हैं, वह कम नहीं, प्रत्युत हिन्दी-साहित्य के लिये गौरव का विषय है।

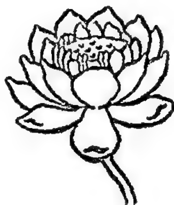

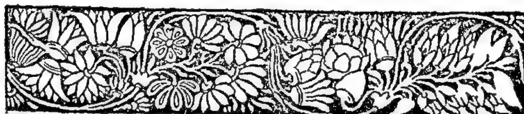

बिहार के रूपर्ट ब्रूक ❋

कविवर श्री 'केसरी', एम ए

"तुम भूलते हो। तुलसीदास की सर्वप्रियता की आधार-शिला है उनकी वह कला, जो भारतीय आत्मा की चिरतन अनुभूतियों को वाणी में उतारकर साकार कर देती है। इस तरह—मान लो, तुम लडकपन से कुछ सुहावने स्वप्न देखते आये हो। जागरण की चेतना मे तुम उन स्वप्नो को प्रत्यक्ष देखते नहीं, या वे तुम्हारी अनुभूति मे बँधते नहीं, बिखर जाते हैं। कोई जादूगर आता है और हूबहू तुम्हारे स्वप्नों की एक प्रतिमा तुम्हारी आँखों के सामने रख देता है—एक बोलती प्रतिमा। तुलसीदास वही जादूगर हैं। अनेक लोग उस प्रतिमा के वाणी-विलास पर मुग्ध हैं, किन्तु उसे समझने के लिये उन स्वप्नों की अनुभूति होनी चाहिये। यही कारण है कि कतिपय समालोचक तुलसीदास की उस प्रतिमा के साथ केवल खिलवाड़ करके अपने को कृत-कृत्य समझ लेते हैं।"

यह प्रसग छिड़ा था लम्बगोड़ाजी के रामचरितमानस-विषयक लेख पर। मास्टर साहब तुलसीदास के एकात भक्त हैं। तुलसी की महत्ता को उन्होंने जिस दृष्टि विन्दु से समझा है, उसीसे वे आज के साहित्य को देखते हैं तो निराश होते हैं।

रण के उपाकारा में हमने स्वतन्त्रता की अँगड़ाई के साथ अपने अतीत को देखा था। मैथिलीशरण ने उसी अँगड़ाई का एक चित्र 'भारत-भारती' में खींचा। मुझे मालूम नहीं, उनकी दूसरी कोई पुस्तक उतनी प्रिय हो सकी है। जानते हो, 'कल्याण' की कितनी कापियाँ खपती हैं ? पचास हजार !!"

"किन्तु जन-रुचि को साथ लेकर कोई कलाकार बहुत दूर नहीं जा सकता। यदि जनता को रिझाना ही कलाकार अपना ध्येय बना ले, तो उसे 'चलो वीर पटुआ खाली' और 'मस्ताना भगतसिंह' लिखकर ही संतोष की साँस लेनी चाहिये।"—यह कहकर मैंने अर्वाचीन साहित्यिकों का पक्ष-समर्थन किया।

"इसी वहम से तो छायावाद बदनाम है। तुमलोग अपनी जगह पर अड़कर बैठे हुए हो, पाठक अपनी जगह पर—बिगड़ी हुई बारात के समधियों की तरह। जरूरत है अँकवार-भेंट की।"

यह एक रूप है उस व्यक्तित्व का, जो सरस्वती और लक्ष्मी के दुर्लभ सम्मिलन के सुखद वातावरण में हमारे साहित्य की गति विधि का मूल्यांकन किया करता है।

कवीन्द्र रवीन्द्र ने महात्मा गांधी के विषय में यों लिखा है—"उनके समक्ष जाकर आदमी अपनी तुच्छता भूल जाता है। कोई कितना ही नाचीज क्यों न हो, जब अपनेको उनके सामने पाता है, उसके भीतर जैसे कुछ सोया हुआ जाग उठता है। यही उनकी विशेषता है।"—(Gandhi, the Man)

मेरा अपना विश्वास है, बिहार के लेखक भी, 'पुस्तक-भंडार' के अध्यक्ष के सामने कुछ ऐसा ही अनुभव करते हैं। आप बैठे हैं—सामने मास्टर साहब हैं। आप 'रतन' हैं बिहार के। बिहारी प्रतिभा पर हँसनेवाला पैदा नहीं हुआ!—ऊपर जरा सिर उठाइये—एक कतार में चित्र टँगे हैं। आपका भी है।

"अरे! यह तो मैं हूँ!"—आप कल्पना के पंखों पर उड़ते हुए बाईसवीं शताब्दी में पहुँचकर अपनेको उस दीवार पर पाते हैं। आप कभी मानियेगा कि आपकी लाइनें पचीस बरस के बाद कोई नहीं पढ़ेगा! इस अनिर्वचनीय आत्म-गौरव की लहरों पर आप किलोलें करते ही हैं कि आवाज आती है—"इन चित्रों के बीच बैठा हुआ मैं क्षण-क्षण गर्व का अनुभव करता हूँ—फूला रहता हूँ। तुम कहते हो, मैं मोटा हो रहा हूँ।"

दो घंटे प्रीतिपूर्वक बातचीत करके जब आप उठना चाहते हैं, आग्रह के मधुर शब्द आपको फिर बिठा लेते हैं—"अरे, भोजन का समय है, ऐसे भी कहीं से कोई जाता है?" विचार जरूर उठते हैं—यह व्यक्ति कितना मिलनसार है। व्यवसाय के नीरस जीवन में भी यह कितना ठोस साहित्य जमा किये हुए

है ! यह मधुरता और भी सुशोभन लगती है, जब हम यह सोचते हैं कि ऐसी परिस्थिति के लोगों के चेहरे पर लिखा रहता है—'मुझसे न बोलो !'

किन्तु, मास्टर साहब के व्यक्तित्व का सबसे महान् पहलू तो वह है, जिसके द्वारा बिहार की सांस्कृतिक तरुणाई को ऊर्जस्विता मिली है।

साहित्यिक कर्तृत्व की परख के लिये अभी तक कोई सर्वानुमोदित माप दंड नहीं बना। आचार्य द्विवेदीजी की महत्ता को जो लोग उनके लिखे हुए पत्रों में ही खोजकर ठहर जाते हैं, वे पूर्णकाम नहीं हो सकते। सूर्य अपने में महान् है, किन्तु मानव की भक्ति का अर्घ्य उस प्रकाश के देवता के चरणों में समर्पित होता है, जिसकी विभूति से उसकी आँखों की ज्योति सार्थक होती है। हम उसकी वंदना करते हैं, जिसके आते ही हम सोते से जाग उठते हैं, जिसके द्वारा विश्व से हमारा तादात्म्य स्थापित होता है। महत्ता का यही रूप हमें उलझन में डाले रहता है, क्योंकि सहस्र-रश्मि प्रभाकर की किरणों की तरह यह अनिश्चित दिशाओं में व्याप्त रहता है।

बिहार की अर्वाचीन साहित्यिक समुन्नति के इतिहास के लिखनेवालों को इन्हीं अनिश्चित दिशाओं में फैले हुए प्रकाश-कणों को खोजना होगा। अँगरेजी साहित्य के पढनेवाले जानते हैं कि उस साहित्य में नवीन युगों के लानेवालों में कैक्सटन (Caxton), पर्सी (Percy) इत्यादि भी हैं, जिन्होंने नवीन प्रकाश के लिये पथ प्रशस्त किया—आगे का रास्ता बनाया, बतलाया।

नेपाल-राज्य में रामचरितमानस का जो प्रचार करता है, वह भी कुछ करता है। राँची के आदिवासियों में जो हिन्दी की ध्वजा फहराना चाहता है, वह कनिजनों के लिये दी गई वाहवाही को पीछे छोड़ आया है। और, जिसने बाल-साहित्य को इतना परिपुष्ट किया कि वह युवा-जीवन के बोझ को सँभाल सके, उसने तो निस्सन्देह 'सत्य शिव सुन्दर' का सृजन किया है।

इस व्यक्ति ने बिहार को प्यार किया है। उसने गर्व के साथ अपनेको 'रामलोचनशरण बिहारी' घोषित किया है। मुझे डाक्टर सच्चिदानन्द सिंह का वह लेख याद आ जाता है, जिसमें उन्होंने अपने विदेशीय अनुभवों को व्यक्त किया है। उन दिनों बिहार बंगाल के अंदर था। लंडन में किसी ने उनसे पूछा—"Mr Sinha, which part of India do you belong to ? (आपका घर कहाँ है ?)"। उन्होंने कहा—"बिहार।" उक्त सज्जन चकरा गये, क्योंकि बिहार का नाम नक्शे में उन्होंने नहीं देखा था। उन्होंने कहा—"बिहार ! अरे, यह बिहार कहाँ है ?" डाक्टर सिन्हा को यह बात लग गई।

उन्होंने वहीं संकल्प किया कि मैं बिहार का नाम हिन्दुस्तान के नक्शे में लिखवा दूँगा।

डाक्टर सिन्हा का संकल्प सर्वथा कल्याणकारी सिद्ध हुआ। साहित्य के क्षेत्र में खंड-शासन अशोभन है, किन्तु अपने घर—अपने प्रान्त—से प्रेम स्वाभाविक ही है। यह प्रेम कल्याणकारी होता है। जो अपने प्रान्त को प्यार करेगा, वही प्रान्त की आधार-भूमि भारत-वसुधरा को प्यार करेगा। 'रूपर्ट ब्रूक' ने लिखा है—

"England is the one land I Know
And Cambridgeshire of All England
The Shire for men who understand
And of that district I prefer
The lovely hamlet grantchester,,

अर्थात्—"इंगलैंड को मैं प्यार करता हूँ, उसमें भी 'कैम्ब्रिजशायर' को ज्यादा और फिर 'ग्रैंटचेस्टर' को सबसे ज्यादा।"

यही ब्रूक अपने इंगलैंड के लिये गत महायुद्ध में लड़ते-लड़ते मरा था।

ऐसा ही कुछ अपनापन इस 'बिहारी' को अपने बिहार से है। इस स्वनामधन्य 'बिहारी' की दिवस की खोज और रात्रि के स्वप्न हैं—बिहार की संस्कृति, बिहार का साहित्य। इस पावन आकांक्षा पर बिहार की श्रद्धा निछावर है। इस महान् जीवन की साध सभी को है। इस आदर्श जीवन की बलिहारी।

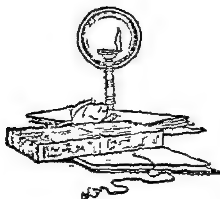

मास्टर साहब की सादगी

श्रीयुत रामजीवन शर्मा 'जीवन' (मुजफ्फरपुर), भूतपूर्व संपादक—'सन्देश', 'प्रणवीर', 'महारथी', 'नवयुवक'

"बाबूजी ! बाबूजी !!"

"क्या है, बेटा ?"

"देखिये, उमराव काका ने मेरी सब मिठाई खा ली।"

करीब सोलह वर्ष पहले की बात है। सन् १९२५ की गर्मी के दिन थे, शाम का वक्त। 'भंडार' की लाल कोठी के सामनेवाले मैदान की हरियाली पर बैठे हुए हमलोग—मास्टर साहब, हरिवंश बाबू आदि गपशप कर रहे थे। इतने में वैदेहीशरण, जो उन दिनों दस-बारह साल से ज्यादा के नहीं रहे होंगे, हमलोगों के पास एक फरियाद लेकर आये। उमराव का अपराध यह था कि उसने बिना माँगे वैदेही की मिठाई खा डाली थी। सारा हाल जानकर मास्टर साहब ने मुस्कुराकर कहा—"कृष्ण का अंश चुराकर खा जाने से सुदामा निर्धन हो गये, यह बात इसको मालूम नहीं थी। एक प्रति 'सुदामा-चरित' इसको मँगवा दो।"

उदारहृदय स्वामी के इस सरस व्यवहार से उमराव का मुरझाया हुआ मुख-कमल खिल उठा। वह गद्गद हो उनके पैरों पर गिर पड़ा।

एक इसी घटना से मैं समझ गया कि व्यवसायी बन जाने के बाद भी आपके पास एक स्नेहार्द्र हृदय विद्यमान है, जिसके प्रभाव से शत्रु भी आपके मित्र बन जाते हैं। आज सोलह वर्षों के बाद भी जब मैं उस बात की याद करता हूँ, मुझे मालूम पड़ता है कि मेरा वह सोचना गलत नहीं था, और जो किसी समय आपके घोर विरोधी थे, वे आज आपके क्रीतदास बन रहे हैं।

प्रख्यात लेखकों और यशस्वी सुकवियों के ग्रन्थ छापने के लिये प्रकाशक भले ही बेचैन रहते हों, परन्तु हिन्दी में आज कितने प्रकाशक ऐसे हैं जो अपने पत्रों में 'बालकों की कलम से', 'साहित्योद्यान के आशाकुसुम', 'भविष्य के उज्ज्वल सितारे' आदि स्तम्भ रखकर एवं भाँति-भाँति से उन बाल-लेखकों को पुरस्कृत कर उनका उत्साह बढ़ाते हों ? मास्टर साहब ने अपने 'बालक' के जन्म-काल ही से साहित्य-क्षेत्र में नवागतुओं का हौसला बढ़ाया है, वाणी और लेखनी ही से नहीं, बल्कि धन से भी नौजवान लेखकों की मदद की है, और अपनी साहित्यिक पुस्तक-मालाओं में मुफ्त नहीं, बल्कि पुरस्कार दे-देकर अधिकतर नये लेखकों की कृतियों को स्थान दिया है। नौकरी के लिये द्वार खटखटाने पर नहीं, बल्कि स्वयं बुला-बुलाकर साहित्यिक नवयुवकों को अपने यहाँ रखने का आपको व्यसन-सा है। मुझे अच्छी तरह याद है कि सर्वप्रथम 'भंडार' में जाने पर आपने मुझसे भी वहाँ रहकर साहित्य-सेवा करने को कहा था, और मेरे यह कहने पर कि 'अभी मेरी इच्छा नौकरी करने की नहीं है', एक सच्चे हितैषी की तरह जरा व्यंग्य-पूर्ण शब्दों में 'अमीर के लड़के पैतृक सम्पत्ति के रहते कुछ करना धरना नहीं चाहते' कहकर मीठी भर्त्सना भी की थी। तब से लेकर आज तक, इन सोलह वर्षों के बीच में, जीवन में अनेक ऐसे अवसर आये हैं, जब बिलकुल अपने लोगों ने *गैरों से भी बढ़कर कटु व्यवहार किया है, मित्र कहलानेवालों ने शत्रुओं के* भी कान काटे हैं, मुझे अक्सर आपके उस आग्रह की याद आई है, और मैंने अपने-आपसे पूछा है कि इस द्वेष पूर्ण संसार में कितने ऐसे जीव हैं जो अपने भले के साथ-साथ दूसरों का भी भला चाहते हैं ? अनुभव से तो यही पता चला है कि अधिकांश संख्या उन्हीं महाशयों की है, जो अपनी एक पाई के लिये दूसरों के सोलह आने नष्ट करने में भी आनाकानी नहीं करते। इतना ही नहीं, बल्कि अपनी एक आँख फोड़ देने की प्रार्थना भगवान् से इसलिये कर सकते हैं कि पड़ोसी की दोनों आँखें फूट जायँ। 'आप भी बनो और दूसरों को भी बनाओ' वाली नीति का पालन करनेवाले आप-जैसे महानुभाव इस संसार में इने गिने हैं।

अब आइये, जरा चित्र के दूसरे रुख पर भी विचार किया जाय। महीना है आज से पूरे एक युग पहले सन् १९२९ के मई-जून का और स्थान विश्व विख्यात नगर बम्बई की एक विशाल अट्टालिका के तीसजिले पर। पाँच सुन्दर हवादार कमरे जिनमें क्रमशः मद्रासी मैनेजर और उसके सहायक कई क्लर्क, सह कारी, संयुक्त और प्रधान सम्पादक, काम काज और बातें ज्यादा कर रहे हैं। सबसे आखिरी कमरे में, जहाँ पहुँचने के लिये प० सुन्दरलाल और महात्मा

भगवान दीन को भी दिक्कतें उठानी पडती हैं, इस सुन्दर स्टेज के सचालक अध्यक्ष महोदय एक स्प्रिंगदार कुर्सी पर आसीन हो मित्रों से गप लड़ाने में व्यस्त हैं। कार्यालय मे कहाँ क्या हो रहा है, इसका उनको कुछ पता नहीं, शायद पता लगाने की चेष्टा भी नहीं करते। प्रेस से पत्र समय पर आया या नहीं, और अगर आया तो डिस्पैचिंग में विलम्ब तो नहीं हो रहा, यह जानने की वे कोई जरूरत नहीं समझते। किस पुस्तक की कितनी प्रतियाँ बिकीं और कितनी प्रेस ही से गायब हो गई, इसका हिसाब ठीक रखने की आवश्यकता क्लर्क लोग क्यों महसूस करें जब ऊपर से कोई चेक करनेवाला ही नहीं है? हाँ, शाम होते-होते राग-रग और भग-भवानी की उपासना में जरा भी कसर न हो, इसका पूरा प्रबन्ध है। सक्षेप मे नतीजा यह कि बीस हजार की विशाल पूँजी दो वर्षों में समाप्तप्राय और प्रेस के बकाये मे सेठजी की मोटर जब्त! नरसिंह लॉजवाले दो-तीन सौ का बिल लिये अभी झख ही मार रहे हैं। यह ऑखों-देखा सच्चा हाल है उस जाति के एक युवक का, जो मारवाड की रहनेवाली है और जिसके अधिकाश लाल एक लोटा-डोरी लेकर घर से निकल पडने एव स्वय अपने परिश्रम के बल पर झोपडो से अट्टालिका खडी कर लेने के लिये हिन्दुस्तान-भर मे मशहूर हैं। परन्तु उद्योगी जाति मे जन्म लेने ही से क्या, यदि हृदय में सचाई और मस्तिष्क में कुछ कर दिखाने की दृढ लगन के साथ-साथ रगों मे आत्म-विश्वास की निर्मल धारा न बहती हो। रक से राजा हो जाने पर भी जिसने सादगी को अपना रक्खा हो, और जिसके दिल मे सतत कार्य-निरत रहने की दृढ़ भावना हो, उसके यहाँ से क्या लक्ष्मी कभी पलायन कर सकती हैं?

उपर्युक्त घटना से एक साल पहले—सन् १९२८ की बात है। किसी काम से लहेरियासराय जाने पर मैं शायद तीसरी या चौथी बार 'भडार' मे गया हुआ था। विद्यापति प्रेस की स्थापना हो चुकी थी। 'भडार' का शात वातावरण हडहड-खटखट की ध्वनि से गूँज रहा था। चार-पाँच साल पहले जो लाल कोठी खरीद की गई थी, शायद उसमें अँटाव न हो सकने के कारण, चहार-दीवारी से लगे हुए और भी कुछ मकान बन गये थे, जिनमे प्रेस से सम्बद्ध कार्य होते थे। मैं किसी कार्य से नहीं, बल्कि मास्टर साहब से मिलने के लिये 'भडार' गया था। एक साहित्यिक आदमी लहेरियासराय जाय और आपसे न मिले, यह तो गैरमुमकिन है। परन्तु आप सुनकर आश्चर्य करेंगे कि इतनी बड़ी सस्था के अध्यक्ष से मिलने के लिये न तो मुझे किसी बरामदे या ड्राइंग-रूम की कुर्सियों पर झख मारना पड़ा और न किसी से यह पूछने की जरूरत हुई कि मास्टर साहब कहाँ हैं? प्रेस के बरामदे मे, द्वार के ठीक सामने, मिट्टी या ईंट के एक चौकीनुमा चबूतरे पर बैठे हुए

विद्यापति प्रेस के कम्पोजीटर, बीच की पाँती में कुर्सी पर बाईं ओर से दूसरे—पं० ठकन झा (फोरमैन)

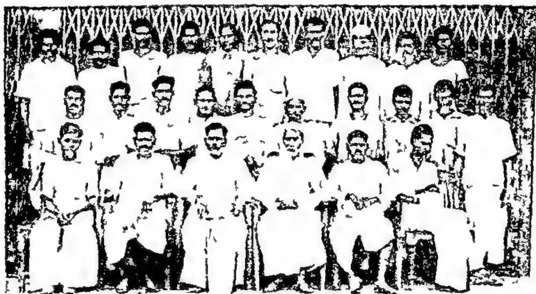

मशीन विभाग—नीचे कुर्सी पर दाहिनी ओर से तीसरे—उस्ताद सैयद मनीरुद्दीन (दिल्ली निवासी)

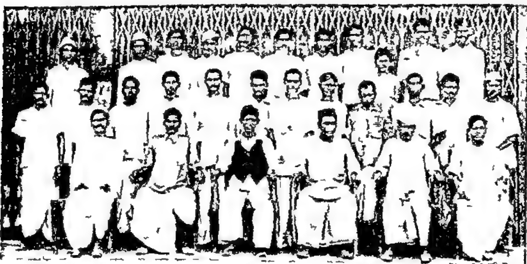

दफ्तरीखाने के कर्मचारी नीचे कुर्सी पर दाहिनी ओर से तीसरे हेड दफ्तरी ताजमुहम्मद

कम्पोजीटर काम कर रहे
हैं (हिन्दी विभाग)

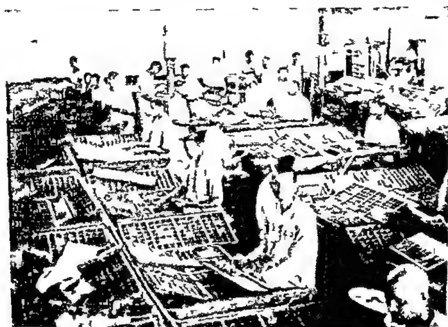

कम्पोजीटर काम कर र
हैं—(अँगरेजी विभाग

बँगला विभाग के कम्पो
जीटर—बाइ ओर कुर्सी
पर प० फणीन्द्र
(फोरमैन)

आप डाक के साथ-साथ अपनी पैनी दृष्टि से समूचे भंडार की देखरेख कर रहे हैं, वहाँ जाने के लिये आगंतुक को एक मामूली सीढ़ी पर भी चढ़ने की जरूरत नहीं होती। इस सादगी और निरभिमानता को देखकर मैं दंग रह गया। और, मैं ही क्या, जिसने आपको पहले-पहल देखा, उसके मुँह से सहसा यही निकल पड़ा कि क्या यही मास्टर साहब हैं? मेरे मित्र श्रीश्यामधारीप्रसाद के मुँह से यह वाक्य उस समय निकला जब सन् १९२५ या २६ में मुजफ्फरपुर में बिहार-प्रान्तीय हिन्दू-महासभा का सुविख्यात अधिवेशन (स्वर्गीय) लाला लाजपतरायजी के सभापतित्व में बड़ी धूमधाम से हो रहा था और मास्टर साहब अपनी नव-प्रकाशित 'पद्य-प्रसून', 'बिहारी-सतसई', 'विद्यापति की पदावली' आदि पुस्तकों के साथ उस जलूसे में आये हुए थे। मुझे ठीक याद है, आप अपने स्टाफ के साथ कल्याणी की ओर जा रहे थे और हमलोग मित्रवर (स्वर्गीय) राधवप्रसादसिंह 'मधुप' की दूकान पर खड़े थे। जब किसी ने कहा कि यही बाबू रामलोचनशरण हैं तब श्यामजी की नजर आपके कपड़ेवाले जूतों पर पड़ी और उन्होंने तत्काल कहा कि कितना सीधा-सादा आदमी है यह!

आप सचमुच सादगी की मूर्त्ति हैं, यह मैं निस्संकोच कह सकता हूँ, और यह एक बड़ा जबरदस्त गुण है। आप मिलनेवालों को चुम्बक की तरह अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रह सकते। जिसके नौकर-चाकर कुर्सियों और गद्दियों पर बैठते हों, वह स्वयं एक मिट्टी के चबूतरे पर बैठकर अपना काम देखे, यह सादगी नहीं तो क्या है?

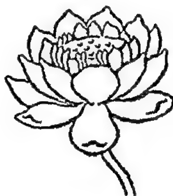

बालसाहित्य के स्रष्टा

श्रीनन्दकिशोर लाल, मुख्तार, समस्तीपुर (दरभगा)

लगभग इक्कीस वर्ष की बात है। मै दरभगा मे 'मिथिलामिहिर' का सहकारी सम्पादक था। प्रधान सम्पादक थे वयोवृद्ध साहित्यसेवी प० जनार्दन झा 'जनसीदन'। मैंने पूज्य महात्मा गाधी का जीवन-चरित लिखा। पुस्तक की पाडुलिपि लेकर चला 'पुस्तक-भडार' में रामलोचनशरणजी के पास।

एक शात, सौम्य, सरल मूर्त्ति—खुली हवा मे छोटी-सी चौकी पर विराजमान। सामने पुस्तकों का ढेर लगा था। कागज पर तेजी से कलम दौड रही थी। पुष्प वृक्ष—शीतल, मद, सुगध समीरण की हल्की थपकियॉ देकर—उस मूर्त्ति के प्रशस्त ललाट से श्रम-बिन्दुओ को वाष्प की तरह विलीन कर रहे थे।

बाबू रामलोचनशरणजी बाल-साहित्य-निर्माण मे निमग्न थे। प० जनार्दन झाजी ने उनसे मेरा परिचय कराया। मैंने अपनी पुस्तक भेंट की। फिर तो ऐसी साहित्य-चर्चा छिडी कि बहुत देर तक बातें होती रहीं। उनकी बातों में सहृदयता तथा सरसता की वह अमृत-निर्झरिणी थी, जो हृदय मे नवजीवन का सचार कर रही थी।

उन्होंने ही मुझे साहित्य-सेवा की ओर विशेष रूप से अग्रसर किया। उन्हीं के प्रोत्साहन प्रदान से हृदय मे शक्ति का सचार हुआ। उनके आदेशानुसार मैंने समय-समय पर कई पुस्तकें लिखकर प्रकाशनार्थ दीं। फिर तो 'पुस्तक-भडार' से मेरा घना सबध हो गया। मैं बहुधा वहॉ जाता और शरणजी से 'पुस्तक-भडार' के प्रकाशन-विभाग की उन्नति के सम्बन्ध में बातें होतीं। उसी समय उन्होंने मुझसे 'बालक' मासिक पत्र तथा बालोपयोगी पौराणिक ग्रथ-माला

उस लक्ष्य को अपने दृष्टि-पथ पर डाल मेरे वे दिन कट रहे थे—और, मैं सोच रहा था—'जब एक वैसा कर सकता है, तब क्या दूसरा उसके पद चिह्नों का अनुसरण नहीं कर सकता? जो एक के लिये सुलभ हो सकता है वह दूसरे के लिये क्या सुलभ नहीं हो सकता? यह धूनी रमानेवाला अपने कर्त्तव्य-पथ पर कठोरतापूर्वक अपने को ढो ले जाने में समर्थ अपने सुदूर भविष्य की चिन्ता मे तल्लीन अपने लक्ष्य की ओर सतत सचेष्ट—सतत उद्योग-रत, काँटों को रौंदता हुआ बढा जा रहा है—बढा जा रहा है यही मेरा आदर्श हो सकता है, यही मेरे लिये द्रोणाचार्य होगा, मैं इसीका एकलव्य बनूँगा हाँ, एकलव्य!'

और, मैंने अपनी कल्पना म उसकी मूर्त्ति गढी और देखा कि वह बड़ी धीर मुद्रा में एकनिष्ठ योगी-जैसा समाधिस्थ है। मेरा मस्तक उस स्वनिर्मित मूर्त्ति के प्रति नत हुआ। मेरी अतरात्मा कह उठी—'अवश्य इस तपोनिष्ठ साधक से, जो मेरी आँखों के सामने उस मूर्त्ति में लक्षित हुआ, मेरी क्षुधा की तृप्ति होगी—अवश्य मेरी लालसा उसी के चरण तल में जाकर फलवती हो सकेगी।

तबतक मेरी एक-दो पुस्तकें प्रकाश मे आ चुकी थीं। मैं एक सफल प्रकाशक बनने का व्रती हो चुका था। मगर साधन हीन, सबल-हीन।

मैं कई दिनों तक उधेडबुन मे पडा रहा। शायद एक अपरिचित व्यक्ति के पत्र का मूल्य उस महापुरुष के सामने तुच्छ होगा, या नगण्य होकर ही रहेगा। फिर भी मैं ऐसा करने के लिये उल्लसित हो उठा। हृदय मे साहस भर कर पत्र तो भेज दिया, पर स्वयं कुछ लज्जित भी हुआ—कुछ भयभीत भी। सच पूछिये तो आज पत्र जैसे मैं अपने-आपको खोकर निःस्व हो चुका हूँ। मैं पत्रोत्तर की प्रतीक्षा तो क्या करता, उलटे मन मे रह-रहकर एक वितृष्णा ही होती। ओह, पत्र भेजकर शायद मैंने कितनी बडी गलती कर दी।

पर नहीं, बडो का बडप्पन। सहसा एक कार्ड मिला। मैं भयभीत हो उसे उठाकर पढने लगा। परमात्मा को धन्यवाद! भय की जगह एक आनन्द का स्रोत प्रवाहित हुआ। लिखा था—"आपके प्रयत्न की सराहना करता हूँ। मुझसे जो भी सहायता चाहेंगे, मिलेगी। एक बार आ जाइये तो अच्छा।" सचमुच उस दिन मेरी खुशी का ठिकाना न था। एक अपरिचित व्यक्ति के प्रति इतना स्नेह-सिक्त मधुर व्यवहार! और, उसी दिन मेरी अन्तरात्मा कह उठी—'अवश्य यह नर-रत्न है।' बस, मैं उस नर-रत्न के दर्शनार्थ चल पडा।

मेरे साहित्यिक द्रोणाचार्य

श्रीधनूपलाल मंडल 'साहित्यरत्न' (पूर्णिया)

मैं उसकी बात नहीं कहता, जिसने अपने स्वप्न को सार्थक करने का कभी हौसला नहीं किया, जिसने अपने पाँवों पर खड़ा हो अपने जीवन की रंगीनियों और विषमताओं के बीच जूझते-जूझते अपने-आपको नहीं ललकारा, बल्कि मैं तो उसकी कहा चाहता हूँ, जिसका जीवन दिन में सौ-सौ बार मरने के लिये न होकर जीने के लिये रहा हो, जो जीता रहना इसलिये जरूरी समझता हो कि वह अपने स्वप्न को साकार रूप दे, जो साँस-साँस पर स्वतंत्रता का कड़ुआ-मीठा अनुभव करे, और जो जिये इसलिये कि अपनी आत्मा को निर्द्वन्द्व रख कर—किन्तु अपने मस्तिष्क और मन को द्वन्द्व की उलझन में डालकर—हँसता हुआ कह सके 'यही तो जीवन है यही तो जीवन है ।'

और, मैं ऐसे जीवन का थोड़ा-सा अनुभव उस समय कर पाया था जिस समय मैं अपनी एक अच्छी-सी नौकरी पर लात मारकर, अपने मित्रों के बीच उपेक्षित हो, उन बरसात के दिनों में, रात में आराम की नींद के लिये, अपनी खाट लिये घर में घूम-घूमकर जगह की तलाश कर रहा था। घर का छप्पर चलनी हो रहा था। बारिश की झड़ी से घर में पनाले बह निकले थे। मेरी सहधर्मिणी मुँह पर विषाद की छाया लिये कह रही थीं—'आज यह गत न होती अगर आप नौकरी ।'

शायद मेरी यह गलती थी। मैं सूखी हँसी हँसकर केवल उन्हें सन्तोष देने को कुछ कह उठता, पर तब मेरा ध्यान एक ही ओर जा लगा था—केवल एक ही दृष्टि-बिन्दु पर आ टिका था—केवल एक ही लक्ष्य पर अँटका था, और

उस लक्ष्य को अपने दृष्टि-पथ पर डाल मेरे वे दिन कट रहे थे—और, मैं सोच रहा था—'जब एक वैसा कर सकता है, तब क्या दूसरा उसके पद-चिह्नों का अनुसरण नहीं कर सकता ? जो एक के लिये सुलभ हो सकता है वह दूसरे के लिये क्या सुलभ नहीं हो सकता ? वह धूनी रमानेवाला अपने कर्त्तव्य पथ पर कठोरतापूर्वक अपने को ढो ले जाने में समर्थ अपने सुदूर भविष्य की चिन्ता में तल्लीन अपने लक्ष्य की ओर सतत सचेष्ट—सतत उद्योग-रत, काँटों को रौंदता हुआ बढ़ा जा रहा है—बढ़ा जा रहा है यही मेरा आदर्श हो सकता है, यही मेरे लिये द्रोणाचार्य होगा, मैं इसीका एकलव्य बनूँगा हाँ, एकलव्य !'

और, मैंने अपनी कल्पना में उसकी मूर्त्ति गढ़ी और देखा कि वह बड़ी धीर मुद्रा में एकनिष्ठ योगी-जैसा समाधिस्थ है। मेरा मस्तक उस स्वनिर्मित मूर्त्ति के प्रति नत हुआ। मेरी अंतरात्मा कह उठी—'अवश्य इस तपोनिष्ठ साधक से, जो मेरी आँखों के सामने उस मूर्त्ति में लक्षित हुआ, मेरी क्षुधा की तृप्ति होगी—अवश्य मेरी लालसा उसी के चरण तल में जाकर फलवती हो सकेगी।

तबतक मेरी एक-दो पुस्तकें प्रकाश में आ चुकी थीं। मैं एक सफल प्रकाशक बनने का व्रती हो चुका था। मगर साधन-हीन, सबल-हीन !

मैं कई दिनों तक उधेड़बुन में पड़ा रहा। शायद एक अपरिचित व्यक्ति के पत्र का मूल्य उस महापुरुष के सामने तुच्छ होगा, या नगण्य होकर ही रहेगा। फिर भी मैं ऐसा करने के लिये उल्लसित हो उठा। हृदय में साहस भर कर पत्र तो भेज दिया, पर स्वयं कुछ लज्जित भी हुआ—कुछ भयभीत भी। सच पूछिये तो जान पड़ा जैसे मैं अपने-आपको खोकर रिक्त हो चुका हूँ। मैं पत्रोत्तर की प्रतीक्षा तो क्या करता, उचाटे मन में रह-रहकर एक वितृष्णा ही होती। ओह, पत्र भेजकर शायद मैंने कितनी बड़ी गलती कर दी।

पर नहीं, बड़ों का बड़प्पन ! सहसा एक कार्ड मिला। मैं भयभीत हो उसे उठाकर पढ़ने लगा। परमात्मा को धन्यवाद ! भय की जगह एक आनन्द का स्रोत प्रवाहित हुआ। लिखा था—"आपके प्रयत्न की सराहना करता हूँ। मुझसे जो भी सहायता चाहेंगे, मिलेगी। एक बार आ जाइये तो अच्छा।" सचमुच उस दिन मेरी खुशी का ठिकाना न था। एक अपरिचित व्यक्ति के प्रति इतना स्नेह-सिक्त मधुर व्यवहार ! और, उसी दिन मेरी अन्तरात्मा कह उठी—'अवश्य वह नर-रत्न है।' बस, मैं उस नर-रत्न के दर्शनार्थ चल पड़ा।

उस दिन की स्मृति आज भी ताजी है। शायद वह आजीवन एकरस रहेगी। जान पड़ता है, जैसे मैं उनके सामने हूँ और वे मुझसे घुल-मिलकर बातें कर रहे हैं। मैंने उस प्रथम दर्शन में पाया—एक निरा देहाती, बिलकुल मामूली कपड़ों में, पुष्ट शरीर, उन्नत ललाट, घनी भौंवें, बढ़ी हुई मूँछें, सिर पर छोटे-छोटे केश, आँखें पैनी—जैसे भीतर पहुँचकर कुछ ढूँढ़ रही हों, मुँह पर गंभीरता की अमिट छाप—जाने कितनी अगाध चिन्ता में रत हों। कौन कह सकता है—वे ही बिहार को गौरवान्वित करनेवाले 'पुस्तक-भंडार' के स्वत्त्वाधिकारी रामलोचन-शरणजी (मास्टर साहब) हैं। मैं भी तो एक दिन मास्टर साहब था। 'मास्टर साहब' शब्द से जिस वेश-भूषा-भूषित व्यक्ति का चित्र मस्तिष्क पर आप-से-आप अंकित हो उठता है—सच पूछिये तो, इस 'मास्टर साहब' में उसका आभास-मात्र भी देखने को न मिला। पर, इतना तो सच है कि उस व्यक्तित्व के भीतर जो छिपा हुआ था, वह एक महापुरुष था—एक कर्त्तव्यनिष्ठ योगी था, और मैं निर्निमेष दृष्टि से उसकी ओर जाने कब तक निहारता रहा। मैंने अपनी कल्पना में एक दिन जिस मूर्त्ति का चित्र खींचा था, उस समय प्रतीत हुआ जैसे वह मूर्त्ति कितनी अधूरी हो, कितनी निष्प्राण। वास्तव और कल्पना—दो विभिन्न दिशाओं में।

ओह! कितना बड़ा स्नेह-घट लेकर बैठा है वह 'मास्टर साहब'। कामों की भीड़ लगी है, प्रूफ-संशोधन हो रहा है, पत्र डिक्टेट कराये जा रहे हैं, आगंतुकों से दो बातें हो रही हैं, कर्मचारियों को आदेश दिये जा रहे हैं। बीच-बीच में पाडु-लिपि भी तैयार हो रही है एक साथ ही सब-के-सब काम चल रहे हैं—अविराम गति से, जैसे क्षण-मात्र के लिये भी उन्हें अवकाश न हो। इतना कर्म-कोलाहल, मगर अपने काम में तन्मय। इतना कार्य-तत्पर। और, इसी कार्य-व्यस्तता की अवस्था में मैं उनके सामने हूँ, वे कुशल-प्रश्न पूछ रहे हैं, मैं संकोच से तौल-तौलकर उत्तर दे रहा हूँ और, इतने ही कुछ वार्त्तालाप में मालूम हुआ, जैसे वे मेरे कितने अपने हैं—कितना मेरे प्रति, मेरे बाल-बच्चों के प्रति, मेरे घर-परिवार के प्रति अपनापन है उनके विशाल हृदय में—मैं कितना उनके निकट हूँ, वे मेरे कितने निकट हैं। इतनी सहानुभूति, इतना ममत्व, इतना असामयिक स्नेह! जी चाहा, कह दूँ—'बिना मोल को चेरो।' यद्यपि मैं मुँह खोलकर ऐसा न कह सका—यह शायद मेरी कमजोरी थी, पर आज भी प्रेरणा होती है—उसी तरह फिर कह दूँ—'बिना मोल का चेरो।' इतना स्नेह-रस छककर भला का जी अघा-यगा—कब अघाया है?

कल्पना से अधिक उस व्यक्ति के स्नेह-सौजन्य को पाकर जहाँ मैंने अपने को धन्य माना, वहाँ मेरा दुर्भाग्य सदैव मुस्कराकर विद्रूप की हँसी हँसता रहा—आज भी वह उसी तरह हँस रहा है। पर मेरे सिवा उससे और कौन निबटेगा। संघर्ष चल रहा है। मैं उसके बीच से लड़ता-भिड़ता हुआ कभी दम लेने को ठहर जाता हूँ—और तब, मेरा ध्यान फिर एक बार वहाँ जाकर टिक जाता है, जहाँ मेरे लिये एक आश्वासन है, एक आश्रय है, एक सहारा है।

और, मैंने अनुभव किया है कि वह स्नेह न केवल मेरे लिये ही अताम् है, वरन् मैं निकट से जानता हूँ कि बिहार के साहित्यिकों में से शायद ही दो-एक ऐसे हों, जिन्हें उनसे मिलने का—उनसे स्नेह पाने का—अवसर हाथ न लगा हो। साहित्यिकों और कलाकारों के प्रति उस व्यक्ति में कितना अधिक आदर है—कितना अधिक स्नेह।

और, मैंने उस स्नेह को मनोवैज्ञानिक सत्यता की कसौटी पर कसकर पाया कि बचपन की धनहीनता के बीच पलकर—बढ़कर जो लघुता उनके अंतर को उद्वेलित करती रही, उसने उनकी यौवनोचित कर्मठता को उभाड़ा, उससे उनके पौरुष को बल मिला। उनके मन में उस लघुता के प्रति विक्षोभ हुआ—उसकी प्रति-क्रिया उत्पन्न हुई और उस प्रति क्रिया के फल-स्वरूप उनकी अन्तश्चेतना में स्फुरण हुआ, जो स्फुरण हमारे सामने स्नेह-दान के रूप में प्रत्यक्ष हो उठा। उन्हें गरीबी का स्वयं अनुभव है, अतएव उसके प्रति उनके हृदय में हाहाकार भी है। लोग कहते हैं—वे एक कुशल व्यवसायी हैं, मैं भी मानता हूँ कि वे एक कुशल व्यवसायी हैं, पर पहले वे मनुष्य हैं—पीछे और कुछ। यदि वे मनुष्य न होते, तो व्यवसायी बनकर लक्ष्मीवान हो सकते थे, दयावान् नहीं।

'पुस्तक-भंडार' उनकी अखंड कर्मठता का प्रतीक है। वह उनका विशाल यशस्तम्भ है। वह उनकी अपनी अर्जित सम्पत्ति तो है, पर उनकी अपनी कुछ नहीं—मेरी है, आपकी है सबकी है। वह निरक्षर को साक्षर, साक्षर को कलम पकड़नेवाला और कलम पकड़नेवाले को कलाकार बनाता है। आज न जाने कितनों को उससे सहायता मिलती है—जीविका मिलती है। साहित्यिक उद्योग में केवल वह अकेला बिहार की जितनी सेवा कर सका है, उतनी अन्य सब प्रकाशन संस्थाएँ मिलकर भी न कर पाईं। अतएव, रामलोचनशरणजी पर बिहार का गर्व करना स्वाभाविक है।

आज, जब उनके 'भंडार' की रजत-जयन्ती और उनकी अपनी स्वर्ण-जयन्ती मनाई जा रही है, मैं उनके चरणों पर अपनी श्रद्धा के दो पुष्प अर्पित करने में असीम आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ—इसलिये कि उन चरणों के

चिह्न मेरे जीवन के लिये माइल-स्टोन हैं। भले ही अपने 'गोल' तक न पहुँच सकूँ, पर मुझे अत्यधिक आनन्द केवल इस बात के लिये है कि मेरा 'आदर्श' आदर्श रहा। और, मेरी कामना है कि वह आदर्श दिनानुदिन उन्नत हो, सघन हो, विशाल हो—और कुछ नहीं तो, उसकी सघन छाया में जीवन-पथ के थके पथिकों को दो घड़ी साँस लेने का तो आसरा रहे।

स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने योग्य एक नाम

पंडित रामप्रीत शर्मा 'प्रियतम', 'विशारद', नागरी-प्रचारिणी सभा, आरा

मास्टर साहब का नाम हिन्दी-साहित्य के इतिहास में अमर रहेगा। आपने 'भंडार' और 'बालक' के द्वारा हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है, वह समस्त देश के लिये आदरणीय और अनुकरणीय है। इस देश में और भी सफल प्रकाशक हैं, परन्तु हृदय की विशालता और सौजन्य में आपने सबसे बाजी मार ली है। मुझे तो आपका प्रत्यक्ष परिचय सन् १९३६ के जून महीने में मिला।

आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से कविवर 'हरिऔध' जी को जो अभिनन्दन-ग्रन्थ दिया गया में उसका संयोजक और उसके सम्पादक-मंडल का सदस्य था। खड्गविलास प्रेस ने ग्रन्थ छापने का भार अपने ऊपर लिया था। छपाई और प्रकाशन के विषय में मतभेद होने के कारण उस पुनीत अनुष्ठान में भयंकर रुकावट आ पड़ी। मैं हताश होकर बाँकीपुर से लौटा आ रहा था। अकस्मात् मास्टर साहब के दर्शन हुए।

मेरी उदासी का कारण जानने पर आपने दृढ़ विश्वास दिलाते हुए कहा—"भंडार साहित्यिक तपस्वियों की सेवा और पूजा के लिये ही है। मैं व्यापारी नहीं, साहित्य का एक सेवक हूँ। सभा का अनुष्ठान बिहार का गौरव-वर्द्धक है। मैं आपको एक हजार पृष्ठों का सर्वाङ्गसुन्दर ग्रन्थ एक महीने में छापकर दे दूँगा।"

आपके उस आश्वासन ने मुझे आनन्द-विभोर कर दिया। अततोगत्वा ग्रन्थ तो खड्गविलास प्रेस में ही छपा, परन्तु चित्रों के अधिकांश ब्लाक 'भंडार' से ही मिले। इसके लिये मैं ही नहीं, सभा भी चिर-आभारी है। जिनलोगों का आपसे व्यवहार होता है, वे आपके आत्मीय बन जाते हैं। आपके साथ अध्यापकों, लेखकों और बुक्सेलरों की चिर-अभिन्नता ही आपके सौजन्य की कसौटी है। आपके द्वारा हिन्दी-साहित्य की जो सेवा हुई है, वह निस्सन्देह स्वर्णाक्षरों में लिखी जायगी। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में आपका नाम तबतक स्वर्णाक्षरों में चमकता रहेगा, जबतक इस देश में हिन्दी-भाषा का अस्तित्व रहेगा।

बिहार का विद्यापीठ—'पुस्तक-भंडार'

श्रीजयनारायण झा 'विनीत', समस्तीपुर (दरभंगा)

'भंडार' की रजत-जयन्ती हिन्दी-साहित्य के सुन्दर भविष्य की ओर संकेत है। हिन्दी-संसार में अपने ढंग का यह पहला उत्सव है। हिन्दी-प्रेमियों को तो इसका गौरव होना चाहिये। यों तो समस्त हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों को गौरव का अनुभव होगा, लेकिन विशेषतः बिहार और उसमें भी दरभंगा जिले को अपना परम सौभाग्य समझना चाहिये।

जिस जिले को बच्चों की भी पाठ्य पुस्तिकाओं के लिये परमुखापेक्षी रहना पड़ता था, उसी जिले के 'पुस्तक-भंडार' ने समस्त हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों में बच्चों से लेकर वयस्कों और वृद्धों तक के लिये सुपाठ्य पुस्तकें प्रसारित कर दीं। ऐसे प्रकाशन-भवन 'भंडार' पर उस जिले को गर्व क्यों न हो?

बाल से वृद्ध तक—सभी श्रेणियों के लोगों के लिये, पठनीय पुस्तकों का प्रकाशन कर 'भंडार' ने अपूर्व लोकप्रियता प्राप्त कर ली है। पुस्तक-प्रकाशन में उसने बालक-बालिका, युवक-युवती, स्त्री-पुरुष सबकी आवश्यकताओं और रुचियों का ध्यान रक्खा है। दर्शन-शास्त्रों से लेकर कथा-कहानियों तक की पुस्तकें प्रकाशित कर 'भंडार' ने रुचि-वैविध्य का पूर्ण रूप से पोषण किया है।

'भंडार' ने हिन्दी की सेवा तो पूर्ण रूप से की ही है, मिथिला और मैथिली की भी आराधना में पूर्ण मनोयोग दिया है। दीप्तिमान देवता को तो सभी पूजते हैं। सच्चा साधक पुजारी तो वह है जो उपेक्षित और अज्ञात देवता को अपनी पूजा एवं साधना के बल से उद्दीप्त रूप में संसार के सामने प्रकट कर दे। मैथिली का अमर उपन्यास 'कन्यादान' और मिथिलाक्षर के टाइप 'भंडार' की अमूल्य देन हैं, जिसके लिये मैथिल-मात्र को उसका कृतज्ञ रहना चाहिये।

'भंडार' देह है, 'मास्टर साहब' उसके प्राण। इस उत्तरोत्तर विशाल होनेवाले 'भंडार'-रूपी वट-वृक्ष को अंकुरित अवस्था में भी मैंने देखा है। जिन्होंने बीज-वपन कर उसे आजतक अपने श्रमकणों से सींच-सींच इस रूप में सफल कर दिया है, वे निश्चय ही धन्य हैं। 'भंडार' के अणु-अणु में उनके प्रयास का आभास है। वे कर्मठ योगी हैं। प्रतिकूल वातावरण को भी अनुकूल बना लेने की उनमें अद्भुत क्षमता है। अनुकूल और प्रतिकूल, सभी परिस्थितियों में वे एक-सी लगन से अपना मार्ग निर्माण करते हुए चलनेवाले व्यक्तियों में हैं।

जिनलोगों ने 'भंडार' के आरम्भिक जीवन से आज तक की स्थिति को समीप से देखा है, वे इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि 'भंडार' पर विभिन्न समयों में, विभिन्न दिशाओं से, विभिन्न प्रकार की, आपत्तियाँ आती रही हैं, फिर भी उन सबका धैर्यपूर्वक निवारण करते हुए वे 'भंडार' को उत्तरोत्तर उन्नति के मार्ग पर अग्रसर किये जा रहे हैं। वे मितभाषी और मिष्टभाषी स्वभाव के व्यक्ति हैं। पात्रानुसार स्वागत-सत्कार करने का भी उन्हें अच्छा अभ्यास है। हिन्दी के अनेक लेखकों और कवियों ने उनसे पूर्ण प्रोत्साहन पाया है। आशा है, आगे भी पाते रहेंगे।

उनका ध्यान सुन्दर साहित्य को सुन्दर ढंग से मुद्रित और प्रकाशित करने की ओर सदा रहता है। इस प्रान्त में विशिष्ट श्रेणी के साहित्य का सृजन करने का श्रेय उन्हीं को है। उनका 'पुस्तक-भंडार' निस्सन्देह बिहार का विद्यापीठ है।

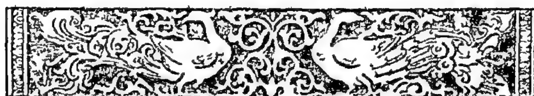

बिहार के गौरव 'मास्टर साहब'

श्रीहरेश्वरदत्त 'मिमिकमैन', एम० ए०, बी० एल०, छपरा

यों तो बचपन से ही मैं 'भंडार' और शरणजी का नाम सुनता आ रहा हूँ, पर जब कभी मैं लहेरियासराय गया हूँ, 'भंडार' के कर्मचारियों से मिलकर प्रसन्न ही नहीं, वरन् उनके सराहनीय अतिथि-सत्कार से चकित भी हुआ हूँ। यहाँ की प्रकाशित उपयोगी पुस्तकें सिर्फ आलमारियों में सजी देखकर ही नहीं लौटा हूँ, वरन् उनमें से बहुत-सी उपहार-स्वरूप मेरे घर भी आई हैं। हिन्दी-साहित्य की सेवा करने में 'भंडार' बिहार का एकमात्र सफल प्रकाशन-गृह है। समस्त भारत में इसका आदरणीय स्थान है।

'बालक' की ख्याति केवल अखिल भारतीय ही नहीं, अन्ताराष्ट्रिय भी है। प्रवासी भारतीयों के प्रकाशित लेख इसके प्रमाण हैं। बालकों की ज्ञानवृद्धि और उनमें साहित्यिक सुरुचि उत्पन्न करने तथा उन्हें लेख लिखने का प्रोत्साहन देने में 'बालक' सर्वदा प्रयत्नशील है। बाल-साहित्य निर्माण का कार्य इसके द्वारा सही और सच्चे ढंग से हो रहा है। इसमें मेरी बहन शकुन्तला, भतीजी इन्दुमती और भतीजा कमलेशकुमार के लेखों को सम्पादकजी ने कृपापूर्वक बराबर स्थान दिया है। अपने लेखों के बल पर मैं भी कई बार सम्पादकजी से लँगड़ा आम और लीची वसूल कर चुका हूँ।

'भंडार' की पुस्तकों की छपाई बड़ी ही अप-टु-डेट है। 'बालक' की छपाई भी प्रशंसनीय होती है। चित्र बड़े सुरुचिपूर्ण निकलते हैं इसका श्रेय प्रसिद्ध कलाकार भाई उपेन्द्र महारथीजी को है।

मास्टर साहब बिहार के साहित्य-गगन के चमकते तारा हैं। स्वयं साहित्यिक होने के कारण, व्यापारी होते हुए भी, लेखकों और कवियों के साथ उनका व्यवहार और सम्बन्ध बड़ा मधुर और घनिष्ठ है। मैं तो उन्हें सर्वदा सहृदय पाता रहा हूँ। उन्होंने अपनी साहित्य-सेवा से बिहार को गौरवान्वित किया है। वे सच्चे अर्थ में बिहार के गौरव हैं।

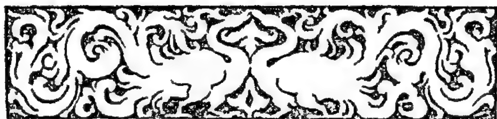

साहित्यिकों का मातृमन्दिर

श्रीश्यामधारीप्रसाद 'साहित्यभूषण', पुदनी (मुजफ्फरपुर)

बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सातवें अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिये मैं मुजफ्फरपुर से साहित्यिक मित्रों के साथ दरभंगा चला। रास्ते ही में मुजफ्फरपुर के कहानी-लेखक भाई कमलदेव नारायण बी एल ने अपने यहाँ ठहरने का आग्रह किया। मैंने भी प्रतिनिधि-निवास से उन्हीं के यहाँ रहना अच्छा समझा। अत स्टेशन से, अपने पूज्य अग्रज बाबू रामधारीप्रसादजी के साथ, सीधे कमलदेव बाबू के पास पहुँचा। सामान अभी उतर ही रहा था कि एक दूसरी पालकी-गाडी आकर खडी हुई। उससे एक गौर-वर्ण सज्जन उतर-कर मेरे निकट आये। मैं उन्हें पहचानता न था। किन्तु उन्होंने चिर-परिचित की भाँति मुझसे यहाँ उतरने का कारण पूछा। मैं अवाक् खडा था। इतने ही मे कमलदेव बाबू बाहर निकले। उनको 'मास्टर साहब' के नाम से सम्बोधित कर प्रणाम किया।

भाई बेनीपुरीजी से 'भडार' के सर्वस्व शरणजी के सम्बन्ध मे बहुत-कुछ सुन चुका था। यह भी जानता था कि शरणजी को लोग 'मास्टर साहब' ही कहते हैं। मैं उनकी विनम्रता देख बडा विस्मित हुआ। मन-ही-मन सोचा—'विद्या ददाति विनयम्' को चरितार्थ करने ही के लिये क्या 'मास्टर साहब' की सृष्टि हुई है ?

मैं चुप खडा अभी सोच ही रहा था कि मास्टर साहब ने मेरा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। मुझे 'भडार' में चलने के लिये कहा। साथ ही, मेरा सामान अपनी गाडी पर लदवाने लगे। मैं भी चुपचाप गाडी पर सवार हो 'भडार'

पहुँचा। मेरे वहाँ पहुँचने के पूर्व ही से श्रीराघवप्रसाद सिंह 'महथ' (स्वर्गीय) तथा अन्य कई परिचित साहित्यिक मित्र 'भंडार' के अतिथि हो चुके थे। मैं भी उसी दल में शामिल हो गया। सम्मेलन के अधिवेशन तक मैं वहीं रहा। मास्टर साहब की सहृदयता की बदौलत मुझे बोध ही नहीं हुआ कि घर छोड़कर कहीं अन्यत्र आया हूँ। मैं उनकी मधुर स्मृति लिये घर लौटा। वास्तव में उनका 'भंडार' साहित्य-सेवियों के लिये अतुलनीय अतिथिशाला है।

मुझ जैसे नगण्य व्यक्ति को भी आज तक वे भूल न सके। जब-जब 'बालक' का कोई विशेषाङ्क निकालने की योजना हुई, मुझसे जरूर कोई-न-कोई लेख या कविता माँगी गई। मेरे आलस्य करने पर तकाजे का ताँता लग गया।

भाई बेनीपुरीजी से जब उन्हें मालूम हुआ कि मेरी स्वर्गीया पत्नी ने 'सावित्री' नामक पुस्तक लिखी तब बड़े ही आग्रह के साथ उन्होंने बेनीपुरीजी को भेजकर पाण्डु-लिपि मँगवाई—'भंडार' से उसे प्रकाशित किया।

इसी तरह उन्होंने सदा बिहार के नव-युवक कवियों और लेखकों की पुस्तकें प्रकाशित कर होनहार साहित्यसेवियों को उत्साह-दानपूर्वक आगे बढ़ाया है। उनका 'भंडार' सचमुच इस प्रान्त के साहित्यिकों के लिये अनुपम मातृमन्दिर है।

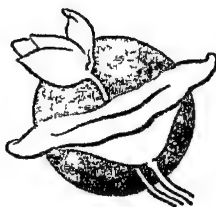

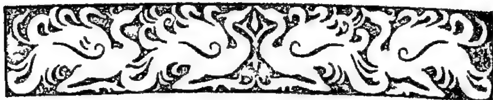

बिहार के 'गिजू भाई' ❀

श्रीसूर्यदेवनारायण श्रीवास्तव; समस्तीपुर (दरभंगा)

"बिहार के किस जिले से आ रहे हैं आप ?"—नैपाल-रेलवे के आखिरी स्टेशन 'अमलेखगंज' में एक नैपाली सज्जन ने पूछा।

"दरभंगा जिले में।"

"लहेरियासराय तो दरभंगा जिले में ही है न ?"

"हाँ, आप लहेरियासराय को कैसे जानते हैं ?"

"जहाँ बाबू रामलोचनशरण हैं और जहाँ पर उनका 'पुस्तक-भंडार' है, भला उस जगह को कोई क्यों न जाने ?"

"आप उन्हें कैसे जानते हैं ?"—मैं मुस्कुरा रहा था।

"वाह साहब, जिन्होंने बालकों के लिये सैकड़ों किताबें लिखीं—बालकों को समझाने के कितने नये-नये तरीके निकाले, जिनकी किताबें बालकों के दिल में घर कर लेती हैं, जो हिन्दी-भाषी प्रान्तों के लिये स्वनामधन्य गिजू भाई हो रहे हैं, भला उन्हें हम न जानें, यह आप कैसी बातें कर रहे हैं ?"

मैं चुपचाप सुन रहा था।

"देखिये इधर।"—मैंने उधर देखा।

उन्होंने जेब से 'मनोहर पोथी' निकाली—"यह एक छोटी-सी किताब बच्चों को अक्षर ज्ञान कराने के लिये लिखी गई है। लेकिन इसकी विधि को देखकर दंग रह जाना पड़ता है। बच्चे इतना जल्द सब-कुछ सीख लेते हैं कि वाह ! इसके बाद इस तरह की चाहे जितनी भी किताबें निकली हों, किन्तु इस

❀ स्वर्गीय गिजू भाई गुजराती भाषा में बाल-साहित्य के स्रष्टा थे।—सं०

प्रणाली के आविष्कारक महोदय के दिमाग की तारीफ करनी ही पड़ती है। मैंने बाल-साहित्य की बहुत-सी पुस्तकें देखी हैं। प्रश्नोत्तर-विधि (Socrate's method) आगमनात्मक विधि (Inductive method) पर अनेक किताबें लिखी पड़ी हैं, लेकिन मेरा विश्वास है, इन दोनों विधियों को उन्होंने जितना साफ समझा और समझाया है, कम लोगों ने उतना समझा होगा। प्रश्न और उत्तर के बल पर इतनी सरलता से वे बच्चों को कठिन-से-कठिन चीजें समझा देते हैं कि तबीयत बाग-बाग हो जाती है। उनके दृष्टान्त इतने पक्के होते हैं और उन दृष्टान्तों से नियम इतने शीघ्र निकल आते हैं कि बालकों को याद रखने के लिये तनिक भी दिमाग पर जोर लगाना नहीं पड़ता। हिसाब और व्याकरण-जैसे नीरस विषयों में भी सरलता और सरसता लाना, इनके विश्लेषण और स्पष्टीकरण की कला को जानना—उन्हीं का काम है। मेरा अपना तजरबा है, मैंने उनकी जितनी भी पुस्तकें पढ़ी हैं, उसके बल पर कह सकता हूँ, उनके ऐसा बाल-साहित्य के निर्माता उँगलियों पर गिनने लायक हैं।"

"आप कहीं शिक्षक हैं क्या ?"—इतनी बातें सुनकर मैंने पूछा।

"हाँ साहब"—वे चमक उठे, जैसे मैंने उनके गौरव की कोई बात कही हो—"किन्तु आपने कैसे समझा कि मैं शिक्षक हूँ ?"

"शिक्षक की बातें शिक्षक खूब समझते हैं।"

"अच्छा, आप भी शिक्षक हैं ? कहाँ ?"

"मुजफ्फरपुर के एक हाइ-स्कूल में।"

"खूब। हाँ, तो नैपाली बालकों में हिन्दी का प्रचार ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। पर मैं किसी स्कूल का नौकर नहीं। बस, इधर-उधर डोलते फिरकर जहाँ भी हिन्दी का सर्वथा अभाव है वहाँ हिन्दी की ओर बालकों का प्रेम बढ़ाना ही मेरा काम है। इसके साधन भी रामलोचनशरणजी की पुस्तकें ही हैं।"

इसी समय उनकी लॉरी ने खुलने का पहला भोंपू बजाया।

"हाँ साहब, आपने तो उन्हें देखा होगा, कैसे हैं वे ? सुना है, अब वे बहुत बड़े आदमी हो गये हैं, बहुत बड़ा भवन बनवाया है, मोटर में चलते हैं, नौकर-चाकर आगे-पीछे लगे रहते हैं। जाकर एक बार दर्शन करने की अभिलाषा है। सबसे मिलते हैं ?"

"आपने कहाँ सुना ये बातें ?"—मुझे हँसी आ गई—"आप लहेरियासराय स्टेशन पर उतरकर पहुँचिये सीधे 'पुस्तक-भंडार'। हाँ, 'भंडार' की बड़ी इमारत है अवश्य। अंदर जाइये। एक ओर पोस्ट-ऑफिस मिलेगा, फिर प्रेस, जिसमें सौ से ज्यादा आदमी काम करते हैं। दूसरी ओर आप देखेंगे 'भंडार' का कार्या-

लय। अनेक कमरे, टेबुल-कुर्सियाँ, बिजली-बत्ती, बिजली के पंखे, टेलीफोन और बड़ी-बड़ी तनख्वाहें पानेवाले बाबू। कार्यालय के पास ही एक कमरा मिलेगा। मोटे कम्बल पर तीन-चार छोटे बालकों को बहलाते, उनसे हँसते-बोलते और इसी बीच कर्मचारियों को बुला-बुलाकर काम भी समझाते हुए एक अधेड़ सज्जन मिलेंगे। बाल खिचडी, कुछ दाँत टूटे, कभी खाली देह, कभी मामूली कुरता, हँसती आँखें, खिले चेहरे पर कांति, सादा भेष और उच्च विचार का प्रतीक अगर आपको कोई मिले, तो आप समझ लीजिये कि आपने मास्टर साहब को पा लिया।"

"मास्टर साहब को?" वे चौंके।

"अरे हाँ, श्रीरामलोचनशरणजी को सभी 'मास्टर साहब' ही कहते हैं। आप पहले मास्टर साहब थे न। हाँ, तो आप समझ लीजिये, आपने उनको पा लिया। आप प्रणाम कीजिये। वे दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करेंगे। पास बिठाकर कुशल-समाचार पूछेंगे। कुछ ही मिनटों के बाद आपको जान पड़ेगा जैसे आप दोनों का परिचय बरसों का है। 'वे बड़े आदमी हो गये हैं, मोटर पर चलते हैं, नौकर-चाकर लगे रहते हैं'—ये सब बातें किसने कह दीं आपसे? उनके मोटर नहीं है, उनके लिये एक भी खास नौकर नहीं है। जितने भी नौकर हैं, सभी 'भंडार' के लिये हैं, जिन्हें वे पंद्रह सौ रुपये प्रति मास वेतन देते हैं। जनाब, आवश्यकता पड़ने पर आपके लिये वे स्वयं गिलास में पानी लावेंगे। इतनी सादगी है उनमें, इतना अपनापन है।"

उस नैपाली सज्जन की आँखें भर आईं। वे कुछ कहना ही चाहते थे कि लॉरी का आखिरी भोंपू बज उठा।

"मैं उनके दर्शन शीघ्र ही करूँगा।"—कहते हुए वे चल पड़े।

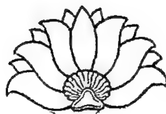

मेरे साहित्यिक गुरु

श्रीवागीश्वर झा, बी० ए० (ऑनर्स), भागलपुर

लगभग बारह वर्ष पहले की बात है। मैं सिर्फ नौ वर्ष का बालक था। पढता था अपने गॉव के मिडूल-ईंगलिश-स्कूल की पॉचवीं श्रेणी में। पूज्य पिताजी (श्रीजगदीश झा 'विमल') 'ई० आइ० आर०-स्कूल' (जमालपुर) मे अध्यापक थे। प्राय प्रत्येक छुट्टी मे वे घर आया करते और मेरे लिये कुछ-न-कुछ ले आया करते थे।

एक बार उन्होने 'पुस्तक-भडार' से प्रकाशित 'बालक' की एक प्रति मुझे देते हुए कहा—"यही तुम्हारा सचा गुरु होगा, जो तुमको बिना दड दिये निर्मल ज्ञान प्रदान करेगा। तुम ध्यान से इसको पढो और जुगाकर रक्खो। हर महीने मे इससे नई-नई बातो की जानकारी होगी।"

मैं 'बालक' पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। पहले उसके सुन्दर चित्रो को देख गया। फिर छोटे-छोटे ज्ञान-वर्द्धक गद्य-पद्यमय लेखों को पढ गया। बडा आनन्द मिला। कई नई बातें मालूम हुई।

पिताजी प्रति मास 'बालक' लाकर मुझे देने लगे। कभी-कभी प्रश्नो द्वारा मेरी जॉच भी करने लगे कि मैं सचमुच 'बालक' से कुछ सीखता हूँ या नहीं। यह क्रम बरसो चला।

'बालक' के अतिरिक्त 'भडार' से नई प्रकाशित साहित्यिक पुस्तकें भी पिताजी के पास आती थीं। मैं उन्हे भी ध्यान से पढ जाता था। इस प्रकार मेरे मन में साहित्यिक पुस्तकों के पढ़ने की अभिरुचि 'बालक' पढ़ने से ही पैदा हुई। अब तो 'बालक' अपना आकार-प्रकार बदलकर विशेष उन्नतावस्था में निकल रहा है।

'बालक'-सम्पादक श्रीशरणजी के दर्शनों का सौभाग्य यद्यपि आजतक मुझे प्राप्त नहीं हुआ है, तथापि उनके प्रति हृदय में बचपन से ही श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न होकर उत्तरोत्तर परिवर्द्धित होती जा रही है। इसका प्रधान कारण यह है कि बचपन से ही उनकी लिखी हुई सुन्दर पुस्तकें, स्कूल से कालेज तक, पढ़ता आ रहा हूँ। उनपर और उनके 'भंडार' पर हम बिहारियों को गर्व है, क्योंकि उन्होंने अपने साहित्यिक सत्कार्य से बिहार का मस्तक ऊँचा किया है।

मैं, कानून का विद्यार्थी होकर भी, 'भंडार' द्वारा प्रकाशित नई साहित्यिक पुस्तकें पढ़ने के लिये, सदा लालायित रहता हूँ, क्योंकि प्रायः वहाँ से बेजोड़ पुस्तकें निकला करती हैं।

मैं कोई लेखक या कवि नहीं हूँ, किन्तु साहित्यिक पुस्तकें पढ़ने की रुचि किसी साहित्यिक से कम नहीं है। यह प्रवृत्ति 'बालक' पढ़ते रहने से ही हुई है। इसलिये मैं 'बालक'-सम्पादक को अपना साहित्यिक गुरु मानता हूँ।

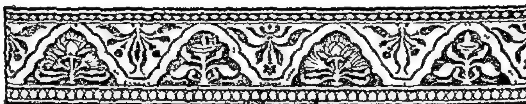

'भंडार' के नाम एक खुला पत्र

श्रीकमलदेवनारायण, बी० ए०, बी० एल०, मुजफ्फरपुर

बालसखा 'भंडार'।

तुम्हारे संस्थापक 'मास्टर साहब' स्कूल मे तो मुझे पढाते ही थे, घर पर भी 'ट्यूशन' पढाते थे। मेरे हमजोलियो मे 'कामता', 'शालग्राम' और 'गुलजार' थे। प्राय संध्या समय हमलोग ट्यूशन पढने जाते थे। तुम्हारे वर्तमान घर से उत्तर गुलजार का डेरा था। उसी में एक तरफ 'मास्टर साहब' रहते थे। हमलोगों के पढाने के बाद वे भोजन करते। फिर लिखने बैठ जाते थे। प्राय एक-दो बजे रात तक बैठे लिखा करते। पहले की लिखी उनकी कितनी ही किताबें उनके एक मित्र बाबू शिवनन्दनसहाय के नाम से प्रकाशित हुईं। लेकिन थोडे ही दिनों के बाद उनका ध्यान मौलिक पुस्तकें लिखने की ओर गया।

बात यह हुई कि स्कूल मे पडित भूषण सिंह हिन्दी के विद्वान् समझे जाते थे। परन्तु मास्टर साहब ने आते ही उनसे मैदान ले लिया। जो भी विद्यार्थी हिन्दी सीखने के लिये उनसे जितना काम ले, उसपर वे उतना ही ज्यादा खुश रहते। हिन्दी-प्रचार करते-करते उनको एक सुलभ व्याकरण का अभाव खटका। तब 'डिरेक्ट मेथड' (Direct method) पर व्याकरण लिखने का विचार किया। 'अपर-व्याकरण-बोध' लिखना आरम्भ कर दिया। रात को लिखते और दिन को पढा देते थे। आसानी से विद्यार्थियों को व्याकरण का अच्छा ज्ञान हो गया। साथ-ही साथ 'पत्र-चन्द्रिका' तथा एक और कोई किताब उन्होंने लिखी। इनका प्रकाशन उन्होंने खुद करना चाहा। उनके मन मे एक शुभ संकल्प हुआ।

बात सवत् १९७२ की है। मेरे पूज्य पिताजी ने कहा—"मास्टर साहब, यदि किसी प्रकार इन पुस्तकों को आप छपवा सके तो हिन्दी की एक अपूर्व वस्तु होगी।" काशी के हितचिन्तक प्रेस ने मास्टर साहब के अपूर्व उत्साह से प्रभावित होकर पुस्तकें छाप दीं। पूज्य पिताजी के आनन्द का ठिकाना न रहा। पुस्तकों के छपते-छपते तुम्हारा जन्म हुआ। इसी वर्ष साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशन का भी श्रीगणेश हुआ। विमाता, पवित्र जीवन, रामायण का अध्ययन इत्यादि ग्रन्थ छपे और तब से बराबर साहित्यिक पुस्तकों का प्रकाशन जारी है, जिनकी लोगों ने मुक्तकठ से प्रशसा की है।

हरवश बाबू ने भी कुछ किताबें लिखीं। मास्टर साहब को बच्चों की पाठ्य पुस्तकों की भद्दी भाषा और भूलें बराबर खटकती थीं। तुम्हारे ऐसे होनहार को पाकर उनका दिल बढा। उनके द्वारा पुस्तकें लिखी जाने लगीं। क्रमश प्रकाशित भी होती गईं। काम बढता गया। तुम्हारे लाड-प्यार के लिये उन्होंने लम्बी छुट्टी ली। आखिर त्याग-पत्र दे दिया।

उसी समय 'बाल साहब' वाली लाल कोठी बिक रही थी। मास्टर साहब को तुम्हारे लिये एक सुखकर भवन का अभाव बराबर खटकता था। कोठी खरीद ली गई। उसमें काफी कमरे थे। भिन्न भिन्न कमरों में विभिन्न विभाग बाँट दिये गये। तुम्हारा कार्य-क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया।

अब तुम्हारे 'बालक' की भी चिन्ता उन्हें करनी पडी। आखिर 'बेनीपुरी' बुलाये गये। फिर बेनीपुरी के बाद भैया शिवपूजनजी ने तुम्हारे 'बालक' को सँवारा। अब तो वह सिंह-शावक-सा बलिष्ठ और तेजस्वी हो गया है और शरणजी के हाथ में है।

तुम्हारे काम इतने बढ गये कि काशी के दो-दो, तीन-तीन प्रेस भी तुम्हारी माँग पूरी नहीं कर सकते थे। फलत निज का प्रेस खोला गया। विद्यापति प्रेस की छपाई ने सारे देश में धूम मचा दी।

सन् १९३४ मे भूकम्प ने 'बाल साहब' वाली लाल कोठी को धराशायी कर दिया। लेकिन तुम्हारे निर्माता ने शीघ्र ही उससे कहीं अच्छा भवन बनवा दिया, जिसमें अब तुम मौज करते हो।

भैया, अब तुम बड़े आदमी हो गये। विशाल भवन, निज का प्रेस, सैकड़ों कर्मचारी, लाखों की सम्पत्ति, सब पर धाक, ऊँची साख, सब तो है।

एक गरीब आदमी भी, यदि उसके दिल में सच्ची लगन हो, मीठा व्यवहार रक्खे, तो अध्यवसाय के बल पर सब कुछ कर सकता है—इसका जीता-जागता नमूना तुम्हारे 'मास्टर साहब' हैं।

भाई, तुम्हारी रजत-जयन्ती के शुभ अवसर पर तुम्हें हार्दिक बधाई। दूधो नहाओ पूतो फलो। मुझको भी तुम्हें गोद खेलाने का सौभाग्य प्राप्त है। लल्लिया बने रहो।

मास्टर साहब और उनकी विनोदप्रियता

श्रीकमलनारायण झा 'कमलेश', कैना (दरभंगा)

बडे गुरुजी ने मुझे पुकारा और हाथ मे कुछ नई पुस्तकें दीं। उनके टाइटिल-पेज रंगीन थे। सम्राट् पंचम जार्ज और सम्राज्ञी मेरी के चित्र छपे थे। आज तक इतनी सुन्दर पुस्तकें मुझे देखने को नहीं मिली थीं।

मेरे नाना चौकी पर बैठे माला फेर रहे थे। हियालाल नीचे बैठा चिलम भर रहा था। मैंने पुस्तकें उसे दिखाईं और कहा—"नाना की पुस्तकें ऐसी हैं? वे तो बिलकुल पुरानी—फटी हुई हैं।"

इतने में नाना का ध्यान टूटा। उन्होंने पुस्तकें मेरे हाथ से ले लीं। लगे उनके पन्ने उलटने। मैं चुप खडा रहा। उन्होंने कहा—"यह पुस्तक तुम्हारे पढ़ने लायक है। देखो न, भगवान् रामचन्द्र की कथा कुछ ही पृष्ठों मे लिखी गई है। अरे, कृष्णकथा भी है। और भी कई अच्छी-अच्छी कहानियाँ हैं। अच्छा, रामकथा याद कर सुना दोगे तो इनाम दूँगा।"

मैं रामकथा पढ़ गया। एक बार पढा, दूसरी बार पढा, सारी कथा कठस्थ हो गई। नाना को सुना दिया ठीक दूसरे दिन। ऐतिहासिक कहानियाँ मुझे इतनी पसद आईं कि कुछ ही दिनों मे सब कहानियाँ रट डालीं। पुस्तक अक्षरश कठस्थ हो गई। उसका नाम था 'लोअर इतिहास परिचय'। उसके लेखक थे बाबू रामलोचनशरण बिहारी।

कुछ महीनो के बाद मैं अपने गाँव गया। वहाँ भी अपनी नई पुस्तकें लेता गया। गाँव के गुरुजी नित्य मुझसे इतिहास की एक एक कहानी लिखवाते। गुरुजी को मेरी भाषा की शुद्धता पर अचरज होता। नित्य डिक्टेशन लिखाते समय जो कुछ वे बोलते, मैं शुद्ध-शुद्ध लिख जाता। मैंने अबतक व्याकरण नहीं

पढ़ा था, पर 'लोअर-इतिहास परिचय' की भाषा कठस्थ कर लेने के कारण शुद्ध लिखने की प्रवृत्ति हो गई थी।

एक साल बाद मेरा नाम अपर प्राइमरी स्कूल मे लिखाया गया। वहाँ 'अपर-व्याकरण-बोध', 'अपर-इतिहास-परिचय' और 'अपर-भूगोल परिचय' नामक पुस्तकें पढ़ाई जाती थीं। ये सभी पुस्तक शरणजी की लिखी थीं। इन्हें पढकर मैं सिर्फ अपने वर्ग के सभी छात्रों से ज्यादा नम्बर ही नहीं लाता, वरन् अपने शिक्षक को भी अचरज में डाल देता।

× × × ×

सन् १९२७ ई० की बात है। मैं मैट्रिकुलेशन परीक्षा की तैयारी करने दरभगा आया। 'बालक' का जन्म हो चुका था। उसमें मेरे कुछ लेख प्रकाशित हो चुके थे। उन दिनों 'पुस्तक-भडार' के सामने साहित्य परिषद् का वाचनालय था। एक दिन, सयोगवश, श्रीरामलोचनशरण 'बिहारी' से वहाँ भेंट हुई। मुझे हिन्दी-साहित्य का अनुरागी बनने की उत्कट अभिलाषा थी, किन्तु मार्ग-दर्शक का अभाव था। इधर-उधर साहित्यिकों की खोज मे, मिल जाने पर उनसे बात करने में, व्यस्त रहता था। 'रॉबिंसन क्रूसो' की छाया पर मैंने एक कहानी लिखी थी। 'विकल' जी ने शरणजी को वह कहानी दिखाई। वे बडे प्रसन्न हुए। 'विकल' जी ने उनसे मेरा परिचय करा दिया। मुझे आज तक अपने साहित्यिक गुरु से बात करने का अवसर नहीं मिला था। उस दिन मैं बहुत प्रसन्न था।

दूसरे दिन सायकाल वाचनालय से होकर मैं 'विकल' जी के साथ श्रीशरणजी से मिलने गया। मेरा नन्हा-सा उत्साह देखकर उन्हें बडी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा—"केवल साहित्यिकों से वार्त्तालाप करने और पत्र-पत्रिकाओं के पन्ने उलटने से कुछ न होगा। सोच-समझकर कुछ लिखा करो।" मैंने पूछा—"क्या लिखूँ? कुछ बतलाइये तो सही।" उन्होंने कहा—"इन दिनों छोटी-छोटी बालोपयोगी पुस्तिकाओं की बडी माँग है। तुम्हारे यहाँ के मैथिल महापुरुषों के नाम लुप्त हो रहे हैं। मडन मिश्र, वाचस्पति मिश्र, चित्रधर मिश्र, चदा झा, महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह, महाराज रामेश्वर सिंह आदि अमरकीर्त्ति विद्वानों और आदर्श महापुरुषों की जीवनियाँ लिख डालो।"

फिर क्या था, प्रोत्साहन और सहारा मिलने की देर थी, मैं तुरत तैयार हो गया। दरभगा-राज-लाइब्रेरी में पहुँचा। वहाँ बहुत-कुछ सामग्री मिल गई। छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ तैयार हो गईं। उन्होंने छपवाकर हिन्दी-ससार के सामने रक्खा। मैं कृतकृत्य हो गया।

सन् १९३१ ई० की बात है। मैं बजीपुर (दरभगा) के मिडूल-इग-

'बालक' के यशस्वी पिता

श्रीलक्ष्मीपति सिंह, बी ए, 'मैथिल बंधु' सम्पादक, मधेपुर (दरभंगा)

किसी भी देश का भविष्य विशेषत उसके बाल-समाज पर ही निर्भर रहता है। जिस देश का बालक सच्चरित्र, कर्त्तव्य-परायण और सुशील होगा, उसी का भविष्य उज्ज्वल होगा।

आजकल हिन्दी-ससार को बाल-समुदाय की जितनी चिन्ता करनी चाहिये, उतनी वह नहीं कर रहा है। 'पुस्तक-भडार' ने बालको की ज्ञान-वृद्धि की पूरी चिन्ता की है। उसका 'बालक' हिन्दी-प्रेमी बालकों का ज्ञान-दाता गुरु है। 'बालक' और उसके सुयोग्य सम्पादक श्रीरामलोचनशरणजी के प्रयत्न से ही आज बाल-साहित्य-निर्माण मे बिहार इतना अग्रसर हो सका है।

यही 'बालक' है, जिसे विद्यार्थी-जीवन में पढकर मै लाभ उठाता था—आज भी उठा रहा हूँ। जब मै 'बालक' मे किसी उदीयमान बाल-कवि अथवा बाल-लेखक की रचना देखता हूँ, तब मेरी बाल्यकालीन स्मृति एकाएक जाग उठती है। उन दिनों की भी याद आती है जब मैं 'बालक' के सुयोग्य सहकारी सम्पादक मित्रवर दत्तजी के साथ मधेपुर के हाइ स्कूल की पॉचवीं कक्षा मे पढ़ता, खेलता और उनकी कविताऍ सुना करता था।

मुझे गर्व है कि गुणग्राही 'मास्टर साहब' ने मेरे उन्हीं सहपाठी बाल-कवि दत्तजी को अपना सहकारी बना लिया है। जो स्वय बाल-कवि था, वही आज युवावस्था मे बाल-साहित्य की वास्तविक सेवा कर रहा है। शरणजी-जैसे बाल-साहित्य-निर्माता का सहायक बनने की क्षमता वही दिखा सकता है।

मैं बाल्यावस्था में शरणजी की शुद्ध 'मास्टर साहब' के रूप में ही कल्पना किया करता था। किशोर होकर मैंने पहले-पहल उनके स्मितानन के दर्शन किये। उनकी स्नेह-शीलता को अपनी सारी श्रद्धा अर्पित कर दी। ईश्वर से प्रार्थना है कि उनकी 'हीरक-जयन्ती' के अवसर पर अधिक सजधज से 'बालक' अपना 'स्मारक-अक' प्रकाशित करे।

बिहार के एक अमर महापुरुष

श्री तारकेश्वरप्रसाद वर्मा, शिक्षक, राजेन्द्र कॉलेजिएट स्कूल, छपरा

एक बार मैं अपने ग्रंथ 'बिहार-विभाकर' के प्रकाशन के सम्बन्ध में छपरा से 'भंडार' गया। प्रातःकाल पहुँचा। उत्सुकता-पूर्वक पूछा—"शरणजी के दर्शन कब होंगे ?" उत्तर मिला—"करीब आठ बजे तक पूजा पाठ करके बाहर निकलेंगे ?"

थोड़ी देर में एक अ-साधारण व्यक्ति को टहलने के लिये 'भंडार' से बाहर जाते देखा। गोरा रंग, प्रशस्त ललाट, गम्भीर चेहरा, साधारण कुरता, हाथ में छाता, पैरों में मामूली जूते। मैनेजर साहब ने धीरे से कहा—"आप ही हैं मास्टर साहब।"

हृदय प्रफुल्ल हो गया। बड़ी श्रद्धा उमड़ी।

आप नियमपूर्वक ठीक आठ बजे 'भंडार' में पधारे। आप चार बजे के बाद रोज तड़के टहलने निकल जाते हैं। ६ बजे के बाद लौटकर पूजा-पाठ करके अपने बाहर के कमरे में आते हैं।

आपका मृदुल स्वभाव, आकर्षक व्यक्तित्व, जादू-भरी बातें और प्रेमपूर्ण व्यवहार। सचमुच बड़ों में एक-से-एक अनुकरणीय गुण छिपे रहते हैं।

मुझसे बातें हो ही रही थीं कि एक साधु आ धमका। उसके याचना करने पर आपने बिना सकुचाये दो रुपये निकालकर दे दिये। सोचा, साहित्यिकों के समान यहाँ सन्तों का भी आदर है। जबतक मैं यहाँ रहा सबसे आपको मित्रवत् बातें करते और अपनी राय प्रकट करते ही देखा।

आपकी सूझ प्रशंसनीय है। एक बार आप पटना गये। वहाँ दो मुसलमान युवक एक ऐसे पत्र के प्रकाशन के विषय में बातें कर रहे थे, जिसपर हिन्दू-मुसलमान दोनों को संतोष हो। फिर क्या था, लहेरियासराय आते ही 'होनहार' मासिक पत्र निकाला। नागरी और फारसी दोनों लिपियों में एक ही तरह की भाषा। हिन्दू-मुस्लिम एकता के हिमायती लोगों ने खूब पसन्द किया।

आप काशी में 'पुस्तक-व्यवसायि-संघ' के सभापतित्व के लिये आमंत्रित किये गये। उसमें आपने जो भाषण किया, उसमें आपकी प्रकाशन-सम्बन्धी सूझ को सब ने सराहा। वह भाषण मुद्रित है। उसमें दी गई योजनाएँ प्रकाशन-क्षेत्र में युगान्तर लानेवाली हैं।

आप हमारे प्रान्त के आदर्श प्रकाशक हैं। सुन्दरता से पुस्तकें निकालने की धुन में ही सदैव लगे रहते हैं। यदि आपके पास चितचाही सम्पत्ति होती तो किसी भी लेखक की पुस्तक को आप अप्रकाशित न रहने देते।

आपसे बातें काफी देर तक हुईं, किन्तु किसी व्यक्ति पर आक्षेप करते मैंने नहीं पाया। यह एक बड़ी विशेषता देखी। साहित्यिक विषयों पर ही बातें करना आप पसन्द करते हैं।

जब कभी मैं 'भंडार' में जाता हूँ, दिल यही चाहता है कि वहीं रहूँ। साहित्यमय वातावरण है। साहित्यिक प्रगति की आलोचना वहाँ प्रतिदिन होती रहती है।

आप बिहार में ऐसे समय में हिन्दी-माता के पुजारी बने, जब वह बिहारियों की उदासीनता पर अश्रुपात कर रही थी। अपनी कार्यपटुता, अध्यवसाय और अदम्य उत्साह के बल पर आपने अपने प्रान्त के निवासियों का हृदय जीत लिया।

निरक्षरता-निवारण के अवसर पर हजारों रुपये की पुस्तकें, चार्ट इत्यादि मुफ्त वितरण कर आपने अपने साहित्य-प्रेम का ज्वलंत उदाहरण दिया। फलतः बिहार-सरकार ने 'राजेन्द्र-स्वर्ण-पदक' प्रदान कर आपके उत्साह का यथेष्ट सम्मान किया।

देशपूज्य डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी जब देशकार्य के चंदे के लिये 'भंडार' में पहुँचे, आपने एक हजार रुपये का चेक काटकर अनुपम दान-शीलता और उदारता का परिचय दिया।

लक्ष्मी की असीम कृपा रहने पर भी आपको अभिमान छू नहीं गया। आपका स्वभाव मृदुल और रहन-सहन साधुवत् है। सादगी आपको निहायत पसंद है। चेहरे पर उदारता और सहृदयता की रेखाएँ झलकती हैं।

आपका जीवन सादा, भोजन सात्त्विक और हृदय निष्कपट है। आपका 'भंडार' सदैव अतिथियों का अड्डा बना रहता है। आव-भगत करने में आपका 'भंडार' अनुपम है।

आपने बिहार में साहित्य का बीज ऐसे समय बोया जब बिहार ऊसर हो गया था। आज अपने हाथों लगाये हुए वृक्ष को पल्लवित, पुष्पित और फलित देखकर आपको जो खुशी है, उसमें हम बिहारियों का अंश कम नहीं।

वास्तव में सुरुचिपूर्ण साहित्य के निर्माण में आपका भगीरथ प्रयत्न अवश्य ही आपको ऐतिहासिक अमरता प्रदान करेगा।

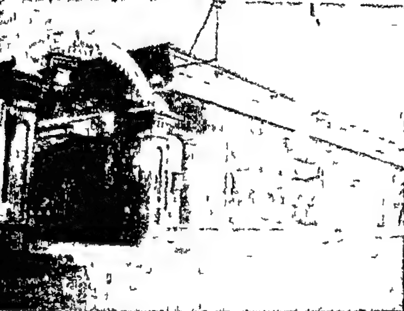

पुस्तक-भंडार (लहेरिया सराय) का भव्य भवन
बाईं ओर—मुख्य द्वार
दाहिनी ओर—दूकान

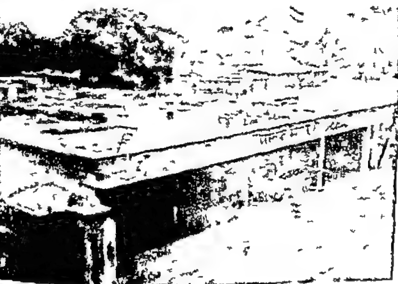

नगर की प्रधान सड़क से पुस्तक-भंडार (लहेरिया सराय) का बाहरी दृश्य

श्रीरामलोचनशरणजी के

मीनावतारी 'पुस्तक-भंडार'

पं० जीवनाथ राय, बी. ए., तीर्थत्रयी, हेडपण्डित, दरभंगा-जिला-स्कूल

मैं १९१७ ई० में मोतिहारी से दरभंगा बदलकर आया। श्रीरामलोचन-शरण उस समय जिला-स्कूल के हिन्दी-शिक्षक थे, पर थे छुट्टी में। 'भंडार' का जन्म हो चुका था। उसी के पालन-पोषण के लिये इन्होंने स्कूल से लम्बी छुट्टी ली थी। उस समय इनका मासिक वेतन ३०) था। छुट्टी में ही २) की वृद्धि की सूचना आई थी। पर इन्होंने वह ली नहीं, क्योंकि छुट्टी से लौटकर नौकरी के बंधन मे फिर पडे ही नहीं।

लहेरियासराय के बाकरगंज-बाजार में वह नन्हा-सा घर अभी तक खडा है, जिसमे 'पुस्तक-भंडार' का शुभ जन्म हुआ था। बाबू रामलोचनशरणजी अपने शिशु 'भंडार' के पोषण मे निरन्तर लीन रहने लगे। मैं भी, साथी के नाते, इनके प्रशंसनीय अध्यवसाय को देखकर, इनकी ओर अधिकाधिक आकृष्ट होने लगा।

'पुस्तक भंडार', मीनावतारी भगवान् विष्णु की तरह, छोटे स्थान से एक बडे स्थान में, फिर उससे भी बडे स्थान मे, कुछ दिनों के बाद उससे भी बहुत बडे स्थान में, अपने विकास के साथ साथ, आता गया। अब तो वह ऐसे विशाल भवन में विराज रहा है, जो बिहार मे पुस्तकों के भवन की दृष्टि से अद्वितीय है।

श्रीरामलोचनशरण आरम्भ में केवल हिन्दी-पुस्तकों के लेखक तथा प्रकाशक थे। पीछे अनेक भाषाओं की पुस्तकों के प्रकाशक हो गये। हिन्दी-संस्कृत पुस्तकों के प्रकाशन-कार्य मे मुझसे भी सहायता लेने लगे। इन्होंने मैथिल कवि विद्यापति के नाम पर ही 'विद्यापति प्रेस' की स्थापना की। उस महाकवि की भाषा तथा लिपि की ओर भी इनका ध्यान आकृष्ट हुआ।

गत तेईस वर्षों के निरन्तर सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध के कारण, श्रीरामलोचन-शरण और उनका 'भंडार' दोनों मुझे अपने मालूम पडते हैं। मैं भी उनको अपना मालूम पडता हूँ। इस बात की मधुर स्मृति मेरे जीवन के लिये विशेष सुखद रहेगी।

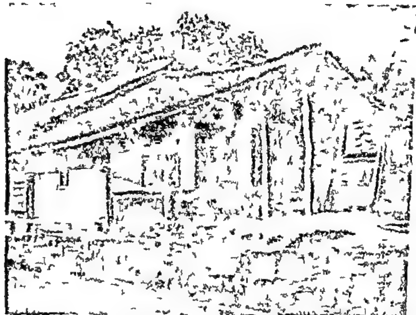

लहेरियासराय का वह सबसे पहला मकान (मुहल्ला रहमगंज), जिसमें श्रीरामलोचनशरणजी दस आने मासिक भाड़े पर पहले-पहल आकर रहने लगे थे, जब स्थानीय जिला स्कूल में शिक्षक थे। (सन् १९०९—१० ई०)

लहेरियासराय (मुहल्ला बलभद्रपुर) का वह मकान, जिसमें दो रुपये मासिक भाड़े पर श्रीरामलोचनशरणजी सन् १९१३-१४-१५ ई० में रहते थे। इसी में पहले पहल 'पुस्तक भंडार' का नामकरण हुआ और 'अपर व्याकरण बोध' नामक सबसे पहली पुस्तक लिखी गई, जिसपर युक्तप्रान्त के शिक्षा विभाग ने १५० पुरस्कार दिया था। यही मूल पूँजी हुआ।

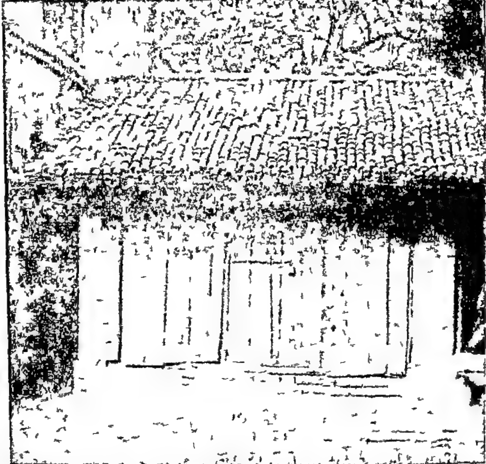

लहेरियासराय के नाकरगंज मुहल्ले का वह मकान, जिसमें ढाई रुपये मासिक भाड़े पर 'पुस्तक भंडार' की सबसे पहली दूकान खुली थी। इसी मकान में सन् १९१५ से १९२२ ई० तक दूकान रही और पुस्तकों की खुदरा बिक्री बाबू गंगाप्रसाद गुप्त (स्वर्गीय) करते थे, जो 'भंडार' के वर्त्तमान मैनेजर के बड़े भाई थे।

लहेरियासराय के बलभद्रपुर मुहल्ले का वह मकान, जिसमें सन् १९२३ तक 'पुस्तक भंडार' की पुस्तकों का स्टाक रहा। इसी में श्रीरामलोचनशरणजी का निवास स्थान था। यहीं से आपने स्कूल की नौकरी छोड़ी। इसका किराया दस रुपये मासिक था। १९३४ ई० के भूकम्प में मकान चकनाचूर हो गया पर उसकी जगह एक झोपड़ा खड़ा है। बाईं ओर का नया मकान भूकम्प के बाद बना है। इस झोपड़े के स्थान पर जो मकान था उसी में से उठकर 'पुस्तक-भंडार' अपने खास खरीदे हुए नये मकान में आया था। (सन् १९२३ ई०)

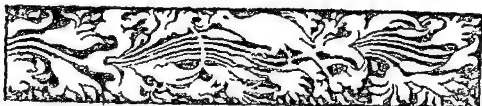

रामलोचनशरणजी का छात्र-जीवन

प्रोफेसर गायत्री उपाध्याय, एम ए, बी एन कालेज, पटना

१६ वर्ष की अवस्था में, १९०६ ई० के जनवरी मास मे, श्रीरामलोचन-शरणजी ने पटना-ट्रेनिंग-स्कूल मे नाम लिखाया। उस समय वहाँ के छात्रों को ४) मासिक छात्र-वृत्ति मिलती थी। छात्रावास निःशुल्क था। स्कूल के अहाते मे, गंगा के किनारे, उत्तर स्कूल, पूरब हेडमास्टर का निवास (पीछे ट्रेनिंग-कालेज), पश्चिम छात्रावास, दक्षिण रसोई-घर था। अहाता लम्बा-चौडा था। बीच में विस्तृत फुलवारी थी। उस समय वहाँ के हेडमास्टर मौलवी अमजद अली (पीछे खाँबहादुर), सहायक हेडमास्टर बाबू राजेन्द्रप्रसाद (पीछे रायसाहब), हेडपंडित प्रसिद्ध हिन्दी कवि बिहारीलाल चौबे—पीछे महामहोपाध्याय प० रघुनंदन त्रिपाठी, हेड-मौलवी मौलवी सईद, गणित-शिक्षक प० दिवाकरदत्त मिश्र, और ड्राइंग-मास्टर बाबू विनोदबिहारी दास थे। वहाँ हिन्दुओं को उर्दू और मुसलमानो को हिन्दी पढना पडता था।

श्रीरामलोचनशरण वहाँ के उत्तम छात्रों मे थे। ये गरीब घर के थे। मैं भी १९०७ ई० म वहाँ का छात्र हुआ। उस समय गाजीपुर, बलिया, पटना-कमिश्नरी, भागलपुर-कमिश्नरी और तिरहुत के छात्र वहाँ पढते थे। एक कमरे में विशेषत गाजीपुर और शाहाबाद के छात्र रहते थे। मैं भी कुछ दिनो उसी में रहा। इनके घनिष्ठ मित्र गाजीपुर के बाबू शीतल राय, बाबू अवधबिहारी सिंह और बाबू देवनारायण राय थे। मैं तो किसी से ज्यादा बोलता ही न था। मगर मेरा ध्यान इन चार प्रेमी संगियो के परस्पर व्यवहार की ओर प्राय जाता था, क्योंकि इनमें हरएक विशेष गुणवाला था। बाबू शीतल राय से इनकी सबसे ज्यादा मित्रता थी। वे बहुत धार्मिक और बुद्धिमान् थे। उनकी उम्र भी

ज्यादा थी। उनका मान बड़े भाई का-सा था। अवधविहारी सिंह भी हँसमुख थे। उनकी बोली कुछ तोतली थी। उन्हें लोगों की नक़ल करने की आदत थी। उनकी बोली सुनते ही हमलोग हँस देते थे। देवनारायण राय के शरीर पर, स्कूल के अहाते में रहने पर, सिवा धोती और यज्ञोपवीत के दूसरा कुछ नहीं रहता था। वे देहाती सादगी का नमूना थे।

रामलोचनशरणजी उन चारों में छोटे थे। ये सभी लोगों से नम्रता से झुककर और मुस्कुराकर बातें करते थे। इनको जब देखिये, साथियों से हँस-हँसकर बातें कर रहे हैं। देवनारायण राय पढ़ते हुए कम देखे जाते थे। वे साथियों से गप्प ही करते-करते पाठ याद कर लेते थे। बाकी तीनों को जब देखिये, डटकर किसी जगह कम्बल बिछाकर पढ़ रहे हैं। कभी-कभी इन चारों में मनोरंजक हँसी-खेल भी हुआ करता था। एक बार अकारण ही, दूसरे के अपराध को इनका समझ, नीचे क्लास का एक छात्र, इनसे बकझक करने लगा। तब भी ये उससे नम्रता-पूर्वक हँसकर ही बातें करते रहे।

इनका बर्ताव जब अपने छोटे सहपाठियों से ऐसा था, तब शिक्षकों के प्रति इनके आचरण की प्रशंसा व्यर्थ है। ये बड़े देश-प्रेमी थे। इनकी इच्छा थी कि हमलोग ऐसे उत्तम शिक्षक हों कि देश के बच्चे हमसे अधिकाधिक लाभ उठावें। पढ़ाते समय बच्चों के साथ ये भी बच्चा हो जाते थे। स्वयं गरीब होने से दूसरे गरीबों की यथासाध्य सहायता करने तथा अपने साथियों से उन्हें सहायता दिलाने में ये बड़े उत्साह से तत्पर हो जाते थे। इनका मन खेल-कूद में नहीं लगता था। उस समय सिनेमा नहीं था। कहीं-कहीं नाटक हुआ करते थे। प्रसिद्ध रामलीला-मंडलियाँ आया करती थीं। उस समय के लोग एक-एक पैसा आरती में देकर खूब प्रेम से रामलीला देखते थे। कभी-कभी स्कूल में भी, रायसाहब राजेन्द्रप्रसादजी के उद्योग से, वहाँ के छात्र सत्य हरिश्चन्द्र, शकुन्तला आदि नाटक खेलते थे। नाटक-सिनेमा के लिये गरीब छात्रों के पास पैसे कहाँ थे।

सन् १९१० ई० के अंत में इन चारों साथियों ने सफलतापूर्वक नार्मल पास किया। हरएक को ड्राइंग में स्पेशल-सार्टिफिकेट मिला। इसलिये हरएक को शीघ्र ही ड्राइंग-मास्टरी मिल गई। रामलोचनजी का खिंचाव पहले ही से व्यवसाय की ओर था। कोई नहीं जानता था कि ट्रेनिंग स्कूल का यह गरीब छात्र एक गरीब मास्टर न होकर लखपती प्रकाशक, यशस्वी सम्पादक, लेखकों का सम्मानदाता, दीनों का सहायक और बिहार का एक रत्न हो जायगा। ठीक कहा है—'पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः'।

होनहार बालक 'रामलोचनशरण'

श्रीरघुवीर कुमार, शिक्षक, हाइस्कूल, शिवहर (मुजफ्फरपुर)

बाबू रामलोचनशरणजी की किशोरावस्था का मूल्यवान् समय दो वर्ष मेरे साथ बीता। सहपाठियों से लड़ना-झगड़ना तो वे जानते ही न थे। सबसे सदा प्रेम-भाव। बड़ों के साथ नम्रता। सहपाठियों के साथ सस्नेह वार्त्तालाप। रहन-सहन बिलकुल सादा। स्वभाव भोला-भाला। विचार में गाम्भीर्य। बुद्धि विलक्षण। जो विषय बतलाया जाय, झट समझ जाते, दुबारा पूछने की आवश्यकता न पड़ती। गणित में अनोखी सूझ थी—गणित-शिक्षक को हैरत में डालनेवाली। ऐसा प्रतीत होता, यह छात्र आगे कुछ करके ही रहेगा। ऐसा विरला ही छात्र मैंने देखा होगा।

दीनावस्था में पहले छात्रों में कंजूसी अधिकतर पाई जाती है। परन्तु उनमें इसका सर्वथा अभाव था। उचित खर्च में पीछे पैर देनेवाले नहीं थे। मितव्ययियों में आदर्श थे। धार्मिक विषयों में अनुराग था। 'रामचरित-मानस' और 'हनुमान-चालीसा' प्रेम से पढ़ा करते। साधु-महात्माओं में प्रगाढ़ श्रद्धा थी। गुरु-भक्ति और उदारता तो आजतक वैसी ही विराजमान हैं। सन् १९३२—३३ में हमारे स्कूल में आये थे। छात्रों को मिठाई खाने के लिये २५) दे गये। एक बार यह जानकर कि मेरा भतीजा मैट्रिकुलेशन में है, दूसरे-दूसरे प्रकाशकों की लगभग २०) की पुस्तकें पेड-पार्सल से भेजने की कृपा की। ऐसा व्यवहार विरले ही करते हैं।

एक होनहार छात्र में जिन सद्गुणों की आवश्यकता है, सभी गुण उनमें विद्यमान थे। उन दिनों मैं मन-ही-मन कहा करता था, भगवान् इसे चिरायु और देशोद्धारक बनावें। मेरी मन कामना फलीभूत हुई।

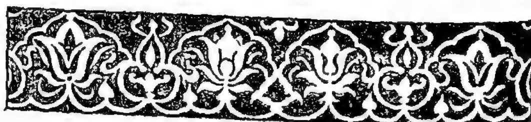

शरणजी की क्षमाशीलता

श्रीधर्मलाल सिंह, व्यवस्थापक—दरभंगा-गोशाला

श्रीरामलोचनशरणजी का सम्पूर्ण जीवन अध्यवसाय और आदर्श-पालन का एक ज्वलन्त उदाहरण है। मेरे ही समान वे भी हाइस्कूल के एक साधारण शिक्षक थे। किन्तु अपने असाधारण गुणों के कारण वे उन्नति के उच्चतम शिखर पर आसीन हो गये और मैं जैसे-का-तैसा रह गया। हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में, विशेषत बाल-साहित्य-निर्माण में, उन्होंने महान् यश पाया है। समस्त भारतवर्ष में उनका नाम आदरणीय हो रहा है। उनकी श्रमशीलता, मिलनसारी, मिष्टभाषिता और दयालुता स्तुत्य है। मेरा सबध प्राय सभी स्थानीय सार्वजनिक सस्थाओं से है। इनके निमित्त मैं जब कभी उनके पास याचना करने गया, उन्होंने नाहीं कभी नहीं की।

सबसे बढकर उनमें क्षमाशीलता है। मैं अपने कडवे स्वभाव के कारण उनसे बराबर द्वेष रखता था। सन् १९२५ ई० में यहाँ पूज्य राजेन्द्र बाबू के सभापतित्व में बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन हुआ। उसका सारा प्रबन्ध करीब-करीब मेरे ही हाथ में था। व्यक्तिगत द्वेष के मारे मैंने उनसे सम्मेलन के लिये चदा तक नहीं लिया। खुली सभा में जब प० जनार्दन झा 'जनसीदन' ने उनकी प्रशसा में कविता पढी, तब मेरी ईर्ष्याग्नि और भी भभक उठी। मैंने वयोवृद्ध 'जनसीदन' जी का साधारण स्वागत तक नहीं किया। यहाँ तक कि जो प्रतिनिधि 'भडार' मे ठहरे थे, उन्हें मैं वहाँ से ले आया, और 'भडार' ही में रामलोचन बाबू को जली-कटी सुना दी। किन्तु वाहरी महानुभावता! उनके चेहरे पर जरा भी शिकन न पडी। मुझे वे पूर्ववत् छोटे भाई की तरह मानते रहे। मैं इतना लजाया कि तब से उनका वशवर्त्ती बन गया। अब सदा उनकी आज्ञा के पालन में तत्पर रहता हूँ।

कला-पारखी मास्टर साहब

श्रीयुत उपेन्द्र महारथी

कलकत्ता के सरकारी कलामहाविद्यालय की पढ़ाई समाप्त करने के बाद मेरी इच्छा हुई कि लंडन के रायल कालेज ऑफ आर्ट्स में जाकर चित्रकला विषयक उच्चतर शिक्षा प्राप्त करूँ, किन्तु विलायत जाने के लिये काफी रुपये की जरूरत थी। मेरे पास पैसे थे नहीं। इसी उधेड़बुन में मैं पूर्णिया में अपने एक मित्र के यहाँ ठहरा समय बिता रहा था।

एक दिन संयोगवश मेरे मित्र पं० शम्भुनाथ झा (जो 'इण्डियन नेशन' के प्रबन्ध विभाग में हैं) लहेरियासराय के एक व्यक्ति बाबू वीरेन्द्रनारायण सिंह के साथ मेरे यहाँ आये। बातचीत के सिलसिले में वीरेन्द्र बाबू ने कहा—"मैं पुस्तक भंडार का एक कर्मचारी हूँ। मेरी संस्था के कला विभाग में इस समय एक कुशल चित्रकार की आवश्यकता है। यदि आप वहाँ चलना स्वीकार करें तो मैं अपने मालिक से पूछकर आपको खबर दूँ।"

यहीं से मेरे जीवन का नवीन अध्याय प्रारंभ हुआ। उस समय मैं दरभंगा महाराज को समर्पित करने के विचार से उनका एक तैलचित्र निर्माण कर रहा था। मैंने मन में सोचा—"यह अच्छा संयोग है। दरभंगा तो जाना ही है। अब 'एक पन्थ दो काज' हो जायगा।"

दो सप्ताह के बाद मैं दरभंगा पहुँचा। मेरे लिये यह स्थान सर्वथा अपरिचित था। अतः मैं धर्मशाला में ठहरा। मैं कुछ संकोची प्रकृति का आदमी हूँ। इसलिये राज-दरबार में प्रवेश होना भी कठिन था।

एक दिन पूछता पाछता मैं पुस्तक-भंडार जा पहुँचा। जाड़े का दिन था। एक सज्जन धूप में चटाई पर बैठे कुछ लिख रहे थे। मुझे देखकर उन्होंने मेरा परिचय पूछा। मैंने वीरेन्द्र बाबू की सारी बातें बताकर कहा—"मैं यहाँ मालिक से मिलना चाहता हूँ।" इसपर उन्होंने मुस्कुराकर कहा—"कहिये, क्या आज्ञा है?"

मैं उनकी यह सादगी देखकर चकित रह गया। उन्होंने मेरी बातें सुनकर प्रेम से कहा—"मैं महाराज बहादुर की सेवा में समय पर आपको पहुँचा दूँगा। आप निश्चिन्त रहिये। तबतक आप मेरे यहाँ कला विभाग में कुछ दिन रहकर काम कीजिये।"

मैं उनका प्रेमपूर्ण व्यवहार देखकर बिना मोल उनके हाथों बिक गया। पन्द्रह दिनों के भीतर ही मैं पूर्णिया से अपना बोरिया-बधना लेकर लहेरियासराय आ पहुँचा और 'भंडार' में नियुक्त हो गया। मास्टर साहब के आत्मीयतापूर्ण व्यवहार से मैं इतना मुग्ध हुआ कि यहाँ आकर अपने जीवन की विषम परिस्थितियों से उत्पन्न सारी कटुताओं को भूल गया।

मैं यहाँ आया तो यही सोचकर था कि छ महीने रहकर आर्थिक समस्या हल हो जाने के उपरान्त, विलायत-यात्रा की तैयारी करूँगा, किन्तु कुछ ही दिनों में इनलोगों के प्रेम के रंग में कुछ ऐसा रँग गया कि यहाँ के बंधन को काटकर बाहर निकलना मेरे लिये असंभव हो गया।

चित्रांकन-कला की उपासना में जो-जो सुविधाएँ मैं प्राप्त करना चाहता था वे यहाँ आकर पर्याप्त रूप में मुझे मिलने लगीं। मास्टर साहब की दृष्टि कला के परखने में कितनी सूक्ष्म है, यह मुझे यहाँ आकर मालूम हुआ। यहाँ आने पर मैंने जो-कुछ कला की उपासना की है, जो थोड़ा-बहुत नाम-यश प्राप्त किया है, उसका पूरा श्रेय मास्टर साहब को है जिन्होंने अपने प्रिय बालक की तरह मुझे आगे बढ़ाने का सतत प्रयत्न किया है और कर रहे हैं।

इसी सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख कर देना मनोरंजक होगा। शुरू-शुरू जब मैं दरभंगा आया था, मेरा नाम तक यहाँ कोई नहीं जानता था। एक दिन चुपके श्रीमान् मिथिलेश का तैलचित्र लेकर उन्हें समर्पित करने के लिये मैं दरबार में जा पहुँचा। मैंने अपनी विलायत-यात्रा-सम्बन्धी इच्छा भी प्रकट की। मैं समझता था कि मेरे चित्र की काफी प्रशंसा होगी और संभवतः इसीके द्वारा मेरा बेड़ा पार हो जायगा, किन्तु मेरी मनोदशा की कल्पना आप कर लीजिये जब चार दिनों की दौड़ धूप के बाद एक राजकर्मचारी ने वह चित्र बैरंग मुझे वापस करते हुए मेरी आशा पर तुषार-पात कर दिया। मैं एकाएक सातवें आसमान से नीचे जमीन पर आ रहा और मेरा सारा कला-गर्व चूरचूर हो गया। मैंने लज्जा के मारे अपनी इस अवज्ञा की कहीं चर्चा तक न की।

इस घटना के पूरे सात वर्ष बाद जब 'भंडार' में रहते रहते मेरी कुछ ख्याति हो चली, तब एक दिन दरभंगा-राज से एक पत्र 'पुस्तक-भंडार' के नाम आ पहुँचा जो अविकल रूप में नीचे उद्धृत किया जाता है—

DARBHANGA
The 1st March, 1942

My dear Rai Sahib,

It may be news to you to learn that we have decided to hold an exhibition of all arts, crafts and industries found in Raj villages and His Highness is very keen on having such a show You will be glad to hear we have co-opted your artist Shri Upendra Maharathi as a member of our committee. His co operation and *collaboration will, I am sure, prove very* helpful May I therefore request you to very kindly allow him to work with us for the successful meterialisation of the scheme? I hope as one who has always taken an active interest in all beneficent work for the welfare of the district you will accord the permission requested

* * *

कहना न होगा कि मास्टर साहब की छत्रच्छाया में रहकर मेरी तूलिका ने जो परिष्कृत स्वरूप ग्रहण किया, उसने अनायास ही मुझे उस राजसम्मान का अधिकारी बना दिया जिसे प्रयास करने पर भी मैं पहले नहीं पा सका था। अब मास्टर साहब की उस उक्ति का गूढ़ अभिप्राय मेरी समझ में आया जिसमें उन्होंने कहा था कि समय पर तुम्हें श्रीमान् मिथिलेश की सेवा में पहुँचा दूँगा।

सन् १९४० ई० में रामगढ़ काँग्रेस के अवसर पर देशपूज्य राजेन्द्र बाबू ने मेरी कृतियों की प्रशंसा सुनकर मास्टर साहब से मुझे छ-सात महीनों के लिये माँग लिया। वहाँ जाकर मैंने बिहार के अतीत गौरव-सम्बन्धी चित्र बनाये जिन्हें सब लोगों ने पसंद किया। मास्टर साहब मेरे सुयश पर वैसे ही प्रसन्न हुए जैसे अनुभवी मास्टर अपने सुयोग्य छात्र की सफलता पर आनंदित होता है।

'भदार' के सात्त्विक वातावरण में रहते-रहते मुझमें भी कुछ-कुछ साधु प्रकृति का उदय हो चला है। कट्टर मांसभोजी अब मैं शुद्ध निरामिष भोजी बन गया हूँ। मास्टर साहब के प्रभाव से, मैं अनुभव करता हूँ, जैसे मेरे जीवन की धारा ही भिन्न दिशा में प्रवर्त्तित हो गई हो। जिस प्रकार दिशाज्ञान शून्य नाविक ध्रुवतारा पाकर लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है उसी प्रकार मेरे-जैसे निश्चित उद्देश्यहीन *जीवन बितानेवाले नवयुवक के लिये भाग्यवश एक पथ प्रदर्शक गुरु* मास्टर साहब के रूप में, मिल गये। मास्टर साहब पर मेरी अविचल श्रद्धा है। इस जीवन में उनके इस गुरुतर ऋण से मैं कभी मुक्त नहीं होने का।

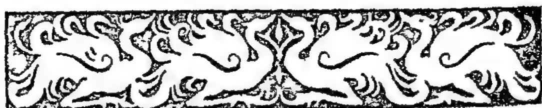

मास्टर साहब और साहित्य-सम्मेलन

श्रीयुत रामधारीप्रसाद, भूतपूर्व प्रधान मंत्री, बिहारप्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के जन्मकाल से ही मास्टर साहब और उनके 'भंडार' से सम्मेलन का अत्यन्त मधुर और घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। अपने सरल और संकोची स्वभाव के कारण मास्टर साहब सभा-सोसाइटियों से सदा अलग रहते हैं। फिर भी, मुझे जहाँ तक स्मरण है, वे सम्मेलन के तृतीय और सप्तम अधिवेशनों में प्रतिनिधि की हैसियत से सम्मिलित हुए थे। तृतीय अधिवेशन (सीतामढ़ी) की विषयनिर्वाचिनी समिति में जब बिहार के राष्ट्रीय विद्यालयों में बिहार में छपी पुस्तकें पाठ्य पुस्तकों के रूप में रखने का प्रस्ताव उपस्थित हुआ तब देशरत्न पूज्य श्रीराजेन्द्र बाबू ने कहा कि बिहार-विद्यापीठ के विद्यालयों के लिये हिन्दी-रीडरों की जरूरत है। इसपर मास्टर साहब ने शीघ्र ही हिन्दी-रीडरों को तैयार कर प्रकाशित करने का वचन दिया और सिर्फ एक महीने के भीतर उन्होंने रीडरें तैयार कर प्रकाशित कीं। वे रीडरें बरसों तक बिहार के राष्ट्रीय विद्यालयों में पढ़ाई जाती रहीं। सप्तम अधिवेशन (दरभंगा) की स्वागत-समिति को इनसे काफी सहायता मिली थी और उस अवसर पर सम्मेलन के बीसों प्रतिनिधि उनके अतिथि होकर 'भंडार' में ही ठहरे थे। सम्मेलन ने अपने कार्यालय में जब पुस्तकालय का संगठन किया तब मास्टर साहब ने 'भंडार' से प्रकाशित सभी पुस्तकें सम्मेलन पुस्तकालय को दीं तथा उसके बाद से जैसे-जैसे 'भंडार' से पुस्तकें प्रकाशित होती गई, वे उन्हें सम्मेलन-कार्यालय में भेजते गये। 'भंडार' का 'बालक' तो शुरू से ही सम्मेलन-कार्यालय में आकर समान रूप से सभी पाठकों का मनोरंजन करता रहा। सम्मेलन के प्रथम पाँच अधिवेशनों के सभापतियों तथा स्वागताध्यक्षों के भाषणों को 'बिहार का साहित्य' के नाम से 'भंडार' ने ही प्रकाशित किया। सम्मेलन का एक वर्ष का वार्षिक विवरण भी विद्यापति-प्रेस में छपा था। सम्मेलन के साथ मास्टर साहब

की सच्ची सहानुभूति सदा से रही है और सम्मेलन के आरम्भिक जीवन में मास्टर साहब तो सम्मेलन के कुछेक सहायकों में थे।

वे सम्मेलन की स्थायी समिति के लगातार १०—१२ वर्षों तक सदस्य रहे हैं और कभी-कभी उसकी बैठकों में उपस्थित भी होते रहे हैं। सम्मेलन का कार्यालय जबतक मुजफ्फरपुर में रहा, वे जब-जब मुजफ्फरपुर आते, एक बार जरूर सम्मेलन-कार्यालय में आकर इन पंक्तियों के लेखक तथा मित्रवर स्वर्गीय राघवजी से मिलकर सम्मेलन की कठिनाइयों और कार्यों से परिचित हो जाया करते थे। स्वयं प्रकाशक होकर भी वे सम्मेलन से साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशन पर सदा जोर दिया करते थे। एक बार तो सम्मेलन की आर्थिक कठिनाई दूर करने के लिये उन्होंने यह भी राय दी कि सम्मेलन अपने तत्त्वावधान में सुंदर सुसम्पादित हिन्दी-रीडरें तैयार कराकर टेक्स्टबुक कमिटी के सामने उपस्थित करे और उनके स्वीकृत हो जाने पर उन्हें रायल्टी पर किसी प्रकाशक को दे दे जिससे उनका अनुमान था कि सम्मेलन को हजारों रुपये साल की आय होगी। सम्मेलन-कार्यालय के पटना चले जाने पर उन्होंने दूसरी बार सम्मेलन-पुस्तकालय के लिये अपने 'भंडार' की सारी पुस्तकें दीं तथा सम्मेलन-भवन के निमित्त पहली जमीन खरीदने के लिये भी उसकी पूरी कीमत सम्मेलन को दी।

मास्टर साहब

श्रीयुत अनिरुद्धलाल 'कर्मशील', ताजपुर, दरभंगा

'बेनीपुरी'।

'जी'—व्यस्त होकर बेनीपुरी ने कहा। पर्दा उठा और वे भीतर आये। ये ही थे मास्टर साहब।

'ये कौन हैं ?'—पूछा उन्होंने।

'ये कर्मशील हैं। अपने 'बालक' में इनकी रचनाएँ निकलती हैं।'

'ओहो, तुम्हीं हो कर्मशील। अच्छा, अच्छा, भाई, तुममें प्रतिभा है। भगवान् ने चाहा और तुम प्रयत्न करते गये तो नाम करोगे।'

मैंने देखा कि 'भगवान् ने चाहा तो'—इतना कह देने के बाद भी वे 'प्रयत्न'-विषयक शर्त लगा देना न भूले। कुछ समझा, कुछ भाँपा। यही गुर है मास्टर साहब की सफलता का और इसे वे सबको बाँट देना चाहते हैं—सतत प्रयत्न और भगवान् की दया।

फिर तो जब जाता, दर्शन कर आता—प्रसाद के लोभ से। वहाँ खाने को भरपेट मिल जाता था और घंटों साहित्यचर्चा चलती।

मगर, मास्टर साहब उन दिनों लेखक को परख रहे थे और शायद उनकी जाँच में आया कि मैं कुछ काम का हो सकता हूँ। जब उनकी जाँच खतम हुई तब उन्होंने कुछ सलाहें दीं, सहारा देने का वचन दिया। मैं जानता हूँ, मास्टर साहब का सहारा पाकर आज बिहार के कितने नवयुवक चमक रहे हैं।

एक बार लेखक अपने पिताजी के साथ लहेरियासराय गया हुआ था, कचहरी का काम खतम करके वह सीधे अकेला 'भंडार' पहुँचा। पिताजी भी खोजते हुए वहीं पहुँचे। उन्होंने मास्टर साहब से पूछताछ की और जब मास्टर साहब ने आगन्तुक का परिचय जाना तब वे उठकर खड़े हो गये और प्रणाम किया, कहा—'जब आप कर्मशील के पिता हैं तब मेरे भी हुए।' आज तक पिताजी को मास्टर साहब का वह व्यवहार मोहे हुए है और पिताजी उनकी बड़ाई करते नहीं अघाते। आत्मविश्वास, शिष्टता तथा स्वातंत्र्य प्रियता—इन तीन तत्त्वों को अपनाकर उनके साथ अध्यवसाय का संयोग करके ही उन्होंने इतना कुछ किया है। वे बिहार के हमारे-जैसे नवयुवक लेखकों के पथप्रदर्शक हैं।

उनका 'भंडार' एक पुस्तकागार ही नहीं है, बल्कि एक संस्था है, एक शिक्षणालय है, जहाँ से सीखकर नौजवान निकलते और चमकते हैं।

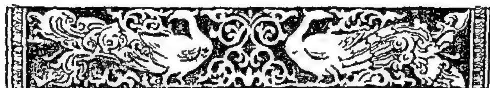

बिहार के 'लॉर्ड नार्थक्लिफ' ❀

श्रीशिवनन्दन पांडेय, शिक्षक, डुमरिया (बलिया, यु० प्रा०)

आज के बिहार में कौन ऐसा साक्षर होगा, जिसने श्रीरामलोचनशरण बिहारी की लिखी या सगृहीत या सम्पादित पुस्तकें न पढी हों। बिहार ही क्यों, अन्यान्य प्रान्तों में भी इनकी रची पुस्तकें बडे चाव एव सम्मान के साथ पढ़ी-पढाई जाती हैं। इनके द्वारा सम्पादित 'बालक' हिन्दी-ससार में सबको सन्तुष्ट कर रहा है। इनके द्वारा स्थापित सुविशाल 'पुस्तक-भडार' को देखकर कोई सहसा विश्वास नहीं कर सकता कि इसका निर्माता पन्द्रह रुपये-मात्र मासिक वेतन पानेवाला एक साधारण शिक्षक रहा होगा।

ये महाशय किसी समय मेरे सहयोगी या सहकर्मी थे, किन्तु ऐसा कहकर मैं अपनी हँसी कराना नहीं चाहता। यह सब-कुछ परमात्मा की महती कृपा है। यदि परमात्मा की कृपा न होती तो क्या आठ रुपये वेतन पानेवाला 'लगट सिंह' पेटमैन मुजफ्फरपुर का विशाल कालेज बना सकता ?

× × × ×

पुष्प का विकास एकाएक नहीं होता। किसी छोटी वस्तु या किसी साधारण घटना के व्याज से वह कर्म-क्षेत्र मे दर्शन देता है। क्रमश बढकर अन्त में अपना नाम अमर कर जाता है। ये ऐसे ही पुरुष हैं।

मैकमिलन-कम्पनी की 'हिन्दी लिटररी-रीडर' की व्याख्या के लेखक ये रूप

❀ लार्ड नार्थक्लिफ—इंगलैंड के प्रसिद्ध पत्रकार और पत्रप्रकाशक। जन्म—डबलिन (आयरलैंड) में १५ जुलाई, १८६५। मृत्यु—१४ अगस्त, १९२२। दि इवनिंग न्यूज, दि डेलीमेल, दि डेली मिरर, दि आबजर्वर, दि टाइम्स आदि सुप्रसिद्ध पत्रों के जन्मदाता और संचालक।

मे, सन् १९११ ई० में, साहित्य-क्षेत्र में इनके दर्शन हुए। वह पुस्तक बिहार की पाठशालाओं (अपर प्राइमरी वर्गों) मे पढाई जाती थी। थी तो वह छोटी-सी एक रीडर, पर ठेठ शब्दों का भडार थी। शब्दों का अर्थ समझना दूभर था। मैंने भी उसकी 'व्याख्या' लिखी। उसे छपवाने के लिये प्रेसों से पत्र-व्यवहार कर रहा था। उसी समय इनकी लिखी 'व्याख्या' मैंने छपी देखी। चकित होकर उसे बडे गौर से आद्योपान्त पढ गया। मैंने अपनी 'व्याख्या' को छिपा रखना ही उचित समझा।

× × × ×

सन् १९१२ ई० में ये गया-जिला-स्कूल में थे। मैं शाहपुर-औरंगाबाद (गया) के गुरु-ट्रेनिंग-स्कूल मे हेड-मास्टर था। 'निम्न-शिक्षक-सुहृद्' नाम की एक मोटी पुस्तक गुरुओं को पढाई जाती थी। गुरु भी प्राय लोअर-प्राइमरी तक ही पढे रहते थे। यह पीन-कलेवरा पुस्तक गुरुओं के लिये दुर्बोध थी। मैंने उसका एक नोट लिखा। उस समय खड्ग-विलास प्रेस से 'शिक्षा' पत्रिका निकलती थी। उसमे पटना-ट्रेनिंग-कालेज के प्रिन्सिपल थिकेट साहब का एक विज्ञापन देखा। उसमें शिक्षा-प्रणाली, पाठ-टीका आदि विषयो पर निबन्ध लिखने का अनुरोध किया गया था। मेरे गुरुदेव बाबू बेचूनारायण, बाबू रामचन्द्रप्रसाद आदि के लेख निकलने लगे। मैं भी अपने उत्साह को रोक न सका। 'पाठ-टीका' और 'पाठन-प्रणाली' शीर्षक मेरे भी कई लेख 'शिक्षा' मे छपे। उनमे से कुछ लेखों के लिये मुझे प्रथम पुरस्कार भी मिले। अब मैं उपर्युक्त नोट को सशोधित एव परिष्कृत करके छपवाने की धुन मे लगा, किन्तु वह धुन हिरन हो गई जब मैंने एक दिन अचानक देखा—रामलोचनशरणजी की लेखनी का चमत्कार—'निम्नशिक्षक-सुहृद् का नोट।' उसे भी आद्योपान्त पढा। मुझे यह स्वीकार करना पडा कि इनकी अन्वेषण-बुद्धि, लेखन-शैली और पाठन-प्रणाली अपूर्व है। मैंने लज्जित होकर अपना 'नोट' खटाई मे डाल दिया।

× × × ×

मेरा 'हिन्दी-भाषा का अपूर्व व्याकरण' लक्ष्मी प्रेस (गया) मे छप रहा था। सन्ध्या का समय था। लम्प जलाकर मैं उसका प्रूफ देखने बैठा। इतने में मेरे एक मित्र ने समाचारपत्र लाकर दिखाया—"युक्तप्रान्त की सरकार ने बाबू रामलोचनशरण को इनके 'व्याकरण-बोध' पर १६७) पुरस्कार दिया है।" मैंने बड़े ध्यान और डाह के साथ पढा। कुछ मिनट मौन रहा। तबतक मित्र ने कहा—"देखें, 'अपूर्व व्याकरण' के लिये सरकार क्या पुरस्कार देती है।" यह जले पर नमक था। किन्तु मानसिक कष्ट को छिपाकर मैंने 'डाह' को 'श्रद्धा' के रूप में परिवर्तित कर दिया। इनसे प्रतिद्वन्द्विता करने की व्यर्थ कल्पना त्याग दी।

सन् १९०९ ई० में सरकार ने नवीन शिक्षा-प्रणाली प्रचलित की। मैं नवीन पद्धति से गुरुओं को पढ़ाने लगा। उसके नियम, क्रम, विधि, व्यवस्था आदि का अध्ययन किया। इसीके आधार पर दो-तीन पुस्तकें भी लिखीं। उन्हें छपवाकर बाबू रामसहायलाल (बुकसेलर, गया) के द्वारा बेचने भी लगा। चार-पाँच वर्षों तक अच्छा लाभ हुआ। इसी बीच में मेरी बदली गुमला (राँची) हो गई। साथ ही, मेरी व्यवसाय-बुद्धि भी तिरोहित हो गई।

बाबू रामलोचनशरणजी कब चूकनेवाले थे। आप अध्यवसायी भी उच्च-कोटि के हैं। इस बीच में आपने लोअर से लेकर मिड्ल तक के लिये कितनी ही मौलिक हैंड-बुक लिख डालीं। टेक्स्ट-बुक-कमिटी भी उनपर अपनी मुहर लगाने लगी। बिहार में आपकी पुस्तकों का सर्वत्र आदर होने लगा। शिक्षा-विभाग में आपकी पुस्तकों का बोल-बाला हो गया। अब बाल-वर्ग से लेकर मैट्रिक, इंटरमिडियट, आचार्य, विशारद आदि तक में आपकी लिखित, सगृहीत एव सम्पादित पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं।

बाबू रामलोचनशरणजी गणित की ओर से भी उदासीन न रहे। भाषा पर आपका जैसा अधिकार और प्रभाव है, गणित पर उससे कम नहीं है। लोअर से लेकर मिड्ल तक आप ही की लिखी गणित-पुस्तकें पढाई जाती हैं। अब तो मैट्रिक में भी आपकी गणित पुस्तक जारी है। इन गणित-पुस्तकों में जैसी पाठन-प्रणाली, दृष्टान्त-प्रश्नावली आदि हैं, वैसी अन्य पुस्तकों में नहीं पाई जातीं।

× × × ×

आपका ध्यान केवल पाठ्य पुस्तकों तक ही सीमित नहीं है। साहित्य की उन्नति करने में आप किसी से पीछे नहीं हैं। हिन्दी-साहित्य का भडार भरने में आप तन-मन-धन से लगे हुए हैं।

बिहार-सरकार की निरक्षरता-निवारिणी सस्था को आपने उल्लेखनीय सहायता दी है। नवीन प्रणाली की अनेक पुस्तकें, स्लेटें और लालटेनें निरक्षर जनों में वितरित करके जनता और साहित्य की सच्ची सेवा की है।

'बालक' आपकी सम्पादन-कला-कुशलता का सुन्दर नमूना है। इसके लेख और चित्र किसे मुग्ध नहीं करते ? यह बिहार का अनमोल लाल है।

आपने अपने प्रेस का नाम 'विद्यापति प्रेस' क्यों रक्खा ? इसके दो कारण हैं—एक तो अपनी जन्मभूमि मिथिला के महाकवि विद्यापति का सम्मान, दूसरा अपनी जन्मभूमि मिथिला का अनुराग। आज उस प्रेस में बिजली से मशीनें दिन-रात चलकर अनेक सुन्दर ग्रन्थ छाप रही हैं।

आपके दयाभाव का एक ही दृष्टान्त अलम् है। डुमरिया (बलिया) में

शरणजी का बाल्यकाल

श्रीकिशोरीलाल दास, मकुन्ताही (मुजफ्फरपुर)

शरणजी के पिता आदर्श गृहस्थ थे। इनके और हमारे पूर्वजों में गाढ़ी मैत्री चली आती थी, अत हम उन्हें 'चाचा' कहते थे। चाचाजी के ये प्रथम पुत्र-रत्न थे। पाँच वर्ष की अवस्था में इन्हें हमारे गाँव के एक कायस्थ (स्व०) कोदईलाल ने इन्हें सर्व-प्रथम खली छुलाई। उनसे कुछ दिन पढ लेने के बाद इनका नाम अपर-प्राइमरी स्कूल में लिखाया गया। स्कूल में दो शिक्षक थे—बाबू रघुनी साहु और प० हरिवंश झा। मैं भी उसी स्कूल में पढता था।

पढ़ने में ये इतने तेज थे कि जो पाठ गुरुजी पढाते, इन्हें उसी समय कठस्थ हो जाता। जिस समय गुरुजी नया पाठ पढ़ाते थे, ये बडे ध्यान से उसे सुनते थे। यदि क्लास का कोई लडका उस समय इनकी कलम, पेंसिल या अन्य कोई चीज उठा लेता तो ये कुछ नहीं देखते थे। जब गुरुजी चुप होते, तब कहीं ये अपनी खोई हुई चीज ढूँढते। ये अपने क्लास के लडकों में सबसे तेज विद्यार्थी थे। निडर इतने थे कि गुरुजी के अतिरिक्त किसी का रोब नहीं मानते थे। शात भी उतने ही थे। कभी किसी के साथ लडना-झगडना नहीं चाहते थे। बुद्धि बडी तीक्ष्ण थी। एक बार लोअर क्लास में, गुरुजी ने रेखा-गणित पढ़ाते समय, अपर के एक विद्यार्थी कालीचरण तिवारी को, जो सबसे तेज समझे जाते थे, एक वृत्त बनाने के लिये कहा। जब वे स्लेट पर वृत्त नहीं बना सके तब गुरुजी ने इनको पुकारकर कहा—"रामलोचन, तुम स्लेट पर गोलाकार रेखा (वृत्त) बना सकते हो तो बनाओ।" इन्होंने झट स्लेट-पेंसिल उठाई। अपनी तर्जनी उँगली से केंद्र लगाकर ठीक वृत्त बना दिया। गुरुजी बड़े खुश हुए।

ये स्वतंत्र विचार के थे। जब कभी कुछ कहते, इनके माता-पिता को पूरा करना पडता था। जिस दिन स्कूल जाने की इच्छा नहीं होती, नहीं जाते थे। जब गुरुजी इन्हें बुलाने के लिये इनके दरवाजे पर पहुँचते, कन्नी दबाकर निकल जाते। गॉव के बाहर किसी बगीचे में खेलते रहते।

पाठ याद रखने में तो बेजोड थे। बड़ी सफाई के साथ अपना सबक सुना देते थे। कठिन-से-कठिन हिसाब भी बात-की-बात में हल कर देते थे। इससे गुरुजी भी खुश हो कोई दड नहीं देते थे।

अपने सहपाठियों से इनका खूब मेल रहता था। मिल-जुलकर खाने-खिलाने में इन्हें बडा आनद आता था। ये अपने घर से माताजी की ऑख बचाकर खाने-पीने की चीजें उठा लाते थे और सहपाठियों के बीच बॉटकर खाते थे। जब कभी इनके यहॉ कहीं से 'सँदेशा' आता था, उसमें से प्राय चौथाई भाग इसी तरह लाकर सहपाठियों को खिलाया करते थे।

कई बरस तक लगातार उपज कम हो जाने और अपनी पट्टीदारी में विच्छेद होने के कारण चाचाजी के सिर कर्ज का बोझ पड़ गया। कसौटी पर कसे जाने पर भी सोना दमकता ही रहता है। चाचाजी की आर्थिक दशा गिरी हुई थी। मुश्किल से ४-५ बीघे खेत बचे थे। कुछ जमीन फॅस गई थी। व्यापार भी कुछ अच्छी पूँजी का नहीं था। तो भी वे हिम्मत हारनेवाले पुरुष नहीं थे। किसी के रोब-दाब में नहीं रहते थे। कष्ट झेलते हुए भी अपने प्यारे पुत्र को शिक्षित बनाने के धुनी थे।

चाचाजी की इच्छा न रहने पर भी ये स्कूल से छुट्टी पाकर कभी-कभी गृहस्थी में मदद कर दिया करते थे। बडे प्रेम से गाय-बैलों को चारा देते, सानी बना देते, बथान भी साफ कर दिया करते। गाय पर तो इनकी अपार श्रद्धा थी।

धर्म की ओर इनका झुकाव बचपन से ही है। जब ये अपर में पढ रहे थे, क्लास में धर्म-शिक्षा की भी एक पोथी पढाई जाती थी। दोपहर को छुट्टी पाकर, अपने गॉव के दक्षिण राधेश्वरी पोखरे में, स्नान करने जाते। स्नान कर धर्म-शिक्षा की उस पोथी का पाठ बड़ी भक्ति से करते थे। तब घर आकर भोजन करते।

झूठ से इन्हें नफरत थी। कोई भी बात गुरुजी से सच-सच बता दिया करते थे। इसलिये क्लास के लडके इनसे डरा करते थे।

जब ये मिड्ल स्कूल में पढ़ते थे, तभी से इनका मन पुस्तक लिखने की ओर आकृष्ट हुआ। गणित के तो ये पक्के जानकार थे। वहीं इन्होंने 'पी० घोष

पाटीगणित' के कुल हिसाब आद्योपांत क्रिया-सहित बनाकर एक पुस्तक तैयार की। पर किसी सज्जन ने इनकी लिखी यह पुस्तक उड़ा ली।

इनके ध्यान में एक और बात समा गई थी। वह यह कि टोले में बड़ी गंदगी फैली हुई है, उसे साफ रखना चाहिये। एक बार छुट्टी में घर आये। एक सड़क, जो इनके घर के उत्तर से पूरब-पश्चिम गई थी, बड़ी गंदी थी। उसे देखते ही कुदाल और टोकरा लेकर उसे साफ करने पर तुल गये। यह देखकर उस टोले के कई और लड़के भी उस काम में जुट गये। आखिर उस रास्ते को साफ करके ही छोड़ा। ऐसा इन्होंने कई बार किया।

सन् १९०३ ई० में ये मिड्ल की परीक्षा देकर घर चले आये। इसके बाद इनका गौना हुआ। घर में नई दुलहिन आई। पर आजकल के विद्यार्थी की तरह नई दुलहिन पाकर पढ़ने की ओर से ध्यान न हटाया। बेकार गाँव के लड़कों के साथ व्यर्थ की बातें नहीं करते थे। अपने एक पड़ोसी कायस्थ बाबू रामअवतार लाल से केवल एक मास में ही उर्दू लिखना-पढ़ना सीख लिया।

इसी समय इन्होंने 'चन्द्रकांता' उपन्यास पढ़ा। उसी ढर्रे का एक नया उपन्यास लिखने लगे। किन्तु वह पूरा न हो सका। इसी बीच इनका परीक्षा फल निकला। इसमें भी इनका स्थान ऊँचा रहा, पर कुछ षड्यन्त्रकारियों के प्रयास से इनकी उम्र बढ़ा दी गई, जिससे सर्व प्रथम होने पर भी स्कॉलरशिप नहीं पा सके।

मिड्ल पास करने पर इनकी इच्छा आगे पढ़ने की थी। चाचाजी की हिम्मत भी बढ़ गई थी, पर हाथ खाली था। लाचार इन्हें गुरुआई करनी पड़ी। पहले तो अपने गाँव से पूरब 'जवाही' गाँव में लड़कों को पढ़ाने लगे। किन्तु वहाँ इनका मन नहीं लगा। थोड़े ही दिनों के बाद घर चले आये। फिर 'महनियापट्टी' गाँव में जाकर लड़कों को पढ़ाने लगे। यह इनके गाँव से लगभग आध मील की दूरी पर है। वहाँ भी इनका जी नहीं लगता था। इनकी इच्छा तो आगे पढ़ने की थी।

इन दोनों जगहों में पढ़ाने से जब इनके हाथ पर कुछ रुपये आ गये, तब इन्हीं रुपयों को लेकर बड़ी प्रसन्नता से ये पटना पहुँचे। इनके पास रेल-भाड़े के सिवा तीन-चार ही रुपये थे। तथापि वहाँ इन्होंने नार्मल-ट्रेनिंग में नाम लिखाया। खूब मन लगाकर पढ़ने लगे। वहाँ इन्हें छात्रवृत्ति भी मिलती थी। अपने शिक्षकों पर इनकी अपार श्रद्धा थी। शिक्षक भी इनके समान आदर्श विद्यार्थी पाकर बड़े खुश थे। खूब प्रेम से पढ़ाते थे। ये स्कूल से छुट्टी पाकर खेल-कूद में शामिल नहीं होते थे, वरन् पुस्तकों के नोट आदि लिखा करते थे।

१९०७ ई० में इन्होंने नार्मल-ट्रेनिंग की परीक्षा पास की। वहाँ भी इनका स्थान प्रान्तभर में ऊँचा रहा। इनकी ड्राइंग-(चित्र)-कला भी बड़ी अच्छी थी। खूब सुन्दर-सुन्दर चित्र बना लिया करते थे। इनके परीक्षोत्तीर्ण होने पर चाचाजी ने धूमधाम से भगवान् सत्यनारायण की पूजा की।

अब इनके सामने संसार की विकट यात्रा का प्रश्न आया। इसी समय इनके एक शिक्षक मोतिहारी-जिला-स्कूल में हेडमास्टर होकर आये। ये उनकी कृपा से उसी स्कूल में शिक्षक नियुक्त हुए। अब ये छात्र से 'मास्टर साहब' हो गये।

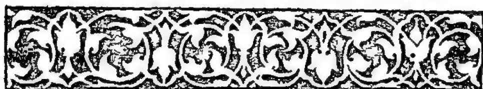

छात्रोपकारी शरणजी

प० सौखीलाल झा, प्रधान हिन्दी शिक्षक, टी० के० घोष एकेडमी, पटना

आज से लगभग २५ वर्ष पूर्व। मैं १२ वर्ष का था। लोअर प्राइमरी पास कर पचाढी (दरभगा) के मिडूल-इगलिश स्कूल मे पढता था। लहेरियासराय का नाम मात्र ही जानता था, मुझे कुछ कोर्स की किताबें खरीदनी थीं। मैं एक छोटा लडका, वहाँ से पैदल ७ कोस चलकर करीब १२ बजे आपके 'भडार' में पहुँचा। आप मेरा सूखा चेहरा देखते ही समझ गये कि मैंने कुछ खाया नहीं है। आपने मुझे स्नान-भोजन कराया। दो किताबें अपनी तरफ से मुफ्त दीं। उसी दिन से मैं आपको परम साधु समझने लगा।

जब मैं मारवाड़ी हाइस्कूल, (दरभगा) में पढता था, मैंने देखा कि आप कतिपय छात्रों को मुफ्त पुस्तकें देकर पढने में सहायता देते हैं। आपका परोपकार देखकर मैं मुग्ध रह जाता। एक समय मैंने आपसे कहा भी था—"मास्टर साहब, लोगों को इस तरह आप पुस्तक, भोजन इत्यादि देते हैं, क्या 'भडार' को इससे हानि नहीं होगी ?" छूटते ही आपने कहा—"यह सब परमात्मा की दया और प्रेरणा है।" उसी समय से मुझे मालूम हुआ कि आप उन सासारिक व्यवसायियों की कोटि में नहीं हैं, जो रुपया कमाना ही एकमात्र पुरुषार्थ समझते हैं।

जब से मैं टी के घोष हाइस्कूल में हूँ, तब से आपकी साधुता, उदारता और दानशीलता देखता आ रहा हूँ। एक गरीब विद्यार्थी को मैंने कुछ पुस्तकों के लिये दो-तीन प्रकाशकों के यहाँ भेजा। कोई भी विना मूल्य पुस्तक देने को तैयार नहीं हुए। 'भडार' की ओर उस गरीब विद्यार्थी को लेकर चल पडा। 'भडार' ने सब किताबें उस गरीब को मुफ्त दे दीं।

पटना में जितने प्रकाशक हैं, किसी मे ये बातें नहीं हैं। मैं यहाँ १४ वर्षों से हूँ। सबको खूब जानता हूँ। जब से 'भडार' पटना में खुला, उससे ५ वर्ष पूर्व ही से मैं ईश्वर से बराबर प्रार्थना किया करता था कि यहाँ के गरीब शिक्षकों और विद्यार्थियों के लिये भगवान् कब सहायक भेजेंगे। मैं बराबर देख रहा हूँ कि 'भडार' गरीब छात्रों को अनेक प्रकार से सहायता देता आ रहा है। मास्टर साहब की ऐसी खास आज्ञा है।

ससार में वे ही बड़े हैं जो दूसरे के कष्ट को अपना कष्ट समझते हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि 'भडार' के व्यवस्थापक दीर्घजीवी हों, ताकि गरीब छात्रों का बराबर उपकार होता रहे।

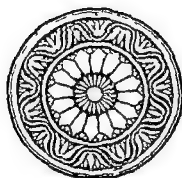

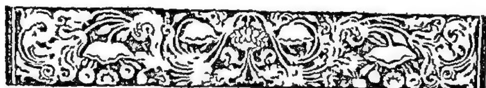

बिहार के द्विवेदीजी

रेवरेंड प० श० नवरंगी, राँची

पचीस वर्ष पूर्व श्रीरामलोचनशरणजी ने, इस प्रान्त मे हिन्दी की दशा देख, अपना सारा साहस बटोरकर, प्रण किया कि मैं हिन्दी का सिर ऊँचा करूँगा—बिहार में विशुद्ध हिन्दी का प्रचार करूँगा।

शरणजी ने शीघ्र प्रणपूर्त्ति के कार्य में हाथ डाला। 'पुस्तक-भडार' को स्थापित किया। उसको उन्नत करने मे अपनी सारी शक्ति लगा दी। एक ओर वे नये लेखकों का उत्साह बढ़ाते, दूसरी ओर स्वय अपनी लेखनी धडाधड चलाते रहते थे। पाठ्य और साहित्यिक पुस्तकों की झडी-सी लगा दी।

आचार्य द्विवेदीजी को अपना आदर्श मानकर इन्होंने सभी क्षेत्रों में हिन्दी की उन्नति करनी चाही। पहले तो देखा कि बिहार में भाषा की विशुद्धता की ओर लोग कुछ भी ध्यान नहीं देते। व्याकरण-सम्बन्धी नियमों मे भूल करते हैं। इसलिये सबसे पहले उनका ध्यान व्याकरण की ओर गया। उन्होंने बडे-छोटे कई व्याकरण लिखे और उनके नये-नये सस्करण निकाले।

उन्होंने अपने व्याकरण अँगरेजी-व्याकरण के आदर्श पर ही लिखे। आज कितने पडित इन व्याकरणों पर नाक-भौं सिकोडते हैं। पर उन्हें यह भूल न जाना चाहिये कि इन्हीं व्याकरणों की कृपा से आज हममें से बहुतेरे थोडी-बहुत विशुद्ध हिन्दी लिख और बोल सकते हैं।

उन्होंने अनुभव किया कि बडे-बूढ़ों की अपेक्षा कोमल-मति बालकों पर ही शुद्ध हिन्दी का प्रभाव डालने का प्रयत्न करना चाहिये। अत बालोपयोगी पुस्तकें लिखना और छापना आरम्भ कर दिया। उन्होंने स्वय कितनी ही स्कूली

रीडरें लिखीं—संकलित कीं, दूसरों को लिखने के लिये उत्साहित किया। इस कार्य को बृहत्तर क्षेत्र में फैलाने और स्थिर रखने के लिये ही उन्होंने 'बालक' निकाला।

ये सब कार्य किसी भी साहित्यिक दिग्गज को गौरव प्रदान करने के लिये काफी हैं, परन्तु हमारे इस साहित्यिक महारथी ने इतने ही से संतोष न किया। वे भीष्मपितामह की तरह आज भी अविचरा गति से साहित्य के मैदान में आगे बढे जा रहे हैं।

मेरे जानते हिन्दी-भाषा के यशस्वी सेवकों में कदाचित् स्वर्गीय आचार्य द्विवेदीजी तथा रायबहादुर श्यामसुन्दरदासजी के सिवा और कोई ऐसा व्यक्ति न होगा, जिसने अकेले ही हिन्दी के प्रचार के लिये इतने कार्य किये और इतने कष्ट सहे। आज भी सर्वत्र हिन्दी के बड़े-बड़े साहित्यिक हैं जो स्वान्त सुखाय लिख रहे हैं, परन्तु शरणजी हिन्दी-प्रचार के लिये ही कलम उठाते हैं।

सभी हिन्दी-प्रेमी, विशेषत बिहार के, आज बिहार के इस द्विवेदी पर गर्व करते हैं—उन्हें बधाइयाँ देते नहीं अघाते। परमेश्वर करें, उनकी कीर्त्ति-लता का दिन-दिन विस्तार होता रहे।

बिहार में सरल गद्य-शैली के प्रवर्त्तक—'मास्टर साहब'

अध्यापक योगेन्द्र सिंह, दरभंगा

जब मैं बालक था, अपने शिक्षक बाबू यज्ञेश्वर सिंहजी के साथ 'पुस्तक-भंडार' में पुस्तक खरीदने गया था। यज्ञेश्वर सिंहजी सर्किल पंडित के स्थान पर भी काम कर चुके थे। कम अँगरेजी जानते हुए भी वे धारा प्रवाह अँगरेजी बोलते थे। बड़े ही विनोदी व्यक्ति थे। उस समय 'भंडार' की दूकान बाकरगंज-बाजार में साधारण रूप में थी। उस समय कोई क्या जानता था कि यही 'भंडार' किसी दिन बिहार का साहित्यिक गौरव होगा।

छात्रावस्था तक मैं बाबू रामलोचनशरणजी के सिर्फ नाम से ही परिचित था। जब मैं १९२४ ई० में शिक्षक हुआ तब उनके दर्शन कर सका।

१९२९—३० ई० की बात है। मैंने बातों के सिलसिले में मास्टर साहब से कहा—"मिड्ल के लायक कोई अच्छा संक्षिप्त व्याकरण नहीं है। यद्यपि 'व्याकरण-चन्द्रोदय' का संक्षिप्त रूप 'व्याकरण-नवनीत' के नाम से निकल चुका है, तथापि बहुत बड़ा है।"

उन्होंने गौर से मेरी बात सुनी। फिर तुरत उठकर दूकान में गये। वहाँ से 'व्याकरण चन्द्रोदय', 'संक्षिप्त हिन्दी व्याकरण' (प० कामताप्रसाद गुरु) तथा सादा कागज लेते आये। उन्हें मुझे देते हुए कहा—"तुम जैसा चाहते हो वैसा ही व्याकरण लिखकर मुझे दो, तो मैं बड़ा कृतज्ञ होऊँगा।"

मैंने असमंजस में ही व्याकरण लिखना स्वीकार कर लिया। भगवान् की कृपा से मैंने किताब पूरी कर मास्टर साहब को समर्पित की। उन्होंने उसे बाबू अच्युतानंद दत्तजी के हवाले किया और उन्हीं की देख-रेख में 'व्याकरण-

प्रवेशिका' के नाम से छपी। अगर उनकी प्रेरणा न होती, तो आज मुझे जो कुछ भी लिखने का ज्ञान है, वह भी न होता। बाद उन्हीं की प्रेरणा से कई स्कूली पुस्तकों की व्याख्या भी लिखी—'बालक' के लिये लेख भी।

मेरी क्या बात, उन्होंने सैकड़ों बिहारी युवकों को लेखक बनने में सहायता पहुँचाई है तथा उनकी भाषा का परिमार्जन किया है।

इस सम्बन्ध की एक खास घटना की याद मुझे हो रही है। मुजफ्फरपुर मे प० पद्मसिंह शर्मा की अध्यक्षता मे अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अष्टादश अधिवेशन हुआ था—'हरिऔध' जी की अध्यक्षता मे कवि-सम्मेलन। प० हरिमोहन झा, एम० ए० के कविता-पाठ से सबका हृदय आनन्द गद्गद हो गया। पर बाबू रामलोचनशरणजी को जो आनन्द हुआ, वह छिपा न रह सका। उन्होंने पुरस्कार की घोषणा की। उसके बाद मैंने हरिमोहनजी को कई बार 'भडार' में देखा। पीछे पता चला कि उन्हें 'भडार' से ही पढने का खर्च बराबर मिलता रहा है। प्राय मैंने उनको शरणजी की छत्रच्छाया में कार्य करते पाया। उनके विकास में शरणजी का बहुत बडा हाथ है। फिर प० रामवृक्ष बेनीपुरीजी को भी 'बालक' का सम्पादन-भार देकर उन्होंने ही हिन्दी-ससार के सामने एक ऐसा प्रतिभाशाली लेखक उपस्थित किया, जो आज 'अखिल भारत-वर्षीय प्रगतिशील लेखक-सघ' का सभापतित्व तक करके अपनी रचनाओं से हिन्दी को धनी बना रहा है। उन्हीं की प्रेरणा और उन्हीं के प्रोत्साहन से बेनीपुरीजी ने बाल-साहित्य की कई सुन्दर पुस्तकें लिखी हैं।

हिन्दी-भाषा के क्षेत्र में जो कार्य आचार्य द्विवेदीजी ने कर दिखाया है, विहार में वही कार्य उन्होंने कर दिखाया है। इस कार्य में उनके व्याकरण एव उनकी रचना-सम्बन्धी पुस्तकों से बडी सहायता मिली है।

बाल-साहित्य के वे मर्मज्ञ लेखक हैं। बिहार में बाल-साहित्य के विकास का सारा श्रेय उन्हीं को है। इस क्षेत्र में उन्हीं के प्रशसनीय प्रयत्नों को देखकर अन्यान्य लोगों में भी प्रतियोगिता की भावना पैदा हुई। इससे उत्तमोत्तम पुस्तकें सामने आईं। इस तरह उन्हीं के कारण बिहार के साहित्यिक क्षेत्र में क्रांति उपस्थित हुई है।

वे जैसे मिलनसार, मधुरभाषी, अहम्मन्यता-शून्य, विनोदी तथा व्यवसाय-कुशल व्यक्ति हैं, वह तो सर्व-विदित ही है। उन्होंने साहित्य-क्षेत्र मे बिहार के मुँह की लाली रख ली है।

बाल-मनोभाव के विशेषज्ञ—'मास्टर साहब'

श्रीपरमानन्द दत्त 'परमार्थी', भलुआही (भागलपुर)

श्रीमान् मास्टर साहब के प्रथम शुभदर्शन का सौभाग्य दिसम्बर, १९२६ में प्राप्त हुआ। ज्योंही मैं प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने लगा, कुछ किताबें इनकी लिखी दिखाई दीं। वे ऐसे मनोरंजक बातचीत के ढँग से लिखी गई थीं कि बालकों को तो प्रसन्नता होती ही थी, शिक्षकों को भी कौतूहल उत्पन्न होता था। जैसे-जैसे इनकी किताबों की संख्या अधिक मिलने लगी वैसे-वैसे इनके नाम के साथ 'भंडार' का नाम जुड़ा देखकर दोनों से एक प्रकार की आत्मीयता का बोध होने लगा। मन में भावना होती थी कि वे कैसे होंगे, जिन्होंने हमलोगों के मनोगत भावों को बातचीत के ढँग पर इतनी सहृदयता से अंकित किया है और हमलोगों के पाठ्य विषयों को कहानी का रूप देकर जटिल को भी सुगम और हृदयग्राही बना दिया है। हमारे शिक्षक—जिनका इनसे परिचय था—इनके विषय में इस तरह का वर्णन करते, जिसे सुनकर और भी कौतूहल होता—उत्कंठा होती कि जरा देखूँ तो वे कैसे हैं।

सन् १९२९ में जब मेरे पूज्यचरण अग्रज (श्रीयुत अच्युतानन्द दत्त) 'भंडार' के कर्मचारी होकर आये, तब से मेरी भी 'भंडार' से घनिष्ठता हुई। मास्टर साहब की शीतल दृष्टि और मधुर कृपा मुझे बराबर मिलने लगी। मैं उन्हें गुरुवत् मानने लगा और वे मुझे अनुजवत्। मुझे 'भंडार' में यदा-कदा काम करने का अवसर मिलने लगा। वह भी मास्टर साहब की खास देखरेख में।

एक दिन 'भंडार' के कई कर्मचारी मेरे इर्द-गिर्द बैठे बातें कर रहे थे। हिन्दी-साहित्य की चर्चा चल रही थी। प्रसंगवश एक ने कहा—'हिन्दी के एक-दो पद्य ऐसे जटिल हैं, जिनका कुछ अभिप्राय हमलोगों को नहीं ज्ञात होता।' मैंने साकांक्ष होकर पूछा—'मैं भी तो सुनूँ।'

इस समय आपकी देख-रेख मे तैयार कराई हुई निरक्षरता-निवारण कमिटी की किताबों की काफी चर्चा है। हिन्दी और हिन्दुस्तानी के पचडे में आप कभी न पड़े। हिन्दी के हित की दृष्टि से ही अबतक सब-कुछ किया-कराया। हिन्दुस्तानी को आप हिन्दी में खपाकर छोडते, पर दुनिया की चाल निराली है—दलबदी का बाजार गर्म है। फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि आपने जो कुछ भी किया है, साफ दिल और नेकनीयती से। राजनीतिक वातावरण की छाप साहित्य पर बराबर पडती रही है, भविष्य में भी पडेगी।

कौन जानता था कि गया के स्कूल में रूप-रेखा सिखलानेवाला शिक्षक एक दिन हिन्दी-ससार की रूपरेखा बदल डालेगा और चित्र सिखलाने के स्थान में स्वय चित्र का आदर्श बन जायगा, जिसकी पूजा देश के लोग करेंगे ?

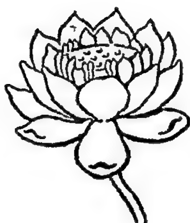

मास्टरों के सरताज—'मास्टर साहब'

श्रीहरिनंदन सिंह, हेडपंडित, ई० टी० स्कूल, माधोपट्टी (दरभंगा)

सन् १९१५ ई० मे बिहार-सरकार ने नई 'सिलेबस' प्रकाशित की थी। इस 'सिलेबस' के पहले लोअर-प्राइमरी स्कूलो मे इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य, प्रकृति-पाठ, चित्रकारी आदि की शिक्षा नहीं दी जाती थी। नई सिलेबस के निकलने पर लोअर-प्राइमरी स्कूलों में इन विषयों की शिक्षा आवश्यक हो गई। उन स्कूलों के शिक्षक घबराने लगे, क्योंकि 'सिलेबस' संकेत के रूप मे थी। सिलेबस के वास्तविक मन्तव्य की व्याख्या नहीं की गई थी। जब तक बिहार-प्रान्त बगाल-सरकार के अधीन था, तबतक जो सिलेबस निकलती थी वह व्याख्यात्मक रूप में रहती थी। यह नई सिलेबस वैसी न थी। इसलिये प्राइमरी स्कूलों के शिक्षक अधकार में पड़े थे। इन विषयों के लिये क्या पढावें और कैसे पढावें, सब इसी उधेड-बुन में पडे थे।

समयानुकूल सूझ रखनेवाले दूरदर्शी व्यक्ति सदा ऐसे अवसर को ताक में रहते हैं। ऐसे सुअवसरों से लाभ उठानेवाले व्यक्ति आम-के-आम और गुठली के दाम तुरत पा जाते हैं। हमारे सहयोगी शिक्षक श्रीरामलोचनशरणजी ने अपनी सूझ से काम लिया। उन स्कूलों के लिये सब विषयों की किताबें लिख डालीं। 'भंडार' से प्रकाशित भी कर दीं। इन पुस्तकों के प्रकाशित होते ही बेचारे शिक्षकों को सीधा मार्ग मिल गया। बिहार-भर के प्राइमरी दर्जों के शिक्षकों ने आपकी किताबें अपनाई। उनका ध्यान आपकी ओर खिंच गया। उन दिनों आपकी इन विषयों की पुस्तकें हैंड-बुक के रूप में टेक्स्टबुक-कमिटी के द्वारा स्वीकृत न थीं। फिर भी उन पुस्तकों का काफी प्रचार रहा।

इस समय आपकी देख-रेख मे तैयार कराई हुई निरक्षरता-निवारण कमिटी की किताबों की काफी चर्चा है। हिन्दी और हिन्दुस्तानी के पचडे में आप कभी न पडे। हिन्दी के हित की दृष्टि से ही अबतक सब-कुछ किया-कराया। हिन्दुस्तानी को आप हिन्दी मे खपाकर छोडते, पर दुनिया की चाल निराली है—दलबदी का बाजार गर्म है। फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि आपने जो कुछ भी किया है, साफ दिल और नेकनीयती से। राजनीतिक वातावरण की छाप साहित्य पर बराबर पडती रही है, भविष्य मे भी पडेगी।

कौन जानता था कि गया के स्कूल में रूप-रेखा सिखलानेवाला शिक्षक एक दिन हिन्दी-ससार की रूपरेखा बदल डालेगा और चित्र सिखलाने के स्थान मे स्वय चित्र का आदर्श बन जायगा, जिसकी पूजा देश के लोग करेंगे ?

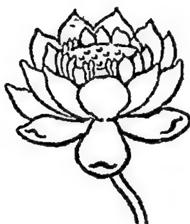

सन् १९३४ ई० में सरकारी तौर पर श्रीमान् डिप्पी साहब ने एलान किया कि बच्चों को प्रारम्भिक अक्षर-ज्ञान अक्षरादि क्रम से न कराकर किसी नई उपयोगी प्रणाली से कराया जाय। यह भी एक विकट समस्या थी। सपने में भी किसी के ध्यान में यह बात न आई थी कि 'अ, आ, इ, ई' को छोड़कर 'मा, माला, ताला' इत्यादि शब्दों के द्वारा बच्चों को अक्षर और शब्द पढ़ने-लिखने का आरम्भिक ज्ञान कराया जा सकता है। इस समस्या के सामने आते ही बिहार के प्राथमिक शिक्षा-क्षेत्र में तहलका-सा मच गया। इस समय भी शिक्षक अंधकार में पड़ गये। इस प्रकार की पुस्तक के लेखन और प्रकाशन का मैदान सूना पड़ गया। इसी समय लाल बाबू को पढ़ाने में आपने अपनी एक नई प्रणाली का प्रयोग किया। सफलता तत्काल मिली। बस, चटपट 'बड़ी मनोहर पोथी' और 'छोटी मनोहर पोथी' लिखकर प्रकाशित कर दीं। ये पुस्तकें सचमुच ही 'मनोहर पोथी' थीं। इनके प्रकाशित होते ही शिक्षकों को प्रकाश मिल गया। पीछे बाजार में इस तरह की अनेकानेक पोथियाँ आने लगीं। किन्तु उनमें वह स्वाभाविक मौलिकता न थी, थी शुद्ध नकलबाजी। इसलिये सरकार और जनता ने जितना 'मनोहर पोथी' का आदर किया उतना किसी का नहीं। शिक्षित-वर्ग में 'मनोहर पोथी' की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई। अन्यान्य प्रान्तों में भी इसकी माँग होने लगी।

इसी तरह, जब-जब सिलेबस में परिवर्त्तन हुआ, आपकी लेखनी सबसे आगे रही। आज तो प्रारम्भिक पाठशाला से कालेज तक आपकी पुस्तकें छा रही हैं।

इधर कतिपय वर्षों से ही आपकी पुस्तकें टेक्स्टबुक-कमिटी के द्वारा स्वीकृत हो रही हैं, मगर हमने आपके लेखन तथा प्रकाशन का जो हाल लिखा है वह उस समय का है जब आपकी एक भी पुस्तक टेक्स्ट-बुक-कमिटी के द्वारा स्वीकृत न थी। आज भी आपकी बहुतेरी ऐसी पुस्तकें हैं, जिनपर टेक्स्ट बुक कमिटी की मुहर नहीं है, किन्तु उनकी बिक्री स्वीकृत पाठ्य पुस्तकों से भी अधिक है। इसकी दूसरी कोई वजह नहीं, सिर्फ उन पुस्तकों पर आपके शिक्षकत्व की छाप पड़ी हुई है।

आज पुस्तक-प्रकाशन-क्षेत्र में स्पर्द्धा और द्वेष की प्रचुरता है। नवम्बर और दिसम्बर के महीनों में प्रकाशकों के प्रचारकों से शिक्षक, चेयरमैन, डिस्ट्रिक्ट-इन्सपेक्टर, डिपुटी-इन्सपेक्टर, सब-इन्सपेक्टर, शिक्षा-विभाग के क्लर्क तक हैरान परेशान हो जाते हैं। पुस्तक पढ़ाना शिक्षकों का कार्य है और पढ़ना छात्रों का। पुस्तकें सरकारी 'सिलेबस' के संकेत तथा सरकारी आदेश के अनुसार

लिखी गई हैं कि नहीं, यह देखना टेक्स्ट-बुक-कमिटी का काम है। जब टेक्स्ट-बुक-कमिटी किसी पुस्तक के प्रचार अथवा प्रयोग के लिये स्वीकृति दे देती है, तब प्रकाशकों को अन्य अफसरों के द्वारा प्रचार-कार्य कराना नहीं चाहिये। हमारे विचार से यह अनुचित है। यह कार्य शिक्षकों को ही सौंप देने योग्य है। शिक्षक जब अपनी निर्णयात्मक बुद्धि से पुस्तक चुन लेंगे, और इस चुनाव से जिस प्रकाशक तथा लेखक की पुस्तक का प्रचार अधिक होगा, सचमुच वही लेखक और प्रकाशक उत्तमता की श्रेणी में समझा जायगा। इस कसौटी पर कसने से भी, लेखक तथा प्रकाशक की हैसियत से आप आगे रहेंगे।

प्रकाशन-कार्य से जो आय होती है, वही आपकी सम्पत्ति है। वह सम्पत्ति दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती हुई मालूम पड़ती है। अनेक प्रकार की विघ्नबाधाओं तथा प्रतिकूल परिस्थितियों के आने पर भी आप और 'भंडार' पर आँच आती नहीं दीखती। यह ईश्वर की कृपा है।

आपमें और भी बहुतेरी योग्यताएँ हैं। आप सुन्दर लेखक, अनुभवी सम्पादक, चतुर व्यवस्थापक, सच्चे साहित्य-सेवी, निरक्षरता के कट्टर शत्रु, सूक्ष्मदर्शी व्यापारी, उदार-हृदय और अध्यवसायी सज्जन पुरुष हैं।

लेखक की हैसियत से देखते हैं तो पता चलता है कि आपकी लेखनी में यदि सार न होता, तो आपकी लिखी और सम्पादित पुस्तकों तथा पत्रों का इतना प्रचार क्यों होता। बाल-साहित्य की परख जैसी आपकी है, वैसी परख रखनेवाले बहुत थोड़े नजर आते हैं। आपकी निजी सम्पत्ति सचमुच बाल-साहित्य है। बालोपयोगी पुस्तकों का लेखन और प्रकाशन तथा प्रचार बिहार में जितना आपने किया है, उतना शायद ही किसी ने किया हो। सन् १९११ ई० के पहले बिहार में बाल-साहित्य का नाम भी नहीं था। जब से आपने लेखनी उठाई है तबसे ही विशुद्ध बाल-साहित्य का जन्म बिहार में हुआ है। इसका श्रीगणेश करने का श्रेय आपको ही प्राप्त होना चाहिये और है भी। सचमुच अभिनव बाल-साहित्य की सृष्टि करके आपने बिहार का बहुत बड़ा उपकार किया है। लड़कपन में जिस बात का चसका लग जाता है वह शीघ्र दूर नहीं होता। आपके द्वारा निर्मित बाल-साहित्य से बालकों में जो साहित्यिक प्रवृत्ति पैदा हो रही है वह बिहार के भावी साहित्य-निर्माण कार्य में बड़ी सहायता पहुँचावेगी। भविष्य की बिहारी सन्तानें साहित्य की उन्नति देखकर आपको सदा याद करेंगी। आपका नाम बाल-साहित्य के इतिहास में अमर रहेगा।

आपकी भाषा-शैली कैसी है, इसका विचार तो साहित्य-मर्मज्ञ करेंगे, किन्तु इतना हम अवश्य कहेंगे कि आपका स्थान उस चन्दन-वृक्ष के ऐसा है, जो सम्पूर्ण

कानन को, अपनी दिव्य और स्थायी सुरभि से सुरभित किये रहता है। जूही, बेला और गुलाब की सुगन्ध मादक होती है, किन्तु स्थायी नहीं। दो दिनों के बाद सूख जाने पर उनका कुछ भी मूल्य नहीं रहता। किन्तु चन्दन की यह विशेषता है कि सूखने पर भी, काटे जाने पर भी, घिसे जाने पर भी, उसकी सुरभि नष्ट नहीं होती, बल्कि और भी अधिक फैलती है। आप साहित्य-कानन के चन्दन-तरु हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

सामयिक पत्र-पत्रिकाओं मे आपकी साहित्यसेवाओं पर जो सम्मतियाँ प्रकाशित होती रहती हैं, वे बताती हैं कि साहित्य-संसार आपके कार्यों को कितने आदर की दृष्टि से देखता है। साहित्य-गगन के देदीप्यमान ध्रुव-नक्षत्र के समान आप अविचल रूप से पथ-प्रदर्शन का काम करते हैं।

आप स्कूली पुस्तकों के सिद्धहस्त लेखक तथा सम्पादक हैं, इसलिये मास्टर साहब नाम अक्षरश सार्थक है। बिहार में बाल-साहित्य के जन्मदाता आप हैं, इस कार्य को आदर्श रूप में आपने ही बिहार में ला रक्खा है, इसलिये आप बाल-साहित्य-निर्माण के भी मास्टर हैं। इस प्रकार हर पहलू से देखने पर आपका 'मास्टर साहब' नाम सार्थक जँचता है।

आपने हम वर्नाक्युलर-शिक्षकों का सर ऊँचा कर दिया है। जिन वर्नाक्युलर-शिक्षकों के नाम से विश्वविद्यालयों के डिग्रीधारी नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं—जिन वर्नाक्युलर-शिक्षकों की जड खोदकर, विश्वविद्यालयों के विधाताओं ने, उनकी जगह पर 'मैट्रिक और आइ० ए० पास' लोगों को बैठा दिया है, उन्हीं वर्नाक्युलर-शिक्षकों मे एक आप भी हैं। आपने प्रमाणित कर दिखा दिया है कि वर्नाक्युलर-पास शिक्षक कितने योग्य, परिश्रमी और उन्नतिशील होते थे। समस्त शिक्षकों को आपपर गर्व है। परमेश्वर आपको शतञ्जीवी करें।

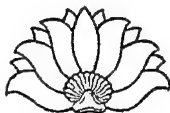

एक आदर्श महापुरुष

श्रीतुलाकृष्ण चौधरी, बादपट्टी (दरभंगा)

मुजफ्फरपुर जिले के सुरसड थाने में 'राधाउर' ग्राम प्रसिद्ध है। वहाँ बाबू महँगूजी एक बहुत उदार और धर्मात्मा पुरुष थे। उन्हीं के सुपुत्र बाबू रामलोचनशरणजी हैं। यद्यपि उनकी आर्थिक दशा बहुत अच्छी न थी, तथापि वे दीन-दुखियो की यथाशक्ति सहायता तन-मन-धन से किया करते थे। पक्के सनातनी थे वे। जनकपुर वहाँ से लगभग १६ मील की दूरी पर है। वे प्रतिमास एक-दो बार अवश्य ही जाकर बडे प्रेम से जानकी-माता के दर्शन-पूजन कर आते थे। एकादशी इत्यादि व्रत भी बडी श्रद्धा से करते थे। कुछ खेती और थोड़ा व्यापार भी करते थे। आर्थिक सकट मे रहने पर भी अपने सुपुत्र के शिक्षकों का यथासाध्य पूर्णतया सम्मान करते थे।

शरणजी बाल्यावस्था से ही बडे होनहार थे। गूढ से भी गूढ़ विषय को झट समझ जाते थे। आपके विनीत स्वभाव से शिक्षक बडे प्रसन्न रहते थे। पढ़ने में आप ऐसे सुबुद्धि निकले कि सभी शिक्षक तथा छात्र आपसे प्रसन्न रहते थे। आपमें श्रद्धा ऐसी थी कि प्रति दिन प्रातःकाल उठकर भक्तिपूर्वक शिक्षकों के पाँव छूकर प्रणाम करते थे। नित्य-क्रिया से सुचित्त हो बात-की-बात में अपना पाठ याद कर लेते थे। सहपाठियों से भी बहुत प्रेम रखते थे।

सन् १९०७ ई० में आपने फाइनल ट्रेनिङ्ग-परीक्षा प्रथम होकर पास की। अब आगे पढने की कोई भी आशा न देखकर आर्थिक सकट ने नौकरी करने के हेतु आपको बाध्य किया। आप दो-एक स्थानों में शिक्षण-कार्य करके अन्ततोगत्वा मुजफ्फरपुर पहुँचे। डिप्टी-इन्सपेक्टर ने आपकी छोटी अवस्था,

मधुरभाषिता तथा विनीत स्वभाव से मुग्ध होकर कहा कि आप अभी कैसे शिक्षक का कार्य करेंगे। शीघ्र ही आपने उत्तर दिया कि जिस प्रभु की दया से मैंने फाइनल-परीक्षा पास की है उसी की अनुकम्पा से। डिप्टी-इन्सपेक्टर बाबू भगवतनारायण बड़े हरिभक्त थे, समझ लिया कि आप अवश्य प्रभुभक्त विद्यानुरागी शिक्षक निकलेंगे। उसी समय सिमरा (मुजफ्फरपुर) के उत्साही जमींदार बाबू फतहनारायण के उद्योग से वहाँ एक मिड्ल इंगलिश स्कूल की स्थापना हुई थी। उसी में हिन्दी-अध्यापक के पद पर आप नियुक्त हुए।

उस समय नई योजना के अनुसार प्रत्येक जिला-स्कूल में एक-एक वर्नाक्यूलर-शिक्षक बहाल होने लगे। आपने भी दरख्वास्त दी। दरभंगा-जिला-स्कूल में स्थान मिल गया। आपके मिलनसार स्वभाव, कोमल भाषण तथा पढ़ाने की अपूर्व कला से सभी शिक्षक तथा छात्र आपसे प्रेम तथा सहानुभूति रखने लगे। यहाँ तक कि उस समय के प्रधान वकील बाबू हरिनंदनदासजी—जो आगे चलकर दरभंगा-जिला-बोर्ड के चेयरमैन प्रसिद्ध हुए—तथा प० गिरीन्द्रमोहन मिश्रजी वकील—जो सम्प्रति दरभंगा-राज के असिस्टेंट जेनरल मैनेजर हैं—आपपर बड़ी कृपा और स्नेह रखने लगे।

वह नई स्कीम का समय था। पुस्तक प्रकाशक केवल एक मैकमिलन ही था। दरभंगा, मुजफ्फरपुर इत्यादि नगरों में कोई भी ऐसी दूकान न थी जहाँ सुविधा के साथ पाठ्य पुस्तकें मिल सकें। केवल पटना में चार दूकानें थीं—बाबू कालीपद सरकार की, हेमचन्द वियोगी की, मथुरानाथ (एम० एन०) बर्मन की और खड्गविलास प्रेस की। पत्र लिखने पर भी वहाँ से शिक्षकों को समय पर किताबें नहीं मिलती थीं। बुकसेलरों को भी इच्छानुसार किताबें मिलना कठिन था। प्राय अधिक पुस्तकों की पढ़ाई शिक्षकों पर ही छोड दी जाती थी कि 'सिलेबस' के अनुसार पढ़ावें। फलत 'हैंडबुक' की आवश्यकता हुई। आजकल की तरह किताबों की बिक्री न थी कि जितना सरकार से मंजूर है उससे एक पाई भी अधिक मूल्य कोई नहीं ले सकता। उस समय प्रत्येक पुस्तक उचित मूल्य से एक आना अधिक खर्च देने पर बालकों को मिलती थी।

उसी समय दरभंगा में कोर्स की किताबों की एक दूकान खोलने के लिये लोगों ने उस समय के डिप्टी-इन्सपेक्टर राय राधाप्रसादजी की सेवा में प्रार्थना-पत्र भेजा। डिप्टी-साहब ने उस समय के म्युनिसिपल-इन्सपेक्टिंग पंडित लाला अम्बिकाप्रसाद को खोलने की आज्ञा दी। उन्होंने 'बुक-डिपो' नाम से लहेरियासराय में दूकान खोली।

अब प्रश्न उठा कि रुपये कैसे मिलेंगे। अन्त में कई शिक्षकों तथा

इन्सपेक्टिंग पंडितों के सहयोग से १०००) रुपये एकत्र हो गये। लालाजी ने बाकरगंज मुहल्ले में दूकान खोली। लालाजी की दूकान उत्तम संचालक के बिना डूबने लगी। सभी हिस्सेदार अपनी-अपनी पूँजी गँवा बैठे। लाचार दूकान बन्द कर लेनी पड़ी।

इस समय 'मास्टर साहब' का ध्यान पुस्तकों के लिखने की ओर लगा हुआ था। उस समय दरभंगा जिले में केवल एक यूनियन प्रेस था। उसकी छपाई अच्छी न थी। आपने बनारस में किताबें छपवाना आरंभ किया। शुभ लग्न में सोच-विचार के उपरान्त 'पुस्तक भंडार' नाम पड़ा। बाबू गंगाप्रसाद गुप्त तथा बाबू नथुनीप्रसाद मालिक संचालन के लिये रक्खे गये। बाजार में एक कामचलाऊ मकान किराये पर ले लिया गया।

ईश्वर की दया से पहले ही साल में अच्छी बिक्री हुई। अब लाभदायक किताबें प्रकाशित करने की आपकी प्रबल इच्छा हुई। दूसरे वर्ष में अपर-मिड्ल-वर्गों के लाभार्थ पुस्तकें प्रस्तुत हो गईं।

आरम्भ से ही आपकी उदारतापूर्ण नीति ने लोगों को चकित कर दिया। जिन-जिन महाशयों ने दूकान और प्रकाशन में आर्थिक सहायता की थी, उनलोगों को आपने चार-पाँच महीनों के भीतर ही हिसाब करके ४० सैकड़े मुनाफे के साथ रुपये लौटा दिये। अब, छोटी दूकान से काम चलाना कठिन हो गया। आप दूसरे मकान की खोज में लगे। दैवी विचित्रा गति। उसी समय एक बारिस्टर साहब की इच्छा मकान बेचने की हुई। झट रुपये जुटाकर आपने वह लाल कोठी खरीद ली।

आपकी प्रवृत्ति शुरू से ही साहित्य-सेवा की तरफ थी। सुविधा पाते ही कई साहित्यिक पुस्तकें निकालीं। यद्यपि उस समय साहित्यिक पुस्तकों की बिक्री उतनी न थी, तथापि आपने बड़ी हिम्मत की। अब एक सर्वाङ्गसुन्दर मासिक पत्र निकालने की धुन समाई। बड़ी सजधज के साथ आपने 'बालक' निकाला। जन्म लेते ही उसने बालकों पर अपना सिक्का जमा लिया। देश-विदेश में उसकी कीर्त्ति-पताका फहराने लगी। ईश्वर की दया से उत्साह बढ़ता ही गया। स्कूली और साहित्यिक पुस्तकों की माँग भी बढ़ती गई। 'बालक' की धूम हर तरफ थी ही। फल-स्वरूप आपने विद्यापति प्रेस की भी स्थापना की।

फिर आपने स्वजाति-सुधार के हेतु 'रौनियार-वैश्य' मासिक पत्र निकाल कर अपने समाज का भी बड़ा उपकार किया। 'मिथिला' मासिक पत्रिका निकाल कर मैथिलों के भी कृतज्ञता-भाजन हुए।

बिहार का केन्द्र पटना है। वहाँ भी आपने गोविन्दमित्र रोड के किनारे

अच्छी जमीन खरीदकर 'भंडार' की शाखा खोल दी। वह शाखा भी आशातीत सफलता प्राप्त कर रही है।

भूकम्प में 'भंडार' की उपर्युक्त 'लालकोठी' के नष्ट हो जाने पर आपने सड़क के किनारे नई आलीशान इमारत बनवाई। वह सुन्दर और दर्शनीय है—बिजली-बत्तियों से जगमगा रही है।

'भंडार' सुन्दर, 'भंडार' की पुस्तकें सुन्दर, 'भंडार' का 'बालक' सुन्दर, 'भंडार' के संस्थापक और 'बालक' के सम्पादक सुन्दर। ईश्वर देश की इस सुन्दर विभूति को कायम रक्खें।

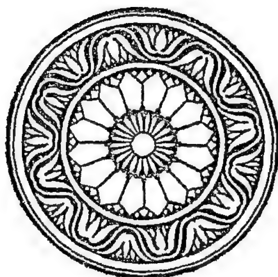

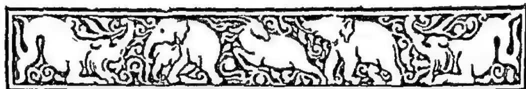

रायसाहब रामलोचनशरणजी

प्रिन्सिपल मनोरंजनप्रसाद सिंह, एम० ए०, राजेन्द्र कालेज, छपरा

आज से शायद तीस वर्ष पहले की बात है। मैं उस समय नार्थब्रुक स्कूल (दरभंगा) का विद्यार्थी था। शायद तत्कालीन पाँचवीं या चौथी कक्षा में पढ़ता था। उन्हीं दिनों मुझे शरणजी से गणित पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

गणित का मैं पूरा पंडित था। उसके अध्ययन की ओर मेरी रुचि न थी। फिर भी किसी तरह परीक्षा में निभा ले जाता था। इसका नतीजा यह हुआ कि मैंने आइ० ए० तक गणित का पिंड नहीं छोड़ा।

शरणजी में पढ़ाने की कुछ अजीब प्रतिभा थी। उनका तरीका कुछ इतना सुलझा हुआ होता था कि उनसे पढ़ने में तबीयत लगती थी। इतना नीरस विषय भी उनके हाथ में पड़कर सरस हो जाता था।

किन्तु, क्लास में चुपचाप जी लगाकर कुछ सुन लेना और बात है, और घर से पाठ बनाकर ले आना कुछ और। अस्तु, मैं अक्सर उसमें पिछड़ जाता था। वक्त पर अपनी कापी 'मास्टर साहब' को न दे पाता था।

तबतक मुझे यह पता नहीं था कि किसी के हस्ताक्षर की नकल करने को ही जालसाजी कहते हैं और यह बहुत बड़ा अपराध है, जिसके लिये कठिन-से-कठिन दंड का विधान है। इसीसे मैं ठाट के साथ अपनी कापी के पिछले पन्नों पर 'मास्टर साहब' के दस्तखत की नकल कर दिया करता था।

एक बार कापी मास्टर साहब के यहाँ पहुँची। उन्होंने मेरी वह जालसाजी देखी, अथवा यों कहिये, पकड़ ली। सीधे हेडमास्टर साहब के पास मेरी

जालसाजी पेश कर दी। मेरी तलबी हुई। मैं ग्यारह-बारह वर्ष का बालक, कुछ परेशान-सा, डरता-काँपता, हेडमास्टर के सामने पहुँचा।

"क्या तुमने यह दस्तखत बनाया है ?" "हाँ।"

"जानते हो, यह कितना बड़ा कसूर है ? इसके लिये तुम स्कूल से निकाल दिये जा सकते हो।"

"नहीं सर, यह तो मैं नहीं जानता। लेकिन कसूर है, यह तो जरूर मानता हूँ।"

"हथेली सामने करो।" खजूर की छड़ी सप-सप दो बार हथेली पर लगी। मैं तिलमिला गया। आँसू निकल पड़े। किन्तु चिल्लाया नहीं।

मैंने कभी मार नहीं खाई थी—वही प्रथम और वही अन्तिम थी।

किन्तु, इस मार के कारण मास्टर साहब के प्रति मेरे भक्ति-भाव में कोई कमी नहीं हुई।

मुझे याद है। वे नार्थब्रुक स्कूल से बदलकर कहीं जा रहे थे। अन्यान्य विद्यार्थियों के साथ, उस दुपहरी में, मैं भी उन्हें पहुँचाने गया था। जब ट्रेन खुली और वे आँखों से ओझल हुए, मेरी आँखों से आँसू गिर रहे थे।

बहुत दिन बीत गये। कहाँ मास्टर साहब, कहाँ मैं। हाँ, काफी दिनों के बाद मैंने उनकी कई रचनाएँ देखीं। उस समय उनकी पुस्तकों पर उनके नाम के साथ 'बिहारी' शब्द भी छपा था।

बरसों बाद उनका 'बालक' निकला। मेरे मित्र श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी उसके सम्पादक हुए। मैं यदा-कदा उसमें कुछ लिखता रहा। इस प्रकार एक बार फिर मास्टर साहब से मेरा सम्बन्ध स्थापित हुआ।

धुँधली-सी स्मृति है। शायद सन् १९२८ में पं० पद्मसिंह शर्मा के सभापतित्व में अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन मुजफ्फरपुर में हुआ। वहीं उनके दर्शन हुए थे।

संयोगवश, सन् १९३५ में, मेरे बड़े साले डाक्टर सत्यनारायण प्रसाद वर्मा दरभंगा के मेडिकल स्कूल में वहाँ के डिप्टीसुपरिंटेंडेंट होकर गये। उसी सिलसिले में मुझे कई बार दरभंगा जाना पड़ा। उसी समय फिर मुझे मास्टर साहब के निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भाई शिवपूजनसहाय जी के वहाँ रहने से और भी बार-बार जाने का मौका मिला। साहित्यिक चर्चा में न जाने कितनी दुपहरियाँ बीतीं।

मैं तबतक बदरीनाथ की यात्रा कर चुका था। उस यात्रा के विवरण 'विशाल-भारत' (कलकत्ता) तथा 'सनातन धर्म' (काशी) में प्रकाशित हो चुके थे।

उन्हें पुस्तक-रूप में प्रकाशित करने के लिये मास्टर साहब सहर्ष तैयार हो गये। शिवपूजनजी के तत्त्वावधान में काफी सजधज से सचित्र पुस्तक निकली—'उत्तराखंड के पथ पर।'

कुछ दिन बाद वहीं से मेरा पद्य-संग्रह 'गुनगुन' भी निकला। दूसरे पद्य-संग्रह 'संगिनी' की पांडुलिपि भी वहीं पड़ी है।

जब मेरी किताबें छपीं, और मुझे रुपयों की आवश्यकता पड़ी, मास्टर साहब ने मुझे मदद भी दी, जिससे मैं उनकी सहृदयता का कायल हो गया, क्योंकि वे रुपये मुझे ऐसे मौके पर मिले थे जब मुझे उनकी बहुत आवश्यकता थी।

मास्टर साहब से आज भी मेरा वही गुरु-शिष्य का सम्बन्ध है। आज भी जब उनके दर्शन होते हैं, पैर छूकर ही उन्हें प्रणाम करता हूँ। उनका सौम्य मुखमंडल, सरल स्वभाव, सदय हृदय, सहज स्नेह तथा प्रेमपूर्ण व्यवहार मैं कभी भूल नहीं सकता। आज उनकी स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर मैं उनके दीर्घ जीवन की प्रार्थना करता हुआ उनके चरणों पर आदर तथा श्रद्धा से नत होता हूँ।

उनका 'पुस्तक भंडार' विहार के लिये गौरव की चीज है। उसने हिन्दी की जितनी सेवा की है और कर रहा है, उतनी विरलों ने ही की है। उसने कितनी ही सुन्दर, उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित की हैं। उसका 'बालक' सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार के समान अक्षय बचपन का वरदान लेकर आया है।

यह 'पुस्तक-भंडार' अक्षय हो। यह 'बालक' अमर हो।

साहित्य-गगन के निष्कलंक चन्द्र

श्रीशिवनारायण सिंह, 'साहित्यरत्न'; मधुबनी (दरभंगा)

कथन है—"बडे न हूजे गुनन बिन, गुन बिन मान होय।" तात्पर्य यह है कि गुण-सम्पन्न होने ही से ससार मे मनुष्य मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करता है तथा बड़ा समझा जाता है।

आज हिन्दी-ससार मे 'भडार' की तूती बोल रही है—साहित्य के रगमच पर उसका ललित अभिनय आज लोग बडे चाव से देख रहे हैं। विद्यापति प्रेस का प्रकाश, महाकवि विद्यापति की कमनीय कविता की छटा के सदृश, हिन्दी-जगत् को आलोकित कर रहा है। आज ये दोनों उन्नतिशील सस्थाएँ किस साहित्य-सेवी के नयनो को अनुरजित नहीं कर रही हैं—किस साहित्यिक की आशा-लता के ये मनमोहक प्रसून नहीं बन रहे हैं? अवश्यमेव आज का साहित्य-सागर इन ज्योत्स्नापूर्ण युगचन्द्रों का अवलोकन कर आनन्द की लहरियाँ उछाल रहा है।

इन लोकोपकारी सस्थाओं के सस्थापक श्रीयुत रामलोचनशरणजी बिहारी को आज के शिक्षित-समाज का कौन-सा व्यक्ति नहीं जानता—इन्हें कौन आज आदर की दृष्टि से नहीं देखता—इन्हें आज बडा कौन नहीं मानता। क्यों? इसलिये कि इनमें बडप्पन के बहुत-से गुण विद्यमान हैं—इसलिये कि प्रतिष्ठा प्राप्त करने के योग्य इन्होंने काफी तपस्या कर ली है।

मैं इन्हें उस समय से जानता हूँ जिस समय ये दरभगा-जिला-स्कूल मे १५) मासिक वेतन पर शिक्षण-कार्य करते थे। पश्चात् मैंने देखा कि इन्होंने साहित्य-पथ पर किस प्रकार अपना पहला कदम रक्खा।

और मिठास का रहता आया है। ये स्वभावत किसी को नाखुश होकर नहीं जाने देते। यह व्यापार की उन्नति के लिये एक बहुत ही मार्के की बात है।

गोस्वामीजी ने ठीक ही कहा है—"पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जे आचरहिं ते नर न घनेरे।" सादगी का उपदेश प्राय सभी जन दिया करते हैं और 'सादा जीवन उच्च विचार' का ढिंढोरा पीटा करते हैं, किंतु स्वय इसको व्यवहार में नहीं लाते। रुपये-पैसे होते ही वे भोगविलास के दास बन जाते हैं, किन्तु धन्यवाद है इनको कि लाखों की सम्पत्ति के मालिक होने पर भी विषयोपभोग की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। न पान, न सिगरेट, न सिनेमा, न सिमला-मसूरी, सादी पोशाक, सादा भोजन, जो तब रहा, वह अब भी है। ये मोटर रखने की शक्ति प्राप्त कर चुकने पर भी पैदल चलकर काम करने में ही गौरव समझते हैं। मुझे तो ऐसा भासित होता है कि ये 'भडार' को अपनी निजी सम्पत्ति नहीं समझते, वरन् इसे साहित्य-ससार की सार्वजनिक सम्पत्ति मानते हैं। ईश्वर की दी हुई धरोहर सम्पत्ति का अपनेको पहरेदार समझते हैं।

कोई कह सकता है कि ये कजूसी के कारण सादगी-पसद हैं, किन्तु यह बात निराधार है। कारण, अतिथि-सेवा मे ये कम पैसा नहीं खर्च करते। जो भी कोई 'भडार' का अतिथि होता है, वह सतुष्ट होकर अपने घर जाता है। जिन दिनों मैं खड्गविलास प्रेस (पटना) के सम्पादकीय विभाग में कार्य करता था, मुझे प्राय बाहर प्रेस के कामों से जाना पड़ता था। मैं जहाँ-जहाँ जाता वहाँ-वहाँ मैं इनके सद्व्यवहार और आतिथ्य-सत्कार की भूरि-भूरि प्रशसा सुनता। मैं कह सकता हूँ, और जोर देकर कह सकता हूँ, कि आतिथ्य मे 'भडार' की जो मर्यादा है, वह बिहार की और किसी संस्था को नसीब नहीं।

जो व्यक्ति बडे-से-बड़ा काम करके भी अहम्मन्य नहीं, वही कर्मयोगी और सन्त की उपाधि प्राप्त करता है। जब कभी मेरे साथ इनकी बातें हुईं, ये इस ऐश्वर्य को भगवान् का प्रसाद और उनकी कृपा ही बताते रहे। इन्होंने कभी न कहा कि मैंने यह किया और वह किया और आगे ऐसा कर डालूँगा। सचमुच यही भगवान् के भक्तो के लक्षण हैं।

एक पेशे के दो व्यक्तियों की मति कभी नहीं मिलती। एक दूसरे से द्वेष रखते हैं। किन्तु इसे इनमें लागू होते मैंने नहीं पाया। ये स्वय लेखक हैं, किन्तु इन्होंने किसी भी लेखक से द्वेष न रक्खा, वरन् इनको आगे बढ़ने के लिये प्रोत्साहित किया—केवल वचन से ही नहीं, अनुकूल साधन प्रदान करके भी।

जिन दिनों मैं, १९१५ ई० में, दरभगा-कलक्टरी में एप्रेंटिस हुआ, मेरी आकाक्षा लेखक होने की थी। किन्तु—"मति अति नीच ऊँच रुचि आछी, चहिय

अमिय जग जुरै न छाँछी।" १९२२ में मैं नौकरी छोड़कर असहयोग-आन्दोलन में शामिल हुआ। मेरे हृदय में आन्दोलन-सम्बन्धी बातें घर कर गई थीं और भीतर-ही-भीतर मुझे प्रेरित कर रही थीं कि मैं उन्हें पुस्तकाकार में प्रकट करूँ। मैंने लिख डाला 'स्वराज-दर्शन' नाटक। दरभंगा के प्रथम असहयोगी नेता बाबू ब्रज-किशोर प्रसादजी ने इसको देखा और कहा कि बाबू रामलोचनशरणजी से भाषा के लिये एक बार दिखा लीजिये। मैंने पुस्तक इन्हें दे दी। कुछ दिनों बाद इन्होंने पुस्तक मुझे लौटा दी और कहा—"भाव बड़े भव्य हैं, पर भाषा-सुधार की थोड़ी आवश्यकता है।" इनका यह कथन मेरे लिये प्रोत्साहन का काम कर गया। इस 'स्वराज्य-दर्शन' को मैंने तीन बार लिखा और मिटाया। पीछे 'समाज-दर्शन' नाटक लिखा। क्रमशः डेढ़ दर्जन से ऊपर पुस्तकें लिख डालीं, जिनमें से चौदह पुस्तकें छप चुकी हैं। इसके बाद मैं खड्गविलास प्रेस के सम्पादकीय विभाग में स्थान पा सका। यदि ये मुझे प्रथम ही निरुत्साह कर देते, तो मैं इन पंक्तियों तक के लिखने में भी असमर्थ रह जाता। मैं इनका आजीवन आभारी रहूँगा।

महात्मा तुलसीदास के निम्नलिखित पदों को इन्होंने अक्षरशः सार्थक कर दिखाया है—

"जिमि सरिता सागर महँ जाहीं
जद्यपि ताहि कामना नाहीं
तिमि सुख - सम्पति बिनहिं बुलाये
धर्मसील पहँ जाहिं सुभाये"

और भी—

"प्रभुता को सबकोउ चहै, प्रभु को चहै न कोय
जो तुलसी प्रभु को चहै, आपुहि प्रभुता होय"

तात्पर्य यह कि धर्मशीलता ही सुख-सम्पत्ति की जड़ है। पूर्व जन्म अथवा इस जन्म में जिसने धर्म का आश्रय ग्रहण किया है, उसी के सुखी होने का अवसर प्राप्त होता है। सब धर्मों का मूल भगवत् शरणागति है। जो प्रभु की कृपा प्राप्त करता है, उसी में प्रभुता आ जाती है। यही सभी शास्त्रों और सन्तों का मत है। मैं देखता हूँ कि शरणजी में श्रीभगवान् की भक्ति अटूट है। तभी तो विषय-वासनाएँ इनके पास फटकने नहीं पातीं—विषयी लोग इनके पास बैठने नहीं पाते। इनकी संगति रहती है पंडितों, साधुओं और सदाचारियों की। इनके 'भंडार' में नियमित रूप से श्रीभगवान् का यश-कीर्तन होता है। यह सच्ची उन्नति का पथ प्रदर्शक है। इनका धन बहुत-कुछ धार्मिक कार्यों में ही व्यय

होता है। ये धार्मिक आचरणों में ही समय भी लगाते हैं। इनकी जबतक ऐसी निष्ठा रहेगी तबतक ये अनवरत उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होते चले जायँगे।

संसार में वही बड़ा और वही सज्जन है, जिसकी प्रशंसा बड़े एवं सज्जन लोग किया करते हैं, उसमें भी ऐसे सज्जन जो उस व्यक्ति के प्रतिस्पर्द्धी हों। खड्गविलास प्रेस के दिवंगत स्वामी श्रीमान् रायबहादुर रामरणविजयसिंहजी का बड़प्पन और उनकी सुजनता उनके प्रेस के समान ही बिहार के कोने-कोने में प्रख्यात है। मैं कई बार उनके मुँह शरणजी की प्रशंसा सुनकर आश्चर्य-चकित रह जाता। क्यों न हो—"सज्जन सुकृत-सिंधु सम कोई, देखि पूरविधु बाढ़इ जोई।"

समुचित सिंहावलोकन करने से यही ज्ञात होता है कि शरणजी दैवी सम्पदा-सम्पन्न व्यक्ति हैं। इनसे संसार का अपूर्व कल्याण होने की सम्भावना है। ये औरों के लिये आदर्श स्वरूप हैं। ईश्वर करे, ये दीर्घजीवी हों—साहित्य-गगन के निष्कलंक शरच्चन्द्र-स्वरूप हों—अपनी विमल चन्द्रिका से देश का अविद्यान्धकार दूर करते रहें। एवमस्तु।

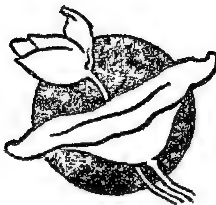

साहित्य-सेवा का बिहारी आदर्श

श्रीगोविन्दनारायण सोमण, काशी

मैं जब छ-सात वर्ष का था तभी से श्री लक्ष्मीनारायण प्रेस में जाया करता था, क्योंकि मेरे पिता (श्रीनारायण राजाराम सोमण) वहाँ उस समय सहायक मैनेजर थे। मैंने कई बार वहाँ बाबू रामलोचनशरणजी (मास्टर साहब) को देखा था। अचानक एक बार वहाँ मैंने एक पुस्तक पर इनका नाम 'रामलोचनशरण बिहारी' देखा। इस 'बिहारी' का आशय जानने की लालसा उत्पन्न हुई।

श्रीमान् मास्टर साहब एक देहाती मास्टर का वेष बनाये वहाँ पहुँचा करते थे, अतएव इनपर किसी की नजर न थी। ये एक साहित्यिक तपस्वी की तरह एक कोने में बैठे प्रूफ वगैरह देखा करते थे। एक बार कुछ साहित्यिकों में 'बिहारी हिन्दी' पर बात छिड़ी। अब श्रीमान् मास्टरसाहब का ध्यान उस ओर आकृष्ट हुआ। इन्होंने बिहार का पक्ष लिया। अब लोगों का ध्यान भी इनकी ओर आकृष्ट हुआ। एक ने पूछा—"जिस बिहार की आप हिमायत करते हैं उसमें गद्य-लेखक हैं कितने? क्या उन्हीं के लेखों से कोई अच्छा संग्रह तैयार हो सकता है?"

बात खतम हुई। ये काशी से लौटे। बिहारी लेखकों के गद्य-लेखों के दो संग्रह, 'गद्य-चन्द्रोदय' और 'गद्य चन्द्रिका' के नाम से, कुछ ही दिनों में तैयार किये। इन पुस्तकों को देख साहित्यिक मंडली ने बिहार का गौरव समझा। उसी दिन से मास्टर साहब अपने नाम के आगे 'बिहारी' शब्द जोड़ने लगे। यह घटना आज से कोई बीस बरस पहले की है।

इनकी उस जान पहचान से मेरी श्रद्धा भी इनकी ओर बढ़ती गई। कभी-कभी बनारस में इनसे भेंट हो जाया करती थी। बाद मुझे पता लगा कि पूज्य पिताजी

अब लहेरियासराय चलकर 'भंडार' में काम करेंगे। उस समय मेरे आनन्द की सीमा न रही। मैं भी पिताजी के साथ तेरह-चौदह वर्ष की अवस्था में यहाँ आया। यहाँ आने पर मुझे मास्टर साहब के निकट रहने का तथा इनके रोज के कार्य-क्रम के देखने का मौका मिला। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। खूब तड़के उठना, दूर तक टहलना, पूजा-पाठ, सादा वेष और भोजन, किसी प्रकार का व्यसन नहीं। ये बातें मेरे लिये आश्चर्यजनक ही तो थीं, क्योंकि मैं शहर का रहनेवाला—शहर के रईसों की दैनिक कार्यवाही देखने का मौका मुझे मिल जाता था, पर यहाँ इनकी ऐसी सादगी देखकर मैं मानों किसी दूसरी ही दुनिया मे आ गया हूँ, ऐसा मालूम हुआ। इनका मेरे ऊपर अत्यन्त स्नेह था। ये और इनके परिवारवाले मुझे बहुत प्यार करते रहे। यहाँ मुझे घर का सुख मिला।

मैं काशी का रहनेवाला ही हूँ, और पढ़ने के सिलसिले में प्रयाग में भी कई साल बिता चुका हूँ। ऐसी हालत में मुझे वहाँ के साहित्य-सेवियों के देखने का मौका मिला है। काशी में तो कई साहित्यिकों से मेरी जान-पहचान भी है। इसी-लिये मैं उधर के लेखकों के विषय मे थोड़ा-बहुत जान सका हूँ। विहार के लेखकों को भी देखने तथा उनके सान्निध्य में रहने का मौका मिला है। इन दोनों की तुलना करते हुए मुझे एक बात का बड़ा आश्चर्य होता है कि यहाँ के लोग इतने विद्वान् होते हुए भी अन्य प्रान्तवालों की तरह प्रदर्शन नहीं करते। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि वे आडम्बरहीन होते हैं और आत्मविज्ञापन करने की प्रवृत्ति उनमें नहीं होती। वे चुपचाप काम करना जानते हैं और इसलिये उनके काम अधिकतर ठोस हुआ करते हैं।

मास्टर साहब देश-भर के—विशेषतः विहार के—साहित्यिकों को आश्रय देकर उनकी मूक सेवा को आगे बढ़ाते आये हैं, और आज भी बढ़ा रहे हैं।

सफल जीवन की एक झाँकी

श्रीपरमेश्वरसिंह, सिवहर (मुजफ्फरपुर)

उन्नत ललाट, प्रशस्त मुख-मंडल, जिसपर तेज झलक रहा हो। बड़ी-बड़ी आँखें, जिनसे करुणा और प्रेम उमड रहा हो। गौर वर्ण, कांतिमय स्वरूप। यह शब्द-चित्र है स्वनामधन्य 'मास्टर साहब' का।

बिहार के किसी कोने में, शिक्षित-समुदाय में, आप चले जाइये, 'मास्टर साहब' कहते ही लोगों के सामने दया तथा त्याग की विमल मूर्त्ति आ जायगी।

'मास्टर साहब' क्या हैं, किन छोटे-बड़े तत्त्वों से उनका निर्माण विधाता ने किया है, यह समझने के लिये थोड़ा समय लगाना होगा। वे वह क्षुद्र नदी नहीं हैं, जो थोड़े ही जल में इतराने लगती है, वे हैं गम्भीर समुद्र, जिसकी थाह लेनेवाला लाख में एक होता है।

लगभग पाँच-छः साल से मैं उनकी संगति से लाभान्वित हो रहा हूँ। उनके सम्पर्क में आकर बहुत-कुछ सीखा। उनसे मुझे प्रेरणा मिली है। फिर भी मेरा यह दावा नहीं कि उनकी विशालता, उनकी ऊँचाई, तक पहुँच सका हूँ—उसे छू सका हूँ।

उन्होंने बिहार में शिक्षा का व्यापक प्रचार कर सुकीर्त्ति स्थापित की है। अपनी विविध सेवाओं के द्वारा बिहार का मस्तक ऊँचा किया है। उच्चकोटि के साहित्यिक-ग्रंथ प्रकाशित कर बिहारियों के चेहरे की लाली रख ली है।

उनके जीवन को मैं अपने परीक्षण, निरीक्षण, अनुभव एवं अध्ययन के आधार पर तीन भागों में विभक्त कर रहा हूँ। पहला भाग—शिक्षा प्रचारक या शिक्षा-शास्त्री, दूसरा—समाज सेवक, तीसरा भगवद्भक्त।

शिक्षा-शास्त्री और शिक्षा-प्रचारक की हैसियत से छोटे बच्चों के लिये सरल

श्रीरामलोचनशरणजी की फूफी

श्रीजगत्तारणप्रसाद

(   )

श्रीरामलोचनशरण की दानशीलता

श्रीनथुनीप्रसाद मालिक, मैनेजर—'पुस्तक भंडार'

मुझ-जैसा साधारण योग्यता का मनुष्य आज एक भारत-विख्यात संस्था के मैनेजर पद पर आसीन है, इसका सारा श्रेय मास्टर साहब को है, जिन्होंने मुझे अपने लड़के की तरह पाल पोसकर और सिखा-पढ़ाकर आदमी बनाया है।

मेरे पिताजी की आर्थिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। मास्टर साहब की कृपा दृष्टि से मेरा भाग्योदय हुआ। यदि 'भंडार' की छत्रच्छाया न होती तो प्रायः शिक्षित समाज से सम्पर्क का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त न होता। मेरे लड़के भी उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, यह 'भंडार' का ही प्रसाद है।

'पुस्तक-भंडार' के खुलने के छ महीने बाद से ही मैं मास्टर साहब की सेवा में नियुक्त हो गया। उसी समय से मैं देखता आ रहा हूँ, 'भंडार' से छात्रों का असीम उपकार हुआ है। मास्टर साहब की लिखी हुई पाठ्यपुस्तकें छात्रों और शिक्षकों के लिये वरदान सिद्ध हुईं। शुरू से ही शिक्षकों, छात्रों तथा ग्राहकों के प्रति 'भंडार' का व्यवहार इतना सुन्दर रहा है कि वे सब-के सब मुग्ध रहते हैं। मास्टर साहब की बराबर यही ताकीद रहती है कि 'भंडार' में समागत किसी व्यक्ति के सत्कार में कोई त्रुटि न होने पावे। 'भंडार' के आत्मीयतापूर्ण व्यवहार से सभी आगन्तुक सज्जन सन्तुष्ट होकर ही जाते हैं। जब 'भंडार' की आर्थिक अवस्था आज की तरह उन्नत नहीं थी तब भी, जब कोई साहित्यिक व्यक्ति 'भंडार' में पधारने की कृपा करते, मास्टर साहब का प्रेम देखने लायक होता। वे स्वयं खड़े हो उनके स्नान, जलपान, भोजन और विश्राम की व्यवस्था करते तथा हमलोगों को आदेश देते—"देखो, ये जबतक रहें, इनकी सेवा में किसी तरह की त्रुटि न होने पावे।"

यह कहते हुए मुझे गर्व का अनुभव होता है कि 'भंडार' साहित्यिकों के लिये सचमुच विश्रामागार स्वरूप है। एक बार पूज्यवर आचार्य द्विवेदीजी ने अपने एक पत्र में लिखा था—"बिहार में साहित्यिकों के लिये ठहरने की कोई जगह है,

श्रीरामलोचनशरणजी की फूफी

श्रीजगत्तारणप्रसाद
(श्रीरामलोचनशरणजी का भांजा)

श्रीरामलोचनशरण की दानशीलता

श्रीनथुनीप्रसाद मल्लिक, मैनेजर—'पुस्तक भंडार'

मुझ-जैसा साधारण योग्यता का मनुष्य आज एक भारत-विख्यात संस्था के मैनेजर पद पर आसीन है, इसका सारा श्रेय मास्टर साहब को है, जिन्होंने मुझे अपने लड़के की तरह पाल पोसकर और सिखा-पढ़ाकर आदमी बनाया है।

मेरे पिताजी की आर्थिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। मास्टर साहब की कृपा-दृष्टि से मेरा भाग्योदय हुआ। यदि 'भंडार' की छत्रच्छाया न होती तो प्रायः शिक्षित समाज से सम्पर्क का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त न होता। मेरे लड़के भी उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, यह 'भंडार' का ही प्रसाद है।

'पुस्तक भंडार' के खुलने के छः महीने बाद से ही मैं मास्टर साहब की सेवा में नियुक्त हो गया। उसी समय से मैं देखता आ रहा हूँ, 'भंडार' से छात्रों का असीम उपकार हुआ है। मास्टर साहब की लिखी हुई पाठ्यपुस्तकें छात्रों और शिक्षकों के लिये वरदान सिद्ध हुईं। शुरू से ही शिक्षकों, छात्रों तथा ग्राहकों के प्रति 'भंडार' का व्यवहार इतना सुन्दर रहा है कि वे सब-के-सब मुग्ध रहते हैं। मास्टर साहब की बराबर यही ताकीद रहती है कि 'भंडार' में समागत किसी व्यक्ति के सत्कार में कोई त्रुटि न होने पावे। 'भंडार' के आत्मीयतापूर्ण व्यवहार से सभी आगन्तुक सज्जन सन्तुष्ट होकर ही जाते हैं। जब 'भंडार' की आर्थिक अवस्था आज की तरह उन्नत नहीं थी तब भी, जब कोई साहित्यिक व्यक्ति 'भंडार' में पधारने की कृपा करते, मास्टर साहब का प्रेम देखने लायक होता। वे स्वयं खड़े हो उनके स्नान, जलपान, भोजन और विश्राम की व्यवस्था करते तथा हमलोगों को आदेश देते—"देखो, ये जबतक रहें, इनकी सेवा में किसी तरह की त्रुटि न होने पावे।"

यह कहते हुए मुझे गर्व का अनुभव होता है कि 'भंडार' साहित्यिकों के लिये सचमुच विश्रामागार-स्वरूप है। एक बार पूज्यपाद आचार्य द्विवेदीजी ने अपने एक पत्र में लिखा था—"बिहार में साहित्यिकों के लिये ठहरने की कोई जगह है,

तो वह है श्रीयुत रामलोचनशरणजी का पुस्तक-भंडार।" वास्तव में 'भंडार' शुरू से ही साहित्यिकों का आतिथ्य भवन रहा है। जो कोई बाहर के विद्वान् बिहार में पधारते हैं, वे प्राय 'भंडार' के ऊपर अवश्य ही कृपा करते हैं। 'भंडार' को जिन साहित्यिक विद्वानों का सम्मान करने अथवा उनकी कृपा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हो सका है, उनमें कुछ व्यक्तियों के नाम ये हैं—आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रसादजी, प्रेमचंदजी, कविवर मैथिलीशरण गुप्त, कविवर हरिऔधजी, पं० अक्षयवट मिश्र, महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा, डाक्टर सर गंगानाथ झा, राय कृष्णदासजी आदि। इनके अतिरिक्त पूज्य महात्मा गांधी, डा० राजेन्द्र प्रसाद, डा० सच्चिदानन्द सिंह, काका कालेलकर, पं० हरिभाऊ उपाध्याय, स्वामी भवानीदयाल सन्यासी आदि देशसेवकों का आशीर्वाद तथा सहानुभूति प्राप्त करने का सौभाग्य भी 'भंडार' को मिला है। बिहार के साहित्यानुरागी नरेशों में दरभंगा के महाराजाधिराज, रामनगराधीश श्रीमान् राजा विश्वेश्वर सिंह बहादुर, श्रीनगराधीश कुमार गंगानन्दसिंह, सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह, नरहनाधीश श्रीमान् कामेश्वरनारायण सिंह तथा सुरसंड के श्रीमान् चंद्रेश्वरप्रसादनारायण सिंह का विशेष प्रेम तथा अनुग्रह इस 'भंडार' पर है। और, यह सब सौभाग्य मास्टर साहब की उस प्रतिभा एवं उदारता का परिणाम है जो उन्हें ईश्वर ने विशेष रूप से दी है।

मास्टर साहब की गणना उन व्यक्तियों में है जो रुपये की महत्ता सिर्फ उसके सदुपयोग में समझते हैं। समय समय पर, प्रकट वा अप्रकट रूप से, उन्होंने जितने व्यक्तियों और संस्थाओं की सहायता की है, उन सबका यदि नामोल्लेख भी किया जाय तो एक बड़ा-सा पोथा तैयार हो जायगा। कई हजार रुपये गुप्त दान के खाते में मेरे ही हाथ से दर्ज हैं।

हर साल दिसम्बर-जनवरी में 'भंडार' में गरीब विद्यार्थियों और उनके अभिभावकों का मेला सा लग जाता है। किसी को इतिहास चाहिये, किसी को भूगोल, किसी को व्याकरण, किसी को रीडरें। मैं उनका चिट्ठा देखकर परेशान रहता हूँ। लेकिन उस चिट्ठे पर मास्टर साहब की मुहर देख किसी को विमुख भी नहीं कर सकता। परिणामत हर साल हजारों किताबें 'फ्रीलिस्ट' में चढ़ जाती हैं इस तरह 'भंडार' के कई हजार रुपये खैरात निकल जाते हैं। किन्तु, असहाय निःसहाय छात्रों के हृदय से निकले हुए आशीर्वाद उन रुपयों से कहीं अधिक मूल्य रखते हैं

सुयोग्य छात्रों के लिये तो मास्टर साहब कल्पवृक्ष के समान हैं। आज तक उन्होंने कितने ही छात्रों को हर तरह की सहायता देकर सुयोग्य बनाया है पूरा ब्योरा देना तो कठिन है, पर प्रोफेसर रामलोचन शर्मा 'कंटक', प्रोफेसर हरि

मोहन झा, पं० अभिराम झा ज्योतिषाचार्य, श्रीनागेन्द्र कुमर बी ए आदि उन्हीं की कृपा से उच्च शिक्षा प्राप्त कर सके हैं। इन कामों में भी बीस हजार रुपये लगे होंगे।

देश-सेवा के कार्य में भी मास्टर साहब सदा अग्रसर रहते हैं। कितने लोग यश कमाने के लिये ढिंढोरा पीटकर दान देते हैं। आप उन व्यक्तियों मे नहीं हैं। आप सच्चे दानवीर हैं। समय पड़ने पर हजारों रुपये दे डालते हैं और उसके लिये धन्यवाद तक लेना पसंद नहीं करते। रामगढ़ की ५३ वीं कांग्रेस के समय 'भंडार' में पूज्य राजेन्द्र बाबू के पदार्पण करते ही आपने तुरत एक हजार का चेक काटकर सादर अर्पित कर दिया।

सम्राट् पंचम जार्ज की सिलवर जुबली तथा सम्राट् षष्ठ जार्ज के राज्याभिषेक के अवसरों पर आपने जी खोलकर रुपया खर्च किया। 'बालक' के विशेषांक निकाले। उसका बिना मूल्य वितरण किया गया। स्वर्गीय सम्राट् की जीवनी प्रकाशित कर जनता में बाँटी गई। जुबली के उत्सव-विषयक फिल्म दिखलाने के लिये जगह-जगह प्रचारक भेजे गये। इन सब कामों में भी 'भंडार' के बीस हजार रुपये से कम नहीं लगे होंगे।

बिहार-सरकार के साक्षरता-आन्दोलन में आपने अपने नवाविष्कृत सुन्दर वर्णमालाचार्ट की एक लाख प्रतियाँ छपवाकर भिन्न भिन्न शिक्षा-केन्द्रों में मुफ्त बाँटी थीं। इतना ही नहीं, निरक्षरों के लिये उर्दू, हिन्दी, बँगला, संथाली आदि भाषाओं में रीडरें भी तैयार कर हजारों की संख्या में मुफ्त बाँटी थीं। इस काम में भी लगभग पचीस हजार रुपये लगे होंगे।

स्वजातीय और सामाजिक हित के कार्यों मे भी आप सदा अपनी उदारता का परिचय देते रहे हैं। आज रौनियार-सभा को हजार रुपये दे रहे हैं, तो कल कीर्त्तन-समाज के लिये भवन बनवा रहे हैं। सार्व-जनिक संस्थाओं के लिये आप मानो कामधेनु हैं। कभी साहित्य-सम्मेलन के लिये चुपके से चेक काटकर भेज देते हैं, कभी किसी राष्ट्रीय संस्था के लिये। आपको विश्वास-भर हो जाय कि संस्था ठोस काम कर रही है और चंदे का सदुपयोग होगा, फिर तो चेक काटते देर नहीं होती।

आपका विद्यापति प्रेस तो मानो सदाव्रत के लिये ही खुला है। कभी किसी गोशाला के लिये मुफ्त फार्म छप रहा है, तो कभी किसी अनाथालय के लिये। कभी 'मिथिला' पत्रिका छप रही है, तो कभी 'रौनियार वैश्य'। प्रेस भी समझता है कि इनका बिल कभी चुकता होनेवाला नहीं। ऐसा धर्म-खाता रोज ही खुला रहता है।

आपने मिथिला और मैथिली के लिये जो ठोस काम किये हैं, वे भी उपेक्षणीय नहीं हैं। मिथिलाक्षर के टाइप बनवाकर, मैथिली में पुस्तकें लिखवाकर,

'मिथिला' पत्र निकालकर, महाकवि विद्यापति की प्रतिभा के चमत्कार को जनता के समक्ष लाकर, मैथिली-साहित्य की वृद्धि में योग देकर मिथिला का जो गौरव आपने बढाया है, वह विस्मरणीय वस्तु नहीं है। इतना ही नहीं, मिथिला की जनता के उपकारार्थ धर्मशास्त्र, कर्मकाड आदि की सस्ती पोथियाँ छपवाकर आपने जो पुण्य कमाया है, वह भी थोडा नहीं है। आपके परिचित ब्राह्मण तो 'भडार' के छपे हुए पचाग पर अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। इस तरह 'भडार' के कई हजार रुपये प्रति वर्ष परमार्थ में लग जाते हैं।

आप साहित्यिक प्रकाशन में शूर हैं। स्कूली किताबों से जो आय होती है, उसका बहुत बडा अश साहित्यिक ग्रन्थों के प्रकाशन में ही जाता है। यद्यपि उन ग्रन्थों से आर्थिक लाभ नहीं है, प्रत्युत व्यावसायिक दृष्टि से हानि ही है, तथापि आपका विचार है कि साहित्य-सेवा द्रव्य-लाभ से कहीं श्रेष्ठ है।

अगर सच पूछा जाय तो 'भडार' की आय का मूल स्रोत आपकी अपनी ही लेखनी है। हिसाब लगाने से मालूम होता है कि आपकी लिखी 'पत्र-चद्रिका' पन्द्रह लाख से अधिक बिकी है। 'भारत की ऐतिहासिक कहानियाँ' भी पन्द्रह लाख से कम नहीं बिकी। आपकी जितनी भी रचनाएँ हैं, वे लोकप्रियता में अपना सानी नहीं रखती। आपकी लिखी 'मनोहरपोथी' आज देश के बच्चों का कंठहार हो रही है।

कभी-कभी आप ऐसी पुस्तकें निकालने लगते हैं, जो शुरू मे अनावश्यक प्रतीत होती हैं। जैसे—सथाली-प्राइमर, मुडा-उरॉव-गीत। आज से छ-सात वर्ष पहले जब आप ये पुस्तकें तैयार कर रहे थे, मैं भीतर-ही-भीतर कुढ रहा था। आज देखता हूँ, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन उस कार्य की महत्ता स्वीकार कर उसके लिये बधाई दे रहा है। आपकी सूझ सचमुच विलक्षण है। हमलोग आपके दूरदर्शितापूर्ण कार्य का अर्थ तब समझ पाते हैं जब बरसों बाद उस कार्य का महत्त्व और सुफल सामने आता है।

आपने अपने ग्राम तथा बन्धुबान्धवो की उन्नति में भी काफी रुपये लगाये हैं। अपने स्वर्गीय पिता की स्मृति में अपने गॉव मे एक सस्कृत-विद्यालय की स्थापना कर दी है। उसके सरक्षणार्थ भूसपत्ति का उचित प्रबन्ध कर दिया है। आपके सगे छोटे भाई बाबू बशलोचनप्रसाद आपसे पृथक् परिवार में रहते हैं। [स]मय-समय पर आपने उनकी प्रभूत आर्थिक सहायता की है। आपके जितने [निक]ट या दूर के स्वजन सबधी हैं, सब-के-सब श्राद्ध-विवाहादि में आपसे [स]हायता-रूप में रुपये ले जाते हैं।

इस तरह लाखों रुपये मास्टर साहब ने परोपकार मे लगाये हैं।

सफल उद्योगी 'मास्टर साहब'

काशी निवासी श्रीहनुमानप्रसाद, मैनेजर—विद्यापति प्रेस, लहेरियासराय

सन् १९२२ ई० में, जब मैं लक्ष्मीनारायण प्रेस (बनारस) में काम कर रहा था, मेरा सबसे पहला परिचय 'मास्टर साहब' से हुआ। इनके साहस और परिश्रम को देख मैं चकित हो गया। मुझमें क्या गुण है, मैं नहीं जानता, परन्तु इन्होंने वहीं मुझे अच्छी तरह पहचान लिया। मनुष्य को परखने की शक्ति इनमें अद्भुत है।

सन् १९२८ ई० इन्होंने 'विद्यापति प्रेस' खोला। सन् १९२९ ई० में मैं इस प्रेस में काम करने के लिये आया। उस समय प० कुशेश्वर कुमर मैनेजर थे। कुछ दिनों के बाद वे किसी कारण से चले गये। तब इन्होंने मुझे मैनेजर नियुक्त किया। उस समय प्रेस में सिर्फ १ ट्रेडिल और १ हैंड प्रेस था। प्रेस में करीब दस-बारह आदमी काम करते थे। परन्तु, आज भगवान् की कृपा से उन्नीस मशीनें हैं—४ फ्लैट, ३ ट्रेडिल, १ लीथो प्रिंटिंग, २ प्रूफ प्रेस, १ परफोरेटिंग, ३ पेपर कटिंग, ४ स्टिचिंग और १ शान चलानेवाली। आजकल लगभग २०० आदमी यहाँ काम करते हैं। इस प्रकार २०० आदमियों के द्वारा १००० आदमियों का पालन-पोषण हो रहा है। आजकल हिन्दी, अँगरेजी, बँगला और उर्दू के नाना प्रकार के नये ढँग के टाइप काफी हैं।

यह सब किसका फल है—केवल मास्टर साहब के उद्योग का। जब से मैं यहाँ आया हूँ, 'प्रेस' और 'भंडार' की दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति देखता आ रहा हूँ। इसका असल कारण यह है कि बहुत-से लोग थोड़ी-सी सफलता पर घमंड में चूर हो जाते हैं—किसीको कुछ नहीं समझते, परन्तु 'मास्टर साहब' में यह बात नहीं। 'उद्योगी नर-सिंह को आवत संपति भूरि'।

श्रीमान् मास्टर साहब ने अपना प्रति मिनट अबतक बराबर सदुद्योग में बिताया है। उन्होंने जो कुछ अबतक किया है, उत्साह के साथ। मेरा विश्वास है कि यदि भगवान् की कृपा रही तो कुछ ही दिनों में 'भंडार' और 'प्रेस' ताता-कम्पनी की तरह बिहार में अपना नाम तथा यश स्थापित कर लेगा।

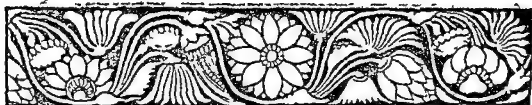

श्रीरामलोचनशरण

प्रोफेसर कृपानाथ मिश्र, बी० ए० ऑनर्स (लन्दन), एम० ए० (पटना), एम०इ० ए० (लंदन)

जुलाई, १९३० में विलायत से लौटकर मैं श्रीमुरलीमनोहर सिंह के मकान पर ठहरा था। मुरली बाबू उस समय अँगरेजी दैनिक 'एक्सप्रेस' (पटना) के सम्पादक थे। उस समय उनका मकान स्वर्गीय सर फखरुद्दीन के मकान के पास था (अब उनका अपना घर कदमकुँए में है)। उसी मकान में श्रीरामलोचनशरण से मेरा प्रथम व्यक्तिगत परिचय हुआ। पत्र-द्वारा परिचय तो [illegible] से था ही। उस समय मुझे यह भी मालूम नहीं था कि निकट के [illegible] मास्टर साहब कहते हैं।

प्रथम परिचय से मुझे खुशी तो हुई [illegible] समझा था कि श्रीरामलोचनशरण कोई [illegible] सूखा होगा। वृद्ध मैं इसलिये समझता [illegible] प्रतिद्वन्द्वियों के रहते भी, जैसी [illegible] अनुभव-सापेक्ष्य है, और अनुभवी [illegible] लिये समझता था कि परिचय के [illegible] पढा था। पढकर मैं इनकी विशुद्ध वैज्ञानिक पद्धति का कायल हुआ [illegible]

अब कल्पना कीजिये मेरे [illegible] तीक्ष्ण, सुप्रसिद्ध सज्जन को अपने [illegible] का एक

बहुतेरे लोग मुझसे पूछा करते हैं—"आप पुस्तक-भडार पर इस तरह क्यों प्रसन्न रहते हैं ?" मैं अपनेको गणेश देवता नहीं मानता कि अपनी प्रसन्नता को अनमोल समझूँ। फिर भी मैं यह उचित समझता हूँ कि इसी मौके पर मैं स्पष्ट कर दूँ कि 'पुस्तक-भडार' पर मेरे स्नेह का एक-मात्र कारण है मास्टर साहब की सज्जनता और उनका मेरे प्रति निष्कपट व्यवहार।

× × × ×

बात १९३५ ई० के दिसबर की है। बड़े दिन की छुट्टी में मैं चिलका-झील (उड़ीसा) सैर को गया था। दुबारा योरप हो आया था, कटक के सरकारी कॉलेज में प्रोफेसर था। बड़ी उम्मीद थी वहाँ रह जाने पर पूरी तरक्की की। साहबी ठाट-बाट का आदी था। बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। रुपये को कुछ समझता ही न था। आज आया, कल गया। इस छुट्टी में पुरी, उस छुट्टी में चिलका, आज भुवनेश्वर, कल साखी गोपाल, फलस्वरूप पास में जमा—०। अब विचारिये कि चिलका से लौटते ही कटक-स्टेशन पर जब मैंने एक मित्र प्रोफेसर से यह सुना कि मेरे पूज्य पिताजी मेरी अनुपस्थिति में चल बसे, नीचे की धरती मानों सरक सी गई। साहबी ठाट गायब हुआ। मैं रोया और खूब रोया। मृत्यु तो सबकी दुःखद होती ही है, मेरे पिताजी की मृत्यु मेरे लिये नितान्त दुःखद थी। इसलिये कि मरते समय न अपनी माँ को देख सका, न अपने पिता को। भागलपुर मेरा घर है। कहाँ कटक, कहाँ भागलपुर, कहाँ चिलका-झील।

प्रश्न यह था कि श्राद्ध कैसे हो ? बैंक से कुछ रुपये मिले, कुछ मित्रों से कर्ज लिये, पर मेरे हृदय में साहबी ठाट की समाधि पर ब्राह्मणों का जन्मोचित सस्कार इस तरह जाग उठा कि मैं श्राद्ध भली भाँति करना चाहता था। जिन-जिन मित्रों से रुपये मिल सकते थे, मिले। फिर भी कई सौ की कमी थी। मैंने मास्टर साहब को लिखा। इन्होंने रुपये भेज दिये, जो इनको बहुत दिनों के बाद वापस मिले।

बात पढ़ने में तो बड़ी मामूली-सी जँचती है। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि उस समय मैं केवल हिन्दी का एक नया लेखक था। यहाँ तक कि उस समय बिहार में लौट आने की भी मुझे कम उम्मीद थी—(दो बिहारी प्रोफेसर कटक में बराबर के लिये रह ही गये)—उस समय मास्टर साहब ने मेरा जो उपकार किया, वह भूलने का नहीं। यदि इच्छानुसार पिता का श्राद्ध मैं न कर पाता, तो आजन्म कष्ट पाता। इस कष्ट से मुझे बचा लेने मे मास्टर साहब का जो परोक्ष हाथ रहा, उसके लिये मेरी आत्मा उन्हें बराबर आशीर्वाद देगी। आज अवस्था-परिवर्त्तन की वजह से, मेरा सम्बध कई प्रकाशकों के साथ है—रहेगा, परन्तु

मास्टर साहब ने जो मेरे साथ सज्जनोचित व्यवहार किया है, वह व्यावसायिक सम्बध के परे है, और इसी से मुझपर उनका स्नेहाधिकार है।

× × × ×

न मालूम क्यों, मास्टर साहब में प्रतिभा परखने की एक विचित्र शक्ति है। विहार के बाहर भी जिन-जिन लेखको के साथ इनके सम्बध में बातें हुई, सबने इनकी प्रशसा की। यहॉतक कि स्वर्गीय पडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने प्रसगवश इनको वडा माना। बात यह हुई कि १९३१—३२ में पत्र द्वारा द्विवेदीजी के साथ मेरा सम्बध निकटतम हो चला। वड़ी अनुकम्पा से वे अपनी-तकलीफों का वर्णन अपने पत्रों मे किया करते थे। मेरी उनपर ऐसी अटूट श्रद्धा थी (और है) कि मैंने उन्हें पटना आकर अपने साथ रहने का विनम्र आमत्रण भेजा। उन्होंने लिखा—"भाई मेरे, खाट पर से उठने तक की शक्ति मुझमें नहीं। अन्यथा जरूर आता। तुम्हारी तरह विहार में मेरे और प्रेमी भी हैं—जायसवालजी, रामलोचनजी और बलदेवजी*। पर मैं क्या करूँ, लाचार हूँ।"

× × × ×

मास्टर साहब ने एक सामाजिक बात में जैसी सहायता मेरी की, वैसी मेरे निकटतम मित्रों ने भी नहीं की है। मेरी छोटी बहन के विवाह में कुछ बखेड़ा हो रहा था। मैथिलों में विलायत से लौटे हुए ब्राह्मण की सगी बहन के वैवाहिक सम्बंध में बखेडा होना स्वाभाविक ही है। मैं लहेरियासराय बहुत दिनों तक रहा। इधर-से उधर भटकता फिरता। कहीं पूछ न थी। बुद्धि चकरा गई, धैर्य नष्ट हुआ। इसी समय मास्टर साहब ने मेरे झमेले को अपनाया और कई दिनों में ही उसे सुलझा डाला। मेरे बहनोई आज गवर्नमेंट प्रेस में सुखी हैं, बी० ए० हैं, उस समय मैट्रिक मे पढते थे। इस वैवाहिक सम्बन्ध को ठीक करते समय एक बात ऐसी हुई जिससे मास्टर साहब के चरित्र की खूबी का पूरा पता चलेगा।

लहेरियासराय से मेरे साथ मोटर पर दो सज्जन सवार हुए—मास्टर साहब और प० कपिलेश्वरमिश्र। गतव्य स्थान था पिंडारुछ। यात्रा का उद्देश्य था अपने भावी बहनोई को देखना। कुछ दूर जाने पर मोटर खराब हुई। मास्टर साहब लौटनेवाले जीव तो थे नहीं। हम सभी इक्के पर सवार हुए और चल पडे। मुहम्मदपुर स्टेशन पर वर-पार्टी के लोग आये और बातें हुईं। फिर अँधेरा हुआ और वर-पार्टी ने हमलोगों के लिये कुछ खाने की चीजें भेजीं। हमलोग स्टेशन के बुकिंग-आफिस के पास नीचे बैठ गये। एक कुली ने रेलवे-लालटेन रख दी। उसीकी रोशनी में हमलोगों ने खाया। अब यहाँ सबसे मार्के की बात यह है कि

* आजतक मैं नहीं जानता, ये कौन हैं और इनका पूरा नाम पता क्या है।—ले०

मेरे (मैथिल) समाज में यह नियम नहीं कि बिना सम्बन्ध हुए किसी सज्जन के घर पर जाकर खाते फिरें। सामाजिक सत्कार-रक्षा के लिये, बड़े भाई की तरह, मास्टर साहब मुझे बराबर उपदेश देते रहे। यहाँ तक कि मेरे सिगरेट पीने पर जैसा कड़ा शासन उन्होंने उस वक्त किया था, उसके स्मरण से ही अभी हँसी आती है (वहाँ हमारे समाज के लोग मेरी शिकायत में यह भी कहा करते थे कि मैं बराबर चुरुट पीता हूँ)। यहाँ कोई अधपढ़े शहरी जवान नाक-भौं न सिकोड़ें। मैथिल-समाज वह समाज है, जो दरभंगा के महाराजाधिराज की भी श्रद्धा तभी तक करता है जबतक वे सत्कार की रक्षा करते हैं। फिर मेरी क्या अवस्था ?

इसी सम्बध में एक मजे की बात यह हुई कि मुहम्मदपुर से (बातें तय होने पर) लहेरियासराय वापस लौटने को मास्टर साहब बहुत उत्सुक हुए। वर्षा जोरों से हो रही थी। इक्का न मिलता था और ट्रेन कोई भी आनेवाली न थी। हठात् (मास्टर साहब का भाग्य तो देखिये !) एक मालगाड़ी के आने की घंटी बज उठी। बस फिर क्या था, मास्टर साहब ने स्टेशन-मास्टर से बातें ठीक कीं, किराया दिया गया और हम तीनों सज्जन मालगाड़ी पर सवार हुए, लेकिन यह गाड़ी लहेरियासराय ठहरनेवाली नहीं थी, इससे हम सभी दरभंगा उतरे। पानी पड़ ही रहा था, इक्केवालों ने इठलाना शुरू किया। मास्टर साहब ने पैदल चलने की ठानी। फिर किसी तरह किराया ठीक हुआ और हम सभी भींगते-भींगते लहेरियासराय पहुँचे।

चूँकि काम सफल हुआ, इससे यह घटना मनोरंजक जँचती है। फिर भी यह निस्सन्देह है कि सबको कष्ट खूब हुआ। मेरा तो अपना काम था, मेरे लिये कष्ट क्या ? परन्तु पंडितजी और मास्टर साहब ने जो मेरे लिये कष्ट उठाया, उसके लिये मैं आभारी होऊँ तो इसमें क्या आश्चर्य ?

इन सब बातों से स्पष्ट है कि श्रीरामलोचनशरण से मेरा सम्बध भिन्न प्रकार का रहा है। किये गये उपकार को भूलना क्या मनुष्योचित है जो मैं भूलूँ ? 'पुस्तक-भंडार' से मेरा सम्बध व्यावसायिक रहा है। आज है, और कौन कह सकता है कि कल रहेगा या नहीं। परन्तु मास्टर साहब के साथ जो हार्दिक सम्बध स्थापित हो चुका है, उसका टूटना तभी सम्भव है जब वे या मैं कुछ ऐसा कर बैठूँ जिससे उनका या मेरा दिल ही टूट जाय। ईश्वर करे, ऐसा न होने पाये।

× × × ×

यह लेख संस्मरणात्मक रहा, आलोचनात्मक नहीं। फिर भी मैं यह कह देना चाहता हूँ कि मास्टर साहब एक आदर्शवादी प्रकाशक हैं और हैं सिद्धान्त के पक्के। प्रथम कथन का प्रमाण यह है कि इनके प्रकाशित ग्रंथों में कुछ ऐसी

पुस्तकें हैं जिनके प्रकाशन से इनको आर्थिक लाभ हो नहीं सकता (जैसे—हरिऔधजी का 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास')—इनमें रुपया लगाना दिलेरी है, और मास्टर साहब दिलेर हैं। मैंने स्वयं इस बात का अनुभव किया है कि मामूली-से-मामूली टेक्स्ट-बुक संबंधी काम के लिये प्रकाशक रुपये मुक्त हृदय से दे देते हैं, लेकिन ठोस साहित्यिक काम के लिये आनाकानी करते हैं। उदाहरणार्थ-जब हिन्दी में मैंने 'अँगरेजी उच्चारण-विधान' लिखना शुरू किया, कई प्रकाशकों ने यह कहा कि इस पुस्तक को छापने में बड़ा बखेड़ा है। मास्टर साहब ने, कई टाइपों को छोटा-बड़ा कर, पुस्तक निकाल ही दी। मैं जानता हूँ, इससे एक पैसा मिलने की आशा अभी नहीं—(यद्यपि डाक्टर सिन्हा के 'हिन्दुस्तान रिव्यू' में यह लिखा गया है कि भारतीय भाषाओं में ऐसा प्रयत्न प्रथम और स्तुत्य है)। इस तरह की पुस्तकों को निकालना साहस का काम है।

दूसरे कथन का प्रमाण यह है कि हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में—लोग चाहे जो कहें—मेरा विश्वास है कि जनता की भाषा यही हो सकती है। इस विषय में मास्टर साहब से बहुत-सी बातें, रह-रहकर, हुई हैं। जब-जब मैंने यह कहा कि इस भाषा को लेकर मैं गवेषणात्मक निबंध लिखना चाहता हूँ—लोग कहाँ, कैसे, क्या बोलते हैं, इसका ग्रामोफोन-रेकर्ड बनवाकर शब्द-समष्टि का टेबुल बनाना चाहता हूँ, तब-तब मास्टर साहब ने यही कहा है कि जो खर्च होगा, मैं दूँगा। आजतक यह काम मुझसे नहीं हो सका, लेकिन कभी-न-कभी होगा ही। अब आप ही विचारिये, इस निबंध के प्रकाशित करने में खर्च, लिखवाने में खर्च, और लाभ? न तो किसी युनिवर्सिटी में टेक्स्ट होगी, न किसी स्कूल में। हाँ, लेखक और प्रकाशक भले ही कोसे जायँ—जायँगे ही। लेकिन इससे मास्टर साहब कहाँ डरते? बिना लाभ की आशा से यदि रुपये खर्च वे करते और ऐसा करने पर गाली सुनते हुए भी सिद्धान्त के लिहाज से वे आगे ही बढ़े जाते हैं, तो उन्हें आदर्शवादी न क्यों कहा जाय?

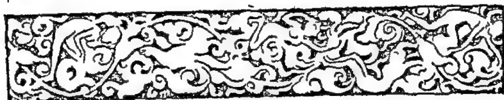

मास्टर साहब का पारिवारिक-जीवन

श्रीअशरफीलाल वर्मा; मकुनाही (मुजफ्फरपुर)

मास्टर साहब के गाँव 'राघाउर' मकुनाही के बीच केवल एक फर्लांग का अन्तर है। इनके और मेरे पूर्वजों मे गाढी मित्रता थी, जो आज भी उसी तरह चली आती है।

इनका पहला व्याह, सन् १९०४ ई० मे, मुजफ्फरपुर जिले के 'भारसर' गाँव में, हुआ था, जिससे ज्येष्ठ सुपुत्र श्रीवैदेहीशरण का जन्म हुआ। सन् १९१६ में प्रथम पत्नी का देहान्त हुआ। सन् १९१७ मे, इनका दूसरा व्याह नैपाल राज्य के 'रामवन' गाँव में हुआ, जिससे तीन सुपुत्र हैं—मैथिलीशरण (लालबाबू), सीताशरण (श्यामबाबू), सियारामशरण (रामबाबू), और पाँच कन्याएँ हैं—शान्ति, भारती, भवानी, उर्मिला और इन्दिरा।

मास्टर साहब ने सोने की गृहस्थी बनाई है। इनके परिवार मे शान्ति, सादगी, स्नेह और सबसे बढकर भगवान् की भक्ति का बोलबाला है। इनकी वर्त्तमान पत्नी गृहप्रबन्ध मे इतनी कुशल हैं कि उन्हीं पर इन्होंने गृहस्थी का सारा भार छोड दिया है और वे बडी दक्षता से चला रही हैं।

इनके पितामह के समय तक अच्छी सम्पत्ति थी, परन्तु इनके पिता और चचा के समय मे वह क्षीण हो गई। जो कुछ बची-खुची थी, दोनों भाइयों मे बँट गई थी। घर की हालत नाजुक होने से भू-सम्पत्ति न बच सकी। कुछ बिक गई, कुछ बँधक पड़ गई। इन्होंने अपनी जीविका की राह पकडी। बँधक भूमि के भी छुडाने का प्रयत्न किया। जो कुछ पैतृक सपत्ति इस तरह बचाई गई, वह भी परिवार-पोषण के लिये काफी नहीं थी। इन्होंने कुछ और जमीन खरीद कर पिता की सम्पत्ति बढा दी।

जब इनके सगे छोटे भाई घशलोचन बाबू ने पढ़ना-लिखना छोड़ा, उन्हें कोई व्यापार करने के लिये 'भडार' से काफी सहायता दी गई, परन्तु आधुनिक शिक्षा का प्रभाव उनपर ऐसा पडा था कि वे आराम से घर बैठने के सिवा और कुछ कर ही न सके। गॉव का वातावरण कुछ ऐसा कलुपित था कि मास्टर साहब को घरू सपत्ति से आशा तोड़ लेनी पड़ी। उन्होंने अपने बाहु-बल से प्रचुर द्रव्य का उपार्जन कर अपनी ससार-यात्रा को सुखशान्तिमय बनाया। तो भी इन्होंने अपनी गॉव की उन्नति का ध्यान रक्खा—अपने सगे कुटुम्बियों को रुपये कर्ज दिये। फिर जैसे ही इनकी अवस्था सुधरी, इन्होंने अपनी ओर से उन्हें हजारों रुपये दिये। गॉव में एक सस्कृत-विद्यालय खोलकर अपने पिता के नाम को अमर कर दिया।

ये अपने खानदान और पडोस के लडकों को भी शिक्षित देखना चाहते थे। अपने एक चचेरे भाई रामसेवक प्रसाद को पढाकर मिड्ल पास कराया और एक प्राइमरी स्कूल में जगह दिलवा दी थी। पर वे ससार से उठ गये। उनके घर की शोचनीय दशा देखकर इन्होंने इनके दूसरे भाई गगाविष्णु गुप्त को 'भडार' की दूकान पर नौकरी दी। परन्तु वे भी न रहे। तब उनके छोटे भाई श्रीदेवीचरण को दूकान पर नौकरी दी। तीन-चार वर्ष हुए, किसी के बहकाने में पडकर, देवीचरण ने 'भडार' में हिस्सा लेने के लिये उत्पात मचाया। 'भडार' ने उन्हें सदा के लिये अलग कर दिया।

इनके 'राघाउर' गॉव में लगभग सवा बीघा जमीन पड़ती थी। वही जमीन वहाँ के गरीब किसानों की स्त्रियों के लिये 'निकास' की जगह* थी। पहले उसमें नोनिया लोग नमक निकालते थे, जिससे वह 'नोनथार' कहलाती थी। अब वे उसे जोतकर फसल उपजाने लगे। गॉव में सनसनी फैली। जब यह बात इनको मालूम हुई, इन्हे बड़ा क्षोभ हुआ। इन्होंने गॉव के कुछ लोगो को इकट्ठा कर उस जमीन को पूर्ववत् छोड देने की प्रार्थना की। पर जमीन का लोभ नोनियो ने न छोड़ा। उन्होंने दरभगा-राज से उस जमीन का दमामी बन्दोबस्त लेना चाहा। इन्होंने भी राज में अर्जी भेजी। आखिर उस जमीन पर डाक बोली गई। डाक इन्हीं के नाम खतम हुई। लगभग दो हजार रुपये खर्च कर और ५०) प्रति बीघा सालाना लगान देना मजूर कर गॉव की स्त्रियों का कष्ट दूर किया। इससे वहाँ के गरीब किसानो ने इन्हें हृदय से आशीर्वाद दिया।

तीन-चार वर्ष पूर्व इन्होंने एक छोटी-सी जमींदारी भी खरीदी है। इनकी रैयत इनके समान दयालु मालिक पाकर बहुत प्रसन्न रहती है। वहाँ जलाशय का अभाव-सा था। जो पोखरे थे भी, फागुन-चैत में सूख जाते थे। लोगों को नहाने-

* स्त्रियों के शौचादि के लिये एक निर्दिष्ट स्थान।

श्रीरामलोचनशरणजी की पूजनीया माता

तीन पुश्त

दाहिनी से बाईं ओर—श्रीरामलोचनशरणजी, उनके ज्येष्ठ पुत्र वैदेहीशरण और उनके पिता स्वर्गीय श्रीमहँगू साहुजी

धोने और मवेशियों को पानी पीने में बड़ी दिक्कत होती थी। इन्होंने हजारों रुपये खर्च कर वहाँ एक बड़ा तालाब खुदवा दिया है।

इनका खान-पान और रहन-सहन बिलकुल सादा है। हरे फल-शाक खूब खाते हैं। बाजारू चीजों से इन्हें नफरत है, इनके बच्चे तक नहीं खाने पाते। बाल-बच्चों और आगत व्यक्तियों के लिये रसोइया और नौकर बराबर रहते हैं, फिर भी ये स्वयं अपने हाथों बनाई या अपनी पत्नी की ही बनाई रसोई खाते हैं। हाँ, वैष्णवों के बनाये प्रसाद खाने में नहीं हिचकते, परन्तु अवैष्णवों की बनाई रसोई नहीं खाते। कपड़ों में भी वही सच्ची सादगी है। सूट-बूट इन्हें कभी पसंद न आया। गर्मियों में आधी धोती ही देह पर डाले रहते हैं।

बच्चों से इन्हें बड़ा प्रेम है। कभी-कभी उनके साथ ये खेलते भी हैं। चाहे कोई भी बच्चा इनके सामने आ जाय, उसे अपने बच्चे से कम नहीं समझते। इस युग में यदि और कोई इनके समान लाखों का स्वामी होता तो दस पाँच डग भी पैदल चलना पसंद न करता, पर इनको पैदल ही चलने में आनंद आता है। रोज चार-पाँच मील पैदल टहलना इनकी सुबह की ड्यूटी है।

मास्टर साहब सपरिवार वैष्णवधर्म में दीक्षित हैं। धार्मिक भाव इनमें कूट-कूटकर भरा है। 'भंडार' में प्रति रविवार को श्रीरामायणजी का पाठ और संकीर्तन होता है। उसमें बहुधा ये भी बैठकर बड़े प्रेम से भगवान् का गुण गाते हैं। धार्मिक कामों में ये आँखें मूँदकर रुपये देते हैं। अपनी जमींदारी के पास ही 'फुनदह' गाँव में श्री गिरिजा-मंदिर के जीर्णोद्धार में इन्होंने अच्छी सहायता दी है। लहेरियासराय के पास ही बहादुरपुर गाँव में भी भगवती मंदिर बनवा दिया है। और-और कई मंदिरों में भी इन्होंने सहायता दी है।

इनमें अपनापन का भाव बहुत है। ये 'भंडार' के कर्मचारियों को अपने परिवार का अंग समझते हैं। इनके प्रेम-भरे 'तुम' सम्बोधन में तो जादू का असर है। जिस दिन ये किसी कर्मचारी को 'आप' कहकर सम्बोधित करते हैं, बस समझ जाना है कि आज ये अप्रसन्न हैं, परन्तु जब फिर 'तुम' कहकर पुकारते हैं, तब उसकी चिन्ता दूर होती है। ये अलौकिक क्षमाशील हैं। अक्षम्य अपराधी को भी बड़े प्रेम से क्षमा कर देते हैं।

बच्चों की शिक्षा के लिये सुन्दर व्यवस्था की है। एक बूढ़े ग्रेजुएट को रक्खा है। कन्याओं की शिक्षा पर भी इनका पूरा ध्यान रहता है।

श्रीसीतारामजी इन्हें दीर्घायु बनावें, जिससे 'पुस्तक-भंडार' की 'स्वर्ण-जयन्ती' भी ये अपनी आँखों देखें और हम सब इनकी 'हीरक-जयन्ती' मनाने का आयोजन करें।

आदरणीय भाई रामलोचनशरणजी

श्रीसूबाराज कर्ण, धरहरवा (मुजफ्फरपुर)

सन् १९०३ ई० की बात है। मेरे गाँव के रघुनी साहुजी, जो उस समय 'राधाउर' ग्राम मे अपर-प्राइमरी स्कूल के हेड-गुरु थे, घर आये। उस समय मेरे ग्राम में दरभगा राज का अपर-प्राइमरी स्कूल था, जिसमे मेरे पूज्य पिताजी हेड-मास्टर थे। रघुनी साहुजी स्कूल में ही पिताजी से मिलने आये। पिताजी से कहा—"सूबा अपर पास कर चुका, इसको शिवहर के मिड्ल इगलिश स्कूल म भेजिये। वहाँ अच्छे साथी भी मिलेगे। एक लडका गत वर्ष से स्कॉलरशिप पाकर वहाँ पढ रहा है—बडा ही मिलनसार, तीक्ष्ण-बुद्धि और परिश्रमी है—नाम है—'रामलोचन'।"

यथासमय शिवहर के मिड्ल इगलिश स्कूल में मेरा नाम लिखाया गया। उस समय सुहवल-(गाजीपुर) निवासी प० रामदासरायजी, जो पीछे मुजफ्फरपुर-कालेज मे हिन्दी के प्रोफेसर नियुक्त हुए, हेडमास्टर थे। उनका जीवन ऋषियों का-सा था।

उस समय की पढाई का नियम यह था कि मास्टरो को उठकर, क्लासों मे नहीं जाना पडता था, लडके ही मास्टरो के कमरे मे रूटीन के अनुसार आया करते थे। जिस समय पिताजी मेरा नाम लिखा रहे थे, उस समय प्रथम वर्ग के छात्रों को हेडमास्टर पढा रहे थे। नाम लिख जाने के बाद ही एक भोले-भाले लडके ने अपने स्थान से उठकर क्लास ही मे पिताजी के पाँव छू प्रणाम किया। पिताजी ने पूछा—'क्या नाम है?' उत्तर मिला—'रामलोचन'। पिताजी को बडी प्रसन्नता हुई। उसी दिन से मुझमे और भाई रामलोचनशरणजी मे भ्रातृत्व का श्रीगणेश हो गया।

मिड्ल पास करते समय इनकी उम्र लगभग १४ वर्ष की थी। फाइनल-ट्रेनिंग की पढ़ाई में उम्र और कद की ऊँचाई की कैद मे कम उम्र के छात्र नहीं लिये जाते थे। अत दो वर्षों तक

पड़ा। इनका यह समय भी अधिकतर स्वाध्याय तथा अध्ययन में ही बीता। खेलकूद का इन्हें शौक ही न था।

जनवरी, १९०६ ई० में मैं पटना नार्मल स्कूल में नाम लिखाने गया। वहाँ भी भाई रामलोचनशरणजी मिले। मुझे देखते ही दौड़े हुए आये। मेरा सामान अपने कमरे में रखवा दिया। उस समय हेडमास्टर थे एक बंगाली महाशय, बड़े कड़े थे। उनका कड़ा आदेश था कि छात्रावास में कोई बाहरी आदमी नहीं ठहर सकता। अतः मेरे कारण इनको अर्थदण्ड का भागी बनना पड़ा।

भाई रामलोचनशरणजी में आज जो गुण पाये जाते हैं, उस समय भी थे। हृदय सरल और साफ, विचार पवित्र, परोपकार में अनुराग, धर्मभीरु बुद्धि। आज जिस लेखनी और अध्ययन तथा अध्यवसाय का परिणाम प्रत्यक्ष है, उसकी उपासना उसी समय इनके हृदय में घर कर चुकी थी। ये मेरे लिये आज जैसे दयालु अभिभावक हैं, उस समय भी थे। मेरे पढ़ने-लिखने, खाने-पीने एवं रहन-सहन पर इनकी—एक कड़े निरीक्षक के समान—कड़ी दृष्टि रहा करती थी। मेरे जलपान करने, समय पर पढ़ने और बाहर घूमने पर इनका पूरा अनुशासन रहा करता था। मैं तो स्कूल से छुट्टी पाने के बाद जलपान कर गेंद खेलने चला जाया करता था और ये शौचादि से निवृत्त हो—जलपान कर तबतक अध्ययन करते जबतक सूर्यनारायण दृष्टिपथ से ओझल नहीं होते। इतना ही नहीं, वे पाठ्य पुस्तकों की टिप्पणियाँ—प्रश्नोत्तरी के रूप में—लिखते रहते। इसीसे पाठ-स्मरण भी हो जाता और साथ ही पाठ्य विषयों पर पुस्तकें भी तैयार होती जाती थीं। इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य, विज्ञान, क्षेत्रमिति इत्यादि विषयों की पुस्तकों का पूरा-पूरा नोट इन्होंने दैनिक अध्ययन के साथ ही-साथ तैयार कर लिया। ये नोट ऐसे उपयोगी थे कि केवल उन्हें ही पढ़कर कोई छात्र परीक्षा पास कर लेता। दृष्टान्त-स्वरूप मैं विद्यमान हूँ। यथार्थतः केवल उन्हीं नोटों की बदौलत मैं परीक्षा में सफल हुआ। आज भी मेरे मन में इस बात का बड़ा भारी अफसोस है कि मैंने वे नोट सुरक्षित नहीं रख छोड़े। मैं क्या जानता था कि आगे चलकर ऐसा सुन्दर संयोग उपस्थित होगा।

जब ये विद्यार्थी थे, तभी से इनकी प्रतिभा की झलक दिखाई देने लग गई थी। ये धुन के बड़े पक्के थे। जिस काम में लग जाते, उसे पूरा किये बिना छोड़ते नहीं थे। गणित में इनकी बुद्धि बड़ी ही तीक्ष्ण थी। गणित-शिक्षक इनको बहुत मानते थे। इससे इनके साथियों को जलन होती थी। इनके सहपाठियों में एक प० अचम्भित चौधरी थे, जो आज भी अपने जिले (सन्थालपरगना) के एक गुरु-ट्रेनिंग स्कूल में प्रधान शिक्षक हैं। उनका चित्राङ्कन बढ़िया होता था,

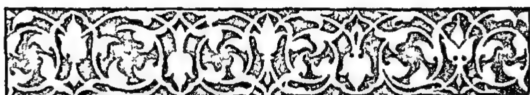

मास्टर साहब की स्वजातीय सेवा

[१]

सीतामढ़ी-निवासी श्रीलक्ष्मीनारायण गुप्त 'किशोर', 'रौनियार वैश्य'-सम्पादक

हमारे 'मास्टर साहब' उन्हीं कर्त्तव्यशील प्राणियों में हैं जो देश, समाज, साहित्य और जाति की उन्नति के सपने देखा करते हैं और अपने स्वप्नों को सच्चा रूप देने का प्रयास किया करते हैं।

बरसों की बात है। मैं बालक विद्यार्थी था। मास्टर साहब की किताबें पढ़ा करता था। यह भी सुना था कि वे हमारी ही जाति के एक आदर्श पुरुष हैं, किन्तु दर्शन का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ था। सहसा एक सूचना मिली—"लहेरियासराय मे जातीय सभा है"—मै उछल पड़ा। दादा को साथ लेकर चल पड़ा। वर्षा के दिन थे।

टाउन-हॉल मे सभा का आयोजन था। जोरों से वर्षा हो रही थी। विजली की कड़कड़ाहट मुझे डरा देती थी। वैसे भीषण समय मे किसी ने मुझे दिखलाया—"यही मास्टर साहब हैं।"

मैं तो आश्चर्य-चकित रह गया। इतना सादा वेश। ऐसा सुन्दर व्यक्तित्व! उस समय विवेचना-शक्ति तो थी नहीं जिससे उनके जीवन का विश्लेषण कर पाता, किन्तु उस समय की उनकी सौम्य मूर्त्ति याद कर आज सहसा मस्तक आप-ही-आप झुक जाता है।

वर्षा की कठोर बूँदें उनके दृढ निश्चय को नहीं डिगा पाती थीं। हृदय में उत्साह था और होठों पर हँसी। सैकड़ों भाई आ गये और बात-की-बात में सारा प्रबन्ध हो गया। मास्टर साहब स्वय इधर-उधर दौड रहे थे। आग्रह-पूर्वक एक बच्चे से लेकर बूढे तक की आवभगत करते थे।

वैभव के रूप का सच्चा निखार तभी होता है जब उसमें परार्थ की भावना लगी हो। स्वयं अपने सुखी होने से तो समाज को कोई सुख नहीं हो सकता। औरों के सुख के साथ-साथ ही अपने सुख और अपने हिताहित का ध्यान रखना श्रेयस्कर है। बस, इसी भावना से प्रेरित होकर मास्टर साहब ने तिरहुत-प्रान्तीय सभा की नींव डाली और उसका पहला अधिवेशन निज के सैकड़ो रुपये खर्च कर लहेरियासराय में कराया।

जाति की हीनावस्था ने उनके हृदय में एक टीस पैदा की और वह टीस, वह लगन, वह कामना बुझनेवाली तो थी नहीं। वह भावना अनवरत जागरूक बनी रही और अब भी उसी रूप में उनके अन्तस्तल में चमक रही है।

सभा के बाद जातीय पत्र का प्रश्न उठा। उन्होंने पत्र के प्रकाशन का सारा भार अपने सर ले लिया। उस समय उनका निज का प्रेस था नहीं। कलकत्ता से पत्र छपाया जाता था। काफी रुपये खर्च करने पड़ते थे। ब्लाक बने। सुन्दर रूप से पत्र का प्रकाशन चला। आफिस का सिलसिला शुरू हुआ। मैंने देखा, उन्होंने रुपये खर्च करने में कोई कोर-कसर नहीं की। सात-आठ वर्षों तक पत्र का प्रकाशन हुआ। पत्र पर हजारों रुपये उनके खर्च हो गये। बैठक हुई। अत में सभा ने उनसे रुपये माफ कर देने का अनुरोध किया। उन्होंने रुपये माफ कर अपनी दानशीलता का परिचय दिया।

इतना होते हुए भी उन्होंने जातीय कार्यों से अपना हाथ कभी नहीं खींचा। सदा अकुंठित भाव से जातीय मर्यादा की रक्षा में तत्पर रहे।

कई वर्षों के बाद, जब सभा में काफी शिथिलता आई थी, पत्र के प्रकाशन की बात छिड़ी। एक वर्ष तक पुन पत्र चलाने का भार उन्होंने १९३९ में लिया। १९४० तक पत्र सुन्दर रूप से निकला। फिर भी लोगों से सहयोग न मिलने के कारण पत्र बंद करना पड़ा।

उन्हें रुपये तो काफी व्यय करने ही पड़े, किन्तु सबसे बड़ी छाप जो उन्होंने मेरे दिल पर छोड़ी है, वह है उनकी अपूर्व सहनशीलता की। सभा के बीच, सभ्यता की सीमा लाँघकर, उनपर फब्तियाँ कसी गईं, किन्तु वे कभी विचलित नहीं हुए। अंगदपैज की भाँति अचल रहे। अत में, आवाज कसनेवालों को स्वयं मुँह की खानी पड़ी।

अपनी जाति के अनेक कर्णधार व्यक्तियों ने, अकारण मनोमालिन्य के वशीभूत हो समय-समय पर, अपनी दूषित मनोवृत्ति का परिचय दिया है। फिर भी न ने कभी घबराये हैं और न कभी आपा खोया है।

दूसरों के कष्ट देखकर वे स्वयं आहत हो उठते हैं। कारण, उन्होंने स्वयं

जीवन में अनेक कष्ट झेले हैं। यद्यपि आज वे काफी पैसेवाले हैं, तथापि उनके हृदय में गरीबों के लिये ममता, अपने भाइयों के लिये प्यार और अपनी जाति के लिये पर्याप्त प्रेम है।

परिस्थिति और समय के प्रवाह में भले ही हम उनको भुला बैठें, किन्तु सतत साहित्य-सेवा, उनका जातीय अनुराग, उनकी सच्ची कर्त्तव्य-परायणता, उनकी अपूर्व सहन-शक्ति और उनकी परार्थ-भावना कभी भुलाने की वस्तु नहीं।

[२]

श्रीहरिराम गुप्त, सहतवार (बलिया, युक्तप्रान्त)

यों तो शरणजी की सेवा परायणता तथा दान-शीलता से अनेक संस्थाएँ उपकृत हुई हैं और हो रही हैं, किन्तु जो अपूर्व सेवाएँ रौनियार संसार की आपके द्वारा हुई हैं, वे सर्वदा रौनियार-समाज के लिये आदर्श रहेंगी।

सर्वप्रथम आपसे अखिल भारतवर्षीय रौनियार-महासभा के द्वितीय अधिवेशन (काशी) में साक्षात्कार हुआ। तदनन्तर, स्थायी समिति की बैठक में, बाबू दासनारायण जी रईस (वेलवरगंज, पटना) के वास-स्थान पर। उसी समय आपके विचार में अपनी इस मोह-निद्रा-निमग्न जाति के उत्थान के निमित्त अनेक कार्यक्रम प्रस्फुटित हुए। फल-स्वरूप तिरहुत-प्रांतीय सभा का संगठन हुआ। उसका प्रथम अधिवेशन लहेरियासराय में ही हुआ। आपके अथक परिश्रम तथा त्याग-तपस्या के साथ-साथ सारा व्यय-भार उठाने की क्षमता की बदौलत नियमित रूप से कार्य होने लगा। अच्छे-अच्छे सुधार के प्रस्ताव पासकर जन साधारण में जागृति के भाव भरे जाने लगे।

परिणाम यह हुआ कि इस निद्रित जाति की भी आँखें खुलीं। अपनी भलाई-बुराई का दृश्य सामने आया। बाल विवाह, वृद्ध-विवाह तथा अनमेल विवाह एक तरह से बन्द हो गये। नाच, आतिशबाजी आदि फिजूलखर्ची, जो विवाह आदि अवसरों पर भरपूर रूप से होती थी, रुकने लगी। ऐसा मालूम होने लगा कि अब इस जाति के अज्ञान का अन्धकार थोड़े ही दिनों में दूर होकर ज्ञान सूर्य का प्रकाश हो जायगा।

तिरहुत-प्रान्तीय सभा नाम होने पर भी इसमें बिहार के आठ जिले शरीक थे। फिर भी कई अन्य जिले इसी में अपनेको मिलाने का निवेदन-पत्र देने लगे।

सचमुच आपमें काम करने की अद्भुत शक्ति है। अगर आप इस तरह प्रान्तीय सभा का संगठन न करते, तो इतना सुधार होना कभी संभव न था।

आपने अच्छी तरह समझ लिया था कि जबतक जातीय पत्र न रहेगा

श्रीरामलोचनशरणजी के कार्य

श्रीयुत प्रभुदयाल विद्यार्थी

एक किताब में मैंने पढ़ा था कि 'तुम अपनी राय किसी मनुष्य के बारे में तभी बनाओ जब तुम उसके निकट सम्पर्क में रह चुको।' यह वाक्य बिलकुल सही और सत्य है।

कुछ समय पहले मुझसे कहा गया था कि पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय के संचालक श्रीरामलोचनशरणजी व्यापारी आदमी हैं। यदि आप व्यापारी नहीं होते तो बीस रुपये की नौकरी करते हुए आज लखपति मनुष्य कैसे बन जाते?

जुलाई महीने में कुछ दिनों के लिये मुझे लहेरियासराय जाना पड़ा। वहाँ श्रीरामलोचनशरणजी के निकट सम्पर्क में आने का मौका मिला, बहुत निकट सम्पर्क में।

जब मैंने सुना कि मास्टर साहब (श्रीरामलोचनशरणजी) पहले बीस रुपये के अध्यापक थे, घर की हालत कुछ विशेष अच्छी नहीं कही जा सकती। मास्टर साहब स्वयं अपने हाथ से छोटे-से-छोटा काम करते थे, घर-गृहस्थी का सारा काम स्वयं करते थे, कठोर परिश्रम करते, परिश्रम की रोटी खाते थे।

समय ने पलटा खाया। मास्टर साहब ने प्रेस खोला। धीरे-धीरे प्रेस बढ़ता गया। आपकी उन्नति होने लगी। आपका विचार देश प्रेम के साथ शुरू से था। आपने सन् १९२०–२१ में सबसे पहले राष्ट्रीय साहित्य निकाला जो काफी लोक-प्रिय रहा।

आपने स्कूली किताबों का भी प्रकाशन किया। इस कार्य में आपको विशेष सफलता मिली। शिक्षा-प्रचार मे आपने अद्भुत कार्य किया। बिहार के कोने-कोने में आपने शिक्षा प्रचार का काम किया। आज आपका नाम बिहार के बच्चे-बच्चे की जबान पर है। आपने 'बालक' पत्र निकालकर बिहार ही नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान-भर के बालकों को एक अमूल्य चीज दी। मेरी समझ में साहित्य में 'बालक' का अपना एक विशेष स्थान है। यह बालकों के लिये अत्यन्त उपयोगी और उत्तम पत्र है।

उसका मुकाबला अन्य पत्र नहीं कर सकते। कारण, 'बालक' के संपादक अपनी जिम्मेदारी परिश्रम से करते हैं।

जहाँ पहले मास्टर साहब की आर्थिक हालत बहुत गिरी हुई थी वहाँ आज आपका यश, वैभव सभी फैला हुआ नजर आता है। मैं श्रीरामलोचनशरण जी के संबंध में जो ये बातें लिख रहा हूँ वह आपका धन-वैभव बताने के लिये नहीं, बल्कि केवल इतना बताने के लिये कि मनुष्य चाहे कितना ही क्यों न गिरा हो, पर एक दिन परिश्रम और प्रेम से बडा बन सकता है। मास्टर साहब इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। *मास्टर साहब के विचारों से मेरा मतभेद हो सकता है, पर आपकी* सचाई, *ईमानदारी, कार्य-कुशलता* और मनुष्यता का मैं कायल हूँ। मैंने देखा, *मास्टर साहब मनुष्य पहले हैं, धनी पीछे।* आपको अपने धन का जरा भी अभिमान नहीं है। आपकी सरलता देखने पर मालूम होता है कि आप आज भी एक मामूली आदमी हैं।

पुरानी संस्कृति के आप बडे प्रेमी और ईश्वरभक्त हैं। आपका जीवन बहुत नियमित और संयमी है।

आप कोरे व्यापारी ही नहीं हैं, एक अच्छे साहित्य-सेवी भी हैं। मैंने पहले सुना था कि आप स्वयं किताब नहीं लिखते, पर वहाँ जाने पर मैंने देखा, जो मैंने सुना था वह गलत है। आप तो एक अच्छे साहित्य-सेवी हैं।

मास्टर साहब ने अपने धन और प्रेस से बिहार में अच्छे-अच्छे साहित्य-प्रेमी पैदा किये हैं। आपने बहुतेरों को अच्छा लेखक बनाया है। बिहार के लोगों के लिये आपने जितनी सेवा की है शायद ही दूसरे के प्रकाशकों ने की होगी।

एक चीज आपमें मैंने विशेष तौर से देखी। आप जो कह देते हैं उसे पूरा करके ही दम लेते हैं। अपनी बातों को पूरा करने के लिये पूरी कोशिश करते हैं। आपके जीवन में धूर्तता नहीं है। सात्त्विक विचार के मनुष्य हैं। आप-जैसे ईमानदार प्रकाशक आज बहुत कम दिखाई पडते हैं। लेखकों के साथ आप मनुष्यता से पेश आते हैं। मैं जानता हूँ, आपने ऐसे कितने ही लेखकों को पारिश्रमिक रूप में पेशगी रुपया दे रक्खा है। जिनकी किताब शायद छपने में अभी पाँच-छः साल की देरी लगेगी।

लोग आलोचना कर सकते हैं। परंतु *श्रीरामलोचनशरण की विशेषताओं को दबाना या छिपाना उनके बूते की चीज नहीं है।* आपने अपने अथक परिश्रम और अकथनीय साहित्य-सेवा से भारतीय साहित्य में, विशेषकर बिहारी साहित्य में, एक नये युग का निर्माण किया है।

ज्ञानदीपक मास्टर साहब

प० रामेश्वर झा

जाड़े की धूप में एक चटाई पर बैठकर लिख रहे थे। बदन पर धोती का ही दूसरा छोर पड़ा था। मुख पर प्रतिभा और दयाशीलता साफ झलक रही थी। वैदेही बाबू ने उन्हें 'बाबूजी' कहकर पुकारा। मैं जैस चौंक पड़ा। मुझे सहसा अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था कि विख्यात साहित्यसेवी और लक्षाधीश होकर भी मास्टर साहब सादे वेश में चटाई पर बैठे हैं। उस एकनिष्ठ कर्मयोगी, एकान्त तपस्वी और स्वावलम्बी महापुरुष के प्रति मेरा सिर श्रद्धा से झुक गया।

मैं अपने गुरुवर सूबालाल जी कर्ण के पास पुपरी जाकर काम करने लगा, परन्तु 'भडार' में मेरा आना-जाना जारी रहा। पुपरी मे ही पता चला कि मास्टर साहब के परामर्श और सहायता से कुछ सज्जनों ने नैपाल-राज्य में भी जहाँ-तहाँ हिन्दी के स्कूल खोल रक्खे हैं और वहाँ हिन्दी का प्रचार धडल्ले से हो रहा है।

एक बार मैं 'भडार' में मास्टर साहब के निकट बैठा था। उन्होंने मुझे एक हिसाब हल करने को दिया। ईश्वर की कृपा, मैंने चट हल कर दिया। उसी दिन से मुझपर उनकी विशेष कृपा रहने लगी। उनका कहना है कि 'भडार' तुम्हीं लोगों की सस्था है, स्वय भी कमाकर खाओ और इसको बढाने की चेष्टा करो। उनकी इस उक्ति मे कितना अपनापन है और कितनी सहृदयता।

१९३३ ई० की जनवरी से मैं 'भडार' की सेवा में चला आया।

इसी बीच मास्टर साहब को किसी काम से कटक (उडीसा) जाना पड़ा। उड़ीसा-प्रान्त में भी उन्होंने हिन्दी की दुदुभी बजाने की ठानी। उनके उद्योग

स्वर्गीय रायसाहब लक्ष्मीनारायण लाल, गोरखपुर

[ऊपर—रायसाहब रामलोचनशरणजी के समधी, नीचे—बड़े जामाता]

बाईं ओर—रायसाहब रामलोचनशरणजी के समधी; दाईं ओर—छोटे जामाता

श्रीकृष्णमुरारीनारायणसिंह
[रईस, मदलपुरा ' पटना)]

श्रीवीरेन्द्रकुमारनारायणसिंह

और साहब के प्रभाव से वहाँ के लोगों में हिन्दी के प्रति प्रेम उत्पन्न होकर रहा। फलतः कटक में एक हिन्दी-मिडिल स्कूल स्थापित हुआ। इसका सारा श्रेय मास्टर साहब को ही है।

अब वहाँ ऐसे योग्य शिक्षकों की आवश्यकता थी, जो हिन्दी का प्रचार कर सकें। शिक्षक चुनने का भार मास्टर साहब पर ही था। लहेरियासराय आकर उन्होंने मुझे ही वहाँ का प्रधानाध्यापक बनाकर भेजा। मैंने देखा कि वहाँ के लोग भी उनके प्रति बड़ी श्रद्धा प्रकट करते हैं। उनके प्रभाव से मैं शीघ्र ही वहाँ के लोगों का विश्वास-पात्र बन गया।

सन् १९३६ ई० में उड़ीसा एक पृथक् प्रदेश बना दिया गया। मैं फिर मास्टर साहब की छत्रच्छाया में लहेरियासराय चला आया। मुझे बराबर उनके निकट रहने का मौका मिलता आया है। मैं उन्हें अत्यन्त समीप से पहचान सका हूँ।

यों तो उनका परिचय मुझे तभी मिला जब मैं अक्षर पहचानने लगा था। मेरी उम्र के प्रायः जितने हिन्दी भाषी मनुष्य बिहार में हैं उनमें अधिकांश को उन्हीं की बनाई पुस्तकें पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आज के बिहारी नवयुवकों में जो हिन्दी की योग्यता है वह मास्टर साहब की लेखनी से निःसृत उस साहित्य निर्झरिणी से परिप्लुत हुई है जिसमें वर्त्तमान पीढ़ी के शिक्षार्थी बाल्यावस्था से ही अवगाहन करते आ रहे हैं। उनकी भाषा और शैली साधारण जनों के लिये भी बोधगम्य और सुलभ हैं। अतः उनकी लेखनी की छाप हम सब पर पड़ी है। कवि और लेखक बनाने में उन्होंने द्विवेदीजी का-सा नाम कमाया है। इस 'दीपक' से बिहार में अनेक दीपक जगमगा रहे हैं।

आज के कितने ही सुप्रसिद्ध कवियों की कविताओं को मास्टर साहब दुरुस्त कर 'बालक' में छापते और उनका उत्साह बढ़ाते थे। बिहार के ही नहीं, अन्य प्रान्तों के भी कई वर्त्तमान प्रसिद्ध कवियों की बाल-रचनाएँ 'बालक' में छपा करती थीं। इन होनहार कवियों का उत्साह बढ़ाने के लिये उन्होंने बहुतों की रचनाएँ 'बालक' में सचित्र छापी थीं। आज उनमें से अनेक कवि हिन्दी संसार में चमक रहे हैं।

मास्टर साहब ने बिहार में विद्या प्रचार को एकदम आसान कर दिया है। उन्होंने जिस विषय पर लेखनी उठाई, कमाल कर दिया। वे बाल-साहित्य के निर्माण में अपना सानी नहीं रखते।

वे देखने में तो 'भंडार' के विशाल कार्यभार से दबे रहते हैं, पर एकान्तवासी योगी की तरह उनकी आत्मा निर्लिप्त रहती है।

उन्हें सूझती [illegible] है। [illegible] का आशय हमलोगों को तब

जान पड़ता है जब उसका परिणाम निकल चुकता है। हम उनकी दूरदर्शिता पर आश्चर्यित रह जाते हैं।

वे नियम के बड़े पाबन्द हैं। औरों को भी वे ऐसा ही देखना चाहते हैं।

'अतिथिदेव' के तो वे प्रत्यक्ष आदर्श हैं। कोई भी अतिथि उनके यहाँ से सन्तुष्ट होकर ही जाता है। 'भंडार' में हरिनाम-कीर्त्तन सदा करते कराते रहते हैं। भूकम्प से क्षति ग्रस्त कितने ही देव-मन्दिरों का उन्होंने पुनरुद्धार करवाया है। जैसे—स्थानीय गिरिजास्थान, बेहटा की ठाकुरबारी, बहादुरपुर का दुर्गास्थान आदि। साधु ब्राह्मणों में उनकी बड़ी भक्ति है। कितने ही दीन ब्राह्मणों का उपनयन संस्कार कराया, कितनों को धन देकर विवाह श्राद्धादि करवा दिये। बिहार-प्रादेशिक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का भवन पटना में जिस जमीन पर पहले बनने-वाला था, उसे खरीदने के लिये पूरी सहायता उन्होंने ही दी थी। कितनी ही संस्थाएँ उनके दान से चल रही हैं।

मास्टर साहब अपने कर्मचारियों को नौकर नहीं, बल्कि 'भंडार'-परिवार का सदस्य समझते हैं। यदि किसी कर्मचारी से भूल हो जाती है एक अभिभावक की तरह उसे मिठास के साथ डाँटकर समझा देते हैं। कुछ क्षणों के बाद ही उसे बुलाकर स्नेह भी जताते हैं।

एक बार पहले-पहल वे अपनी जमीन्दारी पर गये। मैं साथ था। वहाँ की प्रजा नियमानुसार उनसे मिलने आई। सबने योग्यतानुसार नजराना भी दिया। नजराना देखकर वे रोने लगे। बोले—रैयत खेत जोतती है, लगान देती है, यह क्या है? गरीबों से नजराना लेना सरासर अन्याय है।"

नजराना तो लौटा ही दिया, लगान की वसूली में भी एक आना फी रुपये छूट दे दी। ऐसी है उनकी प्रजा-वत्सलता।

क्षमा के तो वे साकार रूप ही हैं। जो उनकी बुराई करता है, उसकी भी भलाई ही सोचते हैं। बुराई करनेवाले फिर स्वयं उनके यहाँ आकर क्षमाप्रार्थी होते हैं। वे प्राय कहा करते हैं—"द्वेष से द्वेष का शमन नहीं होता।"

मितव्ययी भी परले सिरे के हैं। निजी खर्च उनका ठीक साधुओं का-सा है। दिखावा या आडम्बर तो वे जानते ही नहीं।

सदाचार की तो वे मूर्त्ति ही हैं। खाने में, पहनने में, चाल-ढाल में, सब में सदाचार ही की झलक। सहनशीलता तो मानों उन्हीं के बाँटे पड़ी है। निजी काम या व्यापार में कितनों ने उनको धक्का दिया, पर वे हिमालय की तरह अडिग रहे। धक्का देनेवाले स्वयं ही मुँह की खाते हैं।

वे निर्भीक भी एक ही हैं। आज तक ऐसा कोई देखने में न आया जो उन्हें धमकाकर नाजायज फायदा उठा ले। बड़े-बड़ों को मुँहतोड़ जवाब दे डालते हैं।

लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की उनपर कृपा है। फलत उनके मित्रों की भी कमी नहीं है, पर अधिकतर मित्र मतलबी हैं। वे भी उन्हें पहचानते हैं, पर अपने मृदु स्वभाववश कुछ बोलते नहीं। उन्हें कई बार बनावटी मित्रों ने धोखा भी दिया है, पर उनकी तो नीति है—"उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।" ईश्वर उनको चिरायु करे।

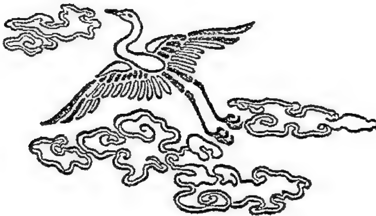

मास्टर साहब : एक अध्ययन

श्रीहवलदार त्रिपाठी 'सहृदय', साहित्याचार्य, 'बालक'—कार्यालय

जनवरी, १९३७ मे पहले-पहल लहेरियासराय आया। एक लड़के एक मित्र ने अँगुलि-निर्देश कर कहा—"वह देखो, वे ही मास्टर साहब हैं।" मैं कुछ भी इसका अर्थ न समझ सका।

सर में अँगोछा बाँधे, पैर मे बिलकुल मामूली जूते, हाथ में एक मोटी-सी छड़ी, शीत के सुबह मे भी सिर्फ एक ऊनी कुरता, चाल ऐसी जैसी मीलों चलकर आ रहे हो, एक कर्मशील गृहस्थ की अस्तव्यस्तता समेटे भला मैं सोचता भी कैसे कि कोरियो पुस्तको के लेखक और सम्पादक तथा 'भडार'-जैसी विशाल सस्था के सस्थापक एव सचालक मास्टर साहब यही हैं।

उस समय तक मैं श्रद्धेय 'मास्टर साहब' का नाम अच्छी तरह जान गया था। बचपन की कई पुस्तकों मे इनका नाम देखा था। पढा भी था इनकी लिखी पुस्तकों को। साहित्यानुरागवश 'बालक'-सम्पादक के रूप में तो और भी अधिक जानता था।

तब से मैंने बराबर यह देखा और समझा कि मास्टर साहब अपनी धुन के पक्के, बड़े ही दूरदर्शी एव 'नक्षत्री' पुरुष हैं—एक सच्चे वैज्ञानिक की तरह चिन्तनशील और कर्मपरायण हैं—आज तक अपने अनुसधान मे कभी कच्चे नहीं निकले—एक सच्चे साधक की तरह किसी काम की साधना करते हैं। असफलता शायद इनके यहाँ कोई शब्द ही नहीं है। विघ्न-बाधा देखकर समुद्र की तरह पहले तो क्षुब्ध होते हैं, किन्तु आ पड़ने पर हिमालय की तरह दृढ हो जाते हैं।

शुरू में छ मास तक विद्यापति प्रेस मे इस रूप में मैंने काम किया कि

इनसे मेरा परिचय तक भी न हो पाया। इसका एकमात्र कारण था मेरा संकोची स्वभाव।

एक रात, एक पुस्तकालय के वार्षिकोत्सव में, इन्होंने मेरी कविताएँ सुनीं। इतना प्रभावित हुए कि उसी समय सभापतिजी से कहलावा दिया—'त्रिपाठी के वेतन में पाँच रुपये की मैंने वृद्धि कर दी।'

मास्टर साहब की यह गुणग्राहकता देखकर मेरा मन इनके समीप तक जाने के लिये तड़पने लगा। ईश्वर की दया, मुझे इनकी खास देखरेख में काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अति समीप आकर मैंने अनुभव किया, मैं एक ऐसे उदार पुरुष के साये में बढ़ रहा हूँ, जिसने समस्त बिहार के अनेक लेखकों एवं कवियों को विविध रूपों में प्रोत्साहन एवं साहाय्य प्रदान किया है। बहुतों का तो स्वयं निर्माण भी किया है, समस्त बिहार का हिन्दी-क्षेत्र जिसकी विद्या-बुद्धि और उद्योगशीलता से उर्वर हुआ है, जिसका ऋण समस्त बिहार के हिन्दी-संसार पर है।

बिहार की साहित्यिक संस्कृति की सेवा जैसी मास्टर साहब के द्वारा हो रही है, वैसी सेवा करनेवाले गिने चुने कुछ ही बिहारी मिल सकेंगे। बिहार का इतना बड़ा भक्त आज मेरी नजरों में शायद एक भी नहीं है।

मास्टर साहब का हृदय एक ऐसे गृहपति का हृदय है जो सारे परिवार की चिन्ता में सदा व्यस्त रहता है और फूला-फला एवं भरा-पूरा घर देखकर नितान्त प्रसन्न भी। इसीलिये अपने कर्मचारियों के साथ अपने परिवार के सदस्यों की तरह व्यवहार करते हैं।

इनकी सहनशीलता का मैं सदा से कायल रहा हूँ। बड़ी-से-बड़ी मेरी भूलें एक सच्चे मास्टर की तरह सहानुभूतिपूर्वक डाँट-डपटकर क्षमा कर दी हैं। किसी भी कर्मचारी की पराकाष्ठा पर पहुँची गलतियों में तबतक विष की तरह पीते जाते हैं जबतक इनके प्राण न घुटने लगें। सरल हृदय ऐसे कि किसी के प्रति उठी विरोध-भावना छिपाकर रख नहीं पाते। कहा करते हैं—"घर में उचित डाँट-डपट नहीं करेंगे तो कहाँ करेंगे।"

एक बार मैं किसी काम से स्टेशन जा रहा था। रास्ते में 'भंडार' का पियन डाक लिये हुए मिला। मैंने तुरत उससे डाक का थैला लेकर अपनी चिट्ठियाँ ढूँढ डालीं। एक सज्जन मेरी गलती देख रहे थे। उन्होंने तुरत आकर मास्टर साहब से कह दिया कि त्रिपाठी रास्ते में डाक देख लिया करते हैं। सचमुच यह बड़ा भारी अपराध था, पर सुचतुर मास्टर साहब ने मेरी नादानी और उक्त सज्जन की सज्जनता तुरत ताड़ ली। सिर्फ इतना ही, मुस्कुराते हुए कहा—"देखो,

यह एक अक्षम्य अपराध है। आगे ऐसा कभी न करना। डाक ही संस्था की जान है। नियम का उल्लघन होने से सस्था की हानि हो सकती है।"

मास्टर साहब का विश्वासी कर्मचारी उनका पुत्र-तुल्य प्यारा है। आँख मूँदकर उसको कार्य-भार और धन सौंप देते हैं। मैंने अन्यान्य सम्पादकों की बातें सुनकर समझा है कि हिन्दी-ससार के विरले ही सम्पादक और पत्र-सचालक मास्टर साहब जैसा अपने सहकारी को सुविधा और स्वतत्रता देते हैं। साहित्य-सेवा में जिस तरह अपनेको इन्होने खपा दिया है, उसी तरह ये अपने लहू से अर्जित धन का भी परार्थ उत्सर्ग करते रहते हैं।

रामगढ-काग्रेस के अवसर पर देशरत्न राजेन्द्र बाबू को ऐसा कोई भी प्रकाशक न मिला जो 'बिहार—एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन'-जैसी बडी पुस्तक एक सप्ताह में छपवा कर दे दे। उन्होंने इसका भार मास्टर साहब के ही सर पटका। सयोग की बात, मैं अपनी छुट्टी बिताकर घर से लहेरियासराय आ रहा था। मास्टर साहब पटना में ही थे। वहीं से इन्होंने उक्त इतिहास की तैयार कापी के साथ मुझे बनारस भेज दिया और शिवपूजनजी को छपरा तार दिया कि आप कालेज से एक सप्ताह की छुट्टी लेकर बनारस जाइये, त्रिपाठी कापी लेकर बनारस गया।

इतना ही नहीं, उसी काग्रेस के कला-विभाग के लिये देशपूज्य राजेन्द्र बाबू ने बिहार का एक चित्रमय इतिहास भी तैयार कराया था, जिसमे भारत के विभिन्न प्रान्तों के नामी कलाकारो ने हाथ बँटाया था। मास्टर साहब ने इस काम के लिये अपने प्रसिद्ध कलाकार श्रीउपेन्द्र महारथी को सवेतन सात मास की छुट्टी दी थी, ताकि भैया महारथी को काग्रेस से कुछ न लेना पडे।

वह चित्रबहुल पुस्तक भी काग्रेस के अधिवेशन से एक-डेढ सप्ताह ही पहले तैयार हुई। उसके लिये ब्लॉक बनकर छपवाने में शीघ्रता के कारण हजारों का टोटा पडा। मगर मास्टर साहब का साहस कार्यभार बढता देखकर पूर्णेन्दु-दर्शी सागर की तरह चढता ही गया। खास इसी काम के लिये कई बार महारथी जी को कलकत्ता भेजा। ठीक अवसर पर सुन्दर चीज तैयार कर बिहार-प्रान्त की लाज रखने और गौरव वृद्धि करने के लिये पानी की तरह रुपये खर्च किये।

मास्टर साहब ने इन कामो में हजारों का घाटा उठाकर भी बिहार की काग्रेस का गौरव बढ़ाया। देशमान्य राजेन्द्र बाबू को ऐसी आशा न थी, पर इन्होंने गुपचुप सारा काम आशातीत ढँग से पूरा करके उनके सामने रख दिया। ऐसे कामों में साहस दिखलाने के लिये मास्टर साहब अनन्वय हैं।

उसी काग्रेस के अवसर पर श्रद्धेय राजेन्द्र बाबू अर्थ-सग्रह के निमित्त

जब मैं भारतवर्ष के अनेक तीर्थों मे भ्रमण करता हुआ मास्टर साहब के समक्ष आया, तब मेरी पूर्ण युवावस्था पर ध्यान देते हुए आपने जो कुछ भी मुझे उपदेश दिया वह मेरे मत से प्रत्येक युवक साधु के ध्यान देने योग्य है। आपने कहा—"क्या मनुष्य का यही कर्त्तव्य है कि जब वह कमाकर खाने-खिलाने योग्य जवान हो जाय, तब अपनी बूढ़ी मा और बूढे पिता तथा आश्रित कुटुम्बियों का ध्यान न रख जवानी की मस्ती म देश-विदेश घूमता फिरे और घरवाले उसके लिये तड़पते रहें? जीवित माता पिता से बढ़कर कोई तीर्थ पृथ्वी पर नहीं है। विरक्ति की भी अवस्था निश्चित है।"

आपने मुझे समझाते हुए फिर कहा—"एक मनुष्य पृथ्वी पर खड़ा हो, दूसरा ऊँचे कोठे पर। अगर दोनो किसी प्रकार गिर जाय तो अधिक चोट ऊचाई से गिरनेवाले को लगेगी। मनुष्य-शरीर काम क्रोधादि का अड्डा है। गलत रास्ते पर साधु और गृहस्थ दोनो ही जा सकते हैं। परन्तु, गृहस्थ से अधिक साधु ही भगवान् के दरबार मे दण्डित होगा। चोरी करने पर एक मूर्ख देहाती की अपेक्षा एक कानून जाननेवाला चोर सिपाही अधिक दण्डित होता है। सोचो, दूसरे के द्वारा दिये हुए अन्न को खाकर जो भजन करते हैं, उनके पुण्य का कुछ भाग अन्न देनेवाले को भी अवश्य मिलता है। इसलिये उत्तम यह है कि मनुष्य अपने परिश्रम से उपार्जन करके खाय खिलाये और निश्चिन्त होकर भगवान् का भजन करे। जो अपने आश्रितों की आशा पर पानी फेरकर, जीवन-संग्राम से कतराकर, दूसरों के अन्न के भरोसे, भरी जवानी मे, साधु होता है, वह अपनी आत्मा को तो धोखा देता ही है, समाज के बोझ को भी भारी बनाता है।"

आपके उपर्युक्त उपदेशों से मेरा शीघ्र भ्रमभंजन हुआ और मैं पुन गृहस्थ बनकर भगवद्भजन करने लगा। अब मेरी माता की धुँधली हुई आँखों में सचमुच जोत जग गई है।

जब आपको रायसाहब की उपाधि गवर्नमेंट से मिली, तब मैं खुश होता हुआ आपको बधाई देने गया। तब भी आपने यही कहा—"प्रभु के प्रसाद से ही यह उपाधि मिली है, उसकी कृपा के पात्र पर सबकी कृपा होती है।" यदि कोई दूसरा व्यक्ति होता, जो आपकी तरह गरीब से धनी होकर इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त करता, तो वह मारे घमंड के अपने सामने दूसरा को तुच्छ समझ किसी से भर-मुँह बोलता तक नहीं। परन्तु, यह भगवान् का अटल विश्वास ही है जो आपको सांसारिक वैभव के अहंकार मे लिप्त नहीं होने देता।

आज से पचीस वर्ष पहले बिहार म कोई ऐसा सा॰॰ प्रकाशक नहीं था, जो बिहार के होनहार लेखकों को आश्रय और प्रोत्साहन देकर आगे बढ़ाता।

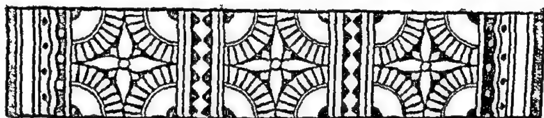

श्रीरामलोचनशरणजी का आदर्श जीवन

पंडित ब्रजविहारी त्रिवेदी, हिल्सा (पटना)

मैं एक साधारण ग्रामीण ब्राह्मण हूँ। जब नवें क्लास का विद्यार्थी था, अचानक सांसारिक झंझटों के चपेट में पड़, अत्यधिक मानसिक चिन्ताओं के निवारणार्थ, श्रीअयोध्या जाकर, भगवान् श्रीराम के शरणागत हो गया। ग्यारह वर्षों तक वैष्णव साधु के वेश में देश-भर भटकता फिरा।

एक बार जनकपुर जाते हुए, भगवान् की प्रेरणा से, लहेरियासराय में, श्रीरामलोचनशरणजी के 'पुस्तक-भंडार' में आया। मैंने इनकी भगवद्भक्ति तथा भक्तों के प्रति इनकी अविरल प्रीति की बातें सुनी थीं। प्राय वे सारी बातें सच्ची दीख पड़ीं। नियमपूर्वक दोनों जून एकांत कोठरी में प्रभु की पूजा करना—सन् १९३५ से आज तक मैं अपनी आँखों देखता आ रहा हूँ। इनकी जन्म-भूमि श्रीजनकपुर-धाम के पास ही है। मुझे योगिराज महाराज जनक के गुणों में से कई गुण इनमें दिखलाई पड़े। जैसे—गृहस्थ रहते हुए भी भगवद्भक्ति में अनुरक्ति तथा भागवतों की पूरी सेवा, आप गृहस्थ के रूप में ही साधु हैं।

सन् १९३४ के भूकम्प से जब समस्त मिथिला ध्वस्त हुई, तब 'पुस्तक-भंडार' को भी लाखों की क्षति हुई। उस समय दत्तजी के पूछने पर इन्होंने ईश्वर में अपने अटल विश्वास का परिचय देते हुए कहा था कि जिस प्रभु ने 'भंडार' को बनाया था उसी की इच्छा से वह नष्ट हुआ है और यदि वह फिर चाहेगा तो इसे पहले से भी सुन्दर बना देगा।

इनका वह अटल विश्वास अक्षरश चरितार्थ हुआ। 'भंडार' अपने अनेक प्रतिस्पर्द्धियों का सामना करते हुए प्रति दिन उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। यह प्रगतिशीलता ईश्वर की कृपा ही की प्रेरणा तो है।

जब मैं भारतवर्ष के अनेक तीर्थों में भ्रमण करता हुआ मास्टर साहब के समक्ष आया, तब मेरी पूर्ण युवावस्था पर ध्यान देते हुए आपने जो कुछ भी मुझे उपदेश दिया वह मेरे मत में प्रत्येक युवक साधु के ध्यान देने योग्य है। आपने कहा—"क्या मनुष्य का यही कर्त्तव्य है कि जब वह कमाकर खाने खिलाने योग्य जवान हो जाय, तब अपनी बूढ़ी मा और बूढ़े पिता तथा आश्रित कुटुम्बियों का ध्यान न रख जवानी की मस्ती में देश-विदेश घूमता फिरे और घरवाले उसके लिये तड़पते रहें? जीवित माता-पिता से बढ़कर कोई तीर्थ पृथ्वी पर नहीं है। विरक्ति की भी अवस्था निश्चित है।"

आपने मुझे समझाते हुए फिर कहा—"एक मनुष्य पृथ्वी पर खड़ा हो, दूसरा ऊँचे कोठे पर। अगर दोनों किसी प्रकार गिर जायँ तो अधिक चोट ऊँचाई से गिरनेवाले को लगेगी। मनुष्य-शरीर काम-क्रोधादि का अड्डा है। गलत रास्ते पर साधु और गृहस्थ दोनों ही जा सकते हैं। परन्तु, गृहस्थ से अधिक साधु ही भगवान् के दरबार में दंडित होगा। चोरी करने पर एक मूर्ख देहाती की अपेक्षा एक कानून जाननेवाला चोर सिपाही अधिक दंडित होता है। सोचो, दूसरे के द्वारा दिये हुए अन्न को खाकर जो भजन करते हैं, उनके पुण्य का कुछ भाग अन्न देनेवाले को भी अवश्य मिलता है। इसलिये उत्तम यह है कि मनुष्य अपने परिश्रम से उपार्जन करके खाय खिलाये और निश्चिन्त होकर भगवान् का भजन करे। जो अपने आश्रितों की आशा पर पानी फेरकर, जीवन-संग्राम से घबराकर, दूसरों के अन्न के भरोसे, भरी जवानी में, साधु होता है, वह अपनी आत्मा को तो धोखा देता ही है, समाज के बोझ को भी भारी बनाता है।"

आपके उपर्युक्त उपदेशों से मेरा शीघ्र भ्रमभंजन हुआ और मैं पुनः गृहस्थ बनकर भगवद्भजन करने लगा। अब मेरी माता की धुँधली हुई आँखों में सचमुच जोत जग गई है।

जब आपको रायसाहब की उपाधि गवर्नमेंट से मिली, तब मैं खुश होता हुआ आपको बधाई देने गया। तब भी आपने यही कहा—"प्रभु के प्रसाद से ही यह उपाधि मिली है, उसकी कृपा के पात्र पर सबकी कृपा होती है।" यदि कोई दूसरा व्यक्ति होता, जो आपकी तरह गरीब से धनी होकर इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त करता, तो वह मारे घमंड के अपने सामने दूसरों को तुच्छ समझ किसी से भर-मुँह बोलता तक नहीं। परन्तु, यह भगवान् का अटल विश्वास ही है जो आपको सांसारिक वैभव के अहंकार में लिप्त नहीं होने देता।

आज से पचीस वर्ष पहले बिहार में कोई ऐसा सजग प्रकाशक नहीं था, जो बिहार के होनहार लेखकों को आश्रय और प्रोत्साहन देकर आगे बढ़ाता।

८७३

पाठ्य पुस्तकें भी अधिकतर बाहर से आती थीं और इस प्रकार हर साल हजारों रुपये इस प्रान्त से बाहर चले जाते थे। ईश्वर की प्रेरणा से आपने 'पुस्तक-भंडार' की स्थापना करके विहार के लेखकों को तो बाहर भटकते फिरने से बचाया ही, आपने प्रान्त को भी उस आर्थिक हानि से बचाया जो बरसों से हर साल होती थी। इस प्रकार आपने विहार को आर्थिक दृष्टि से भी लाभ पहुँचाया और साहित्यिक दृष्टि से तो कहना ही क्या। वास्तव में आगे आनेवाली पीढ़ी के लिये आपका आदर्श जीवन सच्चा मार्गदर्शक है।

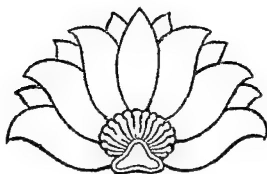

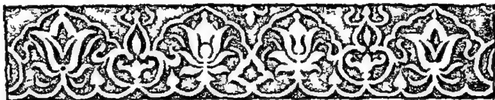

कृतज्ञताञ्जलि

श्रीरामानुग्रह मिश्र; विष्णुपुर, (मुजफ्फरपुर)

बात सम्भवतः १९२२ या २३ ईसवी की है। तब 'भंडार' एक छोटी-सी दूकान में था। मैं दरभंगा गया था—यहाँ के एक प्रतिष्ठित श्रीवास्तव कायस्थ के यहाँ विवाह के तिलक में। उस समय मेरा बड़ा लड़का सीतामढ़ी के हाइस्कूल में पढ़ता था। उसके लिये कुछ पुस्तकें खरीदनी थीं।

'भंडार' से पुस्तकें खरीदने गया, तो दूकान पर बाबू रामलोचनशरण भी पहुँच गये। मैंने उनके निकट जाकर पुस्तकों की सूची सामने रख दी। सबका दाम उन्होंने उन्नीस रुपये पाँच आने बताया। मैं निराश हो चुपचाप उठकर चलने लगा।

श्रीशरणजी ने पूछा—"लौटते क्यों हैं, पण्डितजी ?"

मैंने कहा—"मेरे पास केवल दस रुपये हैं। विचारकर आया था, यदि इतने में पुस्तकें मिल जायँगी तो ठीक नहीं तो लड़के को स्कूल से हटा घर बैठा दूँगा। औकात कहाँ है कि किताबों में इतना दाम लगाऊँ। *भगवान की यही इच्छा है। मैं क्या कर सकता हूँ।"*

उन्होंने मुझे बैठाया। मेरे पास जो रुपये थे, ले लिये। कुल पुस्तकें देकर मुझे ढाढ़स दिया। उनकी इस उदारता पर मैं अवाक् था। मुँह बन्द था, हृदय आनन्द-गद्गद। उनके आभार से मैं दबा जाता था। मेरी दो मूक आँखों ने उन्हें तथा उनके 'भंडार' को आशीर्वाद दिया। फिर मौन कृतज्ञता प्रकट कर चला आया।

यह बात मुझे आज तक नहीं भूली। 'भंडार' की वर्त्तमान उन्नत अवस्था देखकर मेरा रोम रोम पुलकित हो उठता है। यह उन्नति इस तरह के असंख्य उपकारों का प्रत्यक्ष फल है।

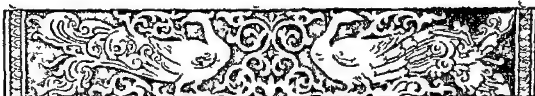

'पुस्तक-भंडार' की सिलवर जुबली

मुहम्मद सुलेमान अशरफ, दरभंगा

'पुस्तक-भंडार' किताबों और अखबारों का एक कारखाना और खजाना है। इसकी बुनियाद डालनेवाले बाबू रामलोचनशरणजी हैं। आप विद्या के प्रेमी, हमदर्द-कौम और मुल्क की भलाई चाहनेवाले हैं। आप ही की कोशिश से यह कारखाना कायम हुआ और आज ऊँचे दर्जे पर पहुँच गया है। 'भंडार' की सिलवर-जुबली और आपकी गोल्डेन जुबली—दोनों के जलसे एक साथ मिल-कर और भी आलीशान हो गये हैं।

यह मानी हुई बात है कि अगर कोई आदमी आम लोगों के फायदे के लिये कोई काम शुरू करता है, तो शुरू में बहुत-से एतराज पेश आते हैं और लोग फब्तियाँ कसने लगते हैं, लेकिन जब वह किसी की परवा नहीं करता और अपना काम खुदा के भरोसे किये जाता है, तब कुछ ही दिनों में वह अपनी मुराद को पहुँच जाता है, और फब्तियाँ कसनेवाले खुद झक मारकर उसके झंडे के नीचे चले आते हैं।

इसका अंदाजा आप इससे कर सकते हैं कि जो भी ऋषि, मुनि, पीर, महात्मा गुजरे हैं, उन्हें भी शुरू में बहुत ज्यादा मुश्किलें झेलनी पड़ीं। वे बुरे-भले कहलाये। यहाँ तक लोग पीछे पड़े कि उनके जानी दुश्मन भी हो गये, लेकिन फिर अखीर में शरमिन्दा हो माफी माँगकर उनकी सेवा करनी पड़ी। ठीक यही हालत आपके 'भंडार' की भी हुई है।

सब लोगों को यह मालूम है कि जाहिलों के पढ़ाने की स्कीम के मुताबिक आपने महमूद-सीरिज की एक सौ किताबों का एक सेट् तैयार कराकर लोगों के सामने रख दिया। इन किताबों के पढ़ लेने से इन्सान को किसी जरूरी बात के लिये दूसरों का मुँह ताकना नहीं पड़ता। आपने जिहालत दूर करने के सिलसिले में नये तरीके के कई चार्ट निकाले और उन्हें मुफ्त बाँटकर मुल्क और कौम की बहुत बड़ी खिदमत की।

इन सब खूबियों के बदले खुदगज लोगों ने 'भडार' और उसके सर-परस्त आपको बेजा इल्जाम देने की कोशिशें की और अपने इलजाम को सही साबित करने के लिये किताब के अदर से वर्क निकालकर उसकी जगह वैसे ही दूसरे नये वर्क लगा दिये। उनमें गलत और काबिल एतराज अलफाज इस्तेमाल करके पब्लिक में प्रोपगडा किया और जगह-जगह सभाएँ करके 'भडार' को दोषी बनाने की कोशिश की। मगर 'भडार' अपनी सचाई की वजह से बेकसूर साबित हुआ। बकौल बडों के—

"सच्चे की तो इज्जत ही बढेगी जो करें जाँच
मशहूर मसल है कि नहीं साँच में कुछ आँच"

आपने 'मयानों के पढने के लिये पहली रीडर' नाम की एक किताब लिखकर अनपढ लोगों की जिहालत के दूर करने में बडी मदद की है। यह किताब बेहद मुफीद है। मुल्क की इस खिदमत के लिये सरकार से आपको एक मेडल भी मिला है।

हिन्दुस्तानी जबान मे, फारसी और नागरी दोनों हुरूफ में, आपने, 'होनहार' माहवार निकाला। यह लाजवाब रिसाला साबित हुआ। उसकी तारीफ मे बडे-बडे आलिम-फाजिल लोगो और अखबारों के एडिटर वगैरह के खतूत 'भडार' के दफ्तर मे मौजूद हैं। यहाँ तक कि तालीम के महकमे ने भी उसको मजूर किया। जामे मिल्लिया (देहली) और अजुमन तरक्की-उर्दू (दक्खिन हैदराबाद) ने भी इसकी खूब-खूब तारीफें कीं। मगर अफसोस कि कुछ लोगों ने 'होनहार' की होनहारी पर भी डाह की। सचमुच वह हिन्दू-मुसलिम एका के लिये एक अच्छा जरिया था।

एक नुक्ता और काबिल तहरीर यह है कि बिहार-सरकार ने जब हिन्दु-स्तानी जबान जारी करने का हुक्म दिया, तब 'भडार' ने ऐसी जबान में किताबें निकालीं, जो हकीकत में हिन्दुस्तानी जबान कहलाती है। इन किताबो में वे ही अलफाज ज्यादातर इस्तेमाल किये गये, जिन्हें हिन्दू और मुसलमान दोनो बोलते हैं। मगर आपस की फूट की वजह से हिन्दुओं को एतराज हुआ कि यह हिन्दु-स्तानी नहीं, बल्कि उर्दू है और मुसलमानो ने भी एतराज पेश किया कि यह बिलकुल हिन्दी है। अब आप ही बतायें कि 'भडार' ऐसी हालत मे कौन-सा रास्ता अख्तियार करे, जिससे दोनों को खुश कर सके।

एक दफा दरभगा जिले के 'जाले' थाने मे जनाब कलक्टर साहब की सदारत मे एक सभा हुई, जिसमे मुसलमानो ने इसी किस्म के एतराज पेश किये थे, जिसके जवाब मे आपने फरमाया कि अगर कोई साहब ऐसी किताब तैयार कर दें जो मुसलमानों के लिये मुफीद हो तो मैं उसे मुफ्त छापकर बाँट दूँगा।

आखिर 'बालिगों की किताब' तैयार की गई, जिसे आपने अपने खर्च से तीन हजार छापकर मुसलमानों की तालीम के लिये दे दिया। इसे कहते हैं कौम की हमदर्दी और मुल्क के लिये जॉ-निसारी। अब आप ही फैसला करें कि जो शख्स अपने मुल्क की इस तरह खिदमत करे उसकी हिम्मत बढाने के लिये हमारा क्या फर्ज हो सकता है। मगर अफसोस कि हमें इसका जरा भी खयाल नहीं।

चाहे कोई किसी जबान का लेखक क्यों न हो, 'भंडार' से ज्यादा उसकी कहीं कद्र नहीं। आपको इल्म की प्यास इतनी है कि अपनी इब्तदाई उम्र से लेकर आज तक इल्म की खिदमत करते रहने पर भी वह प्यास न बुझ सकी। जहॉ किसीने आपको कोई किताब देने की इत्तला दी और वह मुफीद साबित हुई, आप बेधडक उसे काफी उजरत देकर ले लेते हैं।

आपकी बराबर यह ख्वाहिश रहती है कि उर्दू की अदबी किताबें छापी जायें, मगर चंद मजबूरियों की वजह से आप अपने इस इरादे में पूरी तरह कामयाब न हो सके। मगर फिर भी आज आपने काफी तादाद में उर्दू की अदबी किताबें छाप डाली हैं, जिनके पढने से बहुत-सी बातों की जानकारी हम घर-बैठे हासिल कर लेंगें। हमारा खयाल है कि 'भंडार' की किताबें, हर लिहाज से, सिर्फ बिहार ही में नहीं, बल्कि तमाम हिन्दुस्तान में, अपनी नजीर आप हैं।

बाबू रामलोचनशरणजी का अखलाक भी काबिल तारीफ है। आपमें घमंड, दिखावा और गुस्सा तो नाम को भी नहीं है। आप छोटे-बडे सबसे एक-सॉ बर्ताव रखते हैं। कोई आदमी ऐसा नहीं जो आपसे मिलकर आपके बडप्पन की तारीफ न करता हो।

आप हर साल गरीब विद्यार्थियों को ज्यादा-से-ज्यादा तादाद में किताबें मुफ्त देते हैं। यही नहीं, बल्कि बहुतों के पढने का भी कुल खर्च दिया करते हैं, जो मशहूर है।

अपने मुलाजिमों के साथ भी आपका बर्ताव बहुत अच्छा है। आप उनके दुख दूर करने में 'हातिम' और इंसाफ में 'नौशेरवॉ' की मिसाल हैं।

हम बिहारियों—और खासकर दरभंगावालों—के लिये यह लाजमी है कि 'भंडार' की सिलवर-जुबली में, जो हकीकत में इल्म और अदब की—विद्या और साहित्य की—जुबली है, खुशियॉ मनायें, और साथ ही खुदा से यह दुआ करें कि 'भंडार' और इसके मालिक बाबू रामलोचनशरणजी जुग-जुग जियें, जिससे 'भंडार' की गोल्डेन-जुबली और आपकी डायमंड-जुबली इसी तरह एक साथ मनाने का मौका नसीब हो। आमीन।।।

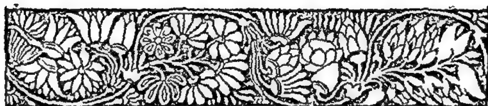

आभारमय हृदयोद्गार

[१]

श्रीमदनप्रसाद गुप्त विद्यार्थी, बी ए (बी एन कालेज, पटना)

बाबूजी (श्रीहवलदारी राम गुप्त 'हलधर') ने कहा—अपने चाचा को प्रणाम करो। सकुचाते हुए श्रद्धेय 'शरण' चाचा के पाँव छूकर प्रणाम किया। उन्होंने उठाकर गोद में बैठा लिया और लगे दुलारने। पूछा—'मदन, तुम क्या चाहते हो?' बार-बार आग्रह करने पर मैंने कहा—'बिलाई मौसी' किताब। इसपर उन्होंने खूब ठहाका लगाया—"तुम्हारी मौसी बिलाई? अच्छा, तुम अपने हाथ से मेरे पास पत्र लिखोगे तो मैं भेज दूँगा, मगर खबरदार, अपने हाथ से पत्र लिखना।"

घर पहुँचने पर कई दिनों के बाद बाबूजी ने कहा—"क्यों जी, अपने 'शरण' चाचा को पत्र लिखकर किताब मँगा लो न?" मैंने उदास होकर कहा—"मैं नहीं लिखूँगा। देने का मन तो था नहीं, पत्र का एक अड़गा लगा दिया। बड़े आदमी हैं।"

बाबूजी मेरे मन की बात ताड़ गये। बड़े लाड़ से समझाया—"देखो, उनका मतलब है कि मदन पत्र लिखना सीखे। तुम लिखकर देखो, भेजते हैं कि नहीं।"

बाबूजी का आदेश-पालन करने के सात दिन बाद एक बड़ा पार्सल लेकर डाकिया पहुँचा। मेरा नाम पूछकर उसने एक बड़ा पार्सल दिया। मेरे आनन्द की सीमा न रही। उछलते-कूदते किताबों को लेकर बाबूजी और माताजी को दिखलाया और कहा—"बाबूजी, सचमुच 'शरण' चाचा बड़े आदमी हैं।"

उस रोज से न जाने उनपर कितनी श्रद्धा है, जो उत्तरोत्तर बढ़ रही है।

[२]

श्रीवसुगुणजी झा, प्रधान—पुस्तक-बिक्री विभाग, 'भंडार'

सन् १९२८ ई० में पढ़ना छूट गया। मैं हिन्दी-पुस्तकों की एजेंसी करने लगा। 'भंडार' से पुस्तकें खरीदता और दरभंगा-दरबार में जाकर बेच आता।

स्वर्गीय महाराजाधिराज डाक्टर सर रामेश्वरसिंह बहादुर हिन्दी पुस्तकों के बड़े प्रेमी थे। प्रत्येक व्यक्ति उनसे मिलने का मौका पा सकता था। मैं उनकी सेवा मे उपस्थित हो जाता और वे कृपा कर पुस्तकें लाने की आज्ञा देते। सन् १९२८ ई० मे उनका स्वर्ग-वास हो गया। फिर भी मैं श्रीमान् राजा विश्वेश्वरसिंह बहादुर के दरबार मे पुस्तकें देता रहा। वर्त्तमान महाराजाधिराज के भागिनेय श्रीमान् कन्हैयाजी की कृपा मुझपर अब भी रहती है। वे बड़े साहित्यानुरागी हैं। साल में वे कई सौ रुपयों की पुस्तकें खरीदते हैं। सन् १९३० ई० में श्रीमान् मास्टर साहब की नजर मुझपर पड़ी। उन्होंने मुझे 'भंडार' का पुस्तक-विक्रय-विभाग सौंप दिया। उन्हीं की कृपा से मैं उत्तरोत्तर उन्नति करता आ रहा हूँ। उनकी विशेष आज्ञा है कि दूकान पर ग्राहकों के साथ सदा सचाई और नम्रता का व्यवहार हो।

[३]

श्रीरामभरोस झा, हेड प्रूफ रीडर, विद्यापति प्रेस

लगभग दो सौ कर्मचारी 'भंडार' और विद्यापति प्रेस मे काम कर अपने परिवार के सैकड़ों व्यक्तियो का पालन-पोषण कर रहे हैं। कौन जानता था कि एक साधारण निर्धन बालक अपने उद्योगरत से सम्पत्तिशाली बनकर बिहार का एक आदर्श पुरुष होगा। ठीक ही कहा है—

"वैभव की दीवानी दुनिया मत इतराना कोठों पर
दीनों के प्रति अपशब्दों को ला मत अपने होठों पर
कुटिया के कोने में कोई गुप्त पड़ा होवेगा लाल
जब आवेगा समय, उसी से हो जावेगा विश्व निहाल"

[४]

श्रीनन्दीपति दास, प्रूफ-रीडर, विद्यापति प्रेस

नवम्बर, सन् १९३९ मे एक युवक ने बेकारी और ऋण से तंग आकर ईसाई होने की ठानी। उसे मिशनवालों ने अच्छी-सी नौकरी की आशा दिलाई। वह अपने परिवार—माँ, स्त्री और दो बच्चों—के साथ लहेरियासराय के 'अमेरिकन मिशन' में विधर्मी होने आया। यह खबर स्थानीय आर्य-समाजियों को मिली। किन्तु, पादरियों की फटकार मे वे उस युवक तक न पहुँच सके।

इतने मे कुछ सज्जन आये और मिशन के भीतर चले गये। फाटक पर लोगों की भीड़ लगी हुई थी। लगभग आधे घंटे के बाद देखा गया कि वे लोग उस युवक को सपरिवार घोड़ा-गाड़ी पर चढ़ाकर मिशन से बाहर ले गये। पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे लोग स्थानीय 'पुस्तक-भंडार' के कर्मचारी थे और उसके धर्मप्राण

मालिक 'मास्टर साहब' ने युवक के उद्धारार्थ उन्हें यहाँ भेजा था। मास्टर साहब ने 'भंडार' में उस युवक को एक अच्छी-सी नौकरी दी है, ऋण-मुक्त किया।

एक दिन मैं सुबह आठ बजे के बदले बारह बजे 'भंडार' गया। मास्टर साहब ने मुझे कुछ डाँटकर कहा—"क्यों साहब, क्या यही समय की पाबंदी है? मैंने तो आपको आठ ही बजे बुलाया था, लेकिन अब तो बारह बज रहे हैं।"

मैं उनकी फटकार सुनकर कुछ भयभीत तथा निराश-सा हो गया। मुझे हतप्रभ देख उन्होंने बहुत ही मीठे स्वर से कहा—"हम भारतीयों को समय की पाबंदी का ध्यान नहीं है, इसीलिये हमलोग उन्नति की सीढ़ी पर नहीं चढ़ सकते।"

[५]

श्रीगौतमचरण उपाध्याय, प्रूफ रीडर, विद्यापति प्रेस

मेरे एक समीपी सम्बन्धी के अनुरोध और परामर्श से मास्टर साहब ने यह वचन दिया था कि ये लहेरियासराय आवें, जिस काम की ओर इनका झुकाव होगा उस काम में लगा दूँगा।

पन्द्रह-बीस दिनों के बाद मैं सन्ध्या-समय लहेरियासराय पहुँचा। मुझको देखते ही आप पहचान गये। पूछ-ताछ करने लगे। तबतक भोजन का समय हो गया। मैं बाजार-घाट उतरने की सोच रहा था, तबतक आपके घर से भोजन-सामग्री लेकर रसोइया पहुँच गया। मैनेजर साहब मुझे भोजन कराने आये।

मैं समझता था, मुझ-जैसे साधारण व्यक्ति के लिये बाजार से भोजन-सामग्री लाने की आज्ञा होगी। मुझे स्वप्न में भी ऐसी आशा न थी कि नौकरी के उम्मीदवार मुझ-जैसे नगण्य व्यक्ति की इतनी खातिरदारी होगी।

दूसरे दिन आप मुझे साथ लेकर प्रेस में गये। मैनेजर साहब से कहा—इनको प्रेस का काम सिखलाइये। उस समय जो काम मेरे जिम्मे किया गया, उसके लिये मैं पूर्ण योग्य न था, किन्तु आपकी स्नेहयुक्त कृपा ही का फल है कि आपने एक अनजान आदमी को भी आश्रय देकर अपनी दयालुता दिखलाई।

[६]

श्रीजगतारणप्रसाद, आफिस इञ्चार्ज, विद्यापति प्रेस

मामाजी (मास्टर साहब) परिश्रमी को ही होनहार समझते हैं। उसको वे अपना ही समझने लगते हैं। कहा करते हैं—"ईमानदारी और मुस्तैदी से काम करते रहना भावी उन्नति की निशानी है।" वे यह नहीं देखना चाहते हैं कि हमारे अपने ही लोग अकर्मण्य हों। कार्यतत्परता के लिये प्यार से समझाते हैं, रास्ता दिखाते हैं और कभी-कभी डाँट-डपट भी करते हैं। उनकी हर बात में हम-लोगों का कल्याण ही छिपा रहता है।

स्वर्गीय महाराजाधिराज डाक्टर सर रामेश्वरसिंह बहादुर हिन्दी पुस्तकों के बडे प्रेमी थे। प्रत्येक व्यक्ति उनसे मिलने का मौका पा सकता था। मैं उनकी सेवा मे उपस्थित हो जाता और वे कृपा कर पुस्तकें लाने की आज्ञा देते। सन् १९२८ ई० मे उनका स्वर्ग-वास हो गया। फिर भी मैं श्रीमान् राजा विश्वेश्वरसिंह बहादुर के दरबार मे पुस्तकें देता रहा। वर्त्तमान महाराजाधिराज के भागिनेय श्रीमान् कन्हैयाजी की कृपा मुझपर अब भी रहती है। वे बडे साहित्यानुरागी हैं। साल में वे कई सौ रुपयों की पुस्तकें खरीदते हैं। सन् १९३० ई० में श्रीमान् मास्टर साहब की नजर मुझपर पडी। उन्होंने मुझे 'भडार' का पुस्तक-विक्रय-विभाग सौंप दिया। उन्हीं की कृपा से मैं उत्तरोत्तर उन्नति करता आ रहा हूँ। उनकी विशेष आज्ञा है कि दूकान पर ग्राहकों के साथ सदा सचाई और नम्रता का व्यवहार हो।

[३]

श्रीरामभरोस झा, हेड प्रूफ रीडर, विद्यापति प्रेस

लगभग दो सौ कर्मचारी 'भडार' और विद्यापति प्रेस मे काम कर अपने परिवार के सैकडों व्यक्तियों का पालन-पोषण कर रहे हैं। कौन जानता था कि एक साधारण निर्धन बालक अपने उद्योगबल से सम्पत्तिशाली बनकर बिहार का एक आदर्श पुरुष होगा। ठीक ही कहा है—

"वैभव की दीवानी दुनिया मत इतराना कोठों पर
दीनों के प्रति अपशब्दों को ला मत अपने होठों पर
कुटिया के कोने में कोई गुप्त पडा होवेगा लाल
जब आवेगा समय, उसी से हो जावेगा विश्व निहाल"

[४]

श्रीनन्दीपति दास, प्रूफ-रीडर, विद्यापति प्रेस

नवम्बर, सन् १९३९ में एक युवक ने बेकारी और ऋण से तग आकर ईसाई होने की ठानी। उसे मिशनरियों ने अच्छी-सी नौकरी की आशा दिलाई। वह अपने परिवार—माँ, स्त्री और दो बच्चों—के साथ लहेरियासराय के 'अमेरिकन मिशन' में विधर्मी होने आया। यह खबर स्थानीय आर्य-समाजियो को मिली किन्तु, पादरियों की कटनार से वे उस युवक तक न पहुँच सके।

इतने में कुछ सज्जन आये और मिशन के भीतर चले गये। फाटक पर लोगों की भीड लगी हुई थी। लगभग आधे घटे के बाद देखा गया कि वे लोग उस युवक को सपरिवार घोडा-गाडी पर चढाकर मिशन से बाहर ले गये। पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे लोग स्थानीय 'पुस्तक-भडार' के कर्मचारी थे और उसके धर्मप्राण

मालिक 'मास्टर साहब' ने युवक के उद्धारार्थ उन्हें यहाँ भेजा था। मास्टर साहब ने 'भंडार' में उस युवक को एक अच्छी-सी नौकरी दी है, ऋण-मुक्त किया।

एक दिन मैं सुबह आठ बजे के बदले बारह बजे 'भंडार' गया। मास्टर साहब ने मुझे कुछ डाँटकर कहा—"क्यों साहब, क्या यही समय की पाबंदी है? मैंने तो आपको आठ ही बजे बुलाया था, लेकिन अब तो बारह बज रहे हैं।"

मैं उनकी फटकार सुनकर कुछ भयभीत तथा निराश-सा हो गया। मुझे हतप्रभ देख उन्होंने बहुत ही मीठे स्वर से कहा—"हम भारतीयों को समय की पाबंदी का ध्यान नहीं है, इसीलिये हमलोग उन्नति की सीढी पर नहीं चढ सकते।"

[५]

श्रीगौतमचरण उपाध्याय, प्रूफ-रीडर, विद्यापति प्रेस

मेरे एक समीपी सम्बन्धी के अनुरोध और परामर्श से मास्टर साहब ने यह वचन दिया था कि ये लहेरियासराय आवें, जिस काम की ओर इनका झुकाव होगा उस काम मे लगा दूँगा।

पन्द्रह-बीस दिनों के बाद मैं सध्या-समय लहेरियासराय पहुँचा। मुझको देखते ही आप पहचान गये। पूछ-ताछ करने लगे। तबतक भोजन का समय हो गया। मैं बाजार-घाट उतरने की सोच रहा था, तबतक आपके घर से भोजन-सामग्री लेकर रसोइया पहुँच गया। मैनेजर साहब मुझे भोजन कराने आये।

मैं समझता था, मुझ-जैसे साधारण व्यक्ति के लिये बाजार मे भोजन-सामग्री लाने की आज्ञा होगी। मुझे स्वप्न में भी ऐसी आशा न थी कि नौकरी के उम्मीदवार मुझ-जैसे नगण्य व्यक्ति की इतनी खातिरदारी होगी।

दूसरे दिन आप मुझे साथ लेकर प्रेस में गये। मैनेजर साहब से कहा—इनको प्रेस का काम सिखलाइये। उस समय जो काम मेरे जिम्मे किया गया, उसके लिये मैं पूर्ण योग्य न था, किन्तु आपकी स्नेहयुक्त कृपा ही का फल है कि आपने एक अनजान आदमी को भी आश्रय देकर अपनी दयालुता दिखलाई।

[६]

श्रीजगतारणप्रसाद, आफिस इञ्चार्ज, विद्यापति प्रेस

मामाजी (मास्टर साहब) परिश्रमी को ही होनहार समझते हैं। उसको वे अपना ही समझने लगते हैं। कहा करते हैं—"ईमानदारी और मुस्तैदी से काम करते रहना भावी उन्नति की निशानी है।" वे यह नहीं देखना चाहते हैं कि हमारे अपने ही लोग अकर्मण्य हों। कार्यतत्परता के लिये प्यार से समझाते हैं, रास्ता दिखाते हैं और कभी-कभी डाँट-डपट भी करते हैं। उनकी हर बात मे हम-लोगों का कल्याण ही छिपा रहता है।

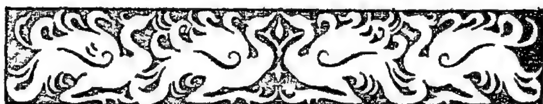

कुछ बाल्य स्मृतियाँ

[१] बाबू सत्तूठाकुर, राधाउर (मुजफ्फरपुर)—

रामलोचन के पिता महँगू शरण से हमारा भाई-चारे का रिश्ता था। हम दोनो समवयस्क थे। हमें रामलोचन की बोली बडी प्यारी लगती थी। जब हम इस बच्चे को देखते, बुलाकर पूछते—रामलोचन, तुम पढकर क्या करोगे? झट उत्तर मिलता—"मजिस्टर होंगे।"

[२] श्रीरीझू तिवारी, राधाउर—

राधाउर के रईसों के बहुत लडके स्कूल मे पढते थे, पर रामलोचन के समान होनहार लडका कोई नहीं था। उसका सुन्दर मुखड़ा देखकर यह कोई नहीं समझ सकता था कि यह गरीब घर का लड़का है। आज वह लखपति बनकर सैकड़ों की परवरिश कर रहा है। हमारे गाँव के उपकार के लिये भी कई ऐसे-ऐसे काम किये हैं कि उसका नाम अमर रहेगा।

[३] श्रीरामसागर तिवारी; राधाउर—

रामलोचनशरण ने हमारे गाँव का ही नहीं, बिहार का सिर ऊँचा कर दिया। इसका हमें गौरव है। हम दोनों साथी हैं। वह हमारे गाँव का रत्न है।

[४] श्रीसीताशरण तिवारी, राधाउर—

रामलोचनशरण के समान स्वस्थ और सुन्दर शरीर हमारे स्कूल के किसी भी छात्र का नहीं था। वह हमारा स्कूली साथी है। शरीर ही की भाँति उसकी स्मरण-शक्ति और बुद्धि भी पुष्ट थी। जो पाठ गुरुजी क्लास मे पढा देते थे, रामलोचन को वह उसी वक्त कठस्थ हो जाता था। पर उसको हम रात में पढते

नहीं देखते थे। फिर भी वह क्लास में अपना पाठ ठीक ठीक सुना दिया करता था। अपने सहपाठियों के साथ लड़ना उसको पसन्द नहीं था, पर यदि कोई लड़का उसका अपमान कर देता तो वह उसकी अच्छी खबर लेता—धनियों से भी दबना नहीं जानता था। कौन जानता था कि हमारा वह गरीब साथी बिहार में अपना स्थान ऊँचा कर हजारों का अन्नदाता बन जायगा ?

[५] श्रीकालीचरण तिवारी, राघाउर—

हम और रामलोचनशरण एक साथ ही स्कूल में पढ़ते थे। उसका बचपन का सुन्दर और स्वस्थ शरीर आज भी हमारी आँखों के सामने झलक जाता है। आज तो हमारा वह लंगोटिया दोस्त लाखों का राजा बनकर सैकड़ों का गुजर करा रहा है। उसने आज न केवल हमारे गाँव की, वरन् सारे बिहार की लाज रक्खी है।

[६] श्रीकुलदीप साहु, राघाउर—

रामलोचन बचपन में स्कूल से आकर घर में कभी-कभी खूब ऊधम मचाता था। पर उसमें पितृभक्ति ऐसी थी कि भाई साहब (उसके पिता) के आते ही वह शान्त हो जाता था।

[७] श्रीकेवल तिवारी, राघाउर—

रामलोचनशरण हमारा बचपन का साथी है। पढ़ने के समय इसका ध्यान दूसरी ओर नहीं जाता था। जिस क्लास में गुरुजी नया पाठ पढ़ाते थे, उस समय यह किसीसे नहीं बोलता था, बड़े गौर से नये पाठों को सुना करता था।

[८] प० झूमर झा, मकुनाही (मुजफ्फरपुर)—

यद्यपि हमारे घर में किसी चीज की कमी नहीं थी, तथापि शनिवार की पाठ-पूजा में गुरुजी को देने के लिये 'शनिचरा का पैसा' कभी-कभी हमें घर से नहीं मिलता था, और जब हम शरणजी से यह बात कहते थे तब वे अपना पैसा हमें दे दिया करते थे।

[९] श्रीद्वारिकालाल, मकुनाही (मुजफ्फरपुर)—

बाबू रामलोचनशरण के पिता और हमारे चाचा—दोनों में बड़ी अपनैती थी। शरणजी जब कभी हमारे यहाँ आते, यथा-योग्य सबको प्रणाम करते और बड़ी नम्रता से बातें करते थे। अब भी जब कभी मिलते हैं, पूर्ववत् प्रेम रखते हैं। आज लखपती होने पर भी उनमें लेशमात्र अभिमान नहीं है। वे परोपकार के लिये सदा तत्पर रहते हैं।

[१०] श्रीराजकुमार राउत, सहनियापट्टी (मुजफ्फरपुर)—

बाबू रामलोचनशरण कुछ दिनों तक हमारे गाँव मे लड़को को पढाया करते थे। उनका स्वभाव और उनकी बोली इतनी अच्छी थी कि जब वे लड़कों को पढाने लगते तब हम अपने काम-धाम छोड़कर वहाँ जा बैठते। उनकी मीठी बोली और लड़को को पढाना तथा डाँटना-डपटना सुनने में जी लगता था। वे बड़े खुशमिजाज और दिलेर हैं।

[११] श्रीसिंहेश्वर राउत, सहनियापट्टी (मुजफ्फरपुर)—

जब बाबू रामलोचनशरण हमारे गाँव मे पढाते थे, हमलोग पाठशाला में जाकर उनका पढाना सुन मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। वे थे तो छोटी अवस्था के, पर उनकी मीठी बोली में न जाने कैसा आकर्षण था! वही होनहार गुरुजी आज हमारे देश के रत्न हैं।

[१२] प० जयरुद्र झा, कंसारा (मुजफ्फरपुर)—

अपने गाँव मे भी शरणजी ने अपने पिताजी के नाम पर एक संस्कृत-विद्यालय खोल दिया है। उसमें हमारा छोटा बेटा पढ़ता है। हमारी यह चिर-अभिलाषा पूरी हो गई।

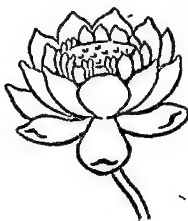

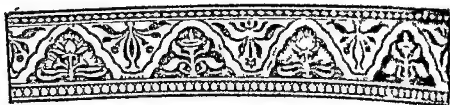

मेरे साहित्यिक गुरुदेव

प्रोफेसर हरिमोहन झा एम ए. (बी एन कालेज, पटना)

बचपन में हँसते-खेलते मेरी शिक्षा का क्रम चलता रहा। पंद्रह वर्ष की अवस्था तक मैं किसी स्कूल में भर्ती नहीं हुआ। हाँ, घर पर पूज्य पिताजी (पंडित जनार्दन झा 'जनसीदन') की संगृहीत पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ थीं। उन्हें मैं चट कर गया। क्लिष्ट होने के कारण जो समझ में नहीं आती थीं उन्हें छोड़कर शेष पुस्तकों और पत्रिकाओं का मैं रसास्वादन कर लेता था। यह [illegible] कि आठ-दस बक्सों में भरी हुई किताबों को मैंने चाट डाला। बाबूजी के यहाँ 'सरस्वती' शुरू से ही—१९०२ ई० से—नियमपूर्वक आती थी। उसकी पूरी फाइल का मैंने बारबार मथन कर डाला। मेरे लिए वही अध्ययन का कोर्स था।

एक दिन बाबूजी ने एक नई किताब लाकर मेरे हाथ में दी और कहा—"देखो, ऐसी पुस्तक अब तक कोई नहीं निकली थी। हिन्दी-व्याकरण की बहुत-सी बातें तुमको मैंने बतला दी हैं, किन्तु क्रमपूर्वक नहीं। इस पुस्तक में तुमको शृङ्खलाबद्ध रूप में व्याकरण के सभी नियम मिल जायेंगे। व्याकरण की ऐसी सुन्दर पुस्तक अभी तक कोई नहीं थी। इसे ध्यानपूर्वक पढ़ जाओ।"

मैंने पुस्तक हाथ में लेकर देखी। लिखा था—'व्याकरण[illegible]'। लेखक का नाम दिया हुआ था—'श्रीरामलोचनशरण'। [illegible] पुस्तक पाकर मैं उछल पड़ा। आद्योपान्त पढ़ गया। [illegible] भक्त बन गया। रचयिता के प्रति मेरी अटल श्रद्धा हो गई। [illegible] लेखक कितना भारी अनुभवी, विद्वान् और कलाकार होगा [illegible]

नियमों का ऐसे सुन्दर, सुसगठित और सुव्यवस्थित रूप में संकलन किया है। चुने हुए शब्दों में लक्षण बतलाये गये हैं। न एक शब्द अधिक, न एक शब्द कम। कोई भी विषय छूटने नहीं पाया है। उस अज्ञात लेखक की रचना-चातुरी और बारीक सूझ देखकर मैं मुग्ध हो उठा।

× × × ×

आज से करीब १७ वर्ष पहले की बात है। मेरी अवस्था प्राय चौदह वर्ष के लगभग थी। उन दिनों मेरे पिता दरभगा मे रहकर 'मिथिला-मिहिर' का सम्पादन करते थे। मैं रोज उनके साथ आफिस जाया करता था। वे अपने कार्य मे लग जाते थे और मैं 'विद्यार्थी,' 'माधुरी' 'इन्दु', 'मनोरजन' आदि मासिक पत्रो के समुद्र में डूब जाता था। हाँ, बाबूजी के डर से दो-एक किताबें हिसाब या अँगरेजी की भी साथ में रक्खे रहता था। मौका पाने पर झट उन्हें निकाल लेता था।

एक दिन शाम को बैठा मैं कुछ लिख रहा था। रविवार था। बाबूजी कहीं बाहर गये थे। इसलिये मैं नि शक होकर कुछ बाल-सुलभ रचनाओं के द्वारा अपना मनोरजन कर रहा था। इतने मे एक सम्भ्रान्त सज्जन बाबूजी की खोज में आ पहुँचे। मैंने उनके आते ही रचनावाली कापी पर हिसाब की बही रखकर हाथ मे पेंसिल ले ली थी, किन्तु उनकी तीक्ष्ण दृष्टि ने मेरी चालाकी भॉप ली। वे पूछ बैठे—"क्यों जी, अभी क्या लिख रहे थे?" मैंने कहा—"नहीं तो। चक्रवर्त्ती-अकगणित से एक त्रैराशिक बना रहा हूँ।" उन्होंने हँसकर कहा—"उस कापी को क्यो छिपा रहे हो? लाओ तो देखें।"

यह कहकर उन्होंने कापी हाथ में ले ली और मेरी रचना देखने लगे। मै सकोच से गडा जा रहा था। सरसरी तौर से देख जाने के बाद उन्होंने कहा—"क्यों जी, तुम तो अच्छा लिख लेते हो। कहीं से नकल तो नहीं की है? क्योंकि इसमे कहीं भी कुछ अशुद्धि नहीं है।" मैंने कहा—"'व्याकरण-चन्द्रोदय' के सभी नियमों को ध्यानपूर्वक मैंने समझ लिया है। इसी लिये लिखने में भूल नहीं होती।"

इसपर आगन्तुक सज्जन के होंठों पर मुसकुराहट आ गई, जिसका अर्थ मुझे पीछे मालूम हुआ। उसी समय बाबूजी आ पहुँचे। उन्होंने आगत सज्जन को बडे ही आदर-सत्कार के साथ बैठाया और जो साहित्य-चर्चा छिडी तो रात्रि जारी रही। शाम होने पर उन सज्जन ने जाने की इच्छा प्रकट की, किन्तु बाबूजी ने नहीं माना। रात में उन्हें वहीं भोजन करना पडा। भोजनोत्तर बाबूजी उन्हें विदा करने गये। जब लौटे तब मैंने पूछा—"कौन आये थे?" बाबूजी ने कहा—"यही थे बाबू रामलोचनशरण, जिनका लिखा 'व्याकरण-चन्द्रोदय' है।"

मैं अवाक् रह गया। जिसकी कल्पित मूर्त्ति इतने दिनों से मेरी उपास्य वस्तु थी, वह व्यक्ति मेरे यहाँ आकर स्वयं दर्शन दे गया और मैं कुछ अभ्यर्थना भी न कर सका। यह अफसोस बहुत दिनों तक मन में बना रहा।

× × × ×

सन् १९२७ ई० में मैंने मुजफ्फरपुर के कालेज से आइ० ए० की परीक्षा दी और पटना युनिवर्सिटी में सर्वप्रथम हुआ। परीक्षा के बाद घर पर समय बिता रहा था। एक दिन बाबूजी के नाम से निमन्त्रण-पत्र आया। मुजफ्फरपुर में अखिल-भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन होने जा रहा था। बाबूजी मुझे भी साथ लेते गये। 'हरिऔधजी' के सभापतित्व में कवि-सम्मेलन हो रहा था। बाबूजी ने अपनी कविताएँ पढ़कर सुनाईं। काव्यानुरागियों ने सराहना की। अन्त में बाबूजी के आदेश और उपस्थित सज्जनों की स्वीकृति से मैंने भी अपनी रचना सुनाई। समस्या थी—'समर में'। और लोगों ने इसकी पूर्त्ति वीररस में की थी। किन्तु मेरी सभी पूर्त्तियाँ हास्यरस की थीं। श्रोताओं को बहुत पसन्द आईं। स्वयं 'हरिऔध'जी ने मेरी आशुरचना से प्रसन्न हो मेरे गले में माला पिन्हा दी। एक सज्जन ने सभामंच पर आकर मेरे सामने पाँच रुपये मिठाई खाने के लिये रख दिये। दूसरे ने ५१ के पुरस्कार और तीसरे ने स्वर्णपदक की घोषणा की। सार्वजनिक सभा में प्रशंसित और पुरस्कृत होने का मेरा यह पहला मौका था। बाबूजी आनन्द से फूले नहीं समाये। सम्मेलन समाप्त होने पर बाबूजी के एक मित्र उन्हें बधाई देने लगे। मैंने पहचाना—अरे! यह तो वही रामलोचनशरणजी हैं। मैंने नम्रतापूर्वक अभिवादन किया। वे मुझे शाबाशी देते हुए बोले—"तुम्हारी प्रतिभा देखकर मुझे बहुत खुशी हुई। रचना का अभ्यास जारी रक्खो।"

दूसरे दिन हमलोग विदा हुए। बाबूजी को कार्यवश दरभंगा जाना था। इसलिये हमलोग शरणजी के दल में सम्मिलित हो गये। उनके दल में श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, श्रीजटाधर प्रसाद शर्मा 'विकल' (स्वर्गीय), श्रीछविनाथ पाण्डेय आदि थे। रास्ते-भर खूब विनोद होता रहा।

शरणजी के आग्रह पर हमलोग उन्हीं के यहाँ ठहरे। उस समय उनका 'पुस्तक-भंडार' बाल्यावस्था से किशोरावस्था में पदार्पण कर रहा था। अहाते के भीतर बीच में सुन्दर लाल कोठी थी और इसके सामने पान के पत्ते के आकार का हरी दूब का फर्श उसकी शोभा बढ़ा रहा था। एक लम्बा-चौड़ा दालान था जो साहित्यिकों का आवास स्थान था। उसी में हमलोग ठहराये गये। बड़ा आनन्द आया। भोजन की बेला हो गई थी। लेकिन इधर दो साहित्य-महारथी बिहारीलाल के एक दोहे को लेकर आपस में उलझे हुए थे। नवरस के सामने पद्‌रम को कौन

पूछता ? अन्ततः किसी प्रकार दोनों में सन्धि स्थापित होने पर लोग भोजन करने उठे। लेखक-गृह के पीछे चौका-घर था। भोजन के साथ-साथ व्यङ्ग्य-विनोद खूब चलता रहा। जब शाम को विनोद-गोष्ठी जमती तब सभी साहित्यिक झगड़ों की मिसलें श्रीशरणजी के सामने पेश होतीं और वे अपना फैसला सुनाते।

सन् १९२९ ई० में मैंने ऑनर्स के साथ बी० ए० पास किया। किन्तु घर की आर्थिक दशा ऐसी न थी कि एम्० ए० पढ़ सकूँ। इच्छा रहते हुए भी आगे का मार्ग मेरे लिये अवरुद्ध दीख पड़ता था। इसी उधेड़बुन में पड़ा था कि एक दिन अकस्मात् श्रीरामलोचनशरणजी की चिट्ठी मेरे नाम आ पहुँची। उसका आशय था—"छुट्टी में घर पर व्यर्थ समय क्यों बिता रहे हो ? कुछ दिनों के लिये यहाँ चले आओ।" मैं 'पुस्तक-भंडार' जा पहुँचा। देखा कि अनेक साहित्यिक अपने काम में लगे हुए हैं। वहाँ कुर्सी-टेबुलवाली सभ्यता नहीं थी। फर्श पर शतरंजी बिछी हुई थी और लेखक अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार लिख रहे थे। मैंने आश्चर्य के साथ देखा कि श्रीशरणजी भी उन्हीं लोगों के बीच में बैठे तन्मय होकर 'बालक' के लिये लेख लिख रहे हैं। वे एक मामूली धोती-मात्र पहने हुए थे। बदन पर और कोई कपड़ा न था। अन्य लेखकों में और उनमें कोई फर्क नहीं दीख पड़ता था। केवल एक मसनद उनके नजदीक रक्खी हुई थी। इतनी ही विशेषता थी। अपरिचित व्यक्ति को यह भान नहीं हो सकता था कि साधारण कर्मचारी की तरह उन्हीं के साथ काम करनेवाले ये ही सज्जन इतनी बड़ी संस्था के मालिक हैं। मुझे देखकर उन्होंने सहज भाव से, बिना किसी भूमिका के एक छपा हुआ कागज मेरे हाथ में रख दिया और कहा—"देखो तो, इसमें क्या-क्या गलतियाँ हैं।" मैं समझ गया, मेरी योग्यता की परीक्षा हो रही है। मैंने परीक्षार्थी की तरह धड़कते हुए हृदय से कुछ गलतियाँ निकालकर दिखलाईं। वे सन्तुष्ट-से होते हुए दीख पड़े। बोले—"हाँ, ठीक है। लेकिन एक और भूल है जो तुमने नहीं पकड़ी। 'स्वर्गीय राजा साहब की मृत्यु से जो देश की क्षति हुई है, उसकी पूर्त्ति होना कठिन है।' इस वाक्य में 'स्वर्गीय' शब्द का व्यवहार आक्षेप्य है। मृत्यु जीवित व्यक्ति की होती है, स्वर्गीय की नहीं। इसलिये केवल 'राजा साहब की मृत्यु' लिखना ही उचित था।"

यह मेरा पहला सबक था। शरणजी विद्वत्समाज में 'मास्टर साहब' के नाम से सम्बोधित होते हैं। न जाने वे कितनों के साहित्यिक गुरु होंगे। आज से मैं भी उनकी शिष्य-मंडली में दीक्षित हो गया।

× × ×

मास्टर साहब का 'स्कूल' साधारण स्कूल नहीं है। वह एक ऐसा आश्रम

है, जहाँ आदर्शवाद और व्यावहारिकता का सुन्दर समन्वय पाया जाता है। मास्टर साहब उस कोरी शिक्षा को अधिक महत्त्व नहीं देते जो स्कूलों में दी जाती है। उनकी दृष्टि में चारित्रिक निर्माण ही शिक्षा का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। उनके यहाँ केवल ठोस चीज को महत्त्व दिया जाता है। आडम्बर के लिये वहाँ कोई स्थान नहीं। उनके यहाँ साहित्यिकता की जो कसौटी है, वह किसी भी साहित्यिक संस्था के लिये गौरव की वस्तु हो सकती है। उस कसौटी पर खरा उतरना बड़े-बड़े उपाधिधारियों के लिये भी सहल नहीं है।

मास्टर साहब बिहार में आधुनिक गद्यशैली के प्रवर्त्तक हैं। और, बाल-साहित्य के तो वे स्रष्टा ही कहे जा सकते हैं। उनकी शैली में सरलता, सुन्दरता और रोचकता का अपूर्व सम्मिश्रण पाया जाता है। गहन-से-गहन विषय क्यों न हो, उनके हाथ में पड़ते ही वह हस्तामलकवत् हो जाता है। गणित, इतिहास और विज्ञान-जैसे दुरूह विषय को सरल, सरस और सुगम कर बच्चों के लायक बना देना उन्हीं का काम है। कारण, वे मनोविज्ञान के पूरे पंडित हैं। बालकों का कौतूहल जगाकर किसी विषय में उनकी रुचि कैसे उत्पन्न की जा सकती है, इस बात को वे खूब अच्छी तरह जानते हैं। इसीलिये उनकी लिखी हुई किसी भी विषय की पुस्तक में लड़कों को कहानी पढ़ने का मजा आता है। वे कथनोप-कथनात्मक शैली (Conversational style) के मर्मज्ञ हैं। सरस वार्तालाप के द्वारा वे किसी भी जटिल विषय को बोधगम्य बना सकते हैं। यही उनकी लेखन-सफलता का मुख्य रहस्य है।

व्याकरण और गणित में भी सर्व प्रथम 'आगमन विधि' (Inductive-method) का व्यवहार उन्हीं ने किया है। व्याकरण के कठिन नियमों का अभ्यास करना कोमल-मति बालकों के लिये लोहे का चना चबाना है। लेकिन ये लड़कों की नब्ज टटोलना जानते हैं। ये नियम से प्रारम्भ न कर दृष्टान्तों से ही श्रीगणेश करते हैं। खूबी यह है कि अन्त में विद्यार्थी के मुँह से ही कहवा लेते हैं। इस कला में उनको कमाल हासिल है। दूसरे लोग जो विषय घोर माथापच्ची करने पर भी सरलतापूर्वक लिखकर बालकों को स्पष्ट नहीं समझा सकते, उसे मास्टर साहब उन्हें हँसाते-खिलाते चुटकियों में ऐसा समझा देते हैं कि अनायास ही हृदयंगम हो जाता है। विश्लेषण (Analysis) और व्याख्या-(Explanation) की कला में वे प्रवीण हैं। उनकी यह कला इतनी लोकप्रिय हुई कि बहुतेरे उनका अनुकरण करने लग गए। किन्तु ... और अन्तःप्रेरणा है वह सर्व-साधारण की पहुँच की वस्तु ... में उन्हीं की एक खास शान रहती है, उसकी नकल करना

साहर यलवा (दरभंगा) के निवासी
बाबू रामलखनप्रसाद
(पुस्तक-भंडार के आय-व्यय परीक्षक)

'पुस्तक-भंडार' के अध्यक्ष के ज्येष्ठ सुपुत्र
श्रीवैदेहीशरणजी

श्रीरामलोचनशरणजी के अनन्य मित्र
श्रीसुबालाल कर्ण

श्रीहनुमानप्रसाद
(भूतपूर्व मैनेजर, विद्यापति प्रेस)

पुस्तक-भंडार के दिवंगत शुभचिंतक

(पृ० ८६१)

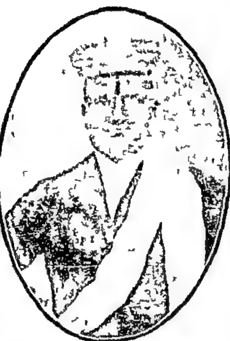

स्वर्गीय पं० योगानन्द कुमार

स्वर्गीय पं० ईश्वरीदत्त दौर्गादत्ति शास्त्री

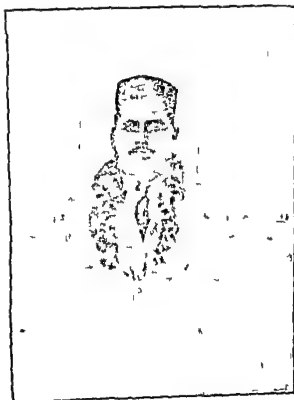

स्वर्गीय रायबहादुर पं० जयानन्द कुमार

साम्राज्य है। 'पुस्तक-भंडार' हिन्दी साहित्य-संसार की शोभा और गौरव है। साहित्य की उन्होंने जो अमूल्य सेवाएँ की हैं, उनके लिये सारा शिक्षित-संसा[र] उनका चिरऋणी रहेगा। वे साहित्यिक कार्य-सम्पादन में बिहार के द्विवेदी, बाल साहित्य के निर्माण में बिहार के गिजू भाई और पुस्तक-प्रकाशन में बिहार के चिन्तामणि घोष हैं। उन्होंने स्वयं साहित्यसेवा करके तथा दूसरों को साहित्यसेवा का सुअवसर देकर बिहार का मस्तक ऊँचा किया है। प्रत्येक बिहारी को उनपर गर्व है और होना चाहिये। आज बिहार उनकी स्वर्ण-जयन्ती मना रहा है। ईश्वर उनकी 'हीरक-जयन्ती' के भी सुदिन दिखावें।

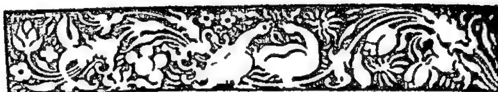

मास्टर साहब की सहृदयता

श्रीअच्युतानंद दत्त, सहकारी 'बालक'-सम्पादक

सन् १९१६ ई० का जाड़ा था। मेरी उम्र तेरह वर्ष की थी। मैंने तबतक दरभगा देखा न था। इस बार अपने मास्टर के साथ दरभगा आया। लहेरिया-सराय के बाकरगज महल्ले मे किताबों की एक छोटी-सी दूकान थी और साइनबोर्ड टँगा था—'पुस्तक-भडार'।' मैंने सोचा, इस नई दूकान से कोई पुस्तक ले लूँ। याद आई, चलते समय मेरे पूज्यचरण बड़े चाचा ने, जो रामानदीय सम्प्रदाय के वैष्णव और रामायण के अनन्य प्रेमी थे, कहा था—"अचो (स्नेह के कारण वे मुझे इसी नाम से पुकारते थे), रामायण पर कोई पोथी मिले तो मेरे लिये वही सदेश लाना। मैंने 'पुस्तक-भडार' के दूकानदार से मनोऽनुकूल पुस्तक माँगी और उन्होंने दिया 'रामायण का अध्ययन।' मैं उसे खरीद कर घर ले गया और अपने चाचा को अक्षर-अक्षर पढकर सुना दिया। उन्होंने बडा आनन्द प्रकट किया था।

मुझे अपने छोटे भाई को पढाने के लिये कुछ प्रारभिक पुस्तकों की आवश्यकता हुई। घर में हमी दोनों भाई पढ रहे थे, अत पुस्तकें खरीदने का भार मेरे ही जिम्मे रहा। तबतक बाजार में लोअर क्लास के लिये 'परिचय'-नामधारी इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य और विज्ञान की छोटी-छोटी पुस्तकें आ चुकी थीं। मैंने उन्हें खरीदा और पहले खुद पढ लिया, तब भाई को दिया। पुस्तकों के लेखक थे बाबू रामलोचनशरण बिहारी। मैंने देखा, जो बात अपर-मिड्ल में भी पढने पर मैं नहीं सीख सका था, वह मैंने, बिना किसी के बतलाये, इन्हीं पुस्तकों में, खुद पढकर सीख ली। सोचा, नार्थब्रुक स्कूल दरभगा का यह हिंदी-शिक्षक किस ढँग से पढ़ाता होगा—यदि मैं भी इसीका छात्र होता।

पुस्तक-भंडार के कुछ शुभचिंतक उत्कलीय महानुभाव

(पृ० ८१२)

रायबहादुर गोपालचन्द्र प्रहराज
कटक, उत्कल

पं० गोदावरी मिश्र
फाइनेंस मिनिस्टर, उत्कल

रायबहादुर भिखारीचरण पटनायक
कटक, उत्कल,

प्रोफेसर लक्ष्मीकान्त चौधरी
कटक, उत्कल

प्रेस अवश्य ही मिथिला-भाषा के ग्रन्थ-प्रकाशन का सुप्रबंध करता होगा। यह सोचकर मैं 'भंडार' में गया और दूकान पर पूछा कि प्रेस के व्यवस्थापक कहाँ हैं ? उत्तर मिला कि बगल के मकान में जाकर मिलिये। मैंने देखा, मकान खपरैल है। उसमें एक चबूतरा है जिसपर दरी बिछी हुई है। वहाँ एक प्रौढ़ सज्जन खुली देह बैठे कुछ लिख रहे हैं। बदन उनका दोहरा और रंग गोरा है। उनके पास दो छोटी-छोटी लड़कियाँ खेल रही हैं, उन्हें तंग भी कर रही हैं, पर वे अपने काम में लगे ही हैं, बच्चियों को डाँटते नहीं—बीच-बीच में प्यार भी करते जाते हैं, परन्तु फिर भी उनके कामों की लड़ी नहीं टूटती। मैंने कहा, मनस्विता हो तो ऐसी। भर्तृहरि का पद याद आया—"विघ्नैः पुनःपुनरपि प्रति हन्यमाना प्रारब्धमुत्तम जना न परित्यजति," जो शायद ऐसे ही मनस्वियों के लिये लिखा गया था।

मैंने जाते ही पूछा—"इस प्रेस के प्रोप्राइटर कौन हैं ? मुझे उनसे कुछ काम है ?" उक्त सज्जन ने सिर उठाकर मेरी ओर देखा, फिर मिथिला-भाषा में कहा—"की ? कोन काज छवे ?" मैं जजा गया कि मुझे भी क्या मैथिली-भक्त होने का गौरव है ? खैर, बात-चीत का सिलसिला चला और वह भी मैथिली भाषा में ही। पता चला कि ये ही महाशय बाबू रामलोचनशरण बिहारी हैं, जो मेरी स्मृति में आज बारह-तेरह वर्षों से विद्यमान हैं। और यही नहीं, ये ही पुस्तक-भंडार तथा विद्यापति प्रेस के संस्थापक, संचालक, 'बालक' के वर्त्तमान सम्पादक और बिहार के पेटेन्ट 'मास्टर साहब' हैं। साथ ही, बाल-साहित्य के निर्माता, परिष्कर्त्ता और नवयुग-प्रवर्त्तक भी।

मैंने इन्हें हिन्दी और मैथिली में अपनी पद्यात्मक रचनाएँ सुनाईं। इन्होंने अब हिन्दी में ही कहा—"आप हिन्दी में गद्य लिख सकते हैं ? पद्य तो आप अच्छा बना लेते हैं।" मैंने कहा—"लिखने का अभ्यास तो नहीं है, पर लिख सकता हूँ।"

"आपको यहाँ काम मिले तो कर सकते हैं ?"

"कर क्यों नहीं सकता हूँ।"

"आप अध्यापन-कार्य से साहित्य क्षेत्र में आ जाइये। आपका भविष्य बन जायगा।"

मैंने इनका आशीर्वाद सिर पर लिया। दूसरे ही क्षण मैं इनका 'आप' से 'तुम' बन गया। इनके परिवार का एक अंग-सा हो गया। मुझे ये तब से अपना शिष्य और लघु बन्धु समझते हैं।

× × × ×

मास्टर साहब सचमुच मेरे मास्टर बन गये। मेरी लेखनी को दुरुस्त

मैं किशोर से युवक हुआ और छात्र से गृहस्थ। घरू झंझटों ने मेरी हिम्मत तोड दी और स्कूली शिक्षा की शृंखला टूट गई। मैं घर पर ही कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी-मैथिली व्याख्याता श्रीगणपति सिंह के आदेश से कुछ बँगला-पुस्तकों का अनुवाद करता आ रहा था। उनके साथ सन् १९२६ में कलकत्ता गया। वहाँ कुछ दिनो तक 'हिन्दी-लोकोक्ति कोष' के निर्माता बाबू विश्वभरनाथ खत्री के साथ कुछ साहित्यिक काम करता रहा। वहीं एक साहित्यिक मित्र से पता चला कि 'पुस्तक-भडार' से 'बालक' नामक एक बालोपयोगी सचित्र मासिक पत्र निकल रहा है और बेनीपुरीजी उसका पहला अक यहीं से छपाकर ले गये हैं तथा उसके सचालक हैं श्रीरामलोचनशरण-बिहारी। छूटते ही मैंने पूछा "वही रामलोचनशरण तो नहीं जो कभी नार्थब्रूक-स्कूल के हिन्दी-शिक्षक थे?" उन्होंने कहा—"हाँ, जनाब, वही।"

× × × ×

इधर-उधर की हवा खाकर मैं सरडीहा (मुगेर) के मिडल-इगलिश स्कूल में हिन्दी का अध्यापक हुआ। वहाँ 'बालक' नियमित रूप से आता और मैं उसे बडे चाव से पढा करता। न मालूम क्यो, शुरू से ही 'बालक' मुझे अपना-सा मालूम हुआ। सोचा, 'बालक'-परिवार से सम्बन्ध स्थापित करूँ और उसमें कुछ लेख-कविताएँ भेजूँ।

× × × ×

सन् १९२९ का वर्षा-काल था। मै सयोगवश लहेरियासराय चला आया। दरभगा-डिस्ट्रिक्टबोर्ड के चेयरमैन बाबू हरिनन्दन दासजी वकील से भेंट की। मिथिला-भाषा में मैंने पद्यात्मक 'महाभारत' लिखा था और 'रघुवंश' का पद्यात्मक अनुवाद भी पूरा कर चुका था। हिन्दी-भाषा में एक 'वामनोदय' नामक महा काव्य के कुछ सर्ग भी लिख डाले थे, जो १९३४ के भीषण भूकम्प में सदा के लिये भूगर्भ में समा गया। वकील साहब बडे साहित्यानुरागी थे। उन्होंने मेरी रचनाओं को सुनकर बडी प्रसन्नता प्रकट की और उनके प्रकाशन के प्रबन्ध का आश्वासन भी दिया। उन्होंने यह भी कहा कि आपके दरभगा में रहने का भी मैं प्रबन्ध कर देता हूँ जिससे हमलोग एक जगह रहने का आनन्द उठावें। मैं भी जानना चाहता था कि 'महाभारत के प्रकाशन में क्या खर्च पड़ेगा। इसके लिये अच्छे प्रेस से बात-चीत की जरूरत थी। मैं कचहरी-रोड मे जा रहा था कि 'पुस्तक-भडार' के साइनबोर्ड पर नजर पड़ी। मैंने लोगों से पूछा—"क्या पुस्तक-भडार बाकरगज से यहाँ चला आया?" लोगों ने कहा—"हाँ, 'भडार' अपने खास मकान में आ गया है।" वहीं एक ओर विद्यापति प्रेस का भी साइनबोर्ड टँगा था। मैंने सोचा, यह

प्रेस अवश्य ही मिथिला-भाषा के ग्रन्थ-प्रकाशन का सुप्रबंध करता होगा। यह सोचकर मैं 'भंडार' में गया और दूकान पर पूछा कि प्रेस के व्यवस्थापक कहाँ हैं? उत्तर मिला कि बगल के मकान में जाकर मिलिये। मैंने देखा, मकान खपरैल है। उसमें एक चबूतरा है जिसपर दरी बिछी हुई है। वहाँ एक प्रौढ़ सज्जन खुली देह बैठे कुछ लिख रहे हैं। बदन उनका दोहरा और रंग गोरा है। उनके पास दो छोटी-छोटी लड़कियाँ खेल रही हैं, उन्हें तंग भी कर रही हैं, पर वे अपने काम में लगे ही हैं, बच्चियों को डाँटते नहीं—बीच-बीच में प्यार भी करते जाते हैं, परन्तु फिर भी उनके कामों की लड़ी नहीं टूटती। मैंने कहा, मनस्विता हो तो ऐसी। भर्तृहरि का पद याद आया—"विघ्नैः पुनःपुनरपि प्रति हन्यमाना प्रारब्धमुत्तम जना न परित्यजति," जो शायद ऐसे ही मनस्वियों के लिये लिखा गया था।

मैंने जाते ही पूछा—"इस प्रेस के प्रोप्राइटर कौन हैं? मुझे उनसे कुछ काम है?" उक्त सज्जन ने सिर उठाकर मेरी ओर देखा, फिर मिथिला-भाषा में कहा—"की? कोन काज छवे?" मैं लजा गया कि मुझे भी क्या मैथिली-भक्त होने का गौरव है? खैर, बात-चीत का सिलसिला चला और वह भी मैथिली भाषा में ही। पता चला कि ये ही महाशय बाबू रामलोचनशरण बिहारी हैं, जो मेरी स्मृति में आज बारह-तेरह वर्षों से विद्यमान हैं। और यही नहीं, ये ही पुस्तक-भंडार तथा विद्यापति प्रेस के संस्थापक, संचालक, 'बालक' के वर्त्तमान सम्पादक और बिहार के पेटेन्ट 'मास्टर साहब' हैं। साथ ही, बाल-साहित्य के निर्माता, परिष्कर्त्ता और नवयुग प्रवर्त्तक भी।

मैंने इन्हें हिन्दी और मैथिली में अपनी पद्यात्मक रचनाएँ सुनाईं। इन्होंने अब हिन्दी में ही कहा—"आप हिन्दी में गद्य लिख सकते हैं? पद्य तो आप अच्छा बना लेते हैं।" मैंने कहा—"लिखने का अभ्यास तो नहीं है, पर लिख सकता हूँ।"

"आपको यहाँ काम मिले तो कर सकते हैं?"

"कर क्यों नहीं सकता हूँ!"

"आप अध्यापन-कार्य से साहित्य क्षेत्र में आ जाइये। आपका भविष्य बन जायगा।"

मैंने इनका आशीर्वाद सिर पर लिया। दूसरे ही क्षण मैं इनका 'आप' से 'तुम' बन गया। इनके परिवार का एक अंग-सा हो गया। मुझे ये तब से अपना शिष्य और लघु बन्धु समझते हैं।

× × × ×

मास्टर साहब सचमुच मेरे मास्टर बन गये। मेरी लेखनी व उनका

किया। मेरी भाषा की ऊबड़-खाबड़ शिला इनकी लेखनी-नारायणी के प्रवाह में रगड़ खा-खाकर शालग्राम बन गई। यह अहंभाव का दंभ नहीं—कठोर सत्य है।

विहार में हिन्दी-गद्य-साहित्य का, उन्नीसवीं शताब्दी का, बाल्यकाल बीत चुका था। बीसवीं शताब्दी ने उसमें यौवनोचित स्फूर्त्ति भरना शुरू किया। हिन्दी गद्य-सरिता की धारा पहाड़ के ऊबड़-खाबड़ रास्तों को पार कर समतल मैदान में आ चुकी थी। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ के दस वर्षों तक यह धारा कुछ ऐसे असमंजस में रही कि वह कौन-सा मार्ग पकड़कर आगे बढ़े। इसके बाद के पाँच वर्षों में यह धारा दो मुख्य भागों बँटी-सी दिखाई देने लगी। इसी समय में मास्टर साहब ने लिखना शुरू किया। दस-पन्द्रह साल तक लिखा, खूब लिखा और इतनी सुंदरता से लिखा कि उक्त दोनों धाराएँ खूब प्रशस्त और अलग-अलग दिखाई पड़ने लगीं। पहली धारा की गति तो इतनी तीव्र थी कि उसमें अपनी नैया पर चढ़कर राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह और बाबू शिवपूजन सहाय जैसे कुशल कर्णधार ही साहित्य-रत्नाकर के दर्शन कर सकते थे और वह भी बड़े धैर्य के साथ। किन्तु मास्टर साहब की लेखनी ने जो दूसरी धारा बहाई वह सरल, बोध-गम्य और बालकों द्वारा भी तैरी जाने योग्य बन गई। इस धारा के द्वारा कई नवसिखुए तैराक भी साहित्य-सागर के दर्शन कर सके। कहना न होगा, मास्टर साहब की अमर लेखनी ने विहार में सैकड़ों लेखक तैयार किये। ऐसे मास्टर साहब की लेखनी की छाप मेरी लेखनी पर भी पड़ी, जो स्वाभाविक ही था।

मास्टर साहब की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। कोई भी विषय हो, उसके मर्म पर पहुँचते इन्हें देर नहीं लगती—बड़ी बारीकी से खूबी निकाल लेते हैं और उसके गूढ़-से-गूढ़ दोषों पर भी नजर डाले बिना नहीं रहते। मास्टर साहब तुकबंदियाँ भले ही करते हों, कविता-रचना नहीं करते, पर किसी भी कविता को उनके सामने रख दीजिये उसके गुण-दोष तुरत ही बतला देंगे।

× × ×

भूलों का होना तो मानव-स्वभाव ही है। मुझसे एक बार नहीं, अनेक बार भूलें हुई हैं, जिनके लिये उन्होंने मुझे समझाया है, चेतावनी दी है और डाँटा भी है। डाँटने पर मेरे ध्यान में आता था कि मास्टर साहब मुझसे बिगड़े हैं, परन्तु दूसरे ही क्षण वे बुलाकर कहते—"मेरा बिगड़ना दिल दुखाने के लिये नहीं, वरन् तुम्हारा भविष्य सुधारने के खयाल से है। तुमको अप्रिय लगे तो मैं बिगड़ना छोड़ दूँ।"

× × × ×

दरभंगा-गोशाला-सोसाइटी की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर गो-साहित्य-

सम्मेलन हो रहा था। हमलोग उसकी तैयारी में जुटे थे। दम मारने की फुर्सत नहीं थी। इसी बीच में, न मालूम कैसे, मास्टर साहब को पता लगा कि मेरी जमीन मालगुजारी न देने के कारण नीलाम हो रही है। इन्होंने मुझे बुलाकर पूछा—"तुमने पहले से इसका प्रबंध क्यों नहीं किया? तुमको मुझसे कहना न चाहिये। जितनी रकम लगती हो, 'भंडार' से लेकर दे दो। हिसाब पीछे होता रहेगा।" मैंने रुपये लेकर मालगुजारी अदा कर दी। फिर कुछ महाजनी झमेले निबटाने के लिये भी रुपये लिये। अपने मन से कुछ रुपये अदाकर सका और कुछ बाकी पड़ा चला आता था। एक दिन मास्टर साहब ने यह हाल जानकर कहा—"तुम 'भंडार' से पारसाल से ही, १०) रु० प्रतिमास के हिसाब से अपनी रकम लेकर कर्ज चुका दो। कर्ज रखना ठीक नहीं है।" भला, ऐसा कौन होगा जो बिना कहे-सुने वेतन-वृद्धि कर दे?

× × × ×

एक बार मैं बीमार पड़ा। पहले तो सामान्य ही ज्वर था। एक जरूरी किताब का प्रूफ देखना था। मैंने अपना हाल किसी से नहीं कहा और ज्यों-त्यों कर काम पूरा कर दिया, परन्तु ज्वर ने भीषण रूप धारण कर लिया। मास्टर साहब—जैसा उनका स्वभाव है, किसी सामान्य कर्मचारी के भी बीमार पड़ने पर उसे रोज देखते हैं और उसके लिये प्रबंध करने की ताकीद करते हैं—मुझे देखने आये, और देखकर कहा—"जरूर तुम्हारा ज्वर एकाएक नहीं बढ़ा है—सामान्य ज्वर में तुमने खबरगीरी नहीं की है।" मैं क्या कहता, दोष तो अपना ही था। मैं यदि पहले ही कह देता तो ये मुझे काम ही नहीं करने देते। मास्टर साहब को बाहर जाना जरूरी था—चले गये, परन्तु मेरी देख-रेख की ताकीद कर गये। भंडार के प्रमुख कर्मचारियों ने मुस्तैदी से मेरा डाक्टरी इलाज कराया और मैं चंगा हो गया। चंगा होने पर भी मास्टर साहब ने मुझे मिहनत के काम से बहुत दिनों तक रोक रखा। इस वात्सल्य की याद मुझे आजन्म रहेगी।

× × × ×

शायद १९३४ या ३५ की बात है। मेरा परिवार एक जमींदारी मामले में फँस गया था। अदालत का खर्च जुटाना आसान न था—नाकोदम था। नवम्बर का महीना आया। पास में पैसे न थे। सोचा था, इस महीने के निकल जाने पर कुछ सहूलियत होगी तो जाड़े के कपड़े खरीदूँगा। मामले के खर्च में 'भंडार' से भी जहाँ तक ले सकता था, ले लिया था, अब आगे गुंजायश न थी। मास्टर साहब ने मेरी फटेहाली देखी और बिना पूछे सब समझ लिया। वे उसी वक्त मुझे 'खादी भंडार' में ले गये और जाड़े के सब कपड़े खरीद दिये। कहा—"यदि तुम

कष्ट भोगोगे तो काम क्या कर सकोगे ? भंडार को तो तुम्हारे निजी कष्ट के लिये भी फिक्र करनी होगी ।"

× × × ×

मास्टर साहब गुरुजन की तरह किसी कर्मचारी की बड़ाई मुँह पर नहीं करते, पर जो मन लगाकर काम करते हैं उनकी बड़ाई ये परोक्ष में करते नहीं अघाते और उनकी प्रतिष्ठा का ख्याल बराबर रखते हैं। ऐसा मैंने कई बार अपनी आँखों देखा है।

× × × ×

१९३४ के प्रलयंकर भूकंप से 'भंडार' पर भी, उसके फूलने-फलने के समय में ही, अनभ्र वज्रपात हुआ। 'भंडार का विशाल वैभव मिट्टी में मिला जा रहा था और मास्टर साहब का उस समय का वाक्य हमलोगों के लिये ध्रुवतारा के समान पथ-प्रदर्शक बना। वह वाक्य था—"घबराओ नहीं, जिसने 'भंडार' को बिगाड़ा है, वही फिर बनायेगा।" हुआ भी सचमुच ऐसा ही। ईश्वर ने 'भंडार' को फिर नये सिरे से, पहले से भी अधिक, चमका दिया।

× × × ×

इस कृपण कलियुग में भी—जहाँ 'दाता जगति दुर्लभः' चरितार्थ है—मास्टर साहब की दानशीलता देखकर अवाक् हो जाना पड़ता है। इनका दान नाम के लिये कम होता है, गुप्त दान को ये ज्यादा पसंद करते हैं। प्रसिद्धि से दूर भागनेवाले महापुरुषों का यही लक्षण है। इसीलिये इनकी गुणावली से अखबारों के कॉलम रँगे हुए नहीं दिखाई देते।

एक बार, प्राय १९३९ में मास्टर साहब एक साहित्यिक समारोह के सभापति होकर गये थे। मैं भी साथ था। प्राय प्रत्येक साहित्यिक समारोह में मास्टर साहब के साथ मैं भी रहा करता। रुपये-पैसे का खर्च मेरे ही जिम्मे था। सभा समाप्त हुई। हमलोगों को महनार-रोड (मुजफ्फरपुर) स्टेशन पहुँचाने के लिये मोटर तैयार थी। मास्टर साहब ने निभृत में मुझसे पूछा—"तुम्हारे पास कितना बचा है ?"

"तीस रुपये और कुछ पैसे।"

"अच्छा तो तीस रुपये यहाँ के स्कूल के लड़कों को मिठाई खाने के लिये दे दो।"

"मास्टर साहब, लेकिन ।"

"क्या सोचते हो ? कुछ पैसों से ही काम चल जायगा। रिटर्न टिकट तो हमारे पास है ही। आज तो दस बजे रात को लहेरियासराय पहुँच ही जायँगे।"

मैंने रुपये दे दिये। मोटर पर हमलोग स्टेशन आये, लेकिन गाड़ी छूट

चुकी थी। कहाँ तो दस बजे रात ही को घर पहुचने की बात थी और कहाँ अब दूसरे दिन दस बजे दिन मे पहुँचने की बारी आई। पाँच-छ घंटो के लिये वहीं रुकना था। मास्टर साहब ने कहा—"तुम बाजार से भर-पेट खा आओ। मैं तबतक सध्योपासन से निपट लेता हूँ।" मैंने कहा—"और आपके ।"

"मैं कुछ नहीं खाऊँगा। भूख नहीं है। देखना, पैसे बचाने के खयाल से कहीं अधपेट न खा लेना।"

मैं चला गया। खाया और भरपेट खाया। मैं यहाँ एक बात साफ कह दूँ—कुछ लोग जीने के लिये खाते हैं, मैं केवल खाने के लिये जीता हूँ। इसलिये जबतक स्वादु भोजन करके पेट नहीं भर लेता तबतक मेरी तृप्ति नहीं होती। इससे मेरे पास पैसे कम ही बच रहे। खा पीकर मेरे लौटने पर मास्टर साहब ने कहा—"तुम खा आये ?"

"हाँ"

"अब कितने पैसे हैं ?

"तीन ही"

"एक पैसे की मूढी (उबले चावल का भूजा) मेरे लिये ले आओ। मैंने इधर मूढी कभी नहीं खाई है। आज वही खाने का मन है।"

मै ग्लानि से गड गया। मेरे खिलाने के लिये ही मास्टर साहब ने यह त्याग किया। करता ही क्या ? यदि मास्टर साहब चाहते तो वहाँ भी रुपया की ढेरी लग जा सकती थी। परन्तु इन्होंने कुछ नहीं किया। एक पैसे की मूढी खाकर रात बिताई, अपने हाथों गठरी ढोई, परन्तु अपनी दान शीलता में फर्क नहीं आने दिया। मन मे आता था—यह व्यक्ति कहा 'मृत्पात्रशेषामकरोद्विभूतिम्' वाले महाराज रघु या जगदीश्वर को भी याचक बनानेवाले दानवीर बलि की आत्मा का 'पाकेट एडीशन' तो नहीं है ?

मास्टर साहब विपत्ति मे अतुलित धैर्य का परिचय देते हैं, सम्पत्ति मे क्षमा प्रदर्शित करते हैं, अनुगतो के साथ सहानुभूति रखते हैं, साधु-सतो का सम्मान करते हैं, पढने-लिखने मे गहरा व्यसन है, अपने आप से भी बढकर 'भडार' की प्रतिष्ठा का खयाल रखते हैं, कार्य-सिद्धि का रहस्य जानते हैं, अनवरत परिश्रम करते हैं, उचित कहने में कहीं भी नहीं हिचकते। यह श्लोक शायद इन्हीं के अनुरूप है—

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ॥
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

चुकी थी। कहाँ तो दस बजे रात ही को घर पहुचने की बात थी और कहाँ अब दूसरे दिन दस बजे दिन मे पहुँचने की बारी आई। पाँच-छ घटों के लिये वहीं रुकना था। मास्टर साहब ने कहा—"तुम बाजार से भर-पेट खा आओ। मैं तबतक सध्योपासन से निपट लेता हूँ।" मैंने कहा—"और आपके ।"

"मैं कुछ नहीं खाऊँगा। भूख नहीं है। देखना, पैसे बचाने के खयाल से कहीं अधपेट न खा लेना।"

मैं चला गया। खाया और भरपेट खाया। मैं यहाँ एक बात साफ कह दूँ—कुछ लोग जीने के लिये खाते हैं, मैं केवल खाने के लिये जीता हूँ। इसलिये जबतक स्वादु भोजन करके पेट नहीं भर लेता तबतक मेरी तृप्ति नहीं होती। इससे मेरे पास पैसे कम ही बच रहे। खा पीकर मेरे लौटने पर मास्टर साहब ने कहा—"तुम खा आये ?"

"हाँ"

"अब कितने पैसे हैं ?

"तीन ही"

"एक पैसे की मूढी (उबले चावल का भूजा) मेरे लिये ले आओ। मैंने इधर मूढी कभी नहीं खाई है। आज वही खाने का मन है।"

मैं ग्लानि से गड गया। मेरे खिलाने के लिये ही मास्टर साहब ने यह त्याग किया। करता ही क्या ? यदि मास्टर साहब चाहते तो वहाँ भी रुपयों की ढेरी लग जा सकती थी। परन्तु इन्होंने कुछ नहीं किया। एक पैसे की मूढी खाकर रात बिताई, अपने हाथों गठरी ढोई, परन्तु अपनी दान शीलता में फर्क नहीं आने दिया। मन में आता था—यह व्यक्ति कहीं 'मृत्पात्रशेषामकरोद्विभूतिम्' वाले महाराज रघु वा जगदीश्वर को भी याचक बनानेवाले दानवीर बलि की आत्मा का 'पाकेट एडीशन' तो नहीं है ?

मास्टर साहब विपत्ति मे अतुलित धैर्य का परिचय देते हैं, सम्पत्ति मे क्षमा प्रदर्शित करते हैं, अनुगतों के साथ सहानुभूति रखते हैं, साधु-सतो का सम्मान करते हैं, पढने लिखने में गहरा व्यसन है, अपने-आप से भी बढ़कर 'भडार' की प्रतिष्ठा का खयाल रखते हैं, कार्य-सिद्धि का रहस्य जानते हैं, अनवरत परिश्रम करते हैं, उचित कहने में कहीं भी नहीं हिचकते। यह श्लोक शायद इन्हीं के अनुरूप है—

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ॥
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि ॥

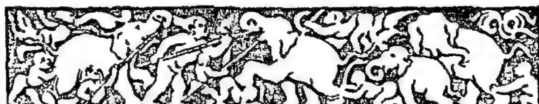

'पुस्तक-भंडार' और भूकम्प

प्रोफेसर श्रीशिवपूजनसहाय, राजेन्द्र कालेज छपरा

जगदाधार परमात्मा की सत्ता को अनायास स्थापित कर देनेवाले भूकम्प ने सन १९३४ ई० की १५ वीं जनवरी को भारत के इतिहास में अमर कर दिया। उस दिन मैं लहेरियासराय में था, जो दरभगा नगर का एक हिस्सा है। लगभग सवा दो वजे दिन मे अचानक भूकम्प आया। मैं 'बालक' के सहकारी सम्पादक श्रीअच्युतानन्द दत्त के साथ फूस की एक झोपडी मे बैठकर 'टाइम्स आफ इडिया' का वार्षिक विशेषाक देख रहा था। उक्त रमणीय झोपडी 'पुस्तक भडार' के विस्तृत अहाते के एक कोने मे थी। जब एकाएक मेज हिलने लगी, मैं अपनी चौकी से झट नीचे कूद पडा। दत्तजी भी अपनी कुर्सी छोडकर मेरे साथ ही वाहर मैदान में भगे।

इतने में भूकम्प का वेग वहुत वढ गया। 'पुस्तक-भडार' के अहाते मे चारों ओर भगदड मच गई। 'भडार' की विशाल इमारत से सब कर्मचारी हड-वडाकर निकल आये। प्रेस के मकान से, दफ्तरीखाने से टिड्डी-दल की तरह आदमी निकल भागे। किन्तु कोई अहाते के फाटक से वाहर न निकला। सब-के-सब अहाते के सहन मे त्रस्त और चकित खडे होकर 'भडार' के भव्य भवन का थिरकना देखने लगे।

जैसे कोई वालक अपनी हथेली पर गेंद को उछालता है वैसे ही वह भड़-कीली इमारत पृथ्वी पर उछलने लगी। दो-चार ईंटों का खिसककर गिरना तो स्पष्ट देख पडा, पर उसके वाद सारी इमारत धूल के अन्धकार में छिपने लगी। देखते-ही-देखते, निमिष-मात्र मे, दीवारें अररराकर धमाधम गिर पड़ीं। धूल के अन्धकार मे आगे का सहन भर गया। इसी वीच में प्रेस का दोमजिला मकान

भी निखरी हुई इटों का ढेर बन गया। अहाते की चहारदीवारी भी जड से कटे रूख की तरह जमीन पर आ रही।

आदमी जितने थे, सब उसी सहन में तितर-बितर कॉंपते हुए खडे थे। मगर जब पृथ्वी तूफानी तरगों पर नाचती हुई किश्ती की तरह डोलने लगी—'चढे मत्त गज जिमि लघु तरणी'—तब किसी आदमी के लिये खडा रहना असम्भव हो गया। पैरों के डगमगाने से देह में कॅपकॅपी लग गई। व्याकुलता के मारे सब लोग बैठ गये। लेकिन जमीन में हाथ टेके बिना बैठना भी असम्भव था।

बैठने पर एक दूसरी आफत नजर आई। धरती फटने लगी। अबतक लोगों की जबान पर केवल 'राम'-नाम था, पर जमीन का दरकना देखकर सब लोग जोर-जोर से 'त्राहि भगवन्! त्राहि भगवन्!' पुकारने लगे। मालूम होने लगा, पृथ्वी नीचे धँस रही है। अचानक पाताल-प्रवेश का प्रसग उपस्थित देखकर सब लोग करुणार्द्र नेत्रों से आकाश की ओर ताकने लगे।

'सीताराम'-'सीताराम' की रट लग रही थी। 'जय-जय सियाराम' की ध्वनि गूँज रही थी। भय-कातर आँखों के अचल पसारकर लोग परमात्मा से प्राणों की भीख माँग रहे थे। वैसा दिल दहलानेवाला दृश्य इन आँखों ने कभी देखा न था। वैसा भयङ्कर आर्तनाद भी इन कानों ने कभी न सुना था। दिल के अन्दर धडकनों का ताँता बँधा था।

जीभ की सुबुद्धि ऐसी जगी कि क्षण भर भी 'राम'-नाम के सुमिरन से विलग न हुई। कानों में लोगों के करुण कठ से निकला हुआ 'त्राहि-त्राहि' का ऊचा स्वर तो भर ही रहा था, एक प्रकार का और गम्भीर नाद भी सुन पडता था। मालूम होता था, सैकडों हवाई जहाज एक साथ ही उडते आ रहे हैं, या तेजी से दौडने के लिये हजारों फौजी मोटरों के इजिन एक साथ ही खोल दिये गये हैं। रह-रहकर यह भी मालूम होता था कि पैरों के नीचे से पृथ्वी बडी तेजी से सरकती जा रही है। जैसे दौडती हुई डाकगाडी पर चढे हुए मुसाफिरों को बाहर की दुनिया भागती नजर आती है वैसे ही हमलोगों को भी चारो ओर की चीजें दनादन सरकती नजर आती थीं। सूर्य भी चक्कर खाता हुआ दीख पडता था। ठीक प्रलय का दृश्य था।

अच्छी तरह याद है कि उस समय आँखों के आगे उडती हुई चिनगारियाँ चमक रही थीं। कठ सूख गया था, पर पानी की प्यास न थी—प्राणों की प्यास अवश्य थी। नाक भी सूख गई थी, इसलिये साँस की चाल का पता न मिलता था। माथा सूना हो गया था, इसलिये बार-बार ठनकता था। जीभ सूखे तालाब की मछली की तरह तडप रही थी। आखिर प्राणाधार 'राम'-नाम का उचा-

रण भी असम्भव हो गया। किसी भाषा की शब्दावली उस भीषण दृश्य और लोगों की दयनीय दशा का यथार्थ चित्र नहीं अंकित कर सकती।

उस समय भविष्य का ध्यान न था, जीवन का भरोसा न था, लोक-परलोक की चिन्ता न थी, अगर कुछ था तो केवल ईश्वर का सहारा ही था। उस समय ऐसे लोगों के मुँह से भी राम-नाम सुन पड़ा, जो कभी सपने में भी राम का नाम नहीं लेते। उसी समय जान पड़ा कि ईश्वर अगर सबसे बड़ा मारनेवाला है, तो बचानेवाला भी है। ईश्वर ने क्षण ही भर में अपनी विचित्र लीला की सूची दिखला दी। घोर नास्तिक भी उस समय कट्टर आस्तिक नजर आया। जीभ और तालु के असमर्थ एवं शुष्क हो जाने पर भी हृदय में केवल ईश्वर ही के सुमिरन का तार लगा हुआ था।

धरती फटने से जो हड़कम्प छा गया था, वह जल के सोते फूट निकलने से और भी बढ़ गया। चहारदीवारी के गिर जाने से बाहर के मैदान में फूटे हुए सोते भी दीख पड़ने लगे। चारों ओर जगह-जगह फवारे फूट पड़े। उनके अन्दर से बड़े वेग के साथ बालू और मिट्टी मिला हुआ जल निकलने लगा।

फाटक के सामनेवाली सड़क से लोग बेसुध दौड़े जा रहे थे। गिरते-पड़ते, डगमगाते-डोलते, फिसलते-चिल्लाते, लोग अन्धा-धुन्ध भाग रहे थे। कचहरी से भागे हुए एक वकील के एक ही पैर में जूता था।

ईश्वर के सिनेमा का वह फिल्म मैं कैसे दिखाऊँ? भुक्तभोगी होने के कारण मेरे हाथ भी लिखते समय थरथरा रहे हैं। शायद इन्हीं पंक्तियों के लिये ईश्वर ने मुझे बचाया।

ईश्वर की दया से कुछ ही मिनट के बाद भूकम्प का प्रचंड प्रकोप शान्त हुआ। किन्तु जल के सोते शाम तक मटमैला पानी उगलते रहे। 'भंडार' के दफ्तरी-खाने में ऐसा जबरदस्त सोता फूटा कि सैकड़ों रीम छपे हुए कागज और भँजे हुए फॉर्म कीच में लथपथ सन गये।

मास्टर साहब का चित्त इस आकस्मिक सर्वनाश से ऐसा विक्षिप्त हुआ कि वे तो पागल से हो गये। उनका पन्द्रह-बीस बरसों का उद्योग क्षणभर में इस दशा को पहुँच गया। तीस-पैंतीस रुपये की पूँजी से लखपती बननेवाले पुरुषार्थी को ईश्वर ने चुटकियों में अधीर बना दिया। जब उनसे कहा गया—"आपके 'भंडार' से सैकड़ों आदमियों को रोजी मिलती है, अगर आप इतने अधीर होंगे तो कैसे काम चलेगा"—तब वे इसी वाक्य को बार-बार दुहराने लगे—"सैकड़ों आदमियों को रोजी मिलती है—हाँ, सैकड़ों आदमियों को रोजी मिलती है।"

उसी उन्मत्तता की दशा में उनके मुँह से आप-ही-आप अन्त में यह भी

निकल पड़ा—"ईश्वर ही ने भंडार को बनाया था और ईश्वर ही ने उसे अचानक बिगाड़ दिया, तो फिर वही बनावेंगे भी।"

उस समय वे 'भंडार' के सब कर्मचारियों की ओर देखकर अत्यन्त विह्वलता से आँसू ढाल रहे थे, पर उनके मुख से 'राम'-नाम के सिवा कोई शब्द नहीं निकलता था। कुछ देर तक वे बार बार 'भंडार' के गिरे हुए आलीशान मकान की ओर देखते रहे। इसके बाद उनका शरीर इतना शिथिल हो गया कि अशक्त की तरह बैठ गये। सब लोगों के चेहरे पर व्याकुलता की गहरी छाप थी।

अब बाहर से भी बड़ी-बड़ी डरावनी खबरें आने लगीं। कोई आकर कहता—अदालत दीवानी की दो-मंजिला इमारत चकनाचूर हो गई, बहुत-से लोग दब मरे और घायल हो गये। किसी ने आकर कहा—अस्पताल के गिर पड़ने से पचासों रोगी घायल हो गये और चँप गये। एक ने सुनाया—बाजार की सड़क फट जाने से एक्के का घोड़ा धस गया है, लोग निकाल रहे हैं। इसी तरह के भयावने समाचारों का ताँता बँध गया। शाम तक खबरों का तार न टूटा।

आतंक छा गया। 'धीरज हू कर धीरज भागा।' हर घड़ी यही आशंका होती थी कि धरती डोल रही है जो कोई आता था, यही पूछता था—'बाल-बच्चे बच गये? कोई आदमी तो नहीं मरा?' उस समय सिर्फ जिन्दगी की भूख थी, धन की कोई चिन्ता या चर्चा नहीं करता था। प्रायः धन की ओर से सब विरक्त देख पड़ते थे। सब आकर यही कहते थे कि जान बच गई तो धन फिर हो जायगा।

मास्टर साहब के उद्विग्न मस्तिष्क पर लोगों की इस मनोवृत्ति का बड़ा प्रभाव पड़ा। जब उन्होंने सब पर एक ही तरह की विपत्ति देखी, तब उनका चित्त कुछ शांत हुआ। वे अपने कर्मचारियों की खोज-पूछ करने लगे। सबका पता लग गया, पर 'बालक'-कार्यालय के एक असिस्टैंट क्लर्क का पता न मिला। वह विद्यापति-पुस्तकालय का लाइब्रेरियन भी था, इसलिये लाइब्रेरी की ओर झाँककर देखा गया, वहाँ भी न था। बड़ी चिन्ता छा गई। आशंका होने लगी की हो-न-हो, वह मलबे के नीचे दब गया। बिखरी हुई ईंटों का ऊँचा ढेर देखकर यही अनुमान होता था कि इस टीले के अन्दर दबा हुआ आदमी क्षणभर भी नहीं जी सकता।

आखिर अनुमान सत्य निकला। दूसरे दिन सबेरे जब मलबा हटाया जाने लगा, क्लर्क बेचारे की लाश मिली। देखने से पता लगा कि भागते समय वह सबसे पीछे निकला और बाहरी द्वार की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँचते-पहुँचते उसके ऊपर दीवार गिर पड़ी। उसकी मृत्यु से सबको बड़ा भारी अफसोस हुआ। 'भंडार' में सैकड़ों आदमियों की जान बच गई, पर वह बेचारा न बच सका।

'भंडार' में प्रति रविवार को नियमित रूप से हरिकीर्त्तन हुआ करता है।

मैंने देखा था कि भूकंप (सोमवार) से एक दिन पहले मकर-सक्रान्ति (रविवार) की रात मे वह ग्यारह बजे तक हारमोनियम बजाकर संकीर्त्तन करता रहा। वह बडा ही निरीह व्यक्ति था। गाने-बजाने में तो पटु था ही, बडा अच्छा मोटर-ड्राइवर भी था। उसकी जेब से एक नोटबुक मिली, जिसमें उसका एक फोटो और लाइसेन्स भी था। अंटी मे आठ रुपये भी निकले। उसका नाम था रामनारायण लाल दास। उम्र पचीस-छबीस साल की रही होगी। ईश्वर की दया से अविवाहित था। घर मे अकेली बुढिया माँ और एक छोटा भाई। कमासुत यही एक था। लम्बा-तगड़ा बदन और हँसमुख चेहरा भुलाये नहीं भूलता।

लाश की दुर्दशा 'बालक'-कार्यालय के हेडक्लर्क श्री अशरफीलाल वर्मा ने बतलाई—एक आँख फूटकर धँस गई है, दूसरी बाहर निकल आई है, खोपडी भी फट गई है, जीभ बाहर निकल आई है। ईश्वर की विचित्र लीला।

एक की ऐसी दशा देखकर भी हमलोग अपनी जान के लिये तरस रहे थे। चारो ओर से सैकड़ो-हजारों आदमियों के मरने की खबरें धडाधड़ आ रही थीं, तब भी हमलोग जीने की इच्छा और आशा मे व्यस्त थे। इतने बडे आश्चर्य की सृष्टि केवल ईश्वर ही कर सकता है।

ईश्वर का भरोसा रखनेवाले मास्टर साहब का मन धीरे-धीरे शान्त-सुस्थिर हुआ। उस समय वे बहुत मौन रहा करते थे। जबतक भूकंप-जनित अव्यवस्था रही, उन्हीं की ओर से सबको भोजन-छाजन मिलता रहा। हरिकीर्त्तन का क्रम भी पूर्ववत् चलता रहा। मेरा परिवार काशी मे था। उन्होंने मेरे बच्चो का कुशल-मंगल जानने के लिये वहाँ जवाबी तार भेजा।

उनका हृदय बडा कोमल है। करुणा उनकी चिरसंगिनी है। अनुकूल प्रसंग पाते ही उनकी भावुकता उमड आती है। साहित्यसेवियो की दुःखगाथा सुनते ही उनके नेत्र सजल हो उठते हैं। कितना की कष्ट-कथा सुनकर चुपके-से आर्थिक सहायता भेजते मैंने कई बार देखा है।

मैं तो उनके 'भंडार' मे लगभग दस-बारह बरस रहा। अपने साहित्यिक विभाग का सारा दायित्व उन्होंने सहर्ष मुझे सौंप दिया था। इतनी अधिक स्वतंत्रता दे रक्खी थी कि मुझे नौकरी का कभी भान ही न हुआ। साहित्य-विभाग में स्याह-सफेद जो कुछ करूँ, कभी उन्होंने दखल न दिया। मैंने सात घाट का पानी पिया है, ऐसा बर्ताव हिन्दी की दुनिया मे दुर्लभ है। मुझपर स्नेह उनका इतना रहा कि कभी मुँह खोलकर कुछ माँगने की जरूरत ही न हुई। उनका मेरा घरेलू व्यवहार था, अब भी है, ईश्वर चाहेगा तो आजीवन रहेगा। यदि उनकी वदान्यता की कहानियाँ छेड दूँ तो 'बाढै कथा पार नहिं लहऊँ'!

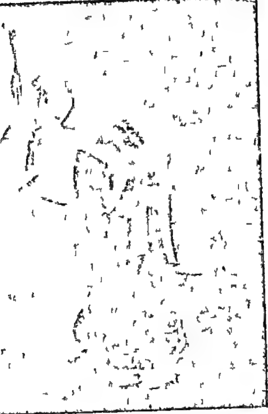

—कालिकाप्रसाद वर्मा, चम्पारण

—हरलाल महतो मुजफ्फरपुर

—माली भट्टाचार्य, दरभ

শ্রীযুত রামলোচনশরণজীক কার্য্য এতাবধরি সমাপ্ত নহি অছি। অপন জন্মসিদ্ধ ধার্মিক ভাব সঁ প্রেরিত ভএ অনেকানেক ধর্মশাস্ত্র, কর্মকাণ্ড আদিক পুস্তক বহুত অল্প মূল্য মে প্রকাশিত কএ এহি প্রান্তক ওজ সেবা কএল অছি, তাহি স সমপূর্ণ মিথিলাবাসী কৃতজ্ঞ অছি। এহি সঁ পূর্ব এহি প্রান্তক লোক হস্তলিখিত পুস্তক স অপন অপন কাজ চলবৈত ছলাহ্। যদি আগাঁম সঁ এহি বিষয়ক এক আধ পুস্তক প্রকাশিতো ভেল ছল ত ও সব মৈথিল সম্প্রদায়ানুসার সর্বথা পরিশুদ্ধ নহি। এহি সঁ কতেক পাঠাশুদ্ধি, কতেক মুদ্রণদোষ, কতেক সম্প্রদায় বিরুদ্ধ-ওত্যাদি অনেক প্রকারক ত্রুটি দেখা জাএত ছল তথা মূল্যো বহুত বেশী ছল। বহুত গবেষণাক মিথিলাক্ষর আ দেবনাগরাক্ষর দুনু মে পরিশুদ্ধ মৈথিল সম্প্রদায়ানুমোদিত দুর্গা সপ্তশতী আ সত্যনারায়ণক পূজা তথা কথা জেহেন এহিঠাম সঁ প্রকাশিত ভেল অছি তেহেন অদ্যাবধি আগাঁম সঁ নহি। নিত্যকৃত্য এহিঠাম সঁ বহুত থোড়ে দাম সঁ মৈথিল সমাজক উপকারার্থ প্রকাশিত ভেল অছি। সদাচার আদি পুস্তকসঁ অনেক আবশ্যক বিষয় এহি মে বিশেষ রহলক্ষঁ এতের মূল্য সঁ ওা ভেটি রহল অছি।

মিথিলাদেশীয় পঞ্চাঙ্গ মে ত এহিঠাম সঁ অভূতপূর্ব পরিবর্তন ভেল অছি। যে পতরা পহিলে লোক কেঁ ছ আঠ আনা মে ভেটৈত ছলৈক সে আব এহিঠাম সঁ পঞ্চাঙ্গ প্রকাশিত ভেলে সর্বত্র দু আনা মাত্র সঁ ভেটি রহল অছি। আকার মাত্র সঁ ছোট এহি তরহক খূব সুন্দর পঞ্চাঙ্গ কেরল এক আনা মে ভেটি রহল অছি। এহি সঁ পূর্ব এতরা অল্প মূল্য সঁ ওা বস্তু কতেক সঁ কোো প্রকাশিত করবাক সাহস নহি কএল ছলাহ্। এতদর্থ অনেকানেক পঞ্চাঙ্গ প্রণেতা তথা বিক্রেতাক কোপদৃষ্টি ওা ভতাহ সহল কয়লে অছি। এহি বলভতাক হেতু মিথিলাক ঘর ঘর পঞ্চাঙ্গ সঁ পরিপূরিত ভএগেল অছি। এহিহেতু পুস্তক ভণ্ডারক ওা কার্য সর্বথা প্রশংসনীয় অছি।

মিথিলাক্ষরক 'টাইপ' অনএবাক হিনক কাজ সব সঁ বেশী মহত্বপূর্ণ অছি। এহি উন্নতিশীল ক্রান্তিকারী যুগ মে আনবানেক যোগ্যতা অভাব রহলক্ষঁ জগজ্জননী জানকীক ওা পবিত্র ভূমি মিথিলা প্রায় শিথিল অছি। সামাজিকরোগ আর পরস্পর বিদ্বেষাগ্নি সঁ হজারো রুপৈয়া ভস্ম ভএ জাএত অছি, পরন্তু মিথিলা আর মৈথিলীক দিশ বহুত কমে লোকক ধ্যান আকৃষ্ট ভেল অছি, যদি শ্রীমান মিথিলেশক এহি বিষয় মে ধ্যান নহি জাএত ত অখনধরি সরকারটে হমরা লোকনি বটগানীএঁ গরৈত রহিজৈতহুঁ। মিথিলাক্ষর ক ত প্রায় লোপ ভএ রহল অছে।

মিথিলাক সেবক শ্রীরামলোচনশরণজী

পণ্ডিত শ্রীকপিলেশ্বর মিশ্র 'বৈয়াকরণশিরোমণি' ভূতপূর্ব অধ্যাপক
শান্তিনিকেতন (লোনপুর)

'ক্বাপি দৈবাৎকশ্চিৎ প্রভবতি পুমান শলাঘ্যমহিমা'

কখনো দৈবাৎ বড়োপ্রভাবশালী পুরুষ জন্মগ্রহণ করৈত অছি।

সিপাহী বিদ্রোহক সময মে বাবূ রামদয়াল প্রসাদ ভোজপুর সঁ পড়াকএ মুজফ্ফরপুর জিলাক দরভঙ্গা রাজ্যক অন্তর্গত রাধাউর গাম মে আবি কএ বসলাহ, এত মিথিলেশক ছত্রছায়া মে রহি হুনক প্রপৌত্র শ্রীমত রামলোচনশরণ বিহারীজী বৈশ্য সমাজকেঁ অলঙ্কৃত কয়লন্হি মৈথিল, মিথিলা আওর মৈথিলীক জতেক হিমায়তী ভেলাহ ততেক বহুত কম ব্যক্তি। যদ্যপি এহি দেশ মে এক সঁ এক উৎকৃষ্ট বিদ্বান লোকনি সম্প্রতি বিদ্যমান ছথি আওর অনেকানেক অদ্বিতীয় বিদ্বান ভএ গেলাহ—হুনকা লোকনিক কীর্ত্তি কৌমুদী অদ্যাবধি চমকি রহল অছি তথাপি তকর লীলাবশেষ এহি বিকরাল সময মে হিনকা দ্বারা জতেক এহি প্রান্ত কেঁ সাহিত্যক ক্ষেত্র মে প্রোৎসাহন ভেটৈল অছি ততেক আনকা ককরহু বুতে নহি, ই বস্তু সর্বথা স্পষ্ট অছি।

বহুত দিন ধরি শ্রীমত রামলোচনশরণজী অনেক তরহক বৌদ্ধিক, সামাজিক তথা আর্থিক ঝঞ্ঝট কেঁ সহি অপন অসীম উৎসাহ সঁ মৈথিল, মিথিলা আওর মৈথিলীক উপকারক হেতু 'মিথিলা নামক পত্র চলবৈত ছলাহ, পরন্তু হমরা লোকনিক অভাগ্যবশ এহি সমাজক শিথিলতা সঁ ই পত্র নহি চলি সকল। 'জকরে লএ কানী তকরে আঁখি মে লোর নহি' ই কথা এহিঠাম চরিতার্থ ভেল।

শ্রীযুত রামলোচনশরণজীক কার্য্য এতবধরি সমাপ্ত নহি অছি। অপন জন্মসিদ্ধ ধার্মিক ভাব সঁ প্রেরিত ভএ অনেকানেক ধর্ম্মশাস্ত্র, কর্ম্মকাণ্ড আদিক পুস্তক বহুত অল্প মূল্য মে প্রকাশিত কএ এহি প্রান্তক ওজ সেবা কএল অছি, তাহি সঁ সম্পূর্ণ মিথিলাবাসী কৃতজ্ঞ অছি। এহি সঁ পূর্ব এহি প্রান্তক লোক হস্তলিখিত পুস্তক সঁ অপন অপন কাজ চলবৈত ছলাহ। যদি কানঠাম সঁ এহি বিষয়ক এক আধ পুস্তক প্রকাশিতো ভেল ছল ত ও সব মৈথিল সম্প্রদায়ানুসার সর্বথা পরিশুদ্ধ নহি। ওহি মে কতহু পাঠাশুদ্ধি, কতহু মুদ্রাদোষ, কতহু সম্প্রদায় বিরুদ্ধ-ইত্যাদি অনেক প্রকারক ত্রুটি দেখল জাইত ছল তথা মূল্যো বহুত লাগৈত ছল। বহুত গবেষণাক মিথিলাক্ষর আর দেবনাগরাক্ষর দুহূ মে পরিশুদ্ধ মৈথিল সম্প্রদায়ানুমোদিত দুর্গা সপ্তশতী আর সত্যনারায়ণক পূজা তথা কথা ছেহেন এহিঠাম সঁ প্রকাশিত ভেল অছি তেহন আজুধরি আনঠাম সঁ নহি। নিত্যকৃত্য এহিঠাম সঁ বহুত থোড দাম মে মৈথিল সমাজক উপকারার্থ প্রকাশিত ভেল অছি। সদাচার আদি পুস্তকস অনেক আবশ্যক বিষয় এহি মে বিশেষ রহলহুঁ ওতবে মূল্য মে ওা ভেটি রহল অছি।

মিথিলাদেশীয় পঞ্চাঙ্গ মে ত এহিঠাম সঁ অদ্ভুতপূর্ব পরিবর্ত্তন ভেল অছি। জে পতরা পহিলে লোক কে ছ সাত আনা মে ভেটৈ ত ছলৈক সে আব এহিঠাম সঁ পঞ্চাঙ্গ প্রকাশিত ভেলে সর্বত্র দু আনা মাত্র মে ভেটি রহল অছি। আকার মাত্র মে ছোট এহি তরহক খূব সুন্দর পঞ্চাঙ্গ কেবল এক আনা মে ভেটি রহল অছি। এহি সঁ পূর্ব এতবা অল্প মূল্য মে ওা বস্তু কতহু সঁ কখো প্রকাশিত করবাক সাহস নহি কএলে ছলাহ। এতদর্থ অনেকানেক পঞ্চাঙ্গ প্রণেতা তথা বিক্রেতাক জ্ঞভদ্ধ ওা ভণ্ডার সহল করলে অছি। এহি সুলভতাক হেতু মিথিলাক ঘর ঘর পঞ্চাঙ্গ সঁ পরিপূরিত ভএগেল অছি। এহিহেতু প্রস্তুত ভণ্ডারক ওা কার্য্য সর্বথা প্রশংসনীয় অছি।

মিথিলাক্ষরক 'টাইপ' অনএবাক হিনক কার্য সব সঁ বেশী মহত্বপূর্ণ অছি। এহি উন্নতিশীল ক্রান্তিকারী যুগ মে অনেকানেক যোগ্যতা স্বপুত্র রহলহুঁ জগজ্জননী জানকীক ওা পবিত্র ভূমি মিথিলা প্রায় পিছিলে অছি। সামাজিকরোগ আর পরস্পর বিদ্বেষাগ্নি মে হজারো রুপৈয়া ভস্ম ভএ জাইত অছি, পরন্তু মিথিলা আর মৈথিলীক দিশ বহুত কমে লোকক ধ্যান আকৃষ্ট ভেল অছি, যদি শ্রীমান মিথিলেশক এহি বিষয় মে ধ্যান নহি জাইত ত আজুধরি সরকারটে হমরা লোকনি বটৈগমনীএঁ গরৈত রহিতৈতহুঁ। মিথিলাক্ষর ক ত প্রায় লোপ ভএ রহল অছি।

প্রাচীন লোক কেঁ ছোড়ি সংযোগ সঁ কোনো নবীন ব্যক্তি ভেটৈতাহ, জে অপন এহি লিপি সঁ অপরিচিত হোথি। সাধারণ ব্যক্তিক কোন কথা আধুনিক পণ্ডিতো লোকনি প্রায়ঃ এহি বিষয মে হর্ষএ হেরএলে ছথি। 'দীপক তর অন্হার'—তা উদাহরণ অক্ষরশঃ এহিঠাম ঘটৈত অছি। এহনা পরিস্থিতি মে শ্রীরামলোচনশরণজী পণ্ডিত শ্রীজীবনাথরাযক প্রেরণা তথা সহযোগ সঁ মিথিলাক্ষরক টাইপক নির্মাণ করাএ ওহিমে মৈথিলী প্রথম পুস্তিকা প্রকাশ কএ কনিএঁমে অত্যন্ত মহত্ত্বপূর্ণ আদর্শ উপস্থিত করৈত মিথিলাক সপূত ভএ অপন দেশাভিমানক পরিচয দেল অছি। কিএক নে—

জননী জন্মভূমিশ্চ স্বর্গাদপিগরীযসী।
গ্রামে সংসেবিতে যেন সফলং তস্য জীবনম্॥

পুস্তক-ভণ্ডারসঁ বিদ্বান্ মাত্রক সম্পর্ক রহৈত অছি, কেবল হিন্দী মৈথিলীএক বিদ্বান্‌কেঁ নহি—এহিঠাম সময সময পর সংযোগবশ নবাগত বিশিষ্ট বিদ্বানো লোকনি যথাসাধ্য সম্মানিত ভেল ছথি। জাহি মে সংস্কৃতক মৈথিল বিদ্বান্ লোকনিক গণনা সব সঁ মহত্ত্বপূর্ণ অছি। মহামহোপাধ্যায মুরলীধরঝা, পং০ শ্রীশ্রীকান্তমিশ্র, শ্রীজনার্দনঝা (জনসীদনঝা), ম ম মুকুন্দঝা বক্সীক নাম মৈথিল বিদ্বান্ মে বিশেষ উল্লেখনীয অছি, এতদতিরিক্তো অনেক বিদ্বান্ ছথি জনিক নাম সঁ হম পূর্ণ পরিচিত নহি রহবাক হেতু উল্লেখ নহি কএ সকলহুঁ। এতবে নহি, প্রচুর আলোপ্রান্তক সংস্কৃতক বিশিষ্ট বিদ্বান্, সংস্কৃত, হিন্দী আওর মৈথিলীক কবি তথা যশস্বী লেখক লোকনি এহি সঁ বঞ্চিত নহি ছথি।

অনেক প্রাচীন মৈথিল কবি লোকনিক কবিতা বিকরাল কালক গালমে পড়ি বিলীন ভএ গেল আওর অনেক বিলীন ভএ রহল অছি। প্রতিবর্ষ কতেক অগ্নিদেবক ক্রীড়ামে পড়ি তল্লীন ভএ গেল। কতোক জলদেবক কৃপাপাত্র ভএ নির্বাণ প্রাপ্ত কএলনক, কিছু ভূকম্পক হড়কম্পসঁ ভূমিসাৎ ভএ সমাধি লেলক। কিছু কীড়াক দ্বারা শত বিক্ষতভয অসীম বেদনাক অনুভব করৈত মিথিলাক সপূতকেঁ অভিশাপসঁ জর্জরিত কএ রহল অছি। কতোক পরস্পর বিদ্বেষাগ্নিসঁ পরিপূরিত ভাএক হিস্সেদারীমে বিভক্ত ভএ অপনাকেঁ অকার্মক বুঝি সাহস রহিত ভএ মৃতপ্রায ভএ গেল। কতোক শিথিল মিথিলাক শিথিল সন্তানকেঁ দেখি সর্বথা অপন ভবিষ্য অন্ধকারময বুঝি দুখসঁ কাঁহি কাঁহি কএ রহলি অছি। কতোকমে কিছু আশাক উদয ভেলাসঁ নব জীবনক সংচার ভেল অছি। কিছু প্রকাশিত ভএ লোকক সমক্ষ আবি অপন গুণ গরিমাসঁ লোকক উৎসাহ

রহ্লা এ রহলন অছি—এহেন বিকট পরিস্থিতিমে আদ প্রাচীন মৈথিলী কবিতাক প্রকাশ কএ ওহি যশস্বী কবিক কীর্ত্তিকেঁ অমর বনাএ শ্রীমত শরণজী অপন দেশাভিমানক জে পরিচয় দেল অছি সে ককরো অবিদিত নহি। বিদ্যাপতিক পদাবলী, গোবিন্দ গীতাবলী, মনবোধকৃত কৃষ্ণজন্ম, শিবনন্দন ঠাকুরক সংগৃহীত মহাকবি বিদ্যাপতি, শ্রীপরমানন্দ দত্তকৃত মৈথিলী মেঘদূত, প্রভৃতিক অনেক প্রাচীন তথা নবীন কবিলোকনিক ছিটফুট কবিতা, তথা যশস্বী লেখক প্রোফেসর শ্রীমত হরিমোহনঝাক লিখল 'কন্যাদান নামক মিথিলা ভাষাক সর্ব্বপ্রথম সামাজিক উপন্যাস জে কলকত্তা, পটনা আও কাশী এহি তীনূ যুনিবর্সিটীমে স্বীকৃত অছি, হমর লিখল 'সীতাদাউ' নামক মৈথিলীক গদ্যপদ্যপুস্তক জে পটনা যুনিবর্সিটীমে স্বীকৃত অছি, তথা মৈথিলী লেখশৈলী মৈথিলীক প্রথম পুস্তিকা, মিথিলাভাষা ব্যাকরণ, প্রাবেশিকা মৈথিলী গদ্যপদ্য সংগ্রহ আদি প্রকাশিত কএ জে মৈথিলীক সেবা কএল অছি তদর্থ হিনকা জতেক ধন্যবাদ দেল জায় সে থোড় থীক।

শ্রীমত রামলোচনশরণজীক দ্বারা 'মৈথিলীসাহিত্য পরিষদ' ক রজত কাজ ভেল আও ভএ রহল অছি। এহি পরিষদ ক ই আজন্ম সদস্য ছথি। অপন সাহিত্যিক গুনী তথা অন্যান্য ব্যক্তিকেঁ এহিমে সদস্য বনএবাক হেতু সতত কিছু হিনক প্রয়াস অছি ও ভএ রহল অছি। দ্রব্যাভাবক পরিস্থিতিযোগ মৈথিলী সাহিত্য পরিষদক পুস্তক ছাপি রজত দিনক অনন্তর ক্রমশঃ অপন বর্ত্তমান দেবাক অবসর উপস্থিত কএলা ছথি। অন্যথা ওহি সময়ম দ্রব্যাভাব প্রযুক্ত মৈথিলীসাহিত্য পরিষদক পুস্তক প্রকাশন বন্দকর ভএ জাএত। প্রতিবর্ষ ভণ্ডারসঁ কিছু ন কিছু মৈথিলীক পুস্তক প্রকাশিত ভএ জাএত অছি, অতএব পুস্তক-ভণ্ডারকেঁ মৈথিলীসাহিত্য পরিষদক প্রধান সহায়ক বুঝব অযচিত নহি।

কোনো দেশ, জাতি, সমাজ অথবা সাহিত্যক সর্ব্বাঙ্গপরিপূর্ণ উন্নতিএ বাস্তবিক উন্নতি কহল জাএ সকৈত অছি, বিকলাঙ্গ উন্নতিকেঁ পক্ষাঘাত রোগগ্রস্ত বুঝক চাহী। অতএব সর্ব্বতোমুখী প্রতিভাশালী শ্রীমত রামলোচনশরণজীক প্রযত্ন সর্ব্বতোমুখ অছি। হিনকাসঁ অংগ্রেজী তথা সংস্কৃতক বিদ্যার্থী লোকনি আর্থিক সাহায্য পাবি বিদ্যালাভ কএ পূর্ণখ্যাতিলাভ কএলেনহি অছি। প্রোফেসর শ্রীমত হরিমোহনঝা এহীমহঁক একরত্ন থিকাহ। পং শ্রীগৌরীনাথমিশ্র হিনকে সহায়তাসঁ এম, এ পরীক্ষোত্তীর্ণ ভএ নবধজীবিক ভেল ছথি। পঞ্চাঙ্গ নির্মাতা প শ্রীমত অভিরাম মিশ্র এহীঠামক ব্যয় সঁ জ্যোতিষাচার্য পরীক্ষোত্তীর্ণ ভেল

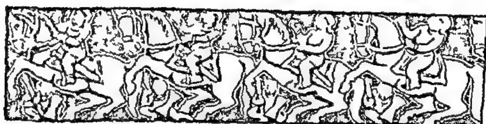

স্মারক-লিপি

শ্রীঅবিনাশচন্দ্র কুণ্ডু, বি এ, বি এড নদিয়া

আমি ১৯২২ খৃষ্টাব্দে কলিকাতার রাজ হাই স্কুলের প্রধান শিক্ষকের পদত্যাগ করিয়া কিছু দিন রায়পুর রাজকুমার কলেজে একাধিক রাজকুমারের শিক্ষকতা ও অভিভাবকের পদে ব্রতী ছিলাম। সে সময় অবসর অনেক ছিল। কর্ম্মময় জীবন নিষ্ক্রিয়তায় পরিণত হইলে কিছুদিনের জন্য ভাল লাগিয়াছিল বটে, কিন্তু শীঘ্রই মনে হইল কোন-কিছু-একটা করি। স্কুলে শিক্ষকতা করিতে করিতে অনেক জল্পনা কল্পনা করিতাম। কিন্তু প্রধান শিক্ষকের পদের কর্ত্তব্য সমষ্টির গুরু ভারে সেগুলি চাপা পড়িয়া যাইত। এখন ভাবিলাম সেই কল্পনার দুই একটা কার্য্যে পরিণত করিতে পারিলে মন্দ হইত না।

তাই মনে করিলাম একখানি বই লিখিব। তখন ইংরাজি অনুবাদের বই ওড়িয়া বা মধ্যপ্রদেশে তেমন প্রচলিত ছিল না। কিন্তু বাঙ্গালা ভাষায় ওরূপ পুস্তকের অভাব ছিল না। রায়পুরে দেখিলাম, শিক্ষা প্রণালীর ভাবধারা স্বতন্ত্র। আমার উপর ওড়িয়া ও বাঙ্গালী ছাত্রদিগের অনুবাদ শিখাইবার ভার ছিল। তাই আমি free translation এর উপযোগী বাঙ্গালা পুস্তক হইতে topic সংগ্রহ করিয়া পড়িয়া দিলে ছাত্রগণ উহার অর্থ গ্রহণ করিয়া আপন ইংরাজিতে তর্জ্জমা করিয়া দিত। বলাবাহুল্য, রাজকুমার কলেজের ছাত্রগণ সাধারণতঃ হাই স্কুলের ছাত্রগণের অপেক্ষা ইংরাজী ভাষা ও সাহিত্য জ্ঞানে অধিকতর অগ্রসর। তাহারা এই প্রণালীতে শিক্ষা মনোজ্ঞ ও ফলোপধায়ক মনে করিয়াছিল। সে যাহা

হউক, ফলে আমার নূতন প্রণালীতে লিখিত বাঙ্গালা হইতে ইংরাজী অনুবাদের পুস্তক লেখা শেষ হইয়া গেল।

অল্পকাল মধ্যেই যখন ১৯২৩ সালের শেষ ভাগে আমি সমস্তিপুর কিং এড্ওয়ার্ড হাইস্কুলের হেডমাষ্টার পদে নিযুক্ত হইয়া কার্য্যভার গ্রহণ করি, তখন আমার শ্রদ্ধেয় বন্ধু স্বর্গীয় ফণিভূষণ মুখোপাধ্যায় পণ্ডিত মহাশয়ের সহিত কর্ম্মসূত্রে বিশেষরূপে পরিচিত হই। তিনি আমার বাসায় অপরাহ্ণ কালে বেড়াইতে আসিলে প্রায়ই আমাকে আমার ঐ অনুবাদের পুস্তকখানি লইয়া নাড়াচাড়া করিতে দেখিতেন। একদিন পণ্ডিত মহাশয় কৌতূহলাক্রান্ত হইয়া আমাকে পুস্তকের বিষয় জিজ্ঞাসা করিলেন। তিনি জিজ্ঞাসা করিলেন যে আমি ঐ পুস্তকখানি ছাপাইয়া প্রকাশ করিতে চাহি কি না। আমার ধারণা ছিল, পুস্তক ছাপান বহুব্যয় সাধ্য ব্যাপার। ব্যয় করিয়া পুস্তক অচল হইলে অর্থব্যয় ও পরিশ্রম উভয়ই নিষ্ফল হইবে। এজন্য আমি কোন কিছু বলিলাম না। পণ্ডিত মহাশয় আমার মনের ভাব বুঝিতে পারিয়া আমার নিকট যে প্রস্তাব করিলেন তাহা আমার অতীব মনোজ্ঞ ও অভিপ্রেত মনে হইল।

এই সর্ব্বপ্রথম আমি লাহেরিয়াসরাইএর পুস্তক-ভাণ্ডারের সন্ধান পাইলাম। স্বর্গীয় পণ্ডিত মহাশয় রামলোচনবাবুর সহিত খুব ঘনিষ্ঠ ভাবেই পরিচিত ছিলেন। তিনি বলিলেন যে তিনিও কয়েকখানি পুস্তক লিখিয়া পুস্তক-ভাণ্ডারের সাহায্যে ছাপাইয়াছেন। তখনও তিনি তাঁহার উচ্চাকাংক্ষা সমন্বিত "স্পর্শমণি"—কাব্য রচনা করিতেছেন এবং সঙ্গে সঙ্গে এক এক ফর্ম্মা পুস্তক-ভাণ্ডারের কল্যাণে ছাপাইয়া লইতেছেন। অবসর হইলে আমরা দুজনে পুস্তক-ভাণ্ডারের কথা আলাপ করিতে লাগিলাম। কয়েক দিন মধ্যেই স্থিরীকৃত হইল যে আমরা একদিন লাহেরিয়াসরাই আসি ও মাষ্টার সাহেবের সহিত কথাবার্ত্তা করি।

শুভকার্য্য শুভদিনে সুসম্পন্ন হইয়া থাকে। এজন্য আমরা পাঁজি-পুঁথি দেখিয়া শুভদিন ও শুভক্ষণ নির্ণয় করি। লাহেরিয়াসরাই আসিবার শুভদিন ও শুভক্ষণ পাঁজি দেখিয়া নির্ণীত না হইলেও আমি মাষ্টার সাহেবের সহিত অতি শুভদিনে ও শুভলগ্নেই সাক্ষাৎ করিয়াছিলাম বলিয়া মনে করি। সেই আমাদের উভয়ের প্রথম দর্শন ও প্রথম আলাপ কি শুভক্ষণেই সংঘটিত হইয়াছিল! ইহার পুণ্যস্মৃতি-বক্ষে ধারণ করিয়া আমি আজ এই সুদীর্ঘ অষ্টাদশবর্ষ পুস্তক-ভাণ্ডারের অক্ষয় ভাণ্ডারকে আশ্রয় করিয়া রহিয়াছি।

পুস্তক-ভাণ্ডারের আদর আপ্যায়ন ও আতিথেয়তা চিরন্তন, আমি

आय-व्यय-परीक्षण-विभाग
कुर्सी पर श्रीरामलखनप्रसाद

पुस्तक-भंडार का स्टोर विभाग
बीच में कुर्सी पर—श्रीवीरेन्द्रलाल कण्ठ [प्रधान

पुस्तक-भंडार [लहेरियासराय] का डाकखाना
कुर्सी पर—बाबू श्यामानंदप्रसाद पोस्टमास्टर [मुजफ्फरपुर]

पुस्तक-भंडार के प्रधान एजेन्ट
श्रीजागेश्वरसिंह और श्रीनरेन्द्रनारायण सि

श्रीनारायण राजाराम सोमण
(विद्यापति प्रेस के मैनेजर)

श्रीनथुनीप्रसाद माणिक
(पुस्तक-भंडार के मैनेजर)

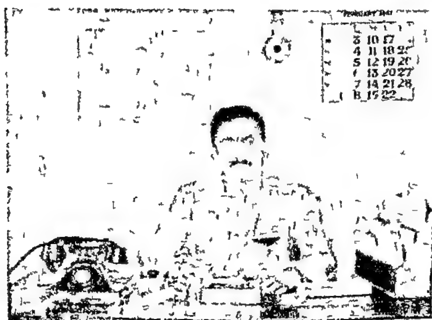

पुस्तक भंडार (पटना) के मैनेजर प० जयनाथ मिश्र

সে দিন প্রারম্ভেই তাহার প্রথম আস্বাদনের অধিকারী হইয়াছিলাম। পরন্তু মিষ্টান্নের মধুরতা অতিক্রম করিয়া রামলোচনবাবুর সারল্যপূর্ণ, অমায়িক মিষ্টালাপ ও আদর আপ্যায়ন অধিকতর মনোমুগ্ধকর প্রতীত হইয়াছিল। তিনি সাদরে আমার Modern School Translation বহিখানি গ্রহণ করিয়া যে যে সর্তে প্রকাশ করিতে প্রতিশ্রুতি দিলেন, তাহা আমার মনোমত হইল। প্রতিশ্রুতি পত্রে উভয়ে স্বাক্ষর করিবার পর তিনি আমাকে আর একটি অনুরোধ করিলেন।—

তিনি তাঁহার হিন্দি রচনা পুস্তকখানি দেখাইয়া বলিলেন, "আপনি এই-ভাবে সরল বিশুদ্ধ ইংরাজিতে যদি একখানি ইংরাজি রচনা পুস্তক (Essay Book) লেখেন তাহা হইলে ভাল হয়।" এ কার্য্য অতি সহজ ও অনায়াস সাধ্য বলিয়া আমি আমার প্রতিশ্রুতি প্রদান করিলাম। শীঘ্রই তিন-চারিটি রচনা লইয়া রামলোচনবাবুকে দেখাইতে গেলে তিনি আমার রচনা পছন্দ করিলেন। তখনই কথাবার্ত্তা পাকাপাকি হইয়া গেল এবং তিনি আমাকে তৎক্ষণাৎ কিছু অর্থও প্রদান করিলেন।

এই প্রসঙ্গে একটি বিষয় আমি উপলব্ধি করিয়া উত্তরকালে যখনই স্মরণ করিয়াছি তখনই আমার অন্তঃকরণ রামলোচনবাবুর প্রতি বিপুল শ্রদ্ধায় ভরিয়া উঠিয়াছে। প্রকাশকের বুদ্ধি, বিচারশক্তি ও দূরদর্শিতা গ্রন্থকারের পাণ্ডিত্য ও মেধাকে সর্ব্বথা অতিক্রম করে। আমি যে পরিশ্রম অধিকতর মূল্যবান্ মনে করিয়াছিলাম ও আমার যে প্রচেষ্টা অধিকতর সাফল্য মণ্ডিত হইবার সংকল্প করিয়া ছিলাম, তাহা প্রকাশকের তীক্ষ্ণ দৃষ্টিতে ভ্রমাত্মক মনে হইয়াছিল। তিনি বুঝিতে পারিয়াছিলেন যে, আমার রচিত রচনা পুস্তক অধিকতর আদৃত হইবে এবং যে অনুবাদ পুস্তক আমি প্রাণপণে লিখিতে চেষ্টা করিয়া উহার পূর্ণ সাফল্য কামনা করিতেছি তাহা তাদৃশ সাফল্য লাভ করিতে সমর্থ হইবে না।

আমি পাঁচ ছয় মাস মধ্যে আমার ইংরাজি রচনা পুস্তক সমাপ্ত করিয়া দিলে প্রকাশক রামলোচনবাবু আমাকে আশাতীত ভাবে পুরস্কৃত ও উৎসাহিত করিলেন। সেই হইতে আমি প্রয়োজন হইলেই পুস্তক-ভাণ্ডারে কোন না কোন কার্য্য করিতে লাগিলাম।

রামলোচনবাবু বিপন্ন শরণার্থীর প্রকৃতই সহায়ক—"শরণ"। আমি ইহা একাধিক বার উপলব্ধি করিয়াছি। আমি রামলোচন বাবুর আনুকূল্যে আমার পিতৃ সম্পত্তি বর বাড়ী, দালান কোঠা ও বাগান পিতৃঋণ হইতে উদ্ধার করিতে পারিয়াছি। আমি যখন আমার Essay বহি

লিখিতেছিলাম তখন আমি এরূপ দুর্দ্দশাগ্রস্ত ছিলাম ও তাঁহার প্রদত্ত অর্থে এই ঋণভার দূর করিতে সমর্থ হইয়াছিলাম। একবার হঠাৎ আমার ১০০৲ টাকার বিশেষ প্রয়োজন হইয়াছিল। অনন্যোপায় হইয়া আমি তাঁহার শরণাপন্ন হই। আমার ত্রয়োদশবর্ষ বয়স্ক পুত্রকে সুদূর বাঙ্গালাদেশ হইতে পাঠাইয়া দিয়া যখন সন্দেহ দোলায় দুলিতেছিলাম তখন আমার পুত্র একশত টাকার নোট আমার হাতে আনিয়া দিয়া যেন আমাকে আকাশের চাঁদ হাতে তুলিয়া দিয়াছিল।

একবার আমি লোভের বশীভূত হইয়া প্রকাশকের সাহায্য না লইয়া পুস্তক ছাপাইয়া অধিক লাভবান্ হইবার আশা করিয়া বিড়ম্বিত হইয়াছিলাম। এ ব্যাপারে মুদ্রকের নিকট আমি একশত টাকা ঋণগ্রস্ত হইলে আমি রামলোচন বাবুর শরণাপন্ন হইয়াছিলাম। তিনি ঐ টাকার চেক দিয়া আমাকে আসন্ন বিপদ হইতে উদ্ধার করিয়াছিলেন।

গত ১৯৩৫ খৃষ্টাব্দে আমি চক্ষুঃরোগে পীড়িত হইয়া দৃষ্টিশক্তি হারাইতে বসিলে পুস্তক-ভাণ্ডারই আমার চিকিৎসার জন্য অর্থ প্রদান করে। আমি দৃষ্টিশক্তি পুনঃ প্রাপ্ত হইলে ভাণ্ডারের জন্য উপযুক্ত কোন কার্য্য করিবার অবসর পাইয়া আমার অবস্থা স্বচ্ছল করিতে সমর্থ হই।

আমার প্রতি অনুগ্রহাতিশয্য বশতঃ একাধিক বার আমার পুত্রদিগকে রামলোচন বাবু তাঁহার পুস্তক-ভাণ্ডারে কর্ম্ম করিবার অবসর দিয়া আমাকে অনুগৃহীত করিয়াছেন। কিন্তু দুরদৃষ্টবশতঃ পুত্রগণ এই অনুগ্রহের পূর্ণ সার্থকতা লাভ করিতে সমর্থ হয় নাই।

এক্ষণে আমি বৃদ্ধবয়সে বিদ্যালয়ের কর্ম্ম হইতে অবসর গ্রহণ করিয়া যখন স্বয়ং অনন্যোপায় মনে করিতেছিলাম তখন রামলোচন বাবু তাঁহার কর্ম্মভারাক্রান্ত ও নিরবচ্ছিন্ন চিন্তাবহুল মস্তিষ্কের এক প্রান্তে এই বৃদ্ধ ও সুপরিচিত শিক্ষকের কথা স্মরণ করিয়া সেই সুদূর বঙ্গদেশ হইতে পত্র দ্বারা আহ্বান করিয়া আনাইয়া বর্ত্তমানে বহুদায়িত্বপূর্ণ নিজ সন্তানগণের শিক্ষাভার অর্পণ করিয়া আমার প্রতি তাঁহার পূর্ণ প্রীতি, আস্থা, অনুরাগ ও কৃপাপরায়ণতার যে পরাকাষ্ঠা প্রদর্শন করিয়াছেন তাহা আমি ও আমার বংশধরগণ এবং আমার হিতাকাঙ্ক্ষী বন্ধুগণ একবাক্যে ও মুক্তকণ্ঠে স্বীকার করিতে থাকিবে।

এজন্য আমি পুস্তক-ভাণ্ডারের শ্রীবৃদ্ধি কামনা ও স্থায়িত্ব বাঞ্ছা করি এবং ইহার স্বত্বাধিকারী বাবু রামলোচনশরণ মহোদয়ের নিকট আমার চিরকৃতজ্ঞতা জ্ঞাপন করিয়া তাঁহার স্বাস্থ্য, সম্পৎ, দীর্ঘায়ু ও পারিবারিক

সুখ-শান্তি ভগবৎ-সকাশে প্রার্থনা করি। বহুদুর ব্যবধান থাকিলেও আমার পুত্র পরিবার স্বজনগণ এবং হিতার্থী বন্ধুবর্গ সুদূর বঙ্গদেশ হইতে পুস্তক ভাণ্ডারকে সর্ব্বদা তাঁহাদের প্রীতিপূর্ণ নয়নে দেখিতে থাকিবে এবং ইহার হিতকামনা করিবে।

সংসদৃশ নিঃসম্পর্ক বাঙ্গালীর প্রতি রামলোচন বাবুর নিরপেক্ষতা, সমদর্শিতা ও অটল বিশ্বাস তাঁহার হৃদয়ের সম্প্রসারণ ও একদেশিতা জ্ঞাপন করে। সংকীর্ণচেতা, স্বার্থপর ও সাম্প্রদায়িকভাবাপন্ন তথাকথিত "বাঙ্গালা-বিহারী"—নির্দ্দেশানুশীল ভাক্ত দেশপ্রেমিকগণ বাবু রামলোচন-শরণের সমদর্শিতা সমক্ষে অবনতমস্তক হউন।

পুরাতন প্রসঙ্গ

শ্রীপ্রফুল্লচন্দ্র চক্রবর্ত্তী, বি এ, বি-এড্

বহুদিনের কথা, প্রায় পনর ষোল বৎসর পূর্ব্বের। বাবু রামলোচন শরণের সঙ্গে আলাপ করিতে আসিয়াছি। তিনি একটী সাধারণ আরাম কেদারায় বিশ্রাম করিতেছিলেন। গ্রীষ্মের সন্ধ্যা। পাশেই চার পাঁচটী চেয়ারে তাঁহার পরিচিত কয়েকজন ভদ্রলোক বসিয়া তাঁহার সহিত কথা-বার্ত্তা কহিতেছিলেন। মনে হয় হিন্দী সাহিত্যের উন্নতি সম্বন্ধে কিছু আলোচনা হইতেছিল। রামলোচন বাবুর পরিধানে একখানি ধুতি ছাড়া অন্য কোন বস্ত্র নাই, তাহাও আবার গ্রীষ্মাতিশয্যে ইতস্ততঃ বিস্রস্ত। আমি আসিবামাত্র সকলে উঠিয়া দাঁড়াইলেন। পরিচয় হইয়া গেলে তিনি আমাকে আরাম কেদারায় বসিবার জন্য বিশেষ পীড়াপীড়ি করিতে লাগিলেন ও শেষে বাধ্য হইয়া আমাকে উহাতে বসিতেই হইল। পাশের চেয়ারে তিনি বসিলেন ও বলিলেন, "বলুন, আমি আপনার কি সেবা করিতে পারি।"

তাঁহার সহজ সরলতা ও অমায়িক ভাব আমাকে উৎসাহিত করিল। আমি বলিলাম, "আমি দরিদ্র শিক্ষক, আপনার সাহায্যে দুই একখানি বই ছাপাইতে চাই।"

তিনি বলিলেন, "আমিও ত নিজেকে এক দরিদ্র শিক্ষক বলিয়াই জ্ঞান করি। আমার দ্বারা যদি আপনার কিছুমাত্র উপকার হয় তাহাতে আমি পশ্চাৎপদ হইব না।"

× × × × × ×

এই ছিল প্রথম আলাপের সূত্র। তাহার পর অনেক বৎসরই চলিয়া গিয়াছে। প্রায়ই দেখা শোনার ফলে তাঁহার সহিত বিশেষ ঘনিষ্ঠ সম্বন্ধই জন্মিয়া উঠিয়াছে। তিনি যেন আমার কত আপনার জন। তাই তাঁহার

সম্বন্ধে দুই একটী নিছক সত্য কথা বলিতে গেলেও ইতস্ততঃ করিতে হয়, পাছে লোকে উহা অত্যুক্তি বলিয়া মনে করে। কিন্তু উপায় নাই। বিশাল পুস্তক-ভাণ্ডারের রজতজয়ন্তী উপলক্ষ্যে তাহার প্রাণপ্রতিষ্ঠাতা ও পরিচালক রামলোচন বাবুর সম্বন্ধে কিছুনা বলিয়াও থাকা যায় না।

রামলোচন বাবু ছিলেন সামান্য শিক্ষক, এখন হইয়াছেন এত বড। কেমন করিয়া ইহা সম্ভব হইল তাহা নির্ণয় করিতে গেলে স্বতঃই তাঁহার ব্যক্তিগত বিশেষতার দিকে মনোযোগ আকৃষ্ট হয়। তাঁহার চরিত্রের প্রথম বৈশিষ্ট্য তাঁহার অনাড়ম্বর অহঙ্কারলেশশূন্য ভাব। সরল জীবন যাপনের সঙ্গে সঙ্গে অকৃত্রিম কর্ত্তব্যনিষ্ঠা তাঁহাকে যেন সাধারণ লোকের নিকট হইতে পৃথক করিয়া রাখিয়াছে। কত বৎসরই কাটিয়া গিয়াছে, কিন্তু তাঁহার প্রকৃতির মধ্যে একটুও পরিবর্ত্তন ঘটে নাই। পোষাকপরিচ্ছদ সেইরূপ অতি সাধারণ। ধনীদরিদ্র নির্ব্বিশেষে সকলের সহিত সেই এক অমায়িক ব্যবহার। বিংশ শতাব্দীর লক্ষপতি, না আছে তাঁহার গাড়ীজুড়ি, না আছে বাহিরের পারিপাট্য, হাঁকডাক, ঐশ্বর্য্যের ঘটা, আড়ম্বরের আকাংক্ষা। যখনই দেখিলাম সেই সাদা মানুষটী, পরিধানে একখানি ধুতি, কখনও বা গায়ে একটী সাধারণ জামা, সৌম্য সহাস্য মূর্ত্তিতে সকলের সহিত আলাপ করিতে ব্যগ্র। বেশভূষা দর্শনে প্রথম প্রথম মনে হইতে পারে লোকটী কৃপণ কিন্তু মোটেই নয়। তাহার জ্বলন্ত প্রমাণ তাঁহার পুস্তক-ভাণ্ডার ও বিদ্যাপতি প্রেস, উহাদের সংশ্লিষ্ট কর্ম্মচারিদল, লেখক ও সাহিত্যিক বৃন্দ। সকলের সুখসুবিধা তাঁহার প্রধান লক্ষ্য। ইহা ব্যতীত কত দীনদরিদ্রকে তাঁহার মুক্তহস্তের দানে ধন্য হইতে দেখিয়াছি। তার পর কি কঠোর কর্ত্তব্যনিষ্ঠা! এই দুইটী বিভাগের কিরূপে সর্ব্বাঙ্গীণ উন্নতি হইতে পারে এই চিন্তায় সর্ব্বদাই বিভোর। এই দুইটী বিভাগকে জনপ্রিয় করিবার জন্য তাঁহার কি আকুল আগ্রহ! ইহাদের উন্নতিকল্পে নিজের সর্ব্বস্বদানে কৃতসঙ্কল্প। আলস্য ও দীর্ঘসূত্রতা কাহাকে বলে রামলোচন বাবু জানেন না। দিবারাত্র নিরলস পরিশ্রমশীল এই মানুষটীকে দেখিয়া বিস্মিত হইতে হয়।

সময়নিষ্ঠা তাঁহার চরিত্রের আর একটী বৈশিষ্ট্য। ঘড়ির কাঁটার সঙ্গে যেন নিজেকে বাঁধিয়া রাখিয়াছেন। তাহার উপর নিয়মানুবর্ত্তিতা সোণায় সোহাগা। এতবড় কারখানার মালিক, সূর্য্যোদয়ের সঙ্গে সঙ্গে প্রাতঃকৃত্য সমাপন করিয়া ঠিক যথাসময়ে প্রত্যহ আপিসে আসেন ও স্বয়ং ষোলঘণ্টা কঠোর মানসিক পরিশ্রম করেন। বলেন, আমি নিজে কাজ না করিলে আমার অধীন কর্ম্মচারিগণ কাজ করিবে কেন? তাঁহার

কার্য্যকুশলতা দেখিয়া ঈর্ষ্যা হয়। এতবড় কঠোর সাধনা, সিদ্ধি কি নিজেই ছুটিয়া আসিয়া তাঁহাকে আলিঙ্গন করিবে না।

তাঁহার চরিত্রের আর এক বৈচিত্র্য তাঁহার অকপট ব্যবহার, সত্যের প্রতি অবিচলিত নিষ্ঠা, নির্ভীকতা ও স্বাভাবিক প্রফুল্লতা। পরিচিত হউক বা অপরিচিত হউক সকলেরই সহিত এমন সরল ব্যবহার, যে কতদিনের চেনা লোক। যখনই দেখিলাম, মুখে গম্ভীর প্রসন্ন হাসি লাগিয়া আছে। সকলের সঙ্গে এক ব্যবহার। নিজের কর্ম্মচারিদের মধ্যে যাঁহাদের বেতন অধিক তাঁহাদের সঙ্গে যেমন ভাব, তেমনই সদয় ভাব যাঁহারা অল্প বেতন পান তাঁহাদের সঙ্গে। তাঁহার মধ্যে ভেদবুদ্ধির লেশমাত্র দেখি নাই।

১৯৩৪ সালের ভূমিকম্পের কথা মনে পড়ে। ঠিক তিন-চারিদিন পরে তাঁহার সঙ্গে দেখা। তখন লোকের কি অবস্থা তাহা বর্ণনা করা যায় না। যেদিকে যাই সেখানেই হাহাকার রব। নিজের সামান্য যাহা কিছু ছিল হারাইয়াছি। ভাবিতেছিলাম রামলোচন বাবুও আমার ন্যায় 'হায় হায়' করিয়া বেড়াইতেছেন। কিন্তু, দেখিলাম অন্যরূপ। তিলমাত্র ক্ষোভ নাই। ধীর ও ক্ষিপ্র ভাবে ভাণ্ডারের পুনঃ সংস্কার কার্য্যে নিজেকে লিপ্ত করিয়াছেন। আমাকে দেখিয়া বলিলেন, "আমার ব্যক্তিগত ক্ষতির জন্য আমার কোন দুঃখ নাই। কিন্তু আমার আশ্রিত ব্যক্তিগণের জন্য আমার মন বড়ই চঞ্চল হইয়াছে, তাহাদের না আছে আহার, না আছে বাসস্থান। যতদিন তাহাদের সম্বন্ধে সুব্যবস্থা করিতে না পারি, ততদিন আমার বিশ্রাম নাই। আশীর্ব্বাদ করুন যেন আমি শীঘ্রই তাহাদের দুঃখ দূর করিতে পারি।" অনুজীবিগণের প্রতি তাঁহার এতদূর অনুকম্পা। এত বড় দৈবদুর্ব্বিপাক তাঁহাকে ব্যক্তিগতভাবে একটুও বিচলিত করিতে পারে নাই, অথচ পরের দুঃখ দূর করিবার জন্য একরূপ বদ্ধপরিকর। চরিত্রের কোমল-কঠোরের এমন মধুর সমাবেশ খুব অল্পই দেখিয়াছি।

বহু বিষয়ে তাঁহার সহিত অনেক তর্কবিতর্ক হইয়াছে। কিন্তু নিজের জিদ বজায় রাখিবার জন্য অপরের মত তাচ্ছিল্য করিবার দুরাগ্রহ কখনই তাঁহার মধ্যে লক্ষ্য করি নাই। বরং এ বিষয়ে তাঁহার উদারতা লক্ষ্য করিবার বস্তু। তিনি বলেন, সকলেরই নিজ নিজ মতামত প্রকাশের সমান অধিকার এবং যদি অপরের মত গ্রহণযোগ্য বলিয়া প্রতিপন্ন হয় তাহা হইলে বিনা দ্বিধায় নিজ বিপরীত মত পরিত্যাগ করিয়া উহা গ্রহণ করা উচিত। তাঁহার সম্মুখে তাঁহার সম্বন্ধে প্রশংসাসূচক কিছু বলিলে তিনি বিশেষ লজ্জিত হন। বলেন, "আত্ম প্রশংসা শ্রবণ করিলে পাপ হয়, বন্ধুগণের

উচিত দোষত্রুটী প্রদর্শন করা, তাহা হইলে নিজেকে সহজে উন্নতির পথে চালিত করিতে পারা যায়।

তাহার পর তাঁহার ভগবদ্ভক্তি। অতি গোপনে, লোকচক্ষুর অন্তরালে অত্যন্ত অন্তরঙ্গের সহিত ভগবৎমহিমা শ্রবণ ও কীর্ত্তনে বামলোচনের লোচন বাহিয়া অজস্র অশ্রুধারা গণ্ডপ্লাবিত করিয়াছে দেখিয়া আমার ন্যায় পাষণ্ডও কতদিন ধন্য হইয়াছে।

কিছুদিন হইল মহামান্য গভর্ণমেণ্ট বাহাদুর শ্রীযুক্ত বামলোচন শরণকে 'রায়সাহেব' উপাধিতে বিভূষিত করিয়াছেন। সংবাদ প্রাপ্তিমাত্র তাঁহাকে আন্তরিক অভিনন্দন জানাইতে গিয়াছিলাম। আমার পদস্পর্শ করিয়া প্রণাম করিলেন ও বলিলেন, "গভর্ণমেণ্ট এই অকৃতীকে কেন উপাধি বিভূষিত করিলেন তাঁহারাই জানেন। তাঁহাদের দান আমার শিরোধার্য্য। তবে আপনার কাছে আমি চিরদিন 'মাষ্টার সাহেব' বা 'ভাইসাহেব থাকিতে চাই, আপনি আমাকে 'রায়সাহেব' বলিয়া ডাকিয়া লজ্জিত করিবেন না।" পদ, গৌরব, সম্মান বৃদ্ধিতেও এত অবিচলিত।

আজ পুস্তক-ভাণ্ডারের রজতজয়ন্তী। যিনি সমস্ত সুখের আকর, যাঁহার কৃপায় জগতের সমস্ত জীব সুখের অধিকারী, যাঁহার বিরাট দান স্বয়ং পৃথিবীও বহন করিতে অক্ষম, সেই পরম কারুণিক ভগবান বামলোচন বাবুকে দীর্ঘজীবন দান করুন, তাঁহার পুস্তক-ভাণ্ডারকে কুবেরের ভাণ্ডারে পরিণত করুন—ইহাই আমার আন্তরিক কামনা।

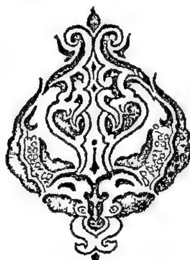

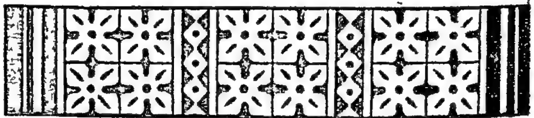

علم و ادب کی جوبلی

حکیم نور خلیلی، حالوی

دوستو! "علم" وہ گراں مایہ اور غیر فانی دولت ہے، جو غاصبوں کے ہاتھ لگ سکتی ہے، نہ چوروں اور ڈاکوؤں کے۔ نہ کوئی آمرانہ حکومت اس کو تباہ کر سکتی ہے اور نہ کوئی حاسدانہ کوشش ۔ اس کی اہمیت او اصلیت پر جتنے اوراق سیاہ کئے جا چکے ہیں ان کو قطع نظر کیجئے ۔ جتنی تقریریں ہو چکی ہیں انہیں بھول جائیے۔ اپنے دماغ کو تمام مذکورہ اثرات سے پاک کر کے یہی اگر آپ علم کی خوبیوں پر غور فرمائیے گا و اس نتیجہ پر پہنچنا لازمی ہے کہ علم ہی وہ دولت ہے جس پر انسان بجا طور پر ناز کر سکتا ہے۔ میں آپ سے پوچھتا ہوں کہ وہ کون سی طاقت ہے جس نے آپ کو گذرے ہوئے رہنماؤں، عالموں، بادشاہوں، فلسفیوں، حکیموں، پیروں، پیغمبروں اور تمام پچھلی نسلوں کے واقعات سے آج با خبر کر رکھا ہے ؟ وہ کون سی دولت ہے جس کی بدولت آج دنیا کی تمام حالتوں سے لمحہ بہ لمحہ کے انقلابات، تمام دنیا کے معاشرتی، جغرافیائی اور سیاسی حالات سے آپ با خبر ہوتے رہتے ہیں ؟ وہ کون سی قوت ہے جس کے ذریعہ آج ریلوں، موٹروں، ہوائی جہازوں، ٹاکی فلموں، ریڈیو، ٹیلیفون اور ایسے بے شمار پر از منافع ذرائع سے آپ بہرہ اندوز ہو رہے ہیں ؟ ان سب سوالات سے آپ قطع نظر کر لیجئے۔ صرف مجھے ایک سوال کا جواب دیجئے ۔ میں آپ سے پوچھتا ہوں کہ وہ کون سی چیز ہے جس کے ذریعہ آپ اپنے رشتوں، ملنوں، بڑوں اور پیغمبروں کی قدر و قیمت، اخلاقی فرائض، انسانی ضرورتوں اور مذہبی پابندیوں سے واقف ہو کر اپنے پیدا کرنے والے خدا کو پہچانتے ہیں ؟

ان سوالوں کا جواب ایک ہے — "علم"

انسان علم ہی کا حامل ہونے کی بنا پر اشرف المخلوقات کا درجہ حاصل کر چکا ہے ورنہ جانداری کے لحاظ سے اللہ کی پیدا کی ہوئی بہت سی مخلوقیں تھیں ۔ انسان نے اپنی علمی ضرورتوں کو پورا کرنے کے لئے او آپس میں ایک دوسرے کے خیالوں کے

معلوم کرنے اور اپنے حالات کو دوسروں تک پہنچانے کے لئے ایک ذریعہ تلاش کیا جس کا نام **زبان** رکھا — دنیا کے تمام ممالک نے مختلف زبانوں کی ایجاد کی اور یہی زبانیں دنیا کے تہذیب و تمدن کی علم بردار ہیں —

ہمارے ہندوستان میں بھی سیکڑوں زبانیں بنائی گئیں اور سب زبانیں ایک نہ ایک خوبی رکھنے والی ہیں، مگر ان میں جو ہمہ گیری اور اہمیت زبان اردو اور ہندی کو نصیب ہوئی وہ اوروں کو نہیں — ہندوستانی تہذیب کا تمام خزانہ اور سماجی معلومات کے تمام ذخیرے انہیں کے اندر پوشیدہ ہیں — اگر غور کیجئے تو دونوں زبانیں دو نہیں بلکہ ایک ہی زبان ہیں جن کو دو رسم الخط میں استعمال کیا جا رہا ہے — اور رسم الخط کے اختلاف سے ناجائز فائدہ اٹھا کر غیر ملکی حکومت نے یہ مخصوص پروپگنڈے کے ذریعے ہندوؤں اور مسلمانوں کے دلوں کو ایسا مسموم کر رکھا ہے کہ دونوں آج اردو اور ہندی کے درمیان ایک خلیج پیدا کرنے پر تلے ہوئے ہیں — مجھے یہاں یہ بتانا مقصود نہیں کہ ہندی اور اردو کی جنگ میں کون حق بجانب ہے اور کون مجرم؟ مجھے کہنا تو یہ ہے کہ آج اس جنگ نے دونوں کی ترقی کے راستے کو روک رکھا ہے — مجھے تو اس جنگ کا حال سن سن کر صدمہ ہوتا ہے اور تعجب بھی کہ آج ہندوستان کی بڑی ہستیاں بھی اس میں ملوث نظر آرہی ہیں — ایسی ہستیاں جو بڑی سے بڑی پیچیدگیوں کو دم میں ناخن عقل سے ادھیڑ کر پھینک دینے والی ہیں اس مسئلہ کو آج تک کیوں نہ سلجھا سکیں — مگر ساتھ ہی یہ محسوس کرکے اطمینان سا معلوم ہوتا ہے کہ بعض بعض ایسی ہستیاں بھی ہیں جو تعصب سے دور رہ کر علم و ادب کے یکساں خدمات کو اپنے لئے راہ عمل بنا چکی ہیں — آج ایک ایسی ہی باکمال ہستی بابو رام لوچن شرن کے قائم کردہ علمی ادارہ **پستک بھنڈار** کی سلور جوبلی منانے کے لئے ہم لوگ جمع ہیں — اس موقع پر ہمیں دیکھنا یہ ہے کہ ہمارے صوبۂ بہار کے علمی و ادبی حالات کیا ہیں؟ بہار اپنی تمام خوبیوں کے علاوہ ہمیشہ گنجینۂ علم و ہنر بھی رہا ہے — موجودہ دور ترقی میں بھی ہمارا صوبہ کسی صوبہ سے پیچھے نہیں، مگر مجھے افسوس ہے کہ ابھی تک ہماری علمی اور ادبی ضرورتیں تشنۂ تکمیل ہیں — اس کی ذمہ داری ہماری گردنوں پر ہے — آپ کے صوبہ بہار میں مضمون نگاروں، مصنفوں، مؤلفوں اور مترجموں کی کمی نہیں، اگر کمی ہے تو داد علم دینے والوں کی — ایسے ہمدرد لوگوں اور اداروں کی جو ان کے بیش قیمت علمی ذخیروں کو جمع کرکے قوم کے استفادہ کے لئے پیش کریں — کتابوں کی تصنیف و تالیف اور اشاعت کے لئے روپیوں کی ضرورت ہوتی ہے — بہار میں دولتمندوں کی کمی نہیں، کمی ہے تو ذوق علم و ادب کی — بد قسمتی سے دولتمند طبقہ اپنے فرض سے غافل ہے — دور کیوں جائیے، آپ کے شہر دربھنگہ ہی میں کیا اہل مقدور حضرات کی کمی ہے؟ ہرگز نہیں!

حضرات! جہاں ہمیں اپنی کم مائگی احساس پر افسوس ہوتا ہے، وہاں فخر کا موقع بھی ہے کہ صوبۂ بہار میں ہمارے ہی شہر دربھنگہ کے اندر ایک ہستی ایسی اور ایک ادارہ ایسا موجود ہے جو بہت کافی حد تک علمی ضرورت کو پورا کر رہا ہے اور

آج تئیس سال سے صوبہ بہار کے تمام علمی و ادبی ضروریات کو پورا کرنے کے علاوہ وہ نہایت ہی بے تعصبی کے ساتھ ہندوستانی زبانوں کی یکساں طور پر خدمات انجام دے رہا ہے۔

مجھے معلوم ہے کہ مصنفوں، مؤلفوں اور مترجموں کی کس طرح اور کس قدر ہمت افزائی کی جا رہی ہے - صوبہ بہار کا اہل بصیرت طبقہ اچھی طرح جانتا ہے کہ بہار کی کانگریس گورنمنٹ نے جب تعلیم بالغاں کا انتظام کیا تو اس موقع پر بابو رام لوچن شرن اور ان کے پستک بھنڈار نے کس طرح پمفلٹوں، کتابوں، سہل تعلیم کے لئے اردو اور ہندی چارٹوں اور دوسرے مختلف ذریعوں سے بہار گورنمنٹ کے اس علمی پروگرام کی مدد کی - آپ یہ جان کر خوش ہونگے کہ اس سلسلے میں ماسٹر صاحب نے مالی امداد سے بھی گریز نہ کیا - اس موقع پر خالی بیانہ کے ایک جلسہ کی جانب اگر میں آپ کی توجہ مبذول کروں تو بے جا نہ ہوگا - خالی بیانہ میں پچھلے سال جب تعلیم بالغاں کے نظام کو جاری کرنے کی کوشش ہو رہی تھی، اسی زمانے میں مسٹر کے - بی - سنہا کلکٹر دربھنگہ کی صدارت میں ایک جلسہ طلب کیا گیا اور عوام کے خیالات معلوم کرنے کے لئے بہت سے لوگوں کو اظہار خیال کا موقع دیا گیا - تعلیم بالغاں کے چند فروعی باتوں پر مسلمانوں نے اعتراض کیا - ان میں سب سے اہم اعتراض یہ تھا کہ وہ کتاب جو ماس لٹریسی کمیٹی کی طرف سے تعلیم بالغاں کے لئے شائع کی گئی ہے، مسلمان اسے پڑھنے کے لئے تیار نہیں - کلکٹر صاحب کے پاس اس کے سوا کوئی چارہ نہ تھا کہ وہ مسلمانوں کے شکایات کو وزیر تعلیم کے پاس بھیجا دیں - اس طرح اس معطل کو ختم کرنے میں وقت کی بربادی تھی اور خدشہ اس امر کا ہو گیا کہ ایک مفید تعلیمی عمل اس الجھن کی بنا پر برباد نہ ہو جائے - ماسٹر صاحب نے موقع کی نزاکت کو محسوس کر لیا اور فوراً اعلان کیا کہ آپ حضرات کوئی دوسری کتاب جس پر مسلمانوں کو اعتراض نہ ہو، لکھ کر لائیں - پستک بھنڈار اسے چھاپ کر رفاہ عام کے لئے دینے کو تیار ہے - "ایسے کہتے ہیں دھن اور علمی خدمات کا سچا جذبہ!"

ماس لٹریسی لائبریری کے لئے آپ نے "محمود سیریز" کے نام پر سو کتابوں کا ایک سیٹ تیار کرایا اور چھاپ کر مفت ہی کمیٹی کے حوالے کیا - یہ کتابیں اردو اور ہندی دونوں زبانوں میں شائع کی گئیں - یہ کتابیں مفید، کار آمد اور نواز معلومات ہونے میں اپنا نمونہ آپ ہیں - مجھے افسوس ہے کہ بہت سے خود غرض لوگوں نے ان پر اعتراضات کئے - یہ اعتراضات لغو اور بیہودہ تھے اور اعتراض کے پردے میں دشمنوں کے رشک اور بغض کو دخل تھا - **ماسٹر صاحب!** کام کرنے والے ناجائز اعتراضوں سے ڈرا نہیں کرتے - میں آپ کو اطمینان دلاتا ہوں کہ جہاں کچھ خود غرض معترضین آپ پر حملے کرتے رہے ہیں وہاں ایک بہت بڑا ہوشمند طبقہ آپ کے جذبۂ خدمت علم و ادب کا مداح بھی ہے -

کچھ دن ہوئے، پستک بھنڈار نے ایک رسالہ "ہونہار" نامی شائع کرنا شروع کیا تھا - جو اب کسی نا معلوم سبب کی بنا پر بند ہو چکا ہے - اس رسالہ میں

گرچہ ابھی خامیاں باقی ہیں مگر اُس کی خوبیوں کے مقابلے میں یہ خامیاں قابل ذکر نہیں۔ مجھے یقین ہے کہ ماسٹر صاحب تہوار کو دوبارہ جاری کرنے کی فکر میں ہوں گے۔

حضرات! یہ مختصر حال ہے سنگھ بھنڈار کے علمی و ادبی بے تعصب خدمات کے ہیں۔ ورنہ کارناموں کے بیان کرنے کے لئے ایک دفتر کی ضرورت ہوگی۔ مجھے کہنے دیجئے کہ اس دور میں جبکہ ہندوستان کی بڑی بڑی مستقل اُردو اور ہندی کے جھگڑوں میں پھنسی ہوئی ہیں، ماسٹر رام لوچن شرن جی اور سنگھ بھنڈار کی اس طور سے یکساں اور بے لوث خدمت قابل قدر ہے۔

آج بڑی خوشی اور مسرت کا مقام ہے کہ آپ لوگ سنگھ بھنڈار جیسے کامیاب اور خدمت گذار علمی و ادبی ادارہ کی جوبلی منا رہے ہیں۔ اس مبارک گھڑی میں میری طرف سے بھی مبارکباد قبول کیجئے۔ مگر میری مبارکباد، ماسٹر صاحب یا سنگھ بھنڈار ہی کے لیے نہیں، بلکہ تمام اُن اجزاء کے لئے ہے، جو سنگھ بھنڈار کے کسی طرح سے بھی شریک رہے ہیں۔ میری نظروں میں یہ جوبلی سنگھ بھنڈار ہی کی جوبلی نہیں بلکہ **”علم و ادب“** کی جوبلی ہے۔

ماسٹر صاحب! آخر میں میں آپ کو یقین دلاتا ہوں کہ آپ کے ادبی اور علمی کارنامے ناقابل فراموش ہیں۔ یہ کارنامے آئندہ نسلوں کے سامنے تاریخی صورت میں پیش ہوں گے اور صرف بہار ہی نہیں بلکہ ہندوستان آپ پر فخر کرے گا۔

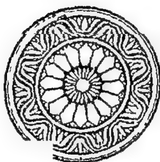

A GREAT MAN OF BIHAR

Rai Bahadur Gopal Chandra Praharaj, Compiler, Oriya Lexicon, Cuttack.

Babu Ramlochan Saran is one of the most enterprising publishers of Bihar and his amiable personality has brought him a host of friends I have found him labouring with perseverance against disadvantages which he has at last overcome

His 'Balak' is full of valuable informations not only for the young but for elderly people as well He has taken a leading part in the propagation of juvenile literature and the spread of the Hindi language throughout India

His strong common sense, his promptness of decision and action, his love of literature and his affection for the young people have made him known far beyond the boundaries of his mother province

By honesty, sincerity and enterprise he has raised his concern from small beginnings to the status of a leading institution of India He has the knack of finding out and encouraging best writers and of making solid and substantial contributions to literature

Orissa has got its due share of his liberality. He has got many Oriya text books written and translated by competent persons He is one of the genuine well-wishers of the Purnachandra Oriya Bhashakosha (Quadrilingual Oriya Lexicon) edited by me

May he live long to see the Golden Jubilee of the Pustak-Bhandar

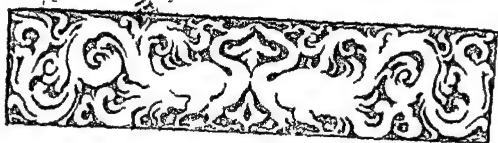

[१]

देशपूज्य डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी, सदाकत-आश्रम, पटना—

[illegible]

[२]

डाक्टर सर गंगानाथ झा, एम० ए० डि० लिट्—

शिक्षाप्रचारात्परमार्थसिद्धि
शिक्षाप्रथा पुस्तक सव्यपेक्षा ।
तत्संग्रहे ये सफलप्रयत्ना
भवन्तु कल्याणजुष सदा ते ॥

इति पुस्तक-भण्डारम्प्रति शुभाशासनम्

—श्रीगंगानाथ झा शर्मणः

दरभंगा, ६।७।४१

[३]

डाक्टर-सैयद-महमूद साहब, भूतपूर्व-शिक्षामंत्री, बिहार—

यह मालूम कर खुशी हुई कि 'पुस्तक-भंडार' अपनी पच्चीस साल की मुसलसल मुफीद खिदमतों के बाद इस साल अपनी जुबली मना रहा है। यह बात यकीनी काबिलतारीफ है कि यह 'भंडार' सन् १९१५ ई० में निहायत मामूली पूँजी से कायम होकर आज सूबे का एक बहुत बड़ा पबलिशिंग हाउस है जिसने हिन्दी और उर्दू की जबरदस्त खिदमत अंजाम दी है। इसके बानी बाबू रामलोचनशरण की, जिनके ऊँचे हौसले और कोशिशों का यह नतीजा है, जिन्दगी का एक बड़ा हिस्सा इल्म और अदब की खिदमत और सूबे में तालीम के मकसद को आगे बढ़ाने में गुजरा है। बच्चों के लिये 'पुस्तक-भंडार' ने तकरीबन् एक सौ पचास किताबें शाया की हैं जिससे हमारे मुल्क में बच्चे के अदब में बहुत बड़ा इजाफा हुआ है, लेकिन अनपढ़ों की तालीम के मुतल्लिक पुस्तक-भंडार ने जो सस्ती और मुफीद किताबों का सिलसिला निकाला है वह इसके नाम को काफी अरसे तक जिन्दा रक्खेगा। पुस्तक भंडार का जारी किया हुआ रिसाला 'होनहार' सहीह और सच्ची हिन्दुस्तानी का जिन्दा नमूना है और इससे हिन्दुस्तानी जबान के मकसद को कूवत पहुँची है। भंडार बच्चों के और रिसाले भी निकालता है जो हर लिहाज से बच्चों के लिये मुफीद हैं।

बाबू रामलोचनशरण की जाती खूबियों और काबलियत से भी मैं मुतास्सिर हुआ। आपके दिल में खिदमत का सहीह जज्बा है और तालीम के मकसद के लिये आपने अक्सर माली कुर्बानियाँ भी की हैं।

मैं पुस्तक भंडार को और ज्यादा कामयाब देखना चाहता हूँ और उम्मीद करता हूँ कि दूसरे लोग भी इसके नक्शेकदम पर चलने की कोशिश करेंगे।

—सैयद महमूद

[४]

माननीय श्रीअनुग्रहनारायण सिंह, भूतपूर्व अर्थमंत्री, बिहार-सरकार

"श्रीरामलोचनशरण की साहित्यिक सेवाओं के विषय में दो रायें नहीं हो सकतीं।"

—अनुग्रहनारायण सिंह

[५]

महामहोपाध्याय सकलनारायण शर्मा, काव्य-व्याकरण-सांख्यतीर्थ, व्याख्याता, कलकत्ता-विश्वविद्यालय—

मुझे यह कहते बड़ा हर्ष होता है कि पुस्तक भंडार ने हिन्दी-भाषियों को

अमूल्य पुस्तक-रत्न प्रदान किये हैं। जबतक हिन्दी की दुनिया विद्यमान है, तबतक उनके प्रकाश से हिन्दी-भाषियों के हृदय और मस्तिष्क जगमगाते रहेंगे। श्रीरामलोचनशरण ने भारत का, विशेषतः बिहार का, गौरव बढ़ाया है। ऐसी स्थिति में देश का कर्त्तव्य है कि वह उनका अभिनन्दन करे। ईश्वर से प्रार्थना है कि वे तथा उनका 'भंडार' अक्षय शक्तिशाली बनकर सरस्वती तथा उनके भक्तों की सेवा करें। उक्त शरणजी ने 'भंडार' की भक्ति करते करते लक्ष्मी का वरदहस्त अपने ऊपर रखवा लिया है। लक्ष्मी तथा सरस्वती दोनों के कृपा-पात्र कम लोग होते हैं। शरणजी दोनों के प्रिय हैं।

[६]

राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह एम० ए० सूर्यपुरा—

'पुस्तक-भंडार' गत २५ वर्षों से जिस लगन से हिन्दी की अनमोल सेवा करता आ रहा है वह किसपर विदित न है? इस संस्था ने बिहार के पुस्तक-प्रकाशन का गुरुतर भार अपने कन्धों पर लिया और सुन्दर एवं सस्ती पाठ्य-पुस्तकों तथा साहित्यिक ग्रन्थों को मुद्रित कर प्रान्त की एक बड़ी कमी की पूर्त्ति की है। आज इसकी रजत-जयन्ती के शुभ अवसर पर मैं तहे-दिल से बधाई देता हूँ।

[७]

श्री राय कृष्णदास, काशी—

'पुस्तक भंडार' की रजत जयन्ती प्रकाशन जगत् में एक उल्लेखनीय घटना है। वट की नाईं एक सूक्ष्म बीज से एक विशाल वृक्ष के रूप में इस संस्था का विकास केवल बिहार ही नहीं, समूचे देश की व्यवसायी प्रगति के लिये एक गौरव का विषय है। परमात्मा से 'भंडार' की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि की प्रार्थना करते हुए, हम आशा करते हैं कि 'भंडार' आज तक जिस साधु हिन्दी का प्रचार करता आया है, जो अहिन्दी भाषा प्रान्तों में भी—अर्थात् देश-भर के बहुत बड़े भाग म—भली भाँति समझी जाती है, उसी के प्रचार में निरत रहेगा। यह दूने हर्ष की बात है कि 'भंडार' के जन्मदाता और स्वत्वाधिकारी मास्टर रामलोचनशरणजी बिहारी की स्वर्ण-जयन्ती भी इसी अवसर पर सम्पन्न हो रही है। मास्टर साहब कर्त्तव्यपरायणता, एकनिष्ठा और अध्यवसाय की मूर्त्ति हैं। देश के व्यवसायियों के लिये उनका जीवन एक आदर्श है। जगन्नियन्ता करें, वे अनेक वर्षों तक अपने सफल जीवन द्वारा हमारी अगली पीढ़ी को मार्ग दिखाते रहें।

[८]

पण्डित रामनारायण मिश्र सभापति नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी—

श्रीरामलोचनशरण के पुस्तक-भंडार ने न केवल बिहार की सेवा की है, वरन् हिन्दी को ऊँचा उठाने में सारे भारत की सेवा की है।

[९]

राय ब्रजराजकृष्ण बी. ए., बी० एल., एम. एल. सी., एफ पी यू., आनन्दबाग, पटना सिटी—

अब से २५ वर्ष पहले साधारण-रूप में कार्य-आरम्भ कर आज यह 'पुस्तक-भंडार' बिहार की एक प्रमुख प्रकाशन संस्था बन गया है और इस पचीस साल की अवधि में इसने आशातीत सफलता प्राप्त की है। व्यवसाय के साथ-साथ हिन्दी की जितनी सेवा संभव है, उतनी करने का इस भंडार ने अच्छा प्रयत्न किया है। इसके मुख्य पत्र 'बालक' ने कोमलमति बालकों में ज्ञान विस्तार के लिये सराहनीय उद्योग किया है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर इस संस्था ने बहुतेरी उपयोगी पुस्तकें—हर प्रकार की और भिन्न-भिन्न विषयों पर—प्रकाशित की हैं। मैं 'भंडार' की जयन्ती के अवसर पर श्रीरामलोचनशरणजी को बधाई देता हुआ हृदय से 'भंडार' की उन्नति चाहता हूँ।

[१०]

पंडित धर्मराज ओझा एम. ए., काव्यतीर्थ, प्रिंसिपल संस्कृत-कालेज, मुजफ्फरपुर—

'पुस्तक-भंडार' के अध्यक्ष, बाल-साहित्य के निर्माता, बाबू रामलोचन-शरणजी बिहारी ने हिन्दी साहित्य के अभ्युत्थान और प्रचार के लिये निःस्वार्थ और अटूट परिश्रम किया है, उसके लिये हिन्दी-साहित्य का प्रेमी-जगत् उनका कृतज्ञ है और रहेगा। यह उनके महान् त्याग और अथक परिश्रम का ही परिणाम है कि हिन्दी प्रचार के क्षेत्र में भारत के किसी भी प्रान्त के सामने बिहार अपना मस्तक ऊँचा रख सकता है। छात्र-जीवन काल से ही इनके साथ मेरा घनिष्ठ संबंध रहा है। इनके हृदय की उदारता और हिन्दी साहित्य-सेवा की प्रगाढ़ लगन का परिचय मुझे गत तीस वर्षों से है। उसी समय इनके हृदय में हिन्दी साहित्य के प्रति पवित्र प्रेम और उसके प्रचारार्थ अदम्य उत्साह बीज-रूप में समीक्षकों को प्रत्यक्ष मालूम पड़ने लगे थे। वे ही आज पल्लवित, पुष्पित और फलित होकर हिन्दी-साहित्य के भंडार को अमूल्य पुस्तक-रत्नों से भर रहे हैं। ऐसे तो

पुस्तकों और पत्रों के प्रकाशन के लिये अनेक संस्थाएँ हैं, परन्तु इनके प्रकाशन-कार्य की एक बड़ी विशेषता यह है कि इस व्यवसाय में इन्होंने आर्थिक लाभ को नहीं, प्रत्युत हिन्दी साहित्य की सच्ची सेवा को ही प्रधान स्थान दिया है।

[११]

भिक्षु आनदकौसल्यायन, सारनाथ, बनारस—

'पुस्तक भंडार' के जितने प्रकाशन मेरी नजर से गुजरे हैं, सभी काम के। पत्रों में 'बालक' का अपना खास स्थान है। मेरे एक स्याम देश के विद्यार्थी अपने देश के पत्रों से जब यहाँ के पत्रों की तुलना करते हैं, तब मैंने देखा है कि वह 'बालक' की विशेष प्रशंसा करते हैं। मेरी कामना है कि देश के भावी नागरिकों—बालकों—का पथ प्रदर्शक 'बालक' चिरजीवी हो। 'भंडार' की जयन्ती के अवसर पर मेरी हार्दिक मगलकामना स्वीकृत हो।

[१२]

डाक्टर रामकुमार वर्मा, हिन्दी-विभाग, प्रयाग-विश्वविद्यालय—

'पुस्तक-भंडार' से मेरी पहली पहिचान 'बालक' के द्वारा हुई, जब मैं स्वयं एक विद्यार्थी था और प्रतिमास 'बालक' के नवीन अक की प्रतीक्षा में रहता था। तब से अबतक मैंने 'भंडार' की अनेक पुस्तकें पढ़ीं। मेरा ऐसा विश्वास है कि भारत की प्रमुख हिन्दीसंस्थाओं में 'भंडार' भी है। जहाँ तक मैं इस संस्था की पुस्तकें पढ़कर ज्ञात कर सका हूँ, साहित्य का सास्कृतिक दृष्टिकोण और उसका देशव्यापी प्रचार इसका आदर्श रहा है और मैं इस आदर्श को श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ। मुझे आशा है, इस संस्था से भविष्य में हिन्दी की अनेक सेवाएँ होंगी।

[१३]

प० धर्मदेवशास्त्री, दर्शनकेशरी, दर्शनभूषण, सांख्य योग-वेदान्त न्यायतीर्थ, कन्यागुरुकुल, देहरादून—

'पुस्तक-भंडार' हिन्दी साहित्य की जो सेवा कर रहा है और जिस खूबी के साथ हिन्दी-प्रकाशन क्षेत्र में सर्वाङ्गीण उन्नति कर रहा है, वह प्रशंसनीय है। बिहार के लिये ही नहीं, भारत के लिये यह गौरव की चीज है। उसके संचालक और व्यवस्थापक जिस उत्तमता के साथ कार्य कर रहे हैं, वह अनुकरणीय है। मैं 'भंडार' की सर्वतोमुखी उन्नति चाहता हूँ और संचालकों को बधाई देता हूँ। 'बालक' मेरा प्रिय पत्र है। यद्यपि वह अब १५ वर्ष का होने लगा है तब भी वह अपने स्वरूप को स्थिर बनाये हुए है। 'बालक' में प्रायः सभी उपयोगी विषयों पर

[८]

पंडित रामनारायण मिश्र सभापति नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी—

श्रीरामलोचनशरण के पुस्तक-भंडार ने न केवल बिहार की सेवा की है, वरन् हिन्दी को ऊँचा उठाने में सारे भारत की सेवा की है।

[९]

राय व्रजराजकृष्ण बी. ए., बी० एल., एम. एल. सी., एफ. पी. यू., आनन्दबाग, पटना सिटी—

अब से २५ वर्ष पहले साधारण-रूप में कार्य-आरम्भ कर आज यह 'पुस्तक-भंडार' बिहार की एक प्रमुख प्रकाशन संस्था बन गया है और इस पचीस साल की अवधि में इसने आशातीत सफलता प्राप्त की है। व्यवसाय के साथ-साथ हिन्दी की जितनी सेवा संभव है, उतनी करने का इस भंडार ने अच्छा प्रयत्न किया है। इसके मुख्य पत्र 'बालक' ने कोमलमति बालकों में ज्ञान विस्तार के लिये सराहनीय उद्योग किया है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर इस संस्था ने बहुतेरी उपयोगी पुस्तकें—हर प्रकार की और भिन्न-भिन्न विषयों पर—प्रकाशित की हैं। मैं 'भंडार' की जयन्ती के अवसर पर श्रीरामलोचनशरणजी को बधाई देता हुआ हृदय से 'भंडार' की उन्नति चाहता हूँ।

[१०]

पंडित धर्मराज ओझा एम. ए., काव्यतीर्थ, प्रिंसिपल संस्कृत-कालेज, मुजफ्फरपुर—

'पुस्तक-भंडार' के अध्यक्ष, बाल-साहित्य के निर्माता, बाबू रामलोचनशरणजी बिहारी ने हिन्दी साहित्य के अभ्युत्थान और प्रचार के लिये निःस्वार्थ और अटूट परिश्रम किया है, उसके लिये हिन्दी-साहित्य का प्रेमी-जगत् उनका कृतज्ञ है और रहेगा। यह उनके महान् त्याग और अथक परिश्रम का ही परिणाम है कि हिन्दी प्रचार के क्षेत्र में भारत के किसी भी प्रान्त के सामने बिहार अपना मस्तक ऊँचा रख सकता है। छात्र जीवन काल से ही इनके साथ मेरा घनिष्ठ संबंध रहा है। इनके हृदय की उदारता और हिन्दी साहित्य-सेवा की प्रगाढ़ लगन का परिचय मुझे गत तीस वर्षों से है। उसी समय इनके हृदय में हिन्दी साहित्य के प्रति पवित्र प्रेम और उसके प्रचारार्थ अदम्य उत्साह बीज-रूप में समीक्षकों को प्रत्यक्ष मालूम पड़ने लगे थे। वे ही आज पल्लवित, पुष्पित और फलित होकर हिन्दी-साहित्य के भंडार को अमूल्य पुस्तक-रत्नों से भर रहे हैं। ऐसे तो

पुस्तकों और पत्रों के प्रकाशन के लिये अनेक संस्थाएँ हैं, परन्तु इनके प्रकाशन-कार्य की एक बड़ी विशेषता यह है कि इस व्यवसाय में इन्होंने आर्थिक लाभ को नहीं, प्रत्युत हिन्दी साहित्य की सच्ची सेवा को ही प्रधान स्थान दिया है।

[११]

भिक्षु आनंदकौसल्यायन, सारनाथ, बनारस—

'पुस्तक-भंडार' के जितने प्रकाशन मेरी नजर से गुजरे हैं, सभी काम के। पत्रों में 'बालक' का अपना खास स्थान है। मेरे एक स्याम देश के विद्यार्थी अपने देश के पत्रों से जब यहाँ के पत्रों की तुलना करते हैं, तब मैंने देखा है कि वह 'बालक' की विशेष प्रशंसा करते हैं। मेरी कामना है कि देश के भावी नागरिकों—बालकों—का पथ प्रदर्शक 'बालक' चिरजीवी हो। 'भंडार' की जयन्ती के अवसर पर मेरी हार्दिक मंगलकामना स्वीकृत हो।

[१२]

डाक्टर रामकुमार वर्मा, हिन्दी-विभाग, प्रयाग-विश्वविद्यालय—

'पुस्तक-भंडार' से मेरी पहली पहिचान 'बालक' के द्वारा हुई, जब मैं स्वयं एक विद्यार्थी था और प्रतिमास 'बालक' के नवीन अंक की प्रतीक्षा में रहता था। तब से अबतक मैंने 'भंडार' की अनेक पुस्तकें पढ़ीं। मेरा ऐसा विश्वास है कि भारत की प्रमुख हिन्दीसंस्थाओं में 'भंडार' भी है। जहाँ तक मैं इस संस्था की पुस्तकें पढ़कर ज्ञात कर सका हूँ, साहित्य का सांस्कृतिक दृष्टिकोण और उसका देशव्यापी प्रचार इसका आदर्श रहा है और मैं इस आदर्श को श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ। मुझे आशा है, इस संस्था से भविष्य में हिन्दी की अनेक सेवाएं होंगी।

[१३]

प० धर्मदेवशास्त्री, दर्शनकेशरी, दर्शनभूषण, सांख्य योग-वेदान्त न्यायतीर्थ, कन्यागुरुकुल, देहरादून—

'पुस्तक-भंडार' हिन्दी साहित्य की जो सेवा कर रहा है और जिस खूबी के साथ हिन्दी-प्रकाशन क्षेत्र में सर्वाङ्गीण उन्नति कर रहा है, वह प्रशंसनीय है। बिहार के लिये ही नहीं, भारत के लिये वह गौरव की चीज है। उसके संचालक और व्यवस्थापक जिस उत्तमता के साथ कार्य कर रहे हैं, वह अनुकरणीय है। मैं 'भंडार' की सर्वतोमुखी उन्नति चाहता हूँ और सञ्चालकों को बधाई देता हूँ। 'बालक' मेरा प्रिय पत्र है। यद्यपि वह अब १५ वर्ष का होने लगा है तब भी वह अपने स्वरूप को स्थिर बनाये हुए है। 'बालक' में प्रायः सभी उपयोगी विषयों पर

लेख छपते हैं। चित्र संग्रह तो 'बालक' की अपनी ही चीज है। बालकों के लिये 'बालक' अपना पत्र है और प्रौढ़ों के लिये आश्चर्य-दृष्टि से देखने की चीज।

[१४]

ज्योतिषाचार्य पं० सूर्यनारायण व्यास (विद्यारत्न), भारती-भवन, उज्जैन—

श्रीरामलोचनशरण का 'बालक' और 'पुस्तक-भंडार' एक ही वस्तु के दो नाम हैं। जिस प्रकार साहित्य-सेवा करके 'भंडार' ने शुभ्र कीर्त्ति प्राप्त की है, बिहार का नाम बढ़ाया और विस्तृत किया है, उसी प्रकार 'बालक' ने अनेक परिवारों में प्रवेश कर लोकप्रियता पाई है। 'बालक' निरा अज्ञान-बालक नहीं है, वह बड़े-बूढ़ों को भी सीख देने की क्षमता रखता है। दस-बारह वर्ष हुए, 'भंडार' और 'बालक' से मैं परिचित हुआ हूँ। उसकी पिछली प्रतियाँ अबतक भी मेरे पास सुरक्षित हैं। उनमें कुछ विशेषांक तो इतने सुरुचिपूर्ण सम्पादित हैं कि बड़े-बड़े नामधारी मासिकों के भी वैसे विशेषांक न मिलेंगे। उनका साहित्य इतना बढ़िया है कि हर घर में बालकों के सुसंस्कार के लिये उनका सुरक्षित रखना परमावश्यक है। मैं तो बहुत प्रभावित हुआ हूँ। अभी तक मुझसे लेकर कई परिवारों ने अपने बालक बालिकाओं में इनका उपयोग किया है और इस बात के कायल भी हुए हैं कि इतना उत्तम साहित्य बालकों के लिये आज कई संग्रह पुस्तकों में भी एकत्र ढूँढ़े न मिलेगा। अकेले 'बालक' के कारण भी हिन्दी-जगत् में तथा सभी प्रान्तों में बिहार की इस उत्कृष्ट संस्था 'भंडार' का नाम चिरकाल तक रहेगा। फिर 'भंडार' की अनन्य साहित्य सेवा भी कम महत्त्व की नहीं है। बाल-साहित्य के नाते तो उसका अपना इतिहास स्वतंत्र और सुवर्णवर्णांकित होने योग्य है। मैं अपनी ओर से इस जयन्ती के प्रसंग पर सद्भावनापूर्ण शुभकामनाएँ प्रकट करता हूँ। हिन्दी के इतिहास में यह संस्था अमर रहे और निरन्तर सुन्दर साहित्य-सृजन कर भारती के भांडार को वैभवपूर्ण करे।

[१५]

श्रीआनन्दराव जोशी बी. ए., फडनीसपुरा, नागपुर सिटी—

'पुस्तक-भंडार' की रजत-जयन्ती के अवसर पर आपने जयन्ती स्मारक ग्रंथ प्रकाशित कराने का जो शुभ आयोजन किया है, उसका मैं हृदय से स्वागत करता हूँ। 'भंडार' ने पिछले पचीस वर्षों में हिन्दी की जो सेवा की है वह निस्सन्देह अभिनंदनीय एवं चिरस्मरणीय है। उसके 'बालक' ने तो हिन्दी की बालकोपयोगी

पत्र-पत्रिकाओं में अमरस्थान प्राप्त कर लिया है। 'भंडार' की शुक्लेन्दुवत् वृद्धि तथा उन्नति हो, यही मेरी हार्दिक कामना है।

[१६]

श्रीलक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु', एम. ए., जिला कां. क., पूर्णिया—

'पुस्तक भंडार' तथा उसके सर्वेसर्वा श्रीयुत रामलोचनशरणजी के साहित्यिक प्रयत्नों से मैं, एक अरसे से, परिचित हूँ। बचपन बीत जाने के बाद भी उनके 'बालक' का मैं एक उत्साही पाठक हूँ। 'भंडार' द्वारा प्रकाशित साहित्यिक पुस्तकें हिन्दी जगत् में अपना एक खास स्थान रखती हैं और 'बालक' बड़े बूढ़ों का भी ज्ञानवर्द्धन तथा मनोरंजन करता है। मैं इस संस्था के दिनानुदिन विकास की कामना करता हूँ।

[१७]

प्रोफेसर विश्वनाथप्रसाद, एम ए, बी एल, साहित्याचार्य, साहित्यरत्न, पटना-कालेज, पटना—

युगप्रवर्त्तक भारतेन्दु के ग्रन्थों के प्रकाशन तथा हिन्दी सेवा के द्वारा किसी जमाने में खड्गविलास प्रेस ने हमारे प्रान्त के लिये जो गौरव अर्जित किया था, आज आधुनिक हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि तथा सेवा के द्वारा 'पुस्तक-भंडार' ने भी प्रान्त को पुन उसी गरिमा से विभूषित किया है। वर्त्तमान युग के प्रवर्त्तक स्वर्गीय द्विवेदीजी, रहस्यवाद के श्रेष्ठ कवि 'प्रसादजी', महाकवि 'हरिऔध' आदि अनेक साहित्य महारथियों के ग्रंथों के प्रकाशन का श्रेय 'भंडार' पहले ही उपलब्ध कर चुका है। इसके अतिरिक्त प्रान्त के योग्य लेखकों और कवियों को इसकी ओर से सदैव प्रोत्साहन मिलता रहा है। इसके संस्थापक तथा संचालक बाबू रामलोचनशरणजी कोई बहुत बड़े धनपति नहीं थे, केवल प्रगाढ़ साहित्यानुराग और मातृ भाषा के सेवा भाव का उत्साह ही उनका मूल धन था। उसीके द्वारा उन्होंने यह 'भंडार' खड़ा किया और आजकल इसका संचालन करते जा रहे हैं। उनमें अनोखी सूझ है, अदम्य सेवा भावना है, पैनी व्यावसायिक बुद्धि है और है असाधारण योग्यता। पर सबसे बड़ा गुण जो उनमें है वह है उनकी सहृदयता तथा गुणग्राहकता। उन्होंने जिन कवियों या लेखकों की कृतियों का प्रकाशन किया है, उनमें से कोई भी ऐसा न होगा जिसे उनकी सज्जनता का परिचय न मिला हो। अपनी सहृदयता के द्वारा उनसे वे ऐसा स्नेह का सम्बन्ध कायम कर लेते हैं, जो अमिट हो जाता है। मैं उनकी सहृदयता का कायल हो चुका हूँ। बिहार प्रान्त की यह साहित्यिक संस्था बराबर फूलती-फलती रहे, साहित्य का यह 'भंडार' सदा भरापूरा रहे, यही मेरी हार्दिक मंगल-कामना है।

[१८]

प्रोफेसर कृष्णदेवप्रसाद गौड़, एम. ए., एल. टी. (लेक्चरर डी० ए० वी० कालेज) बनारस—

मेरा सम्पर्क 'पुस्तक-भंडार' से बहुत पुराना है। 'बालक' तो पहले अंक से आज तक बराबर पढ़ता चला आया हूँ। यदि श्रीरामलोचनशरणजी और कोई पुस्तक न लिखते, केवल 'बालक' ही सम्पादित करते, तो भी हिन्दी-साहित्य में उनका नाम स्थायी रहता। 'बालक' ने हिन्दी में कितने लेखक पैदा किये, नवयुवकों को कितना प्रोत्साहन दिया, यह हिन्दीवालों से छिपा नहीं है। नाम के लिये यह बालक बालिकाओं के लिये है, मगर कौन प्रौढ़ व्यक्ति कह सकता है कि 'बालक' से उसकी भी ज्ञानवृद्धि नहीं होती है। हिन्दी में जो दो-तीन बड़े-बड़े पुस्तक-प्रकाशक हैं, जिन्होंने सत्साहित्य का प्रकाशन कर हिन्दी-माता को सम्पन्न बनाया है, उनमें आप भी एक हैं। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में 'पुस्तक भंडार' का नाम अमर है, इसमें दो मत हो नहीं सकते। ईश्वर करें, दिनदिन 'भंडार' उन्नत हो। हिन्दी द्वारा वह बिहार ही नहीं, भारतवर्ष की सेवा कर रहा है। आपने जिस स्थिति से 'पुस्तक भंडार' को इस रूप में उठाया है, वह भी अध्यवसाय का एक सुन्दर उदाहरण है।

[१९]

श्रीप्रवासीलाल वर्मा मालवीय, काशी—

'पुस्तक-भंडार' हिन्दी के उद्बोधक तथा सुन्दर-साहित्य की एक गौरवशील संस्था है। मुझे इसका परिचय लगभग १४ वर्षों से है। इसका 'बालक' अपनी कोटि का अनोखा पत्र है। उसके विविध विशेषांक हिन्दी-साहित्य में सर्वदा के लिये अद्भुत तथा अमर रहेंगे। 'भंडार' के संस्थापक श्रीमान् रामलोचनशरणजी साहित्यिक कार्यों में धन-व्यय करने का जैसा साहस रखते हैं, वैसी ही हार्दिक लगन भी। उनकी इसी लगन और अन्य आकर्षक गुणों ने 'भंडार' को आज बिहार ही नहीं, भारतवर्ष के लिये एक आदर्श संस्था बना छोड़ा है। उसने इधर १५–२० वर्षों में बालकों और युवकों के लिये जैसा उत्तम साहित्य प्रकाशित किया है, उसके कारण वह अभिनन्दन के योग्य हैं। प्रसन्नता की बात है कि बिहार का शिक्षित समुदाय पुस्तक-भंडार तथा उसके संस्थापक की रजत-स्वर्ण जयन्ती मनाने का आयोजन कर रहा है। इसमें जरा भी संदेह नहीं कि जिस भंडार ने हिन्दी में ऐसा उत्तम साहित्य प्रकाशित किया हो, और उसके संस्थापक ने एक आदर्श स्थापित किया हो, उसकी रजत और स्वर्ण-जयन्ती सर्वथा सार्थक

है। हम ईश्वर से प्रार्थी हैं कि उनकी सद्बुद्धि से सर्वदा इसी प्रकार लोकोपकार होता रहे।

[२०]

पं० हरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी, एल एल बी, साहित्यरत्न, सम्पादक 'सरयूपारीण', गोरखपुर—

'पुस्तक-भंडार' की रजत-जयन्ती के इस शुभ अवसर पर हम 'भंडार' का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। 'भंडार' ने हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि के लिये जो स्तुत्य प्रयास किया है, वह साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित किया जायगा। 'भंडार' की सेवाएँ बहुमूल्य रही हैं। विहार प्रान्त के लिये 'भंडार' उत्तम साहित्य का उद्गम स्थान रहा है। न मालूम कितने सहृदय हिन्दी-सेवकों ने 'भंडार' की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन पाकर ही मातृभाषा के चरणों में अपनी कमनीय कृतियों की सुमनाञ्जलि समर्पित की है। 'भंडार' के संस्थापक श्रीराम-लोचनशरणजी उन धुनी व्यक्तियों में हैं, जिनका जीवन साहित्य-सेवा में ही व्यतीत हुआ है। आपने अनेक उपादेय पुस्तकों का सम्पादन और प्रणयन किया है। मैथिल कोकिल विद्यापति की रम्यस्थली में जब हिन्दी के हिमायती बहुत कम थे, उस समय भी आपने वहाँ राष्ट्रभाषा का झंडा ऊँचा रक्खा। 'भंडार' भविष्य में भी मातृभाषा की सर्वतोमुखी सेवा में निरत रहे—यही कामना है।

[२१]

प्रोफेसर माहेश्वरीसिंह 'महेश', एम० ए०, टी० एन० जे० कालेज, भागलपुर—

एक अत्यन्त लघुबीज, प्रकृति का कोमल स्पर्श पा, विशाल वटवृक्ष के रूप में परिणत हो, शत शत जीवों को अपने दिव्य अचल एवं सघन छाया में रख उन्हें स्वर्गीय सुख एवं आनंद पहुँचाता है। ठीक उसी प्रकार लघु 'पुस्तक-भंडार', श्रीरामलोचनशरणजी के अदम्य अध्यवसाय का मधुर संयोग पा, आज विशाल पुस्तक-भंडार के रूप में परिणत हो गया है। इसके पावनक्रोड़, विशाल अंचल एवं शीतल छाया में सारा हिन्दी संसार आनन्दोल्लास की किलकारियाँ मार रहा है। मेरा विश्वास है, जिस प्रकार आज से सदियों पहले मानव जाति के बड़े भाग को वटवृक्ष के तले मानवता का संदेश मिला था—जो संदेश-प्रकाश धारी सृष्टि के तमस्तोम मिटाने तथा उसके नव्य संस्करण का कारण बना था, उसी प्रकार हिन्दी-संसार एक दिन इस वट के तले वह संदेश-दीप जला सकेगा, जिसके प्रकाश में वह नव समृद्धि एवं नवीन प्रगति की सृष्टि कर सकेगा।

[२२]

साहित्याचार्य परमेश्वरप्रसाद शर्मा एम० ए०, बी० एल, प्रोफेसर, सेंट्कोलम्बाज कालेज, हजारीबाग—

यह 'विहारी' जी की सुव्यवस्था का ही मधुर फल है कि 'बालक' हिन्दी-साहित्य की सेवा द्वारा विहार प्रान्त के मुँह की लाली रक्खे हुए है। आशा है कि दिन-दिन उन्नति मार्ग में अग्रसर हो यह साहित्य की उत्तरोत्तर सेवा द्वारा बालकों, युवकों और प्रौढों का मनोरञ्जन कर उनकी ज्ञान-लिप्सा को तृप्त करता रहेगा।

[२३]

साहित्यरत्न श्रीरासविहारीराय शर्मा, एम ए., ट्रेनिङ्ग स्कूल, राँची—

'पुस्तक-भडार' ने हिन्दी के लिये जितना महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, उसके लिये 'भडार' के अध्यक्ष श्रीयुत बाबू रामलोचनशरणजी यथार्थत बधाई के पात्र हैं। पुस्तक-प्रकाशन, 'बालक' के सम्पादन, ग्रन्थ प्रणयन आदि के रूप मे शरणजी ने हिन्दी-साहित्य और हिन्दी-भाषा की अमूल्य सेवा की है और साहित्य क्षेत्र में मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। वास्तव में शरणजी बिहार के गौरव हैं। मैं इस जयन्ती के अवसर पर 'भडार' की शुभकामना करता हूँ और चाहता हूँ कि इसकी उन्नति दिन दूनी रात चौगुनी हो।

[२४]

प्रोफेसर रामेश्वर झा 'द्विजेन्द्र' एम० ए०, तेतरिया, भागलपुर—

राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा में सदा सलग्न रहनेवाले 'पुस्तक-भडार' की यह रजत-जयती एक राष्ट्रीय अनुष्ठान है। ऐसे शुभावसर पर मेरा सहस्र साधुवाद स्वीकार करें। हिन्दी के साहित्य-भंडार को यथाशक्ति पूर्ण करने में आपके 'भडार' की कार्य्यतत्परता की जितनी प्रशसा की जाय, कम है। आपके अटूट अध्यवसाय, अलौकिक साहित्यानुराग एव अमर लोक-सेवा ने 'भडार' को उन सद्गुणों से आभूषित कर दिया है, जिनके द्वारा यह हिन्दी-साहित्य को गौरवमय बनाने में समर्थ हो सकेगा। मेरा तो एकान्त विश्वास है कि आपके औदार्य्यपूर्ण सेवा-व्रत के अमोघ फल स्वरूप 'भडार' के ग्रंथ-रत्नों की अजस्र किरणों से समग्र हिन्दी-संसार उद्भासित होता रहेगा। जगन्नियन्ता आपको सुदीर्घ जीवन प्रदान करें जिससे 'भंडार' सदा अपने सुन्दर प्रकाशन-कार्य द्वारा हिन्दी-साहित्य की अनुकरणीय सेवा में अहोरात्र संलग्न रहे।

[२५]

पं० बुद्धिनाथ झा 'कैरव', एम० एल० ए०, रजिस्ट्रार, हिन्दी-विद्यापीठ, देवघर—

किसी संस्था या व्यक्ति की महत्ता का अनुमान इससे नहीं किया जाता कि अर्थ या ख्याति की उपलब्धि में उसका भाग कितना बड़ा है, बल्कि इससे कि जन समाज को प्रबुद्ध करने में उसकी प्रेरणा कितनी तीव्र है। इस दृष्टि से 'पुस्तक भंडार' और उसके संचालक प्रसंशा के पात्र हैं कि उनके द्वारा नवीन बिहार के शैशवकाल में लोगों को आत्मबोध और स्वावलंबन की प्रबल प्रेरणा मिली। वह प्रेरणा जन रुचि को वहाँ तक ले गई जहाँ से जीवन की बिलकुल सामान्य स्थिति के अन्दर असाधारण अभ्युदय के दर्शन होते हैं—जहाँ लघुता के आवरण में महत्ता की झाँकी मिलती है। सच तो यह है कि उस प्रेरणा ने व्यापार को एक नई दिशा सुझाकर साहित्य-सृजन द्वारा राष्ट्रीय हित को परिपुष्ट करने का एक नूतन संदेश दिया है। हम बिहारवाले आज पुस्तक-भंडार और उसके संचालक को देखकर गौरवान्वित होते हैं। आज हमारी साहित्यिक स्थिति सबल हो गई है, हमारी प्रकाशन रुचि ऊपर उठ गई है और हमारे साहित्यिक जीवन का धरातल ऊँचा हो गया है। इसका सारा श्रेय श्रीरामलोचनशरणजी को है। 'भंडार' की रजत-जयन्ती के अवसर पर हम उसकी मंगलकामना करते हैं और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि ऐसी संस्था और ऐसे व्यक्ति युग युग जीयें।

[२६]

श्रीयुत लक्ष्मीकान्त झा, आइ० सी० एस०, जमशेदपुर—

'पुस्तक-भंडार' ने जनपद को पढ़ाने में, अशिक्षित को शिक्षा देने में, विद्याप्रचार में जितनी सहायता दी है, उतनी सहायता बहुत कम लोगों ने की है। 'भंडार' मास्टर साहब का और मास्टर साहब भंडार के प्राण हैं। ईश्वर दोनों को दीर्घजीवी बनावें।

[२७]

श्रीचौरी वासुदेवनारायणसिंह, हिन्दी-ट्रान्सलेटर, बिहार-सरकार सेक्रेटेरियट, पटना—

विगत २५ वर्षों से 'पुस्तक-भंडार ने साहित्यिक पुस्तक-प्रकाशन एवं हिन्दी प्रचार द्वारा राष्ट्र भाषा की जो अमूल्य सेवा की है, वह सर्वथा प्रशंसनीय

है।

है। इसने प्रमाणित कर दिया है कि साहित्य निर्माण में बिहार किसी से पीछे नहीं। पुस्तकों को आकर्षक एवं सुरुचिपूर्ण बनाने का जो अनुकरणीय ढँग 'भंडार' ने अपनाया है, वह सच मुच अभिनन्दनीय है। बालोपयोगी साहित्य के सृजन में 'भंडार' ने विशेष सफलता प्राप्त की है। 'भंडार' सदैव इसी प्रकार उत्तरोत्तर उन्नति करता रहे—यही हमारी मंगल कामना है।

[२८]

पं० कृष्णबलवतपावगी, अध्यक्ष, हितचिन्तक प्रेस, काशी

श्रीरामलोचनशरण 'बिहारी'जी युवकों तथा व्यवसायियों के लिये आदर्श हैं। आपकी उद्योगशीलता, सत्यव्यवहार तथा सबसे प्रेमपूर्ण बर्ताव सराहनीय हैं। हम आपकी स्वास्थ्यकामना करते तथा आपके स्थापित 'भंडार' की दिनोंदिन उन्नति चाहते हैं।

[२९]

प० बालकृष्ण शास्त्री, अध्यक्ष, ज्योतिषप्रकाश प्रेस, विश्वेश्वरगंज, बनारस—

बिहार के लोकप्रिय बाबू रामलोचनशरणजी ने आज पचीस वर्षों से हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है। आपके 'पुस्तक-भंडार' ने अपने सुन्दर प्रकाशन से बिहार ही में नहीं, वरन् समस्त भारत में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। आप बच्चों से बड़ों तक के लिये उपयुक्त पुस्तकें लिखते और प्रकाशित करते हैं। 'बालक' बाल-साहित्य का एक सुन्दर प्रतीक है। आज आपही के प्रयास का यह फल है कि 'भंडार' उन्नति के मार्ग पर स्थित है। मुझे विश्वास है कि 'भंडार' अपने प्रकाशन द्वारा चिरकाल तक राष्ट्र तथा हिन्दी-साहित्य की सेवा करता रहेगा।

[३०]

श्रीहरिमोहनलालवर्मा, बी० ए०, साहित्यरत्न, 'आरोग्यमित्र'-सम्पादक—

सुविख्यात 'पुस्तक-भंडार' अपने जन्मकाल से ही हिन्दी-जगत् में स्थायी महत्त्व रखनेवाले साहित्य का सृजन कर रहा है। श्रीरामलोचनशरण बिहारी एक कर्मठ साहित्य सेवी हैं, जिन्होंने उत्तम ग्रंथों के प्रकाशन एवं 'बालक' के उत्कृष्ट सम्पादन द्वारा बिहार-प्रान्त को सब प्रकार गौरवान्वित किया है। मैं अपनी समस्त शुभकामनाओं के साथ उनका अभिनन्दन करता हूँ। आशा करता हूँ कि साहित्य-सृजन की प्रवृत्ति 'भंडार' के लिये लोकप्रियता का पथ प्रशस्त करती रहेगी।

[३१]

साकेतवासी रायसाहब राजेन्द्रप्रसाद, पी० ई० एस०, भूतपूर्व इंसपेक्टर स्टुडेंट्स रजिडेन्सेज, पटना तथा एक्स-ऑनरेरी मजिस्ट्रेट, छपरा—

अँगरेजी भाषा में एक कहावत है—'Child is the father of man' तथा 'The morning shows the day' यानी 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। इन कहावतों का व्यवहार प्रायः ऐसे महानुभावों के सम्बन्ध में किया जाता है जो सयाने होने पर अदम्य परिश्रम से सत्पथ पर अग्रसर होकर उन्नति के शिखर पर चढ़ जाते हैं। श्रीरामलोचनशरणजी भी ऐसे ही महानुभाव व्यक्तियों में हैं। सन् १९०६ ई० में मैं दरभंगा से बदलकर पटना ट्रेनिंग-स्कूल में आया और वहाँ पर डेढ़ वर्ष तक शिक्षक का कार्य सम्पादन किया। उस समय अन्तिम उच्च श्रेणी में दो छात्र बड़े होनहार, तीव्र बुद्धि वाले और परिश्रमी थे। उनमें एक थे श्रीरामलोचनशरणजी।

सयाने होने पर शरणजी में श्री भगवान्‌जी के चरण-कमलों में श्रद्धा उत्पन्न हो आई और इससे इनका शुभजीवन सुगन्धित सोना बन गया। श्रीभगवान्‌जी के अनुग्रह से ये व्यवहार में बड़े कुशल हुए जिसका आशातीत उत्तम फल देखने में आया। बिहार में ये अपने उत्तम कार्यों से उच्च पद को प्राप्त करने के लिये अग्रसर हो रहे हैं।

हमारी माननीय गवर्नमेंट ने इनके शुभगुणों का सम्मान-स्वरूप इनको 'रायसाहब' की उपाधि प्रदान की है। हमारी शुभ कामना है कि जिस उत्साह, परिश्रम और अध्यवसाय से ये जनता की शिक्षा सम्बन्धी सेवा कर रहे हैं, निकट भविष्य में अधिक-से-अधिक उच्च पद तथा सम्मान के पात्र बनें। इति शुभम्।

[३२]

श्रीयुत रामधारीप्रसाद, बिहारप्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधानमंत्री, मुजफ्फरपुर (वर्तमान—सेंट्रल जेल, हजारीबाग)—

'पुस्तक-भंडार' की रजत-जयन्ती के शुभ-अवसर पर मैं 'भंडार' तथा उसके सर्वेसर्वा श्रीरामलोचनशरणजी को हृदय से बधाई देता हूँ। 'भंडार' ने गत २५ वर्षों में हिन्दी की जो अपूर्व सेवा की है वह हिन्दी-साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने लायक है। 'भंडार' से जितनी सुन्दर-सुन्दर साहित्यिक पुस्तकें निकली हैं उतनी एक साथ बिहार की किसी दूसरी प्रकाशन संस्था से नहीं निकलीं। बिहार के नये पुराने लेखकों की कृतियों को सुन्दर ढंग से छापकर

है। इसने प्रमाणित कर दिया है कि साहित्य निर्माण में बिहार किसी से पीछे नहीं। पुस्तकों को आकर्षक एवं सुरुचिपूर्ण बनाने का जो अनुकरणीय ढँग 'भंडार' ने अपनाया है, वह सच मुच अभिनन्दनीय है। बालोपयोगी साहित्य के सृजन में 'भंडार' ने विशेष सफलता प्राप्त की है। 'भंडार' सदैव इसी प्रकार उत्तरोत्तर उन्नति करता रहे—यही हमारी मंगल कामना है।

[२८]

पं० कृष्णबलवंतपावगी, अध्यक्ष, हितचिन्तक प्रेस, काशी

श्रीरामलोचनशरण 'बिहारी'जी युवकों तथा व्यवसायियों के लिये आदर्श हैं। आपकी उद्योगशीलता, सत्यव्यवहार तथा सबसे प्रेमपूर्ण बर्ताव सराहनीय हैं। हम आपकी स्वास्थ्य कामना करते तथा आपके स्थापित 'भंडार' की दिनोंदिन उन्नति चाहते हैं।

[२९]

पं० बालकृष्ण शास्त्री, अध्यक्ष, ज्योतिषप्रकाश प्रेस, विश्वेश्वरगंज, बनारस—

बिहार के लोकप्रिय बाबू रामलोचनशरणजी ने आज पचीस वर्षों से हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है। आपके 'पुस्तक भंडार' ने अपने सुन्दर प्रकाशन से बिहार ही में नहीं, वरन् समस्त भारत में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। आप बच्चों से बड़ों तक के लिये उपयुक्त पुस्तकें लिखते और प्रकाशित करते हैं। 'बालक' बाल-साहित्य का एक सुंदर प्रतीक है। आज आपही के प्रयास का यह फल है कि 'भंडार' उन्नति के मार्ग पर स्थित है। मुझे विश्वास है कि 'भंडार' अपने प्रकाशन द्वारा चिरकाल तक राष्ट्र तथा हिन्दी-साहित्य की सेवा करता रहेगा।

[३०]

श्रीहरिमोहनलालवर्मा, बी० ए०, साहित्यरत्न, 'आरोग्यमित्र'-सम्पादक—

सुविख्यात 'पुस्तक-भंडार' अपने जन्मकाल-से ही हिन्दी-जगत् में स्थायी महत्त्व रखनेवाले साहित्य का सृजन कर रहा है। श्रीरामलोचनशरण बिहारी एक कर्मठ साहित्य सेवी हैं, जिन्होंने उत्तम ग्रंथों के प्रकाशन एवं 'बालक' के उत्कृष्ट सम्पादन द्वारा बिहार-प्रान्त को सब प्रकार गौरवान्वित किया है। मैं अपनी समस्त शुभकामनाओं के साथ उनका अभिनंदन करता हूँ। आशा करता हूँ कि साहित्य-सृजन की प्रवृत्ति 'भंडार' के लिये लोकप्रियता का पथ प्रशस्त करती रहेगी।

[३१]

साकेतवासी रायसाहब राजेन्द्रप्रसाद, पी० ई० एस०, भूतपूर्व इंसपेक्टर स्टुडेंट्स रेजिडेन्सेज, पटना तथा एक्स-ऑनरेरी मजिस्ट्रेट, छपरा—

अँगरेजी भाषा में एक कहावत है—'Child is the father of man' तथा 'The morning shows the day' यानी 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। इन कहावतों का व्यवहार प्रायः ऐसे महानुभावों के सम्बन्ध में किया जाता है जो सयाने होने पर अदम्य परिश्रम से सत्पथ पर अग्रसर होकर उन्नति के शिखर पर चढ़ जाते हैं। श्रीरामलोचनशरणजी भी ऐसे ही महानुभाव व्यक्तियों में हैं। सन् १९०६ ई० में मैं दरभंगा से बदलकर पटना ट्रेनिंग-स्कूल में आया और वहाँ पर डेढ़ वर्ष तक शिक्षक का कार्य सम्पादन किया। उस समय अन्तिम उच्च श्रेणी में दो छात्र बड़े होनहार, तीव्र बुद्धि वाले और परिश्रमी थे। उनमें एक थे श्रीरामलोचनशरणजी।

सयाने होने पर शरणजी में श्री भगवान्‌जी के चरण-कमलों में श्रद्धा उत्पन्न हो आई और इससे इनका शुभजीवन सुगन्धित सोना बन गया। श्रीभगवान्‌जी के अनुग्रह से ये व्यवहार में बड़े कुशल हुए जिससे आशातीत उत्तम फल देखने में आया। विहार में ये अपने उत्तम कार्यों से उच्च पद को प्राप्त करने के लिये अग्रसर हो रहे हैं।

हमारी माननीय गवर्नमेंट ने इनके शुभगुणों का सम्मान-स्वरूप इनको 'रायसाहब' की उपाधि प्रदान की है। हमारी शुभ कामना है कि जिस उत्साह, परिश्रम और अध्यवसाय से ये जनता की शिक्षा सम्बन्धी सेवा कर रहे हैं, निकट भविष्य में अधिक से-अधिक उच्च पद तथा सम्मान के पात्र बनें। इति शुभम्।

[३२]

श्रीयुत रामधारीप्रसाद, विहारप्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधानमंत्री, मुजफ्फरपुर (वर्त्तमान—सेंट्रल जेल, हजारीबाग)—

'पुस्तक-भंडार' की रजत-जयन्ती के शुभ अवसर पर मैं 'भंडार' तथा उसके सर्वेसर्वा श्रीरामलोचनशरणजी को हृदय से बधाई देता हूँ। 'भंडार' ने गत २५ वर्षों में हिन्दी की जो अपूर्व सेवा की है वह हिन्दी-साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने लायक है। 'भंडार' से जितनी सुन्दर सुन्दर साहित्यिक पुस्तकें निकली हैं उतनी एक साथ बिहार की किसी दूसरी प्रकाशन संस्था से नहीं निकलीं। बिहार के नये पुराने लेखकों की कृतियों को सुन्दर ढँग से छापकर

है। इसने प्रमाणित कर दिया है कि साहित्य निर्माण में बिहार किसी से पीछे नहीं। पुस्तकों को आकर्षक एवं सुरुचिपूर्ण बनाने का जो अनुकरणीय ढँग 'भंडार' ने अपनाया है, वह सच मुच अभिनन्दनीय है। बालोपयोगी साहित्य के सृजन में 'भंडार' ने विशेष सफलता प्राप्त की है। 'भंडार' सदैव इसी प्रकार उत्तरोत्तर उन्नति करता रहे—यही हमारी मंगल कामना है।

[२८]

पं० कृष्णबलवंतपावगी, अध्यक्ष, हितचिन्तक प्रेस, काशी

श्रीरामलोचनशरण 'बिहारी'जी युवकों तथा व्यवसायियों के लिये आदर्श हैं। आपकी उद्योगशीलता, सत्यव्यवहार तथा सबसे प्रेमपूर्ण बर्ताव सराहनीय हैं। हम आपकी स्वास्थ्य कामना करते तथा आपके स्थापित 'भंडार' की दिनोंदिन उन्नति चाहते हैं।

[२९]

प० बालकृष्ण शास्त्री, अध्यक्ष, ज्योतिषप्रकाश प्रेस, विश्वेश्वरगंज, बनारस—

बिहार के लोकप्रिय बाबू रामलोचनशरणजी ने आज पचीस वर्षों से हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है। आपके 'पुस्तक-भंडार' ने अपने सुन्दर प्रकाशन से बिहार ही में नहीं, वरन् समस्त भारत में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। आप बच्चों से बड़ों तक के लिये उपयुक्त पुस्तकें लिखते और प्रकाशित करते हैं। 'बालक' बाल-साहित्य का एक सुन्दर प्रतीक है। आज आपही के प्रयास का यह फल है कि 'भंडार' उन्नति के मार्ग पर स्थित है। मुझे विश्वास है कि 'भंडार' अपने प्रकाशन द्वारा चिरकाल तक राष्ट्र तथा हिन्दी-साहित्य की सेवा करता रहेगा।

[३०]

श्रीहरिमोहनलालवर्मा, बी० ए०, साहित्यरत्न, 'आरोग्यमित्र'-सम्पादक—

सुविख्यात 'पुस्तक-भंडार' अपने जन्मकाल से ही हिन्दी-जगत् में स्थायी महत्त्व रखनेवाले साहित्य का सृजन कर रहा है। श्रीरामलोचनशरण बिहारी एक कर्मठ साहित्य सेवी हैं, जिन्होंने उत्तम ग्रंथों के प्रकाशन एवं 'बालक' के उत्कृष्ट सम्पादन द्वारा बिहार-प्रान्त को सब प्रकार गौरवान्वित किया है। मैं अपनी समस्त शुभकामनाओं के साथ उनका अभिनन्दन करता हूँ। आशा करता हूँ कि साहित्य-सृजन की प्रवृत्ति 'भंडार' के लिये लोकप्रियता का पथ प्रशस्त करती रहेगी।

[३१]

साकेतवासी रायसाहब राजेन्द्रप्रसाद, बी० ई० एस०, भूतपूर्व इन्सपेक्टर स्टुडेंट्स रेजिडेन्सेज, पटना तथा एक्स-ऑनरेरी मजिस्ट्रेट, छपरा—

अँगरेजी भाषा में एक कहावत है—'Child is the father of man' तथा 'The morning shows the day' यानी 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। इन कहावतों का व्यवहार प्रायः ऐसे महानुभावों के सम्बन्ध में किया जाता है जो सयाने होने पर अदम्य परिश्रम से सत्पथ पर अग्रसर होकर उन्नति के शिखर पर चढ़ जाते हैं। श्रीरामलोचनशरणजी भी ऐसे ही महानुभाव व्यक्तियों में हैं। सन् १९०६ ई० में मैं दरभंगा से बदलकर पटना ट्रेनिंग-स्कूल में आया और वहाँ पर डेढ़ वर्ष तक शिक्षक का कार्य सम्पादन किया। उस समय अन्तिम उच्च श्रेणी में जो छात्र बड़े होनहार, तीव्र बुद्धि वाले और परिश्रमी थे। उनमें एक थे श्रीरामलोचनशरणजी।

सयाने होने पर शरणजी में श्री भगवान्जी के चरण-कमलों में श्रद्धा उत्पन्न हो आई और इससे इनका शुभजीवन सुगन्धित सोना बन गया। श्रीभगवान्जी के अनुग्रह से ये व्यवहार में बड़े कुशल हुए जिसका आशातीत उत्तम फल देखने में आया। बिहार में ये अपने उत्तम कार्यों से उच्च पद को प्राप्त करने के लिए अग्रसर हो रहे हैं।

हमारी माननीय गवर्नमेंट ने इनके शुभगुणों का सम्मान-स्वरूप इनको 'रायसाहब' की उपाधि प्रदान की है। हमारी शुभ कामना है कि जिस उत्साह, परिश्रम और अध्यवसाय से ये जनता की शिक्षा सम्बन्धी सेवा कर रहे हैं, निकट भविष्य में अधिक से अधिक उच्च पद तथा सम्मान के पात्र बनें। इति शुभम्।

[३२]

श्रीयुत रामधारीप्रसाद, बिहारप्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री, मुजफ्फरपुर (वर्तमान—सेंट्रल जेल, हजारीबाग)—

'पुस्तक-भंडार' की रजत-जयन्ती के शुभ अवसर पर मैं 'भंडार' तथा उसके सर्वेसर्वा श्रीरामलोचनशरणजी को हृदय से बधाई देता हूँ। 'भंडार' ने गत २५ वर्षों में हिन्दी की जो अपूर्व सेवा की है वह हिन्दी-साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने लायक है। 'भंडार' से जितनी सुन्दर सुन्दर साहित्यिक पुस्तकें निकली हैं उतनी एक साथ बिहार की किसी दूसरी प्रकाशन संस्था से नहीं निकलीं। बिहार के नये पुराने लेखकों की कृतियाँ को सुन्दर ढँग से

प्रकाश में लाने तथा बिहार के युवा-साहित्य सेवियों को अनेक प्रकार से प्रोत्साहित कर आगे बढ़ाने का काम 'भंडार' ने किया है, इसके लिये प्रत्येक हिन्दी सेवी के हृदय में 'भंडार' के प्रति श्रद्धा और आदर के भाव उठने लगते हैं। लगातार १५-१६ वर्षों से, अनेक वर्षों तक निरन्तर घाटा उठाकर भी 'बालक' का प्रकाशन कर 'भंडार' ने बिहार का गौरव बढ़ाया है। आज 'बालक' निश्चय ही बालोपयोगी पत्र-पत्रिकाओं में आदरणीय तथा श्रेष्ठ स्थान रखता है।

'भंडार' के अध्यक्ष श्री मास्टर साहब के सम्बन्ध में तो कुछ लिखना बेकार ही है। 'भंडार' ने आज जो कुछ गौरव पाया है उसका सारा श्रेय मास्टर साहब को ही है। मास्टर साहब ने हिन्दी-सेवा की अनेक दिशाओं में अपने प्रान्त में मार्गप्रदर्शक का काम किया है। गत २५ ३० वर्षों की अपनी एकान्त साहित्य-साधना के कारण मास्टर साहब बिहार के साहित्य सेवियों के बीच आदरपूर्ण स्थान रखते हैं। उनकी स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर उनका अभिनन्दन कर वास्तव में हम हिन्दी सेवी अपना अभिनन्दन करते हैं। भगवान करें, मास्टर साहब तथा उनका 'भंडार अनेक वर्षों तक जीवित रहकर हिन्दी की सेवा करते रहें।

[३३]

श्रीअवधनन्दनजी, दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा, त्यागरायनगर, मद्रास—

'शरणजी' ने बालसाहित्य तैयार करने में जो सफलता पाई है, उससे दक्षिण-भारत के हिन्दी प्रचार कार्य में भी काफी सहायता मिलती रहती है। आशा है, भविष्य में लोग आप से और भी अधिकाधिक लाभ उठायँगे।

[३४]

श्रीमती विमलादेवी 'रमा' (साहित्यचन्द्रिका), डुमराँव (शाहाबाद)—

बिहार के प्रकाशकों में सबसे अधिक जाज्वल्यमान नाम श्रीरामलोचन-शरणजी का है, जिन्होंने अपने अदम्य उत्साह और स्वाभाविक सुरुचि से कितने ही बिखरे साहित्य-सुमनों को चुनकर सुन्दर हार बनाया है। आपने सुसम्पादित साहित्यिक पुस्तकें आकर्षक सजावट के साथ प्रकाशित की हैं। अनेक बालोपयोगी पुस्तकों तथा 'बालक' पत्र के द्वारा बालकों के सच्चे हितैषी का सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया है। इसमें संदेह नहीं कि शरणजी में अनोखी सूझ है। एक सूक्ष्म वट बीज से एक विशाल वृक्ष के रूप में संस्था का विकसित होना केवल बिहार ही के लिये नहीं, समूचे देश की प्रगति के लिये गौरव का विषय है। 'भंडार' की उत्तरोत्तर वृद्धि हो, यही मेरी शुभकामना है।

[३५]

पं० कालीप्रसादसिंह चौधरी 'मीत', पर्णकुटी, हयुआ (गया)—

पुस्तक-भंडार ने और उसके संस्थापक तथा 'बालक'—सम्पादक ने बिहार और हिन्दी की जो सेवाएँ की हैं, वे इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों से लिखी जाने योग्य हैं। जिस योग्यता से यहाँ का 'बालक' सुसम्पादित होकर निकलता है वह बिहार के लिये गर्व की वस्तु है। रजत जयन्ती आयोजन नितान्त स्तुत्य है। ऐसे सुअवसर पर मुझ ब्राह्मण का एकमात्र यही शुभाशीर्वाद है—

"चिरजीवे 'बालक' सकल गुण-गरिमा दातार,
'मीत' सुसम्पादक लहैं मंगल-मोद अपार।"

[३६]

श्रीसहदेव पंजिकार, भागलपुर—

मैं मंगलमय भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि आपका 'पुस्तक भंडार', जो बिहार में एक ही है, उन्नति-पथ पर सदा डटा रहे। यह शिक्षकों की सेवा करने में बराबर तल्लीन रहा है। यह प्रत्येक साहित्य-सेवी के लिये गौरवस्तम्भ बना रहेगा।

[३७]

श्रीनरेन्द्र मालवीय, काशी—

'पुस्तक-भंडार' ने उत्तमोत्तम पुस्तकें तथा 'बालक' प्रकाशित कर देश की तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी की जो बहुमूल्य सेवाएँ की हैं, वे उसका नाम अमर बनाये रक्खेंगी। रजत-जयन्ती के शुभ अवसर पर मैं आपका हार्दिक अभिनंदन करता हूँ। 'बालक' हिन्दी - साहित्य को 'भंडार' की ओर से एक अमूल्य देन है। वह दिन दिन उन्नति करता जा रहा है। आज वह देश के बालकों का सर्वप्रिय तथा सर्वश्रेष्ठ पत्र है। बड़ी लगन के साथ वह बालकों के एक सच्चे मित्र तथा आदर्श शिक्षक का कार्य कर रहा है। वह दिन दिन फूले-फले।

[३८]

श्री गोविन्दलाल भगर, गया—

'बालक' ने बालकों और इतर वर्गों की जो सेवा की है, वह अकथनीय है। बालकों एवं शिक्षकों के बौद्धिक विकास में इसका महत्त्वपूर्ण हाथ है। इसके सम्पादक बाबू रामलोचनशरणजी की कर्मठता का ही फल है कि 'बालक' को सर्व-साधारण ने अपनाया है। आपके उदार सज्जनोचित व्यवहार का पता उस समय मिला था जब बिहार-प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन

लहेरियासराय में हुआ था। आपके सुन्दर व्यक्तित्व की झाँकी बराबर 'बालक' में देखने को मिला करती है। परमात्मा 'बालक' को अमर करे।

[३९]

—श्री के० भुजबली शास्त्री 'विद्याभूषण', जैन-सिद्धान्त-भास्कर' एवं 'वीरवाणी' के सम्पादक, आरा—

श्रीयुत रामलोचनशरणजी के द्वारा लिखित और प्रकाशित अनेक पुस्तकों को मैंने देखा है। उनकी छपाई और सजावट सुन्दर और चित्ताकर्षक है। इस सुन्दर साहित्य-निर्माण के लिये आप प्रशंसा और धन्यवाद के पात्र हैं।

[४०]

प० यदुनन्दन शर्मा, दरभंगा—

पवन-प्रताप गगन रज चढ़ता पर ऊपर पाता न ठहर है।
विलग वायु से फिर वह रज-कण-रज ही रह जाता गिरकर है॥
शैल स्वयं बढ़ता लघु-लघु ही होती बाढ़ चिरस्थायी है।
रज रज रहा, स्वावलम्बन से गिरिवर ने गुरुता पायी है॥
रही न रज की रीति आपकी, आप स्वावलम्बन के बल से।
शनैः-शनैः बढ़ शैल-सरिस साहित्य सृष्टि में लसे अचल-से॥
जोड़ अपेक्षित टुकड़ों को साहित्य-सदन निर्माण किया है।
शिल्पी मय-सा सरस्वती की शिल्पकला का त्राण किया है॥
जहाँ ग्रन्थ अप्राप्य वहाँ पर रच 'पुस्तक-भंडार' दिया है।
रजत-जयन्ती कर साहित्यिक जग का आशीर्वाद लिया है॥
माला-पर-माला रचते हैं सरस्वती-माँ के पूजन में।
वितर शारदा का प्रसाद, कर लिया नाम है सदन-सदन में॥
अमर रहें साहित्य-लताएँ अमल 'सुयश ज्योत्स्ना यह न्यारी।
लह-लह करती रहे लुभाती नित यह साहित्यिक फुलवारी॥
यही कामना है मेरी, यह समय जयन्ती का फिर आये।
यह 'पुस्तक भंडार' अमर बन रहे सुकीर्ति केतु फहराये॥
'शरण रामलोचन' खुद हैं साहित्य सुसेवक राम-दुलारे।
दोनों का सम्बन्ध मधुर है, एक अपर के बने सहारे॥

[४१]

श्रीराधाकृष्णप्रसाद, प्रकाश लॉज, रतनपुरा, छपरा—

यह तो हमारे लिये एक चिरस्मरणीय घटना है कि श्रीरामलोचनशरणजी

के समान युग निर्माता व्यक्ति हमारी जाति में आ पड़े। हमारी जाति के ही आप साहित्यिक प्रतिनिधि नहीं हैं, बल्कि बिहार के साहित्य के इतिहास में आप अपना एक अलग अध्याय छोड़ जायँगे, यह कोई अंधा भी कह सकता है। आपसे मुझे काफी प्रेरणा मि० है। आपके चरण-चिह्न पर मैं चलने में समर्थ हो सकूँ, यही आशीर्वाद आपसे चाहता हूँ।

[४२]

आयुर्वेदरत्नाकर प० राधारमण शर्मा, काव्यतीर्थ, साहित्याचार्य, प्रधान मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, गया—

पुस्तक-भंडार के संचालक श्रीमान् मास्टर साहब के भौतिक शरीर से तो मेरा परिचय नहीं, पर उनके यश शरीर से मैं पूर्ण परिचित हूँ। आपने 'भंडार' से हिन्दी के भंडार को कई अनमोल रत्न प्रदान कर जहाँ उन्होंने बिहार की प्रतिष्ठा बढ़ाई है, वहाँ स्थायी हिन्दी साहित्य की सृष्टि के लिये भी चिर-स्मरणीय कार्य किये हैं, जिसके कारण बिहार में ही नहीं, सभी हिन्दी-प्रान्तों में उनकी ख्याति फैल रही है। भगवान् करें, श्रीमान् मास्टर साहब अपने 'भंडार' के साथ मार्कण्डेय की आयु प्राप्त करें, जिससे हमारी हिन्दी को आपके द्वारा श्रेष्ठ और सुन्दर चीजें मिलती रहें।

[४३]

श्रीरामनारायणसिंह, एम० एल० ए० (केन्द्रीय), हजारीबाग—

मेरी हार्दिक शुभकामना है कि 'पुस्तक-भंडार' दिन-दूनी और रात चौगुनी उन्नति प्राप्त करता रहे जिससे देश और समाज का लाभ हो और बिहार का यश बढ़े।

[४४]

श्रीसुखलालसिंह, एम०एल०ए०, चेयरमैन, जिलाबोर्ड, हजारीबाग—

'पुस्तक-भंडार' से प्रकाशित 'बालक' को मैं बहुत दिनों से जानता हूँ। यह बालकों के अलावा युवकों और वृद्धों का भी साहित्यिक आहार है। 'भंडार' ने निरक्षरता निवारण में जनता की अटूट सेवा कर देश में बड़े गौरव का स्थान प्राप्त कर लिया है।

[४५]

श्रीयुत मथुराप्रसादजी, सदाकत आश्रम, पटना—

'श्रीयुत रामलोचनशरण ने मुण्डारी, उराँव तथा संथाली भाषाओं के साहित्य को, उनकी गाथाओं को, सुन्दर सज-धज के साथ पुस्तकों के रूप में प्रकाशित कर, और इस तरह उन्हें अमर बनाकर, जो महान् कार्य किया है, उसके लिये मैं धन्यवाद ही देकर सतोष करना नहीं चाहता हूँ कि उनके इस बड़े काम में मदद पहुँचानेवाला बन जाऊँ। उन्होंने अपने उद्योग से छोटानागपुर से लेकर हिमालय की तराई तक और संथालपरगना से लेकर कर्मनाशा नदी तक रचनात्मक कार्य द्वारा हिन्दी के प्रचार में जो सहायता पहुँचाई है वह बहुत अधिक है और उसकी जितनी तारीफ हो, ठीक ही है।

छोटानागपुर की भाषाओं के ग्रामगीतों की पुस्तकें प्रस्तुत करने में उनके जितने रुपये खर्च होते हैं उनकी पूर्त्ति किसी रूप में होनी चाहिये। उसका सब से सुन्दर रूप है प्रान्त का उनके साथ सहयोग। दर्शन, विज्ञान या अन्य उच्च भावों की महत्त्वपूर्ण पुस्तकों के प्रस्तुत करने में जो मूलधन उनका लग जाता है, वह समालोचकों के लिये आँकने की वस्तु है।

अच्छा, कोई समझे या न समझे, वे इसकी परवा न करें। बस, सब समालोचकों के समालोचक, मालिकों के मालिक, सब प्राणों के प्राण, जगन्नियंता, प्रियतम प्राणेश्वर की कृपा दृष्टि रहे और उनकी कृपालु प्रेमपूर्ण नजरों की जादूगरी उनपर और उनके उद्योगों पर चलती रहे, तो अनुष्ठान सफल होकर ही रहेगा।

[४६]

श्रीकेशवप्रसाद सिंह, प्रेसिडेंट, जिलाकांग्रेस-कमिटी, राजेन्द्र-आश्रम, गया—

श्रीरामलोचनशरणजी ने अपने पुस्तक-भण्डार द्वारा सुन्दर साहित्यिक पुस्तकों तथा 'बालक' के प्रकाशन से इस प्रान्त की जो अकथनीय सेवा की है, वह स्तुत्य तो है ही, साथ-ही-साथ अपढ़ और निरक्षर किसानों में साक्षरता प्रचार के लिये तन मन धन तथा लेखनी से इन्होंने जो प्रयास किया है वह बिहार के निरक्षरता-निवारण-आन्दोलन के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने योग्य है। मैं पुस्तक-भण्डार तथा श्रीशरणजी की सतत सफलता की कामना करता हूँ।

[४७]

पं० सूर्यनाथ चौबे, प्रेसिडेन्ट, जिला कांग्रेस-कमिटी, शाहाबाद—

पुस्तक-भंडार ने बिहार के जनपदों के लिये बहुत सी अच्छी किताबें तथा चार्ट हिन्दी-उर्दू-बँगला में छापकर मुफ्त में बाँटे हैं, जिसके लिये शरणजी को गतवर्ष सरकार से स्वर्णपदक भी मिला है। साहित्यिक क्षेत्र में शरणजी का स्थान बिहार में सर्वप्रथम है, आशा है। 'भंडार' उत्तरोत्तर उन्नति करता रहेगा।

[४८]

श्रीपुरुषोत्तम चौहान, सभापति, झरिया कोलफिल्ड कॉंग्रेस-कमिटी—

पुस्तक भंडार जैसे 'बालक' प्रकाशित कर बाल-जगत् की सेवा कर रहा है, वैसे ही एक सर्वांगसुन्दर साहित्यिक मासिक पत्रिका प्रकाशित कर हिन्दी-साहित्य की एक बड़ी जरूरत को पूरा करे। हिन्दी के सुप्रसिद्ध प्रकाशन-मंदिर में आपका स्थान सबसे अग्र रहे, यह मेरी आन्तरिक इच्छा है।

[४९]

श्रीहरिकिशोर प्रसाद, बी ए, बी एल, एम. एल. ए, भागलपुर—

'भंडार' ने न केवल शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तक प्रकाशन से ही बिहार की सेवा की है, वरन् उच्च कोटि के साहित्यिक प्रकाशन से भी बिहार के मस्तक को अधिक ऊँचा उठाया है। 'शरणजी' के तत्त्वावधान में सम्पादित 'बालक' मासिक बाल-साहित्य में अपना एक ऐसा स्थान रखता है जिसपर बिहार को गौरव है। सच पूछा जाय तो 'भंडार' प्रान्त विशेष की वस्तु नहीं, बल्कि हिन्दी-जगत् की ऐसी निधि है जिसपर गर्व होना स्वाभाविक है। मैं पुस्तक भंडार के संस्थापक धन्नायमना श्रीरामलोचनशरणजी को इस स्तुत्य प्रयत्न के लिये अभिनन्दित करता हूँ और पुस्तक भंडार एवं 'बालक' का मंगल चाहता हूँ।

[५०]

श्रीरामेश्वरप्रसाद सिंह, बी ए, एम एल ए., वाइस चेयरमैन, डिस्ट्रिक्टबोर्ड, मुजफ्फरपुर—

पुस्तक भंडार निस्सन्देह हिन्दी-साहित्य की सच्ची सेवा कर रहा है। इसके सञ्चालक श्रद्धेय श्रीरामलोचनशरणजी ने तो इस 'भंडार' को खोलकर हिन्दी-संसार में अपने नाम को अमर बना लिया है। प्रकाशन का काम ये बड़ी खूबी से कर रहे हैं। आशा ही नहीं, विश्वास है कि इनके सुप्रयत्न से बिहार का

नाम हिन्दी प्रान्तों में अत्युच्च स्थान प्राप्त कर लेगा। इस रजत जयन्ती के शुभ अवसर पर मैं अपनी हार्दिक शुभ कामनाएँ भेजता हूँ।

[५१]

श्रीरामेश्वरनारायण अग्रवाल, चेयरमैन, म्यूनिस्पल बोर्ड, भागलपुर—

पचीस वर्षों के अपने अनवरत परिश्रम तथा अदम्य उत्साह द्वारा पुस्तक-भंडार ने हिन्दी साहित्य की जो सेवा की है वह केवल प्रशंसनीय ही नहीं, बल्कि समस्त हिन्दी-संसार के सामने महत्त्वपूर्ण भी है। उच्चकोटि की साहित्यिक पुस्तकों को प्रकाशित करने में यह हिन्दी-जगत् की निधि और बिहार का गौरव है। शिक्षावृद्धि की ओर इसका विशेष ध्यान रहता है। हाल ही बिहार के निरक्षरता-निवारण आन्दोलन को सफल बनाने में अपनी अमूल्य सेवाएँ अर्पित कर इस भंडार' ने सभी शिक्षा-प्रेमियों के हृदयों में आदरणीय स्थान प्राप्त किया है। इसके अध्यक्ष श्रीरामलोचनशरणजी एक सरल, उदार एवं दानशील व्यक्ति हैं। हिन्दी साहित्य प्रेमियों में आपका स्थान बहुत ऊँचा है। विद्वानों का आदर करना आपके जीवन की विशेषता है। शरणजी द्वारा संचालित यह पुस्तक-भंडार दिनानुदिन उन्नति की ओर अग्रसर हो, यह मेरी हार्दिक कामना है।

[५२]

श्रीलक्ष्मीनारायण सिंह, वाइस चेयरमैन, डिस्ट्रिक्टबोर्ड, छपरा—

पुस्तक-भंडार और उसके संस्थापक श्रीरामलोचनशरणजी ने हिन्दी साहित्य की जो सराहनीय सेवा की है, उसका वर्णन जितना किया जाय, थोड़ा है। 'भंडार' ने अनेक अमूल्य पुस्तकें तथा 'बालक', जो बच्चों के लिए अपने जोड़ का अनोखा मासिकपत्र है, प्रकाशित कर अपने नाम को अमर कर दिया है। इधर निरक्षरता निवारण - आन्दोलन को सफल बनाने में श्रीरामलोचनशरणजी ने जो कुछ किया है, उसकी प्रशंसा अकथनीय है। हम 'भंडार' के रजत-जयन्ती-अवसर पर उसके संस्थापक को बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में भी उनसे हिन्दी-साहित्य की सेवा इसी रूप में होती रहेगी।

[५३]

श्रीइन्द्रदेव पाण्डेय, चेयरमैन, [illegible] सहसराम (शाहाबाद)—

बड़े हर्ष की बात है कि इस वर्ष [illegible] की [illegible] तथा भंडार के संस्थापक श्रीरा [illegible] रही है। इसके लिये हमें बहुत [illegible]

[५४]

श्रीमगलचरण सिंह, वाइस चेयरमैन, लो बो, भभुआ (शाहाबाद)—

हर्ष की बात है कि इस वर्ष पुस्तक भडार की रजत जयन्ती तथा उसके अध्यक्ष श्रीरामलोचनशरणजी की स्वर्ण जयन्ती मनाई जा रही है। इस कार्य के लिये हार्दिक बधाई देता हूँ।

[५५]

श्रीजगन्नाथप्रसाद सिंह, वाइस चेयरमैन, डि बो, शाहाबाद—

पुस्तक भडार की रजत-जयन्ती तथा श्रीरामलोचनशरणजी की स्वर्ण-जयन्ती होने जा रही है। इस कार्य के लिये मुझे बड़ी प्रसन्नता है।

[५६]

श्रीफिरगी सिंह, चेयरमैन, लोकलबोर्ड, छपरा—

पुस्तक-भडार को मैं बहुत दिनों से जानता हूँ। 'भडार' ने आजतक सैकड़ों उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित कर हिन्दी ससार में अपना प्रतिष्ठित स्थान बना लिया है। इस अवसर पर हम हृदय से उसको बधाई देते हैं।

[५७]

श्रीश्यामकृष्ण सहाय, बार-एट-ला, राँची—

पुस्तक-भडार से मेरा इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है कि यह तो मेरा अपना ही प्रतीत होता है। किसी आत्मीय की उन्नति को देखकर जो आह्लाद होता है, वही मैं अनुभव कर रहा हूँ। पुस्तक-भडार ने हिन्दी साहित्य की क्या सेवा की है, इसपर विशेष प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं। सभी हिन्दी-प्रेमियों को यह विदित है। शरणजी ने बच्चों से लेकर बूढ़ों तक के लिये उपयोगी साहित्य का निर्माण किया है। उनके विद्यापति प्रेस ने छपाई, बँधाई, गेट अप में तो प्रान्त-भर में सर्वप्रथम स्थान पाया है। जब इतनी सफलता २५ वर्षों के अल्पकाल में प्राप्त की है, तब मुझे पूर्ण विश्वास है कि आगे चलकर 'भडार' विदेशों के विख्यात प्रकाशकों की भाँति विश्वविख्यात प्रकाशन सस्था बनेगा।

[५८]

श्री आर०-डब्लू०-माथुर, एडुकेशन अफसर, जमशेदपुर—

इस विहार प्रान्त में ऐसा कोई भी व्यक्ति न होगा जो पुस्तक-भडार

को न जानता हो। इस संस्था के संस्थापक पंडित रामलोचनशरणजी के अटूट परिश्रम से ही बिहार के साहित्य में इस भाँति का उत्थान हुआ है। बिहार का एकमात्र प्रसिद्ध मासिकपत्र है 'बालक'। यह इन्हींकी सेवा का फल है। मैं इस जयन्ती के अवसर पर शुभकामना करता हूँ।

[५९]

श्रीनागेश्वरदत्त पाठक, प्रधानमंत्री, जिला-शिक्षक-संघ, चम्पारन—

पुस्तक भंडार ने गत २५ वर्षों में हिन्दी साहित्य की जो सेवा की है, उसे ध्यान में रखकर यह कहते हर्ष मालूम होता है कि 'भंडार' ने हम बिहारियों के गौरव को बहुत बढ़ाया है। हिन्दी-भाषा-भाषियों के लिये यह एक शान की वस्तु है। इसकी उन्नति में हमारी उन्नति निहित है। 'भंडार' सदा फूलता-फलता रहे।

[६०]

श्रीविश्वनाथलाल कर्ण, भू. पू. प्रधान मंत्री, छात्रसंघ, मधुबनी—

'पुस्तक-भंडार' का स्थान आज केवल बिहार ही की नहीं, प्रत्युत भारत की प्रमुख प्रकाशन-संस्थाओं में है। इसने, अपने अमूल्य प्रकाशनों के द्वारा, बिहार के साहित्य-जगत् में युगांतर उपस्थित कर दिया है। सैकड़ों पुस्तकें यहाँ से निकलीं—सबका कलेवर आकर्षक और विषय हृदय-ग्राही। 'भंडार' का तेजस्वी 'बालक' बालकों का अभिन्न मित्र और अभिभावकों का वाञ्छित 'बालक' है।

आज से पचीस वर्ष पूर्व एक छोटी सी कुटिया में 'भंडार' का जन्म हुआ था। पूज्यपाद रामलोचनशरणजी सच्चे कर्मयोगी हैं, जिनके उद्योग और अनुभव का परिणाम आज प्रत्यक्ष है। यह संसार के एक सुप्रसिद्ध प्रकाशन मंदिर के रूप में प्रसिद्धि पावे, यही मेरी हार्दिक शुभकामना है।

[६१]

श्रीपुष्पदन्तप्रसाद जैन, मंत्री, सारन-हिन्दी-साहित्य-परिषद्, छपरा—

बिहार ने कतिपय अद्वितीय विद्वान्, कवि तथा लेखक देकर जहाँ हिन्दी के विभिन्न भागों को परिपूर्ण किया है, वहाँ वह प्रकाशन-विभाग में अन्य कई प्रान्तों से पीछे रह गया है। बिहार की इस कमी में यदि हमारी आँखें कहीं ठहर पाती हैं तो लहेरियासराय की एकमात्र संस्था पुस्तक-भंडार पर। यह संस्था अपने सुयोग्य संचालक श्रीयुत रामलोचनशरणजी की कार्य-कुशलता से, समय की

विभिन्न परिस्थितियों का सामना करते हुए, आज अपनी रजत-जयन्ती देखने जा रही है। मैं भी इस शुभ अवसर पर सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्य-जगत् से प्राप्त शुभकामनाओं की माला में एक दाना पिरोता हूँ।

[६२]

श्रीजगन्नाथसहाय, सेक्रेटरी, राजेन्द्र-कौलेजिएट स्कूल, छपरा—

पुस्तक-भंडार ने इस प्रान्त में जिस लगन और उत्साह के साथ हिन्दी साहित्य का ठोस कार्य किया है, वह स्तुत्य है। सर्वांगसुन्दर साहित्य-ग्रन्थों का प्रकाशन और सम्पादन करना इसका लक्ष्य रहा है। 'भंडार' की कीर्त्ति ध्वजा सर्वदा लहराती रहे, यही मन कामना है।

[६३]

श्रीगोविन्दप्रसाद सिंह, एम बी., आई पी एस., उपसभापति, बिहार-प्रान्तीय हिन्दू-महासभा, झालदा, मानभूमि—

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि 'बालक'-सम्पादक श्रीरामलोचन-शरणजी की अनवरत तपस्या द्वारा पुस्तक-भंडार को आज अपनी रजत-जयन्ती देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। श्रीशरणजी तथा उनके पुस्तक भंडार की पूरी ख्याति बिहार और उसके बाहर है। ईश्वर करे, हिंदी-साहित्य की सेवा में पुस्तक भंडार को सदैव सफलता मिलती रहे।

[६४]

अलाउद्दीन अहमदसाहब, ऐडवोकेट, भागलपुर—

बिहार प्रान्त का सर्वश्रेष्ठ प्रकाशक पुस्तक भंडार जैसा सुन्दर काम करता आ रहा है, उसके लिये मैं उसको दिल से बधाई देता हूँ। उसने अपने को मेरी नजरों में बहुत ऊँचा उठा दिया है और मैं निहायत खुशी के साथ बराबर उसके बढ़ते हुए कदमों को देख रहा हूँ। 'भंडार' की छपी हुई किताबें ऐसे सुन्दर और अच्छे ढँग से सजकर निकलती हैं कि उससे बढ़कर सजावट और सफाई की उमीद नहीं की जा सकती है। बरबस पढ़नेवालों की आँखों और दिलों को अपनी तरफ खींच लेती है और मुँह से 'वाह वाह' निकल पड़ता है। मैं वर्षों से टेक्स्टबुक कमिटी का मेम्बर हूँ और इस लम्बे अरसे में इस हैसियत से मेरी नजरों में इस 'भंडार' तथा और-और प्रकाशकों की हजारों किताबें आई हैं और उन्हें जाँचने का बराबर मौका मिला है। मुझे यह कहते बड़ी खुशी होती है

कि इस जाँच में मैंने पुस्तक-भंडार को बराबर बाजी मारते हुए पाया है। पुस्तकों के चुनाव में पुस्तक-भंडार ने बराबर बड़ी सावधानी से काम लिया है और सस्ते-से-सस्ते दामों में ऊँचे-से ऊँचे दर्जे के और सुन्दर से-सुन्दर प्रकाशन के लिये 'भंडार' को जितनी भी बधाई दी जाय और उसकी जितनी भी तारीफ की जाय, कम है। मैं उमीद करता हूँ कि बिहार-सरकार तथा यहाँ की जनता पुस्तक भंडार को बराबर सब तरह की मदद और सहानुभूति देती रहेगी जिससे वह इस सूबे की उसी तरह अमूल्य सेवा करता रहे, जिस तरह आज तक करता आ रहा है।

[६५]

श्रीहरिवंशनारायण सिंह, जमीन्दार, रोसड़ा—

'पुस्तक भंडार' तो अपने अनवरत परिश्रम से बिहार की सेवा कर ही रहा है—फिर भी 'पारिजात'-जैसे श्रेष्ठ ग्रन्थों को प्रकाशित कर संपूर्ण हिन्दी-संसार की सेवा करने में तत्परता दिखा रहा है। 'भंडार' अपने इने-गिने साथियों के साथ सप्रेम हिन्दी-साहित्य की सेवा करता रहे—यह देखकर मुझे बड़ी खुशी होगी। मैं सर्वदा 'भंडार' की शुभ कामना करता हूँ।

[६६]

श्रीकृष्णवल्लभनारायण सिंह, रामीबीघा इस्टेट, गया—

शिक्षा का काम मानसिक उन्नति, मस्तिष्क का विकास और विचारस्वातंत्र्य का पोषण करना है। मुझे यह देखकर प्रसन्नता होती है कि रामलोचनशरणजी ने शिक्षा के इस प्रभाव को अपने व्यावहारिक जीवन में सार्थक कर दिखलाया है। आपने अपनी साहित्य-सेवा-द्वारा समाज तथा राष्ट्र की मानसिक उन्नति में काफी सहयोग प्रदान किया है। आपका 'बालक' साहित्य-क्षेत्र में एक बहुत ही उच्च स्थान का अधिकारी है। पुस्तक-भंडार की रजत जयन्ती के सुअवसर पर प्रत्येक बिहारी ही का नहीं, प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी का मस्तक गर्व से ऊँचा होना चाहिये।

[६७]

श्रीब्रह्मदेवनारायण सिंह, एम ए बी. एल, मुंसिफ, छपरा—

'भंडार' के संस्थापक और संचालक श्रीयुत रामलोचनशरणजी ने हिन्दी-साहित्य की उन्नति के लिये जो महान् उद्योग किया है वह बिहार के ही नहीं, हिन्दी-साहित्य के इतिहास में सुनहले अक्षरों में अंकित रहेगा। उन्होंने 'भंडार'

से जो पुस्तकें प्रकाशित की हैं वे छपाई, सफाई और भाषा-भाव की दृष्टि से बहुत उच्च कोटि की हैं। उनके द्वारा पिछले वर्षों से सम्पादित 'बालक' भारतवर्ष में बालकों के लिये एक ही पत्र है। बिहार के शिक्षा विभाग में उनकी लिखी पुस्तकें उत्तम और प्रामाणिक मानी जाती हैं। भगवान् उनको दीर्घायु करें कि 'भंडार'-द्वारा अधिकाधिक हिन्दी-साहित्य की सेवा हो सके।

[६८]

श्रीगोपीकृष्णसहाय, सबरजिस्ट्रार, सुपौल, भागलपुर—

जब मैं कौलेज का विद्यार्थी था, अपने स्वर्गीय पूज्य पिता (श्रीराधिका-प्रसादजी, डिप्टी इन्सपेक्टर औफ स्कूल्स) से अक्सर मास्टर साहब (श्री रामलोचनशरणजी बिहारी) की प्रशंसा सुना करता था। मैंने उनके शिष्य होने के नाते, उनके सम्पर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त कर, उन्हें अपनी आँखों देखा। उनकी कार्यपटुता, साहित्य-सेवा, अध्यवसाय, परिश्रम तथा प्रतिभा स्तुत्य है। साहित्य जागृति के प्रोत्साहन के निमित्त वे आर्थिक एवं शारीरिक सहायता से कभी मुँह नहीं मोड़ते। हिन्दी-माँ के सपूतों की सुसम्पादित, सुसाहित्यिक एवं स्थायी कीर्त्तियों का प्रकाशन करना उनके 'भंडार' का मुख्य उद्देश्य एवं खास विशेषता रहा है। 'बालक' ने हिन्दी-संसार में जो लोक-प्रियता प्राप्त की है वह सराहनीय है। हिन्दी-जगत् को 'भंडार' से बड़ी आशा है। यह सदा फूले फले—यही मेरी हार्दिक मनोभावना है।

[६९]

पं० बदरीनारायणझा, सभापति, हिन्दूसभा, किसनपुर, पलामू—

'पुस्तक भंडार' की सेवा से बिहार प्रान्त कृतज्ञ और आभारी है। जिस प्रकार गुजरात प्रांत के श्रीयुत गिजू भाई ने अपनी सेवा से गुजरातियों को कृतकृत्य किया है, उसी प्रकार शरणजी ने अपनी सेवा से बिहारियों का मुख उज्ज्वल किया है। बिहार प्रान्त को छोटानागपुर कमिश्नरी के जिलों में हिन्दी प्रचार का श्रेय आपको ही है। मुंडा तथा उराँव जातियों के ग्रामगीतों का संग्रह पुस्तक रूप में प्रकाशित कर आपने आदिवासियों को बड़ा लाभ पहुँचाया है। वे आपका उपकार भूल नहीं सकते। बालकों के लिये 'बालक' आपकी अपूर्व देन है। सभी विद्वानों की आकांक्षा भी आप इच्छानुकूल पूर्ण करते हैं। पात्र के अनुकूल पुरस्कार-वितरण आपका सराहनीय कार्य है। साक्षर बनने के लिये उत्सु

जनपदों की लाइब्रेरी को पूर्ण करने का श्रेय आप ही को है। जनपदों के लिये बहुत-सी पुस्तिकाएँ आपने निकालीं। मैथिली-साहित्य की भी सेवा कर आप गौरवान्वित हुए हैं। देश और साहित्य के सेवक होते हुए आपकी राजभक्ति सराहनीय है। आपकी कीर्त्ति चिरस्थायी है। आप हमारे बिहार के द्विवेदी हैं। वह दिन आयेगा जब आपका जीवन-इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा, जिसे पढ़कर भारत-सन्तान फूली न समायगी। हम बिहारियों का सौभाग्य है कि आपके ऐसा पुरुष-रत्न पाया है। बहुत-से निरीह छात्र आपके द्वारा सहायता पाकर उपकृत हो रहे हैं। आपमें जो कार्य करने की क्षमता है, वह भारत के नवयुवकों के लिये अनुकरणीय है। आप आत्मनिर्भरता की ज्वलन्त मूर्त्ति हैं। आप देश की विमल विभूति हैं। आप चिरायु हों, आपसे जगत् का कल्याण हो—यही हमारी परमेश्वर से प्रार्थना है।

[७०]

श्रीअवधेशकुमार, कुरसेला इस्टेट, पूर्णिया—

'पुस्तक-भंडार' को व्यापारिक संस्था की अपेक्षा एक विशुद्ध साहित्यिक संस्था कहना अधिक उपयुक्त होगा। अपने जीवन के सिर्फ पचीस वर्षों की अवधि में इसने जैसे सुन्दर, उपादेय और प्रगतिशील साहित्य का प्रकाशन किया है, वैसे ही इसके द्वारा बिहार में पाठकों के अन्दर सत्साहित्य की ओर अभिरुचि पैदा करने का भी सफल प्रयास किया गया है। बिहार प्रान्त में पुस्तक-भंडार ही एक ऐसी संस्था है जो साहित्यिक वातावरण को सजीव बनाये रखती है और जिसकी ज्योत्स्ना से सारा प्रान्त उद्भासित होता हुआ दीखता है। मैं 'भंडार' की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि की कामना करता हूँ।

[७१]

श्रीमहादेवप्रसाद अग्रवाल, एम. ए., एल एल. बी, प्लीडर, पुरुलिया—

पुस्तक भंडार के संस्थापक पंडित रामलोचनशरणजी ने गत २५ वर्षों में हिन्दी की उन्नति के लिये जो चेष्टा की है वह सर्वथा सराहनीय है। इस 'भंडार' की मुद्रित पुस्तकें बड़ी ही शिक्षाप्रद और समयोपयोगी रही हैं। उक्त पंडितजी ने 'जनशिक्षा-आन्दोलन' की सफलता के लिये जो अत्यधिक परिश्रम तथा द्रव्य व्यय किया है वह अत्यन्त सराहनीय है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि पंडितजी दीर्घजीवी होकर हिन्दी-साहित्य की सेवा अपने पुस्तक-भंडार-द्वारा करें।

[७२]

श्रीयमुनाप्रसाद, डिस्ट्रिक्ट इंसपेक्टर, स्कूल्स, गया—

बिहार में बालोपयोगी साहित्य के निर्माण में 'भंडार' ने सफल प्रयास किया और कर रहा है। बाल्यकाल में साहित्य द्वारा चरित्र निर्माण के लिये एक शिक्षामर्मज्ञ जो कुछ कर सकता है, उसको सम्पन्न करके श्रीयुत रामलोचन शरणजी ने हिन्दी-संसार में युगान्तर उपस्थित कर दिया है। इस शुभ अवसर पर मेरी हार्दिक शुभकामना है।

[७३]

श्रीगोपीनाथ शर्मा, डिस्ट्रिक्ट इंसपेक्टर, स्कूल्स, मुंगेर—

लगभग तीन दशकों से पुस्तक-भंडार तथा इसके अध्यक्ष श्रीरामलोचनशरणजी ने जिस लगन तथा निष्ठा के साथ हिन्दी-साहित्य—विशेषतः बाल-साहित्य—के सृजन तथा प्रकाशन के द्वारा हिन्दी-भाषा की सेवा की है, वह सर्वथा स्तुत्य है। श्रीरामलोचनशरणजी अपने तपोमय जीवन, अनवरत अध्यवसाय, अखंड साहित्य-सेवा आदि गुणों के कारण आज वस्तुतः 'बिहार के पितामहविशेष' कहे जाते हैं। मेरी हार्दिक कामना है कि बिहार का यह अनुपम 'पुस्तक-भंडार' तथा इसके यशोधन अध्यक्ष चिरकाल पर्यन्त अन्य प्रान्तों के सामने बिहार का मस्तक ऊँचा बनाये रक्खें।

[७४]

श्रीकालीप्रसाद, एम० ए०, ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट, रिटायर्ड डिस्ट्रिक्ट इंसपेक्टर, स्कूल्स, भागलपुर—

पुस्तक-भंडार ने बिहार में २५ वर्षों से हिन्दी साहित्य की जो सेवा की है वह सराहनीय ही नहीं, बल्कि अकथनीय है। सर्वसाधारण के उपकारार्थ अनेकानेक पुस्तकों के निर्माण और प्रकाशन के अतिरिक्त बालोपयोगी पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिका द्वारा बालकों का सच्चा हितैषी बनने में भी इसका स्थान अद्वितीय है। इसके द्वारा इस प्रान्त में निरक्षरता-निवारण के जो-जो कार्य हुए हैं, वे अमूल्य हैं। 'भंडार' को हिन्दी-जगत् की निधि तथा बिहार का गौरव कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं। इसके अध्यक्ष श्रीरामलोचनशरणजी बड़े सरल, उदार तथा शिक्षित और हिन्दी-साहित्य-सेवियों में अग्रगण्य हैं। वे दीर्घजीवी हों और पुस्तक-भंडार दिनानुदिन उन्नति करे।

[७५]

श्रीद्वारकाप्रसाद सिंह बी. ए., डिस्ट्रिक्ट इंसपेक्टर, स्कूल्स, संतालपरगना, दुमका—

हिन्दी-साहित्य का भंडार भरने में पुस्तक-भंडार का सतत परिश्रम किसी से कम नहीं हुआ है। राष्ट्र-भाषा हिन्दी की सेवा से जो यश, कीर्त्ति तथा ख्याति 'भंडार' के अध्यक्ष ने प्राप्त की है, वह सबको प्राप्त हो। 'भंडार' सदा पूरा रहे और साहित्य-सेवा, देश-सेवा, धर्म-सेवा और लोक-सेवा इसी तरह से करता रहे। 'भंडार' का 'बालक' चिरजीवी हो।

[७६]

श्रीअक्षयकुमार, एल. टी., डिस्ट्रिक्ट इंसपेक्टर, स्कूल्स, पुरुलिया—

पुस्तक भंडार ने हिन्दी-साहित्य का थोड़े ही दिनों में असीम उपकार किया है। वह दिन मुझे स्मरण है जब श्रीरामलोचनशरणजी और मैं—दोनों एक ही साथ लहेरियासराय नौर्थब्रुक हाइ इंगलिश स्कूल में शिक्षक थे। आपकी रुचि उसी समय से साहित्य-सेवा की ओर थी, जो अब परिपक्व होकर इस विस्तृत 'भंडार' के रूप में हमारे सामने है। आपने अनपढ़ों को पढ़ाने में खूब ही भाग लिया और हमारी सरकार ने भी आपको स्वर्णपदक देकर अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय दिया है। पुस्तक-भंडार हिन्दी-साहित्य की सेवा दिन-दूनी और रात-चौगुनी करता रहे।

[७७]

श्रीराधागोविन्द घोष, डिस्ट्रिक्ट इंसपेक्टर, स्कूल्स, हजारीबाग—

लगभग २५ वर्षों से मैं शिक्षा विभाग में हूँ। तभी से देखता हूँ कि एक पुस्तक भंडार ही ऐसी साहित्यिक संस्था है जिसने बिहार के घर-घर को शिक्षित बनाने में पूरी सफलता पाई है। इसने बालकों का एकमात्र मनोहर मासिक पत्र 'बालक' प्रकाशित कर देश की बहुत बड़ी कमी को पूरा किया है। क्या बालक और क्या वृद्ध, 'बालक' सभी का मनोरंजक है। यों ही, निरक्षरता-निवारण में पुस्तक भंडार के व्यवस्थापक श्रीमान् रामलोचनशरणजी ने जनता की अतुलनीय सेवा कर समूचे देश में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर लिया है। मैं पुस्तक-भंडार तथा उसके अध्यक्ष की हृदय से शुभकामना करता हूँ।

[७८]

श्रीरामकृपाल सिंह, डिस्ट्रिक्ट इंसपेक्टर, स्कूल्स, मानभूम—

पुस्तक-भंडार गत पचीस वर्षों से केवल बिहार की ही नहीं, वरन् सारे भारतवर्ष की साहित्यिक सेवा कर रहा है। यहाँ से प्रकाशित पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ सफाई, छपाई तथा सुन्दराई में बिहार प्रान्त के अन्यान्य प्रकाशकों की अपेक्षा कहीं अच्छी रहती हैं और भारतवर्ष के उत्तमोत्तम प्रकाशकों से प्रकाशित पुस्तकों की समता में रक्खी जा सकती हैं। वर्त्तमान निरक्षरता निवारण आन्दोलन में इस प्रकाशन गृह ने निःशुल्क चार्ट तथा प्राइमर और नाममात्र मूल्य पर कतिपय पुस्तकें वितरित कर जिस उदारता तथा देश सेवा कार्य का परिचय दिया है उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता। मैं 'भंडार' और उसके संचालक की रजत एवं स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर हृदय से बधाई देता हूँ।

[७९]

श्रीगोपाललाल वर्मा, डिपुटी इंसपेक्टर, स्कूल्स,
संथालपरगना, गोड्डा—

पुस्तक-भंडार २५ वर्षों से हिन्दी की सेवा कर रहा है। इसके मुख्यतः तीन काम रहे हैं—बाल-साहित्य का प्रकाशन, 'बालक' का प्रकाशन और साहित्यिक प्रकाशन। नये-नये ढंग की पुस्तकें, बालकों की रुचि के अनुरूप सुरुचिपूर्ण सजधज के साथ, प्रकाशित कर इसने प्रान्त में एक रेकर्ड कायम कर लिया है। वर्त्तमान संसार-व्यापी संकट काल में भी 'बालक' जिस कलापूर्ण आकर्षक गेट-अप के साथ निकल रहा है, वह बाल-मासिकों में कौन कहे, हिन्दी के सभी मासिकों में अग्रगण्य स्थान रखता है। 'भंडार' का साहित्यिक प्रकाशन भी इसके गौरव के ही अनुरूप है। मेरी हार्दिक कामना है कि 'भंडार' चिरस्थायी हो और यह बिहार के साहित्यिक इतिहास का एक अंग बने।

[८०]

श्रीरामरंजन गुप्त, बी. ए., बी. इ. डी., डिपुटी इंसपेक्टर
ऑफ स्कूल्स, घाटशिला, सिंहभूम—

पुस्तक-भंडार के संस्थापक पंडित रामलोचनशरणजी एक स्वावलम्बी, विद्योत्साही, उन्नतिशील, परिश्रमी और परोपकारी सज्जन हैं। शरणजी ने, जब-जब सिलेबस बदला है, अधिक से अधिक द्रव्य और परिश्रम व्यय करके रोचक,

मधुर और सामयिक पुस्तकें शिक्षा-जगत् के सामने रक्खी हैं। जन-शिक्षा-प्रसार-आन्दोलन में भी इन्होंने चित्रपट और पुस्तकों द्वारा प्रचुर सहायता की है। 'बालक' के प्रबंध बालक-बालिकाओं के लिये बड़े ही चित्ताकर्षक, शिक्षाप्रद और भावोद्दीपक होते हैं। परमात्मा दानवीर स्वनामधन्य शरणजी को दीर्घजीवी करें और पुस्तक-भंडार की दिन-दिन उन्नति हो।

[८१]

श्रीरामनारायण लाभ, बी. ए., बी. इडी., डिपुटी इंसपेक्टर, स्कूल्स, बाढ़ (पटना)—

पुस्तक-भंडार-द्वारा शिक्षकों का असीम उपकार हो रहा है। प्रान्त के शिक्षकगण इस बात का प्रमाण दे रहे हैं कि पुस्तक-भंडार उनका अपना भंडार है। छात्र-गण पुस्तक-भंडार के द्वारा प्रकाशित 'बालक' पढने में बहुत मन लगाते हैं। शिक्षा के प्रचारार्थ जभी जिस पुस्तक की आवश्यकता होती है, तभी उसकी पूर्त्ति पुस्तक-भंडार के द्वारा शीघ्र हो जाती है। ईश्वर इस पुस्तक भंडार की उत्तरोत्तर वृद्धि करें।

[८२]

श्रीगोविन्दशरण, एम. ए., इ. डी., सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, मुंगेर—

विश्व के प्रगतिशील साहित्य में 'पुस्तक भंडार' की सेवा केवल बिहार ही नहीं, प्रत्युत भारतीय हिन्दी साहित्य की अमर सेवा कहलायगी। श्रीराम लोचनशरणजी का 'बालक' वृद्धों का 'राम' है, युवक हृदय का 'लोचन' है और है बालकों की 'शरण'। बधाई है 'पुस्तक-भंडार' के इतिहास और जयन्ती-स्मारक ग्रंथ के लिये ही नहीं, वरन् श्रीरामलोचनशरणजी की सूझ-समझ और लगन शीलता के लिये भी।

[८३]

श्रीमहम्मद मुईनउद्दीन, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, साहिबगंज, दुमका—

मुझे यह सुनकर बड़ी खुशी हुई कि पुस्तक-भंडार की सिलवर-जुबिली मनाई जा रही है। इसमें कोई शक नहीं कि बाबू रामलोचनशरण ने इस पचीस साल के अरसे में अदबी और इल्मी दुनिया में बिहार में अच्छा नाम पैदा किया है। अनपढ़ों की तालीम के सिलसिले में भी बिहार में इन्होंने काफी हिस्सा लिया है। मैं चाहता हूँ कि इनकी दिन दूनी और रात चौगुनी तरक्की हासिल हो।

[८४]

श्रीहरदीपनारायण सिंह, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, वारिशनगर, दरभंगा—

पुस्तक भंडार के संचालक स्वनामधन्य श्रीयुत रामलोचनशरण के अदम्य उत्साह, प्रशंसनीय साहस और निरन्तर परिश्रम का फल है कि आज 'भंडार' का नाम सारे भारत, खासकर विहार के कोने कोने में युवा, वृद्ध, बालक, स्त्री पुरुष सभी के मस्तिष्कों और हृदयों में अपना स्थान पा चुका है। यह 'भंडार' बराबर गरीब तथा निस्सहाय विद्यार्थियों को द्रव्य और पुस्तकादि से विद्योपार्जन में प्रोत्साहित करता आया है। इसने कभी भी किसी को अपने यहाँ से विमुख हो नहीं लौटने दिया। जहाँ तक मुझे मालूम है, परोपकारिता और उदारता में कोई भी शरणजी की बराबरी नहीं कर सकता। इनकी लोकप्रियता का यह प्रधान कारण है। इनके लिखित और सम्पादित ग्रंथों की भाषा तथा लेखनशैली सरस, सरल, सुन्दर, मनोहर, भावपूर्ण तथा हृदयग्राही है। 'भंडार' की दिन दून और रात-चौगुनी उन्नति होती रहे।

[८५]

राय श्रीनंदनप्रसाद, एल टी., सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, मोतीपुर—

गत २५ वर्षों से पुस्तक भंडार ने विहार के हिन्दी साहित्यिक संसार की जो सेवा की है, वह सराहनीय और प्रशंसनीय है। प्राइमरी स्कूलों की शिक्षण-शैली में डिप्टी साहब ने जब नवीनता की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया तब सर्वप्रथम श्रीयुत रामलोचनशरणजी ने इस दिशा में अग्रसर होकर शिक्षकों के नवीन ढँग से पढ़ाने की प्रणाली निर्धारित की। सयाने अनपढ़ों के लिये जब डा० महमूद साहब ने साक्षरता-आन्दोलन जारी किया तब शरणजी ने बहुत-बहुत चार्टों और प्राइमरों द्वारा इस महान् कार्य में अग्रसर होकर सहायता पहुँचाई। इस पुस्तक-भंडार की स्थापना से विहार में साहित्यिक जागृति का श्रीगणेश हुआ, साहित्यिक संसार की बहुत भारी कमी की पूर्ति हुई और विहार भी साहित्यिकों के स्मरण रखने योग्य हो चला, जिसके लिये पुस्तक-भंडार को और साथ-ही-साथ शरणजी को अनेकों धन्यवाद।

[८६]

श्रीकुंजविहारी शर्मा, बी ए, बी एडी०, स्कूल सब इंसपेक्टर, लालगंज, मुजफ्फरपुर—

पुस्तक भंडार तथा इसके अध्यक्ष श्रीमान् रामलोचनशरणजी ने जो सेवा, विहार ही नहीं, समूचे भारतवर्ष में साहित्य के उत्कर्ष तथा शिक्षा के प्रचार के

मधुर और सामयिक पुस्तकें शिक्षा-जगत् के सामने रक्खी हैं। जन-शिक्षा-प्रसार-आन्दोलन में भी इन्होंने चित्रपट और पुस्तकों-द्वारा प्रचुर सहायता की है। 'बालक' के प्रबंध बालक-बालिकाओं के लिये बड़े ही चित्ताकर्षक, शिक्षाप्रद और भावोद्दीपक होते हैं। परमात्मा दानवीर स्वनामधन्य शरणजी को दीर्घजीवी करें और पुस्तक-भंडार की दिन-दिन उन्नति हो।

[८१]

श्रीरामनारायण लाभ, बी. ए., बी. इडी., डिपुटी इंसपेक्टर, स्कूल्स, बाढ़ (पटना)—

पुस्तक-भंडार-द्वारा शिक्षकों का असीम उपकार हो रहा है। प्रान्त के शिक्षकगण इस बात का प्रमाण दे रहे हैं कि पुस्तक-भंडार उनका अपना भंडार है। छात्र-गण पुस्तक-भंडार के द्वारा प्रकाशित 'बालक' पढ़ने में बहुत मन लगाते हैं। शिक्षा के प्रचारार्थ जभी जिस पुस्तक की आवश्यकता होती है, तभी उसकी पूर्त्ति पुस्तक-भंडार के द्वारा शीघ्र हो जाती है। ईश्वर इस पुस्तक भंडार की उत्तरोत्तर वृद्धि करें।

[८२]

श्रीगोविन्दशरण, एम ए., इडी, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, मुंगेर—

विश्व के प्रगतिशील साहित्य में 'पुस्तक भंडार' की सेवा केवल बिहार ही नहीं, प्रत्युत भारतीय हिन्दी साहित्य की अमर सेवा कहलायगी। श्रीराम-लोचनशरणजी का 'बालक' बूढ़ों का 'राम' है, युवक-हृदय का 'लोचन' है और है बालकों की 'शरण'। बधाई है 'पुस्तक-भंडार' के इतिहास और जयन्ती-स्मारक ग्रंथ के लिये ही नहीं, वरन् श्रीरामलोचनशरणजी की सूझ-समझ और लगन-शीलता के लिये भी।

[८३]

श्रीमहम्मद मुईनउद्दीन, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, साहिबगंज, दुमका—

मुझे यह सुनकर बड़ी खुशी हुई कि पुस्तक-भंडार की सिलवर-जुबिली मनाई जा रही है। इसमें कोई शक नहीं कि बाबू रामलोचनशरण ने इस पचीस साल के अरसे में अदबी और इल्मी दुनिया में बिहार में अच्छा नाम पैदा किया है। अनपढ़ों की तालीम के सिलसिले में भी बिहार में इन्होंने काफी हिस्सा लिया है। मैं चाहता हूँ कि इनको दिन-दूनी और रात चौगुनी तरक्की हासिल हो।

[८४]

श्रीहरदीपनारायण सिंह, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, वारिशनगर, दरभंगा—

पुस्तक-भंडार के संचालक स्वनामधन्य श्रीयुत रामलोचनशरण के अदम्य उत्साह, प्रशंसनीय साहस और निरंतर परिश्रम का फल है कि आज 'भंडार' का नाम सारे भारत, खासकर बिहार के कोने कोने में युवा, वृद्ध, बालक, स्त्री-पुरुष सभी के मस्तिष्कों और हृदयों में अपना स्थान पा चुका है। यह 'भंडार' बराबर गरीब तथा निस्सहाय विद्यार्थियों को द्रव्य और पुस्तकादि से विद्योपार्जन में प्रोत्साहित करता आया है। इसने कभी भी किसी को अपने यहाँ से विमुख हो नहीं लौटने दिया। जहाँ तक मुझे मालूम है, परोपकारिता और उदारता में कोई भी शरणजी की बराबरी नहीं कर सकता। इनकी लोकप्रियता का यह प्रधान कारण है। इनके लिखित और सम्पादित ग्रंथों की भाषा तथा लेखनशैली सरस, सरल, सुन्दर, मनोहर, भावपूर्ण तथा हृदयग्राही है। 'भंडार' की दिन दून और रात-चौगुनी उन्नति होती रहे।

[८५]

राय श्रीनंदनप्रसाद, एल. टी., सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, मोतीपुर—

गत २५ वरसों से पुस्तक भंडार ने बिहार के हिन्दी साहित्यिक संसार की जो सेवा की है, वह सराहनीय और प्रशंसनीय है। प्राइमरी स्कूलों की शिक्षण-शैली में हिप्पी साहब ने जब नवीनता की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया तब सर्वप्रथम श्रीयुत रामलोचनशरणजी ने इस दिशा में अग्रसर होकर शिक्षकों के नवीन ढँग से पढ़ाने की प्रणाली निर्धारित की। सयाने अनपढ़ों के लिये जब डा० महमूद साहब ने साक्षरता-आन्दोलन जारी किया तब शरणजी ने बहुत-बहुत चार्टों और प्राइमरों द्वारा इस महान् कार्य में अग्रसर होकर सहायता पहुँचाई। इस पुस्तक-भंडार की स्थापना से बिहार में साहित्यिक जागृति का श्रीगणेश हुआ, साहित्यिक संसार की बहुत भारी कमी की पूर्ति हुई और बिहार भी साहित्यिकों के स्मरण रखने योग्य हो चला, जिसके लिये पुस्तक-भंडार को और साथ-ही-साथ शरणजी को अनेकों धन्यवाद।

[८६]

श्रीकुंजबिहारी शर्मा, बी. ए., बी. एडी०, स्कूल सब इंसपेक्टर, लालगंज, मुजफ्फरपुर—

पुस्तक-भंडार तथा इसके अध्यक्ष श्रीमान् रामलोचनशरणजी ने जो सेवा, बिहार ही नहीं, समूचे भारतवर्ष में साहित्य के उत्कर्ष तथा शिक्षा के प्रसार के

लिये, की है, उसका पूर्ण उल्लेख नहीं किया जा सकता। यह बात जनता तथा सरकार दोनों के सामने है और शिक्षा विभाग के सभी हृदयवान् व्यक्ति इसे अच्छी तरह समझते होंगे। गत दो वर्षों के भीतर निरक्षरता निवारण-कार्य में 'भंडार' बिल्कुल ही अग्रसर हो हाथ बँटा रहा है। इसे सेवा नहीं, वरन् त्याग कहना चाहिये। मैं तो ऐसा कहना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि आधुनिक बिहार को बनाने तथा इसका पूर्व गौरव लौटाने में 'भंडार' तथा इसके अध्यक्ष श्रीराम-लोचनशरणजी का बड़ा हाथ है। इन दोनों की उत्तरोत्तर उन्नति हो।

[८७]

श्रीगुरुदयालप्रसाद, बी. ए., डिप-एड्, स्कूल सब इंसपेक्टर, महुआ, मुजफ्फरपुर

शिक्षा-विभाग से सात वर्षों के निकटतम सम्बन्ध ने यह अनुभव करा दिया है कि 'पुस्तक भंडार' विद्यार्थियों के लिये पारिवारिक शब्द हो गया है। 'भंडार' के अध्यक्ष शरणजी ने जिस द्रुत गति से बाल-साहित्य का निर्माण किया है वह सर्वथा स्तुत्य और अभिनन्दनीय है। बिहार की पाठ्य पुस्तकों में जो कायापलट के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं वह केवल शरणजी के ही कारण।

'बालक' मासिक पत्र तो बालक-बालिकाओं का सच्चा साथी, युवकों का मित्र तथा वृद्धों की गोद का खिलौना बन रहा है। यह भंडार के प्रतिष्ठाता तथा अध्यक्ष 'मास्टर साहब' जैसे अध्यवसायी, निपुण, सहृदय तथा समय की परख रखनेवाले पिता को पाकर फूला नहीं समाता। शरणजी की ठोस सेवाएँ बिहार के साहित्यिक-इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जायँगी।

[८८]

श्रीरामगुलाम राय, स्कूल सब इंसपेक्टर, बेगूसराय, मुंगेर—

पुस्तक भंडार ने साहित्यिक, ऐतिहासिक तथा अन्य पठनीय पुस्तकों को प्रकाशित कर हिन्दी-साहित्य की बड़ी सेवा की है और बालोपयोगी मासिक पत्र 'बालक' द्वारा बालकों में हिन्दी पढ़ने और लिखने की रुचि पैदा कर दी है। निरक्षरता-निवारण-कार्य में अनपढ़ों के लिये 'भंडार' ने उपयुक्त शब्द-पट तथा प्रथमाला तैयार कर बहुत बड़ा सहयोग प्रदान किया है। ईश्वर इस 'भंडार' को सदा भरपूर रक्खें कि यह सर्वदा हिन्दी का भरण-पोषण करता रहे।

[८९]

श्रीसुरेन्द्र लाहिड़ी, स्कूल सब इंसपेक्टर, पाकुर—

पुस्तक भंडार केवल पुस्तकों का ही नहीं, वरन् विद्या और बुद्धि का भी एक बड़ा भंडार है। जिस सच्ची लगन एवं निष्ठा से इसने निरक्षरता निवारण में अपना हाथ बँटाया, वह यथार्थ में प्रशंसनीय है। पुस्तक-भंडार की सहायता के बिना निरक्षरता-निवारण आन्दोलन का सफल होना कठिन ही नहीं, असम्भव था। इसका सारा श्रेय इसके यशोधन अध्यक्ष श्रीमान् रामलोचनशरणजी 'बिहारी' को ही है।

[९०]

श्रीरघुनन्दन पाण्डेय, सब इंसपेक्टर स्कूल्स, तेघरा—

पुस्तक-भंडार हिन्दी भाषा तथा साहित्य की जो सेवा करता आ रहा है, वह वर्णनातीत तथा अकथनीय है। इस विषय में पुस्तक-भंडार ने हिन्दी संसार में बिहार का मुख उज्ज्वल किया है और अब बिहार किसी भी प्रान्त से साहित्य सेवा में पिछड़ा हुआ नहीं है। इस शुभ कार्य का सारा श्रेय श्रीरामलोचनशरणजी को है। 'भंडार' से निकला हुआ 'बालक' सर्वप्रिय, मनोमोहक तथा चित्ताकर्षक मासिक पत्र है।

[९१]

श्रीरमाकान्त मिश्र, बी. ए., डिप्-इन इडी, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, मुंगेर—

पुस्तक-भंडार बिहार का गौरव है। साहित्य शैली को सरल एवं सरस बनाने में यह सर्वदा तत्पर रहता है। 'बालक' नामक मासिक पत्र निकालकर इसने समस्त हिन्दी भाषा-भाषी बालकों के हृदयों में हिन्दी साहित्य के लिये अभिरुचि उत्पन्न कर दी है। बालोपयोगी पत्र पत्रिकाओं में 'बालक' का स्थान सर्वोत्कृष्ट है। बिहार में साहित्य की उन्नति तथा यहाँ के साहित्य सेवियों की प्रतिष्ठा वृद्धि की ओर इसका विशेष ध्यान रहा है। सर्वांगसुन्दर पुस्तकें निकालकर इसने हिन्दी साहित्य की बड़ी सेवा की है तथा बिहार का मस्तक ऊँचा किया है। इसके अध्यक्ष श्रीमान् रामलोचनशरणजी 'बिहारी' एक सरल, उदार तथा निःस्वार्थ साहित्य सेवी हैं। 'भंडार' दिनानुदिन उन्नति की ओर अग्रसर हो।

[९२]

श्रीतारिणीप्रसाद सिंह, एम० ए०, एम० इ-डी०, स्कूल सब इंसपेक्टर, खगड़िया, मुंगेर—

हिन्दी-साहित्य—विशेषतः बालसाहित्य के सृजन तथा प्रकाशन के द्वारा पुस्तक-भंडार तथा इसके अध्यक्ष श्रीरामलोचनशरणजी ने हिन्दी की जो श्रीवृद्धि की है, वह सर्वथा श्लाघ्य एवं अनुपम है। अटूट लगन के साथ ये हिन्दी-भाषा की सेवा करते आ रहे हैं। इससे न केवल इनका नाम अमर हुआ है, अपितु दूसरे प्रान्तों के सामने बिहार का मस्तक ऊँचा हुआ है, इनकी हिन्दी-सेवा के दो रूप रहे हैं—एक अन्तरंग, दूसरा बहिरंग। अन्तरंग-रूप में ये हिन्दी के अनेकों होनहार कवियों तथा लेखकों और कलाकारों के प्रेरकप्राण रहे हैं तथा अनेकों हिन्दी-संस्थाओं को गुप्त तथा प्रकट रूप से दान देकर उन्हें प्रगति-प्रदान किया है। बहिरंग रूप में इनके द्वारा हिन्दी-साहित्य का सृजन तथा प्रकाशन हो रहा है उससे हिन्दी-संसार परिचित है। राष्ट्र-निर्माण में साहित्य का ऊँचा स्थान है और उसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंग बाल साहित्य है। शरणजी ने अरसे से बाल-साहित्य की सेवा कर अपने नाम को अमर बना लिया है। इस कारण ये 'बिहार के गिजूभाई' कहे जाते हैं। इनकी कीर्त्ति अक्षय रहेगी।

[९३]

श्रीराजनंदनप्रसाद, एम ए., डिप. इन. ए-डी, सब इसपेक्टर ऑफ स्कूल्स, अरेराज (चम्पारन)—

इसके अधिष्ठाता श्रीमान् रामलोचनशरणजी के अथक परिश्रम तथा साहित्य-सेवा का यह फल है कि 'भंडार' बिहार का मुख उज्ज्वल कर रहा है तथा साथ-ही-साथ हिन्दी-संसार के लिये एक गौरव की चीज बन गया है। देश तथा हिन्दी-संसार की जब जैसी माँग होती गई, वैसी पुस्तकों को सर्वप्रथम प्रकाशित करने का श्रेय बिहार में पुस्तक-भंडार ही को है। 'भंडार' का सचित्र मासिक पत्र 'बालक' एक उच्च कोटि का सर्वाङ्ग-सुन्दर पत्र माना जाता है। उत्तम पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त प्रतिवर्ष नामी-नामी पुस्तकों का प्रकाशन और भी स्तुत्य है। मेरी हार्दिक शुभकामना पुस्तक-भंडार के साथ है।

[९४]

श्रीजगदम्बाशरण राय शर्मा, एम. ए, डिप-एड, साहित्यरत्न, स्कूल सब इंसपेक्टर, छपरा—

पुस्तक-भंडार ही एक ऐसा बिहारी प्रकाशक है जो बिहार का सिर ऊँचा करने के लिये सब प्रकार प्रयत्नशील है। मैं निःसंकोच भाव से यह कहने का साहस कर सकता हूँ कि हिन्दी संसार में बिहार को जो स्थान आज प्राप्त है, उसका अधिकतर श्रेय पुस्तक-भंडार को है। यह असत्य नहीं है कि स्कूली पुस्तकों की आय का एक बड़ा अंश पुस्तक भंडार साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशन में व्यय कर देता है जो अन्य प्रकाशकों में प्राय नहीं पाया जाता। व्यवसाय के साथ साहित्यसेवा का पवित्र गठबंधन, यमुना-गंगा-संगम के सदृश, लोक के लिये कल्याणकर जान पड़ता है। इसीसे 'भंडार' के अध्यक्ष श्रीयुत रामलोचनशरण बिहार के लाखों कंठों के हार हो रहे हैं।

[९५]

श्रीवीरेन्द्र बहादुर सिंह, बी० ए० डिप्० -इन एड०, सब इंसपेक्टर, डुमराँव—

पुस्तक भंडार अपने यहाँ से 'बालक' निकालकर बालकों की जो सेवा करता आ रहा है, वह अद्वितीय है। निरक्षरता निवारण के कार्य में 'भंडार' ने जो त्याग और सेवा का काम किया है, वह हर बिहारी के लिये गौरव की बात है। इधर कुछ वर्षों से अनेकों उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित कर 'भंडार' बिहार का मुख उज्ज्वल कर रहा है। आज हर हिन्दी हितैषी का ध्यान पुस्तक भंडार की ओर है। 'भंडार' और उसके कर्मयोगी अध्यक्ष श्रीमान् रामलोचनशरणजी का हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

[९६]

श्रीसन्तकुमार, बी ए., डिप इन-एड, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, छपरा—

पुस्तक भंडार एक पुरानी तथा लब्धप्रतिष्ठ संस्था है। 'भंडार' के संस्थापक श्रीमान् रामलोचनशरणजी ने हिन्दी साहित्य की उन्नति के लिये जो महान् उद्योग किया है, वह बिहार के ही नहीं, हिन्दी-साहित्य के इतिहास में सुनहले अक्षरों में अंकित रहेगा। हम हृदय से उनको बधाई देते हैं।

[९७]

श्रीशशिभूषण लाल, बी. ए. डिप-इन-एड, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, दिघवारा (सारन)—

पुस्तक-भंडार से बिहार में विद्याप्रचार और हिन्दी की उन्नति प्रचुर रूप से हुई है। 'भंडार' के संस्थापक श्रीयुत रामलोचनशरणजी ने हिन्दी-साहित्य की उन्नति के लिये जो महान् उद्योग किया है, वह बिहार के ही नहीं, हिन्दी-साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। 'भंडार' ने आजतक सैकड़ों साहित्यिक पुस्तकें प्रकाशित कर हिन्दी-संसार में अपना प्रतिष्ठित स्थान बना लिया है। शिक्षा-विभाग में भी 'भंडार' की किताबें सर्वोत्तम गिनी जाती हैं। हम हृदय से इस अवसर पर बधाई देते हैं।

[९८]

श्रीमंगल झा, एम.ए., डिप इन. एड., सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, कल्याणपुर, सारन—

पुस्तक-भंडार ने हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है उसका गर्व बिहार को ही नहीं, बल्कि प्रत्येक हिन्दी-भाषा-भाषी को है। साहित्यिक उत्थान में 'भंडार' ने जैसी सफल दौड़ लगाई है, गूढ विषयों की जैसी छान-बीन की है और हिन्दी-साहित्य के जिन आवश्यक अंगों की पूर्त्ति करने की चेष्टा की है उनका दिग्दर्शन शिक्षित समाज की आँखों के सामने है। बालोपयोगी, शिक्षा-प्रद एवं दुष्प्राप्य पुस्तकों का प्रकाशन इस 'भंडार' का प्रधान ध्येय है। आधुनिक युग के राष्ट्र-उत्थान में पत्र-पत्रिकाओं ने बालक समाज में जो गौरव प्राप्त किया है, उसमें इस 'भंडार' का सर्व-प्रथम स्थान है। भगवान् इस 'भंडार' को अमर और इसके अधिष्ठाता श्रीरामलोचनशरणजी को दीर्घायु बनावें।

[९९]

श्रीबच्चनप्रसाद सिंह, एम ए, एम.एड, स्कूल सब इंसपेक्टर, घोडासाहन (चम्पारन)

शिक्षा विभाग में आने पर मुझे यह देखने का मौका मिला है कि किसी खास विषय या ढँग पर पुस्तकों की आवश्यकता होते ही 'भंडार' अपने प्रकाशन के साथ तैयार है। बिहार के साक्षरता-आन्दोलन में भी शरणजी और 'भंडार' ने

कुछ कम सहायता नहीं पहुँचाई है। जहाँ तक मेरा विचार है, बाल-साहित्य और अन्य साहित्यिक प्रकाशकों में 'भंडार' अपना अग्रगण्य स्थान रखता है और पुस्तकों की छपाई-सफाई के विषय में भी किसी प्रकाशन-संस्था से टक्कर ले सकता है। हिन्दी-साहित्य से प्रेम रखनेवाले हर बिहारी के लिये बिहार की इस संस्था की उत्तरोत्तर उन्नति की शुभकामना करना एक पवित्र कर्त्तव्य है।

[१००]

श्रीव्रजनन्दन सिंह, बी ए, डिप. इन-एड, स्कूल सब इंसपेक्टर, छपरा—

'बालक' से मेरा परिचय बालकपन से ही है। हर मास का पहला सप्ताह मैं इसकी प्रतीक्षा में व्यतीत करता हूँ और हर बार मुझे आशा से अधिक संतोष इसके अवलोकन से प्राप्त होता है। बड़े हर्ष और गौरव का विषय है कि जो बिहार पत्र-पत्रिकाओं की मरुभूमि के नाम से बदनाम है वहीं 'बालक' जन्मकाल से ही बराबर एक-साँ उन्नति करता चला आया है। भगवान् 'बालक' के प्रकाशक पुस्तक भंडार को अमर और इसके सम्पादक तथा अधिष्ठाता श्रीरामलोचनशरणजी को दीर्घायु बनावें।

[१०१]

श्रीमुक्तिनाथ चौधरी, बी ए, बी टी, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, शाहाबाद—

'रजत' हेममय, हीरकमय हो विमल सुयश हो।
यह पुस्तक-भंडार ग्रंथ धन-राशि युक्त हो।
'रामनयन'-सुस्नेह-नीर से नित सिंचित हो।
कीर्त्तिलता पल्लवित सदा हो अमित फलद हो॥

[१०२]

श्रीराजदेव सहाय, बी ए, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, सदर, आरा—

पुस्तक भंडार के अध्यक्ष श्रीयुत रामलोचनशरणजी ने अच्छे ग्रंथों के प्रकाशन द्वारा बिहार-प्रान्त की एक बहुत ही बड़ी कमी की पूर्त्ति की है। मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

[१०३]

श्रीरामनारायण सिंह, बी. ए., सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, आरा—

बिहार प्रान्त में साहित्यिक पुस्तकों को अच्छे ढँग से प्रकाशित करनेवाला एक पुस्तक-भंडार ही है जिसकी रजत-जयन्ती इस वर्ष होने जा रही है तथा 'भंडार' के संस्थापक श्रीमान् रामलोचनशरणजी की स्वर्ण-जयन्ती भी होने जा रही है। ईश्वर इनकी हीरक-जयन्ती मनाने का अवसर दें।

[१०४]

श्रीदेवकीनंदनप्रसाद, बी. ए., सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, धनबाद—

बिहार में आज जो कुछ साहित्यिक जागृति दीख पड़ती है, उसका बहुत-कुछ श्रेय पुस्तक भंडार तथा उसके सर्वस्व श्रीरामलोचनशरणजी को है। छपाई, सफाई, गेट अप इत्यादि में 'भंडार' से प्रकाशित पुस्तकें अन्य प्रान्तों के अच्छे-से-अच्छे प्रकाशकों के यहाँ से निकली हुई पुस्तकों का सफलतापूर्वक मुकाबला करती हैं। साहित्यिकता के विचार से भी इनका दर्जा बहुत ऊँचा रहा है। जितना कार्य संयुक्तप्रान्त के लिये कितने ही प्रकाशनगृहों ने सम्मिलित रूप से किया है, पुस्तक-भंडार ने अकेले वह काम बिहार के लिये किया है। मेरी शुभकामना है कि 'भंडार' और अधिक लगन के साथ, अपनी अटूट सेवाओं से बिहार का सुख भविष्य में अधिक से-अधिक उज्ज्वल करे।

[१०५]

श्रीमहेशनारायण चौधरी, बी. ए, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, जहानाबाद, गया—

पुस्तक-भंडार ने गत पचीस वर्षों से हिन्दी-भाषा की जो सेवा की है, वह किसी से छिपी हुई नहीं है। पुस्तक भंडार से प्रकाशित पुस्तकों की छपाई सुन्दर, कागज उत्तम, भाषा सरल और सरस है। इनमें समयोचित वार्त्ताओं के रहने से बालकों के मन में इन पुस्तकों के प्रति रुचि बढ़ती ही जाती है। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि 'भंडार' की दिन-दूनी और रात-चौगुनी तरक्की हो।

[१०६]

श्रीअब्दुलसलाम, बी० ए०, डिप०-इन-एड०, सब इंसपेक्टर ऑफ स्कूल्स, राँची—

श्रीरामलोचनशरणजी ने जो साहित्यिक सेवाएँ की हैं, उन्हें कौन नहीं जानता है ? गाँव-गाँव के प्राइमरी स्कूलों में पुस्तक भंडार की ही किताबें पाई जाती हैं। 'बालक' मासिक पत्र से विद्यार्थियों में जो जागृति पैदा हुई है, उसे सभी जानते हैं। निरक्षरता निवारण के काम में पढ़ाने-लिखाने की सामग्री बाँटने में 'भंडार' ने जिस प्रकार पानी की तरह रुपया बहाया है, यह शिक्षा प्रेमियों से छिपा नहीं है। शरणजी को मैंने नजदीक तथा दूर से जाँचा है। मैंने उन्हें देश का सच्चा प्रेमी, गम्भीर एवं उच्चकोटि का विद्वान् तथा महापुरुष पाया है। इस प्रकार का सहनशील, उदार तथा दृढ़पुरुष मुझे कम मिला। जुबिली के अवसर पर मैं एकबार फिर उन्हें बधाई देता हूँ।

[१०७]

श्रीसरयूप्रसाद दुबे, बी० ए०, डिप० इन-एड०, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, दुमका—

पचीस वर्षों की अवधि में बालोपयोगी पत्र एवं अनेकानेक अच्छी और मनोग्राही पुस्तकें प्रकाशित कर हिन्दी संसार के बालकों और युवकों में पुस्तक-भंडार ने अखंड यश और ख्याति प्राप्त की है। विभिन्न विषयों के अच्छे अच्छे ग्रंथों के प्रणयन एवं प्रकाशन द्वारा बिहार प्रान्त में ही नहीं, प्रत्युत अन्यान्य हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों में भी इसने अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त की है। साक्षरता प्रचार-आन्दोलन में जिस तत्परता और सच्ची लगन से इसने अपने प्रकाशन विभाग द्वारा सहायता की है, वह अनुकरणीय और सराहनीय है। रजत-जयन्ती जैसे शुभोपलक्ष्य में मेरी शुभकामना और आन्तरिक प्रेम इसके साथ है।

[१०८]

श्रीसलोमन मुर्म्मू, सब इंसपेक्टर, संथाली स्कूल्स, पश्चिम दुमका, संथालपरगना—

जिस लगन और निष्ठा के साथ पुस्तक भंडार ने अपने यशोधन अध्यक्ष श्रीयुत रामलोचनशरणजी 'बिहारी' की देख-रेख में मातृभाषा और देश की

सेवा की है, वह यथार्थ में सराहनीय है। मेरी हार्दिक कामना है कि बिहार का गौरव पुस्तक-भंडार अपने संरक्षक 'बिहारी'जी के संचालन में उपयोगी ग्रंथों के प्रकाशन द्वारा बिहार-प्रान्त की प्रतिष्ठा बनाये रक्खे।

[१०९]

श्रीहिमांशुशेखर सरकार, बी० ए०, डिप०-इन-एड०, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, साउथ, दुमका—

पुस्तक भंडार ने बालोपयोगी अनेकों उत्तम ग्रंथों का प्रकाशन कर बिहार में ही नहीं, अपितु अन्यान्य हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों में भी प्राथमिक शिक्षा-प्रसार-विभाग से सम्पर्क रखनेवालों में अच्छा नाम प्राप्त किया है। साहित्यिक क्षेत्र में भी इसकी देन किसी भी सुयोग्य संस्था से न्यून नहीं है। सरकार-द्वारा संचालित निरक्षरता-निवारण-जैसे पवित्र आन्दोलन में 'भंडार' के सुयोग्य और यशस्वी संस्थापक त्यागवीर श्रीरामलोचनशरणजी ने जिस सच्चे प्रेम से इस प्रान्त के भूतपूर्व शिक्षा मंत्री की सहायता की है, वह वास्तव में अनुकरणीय और प्रशंसनीय है। मेरी शुभेच्छा और शुभकामना स्वत ही इनके साथ है।

[११०]

श्रीचुनचुन झा, बी० ए०, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, देवघर—

इन गत पचीस वर्षों में जिस लगन एवं निष्ठा से इसने हिन्दी-साहित्य की सेवा की है, स्तुत्य है। अपने यशोधन अध्यक्ष श्रीरामलोचनशरणजी 'बिहारी' की देखरेख में 'बालक' जैसे आदर्श मासिक पत्र को प्रकाशित कर 'भंडार' ने युवकों में एक नया भाव उत्पन्न कर दिया है। निरक्षरता निवारण में इसने बिहार की जो निःस्वार्थ एवं आदर्श सेवा की है, वह प्रशंसनीय एवं सराहनीय है। निरक्षरता-निवारण की सफलता का सबसे बड़ा श्रेय पुस्तक-भंडार एवं इसके यशस्वी त्यागी अध्यक्ष को है। बिहार का यह पुण्य स्थान पुस्तक-भंडार दिनानुदिन उन्नति के पथ पर अग्रसर हो।

[१११]

श्रीरघुनाथप्रसाद सिंह, बी० ए०, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, गोड्डा—

पुस्तक-भंडार गत २५ वर्षों से बिहार और हिन्दी की सेवा अच्छी तरह से कर रहा है। माननीय शिक्षामंत्री द्वारा निरक्षरता-निवारण की घोषणा होते

ही 'भंडार' ने विद्युत् वेग से चार्ट छपवाकर निरक्षरता-निवारण से सम्बन्ध रखनेवाले सभी सज्जनों के पास भेज दिये। 'भंडार' निःस्वार्थ सेवा करने के लिये विख्यात है। ईश्वर इसको सदा उन्नति के पथ पर अग्रसर रक्खें।

[११२]

श्रीशीतलप्रसाद ठाकुर, बी. ए., सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, कटोरिया, भागलपुर—

मैं 'पुस्तक भंडार' को उस समय से जानता हूँ जब इसका श्रीगणेश एक टूटी-फूटी झोपड़ी में श्रीरामलोचनशरणजी ने किया था। इसकी प्रारंभिक कठिनाइयों को देखते हुए यह कल्पना तक भी नहीं की जा सकती थी कि आगे चलकर यह 'भंडार' हिन्दी-साहित्य के लिये इतना उपयोगी सिद्ध होगा। अब तो इसकी सेवाएँ सब के सामने प्रत्यक्ष ही हैं। निरक्षरता निवारण आन्दोलन के सिलसिले में इसकी कार्यवाहियों को देखकर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यह केवल एक व्यापारिक संस्था ही नहीं है, बल्कि उपयुक्त अवसर होने पर यह एक समाज-सेवी संस्था भी प्रमाणित हो सकती है। इसके अध्यक्ष शरणजी स्वयं एक उच्च कोटि के साहित्यिक हैं और विद्वानों का सत्कार करने में आप सदा दत्तचित्त रहते हैं। दीन प्रतिभाशाली छात्रों को आर्थिक सहायता पहुँचाने की ओर आप विशेष ध्यान रखते हैं। आपकी उदारता के फलस्वरूप कितने ही असहाय छात्र उच्चकोटि के विद्वान बन गये हैं। मैं पुस्तक भंडार और शरणजी की मंगल कामना करता हूँ।

[११३]

श्रीबदरीनारायण सिंह, एम. ए., बी. एल., डिप-इन-एड, हेडमास्टर कर्मयोगी, विद्यालय, गोरियाकोठी (सारन)—

पुस्तक-भंडार के संचालक श्रीरामलोचनशरणजी की साहित्य-सेवा और कर्मनिष्ठा से भी बढ़कर उनकी नम्रता लोगों के लिये अनुकरणीय है। 'भंडार' ने साहित्यिक पुस्तकों और उत्कृष्ट मासिक 'बालक' के द्वारा हिन्दी की जो सेवा की है वह कम-से कम इस प्रान्त में तो अवश्य बेजोड़ है। मेरी यह शुभकामना है कि पुस्तक भंडार इस प्रान्त का ज्ञान-मंदिर बने।

[११४]

श्रीशुकदेव ठाकुर, एम. ए., एम. एड., हेडमास्टर, हाईस्कूल, बक्सर, शाहाबाद—

'बिहार', 'साहित्य' और 'पुस्तक-भंडार'—इन तीनों के अटूट संबंध का हमारे लिये विशेष महत्त्व है। यह तो अब ईश्वरीय प्रेरणा ही जान पड़ती है कि पुस्तक भंडार अपने सेवा व्रत से हमारे जीवन और साहित्य में आदर्शवाद की अधिकाधिक वृद्धि करता रहेगा। हमारा शतशः साधुवाद स्वीकार हो।

[११५]

श्रीहरिपदमुखोपाध्याय, एम ए, हेडमास्टर, डि. एम. एच. ई. स्कूल, शेखपुरा—

पुस्तक-भंडार ने हिन्दी साहित्य की जो सेवा की है, वह अतुलनीय है। इसका 'बालक' बालकों की मानसिक तथा नैतिक वृद्धि के लिये एकमात्र पत्र है। मैं सर्वथा इसकी शुभकामना करता हूँ।

[११६]

श्रीभुवनेश्वरी दयाल, बी० ए०, बी० एल०, डिप० एड०, हेडमास्टर, हाईस्कूल, मनेर, पटना—

बिहार-प्रान्त तथा अन्य हिन्दी-प्रान्तों को भी आपके पुस्तक-प्रकाशन-कार्य से जो लाभ हुआ है वह बहुत अधिक है। 'भंडार' ने बिहार में सबसे पहले हिन्दी में स्कूली किताबों का एक स्टैंडर्ड कायम किया है। 'भंडार'-द्वारा प्रकाशित मासिक पत्र 'बालक' हिन्दी साहित्य क्षेत्र में अपना एक विशेष स्थान रखता है। इसकी उत्तरोत्तर उन्नति हो।

[११७]

श्रीराजेन्द्रप्रसाद, एम ए, बी एल, हेडमास्टर, मोडेल इन्स्टिट्यूट, आरा—

पुस्तक-भंडार एक पुरानी तथा लब्धप्रतिष्ठ संस्था है। इससे बिहार में विद्या-प्रचार, विशेषत हिन्दी की उन्नति तथा विकास, प्रचुर रूप से हुआ है। इसके संस्थापक श्रीयुत रामलोचनशरणजी ने शिक्षक के गौरव,

पूर्ण पद से प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण कार्य आरम्भ कर इसे इस उन्नति के शिखर पर पहुँचाया है। इन्हें बिहारी शिक्षक-समुदाय अपने लिये आदर्श समझता है। इनकी स्वर्ण-जयन्ती पर मैं बधाई देता हूँ।

[११८]

श्रीकैलाश सिंह, एम. ए., डिप इन-एड, हेडमास्टर, राज-हाईस्कूल, डुमराँव—

'भंडार' ने बिहार प्रदेश में किस महान् अभाव की पूर्त्ति की है, यह किसी भी हिन्दी-साहित्य-सेवी से अविदित नहीं। 'भंडार' को हिन्दी-साहित्य-सेवा की सच्ची लगन है। इसकी सेवा से बिहार का भाल सर्वदा सर्वथा गर्वोद्दीप्त रहेगा। बधाई!

[११९]

श्रीसच्चिदानन्द सहाय, बी ए, डिप इन एड, हेडमास्टर, हाईस्कूल, गुमला (राँची)—

'पुस्तक-भंडार' ऐसी प्रकाशन-संस्था के जन्मदाता श्रीरामलोचनशरणजी बधाई के पात्र हैं। यह निर्विवाद है कि 'भंडार' का स्थान बिहार में अद्वितीय है। यहाँ से प्रकाशित होनेवाले 'बालक' ने भी राष्ट्र के भावी उन्नायक बालकों का पर्याप्त मनोरंजन एवं उपकार किया है। हमारी हार्दिक कामना है कि 'भंडार' इसी प्रकार उन्नति की ओर अग्रसर होता रहे।

[१२०]

श्रीनवलकिशोर प्रसाद, एम ए., बी एल, डीप. एड, हेडमास्टर, जिला-स्कूल, हजारीबाग—

बालशिक्षा में किसी तरह हाथ बँटाना नागरिकों का प्रथम कर्त्तव्य है। श्रीरामलोचनशरण बिहारीजी ने सच्चे नागरिक की भाँति इस कार्य में कितना भाग लिया है, यह सर्वविदित है। 'बालक' इस प्रान्त का एकमात्र मासिक पत्र है। श्रीबिहारीजी ने 'बालक' द्वारा हमेशा किशोरों के कोमल मस्तिष्क में नागरिकता का भाव बहुत ही सुचारु रूप से भरने की कोशिश की है। अनेक उपयोगी पुस्तकें भी यहाँ से प्रकाशित हुई हैं। जयन्ती के अवसर पर मैं हार्दिक बधाई देता हूँ।

[११४]

श्रीशुकदेव ठाकुर, एम. ए., एम. एड., हेडमास्टर, हाईस्कूल, बक्सर, शाहाबाद—

'बिहार', 'साहित्य' और 'पुस्तक-भंडार'—इन तीनों के अटूट संबंध का हमारे लिये विशेष महत्त्व है। यह तो अब ईश्वरीय प्रेरणा ही जान पड़ती है कि पुस्तक भंडार अपने सेवा व्रत से हमारे जीवन और साहित्य में आदर्शवाद की अधिकाधिक वृद्धि करता रहेगा। हमारा शतशः साधुवाद स्वीकार हो।

[११५]

श्रीहरिपदमुखोपाध्याय, एम. ए., हेडमास्टर, डि. एम. एच. ई. स्कूल, शेखपुरा—

पुस्तक-भंडार ने हिन्दी साहित्य की जो सेवा की है, वह अतुलनीय है। इसका 'बालक' बालकों की मानसिक तथा नैतिक वृद्धि के लिये एकमात्र पत्र है। मैं सर्वथा इसकी शुभकामना करता हूँ।

[११६]

श्रीभुवनेश्वरी दयाल, बी० ए०, बी० एल०, डिप० एड०, हेडमास्टर, हाईस्कूल, मनेर, पटना—

बिहार प्रान्त तथा अन्य हिन्दी-प्रान्तों को भी आपके पुस्तक-प्रकाशन-कार्य से जो लाभ हुआ है वह बहुत अधिक है। 'भंडार' ने बिहार में सबसे पहले हिन्दी में स्कूली किताबों का एक स्टैंडर्ड कायम किया है। 'भंडार'-द्वारा प्रकाशित मासिक पत्र 'बालक' हिन्दी साहित्य क्षेत्र में अपना एक विशेष स्थान रखता है। इसकी उत्तरोत्तर उन्नति हो।

[११७]

श्रीराजेन्द्रप्रसाद, एम. ए., बी. एल., हेडमास्टर, मोडेल इन्स्टिट्यूट, आरा—

पुस्तक-भंडार एक पुरानी तथा लब्धप्रतिष्ठ संस्था है। इससे बिहार में विद्या-प्रचार, विशेषतः हिन्दी की उन्नति तथा विकास, प्रचुर रूप से हुआ है। इसके संस्थापक श्रीयुत रामलोचनशरणजी ने शिक्षक के गौरव,

पूर्ण पद से प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण कार्य आरम्भ कर इसे इस उन्नति के शिखर पर पहुँचाया है। इन्हें बिहारी शिक्षक-समुदाय अपने लिये आदर्श समझता है। इनकी स्वर्ण-जयन्ती पर मैं बधाई देता हूँ।

[११८]

श्रीकैलाश सिंह, एम ए, डिप इन-एड, हेडमास्टर, राज-हाईस्कूल, डुमराँव—

'भंडार' ने बिहार प्रदेश में किस महान् अभाव की पूर्ति की है, यह किसी भी हिन्दी-साहित्य-प्रेमी से अविदित नहीं। 'भंडार' को हिन्दी-साहित्य-सेवा की सच्ची लगन है। इसकी सेवा से बिहार का भाल सर्वदा सर्वथा गर्वोद्दीप्त रहेगा। बधाई।

[११९]

श्रीसच्चिदानन्द सहाय, बी. ए, डिप इन-एड, हेडमास्टर, हाईस्कूल, गुमला (राँची)—

'पुस्तक-भंडार' ऐसी प्रकाशन-संस्था के जन्मदाता श्रीरामलोचनशरणजी बधाई के पात्र हैं। यह निर्विवाद है कि 'भंडार' का स्थान बिहार में अद्वितीय है। यहाँ से प्रकाशित होनेवाले 'बालक' ने भी राष्ट्र के भावी उन्नायक बालकों का पर्याप्त मनोरंजन एवं उपकार किया है। हमारी हार्दिक कामना है कि 'भंडार' इसी प्रकार उन्नति की ओर अग्रसर होता रहे।

[१२०]

श्रीनवलकिशोर प्रसाद, एम ए, बी एल, डीप एड, हेडमास्टर, जिला-स्कूल, हजारीबाग—

बालशिक्षा में किसी तरह हाथ बँटाना नागरिकों का प्रथम कर्त्तव्य है। श्रीरामलोचनशरण बिहारीजी ने सच्चे नागरिक की भाँति इस कार्य में कितना भाग लिया है, यह सर्वविदित है। 'बालक' इस प्रान्त का एकमात्र मासिक पत्र है। श्रीबिहारीजी ने 'बालक' द्वारा हमेशा किशोरों के कोमल मस्तिष्क में नागरिकता का भाव बहुत ही सुचारु रूप से भरने की कोशिश की है। अनेक उपयोगी पुस्तकें भी यहाँ से प्रकाशित हुई हैं। जयन्ती के अवसर पर मैं हार्दिक बधाई देता हूँ।

[१२१]

श्रीपाण्डे परमेश्वरीप्रसाद, असिस्टेंट मास्टर, जिला स्कूल, राँची—

श्रद्धेय श्रीरामलोचनशरणजी ने हिन्दी-प्रचार के प्रति अपना प्रगाढ़ प्रेम दिखलाया है। जिन दिनों हिन्दी का नाम लेते ही कुछ लोग नाक-भौं सिकोड़ते थे, उन दिनों भी शरणजी ने इसकी उन्नति के लिये -जीजान से चेष्टा की। 'बालक' तो बालक था, पर उसकी शैशवावस्था अब चली गई। वह अब प्रत्येक श्रेणी के बालकों में निःशङ्क विचरण कर रहा है। शरणजी के इस महान् यज्ञ में मंगलमय प्रभु सफलता प्रदान करें।

[१२२]

श्रीविभूतिभूषण मुखोपाध्याय, हेडमास्टर, राज हाई स्कूल, दरभंगा—

'पुस्तक-भंडार' ने छात्रोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित कर छात्रों की आवश्यक माँग की पूर्ति की है। इससे स्कूल और 'भंडार' में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया है। 'भंडार' के अध्यक्ष श्रीमान् रामलोचनशरणजी ने अपने अदम्य उत्साह तथा स्वाभाविक साहित्य-रुचि से कितने बिखरे साहित्य-सुमनों को चुनकर सुन्दर हार बनाने की चेष्टा की है और, इसमें सफल भी हुए हैं। एक छोटी-सी पुस्तक की दूकान बढ़कर चंद दिनों में 'भंडार' का रूप में बिहार का सर्वोन्नत साहित्यिक केन्द्र बन गई है। 'भंडार' बराबर उन्नति के पथ पर अग्रसर हो, बिहार ही को क्या, सम्पूर्ण देश को गौरवान्वित करे।

[१२३]

श्रीसरयूप्रसाद सिंह, हिन्दी-शिक्षक, एम एल एकेडमी, लहेरियासराय—

सन् १९१५ ई० में मैं मिडिल वर्नाक्युलर में परीक्षा देनेवाले विद्यार्थियों के साथ लहेरियासराय आया था, उस समय श्रीयुत रामलोचनशरणजी से भेंट हुई। आपने अपनी नवीन ढँग से बनाई हुई एक व्याकरण की पोथी (अपर व्याकरणबोध) मुझे दिखलाई जिसपर युक्तप्रांत की सरकार से आपको नगद इनाम भी मिला था। मैंने कहा कि मैं तो आपसे एक बृहत् हिन्दी-व्याकरण की आशा करता था। कुछ दिनों के पश्चात् ही आपने सचमुच एक बहुत सुन्दर हिन्दी-व्याकरण, जिसका नाम व्याकरण-चन्द्रोदय है, मेरे पास भेज दिया।

मैं देखकर आनन्दविभोर हो गया। आज हिन्दी संसार में व्याकरण की बहुत पोथियाँ बन गई हैं, परन्तु व्याकरण चन्द्रोदय अपने ढँग का एक ही रहा। अब तो हिन्दी-संसार में हिन्दी भाषा-भाषी आपको व्याकरण के आचार्य ही कहकर सम्बोधित किया करते हैं। मैं हृदय से आशीर्वाद देता हूँ कि ईश्वर आपको अधिकाधिक साहित्य सेवा की शक्ति प्रदान करें।

[१२४]

श्रीसतीशचन्द्र चक्रवर्त्ती, हेडमास्टर, जिला-स्कूल, चायबासा—

पुस्तक-भंडार की स्थापना से बिहार के अन्तर्गत पाठ्य पुस्तकों का अभाव दूर-सा हो गया है। 'भंडार' की पुस्तकें प्रत्येक भाषा की अर्थात् हिन्दी, उर्दू और बँगला की होती हैं। उड़ीसा प्रदेश इसके पूर्व बिहार के अन्तर्गत था, इसलिये उड़िया भाषा की पाठ्य पुस्तकें भी 'भंडार' से उपलब्ध हैं। 'भंडार' ने कितने ही लेखकों को उत्साहित कर लब्धप्रतिष्ठ बनाया है। बालकों में लेख लिखने की प्रसुप्त शक्ति को जगाकर भविष्य के सुधार का आयोजन किया है। परमात्मा से प्रार्थना है, 'भंडार' फूले फले और सदा भरपूर रहे।

[१२५]

श्रीराजदयाल चौधरी, एम. ए., डिप एड, साहित्य-रत्न,

आर० हाईस्कूल, सुरसंड, मुजफ्फरपुर—

'भंडार' बिहार और हिन्दी-साहित्य की सेवा वर्षों से संलग्नता के साथ करता आ रहा है। पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त अन्यान्य लाभप्रद पुस्तकों का तथा बालकोपयोगी 'बालक' का प्रकाशन कर इसने अपने को अमित पुण्य और यश का भागी बनाया है। मैं इस संस्था की उत्तरोत्तर उन्नति की कामना करता हूँ।

[१२६]

श्री एस० एन० पांडेय, प्रधानाध्यापक, यदुनन्दन एच० ई०

स्कूल, थाघी, मुजफ्फरपुर—

पुस्तक-भंडार की हिन्दी-साहित्य सेवा सराहनीय है। इसने बिहार की भारी त्रुटि की पूर्ति की है। 'भंडार' की ही सेवा का फल है कि स्कूल के पाठ्य क्रम की पुस्तकों के लिये, अब बिहार को दूसरे प्रान्तों का मुँह जोहना नहीं पड़ता है। यह उत्तरोत्तर उन्नति करे।

[१२७]

श्रीरामनन्दन सिंह, प्रधानाध्यापक, देवीमंगल एकेडमी, बगहा, चम्पारन—

पुस्तक-भंडार ने बिहार-प्रान्त का मस्तक हिन्दी संसार में ऊँचा किया है। इसने हिन्दी साहित्य के इतिहास को गौरवान्वित बनाया है। साहित्य के प्रत्येक अंग को सुन्दर, सुसज्जित तथा आकर्षक बनाने का जो गंभीर और भगीरथ-प्रयत्न इसने किया है, वह सर्वदा स्तुत्य—क्या भारत के उज्ज्वल भविष्य का द्योतक है। 'पुस्तक-भंडार' अपने पावन उद्देश्य में सफल हो, मेरी मन कामना यही है।

[१२८]

श्रीप्रयागमाधव कुण्डु, बी० ए०, प्रधान-शिक्षक, कुण्डु मिडूल-इंगलिश स्कूल, राँची—

पुस्तक-भंडार ने अच्छे ग्रन्थों के प्रकाशन-द्वारा बिहार-प्रान्त की अच्छी सेवा की है। इसने पुस्तकों की छपाई-सफाई, जिल्द और बाहरी सौन्दर्य का मूल्य समझा है। श्रीयुत रामलोचनशरणजी इस सदुद्योग और साहित्यिक सेवा के लिये समस्त बिहार के धन्यवाद पात्र हैं। 'बालक' की प्रथम संख्या में जो उद्देश्य निर्देशित किये गये थे, सम्पादक ने उनकी यथाशक्ति पूर्त्ति की है। 'भंडार' के कर्मचारियों का वर्ताव हमने प्रशंसनीय और भद्रजनोचित पाया। पुस्तक भंडार पर सदा भगवान् की कृपा बनी रहे।

[१२९]

श्रीमनुराम, अँगरेजी शिक्षक, राँतू एम भी स्कूल, राँची—

'भंडार' के २५ वर्षों का समय हिन्दी साहित्य के लिये आशा, वैभव और उन्नति का युग रहा है। पुस्तक-भंडार की साहित्य-सेवाओं से ऐसा कौन हिन्दी प्रेमी है जो परिचित नहीं है? 'बालक' पत्र इसी 'भंडार' से प्रकाशित होकर वर्षों से साहित्य-सुमन विकीर्ण कर रहा है। पुस्तक भंडार की पुस्तकें शिक्षाप्रद, छपाई में सुन्दर तथा सस्ती होती हैं जिन्हें जनता हृदय से पसन्द करती है। यह बिहार का एक आदर्श पुस्तक भंडार हो रहा है। मैं शुभकामना के साथ आशावान् हूँ कि यह भविष्य में भी हिन्दी-भाषा की उन्नति करता हुआ सदा फूलता-फलता रहे।

[१३०]

श्रीजगन्नाथ राम, हेडपंडित, रातू मि० व० स्कूल, राँची—

मुझे 'भंडार' की पुस्तकें उपयोगी, समयोचित विचारों से परिपूर्ण और शिक्षकों तथा छात्रों को उचित सहायता पहुँचानेवाली मिली हैं। प्रत्येक विषय की पुस्तकें अति लाभदायक सिद्ध हुई हैं। छपाई, सफाई, गेट अप सभी बातों में ये आधुनिक हैं। इनमें सिलेबस के अनुसार काम की जितनी बातें चाहिये, खोज के साथ दी जाती हैं और त्रुटियाँ नहीं रहने पातीं। मुझे २१ वर्षों से इसका अनुभव रहा है कि 'भंडार' की सभी पुस्तकें काम की होती हैं। 'भंडार' दिनोंदिन फले-फूले और अक्षय कीर्त्ति प्राप्त करे।

[१३१]

श्रीयदुनन्दन पाठक, 'विशारद', प्रधानाध्यापक, मारवाड़ी एम० ई० स्कूल, राँची—

पुस्तक भंडार ने बिहार प्रान्त में हिन्दी-साहित्य की अनुपम सेवा की है। यही एक ऐसा 'भंडार' है जो हिन्दी-पुस्तकों के प्रकाशन तथा हिन्दी साहित्य सेवा करने में इस प्रान्त में अग्रगण्य है। इसकी प्रत्येक पुस्तक, चाहे वह किसी विषय की हो, अनुपम और अद्वितीय होती है, भाषा, भाव और विषय के वैचित्र्य में इसकी प्रत्येक पुस्तक अपने ढंग की एक होती है। शिक्षकों पर ऐसी कृपादृष्टि रखनेवाला शायद ही और कोई 'भंडार' है। यह 'भंडार' इसी प्रकार शिक्षकों के सहयोग से फूलता-फलता रहे।

[१३२]

श्रीसरयूप्रसाद गुप्त, हेडमास्टर, डुमरी एम ई स्कूल, हजारीबाग—

'पुस्तक-भंडार' कुबेर का भंडार हो और बराबर फूलता-फलता रहे।

[१३३]

श्रीब्रजविलासप्रसाद, प्रधानाध्यापक, भुवनेश्वर मिडूल इंगलिश स्कूल, आरा—

'पुस्तक भंडार' अपनी साहित्य सेवा से बिहार का मुख उज्ज्वल करता चला आया है और अभी तक बिहार में साहित्य-सेवा की जो कमी थी, वह

[१२७]

श्रीरामनंदन सिंह, प्रधानाध्यापक, देवीमंगल एकेडमी, बगहा, चम्पारन—

पुस्तक-भंडार ने बिहार-प्रान्त का मस्तक हिन्दी संसार में ऊँचा किया है। इसने हिन्दी-साहित्य के इतिहास को गौरवान्वित बनाया है। साहित्य के प्रत्येक अंग को सुन्दर, सुसज्जित तथा आकर्षक बनाने का जो गंभीर और भगीरथ-प्रयत्न इसने किया है, वह सर्वदा स्तुत्य—क्या भारत के उज्ज्वल भविष्य का द्योतक है। 'पुस्तक-भंडार' अपने पावन उद्देश्य में सफल हो, मेरी मनःकामना यही है।

[१२८]

श्रीप्रयागमाधव कुण्डु, बी० ए०, प्रधान-शिक्षक, कुण्डु मिड्ल-इंगलिश स्कूल, राँची—

पुस्तक-भंडार ने अच्छे ग्रन्थों के प्रकाशन-द्वारा बिहार-प्रान्त की अच्छी सेवा की है। इसने पुस्तकों की छपाई-सफाई, जिल्द और बाहरी सौन्दर्य का मूल्य समझा है। श्रीयुत रामलोचनशरणजी इस सदुद्योग और साहित्यिक सेवा के लिये समस्त बिहार के धन्यवाद पात्र हैं। 'बालक' की प्रथम संख्या में जो उद्देश्य निर्देशित किये गये थे, सम्पादक ने उनकी यथाशक्ति पूर्ति की है। 'भंडार' के कर्मचारियों का बर्ताव हमने प्रशंसनीय और भद्रजनोचित पाया। पुस्तक भंडार पर सदा भगवान् की कृपा बनी रहे।

[१२९]

श्रीमनुराम, अँगरेजी शिक्षक, राँतू एम. भी. स्कूल, राँची—

'भंडार' के २५ वर्षों का समय हिन्दी साहित्य के लिये आशा, वैभव और उन्नति का युग रहा है। पुस्तक-भंडार की साहित्य-सेवाओं से ऐसा कौन हिन्दी-प्रेमी है जो परिचित नहीं है? 'बालक' पत्र इसी 'भंडार' से प्रकाशित होकर वर्षों से साहित्य-सुमन विकीर्ण कर रहा है। पुस्तक भंडार की पुस्तकें शिक्षाप्रद, छपाई में सुन्दर तथा सस्ती होती हैं जिन्हें जनता हृदय से पसन्द करती है। यह बिहार का एक आदर्श पुस्तक भंडार हो रहा है। मैं शुभकामना के साथ आशावान् हूँ कि यह भविष्य में भी हिन्दी-भाषा की उन्नति करता हुआ सदा फूलता-फलता रहे।

[१२७]

श्रीरामनंदन सिंह, प्रधानाध्यापक, देवीमंगल एकेडमी, बगहा, चम्पारन—

पुस्तक-भंडार ने बिहार-प्रान्त का मस्तक हिन्दी संसार में ऊँचा किया है। इसने हिन्दी साहित्य के इतिहास को गौरवान्वित बनाया है। साहित्य के प्रत्येक अंग को सुन्दर, सुसज्जित तथा आकर्षक बनाने का जो गंभीर और भगीरथ प्रयत्न इसने किया है, वह सर्वदा स्तुत्य—क्या भारत के उज्ज्वल भविष्य का द्योतक है। 'पुस्तक-भंडार' अपने पावन उद्देश्य में सफल हो, मेरी मन कामना यही है।

[१२८]

श्रीप्रयागमाधव कुण्डु, बी० ए०, प्रधान-शिक्षक, कुण्डु मिडल-इंगलिश स्कूल, राँची—

पुस्तक-भंडार ने अच्छे ग्रन्थों के प्रकाशन-द्वारा बिहार-प्रान्त की अच्छी सेवा की है। इसने पुस्तकों की छपाई-सफाई, जिल्द और बाहरी सौन्दर्य का मूल्य समझा है। श्रीयुत रामलोचनशरणजी इस सदुद्योग और साहित्यिक सेवा के लिये समस्त बिहार के धन्यवाद-पात्र हैं। 'बालक' की प्रथम संख्या में जो उद्देश्य निर्देशित किये गये थे, सम्पादक ने उनकी यथाशक्ति पूर्त्ति की है। 'भंडार' के कर्म्मचारियों का बर्ताव हमने प्रशंसनीय और भद्रजनोचित पाया। पुस्तक भंडार ...र सदा भगवान् की कृपा बनी रहे।

[१२९]

... अँगरेजी शिक्षक, रातू एम ई स्कूल, राँची—

... २५ वर्षों का समय हिन्दी-साहित्य के लिये आशा, वैभव और ... है। पुस्तक-भंडार की साहित्य-सेवाओं से ऐसा कौन हिन्दी-...च नहीं है? 'बालक' पत्र इसी 'भंडार' से प्रकाशित होकर वर्षों से ...विकीर्ण कर रहा है। पुस्तक भंडार की पुस्तकें शिक्षाप्रद, छपाई ...ी हैं जिन्हें जनता हृदय से पसन्द करती है। यह बिहार ...ार हो रहा है। मैं शुभकामना के साथ आशावान् हूँ ... हिन्दी-भाषा की उन्नति करता हुआ सदा फूलता-फलता रहे।

[१३०]

श्रीजगन्नाथ राम, हेडपंडित, राँतू मि० व० स्कूल, राँची—

मुझे 'भंडार' की पुस्तकें उपयोगी, समयोचित विचारों से परिपूर्ण और शिक्षकों तथा छात्रों को उचित सहायता पहुँचानेवाली मिली हैं। प्रत्येक विषय की पुस्तकें अति लाभदायक सिद्ध हुई हैं। छपाई, सफाई, गेट अप सभी बातों में ये आधुनिक हैं। इनमें सिलेबस के अनुसार काम की जितनी बातें चाहिये, खोज के साथ दी जाती हैं और त्रुटियाँ नहीं रहने पातीं। मुझे २१ वर्षों से इसका अनुभव रहा है कि 'भंडार' की सभी पुस्तकें काम की होती हैं। 'भंडार' दिनोंदिन फूले फले और अक्षय कीर्त्ति प्राप्त करे।

[१३१]

श्रीयदुनन्दन पाठक, 'विशारद', प्रधानाध्यापक, मारवाड़ी एम० ई० स्कूल, राँची—

पुस्तक भंडार ने बिहार-प्रान्त में हिन्दी-साहित्य की अनुपम सेवा की है। यही एक ऐसा 'भंडार' है जो हिन्दी-पुस्तकों के प्रकाशन तथा हिन्दी-साहित्य सेवा करने में इस प्रान्त में अग्रगण्य है। इसकी प्रत्येक पुस्तक, चाहे वह किसी विषय की हो, अनुपम और अद्वितीय होती है, भाषा, भाव और विषय के वैचित्र्य में इसकी प्रत्येक पुस्तक अपने ढँग की एक होती है। शिक्षकों पर ऐसी कृपादृष्टि रखनेवाला शायद ही और कोई 'भंडार' है। यह 'भंडार' इसी प्रकार शिक्षकों के सहयोग से फूलता-फलता रहे।

[१३२]

श्रीसरयूप्रसाद गुप्त, हेडमास्टर, डुमरी एम ई स्कूल, हजारीबाग—

'पुस्तक-भंडार' कुबेर का भंडार हो और बराबर फूलता-फलता रहे।

[१३३]

श्रीब्रजविलासप्रसाद, प्रधानाध्यापक, भुवनेश्वर मिडूल इंगलिश स्कूल, आरा—

'पुस्तक भंडार' अपनी साहित्य सेवा से बिहार का मुख उज्ज्वल करता चला आया है और अभी तक बिहार में साहित्य-सेवा की जो कमी थी, वह

उसको पूरा कर रहा है। 'भंडार' बिहार टेक्स्टबुक कमिटी के द्वारा स्वीकृत पुस्तकों को नई सिलेबस के अनुकूल रचकर विद्यार्थियों की जो सहायता आजतक करता चला आया है, अकथनीय है। हम 'पुस्तक भंडार' को हृदय से धन्यवाद देते हैं।

[१३४]

श्रीकेदारनाथ सिंह, बी० ए०, हेडमास्टर, एम० ई० स्कूल, बलाही नीलकंठ, मुजफ्फरपुर—

'भंडार' ने अपने जन्मकाल से ही हिन्दी की अनुपम सेवा की है। पुस्तक भंडार की सफलता का इतिहास बिहार साहित्य की सफलता का इतिहास है। हमने विद्यार्थी तथा शिक्षक दोनों ही रूपों में 'पुस्तक भंडार' की किताबों का काफी अध्ययन किया है और उन्हें सर्वथा लाभदायक तथा शिक्षाप्रद पाया है। पुस्तक-भंडार के स्वत्वाधिकारी श्रीयुत रामलोचनशरणजी शतश धन्यवाद के पात्र हैं।

[१३५]

श्रीरामसागर शाही, बी ए., हेडमास्टर, मि ई. स्कूल, मुजफ्फरपुर—

पुस्तक भंडार बिहार का साहित्य-मंदिर है। श्रीरामलोचनशरणजी इसके अनन्य पुजारी हैं। जिस प्रकार राष्ट्रीयता के मैदान में महात्मा गाँधी का नाम अमर रहेगा उसी प्रकार पिछड़े हुए बिहार में हिन्दी सेवा के लिये शरणजी का नाम सर्वप्रथम रहेगा। शिक्षक-समाज को 'भंडार' की पुस्तकों से जितना प्रेम है, उतना किसीसे नहीं।

[१३६]

श्रीजगदीश मिश्र 'मैथिल', काव्यतीर्थ, हेडमास्टर, मारवाड़ी एम ई. स्कूल, सीतामढ़ी—

'पुस्तक-भंडार' के स्वत्वाधिकारी संस्थापक श्रीरामलोचनशरण 'बिहारी' अपने समय के धुरन्धर नीतिज्ञ हैं। 'भंडार' इनके अतीत स्वप्न का सक्रिय अनुवाद है। इसके उदार प्रतिष्ठापक ने जिस महान् उद्देश्य से इसकी स्थापना की है, वह कोरा व्यापार नहीं है। पिछले १० वर्षों से 'भंडार' से मेरा निकटतम सम्पर्क रहा है। मैंने देखा है कि 'भंडार' एक आदर्श परिवार के सिद्धान्त पर सचालित है। इसने उपादेय ग्रंथों के सुंदर प्रकाशन से प्रान्त का माथा ऊँचा

या है। 'मालक' इस जागृति युग का यशस्वी अग्रदूत है। मेरे लिये यह
न्ती महान् गौरवपूर्ण व पुण्यमय पर्व है।

[१३७]

सरयू ठाकुर, हेडमास्टर, घो मि ई. स्कूल, खिरहर, दरभगा—

जैसे-जैसे इस 'भडार' की अवस्था उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त करती जाती है,
वैसे वैसे इसकी लोकप्रियता, उदारता एव सहृदता में यथेष्ट वृद्धि होती जाती है।
की दिन दिन उन्नति होती रहे।

[१३८]

ीहरिनंदन चौधरी, बी ए, हेडमास्टर, एम० ई० स्कूल, चाँदपुरा, मुजफ्फरपुर—

आकर्षक कवर, सुन्दर गेट-अप, नूतन भाव क्षेत्र और कलात्मकता पुस्तक
हार के प्रकाशन की खास खूबियाँ रही हैं। बिहार के साहित्य और साहित्यिकों
सृष्टि में इसका सबसे बड़ा हाथ है। बाल-साहित्य को इसने जीवन दिया है,
ढ भावनाओं को प्रगति दी है और महान् आत्माओं के जीवन के विस्मृत क्षणों
प्राण स्पदन।

[१३९]

ीराय पीताम्बर शर्मा, बी० ए० हेडमास्टर, इंडस्ट्रियल एम० ई० स्कूल, दिघरा (दरभगा)—

अद्यावधि पुस्तक भडार-कृत सेवा सर्वथा स्तुत्य है। इसका गौरवपूर्ण
तीत ही समुज्ज्वल भविष्य का परिचायक है। दीन विद्यार्थियों की सहायता,
ाहित्य-सेवा, निरक्षरों के प्रति सहानुभूति और उन्हें साक्षर और शिक्षित बनाने
क प्रयत्न, शिक्षकों के साथ सद्भाव एव व्यापारियों के लिये सुविधा सभी चित्ता-
र्षक हैं। दिनानुदिन इसकी अभिवृद्धि हो मेरी मगल कामना यही है।

[१४०]

श्रीराजेन्द्रनारायण झा, हेडमास्टर, मि० ई० स्कूल, सुपौल (दरभगा)—

'भडार' सम्पूर्ण बिहार-प्रान्त के गौरव की वस्तु है। जिस खूबी के साथ
इसके निर्माता ने एक अति साधारण सस्था से इसे इतना विकसित रूप दिया है,

वह तो केवल साहित्य के विद्यार्थियों के ही हेतु नहीं; वरन् एक एक ग्रामीण जनता के उत्साह एव गौरव की बात है। इस महान् संस्था और इसके जन्मदाता श्रद्धास्पद श्रीमान् मास्टर साहब के दीर्घजीवन के हेतु मैं ईश्वर से प्रार्थी हूँ।

[१४१]

श्रीरमाकान्तप्रसाद, बी० ए०, हेडमास्टर, बी एम ई. स्कूल, मानिकपुर (सारन)—

पुस्तक भडार ने अपने प्रकाशनों द्वारा बिहारी होनहार साहित्यिक नवयुवकों की प्रतिभा ससार के सामने रक्खी है। बिहार के स्कूलों में आज तक नकशे और चित्रकारी की किताबें बाहर से मँगाई जाती थीं, लेकिन 'हिमालय एटलास' और 'अजता चित्रावली' निकालकर पुस्तक-भडार ने इस कमी को भी पूरा किया है। राष्ट्रभाषा 'हिन्दी' की भडार-वृद्धि की ओर पुस्तक-भडार जिस तत्परता से अग्रसर हो रहा है, वह सम्पूर्ण राष्ट्र के लिये गौरव की वस्तु बन जायगा। 'पुस्तक भडार' की हिन्दी-सेवा केवल व्यवसाय के लिये नहीं है, बल्कि बिहार में हिन्दी की उन्नति के लिये भी है।

[१४२]

श्रीरामसेवक तिवारी, शिक्षक, मि० ई० स्कूल, जलालपुर (सारन)-

मेरी हार्दिक शुभकामना है कि बिहार में हिन्दी के अनन्य सेवक श्रीमान् रामलोचनशरणजी इस 'भडार' की 'स्वर्ण-जयन्ती' तथा 'हीरक जयन्ती' भी देखने के लिये हमारे बीच समुन्नत अवस्था मे रहें।

[१४३]

श्रीरघुनाथप्रसाद, हेडमास्टर, गौरीशकर मि० ई० स्कूल, मोतीहारी—

पुस्तक भडार अपनी अमूल्य एव सुगम पुस्तकों के द्वारा हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों की, विशेषकर बिहार के शिक्षा विभाग की, जो अमूल्य सेवा की है, उसके लिये सभी शिक्षक तथा छात्र उसके ऋणी हैं। पुस्तक भडार ने 'बालक' नामक मासिक पत्र निकालकर छात्रों की साहित्यिक रुचि बढ़ाई है और निरक्षरता-निवारण आन्दोलन में पर्याप्त सहायता पहुँचाकर देश की अनुपम सेवा की है। इस आदर्श सस्था की उत्तरोत्तर उन्नति हो और इसके अध्यक्ष श्रीयुत रामलोचनशरणजी दीर्घायु होकर देश का गौरव बढ़ाते रहें।

[१४४]

श्रीवेदानंद कुमर, हेडपंडित, मि० स्कूल, सुल्तानगंज, भागलपुर—

पुस्तक भंडार के अध्यक्ष श्रीमान् रामलोचनशरणजी ने आजतक जिस अनवरत परिश्रम, अदम्य उत्साह तथा लगन से हिन्दी तथा अन्य साहित्यिक क्षेत्रों में बिहार—विशेषकर मिथिला—का मुख उज्ज्वल किया है, वह सर्वथा प्रशंसनीय तथा अनुकरणीय है। परमात्मा उन्हें दीर्घजीवी करें।

[१४५]

श्रीमुरलीधर सिंह, प्रधानाध्यापक, मि० ई० स्कूल, हेमजापुर, मुंगेर—

'भंडार' ने सदा हम शिक्षकों की कठिनाइयाँ दूर करने की चेष्टा की है। इसके द्वारा प्रकाशित प्रत्येक विषय की पाठ्य-पुस्तक अपना सानी नहीं रखती। बालोपयोगी सुन्दर पुस्तकें तथा हिन्दी-साहित्य के उद्भट विद्वानों की सुन्दर रचनाएँ प्रकाशित कर 'भंडार' ने बिहार का सिर ऊँचा किया है। 'बालक' का प्रकाशन तो हिन्दी प्रेमी बालकों का ही नहीं, वयस्कों का भी ज्ञानवर्द्धन करता है। मैं 'भंडार' की उत्तरोत्तर उन्नति की शुभकामना करता हूँ।

[१४६]

श्रीरामचन्द्रनारायण, हेडमास्टर, मि ई स्कूल, नवाकोठी, मुंगेर—

'भंडार' ने हिन्दी साहित्य की सराहनीय सेवा कर दिखाई है एवं इस कार्य में सतत प्रयत्नशील है। इसके सेवा-स्वरूप उत्तमोत्तम ग्रंथ हमें देखने को मिल रहे हैं। हमें आशा है कि अनेकों बाधाओं को सहन करता हुआ यह बिहार में अपना सर्वप्रथम स्थान अक्षुण्ण बनाये रखने में समर्थ रहेगा।

[१४७]

श्रीताराकान्त झा, हेडमास्टर, मि ई स्कूल, साहबी, मुंगेर—

'पर-हित बस जिनके मन माहीं, तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं'—के सिद्धान्त से इस 'भंडार' की स्थापना है। इस 'भंडार' ने पुस्तक के मुद्रण, प्रकाशन और दान पर ध्यान रखकर स्वार्थ और परमार्थ में शरीर और प्राणों का-सा संबंध दिखा दी है। इसे पुस्तक-भंडार कहा जाय या ज्ञान भंडार? शिक्षा के इतिहास में इसकी कीर्त्ति रजतपत्रों पर स्वर्णाक्षरों से लिखी जायगी।

[१४८]

श्रीलक्ष्मीनारायण सिंह 'विशारद', प्रथमाध्यापक, बी. मि. ई. स्कूल, बाँका, भागलपुर—

मेरी साहित्य चेतना का श्रेय 'बालक' तथा उसके प्रकाशक 'भंडार' को ही है। मेरी यह सबल धारणा है कि मेरे जैसे अनेक व्यक्तियों को 'भंडार' ने अपनी साहित्य-सुधा पिलाकर पुष्ट किया है। बिहार की यह एकमात्र साहित्य-संस्था चिरजीव हो।

[१४९]

श्रीबलरामकिशोर, हेडमास्टर, न्यू एम. ई. स्कूल, गया—

'पुस्तक भंडार'-द्वारा प्रकाशित सभी पुस्तकें बुद्धि को तीव्रता प्रदान करनेवाली, चरित्र को सुन्दर साँचे में ढालनेवाली तथा देश की प्रगति के अनुकूल हैं। शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने के लिये 'भंडार' ने अथक प्रयत्न किया है। इसकी उन्नति में हमारी भी उन्नति है।

[१५०]

श्रीरामकृष्णप्रसाद सिंह 'विशारद', हेडपंडित, मि० ई० स्कूल, सिरसा, सारन—

मैं एक शिक्षक के नाते कहूँगा कि 'भंडार' की कोर्स के सभी विषयों की पुस्तकें बिहार-प्रान्त में सर्वोत्तम साबित हुई हैं। पुस्तक-भंडार ने बिहार-प्रान्त में हिन्दी की अद्वितीय सेवा की है। पुस्तक-भंडार ने बिहार-प्रान्त की कमी को पूरा किया है।

[१५१]

श्रीजगन्नाथ शर्मा, हेडमास्टर, मि० ई० स्कूल, कुरथा, गया—

भूकम्प आदि तरह-तरह के प्रबल तथा प्राकृतिक प्रकोपों का सामना करते हुए भी पुस्तक-भंडार ने जो साहित्य की सेवा की है, वह स्तुत्य है—श्लाघ्य है—स्मरणीय है। इसके प्रबन्धकों का व्यवहार शिक्षक समाज के प्रति सदा उचित, उदार और प्रशंसनीय रहा है। 'भंडार' बिहार का गौरव है—हमारी उज्ज्वल कीर्ति है। ईश्वर इसे सदा उन्नति प्रदान करें।

[१५२]

श्रीहरसहायलाल, हेडपंडित, मि० व० स्कूल, होसिर, हजारीबाग—

पुस्तक-भंडार इस सूबे के अपने विभाग का एक अद्वितीय महारथी है। इसने अत्यल्प समय में अपने अश्रान्त उद्योग से बहुत-से नूतन नूतन ग्रंथ निकाले हैं। इसका दृष्टिकोण नागरी के अतिरिक्त इंगलिश, बँगला, उर्दू, आदि विभिन्न भाषाओं की सेवा भी है। इसी से 'भंडार' सर्वप्रिय हो रहा है। हार्दिक धन्यवाद।

[१५३]

श्रीबालकृष्ण झा, द्वि० शिक्षक, अ० प्रा० स्कूल, गौरा, मुंगेर—

हमारे प्रान्त के शिक्षकों में जागरण का जो भाव लहराने लगा है उसका श्रेय पुस्तक भंडार को है। इसके ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के समान विद्वान्, उदार और भावुक संचालक श्रीरामलोचनशरणजी ने बड़ी तत्परता से समय-समय पर नई-नई पुस्तकें बनाकर, प्रचारार्थ मुफ्त वितरण कर, 'बालक' ऐसे पत्र निकालकर, और गुप्त दान देकर शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को जो उचित पथ प्रदर्शन कराया है, उसके लिये हम मुक्तकंठ से आपकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। आज 'शिक्षक-संघ' का जो सूत्रपात हुआ है—हमने आपस में प्रेम करना सीखा है—वह आपके उद्योग का ही फल है। मैं आपके दीर्घजीवन और पूर्ण सफलता की कामना परमात्मा से करते हुए आपके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

[१५४]

श्रीवशिष्ठनारायण, प्रधानाध्यापक, मि. ई. स्कूल, रामपुर, मुंगेर—

बिहार का 'पुस्तक-भंडार' अपनी साहित्य-सेवा के लिये हिन्दी संसार में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुका है। 'बालक' अपना सानी नहीं रखता। प्रत्येक बिहारी को 'भंडार' की सफलता पर गर्व है।

साहित्य-सेवियों के कृपापत्रों से संकलित कुछ महत्त्वपूर्ण-अंश

[१] स्वर्गीय प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र 'विप्रचन्द्र'—

आपने जो मेरे अनेक उपकार किये हैं, उनकी बातें याद कर मैं रोने लगा। सचमुच मैं जब आपके अकृत्रिम उदारता को स्मरण करता हूँ, तब मैं सिर झुका देता हूँ। यदि आप कहीं के राजा होते तो देश का बड़ा उपकार होता। जो हो, आपकी सम्पत्ति परोपकार ही के लिये है, यह मुझे दृढ़ विश्वास हो गया। इसीलिये आपकी कीर्त्ति दिन दूनी रात-चौगुनी भारत में फैलती जा रही है। अनेक लक्ष्मीपात्र हैं सही, पर आप-सा उदार तथा दयालु बहुत कम हैं।

❀ ❀ (३०-५-३८)

आपकी उदारता मेरे हृदय में जन्मातर में भी रहेगी।

❀ ❀ (२२-११-३९)

आपकी सम्पादन-शैली मुझे बहुत पसद है। सम्पादन कला आपकी बहुत ही ऊँची हो गई है। (३०-१२-३९)

[२] स्वामी भवानीदयाल संन्यासी, नेटाल, दक्षिण अफ्रिका—

यह जानकर मेरे हर्ष की सीमा नहीं रही कि शीघ्र ही आपकी स्वर्ण-जयन्ती मनाई जायगी। मुझे बड़ी प्रसन्नता होती यदि मैं स्वय वहाँ उपस्थित होकर आपका अभिनन्दन कर सकता। प्रथम मिलन में ही आपने मेरे हृदय में उच्च आसन ग्रहण कर लिया है। मैं तो अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि आपने साहित्य की जो सेवा की है, वह हिन्दी के इतिहास की अमर सम्पत्ति है। आप बिहार के गौरव हैं और राष्ट्रभाषा के अभिमान। हमारी

पीढ़ी-दर-पीढ़ी आपकी सेवा के सामने श्रद्धा से शीश झुकाया करेंगी। भगवान् आपको दीर्घायु करें ताकि आपके द्वारा राष्ट्रभाषा के 'भंडार' में साहित्य-रत्नों की अहर्निश अभिवृद्धि होती रहे। (१०-२-४०)

[३] श्रीरामदास राय, अशोकाश्रम (गाजीपुर)—

आपसे मेरी पुस्तकों के लिये जो सहायता मिलती आई है, उसके लिये मैं आपको हृदय से साधुवाद देता हूँ। (१४-९-४१)

[४] डाक्टर रविप्रताप सिंह श्रीनेत, नदीम-हाउस, भोपाल—

हिन्दी के बाल साहित्य की जो ठोस सेवाएँ 'मास्टर साहब' ने आजतक की हैं, वे हिन्दी के इतिहास में अमर रहेंगी। मास्टर साहब हिन्दी के 'आर्थर म्यू' हैं। उनका पुस्तक भंडार 'चिल्डरेन्स न्यूज बुक हाउस' है। उनका 'बालक' प्रसिद्ध 'चिल्डरेन्स न्यूज' है। कितने ही वर्षों से उनसे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। 'बालक' का भविष्य उज्ज्वल है। उसके सामने सेवा की बड़ी मंजिल है। मैं यही चाहता हूँ कि 'बालक' के अभिभावक मास्टर साहब और पुस्तक भंडार सैकड़ों साल हिन्दी की सेवा करते रहें। इस सेवा की अभी बहुत जरूरत है। (५मई, १९४०)

[५] प्रोफेसर दयाशंकर दूबे, एम., ए , एल एल. बी., दारागंज, प्रयाग—

'पुस्तक भंडार' ने सचमुच बिहार में प्रशंसनीय कार्य किया है और ठोस साहित्य-सेवा की है। इस शुभ अवसर पर मैं उसके मालिक और कार्यकर्त्ताओं को बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहेगी। (१० २-४०)

[६] प्रोफेसर मनोरंजनप्रसाद सिंह, एम. ए , हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी—

जब जब मुझपर संकट पड़े हैं, मैंने बराबर गुरुवर को याद की है, और अभी तक मुझे किसी प्रकार निराश नहीं होना पड़ा है।

[७] श्रीमोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी', गया—

मैं तो पूर्णरूप से 'भंडार' के हाथों बिका हुआ हूँ। (७-३-४१)

❀ ❀

मेरी यह इच्छा है कि 'भंडार' से मेरा सम्बन्ध सदा मधुरतर बना रहे।

मास्टर साहब ने मेरे साथ जिस उदारता का व्यवहार रक्खा था, उसे मैं भूला नहीं हूँ। मैं उनका चिरकृतज्ञ और चिरऋणी रहूँगा। (गुरुवार)

[८] श्रीजगदीश झा 'विमल', साहित्य-सदन, जमालपुर, (मुंगेर)—

आपने मेरे साथ जो उपकार किया है वह मैं जीवन भर नहीं भूल सकता। कई तरह से मैं आपका ऋणी हूँ। शायद ही इस जीवन में उऋण हो सकूँगा। आप हिन्दी लेखकों के सच्चे सहायक और यशस्वी विद्वान् हैं।
(२२-२-१९३७)

[९] सुप्रसिद्ध कथाकार पंडित भगवतीप्रसाद वाजपेयी, दारागंज, प्रयाग—

आप उन प्रकाशकों में नहीं हैं, जिन्हें रुपये के लिये ईमान तक बेच देने में कोई आपत्ति या सकोच नहीं होता। आप न केवल बिहार-प्रान्त के प्रकाशन क्षेत्र के गौरव हैं, वरन् हिन्दी के अखिलभारतीय प्रकाशन-क्षेत्र में अपना एक विशिष्ट समादरणीय आसन भी आपने प्राप्त कर लिया है। मैं आपको आज से नहीं, लगभग पन्द्रह वर्षों से जानता हूँ। मुझे पता है कि आप प्रतिभा का सम्मान करना जानते हैं। मुझे आपपर पूरा विश्वास है। मैं कभी यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि आपके द्वारा किसी श्रमजीवी लेखक के साथ कभी किसी प्रकार का अन्याय हो सकता है। (३०-११-३९, रात ११॥ बजे)

आपने जिस सदाशयता का परिचय दिया है, न केवल मेरे लिये, वरन् हिन्दी-साहित्य की आधुनिक प्रगति के लिये भी, वह एक महत्त्व की बात है। पूर्ण आशा है, आगे भी आप सदा साहित्य निर्माताओं के सहायक होंगे। आपकी यह उदारता साहित्य-निर्माण के इतिहास में सदा के लिये अमर हो जायगी। (२७-१२-३९)

[१०] श्रीरामनाथलाल 'सुमन', त्यागभूमि-कार्यालय, अजमेर—

साहित्यिकों में आपसे अधिक सहृदय मैंने दूसरा नहीं पाया।

निश्चय ही मास्टर साहब की सात्त्विकता के प्रति आरम्भ से ही मेरा आदर-भाव रहा है। उनकी सादगी, उनकी लगन, उनकी स्पष्टता, उनकी निरभिमानिता का मैं सदा कायल रहा हूँ।

[हिन्दुस्तान-टाइम्स, दिल्ली] (१८-९-३४)

[११] श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी—

मेरे प्रति आपने जो स्नेह दिखलाया है, उसका बदला कलम की स्याही से (किताबें लिखकर) नहीं चुकाया जा सकता। उसके लिये इससे भी कुछ पवित्र चीज चाहिये। मैं परीक्षा के अवसर पर अपने को सच्चा सिद्ध कर सकूँ और अवसर पर अपना हृदय रक्त देकर भी अपनी कृतज्ञता अर्पित कर सकूँ, यही इच्छा है।

[१२] श्रीशिवनाथ सिंह शांडिल्य, रईस, माछरा (मेरठ)

जिस सुन्दर रूप से अपने 'शिकारी-कहानियों' का प्रकाशन किया है—मेरा दिल नहीं चाहता कि मैं अपनी पुस्तक को किसी दूसरी जगह से छपाने का प्रयत्न करूँ। (२५-१२-३९)

[१३] श्रीनलिनविलोचन शर्मा, एम ए., पटना—

यह पत्र ही 'मास्टर साहब' के प्रति मेरी मूर्त्तिमती श्रद्धाञ्जलि है। उनकी मुझपर शुरू से ही कृपा रही है—केवल इसलिये नहीं, किन्तु एक सामान्य हिन्दी-प्रेमी की हैसियत से भी मैं अपनी शुभाकांक्षाएँ भेज रहा हूँ। 'बालक' को तो मैं मास्टर साहब की ईश्वर एवं परिपक्व बुद्धि द्वारा बालकों के लिये ईजाद की हुई एक मौलिक मनोवैज्ञानिक शिक्षण पद्धति स्वीकार करता हूँ।

[१४] प्रोफेसर कृपानाथमिश्र, एम ए., पटना कालेज—

आपने मेरा जो उपकार किया, वह नहीं भूला हूँ—वह नहीं भूलने का। मैं आपका और 'पुस्तक भंडार' का आजन्म ऋणी रहूँगा। आपने मेरी जो सहायता की, वह अकथनीय है। आपने मुझे बिलकुल अपना लिया।

(१४-१-३६)

[१५] श्री रामधारीप्रसाद 'विशारद', भूतपूर्व मंत्री, बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य सम्मेलन—

प्रादेशिक सम्मेलन सदा से आपके ही ऐसे सहृदय हिन्दी प्रेमियों की सहायता से चलता आ रहा है। (२४ अगस्त, १९२९)

[१६] पंडित छविनाथ पांडेय, वर्त्तमान प्रधान मंत्री, विहार-प्रादेशिक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, पटना—

हिन्दी और बिहार के गौरव 'पुस्तक-भंडार' के स्वत्वाधिकारी बाबू रामलोचनशरण की उदारता से सम्मेलन-भवन बनाने के लिये पटने में एक जमीन ले ली गई है।

—'साहित्य' (त्रैमासिक), वर्ष १, खंड १, आश्विन १९९२ वि०

[१७] प्रो विश्वनाथप्रसाद, एम ए., साहित्यरत्न, साहित्याचार्य—

आपके यहाँ से अपनी पुस्तक का प्रकाशित होना, सचमुच मैं अपने लिये गौरव की बात समझता हूँ। मैं तो बस इसी को अपने परिश्रम का समुचित पुरस्कार समझता हूँ। (२१–७–३३)

[१८] प्रोफेसर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, एम ए., पटना-कालेज—

बिहार का हिन्दी साहित्य और 'मास्टर साहब' दोनों में अन्योन्याश्रय संबंध है। न जाने कितने तरुण और वयस्क कवि और साहित्यिक अपनी रचनाओं को लेकर 'मास्टर साहब' के यहाँ गये और चुपके से पाकिट भरकर लौट आये। व्यवसाय निपुणता और सदयहृदयता की गंगा-जमुनी ने 'मास्टर साहब' के व्यक्तित्व-क्षेत्र को सिक्त कर रक्खा है। (९–६–४०)

[१९] श्रीप्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त', पटना सिटी—

पिताजी के शुभचिन्तक और हितू तो कितने हैं, लेकिन सारे भारत में दो ही व्यक्ति मिले, जिन्होंने मेरे साथ सच्ची हमदर्दी दिखलाई। एक तो पूज्य राजेन्द्र बाबू, दूसरे आप। पहले से मुझसे परिचित न होकर भी मेरे लिये आपने जो कुछ किया और वैसा व्यवहार रक्खा, उसकी मधुर स्मृति मैं कभी नहीं भूलूँगा। सब के मुँह यही बात सुनी है कि आपके द्वारा साहित्यिकों की सहायता होती रही है। आशा की इसी रेखा के सहारे मैं आपका परामर्श चाहता हूँ। (९–१–२९)

आपके प्रति मन में जैसे भाव उठ रहे हैं, उन्हें लिख नहीं सकता, लिखूँगा भी नहीं। आपके बारे में सुना बहुत कुछ था, किन्तु संसार के कटु-तीक्ष्ण व्यवहारों से पीड़ित मैं आपके व्यवहार से अवाक् हूँ। सोचता हूँ, देवत्व

ते कहते हैं ? आपको 'मैं' साहित्यिक कहूँगा, तब आप साहित्यिक होंगे ! आप अगर साहित्यिक नहीं तो साहित्य और साहित्यिकों के निर्माता हैं। आप कुछ भी हों, आपका गौरव अक्षुण्ण है। (२३-९-३६)

[२०] श्रीतारिणीप्रसाद सिंह, एम० ए०, भरगपुर, मुंगेर—

आपके आदर्श जीवन की सादगी और उच्च विचार के स्मरण-मात्र से मुझे काफी स्फूर्ति और प्रेरणा होती है। आपका वह वाक्य—'हमलोग तो एक ही परिवार के हैं'—नहीं भूलेगा, वह बल और आशा का संचार करता रहेगा। मैं आपको निरा प्रकाशक नहीं समझता, बल्कि बिहार का साहित्य निर्माता समझकर श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ। बिहार को आपपर गर्व है।

[२१] श्रीराधाकृष्ण (राँची निवासी सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक), कलकत्ता—

मास्टर साहब बिहार की उन विभूतियों में से हैं जिन्हें बिहार एक जमाने तक अवश्य याद करेगा। (२९-१-४१)

[२२] श्री व्यथितहृदय, श्रमिकनिवास, कटरा, इलाहाबाद—

आपसे अधिक परिचित न होने पर भी मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूँ। इसका एकमात्र कारण यही है कि आप प्रकाशक होने के साथ ही-साथ साहित्यिक भी हैं, और साथ-साथ साहित्यिकों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं। (२३-११-३९)

[२३] कविवर श्री 'केसरी', अध्यापक, हाईस्कूल, पूसा (दरभंगा)—

'भंडार' बिहारी लेखकों का एकमात्र आधार है, सरस्वती के पुजारी-परिवार का कंठहार। मेरे प्रथम पत्र के उत्तर में आपके अनुकम्पामय पत्र ने मुझे यथेष्ट उत्साह दिया। (२५-७-४१)

[२४] श्रीभुवनेश्वर सिंह 'भुवन', 'वैशाली-सम्पादक', मुजफ्फरपुर—

आपकी साहित्य-सेवा का मूल्य आँका जा सकता होगा ? 'जयन्ती' और 'स्मारक ग्रंथ' इस प्रान्त के लिये गौरव का काम है। भगवान् इस कार्य को सफल करें। 'भंडार' सदा साहित्यिकों की सेवा में रहा है, इसी नाते भी इसपर कुछ हक है।

[२५] श्रीचन्द्रशेखर शास्त्री, काव्यसाहित्य-तीर्थ, प्राच्यविद्या-वारिधि, आयुर्वेदाचार्य, दिल्ली—

आपकी जैसी कीर्त्ति सुनी थी, आपका व्यावसायिक कार्य उसी ढंग का है।
(२६–२–४१)

[२६] श्रीगिरिधारीलाल शर्मा 'गर्ग' बी० ए० (ऑनर्स), पटना-सिटी—

मतभेद चाहे कितना ही हो, लेकिन इतना तो हमें मानना ही पड़ेगा कि 'शरणजी' का बिहार के आधुनिक इतिहास में अपना खास स्थान है।

[२७] श्रीजानकीवल्लभ शास्त्री, साहित्याचार्य, वेदान्ताचार्य, साहित्यरत्न, मुजफ्फरपुर—

आप-जैसा उदार, सहृदय व्यक्ति मुझ-जैसे बालकों पर हमेशा क्षमाशील रहेगा ही। आपने ठीक समय पर बिहार के साहित्य और साहित्यिकों की मर्यादा का ख्याल किया है। आप केवल साहित्य के ही नहीं रहे, एक कदम और आगे बढ़कर साहित्यिकों के सम्मानवर्द्धक भी हुए। बिहार के साहित्यिकों की आत्मा आपकी कृतज्ञता स्वीकार करते लज्जित न होगी। (२०–२–३९)

[२८] श्रीसूर्यशेखरप्रसाद सिंह, जमीन्दार, थतिया, रोसड़ा (दरभंगा)—

आप आश्चर्यित न होंगे—मैं आपसे अपरिचित हूँ, किन्तु अपनी विख्यात हिन्दी-साहित्य-सेवा के कारण आप हमसे ही क्यों—शायद किसी भी विद्वान् और श्रीमान् से अपरिचित न होंगे और किसी भी बिहारी को 'पुस्तक भंडार' और आपपर उतना ही नाज हो सकता है जितना किसी को अपने सच्चे और सफल पथप्रदर्शक पर। सचमुच आपने बिहार में हिन्दी की डूबती हुई नौका पार लगाई है—बिहार के लेखकों और कवियों को प्रोत्साहन देकर, उच्च कोटि की पुस्तकें प्रकाशित कर तथा और कितने ही प्रकार से हिन्दी के लिये सम्पत्ति और समय लगाकर।

[२९] श्रीसेवाधर झा 'मधुप', साहित्यरत्न, कमलपुर (भागलपुर)—

आप अथक परिश्रम से 'भंडार' को उन्नत करते हुए प्रत्येक प्रकार की सेवा से बिहार की गौरव-वृद्धि कर रहे हैं। यों तो मैं आपके नाम से पूर्व ही से

परिचित था, तथापि मेरे अग्रज प० शक्तिनाथ झाजी ने आपके नाम तथा सेवा से पूर्ण परिचित कर दिया। (१९-३-३८)

[३०] डाक्टर रामप्रकाश शर्मा, पथुआ, दिघरा (दरभंगा)—

आपके द्वारा हिन्दी-संसार में बिहार का मस्तक बहुत अंशों में ऊँचा हुआ है।

[३१] श्रीकुलदीपनारायण, मदन-निवास, आसनसोल (बंगाल)—

नाना प्रकार की स्कूली पुस्तकें एवं विविध विषय विभूषित साहित्यिक ग्रन्थों के सफल प्रकाशन द्वारा श्रीमान् के 'पुस्तक भंडार' ने जो ख्याति प्राप्त करके केवल बिहार प्रान्त ही नहीं, वरन् समस्त भारत का मुख उज्ज्वल किया है, उसकी प्रशंसा कैसे और किन शब्दों में की जाय, समझ में नहीं आता। उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, निस्सन्देह कम है, और सूर्य को दीपक दिखलाने के बराबर है। आप बिहार के शिरोमणि हैं।

[३२] श्रीदीपनारायण सिंह—

आप का अदम्य उत्साह तथा आपकी दयालुता बिहार के कोने-कोने में ख्यात है।

[३३] श्रीभगवत ठाकुर, किसान-पुस्तकालय, जन्दाहा—
(मुजफ्फरपुर)—

यहाँ की जनता, और खास कर हम नौजवान, आपसे साहित्य की चर्चा सुनना चाहते हैं, क्योंकि आपने इस प्रान्त को साहित्यिक अंधकार से निकाला है। (१-५-३९)

[३४] श्रीयुगलराम प्रेम 'विशारद', मधेपुरा (भागलपुर)—

एक बिहारी के नाते आपपर मुझे गर्व जरूर है। आपकी भावुकता और साहित्य-सेवा स्तुत्य है। प्रोत्साहन स्पृहणीय है। (२२-१-४०)

[३५] श्रीभगवतीलाल 'पुष्प', 'विशारद'—

आपके हिन्दी प्रचार-कार्य का आभारी सारी भारतीय जनता है। आपका यह कार्य वास्तव में सराहनीय है।

[३६] श्रीयोगेन्द्र, बी. ए., (ऑनर्स), जैक्सन होस्टल, पटना—

बिहार के साक्षरता आन्दोलन के सम्बन्ध में आपकी बहुमूल्य सेवाओं के लिये जो सरकार ने आपको स्वर्ण-पदक दिया है, उसके लिये बधाई। यदि सरकार आपको स्वर्ण-पदक नहीं देती, तब भी आपका नाम इसके लिये इतिहास में अमर ही रहता—वह भविष्य में कभी मिटने का नहीं। सेवा स्वयं ही अपना पुरस्कार है। (२१ जुलाई, १९३९)

[३७] श्रीजगन्नाथ सिंह, सहायक 'देश'-सम्पादक, मुजफ्फरपुर—

मैं बराबर इस चिन्ता में लगा रहा कि अपने प्रान्त की एकमात्र साहित्य सेवी संस्था 'पुस्तक भंडार' से अपना संबंध जोड़ सकूँ। आपने जो हमारे प्रान्त की साहित्य सेवा की है, उसके लिये हम बिहार प्रान्त-वासी सदा आपके ऋणी रहेंगे। (२७–५–४०)

[३८] श्रीरामरेखा सिंह, आथर (मुजफ्फरपुर)—

आप केवल हिन्दी-लेखक और एक तिजारती व्यक्ति नहीं, वरन् गंभीर साहित्य सेवी, उदार और अनाड़ी-अज्ञानी आदमियों के हाथ में कलम पकड़ाकर उन्हें ऊँचा उठानेवाले सत्पुरुष हैं। (२१–४–३८)

[३९] प्रोफेसर हरिमोहन झा, एम. ए , बी. एन. कालेज, पटना—

यदि मैं अपने जीवन का सिंहावलोकन करता हूँ तो आपके उपकारों का स्मरण कर मैं कृतज्ञता के भार से दब जाता हूँ। आपकी कृपाओं का उल्लेख कर मैं उनका मूल्य कम नहीं आँकना चाहता। आपका असामयिक स्नेह कभी भूलने की चीज नहीं। आप अब तक मेरे पथ प्रदर्शक रहे हैं और भविष्य में भी मैं आपके निर्धारित मार्ग पर यथाशक्ति चलने की चेष्टा करूँगा। आपके आदेशानुसार पुस्तकें लिखी जा रही हैं। किन्तु पुस्तकें लिखकर ही मैं आपके ऋण से मुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि आपसे मैंने जो कुछ पाया है, उसका मूल्य रुपयों से नहीं आँका जा सकता। (१ मई, १९३२)

[४०] प्रोफेसर शिवपूजन सहाय, राजेन्द्र-कालेज, छपरा—

'भंडार' ने जो मेरे साथ सद्व्यवहार किया, उसका बदला मैं किसी तरह न चुका सका। मेरे हृदय की सम्पत्तियों में 'भंडार' की उदारता ही मूल्यवान् है। ये दोनों यावज्जीवन स्थायी रहेंगी, इसमें किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं।

(१९–१०–३९)

'भडार'-भास्कर की संजीवनी किरणें रोम रोम को अनुप्राणित कर रही हैं। किसी दिन यह इतिहास का विषय होगा कि एक तुच्छ साहित्य सेवी पर 'भडार' ने कृपादृष्टि की महावृष्टि की थी। (६–११–३९)

आपकी सहानुभूति ही मेरे लिये सब कुछ है। बिहार का कौन हिन्दी-प्रेमी अथवा साहित्य सेवी है जो आपके विशाल हृदय की विभूति पाकर कृतकृत्य न हुआ हो। फिर मेरी क्या कथा, मेरा तो रोम-रोम आपका ऋणी है। मैं आपसे कभी उद्धार नहीं पा सकता। इस जीवन में इतनी क्षमता कहाँ पा सकूँगा कि आपसे उऋण होऊँ। इतिहास में आपके सौजन्य और औदार्य की विशद चर्चा कितनी ही कृतज्ञ लेखनियों द्वारा लिखी जायगी। (१७–१२–४०)

[४१] पं० छेदीलाल झा, बाढ (पटना)—

आप केवल अनेक रत्न-राशि के आकर ही नहीं हैं, स्वयं रत्न-निर्माता भी हैं। आपकी सद्‌वृत्ति कितने ही साहित्यकों के लिये आधार है।

(१७–१२–४०)

[४२] प्रो० अक्षयवट मिश्र 'विप्रचन्द'-लिखित 'आत्मचरित-चम्पू' से—

मैंने १९२७ ई० में लालबाग वाला अपना मकान बनवाया। उसमें बहुत खर्च पड़ गया। मैंने एक पत्र आपके पास भेजा जिसमें अपना अर्थसंकट बताया। पत्र पाते ही आप स्वयं आ पहुँचे। मेरा उद्धार कर दिया। मैं आश्चर्य में पड़ गया। मैंने लज्जित होकर आपसे हैंडनोट आदि लिखवा लेने की प्रार्थना की। आपने कहा—"आपका काम पुस्तक लिखने का है, हैंडनोट लिखने का नहीं।" जब-जब आपको मेरे अर्थसंकट की सूचना मिली, तब-तब आपने बिना कहे ही सहायता की। अब तो ऐसी घनिष्ठता हो गई है कि अब मित्र के बदले आपको अपना सहोदर लघुभ्राता समझता हूँ। (पृ० ११२–११३)

[४३] श्रीहरिऔधजी-लिखित 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' से—

बाबू रामलोचनशरण ने बालसाहित्य पर सुन्दर रचनाएँ की हैं जो इस योग्य हैं कि आदर की दृष्टि से देखी जायँ। (पृ० ७२३)

लहेरियासराय का विद्यापति प्रेस इस समय अधिक समुन्नत है और यह उसके अभिभावक बाबू रामलोचनशरण के प्रशंसनीय उद्योग और शील-सौजन्य का परिणाम है। (पृ० ७२८)

[४४] पं० नन्दकिशोर तिवारी (भूतपूर्व पब्लीसीटी ऑफिसर, बिहार गवर्नमेंट)-लिखित 'पञ्चामृत की भूमिका' से—

पुस्तक-भंडार के मालिक बाबू रामलोचनशरण केवल प्रकाशक ही नहीं हैं, वे प्रान्त के एक यशस्वी साहित्यिक भी हैं और प्रकाशन के अतिरिक्त पत्रकार के रूप में उन्होंने पन्द्रह वर्षों से हिन्दी-साहित्य की सेवा की है। जहाँ तक प्रकाशक का सम्बन्ध है, मेरी समझ में वे बिहार-प्रान्त के सर्वश्रेष्ठ प्रकाशक हैं और प्रकाशक के रूप में सर्वश्रेष्ठ साहित्य-सेवी हैं। सैकड़ों हिन्दी-पुस्तकों का प्रकाशन कर उन्होंने हिन्दी साहित्य की जो सेवा की है, वह सहज ही भूली नहीं जा सकती।

[४५] श्रीसूर्यनारायणसिंह, एम ए., बी एल-लिखित 'वैष्णवरत्न श्रीरामलोचनशरणजी की जीवनी' से—

शरणजी बिहार की आधुनिक हिन्दी-गद्यशैली के सर्वप्रथम प्रवर्त्तक हैं। बिहार का बच्चा-बच्चा इनका ऋणी है और रहेगा। इस दृष्टि से शरणजी को यदि हम 'बिहार का द्विवेदी' कहें, तो कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। (पृ० १६)

यदि इनमें आत्मविज्ञापन की थोड़ी-सी मात्रा भी रहती तो लोगों ने इनको अबतक अ० भा० सा० सम्मेलन का सभापति चुनने में अपना अहोभाग्य समझा होता, और सरकार ने इनकी योग्यता पर रीझकर इन्हें सर्वोच्च कक्षाओं का हिन्दी-परीक्षक बनाने में यूनिवर्सिटी की महत्ता समझी होती। (पृ० १९)

ये सामाजिक सुधार के पक्षपाती हैं। ये आगे बढ़ने की सलाह देते हैं, परन्तु सरपट दौड़कर नहीं, धीरे-धीरे चलकर। (पृ० २५)

[४६] बृहद् उड़िया भाषा कोष के रचयिता रायबहादुर गोपालचन्द्र प्रहराज, कटक—

जब मैंने बृहद् 'उड़ियाभाषा कोष' का आरम्भ किया तब मुझे इस बात की चिन्ता हुई कि इसका हिन्दी-अंश कैसे शुद्धतापूर्वक सम्पादित हो सकेगा। सयोग-वश,फोकस-वैश्य-विद्यालय का शिलान्यास करने के लिये श्रीरामलोचन-शरणजी आमन्त्रित होकर यहाँ आये। उसी सिलसिले में मेरे आग्रह से उन्होंने उसके हिन्दी-अंश को प्रस्तुत करने में हाथ बँटाया और उन्हींके आदेश से प० रामेश्वर झा, प० सुरेश झा और प० वृजनारायण ठाकुर, जो शरणजी के ही द्वारा इस विद्यालय मे अध्यापक बनाकर भेजे गये थे, इस काम में मेरी सहायता पहुँचाते रहे। आज मुझे इस विश्वकोष के हिन्दी-अंश से जो सन्तोष है वह शरणजी की ही कृपापूर्ण सहायता का फल है।

[४७] बिहार-प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सत्रहवें अधिवेशन (पटना) के सभापति के भाषण से—

जहाँ प० नन्दकिशोर तिवारी, श्रीरामलोचनशरण 'बिहारी', श्रीदेवव्रत शास्त्री, श्रीबेनीपुरी, प० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, प० श्रीकान्त ठाकुर विद्यालंकार, प० रामदहिन मिश्र काव्यतीर्थ, प० मथुराप्रसाद दीक्षित, श्रीअच्युतानन्द दत्त, पं० श्री दिनेशदत्त झा, श्रीव्रजशंकर, साहित्याचार्य 'मग', साहित्याचार्य 'सुमन', श्री सुरेश विद्यालंकार, श्रीयुगलकिशोर शास्त्री, श्रीत्रिवेणीप्रसाद श्रीवास्तव, श्री 'मुक्त' और 'श्री भुवन' के समान अनुभवी पत्रकार तथा सफलीभूत सम्पादक हैं वहाँ की साहित्यिक प्रगति में कभी रोड़े नहीं अटक सकते। (पृ० १९)

हमारे प्रकाशकों में सबसे अधिक जाज्वल्यमान नाम पुस्तक-भंडार के अध्यक्ष श्रीरामलोचनशरणजी का है जिन्होंने अब तक अनेक उत्तमोत्तम सुसम्पादित साहित्यिक पुस्तकें, आकर्षक एवं सुरुचिपूर्ण सजावट के साथ, प्रकाशित की हैं। (पृ० २१)

बिहार का भारतप्रसिद्ध 'बालक' चौदह वर्षों से हिन्दी में उत्कृष्ट बाल-साहित्य की सृष्टि कर रहा है, पर आजतक वह स्वावलम्बी न हो सका। उसके साहसी सम्पादक की साधन-सम्पन्नता भले ही उसे मोटर पर सवार कर दौड़ाती फिरे, वह अपने पैरों के बल खड़ा होने योग्य आज भी है। (पृ.२४)

PATNA UNIVERSITY

Patna the 4th May, 1940.

Babu Ramlochan Saran, founder and proprietor of the Pustak Bhandar, is a very enterprizing publisher of sound and healthy literature in the literary languages of Bihar, and his work, as such, deserves commendation and appreciation Starting with a small beginning in 1915, (when he wrote in Hindi an outline of Hindi Grammar, for which he received a reward from the Government of the United Provinces) till now when his enterprise is one of the most flourishing publishing concerns in this province, he has sedulously applied himself to the compilation and preparation of works conducive to the intellectual progress of the people of Bihar, ranging in scope from juvenile to adult literature His publications, which are very neatly got up, merit encouragement from all interested in the progress of wholesome literature in Hindi and Urdoo I have had occasion to examine several of his publications and periodicals, and I can, therefore, testify to their worth and excellence from personal experience He may justly claim to be regarded as a public benefactor

Sachchidananda Sinha

Vice-Chancellor Patna University,
and
ex-Finance Member, Government of Bihar & Orissa

[४९]

Rai Bahadur Gopal Chandra Prahraj, Sahitya Visharad, Kaiser i Hind, Cuttack—

Certainly I want your photo for the last (7th) volume as a sincere friend I have been able to acquire during my wanderings in this world of ingratitude for the last 40 years. You cannot appreciate your own worth It is I who feel what you are worth May God bless you (19 7 37)

[५०]

N Prasad, P A to Commissioner, Ranchi—

The Pustak Bhandar is doing immense service to the cause of education and the spread of Hindi by publishing useful books in various subjects which meets the need of educational institutions as well as of the public (14 5 40)

[५१]

Mathura Prasad Chaube, B A, (Rai Bahadur) Retired Superintendent of Excise—

What I have seen and known about the Pustak Bhandar and its founder Babu Ramlochan Saran has served only to impress me with the very admirable progress—so well regulated and rapid of the institute from year to year and with the marvellous capacity of its founder to which alone it owes its development in such a short time He possesses unmistakable qualities of head and heart such as foresight, enterprise, amiability, readiness to serve, and his zeal to prosecute literary and religious culture and enlightenment all around along with his high ideals and spirit of self sacrifice, all these and more account for such tremendous progress of the institute he founded in the year 1915 The institute enjoys now very wide reputation and confidence of the public whom it has been serving so honestly and efficiently It is the only one of its kind in this part of the country

[५२]

M P Sinha, S. D O, Banka (Bhagalpur)—

The Pustak Bhandar has rendered valuable services to the public for the last 25 years The Banka Sub-Division is specially obliged for the help receiving in propagation of Mass Literacy work The Bhandar has been publishing suitable books of Hindi and Urdu literature which has immensely helped the spread of education in the province

[५३]

Elahidad Khan, B L Pleader, P O Purulia (Nadiha) Dt Manbhum—

The Pustak-Bhandar is doing good works by publishing books in Hindi, Urdu, Bengali and English for Primary, Middle and High schools The owner of the firm takes much interest in Education I wish success of the firm

[५४]

Kali Prasad, Assistant Accountant, Indian Nation, Patna—

While I was a student at the North Brook school, Darbhanga, Babu Ramlochan Saran Bihari was one of our revered teachers He was incharge of Hindi He evinced his keen interest in writing books in original, compiling them and publishing them for the benefit of the public in general and students in particular Recently he has made a free gift of Charts and Primers for the beginners His is a life of plain living and high thinking

[५५]

Head Master, Secondry Training School, Ranchi—

The Pustak Bhandar is doing valuable service to the country by publishing the useful magazine 'The Balak' which is widely read by boys I wish Pustak Bhandar long years of splendid service to the Hindi world

[५६]

Head Mistress, R C. Mission Girl's School, Ursulin Convent, Ranchi—

Books which come from the 'Pustak Bhandar' are always just the style needed as text books library, books and hand books

[५७]

G K Horlock Jones, The Principal St Pauls School, Ranchi—

"The Pustak Bhandar is well managed and is backed by a panel of erudite scholars, its productions are well known for both matter and form The publications are daily gaining popularity It has succeeded in achieving the end with which it started two decades ago

[५८]

N Roy, Head Superviser Lutheran School, Ranchi—

We are greatly indebted to the Pustak Bhandar on account of the valuable books it has published The 'Balak' has been doing great good not only to the teachers but also to the taught

[५९]

Rev Otto Wolff D. D Principal & A. L. Tirkey B A, B Ed Head Master, Gossner High School, Ranchi—

The Pustak Bhandar has served the educational and literary needs of this province The school text books that it has published are always of a high order Babu Ramlochan Saran is a name of magical attraction. The Pustak Bhandar is the foremost publishing house in our province. The article and the pictures of the 'Balak' are highly interesting and instructive, not only to boys and girls, but also to grown up men and women The whole province is indebted to the Bhandar for the service it has done to the educational world

[६०]

Head Master, B N Ry Indian H E School Adra (Manbhum)—

The Pustak Bhandar has really been a store house of knowlegde It has served the Hindi reading public of Bihar and the adjoining provinces in such a manner and with so much zeal and devotion that it deserves the appreciation of the public as well as of Government The Hindi language requires men of the type of Babu Ramlochan Saran, whose courage and selflessness are exemplary

[६१]

Head Master, Zila School, Purulia—

Mr Ramlochan Saran is a self made man He has shown to the world how diligence coupled with common sense can work miracles From a man of moderate means he has risen to eminence. I have my highest admiration and regard for him To the field of education his contribution is immense, and we Biharees are proud of him. I wish him great success

[६२]

Rai Sahib G C. Majumdar, B A, Retd Headmaster North Brook Zila School Darbhanga (Formerly member of B & O Education service)—

By dint of selfless devotion and perseverance Babu Ramlochan Saran has achieved success unparalleled in the history of Bihar His contributions to the cause of (Hindi) literature have been of a very high order. He has

risen to eminence from very humble beginning, only through his honesty of purpose, patience and diligence and his life, therefore, should act as a beacon light to others.

[६३]

Jagdish Lal, B A Dip in Ed Head Master, Shree Kameshwar High English School, Pandaul, Darbhanga—

The Bhandar has been rendering the most valuable service to the world of Hindi literature since its very inception Its activities have not been confined to the domain of literature alone but also cover a wider range

Babu Ramlochan Saran is a man of saintly character and has succeeded in shaping the destinies of many a youth of the province The door of the Bhandar is always open to the poor and intelligent students who receive help both monetary and in the shape of a free gift of books We have nothing but praise and admiration for such a noble firm and we wish it a long and prosperous career

[६४]

The Head Master, Mukherjee's Seminary, Muzaffarpur—

I have had transactions with the 'Pustak Bhandar' for the last twenty years in connection with my choice of approved Text Books and I have found the course books beautifully suited to the requirements of the students. I wish the 'Bhandar' ever success and a grand day on the occasion of its Silver Jubilee

[६५]

Kshitish Kamal Sen Gupta, M A, Head Master, Eden School, and Secretary, Education Board, Hathwa Raj—

My intimate relations with the 'Bhandar' have convinced me that it is worthy of the highest praise for its serving the cause of education in our province.

[६६]

I. P Pathak, Head Master, Topchanchi, M E School, (Manbhum)—

Babu Ramlochan Saran holds a unique position among the Hindi writers He has amply shown how an energetic pen with a powerful brain can make a permanent impression on the annals of literature.

[६७]

Ramasis Sinha, Head Master, M E School, Punas, P O Ranitola, (Darbhanga)—

The Pustak Bhandar is the glory of Bihar. It has admirably served the lovers of Hindi literature and the different sorts of text books it has produced have enriched not only Bihar but India as a whole

[६८]

Badri Narayan Head Master, B B M. E School Sirsia, P O Kanti (Muzaffarpur)—

The Bhandar is the outcome of the honest and indefatigable labour of Ramlochan Babu I have all along been impressed by his simplicity, honesty and industry

[६९]

Ram Bali Dube, Head Master, M E School, Ziradai, P O (Saran)—

Babu Ramlochan Saran is a well renowned publisher who has opened up new lines of journalistic enterprise He has participated in no small measure in educational activities of the province He has been famous for his steadfast zeal, honesty of purpose and courteous manners

[७०]

Kameshwari Prasad Head Master, Municipal M. E School, Daltonganj (Palamu)—

The Pustak Bhandar has done much to remove the difficulties of the students of Bihar The books published under the able guidance of Babu Ramlochan Saran admirably meet the requirements of the students of modern times

[७१]

Jai Krishna Jha, Head Master M E School Shakarpura, P O, Bakhari Bazar, (Monghyr)—

The books published by the the 'Bhandar' never lack in matter or from But they are put into the market with such cheapness that they at once win popularity

[७२]

Abdul Hai, Head Master, A M M E School, Puraini, (Bhagalpur)—

The guiding principle of the Pustak Bhandar has been—

⊛ خرد مند باشی طلبگار علم
که گرم است پیوسته بازار علم

It is always found to be in the forefront of the cause of Education and particularly in the development of Hindi literature

[७३]

Anandi Thakur, Head Master, M E School, Mamai (Monghyr)—

The enterprising publishers of the Pustak Bhandar Laheriasarai are going ahead both in the matter of enriching the Juvenile literature as well as in preparing works for serious study The printing and get up of books are all that can be desired

[७४]

Rai Bahadur Bhikhari Charan Patnayak, Town Hall Road, Cuttack—

Babu Ramlochan Saran has worked wonders in Hindi literature His primers, his Alphabet Charts his different Readers and his 'Balak' are unique in the field, I regard him as a noble ideal before the young generation The youth of the time when they feel discouraged, should look at the works done by Babu Ramlochan Saran They should study his enthusiasm for work, think over his untiring labour, steady zeal, determination of purpose and earnest adherence to a noble cause, which could lead him to success He is the founder of the 'Pustak Bhandar' the premier publishing concern of the country He has contributed immensely towards the development of Hindi literature His name is prominent for Juvenile literature I believe a careful study of his life should encourge many to work and to regard work as the only thing that can raise one from the lowest level of the world to highest pitch He is undoubtedly a self made man and a sincere public benefactor

---

⊛ खिरदमन्द बाशद तलबगारे इल्म
कि गर्म अस्त पैवस्त बाजार इल्म

अर्थात्—अक्लमन्द इल्म का चाहने वाला होता है ; क्योंकि इल्म का बाजार हमेशा गरम रहता है—दुनिया में इल्म ही का बोलबाला है—इल्म ही सबसे बढ़कर बेशकीमत चीज है।

[७५]

D Prasad, M L A' Chaibasa—

This publishing firm has done splendid works by publishing useful books in Hindi The Hindi knowing public has derived immense benefit from this firm Educational institutions in this province have been using the books published by this firm in large numbers The proprietor of this firm Pandit Ramlochan Saran is very enterprising and industrious His services are being appreciated by the public.

[७६]

Babu Shyama Nandan Sahay M L A, Vice Chairman, District Board, Patna—

One can safely place Babu Ramlochan Saran among the most prominent public benefactors of the province His life has been one of ceaseless devotion to the cause of Hindi and Urdu literatures 'Nation Building' is the guiding principle of all his works and compilations His natural stress is, therefore, on a sane and healthy Juvenile literature, and his attempts in this direction without the least doubt, stand unique and unparalleled The popularity of the 'Balak' throughout India is most deserved It speaks of the deep insight of the Editor into child dsycholgy and his sincere efforts to let the young mind unfold itself like a flower and yet in the process learn all that is neccessary for him to weather the vagaries of sun and shower Its neatness get up and printing are excellent It can very profitably be used by all school-students in order to develop a charming style, an optimistic outlook on life and to be in every touch with the progress in the world around them Saranji's 'one pice series' is another novel and praiseworthy attempt It will bring rudimentary knowledge of various subjects within easy reach of the ignorant and poverty stricken masses of India I am led to believe that Saranji has a still greater future in store for him.

[७७]

G. Sinha, Deputy Director or Public Instruction Bihar, Patna—

The founder and proprietor of the Pustak Bhandar has shown the rare gift of combining literary taste and attainments with business capacity and has developed his firm into a big literary institution from a very humble beginning The Bhandar has insisted on a high standard of both literary production and the artistic side of the printing work In the field of publi

cation of school books, it has always tried to adopt the latest ideas from the principles and practice of pedagogy While the services of the Bhandar to the Hindi literature are very solid, it has tried to serve Urdu, Bengali and Oriya too as far as possible I wish it long life, prosperity and new avenues for serving the society

[७८]

The Principal, G B B College, Muzaffarpur—

I heartily congratulate the firm on attaining its 25th birth day and wish it many years of useful service to the province and to the cause of Hindi literature

[७९]

Khan Bahadur M A, Hosain, Assitant Registrar, Patna University, Patna—

I have read some of the Urdu books published by Pustak Bhandar for the use of school boys These books make quite a useful and interesting reading for small boys The Bhandar is doing very useful work in Bihar, where there is a dearth of good publishers, and it deserves to be encouraged in every way

[८०]

Mr P Pariza, M A (Cantab) B Sc (Cal) F N I, I E S, Principal and Professor of Botany, Ravenshaw College Cuttack—

The Pustak-Bhandar has rendered signal service to the Hindi reading public by publishing a number of good books in Hindi, but its activities are not confined to Hindi alone It has also published some books in English and in Oriya As a lover of books myself, I contribute my quota of good wishes to the Pustak Bhandar May it continue its good work long and well May its founder, Babu Ramlochan Saran, live long and serve the country in spreading enlightement

There are few professions nobler than that of a publisher or a bookseller because a publisher or a bookseller brings enlightment within the reach of men of average means and thereby renders a spiritual service to the nation Babu Ramlochan Saran has carried on this noble profession for the last twenty five years and by dint of his perseverance has made the Pustak-Bhandar what it is to-day

[८१]

S M Alam, Esq, B A, (Cantab), Inspector of Schools, Bhagalpur—

The Pustak Bhandar has to its credit a long list of various educational and literary publications It has made a rich contribution to the Bihar Mass Literacy Compaign by printing and publishing a large number of literacy charts and primers, and making a free gift of them to the Government In the literacy field the Pustak Bhandar has also made a mark Some of its Juvenile publications are of great educational value and interest.

[८२]

H Lall Inspector of schools, Patna Division—

Babu Ramlochan Saran is one of the few worthy sons of Bihar who know the value of self help and have risen to eminence by their own efforts I congratulate him on his spirit of enterprise and self help in bringing into being the Pustak Bhandar which has done and is doing excellent work in the field of education The publications the press has brought out and placed in the hands of the school population, both Hindi and Urdu are second to none in point of quality, while the get up is really charming Saranji is an outstanding personality, reminding one of the popular maxims "Self Help is the Best Help His life of activity and general usefulness is bound to prove a source of inspiration to all I wish him good luck.

[८३]

Inspector of Schools, Chotanagpur Division—

Every educationist in Bihar is acquainted with the wonderful work that the Pustak Bhandar has done To-day there is hardly any school in the province, Primary Middle or High in which books printed and published by the Pustak Bhandar are not used in large numbers. Pandit Ramlochan Saran is a man of ideas and he can always see a far ahead He has been fortunate enough to secure the services of eminent authors and the books brought out by him always give us full satisfaction I wish Pustak Bhandar every success.

[८४]

Rai Saheb A B Mohanti, M A., Professor Ravenshaw College, Cuttack—

Pandit Ramlochan Saran is a true patriot His greatness lies in his simplicity, sincerity and generosity He is not a mere publisher but teacher of very high order By editing the monthly 'The Balak' he has given the young folk enough scope and facilities in cultivating the art of writing

His work in the field of Hindi Literature is immense May he live long and thrive in his noble endeavours with the blessing of God.

[८५]

District Inspector of Schools, Purnea—

The services rendered to the cause of education by Babu Ramlochan Saran have been unique He has tried his utmost to make the Mass Literacy movement a success in Bihar The course-books and literary works published by his firm are all up-to date and possess admirable qualities The print, paper and get up of the books are generally good and the prices too are moderate to suit even the poor Both Hindi and Urdu reading public have been equally benefited by his firm"

[८६]

District Inspector of Schools, Singhbhum—

The Pustak Bhandar has really been the store house of knowledge and culture The Bhandar has rendered yeoman's service to the country in the field of education

[८७]

Rama Prasad, District Inspector of Schools, Saran—

Babu Ramlochan Saran has rendered positive service to the education of the province in particular and of the country in general He is the glaring instance of a self made man Pustak Bhandar has illuminated the Hindi world with magnificent light of knowledge and won recognition by all The services done by the "Balak" to the child world has gone a long way to shape the brain and mould the character of its readers

The Bhandar has not kept itself confined to the students' field only Its attempt to give out standard works in fiction, religion and literature keeping a cosmopolitan view endears it to all The philanthropy of Babu Ramlochan Saran exhibits beyond doubt the magnanimity of his mind.

[८८]

District Inspector of Schools, Arrah—

The Pustak Bhandar has rendered immense service to the cause of education The 'Balak' has always appealed to me as the very best one of its kind Babu Ramlochan Saran is a man of very simple habits with a big amount of patience By dint of his sustained labour he rightly deserves the appreciation of all concerned with Education for his noble products I wish that he may be spared long to serve the cause of Hindi

[८९]

Deputy Inspector of Schools Banka (Bhagalpur)—

The Bhandar has produced enormous literary work conducive to the ectual uplift of the new generation and has apprecıably contributed to ıish the stock of Hindı literature best suited to the juveniles and s alike

Babu Ramlochan Saran has indeed rendered steady and glorious ices to the cause of his motherland by his invaluable literary contributions munificent donations

[९०]

eoki Nandan Sahai, B A, B Ed Deputy Inspector of Schools Jamui (Monghyr)—

The Pustak Bhandar has been doing valuable service to the cause of rature since its very existence

[९१]

agwan Prasad B A, Dip in Ed Sub Inspector of Schools Monghyr—

None in Bihar is unaware of the high class service of 'Master Saheb wards the growth of Hindi Literature Our country as a whole and our rovince in particular will ever remember his worthy service to Hindi and rimary Education

[९२]

Maulvi Mohammad Masud, Deputy Inspector of Schools, Jahanabad (Gaya)—

The Pustak Bhandar has rendered valuable service to the cause of Education I wish every success to the institution

[९३]

Jaikrishna Jha, Sub Inspector of Schools Pupri (West) P O Janakpur Road (Muzaffarpur)—

The Pustak Bhandar is really a very useful and enterprising institution It has removed a long felt want of the province by enriching the stock of Hindi literature

[९४]

Baxi Jagannath Prasad Sinha M A, Dip in Ed, Sub Inspector of Schools Behia—

The text books published by the Pustak Bhandar for use in primary schools, have been universally admitted to be the best in the market

१००१

Indeed the boys feel quite at home with the matter in those books, and take extreme delight in going through them, even beyond school hours

[९५]

I. P Singh, M A, B Ed Sub Inspector of Schools, Jamui (Monghyr)—

The unique service which the Bhandar has done during the past twenty five years to further the cause of Hindi literature can never be forgotten The 'Balak' has grown very popular among children, men and women of the Hindi speaking provinces

[९६]

T D Karmkar, Chairman, District Board, Manbhum, Purulia—

Pandit Ramlochan Saran had the courage to give up his Government service to be covetted by the millions and to take to an independent line of activity His efforts have been crowned with success I wish the celebration of his Golden Jubilee a success and hope sincerely that he will live to see the Golden Jubilee of his firm as well

[९७]

Chairman, Singhbhum, District Board, Chaibasa—

The Pustak Bhandar has been contributing a great boon to the public and especially Bihar by its good number of useful and wise publications There is hardly any school in the province which has not appreciated its publications Its most popular monthly magazine the 'Balal' is well known to the young and old Pandit Ramlochan Saran has immensely helped the provincial Mass Literacy Campaign in Bihar by free distribution of Charts and Primers

[९८]

Jogendra N Singh, Chairman District Board, Bhagalpur—

I have great pleasure in commending the immense utility of the Pustak Bhandar to the public Its golden record of service to India in general and Bihar in particular is indeed valuable Babu Ramlochan Saran the proprietor of the institution has really ushered a new era of renaissance in the Hindi literature The Bhandar has also paid a substantial quota to the progress of the Mass Literacy Campaign in the province of Bihar

[९९]

Ramsahay Lal, Member, Educational Committee, District Board Committee, Santhal Parganas—

The Pustak Bhandar has removed a very great want of Bihar I remember my days of boyhood when Bihar had to depend entirely on the book published by and printed in other provinces I wish the Pustak Bhandar may continue to prosper and carry on its brilliant career for many years to come

[१००]

Kamalai B Mal, Honorary Secretary, Saraswati Library, Jharia—

The Pustak Bhandar is the only institution in the province which publishes books of the most eminent literary authors in this province One of the great achievements made by the Bhandar is the publication of the 'Balak' magazine which is greatly liked by the student's community

[१०१]

Rai Shrinandan Prasad, Secretary, District Subordinate Educational service Association (Inspecting Branch)—

The Pustak Bhandar has been doing much towards the advancement of Hindi Literature by their various publications for a very long time The regular issue of the 'Balak' has been adding considerably to the cause of Hindi literature

[१०२]

The Director of Public Instruction, Bihar & Orissa—

The Superintendent of Sanskrit studies has sent me a copy of your letter of December 10 regarding your proposed endowment for the Vidyalaya at Radhaur It is a very generous offer and I shall be glad to help you to give effect to it Perhaps the safest thing to do with the money will be to hand it over the Treasurer of charitable Endowment, who would pay the interest to the Superintendent of Sanskrit Studies to be used for the benefit of Vidyalaya If you accept this suggestion and send me the money, I can arrange all the details for you

[१०३]

Shri Shyama Prasanna Banerji, Jhalda (Manbhum)—

I am not well conversant with Hindi and as I preferred Bengali than English in this particular occasion, I have noted down my good wishes in Bengali It is up to you to accept my humble good wishes.

সততা ও বিশ্বস্ততা পুস্তক-ভাণ্ডারকে আজ এত লোকপ্রিয় করে তুলেছে। জনসাধারণের হিতার্থে দান এবং জনমণ্ডলীর উন্নতিকল্পে শিক্ষা-বিস্তারের ঐকান্তিকী চেষ্টা, পুস্তক-ভাণ্ডারের বিশেষত্ব।

কর্ম্মীবৃন্দের নিষ্ঠা ও সত্যপরায়ণতাই 'ভাণ্ডারের' মূলভিত্তি। বস্তুতঃ তাঁদের অকপট কর্ত্তব্যানুরাগই 'ভাণ্ডারকে' আজ এত উন্নত ও সুদৃঢ় করেছে।

'ভাণ্ডারের' রজত-জয়ন্তী সার্থক ও জয়যুক্ত হ'ক। ভগবৎ কৃপায় 'ভাণ্ডার' দিনে-দিনে সুবর্ণজয়ন্তীর পথে অগ্রসর হ'ক, গণোন্নতি ব্রত-উদ্যাপন-আশায় 'পুস্তক-ভাণ্ডারের' এতদিন যাবৎ অদম্য ও শুভ প্রচেষ্টা ঈশানুগ্রহে সাফল্যমণ্ডিত হ'ক, এই আমার কামনা।

—শ্রীশ্যামাপ্রসাদ বন্দ্যোপাধ্যায়

[১০৪]

عبدالغفور نعمانی، مئوبازیدپور، ضلع دربھنگہ

کچھ عرصہ ہوا کہ میرا چھوٹا بھائی ڈاکٹر عبدالجلیل جونیئر کلاسوں میں پڑھتا تھا۔ بستی کے لڑکے ہندو مسلمان سبھی اس کے ساتھی تھے — اکثر میں ان کے کمروں میں چلا جاتا — ان کی نوشت و خواند کی طرف متوجہ ہوتا۔ کتابوں کو الٹ پلٹ کر دیکھتا۔ ہندی کی کتابیں بھی دیکھتا اور اردو کی کتابیں بھی — کچھ متعجب سا ہوتا اور بار بار دیکھتا کہ جو باتیں ہندی کی کتابوں میں ہیں وہی باتیں اردو کی کتابوں میں بھی۔ وہی لوچ اور وہی انداز — پڑھنے سے یہی معلوم ہوتا کہ متکلم باتیں کرتا اور مخاطب سن رہا ہے — ساری کتابوں کے اوراق الٹ جاتا — سمجھنے میں کوئی کاوش ذہنی نہیں ہوتی۔ اسی میں اسی ادھیڑبن میں پڑا کہ یہ نادر مصنف ہیں کون؟ کتابیں دیکھیں — ٹائٹل پیج پر دیکھا کہ جلی قلم سے لکھا ہے "رام لوچن شرن" — قدرتی چیزوں کو دیکھئے تو خداوند عالم کا کرشمہ نظر آتا ہے اور مصنوعی چیزوں کو دیکھئے تو ان کے صانع (آرٹسٹ) کی کاریگری کا پتہ چلتا ہے — حقیقت ہے کہ بابو رام لوچن شرن نے بغیر اختلاف قوم و ملت ہائیجین، جغرافیہ، نوارسم، قواعد، ریاضی اور املا نویسی وغیرہ کی کتابیں لکھیں — ریاضی کا بہت لحاظ رکھا جس سے مسلمان بچوں کی تعلیم میں ایک گونہ مدد ملی — میں نے یہ سمجھا تھا کہ ماسٹر صاحب موصوف کی کتابیں صرف

श्रीयोगेन्द्रनाथ सिंह (पृष्ठ १७३)

स्वर्गीय सेठ जमनालाल बजाज

आचार्य काका कालेलकर

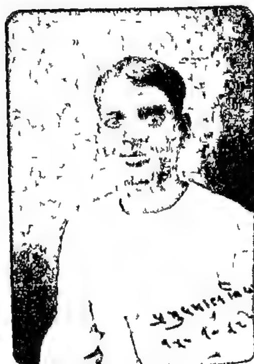

श्रीयुत प्रभुदयाल विद्यार्थी

ہمارے چھوٹے دیہاتی ہی کے اسکول میں پڑھائی جاتی ہیں - لیکن میں نے تجربہ کیا کہ
صوبہ کے گوشہ گوشہ میں یہ کتابیں پڑھائی جاتی ہیں اور ان کتابوں کے الفاظ اور جملے
ورد زباں ہیں -

پھر تو ان کی خدمت ادب کی طرف ہوئی - اب ان کے اخلاق حسنہ
اور اوصاف حمیدہ کو سنئے -

میں مبالغہ سے کام نہیں لیتا - حقیقت حال آپ کے سامنے پیش کرتا ہوں -
کوئی جگ بیتی کہتا ہے میں آپ بیتی کہتا ہوں - میری ملازمت کچھ اس طرح کی
واقع ہوئی ہے کہ خواہ مخواہ تعلیم و تربیت کی طرف جھکی جاتی ہے - اسی سلسلہ
میں اکثر میں آنا کرتا - جناب ماسٹر صاحب موصوف سے ملاقاتیں ہوا کرتیں - گفتگو کا
کافی موقع ملتا - کیا کہنا ! ذرا بھی بے رخی نہ دیکھی - ہمیشہ خندہ پیشانی سے گفتگو
کی - اصول تعلیم پر اکثر بحثیں ہوا کیں - گرام سدھار کا اکثر تذکرہ رہتا - بلا امتیاز
مذہب طبیعاتی کے وقت اپنی زندگی کے موقع پر غریبوں کی لڑکیوں کی شادی میں
ہزاروں روپئے سے مدد کی - ہر سال بلا لحاظ قوم و ملت ہزاروں روپئے کی کتابیں
غریب بچوں میں تقسیم کرتے ہیں - بلاشبہ ان کی ذات سے ہندو اور مسلمان کو
فائدہ پہنچتا ہے -

خداوند عالم جناب ماسٹر صاحب موصوف کو اس ادبی خدمت اور غریبوں کی
امداد رسانی میں برکت دے اور اسی صلے میں اعلیٰ مرتبہ پر پہنچائے - آمین !

[१०५]

स्वर्गीय सेठ जमुनालाल बजाज—

मैं इस शुभ कार्य की सफलता चाहता हूँ।

(१०-७-४०)

[१०६]

श्रीयुत काका कालेलकर, वर्धा—

लहेरियासराय के पुस्तक भंडार की किताबें मैंने ऊपर-ऊपर से देखीं। मुझे अच्छी लगीं। 'बालक'-जैसे मासिक को चलाकर विद्यार्थियों की आवश्यकताएँ क्या हैं और हर चीज किस तरह से रोचक बनाई जा सकती है—इसका खयाल प्रकाशक को अच्छा आया है। प्रकाशनों में विविधता भी अच्छी है। बिहार जैसे प्रान्त में यह सफल साहस देखकर विशेष खुशी होती है। मैं आशा करता हूँ कि इस पुस्तक भंडार से नई नई योजनाओं के अनुसार राष्ट्रहित की पुस्तक मालाएँ निकलेंगी।

स्वर्गीय सेठ जमनालाल बजाज

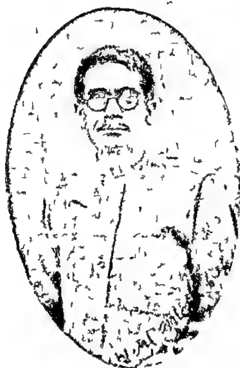

आचार्य काका कालेलकर

श्रीयुत प्रभुदयाल विद्यार्थी

श्रीजगन्नाथ प्रसाद वैष्णव

[१०७]

श्रीकपिलदेवनारायण सिंह 'सुहृद्'—

शरणजी को दूर और समीप से अध्ययन करने के अनेकों अवसर आये हैं और उनके स्वभाव के विविध अंगों का अनुभव मुझे प्राप्त हुआ है। मैं शरणजी को एक आदर्श मनुष्य पाता हूँ। ऐसा मनुष्य—जो हिमालय की तरह महामना और सागर की तरह गंभीर है—जिसे अमृत का लोभ नहीं और जहर का भय नहीं—जो 'सुख-दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ' के सिद्धान्त को अपने जीवन में उतारे हुए है और जो मनुष्य का स्थान मित्रता और शत्रुता के बंधनों से परे मानता है। मेरे आघातों के बाद भी उन्होंने मेरे साथ जिस सद्भाव को कायम रक्खा है वह उनकी महत्ता का सबूत है। मेरे विचार से अगर आज वे विद्वान् साहित्यिक, धनवान् प्रकाशक और लोकप्रिय नागरिक न भी हुए होते तो भी जाननेवालों के बीच वे उज्ज्वल मनुष्य के रूप में पूजनीय होते। शरणजी ने भाषा की शुद्धता के प्रचार की दृष्टि से स्कूली किताबें लिखना शुरू किया और शिक्षा-विभाग की स्ववर्गीय पुस्तकों को शुद्धता प्रदान की। इस दिशा में उनकी चेष्टाओं का कैसा महत्त्व है इसे केवल वे ही जान सकते हैं जिन्होंने कभी 'भंडार' के जन्म के पहले और पीछे की कोर्स की किताबों की तुलना की है। बिहार की बिखरी हुई साहित्यिक विभूतियों को एकत्र कर सामूहिक तेज से प्रान्त का शृंगार सजाने के लिये बिहार का बच्चा-बच्चा शरणजी का ऋणी है—इसमें कोई सन्देह नहीं।

श्रीजगन्नाथ प्रसाद चँप्याव

घँसुलिया बाबा

बँसुलिया बाबा

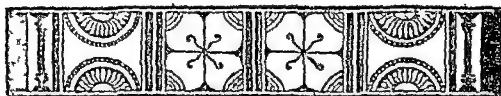

परिशिष्ट [१]

अभिनन्दन-पत्र

[१]

हिन्दी-साहित्य के परम उन्नायक, बिहार की साहित्यसाधना के सफल साधक,

अमरकीर्त्ति रायसाहब रामलोचनशरणजी

के यशस्वी करकमलों में सादर समर्पित

राष्ट्रभाषा हिन्दी के सच्चे भक्त लब्धगौरव रायसाहब,

श्रीमज्जानकीजीवन मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र की अशेष अनुकम्पा से आज हम आपको नये सम्बोधन से सम्बोधित करते हुए अपूर्व उल्लास का अनुभव कर रहे हैं, क्योंकि हिन्दी संसार की जनता तो आपको सम्मान की दृष्टि से देखकर सन्तुष्ट ही थी, अब सरकार भी जनता की दृष्टि के आकर्षण-केन्द्र पर पहुँचकर अपने कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर हुई है। इस प्रकार जनता की उस धारणा को सत्य सिद्ध करने में तत्पर हुई सरकार को हम आपसे भी पहले बधाई देना चाहते हैं। सच तो यह है कि आपको बधाई देने योग्य इससे भी अच्छे अवसर आपके जीवन में आ चुके हैं, पर हमलोग तो दूसरे के हाथ के दीपक के प्रकाश में ही अपने घर की सम्पदा भी देखने के अभ्यासी हैं।

मातृभाषामन्दिर के अनन्य पुजारी!

आपने अपने आरम्भिक जीवन से ही शुद्ध स्वावलम्बन का आदर्श उपस्थित कर, साहित्यसेवा के मार्ग को प्रशस्त बनाने के लिये, 'पुस्तक-भंडार' और 'विद्यापति प्रेस' की स्थापना की, जिनके द्वारा बरसों से हिन्दी साहित्य की स्तुत्य सेवा हो रही है। प्रकाशन संस्था और प्रेस के द्वारा हिन्दी के क्षेत्र में कुछ काम करनेवाले जितने महानुभावों के नाम आजतक बिहार में देख पड़ते हैं, उनमें आपका नाम सबसे उज्ज्वल और प्रभापूर्ण है। इससे हमलोग विशेष गर्व का अनुभव करते हैं। और, आपके द्वारा सम्पादित और संरक्षित 'बालक' भी

एक संस्था ही बन गया है, जिसने समस्त हिन्दी-संसार के बालकों को आकृष्ट करने में आजतक अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं देखा। इन तीन संस्थाओं के अतिरिक्त विद्यापति-पुस्तकालय और वाचनालय तथा विद्यापति-हाईस्कूल की भी स्थापना कर आपने मिथिला के एक विशाल कीर्त्ति-स्तम्भ की रक्षा की है, जिसके शिखर-स्थित काव्यप्रदीप से सम्पूर्ण हिन्दीजगत् आलोकित है।

साहित्यसेवियों के सात्त्विक बन्धु!

आपके द्वारा सम्पोषित, समादृत और उपकृत साहित्यसेवियों की संख्या अगणित है। अनेक साहित्यसेवियों ने संकट में आपको वास्तविक बन्धु के रूप में पाया है। उन्हें आश्रय और प्रोत्साहन प्रदान करने में आपने जो उदारता और सहृदयता दिखाई है वह बिहार के हिन्दी-साहित्य के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी। केवल बिहार ही के नहीं, अन्य प्रान्तों के साहित्यसेवी भी यही मानते हैं कि बिहार में एकमात्र आप ही ऐसे वदान्य पुरुष हैं जो साहित्यसेवी मात्र के लिये अपने हृदय में अनुराग और सद्भाव संचित रखते हैं। आपका यह गौरव भी हमारे गर्व का कारण ही है।

गुणागरी नागरी की गुदड़ी के लाल!

भारत-भाल बिन्दी हिन्दी की द्युति चमकाने में आपकी सरलगति लेखनी ने जो चमत्कार प्रदर्शित किया है वह सर्वथा अभिनन्दनीय है। आपकी मँजी हुई लेखनी ने तोतली भाषा बोलनेवालों से लेकर देश के होनहार नौनिहालों तक को ज्ञान के क्षितिज की ओर उन्मुख करने में जो कौशल दिखाया है उसके परिणाम स्वरूप आज भी हिन्दी-साहित्योद्यान में देश के उगते हुए पौधे लहलहा रहे हैं। भगवान् मैथिलीवल्लभ से यही प्रार्थना है कि उन्होंने जो साहित्योद्यान आपके समान चतुर माली को सौंपा है उसे सदा हराभरा रक्खें और उसकी रक्षा के लिये आपको चिरायु करें।

पुनः अन्त में हमलोग सर्वान्तःकरण से आपका आभ्यन्तरिक अभिनन्दन करते हुए आप ही के उपास्यदेव भगवान् रामचन्द्र से बार बार प्रार्थना करते हैं कि साहित्यसेवा के निमित्त भगीरथ प्रयत्न करके आपने जो राजकीय प्रतिष्ठा प्राप्त की है, वह आपको साहित्यसेवा की ओर अधिकाधिक प्रवृत्त करने में समर्थ हो, जिससे हिन्दी-संसार में बिहार के साहित्यिक गौरव का झंडा सदा ऊँचा रहे।

दरभंगा-टाउनहाल
१९–६–४१

आपकी उपाधिलब्धि और साहित्यसंवर्द्धना से
अनुप्राणित और कृतकृत्य
सदस्यगण–विद्यापति-हिन्दी-सभा

[२]

बिहार के एकान्त कर्मनिष्ठ साहित्य तपस्वी रायसाहब रामलोचनशरणजी की सेवा मे

आचार्यवर,

पुण्य भारतभूमि के प्राचीन विद्यापीठ बिहार में साहित्य-संस्कृति के पुनरुज्जीवनार्थ आपने जिस अनवरत साहित्यिक तपश्चर्या के द्वारा नवयुगनिर्माण का कार्य किया है, उससे हम बिहारियों का मस्तक गौरवोन्नत हो रहा है।

विगत तीस वर्षों से आपने हिन्दी माता की जो अमूल्य सेवाएँ की हैं, वे देश के भावी इतिहास मे स्वर्णाक्षरों में लिखी जायँगी।

आपकी युगान्तरप्रवर्तिनी लेखनी ने जिस अपूर्व बाल-साहित्य की सृष्टि की है, वह किसी भी भाषा के लिये समादरणीय आदर्श बन सकता है।

आपने अपने रत्नप्रसवी 'पुस्तक भंडार' के रूप में हिन्दी संसार को जो अनुपम भांडागार प्रदान किया है, उसका मूल्य नहीं आँका जा सकता।

आपने 'बालक' द्वारा देश के भावी कर्णधारों के कोमल मस्तिष्क में जो प्रगतिशील भावनाएँ अङ्कित की हैं, तदर्थ देश की अगली पीढ़ियाँ आपकी गुण-गाथा का गान करती रहेंगी।

बिहार के आधुनिक युवक साहित्यिक आपके द्वारा प्रस्तुत मानसिक भोजन से ही पुष्ट तथा संवर्द्धित होकर भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का परिचय दे रहे हैं।

आपका 'व्याकरणचन्द्रोदय' साहित्य-गगन में पूर्णचन्द्र के समान अपनी शुभ्रज्योत्स्ना से सर्वदा दिगन्तव्यापी आलोक का विस्तार करता रहेगा।

आपकी लेखन-शैली, सम्पादन-कला तथा समालोचना-प्रणाली 'सरस्वती'-सम्पादन की याद दिलाती है। आप वस्तुत बिहार के 'द्विवेदीजी' हैं। उन्हीं की तरह आपको भी सैकड़ों लेखकों और कवियों का निर्माण करने का श्रेय प्राप्त है।

श्रीमन्! बिहार में हिन्दी साहित्य के लिये यह सर्वप्रथम गौरव है कि उसकी आराधना के हेतु सरकार उपाधिप्रदान द्वारा सम्मान प्रदर्शित करे। यद्यपि आपकी योग्यता, गुरुता और महत्ता को देखते हुए यह उपाधि आपकी शोभा नहीं बढ़ाती, प्रत्युत आप ही से इस उपाधि की शोभा बढ़ती है, तथापि हमें इस बात से सन्तोष है कि हिन्दी-माता का आदर आपकी बदौलत सरकार

के घर में हुआ। हम समस्त हिन्दी साहित्य-सेवी आपके इस सम्मान को अपना गौरव समझते हैं और आनन्द गद्गद हृदय से आपका अभिनन्दन करते हैं।

परमात्मा आपको चिरायु करें, जिससे देश, जाति और साहित्य की इसी प्रकार सेवा करते हुए आप 'बिहार' का नाम उज्ज्वल करें।

दरभंगा,
आषाढ कृष्ण १०,
संवत् १९९८ वि.

आपकी कीर्त्ति से गौरवान्वित
सदस्यगण, दरभंगा-जिला-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

[३]

श्रीमद्रामलोचनशरणकरकमलयोः सादरं समर्पणम्

श्रीमन्नशेषगुणभूषित शीलधाम !
विद्याविनोदविनयान्वित ! पुण्यनाम !
राजन्त्यलं प्रतिदिशं कृतयो यदीया—
स्तस्मै लसन्तु भवते नतयो मदीया ॥
राकेशवत्तव यशो सकलासु दिक्षु
सत्पुस्तक-प्रणयनेन श्रुतं चिरेण ॥
मन्ये पुरोऽद्य भवता शुभ दर्शनेन
पुण्यं पुराकृतमहो सफलं मदीयम् ॥

चकलपुरा इस्टेट
खगौल, दानापुर
२७–११–४०

निवेदक—
कृष्णमुरारीनारायण सिंह

[४]

साहित्य के सच्चे सेवक, श्रीमन् महानुभाव !

जिस किसी ने भी आपके अनूठे जीवन की एक झाँकी भी होगी उसे विश्वास हो जायगा कि अध्यवसाय सचमुच ही ऐहिक सफलता की ताली है। 'कर्त्तव्यपरायणता मनुष्य को बड़ा बनाती है'—इस किताबी कहावत को चरितार्थ करके आपने समाज के समक्ष कर्त्तव्य-निष्ठता का चमकता हुआ उदाहरण पेश किया है। कौन नहीं उस शिक्षकालय के शिक्षक को जानता है, जो आज अनवरत परिश्रम कर मानव-समाज की नजरों में चमचमाता सितारा-सा हो आया है ?

जन्दाहा (दरभंगा)
ता० १२ जून, '३९ ई०

हम हैं, आपके कृपाकांक्षी—
जन्दाहा-किसान पुस्तकालय सदस्यगण

परिशिष्ट [२]

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
मद्रास

तृतीय

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचारक सम्मेलन

हिन्दी साहित्य प्रदर्शिनी

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
तृतीय
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचारक सम्मेलन
हिन्दी साहित्य प्रदर्शिनी
हिन्दी

जयन्तीस्मारकग्रन्थ के लेखक

कविवर अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध' (पृ० ८३)

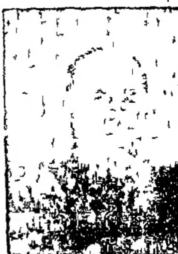

श्रीधर्मदेव शास्त्री (पृ० १५०

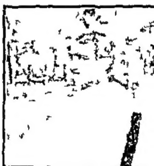

श्रीशंकरदेव विद्यालंकार (पृ० २२

श्रीगोपाल शास्त्री (पृ० ५

जयन्ती-स्मारक ग्रन्थ
के
तीन सम्पादक

उनवाँस (शाहाबाद)-निवासी
प्रोफेसर शिवपूजनसहाय
(राजेन्द्र-कालेज, छपरा)

कुमर-बाजितपुर-(मुजफ्फरपुर)-निवासी
प्रोफेसर हरिमोहन झा, एम० ए०
(बी० एन्० कालेज, पटना)

मलुआहो (भागलपुर)-निवासी
श्रीअच्युतानन्द दत्त
(सहकारी 'बालक'-सम्पादक
(लेख—पृ० ४३२)